

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक वृहत् कोश

[दूसरा खंड]

संपादक

श्यामसुंदरदास वी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल जगन्मोहन वर्मा

अमीरसिंह भगवानदीन

रामचंद्र वर्मा ।

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग, में मुद्रित ।

१९१६



संकेताक्षरों का विवरण ।

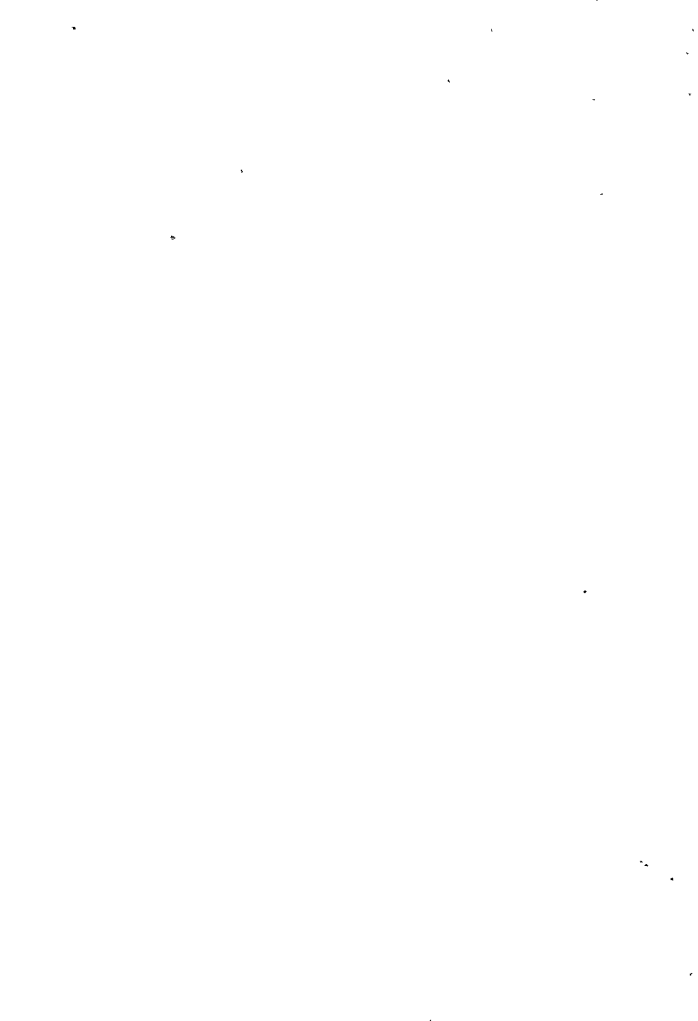
शं० = शंकरजी भाषा
श्र० = श्रवी भाषा
शत्रु० = शत्रुकरण शब्द
शने० = शनेकार्यनाममाला
शप० = शपभंग
शयोध्या = शयोध्यासिंह उपाध्याय
शद्धमा० = शद्ध मागधी
शल्प० = शल्यार्थक प्रयोग
शल्प० = शल्पय
श्रानंदधन = कवि श्रानंदधन
श्व० = श्वरानी भाषा
श० = शदाहरण
शतरचित = शतरामचरित
शय० = शयसां
शभ० = शभसिंहा
शक० शप० = शकवह्नी उपनिषद्
कमीर = कवीशदास
कोशय = कोशयदास
कोक = कोकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि०श० = क्रिया शकर्मक
क्रि०प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि०वि० = क्रियाविरोपण
क्रि०स० = क्रिया सकर्मक
क० = कचित् श्रयात् हुतका प्रयोग
बहुत कम देखनेमें आया है ।
खानखाना = शत्रुहोम खानखाना
गि०दा० वा गि०दास = गिरिधर-
दास (या गोपालचंद्र)
गिरिधर = गिरिधरराय (कृ-
शियावाले)
गुज० = गुजराती भाषा

गुमान = गुमानमिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (या
गोपालचंद्र)
वरण = वरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि
त्रिपाठी
छील = छीलस्वामी
जायसी = सलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डि० = डिंगल भाषा
हु० = हुकी भाषा
हुलमी = हुलसीदास
तोप = कवि तोप
दाद् = दानूदयाल
दीनदयाल = कवि दीनदयाल गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देशो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विचेदी = महावीरभसाद द्विचेदी
नामरी = नामरीदास
नाभा = नामादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर मह
पर्या० = पर्याय
प० = पासी भाषा
पुं० = पुंलिंग
पु० हिं० = पुरानी हिं०
पुत्त० = पुत्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वा हिं०

प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फू० = फुरासीसी भाषा
फा० = फारसी भाषा
चंग० = चंगला भाषा
वरमी० = वरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंडी बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाय० = भाववाचक
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मला० = मलायलम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाधो
मुहा० = मुहाविरे
घू० = घूनामी भाषा
यौ० = यौगिकतया दो वा अधिक
शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुरान = महााराज रघुरानसिंह
सिर्वाजरेठ
रसराज = संयद इमाहोम
रसनिधि = राजा शृषीसिंह
रहीम = शत्रुहोम खानखाना
लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह

लहू = लहू लाल
लरा० = लराकरी भाषा श्रयात्
हिंदुखानी जहाजियों
की बोली
लाल = लाल कवि (छत्रप्रकाश
वाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विरोपण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकामुद्री
व्या० = व्याकरण
व्यास = श्रंखिकादत्त व्यास
खं० दि० = खंकर दिग्विजय
खं० सत० = खंकार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोगक शय्य
संयो० क्रि० = संयोगक क्रिया
स० = सकर्मक
सवल = सजलसिंह चौहान
सभा० वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विचेदी
सूदन = सूदनकवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
खि० = खियों द्वारा प्रयुक्त
खी० = खीलिंग
खी० = खीनी भाषा
हिं० = हिं० की भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिचंद्र = भास्तु हरिचंद्र

० यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त है ।
† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रसिद्ध है ।
‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप प्राच्य है ।



उसकी गरदन पर अपनी कलाई और कोहनी के बीच की हड्डी से रगड़ते हुए किया जाता है। रहा। धस्ता।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, हिं० कन्ना] (१) पतंग या गुड्डी के ये दोनों कोने जिनके बीच में कमानि लगी रहती है। (२) पाय-जामे की वह निकोनी कली जो दोनों पायचों के ऊपर मध्य में रहती है।

क्रि० प्र०—लगाना।

संज्ञा पुं० [सं० कुंड = कढ़ाही] शुना हुआ दूध। खोवा। मावा।

मुहा०—कुंदा कसना या मृतना = दूध से खोवा तैयार करना।

कुंभी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंदा] (१) धुले या रंगे हुए कपड़ों की तरह करके, उनकी सिकुड़न और रुखाई दूर करने तथा तह जमाने के लिये उसे लकड़ी की मोगरी से घुटने की क्रिया। विद्योप—इस देश में हस्तरी की प्रथा का प्रचार होने से पहले पोथी हस्तरी का व्यवहार करते थे। आज कल भी कमखान आदि पर कुंभी ही की जाती है।

(२) खूब मारना। ठोकना। पीटना।

क्रि० प्र०—करना।

धो०—कुंभीगर।

कुंभीगर—संज्ञा पुं० [हिं० कुंभी + गर (मय०)] कुंभी करनेवाला। कुंदुर—संज्ञा पुं० [सं० । अ०] (१) एक प्रकार का सुगंधित पीला गोंद। यह एक प्रकार के कँटीले पौधे से निकलता है जो दो हाथ ऊँचा होता है और श्रवण के यमन आदि पथरीले स्थानों में मिलता है। इसके फल और धीज कष्टुप होते हैं। जय सूर्य्य कर्क राशि में होता है तब गोंद इकट्ठा किया जाता है। हकीम लोग इसे पुष्ट, हृद्य और रक्तलायक के रोकनेवाला मानते हैं। (२) एक प्रकार का सुगंधित गोंद जो सलाई के पेड़ से निकलता है। वैद्यक में यह रुचिकारक, स्वेदनायक, त्वचा के हितकारी और जूँ को दूर करनेवाला माना जाता है।

पयो०—सैराठी। पालकी। तीक्ष्णगंध। कुंदासु। भीषण। सुगंध। विड़गाव। लपु। नागवपूमिय। शलुकीनिय्यास।

कुंदेरना—क्रि० घ० [सं० कुंदरन = खोदना] खुपना। छिलना। खरोटना।

कुंदैरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुंदेरना + रा (मय०)] [वी० कुंदैरी] खरादनेवाला। खरादी। कुनेरा। उ०—कनकदंड बुद्ध मुना कक्षाई। जानहु फेर कुंदैरे भाई।—जायसी।

कुंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुंभी] (१) कायफल। (२) कुंभी। जलकुंभी। (३) कुंभनायक पेड़।

कुंभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी का बड़ा। घट। कलश।

धो०—कुंभज। कुंभकर्ण। कुंभकर।

(२) हाथी के सिर के दोनों ओर ऊपर उभरे हुए भाग। उ०—मत्त नाग तन कुंभ विदारी। ससि कैसरी गगन वन चारी।

(३) एक राशि का नाम जो दसवीं मानी जाती है। यह धनिष्ठा नक्षत्र के उत्तरार्द्ध शतभिष और पूर्व-भाद्र के तृतीय-धरया तक उदय रहती है। इसका उदय काल ३ दंड २८ मल है। यह राशि शीतपित्त है। (४) एक मान जो दो द्रोण या ६५ सेर का होता है। इसे सूर्य भी कहते हैं। जिरती किसी के मत से बीस द्रोण का एक कुंभ होता है। (५) योग-शास्त्रानुसार प्राणायाम के तीन भागों में से एक। कुंभ। (६)

एक वर्ष का नाम जो प्रति चारहवें वर्ष पड़ता है। इस अक्षर पर हरिद्वार में बड़ा मेला होता है। यह वर्ष इस लिये कुंभ कहलाता है कि जय सूर्य्य कुंभ राशि का होता है तभी यह पड़ता है। (७) मिट्टी आदि का वह बड़ा जो देवालघों के शिखर पर वा घेरों की मुंठेरी पर सोभा के लिये रखवा जाता है। कलश। (८) गुग्गुलु। (९) यह पुरुष जिसने वैश्या रख ली हो। वैश्यापति।

धो०—कुंभदासी।

(१०) जैन मतानुसार चतुर्मान श्रवणपिथी के उन्नीसवें श्रद्धेय का नाम। (११) यौद्धों के अनुसार बुद्ध देव के मत चौबीस जन्मों में से एक जन्म का नाम। (१२) एक राग का नाम जो श्रीराग का श्रावर्षा पुत्र माना जाता है। यह संपूर्ण जाति का राग है और संध्या के समय रात के पहले पहर में गाया जाता है। संगीत-दामोदर में इसे सरस्वती और पद्माश्री रागिनियों के योग से बना हुआ संकर राग माना है। (१३) एक दैत्य का नाम। यह दानव या और प्रह्लाद का पुत्र था। (१४) एक रावल का नाम जो कुंभकर्ण का पुत्र था। (१५) एक वाहन का नाम। (१६) एक पेड़ का नाम जो बंगाल, मद्रास, अरब और आसाम के जंगलों में होता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और छाछ काले रंग की होती है। लकड़ी मकान और श्रावणरी चीजों के बनाने के काम में आती है और पानी में नहीं सड़ती। इसकी छाल रेवेदार होती है और उससे रसती बटी जाती है। यह शीपचों में भी काम आती है। इसके फल को खुजी कहते हैं जिसे जायी स्वयं खाते तथा पशुओं को खिलाते हैं। इसके पत्रों माव फागुन में ऋद्ध जाते हैं। इसे कुंभी और राजमा भी कहते हैं। कुंभी।

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

धो०—कुंभदासी।

(१०) जैन मतानुसार चतुर्मान श्रवणपिथी के उन्नीसवें श्रद्धेय का नाम। (११) यौद्धों के अनुसार बुद्ध देव के मत चौबीस जन्मों में से एक जन्म का नाम। (१२) एक राग का नाम जो श्रीराग का श्रावर्षा पुत्र माना जाता है। यह संपूर्ण जाति का राग है और संध्या के समय रात के पहले पहर में गाया जाता है। संगीत-दामोदर में इसे सरस्वती और पद्माश्री रागिनियों के योग से बना हुआ संकर राग माना है। (१३) एक दैत्य का नाम। यह दानव या और प्रह्लाद का पुत्र था। (१४) एक रावल का नाम जो कुंभकर्ण का पुत्र था। (१५) एक वाहन का नाम। (१६) एक पेड़ का नाम जो बंगाल, मद्रास, अरब और आसाम के जंगलों में होता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और छाछ काले रंग की होती है। लकड़ी मकान और श्रावणरी चीजों के बनाने के काम में आती है और पानी में नहीं सड़ती। इसकी छाल रेवेदार होती है और उससे रसती बटी जाती है। यह शीपचों में भी काम आती है। इसके फल को खुजी कहते हैं जिसे जायी स्वयं खाते तथा पशुओं को खिलाते हैं। इसके पत्रों माव फागुन में ऋद्ध जाते हैं। इसे कुंभी और राजमा भी कहते हैं। कुंभी।

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें सुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से बँधते और दूसरी ओर से मध्यमा

वकार्य-संज्ञा पुं० एक राक्षस का नाम जो रावण का भाई था। रामायण के अनुसार यह छः महाने सोता था।

वकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेवतं पुराण के अनुसार यह पर्यंसेकर जाति जिसकी उषति विश्वकर्मा पिता और शूद्रा माता से हुई है। कुम्हार। जातिमाला में इसे पटुष्ठा (पटिका) पिता और गोप माता से उत्पन्न माना है। (२) कुम्हड़। मुर्गा।

वकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुंभकार की स्त्री। (२) कुलयी। (३) मैनसिल।

वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घड़े से उत्पन्न पुरुष। (२) अगस्त्य मुनि। (३) वशिष्ठ। (४) द्रोणाचार्य।

वजात-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "कुंभज"।

वदासी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटनी। दूती। (२) कुंभिका। जलकुंभी।

वडा-संज्ञा पुं० दे० "कुम्हड़ा"।

वनदास-संज्ञा पुं० ब्रज के अष्टछाप के कवियों में से एक कवि। यह स्वभाव से कृष्ण की उपासना करते थे।

वयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त्य मुनि का एक नाम। (२) गूमा का पेड़।

वला-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंड़ी।

वसंधि-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी के सिर का वह गड्ढा जो उसके दोनों कुंभों के बीच में होता है।

वसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि का एक नाम। उ०— जयति लवणांशुनिधि कुंभसंभव महादनुज-दुर्जन-दवन दुरित हारी।—तुलसी।

वहनु-संज्ञा पुं० [सं०] रावण के दल के एक राक्षस का नाम जिसे चादमीक के अनुसार तार नामक बंदर ने मारा था।

वहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या।

वाह-संज्ञा पुं० [सं०] वाष्पासुर के एक मंत्री का नाम।

वार-संज्ञा पुं० [सं०] कुम्भकार। कुम्हार।

कुंभिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धृषी। (२) जमालगोदा। कुंभिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चौर जो संधि लगाता हो संधिया चौर। (२) वह संतान जो अर्पण वयस में अर्पण अर्पण गर्भ से उत्पन्न हो। (३) साला। (४) एक प्रकार का मछली।

कुंभिलाना-किं० थ० [हिं०] दे० "कुम्हलाना"। कुंभी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी। (२) मगर। (३) गुग्गुल का यह पेड़ जिससे गुग्गुल निकलता है। (४) एक जड़हली कीड़ा (५) पारस्कर के अनुसार एक राक्षस जो पर्वों को छुंश देता है। (६) एक प्रकार की मछली।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोट्टा घड़ा। (२) कायफज का पेड़। (३) दांती का पेड़। दांती। (४) पांडर का पेड़ (५) तट्टु। (६) बंसी। (७) एक पेड़ जिसकी लकड़ी इमारत और धारापरी चीजों के बनाने में काम आती है। इसके छाल से चमड़ा सिक्ता और रस्सी बटते हैं। और फल जिसे कुंभी कहते हैं पंजाब के लोग खुद खाते और पशुओं को खिलाते हैं। (८) एक वनस्पति जो जलाशयों में पानी के ऊपर फैलता है। इसके पत्ते चार पांच अंगुल लंबे और उतने ही चौड़े और मोटे दल के होते हैं। उसकी जड़ भूमि में नहीं होती बल्कि पानी पर सतह के नीचे होती है। यह फूलती फलती दिखाई नहीं देती पर इसके धीज अवश्य होते हैं इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं, जिनकी पत्तियाँ भिन्न भिन्न आकार की होती हैं। जलकुंभी। (९) एक नरक का नाम कुंभीपाक नरक (१०) सलई का पेड़। (११) गनियारी य अर्पण का पेड़।

कुंभीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का नपुंसक। इसे गुदयोनि भी कहते हैं। कुंभिक। (२) कुंभी। जलकुंभी। (३) पुत्राय वृक्ष।

कुंभीका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुंभी। जलकुंभी। (२) अक्षि का एक रोग। कुंभिका। विलनी। (३) एक प्रकार का रोग जो व्यभिचारियों और लिंग बदलने की औपध करने वालों को हो जाता है। कुंभिका। शूक रोग।

कुंभी धान्य-संज्ञा पुं० [सं०] घड़ा या मटका भर अन्न जिसे कोई गृहस्थ या परिवार ६ दिन या किसी किसी के मत से सात भर खा सके।

विशेष-मनु, याज्ञवल्क्य आदि संहिताकारों के मत से प्रत्येक व्यक्ति को अपने कुटुंब के पालन के लिये कुछ निश्चित दिनों के वाले अन्न संग्रह कर रखना चाहिये। इस प्रकार रखे हुए अन्न को कुटुंबी धान्य कहते हैं।

कुंभीधान्यक-संज्ञा पुं० [सं०] घड़ा भर अन्न रखनेवाला। उतना अन्न रखनेवाला जितना कोई गृहस्थ छः दिन या किसी किसी के मत से सात भर खा सके।

कुंभीनस-संज्ञा पुं० [सं०] [क्री० कुंभेनता] (१) क्रूर सार्व ।

(२) एक प्रकार का जहरीला कीड़ा । (३) राक्षस ।

कुंभीनसि-संज्ञा पुं० [सं०] संभर नाम का असुर ।

कुंभीनसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लयपासुर की माता, जो सुमाली राक्षस की चार कन्याओं में से एक थी और कंतुमती से वल्लभ हुई थी ।

कुंभीपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक नरक जिसमें मांस खाने के लिये पशु पक्षी भारनेवाले लोग खोलते हुए तेल में डाले जाते हैं । (२) एक प्रकार का सतिपात जिसमें नाक के रास्ते काला खून जाता और सिर घूमता है ।

कुंभीपुर-संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर । पुरानी दिल्ली ।

कुंभीमुख-संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार एक प्रकार का फोड़ा ।

कुंभीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नक्र या नाक नामक जंतु जो जल में होता है । (२) एक प्रकार का छोटा कीड़ा । (३) एक यक्ष ।

कुंभीरासन-संज्ञा पुं० [सं०] योग में एक प्रकार का आसन जिस में भूमि पर चित लेट कर एक पैर को दूसरे पैर पर और दोनों हाथों को माथे पर रख लेते हैं ।

कुंभेर-संज्ञा स्त्री० [सं०] संभारी संभारि । गंभारि ।

कुंभोदर-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव के एक गण का नाम । रघु-वंश के अनुसार इसी ने सिंह बन कर नैदिनी पर धाक्रमण किया था ।

कुंभोदक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उलू, जो बहुत बढ़ा होता है ।

कुंभर-संज्ञा पुं० [सं० उगार, प्रा० कुंवार] [क्री० कुंवर] (१) लड़का । पुत्र । बेटा । (२) राजपुत्र । राजा का लड़का ।

कुंभरि-संज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी] (१) कुंमारी (२) रामकन्या ।

कुंभरी-संज्ञा स्त्री० दे० "कुंभरि" ।

कुंभरेटा-संज्ञा पुं० [कुंवर + पटा (भय०)] बालक । छोटा लड़का । बच्चा ।

कुंभर्वा-संज्ञा पुं० [सं० रूप, प्रा० कूर्व] दे० "कुर्वा" ।

कुंभार-वि० [सं० उगार, प्रा० कुंवार] [क्री० कुंवारी] जिसका प्याहल न हुआ हो । विन प्याहल ।

कुंभकूट-संज्ञा पुं० [सं० कुंडुम] केशर । जाफरान । उ०—कोई कुंभकूट परिमल लिये रहें । लावेँ श्रीग रहस जनु चहँ ।—जायसी ।

कु-उप० [सं०] संज्ञा के पहले लग कर यह विरोध का काम देता है । जिस शब्द के पहले यह लगाया जाता है उसके अर्थ में "नञ्" "कुसित" आदि का भाव था जाता है । उ०—संग, कुसंग । पुत्र, कुपुत्र । देव, कुदेव आदि । पर जिन शब्दों के आदि में स्वर होता है उनमें लगने से पहले इसका रूप 'कम्' (कच्) हो जाता है । जैसे—कद्ब, कद्वाचार, कद्बुध् ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] शृण्विनी ।

थीरा—कुज ।

कुर्वा-संज्ञा पुं० [सं० रूप, प्रा० कूर्व] पानी निकालने के लिये पृथ्वी में एक गहरा गड्ढा जो भीतर पानी की तह तक बला जाता है । इसके किनारे को लोग हंट वा पथर से बांधते हैं । इसके घेरे को जो पहले खोदा जाता है भगाड़ वा डाल कहते हैं । भगाड़ खोदे जाने पर उसमें लकड़ी का पहिये के धाकार का चक्र रखते हैं जिसे निवार वा जमक कहते हैं । इसी निवार के ऊपर हंटों की जोड़ाई होती है जिसे कोठी कहते हैं । किसी किसी कोठी में दो निवार लगाए जाते हैं । दूसरा निवार पहले निवार से पांच छुः हाथ ऊपर रहता है और दोनों के बीच में पतली लकड़ियों की परिधि लगाई जाती है जिन्हें केंची कहते हैं । कोठी तैयार हो जाने पर उसके बीच की मिट्टी निकाली जाती है जिससे कोठी नीचे घँसती जाती है, और कुर्वा गहरा होता जाता है । इस क्रिया को कोठी गलाना कहते हैं । इस प्रकार कई बार कोठी गलाने पर भीतर पानी का स्रोत मिलता है । पहले स्रोत को सोती और मोटे स्रोत को मूसला कहते हैं । कुर्प के ऊपर उसके मुँह पर जो चबूतरा बनाया जाता है वह जगम कहलाता है । कुर्प के मुँह पर के चौकटे को जाल कहते हैं ।

परा०—रूप । शृणु । ग्रहि । उदपान । श्रवट । कोटार । कात् । कर्त्त । वज्र । काट । खत । श्रवत । क्रिवि । सूद । उल्ल । कल्पदात् । कारोतरात् । कुरोप । केवट ।

मुहा०—कुर्वा खोदना = (१) दूसरे की बुराई का सामना करना । दूसरे का नाश करने वा उसे हानि पहुँचाने का प्रयत्न करना । उ०—जो दूसरे के लिये कुर्वा खोदता है वह आप गिरता है । (२) जीविका के लिये परिश्रम करना । उ०—उन्हें तो रोज़ कुर्वा खोदना और खाना है । कुर्वा खलाना वा जोतना = कुर्प से खेत खींचने के लिये पानी निकालना । कुर्वा वा कुर्प भकवाना = मल में इधर उधर दौड़ना । खोज में चोरि और मारे मारे फिरना । कोशिश में हँपना घूमना । उ०—इसके लिये हमें कितने कुर्प भकाने पड़े । कुर्वा वा कुर्प भकाना, भकवाना = खोज में हँपना करना । यत्र में इधर उधर घुमाना । उ०—इस बखु ने हमें कितने कुर्प भकवाए । (लोगों का विश्वास है कि कुचके के काटने का विष सात कुर्प भकाने से उतर जाता है । इसी बात से यह सुधारवा लिया गया है) कुर्प में गिरना = आपत्ति में कँडना । निपति में पडना । उ०—जो जान बूझ कर कुर्प में गिरता है, उसे कोई कहीं तक बचावेगा । कुर्प की मिट्टी कुर्प में लगना = अहाँ की आमदनी हो वहाँ मूँच रहेगा । कुर्प में डाल देना = जन्म नष्ट करना । सत्यानाश करना । उ०—देसी जगह सेवक

करके तुमने लड़की कुएँ में डाल दी। कुएँ में बाँस डालना = बहुत तताशा करना। बहुत हँदना। बहुत छान चीन करना।
 उ०—तुम्हारे लिये कुशों में बाँस डाले गए, इतनी देर तक कहाँ थे। कुएँ में बाँस पड़ना = बहुत खोज शैना। कुएँ में भाँग पड़ना = मंडली की मंडली का उन्मत्त शैना। सप की बुद्धि मारी जाना। उ०—यहाँ तो कुएँ में भाँग पड़ी है, कोई कुछ सुनता ही नहीं है। कुएँ में बोलना या कुएँ में से बोलना = इतने धीरे बोलना कि सुनाई न पड़े। कुएँ पर से प्यासे आना = ऐसे स्थान पर पहुँच कर भी निराश होटना जहाँ काव्य-वित्ति की आशा है।

प्या०—शंघा कुश्या = वह शंघरा कुश्या जिसमें पानी न हो और जो घाघ पात से ढँका है।

कुमाड़ी-संशा शी० [सं० कु + आदी] संगीत में यह षष जिसमें वरावर और उषोड़ी (आड़ी) दोनों लय पाई जायँ।

कुमार-संशा पु० [सं० कुमार, प्रा० कुँवर] [वि० कुभारा] हिंदुस्तानी सातवाँ महीना जो भादों के बाद और फाल्गुन के पहले होता है। शरद ऋतु का प्रारंभ इसी महीने से माना जाता है। इस महीने के कृष्णपक्ष को पितृपक्ष और शुक्लपक्ष को देवपक्ष कहते हैं। सूर्य इस महीने में कन्या राशि का होता है और कन्या संक्रांति प्रायः इसी महीने में पड़ती है। आसिन। आश्विन। धर्माज।

कुमार-वि० [हि० कुभार] [शी० कुभारी] कुभार का। जो कुभार में हो। उ०—(क) कुमारी फूल। (ख) मायं पूस की यादरी, और कुभारा घाम। ई तीनों परितेज के, करं पराया काम।

कुइंदर-संशा पु० [हि० कुभों + दर = जगह] वह गड्ढा जो कुएँ के देव या बँद जाने से उसस्थान पर बन जाता है।

कुइयाँ-संशा शी० [हि० कुशों] छोटा कुश्या।

प्या०—कठकुइयाँ।

कुकीटी-संशा शी० [सं० कुकुटी = सेमल] कपास की एक जाति जिसकी रुई ललाई लिए सफ़ेद रंग की होती है। यह गोरखपुर बस्ती आदि ज़िलों में बोई जाती है।

कुकाडुना-कि० श्र० [हि० सिवडुना] सिवडु के रह जाना। संकुचित हो जाना। उ०—कोकिलि सी कुकरे कर कंजनि केवच श्वेत सयै तन तातो।—केशव।

कुकाडुबेल-संशा शी० [सं० कु + कडुबेली] बंडाल।

कुकाडी-संशा शी० [सं० कुकुडी] (१) कचे सूत का खपेटा हुआ लेंछा जो फात कर तकले पर से उतारा जाता है। मुडदा। श्रुटी। उ०—छः मास तागा बरख दिन कुकुटी। लोग बोलें भल कातल बपुरी।—कवीर। (२) मदर का टोडा या फल। (३) दे० “खुलड़ी”।

कुकनु-संशा पु० [पु०] एक पत्नी जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह शकेला नर ही पैदा होता है। यह गाने में बहुत नियुष समझा जाता है। इसकी चोंच में बहुत से छेद होते हैं, जिनमें से तरह तरह के स्वर निकलते हैं। कहते हैं कि इसका गाना ऐसा विलक्षण होता है कि उससे आग निकलती है। जब यह पूर्ण युवा होता है तो वसंत ऋतु में लकड़ियाँ संग्रह कर उस पर बैठ कर गाता है। इसके गाने से आग उत्पन्न होती है और यह जल कर भस्म हो जाता है। जब बरसात आती है तब पानी पड़ने से उसकी राख में से एक थंडा निकल आता है जिससे कुछ दिनों में एक दूसरा पत्नी निकलता है। इसे फ़रसी में “आतराजन” कहते हैं। उ०—कुकनु पंसि जइस सर सागा। तस सर साजि जइ चह राजा।—जायसी।

कुकीरी-सं० [सं० कुकुड, पु० हि० कोकड़ा (सुररी)] सुरगी। बन-सुरगी। उ०—हारिल चरन चाह बँद परे। बनकुकीरी, जलकुकीरी धरे।—जायसी।

† संशा शी० [देग०] (१) पीड़ा। ददें। (२) वह मिट्टी वा सल जो पाव पर पड़ जाती है। पदों। मिट्टी। (३) खुलड़ी।

कुकीरीदा-संशा पु० दे० “कुकीरीधा”।

कुकीरीधा-संशा पु० [सं० कुकुड] एक प्रकार का छोटा पैया जिसकी पत्तियाँ पालकी की पत्तियों से कुछ बड़ी होती हैं। इससे एक प्रकार की कड़ी गंध निकलती है। बरसात के श्रंत में ठंडी जगहों या मोरियों के किनारे यह उगता है। पहले इसकी पत्तियाँ बड़ी होती हैं पर डालियाँ निकलने पर वे क्रमशः छोटी होने लगती हैं। पत्तियों और डालियों पर छोटे छोटे घने रोपूँ होते हैं जिनके कारण वे बहुत सुलापम मालूम होती हैं। जब यह हाथ वेड़ हाथ का हो जाता है तब इसकी चोटी पर मंजरी लगती है जिसमें तुलसी की भाँति चीज निकलते हैं जो पानी में डालने पर इसपगोल की भाँति फूल जाते हैं। वैद्यक के अनुसार यह क.डुवा, चरपरा, और उवर-नाशक है, तथा रक्त और कफ़ के दोष को दूर करता है। यह आभारक, संग्रहणी और रक्ताती-सार में भी उपकारी होता है।

पयाँ०—कुकुंदर। कुकुड। तात्रुड। कुकुमुत्ता। कुकीरीदा।

कुकुर्म-संशा पु० [सं०] बुरा काम। खेदा काम।

कुकुर्मी-वि० [हि० कुकुर्म] बुरा काम करनेवाला। पापी।

कुकुंदर-संशा पु० [सं०] (१) कुकीरीधा। (२) चूड़ पर का गड्ढा।

कुकुसंद-संशा पु० [सं०] एक डुह जो गौतम से पहले हुए थे।

कुकुम-संशा पु० [सं०] (१) एक राग का नाम। दे० “कुकुम”। (२) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सोलह और चौदह के विग्राम से तीस मात्राएँ होती हैं। इस छंद के

पादांत में दो गुरु का होना आवश्यक है। ३०—गिरिधर मोहन बंसीधारी, साधापति हरि बलवीरा। ब्रजवासी संतन हितकारी, श्या झलधर, रघुधीरा। सुंदर रामप्रताप सुरारी, जसुदा को पीयो धीरा। चक्रपाणि कह सुनी बिहारी, चितवन से हर भ्रम पीरा।

कुकुभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी। दे० "कुकुभा"।
कुकुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पशुवंशी चरियों की एक जाति। ये लोग शेषक राजा के पुत्र कुकुर के वंशज माने जाते हैं।

पर्या०—यादव। दासाह। सात्वता। कुनडुर।
(२) एक प्रदेश जहाँ कुकुर जाति के चरित्र रहते थे। यह देश राजपूताने के श्रेष्ठत है। (३) एक सर्प का नाम।
(४) कुत्ता। (५) गंडिवन का पेड़।

कुकुरभ्रातृ—संज्ञा पुं० [हिं० कुकुर + भ्रातृ] एक बेल जो नेपाल, भूटान, आसाम और छोटा नागपुर आदि के जंगलों में होती है। इसके कंद या जड़ को अकाल के दिनों में ग्रीषम लोग प्यते हैं।

कुकुरखांसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उनडुर + खंसी] वह सूखी खांसी जिसमें कफ न गिरे। हंसी।

कुकुरडांसी—संज्ञा स्त्री० दे० "कुकुरखांसी"।
कुकुरदंत—संज्ञा पुं० [हिं० उनडुर + दंत] [वि० कुडुरंत] वह दंत जो किसी किसी को साधारण दांतों के अतिरिक्त और उनसे कुछ नीचे धाड़ा निकलना है तथा जिसके कारण होठ कुछ उठ जाता है।

कुकुरदंता—वि० [हिं० कुडुरंत] जिसके मुँह में कुडुरदंत हो।
कुकुरभंगरा—संज्ञा पुं० [हिं० उनडुर + भंगरा] काला भंगरा। भंगरैया। दे० "भंगरा"।

कुकुरमाछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुनडुर + माछी] एक प्रकार की मछली जो घोड़े, बैल और कुत्ते आदि पशुओं के शरीर में लगती और काटती है। इन मक्खियों का रंग कुछ लालाद लिए हुए भूरा होता है।

कुकुरमुत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० उनडुर + मुत्ता] एक प्रकार की सुमी जिसमें से सरी गंध निकलती है। दे० "सुमी"।

कुकुरी—संज्ञा स्त्री० (१) दे० "कुक्कुरी"। (२) कृतिवा। दे० "कुनडुर"।

कुकुरौछो—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुनडुर + माछी] एक प्रकार की लालाद लिए हुए भूरे रंग की मक्खी जो कुत्ते, घोड़े, बैल आदि पशुओं के शरीर पर लगती है और बहुत धुं होती है।

कुक्कुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुनकुम, प्रा० कुनकुह] वनसुग्गी। ३०—
मातुप से पद पापिया, अशर गुरदि न मान। धार धार धन दूखी गेभं धरे वीवान।—कवीर।

संज्ञा स्त्री० [देग०] बाजरे की फसल का एक रोग जिसमें बाल पर महीन महीन काली चुकनी सी जम जाती है और दाने नहीं पड़ते।

कुक्कुर—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुर] प्राणियों का एक रोग जो प्रायः बच्चों को होता है। इस रोग में आँसुओं की पलकों में सुज-खाइ होती है और पलक सोलने और सूँढ़ने में कष्ट होता है। इस रोग में लड़के प्रायः प्राण मलते हैं, तथा नाक और माया रागा करते हैं। कुशुल। रोहा।

कुनकुट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुग्गी।
घो०—कुनकुटपानि। कुनकुटमस्तक। कुनकुटशिल। कुनकुटा-ढक। कुकुरभृत्य।
(२) चिनगारी। (३) लुक। (४) जटाधारी। सुगंधेय।

कुनकुटक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वनसुग्गी। कुकुरी। (२) निपादी माता और शूद्र पिता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।

कुनकुटनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक टेढ़ी नली या बंध जिससे भरे परतन वा स्थान से पानी परतन वा स्थान में पानी आदि पहुँचाया जाता है।

कुनकुटपाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का प्राचीन नाम जिसे अब कुकिंदार कहते हैं। यह पर्वत गया से आठ कोस उत्तर पूर्व की ओर है। चीनी यात्रियों के यात्राविवरण से मालूम होता है कि यह उस समय यौद्धों का एक प्रधान तीर्थस्थान था। धन भी इसके आस पास कड़े टूटे फूटे रूप और मूर्तियाँ पाई जाती हैं।

कुनकुटमस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] चष्य। चाय।
कुनकुटवत—संज्ञा पुं० [सं०] एक मत जो भादों की शुद्धा सप्तमी को होता है। इस दिन दिवाँ संतान के लिये शिव और दुर्गा की पूजा करती है।

कुनकुटशिख—संज्ञा पुं० [सं०] कुसुम का पेड़ वा फूल।
कुनकुटांडक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक धान जो पाने में कसैला और मीठा होता है। हुदी।

कुनकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुनकुटि] (१) सुग्गी। (२) दंभ-चर्पा। पादेंद। (३) सेमल का पेड़। (४) एक प्रकार का कीड़ा।

कुनकुुर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुनकुुर] (१) कुत्ता। श्वान। (२) शेषवंश का एक पशुवंशी राजा। (३) पशुवंशियों की एक शाखा। कुकुर। (४) एक सुनि का नाम। (५) गोददार। मंडीला।

कुक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पेट। उदर।
कुक्षि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पेट।
घो०—कुक्षिभरि = पेट। ल्वाण।
(२) कोष।
घो०—कुक्षिगत। कुक्षिज।
(३) किसी चीज़ के बीच का भाग। (४) गुहा। (५) संतति।

संज्ञा पु० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक दानव का नाम । (२) बलि नामक दानव राजा का नाम । (३) रामायण के अनुसार इत्याकु का एक पुत्र जो विकुचि का पिता था । (४) बलि का दूसरा नाम । (५) प्रियव्रत का दूसरा नाम । (६) एक प्राचीन देश ।

कुक्षिभेद—संज्ञा पु० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार सात प्रकार के ग्रहण के मोक्ष के भेदों में से एक । इसके दो भेद होते हैं—दक्षिण कुक्षिभेद, और वाम कुक्षिभेद । जब मोक्ष दाहिनी ओर से होता है तब उसे दक्षिण कुक्षिभेद और जब बाईं ओर से होता है तो उसे वाम कुक्षिभेद कहते हैं ।

कुक्षेत—संज्ञा पु० [सं० कुक्षेत्, पा० कुक्षेत्] पुरा स्थान । खुराव जगह । कुर्वाण्ड उ०—(क) असगुन होहिं नगर पैठारा । रथहिं कुभाति कुक्षेत करारा ।—तुलसी । (ख) चारों ओर घ्यास खगपति के कुं ब कुं ब यहु श्राये । ते कुक्षेत योखत सुनि सुनि के सकल श्रंग कुम्हिलाये ।—चूर ।

कुक्ष्यात—वि० [सं०] निर्दिष्ट । वदनाम ।
कुक्ष्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्दा । वदनामी ।
कुगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गति । दुर्दशा । बुरी हालत ।
कुगहनि—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + गृहण] ग्रसुचित आग्रह । हठ । जिद्द । उ०—महामद श्रंध दसकंध न करत कान मीधु वम नीच हटि कुगहनि गहरी है ।—तुलसी ।

कुघा*—संज्ञा स्त्री० [सं० कुघि] दिशा । ओर । तरफ़ । उ०—चाहूँ कुघा तड़िता तड़पै हरपै यनिता कहि केशव साँचे ।—केशव ।
कुघात—संज्ञा पु० [हिं० कु + घात] (१) कुश्रवसर । येमोका । (२) बुरा शक्ति । बुरी चाल । झूठ कपट । उ०—यड़ कुघातु करि पातकिनि कहिनि कौपगृह जाहु । कागु सँवारहु सजग सब सहसा जनि पतियाहु ।—तुलसी ।

कुचंदन—संज्ञा पु० [सं०] (१) रक्त चंदन । लाल चंदन । देवी चंदन । (२) ककम । परदेग । (३) कुंकुम ।

कुच—संज्ञा पु० [सं०] स्तन । छाती ।
वि० (१) संकुचित । (२) कृपण । कंठूस ।
कुचकार—संज्ञा पु० [दे०] भेड़ की एक जाति जो गिलगिट के उत्तर हंजा में पाई जाती है । यह पामीर में भी होती है । कुचंजा ।

कुचकुचघां—संज्ञा पु० [अनु०] जल्ल ।
कुचकुचाना—कि० सं० [अनु० कुचकुच] (१) लगातार कंचिना । बार बार नुकीली चीज़ घँसाना या घीघना, जैसे (सुरखे के लिये) श्रविला कुचकुचाना । (२) थोड़ा कुचलना ।

कुचना*—कि० अ० [सं० कुचन] सिकुड़ना । सिमटना । [क०] । उ०—कँधे वर यानी दगै उर दीठ तुवाति कुचै सकुचै मति वेंती ।—केशव ।

कुचमर्दन—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का सन, वा पदुथा जिससे रस्से बनाए जाते हैं ।

कुचन—संज्ञा पु० [सं०] दूसरों को हानि पहुँचानेवाला गुप्त प्रयत्न । पड़यंत्र ।

कि० प्र०—चलाना ।—रचना ।—खड़ा करना ।

कुचमो—संज्ञा पु० [सं०] पड़यंत्र रचनेवाला । गुप्त प्रयत्न करके दूसरों को हानि पहुँचानेवाला ।

कुचर—संज्ञा पु० [सं०] (१) बुरे स्थानों में घूमनेवाला । श्रावारा । (२) नीच कर्म करनेवाला । (३) वह जो पराई निर्दा करता फिरे ।

कुचरा—संज्ञा पु० [हिं० कूचा] [स्त्री० अल्प० कुचरा] भाइ ।

कुचलना—कि० सं० [हिं० कूचना । अनु०] (१) किसी चीज़ पर सहसा ऐसी दाय पहुँचाना जिससे वह बहुत दय और विवृत हो जाय । मसलना । उ०—कूल की सी माल और लाल जो लपटि लागी तन मन श्रोत पट कपट कुचिलगे ।—देव । (२) पैरों से शेंदना । पाँव से दधाना ।

सं० कि०—जाना ।—ढालना ।—देना ।

मुहा०—सिर कुचलना = पराजित करना । मान ध्यंत करना ।

कुचला—संज्ञा पु० [हिं० कूचल] (१) एक प्रकार का बूछ जो सारे भारत-वर्ष में पर दंगाल और सदरास में अधिकता से होता है । इसकी पत्तियाँ पान के धाकार की चमकीले हरे रंग की होती हैं और फूल लंबे, पतले और सफेद होते हैं । फूल झड़ जाने पर इसमें नारंगी के समान लाल और पीले फल लगते हैं जिनके भीतर पीले रंग का गुद्दा और बीज होता है । कच्चा फल, मलावरोधक, पातवर्धक और ठंडा होता है और पका फल भारी, कफ, घात, प्रमेह और रक्त के विकार को दूर करता है । इसका स्वाद कुछ मिठास लिए हुए कड़ुवा और कसैला होता है । इस बूछ की छाल और इसके बीज का उपयोग औषध में होता है । इसकी लकड़ी में घुन नहीं लगता और यह बहुत मजबूत और चिमड़ी होती है और गाड़ियाँ, हल, तख्ते यादि बनाने के काम में आती है । (२) इस पेड़ का बीज । यह गोल और चपटा होता है । इसके ऊपर मटमैले रंग का विलका होता है जिसके अंदर दो दालें होती हैं । यह बहुत अधिक कड़ा होता है इसलिए इसका पीसना या तोड़ना बड़ा कठिन होता है । यह कड़ुवा, गरम, मादक और बहुत विषैला होता है और कफ, घात, श्थिरविकार, कुष्ठ और यवासीर को दूर करता है । वमन कराने और सुगंधि सुँधाने से इसका विष उतर जाता है । कुत्ते के लिये यह बहुत घातक होता है ।

पर्यो०—कारकर । विपतिदु । कालदूटक । मकैसतिदु । कुपाक । किंपाक ।

कुचली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुचलना] वे दांत जो डाढ़ों और राजदंत

के बीच में होते हैं। ये नोकदार और बड़े होते हैं। कीला।
सीता दांत।

कुचाल-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० चाल] (१) घुरा आचरण।
पुराय चाल चलन।

क्रि० प्र०—चलना।

(२) दुष्टता। पामीन। खोटाई। बदमासी। उ०—(क)
राजा बसराय रानी कोसिला जाये। कैकयी कुचाल करि कानन
पग्राये।—तुलसी। (ख) नाहिं तो ठाकुर है अति दारुण
करिदे चालु कुचाली हो।—कबीर।

क्रि० प्र०—करना।

कुचालिया-संज्ञा पुं० दे० “कुचाली”।

कुचाली-संज्ञा पुं० [हिं० उचाल] (१) कुमार्गी। घुरे आचरणवाला।

(२) दुष्ट। पाजी। बदमाश।

कुचाह-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० चाह] अमंगल। अशुभ बात।
उ०—जातुपान तिय जानि वियोगिनि दुपई स्तीय सुनाइ
कुचाहै।—तुलसी।

कुचिक-संज्ञा पुं० [सं०] ईरान दिशा का एक प्राचीन देश, जो
कदाचिन् आधुनिक कूचबिहार है।

कुचिया-संज्ञा स्त्री० [सं० कुचिका वा कुचिका] छोटी छोटी टिकिया।

कुचिया दांत-संज्ञा पुं० [हिं० कुचन से उचिया + दांत] यह दांत
जिससे प्राणी अपने आहार को कुचल कुचल कर खाते हैं।
हाड़। चौसर।

कुचिलना-क्रि० घ० दे० “कुचलना”।

कुचिला-संज्ञा पुं० दे० “कुचला”।

कुचील-संज्ञा पुं० [सं० कुचेल] मैले घड़वाला। मैला
कुचैला। मलिन। उ०—(क) हैं कुचील मतिदीन सकल
विधि तुम छपालु जग जान। घुर मनुष विधि काम कोरा
वरा करो कृपा दिन भान।—सूर। (ख) कज्जल कीच
कुचील किये तट अंचर अधर कोवाल। थकि रहे पथिक सुवरा
दित ही के हन चरन मुख थोल।—सूर।

कुचीला-वि० दे० “कुचैला”।

कुचुमार-संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के एक प्रधान आचार्य का
नाम जिसका मत वाश्यायन के कामशास्त्र में उद्धृत मिलता है।

कुचेल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मैला कपड़ा। मलिन वस्त्र। (२)
पादा।

वि० (१) मैला कपड़ा पहननेवाला। जिसके कपड़े मैले हों।

(२) मैला। गंदा। मलिन।

कुचैट-वि० [सं०] बुरी चेष्टावाला। जिसकी बुरी चेष्टा है।

कुचेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कुचैट] (१) बुरी चेष्टा।
कुप्रवृत्त। हानि पहुँचाने का प्रयत्न। बुरी चाल। (२) चेष्टे
का घुरा भाव।

कुचैन-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० चैन] कष्ट। दुःख। व्याकुलता।
उ०—सोवत जागत सपन बस रस तिस चैन कुचैन। सुरति
खाम बन की सुरति बिसरेहू बिसरे न।—बिहारी।

वि० वैचैन। व्याकुल। उ०—साजे मोहन मोह को मोहों करत
कुचैन। कदा करों उखटे परे टोने खोने नैन।—बिहारी।

कुचैला-वि० [सं० कुचेल] [खं० कुचैला] (१) जिसका कपड़ा
मैला हो। मैले कपड़ेवाला। (२) मैला गंदा। उ०—(क)
मैली कुचैली पोती। (ख) रे कुचेल तन तेलिया थपना मुख
तो हेर। सुमनन थासे तेल को काहे डारत पेर।—रसनिधि।

(ग) घब कुचेल दीन द्विज देखत ताके तहूँ लखाये हो।
संपति दह बाके पत्नी को मन अभिलाष पुराये हो।—सूर।

कुचाया-संज्ञा पुं० [सं० कु + योष] कुत्सित प्ररन। वितंडा।
कुत्तक। चुचुर।

क्रि० प्र०—करना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कारी के पंडित ही बहुधा
करते हैं।

कुची-संज्ञा पुं० [फा० कुजा] मिट्टी का एक लंबा धरतन जिससे
तेली तेल नागते हैं।

कुच्छित-वि० [सं० कुच्छित] कुत्सित। नीच। उ०—सुरघुनी
श्राव संतर्ग सं नाम धवल कुच्छित नरो। परमहंस यंतानि में
भयो विभारी धारो।—नाभा।

कुछ-वि० [सं० किंचिद्, पा० किंचि, पू० हिं० किद्] थोड़ी
संख्या या मात्रा का। जरा। थोड़ा सा। टुक। उ०—(क)
पेड़ में देवो कुछ फल हैं। (ख) कुछ लोग तो आरहे हैं।

(ग) कुछ देर ठहरने से बातचीत करें।

मुड़ा-कुड़ एक = थोड़ा सा। कुड़ कुड़ = थोड़ा। उ०—

आत उतार कुड़ कुड़ उतरा है। कुड़ ऐसा = वितर्कण।
अगधारण। उ०—(क) रात से कुड़ ऐसी नौद आई कि
पट्टे ही से गए। (ख) वह लड़का कुड़ ऐसा घबराया कि
उसे भागते ही बना। कुड़ न कुड़ = थोड़ा बहुत। कम या

ज्यादा। बहुत कुड़, कितना कुड़ = बहुत। अधि।

खं० [सं० कथिद्, पा० कोवि] (१) कोई (वस्तु)। उ०—

(क) कुछ खायो, तो ले थावे। (ख) कुछ दिलवायो। (ग)
हम कुछ नहीं जानते।

मुड़ा-कुड़ का कुछ = और का और। विपरीत। उल्टा।

उ०—यह सदा कुड़ का कुछ मममता है। कुड़ में कुड़
होना = भारी उल्ट कर दे। जाना। विशेष परिवर्तन हो
जाना। कुड़ कद बैठना = कड़ी बात कद देना। ऊँची नीची
हुना देना। गान्धी दे देना। कुड़ कहना = कड़ी बात कहना।

गान्धी देना। विद्युत्। उ०—मुझें किमी ने कुछ कहा है ?
कुड़ सुनोये या कुड़ सुनने पर क्षणे हो ? = ऊँचा नीचा

संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक दानव का नाम । (२) बलि नामक दानव राजा का नाम । (३) रामायण के अनुसार इत्याकु का एक पुत्र जो विकुक्षि का पिता था । (४) बलि का दूसरा नाम । (५) मिथजत का दूसरा नाम । (६) एक प्राचीन देश ।

कुक्षिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार सात प्रकार के ग्रहण के मोक्ष के भेदों में से एक । इसके दो भेद होते हैं—दक्षिण कुक्षिभेद, और वाम कुक्षिभेद । जब मोक्ष दाहिनी ओर से होता है तब उसे दक्षिण कुक्षिभेद और जब बाईं ओर से होता है तो उसे वाम कुक्षिभेद कहते हैं ।

कुक्षेत—संज्ञा पुं० [सं० कुक्षेत्, पा० कुक्षेत्] बुरा स्थान । पुराण जगह । कुर्वाव । ३०—(क) धसगुण होहि नगर पैगार । रतहि कुर्माति कुक्षेत करार ।—गुलसी । (ख) चारों ओर ब्यास खगपति के कुंड कुंड बहु ध्राये । ते कुक्षेत बोलत सुनि सुनि के सकल श्रंग कुम्हिलाये ।—सूर ।

कुल्यात—वि० [सं०] निर्दित । धननाम ।
कुल्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्दा । यदनामी ।
कुगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गति । दुर्दशा । बुरी हालत ।
कुगहनि—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + ग्रहण] अनुचित ग्रामह । हठ । जिद्द । ३०—महामद श्रध दसकंधन करत कान मीचु बस नीच हठि कुगहनि गहरी है ।—गुलसी ।

कुघा*—संज्ञा स्त्री० [सं० कुनि] दिशा । ओर । तरफ । ३०—चौहूँ कुघा तड़िता तड़पै बरपै बनिता कहि केशव साँचि ।—केशव ।
कुघात—संज्ञा पुं० [हिं० कु + घात] (१) कुयबसर । बेमोका । (२) बुरा दाँव । बुरी चाल । छल कपट । ३०—यह कुघातु करि पातकिनि कहिरि कोपगृह जाहु । कानु सँवारहु सजग सब सहसा जनि पतियाहु ।—गुलसी ।

कुचंदन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्त चंदन । लाल चंदन । देवी चंदन । (२) धकम । पटरंग । (३) कुंकुम ।

कुच—संज्ञा पुं० [सं०] स्नान । स्नानी ।
वि० (१) संकुचित । (२) कृपण । कंजस ।

कुचकार—संज्ञा पुं० [देग०] मेड़ की एक जाति जो गिलगित के उच्च हँजा में पाई जाती है । यह पामीर में भी होती है । कुर्बान ।

कुचकुचवा—संज्ञा पुं० [अनु०] बल्लू ।

कुचकुचाना—कि० सं० [अनु० कुचकुच] (१) लगातार कोंचना । बार बार चुकीली चीन्नी घँसाना या धोंचना, जैसे (मुरब्बे के लिये) आंबला कुचकुचाना । (२) थोड़ा कुचलना ।

कुचन*—कि० अ० [सं० कुचन] सिकुड़ना । सिमटना । [क०] । ३०—कँपै वर दानी दगै उर हीट तुचाति कुचै सकुचै मति बेली ।—केशव ।

कुचमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन वा पटुधा जिससे रस्से बनाए जाते हैं ।

कुचक—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरों को हानि पहुँचानेवाला गुप्त प्रयत्न । पटयंत्र ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—रचना ।—खड़ा करना ।
कुचक्री—संज्ञा पुं० [सं०] पटयंत्र रचनेवाला । गुप्त प्रयत्न करने दूसरों को हानि पहुँचानेवाला ।

कुचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरे स्थानों में घूमनेवाला । श्रावारा । (२) नीच कर्म करनेवाला । (३) वह जो पराई निंदा करता फिरे ।

कुचर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० कूना] [स्त्री० अण० कुचरी] भाहू ।
कुचलना—क्रि० सं० [हिं० कूना । अनु०] (१) किसी चीज़ पर सहसा ऐसी दाब पहुँचाना जिससे वह बहुत दब और विकृत हो जाय । मसलना । ३०—फूल की सी माल वाल लाल जो लपटि लागी तन मन ओट पट कपट कुचिलगे ।—देव । (२) पैरों से रौंदना । पाँव से दवाना ।

सं० क्रि०—जाना ।—डालना ।—देना ।
मुहा०—सिर कुचलना = पराजित करना । माल खँर करना ।

कुचला—संज्ञा पुं० [सं० कुचली] (१) एक प्रकार का वृक्ष जो सारे भारत-वर्ष में पर बंगाल और मद्रास में अधिकता से होता है । इसकी पत्तियाँ पान के आकार की चमकीले हरे रंग की होती हैं और फूल लंबे, पतले और सफेद होते हैं । फूल मड़ जाने पर इसमें नारंगी के समान लाल और पीले फल लगते हैं जिनके भीतर पीले रंग का गुदा और बीज होता है । कच्चा फल, मलाबरोधक, वातघर्षक और ठंडा होता है और पका फल भारी, कफ, वात, प्रमेह और रक्त के विकार को दूर करता है । इसका स्वाद कुछ मिठास लिए हुए कड़ुवा और कसैला होता है । इस वृक्ष की छाल और इसके बीज का उपयोग औषध में होता है । इसकी लकड़ी में घुन नहीं लगता और यह बहुत मजबूत और चिमड़ी होती है और गाड़ियाँ, हल, तख्ते आदि बनाने के काम में आती है । (२) इस पेड़ का बीज । यह गोल और चपटा होता है । इसके ऊपर मटमैले रंग का छिलका होता है जिसके श्रंदर दो दालें होती हैं । यह बहुत अधिक कड़ा होता है, इसलिये इसका पीसना या तोड़ना यज्ञ कठिन होता है । यह कड़ुवा, गरम, मादक और बहुत विषैला होता है और कफ, वात, रधिरविकार, छूट और बवासीर को दूर करता है । यमन करने और सुगंधि मुँघने से इसका विष उतर जाता है । कृते के लिये यह बहुत घातक होता है ।
पर्याय—कारकर । विपति । दु । कालभूटक । मर्कटि । दु । कुपाक । शिपाक ।

कुचली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुचलना] ये दाँत जो दाढ़ों और राजदंत

के बीच में होते हैं। वे भोकरदार और बड़े होते हैं। कीला।
सीता दांत।

कुचाल-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० चाल] (१) युवा आचरण।
खराब चाल धलन।

क्रि० प्र०—चलना।

(२) दुष्टता। पागीपन। खोटाई। बदमाशी। उ०—(क)
राजा दूसरय रानी कोसिला जाये। कैकयी कुचाल करि कानन
पत्रये।—तुलसी। (ख) नाहिं तो ठाकुर है अग्नि वारुण
करिहे चालु कुचाली हो।—कवीर।

क्रि० प्र०—करना।

कुचालिया-संज्ञा पुं० दे० "कुचाली"।

कुचाली-संज्ञा पुं० [हिं० कुचाल] (१) कुमार्गी। सुरे आचरणवाला।
(२) दुष्ट। पाजी। बदमाश।

कुचाल-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० चाल] असंरल। अशुभ बात।
उ०—जातुधान तिय जानि विप्रेगिनि दुपई सीय सुनाइ
कुचालीं।—तुलसी।

कुचिक-संज्ञा पुं० [सं०] ईशान दिशा का एक प्राचीन देश, जो
कदाचिद् प्रायुक्त कूचयिकार हो।

कुचिया-संज्ञा स्त्री० [सं० कुचिया वा युचिका] छोटी छोटी टिकिया।
कुचिया दांत-संज्ञा पुं० [हिं० कुचना से कुचिया + दांत] यह दांत
जिससे प्राणी अपने आहार को कुचल कुचल कर खाते हैं।
बाड़। घौसर।

कुचिलना-क्रि० उ० दे० "कुचलना"।

कुचिलना-संज्ञा पुं० दे० "कुचलना"।

कुचौली-संज्ञा स्त्री० [सं० कुचौली] मैला धरतवाला। मैला
कुचौली। मलिन। उ०—(क) हीं कुचौली मतिहीन सकल
विधि तुम कृपायु जग जान। सुर मधुप निधि काम बोर
वश करो हंया दिन भान।—सूर। (ख) कज्जल कीच
कुचौली किये तट धरंकर धरन कपोल। धकि रहे पथिक सुपथ
दित ही के हल्ल करन मुख धोल।—सूर।

कुचौली-वि० दे० "कुचौली"।

कुचुमार-संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के एक प्रधान आचार्य्य का
नाम जिसका मत वास्तुशास्त्र के कामशास्त्र में बद्धत मिलता है।
कुचेल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मैला कपड़ा। मलिन वस्त्र। (२)
पादा।

वि० (१) मैला कपड़ा पहननेवाला। जिसके कपड़े मैले हों।

(२) मैला। गंदा। मलिन।

कुचेष्ट-वि० [सं०] बुरी चेष्टावाला। जिसकी बुरी चेष्टा हो।

कुचेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कुचेष्ट] (१) बुरी चेष्टा।
कुप्रयत्न। हानि पहुँचाने का यत्न। बुरी चाल। (२) चेदरे
का बुरा भाव।

कुचैन-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० चैन] कष्ट। दुःख। व्याकुलता।
उ०—सोवत जागत सपन बर रस रिस चैन कुचैन। सुरति
खाम घन की सुरति विसरैहू विसरै न।—विहारी।

वि० चैवेन। व्याकुल। उ०—सामे मोहन मोह को मोहीं करत
कुचैन। कदा करों बजते परे टोने खोने नैन।—विहारी।

कुचैला-वि० [सं० कुचैल] [स्त्री० कुचैली] (१) जिसका कपड़ा
मैला हो। मैले कपड़ेवाला। (२) मैला गंदा। उ०—(क)
मैली कुचैली घोली। (ख) रे कुचैल तन तेलिया अरुणा मुख
तो हेर। सुमनन वासे तेल के काहे डारत पर।—रसनिधि।
(ग) धध कुचैल दीन द्विज देखत ताके तहूँ लखाये हो।
संपति दूह वाके पत्नी को मन धमिलाल पुराये हो।—सूर।

कुचाद्या-संज्ञा पुं० [सं० कु + चोष] कुत्सित प्रयत्न। विनंदा।
कुत्तक। लुत्तुर।

क्रि० प्र०—करना।

विशेष—दूत शब्द का प्रयोग कार्या के पंडित ही बहुधा
करते हैं।

कुची-संज्ञा पुं० [फा० कुजा] मिठी का एक लंबा धरतन जिससे
तेली तेल नापते हैं।

कुच्छित्त-वि० [सं० कुच्छित्त] कुत्सित। नीच। उ०—सुरधुनी
श्रेय संसारी तें नाम धवल कुच्छित्त नरो। परमहंस वंशनि में
भये विभागी वानरो।—नाभा।

कुछ-वि० [सं० किंचिद्, पा० किंचो, पू० हिं० किञ्च] थोड़ी
संख्या या मात्रा का। जूरा। थोड़ा सा। टुक। उ०—(क)
पेड़ में देला कुछ फल हैं। (ख) कुछ लोग तो आरहे हैं।
(ग) कुछ देर ठहरो रो बातचीत करो।

मुहा०—कुछ एक = थोड़ा सा। कुछ कुछ = थोड़ा। उ०—

आज बुधवार कुछ कुछ उतरा है। कुछ ऐसा = विनम्रण्य।
अनाधारण्य। उ०—(क) रात तो कुछ ऐसी नौद धादं कि
पढ़ते ही सो गए। (ख) बड़ बड़का कुछ ऐसा घबराया कि
उस भागते ही बना। कुछ न कुछ = थोड़ा बहुत। कम या
ज्यादा। बहुत कुछ, कितना कुछ = बहुत। अधिक।

उ०—(क) कुछ कथिब, पा० कोवि [१] कोई (वस्तु)। उ०—

(क) कुछ रासो, तो लो आवे। (ख) कुछ दिलवायो। (ग)
हम कुछ नहीं जानते।

मुहा०—कुछ का कुछ = थौर का थौर। विपरीत। उलट।

उ०—यह सदा कुछ का कुछ समझता है। कुछ से कुछ
होना = भारी उलट फेर हो जाना। विशेष परिवर्तन हो
जाना। कुछ कह बँटना = कड़ी बात कह देना। जंची नीची
सुन देना। गाली दे देना। कुछ कहना = कड़ी बात कहना।
गाली देना। विगड़ना। उ०—सुनो किनी ने कुछ कहा है ?
कुछ सुनो तो कुछ सुनने पर पाते, हे ? = जँचा नीचा

उ०—यह सदा कुछ का कुछ समझता है। कुछ से कुछ
होना = भारी उलट फेर हो जाना। विशेष परिवर्तन हो
जाना। कुछ कह बँटना = कड़ी बात कह देना। जंची नीची
सुन देना। गाली दे देना। कुछ कहना = कड़ी बात कहना।
गाली देना। विगड़ना। उ०—सुनो किनी ने कुछ कहा है ?
कुछ सुनो तो कुछ सुनने पर पाते, हे ? = जँचा नीचा

उ०—यह सदा कुछ का कुछ समझता है। कुछ से कुछ
होना = भारी उलट फेर हो जाना। विशेष परिवर्तन हो
जाना। कुछ कह बँटना = कड़ी बात कह देना। जंची नीची
सुन देना। गाली दे देना। कुछ कहना = कड़ी बात कहना।
गाली देना। विगड़ना। उ०—सुनो किनी ने कुछ कहा है ?
कुछ सुनो तो कुछ सुनने पर पाते, हे ? = जँचा नीचा

सुनेगे। गाढ़ी खायेगा। ३०—तुम नहीं मानते हो, अथ कुड़ सुनेगे। कुड़ खा लेना = विप खा लेना। ३०—इसने कुड़ खा तो नहीं लिया। कुड़ खा कर मर जाना = विप खा कर मर जाना। कुड़ कर देना = जादू देना कर देना। मंत्र प्रयोग कर देना। ३०—जान पड़ता है कि किन्हीं ने उस पर कुड़ कर दिया है। कुड़ हो जाना = कोई रोग वा भूत प्रेत की बाधा हो जाना। ३०—उसको कुड़ हो तो नहीं गया। (किसी डुरी यात वा वस्तु का नाम न लेकर लोग कभी कभी केवल इसी सर्वनाम का प्रयोग कर देते हैं, जैसे—(क) उसे कुड़ हो तो नहीं गया ? (ख) उसने कुड़ खा तो नहीं लिया ? (ग) किसी ने कुड़ कहा तो नहीं ? इत्यादि) कुड़ हो = चाहे जो हो।

(२) कोई बड़ी यात। कोई अच्छी यात। ३०—यदि १०; ही दिने तब तो कुड़ नहीं किया। (३) कोई सार वस्तु। कोई काम की वस्तु। ३०—उसमें तो कुड़ भी न निकला।

मुद्रा—कुड़ लगाना = (अपने को) बड़ा वा श्रेष्ठ समझना। कुड़ हो जाना = किसी योग्य हो जाना। किसी यात में समर्थ वा किसी गुण से युक्त हो जाना। गणपत्याय हो जाना। ३०—(क) यह लड़का परिश्रम करेगा तो कुड़ हो जायगा। (ख) यदि यह काम चमक गया तो हम भी कड़ हो जायेंगे।

कुजंत्र—संज्ञा पुं० [सं० उत्रंत्र] बुरा यंत्र। अभिचार। डेटका। डेना। ध०—कलि कुकाड कर कीन्ह कुजंत्रू। गाढ़ि अथधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू।—तुलसी।

कुजंभा—वि० [सं०] विकराल दाँतवाला। संज्ञा पुं० एक असुर जो प्रह्लाद का पुत्र था।

कुज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल ग्रह। ३०—(क) मानो गुरु शनि कुज धारो करि शशिहि मिलन तम के ह्रम भाए। उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पद पीत उड़ाए।—सूर। (ख) भारत हाल बेंदी लखन शारत रहे विराजि। इंदुकला कुज में घसी मनो राहु भय भाजि। (२) वृष्ट। पेड़। ३०—चंदन चंदन जोग तुम धन्य ह्रमन के राय। देत कूकज कंकोल लो देवन सीस चढ़ाय।—वीनदयाल। (३) नरकासुर का नाम जो पृथ्वी का पुत्र माना जाता था। वि० (मंगल के समान) खाल रंग का। खाल। ३०—(क) फहरी अनेत सोहैं पुजा। सित स्वाम रंग कीती कुजा।—सूदन। (ख) बहु स्वाम पुजा बहु रंग कुजा।—सूदन।

कुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु = पृथ्वी + वा = जन्मगाम] (१) सीता। जानकी। ३०—टूटे धनुष कठिन है ह्याह। विन भंजे को बरी कुजाह।—विभ्राम। (२) कात्यायिनी का एक नाम।

कुजात—संज्ञा स्त्री० दे० “कुजाति”।

कुजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] डुरी जाति। नीच जाति। ३०—

दुर सुख, पाप, पुण्य दिन राती। साधु, असाधु, सुजाति कुजाती।—तुलसी।

संज्ञा पुं० (१) डुरी जाति का आदमी। नीच पुरुष। ३०—नहिं तोप विचार न रीतलता। सव जाति कुजाति भये मँगता।—तुलसी। (२) पतित वा अधम पुरुष। ३०—(क) दूर कुजाति कपूत अथी सचकी सुपयै जो करै न पूजा।—तुलसी। (ख) करै विचार कुडुदि कुजाती। डोढ़ अकाउ कवनि विधि राती।—तुलसी।

कुजाष्टम—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक योग जो जन्मकुंडली के चक्र में मंगल के आठवें स्थान पर होने से होता है। यह योग बड़ा ही अशुभ माना जाता है। ज्योतिषियों का मत है कि कुजाष्टम योग कुंडली के अन्य शुभ योगों को नष्ट कर देता है।

कुजिया—संज्ञा स्त्री० [फा० कुजा = प्याऊ] छोटी धरिया। कुजून—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हि० जून = समय] (१) कुसमय। बुरा समय। (२) शतिकाल। देर। भावक।

कुजोग—संज्ञा पुं० [सं० उयोग] (१) कुसंग। कुमेल। बुरा मेल। ३०—ग्रह भेषज जल पवन पद, पाढ़ कुजोग सुजोग। होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग लखहि सुलप्यून लोग।—तुलसी। (२) बुरा संयोग। बुरा अवसर। प्रतिकूल अवस्था।

कुजोगीश—वि० [सं० उयोग] असेयमी। ३०—सुरप कुजोगी जिमि उर गारी। मोह विदय नहिं सकहिं बरारी।—तुलसी।

कुजा—संज्ञा पुं० [फा० कुजा = प्याऊ] (१) मिट्टी का प्याला। पुरवा। (२) मिट्टी के कूड़े में जमाई हुई मिट्टी। मिट्टी की गोल डली।

कुटंत—संज्ञा स्त्री० [हि० कूटना + त (प्रल०)] (१) कूटने का भाव। कूटाई। (२) मार। प्रहार। ३०—(क) जाव, घर पर खूब कुटंत होगी। (ख) जेहिं जियत ईंद्रपुर में कुटंत। गज पाज ऊँट दूधमा लुटंत।—सूदन।

कुट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उट्टी] (१) घर। गृह। (२) कोट। गढ़। (३) कलरा। (४) घट घन जिससे पत्थर तोड़ा जाता है। (५) वृष्ट। (६) पर्वत।

संज्ञा स्त्री० [सं० कुठ, प्रा० कुठ] एक बड़ी मोटी भाड़ी जो करमीर के किनारे की डालू पहाड़ियों पर २००० से १००० फुट की ऊँचाई तक होती है। चनाय और फेलम के ऊँचे कटारों में भी यह मिलती है। करमीर में इसकी जड़ खोद कर बहुत इकट्टी की जाती है और छोटे छोटे टुकड़ों में काट कर बाहर कलकत्ते और बंबई भेजी जाती है जहाँ से उसकी च्लान चीन और यूरोप को होती है। करमीर में इसका संग्रह राज्य की शेर से होता है। प्रत्येक कार्यकार फौ कुड़ जड़ कर के रूप में देनी पड़ती है। इसकी सुगंध बड़ी मनोहर होती है और चीन में उसे धूप की तरह जलाते हैं। इससे

वाल भी मला जाता है। इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इससे सफेद बाल काले हो जाते हैं। कश्मीर में शाल के प्यागारी इसे दुरालों की तरह में उन्हे कौड़ों से धचने के लिये रखते हैं। पहले लोग भसली कश्मीरी माल की पहचान इसी की महक से करते थे। वैद्यक में यह गरम, कफ बात नाशक, दग्द, खुजली, कौड़ु आदि को दूर करनेवाली और शुक-जनक मानी गई है। हकीम लोग कुट तीन प्रकार की मानते हैं। एक मीठी, तैल में हलकी, सुगंधित और पीलापन लिए सफेद होती है। दूसरी कटुई, कटु करींछे रंग की और बिना महक की होती है। तीसरी साल रंग की और स्वाद में फीकी और उसमें से घीवार की सी महक होती है।

पर्या०—कुट । व्याधि । परिभाष्य । व्याप्य । पाकल । उपल । कदारण्य । हुट । श्राप्य । जरण्य । कौवेर । भासुर । गदाह । कुटिक । काकल । मीरुज । श्राप्य । रजा । गद । पारिभद्रक । कुणित । पायन ।
संज्ञा पु० [सं० उद + कृत्वा] (१) कृत्वा हुआ टुकड़ा । टुकड़ा ।

धा०—कसकुट । तिसकुट ।

मुहा०—कुट करना = मैत्री खींचित करना । दे० “कुट्टी (४)” ।
(२) दे० “कुट्टी (३)” ।

कुटका—संज्ञा पु० [हि० काटना] [सं० कृत्वा + कुटकी] (१) छोटा टुकड़ा । उ०—साधुन की सुपड़ी भजी, ना साकट को गाँव । चंदन की कुटकी भली, ना बजल बनायाँ।—कशीर । (२) कसीदे में तिकोना घूटा । सिंघाड़ा ।

कुटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० उदका] (१) एक पौधा जो पच्छिमी और पूरबी घाटों में तथा अन्य पहाड़ी प्रदेशों में भी होता है। इसकी पत्तियाँ लंबी लंबी कटावदार और ऊपर को चौड़ी होती हैं। इसकी जड़ में गोल गोल बड़े-छोटे गोटों पड़ती हैं जो श्राप्य के काम में आती हैं। स्वाद में कुटकी कटुई, धारपी और रुखी होती है। प्रकृति इसकी मीठाल है। यह भेदक, कफनाशक तथा पित्तज्वर, श्राप, कौड़ु और कृमि को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसमें दूधक और मादक गुण भी होता है। यह २ रसी से ४ रसों तक खाई जा सकती है। इसे काली कुटकी भी कहते हैं।

पर्या०—तिक्ता । कटैरुहा । अरिष्टा । चक्रांगी । शकुलादिनी । कटुका । मस्यपित्ता । नकुलासादिनी । शतपर्वा । द्विजांगी । मलभेदिनी । कृप्या । कृप्यमेदा । कृप्यभेदी । महौषधी । कटवी । शंभनी । कटु । चामरी । चित्रांगी ।
(२) एक जड़ी जो शिमले से कश्मीर तक पाँच से दस हजार फुट की उँचाई पर पहाड़ों में होती है। यह जिनशियन

नाम की शोभनी दवा के स्थान में व्यवहृत होती है। यह धल और मीथ्य बंधक होती है ।

संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) एक छोटी चिड़िया जो भारत के घने जंगलों में होती है और शत्रु के अनुसार रंग बदलती है। यह पाँच इंच लंबी होती है और तीन चार श्रेते देती है। यह कभी जोड़े में और कभी फुट रहती है। बोली इसकी कड़ी होती है। यह पत्ते, फूल, बाल, कपास आदि घूँघ कर धोखला बनाती है। (२) बादिये के पेंच का वह भाग जिसमें लोहे की कीलों या सुइयों में पेंच बनाया जाता है।
† संज्ञा स्त्री० [हि० कुटका = छोटा टुकड़ा] कँगनी । चेंता ।
संज्ञा स्त्री० [सं० कट + कौट] एक उदनेवाला कीड़ा जो बुते बिल्ली आदि पशुओं के शरीर के रोपों में घुसा रहता है और उन्हे काटता है ।

कुटज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुँरैया । कर्वा । (२) अगस्त्य मुनि । (३) द्रोणाचार्य का नाम ।

कुटनहीं—संज्ञा स्त्री० दे० “कुटनपन” ।

कुटनपन—संज्ञा पुं० [सं० कुटन] (१) कुटनी का काम । कियों का फाड़ने फाँसने का काम । दूतीकर्म । (२) धर की उधर लगाने का काम । भगड़ा लगाने का काम ।

कुटनपेशा—संज्ञा पुं० दे० “कुटनपन” ।

कुटनहारी—संज्ञा स्त्री० [हि० कुटना + हारा (कृप०)] धान कुटने का काम करनेवाली स्त्री । वह स्त्री जो धान कुट कर भूयी और धावल अलग करने का व्यवसाय करती है ।

कुटना—संज्ञा पुं० [हि० कुटनी] (१) कियों को बहँका कर उन्हे पर-पुरष से मिलानेवाला श्रयवा एक का मँदेसा दूसरे तक पहुँचाने वाला व्यक्ति । कियों का हलाल । दूत । डाल । (२) एक की बात दूसरे से कह कर दो आदमियों में भगड़ा कराने-वाला । सुगलपोर ।

संज्ञा पुं० [हि० कुटना] (१) यह इधियार जिसमें कुटाई की जाय । (२) कुटे जाने की क्रिया ।

धा०—कुटना पिसना = कुटे और पीये जाने का काम ।

कि० ख० [हि० कुटना] (१) कुटा जाना । (२) मारा या पीटा जाना ।

कुटनाना—कि० ख० [हि० कुटना] (१) किसी स्त्री को बहँका कर कुमायँ पर ले जाना । (२) बहँकाना ।

कुटनापन—संज्ञा पुं० दे० “कुटनपन” ।

कुटनापा—संज्ञा पुं० दे० “कुटनपन” ।

कुटनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुटनी] (१) कियों को बहँका कर उन्हे पर-पुरष से मिलानेवाली श्रयवा एक का मँदेसा दूसरे तक पहुँचाने वाली स्त्री । दूती । (२) सुगली खाकर दो व्यक्तियों में भगड़ा करानेवाली । धर की उधर लगानेवाली ।

कुटनीपन—संज्ञा पुं० दे० “कुटनपन” ।
 कुटञ्जक—संज्ञा पुं० [सं०] कैवट मोथा । कसेरु ।
 कुटञ्जट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्रोनाक । छौंका । (२) कैवट मोथा ।
 कैवट सुम्बा ।
 कुटर कुटर—संज्ञा पुं० [शब्द०] किसी कड़ी वस्तु के चवाने का
 शब्द ।
 कुटवाना—क्रि० सं० [कूटना का प्रे०] कूटने की क्रिया कराना ।
 कूटने में तत्पर करना ।
 कुटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] (१) कूटने का काम । (२) कूटने
 की मजदूरी ।
 कुटार—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] गडखट टट्टु ।
 कुटास—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] खूब मारना । पीटना ।
 कुटिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुट्टा] छोटी कोपड़ी ।
 कुटिल—वि० [सं०] [स्त्री० कुटिला] (१) धक । टेढ़ा ।
 यौ०—कुटिलकीट = सर्प ।
 (२) दगाबाज़ । कपटी । छली ।
 संज्ञा पुं० [सं०] (१) शठ । खल । (२) वह जिसका
 रंग पीलापन लिए सफ़ेद हो और आँखें लाल हों ।
 (३) चौदह अक्षर का एक वर्षा वृत्त जिसके प्रत्येक चरण
 में स, भ, न, य, ग, ग, होते हैं । उ०—सुम नायो गगणिक
 तुव गंगा पानी । जिन योभू सिर जननि दया की खानी ।
 तजि सारे कुटिलन कपटी को साया । तिन पाई शक्ति शुभ
 गति गावै गाथा । (४) तगर का फूल ।
 कुटिल कीट—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प । साँप । उ०—तजु तज्यो
 कुटिल कीट ज्यो तज्यो मात पिता हूँ ।—तुलसी ।
 कुटिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टेढ़ापन । (२) लोटाई । धोले-
 धानी । छल । कपट ।
 कुटिलपन—संज्ञा पुं० दे० “कुटिलता” ।
 कुटिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती नदी । (२) एक प्राचीन
 लिपि जिसका प्रचार भारतवर्ष में अठार्वीं शताब्दी से ग्यारहवीं
 शताब्दी तक था । (३) धसवला नामक गंध द्रव्य जिसका
 उपयोग औषधों में भी होता है । (४) जैतन्य संप्रदाय के
 अनुसार शोधिका की नन्द और शायानधोप की पहिन ।
 कुटिलाई—संज्ञा स्त्री० दे० “कुटिलता” ।
 कुटिहा—वि० [हिं० कूट + हा] कूट कहनेवाला । व्यंग्य से हँसी
 बड़ानेवाला । दिलगोबाज़ ।
 कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जंगलों या देहातों में रहने के लिये
 घास फूस से बनाया हुआ घर । पर्णशाला । कुटिया । कोपड़ी ।
 (२) सुरा नामक गंध द्रव्य ।
 कुटीचक—संज्ञा पुं० [सं०] चार प्रकार के सन्यासियों में से पहला ।
 इस कोटि का सन्यासी शिलासूत्र-स्वाग नहीं करता । यह
 तीन ढंङ और कमंडलु रखता, कपाय पहनता और त्रिकाल-

संन्या करता है । यह अपने कुटुंब और संबंधों के अतिरिक्त
 दूसरे के घर भिखा नहीं लेता । मरने पर इसका वाहकर्म
 किया जाता है ।
 कुटीचर—संज्ञा पुं० दे० “कुटीचक” ।
 संज्ञा पुं० [सं० कुचर] कुटिल । कपटी । छली ।
 कुटीर—संज्ञा पुं० दे० “कुटी” ।
 कुटुंब—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] परिवार । कुनवा । पानदान ।
 कुटुंबिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छद्म गुल्म जो मीठा, संप्राहक,
 कफपित्तनाशक, रक्तरोधक और श्रय में उपकारी होता है ।
 कुटुंबी—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्बि] [स्त्री० कुटुम्बिनी] (१) परिवार-
 वाला । कुनवेवाला । (२) कुटुंब के लोग । संबंधी । नातेदार ।
 कुटुम्बा—संज्ञा पुं० दे० “कुटुंब” ।
 कुटुम्बा—संज्ञा पुं० [हिं० कूटना] (१) कूटनेवाला । (२) बेल या
 भैंसे को बधिया करनेवाला ।
 कुट्टेक—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० टुक] अनुचित हठ । बुरी जिद ।
 कुट्टेय—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० टुक] सुराच श्राद्ध । बुरी बान ।
 बुरा आन्यास । उ०—मैनन यहै कुट्टेय परी । लूटत स्थाम रूप
 थापुन ही निसि दिन पहर घरी ।—सूर ।
 कुट्टेशान—संज्ञा पुं० दे० “कोटेशान” ।
 कुट्टानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] (१) धान कूटने का काम ।
 उ०—ककरा अषट् लिये का दिलबहलाप लड़ाई है, धर-
 गृहस्थी के सब काम पिसैनी कुट्टानी से छुटी पाय जब तक
 दांत न कर लें, अरास में भौंटीभोटा न कर लें तब तक
 कमी न आयै ।—हिंदी प्रदीप ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 यौ०—कुट्टानी पिसैनी = धान कूटने और गेहूँ पीसने का काम ।
 जिविभ के लिये कठिन परिश्रम (शिवा का) । उ०—माँ तो
 कुट्टानी पिसैनी करती है और चेटे का यह हाल है ।
 (२) धान कूटने की मजदूरी । उ०—दो मन धान की
 कुट्टानी कितनी हुई ?
 कुट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] मूल्य में वह सुद्रा जिसमें वृद्धावस्था के
 कारण दांत से दांत चूने का भाव दिखाया जाता है ।
 कुट्टनी—संज्ञा स्त्री० (१) कुटनी । दहाला । (२) मनमोटाव करने के
 लिये एक श्राद्धमी की बात दूसरे श्राद्धमी से कहनेवाली ।
 हथर की उचर लगानेवाली ।
 कुट्टमित—संज्ञा पुं० [सं०] सुख के समय में शिष्यों की मिथ्या
 बुद्ध-चेष्टा । यह ग्यारह प्रकार के हावों में माना गया है ।
 हेमचंद्र ने इसे शिष्यों के दश प्रकार के अलंकारों में गिनाया है ।
 कुट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० कूटना] पर-कटा कव्वा । वह कव्वा जिसकी
 रूँझ के पर कतर कर उसे उड़ने के अयोग्य कर देते हैं और जिसे
 दूसरे कव्वातों की डुलाने के लिये हाथ में लेकर उड़ाते हैं ।

कुट्टिम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह भूमि जिस पर कंकड़, पत्थर या ईंटें बेटाई हों। पक्का फर्म। गच। (२) धनार। दाढ़िम।
कुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] (१) घास पचाल या धौर चारे को छोटे छोटे टुकड़ों में काटने की क्रिया।

क्रि० प्र०—बरना।—होना।

(२) गौहारे से धारिक कटा हुआ चारा। (३) दूध और सड़िया हुआ कागज़ जिससे पुट्टे और फलमदान हत्यादि बनते हैं। (४) लकड़ों का एक शब्द जिसका प्रयोग वे एक दूसरे से मिश्रता तोड़ने के समय दातों पर नारून छुट से युवा पर करते हैं। मंत्राभंग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) परकटा कव्तर। दे० "कुट्टा"।

कुट्टला—संज्ञा पुं० [सं० कोट, मा० कोट + ला (अप्र०)] [स्त्री० अन्व० कुट्टी] (१) धनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।

(२) चूने की भट्टी।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

कुट्टाउ, कुट्टाय—संज्ञा स्त्री० दे० "कुट्टाव"।

कुट्टाय—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० टाय] बुरी टौर। बुरी जगह। उ०—यह सब कलत्रगु का परभाव। जो नृप को मन गये कुट्टाय।—चर।

मुहान—कुट्टाय मारना = मर्म स्थान पर मारना, थपपा ऐसे स्थान पर ले जाकर मारना जहाँ बहुत कष्ट या दुर्गति हो। धोर थापात पहुँचाना। बुरी मौत मारना। उ०—धरमधुरं पर धोर धरि नयन उषारे ह्ये। सिर धुनि चीन्ह वसात धरि मारेसि मोहि कुट्टाय।—तुलसी।

कुट्टाकु—संज्ञा पुं० [देग०] कठफोड़ा पत्थी।

कुट्टाट—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० टट] (१) घुरा साज। घुरा सामान।

(२) घुरा प्रबंध। घुरा थापोजन। उ०—(क) राग को न साज न चिराग जोग जाग जिय काया नहिँ छुट्टि देत टटियो कुट्टाट को।—तुलसी। (ख) नट व्यंज जिन पेट कुपेट कु कोटिक चेटक कोटि कुट्टाट टो।—तुलसी। (ग) मोहि लगि यह कुट्टाट लेंदि टाटा। घालेसि सब जग बारह बाटा।—तुलसी।

कुट्टाय—संज्ञा स्त्री० दे० "कुट्टाव"।

कुट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुट्टारी] (१) कुल्हाड़ी। (२) परछ। फलसा। उ०—कर कुट्टार में धकरन कोही। धागे अघराची गुरदोही।—तुलसी।

धौ०—कुट्टारपात। कुट्टारपाणि।

(३) नाश करनेवाला। सत्यानासी। कुलकुट्टार।

संज्ञा पुं० [हिं० कोट] धनाज आदि रखने का बड़ा बरतन। कोटिका।

कुट्टारपाणि—वि० [सं०] जो हाथ में परछ या कुल्हाड़ी लिय हो।

संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम जी का नाम। उ०—निपट निदुरि बोलै यवन कुट्टारपाणि मानी ध्रास धौनियन माने मौनता गही।—तुलसी।

कुट्टारपात—संज्ञा पुं० [सं०] कुल्हाड़ी का आघात। कुल्हाड़ी का घाय। गहरी घोट।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुट्टारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुल्हाड़ी। दांगी। उ०—(क) राम-कथा कलि विटप कुट्टारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी।—तुलसी। (२) नाश करनेवाली उ०—गहि पद विनय कीन्ह बैटारी। जनि दिनकरकुल होसि कुट्टारी।—तुलसी।

कुट्टाली—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + स्थली = पटकोई] मिट्टी की धरिया जिसमें सोना चाँदी गलावे हैं। धरिया। उ०—पंडित जी ने सरिया मँगा दिया तो बाबा जी ने घुरंत कुट्टाली में डाल के पंडित जी के हाथ से एक बूटी का रस उतरे ऊपर गिरवाया।—धरदाराम।

कुट्टाहर—संज्ञा पुं० [सं० कु + हर = जगद] (१) कुँडर।

कुँडर। घुरा स्थान। उ०—कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुट्टाहर वास मुग्दारा।—तुलसी। (२) ये-मौका। घुरा धवसर। उ०—सो सब मोर पाप परिनाम्। भयज कुँडार जेहि विधि धाम्।—तुलसी।

कुट्टिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कोट, मा० कोट] धनाज रखने का मिट्टी का गहरा बरतन।

कुट्टिला—संज्ञा स्त्री० दे० "कुट्टला"।

कुट्टी—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की कटाली, बरें या कुसुम का पेड़ जो बंगाल में होता है और रंग बनाने के काम में आता है।

कुट्टार—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० टार] (१) कुँडर। बुरी जगह। (२) ये-मौका। ये-ठिकाना। अनुपयुक्त धवसर।

कुङ्—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्ज, पा० कुङ्] कुट्ट नाम की ओपधि।

संज्ञा पुं० [देग०] धन्न की राशि। दूरा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कोटना = खोदना] हल की अगवासी। जर्षा।

कुङ्कुड़—संज्ञा पुं० [अन्व०] एक निरर्थक शब्द जिसकी सहायता से पत्थी, पत्थ आदि खेतों से हटाने जाते हैं।

कुङ्कुड़ाना—क्रि० अन्व० [अन्व०] किसी अशुचित या अश्रिय बात को देख या सुन कर भीतर ही भीतर झुंघर देना। मन ही मन कड़ुना। कुङ्कुड़ाना।

क्रि० सं० [अन्व०] खेत में पिड़ियों को उड़ाना या जानवरों को भगाना। उ०—यह दिन भर खेत में बैठा कीधा कुङ्कुड़ाना करता है।

कुङ्कुड़ो—संज्ञा स्त्री० [अन्व०] मूल या धनीयों से पेट की गुड़गुड़ाहट।

मुहान—कुङ्कुड़ी होना = किसी बात को जानने के लिये गहरी-उकंठा या आकुलता होना। पेट में चूहे कूदना।

कुड़प-संज्ञा पुं० दे० "कुड़व" ।

कुड़पना-कि० सं० [हिं० कुंड = हल की लकड़ी] कँगनी के खेत को उस समय जोतना जब फसल एक एक वित्तो की हो जाय ।

कुड़बुड़ाना-कि० अ० [अ०] मन ही मन कुड़ना । कुड़कुड़ाना ।

कुड़मल-संज्ञा पुं० दे० "कुड़मल" ।

कुड़रिया-संज्ञा स्त्री० दे० "कुड़री" ।

कुड़री-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडरी] (१) गेंडूरा । हूँडरी । विड़ई । चिड़वा । (२) वह भूमि जो नदी के घूमने से बीच में पड़ कर तीन तरफ जल से घिर जाय । कुड़रिया ।

कुड़ल-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंचन] शरीर में पैंटन जो रक्त की कमी वा उसके टंडे पड़ने से होती है । यह अवस्था मिरगी आदि रोगों में वा निर्बलता के कारण होती है । तरानुज ।

कुड़व-संज्ञा पुं० [सं०] लोहे वा लकड़ी का अन्न नापने का एक पुराना मान जो चार अंगुल चौड़ा और उतना ही गहरा होता था ।

विशेष-१२ मठ्टि या मुट्टी का एक कुड़व और ४ कुड़व का एक प्रस्थ होता है । पर वैचक में कुड़व ३२ तोले का होता है और प्रकृति १६ तोले की मानी जाती है ।

कुड़ा-संज्ञा पुं० [सं० कुटन] इंदूजी का वृक्ष । कुरैया ।

संज्ञा पुं० दे० "कुड़ा" ।

कुड़ाली-संज्ञा स्त्री० [सं० कुडारी] कुरुहाड़ी [लख] ।

कुड़क-संज्ञा पुं० [दे०] प्राचीन काल का एक प्रकार का वाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था ।

संज्ञा स्त्री० [प्रा० कुक] (१) अंडा न देनेवाली सुरगी । (२) व्यर्थ । खाली ।

मुहा०—कुड़क बोलना = व्यर्थ होना । खाली जाना ।

कुड़ेर-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुड़ेरना] वह नाली जो कुरिया में राय का सीरा निकालने के लिये बनाई जाती है ।

कुड़ेरना-कि० सं० [दे०] राय के चोरों को एक दूसरे पर इस प्रकार रखना जिसमें उसकी जूरी यह कर निकल जाय ।

कुड़ौल-वि० [सं० कु + हिं०] घेदंगा । भद्दा ।

कुड़मल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कली । (२) इकीस नरकों में से एक नरक ।

कुड़ंग-संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० दंग] बुरा दंग । कुचाल । बुरी रीति ।

वि० (१) बुरे दंग का । घेदंगा । भद्दा । बुरा । उ०—कुड़ंग कोप तजि रँग रली करति जुवति जग जोद्द । पावस यातन गूड़ यह, बड़नहूँ रँग होद्द ।—विहारी । (२) बुरी तरह का । बद-चला । कुड़ंगा ।

कुड़ंगा-वि० [हिं० कुड़ंग] [स्त्री० कुड़ंगी] (१) बुरी चाल का । बेरा-अर । उजड़ । (२) घेदंगा । भद्दा ।

कुड़ंगी-वि० [हिं० कुड़ंग] कुमार्गी । बुरी चालचलन का । उ०—

परयो एक पवित पराउ तीर गंगा जू के कुटिल ह्वती कोद्री कुंठि कुडंगी अंध।—पद्माकर ।

कुड़न-संज्ञा स्त्री० [सं० कुड, प्रा० कुड] (१) वह प्रोथ जो मन ही मन रहे । वह प्रोथ जो भीतर ही भीतर रहे, प्रकट न किया जाय । चिड़ । (२) वह दुःख जो दूसरे के अतिवाच्य कष्ट को देख कर हो ।

कुड़ना-कि० अ० [सं० कुड, प्रा० कुड] (१) भीतर ही भीतर क्रोध करना । मन ही मन खीमना वा चिड़ना । बुरा मानना । (२) डाह करना । जलना । उ०—चंद्रगुप्त से उसके भाई लोग बुरा मानते थे और महानंद अपने और सब पुत्रों का पक्ष करके इससे कुड़ता था ।—हरिचंद्र । (३) भीतर ही भीतर दुःखी होना । मनोसना । उ०—देवकी जी ने कहा कि पुत्र तुम्हारे दुः भाई जो फंस ने मार डाले हैं उनका दुःख मेरे मन से नहीं जाता ।..... धीरुचंद्र इतना कह पाताज पुरी को गये कि माता तुम अथ मत कुड़ो, मैं अपने भाइयों को अभी जाप ले आता हूँ ।—लल्लू । (४) दूसरे के कष्ट को देख भीतर ही भीतर मनोस कर रह जाना ।

कुड़व-वि० [सं० कु + हिं० व] (१) बुरे दंग का । घेदव । (२) कठिन । दुस्तर ।

कुड़ा-संज्ञा पुं० [अ० कुरा] सूजाक के रोग में वह गाँठ जो पेशाब की नली में पड़ जाती है और जिसके कारण पेशाब बाहर नहीं निकलता और बड़ी पीड़ा होती है । यह गाँठ रक्त और पीव के जम जाने से भीतर पड़ जाती है ।

कुड़ाना-कि० सं० [हिं० कुडना] (१) क्रोध दिखाना । चिड़ाना । खिमाना । (२) दुःखी करना । कलपाना ।

कुण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीलर । (२) नाभि की मूल । कीट । (३) बचा । उ०—कोल कोलकुण कीचर माहीं । बल से भिरे सकोप तहाँ हीं ।—गोपाल ।

कुणप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शव । मृत शरीर । लाश । (२) हंडुड़ी । गोंदी । (३) रंगा । (४) थरड़ा । भासा ।

कुणपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] थरड़ी । भासा ।

कुणपाशी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का प्रेत जो मुर्दा खाता है । (२) मुर्दा खानेवाला जंतु, जैसे—गीध, कौआ, गीदड़ ।

कुणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुन का पेड़ । (२) वह मनुष्य जिसकी बाहु टेढ़ी हो गई हो वा मारी गई हो ।

कुतक-संज्ञा पुं० दे० "कुतका" ।

कुतका-संज्ञा पुं० [हिं० गतका] (१) गतका । (२) मोटा दंडा । सोटा । उ०—सै कुतका कहै 'दग्ग मद्रारा' । राम रहै उनहूँ से न्याता ।—कपीर । (३) भांग घोटने का दंडा । भँगघोटना ।

मुहा०—कुत्ता दिखलाना वा देखाना = किसी चीज के देने से चाकू इनकार कर जाना। अँगूठा दिखलाना।

कुत्तना—क्रि० अ० [हि० कुत्तना] इतने का कार्य होना। कृता जाना।

कुत्तप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिन का आठवाँ सुहृत् जो मध्याह्न समय में होता है। (२) मिताशर के अनुसार आठ वस्तु जिनकी आठ में आवश्यकता है, अर्थात्—मध्याह्न, खड्गपात्र वा गैरे के चमड़े का पात्र, नेपाली कंबल, चाँदी का बरतन, कुश, तिल, गाय और दूधिय। (३) एक पात्र। (४) बकरी के बाल का कंबल। (५) सूर्य। (६) अग्नि। (७) दिन। (८) अतिथि। (९) भांजा।

कुत्तरन—संज्ञा पुं० [हि० कुत्तरन] कुत्तरा हुआ टुकड़ा।
कुत्तरना—क्रि० सं० [सं० कर्त्तन = कताना] (१) किसी वस्तु में से बहुत थोड़ा सा भाग दृति से काट कर अलग करना। दृति से छोटा सा टुकड़ा काट लेना। उ०—(क) चूहों ने कई जगह बपड़े कुत्तर डाले हैं। (ख) हिरन पीधों की पत्तियाँ कुत्तर गए हैं। (२) किसी वस्तु में से कुछ अंश निकाल लेना। बीच ही में से कुछ अंश उड़ा लेना। उ०—(१) हमें मिले थे उसमें से २, तुम्हें ने कुत्तर लिए।

कुत्तर्क—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा तर्क। बेदर्शी दलील। बकवाद। विर्दा।

कुत्तर्क—संज्ञा पुं० [सं०] व्यर्थ तर्क करनेवाला। बकवादी। विवर्तवादी।

वि० कुत्तर्कमित। उ०—हरि हर पद रत, मनि न कुत्तर्की। तिन कहँ मधुर कया खुचर की।—तुलसी।

कुत्तर्ता—संज्ञा पुं० [हि० कताना] हँसिया।

कुत्तवार—संज्ञा पुं० [हि० कुत्तना + वार (प्रय०)] यह पुरुष जो बटाई के लिये खेत की फसल का कनकूत करे।

कूँडा पुं० [हि० कौतवाल] कौतवाल। उ०—मौ पीरी सैहि गढ़ भँकियारा। और तहँ फिरहिँ पाँच कुतवारा।—जायसी।

कुत्तवारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कौतवारी] (१) कौतवाल का काम। उ०—शेष न पाये संतु पुहुमि जाकी फलवारी। पवन सुदारात हार सदा संकर कुतवारी।—पूर। (२) कौतवाल का कार्यस्थान।

कुत्तवाली—संज्ञा पुं० दे० “कौतवाल”।

कुत्तवाली—संज्ञा स्त्री० दे० “कुतवारी”।

कुत्तार—संज्ञा पुं० [सं० कु + हि० तार] श्रद्धम। धसुविधा।

कुत्ताही—संज्ञा स्त्री० दे० “कौताही”।

कुत्तिया—संज्ञा स्त्री० [हि० कुत्ती] कुत्त की मादा। क्वरी। कुची।

कुत्तुप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिनमान का आठवाँ सुहृत्। कुत्तुप। (२) तेल रखने की चमड़े की कुत्ती।

कुत्तस—संज्ञा पुं० [अ०] भुवतारा।
धौ०—कुत्तुपनुमा।

कुत्तुवसाना—संज्ञा पुं० [फा०] पुस्तकालय।

कुत्तुवसुना—संज्ञा पुं० [अ०] एक ग्रंथ जिससे दिशा का ज्ञान होता है। यह एक छोटी डियिया के आकार का होता है, जिसके भीतर एक लोहे की सुई के सुँह पर अथर्वात की शक्ति रहती है जिससे यह सदा उत्तर दिशा की ओर रूढ़ करती है। यह ग्रंथ सांयुक्तिक नौकाओं और नापनों के काम आता है। दिग्दर्शक ग्रंथ।

कुत्तुवफुरोशा—संज्ञा पुं० [फा०] पुस्तकविक्रेता। किताब बेचनेवाला।

कुत्तुवभा—संज्ञा पुं० [देग०] एक हरा पत्ती जिसकी बाँध, पीठ और पैर लाल होते हैं।

कुत्तुलो—संज्ञा स्त्री० [देग०] हमली का कोमल फल जिसके बीच मुलायम हो। कैंडिया।

कुत्तुणक—संज्ञा पुं० दे० “कुत्तुग्रा”।

कुत्तुहल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उरुहल] (१) किसी वस्तु के देखने वा किसी बात के सुनने की प्रयत्न इच्छा। वक्तव्य। (२) वह वस्तु जिसके देखने की इच्छा हो। कौतुक। (३) क्रीड़ा। खिलवाड़। उ०—काम कुत्तुहल में बिलसे निशि पायव्य मनवाना हरे।—केशव। (४) आश्चर्य। अचंभा। (५) नायिका का एक अलंकार।

कुत्तुहली—वि० [सं० कुत्तुहल] (१) जिसे वस्तुओं की देखने वा जानने की अधिक बर्कटा हुआ करे। तमाशा देखनेवाला। (२) कौतुकी। खिलवाड़ी।

कुत्ता—संज्ञा पुं० [देग०] [खी० उच्छ] (१) भेड़िये, गीदड़ और लोमड़ी आदि की जाति का एक हिंसक पशु जिसे लोग साधारणतः घर की रक्षा के लिये पालते हैं। इसकी छोटी पड़ी अनेक जातियाँ हैं और यह सारे संसार में पाया जाता है। इसकी श्रवणशक्ति बहुत प्रबल होती है और जरा से खटके से बड़े जग घटना है। अपने स्वामी का यह बहुत शुभचिह्नक और भक्त होता है। किसी किसी जाति के कुत्तों की श्रावणशक्ति बहुत प्रबल होती है जिसके कारण यह किसी के पैरों के निशान सूँघ कर उसके पास जा पहुँचता है। शिकार में भी इससे बहुत सहायता मिलती है। पागल कुत्ते के काटने से आदमी उसी की भाँति भूँके लगता और कुछ दिनों में मर जाता है। घरसात में इसके विप का दौरा अधिक होता है। काटे हुए स्थान पर कुत्ता चिम कर जगाना शाभनायक होता है। धान। क्वर।

धौ०—कुत्तुससी = व्यर्थ और वृष्ट कार्य।

कुड़प-संज्ञा पुं० दे० "कुटव" ।

कुड़पना-कि० सं० [हिं० कुड़ = दस की शक्ति] कँगनी के खेत को

उस समय जोतना जब फसल एक एक बित्त की हो जाय ।

कुड़कुड़ाना-कि० अ० [अ० कु०] मन ही मन कुड़ना । कुड़कुड़ाना ।

कुड़मल-संज्ञा पुं० दे० "कुड़मल" ।

कुड़रिया-संज्ञा स्त्री० दे० "कुड़री" ।

कुड़री-संज्ञा स्त्री० [सं० कुड़री] (१) गेंदुरा । इँदुरी । विड़इ ।

विड़वा । (२) वह भूमि जो नदी के घूमने से बीच में पड़ कर तीन तरफ जल से घिर जाय । कुड़रिया ।

कुड़ल-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंचन] शरीर में पेटन जो रक्त की कमी

वा उसके टंढे पड़ने से होती है । यह धवस्था मिरगी आदि रोगों में या निर्मलता के कारण होती है । सन्नुज ।

कुड़व-संज्ञा पुं० [सं०] लोहे या लकड़ी का ध्वज नाचने का एक

पुराना मान जो चार श्रंगुल चौड़ा और इतना ही गहरा होता था ।

विशेष-१२ प्रकृति या सृष्टि का एक कुड़व और ४ कुड़व का एक प्रस्थ होता है । पर वैद्यक में कुड़व ३२ तोले का होता है और प्रकृति १६ तोले की मानी जाती है ।

कुड़ा-संज्ञा पुं० [सं० कुटव] इँदुनी का घृण । कुरैया ।

संज्ञा पुं० दे० "कुड़ा" ।

कुड़ाही-संज्ञा स्त्री० [सं० कुटव] कुड़ाही [लरा०] ।

कुड़क-संज्ञा पुं० [दे०] प्राचीन काल का एक प्रकार का वाजा

जिस पर चमड़ा मड़ा होता था ।

संज्ञा स्त्री० [सं० कुटव] (१) श्रद्धा न देनेवाली सुरगी ।

(२) व्यर्थ । माली ।

मुहा०—कुड़क बोलना = व्यर्थ होना । खाली जाना ।

कुडेर-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुडेरना] वह माली जो कुरिया में राव का

सीरा निकालने के लिये बनाई जाती है ।

कुडेरना-कि० सं० [दे०] राव के घोड़ों को एक दूसरे पर दस

प्रकार रखना जिसमें उसकी जूमी बह कर निकल जाय ।

कुड़ाल-वि० [सं० कु + हिं० टाल] बेदंगा । भदा ।

कुड़मल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कली । मुकुल । (२) दृष्टीस

नरकों में से एक नरक ।

कुडंग-संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० डंग] बुरा डंग । कुचाल । घुरी

रीति ।

वि० (१) घुरे डंग का । बेदंगा । भदा । घुरा । उ०—कुडंग

धोप तजि रंग रली करति जुवति जग जोह । पावस धातन

गुड यद, यडुनहूँ रंग होह ।—विहारी । (२) घुरी तरह का ।

बद-बड़ा । कुडंगा ।

कुडंगा-वि० [हिं० कुडंग] [स्त्री० कुडंगी] (१) घुरी चाल का । बेरा-

जर । उजड़ । (२) बेदंगा । भदा ।

कुडंगी-वि० [हिं० कुडंग] कुमार्गी । घुरी चालधरन का । उ०—

परपो एक पतित पराउ तीर गंगा जू के कुटिल कृताती कोड़ी
कुडित कुडंगी शेष ।—पद्माकर ।

कुडन-संज्ञा स्त्री० [सं० कुड, प्रा० कुड] (१) वह क्रोध जो मन

ही मन रहे । वह क्रोध जो भीतर ही भीतर रहे, प्रकट न

किया जाय । चिड़ । (२) वह दुःख जो दूसरे के धनियार्ये

कट को देख कर हो ।

कुडना-कि० अ० [सं० कुड, प्रा० कुड] (१) भीतर ही भीतर क्रोध

करना । मन ही मन खीकना या चिड़ना । घुरा मानना । (२)

साह करना । जलना । उ०—चंद्रगुप्त से उसके भाई लोग घुरा

मानते थे और महानंद अपने और सय घुरों का पच कर के इससे

कुडता था ।—हरिरचंद्र । (३) भीतर ही भीतर दुःखी

होना । मनोसना । उ०—देवकी जी ने कहा कि घुर तुम्हारे

घुः भाई जो कंस ने मार डाले हैं उनका दुःख मेरे मन से

नहीं जाता ।..... श्रीकृष्णचंद्र इतना कह पाताल घुरी

को गये कि माता तुम श्रव मत कुड़ो, मैं अपने भाइयों को

श्रमी जाय ले आता हूँ ।—लक्ष्म । (४) दूसरे के कट को

देख भीतर ही भीतर मनोस कर रह जाना ।

कुडव-वि० [सं० कु + हिं० व] (१) घुरे डंग का । बेदव ।

(२) कठिन । दुस्तर ।

कुड़ा-संज्ञा पुं० [सं० कुरधा] सृज्जाक के रोग में वह गाँठ जो

पेशाब की नली में पड़ जाती है और जिसके कारण

पेशाब बाहर नहीं निकलता और बड़ी पीड़ा होती है । यह

गाँठ रक्त और पीब के जम जाने से भीतर पड़ जाती है ।

कुड़ाना-कि० सं० [हिं० कुड़ना] (१) क्रोध दिखाना । चिड़ाना ।

लिमाना । (२) दुःखी करना । कलपाना ।

कुण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीजन । (२) नाभि की मँड ।

कौट । (३) बच्चा । उ०—कोल कोलकुण कीचर माहीं ।

बल से भिरे सकोप तहाँ हीं ।—गोपाल ।

कुणप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शव । मृत शरीर । लाश ।

(२) इंदुदी । गौदी । (३) रांगा । (४) बरघा ।

भाला ।

कुणपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बरघी । भाला ।

कुणपाशी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का प्रेत जो सुदों

खाता है । (२) सुदों खानेवाला जंतु, जैसे—गीध,

कौघा, गीदड़ ।

कुण्ठि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हुन का पेड़ । (२) वह मनुष्य

जिसकी बाहु टेंढ़ी हो गई हो या मारी गई हो ।

कुतक-संज्ञा पुं० दे० "कुतका" ।

कुतका-संज्ञा पुं० [हिं० गुतका] (१) गुतका । (२) मोटा

दंदा । सोंया । उ०—लै कुतका कई 'दग्ग मदारत' । राम

रहे उनहूँ से न्यारा ।—कवीर । (३) भाँग घेतने का

दंदा । भाँगघेतना ।

मुष्ठा—कृत्वा दिचलाना वा देखाना = किमी चीज के देने से वाफ इन्कार कर जाना । खँगा दिचलाना ।

कृतना—कि० श्र० [हि० कृतना] कृतने का कार्य होना । कृता जाना ।

कृतप-संज्ञा पु० [सं०] (१) दिन का आठवाँ सुहृत् जो मप्याह समय में होता है । (२) मिताकरा के शत्रुसार आठ वस्तु जिनकी आठ में श्रावश्यकता है, अर्थात्—मप्याह, सप्तपात्र वा गेंदे के चमड़े का पात्र, नेपाली कंबल, घड़ी का घरतन, कुश, तिल, गाय और शीदित्र । (३) एक पात्र । (४) बकरी के धाल का कंबल । (५) सूर्य । (६) अग्नि । (७) दिन । (८) अतिथि । (९) भांजा ।

कृतरन-संज्ञा पु० [हि० कृतरा] कृतरा हुआ टुकड़ा ।

कृतरना—कि० सं० [सं० कर्तन = कृतरना] (१) किमी वस्तु में से बहुत थोड़ा सा भाग दाँत से काट कर अलग करना । दाँत से छोटा सा टुकड़ा काट लेना । उ०—(क) चूहों ने कई जगह कपड़े कृतर डाले हैं । (ख) दिन पीपों की पत्तियाँ कृतर गए हैं । (२) किसी वस्तु में से कुछ अंश निकाल लेना । बीच ही में से कुछ अंश उड़ा लेना । उ०—१, २० हमें मिले थे उसमें से २, तुम्हें ने कृतर लिए ।

कृतर-संज्ञा पु० [सं०] उरा तक । बेरंगी दलील । बकवाद । वितंडा ।

कृतर-संज्ञा पु० [सं०] व्यर्थ तर्क करनेवाला । बकवादी । वितंडावादी ।

वि० कृतरूपिन । उ०—हरि हर पद रत, मति न कृतरकी । तिन कहै मधुर कथा रघुपद की ।—तुलसी ।

कृतरा-संज्ञा पु० [हि० कृतरा] हँसिया ।

कृतरार-संज्ञा पु० [हि० कृतरा + वार (प्रय०)] यह पुरुष जो बराह के लिये खेत की फसल का कनकृत करे ।

०संज्ञा पु० [हि० केतवाल] केतवाल । उ०—ना पीरी तंहि गढ़ु मैलियारा । औ तहँ फिरहिं पांच कुतवारा ।—जायसी ।

कृतरारी-संज्ञा स्त्री० [सं० केतवारी] (१) केतवाल का काम । उ०—शेष न पायो श्रुत सुहुमि जाकी फनवारी । पयन बुहारत द्वार सदा संकर कृतरारी ।—सूर । (२) केतवाल का कार्यस्थान ।

कृतराली-संज्ञा पु० दे० "केतवाल" ।

कृतराली-संज्ञा स्त्री० दे० "कृतरारी" ।

कृतरार-संज्ञा पु० [सं० कृ + हि० तार] खंडल । अशुविधा ।

कृतरादी-संज्ञा स्त्री० दे० "बैतारी" ।

कृतरिया-संज्ञा स्त्री० [हि० कृत्] कुत्ते की मादा । बकरी । कुत्ती ।

कृत्तुप-संज्ञा पु० [सं०] (१) दिनमान का आठवाँ सुहृत् । कृतर । (२) तेल रखने की चमड़े की कुप्पी ।

कृत्तुप-संज्ञा पु० [श्र०] भुवतारा ।

धौ०—कृत्तुवस्तुमा ।

कृत्तुवस्तुमा-संज्ञा पु० [फा०] पुस्तकालय ।

कृत्तुवस्तुमा-संज्ञा पु० [श्र०] एक यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है । यह एक छोटी डिबिया के आकार का होता है, जिसके भीतर एक छोड़े की सुई के मुँह पर अयस्कंत की शक्ति रहती है जिससे यह सदा उच्चा दिशा की ओर रहा करती है । यह यंत्र सामुद्रिक नौकाओं और मापकें के काम आता है । दिग्दर्शक यंत्र ।

कृत्तुवस्तुमा-संज्ञा पु० [फा०] पुस्तकविक्रेता । किताब बेचनेवाला ।

कृत्तुभा-संज्ञा पु० [देग०] एक हरा पत्ती जिसकी चौंच, पीठ और पैर साल होते हैं ।

कृत्तुली-संज्ञा स्त्री० [देग०] हमजी का कोमल फल जिसके बीज मुलायम हैं । कैटिया ।

कृत्तुपा-संज्ञा पु० दे० "कृत्तुया" ।

कृत्तुहल-संज्ञा पु० [सं०] [हि० कृत्तुहल] (१) किसी वस्तु के देखने वा किमी बात के सुनने की प्रबल इच्छा । उरकंटा । (२) वह वस्तु जिसके देखने की इच्छा हो । कौतुक । (३) छोड़ा । थिरकाड़ा । उ०—काम कृत्तुहल में विनती निशि पारबू मनमान हरे ।—केशव । (४) आश्चर्य । अचंभा । (५) नायिका का एक अलंकार ।

कृत्तुहली-वि० [सं० कृत्तुहल] (१) जिसे वस्तुओं को देखने वा जानने की अधिक उरकंटा हुआ करे । तमाशा देखनेवाला ।

(२) कैतुकी । पिलवाड़ी ।

कृत्ता-संज्ञा पु० [देग०] [को० कृत्ता] (१) भेदिये, मीदूध और लोमड़ी आदि की जाति का एक हिंसक पशु जिसे लोग साधारणतः घर की रक्षा के लिये पालते हैं । इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ हैं और यह सारे संसार में पाया जाता है । इसकी श्रवणशक्ति बहुत प्रबल होती है और जरा से खटके से यह जाग उठता है । अपने स्वामी का यह बहुत शुभचिह्न तक और भक्त होता है । किसी किसी जाति के कुत्ते की श्रावणशक्ति बहुत प्रबल होती है जिसके कारण यह किसी के पैरों के निशान सूँघ कर उसके पास जा पहुँचता है । शिकार में भी इससे बहुत सहायता मिलती है । पागल कुत्ते के काटने से आदमी उसी की भाँति भूँकने लगता और कुछ दिनों में मर जाता है । बरसात में इसके बिप का दौरा अधिक होता है । काटे हुए स्थान पर कुचला घिस कर लगाना लाभदायक होता है । शान । बकर ।

धौ०—कृत्तुवस्त्री = धूप और तृच्छ कार्य ।

में इसमें बहुत छोटे छोटे पीले फूल लगते हैं। इसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है और खेती के खूँटे आदि बनाने के काम में आती है।

कुनधा—संज्ञा पुं० [हि० कुनधा] [श्री० कुनधां] खरादी। खरादने-वाला मनुष्य। बर्तन आदि चरख पर चढ़ा कर खरादने-वाला मनुष्य।

कुनह—संज्ञा स्त्री० [फा० कीना] [हि० कुनहां] (१) द्वेष। मनोमालिन्य। मनमोटाव। उ०—कीन कुनह विन गुनह जिन तिन सुप्त मुना न पाव। सहसयाहु सुर्नाय भृगु श्रिय सुत भृगराव।—विश्राम। (२) पुराना बैर।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—रखना।

कुनही—वि० [हि० कुनह] द्वेष रखनेवाला। बुरा मानने-वाला।

कुनाई—संज्ञा स्त्री० [हि० कुनना = खरादना, खुरचना] (१) वह चूर या धुकनी जो किसी वस्तु को खरादने या खुरचने पर निकलती है। बुरादा। (२) खरादने की क्रिया। (३) खरादने की मनुदूरी।

कुनामि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बवंडर। वातावर्त्त। (२) नव निधियों में से एक।

कुनाम—संज्ञा पुं० [सं०] इच्छाति। बदनामी। उ०—बृंदावन हरि चैते धाम। काहे को गय हरयो सबन को काहे अपने कियो कुनाम।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुनित—वि० [सं० कणित] शब्द करता हुआ। गुंजार करता हुआ। घोलता हुआ। बजता हुआ। मजकार करता हुआ। उ०—(क) किंकिणी कटि कुनित फंकन कासुरी म्मनकार। हृदय चौकी चमकि बैदी सुभग मोतिन हार।—सूर। (ख) सखि हारि मूले चूपमानुंदिनी सेभि सँग नँदलालने। मयिमय नूपर कुनित फंकन किंकिनी म्मनकारने।—सूर।

कुनिया—संज्ञा पुं० [हि० कुनना] खरादनेवाला।

संज्ञा पुं० [हि० कृत्ना] कनकृत करनेवाला।

कुनैन—संज्ञा पुं० [सं० कुनैन] एक औषधि जो शंभरजो चिकरसा में उबर के लिये अत्यंत उपकारी मानी जाती है। यह एक पेड़ की छाल का सत है, जिसे सिंकोना कहते हैं। यह पेड़ पहले दक्षिण अमेरिका में ही होता था, पर अब यह भारत-वर्ष के नीलगिरी, मैसूर, सिक्किम आदि ऊँचे पहाड़ी स्थानों में भी लगाया जाता है। यह दो हंग से लगाया जाता है। कहीं तो बीन घो कर पीछे उगाते हैं और कहीं डालियाँ फाट कर कलम लगाते हैं। इसके बीजों को घना बोते हैं और खूब सिंचाई करते हैं। ऊपर से फूल आदि की छाया भी कर देते हैं। उ०—४१ दिनों में अंशुप निकल आते हैं। जय देा या तीन जोड़ी पत्तियाँ निकल आती हैं तब पीछे को

दूसरी जगह लगाते हैं। इसी प्रकार पीछे को कई बार उखाड़ उखाड़ कर अन्यत्र लगाना पड़ता है। ये पीछे चार चार या छः छः फुट के अंतर पर लगाए जाते हैं। सिंकोना कई प्रकार का होता है—भूरी छाल का, लाल छाल का, और पीली छाल का। लाल छाल का पेड़ बड़ा होता है, भूरी छाल का मध्यम आकार का होता है, और पीली छाल का छोटी के आकार का छोटा होता है। जब पीछा चार वर्ष का होता है तब उसकी छाल में अच्छी तरह धार आ जाता है और यह काम लायक हो जाती है। सातवें वर्ष से धार कुछ घटने लगता है। इस से १२ या १४ वर्ष के भीतर ही सारे पेड़ छाल के लिये उखाड़ लिए जाते हैं। जड़ में धार का अंश विशेष होता है इससे यह और भागों की अपेक्षा बहुमूल्य समझी जाती है।

कुपथ—संज्ञा पुं० [सं० कुपथ] (१) बुरा मार्ग। (२) निषिद्ध आचरण। कुचाल। उ०—रघुर्वसिन कर सहज सुभाऊ। मन कुपथ पग धरें न काऊ।—तुलसी।

क्रि० प्र०—पर चलना।

(३) बुरा मत। कुसित सिद्धांत।

कुपद्—वि० [सं० कु + हि० पद्] अनपढ़। सूखे।

कुपरथी—वि० [सं० कुपथ्य] कुपथ्य करनेवाला। धसंयमी। संज्ञा पुं० वह व्यक्ति जो पथ्य से न रहे। बद-परहेज धादमी।

कुपथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा रास्ता। (२) निषिद्ध आचरण। बुरी छाल।

धा०—कुपथगामी = कुमार्गी। निषिद्ध आचरण का।

*संज्ञा पुं० [सं० कुपथ्य] वह भोजन जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो। उ०—तुल करवृत्ति भूति कीरति सुस्प गुन जोयन उबर जरत परें न कल कहीं। राम काज कुपथ कुसात्र भोग रोग को है वेद बुध विषा वाय विवस बलकहीं। गति तुलसीस की लखे न कोऊ जो करति पश्ये ते धार पश्ये से उपल कहीं। कासों कीजे रोस दोस दोजे काहि पाहि राम कियो कलिकाल कुलि खलल खलकहीं।—तुलसी।

कुपथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह आहार विहार जो स्वास्थ्य को हानिकारक हो। बद-परहेजी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुपना—क्रि० अ० दे० “कोपना”।

कुपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी मंत्रणा। बुरी सलाह। उ०—कीन्हेसि कठिन पढ़ाह कुपाठ। जिसि न नवें पुनि उकटि कुकाठ।—तुलसी।

कुपाठी—वि० [सं० कुपाठिन] बदमाश। नटखट। दुष्ट। उत्याती। **कुपात्र**—वि० [सं०] (१) किसी विषय का अनुधिकारी। अयोग्य। नालायक। (२) वह जिसे दान देना शास्त्रों में निषिद्ध है।

कुपार-संज्ञा पुं० [सं० कूपार] समुद्र । उ०-देसु ध्रुव रंक लंके जातर निरंक तेरी तत्र न बुझैगी औ लौं आइहैं कूपार के ।
—हनुमान ।

कुपिन-वि० [सं०] (१) क्रुद्ध । अप्रिय । (२) धमसत्र ।
नाराज ।

कुपिन-संज्ञा पुं० दे० "कौपीन" ।

कुपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कपूत । दुष्ट पुत्र । वह पुत्र जो कुपय-
गामी हो ।

कुपुत्र-संज्ञा पुं० [सं० कूप] घोड़ों का एक रोग जिसमें उन्हें ज्वर
घाता है और उनकी नाक से पानी बहता है ।

कुप्यल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ससती जिसके कूलम
धारीक और चुकीले होने हैं । यह लाल रंग की होती है
और बार की लोगार भील के पानी को सुखा कर निकाली
जाती है ।

कुप्या-संज्ञा पुं० [सं० कूपक] [स्त्री० कूप्य० कुपी०] चमड़े का
बना हुआ घड़े के धाकर का एक बड़ा बनेन जिसमें घी तेल
आदि रखे जाते हैं ।

घो०—कुप्यासात्र ।

मुहा०—कुप्या छुड़ना या सुखरुका = (१) किसी बड़े आदर्श का
मरना । (२) अधिक व्यय होगा । कुप्या होना या हो जाना =
(१) क्रुद्ध जाना । क्रुद्धना । क्रम होना । उ०—विष्णु के काटने
से उसका मुँह कुप्या हो गया । (२) मोटा होना । दृष्ट पुष्ट
होना । उ०—यह दोमर्हाने में ही कुप्या हो गया । (३) रुटना ।
रुठ कर बोल चाल बंद करना । उ०—यह जरा सी बात में
कुप्या हो जाते हैं । कूल कर कुप्या होना = (१) मोटापना । दृष्ट
पुष्ट होना । (२) अर्थन हर्षित होना । आनंद से क्रुद्ध जाना । उ०—
जिस समय वह यह सुनेगा, कूल कर कुप्या हो जायगा । किन्नी
का मुँह कुप्या होना = किसी का नाराज होकर मुँह फुगाना ।
किसी का रुठ कर बोल चाल बंद करना । उ०—बुराही बात पर
मुग्धारा मुँह कुप्या हो जाता है । कुप्या सा मुँह करना =
मुँह फुगाना । रुठ कर बोल चाल बंद करना ।

कुप्यासात्र-संज्ञा पुं० [हिं० कुप्या + सात्र] कुप्या बगानेवाला ।
कुप्यो-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुप्या का कूप्य०] चमड़े का बना हुआ
कुप्ये से छोटा बनेन जिसमें तेल कुलेल आदि रखते
हैं । कुलेली ।

कुपुरी-संज्ञा पुं० [सं० कुपू] मुसलमानी मत के विरुद्ध धन्य
हूत । उ०—आदि देशालय कुपुर मितार्के । पालसाह के
हुकुम चलार्के ।—लाल । दे० "कुपूर" ।

कुफेन-संज्ञा स्त्री० [सं०] काबुल नदी का पुराना नाम । इसे
वैदिक काल में कुभा कहने थे ।

कुफ़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुसलमानी मत से निम्न क्रम्य मत ।
(२) मुसलमानी धर्म के विरुद्ध धात्व ।

क्रि० प्र०—एकना ।

कुपल-संज्ञा पुं० [सं०] ताला । जंतरा ।

कुपली-संज्ञा स्त्री० दे० "कुल्दी" ।

कुयंड-संज्ञा पुं० [सं० कुयंद] धनुष । उ०—(क) कुयंड कियो
विविसेइ महा वारयंड प्रपंच भुजा बल ते ।—हनुमान ।
(ख) बहुत सही याकी सचदि किनु कुयंड भृगु येस । ध्रुव
लक्षिमन विनती करै रघुबुल मानस हंस ।—हनुमान ।
(ग) भुसुंदिप और नुयंडिय साधि । परे दुहुँ चारन ते भट
धाधि ।—सूदन ।

शुवि० [सं० कु + वठ = खठ] खंडा । विकृतांग । उ०—
हैं जीति सुरेश महेश को पूत गणेश को दूत उगारि लियो ।
यम को बरा कै पुनि बाहन को जिन तोरि विषय कुयंड
कियो । दस मूँहन लै जिन दान दिगो शिव लौं छिन माँहि
रिभाव लियो । सोह रावया पाई रहयो गहि के न उपाय दुहुँ
कर मान दियो ।—हनुमान ।

कुबजा-संज्ञा स्त्री० दे० "कुब्जा" ।

कुबड़ा-संज्ञा पुं० [सं० कुब] [स्त्री० कुबडी] वह पुरुष जिसकी
पीठ टेढ़ी हो गई या झुका गई हो । उ०—सबसे अधिक
किरात धरे जो धे भी टीक गँवार । कुबड़े नीचे नीचे चल के डर
से हो गये पार ।—रत्नावली ।

वि० टेढ़ा । झुका हुआ । उ०—सन सला कुबड़ी पीठ हुई
घोड़े पर जीन धरो बाबा ।—नजीर ।

कुबड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुबड़ा] (१) दे० "कुवरी" । (२) वह
छड़ी जिसका सिरा झुका हुआ हो । टेढ़िया ।

कुबत-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० बत] (१) बुरी बात । निंदा ।
उ०—करौ कुबत गग कुटिलता तजों न दीनदयाल । दुर्वी
होहुगे सरल हिय धसन त्रिभंगी लाल ।—विहारी । (२)
कुचाल । बुरी चाल । उ०—कहतिन न देवर की कुबत, कुन
निय कलह उगति । पंजर गत मंजार दिग सुक लौं सुरत
जाति ।—विहारी ।

कुबरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुबड़ा] (१) कंस की एक दासी, जिसकी
पीठ टेढ़ी थी । यह कृष्णचंद्र पर अधिक प्रेम रखती थी । कुब्जा
उ०—योग कथा पढ़ई ब्रज को सय सो सठ चेरी की चाल
चलाकी । ऊषे नू बयों न कहै कुबरी जो बरी नट नागर
हेरि हलाकी ।—सुलसी । (२) वह छड़ी जिसका सिरा झुका
हो । टेढ़िया । (३) एक प्रकार की मछली जो भारत, लंका
और चीन में पाई जाती है ।

कुबलयापीडू-संज्ञा पुं० दे० "कुबलयापीडू" ।

कुबली-संज्ञा स्त्री० [सं० कुबलय = गेला] पिंड़ी । गोला ।

कुवाक-संज्ञा पुं० [सं० कुवक्य] (१) कुवचन । टेढ़ा बोल ।
कठोर वचन । कड़ी बात । उ०—तजो संक सकुचित नचति
बोलति बाक कुवाक । दिन दिनदा छाकी रहति उरत न
दिन दधि छाक ।—विहारी । (२) गाली । (३) शाप ।

कुमानि-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + नि० वानि] बुरी आदत । बुरी देव ।
बुरी खत । कुट्येव ।

कुवासन-संज्ञा स्त्री० दे० "कुवासन" ।

कुविचार-वि० दे० "कुविचार" ।

कुविचारी-वि० दे० "कुविचारी" ।

कुविजा-संज्ञा स्त्री० दे० "कुविजा" ।

कुवुद-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का वगला ।

कुवुद्धि-वि० [सं०] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो । कुवुद्धि । मूर्ख ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्खता । बेवकूफी । (२) बुरी
सलाह । कुर्मंत्रण ।

कुवेर-संज्ञा पुं० दे० "कुवेर" ।

कुवेला-संज्ञा स्त्री० [सं० कुवेला] बुरा समय । अनुपयुक्त काल ।

कुवोलनी-वि० स्त्री० [हिं० कुबोल] कुमापिणी । बुरा बोल बोलने-
वाली । उ०—युवति कुरुषु कुवोलनि जाके । सदा शोक
हिय हूँ हे ताके ।—निरचल ।

कुव्ज-वि० [सं०] [स्त्री० कुव्जा] जिसकी पीठ टेढ़ी हो । कुव्जा ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक रोग जिसमें वायु के विकार से
छाती या पीठ टेढ़ी होकर ऊँची हो जाती है । यह दो प्रकार
का होता है । एक में पीठ आगे की ओर और दूसरे में पीछे
की ओर झुकती है । (२) अप्रामाण्य । लहचिचिड़ा । लटजता ।

कुव्जकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] सक्तिपात का एक भेद जिसमें कंठ रुक
जाता है और रोगी के गले के नीचे पानी नहीं उतरता । इसमें
दाह मोह आदि भी होता है । वैद्यक में इसे असाध्य माना
है, और उसकी अवधि १३ दिन की यतलाई है ।

कुव्जक-संज्ञा पुं० [सं०] माखली ।

कुव्जा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंस की एक दासी जिसकी पीठ कुव्ज
थी । यह कृष्णचंद्र से अधिक प्रेम रखती थी । कुवरी (२)
कैकेयी की मंधरा नाम की एक दासी । उ०—लपसु, भरसु,
रिपुदमन सुमित्रा कुवरी के उर साल ।—तुलसी ।

कुव्जिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आठ वर्ष की अवस्था की
लड़की । (२) दुर्गा देवी का एक नाम ।

कुव्जा-संज्ञा पुं० [हिं० कुव्जा] डिहा । क्यूड़ ।

कुमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृष्ठी की छाया । (२) बुरी दीप्ति ।
(३) काबुल नदी ।

कुभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्यंत । (२) सात की संख्या । (३)
शेष नाम ।

कुमंडी-संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठ = बॉस] पतली लचीली टहनरी ।
उ०—पाता बड़ बड़ देवि के चड़े कुमंडी धाय । तहवर होय
तो भार सह हट रंड अराय ।—तिरिधर ।

कुमंत्रणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी सलाह ।

कुमक-संज्ञा स्त्री० [उ०] (१) सहायता । मदद । उ०—लार्ड
आकलैंड ने जाने से पहले जवालाबाद चाली की कुमक के

लिये पेशावर में फौज जमा देने के लिये हुबम जारी किया
—शिववसाद । (२) पचपात । हिमापत । तरफदारी ।

कि० प्र०—करना ।—पहुँचना ।—पहुँचाना ।—देना ।—
लेना ।—खाना ।

मुहा०—कुमक पर होना = हिमापत करना । पक लेना । तर-
दारी करना ।

कुमकी-वि० [उ० कुमक] (१) कुमक का । कुमक से संबंध रख-
वाला । जैसे—कुमकी फौज ।

संज्ञा स्त्री० हाथियों के पकड़ने में सहायता करने के लिये
सिखाई हुई इयगी ।

कुमकुम-संज्ञा पुं० [सं० कुकुम] (१) केदार । उ०—जहाँ सब
धन रास उपयो । कुमकुम जल मुख सृष्टि रमयो ।—पूर
(२) कुमकुमा । उ०—चंदन कालकूट सम जागहु । कुमकु-
पथि प्रहार हय मानहु ।—मधुसूदन दास ।

कुमकुमा-संज्ञा पुं० [उ० कुमकुमा] (१) लाल का बना हुआ एक
प्रकार का पोला गोल या चिपटा लहू जिसमें अवीर और गुला
भर कर होली में खेला एक दूसरे पर मारते हैं । इसके टुकड़े
से गुलाब अवीर आदि हथकर उधर बिखर जाता है । (२) एक
प्रकार का लंग मुँह का छोटा लोटा । (३) एक प्रकार का
टांकी जिससे सुतार नकाशी किए हुए गद्दों के उभरे हुए र-
दश पर चौरस करते हैं । (४) काँच के बने हुए पोले छोटे
गोले जो कई रंग और आकार के होते हैं । छोटे दानों व
माला बनती हैं जिसे ब्रिजों पहनती हैं और बड़े गोले सजाव
के लिये लटकाने के काम में आते हैं ।

कुमकुमी-वि० [हिं० कुमकुमा] कुमकुमे के आकार का ।

विरोध—यह शब्द लोटे के लिये प्रयोग होता है जिसे कुमकुम
कहते हैं ।

कुमरिया-संज्ञा पुं० [?] हाथियों की एक जाति । इस जाति
का हाथी अधिक लंबा चौड़ा होता है और बच्चा मान
जाता है । इसकी पीठ अधिक कुपड़ी नहीं होती ।

कुमरी-संज्ञा स्त्री० [अ०] पंडुक की जाति की एक चिड़िया जिनसे
सफेद कव्तर और पंडुक से उत्पन्न होती है । यह सफेद
रंग की होती है और इसके गले में कंठी या हँसुली होता
है । इसके पैर लाल होते हैं और बोली बड़ी गंभीर और
मनोहर होती है । यह प्रायः उजाड़ स्थानों में रहती है
इसका पालना अष्टम समझा जाता है ।

कुमसुम-संज्ञा पुं० [दे०] एक वृक्ष जिसकी लकड़ी भूरे रंग की
और बहुत मजबूत होती है और इमारत के काम में आती है
आसाम में इसकी बेंगो बनाई जाती है । यह वृक्ष बहुत
ऊँचा होता है और बीजों से पैदा होता है जो माघ मास
में बोये जाते हैं । यह कमापूँ और पश्चिमी घाट में बहुत
होता है ।

कुमाच-संज्ञा पुं० [अ० कुमाच] (१) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा । उ०—का भापा का संप्रदाय, प्रेम चाहिये लांच । काम जो आवे कामरी, का लै करे कुमाच ।—तुलसी । (२) गंजीकू के पत्ते के एक रंग का नाम । (३) दे० “कौंच” ।
संज्ञा पुं० [दे०] बेंडोल रोटी जो कहीं से मोटी और कहीं से पतली हो ।

कुमार-संज्ञा पुं० [सं०] [शी० कुमारी] (१) पांच वर्ष की आयु का बालक । (२) पुत्र । बेटा । लड़का । (३) युवराज । (४) कातिकेय । (५) सिंधु नदी । (६) सुग्गा । तोता । (७) परा सोना । (८) सनक सनेदन, सनल और सुजात आदि कई ऋषि जो सदा बालक ही रहते हैं । (९) युवावस्था वा उससे पहले की अवस्थावाला पुरुष । उ०—बाल्मीकि मुनि वसंत निरंतर राम मंत्र उच्चार । तांको फल मोहिं आज भयो मोहिं दूरान दिया कुमार ।—रु । (१०) जैनियों के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के १२वें जिन । (११) एक प्रह जिसका उद्भव बालकों पर होता है । (१२) मंगल प्रह । (१३) सौंदर्य । (१४) ऋषि के एक पुत्र का नाम, जिन्होंने कई वैदिक मंत्रों का प्रकाश किया था । (१५) ऋषि । (१६) एक प्रजापति का नाम । (१७) भारतवर्ष का एक नाम । (१८) एक ऊँचा वृक्ष जिसका भरदार वर्षों में होता है । इसकी लकड़ी कुछ पीलापन या लालाई लिए लकड़े रंग की नरम, चिकनी, घुमट्टीली और मजबूत होती है । इसकी अलमारी, मेज, कुर्सी और आरायशी चीजें बनती हैं । घरों में इस पर सुदाई का काम अच्छा होता है । इसकी छाल और जड़ औषध में काम आती हैं और फल खाया जाता है । इसकी कलम खगती है और बीज भी बोया जाता है । यह वृक्ष पहाड़ों पर लीन हज़ार फुट की ऊँचाई तक मिलता है । यह बरमा, थायमा, धवप, दार और मध्य प्रांत में बहुत होता है । सेवें ।
वि० [सं०] विन व्याह । कुंशारा ।

कुमारग-संज्ञा पुं० [सं० कुमार्ग] कुमार्ग । सुरा मार्ग । उ०—रे तिथ चार कुमारगाम्नी । खल मलताणि मंदमलि कामी ।—तुलसी ।

कुमारतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक का वह भाग जिसमें यज्ञों के रोगों का निदान और चिकित्सा हो । बालतंत्र ।

कुमारभृत्य-संज्ञा शी० [सं०] (१) गर्भिणी को सुप्त से प्रसव कराने की विद्या । (२) गर्भिणी या नवप्रसूत बालकों के रोगों की चिकित्सा का धाम ।

कुमारललिता-संज्ञा शी० [सं०] (१) सात अक्षर का एक वृत्त जिसमें एक जगण, एक सगण और अंत में गुरु होता है ।
उ०—उ सोगहिं गसावै । प्रमोद उपजावै । अतीव सुकुमारी । कुमार ललिता री । (२) बालकों की महीना ।

कुमारलसिता-संज्ञा शी० [सं०] आठ अक्षर का एक वृत्त, जिसमें एक जगण, एक सगण और अंत में एक लघु और एक गुरु होता है । उ०—भजो उ सुखकंद को । हरो उ दुख दुंद को ।

कुमारिका-संज्ञा शी० [सं०] कुमारी ।

कुमारिल भट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] प्रसिद्ध मीमांसक और शबर भाष्य तथा अथ्य श्रौत सूत्रों के टीकाकार । इन्होंने पहले जैन धर्म ग्रहण किया था पर कुछ समय पीछे अपने जैन गुरु को शास्त्रार्थ में परास्त करके वे वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे थे । कहते हैं कि गुरुसिद्धांत का खंडन करने के प्रायश्चित्त के लिये ये कटाग्रि में जल मरे थे । यह भी कहा जाता है कि इनके अग्रि में जलने के समय शंकराचार्य इनके पास भेट करने के लिये गये थे ।

कुमारी-संज्ञा शी० [सं०] (१) बारह वर्ष तक की अवस्था की कन्या ।

पौ०—कुमारीपूजा ।

(२) धीकुमार । (३) नवमलिका । (४) वांग ककोड़ी । (५) बड़ी हलावृक्षी । (६) रथीमा पत्नी । (७) सीता जी का एक नाम । (८) पार्वती । (९) हुगों । (१०) एक श्वेतरीष, जो भारतवर्ष के दक्खिन में है । (११) चमेली । (१२) सेवनी । (१३) पृथिवी का मध्य भाग । (१४) शाकद्वीप की सात नदियों में से एक । (१५) अषराजिता ।
वि० विना व्याह । तिस (स्त्री) का विवाह न हुआ हो ।

कुमारीपूजन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की पूजा जो देवीपूजन के समय होती है और जिसमें कुमारी बालिकारों का पूजन करके उन्हें मिश्रात्र आदि दिया जाता है ।

कुमार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुमार्गी] (१) सुरा मार्ग । सुरी । राह । (२) धर्म ।

कुमार्गगामी-वि० [सं०] (१) कुपंथी । कुमार्गी (२) धर्म ।

कुमार्गी-वि० [सं० कुमार्गी] [श्री० कुमार्गीनी] (१) बद्धचलन । कुचाली । (२) धर्म । धर्महीन ।

कुमालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन प्रदेश जो वर्तमान मालवा के अंतर्गत था । इसे सौर्य भी कहते हैं । (२) उस देश के निवासी ।

कुमाला-संज्ञा पुं० [दे०] एक छोटा पेड़ जो देहादून, अथवा छोदानापुर, बंबई तथा दक्षिण भारत में होता है । यह ८-१० फुट ऊँचा होता है और इसकी पत्तियाँ चार पाँच इंच लंबी होती हैं । यह जेठ बसंत में फूलता है और इसका फल खाया जाता है ।

कुमुच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रावण के दुष्ट पुत्र नामक एक योद्धा का नाम । उ०—कुमुच, अक्रपन, कलिस रत्न, भूमकेतु ।

कुवानि—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हि० वानि] बुरी आदत । बुरी देव ।
 बुरी लत । कुट्टेव ।
 कुवासन—संज्ञा स्त्री० दे० “कुवासन” ।
 कुविचर—वि० दे० “कुविचार” ।
 कुविचारी—वि० दे० “कुविचारी” ।
 कुविजा—संज्ञा स्त्री० दे० “कुज्जा” ।
 कुबुद्ध—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का वगला ।
 कुबुद्धि—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि ऋष्ट हो । दुबुद्धि । मूर्ख ।
 संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्खता । बेवकूफी । (२) बुरी
 सलाह । कुमंत्रण ।
 कुबेर—संज्ञा पुं० दे० “कुबेर” ।
 कुबेला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुबेला] बुरा समय । अनुपयुक्त काल ।
 कुबोलनी—वि० स्त्री० [हिं० कुबोल] कुभाषिणी । बुरा बोल बोलने-
 वाली । उ०—युवति कुरूप कुबोलनि जाने । सदा योग
 हिय है है ताके ।—निरचल ।
 कुब्ज—वि० [सं०] [स्त्री० कुब्जा] जिसकी पीठ टेढ़ी हो । कुबड़ा ।
 संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक रोग जिसमें वायु के विकार से
 छाती या पीठ टेढ़ी होकर जँची हो जाती है । यह दो प्रकार
 का होता है । एक में पीठ आगे की ओर और दूसरे में पीछे
 की ओर झुकती है । (२) अपामार्ग । लहयिचिड़ा । लटजंता ।
 कुब्जकंठ—यज्ञा पुं० [सं०] सतिपात का एक भेद जिसमें कंठ रुक
 जाता है और रोगी के गले के नीचे पानी नहीं उतरता । इसमें
 दाह मोह आदि भी होता है । वैद्यक में इसे अस्वास्थ्य माना
 है, और उसकी अवधि १३ दिन की वतलाई है ।
 कुब्जक—संज्ञा पुं० [सं०] मालती ।
 कुब्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंठ की एक दासी जिसकी पीठ कुबड़ी
 थी । यह कृष्णचंद्र से अधिक प्रेम रखती थी । कुवरी (२)
 केंद्रीय की मंथरा नाम की एक दासी । उ०—लपतु, भरतु,
 रिपुदमन मुमिद्रा कुवरी के उर साल ।—गुलसी ।
 कुब्जिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दास वर्ग की अश्वत्था की
 लकड़ी । (२) दुर्गा देवी का एक नाम ।
 कुब्जा—संज्ञा पुं० [हिं० कुबड़ा] छिड़ा । क्यड़ ।
 कुमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी की छाया । (२) बुरी वीति ।
 (३) कावुल नदी ।
 कुभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्यंत । (२) सात की संख्या । (३)
 शेष नाम ।
 कुमंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कमंड = बॉल] पतली लचीली टहनी ।
 उ०—पाता बड़ बड़ देखि कै चढ़े कुमंडी धाय । तरवर होय
 तो भार सह दृष्ट रेंद शरणाय ।—निरिधर ।
 कुमंत्रणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी सलाह ।
 कुमक—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहायता । मदद । उ०—साह
 आकलैद ने जाने से पहले जलालाबाद वालों की कुमक के

लिये पेशावर में फौज जमा होने के लिये हुजम जारी किया ।
 —शिवप्रसाद । (२) पशुपात । हिमायत । सरकारी ।

क्रि० प्र०—करना ।—पहुँचना ।—पहुँचना ।—देना ।—
 लेना ।—थाना ।

मुहा०—कुमक पर होना = हिमायत करना । पक लेना । तरफ-
 दारी करना ।

कुमकी—वि० [सं० कुमक] (१) कुमक का । कुमक से संबंध रखने-
 वाला । जैसे—कुमकी फौज ।

संज्ञा स्त्री० हाथियों के पकड़ने में सहायता करने के लिये
 सिलाई हुई हथनी ।

कुमकुम—संज्ञा पुं० [सं० कुंकुम] (१) केशर । उ०—जहाँ स्वाम
 मन रासे उपायो । कुमकुम जल सुख वृष्टि रमयो ।—सूर ।
 (२) कुमकुमा । उ०—चंद्रन कालवृट सम जानहु । कुमकुम
 पवि प्रहार इव मानहु ।—मधुसूदन दास ।

कुमकुमा—संज्ञा पुं० [सं० कुमकुमा] (१) लाल का बना हुआ एक
 प्रकार का पोला गोल या चिपटा लटू जिसमें अवीर और गुलाल
 भर कर होली में लोग एक दूसरे पर मारते हैं ।—इमके टूटने
 से गुलाल अवीर आदि इधर उधर बिलर जाता है । (२) एक
 प्रकार का तंग मुँह का छोट्टा लोटा । (३) एक प्रकार की
 टांकी जिससे सुनार नकाशी किए हुए गहनों के उमरे हुए रत्ने
 दबा कर चोस करते हैं । (४) कोंच के बने हुए पोले छोटे
 गोले जो कई रंग और आकार के होते हैं । छोटे दानों की
 माला बनती है जिसे बियां पहनती हैं और बड़े गोले सजावट
 के लिये लटकाने के काम में आते हैं ।

कुमकुमी—वि० [हिं० कुमकुमा] कुमकुमे के आकार का ।
 विशेष—यह शब्द कोटो के लिये प्रयोग होता है जिसे कुमकुमा
 कहते हैं ।

कुमरिया—संज्ञा पुं० [?] हाथियों की एक जाति । इस जाति
 का हाथी अधिक लंबा चौड़ा होता है और अष्टा मान
 जाता है । इसकी पीठ अधिक कुबड़ी नहीं होती ।

कुमरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंडुक की जाति की एक चिड़िया जो
 सफेद कबूतर और पंडुक से उत्पन्न होती है । यह सफेद
 रंग की होती है और इसके गले में कंठी या हँसुली होती
 है । इसके पैर लाल होते हैं और बोली बड़ी मंभीर और
 मनोहर होती है । यह प्रायः उजाड़ स्थानों में रहती है ।
 इसका पावना अशुभ समझा जाता है ।

कुमसुम—संज्ञा पुं० [दे०] एक वृक्ष जिसकी लकड़ी गूरे रंग की
 और बहुत मजबूत होती है और इमारत के काम में आती है ।
 आसाम में इसकी डोंगी बनाई जाती है । यह वृक्ष बहुत
 ऊँचा होता है और बीजों से पैदा होता है जो माप पापुन
 में बोये जाते हैं । यह कमायूँ और पश्चिमी घाट में बहुत
 होता है ।

कुमांच-संज्ञा पुं० [च० कुमाग] (१) एक प्रकार का रेशमी वस्त्र। उ०—का भापा का संस्कृत, प्रेम चाहिये सांच। काम जो चायें कामरी, का लै करै कुमाच।—तुलसी। (२) मंत्रोंके के पत्ते के एक रंग का नाम। (३) दे० "कौंच"।
 संज्ञा पुं० [देग०] बंदेल रोटी जो कहीं से मोटी और कहीं से पतली हो।

कुमार-संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० कुमारी] (१) पांच वर्ष की श्रापु का बालक। (२) पुत्र। वेदा। लड़का। (३) युवराज। (४) कानि बेंबे। (५) सिंधु नदी। (६) सुग्गा। तोता। (७) खरा सोना। (८) सनक सनंदन, मनन और सुजात श्रादि कई श्रापि जो सदा बालक ही रहते हैं। (९) युवावस्था वा उससे पहले की अवस्थावाला पुरुष। उ०—बालीकि मुनि बसत निरंतर राम मंत्र अचार। तांको फल मोहिं धाज भयो मोहिं दूरन दियो कुमार।—सूर। (१०) जैनियों के अगुसार बतमान श्रवसिंघी के १२वें जिन। (११) एक प्रह जिसका उपद्रव बालकों पर होता है। (१२) मंगल ग्रह। (१३) सौदेस। (१४) अग्नि के एक पुत्र का नाम, जिन्होंने कई वैदिक मंत्रों का प्रकाश किया था। (१५) अग्नि। (१६) एक प्रजापति का नाम। (१७) भारतवर्ष का एक नाम। (१८) एक जैना श्रुत जिसका भारतभार वर्षों में होता है। इसकी लकड़ी ऊँच पीलापन या ललाई लिए अत्युत्कृष्ट रंग की गरम, चिकनी, घुमकीली और मजबूत होती है। इसकी अलमारी, मेज, कुर्सी और शारारखरी चीजें बनती हैं। यस्मा में इस पर बुढ़ाई का काम अच्छा होता है। इसकी छाल और जड़ औषध में काम आती हैं और फल खाया जाता है। इसकी कलम लगती है और धीज भी बोया जाता है। यह वृक्ष पहाड़ों पर तीन हजार फुट की ऊँचाई तक मिलता है। यह बरसा, शामान, धवध, धरार और मध्य प्रांत में बहुत होता है। सेवें।
 वि० [सं०] चिन व्यादा। कुंभार।

कुमारग-संज्ञा पुं० [सं० कुमारग] कुमारग। सुरा मार्ग। उ०—रे तिय चार कुमारगामी। खल मलरगि मंदमनि बामी।—तुलसी।

कुमारतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का षड भाग जिसमें यद्यो के रोगों का निदान और चिकित्सा हो। बालतंत्र।

कुमारभूष-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गर्मिणी को सुन से प्रसन्न करने की विद्या। (२) गर्मिणी या नवमसुत बालकों के रोगों की चिकित्सा का काम।

कुमारलसिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सात अक्षर का एक वृत्त जिसमें एक जगण, एक सगण और छत में गुरु होता है। उ०—तु सोपाईं पसवै। प्रमोद बनजावै। शनीय सुकुमारी। कुमार लसिता री। (२) बालबेनी की स्त्रीतु।

कुमारलसिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] छाट अक्षर का एक वृत्त, जिसमें एक जगण, एक सगण और छत में एक लघु और एक गुरु होता है। उ०—भोजो तु सुखदं को। हरो तु दुख दुंद को।

कुमारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी।

कुमारिल भट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] प्रसिद्ध नीमांसक और शकट भाष्य तथा अन्य श्रोत सूत्रों के टीकाकार। इन्होंने पहले जैन धर्म ग्रहण किया था पर कुछ समय पीछे अपने जैन गुरु को शार्वर्य में परास्त करके वे वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे थे। कहते हैं कि गुरसिद्धांत का संश्रन करने के प्रायश्चित्त के लिये ये कटाग्रि में जल मरे थे। यह भी कहा जाता है कि इनके अग्नि में जलने के समय शंकराचार्य इनके पाप भेट करने के लिये गये थे।

कुमारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धारह वर्ष तक की अवस्था की कन्या।

यौ०—कुमारीपूजा।

(२) चीकुआर। (३) नवमलिका। (४) वांम कनेड़ी। (५) बड़ी हलायुकी। (६) रूयामा पत्नी। (७) सीता जी का एक नाम। (८) पार्वती। (९) हुगों। (१०) एक शंतीप, जो भारतवर्ष के दक्षिण में है। (११) चमेरी। (१२) सेवती। (१३) पृथिवी का मध्य भाग। (१४) शाकद्वीप की सात नदियों में से एक। (१५) अथराजिता।
 वि० विना व्याही। जिस (स्त्री) का विवाह न हुआ हो।

कुमारीपूजन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की पूजा जो देवीपूजन के समय होती है और जिसमें कुमारी कालिकाओं का पूजन करके उन्हें मिठात आदि दिया जाता है।

कुमार्य-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुमारी] (१) सुरा मार्ग। सुरी। राह। (२) अथर्म।

कुमारगामी-वि० [सं०] (१) कुपंभी। कुमारी (२) अथर्म।

कुमारी-वि० [सं० कुमारी] [स्त्री० कुमारी] (१) बद्धचक्रन। कुचाली। (२) अथर्म। धर्महीन।

कुमालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन प्रदेश जो वर्तमान मालवा के अंतर्गत था। इसे सौवीर भी कहते हैं। (२) उस देश के निवासी।

कुमाला-संज्ञा पुं० [देग०] एक छोटा पेड़ जो देहरादून, अथवा, पौडानागपुर, बंधई तथा दक्षिण भारत में होता है। यह २-१० फुट ऊँचा होता है और इसकी परिधि चार पाँच इंच लंबी होती है। यह जेठ अगस्त में फूलता है और इसका फल खाया जाता है।

कुमुघ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शकट के दुसुंय नामक एक योद्धा का नाम। उ०—कुमुघ, अकनन, सुसिम रद, पुमकेयु

श्रुतिकार्य । एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय ।—
तुलसी । (२) सूथर ।

वि० पुं० [सं०] [श्री० कुमुबी] बुरे मुखवाला । जिसका
चेहरा देखने में अष्टा न हो ।

कुमुद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुई । कोका । (२) लाल कमल ।

श्री०—कुमुदबंधु = चंद्रमा ।

(३) चाँदी । (४) विष्णु । (५) एक बंदर का नाम जो
राम-रावण के युद्ध में लड़ा था । (६) एक प्रकार के दैत्य ।
(७) एक द्वीप का नाम । (८) कपूर । (९) एक नाग
का नाम । (१०) आठ दिग्गजों में से एक, जो दक्षिण
परिचम कोण में रहता है । (११) विष्णु का एक
परिपद । (१२) एक केशु तारा जो कुई के आकार
का है । यह पश्चिम में उदय होता है और एक ही रात को
दिलवाई देता है । इसकी शिखा पूर्व शोर होती है । इसके
उदय होने पर दस बरस तक दुर्भिक्ष रहता है । (१३) संगीत
में एक ताल ।

वि० (१) कंजस । कृपण । (२) लोभी । लालची ।

कुमुदनी-संज्ञा स्त्री० दे० "कुमुदिनी" ।

कुमुदबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

कुमुदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुई । कोई । (२) वह स्थान
जहाँ कुमुद हो ।

विशेष—इस शब्द के साथ 'पति' याची शब्द जोड़ने से जो
समस्त शब्द बनते हैं, वे चंद्रमा का अर्थ देते हैं ।

कुमुदिनीपति-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

कुमुद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुई । (२) लाल कमल । (३)
निर्दय । घोरहम । (४) कंजस ।

कुमुदती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पद्म स्वर की चार श्रुतियों में
से दूसरी श्रुति । (२) नागराज कुमुद की भगिनी और कुश
की स्त्री ।

कुमुडिया-संज्ञा पुं० [दे०] एक छोटी जाति का हाथी ।

कुमुद-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणी ध्रुव ।

कुमुई-संज्ञा पुं० [दे०] झूल । कपट । घोखा । दगा ।

कुमुडिया-संज्ञा पुं० [हिं० कुमुड] झुली । कपटी । दगाबाज ।

कुमुद*—संज्ञा पुं० [सं० कुमुद] कुई । उ०—चीली सवै मालत
सँग भूले कमल कुमुद । बंध रही है गन गणधर्य बास परि-
मलामोद ।—जायसी ।

कुमुदनी*—संज्ञा पुं० दे० "कुमुदिनी" ।

कुमुदिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "कुमुदिनी" ।

कुम्भीत-संज्ञा पुं० [तु० कुम्भेव] (१) घोड़े का एक रंग, जो स्याही
लिपु खाल होता है । लासी । (२) वह घोड़ा जिसका रंग
स्याही लिपु खाल हो । इस रंग का घोड़ा बहुत मजबूत और
तेज होता है ।

वि० कुम्भेत रंग का ।

श्री०—श्रांशों गाँठ कुम्भेत = अन्वत चत्रु । छटा हुआ । चालाक ।
धूर्त ।

कुम्भेद-संज्ञा पुं० दे० "कुम्भेत" ।

कुम्भेडा-संज्ञा पुं० [सं० कुम्भाड, पा० कुम्भेड, प्रा० कुम्भेड] (१)

एक फलनेवाली बेल जिसके पत्ते बड़े गोल और रोपुंदार होते
हैं । पत्ते का डंठल बड़ा और पोला होता है । इसमें
बड़े बड़े घंटी के आकार के पीले फूल लगते हैं । कुम्भेड़े की
बेल बहुत दूर तक फैलती है । इसके फल गोल और बहुत
बड़े बड़े उ०—सं संर तक के होते हैं । कुम्भेड़ा दो प्रकार का
होता है, एक सफ़ेद, दूसरा पीला । सफ़ेद रंग के कुम्भेड़े
को पेठा कहते हैं । यह खाने में कुछ फीका सा होता है । इसका
योग सुरभ्या डालते हैं और इसके महीन टुकड़ों को पीठी
में मिलाकर बरी भी बनाते हैं । पीले कुम्भेड़े का गुत्ता लाल
रंग का और खाने में मीठा होता है । इसकी दो
फसले होती हैं । एक गरमी, दूसरी परसत में । गरमी का
कुम्भेड़ा ज़मीन पर और बरसात का छुपर आदि पर फैलता
है । कुम्भेड़े के फल की तराकरी होती है और फूल और पत्तों
का साग बनता है ।

पशु०—कासीफल ।

(२) कुम्भेड़े का फल ।

मुहा०—कुम्भेड़े की बतिया = (१) कुम्भेड़े का छोटा कच्चा फल ।

(२) अराक और निर्बल मनुष्य । उ०—इहाँ कुम्भेड़-
बतिया कोठ नहीं । जो सत्राँने देवत मरिजाहीं ।—तुलसी ।

कुम्भेड़ीरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुम्भेडा + री] एक प्रकार की बरी
जो पीठी में घेठ कर कुम्भेड़े के महीन महीन टुकड़े मिला कर
बनाई जाती है । बरी ।

मि० प्रा०—घालना ।—पड़ना ।

कुम्भलाना-कि० अ० [सं० कु + लाना] (१) ताज़गी का जाता
रहना । सरसता और हरापन न रहना । सुरम्भाना । जैसे—
पौधे, पत्ते, फूल आदि का कुम्भलाना । उ०—तर पर फूल
कमल पर जल-कण, सुंदर परम सुहाते हैं । अल्प काल के
बीच किंतु वे कुम्भलाना कर मिट जाते हैं ।—श्रीधर पांडक ।
(२) सुखने पर होना । (३) प्रफुल्लितरहित होना । कानि
का मलिन पड़ना । प्रमाहीन होना । उ०—(क) सुनि राज
अति अग्रिय बानी । हृदय कंप मुख-श्रुति कुम्भिलानी ।—
तुलसी । (ख) इतनी धूप में आप हो, चेहरा कुम्भलाना
हुआ है ।

कुम्हार-संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार, प्रा० कुम्भार] [स्त्री० कुम्हारी]

(१) मिट्टी के बरतन बनानेवाला मनुष्य । (२) मिट्टी के बर-
तन बनानेवाली जाति ।

कुम्भी-संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भी] एक पौधा जो पानी पर फैलता है । उ०—लोचन सपने के भ्रम भूले । जो क्षय निरास से पुनि ताही भास दि' डारे भूले । इक-टक रहत गूरा नहि' कण्ठ' पते पर हैं भूले । निदरे रहत मोहि' नहि' मानत कहत कीन हय गूले । मोते गय कुम्भी के जर ज्यों ऐसे बे निरभूले । संरयाम जलराशि परे धय रूप रंग भनुहूले ।—सूर ।

विशेष—दे० 'कुम्भी' ।

कुयोनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वद जंतुओं की कोटि । तिर्यग्योनि ।

कुरंग-संज्ञा पुं० [सं०] [रंग० कुरंग] (१) यादामी वा तामड़े रंग का हिरन । (२) मृग । हिरन ।

धौ०—कुरंगलाघुन ।

(१) बरवे हृद का एक नाम ।

संज्ञा पुं० [सं० कु + हि० रंग] (१) सुरा रंग दंग । सुरा लक्षण । (२) घोड़े का एक रंग जो लाह के ऐसा होता है । नीला । कुमैद । लखारी । (३) इस रंग का घोड़ा । कुलंग । लखारी । उ०—हरे कुरंग महुष यहू मानी । गरर कोकाह पलाह धुपांती ।—जायसी । वि० सुरे रंग का । यदुरंग ।

कुरंगलाछन-संज्ञा पुं० [सं०] चंदमा ।

कुरंगिन-संज्ञा स्त्री० [सं० कुरंग] रिकनी । उ०—चंदन मानक कुंगिन पौत्र । तेहि के पाव को रागा भोज ।—जायसी ।

कुरंगसार-संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी । सुरक । उ०—केयर कुरंग-सार रंग से लिपित देऊ दुहूँ मैं दिपनि औ दिपति जात धाती में ।—देव ।

कुरंदक-संज्ञा पुं० [सं०] पीली कटमरैया ।

कुरंद-संज्ञा पुं० [सं० कुरंद = माषिक] एक खनिज पदार्थ जो एक प्रकार का मृच्छित भलमीनस है और सिंधी की चमकीली हली के रूप में जमा हुआ मिलता है । कड़ाहें में यह हरी से कुछ ही कम होता है । इसके पूर्ण को लाग आदि में मान फा हथियार तैज काने की साज बनाते हैं । शक्तिरुद्ध शयस्या में बु'बक आदि से मिला हुआ जो दानेदार कुरंद मिलता है यह मानिक रेत कहलाता है जिससे सोनार सोने धाँदी के गहनों पर जिजा देते हैं । अधिक क्रांतियाले जो कुरंद मिलते हैं वे रत्न माने जाते हैं और रंग के अनुसार उन्हें मानिक (लाल), नीलम, पुषारम, गोमेद आदि कहते हैं ।

संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जो पेतों के किनारे और इपर उपर उगता है । इसमें सफ़ेद रंग के फूल खगते हैं । यह औषध के काम में आता है । वैद्यक में इसे शक्तिदीपक, रुचिकारक, शीतबद्धक और मृदुरूप को दूर करनेवाला माना है ।

कुरंदक-संज्ञा पुं० [सं०] पीली कटमरैया ।

कुरंवा-संज्ञा पुं० [देग०] मेड़ की एक जाति जो झील झील में छोटी होती है और जिसके बाल नीचे से काले पर सिरों पर सफ़ेद होते हैं । इसका मांस अच्छा और स्वादिष्ट होता है ।

कुरकनी-संज्ञा स्त्री० [देग०] घोड़े या गदहे के चमड़े का थगना भाग जिसका कीमुक्त नहीं बन सकता ।

कुरका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सलई । पीड़ । (२) दक्षिण का एक देश जिसे धप कुर्ग कहते हैं । (३) एक नगर जो कुर्ग देश में ताम्रपर्णी नदी के किनारे था और जहाँ कैण्वन प्राचार्ये शङ्कोर का जन्म हुआ था ।

कुरकी-संज्ञा स्त्री० दे० 'ककी' ।

कुरकुंड-संज्ञा पुं० [देग०] एक घास जिसे रीढ़ा और कनखुरा भी कहते हैं । यह आगम और वंशाङ्ग में होती है । इसका रेशा बहुत दृढ़ और भारीक होता है और जाल कपड़ा आदि बनाने के काम में आता है ।

विशेष—दे० 'रीढ़ा' ।

कुरकुट-संज्ञा स्त्री० [सं० कुट = कूटना] किपी वस्तु का छेदा टुकड़ा ।

कुरकुटा-संज्ञा पुं० [सं० कुट = कूटना] (१) टुकड़ा । किसी वस्तु का कूटा हुआ रवा । (२) रोटी का टुकड़ा । उ०—कैसे सद्य खिनहि' खिन भूँखा । कैसे खाव कुरकुटा रखा ।—जायसी ।

कुरकुर-संज्ञा पुं० [वत०] खरी वस्तु के दफ कर टूटने का शब्द । उ०—पापइ दांत के नीचे कुरकुर बोजना है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—बोलना ।

कुरकुरा-वि० [हि० कुरकुर] [स्त्री० कुरकी] खरा और करारा जिसे तोड़ने पर कुरकुर शब्द हो ।

कुरकुराहट-संज्ञा स्त्री० [हि० कुरकुर] कुरकुर शब्द होने का भाव । कुरकुरी-संज्ञा पुं० [देग० वत०] (१) घोड़े की पूर यीमारी जिस में उसका पागना पेशाव बंद हो जाता है और पेट फूल आता है । (२) पतली मुलायम हड्डी, जैसे—काल की ।

कुरगवा-संज्ञा पुं० [?] एक छोटी घापी जिससे दर्जेबंदी तथा कारनिस आदि का भारीक काम किया जाता है ।

कुरर्वा-संज्ञा पुं० [सं० कर्ष] करकुर पत्ती । उ०—(क) इहि विधि रोदति जाति निप, कुरच सरिस नाम माहि । हे रघुवर दे प्राथपति कहेि भय राखहु नाहि । (ख) बारहि' बार विद्याप करि, कुरच सरिस रघुवाइ । तब खगि में सिन्धन सहित पहुँचेउ तेहि बन धाइ ।—मधुचूदन दास ।

कुरविल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] कड़वा ।

कुरड़ा-संज्ञा पुं० [देग०] [सं० कुरदा] करबी और सुरकी जाति के घोड़ों के जोड़े से बनर एक दोगली जाति का घोड़ा । इस जाति के घोड़े भार में मिलते हैं ।

कुरना-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुरनी] एक धरमना जो मि

डाल कर पहना जाता है और जिसमें सामने छाती के नीचे किसी प्रकार का जोड़ या परदा नहीं होता।

कुरती—संज्ञा स्त्री० [हि० कुरता] (१) छियों का एक पहनावा जो फुहरी की तरह होता है। (२) (सोमार लोगों की चोली में) छी।

कुरथी—संज्ञा स्त्री० दे० "कुलथी"।

कुरन—संज्ञा पुं० दे० "कुरंड"।

कुरना—क्रि० प्र० [हि० कुर = दे] (४) डेर लगना। कुरा लगना।

उ—(क) वैभव विभव द्रष्टानंद की अषार धार कौशल की कंग एक बारही कुरे परी।—रघुनाज। (ख) पारावार, पूरग, अषार परबल रासि, जसुदा की कुरे एक बार ही कुरे परी।—देव।

सेयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(२) दे० "कुरलना"। उ०—सारी सुभा जो रहचह करहीं। कुरहिं परेया थी करवरहीं।—जायसी।

कुरवक—संज्ञा पुं० [सं०] कटसरैया।

कुरवनही—संज्ञा स्त्री० [हि० कोर + वना] बड़ियों का एक थोड़ा जो खाली के आकार का होता है और जिससे बने की कसर डील कर साफ करते हैं। इसमें दमन नहीं होता।

कुरवान—वि० [सं०] (१) जो च्योड़ावर बिया गया हो। जो बलिदान बिया गया हो।

मुहा०—कुरवान करना = न्योड़ावर करना। वारना। उ०—चंचल चार विशाल विवि लोचन मोचन मान। चितपत दिशि कय देखिहैं मनके करि कुरवान।—विश्राम। कुरदान जाना = न्योड़ावर होना। यनि जाना। कुरवान होना = (१) न्योड़ावर होना। (२) मरना। प्राण देना।

कुरबानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी देवता आदि के लिये किसी जीव को बलिदान करने की क्रिया। कुरवान करने का काम।

क्रि० प्र०—करना।—चढ़ाना।—देना।

कुरमा—संज्ञा पुं० [सं०] कुगा। कुडूव। परिवार।

कुरमा का बाँक—संज्ञा पुं० [दे०] वह झाड़ी लकड़ियों जो जहान् के नीचे श्रद्ध की ओर शहतीरों के बीच में उनके जकड़े रहने के लिये लगाई जाती हैं। (लश०)

कुरर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिद्ध की जाति का एक पक्षी। (२) करकूल। मंत्रिक।

कुररा—संज्ञा पुं० [सं० कुरर] [स्त्री० कुररी] (१) करकूल। मंत्रिक। उ०—छत्र विष्ट पट पटु पिक डाढ़ी। कुरर नकीच करत पुनि गाढ़ी।—देव। (२) टिटिहरी। उ०—(क) लै कै कंत भा कुररा लोपी। कटिन बिछोह जियहिं किमि गोपी।—जायसी। (ख) लै दक्षिन् दिसि गयो गुसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं।—तुलसी।

कुररी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शायी छंद का एक भेद जिसमें चार गुरु और वनचास जगु होते हैं। (२) कुररा का छो लिंग। दे० "कुररा"।

कुरलना—क्रि० प्र० [सं० कलन वा कुरव, हि० कुर] मजुर स्वर से पठियों का बोलना। उ०—(क) कुरलहिं सत्स करहिं हुलासा। जीवन मरन सु एकहु पासा।—जायसी। (ख) कौतुक फेल करहिं सुख नासा। पदहिं कुरलहिं जनु सर हंसा।—जायसी।

कुरला—संज्ञा पुं० दे० "कुला"।

कुरव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वृक्ष जिसके फूल लाल होने हैं। लाल कुरवया। कुरवक। मधुवा। लाल फूल की कटसरैया। उ०—यह बकुल कदंब पनल रसाल। कुसुमित तरनिकर कुरव समाल।—तुलसी (२) मफेद मदार। आक। (३) मियार। (४) जिसका स्वर कर्णकटु हो। कर्कश स्वरयान।

कुरवक—संज्ञा पुं० दे० "कुव" (१)।

कुरवा—संज्ञा पुं० [सं० कुरवक] कटसरैया। [हि० कुटव] लकड़ी का एक वर्तन जो थल मापने के काम में आता है। यह एक सेर या होता है।

कुरवारना—क्रि० सं० [सं० कर्त्तन] खोदना। करोदना। खरोचना। उ०—(क) राधा हरि की गरव गहीली। मंद मंद गति मत मतंग ज्यों श्रंग श्रंग सुल पुन भरीली। पग है चलति पटके रहे ठाड़ी मान परे हरि के रस गीली। धरनी नंद चरनन कुरवारति सौमिन भाग मुहाग खहीली। नेक नहीं पिय ते कहुं विधुरनि ताते नादिन काम दहीली। सूर सरी पूर्व यह कहें श्राउ भई हृद भेद पहीली।—सूर। (ख) कौनों थिरिकि बैठे तेहि ठारा। कौनों कली केल कुरवारा।—जायसी।

कुरबंद—संज्ञा पुं० दे० "कुरबंद"।

कुरसथ—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की मैली खांड। कुरसा—संज्ञा पुं० [दे०] एक वृक्ष जो बहुत शीघ्र बढ़ता है और देखने में बहुत थच्छा। मालूम होता है। इसकी लकड़ी लाल रंग की और मजबूत। होती है और मकान और पुल के बनाने में काम आती है। यह कमायूँ, नीलगिरि, अथप, वेगाल, आसाम और मद्रास में होता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० कुलिय] एक प्रकार की बड़ी मछली। कुरसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की चौकी जिसके पाद कुछ ऊंचे होते हैं और जिसमें पीछे की ओर सहारे के लिये पटरी या इसी प्रकार की और कोई चीज लगी रहती है। किसी किसी में हाथों के सहारे के लिये दोनों ओर दो लकड़ियाँ भी लगी रहती हैं। यह केवल एक आदमी के बैठने योग्य बनाई जाती है।

विशेष—कुरसी प्रायः लकड़ी की बनती है और इसमें बैठने और सहारा लगाने का स्थान दंत से बिना या चमड़े आदि से मड़ा होता है। कभी कभी पथर लोहे या किसी दूसरी

धातु से भी कुरसी बनाई जाती है। यह कई प्रकार और प्रकार की होती है।

धा०—धारम कुरसी = एक प्रकार की बड़ी कुरसी जिस पर आदमी बैठ सकता है।

(२) यह चक्करा जिसके ऊपर इमारत या इस्ती प्रकार की धारा कोई चीज बनाई जाती है। यह आस पास की भूमि से कुछ ऊँचा होता है और पानी सीढ़ आदि से इमारत की रक्षा करता है। (३) पीढ़ी। पुस्त।

धा०—कुरसीनामा।

(४) एक चौकोर तायीज जो हमले के बीच में रहती है। चौकी। उत्पत्ती। (५) नाव के किनारे किनारे की तख्ताबंदी। जहाज में इस्ती तख्ताबंदी पर नीचे का पाल बँधा रहता है। (६) जहाज के मस्जल के ऊपर की ये धाड़ी तिरछी लकड़ियाँ जिन पर सड़े होकर महाद पाल की रस्सियाँ तानते हैं।

कुरसीनामा—संज्ञा पु० [क०] वह पत्र जिसमें किसी की वंश-परंपरा लिखी हो। वंशवृक्ष-राजरा। पुरतनामा।

कुरा—संज्ञा पु० [क० कुरा] वह गाँव जो पुराने ज़रम में पड़े जाती है। इसमें पीव जमा रहता है और नामूर हो जाता है। [सं० कुरा] कटसरैया। उ०—उरे की ढाल में अंचल उलका है।—जयप्रसिंह।

कुराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुराई] बुरा रास्ता। तंग और नीचा ऊँचा रास्ता। उ०—कुराई कटक काँकरी कुराई। कटक कटोर कुबल्लु कुराई।—गुलसी।

संज्ञा स्त्री० [देग०] पाँव में ढालने का काठ।
कुरान—संज्ञा पु० [क०] अरबी भाषा की एक पुस्तक जो मुसलमानों का धर्मग्रंथ है। उनका विश्वास है कि ईश्वर ने इस ग्रंथ के वाक्यों को भिन्न भिन्न काल में जियरहल के द्वारा सुहम्दद साहब के पास भेजा था। इस ग्रंथ में तीस भाग हैं जिन्हें "पारा" कहते हैं।

विशेष—मुसलमान लोग आदर के लिये कुरान के साथ "शरीफ़" "मजीद" आदि शब्द भी जोड़ देते हैं।

कुरानी—वि० [हिं० कुरान + ई (अप०)] कुरान पर विश्वास करनेवाला। मुसलमान।

कुराय—संज्ञा स्त्री० [सं० क० + क० रा] राते का ऊँचा नीचा स्थान। गड्ढा। खदरा। दे० "कुराई"। उ०—राम कहत चलु राम, कहत चलु राम कहत चलु भाई रे। काँट कुराय लपेटत लोयनि ठाँवति ठाँव यन्माऊ रे। जस जस चलयि वृत्ति तस तस निज वासुन भेट लगाऊ रे।—गुलसी।

कुराल—संज्ञा पु० [देग०] एक रूप का नाम। यह हिमालय के उत्तर-पश्चिम विभाग में शिमला, गढ़वाल और कनाऊँ आदि स्थानों में होता है। इसमें फलियाँ लागती हैं।

कुराह—संज्ञा स्त्री० [सं० क० + क० रा] [हिं० कुराही] कुमारी। पुरी राट। बुराय राम।

कुराह—संज्ञा पु० [सं० केशवराज] शेर। गुलगवाड़ा। कोलाहल। उ०—कुहकहिँ मोर सुहावन लागे। होय कुराह बोलहिँ काम।—जायसी।

कुराही—वि० [हिं० कुराह + ई (अप०)] कुमारी। घटचलन। उ०—कटिल कुराही कलदोषी सो कलंक भरो कुमति माने मैं शनि महामदपर है।—घुनाय।

संज्ञा स्त्री० बटचलनी। बुराचार।
कुरिंद—संज्ञा पु० [?] दरिद्र। (हिं०)।

कुरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुरिं वा कुरिका] (१) कूम की भेषड़ी। मंडई। कुटी।

क्रि० प्र०—ढालना।—पड़ना।—झुना।

(२) बहुत छोटा गाँव। [हिं० कुरिया] (१) डेर। बोस। गाँज। (२) गव के शेरों को जूरी निकलाने के लिये तले ऊपर रखना।

कुरियाल—संज्ञा स्त्री० [सं० क०] चिड़ियों का मीज में बैठकर पंख खुलाना वा झड़झाना।

मुहा०—कुरियाल में आना = (१) चिड़ियों का आनंद में होना। (२) मीज में आना। आनंद वा उमंग में होना। कुरियाल में गुलेला लगना = रग में भंग होना। आनंद में विभ्र पड़ना।

कुरिल्ला—संज्ञा पु० [सं० कुरा] जूना बनानेवाला वा चमड़े का कारखाने करनेवाला चमार।

कुरी—संज्ञा पु० [सं०] (१) चेना नाम का अन्न। (२) अरहर की फलियाँ।

० [सं० कुरा] वंश। धराना। खानदान। उ०—(क) भइ धाराँ पतुमावति चली। छुत्तिस करि भइ गोहन भजी।—जायसी। (ख) नित नव मंगल काँसलपुरी। हरपित रहहिँ लोग सब कुरी।—गुलसी।

[देग०] कोवह।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरा = डेर, माग] विभाग। संद। टुकड़ा। मुहा०—कुरी कुरी होना = टुकड़े टुकड़े होना। उ०—जाके रूप धारो रंभा रति बरखसी शची हृषी मान मैनका का हँ गयो कुरी कुरी।—खुनाय।

कुरीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुरी रीति। कुप्रथा। (२) कुचाल। कुर—संज्ञा पु० [सं०] (१) वैदिक आर्यों का एक कुल। (२) एक प्राचीन देश जो दो भागों में विभक्त था, उत्तर कुर और दक्षिण कुर। दक्षिण कुर हिमालय के दक्षिण में था जिसमें पांचालादि देश थे और उत्तर कुर हिमालय के उत्तर में था जिसमें पारस तिब्बत आदि थे। इसको लोग स्वर्ग भी कहते थे।

(३) एक सोमवंशी राजा का नाम जिसके वंश में पांडु

और धतराष्ट्र हुए थे। (४) कुरु के वंश में उपर्युक्त।
(२) कर्त्ता। (६) भात। पका हुआ चावल।

कुरुप्रा—संज्ञा पु० [सं० कुरुव] अन्न मापने का एक मान जो दस छटाक के बराबर होता है।

कुरुई—संज्ञा स्त्री० [सं० कुरुव] बांस या मूँज की बुनी हुई छोटी बलिया। मानी।

कुरुक्षेत्र—संज्ञा पु० [सं०] एक बहुत प्राचीन तीर्थ जो सरस्वती नदी के बाएँ किनारे पर थायले और दिल्ली के बीच में है। श्राव्येद के कई ब्राह्मणों में लिखा है कि प्राचीन काल में ऋषि लोग इसी स्थान पर यज्ञादि किया करते थे। अथ तक यहाँ एक बहुत पवित्र और प्राचीन सरोवर के चिह्न बच मान हैं, जिसका नाम श्राव्येद में 'मर्यदावत' लिखा है। किसी समय में इसने शतर्गत अनेक बड़े और पवित्र तीर्थ थे, जिनके कुछ चिह्न अथ तक पाए जाते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि यहाँ के ब्रह्मसर नामक सरोवर में परशुराम ने स्नान करके अपने शायके राशिय इत्या के पाप से मुक्त किया था और महाराज पुरुवर ना ने इसी के किनारे विजुद्धे हुई उर्वरी को फिर से पाया था। चंद्रवंशी राजा कुरु इन्हीं सरोवरों में से किसी एक के तट पर बहुत दिनों तक तप करके गुप्त हुए थे, तभी से इसका नाम धर्म सेय और कुरुक्षेत्र पड़ा। महाभारत के प्रसिद्ध युद्ध के सिया इस स्थान पर और भी अनेक बड़े बड़े युद्ध हुए थे। पीछे से यहाँ पर स्थाणु नामक महादेव की एक मूर्ति स्थापित हुई और स्थाणुवीश्वर (धानेश्वर) नामक नगर बसा, जहाँ राजा पुण्यभूति ने यद्दने नामक राजवंश की प्रतिष्ठा की जिसमें प्रसिद्ध महाराज हर्षवर्द्धन हुए। ग्रहण्य, पर्व यादि ऋषयों पर अथ भी यहाँ बहुत बड़े बड़े मेले होते हैं।

कुरुक्षेत्रा—संज्ञा पु० [सं० कुरुक्षेत्र] कुरुक्षेत्र। उ०—निंदक न्याय गहन कुरुक्षेत्र। अरपै नारि सिंगार समेत। चांसठ कुर्था याउ खुदयावे। तवहूँ निंदक नरकहिँ जावे।—कधीर।

कुरुक्षेत्र—वि० [सं० कु०+क्ष० रस] मुँह थनाए हुए। नाराज। कुपित। उ०—(क) धकित सुमन दग थरल उनीदे कुरुक्षेत्र फटाफट मुख थोरी। संजन दृग थकुलात घात वर श्याम व्याघ्र थांधे रति थोरी।—सूर। (ख) मिलतहिँ कुरुक्षेत्र चकता थो निरखि कीन्हों सरजा, सुरेस ज्यों दुचित वनराज को।—भूपय।

कुरुजांगल—संज्ञा पु० [सं०] एक प्राचीन देश जो पांचाल देश के पश्चिम में था।

कुरुल—संज्ञा पु० [सं०] बाल की लट जो माथे पर बिलरी हो। संज्ञा पु० दे० "कुरुं"।

कुरुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की गमक। (संगीत)।

कुरुवर्द्ध—संज्ञा पु० [सं०] (१) भोग्या। (२) काच लवण। (३) उरद। (४) मानिक। (५) द्रवण्य। (६) ईं गुर। सिंगरक।

कुरुवित्य—संज्ञा पु० [सं०] (१) पप्रराग मयि । मानिक। (२) यनकुलधी।

कुरुप—वि० [सं०] [स्त्री० कुरुप] वेदसूक्त। पुरी शकल का। वेडाल। वेडंगा।

कुरुपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बदसूरती। कुरूप का भाव।

कुरेदना—क्रि० उ० [सं० कुरेन] सुरचना। सरोचना। कुरेदना।

उ०—(क) कमी कमी सौर के फाटने से एक सामान्य धाता सा पढ़ जाता है और सुई के कुरेदने के से दृग पढ़ जाने हैं।—दुर्गाप्रसाद मिश्र। (ख) पणियों का कुरेदा हुआ...
.....—लक्ष्मण सिंह।

कुरेदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरेदना] लकड़ी या लोहे यादि का एक चीज़ार जो भट्टे की भाग, ढेर यादि के कुरेदने के काम आता और लंबा, सुकीला, और छड़ के आकार का होता है।

कुरेमा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुरम = बधा] एक प्रकार की गाय जो साल में दो बार बधा देती है।

कुरेर—संज्ञा पु० [सं० कुरुनेत्र] कुलेल। धामोद प्रमोद। उ०—
हंसहिँ हंस था करहिँ थुरेरा। सुनहिँ रतन मुक्ताहल
हेरा।—जायसी।

कुरेलना—क्रि० सं० [हिं० कुरेना] खेदना। कुरेदना। संयोग क्रि०—दालना।

कुरेलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरेलना] दे० "कुरेदनी"।

कुरेन—संज्ञा पु० [हिं० कुरा = भाग या ढेर] [स्त्री० कुरेन] भाग पानेवाला। हिस्सेदार।

कुरेना—संज्ञा पु० [हिं० कुरा] [स्त्री० कुरेना] ढेर। राशि।

कुरैया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुरुव] एक वृक्ष जो जंगलों में होता है और जिसकी पत्तियाँ लंबी और लहरदार होती हैं। इसमें लंबे और सुगंधित फूल लगते हैं जो सफ़ेद, लाल, पीले और काले या नीले रंग के होते हैं। फूल के रंगों के विचार से ही इसके चार भेद हैं जिनके गुण भी वैदिक शास्त्र में उल्लेख पाए जाते हैं। सफ़ेद फूल की कुरैया का बीज मीठा हृदयक, और काले फूल की कुरैया का बीज कटु हृदयक कहलाता है। यह कर्ला, दीपक और हलका होता है और ब्यासीर, अतिसार और संमथ्य को दूर करता है। यह धरसात में फूलता है और देखने में बहुत भला मालूम होता है।

पर्या०—कुट्टक। यसक। गिरिमहिका। वरतिक। पांडुर। कुटुक। कटुक। कौटका। तिक्तक। रक्तनाशक। वृषक। पूटन। काही। कालिंग। प्राहुप्य। यषफल। संभाही। प्राहुपण्य। महागंध। इंदु। कीद।

कुरीना—क्रि० सं० [हिं० कुरा = ढेर] ढेर लगाना। दूर लगाना।

कुरीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरा] ढेर। राशि।

कुर्क-वि० [वृ० कुर्क] [संज्ञा कर्की] धृत् ।

धा०—कुर्कभमीन । कुर्कनामा ।

कुर्कभमीन—संज्ञा पुं० [वृ० कुर्क + भा० भमीन] यह सरकारी कर्मचारी जो अदालत के आशुनुसार जायदाद की कुर्की करता है ।

कुर्कनामा—संज्ञा पुं० [वृ० कुर्क + भा० नामा] अदालत का वह परवाना जिसके अनुसार कुर्कभमीन किसी की जायदाद की कुर्की करता है । कुर्की का परवाना ।

कुर्की—संज्ञा स्त्री० [वृ० कुर्क + ई० (भय०)] देना चुकाने या भागो हुए अथवापी को अदालत में हाज़िर कराने के लिये कर्जदार या अथवापी की जायदाद का सरकार द्वारा जप्त किया जाना । विशेष—कभी कभी महाजन के विशेष कारण दिखाने पर कर्जदार की जायदाद फँसला या छिपी होने से पहले ही इस लिये जप्त कर ली जाती है कि जिसमें वह जायदाद इधर उधर न कर सके । इसे कभी कुर्की कहते हैं ।

मुहा०—कुर्की उठाना = कुर्क की हुई जायदाद को छोड़ देना ।

कुर्की बैधाना = कुर्क करना । जप्त करना । कुर्की ले जाना = कुर्कनामा लेकर विधि की जायदाद कुर्क करने के लिये जाना ।

कुर्ती—संज्ञा पुं० दे० "कुरता" ।

कुर्ती—संज्ञा स्त्री० दे० "कुरती" ।

कुर्मी—संज्ञा स्त्री० [दे०] जहान का रस्ता । आलात । [बश०] ।

कुर्पोसक—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेणिया । घौली ।

कुर्पोनी—संज्ञा स्त्री० [भा०] दे० "कुर्वानी" ।

कुर्मी—संज्ञा पुं० [सं० कुर्व, प्रा० कुर्वण] एक जाति जो खेती करती है । कुनयी । कहीं कहीं इस जाति के लोग अपना परिचय "गृहस्थ" कह कर देते हैं ।

कुर्मुक—संज्ञा पुं० [सं० क्रुमुक] सुँपारी । [डि०]

कुर्ना—क्रि० प्र० दे० "कुरलना" ।

कुर्नी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) देगा । परदा । पट्टा । सुहागा ।

(२) डरभरी हड्डी । दे० "डरभरी (२)" ।

कुर्से—संज्ञा पुं० [प्र० कुर्से = गोल टिकिया] (१) गोल टिकिया ।

(२) अरब देश का चांदी का एक सिका जो लगभग छेड़ आने मूल्य का होता है । (३) चीन देश का सोने या चांदी का एक सिका जो नाव के आकार का होता है और जो ताल में पचास या सौ गोले और इससे कम या अधिक भी होता है ।

[दे०] एक प्रकार की घास जिसकी जड़ लंबी, गरम और मजबूत होती है और राखी घटने और थोड़े चमाने के काम में आती है । इसकी खेती केवल जड़ के लिये ही होती है ।

कुर्सी—संज्ञा स्त्री० दे० "कुरसी" ।

कुर्सीनामा—संज्ञा पुं० दे० "कुरसीनामा" ।

कुर्लक—संज्ञा पुं० [भा०] (१) एक पक्षी जिसका तिर खाक और

वाकी शरीर भटमैले रंग का होता है । इसकी गर्दन लंबी होती है । यह लकड़क से बड़ा होता है और पानी के किनारे रहता है । उ०—तीतर, कपेत, पिक केकी, कोक, पारावन, कुर, कुलंग, कलहंस गदि लाये हैं ।—केशव ।

(२) मुर्गा । कुब्ज । (३) लंबी टांग का घादमी । (व्यंग्य)

कुर्लज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० "कुर्लजन" ।

[दे०] घोड़े का एक दोष जिसमें थलते समय उभरी टांगों धारास में टकराती हैं ।

कुर्लजन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अदक की तरह का एक पौधा जो गरमा, मलायादीप और चीन आदि में होता है । इसकी रेशोदार जड़ बाहर बहुत भेजी जाती है । यह कटु, गरम और ईर्ष्य होता है तथा मुख की दुर्गंध को दूर करती है । कुर्लजन के दो भेद हैं, बड़ा कुर्लजन और छोटा कुर्लजन ।

पर्या०—कुर्लज । कुर्लज । गंधमूल ।

(२) पान की जड़ या छंडल । इसे लोग खाली या पान की तरह चूना कत्या आदि मिला कर खाते हैं । इससे गला खुल जाता है ।

कुल्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंश । घराना खानदान ।

धा०—कुलकानि । कुलपति । कुलकलंक । कुलांगार । कुलनिलक ।

कुलभूषण । कुलकंटक, आदि ।

मुहा०—कुल वक्षगना = (१) वंशविराट्पत्नी वषांन करना ।

(२) बहुत गांतिया देना ।

(३) जाति । (४) समूह । समुदाय । कुंड ।

जैसे—कविकुलभूषण । कविकुलतिलक, आदि (५) भयन । घर । मकान । जैसे—गुरुकुल । ऋषिकुल, आदि । (६) तंत्र के अनुसार प्रकृति, काल, आकार, जल, तेज, वायु, आदि पदार्थ । (७) वाममार्ग । कौल धर्म । (८) संगीत में एक ताल जिसमें इस प्रकार १२ ताल देते हैं । हुत, लघु, हुत, लघु, हुत, लघु, हुत, हुत, हुत, लघु, हुत, हुत, हुत, हुत और लघु ।

वि० [प्र०] समस्त । सब । सारा । पूरा । तमाम ।

धा०—कुल जमा = सब मिला कर । केवल । मात्र ।

कुलकंटक—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी कुचाल में अपने बंधवालों को दुःखी करनेवाला ।

कुलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकर से बुद्धा नाम का वृष । (२) कुचिला । (३) परवल या उमकी जता । (४) हरा म्यां ।

(५) दीपक । (६) (संस्कृत में) गंध सिलने का एक वंग ।

कुलकना—क्रि० प्र० [हिं०] निराकना] आनेदित होना । सुर्गा से उड़लना ।

कुलकर्सी—संज्ञा पुं० [सं०] बंध का आदिपुरुष या संव्यारक । कुलपति ।

कुलकलंक—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी कुचाल से अपने बंध का कीर्ति में धब्दा लगानेवाला ।

कुलकालि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुल + कालि = मथ्यर] कुल की मथाँदा। कुल की लज्जा। उ०—छूट्टे लाज डगरिया धौ कुलकालि । करत जात धरधवा परि गइ यानि ।—रहीम ।

कुलकीर्ति—संज्ञा स्त्री० [वं०] चिलम ।

कुलकुंडलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक शक्ति, सारा संसार जिसका एक शंख है। इसकी महिमा “महूति” या “शक्ति” के समान ही कही जाती है और इसकी उपासना होती है।

कुलकुलाना—कि० अ० [वृत्०] कुल कुल शब्द करना।

मुहा०—शान्ति कुलकुलाना = अत्यंत भूखा होना। उ०—पेट की शान्ति कुलकुल रही थीं।—दुर्गाचरित्तनी।

विशेष—जब पेट गूली होता है तो शान्ति से कुलकुल शब्द निकलता है।

कुलक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घुरा लक्षय। घुरा चिह्न। (२) कुचाल। यदचलनी।

वि० [सं०] [स्त्री० कुलक्षय] (१) घुरे लक्षयवाला। (२) घुराचारी।

कुलक्षयी—संज्ञा पुं० [सं० कुलक्षय + ई (प्रत्यय)] (१) घुरे लक्षयवाला। (२) घुराचारी।

संज्ञा स्त्री० (१) घुरे लक्षयवाली। (२) घुराचारिणी।

कुलचंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी।

कुलचा—संज्ञा पुं० [सं० कुलचा] (१) एक प्रकार की खमीरी रीठी जो खूब फूली होती है। (२) तंबू या खेमे के डंडे के ऊपर का गोला लट्टू। † (२) दिना कर इकट्ठा किया हुआ रपया।

कुलच्छन—संज्ञा पुं० दे० “कुलक्षय”।

कुलच्छनी—संज्ञा पुं० दे० “कुलक्षय”।

संज्ञा स्त्री० दे० “कुलक्षय”। उ०—(क) विहतर यह है कि राजा से कहिये, यह कुलच्छनी है आपके योग नहीं।—लल्लू। (ख) पति को दुःख देनेवाली में कुलच्छनी सनी है।—उत्पलसिंह।

कुलज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुलजा] (१) उत्तम वंश-में उत्पन्न पुत्र। (२) परधल।

कुलजा—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की जंगली भेड़ जो पामीर और गिलगित्त में होती है। यह खाल टौल में बड़ी होती है। कुचकार।

कुलजात—वि० [सं०] वंश में उत्पन्न। वंशोद्भव।

कुलज—वि० [सं०] [स्त्री० कुलजा] यदचलन। बहुत क्रियों से प्रेम रखनेवाला। व्यभिचारी। उ०—श्याम सारी कारेहु ते करे। निन सों प्रीति कहा कही की बड़े माग छानि मिधारे। लोक चतुर्दश विभव कहत हैं पनुमय जव न्यारे। सरयव त्यागि विहंग वड़े ज्यों फिरि पाये न निहारे। सब चितचोर भोर

प्रतवासिन प्रेम नेक प्रत टारे। लै सरयव नहीं मित्रे सूर प्रभु कहियन कुलज विचारे।—सूर।

कुलटा—वि० स्त्री० [सं०] बहुत पुरुषों से प्रेम रखनेवाली (स्त्री) दिनाज। यदचलन। व्यभिचारिणी। पुंश्रुती।

पर्या०—पुंश्रुती। स्त्रीरिणी। पांशुना। व्यभिचारिणी।

संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जो बहुत पुरुषों से प्रेम रखती हो।

कुलतंतु—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसे षोड़ और कोई दूसरा सहारा उसके कुलवालों को न हो।

कुलतारन—वि० [सं० कुल + हिं० तारन] [स्त्री० कुलतानी] कुल को तारनेवाला। कुल को पवित्र करनेवाला। उ०—सुतहिं कबो तैं भो कुलतारन। मोहिं दरसारी बालन-तारन।—रघुराज।

कुलत्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुलधी। कुरधी।

कुलरिथका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलधी। कुरधी।

कुलथ—संज्ञा पुं० [सं० कुलथ] कुलधी।

कुलधी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलथ वा कुलरिथका] उद की तरह का एक मोटा श्रब जो प्रायः बरसात में ज्वार के साथ बोया जाता है। इसकी बेल भी उद की भांति पृथ्वी पर फैलती है पर इसकी पत्तियाँ पंजे के आकार की होती हैं। फलियाँ गुच्छों में लगती हैं और एक एक फली में तीन तीन चार चार दाने निकलते हैं। दाने उद ही के से होते हैं पर कुछ चिरटे और भिन्न भिन्न रंगों के, जैसे—सूरे, लाल, काले, हलके हैं। कुलधी घोड़ों और चौपायों को बहुत खिलाई जाती है। गुरीय लोग इसकी दाज भी खाते हैं। यह कद्वर मानी गई है। बैच लोग इसे धानु-शोधने के काम में लाते हैं। बैचक में इसे रूखी, कसैली, गरम, कट्ट कर देनेवाली तथा रक्त-पित्तकारिणी मानते हैं।

पर्या०—ताम्रबीज। श्वेतबीज। सिनेर। काजवृत्त। ताम्रवृत्त।

कुलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुलदेवी] वह देवता जिसकी पूजा परंपरा से किसी कुल में होती आई हो। ऐसे देवताओं की पूजा विवाह आदि उत्सवों के समय वा वार्षिक नवरात्र आदि के दिनों में होती है। कुलदेवता।

कुलदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वह देवता जिसकी पूजा किसी कुल में परंपरा से होती आई हो। कुलदेव।

कुलदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह देवी जिसकी पूजा किसी कुल में परंपरा से होती आई हो।

कुलधर—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। घेडा।

कुलधारक—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। घेडा।

कुलन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलना] दूद। टीस। जैस,—दांतों की कुलन।

कुलनक्षत्र—संज्ञा पु० [सं०] संघ के अनुसार भरणी, रोहिणी, पुष्य, मघा, उत्तराषाढा, तुनी, चित्रा, त्रिशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, ध्रुवण, उत्तरभाद्रपद कुलनक्षत्र कहलाते हैं ।

कुलना—संज्ञा पु० [हि० कल्पना] टीस मारना । दूद करना । जैसे,—आज कल दाँत कुल रहे हैं ।

कुलनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाम मार्ग या कीलधर्म के अनुसार वे स्त्रियाँ जिनकी पूजा कौल लोग चक्र में करते हैं । वे नव प्रकार की होती हैं—नटी, कापालिनी, बेरया, घोविन, नाहन, प्राणायी, शूद्रा, अहीरिन, और मालिन ।

कुलनार—संज्ञा पु० [देग०] एक खनिज पदार्थ या पत्थर जो सफ़ेद या हल्के सुरमाई लिए होता है । इसे सिलखड़ी, लंगजाहत, सफ़ेद सुरमा, और कर्पूर-खिलासित भी कहते हैं । इसे भस्म करके गन्ध या ग्लास्टर आर्क परिस बनाते हैं । इस भस्मपूर्ण में यह गुण होता है कि यह पानी पाने से लस पकड़ने लगता है और श्वेत में सूर्यने पर उसके सव कण मिल कर फिर ठोस पत्थर हो जाते हैं । इसकी शक्ति, खिलौने, दलेचट्टे टाडू के साथे तथा और बहुत सी चीजें बनती हैं । इससे शरीरो भी जोड़ते हैं । कुलनार भद्रास, पंजाब, राजपूताना तथा भारतवर्ष के और कई भागों में मिलता है । जोधपुर और बीकानेर में इसकी बड़ी बड़ी खानें हैं, और इससे बहुत से काम होते हैं । इससे दिफ़्फ़ी की जालियाँ वने कीराह के साथ बनाते हैं । गन्ध या गोल कुलनार की दो बराबर पहियाँ लीते हैं और उनमें एक ही नक्षत्री की जालियाँ फाटते हैं । फिर एक पट्टी की जालियाँ पर रंग विरंग के शरीरो बैठा कर ऊपर से दूसरी पट्टी भी सटीक जमा कर बांध देते हैं । इस प्रकार दोनों पहियाँ मिल कर एक हो जाती हैं और फटाव के बीच रंग विरंग के शरीरो दिखाई पड़ते हैं । धागरे, खाईर, धामेर आदि के शीशमहल इसी गन्ध की सहायना से बने हैं । कुलनार या सिलखड़ी का चूरा खेतों में भी खाद के लिये डाला जाता है । गोल की खेती के लिये इसकी खाद बड़ी उपयोगी होती है । मेराय, खाने के लिये भी हकीम और वैद्य सिलखड़ी का चूरा दूध के साथ मिलाते हैं ।

कुलपति—संज्ञा पु० [सं०] (१) घर का मालिक । मुखिया । सरदार । (२) यह श्रम्याक जो विद्यार्थियों का भरण पोषण करता हुआ उन्हें सिखा देवे । शास्त्रानुसार बड़े ऋषि जो दश दशर मुनि या मन्त्रचारियों को धनदान और सिखा दे । (३) मन्त्र ।

कुलपर्वत—संज्ञा पु० [सं०] सात पहाड़ों का एक समूह जिसके शतशतों के पर्वत हैं—महेंद्र, मलय, सद्य, शक्ति, अच, विंध्य, और परिवार ।

कुलपूज्य—वि० [सं०] जिसका मान कुलपरंपरा से होता आया

हो । जो कुल का पूज्य हो । उ०—गुरु वमित कुलपूज्य हमारे ।—गुलसी ।

कुलफ—संज्ञा पु० [अ० कुफल] ताला । उ०—श्री रघुराज मनें कुलफें की जैनीरन की कुलफें खुलवाई ।—रघुराज । (कुछ लोग इसे खो लिंग मानते और लिखते हैं ।)

कुलफा—संज्ञा पु० [फ० सुर्फा] एक साम जिसके पत्ते दलदार, नीचे शंङल के पास मुकीले और निरे पर चीड़े होते हैं । ये पत्ते दो श्रंगुल लंबे और ढंङल में दो दो आगने सामने लगने हैं । इसके फूल पीले रंग के होते हैं । फूल ऋड़ जाने पर छोटे छोटे केंगुरे निकलते हैं जिनमें काले काले, गोल, चिपटे दाने होते हैं । ये दाने बहुत छोटे होते हैं और दवा के काम में आते हैं । लोग ढंडाई में इन्हें प्रायः बालते हैं । पौधा एक वालिशत से डेढ़ वालिशत तक ऊँचा होता है और ढंडी जगह में होता है । यह पर्यंत श्रुत के पहले बोया जाता है और गरमी में तैयार होता है । इसका पौधा बहुत जल्द बढ़ता है । बरसात में यह आसरे आग खेतों में जमता है । इसका लोग साम खाते हैं । वैद्यक में यह ढंडा माना गया है । इसी की छोटी जाति को लोनी, अमलोनी या नोनिया कहते हैं ।

पयो०—बृहलीयो । घोसिका ।

कुलफरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कुलफ] (१) पंच । (२) दीन या किसी और पातु मिठी आदि का घना हुआ चोंगा जिसमें दूध आदि भर कर बड़ जमाते हैं । (३) उपयुक्त प्रकार से जमा हुआ दूध, मलाई या कोई शर्बत । जैसे,—मलाई की कुलफरी । (४) पीतल या ताँबे आदि की गोल या घुकी हुई नली जिसे नरकुल में लगा कर नैचा बाँधा जाता है ।

कुलबुल—संज्ञा पु० [अ०] [संज्ञा कुलबुलाहट] छोटे छोटे जीवों के हिलने डोलने की श्राहट ।

कुलबुलाना—वि० अ० [अ० कुलबुल] (१) बहुत से छोटे छोटे जीवों का एक साथ मिलकर हिलना डोलना । इधर उधर रंगना जैसे,—मेरी में कीड़े कुलबुला रहे हैं । (२) धीरे धीरे हिलना डोलना । जैसे,—बच्चा गोद में कुलबुला रहा है । (३) चंचल होना । आकुल होना । जैसे,—(क) सोचा हुआ लड़का कुलबुला कर उठ बैठा । (ख) बूल के मारे शैतनियों कुलबुला रहे हैं ।

कुलबुलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० कुलबुल] धीरे धीरे हिलने डोलने का भाव ।

कुलयोरन—वि० [हि० कुल + योरन] (१) कुल की डुबानेवाला । बंश की मर्यादा भ्रष्ट करनेवाला । कुल में दाग लगानेवाला । कुल-खुदर । (२) शय्यापथ । नालाथक ।

कुलवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलवती स्त्री । मर्यादा से रहनेवाली स्त्री । उ०—किसी न गोकुल कुलवधू, काहि म कैहि सिल दीन ?—विहारी ।

कुलवांसा-संज्ञा पुं० [हिं० कुल + वांस] कुलाहो के करघे का एक वांस जिसमें कंची बँधी रहती है ।

कुलवंत-वि० [सं०] [श्री० कुलवंत] कुलीन । उ०—(क) जीवन चंचल डीठ है करं निकामें काज । धनि कुलवंति जो कुल भरं, कै जीवन मन लाज ।—जायसी । (ख) कुलवंत निकारहिं गारि सती ।—तुलसी ।

कुलवान्-वि० [सं०] [श्री० कुलवान्] कुलीन । अर्घ्ये वंश का । अर्घ्ये मानदात का ।

कुलसंकुल-संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक ।

कुलसन-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक चिटिया ।

कुलह-संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] (१) टोपी । (२) शिकारी । चिट्टियों की छांटों पर का टकन । टोपी । श्रेयिपारी । उ०—घात बढ़ाई कुमति हँसि घोली । कुमति-कुपिहँग-कुलह जनु खोली ।—तुलसी ।

कुलहवर्षा-संज्ञा पुं० [फा० कुलाह + वर्षा] वर्षा के पहनने का एक कंठोप जिसमें नाँचे पीछे की शर पर तक लटकता हुआ लंबा कपड़ा चुन कर गिला रहता है ।

कुलही-संज्ञा पुं० [फा० कुलही] टोपी । शिकारी चिट्टियों की छांट टकने की श्रेयिपारी । टोका । उ०—यगुला कपटत घाज दे, पाज रहे मिर नाय । कुलहा दीने पग बँधे, खोटे दे फहराय ।—समाधिलाल ।

कुलही-संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] वर्षा के मिर पर देने को टोपी । कनटोप उ०—(क) धांगने खेलत धानेइ कंद ।..... कुलही चित्र विचित्र कगुली । निराहँ मातु मुदित मन कुली । राहि मनिम्वम डिंभ धगि डोलत । कलवन्न वचन तोवती मोलत ।—तुलसी । (ख) कहां लौं सुमिरां मुंदताई । खेलत कुमैर कनक धांगन में नैन निरखि सुधि छाई । कुलहि लसत सिर श्याम सुभय धति बहुविधि सुरँग बनाई ।—सूर ।

कुलांगार-संज्ञा पुं० [सं०] कुल का नाश करनेवाला । सन्धानारी ।

कुलांच-संज्ञा स्त्री० [उ० कुलांच] (१) देगों हाथों के बीच की दूरी । (२) चौकड़ी । झुलांग । उड़ाव । उ०—(क) खेत कुलांच लपो तुन धयहों । धरत पाँव धरती जन तपहों ।—लजमणसिंह । (ख) दसमोजन कर बीच तहँ, पट्टुँचे एक कुलांच । सिंहासन तँ श्रवनि पर पट्यधों मारि तर्माच ।—विद्यामान ।

क्रि० प्र०—करता ।—भरता ।—भारता ।—बैता ।

कुलाई-संज्ञा स्त्री० [पु० कुलाय] झुलांग । चौकड़ी । उड़ाव । उ०—अधमान हर्षान दा विक्रम बढ़ाया । करि कुलाई श्रेतुक नमौं किलकार सुभाया ।—सूदन ।

कुलाकुल-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुड़ निश्चित नक्षत्र, वार और तिथियाँ, जैसे—घाट्टा, मूल, धमिजिन् घादि नक्षत्र, बुधवार और द्वितीया, छठ, और द्वादशी घादि तिथियाँ ।

कुलाचल-संज्ञा पुं० दे० “कुलवंत” ।

कुलाचार्य-संज्ञा पुं० [सं०] कुलगुरु । पुरोहित ।

कुलाधि-संज्ञा स्त्री० [सं० कुल = सन्त + आधि = रोग, दोष] पाप । दोष । उ०—मजूरी सुरकै पकरिया, चसै गंग के तीर । पोरे कुलाधि भाजही, राम न कहै सरीर ।—कवीर ।

कुलाधा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) लोहे का जलुका जिससे द्वारा कियाइ धातु से जकड़ा रहता है । पायता । (२) मजूरी फँसाने का फाँटा । (३) बड़ लकड़ी जो चरवा के बीच में लगी रहती है (जालाह) । (४) नची जिसमें हो कर पानी निकलता है । मोरी ।

कुलाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर । (२) खोता । धोसजा । (३) स्थान । जगह ।

कुलायिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पचिशाना । चिट्टियापर ।

कुलाल-संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० कुलाय] (१) कुम्हार । मिट्टी के बरतन पनानेवाला । (२) जंगली सुर्मा । (३) उलूक । उलूक ।

धा०—कुलाल चक्र = कुम्हार का चक्र ।

कुलालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चिट्टियाखाना ।

कुलाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुम्हारिन । कुम्हार की स्त्री । कुम्हार जाति की स्त्री ।

संज्ञा स्त्री० [देग०] दूरीन । [हिं०]

कुलाह-संज्ञा स्त्री० [सं०] भूरे रंग का घोड़ा जिसके पैर गाँठ से सुमों तक काले हों ।

संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार की कंची टोपी जो फारस और अफगानिस्तान में पहनी जाती है ।

कुलाहल-संज्ञा पुं० दे० “कोलाहल” ।

कुलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पत्थी । (२) चिड़ा । गैरा । (३) पत्थी । चिट्टिया । (४) कारुड़ा साँगी ।

संज्ञा स्त्री० एक नदी का नाम ।

वि० बुरे लिंग का ।

कुलिंगक-संज्ञा पुं० [सं०] चिड़ा । गौरवा पत्थी । चक्र । (हिं०)

कुलिंजन-संज्ञा पुं० दे० “कुलंजन” ।

कुलिंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश जो उत्तर-पश्चिम भारत में था । कुनिंद । (२) उस देश का निवासी । (३) उस देश का राजा ।

कुलिं-वि० दे० “कुल” ।

कुलिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिल्पकार । दम्कार । कारीगर । (२) उत्तम वंश में उत्पन्न पुरुष । (३) धात महानामों में से एक । (४) घुँघची का पेड़ । (५) तालमखाना । (६) किसी जाति या कुल का प्रधान पुरुष । (७) ज्योतिष में दिन और रात का कुछ निश्चित अंश जो यात्रा या धन्य शुभ कर्मों के लिये निषिद्ध समझा जाता है । (८) कंकड़ा ।

कुलिशा—संज्ञा पुं० (१) हीरा । ३०—साथिक मकंत कुलिशा विरोजा । चौर कोरि पच रचे सरोजा ।—तुलसी । (२) वज्र । विजली । गान । चिह्नी । ३०—भयो कुलाहल श्रवण श्रुति, सुनि रूप राशर शोर । विपुल विहंग्य मन परयो निरि, माना कुलिश कठोर ।—तुलसी । (३) ईश्वररायण राम हृष्पादि को पराणों का एक चिह्न जो वज्र के आकार का माना जाता है । ३०—अस्थ चरय शंकराश्रय, कंज कुलिश चिह्न खचिर, भ्राजत श्रुति नूपुर पर मञ्जु मुपकारि ।—तुलसी ।
धा०—कुलिशधर = वज्रधर । इंद ।

(४) कुडार । (५) एक प्रकार की मछली ।

कुलिशाधर—संज्ञा पुं० [सं०] इंद । मुराज ।
कुलिशासन—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध देव का एक नाम ।
कुलिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक नदी जो आकाश के मध्य में मानी जाती है ।

कुलीजन—संज्ञा पुं० दे० “कुलीजन” ।

कुली—संज्ञा पुं० [तु०] मञ्जूर । योक्त होनेवाला ।

धा०—कुली कवारी = टोपटी जाति के लोग ।

कुलीन—वि० [सं०] [सहा कुलीनता] (१) उत्तम कुल में उत्पन्न । अच्छे घराने का । पानदात्री । (२) पवित्र । शुद्ध । साफ़ । ३०—गय जो निरमल नीर कुलीना । नार मिले जल होइ मलीना ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार के बंगाली माण्य जो उन पांच माहलों की संज्ञा हैं जिन्हें पंचगौड़ के महाराज आदिष्टर अर्धन राय में सासिक माण्य न होने के कारण आठवीं शताब्दी के आरंभ में काशी से अर्धन साथ ले गये थे ।

कुलीर—संज्ञा पुं० [सं०] कंकड़ा ।

कुलुफ—संज्ञा पुं० [४० उरुव] तावा । ३०—नैन न रहै री भेरे दटके । कलु पड़ि दिपे सखी यदि रोटा धूँधरयो सटकै । कजल कुलुफ मेलि मंदिरि में पलक सँक पट अटकै ।—चर ।

कुलुसा—संज्ञा पुं० [सं० उल्लिख] एक प्रकार की मछली जो सिंध, संयुक्त प्रांत, पंजाब और आसाम में पाई जाती है । लंबाई में यह पाँच फुट तक होती है । इसे लोग ताज़ारों में पालते हैं । कुरसा ।

कुलू—संज्ञा पुं० [सं० उरुव] कुलू नामक प्राचीन देश जो कांगड़े के पास है ।

सहा पुं० [देग०] एक पेड़ जिसकी सुलायम छाल के पर्त निकलते हैं । पत्तियाँ १०-१२ इंच लंबी होनी हैं और रहनीयों के सिरे पर गुच्छों में होनी हैं । इसके फूल छोटे छोटे और गंधकी रंग के होते हैं । यह पेड़ पंजाब की तराई, अंडलैण्ड तथा बंगाल में होता है । इसमें से एक प्रकार की गोद निकलती है जिसे कतीरा या कतीला कहते हैं । दे० “कुलू” ।

कुलूत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० “कुलू” या “कुलूह” ।

कुल्ले—संज्ञा स्त्री० [सं० कश्शा] मीठा । कलोल ।

कुल्लेना—क्रि० प्र० [हिं० कुल्ले] मीठा करना । आमोद प्रमोद करना । ३०—देखि सरोवर हँसे कुलेनी । पदुमावति सँग कहहिँ सहेली ।—जायसी ।

कुलू—संज्ञा पुं० दे० “कोलू” या “कुलू” ।

कुलपी—संज्ञा स्त्री० दे० “कुलपी” ।

कुलफ—संज्ञा स्त्री० दे० “कुलफ” ।

कुलपी—संज्ञा स्त्री० दे० “कुलपी” ।

कुलमाप—संज्ञा पुं० [तु०] (१) कुलपी । (२) उदें । माप । (३) घोरो धान । (४) वह अन्न जिसमें दो भाग या दाल हों, जैसे—चना, उदें, मरर आदि । (५) वन कुलपी । (६) सूर्य का एक पारिपारवक । (७) खिचड़ी । (८) कौनी । (९) एक रोग ।

कुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नहर । कुत्रिम नदी । (२) नदी । नाला । (३) पनारा । नाली । (४) कुलीन स्त्री । (५) जीवन्ती नामक श्रापवि ।

कुल्ला—संज्ञा पुं० [सं० कवज] [खी० कुल्ले] (१) मुँह को साफ करने के लिये उसमें पानी लेकर और इधर उधर हिला कर फेंकने की क्रिया । गरारा ।

क्रि० प्र०—करना ।—फेंकना ।—होना ।

(२) उतना पानी जितना एक बार मुँह में लिया जाय ।

रग पुं० [सं० कुन्या] इस के रंग की वह हलकी रंग की चीज जो शंकर निकलने पर होती है ।

संज्ञा पुं० [?] (१) घोड़े का एक रंग जिसमें पीठ की रीढ़ पर चारब काशी धारी होती है । (२) इस रंग का घोड़ा ।

संज्ञा पुं० [फा० काकुल] सं० उंगत] [खी० कुल्ले] बाल । उरफ । काकुल । पटा ।

कुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुल्ला] (१) मुँह को साफ करने के लिये उसमें पानी लेकर और इधर उधर हिला कर फेंकने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

(२) उतना पानी जितना एक बार मुँह में लिया जाय ।

संज्ञा स्त्री० [फा० काकुल] सं० उंगत] बाल । उरफ । पटा । ३०—विधामित्र ने धाकर उस राजा से यह की रखा के लिये कुल्लेवाला राम मोगा ।—सदमपण्डित ।

कुल्लुक—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का बाल । दे० “बालिनी” ।

कुल्लुक—संज्ञा पुं० [सं०] मनुसंहिता के प्रसिद्ध टीकाकार जो दियाकर भट्ट के पुत्र थे ।

कुल्लु—संज्ञा पुं० [सं० कुल्लर] [खी० उरुवका] सुरवा । सुकड़ ।

कुल्लु—संज्ञा पुं० दे० “कुल्लु” ।

कुल्लु—संज्ञा पुं० [सं० उरुव] [खी० अरुव] कुल्लु नामक प्राचीन देश जो कांगड़े के पास है ।

हैं। यह बारह चौदह श्रंगुल लंबा और चार छ श्रंगुल चौड़ा लोहे का होता है जिसके एक सिरे पर, जो तीन चार श्रंगुल मोटा होता है, एक लंबा गोल छेद, इंच सवा इंच व्यास का होता है जिसमें लकड़ी का दस्ता लगाया जाता है और दूसरा सिरा पतला लंबा और धारदार होता है। कुठार। टांगा।

कुल्हाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० कुल्हाड़ा का रूप०] (१) छोटा कुल्हाड़ा। कुठार। टांगी। (२) यमुना। [लघ०]

कुल्हारा—संज्ञा पुं० दे० "कुल्हाड़ा"।

कुल्हिया—संज्ञा स्त्री० [हि० कुल्हिय] छोटा पुरवा। चुकड़। छोटा कुल्हड़। उ०—तोरी चोच न कीर! तू यह पंजर है लोह। खुलिहै खुले कपाट के तजि कुल्हिया को मोह।—दीनदयाल।

मुहा०—कुल्हिया में गुड़ फोड़ना = बोर करी इस प्रकार करना जिसमें किसी का कामों का लक्ष्य न हो।

कुल्ह—संज्ञा पुं० [सं० कुलत] एक देश का नाम जो फांगड़े के पास है। कुल।

कुवंग—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नाम की धातु।

कुव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) फूल।

कुवज—संज्ञा पुं० [सं०] (कमल से उत्पन्न) प्रह्ला। उ०—सुन मरीचि, नासी कुवज, देव दनुज के ताप। तपत यहाँ परजा-पती, महित सुरन की मात।—लक्ष्मणसिंह।

कुवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि वृष्टि। बहुत अधिक वर्षा होना।

कुवल्लय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुवलायिनी] (१) नील कोंड। केका। (२) नील कमल। (३) भूमंडल। (४) एक प्रकार के अक्षर।

कुवल्लयापीड—संज्ञा पुं० [सं०] एक हाथी का नाम जिसे कंस ने कृष्ण से मारने के लिये धनुष यज्ञ के मंडप के द्वार पर रख छोड़ा था। इसे कृष्णचंद्र ने मार डाला था।

कुवल्लयाभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुषमार राजा का एक नाम। (२) प्रतर्द्धन का एक नाम। (३) शत्रुघ्न राजा का नाम। (४) एक वेदाङ्ग जिसे अग्नि का यज्ञ विध्वंस करनेवाले पातालदेव ने कंग मारने के लिये, पुराणों के अनुसार, मृत्यु ने पृथिवी पर भेजा था।

कुवाँ—संज्ञा पुं० दे० "कुवाँ"।

कुवाँटा—संज्ञा पुं० [सं० कु + पठन] जंगली गुलाब।

कुवाँन्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्बचन। अयोग्य बात। गाली।

कुवाँच्य—वि० [सं०] जो कहेने योग्य न हो। संदा। धुरा।

संज्ञा पुं० कठोर शब्द। दुर्बचन। गाली।

कुवाँट—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] किवाड़। दरवाजा। [हिं०]

कुवाँरा—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] धनुष। [हिं०]

कुवाँर—संज्ञा पुं० [सं० अश्विनी = कुमार] [वि० कुवाँरी] आश्विन का महीना। अशोच।

कुवाँरी—वि० [हिं० कुवाँर] कुवाँर के महीने में होनेवाला। उवाँर का—जैसे कुवाँरी फसल। कुवाँरी धान।

कुवाँसना—संज्ञा—स्त्री० [सं०] दुष्ट इच्छा। घुरी इच्छा।

कुवाँद—संज्ञा पुं० [सं०] जुलाहा। नौरी।

कुवाँचार—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट विचार। बुरा विचार।

कुवाँचारी—वि० [सं० कुवाँचारि] [स्त्री० कुवाँचारी] बुरे विचारवाला। जिसके विचार बुरे हों।

कुवेर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवता जो इंद्र की नी निधियों के भंडारी और महादेव जी के मित्र समझे जाते हैं। यह विश्वामय ऋषि के पुत्र और रावण के सौतेले भाई थे। हत्ती माता का नाम इक्ष्वाकु था। कहते हैं कि इन्होंने विरव-कर्मा से लंका वनवाई थी। पर जब रावण ने इन्हें यहाँ से निकाल दिया तो इनके तपस्या करने पर प्रह्ला ने इन्हें देवता बना कर उत्तर दिशा का राज्य दे दिया और इंद्र का भंडारी बना दिया। यह समस्त संसार के धन के स्वामी समझे जाते हैं। इनके एक प्राँल, तीन पैर और आठ दाँत हैं। देवता होने पर भी इनका पूजन नहीं होता। कोई कोई इन्हें पुत्रस्य ऋषि का भी पुत्र पतलते हैं।

यौ०—कुवेराचल। कुवेरादि।

(२) जैन मत में वर्तमान ध्वजनिष्ठी (काल-गति) के उग्रोत्सवें अर्हत् का एक उपासक। (३) तुंग का पेड़।

पर्या०—उप्यवसला। वृक्षराज। गुडादेव्य। मनुष्यधर्मा।

धनद। राजराज। धनाधिप। किन्नरेश। वैश्वण। नरवाहन। यक्ष। एकपिंग। ऐलविल। श्रोद। पुण्यजनेश्वर। दस्यंच। प्रलकाधिप।

कुवेराचल—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत का एक नाम।

कुवेरादि—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत का एक नाम।

कुवाँडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुशकंडिका।

कुश—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुशा, कुशी] (१) काँस की तरह की एक घास जिसकी पत्तियाँ मुकीली, तीली, और कड़ी होती हैं। प्राचीन काल में यहाँ में इसका उपयोग बहुत होता था। इसकी रसियाँ ईंधन छपेटने, सुधा दाँपने आदि कामों में आती थीं। अब भी कुश पवित्र माना जाता है, और कर्म-कांड तथा तर्पण आदि में इसका उपयोग होता है। दाम। दाभ। दुर्भ। उ०—कुश किलवण सापरी सुहाई। प्रभु सँग मंडु मनेज तुहाई।—तुलसी।

पर्या०—कुष। दुर्भ। पवित्र। याज्ञिक। यधि। हस्वर्ग। इतुप। सूच्यम।

(२) जल। पानी। (३) एक राजा जो उपरिचर वसु का पुत्र था। (४) रामचंद्र का एक पुत्र। (५) सुराणासुरा सात द्वीपों में एक द्वीप। (६) बलाकाश्व का पुत्र। (७) फाल। कुशिया। कुसी (हल की)।

वि० (१) कुरित्त । नीच । (२) उन्नत । पागल ।
 कुराकंडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बेड़ी पर या कुंड में अग्नि-
 स्थापन करने की अत्रुष्टानिक क्रिया जिसका विधान ऋग्वेदियों,
 यजुर्वेदियों और सामवेदियों के लिये मित्र मित्र है । इसमें
 होम करनेवाला कुशासन पर बैठ दहिने हाथ में कुशा लेकर
 उभरी नेत्र से बेड़ी पर देखा खींचता जाता है ।

कुराकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञा । (२) राजा कुशाभ्यन्त ।
 कुराक्षीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक जो
 चारों ओर घन समुद्र से घिरा है ।

कुराक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हस्वरोम राजा के पुत्र और
 उत्तराज जनक के छोटे भाई । इनकी कन्याएँ मांडवी और
 क्षुतिशीति भूत और क्षुभ्र के ब्याही थीं । (२) एक
 ऋषि जो बृहस्पति के पुत्र और वेदवती के पिता थे ।

कुरान-संज्ञा पुं० [सं०] मोटा गधा ।
 कुरानाम-संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के राजा कुशा का पुत्र ।
 कुरापन्नक-संज्ञा पुं० [सं०] फोड़ा चीरने का एक श्रृंगार ।
 कुराश्विन-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जिसका नाम महाभारत में
 भ्राया है ।

कुरासुद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश की बनी हुई श्रृंगरी ।
 पवित्री । पैंती । उ०—कुरासुद्रिका समिधं स्रुवा कुशा धौ
 कर्मठल को लिये ।—केशव ।

कुराल-वि० [सं०] [स्त्री० कुशला] (१) चतुर । दक्ष । प्रवीण ।
 उ०—पर उपदेश कुशल बहुतेरे ।—तुलसी । (२) श्रेष्ठ ।
 अच्छा । भला । (३) पुण्यशाल ।
 संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुशला, कुशली] (१) सेन । मंगल ।
 वैरियत । राज्ञी । सुखी । उ०—भव कहु कुशल बालि कहै
 अहई । विदेसि यचन श्रेयद भस कहई ।—तुलसी ।

धा०—कुशल चेत । कुशल मंगल ।
 (२) वह जिसके हाथ में कुशा हो । (३) शिव का एक नाम ।
 (४) कुशद्वीपनिवासी ।

कुरालक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] राज्ञी । सुखी । वैर शक्तिवन्त ।
 कुरालता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चतुराई । निपुणता । चालाकी ।
 (२) योग्यता । प्रवीणता ।

कुरालप्रदन-संज्ञा पुं० [सं०] किसी का कुशल मंगल पहुंचाना ।
 क्रि० प्र०—करना ।—पंडुना ।

कुरालाई-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुशला कल्याण । सेन । वैरियत ।
 कुशल । उ०—मेरो कबो सत्य के जानै । जो चाहै वृज की
 कुशलाई तौ गोवर्धन मानै ।—सूर ।

कुरालात*—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुशला समाचार । मंगल
 समाचार । वैरियत । उ०—(क) दक्ष न कहु पूर्वा कुरा-
 लात ।—तुलसी । (ख) धार धार घूमि कुरालात ।
 —तुलसी । (ग) मनुकर त्याग योग सँदेस । भली श्याम
 कुशलात सुनाई सुनतहि भयो शँदेस ।—सूर ।

कुराली-वि० [सं०] कुशल । [स्त्री० कुशली] (१) बख्शाए
 युक्त । सकुशल । (२) नीरोग । संदुःख ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धर्ममंतक या धातुदा नामक वृक्ष ।
 (२) बुद्धाभली । लोना या धमलोनी नामक साग ।

कुराश्वन-संज्ञा पुं० [सं०] एक धन जो वृत्र में मोकुल के पास है ।
 कुराधारी-संज्ञा स्त्री० दे० "कुराधारी" ।

कुरास्तरण-संज्ञा पुं० [सं०] होम करने के पहले यज्ञ भूमि
 वा यज्ञ कुंड के चारों ओर कुश विधाने का काम । कुश-
 कंडिका ।

कुराखली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) द्वारका का एक नाम । (२)
 कुरावती नामक नगरी जो विंध्य पर्वत पर थी और जहाँ
 रामचंद्र जी के पुत्र कुशा राज्य करते थे ।

कुराहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध तर्पण या दानादि करने के
 लिये उद्यत ।

कुराव-संज्ञा पुं० [सं०] निमि वंशीय राजा कुश का पुत्र जिसने
 पिता के श्राद्ध के कौराधी नगरी बसाई थी ।

कुरावु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "कुराव" । (२) कुश के बगले
 भाग से टपकता हुआ पानी ।

कुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुशा । (२) रस्सी । (३) एक प्रकार
 का मीठा मीठ ।

कुराप्र-वि० [सं०] कुश की नेत्र की तरह तीखा । तीव्र ।
 तेज । सुकीला । उ०—कुराप्र बुद्धि ।

कुरादगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] फैलाव । विस्तार । चौड़ाई ।

कुरादा-वि० [सं०] [संज्ञा कुशला] (१) सुला हुआ ।
 आनरण रहित । (२) विस्तृत । लंबा चौड़ा । सुलला ।

मुहा०—कुरादा करना = (१) खोलना । (२) फैलाना ।
 चौड़ा करना ।

कुरारण-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्वास कृषि ।
 कुरावर्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरिद्वार के एक तीर्थ का नाम ।
 (२) एक कृषि का नाम ।

कुराश्व-संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशी एक राजा जिसकी राज-
 धानी बिराला थी । यह सहदेव का पुत्र और सोमदत्त का
 पिता था ।

कुरासन-संज्ञा पुं० [सं०] कुश + आसन = कुशासन । कुश का बना
 हुआ आसन । कुश की चटाई ।

विशेष—शाओं में दान, यज्ञ, श्राद्ध, उपासना आदि के समय
 कुरासन पर ही बैठने का विधान है ।

कुशिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन प्राण्य वंश । विश्वामित्र
 जी इसी वंश के थे । (२) एक राजा जो विश्वामित्र के
 पितामह और गांधि के पिता थे । महाभारत में लिखा है कि
 जब अश्वत्थामा गांधि से यह विदिन हुआ कि कुशिक
 वंश के द्वारा उनके वंश में पतिव्रत का संवार होगा तब

उन्होंने कुशिक वंश को भ्रम करना विचारा और वे राजा कुशिक के पास गये। बहुत दिनों तक श्रमक प्रकार के कष्ट देने पर भी जब राजा और रानी में उन्होंने शाप देने के लिये कोई विधि न पाया तब उन्होंने प्रसन्न होकर राजा कुशिक को घर दिया कि तुम्हारा पौत्र ब्राह्मण्यत्व खाम करेगा। (३) कुशिक वंश का पुरुष। (४) हल की कुम्भी। फाल। (५) बड़ेका। (६) साल या साए। (७) तेल की तलघुट।

कुशी-संज्ञा पुं० [सं० कुशिक] (१) कुशावाला। जिससे हाथ में कुश हो। (२) बाल्मीकि श्रापि।

कुशीद-संज्ञा पुं० दे० "कुसीद"।

कुशीनार-संज्ञा पुं० [सं० कुशिनार] यह स्थान जहाँ सालवृक्ष के नीचे गौतममुनि का निर्वाण हुआ था। यह स्थान गोरखपुर के जिले में है और इसे आजकल कसया कहते हैं।

कुशीलव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कवि। चारण (२) नट। नाटक खेलनेवाला। (३) गवैया। (४) बाल्मीकि श्रापि का एक नाम।

कुशीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्वत्स रखने का घेरा। कोटला। कोशर। डेहरी।

शै०—कुशूलधान्य। कुशूलधान्यक।

(२) तुषामि। (३) कङ्गाही। (४) एक राक्षस। (५) बुरी पीड़ा। बुरा दर्द।

कुशूलधान्यक-संज्ञा पुं० [सं०] गृहस्थों का एक भेद। यह गृहस्थ जिसके पास गीन वर्ष तक के लिये खाने भर को धन्न संचित हो।

कुशोदाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पद्म। कमल। (२) सारस। (३) कनक चंपा। कनिधारी। (४) कुशद्वीप का एक पर्वत।

कुशोदक-संज्ञा पुं० [सं०] (दान के लिये हाथ में लिया हुआ) कुश-मिला जल।

कुशोदका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

कुशुता-संज्ञा पुं० [फा०] वह भ्रम जो धातुश्रों के रासायनिक क्रिया से एक कर बनाया जाय। भ्रम। जैसे—अथर्वक का कुरता। चाँदी का कुरता। सोने का कुम्ता।

कुशुती-संज्ञा स्त्री० [फा०] दो आदमियों का परस्पर एक दूसरे को बलापूर्वक पढ़ाड़ने या पटकने के लिये लड़ना। मल्लयुद्ध। पकड़।

शै०—कुशुतीबाज = कुशुती लड़नेवाला।

क्रि० प्र०—लड़ना।—जीतना।—हारना।—करना।—होना।

मुहा०—कुशुती में बड़ा रहना = कुशुती में जीत घेरना। कुशुती परावर रहना या घुटना = कुशुती में किसी का न हारना। दोनों पक्षों का बराबर रहना। कुशुती मारना = कुशुती जीतना। कुशुती में दूसरे को पढ़ाड़ना। कुशुती बदना = कुशुती लड़ने का निश्चय करना। कुशुती माँगना = (किसी को) अपने साथ कुशुती लड़ने के लिये कहना। कुशुती लड़ाना = (किसी को)

शिक्षा देने के लिये (उपरो) लड़ना। कुशुती खाना = कुशुती में हार जाना। कुशुतमकुरता = मुटभेद। लड़ाई।

कुशुतीबाज-वि० [फा०] कुशुती लड़नेवाला। बड़ता। पदलवान। कुपुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] कीड़े की वह पैली या कोरा जिसमें उनका निष रहता है।

कुपु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोड़ा। (२) कुट नामक श्रापि। (३) कुड़ा नामक वृक्ष।

कुपुकैतु-संज्ञा पुं० [सं०] सुई परजसा नाम की बता। मार्केटिका। भूष्पाहुवद।

कुपुगंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एलुवा।

कुपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] हितावली नाम की श्रापि।

कुपुत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] कट्टमर।

कुपुसूदन-संज्ञा पुं० [सं०] अमृततास।

कुपुहृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खैर का पेड़। (२) विष्णुद्वि। (३) कुण्डलाशक।

कुपुारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्कपत्र। (२) गधक। (३) परवल। (४) दे० "कण्डहन्"।

कुपुो-संज्ञा पुं० [सं० कुपुि] [स्त्री० कुपुिनी] कोड़ा। वह जिसे कोड़ा हुआ हो।

कुप्पाड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुम्हड़ा। (२) एक प्रकार के देवता जो शिव के अनुचर हैं। (३) जायु। गर्भस्थली।

कुसंग-संज्ञा पुं० [सं०] बुरे लोगों का साथ। बुरी सौहृत। उ०—उपज्ञे विनमै ज्ञान जिमि, पाइ सुसंग कुसंग।— तुलसी।

कुसंगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरों का संग। बुरे लोगों के साथ उठना बैठना। उ०—को न कुसंगति पाइ नसाई।—तुलसी।

कुसंस्कार-संज्ञा पुं० [सं०] बुरा संस्कार। चित्त में बुरी बातों का जमना। शंभःकरण में अथर्थाथ वा निषिद्ध बात का प्रभाव जिससे बुद्धि ठीक निश्चय न कर सके वा मन अर्थके कामों की श्रम न जाय।

कुस-संज्ञा पुं० दे० "कुश"।

कुसगुन-संज्ञा पुं० [सं० कु + गुं० सगुन] (१) बुरा सगुन। असगुन। कुलचण। उ०—कुसगुन लंक अथथ श्रति सोइ।—तुलसी।

कुसमय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा समय। (२) अनुपयुक्त अवसर। यह समय जो किसी कार्य के लिये ठीक न हो। (३) नियत से श्रागे वा पीछे का समय। (४) संकट का समय। दुःख के दिन।

कुसर-संज्ञा पुं० [देग०] पानीबेल वा मूसल नामक बता की जड़ जो दवा के काम में आती है।

कुसलई-वि०, संज्ञा पुं० दे० "कुशल"।

कुसलई-संज्ञा स्त्री० [सं० उग्रत + ई (म्व०)] निपुयता। चतुराई।

उ०—जो कहुँ सिरई बाहिँ सुनैनी कला कुसलई सारी ।
 तौ मनुजन की कौन चलाई मोहित होय चतुसुनयारी ।—
 प्रताप ।

कुसलछेम—संग्रह पु० दे० “कुसलचेम” ।
 कुसलछेम—संग्रह छी० [सं० उ०गण ४ ई (श्ल०)] (१) कुसलता ।
 निपुणता । (२) कुसल चमई । वैरियत । श्रानंद संग्रह ।
 उ०—कौसिक राउ लिये उर लाई । कहि अतीत पकी
 कुसलताई ।—तुलसी ।

कुसलता—संग्रह छी० दे० “कुसलता” ।
 कुसली—वि० दे० “कुसली” ।
 † उता पु० [वि० कलेश] (१) श्राम की गुठली । (२) एक
 पकवान जो श्राम की गुठली के आकार का होता
 है और जिसके भीतर सीटा पर वा चूरा भरा रहता है ।
 गोमा । पिराक ।

कुसला—संग्रह पु० [सं० उ०ग] जड़हन का एक रोग जिसमें उसके
 पत्र पीले पड़ जाते हैं, और बनका रंग तैर के गुंसा लाल
 हो जाता है । कैरा ।

कुसवारी—संग्रह पु० [सं० कोशकार] (१) रेशम का जंगली कीड़ा
 जो बेल और विद्यालाल आदि पेड़ों पर बोया बना कर उसके
 भीतर रहता है । इस कीड़े के जीवन में चार अवस्थाएँ होती
 हैं, जिन्हें युग कह सकते हैं । सबसे पहले यह श्रंटे के रूप
 में रहता है । श्रंटे से निकल कर यह कमला की तरह का
 कीड़ा हो जाता है । फिर उसमें पचावरण दिखाई पड़ते हैं
 और वह ताने निकालता है । श्रंटे में यह कोण से निकल
 कर फलिंगा होकर उड़ने लगता है, जोड़े खाता है और मर
 जाता है । जिन कीड़ों की ये चार अवस्थाएँ या एक पीढ़ी
 वर्ष भर में घटती हैं वे एक-युगक कहलाते हैं । कहीं कहीं,
 जैसे चीन में, ऐसे कीड़े भी पाए जाते हैं जिनकी वर्ष भर में
 दो पीढ़ियाँ हो जाती हैं । ऐसे कीड़ों को द्वियुगक कहते हैं ।
 बहुत से देशों में त्रियुगक और चतुस्रुगक कीड़े तक मिलते
 हैं । किरिमपिहा ।

विशेष—दे० “पेशम” ।

(२) रेशम का कोया ।

कुसाव—संग्रह पु० दे० “कुसाव” ।

कुसाइत—संग्रह छी० [सं० उ०ग ४ सवन] (१) डुरी साइत ।
 डुरा सुहने । कुसमय । उ०—न जानिये आज किम कुसाइत
 में पर से निकले कि हायं गरम होना कैसा, एक फूटी मंजी
 से भी मँड न हुई ।—सी श्रजान और एक मुजान ।

(२) बेंगोफा । धनुषयुक्त समय ।

कुसावरी—संग्रह पु० [सं० उ०ग ४ सवन] डुरे पेड़ । कुसुच ।
 उ०—सउ सुभेँ सत संग तेँ, गप बहुत वुध भापि । जेसे
 मलय प्रसंग तेँ चंदन होईहँ कुसावि ।—दीनदास ।

कुसारी—संग्रह छी० दे० “कुसारी” ।

कुसिया—संग्रह छी० दे० “कुसी” ।

कुसियार—संग्रह पु० [सं० कोशकार] एक प्रकार की ईल जो मोटी
 सफेद और नरम होती है । इसमें रस अधिक होता है ।
 इसे विशेष कर लोग चूमने के काम में लाते हैं, इससे गुड़
 नहीं बनता । पून ।

कुसियारी—संग्रह पु० दे० “कुसवारी” ।

कुसी—संग्रह छी० [सं० उ०ग] हल का फाल ।

कुसीद—संग्रह पु० [सं०] [वि० उ०तीक] (१) व्याज पर हथवा
 देने की रीति । रूद । व्याज । रुद्धि । (२) व्याज पर दिया
 हुआ धन ।

धी०—कुनीदपथ । कुसीदरुद्धि ।

(३) रुक चंदन ।

कुसीदपथ—संग्रह पु० [सं०] रूद पर हथवा देना ।

कुसीदिक—वि० [सं०] [स० उ०तीक] रूद पर हथवा देने-
 वाला । महाजन ।

कुसीदार—संग्रह पु० दे० “कुसीदार” ।

कुसुंब—संग्रह पु० [सं० उ०गुम या उ०गुमक] एक यड़ा रूद
 जो भात, धरसा और चीन में होता है । इसकी लकड़ी कड़ी
 और मजबूत होती है और कोयले की जाट और गार्डिया
 बनाने के काम में आती है । इसकी लाल बहुत अच्छी होती है
 और अधिक चामों पर विकती है । इसके फल खाये जाते
 हैं और चीनों से तेल निकलता है, जो जलाने, म्याने और
 औषध के काम में आता है । इसकी पत्तियाँ — १० श्रंगुल
 लंबी होती हैं और सीके में दो दो आमने सामने लगती हैं ।
 फूल चंचा के फूल के रंग के होते हैं । इसमें दो श्रंगुल
 लंबे नुकीले, चिकने फल लगते हैं जो धार कासिक में पकने
 हैं । जहाँ ये पेड़ अधिक होते हैं, जैसे अरब में, वहाँ इनकी
 पत्तियाँ गरमी में चौराघों को खिलाने जाती हैं ।

कुसुंबिया—संग्रह छी० दे० “कुसुंब” ।

कुसुभ—संग्रह पु० [सं०] (१) कुसुम । बँद । अग्निशिखा । (२)
 बैसल । कुमकुन ।

कुसुभा—संग्रह पु० [सं० कुसुम] (१) कुसुम का रंग । (२) अफ्रीम
 और भांग के योग से बना हुआ एक मादक द्रव्य ।

संग्रह छी० [सं०] आषाढ़ शुक्ल पक्ष की दृष्ट ।

कुसुभी—वि० [सं० उ०गुम] कुसुम के रंग का । काल । उ०—
 (क) सुख तेंगोल सिर कीर कुसुमी । कानन कनक जड़ाज
 कुसुमी ।—जायसी । (ख) मँदंनंदन तिय छवि तनु काये ।
 अगों गोरि साँवरि नारि देव, जात सदन में भाये । श्याम
 शंग कुसुमी नई सारी, फल गुंया की भाति । इत नगारि
 नीसाँवर पहिरे जनु दामिनि धन काति ।—रू ।

कुसुम-संज्ञा पु० [सं०] [वि० उद्युमित] (१) फूल। पुष्प। (२) यह गद्य जिसमें छोटे छोटे वाक्य हों। जैसे—हे राम ! दाम पर देया करो। (३) आँसु का एक रोग। (४) जैनियों के अनुसार वर्तमान अवसर्पिण्यो के छठे अर्हत के गणधर। (५) एक राजा का नाम। (६) मायिकधर्म। रजोदर्शन। रज।

सुहा०—कुसुम का रोग = रजसाय का रोग।

(७) छंद में ढगण का छत्रं भेद, जिसमें लघु गुरु लघु लघु (।।।।) होते हैं, जैसे—“कृपा कर”।

संज्ञा पु० [सं० कुसुम्भ, कुसुम्बक] (१) दे० “कुसुम्भ”।

(२) हनुमत के मत से मेघ राग का एक पुत्र। यह पांडुर्य जाति का राग है और इसके गाने का समय दोपहर है। (३) लाल रंग। जैसे—कुसुम रंग।

संज्ञा पु० [सं० कुसुम्भ] एक पौधा जो पांच छः फुट ऊँचा होता है और जो रबी की फसल के साथ खेतों में धीजों या फूलों के लिये बोया जाता है। यह दो प्रकार का होता है, एक जंगली और कटिदार, और दूसरा बिना कटि का। जंगली कुसुम भी पत्तियों की नारों पर कटि होते हैं और उसके बीजों से तेल निकलता है। इसके फूल पीले, लाल, गुलाबी और सफ़ेद होते हैं। दूसरी जाति में कटि नहीं होते अथवा बहुत कम होते हैं। इसके धीजों से तेल और फूलों से बड़िया लाल रंग निकलता है। इसके फूल प्रायः पीले या नारंगी रंग के होते हैं और कभी कभी बैंगनी या गुलाबी रंग के फूल भी पाये जाते हैं। पीले और लाल फूल वाले कुसुम खेतों में बीज और फूल के लिये और दूसरे रंग के फूल वाले धगीचों में शोभा के लिये लगाये जाते हैं। इसकी डालियों के सिरे पर छोटा गोल, नुकीला बोंड़ निकलता है, जिस पर पहले पहले बहुत से फूल होते हैं। जो पड़े फूल के लिये बोये जाते हैं उनके फूल गिन्य प्रातः काल खुल लिये और छाया में सुखाये जाते हैं, पर जो बीज के लिये बोये जाते हैं उनके फूल सूखों में ही लगे लगे सूख जाते हैं। खुने फूल एक कपड़े में रख कर ऊपर से खार मिला हुआ जल गिराते हैं जो पहले तो पीला हो कर निकलता है, पर पीछे खार आदि मिलाने से यह लाल हो जाता है। इसका बीज डाल कर कोल्हू में परो जाता है और उससे जो तेल निकलता है वह खाने, जलाने और शरीर में लगाने के काम में आता है। बँधक में तेल को दूग्धघर माना है। इसके सिवा यह कई तरह से आंगणधियों में काम आता है और उससे मोमजामा बनता है। बँरें।

कुसुमकामुक—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव।

कुसुमपुर—संज्ञा पु० [सं०] पटने का एक प्राचीन नाम।

कुसुमरेणु—संज्ञा पु० [सं०] पराग।

कुसुमवाण—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव।

कुसुमविचित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक चर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में नगण, यगण, नगण, यगण का क्रम होता है। उ०—नयन यही ते तुम यदगमा। हरि छवि देवां किन वसु जामा। अनुजसमेता जनकदुलारी। कुसुम विचित्रा कर फुलवारी।

कुसुमस्तवक—संज्ञा पु० [सं०] दंडक का एक भेद जिसके प्रत्येक पद में नी या नौ से अधिक सगण होते हैं। उ०—मजिये हर को हर को हर को हर को हर को हर को हर को हर को।

कुसुमशर—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव।

कुसुमांजन—संज्ञा पु० [सं०] जिसके का मरम।

कुसुमांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फूल से भरी हुई श्रंखली। पोद्धारोपचार पूजन में श्रंतिम उपचार जिसमें देवता पर धारण की श्रंतुली में फूल भर कर चढ़ाते हैं। पुष्पांजलि। (२) न्याय का एक ग्रंथ जिसे उदयनाचार्य ने बनाया है।

कुसुमाकर—संज्ञा पु० [सं०] (१) वसंत। (२) दुष्ण्य का एक भेद जिसमें ६ गुरु, १४० लघु, १४६ चर्ण, १४२ मात्राएँ अथवा ६ गुरु, १३६ लघु, १४२ चर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं। (३) धाग। धगीचा। याटिका।

कुसुमागम—संज्ञा पु० [सं०] वसंत।

कुसुमायुध—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव।

कुसुमाल—संज्ञा पु० [सं०] चौर।

कुसुमावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलों का गुच्छ। फूलों का समूह।

कुसुमासव—संज्ञा पु० [सं०] (१) फूल का रस। मकरंद। (२) मधु। पुष्पमधु।

कुसुमित—वि० [सं०] फूला हुआ। पुष्पित।

कुसुमितलत्रा वेदिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अठारह अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में नगण, तगण, नगण, यगण, यगण, यगण का क्रम रहता है। उ०—माता नागो काल हन यजोरी दही मूँ हमारे। झूठे लाहूँ तो पई उलहना आज होतै सकारे। मैं ना जाऊँ श्रंत कतहूँ लगीं नित्य भानू सुता की। शोभा वारी है कुसुमितलत्रा वेदिलता बीचि जाकी।

कुसुमेपु—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव।

कुसुली—संज्ञा स्त्री० दे० “कुसली”।

कुसुत—संज्ञा पु० [सं० कु + कुत, प्रा० कुत्] (१) सुरा सूत। उ०—कहहि कवीर करम सों जेरी। सूत कुसुत चिनै भल कोरी।—कवीर। (२) कुसुबंध। कुसुंत। उ०—जीवे की न लालता दयाल महादेव मोहि, मासुम है सोहिं मरिबड़े को रहतु हैं। कामरिपु, राम के गुलामन को कामतद अखल्य

जगदंब सहित चहुतु हैं। रोग भर भूत से कुसृत भयो
तुलसी की भूतनाथ पाहि पद पंकर गहतु हैं। ज्याइये तो
जानकीजीवन जन आदि जिप मारिये तो मांगी मीतु सुधिये
कहतु हैं।—तुलसी ।

कुसूर-संज्ञा स्त्री० दे० "कुसूर" ।

कुसूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवयोगि । (२) दे०
"कृश्ल" ।

कुसून-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रजाल । श्पयंडा । (२) दुरा-
चार । (३) शब्दा । दुष्टता ।

कुसुसय-संज्ञा पुं० [सं०] बुधेश्वर । कमल । पद्म । उ०—
देखी हरि के चंचल मैन । रंजन मीन मृगज चपलाई, नहिं
पदार एक सैन । रात्रि बल देवोवर सतदल, कमल कुसुसय
जाति । निमि सुदित प्रातदि वे विगतत व विगतत दिव
रात ।—सूर ।

कुसुत-संज्ञा पुं० [सं०] धनियों का वीज ।

कुसुती-संज्ञा स्त्री० दे० "कुसुती" ।

कुसुतु-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनियार ।

कुसुतुभ-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

कुसुता-संज्ञा पुं० [देग०] कुदाल ।

कुह-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

कुहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) माया । धोखा । जाल । धुरेय ।

श्लो०—कुहकजीवी ।

(२) धूर्त । मदार । चंचक । (३) मंडक । (४) सुर्ग की
दुक । (५) नारायिण्येव । इंद्रजाल जालनेवालता ।

कुहकना-संज्ञा पुं० [सं०] उदक वा उहू । पक्षी का मधुर स्वर में
घोलना । पीकना । उ०—कुहनहिं मोर सुहायन जागा ।

होय कुराहर धोलहिं कागा ।—जायसी ।

विदोष-संज्ञा पुं० [सं०] मोर और कोयल के ही घोलने को कुहकना
कहते हैं ।

कुहकुह-संज्ञा पुं० [सं०] उमडूम । केसर । कुमकुम । जापरान ।
उ०—कनक हाट सय कुहकुह क्षीपी । बंदि महाजन सिंहल
दीपी ।—जायसी ।

कुहक-संज्ञा पुं० [सं०] ताल के घाट भेदों में से एक । इसमें
दो भूत और दो लघु होते हैं ।

कुहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इयाँ करनेवाला । (२) मदार । धोखेवाज ।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूहा । मूया । (२) मिट्टी का घतन ।
(३) शीशे का घतन । (४) सौर्य ।

कुहन-संज्ञा पुं० [सं०] उ०—कुहन = मारना । मारना । घुरी तरह
से मारना । उ०—मंगल की राशि परमारप की शानि जाती
चिरचि पनाह विधि केमव घयाई है । प्रलय हू काल रासी
सुलपाणि सुल पर मीचु बसे नीच मोक धाहत रासाई है ।
धार्डि चिनिवाल से परीचित भयो कृपालु भजे—किन्ना खल

को निकाई सो नसाई है । पाहि हनुमान करुणानिधान राम
पाहि काशी कामधेनु कलि कुहन कसाई है ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [अनु०] उहू = कोकिल की बेबी । गाना । शलापना ।

उ०—ध्रातु व्याप को रूप धरि कुहूँ कुरंगहि राग । तुलसी
जाँ मृग मन मरे परे प्रेम पर दाग ।—तुलसी ।

कुहनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कोण, प्रा० कर्कोणि । (१) हाथ और
बाहु के जोड़ की हड्डी । उ०—किसी के सुटकी, किसी को
कुहनी, किसी को टाकर निपट लड़ाका ।—नजीर । (२) हाथ
या पीतल की बनी हुई देड़ी नली, जो हुक के निगाली में
लगाई लगाई जाती है ।

कुहनीउड़ान-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुहनी + उड़ान । कुहनी का एक
पेच जिसमें कुहनी से कुहनी के मटके से प्रतिद्वंद्वी के हाथों
को पकड़ कर रखा दिया जाता है । यह पेच ऐसी शकल
में काम में लाया जाता है जय प्रतिद्वंद्वी के दोनों हाथ अपनी
मध्य पर होते हैं ।

धा०—कुहनी उड़ान की टांग = कुहनी का एक पेच । जब शत्रु
आगे दौने हाथ खेतादी के कपे पर रखे तो खेतादी शत्रु का
एक हाथ पकड़ कर और दूसरा हाथ कुहनी से उठा कर
अपनी वजत में दबा उसी समय अपनी टांग भोके से उठ
के पैर में मोरे कि वह गिर पड़े । उड़ाना हुआ हाथ खेतादी की
जाँध में अड़ा देना और पैर से पीछे की टांग मार कर गिराना
इस दाय को तोड़ कहलाता है । कुहनी उड़ान की दृष्य = कुहनी
का एक पेच । जब शत्रु आगे कपे पर हाथ रखे तो उसकी
दोनों कुहनियों को उठा कर मट उरके पैर में चुने और जाँध
से पकड़ उसके दोनों पैरों को उड़ाना हुआ गिराने ।

कुहप-संज्ञा पुं० [सं०] उहू = अमावस्या + प । राजर्षिचर । रासल ।
उ०—मोहो मुनि मानव विलोकि भाय मधुवन आन बुधि
होत देव, दानव, कुहप की ।—देव ।

कुहधर-संज्ञा पुं० दे० "कोहधर" ।

कुहर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मड्डा । बिल । छेद । सुराण ।

श्लो०—कर्णकुहर ।

(२) गले का छेद ।

संज्ञा स्त्री० [देग०] बहरी । एक प्रकार का शिकरा जो पक्षियों
को पकड़ना है ।

कुहरा-संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धेऽ । पायु में जल के अत्यंत सूख कणों
का समूह जो ठंड पाकर पायु में मिली भाप के जमने से
उत्पन्न होता है । ये जलकण पक्षियों और घासों पर पड़
कर बड़ी बड़ी धूँदों के रूप में दिखाई पड़ते हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

कुहराम-संज्ञा पुं० [सं०] क०-राम] (१) विद्याप । रोगानीटना ।
शाक्तनाद । उ०—रविवास में कुहराम पड़ गया ।—लखरू ।

(२) हलचल । चंचलता ।

कि० प्र०—करना ।—डालना ।—पढ़ना ।—मचना ।—होना ।
कुहरा—संज्ञा पुं० दे० "कुहरा" ।

कुहाना—कि० अ० [सं० क्रोध, पा० क्रोध] रिस्ताना । नाराज होना । रटना । उ०—(क) राजे लौन मुनाया साग दुहँ जस लौन । आप कुहाय मँदिर कहँ सिंह जान श्री गोन ।—जायसी । (२) जानेरँ परम राज हँसि कहइ । तुमहँ कुहाय परम प्रिय थहइ ।—मुलसी ।

कुहारा—संज्ञा पुं० [सं० कुहार] [भा० कुहारी] कुलहाड़ा । टांगी । उ०—(क) विरह कुहारी तन बहै धाव न बाध रोह । मरने का संशय नहीं छूटि गया भ्रम मोह ।—कवीर । (ख) कबिरा यह तन धन भया कर्म जो भयो कुहारि । आप आप को फाटि हँ कहँ कबीर विचारि ।—कबीर । (ग) थोरा जीवन बहुत न भारो । कियो न साधु समागम कयहँ, लियो न नाम तुहारो ।.....इंद्रिय स्वाद विवस निशि धातर, आपु धनयो हास्यो । जल उनमेद मीन ज्यो यपुरो, पाउँ कुहारो मार्यो ।—सूर ।

कुहासा—संज्ञा पुं० [सं० कुहेडा] कुहरा । उहेता ।
कुहिर—संज्ञा पुं० दे० "कुहरा" ।
कुहिरा—संज्ञा पुं० दे० "कुहरा" ।

कुही—संज्ञा स्त्री० [सं० कुपि = एक पत्नी] एक प्रकार की शिकारी चिड़िया जो बाज से छोटी होती है । कुहर । उ०—नीची यै नीची निपट, दीठि कुही लौं दोरि । उठि ऊँचि नीचि दिधो, मन कुलंग भक्तभोरि ।—बिहारी ।

[फा० कोही = पहाड़] घोड़े की एक जाति । टांगन । उ०—सुरकी ताजी कुही देव संघारी बलकी । अरथी पूराही रू पर्यती कर्छी धलकी ।—सूदन ।

कुडुक—संज्ञा पुं० [अ०] परिश्रम का मधुरस्वर । पीक ।
कुडुकना—कि० अ० [हिं० कुडुक] परिश्रम का मधुर स्वर में बोलना । कुडुकना । उ०—कुहँ कुहँ कोकिलें कुडुक रहे थे ।—सदल मित्र ।

कुडुकवान—संज्ञा पुं० [हिं० कुडुकना + वान] एक प्रकार का घाण जो बांस की कई परिश्रमों को जोड़ कर बनाया जाता है और जिसे चलते समय कुछ शब्द निकलता है । उ०—चले चंद्रवान घनशान थी वृहकवान चलत कमान पूम आसमान छुवै रहे ।—भूषण ।

कुहू—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अमावस्या । यह अमावस्या जिसमें चंद्रमा बिलकुल दिखनाइ न दे । (२) अमावस्या की अष्टम्या देवी और शंकरा अष्टमि की कन्या जो की खी के गर्भ से उत्पन्न हुई थी । (३) नदी । (४) मोर या कोयल की कूक ।
खोली । (इस अर्थ में "कुहू" के साथ

शब्द लगाने से कोकिलवाची शब्द बनते हैं । जैसे—कुहू-कंड, कुहूसुल, कुहुरव आदि ।

कूँ—कूहू कूहू । उ०—(क) उह उहे भए हुम रंचक हवा के गुन कुहू कुहू मोरवा पुकारि मोद भरियो ।—रमकसुमाकर । (ख) कारी कुटप कसाइने से मु कुहू कुहू बचैलिया कूकन लागीं ।—पद्माकर ।

कुहूकवान—संज्ञा पुं० [कुहूक + वान] दे० "कुडुकवान" ।
कूँखी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुखि] कोख । पेट । गर्भ ।
कूँखना—कि० अ० [सं० कुखन = डेग] दुःख वा पीड़ा से बहँ उहँ शब्द करना । कौखना ।

कूँग—संज्ञा पुं० [हिं० कुनगा] एक वृक्ष जिस पर कसेरे पीतल तबिये के बरतन खरादने और जिला करते हैं । खराद । चरल ।

कूँगा—संज्ञा पुं० [दे०] बसूल की छाल का काड़ा जिसमें डूबो कर चाड़ा मिक्काया जाता है ।

कूँच—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँचा] (१) खस वा गरियल के रेरे को बना हाथ डेड़ हाथ लंबा एक बड़ा मूश जिससे जोनादे अपने ताने का सूत साफ करते हैं । (२) जोड़ारों की बड़ी सँझती ।
संज्ञा स्त्री० [सं० कुचिका = नखी] मोटी नख जो मनुष्यों की पूँजी के ऊपर और पशुओं के टखने के नीचे होती है । पै । घोड़ा नख ।

मुहा०—कूँचें फाटना = घोड़े की नख काट कर बेराम कर देना ।
कूँचना—कि० अ० [हिं० कूटना] अ० "कुच कुन" । कूटना । कुचलना । उ०—कह धारंग अहँ हम पापर सांच धात बरती । समर शय मुख हँचन छन में कठिन करै करती ।—गोपाल ।

मुहा०—खँह कूँचना = (१) मागना । पीटना । (२) मान धँस करना । थला करना ।

कूँचा—संज्ञा पुं० [सं० कूच वा कृच] [स्त्री० कूँचा] (१) किसी रेरोदार लकड़ी या मूँज आदि को बूट कर बनाया हुआ झाड़ू जिससे चीनों को भाड़ते वा साफ करते हैं । झाड़ू । पेहारी । (३) दूटे हुए सहाज के टुकड़े ।

संज्ञा पुं० [हिं० काटा] भड़भूजे का करछा । करछा ।

कूँची—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँचा] (१) छोटा कूँचा । छोटा झाड़ू । (२) बूटी हुई मूँज या बाबों का गुच्छा, जिससे चीनों की मैल साफ करते वा उन पर रंग फेरते हैं । जैसे—सफ़ेदी काने की कूँची, सोनार की कूँची । (३) चित्रकार की रंग भरने की कूँची । नूँलिका ।

कूँ देना = (१) कूँची से रंग चढ़ाना । (२) कूँची करना । निखारना । † (३) खेत को एक काने से दूसरे जोतना ।

[फा० कूँचा] (१) कुलिया जिसमें मिथी जमाई

नाम एक

जाती है। उ०—कूची की चीनी। (२) मिठी का वह धरतन जिसमें कोलहू से निकल कर रस हनड़ा होता है।

कूज-संज्ञा पुं० [सं० कूज, पा० कूज] कूज पत्ती। कराकुल।

कूजड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंजड़ा] कूजड़े की स्त्री। यह खी जो शाक तरकारी इत्यादि घेयती है। कवाड़िन।

कूजना-क्रि० प्र० दे० "कूजना"।

कूजरी-संज्ञा स्त्री० दे० "कूजरी"।

कूड-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंड] (१) सिर को धराने के लिये लोहे की एक ऊँची टेपी जिसे खड़ाई के समय पहनते थे। खोद। उ०—शंगरी पहिरि कूड सिर धरहीं। परसा वांय सेल सम करहीं।—मुलसी। (२) योगेशिया टेपी के आकार का, मिठी वा लोहे का गहरा धरतन, जिसे डेंकुल में लगाकर सिंचाई के लिये कूड़े से पानी निकालते हैं। (३) यह गहरी खोरी जो खेत में हल जोतने से बन जाती है। कुंड।

कूडा-संज्ञा पुं० [सं० कुंड] [स्त्री० कूड] (१) पानी रखने का मिठी का गहरा धरतन। (२) गमला। छोटे पाँचे लगाने का घाला। (३) रंगनी करने की एक प्रकार की बड़ी हाँड़ी जिसे डोल भी कहते हैं। (४) मिठी वा काठ का पड़ा धरतन जिसमें आटा भाँड़ते हैं। कडीता। मंडता।

कूड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कूड़ा] (१) पत्थर का बना हुआ कटोरे के आकार का धरतन। पत्थर की च्याली। पयरी। (२) छोटी नाद। (३) कोलहू के बीच का वह गड्ढा जिसमें जाट रहती है।

कूंडा स्त्री० [सं० कुंडली] कूंडरी जिसे सिर पर रख कर बिना घड़ा उठाती हैं।

कूधाना-संज्ञा पुं० [सं० कुंधन = कुण्ड उठाना] (१) दुःख से धरपट शब्द सुँह से निकालना। कराहना। (२) कपूरों का गुठरपू करना। उ०—गुडू गूधपरी चिरी चुरी चहचह करं कुंधत कपोत भट काम के कटक के।—देव।

कूई-संज्ञा स्त्री० [सं० कुव + ई = प्रत्य०] जल में होनेवाला कमल की तरह का एक पौधा, जिसके पत्ते कमल ही के पत्तों के समान, पर कुछ लंबे और कटावदार होते हैं। यह पौधा भारतवर्ष में ऐसे तालों, पोखरों वा गड्ढों में होता है, जिनमें प्रसात का पानी इकट्ठा होता है। यह प्रसात के प्रारंभ में बीजों वा पुरानी जड़ों से निकलता है। इसके पत्ते पानी के ऊपर रहते हैं और उल्टे भीतर। शरद ऋतु अर्थात् प्रारंभिक में, इनमें सुंदर सुंदर सफ़ेद फूल लगते हैं, जो लंबी लंबी भाजों वा डंडकों में लगे रहते हैं। इसकी नाज और कमल की नाज में इतना भेद होता है कि कमल की नाज के ऊपर गान्धेवाली रोहें होती हैं, पर इसकी नाज विकनी होती है। कूईं वा कुमुदनी के फूल रात को खिलते हैं और चांदनी रात में बहुत मनोहर लगते हैं। इसी से

कवियों ने चंद्रमा का नाम "कुमुदयांघव" आदि रखा है। मनुद फूल ही की कूईं अधिक देखने में आती है, पर कहीं कहीं लाल और पीले फूलों की कूईं भी होती है। कमल के फूल की तरह इसके फूल के भीतर छुत्ता नहीं होता, बल्कि एक कणिकामंडल होता है, जिसके नीचे नाज की घुंठी होती है। यही घुंठी बड़ कर लडू की तरह हो जाती है और बीजों से भर जाती है। ये बीज काली सरसों की तरह के होने हैं और घेरा कहलाते हैं। भूजने पर इनके सफ़ेद लावे वा मीलों हो जाती हैं। रात के दिन इन बीजों के लावे खाए जाते हैं। पटने में बरे के लडू परचड़े बनते हैं। कूईं की जड़ भी खाई जाती है और दवा के काम में आती है। वैद्यक में कूईं का फूल शीतल, कफ और पित्त नाशक तथा दाह और भ्रम को दूर करनेवाला माना जाता है।

पयों-कैरय। कुमुदिनी। कुमुद। गर्दभ। सौगंधिक। कच्छ। कुव। सितोत्पल। कुवल। (लाज कूईं)-हलक। कोका। (सफेद कूईं)-उत्पल। रात्रियुष। हिमाग्न। शीत जलज। निराकुल। कुवल। कुवलय। कुवल।

कूक-संज्ञा स्त्री० [सं० कूक] (१) लंबी सुरीली ध्वनि। मोर वा कोयल की बोली। उ०—(क) तोरन मनुडू इंद्रपथ सोहत् मोर कूक सहनाई। धरतन धानैद थांसु धंडु सोइ द्रवध प्रजा समुदाई।—रघुनाम। (ख) बेलिन सें लयपट्टी हीं तमालन की अक्कीं धति करी। कोकिल कूक कपोतन के कुल फेलि करे अति धानेद वारी।—मतिराम।

क्रि० प्र०—सारना। (२) महीन और सुरीले स्वर से रोने का शब्द। (जैसे चिपों का)।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंजी] घड़ी वा घाने आदि में कुंजी देने की क्रिया, जिससे गति उत्पन्न हो। जैसे,—यह घाट दिनें की कूक की घड़ी है।

कूकना-क्रि० प्र० [सं० कूकन] लंबी सुरीली ध्वनि निकालना। कोयल या मोर का बोलना। उ०—(क) कींचत दामिनि कूकत मोर रटें मिलि भेकी भयानक टोटे।—रघुनाथ। (ख) करी कूरुप कसाहनें ये सु कुहू कहु कलिया कूरुन लागीं।—पद्माशर।

क्रि० सं० [हिं० कुंजी] कमानो कसने के लिये घड़ी वा घाने के पेंच को कसना। घड़ी चलाने वा घाना चलाने के लिये कुंजी पेंडना। कुंजी भरना।

कूकरा-संज्ञा पुं० [सं० कूकर] [स्त्री० कूकरा] कुत्ता। धान।

या०—कूकरकौर। कूकरनीदिया। कूकरकौर-संज्ञा पुं० [हिं० कूकर + कौर] (१) यह दवा खुवा जड़ा भोजन जो कुत्ते के आगे डाला जाता है। डुकड़ा। (२) तुष्य दन्तु। उ०—तांरें कहाय कदै तुलसी दू खनत न मंगिन।

कूकरकौरहि । जानकी जीवन को जन हूँ जरि जाउ तो जीभ जो जांचत औरहि ।—मुलसी ।

कूकरचंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० कूकर + सं० चंड] एक जंगली जड़ी का नाम जिसकी पत्तियों को पीस कर कुत्ते के काटे हुए स्थान पर रखते हैं ।

कूकरनिंदिया—संज्ञा स्त्री० [हि० कूकर + नींद] वह हलकी नींद जो भोड़ ही खटके से टूट जाय ।

कूकर बसेरा—संज्ञा पुं० [हि० कूकर + बसेरा] थोड़ा विधाम ।
क्रि० प्र०—करना ।—जेना ।

कूकर भंगरा—संज्ञा पुं० [हि० कूकर + हि० भंगरा] (१) काला भंगरा । (२) कूकरोंचा ।

कूकरमुत्तारी—संज्ञा पुं० दे० "कूकरमुत्ता" ।
कूकरलेंड—संज्ञा पुं० [हि० कूकर + लेंड] कुत्तों का मैथुन ।

कूका—संज्ञा पुं० [प० कूकना = चिलाना] सिचसों का एक पंथ जिसे सन् १८६७ में रामसिंह नामक एक बड़ई ने चलाया था । वह अपना उपदेश बहुत चिला चिला कर देता था और श्रोता लोग भी खूब भक्ति में लीन होकर चिला चिला कर प्रथं साहब के पद गाते थे इसी से इस पंथ का नाम ही 'कूका' पड़ गया ।

कूकी—संज्ञा स्त्री० [रेग०] एक प्रकार का कीड़ा जो जाड़े की पत्तियों को हानि पहुँचाता है ।

कूखी—संज्ञा स्त्री० दे० "कोख" ।
कूच—संज्ञा पुं० [वु०] प्रस्थान । रवानगी ।

मुहा०—कूच कर जाना = मर जाना । (किसी के) देवता कूच कर जाना = हेरा ध्वास जाता रहना । भय या किसी और कारण से विवेक नष्ट हो जाना । कूच का उँका या नूकना बजाना = (१) रवाना होना । (२) मर जाना । कूच धोलना = कूच करना ।

कूचा—संज्ञा पुं० [का०] (१) छोटा शकल । गली ।
धौ०—कूचागर्दी = दूध उधर फिरना । व्यर्थ धूमना ।

मुहा०—कूचा मरकना = दूध उधर ठोकर खाना । गली गली माय फिरना ।

(२) दे० "कूँचा (१), (२)" ।
कूची—संज्ञा स्त्री० दे० "कूँची" ।

कूज—संज्ञा स्त्री० [हि० कूजना] (१) ध्वनि । शब्द । आवाज़ । (२) शब्द करने की क्रिया ।

कूजन—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कूजित] दे० "कूज" ।
कूजना—क्रि० प्र० [सं० कूजन] (१) धोलना । मजुर शब्द करना ।

उ०—(क) विमल सलिल सरसिज बहु रंगा । जब खग कूजत गुंजत चूंगा ।—मुलसी । (ख) कंबु कंठ नाना मणि भूषण, उर मुक्ता की माल । कनक किंकिणी नूपुर कलरय, कूजत धाल मराल ।—सूर ।

कूजा—संज्ञा पुं० [का० कूजा] (१) प्याले या पुरवे के धाकरा का मट्टी का बरतन । कुचड़ । (२) मिट्टी के पुरवे में जमाई हुई थड़ गोलाकार मिसरी ।

संज्ञा पुं० [सं० कूजन] मोतिया या बेले का कूल । उ०—(क) कोई कूजा सतवर्ग चमेली । कोई कदम सुरस रस बेली ।—जायसी । (ख) कूजा, मरुआ, मोगरो मिलि कूमक हों ।—सूर ।

कूजित—वि० [सं०] (१) जो बोला या कहा गया हो । ध्वनित । (२) गुँजा हुआ या ध्वनिपूर्ण (स्थान आदि) । उ०—कोकिल कूजित कुंज कुटीर ।—हरिरचंद्र ।

कूट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहाड़ की ऊँची चोटी । जैसे—हेमकूट, चित्रकूट । (२) साँग । (३) (अनाज आदि की) ऊँची और बड़ी शक्ति या देवी । उ०—कोस भरे लों हेम मण्डि धवन के करि कूट । विप्रन दीनों नंद नृप भई शलौकिक लूट ।—गोपाल ।

धौ०—अन्नकूट ।

(४) हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है । खोंपी । परिहारी । (५) लोहे का मोगरा । हथौड़ा । (६) हरिणों के फँसाने का फंदा या जाल । (७) लकड़ी के म्यान में छिपा हुआ हथियार, जैसे—तलवार, गुस्ती आदि । (८) छल । धोखा । फरेय, जैसे—कूटनीति । (९) मिथ्या । असत्य । कूट । (१०) अमरत्य मुनि का एक नाम । (११) पड़ा । (१२) गुप्त बर । कीना । (१३) नगर का द्वार । (१४) गुप्त भेद । गुप्त रहस्य । (१५) जिसके अर्थ में हँसने हो । जिसका समझना कठिन हो । जैसे, सूर का कूट । (१६) वह हास्य या धर्म्य जिसका अर्थ गुप्त हो । उ०—करहिँ कूट नारदहिँ सुगाई । नीक कीन्ह हरि सुंदरताई ।—मुलसी । (१७) निहाई । (१८) वह बेल जिसके साँग टूटे हों ।

वि० [सं०] (१) कूट । मिथ्यावादी । (२) धोखा देने-वाला । छलिया । (३) कृत्रिम । बनाबटी । नकली । (४) प्रधान । श्रेष्ठ । (५) निश्चल । (६) धर्मश्रेष्ठ ।

संज्ञा स्त्री० [हि० कूट] कूट नाम की शीपय ।
संज्ञा स्त्री० [हि० काटना या कूटना] काटने, कूटने या पीटने की क्रिया, जैसे—मारकूट, काटकूट ।

संज्ञा स्त्री० [हि० कूटी] कूटी । भोपड़ा ।

कूटकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] छल । कपट । धोखा ।

कूटकर्मो—वि० [सं०] छली । कपटी । धोखेवाज़ ।

कूटता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कठिनाई । (२) मुझाई । (३) छल । कपट ।

कूटतुला—संज्ञा पुं० [सं०] वह तराजू जिसमें पसंगा हो वा जिसकी उँची में कूड़ हरे फेर हो । बाँड़ीचौर तराजू ।

कूटव्य-संज्ञा पु० दे० "कूटना" ।

कूटना-क्रि० सं० [सं० कूटन] (१) किसी चीज़ को नीचे रख कर) ऊपर से लगातार थलपूर्वक आघात पहुँचाना, जैसे—धान कूटना, सड़क कूटना, छाती कूटना ।

मुद्दा—कूट कर भरना = हूँस हूँस कर भरना । कस कस कर भरना । ठसठाठ भरना । उ०—उसमें कूट कूट कर चालाकी मरी है ।

(२) मारना । पीटना । डोकना । (३) सिल चक्री आदि में दाँकों से छेदते छेदते गडदे करना या दाँत निकालना । (४) बैल या भैंस का थंडकोण कूट कर उसे बधिया करना ।

कूटनीति-संज्ञा श्री० [सं०] क्षीय पंच की नीति या चाल । वह चाल या नीति जिसका रहस्य कठिनाता से खुले । पालिसी ।

कूटपाद-संज्ञा पु० [सं०] (संगीत में) गूढ़ के चार वर्णों में से एक वर्ण ।

कूटपालक-संज्ञा पु० [सं०] पितृव्य ।

कूटपाश-संज्ञा पु० [सं०] परिश्रमों को फँसाने का जाल ।

कूटपूर्व-संज्ञा पु० [सं०] हाथियों का त्रिविध ज्वर ।

कूटमान-संज्ञा पु० [सं०] (१) वह पैमाना जो ठीक नाप से बढ़ा या छोटा हो । (२) वह धाँद जो ठीक तौल से हलका या भारी हो ।

कूटयुद्ध-संज्ञा श्री० [सं०] धोखे की लड़ाई । वह लड़ाई जिसमें शत्रु को धोखा दिया जाय ।

कूटलेख-संज्ञा पु० [सं०] कूट या जाली दस्तावेज़ ।

कूटलेखक-संज्ञा पु० [सं०] जाली दस्तावेज़ लिखनेवाला । जालसाज़ ।

कूटशास्त्रलि-संज्ञा पु० [सं०] (१) एक प्रकार का शास्त्रलि जो जंगलों में होता है । इसके पत्ते जिंगनी के समान और कूल गहरे लाल रंग के होते हैं । इसकी जड़ औषधि के काम में आती है और वैद्यक में इसे कटुका, चरपरा, गरम और कफ, शीघ्रा, वदरोग और दधिरेविका को दूर करनेवाला माना है । (२) वमराज की गदा । (३) नरक में शास्त्रलि के आकार का लोहे का एक फँटीला वृत्त ।

कूटसाक्षी-संज्ञा पु० [सं०] कूटा गवाह ।

संज्ञा श्री० [सं०] कूटी गवाही । कूटी शहादत ।

कूटश-वि० [सं०] (१) सर्वोपरि स्थित । आला दर्जे का । (२) शत्रु । अचल । जिसमें कुछ शत्रु शत्रु न हो सके । (३) श्रवित्तारी । विनाशरहित । (४) गुप्त । छिपा हुआ । अत्यन्त । मारिदा ।

संज्ञा पु० [सं०] (१) व्याघ्रनर नाम का सुगन्धिद्रव्य । (२) परमेश्वर । परमात्मा । (३) जीव ।

विशेष-माल्य में "कूटव्य" केने धाम्ना-पुरुष को कहते हैं, जो परिष्काररहित हो और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्त तीनों

अवस्थाओं में एक समान रहे । न्याय में परमेश्वर को "कूटव्य" कहा है और उसे जन्म-गुणरहित अर्थात् किसी से न उन्नत होनेवाला माना है ।

कूटस्वर्ण-संज्ञा पु० [सं०] खोटा सोना । यनावटी सोना ।

कूटा-संज्ञा पु० [हिं० कूटना] [श्री० कूटा] कूटनपत्र करनेवाला । कूटना ।

कूटाक्ष-संज्ञा पु० [सं०] जाली पासा । यनावटी पासा ।

कूटी-संज्ञा पु० [सं० कूट + ई० (प्रत्य०)] (१) हँसी उड़ानेवाला । मसखरा । (२) जालसाज़ । जालिया ।

संज्ञा श्री० [हिं० कूटना] कूटनी । वृत्ती ।

कूट-संज्ञा पु० [देग०] एक पौधा जो हिमालय पर्वत पर ४००० फुट से १०००० फुट की उँचाई तक होता है । यदा इसे प्रायः सत्सर्का के लिये बोते हैं । संघात, भ्रामाण, चामा, दृषिय भारत, मध्य प्रांत और संयुक्त प्रांत में भी इसकी खेती होती है । बीज जूलाई में बोया जाता है और अक्टूबर में इसकी फसल तैयार होती है । पौधा डेढ़ दो फुट ऊँचा होता है और उसके सिरे पर नीले फूलों का गुच्छा लगता है । फूल देखने में बहुत सुंदर होने हैं । फूल गिर जाने पर फल लगते हैं । पकने पर बीजों को उंडल से मल कर अलग कर लेते हैं । बीज काले रंग के तिन्नेने, लंबे और सुकीर्ण होते हैं । भूरी निकल जाने पर उनके भीतर से दाँत निकाल कर धाया पीसते हैं जो कड़ाहार के लिये सर्वोत्तम काम आता है । फाफर । कुल्ह । काढ़ । तुंबा । काला तुंबा । कसरत । काढ़ ।

कूड़ा-संज्ञा पु० [सं० कूट, प्रा० कूट = डेर] (१) जमीन पर पड़ी हुई गंदे, खर पत्ते आदि जिन्हें साफ करने के लिये काढ़ दिया जाता है । कतवार ।

धै०—कूड़ा करकट । कूड़ाखाना ।
क्रि० प्र०—कना ।—लगाना ।—बदोरना ।—फाड़ना ।—उठाना ।—फँकना ।—फँसाना ।

(२) व्यर्थ और निकामी चीज़ । बेकाम चीज़ ।
कूड़ाखाना-संज्ञा पु० [हिं० कूड़ा + प्रा० खाना] वह स्थान जहाँ कूड़ा फँका जाता हो । कतवारखाना ।

कूड़-संज्ञा पु० [सं० कूट, प्रा० कूटि] (१) हल का वह भाग जिसके एक सिरे पर मुठिया और दूसरे पर खोंपी होती है । जाँघ । हलगत । परिहत । (२) बीने की वह प्रथा जिसमें हल की गरारी में बीज डाला जाता है । अथ खेत में तरी कम रह जाती है तब रबी की फसल कूड़ बोई जाती है । गेहूँ, लीली आदि की बोवाई इन्हीं तरह होती है । झोंटा का खलटा ।

वि० [सं० कू + कूट = कूट, प्रा० कूष] नासमक । अज्ञानी । बेवकूफ ।
धा०—कूटमग्न ।

धा०—कूटमग्न ।

कूटमगज-वि० [हि० कूट + मगज] जिसे कोई बात समझने में बहुत कठिनाता हो। मंदबुद्धि। कुंदबुद्धि।

कृषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा, मितार, सारंगी वा चिकारा आदि तंत्री वाजों की वह खूँटी जिसमें तार बाँधे रहते हैं और समय समय पर जिसे मरोड़ कर तार को ढीला या कड़ा करते हैं।

कृत-संज्ञा पुं० [सं० कृत = भाग्य] (१) वस्तु को बिना गिने, नापे या तौले उसकी संख्या, मूल्य या परिमाण का अनुमान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) दे० “कनकृत”।

कृतना-क्रि० सं० [हिं० कृत] (१) अनुमान करना। धंदाज़ लगाना। उ०—बैन सुनै न परै धृति लीं सुसकैयो मिलै अधरान को कृते।—सेवक। (२) किसी वस्तु को बिना गिने, नापे या तौले उसकी संख्या, मूल्य या परिमाण आदि का अनुमान करना। (३) दे० “कनकृत”।

कूद-संज्ञा स्त्री० [सं०] कूदने की क्रिया।

धौ०—कूद फाँद = कूदने या उछलने की क्रिया।

कूदना-क्रि० अ० [सं० कूदन, प्रा० कूदन] (१) दोनों पैरों को पृथिवी वा किसी दूसरे आधार पर से बल पूर्वक उठा कर शरीर को किसी और फँकना। उछलना। फाँदना। उ०—बह यहाँ से कूद कर वहाँ चला गया। (२) जान बूझ कर ऊपर से नीचे की ओर गिरना। उ०—बह खी कुएँ में कूद पड़े। (३) किसी काम या बात के बीच में सहसा था मिलना या दखल देना। उ०—तुम यहाँ कहाँ से कूद पड़े ? (४) क्रम बंग करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाना। उ०—तुम तो अभी चौथा पन्ना पढ़ते थे, बीचसे पन्ने में कैसे कूद गये ? (५) अत्यंत प्रसन्न होना। दे० “उछलना (३)”। (६) बड़ बड़ कर बातें करना। शोषी बधावना।

मुहा०—किसी के बल पर कूदना = निर्मा का सहारा पाकर बहुत बड़ बड़ कर बोलना।

क्रि० सं० लींच जाना। उल्लंघन कर जाना। फलांग जाना। किसी वस्तु की एक ओर से दूसरी ओर चला जाना। उ०—अप महावीर जी रामुद कूद गये तब सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।

संघा० क्रि०—जाना।—पड़ना।

कूदना-संज्ञा पुं० [हिं० कूदना] खेत आदि नापने का एक प्रकार के बीघे का परिमाण, जिसमें कुछ निश्चित कुदाने कूदनी पड़ती हैं।

कून-संज्ञा पुं० (१) दे० “कून”। (२) दे० “कुँद”।

कूनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कूनी] कोबलू का वह गड्ढा जिसमें जल के टुकड़े डाल कर पेरते हैं। कूनी।

कूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुआँ। इनारा। (२) छिद्र। छेद। सुराप, जैसे—रोमरूप। (३) गहरा गड्ढा। कुँद।

धौ०—कूपमंडूक।

कूपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा कुआँ। (२) धमड़े का बना हुआ, तेल वा घी रखने का पात्र। कुप्पा। (३) नाव बांधने का खूँटा। (४) नाव वा जहाज़ का मण्डूक। (५) चिता।

कूपन-संज्ञा पुं० [अं०] मनीश्राद्ध-कूपम का वह भाग जिस पर रुपया भोजेवाला कुछ समाचार आदि लिख सकता है और जो रुपया पाने वाले के पास रह जाता है।

कूपमंडूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कूप का मेटक। कूप में रहने वाला मेटक। (२) वह मनुष्य जो श्रमना स्थान छोड़ कर कहीं बाहर न गया हो, या थाल जगत् की जिसके कुछ ख़बर न हो।

कूबड़-संज्ञा पुं० [सं० कूर] (१) पीठ का टेढ़ापन। (२) किसी चीज़ का टेढ़ापन।

क्रि० प्र०—निकलना।—उठना।

कूबरी-संज्ञा स्त्री० दे० “कूबरी”।

कूबा-संज्ञा पुं० [हिं० कुवडा] (१) सूखड़ा। (२) वह धनुषाकार लकड़ी जिस पर बँडरा रखला जाता है। इसके दोनों सिरे दीवार पर रहते हैं, और इसके बीच के टेढ़े उभड़े हुए भाग पर बँडरा रखला जाता है।

संज्ञा पुं० [दे०] विटाई करनेवालों का सीसे का गोलाकार एक औज़ार जिसे टेढ़ी को भारी करने के लिये उभरे नौचे चिपका देते हैं। यह दुधारी वा एकत्री के बराबर गोल गोल होता है।

कूम-संज्ञा पुं० [दे०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है। गडवाल और चटगाँव में यह पेड़ बहुत होता है। इसकी लकड़ी इमारत के काम में धाती है और कहीं कहीं, जहाँ यह अधिक होता है, जलाई भी जाती है।

कूमटा-संज्ञा पुं० [दे०] एक पेड़ जो राजपूताने और सिंध देश में होता है।

संज्ञा स्त्री० [दे०] धारवार प्रांत में पैदा होनेवाली एक प्रकार की फ़सल।

कूर-वि० [सं० कूर] (१) दया रहित। निर्दय। (२) भयंकर। डरावना। (३) मगहूस। असुगुनियाँ। (४) दुष्ट। घुरा। दुमागी। उ०—राम नाम ललित ललाम कियो लाखन को बड़ा कूर कायर कपूत कौड़ी आध को।—हुलसी। (५) अफमंथ। जिसका किया कुछ न हो सके। मुस्त। निरुत्साह। उ०—सुभट सरीर नीर घारी भारी भारी तहाँ सूरन उदाह रूर कादर डतत हैं।—हुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० कूर = अंग] लगान की वह कमी जो उच्च जातियों को मुजरा दी जाती है, जिसमें वे लोग हलवादा रख सकें।

संज्ञा पुं० [हि० पूर = भरना] गुफिया समोसे आदि में भरने का मसाला ।
कूरता—संज्ञा स्त्री० [हि० कूर] (१) निर्दयता । कठोरता । येहमी । (२) जड़ता । मूर्खता । (३) अरसिकता । उ०—
 कृष्य चरित रस पूर, नमो सूर कलि सूर कथि । जासु भयित
 रस सूर, देत दूरि सुनि कूरता ।—खुराम । (४) कायरता ।
 दरपोकपन ।
कूरपन—संज्ञा पुं० दे० “कूरता” ।
कूरम—संज्ञा पुं० दे० “कूरम” ।
कूरा—संज्ञा पुं० [सं० कूट, प्रा० कूड = ढेर] [स्त्री० कूरी] (१)
 ढेर । राशि । उ०—सौस वसै बरदा यरदानि चड्यो यरदा
 यरनि बरदा है । धाम धरुयो विभूति को कूरो निवास तहां
 पास लै बरदा है ।—मुलली । (२) भाग । अंश । हिस्सा ।
कूरी—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की घास जिसे चपरेला या
 मोतिया भी कहते हैं ।
 संज्ञा स्त्री० [हि० कूर] छोटा ढेर ।
कूर्च—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुटी भर कुरा । (२) दोनों ओं के
 बीच का स्थान । (३) श्रेष्ठे और तर्जनी के बीच का स्थान ।
 (४) मूठ । थलस । (५) दुर्भ । (६) एक प्रकार का आसन ।
 (७) एक बीजमंत्र । (८) कूची । (९) मरुहक । सिर । (१०)
 गोदाम । भंडार ।
कूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कूची । (२) कली । (३)
 कुत्ती । (४) सुई । (५) फटा हुआ वृष । देना ।
कूर्दनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र मास की पूर्णिमा । इस तिथि
 को कामदेव का उत्सव होता है ।
कूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कच्छुप । कछुआ । (२) पृथिवी ।
 (३) प्रजापति का एक अवतार । (४) एक ऋषि जिन्होंने
 अश्वमेध के कई सूत्रों का विकास किया था । (५) एक
 वायु जिसका निवास आंध्रों में है और जिसके
 प्रभाव से पलकें खुलती और बंद होती हैं । यह दस प्राणों
 में से एक है (६) नाभिकक के पास की एक नाड़ी ।
 कछुआ । पेतानहर । (७) विष्णु का दूसरा अवतार । (८)
 संत के अनुसार एक सुद्धा या आसन जिसका व्यवहार
 देवता के ध्यान के समय किया जाता है । (९) दे०
 “कूर्मासन” ।
कूर्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं का एक तीर्थ, जहां कूर्मा-
 वतार भगवान का दर्शन होता है ।
कूर्मचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र जो तांत्रिक लोग
 नानवे हैं और जिससे शुभाशुभ का शकुन और फल जाना
 जाता है ।
कूर्मदादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीप शुद्ध १२ । इसी तिथि को
 कूर्मावतार का होना माना जाता है ।

कूर्मपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] अठारह मुख्य पुराणों में से एक ।
कूर्मपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कछुप की पीठ । (२) वह स्थल
 जो कछुप की पीठ की तरह ऊँचा नीचा हो । (३) नाणपुत्र
 या अम्बान नामक वृक्ष ।
कूर्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा ।
कूर्मासन—संज्ञा पुं० [सं०] योग में एक आसन का नाम । इसमें
 दोनों पैरों को तले ऊपर रख के पैरों से गुदा को दबा कर
 घुटनों के बल छाड़ा होना पड़ता है ।
कूर्मिका, **कूर्मी**—संज्ञा स्त्री० [सं० कूर्मिका] एक प्रकार का बहुत
 प्राचीन वाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे ।
कूल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किनारा । तट । तीर ।
 धौ०—कूलवती = नदी ।
 (२) सेना के पीछे का भाग । (३) समीप । पास । (४)
 नहर । नाला । (५) तालाब ।
कूलचर—संज्ञा पुं० [सं०] आशुर्वेद के अनुसार नदी किनारे
 विचरनेवाले हाथी, भैंस, हिरन, मूषर आदि पशु ।
कूला—संज्ञा पुं० [सं० कूला] [स्त्री० कुलीवा] (१) वह छोटा नाला
 जो किसी नदी नाले आदि में से पानी खाने के लिये खोदा गया
 हो । छोटी नहर । (२) दे० “कूला” ।
कूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा या मितार के नीचे का भाग ।
कूलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।
कूली—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की बहुत छोटी मड़ली जो
 दक्षिण भारत की नदियों में होती है ।
कूलचर—संज्ञा पुं० दे० “कूलचर” ।
कूलहर्ना—कि० अ० [सं० कूल्य = देग] पीड़ा सूचक शब्द
 करना । कांपना । कराहना ।
कूल्हा—संज्ञा पुं० [सं० कोट्ट = कोट, कोल] (१) कोष के नीचे
 कमर में पैरू के दोनों ओर निकली हुई हड्डियाँ ।
मुद्गा—कूल्हा सरकना = गिरने या किसी प्रकार का आघात
 लगने के कारण कूल्हे का आगे स्थान से हट जाना । कूल्हा
 मटकाना = चुनौट मटकाना ।
 (२) कुश्ती का एक पंच जिसमें पहलवान सामने सड़े
 हुए चिपची की पाँठ पर दाहिनी तरफ से अपना दाहिना
 हाथ ले जा कर उसका दाहिना जंघिया पकड़ता है और
 अपने बाएँ हाथ से उसका दाहिना पैरू या पकड़ कर रींचता
 हुआ अपने कूल्हे पर से लाद कर सामने चित गिराता है ।
कूलही—संज्ञा स्त्री० [देग०] पीतल । (सेनारों की वेलाई)
कूलत—संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति । बल । कोर । ताकत ।
कूलर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ का वह भाग जिस पर अर्धा बांधा
 जाता है । युगधर । हस्त । उ०—किपु हेमदंडन पै मंडन
 विचित्र चित्र, बने कोर मोर चार श्रोत्र, मनभावते । कूलर अनूप
 रूप क्षत्री द्रवत लैसी, द्रवज न मोती लटकत द्रवि द्वावते

(२) रथ में शक्ति के अङ्ग का स्थान । (३) कुवड़ा । (४) कुम्भक । कुम्भा । कुल ।
 वि० मनोहर । सुन्दर ।
 कुम्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के हवनिय देवता ।
 कुम्भांड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुम्हड़ा । (२) पेड़ा । (३) वैदिक काल के एक ऋषि । (४) एक प्रकार के पिशाच जो शिव के गण हैं । (५) बाष्पासुर का प्रधान मंत्री ।
 कुम्भांडो-संज्ञा स्त्री० [सं०] यजुर्वेद की एक ऋचा जिसके ऋचा कुम्भांड ऋषि थे ।
 कुम्भ-संज्ञा पुं० [सं० कुं] एक प्रकार की घास जिसके डंठलों का भाड़ बनता है ।
 कुम्ह-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुं] (१) चिग्याड़ । हाथी की चिक्कर । (२) चीख । चिहाहट । उ०—संभु सतावत हैं जग को हैं कठोर महा सच को मद तूरत । कुम्ह केँ केँ कर मारें कहीं लखि कुम्भन धारन धारन धूरत ।—शुभनाथ ।
 कुम्हा-संज्ञा पुं० दे० “कुम्हा” ।
 कुम्ही-संज्ञा स्त्री० [देग०] बाज की जाति की एक प्रकार की शिकारी चिड़िया । कुही
 कुम्हर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलक की वह वायु जिसके वेग से क्षीक आती है । (२) शिव । (३) चाय । चाय । (४) एक पत्नी । (५) कनेर का पेड़ ।
 कुम्हल-संज्ञा पुं० दे० “कुम्हर” ।
 कुम्हलास-संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट ।
 कुम्ह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कष्ट । दुःख । (२) पाप । (३) मूत्र-कुम्ह रोग । (४) कोई व्रत जिसमें पंचगव्य प्राशन कर दूसरे दिन उपवास किया जाय । उ०—कुम्ह सांतपन । वि० (१) कष्टसाध्य । (२) कष्टयुक्त ।
 कुम्ह-वि० [सं०] (१) किया हुआ । संपादित । (२) बनाया हुआ । रचित । उ०—तुलसीकृत रामायण । (३) संबंध रखनेवाला । तत्संबंधी । उ०—फूले कांस सकल महि छाई । जनु बारा कुम्ह प्रगट गुड़ाई ।—तुलसी ।
 कुम्हो-यदा ‘कुम्ह’ संबंध विभक्ति ‘का’ के स्थान पर आया है । संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार युगों में से पहला युग । सतयुग । (२) प्रदह प्रकार के दासों में से एक । वह दास जिसने कुछ नियत काज तक सेवा करने की प्रतिज्ञा की हो । (३) एक प्रकार का पास, जिसमें चार चिह्न बने होते हैं । (४) चार की संख्या ।
 कुम्हकर्मा-वि० [सं०] (१) जो अपना काम सिद्ध कर चुका हो । सफलता-प्राप्त । कामयाब । (२) चतुर । प्रवीण । कुम्हल । संज्ञा पुं० (१) तीनों ऋषों (ऋषि, देव और पितृ) से मुक्त सेन्यासी । (२) परमेश्वर ।
 कुम्हकाम-वि० [सं०] जिसकी कामना पूरी हो गई हो ।

कुम्हकारज-वि० दे० “कुम्हकार्य” ।
 कुम्हकार्य-वि० [सं०] जिसका प्रयोजन सिद्ध हो चुका हो । सफल-मनोरथ । कामयाब ।
 कुम्हकृत्य-वि० [सं०] जिसका काम पूरा हो चुका हो । कृतार्थ । सफल-मनोरथ । उ०—हम आपके दर्शन से कुम्हकृत्य हो गए ।
 कुम्हो-यदा ‘कुम्ह’ शब्द का प्रयोग आदर, सम्मान, धन आदि सूचित करने में बहुत अधिक होता है ।
 कुम्ह-वि० [सं०] [संज्ञा कुम्हता] किये हुए उपकार को न मानने-वाला । अकुम्ह । नमकहराम ।
 कुम्ह-संज्ञा स्त्री० [सं०] किये हुए उपकार को न मानने का भाव । अकुम्हता । नमकहरामी ।
 कुम्ह-संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० “कुम्हता” ।
 कुम्ह-वि० [सं०] दे० “कुम्हता” ।
 कुम्ह-वि० [सं०] [संज्ञा कुम्हता] किये हुए उपकार को माननेवाला । पृहसान माननेवाला । उ०—इस कार्य को कर दीजिये तो हम आपके बड़े कुम्ह होंगे ।
 कुम्हता-संज्ञा स्त्री० [सं०] किये हुए उपकार को मानने का भाव । निहोरा मानना । पृहसानमेंदी ।
 कुम्हदंड-संज्ञा पुं० [सं०] यमराज । उ०—गोपन सदा भाव करि देखे दुष्ट नृपति कुम्हदंड । पुत्र भाव बसुदेव देवकी देखे निव्य अखंड ।—सूर ।
 कुम्हनिंदक-वि० [सं०] कुम्ह । नाशकरा । हारामी ।
 कुम्हफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीतलचीनी । (२) कोलशिबी । सुधरा सेम ।
 कुम्हमाल-संज्ञा पुं० [सं०] अमिलतास ।
 कुम्हमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण (दक्षिण) देश की एक छोटी नदी जिसके जलपान का माहात्म्य भागवत में लिखा है ।
 कुम्हमुख-संज्ञा पुं० [सं०] पंडित ।
 कुम्हयुग-संज्ञा पुं० [सं०] सतयुग ।
 कुम्हधर्मा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा कनक का पुत्र और कुम्ह-वीर्य का भाई । (२) हृदिक का पुत्र । (३) जैनमतानुसार यत्तमान अवसर्पिणी के तेरहवें अर्हत् के पिता ।
 कुम्हविद्य-वि० [सं०] जितेण्डविका का अभ्यास हो । जानकार ।
 कुम्हवीर्य-संज्ञा पुं० [सं०] राजा कनक का पुत्र और कुम्हधर्मा का भाई ।
 कुम्हपेदी-वि० [सं०] उपकार माननेवाला । कुम्ह ।
 कुम्हसापत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके पति न उसके जीवनकाल में ही दूसरा विवाह कर लिया हो ।
 कुम्हहस्त-वि० [सं०] (१) चतुर । कुम्हल । किसी काम को करने में होशियार । (२) बाण चलाने में निपुण ।
 कुम्हजालि-वि० [सं०] हाथ जोड़े हुए । हाथ बांधे हुए ।

संज्ञा स्त्री० लाजवंती । लजापुर ।

कृतांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समाप्त करनेवाला । शंत करनेवाला ।

(२) यम । धर्मराज ।

यो०—कृतांतजनक = सूर्य । कृतांतपुर = यमलोक । कृतांत-मगिनी = यक्ष्मा ।

(३) पूर्व जन्म में किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों का

फल । (४) सिद्धांत । (५) श्रुत्यु । (६) पाप । (७) शनिवार ।

(८) देवता मात्र । (९) भरणी नक्षत्र । (१०) दो की संख्या ।

कृतांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रेणुका नाम का गंध द्रव्य ।

कृताकृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किया और बिना किया हुआ ।

(२) अथवा काम । (३) कार्य और कारण । (४) सोना और चांदी । (५) वह हृष्य द्रव्य जो कचा और थपक हो ।

जैसे—कच्चे चावल आदि ।

कृतात्मा-संज्ञा पुं० [सं०] यह मनुष्य जिसकी धारणा शुद्ध हो । महामा ।

कृतात्यय-संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य दर्शन के अनुसार भोग द्वारा कर्मों का नाश ।

विशेष—सांख्य का मत है कि एक बार जो कर्म उत्पन्न होता है वह बिना भोग किए हुए नष्ट नहीं होता । यद्यपि ज्ञान उत्पन्न होने पर कर्मों का शंत हो जाता है और नये कर्मों की उत्पत्ति नहीं होती, पर इससे पहले का किया हुआ कर्म बिना भोग किये नष्ट नहीं हो सकता । इसीलिये मुक्त पुरुष की दो अवस्थाएँ होती हैं, जीवनमुक्ति और विदेहकीर्तव्य । ज्ञान उत्पन्न होने पर मनुष्य के कर्मों का शंत हो जाता है और उसे जीवनमुक्ति मिलनी है । लेकिन पूर्वसंचित या प्राग्ज्य कर्मों का फल भोगने के लिये या तो मुक्त पुरुष को शरीर विद्यमान रहता है और या उसे पुनः शरीर धारण करना पड़ता है । इसी अवस्था में फल भोग कर कर्मों की जो समाप्ति की जाती है उसे "कृतात्यय" कहते हैं । विदेहकीर्तव्य इसके बाद मिलता है ।

कृताश्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पकया हुआ अन्न । (२) (भोजन के बाद) पचया हुआ अन्न ।

कृताश्र-संज्ञा पुं० [सं०] गत अन्नमयिणी के १६ वें अहृत का नाम ।

कृताश्र-वि० [सं०] (१) जिसका अभिमान पूरा हो चुका हो । जो अपने सय काम कर चुका हो । कृतकृत्य । सफलमेव । (२) संतुष्ट । (३) कुशल । निपुण । होशियार । (४) जो मुक्ति प्राप्त कर चुका हो ।

कृतालक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक अनुचर ।

कृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करतल । करनी । (२) कार्य । काम । (३) आशय । छति । (४) ईदजाल । जट्ट । (५) धर्म-संख्या । दो समान शंकेर का घात । (गणित) (६) डाकिनी ।

(७) अनुसुप्त जाति का एक छंद जिसमें ब्रह्म ब्रह्म शरों के चार चरण होते हैं । ७०—नौ रात्रि राज गैल तें गुणाल ग्याल तीन सात । वायु सेवनाथे प्राप्त थाग जात धारा लै सुकूल पात । वाय के धरें सर्व सुकूल पात मोद युक्त मातु हाव । धम्य मान मातु मात वृत्त देखि हर्ष रोम रोम गात । (८) वीस की संख्या । (९) कटारी ।

संज्ञा पुं० विन्ध्य ।

कृतिकर-संज्ञा पुं० [सं०] (वीस हाथवाला) रावण ।

कृतिका-संज्ञा स्त्री० दे० "कृतिका" ।

कृतिवास-संज्ञा पुं० दे० "कृतिवास" ।

कृती-वि० [सं०] (१) कुशल । निपुण । दक्ष । (२) साधु ।

(३) पुण्यात्मा ।

संज्ञा पुं० च्यवन ऋषि के पुत्र और उपरिचर वसु के पिता का नाम ।

कृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मृगचर्म । (२) चमड़ा । पाल ।

(३) भोजपत्र । (४) कृत्तिका नक्षत्र ।

कृत्तिकाजि-संज्ञा पुं० [सं०] वह शकटाकार निलक जो अश्वमेध यज्ञ में घोड़े को लगाया जाता था ।

कृत्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) २७ नक्षत्रों में से तीसरा नक्षत्र । इस नक्षत्र में ६ तारे हैं जिनका संयुक्त आकार अग्निशिला के समान होता है । यह चंद्रमा की पत्नी और कार्तिकेय का पालन करनेवाली मानी जाती है और इसकी अग्निधारी "अग्नि" है । (२) दृक्का । गाड़ी ।

कृत्तिकास, कृत्तिकास-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव जी ने गजासुर को मार कर उसकी खाल छोड़ ली थी, इसीसे उनका यह नाम पड़ा ।

कृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्त्तव्य कर्म । वेदविहित आचर्यक कार्य ।

विशेष—बौद्धों के मत से ज्ञानानुसार कृत्य १४ प्रकार के होते हैं । यथा—(१) प्रतिबंधि । (२) अर्थान । (३) आचरण । (४) दर्शन । (५) अथवा । (६) प्राण । (७) शयन । (८) स्पर्श । (९) संप्रतिच्छन्न । (१०) संतीर्ण । (११) उद्यान । (१२) गमन । (१३) तद्वात्तवन और (१४) च्युति । इसके अतिरिक्त कालानुसार उन्होंने इसके पाँच और भेद किये हैं । (१) पूर्व-भाक्त-कृत्य । (२) पश्चात्-भाक्त-कृत्य । (३) प्रथम-याम-कृत्य । (४) मध्यम-याम-कृत्य और (५) पश्चिम-याम-कृत्य । जैनियों के अनुसार कृत्य ६ प्रकार के होते हैं—(१) दिन-कृत्य । (२) रात्रिकृत्य । (३) पर्वकृत्य । (४) चातुर्मासिककृत्य । (५) संवत्सरकृत्य और (६) जन्मकृत्य ।

(७) श्रुत, प्रेत, यज्ञादि जिनका पूजन अग्निचार के लिये होता है । कृत्यका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह की जो हला आदि बड़े बड़े भयंकर कार्य कर सकती हो ।

कृत्यविद्-वि० [सं०] कर्तव्य कर्म को जाननेवाला । कर्तव्य में चतुर । कुशल । निपुण ।

कृत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संग्रं को अनुसार एक रासली जिसे तांत्रिक लोग धरने घनुष्ठान से उष्यत्र करके किसी शयु को विनष्ट करने को भोजने हैं । यह बहुत भयंकर मानी जाती है । इसका चर्चन वेदों तक में आया है । (२) अभिचार । (३) दुष्टा वा कर्कराशी को ।

धा०-कृत्याद्रूपण ।

कृत्याद्रूपण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का कृत्य जो कृत्या के प्रतिहार के लिये किया जाता है । (२) एक प्रकार की शोषण जिससे कृत्या का दोष निवारण होता है । (३) अगिरस वंश के एक ऋषि जो कृत्या के दोष का निवारण किया करते थे ।

कृत्याकृत्य-वि० [सं०] करने और न करने योग्य काम । भला बुरा काम ।

कृत्रिम-वि० [सं०] (१) जो असली न हो । नकली । बनावटी । जाली । (२) धारह प्रकार के पुत्रों में से एक ।

विशेष-पुत्राभिलाषी पुरुष, यदि किसी माता-पिता-हीन बालक को धन संपत्ति का लोभ दिखा कर उससे अपना पुत्र बनना स्वीकार करा कर उसे पुत्रवत् अपने संग रखले तो वह बालक उस पुरुष का कृत्रिम पुत्र कहलावेगा ।

संज्ञा पुं० (१) काच लवण । कचिया नोन । (२) जवादि गंध द्रव्य । (३) रसैत । रसजिन ।

कृत्रिम धूप-संज्ञा पुं० [सं०] दशांगदि धूप जो अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों को मिला कर बनाया जाता है ।

कृत्रिम भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह चतूरा जो किसी मकान या हमारत के नीचे उसे खोद धादि से बचाने के लिये बनाया जाता है । कुर्ती ।

कृत्रिम मित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जिसके साथ किसी उषकार आदि के कारण मित्रता स्थापित हो । शत्रुओं में वह मित्र और प्रकार के मित्रों से श्रेष्ठ माना गया है ।

कृदंत-संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जो धातु में कृत् प्रत्यय के लगाने से बने । जैसे-पाचक, नंदन, भुक्त, भोक्तव्य, भोक्ता आदि ।

कृप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक काल के एक राजर्षि का नाम । (२) दे० "कृपाचार्य" ।

कृपा-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कृपणता] (१) कंजूस । सूम । अनुदार । कद्रय । (२) छद्म । नीच ।

कृपणता-संज्ञा स्त्री० [सं०] कंजूसी ।

कृपणार्थ-संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपण + अर्थ (प्रत्य०) कृपणता । कंजूसी ।

कृपया-क्रि० वि० [सं०]-कृपापूर्वक । अनुग्रहपूर्वक । उ०-कृपया इस कार्य को कर दीजिये ।

कृपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कृपण] (१) बिना किसी प्रतिकार की आशा के दूसरे की भलाई करने की इच्छा वा वृत्ति । अनुग्रह । दया । मेहरबानी ।

धा०-कृपापात्र । कृपाभाजन ।

(२) चमा । माफ़ी । उ०-जो क्रुद्ध हो गया सो हो गया, श्रय कृपा करो ।

कृपाचार्य-संज्ञा पुं० [सं०] गौतम के पुत्र शरद्वत् के पुत्र । इनकी पहन कृपी से द्रोणाचार्य का विवाह हुआ था । ये धिनुर्विधा में बड़े प्रवीण थे । द्रोणाचार्य की भक्ति इन्होंने भी की और और पांडवों को अश्रयिवा दी थी । कुरुक्षेत्र के युद्ध में ये कौरवों की ओर से लड़े थे, पर युद्ध समाप्त होने पर युधिष्ठिर के यहाँ रहने लगे थे । राजा परीक्षित को भी इन्होंने अश्रयिवा सिखाई थी ।

कृपाश-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्रवण० कृपाणी] (१) तलवार । (२) कटार । घुरा । (३) दंडक शूच का एक भेद । यह छंद ३२ वर्णों का होता है । श्राट अष्ट वर्णों पर यति होती है । इसमें ३१ वाँ वर्ण शुरु और ३२ वाँ लघु होता है । यतियों पर अनुप्रासों का मिलान और श्रंत में "नकार" का होना इस छंद की जान है । उ०-चली हूँ के विकराल, महा कालहूँ को काल, किये दोऊ हम लाल, धाय रण समुहान । तहाँ लाने लहरान, निसिचरहु परान, वहाँ कालिका रिसान, मुक्ति भारी किरपान ।

कृपाशक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तलवार । (२) कटार ।

कृपाशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी तलवार । (२) कटारी ।

कृपाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी तलवार ।

कृपापात्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह न्यक्ति जिस पर कृपा हो । कृपा का अधिकारी । उ०-आप उनके बड़े कृपापात्र हैं ।

कृपायतन-संज्ञा पुं० [सं०] कृपा के भवन । कृपा के मांदार । अत्यंत कृपालु ।

कृपालु * -वि० दे० "कृपालु" ।

कृपालता * -संज्ञा स्त्री० दे० "कृपालता" ।

कृपालु-वि० [सं०] कृपा करनेवाला । दयालु ।

कृपालुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दया का भाव । मेहरबानी ।

कृपिल * -वि० दे० "कृपय" ।

कृपिणता-संज्ञा स्त्री० दे० "कृपणता" ।

कृपिन * -वि० दे० "कृपय" ।

कृपिनता * -दे० "कृपणता" ।

कृपिनार्थ-संज्ञा स्त्री० दे० "कृपणार्थ" ।

कृपी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपाचार्य की पहन जो द्रोणाचार्य को व्याही थी । अश्वत्थामा की माता ।

कृमि-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कृमि] (१) छद्म कीट। छोटा कीड़ा।
 (२) किमिजी। हिरमिजी कीड़ा या मिट्टी। (३) लाह।
 धा०—कृमिकोश = कुसवारी।
 कृमिकेरा—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम के कीड़े का घर। कोया।
 कहन। कुसवारी।
 कृमिज-वि० [सं०] कीड़ों से उलझ।
 संज्ञा पुं० [सं०] [कृ० कृमि] (१) रेशम। (२) अणार।
 (३) किमिजी। हिरमिजी।
 कृमिभोजन-संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।
 कृमिरोग-संज्ञा पुं० [सं०] आमाशय और पचाशय में केंचुप या
 कीड़े उलझ होने का रोग।
 कृमिल-वि० [सं०] जिसमें कीड़े पड़ गए हों।
 कृमिल्ला-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ स्त्री जिसके बहुत लड़के पैदा होते
 हैं। बहुप्रसवा स्त्री।
 कृमिलादय-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार आत्रमीढ़ वंश
 का एक राजा।
 कृमिदौल-संज्ञा पुं० [सं०] वनमीक। विमौट। वांवी। यामी।
 कृदा-वि० [सं०] (१) दुबला पतला। शीथ। (२) अल्प।
 छोटा। सूक्ष्म।
 धा०—कृदादरी।
 कृदाना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुबलापन। दुर्बलता। शीथता।
 पतलापन। (२) अल्पता। सूक्ष्मता। कमी।
 कृदातारि-संज्ञा स्त्री० दे० “कृदाता”।
 कृदास्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीथता। दुबलापन। (२) अल्पता।
 सूक्ष्मता। कमी।
 कृदार-संज्ञा पुं० [सं०] [कृ० कृग] (१) तिल और चावल की
 रीचड़ी। (२) गिचड़ी। (३) फेसारी। लोचिया मटर।
 हुचिया।
 कृदाराल-संज्ञा पुं० [सं०] चिचड़ी।
 कृदानु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) चित्रक। चीता।
 धा०—कृदानुरेता।
 कृदानुरेता-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।
 कृदाशय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागवत के अनुसार कृष्णविन्दु-वंश
 का एक राजर्षि जो समय का पुत्र और महादेव का पड़ा भाई
 था। (२) दृष्ट के जामता। भागवत के धनुसार इन्होंने दृष्ट
 की श्रविष्य और धीपणा नाम की कन्याओं से विवाह किया
 था। श्रविष्य के गर्भ से पूरुषेश और धीपणा के गर्भ से
 देवल नामक पुत्र हुए थे। रामायण के मत से कृदाशय ने दृष्ट
 की जया और सुप्रभा नाम की कन्याओं को व्याहा था,
 जिनके पचास पचास शकम्बरूप पुत्र हुए थे। (३) हरिवंश
 के अनुसार बुध्मार-वंशी एक राजा, जो नाट्य शास्त्र के एक
 प्राचार्य माने जाते हैं।

कृदाशय-संज्ञा पुं० [सं० कृगविन्] (१) कृदाशय-कृत नाट्यशास्त्र
 का पढ़ने वा पढ़ानेवाला। (२) नाट्यकलाकुशल व्यक्ति।
 नट। नर्तक।
 कृदाशय-वि० [सं०] दुर्बल। शीथकाय। दुबला पतला।
 कृदादरी-वि० [कृ०] [सं०] पतनी कमरवाणी (स्त्री)।
 कृपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किमान। खेतिहर। कारतकार।
 (२) हल का फाल।
 कृपाय-संज्ञा पुं० [सं०] किमान। खेतिहर। कारतकार।
 कृपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कृप] खेती। कारत। किसानी।
 कृपिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेतिहर। किसान। (२) हल
 का फाल।
 कृपिकार-संज्ञा पुं० [सं०] किमान। खेतिहर।
 कृपी*—संज्ञा स्त्री० दे० “कृपि”।
 कृष्ण-वि० [सं०] (१) श्याम। काला। सियाह। (२) नीला या
 आसमान।
 संज्ञा पुं० [कृ० कृष्ण] (१) यदुवंशी वसुदेव के पुत्र
 जो भोजवंशी देवक की कन्या देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए
 थे। उस समय देवक के भाई राजा उग्रसेन का पुत्र कंस
 अपने पिता को कैद कर मथुरा का राज्य करता था। देवकी
 के विवाह के समय कंस को किसी प्रकार यह बात मालूम
 हो गई थी कि देवकी के आठवें गर्भ से जो बालक उत्पन्न
 होगा वह सुम्भ को मार डालेगा। इसलिये कंस ने देवकी और
 वसुदेव को अपने यहां कैद कर लिया था। देवकी के सात
 बालकों को तो कंस ने जन्म लेते ही मार डाला था, पर
 आठवें बालक कृष्ण को, जिनका जन्म मातृओं की कृष्ण
 श्रद्धा की श्रापी रात के समय हुआ था, वसुदेवजी गोकुल
 में जाकर नन्द के घर रख आये थे। यद्दे होने पर कृष्ण ने अनेक
 अद्भुत कार्य किये थे जिनके कारण शक्ति हो कर कंस ने
 उन्हें मारना डालने के अनेक उपाय किये, पर सब व्यर्थ हुए।
 अंत में कृष्ण ने कंस को मार डाला। इन्होंने विदर्भ के
 राजा की कन्या रहिमणी से विवाह किया था। पीछे ये
 द्वारका चले गये और वहाँ इन्होंने पांडवों का राज्य स्थापित
 किया। महाभारत के युद्ध में इन्होंने पांडवों को बहुत सहा-
 यता दी थी। इनकी शत्रु एक बरेलिये के तीर लगने से
 हुई थी। ये विष्णु के दस अवतारों में से आठवें अवतार
 माने जाते हैं। (२) एक असुर इसका चिक्र घंटों में आया
 है और जिने इंद्र ने मारा था। (३) एक क्षत्रिय जिन्होंने आश्वेद
 के कई मंत्रों का प्रकाश किया था। (४) अश्ववेद के अंत-
 र्गत एक उपनिषद्। (५) अश्वपुत्र इंद्र का एक भेद जिसमें
 २२ गुरु और १०८ जपु, कुत १३० वर्ष और १६२ मासार्थ,
 अथवा २२ गुरु और १०४ जपु, कुत १२९ वर्ष और १४८
 मासार्थ होती हैं। (६) चार अश्वों का एक दृष्ट जिसके

प्रत्येक धारण में एक "तगण्य" और एक लघु होता है। उ०—
 तू ला मन । गोपीधन । कृष्णै तन । कृष्णै भन । (७) वेद-
 व्यास । (८) अर्जुन । (९) कोयल । (१०) कौंधा । (११)
 कदम का पेड़ । (१२) मास का वह पक्ष जिसमें चंद्रमा का
 हास हो । शेषेरा पक्ष । (१३) कलियुग । (१४) शास्त्रलि-
 द्रोप-निवासी शूद्र । (१५) करौंदा । (१६) नील । (१७)
 पीपल । (१८) जैनिशों के मतानुसार नौ काले वसुदेवों में से
 एक । (१९) यौद्धों के मतानुसार एक राक्षस जो बुद्ध का शत्रु
 माना जाता है । (२०) चंद्रमा का ध्वजा । (२१) लोहा ।
 (२२) सुरमा ।
 कृष्णकर्म—संज्ञा पु० [सं०] (१) हिंसा आदि दूपापपूर्ण कार्य ।
 (२) वह कर्म जो बिना फल की कामना के किया जाय ।
 (३) फेड़े की चिकित्सा की एक प्रक्रिया ।
 कृष्णकैलि—संज्ञा पु० [सं०] (१) गुलशय्यास । गुलावास का
 फूल । (२) गुलावास का पेड़ ।
 कृष्णगंगा—संज्ञा स्त्री० दे० "कृष्ण (३)" ।
 कृष्णगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सैजन । शोभांजन ।
 कृष्णगर्भ—संज्ञा पु० [सं०] कायफल ।
 संज्ञा स्त्री० कृष्ण नामक धातु की भाव्या ।
 कृष्णचंद्र—संज्ञा पु० दे० "कृष्ण (१)" ।
 कृष्णचूड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुंजा । घुंघची । (२) एक
 प्रकार का कैंटीला वृक्ष जिसके फूल पीले या लाल होते हैं
 और जिनमें हलकी सुगंध होती है। यह साधारणतः सप्त
 ऋतुओं में और विशेषतः वरसात में फूलता और फलता है ।
 कृष्णचैतन्य—संज्ञा पु० दे० "चैतन्य" ।
 कृष्णच्छवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काले हिरन का चमड़ा । (२)
 काला बादल ।
 कृष्णजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी ।
 कृष्णजीरक—संज्ञा पु० [सं०] काला जीरा ।
 कृष्णद्वैपायन—संज्ञा पु० [सं०] पराशर के पुत्र वेदव्यास । पराशर्य्ये ।
 कृष्णपक्ष—संज्ञा पु० [सं०] श्रेष्ठियारा पक्ष । वह पक्ष जिसमें
 चंद्रमा का हास हो ।
 कृष्णपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काले पत्ते की तुलसी । कृष्णा ।
 कृष्णपदी—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार की गानेवाली चिटिया जो
 लंबाई में एक चित्ता होती है। यह करमीर से सृष्टान तक
 पाई जाती है और जाड़ों में नीचे उतर आती है। यह बुरों
 की जड़ में घोंसला बनाती है और एक वार में ४ धड़े देती
 है ।
 कृष्णपाक—संज्ञा पु० [सं०] करौंदा ।
 कृष्णपुच्छ—संज्ञा पु० [सं०] रोहू मखली ।
 कृष्णपुष्प—संज्ञा पु० [सं०] काला धतूरा ।
 कृष्णफल—संज्ञा पु० [सं०] करौंदा ।

कृष्णफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मिरिच की लता । (२) एक
 प्रकार का छोटा जामुन ।
 कृष्णशीतल—संज्ञा पु० [सं०] तरबूज ।
 कृष्णभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ की मट्टी काली हो ।
 कृष्णभेदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी ।
 कृष्णमंडल—संज्ञा पु० [सं०] आँस की पुतली ।
 कृष्णमणि—संज्ञा पु० [सं०] नीलम ।
 कृष्णमुख—संज्ञा पु० [सं०] (१) लंगूर । (२) एक दानव का
 नाम ।
 कृष्णयजुष—संज्ञा पु० [सं०] यजुर्वेद के दो भेदों में से एक ।
 इसमें ८९ शाखाएँ हैं जिनमें तैत्तिरीय और आपस्तंब
 आदि शाखाएँ प्रधान हैं ।
 कृष्णराज—संज्ञा पु० [सं०] भुजंगा पक्षी ।
 कृष्णला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घुंघची । (२) शीशम का वृक्ष ।
 (३) रत्ती । (परिमाण)
 कृष्णवेणी—संज्ञा स्त्री० दे० "कृष्णा (३)" ।
 कृष्णसखा—संज्ञा पु० [सं०] शत्रु ।
 कृष्णसखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) द्रौपदी । (२) जीरा ।
 कृष्णसार—संज्ञा पु० [सं०] (१) काला मृग । काला हिरन ।
 करसायल । (२) सेँ हड़ । (३) शीशम का वृक्ष । (४) पैर
 का वृक्ष ।
 कृष्णसर्कध—संज्ञा पु० [सं०] सुरती का पेड़ ।
 कृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) द्रौपदी । (२) पीपल । विष्णवी ।
 (३) दक्षिण देश की एक नदी जो पश्चिमी घाट से निकल
 कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है । कृष्ण गंगा । कृष्ण-
 वेणी । (४) नीलवरी । (५) काजी दाउ । (६) काज
 जीरा । (७) अमर । (लकड़ी) । ऊद । (८) काली (देवी) ।
 (९) एक प्रकार की लहरीली जोक । (१०) पवरी नाम का
 मधुद्वय । (११) कुटकी । (१२) राई । (१३) अग्नि की
 सात जिह्वाम्यों में से एक । (१४) एक योगिनी । (१५)
 काले पत्ते की तुलसी । (१६) आँस की पुतली ।
 कृष्णाच्छल—संज्ञा पु० [सं०] (१) रैवतक पर्वत । प्राचीन द्वारका
 इसी पर्वत पर थी । (२) नीलगिरि पर्वत ।
 कृष्णाजिन—संज्ञा पु० [सं०] (१) काले मृग का चमड़ा । मृगचर्म ।
 (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम ।
 कृष्णाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] यह अभिसारिका मायिका
 जो शेषेरी रात में अपने प्रेमी के पास संकेतस्थान में जाय ।
 कृष्णाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों के कृष्ण पक्ष की आष्टमी,
 जिस दिन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था ।
 कृष्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राई । (२) श्यामा पक्षी ।
 कृष्णोदर—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का साँप ।
 कृष्ण-वि० [सं०] सेती करने योग्य (भूमि) ।

कंक-संज्ञा स्त्री०—[कन्कु] (१) चिट्टियों का कष्टमूलक शब्द ।

(२) भगड़ा वा असंगोपमूलक शब्द ।

किक० प्र०—करना ।

कंकुआ-संज्ञा पु० [सं० केंकुआ, प्रा० कंकुआ] (१) एक धरसाती कीड़ा जो एक बोलिरत मर वा इससे अधिक लंबा होता है । इस कीड़े के शरीर में हड्डी नहीं होती । यह कीड़ा कभी अपने शरीर को तिकोड़ लेता है, कभी लंबा कर देता है । यह मिट्टी ही खाता है । इस कीड़े से एक पीले रंग की लसदार वस्तु निकलती है जो रात को चमकती है । (२) कंकुए के आकार का सफ़ेद कीड़ा जो पेट से मल द्वारा बाहर निकलता है ।

किक० प्र०—गिरना ।—पड़ना ।

कंकुल-संज्ञा स्त्री० [सं० कंकुल] [वि० कंकुल] सर्प आदि के शरीर पर की खोल जो प्रति वर्ष आसरे आस पुष्क होकर गिर जाती है ।

किक० प्र०—छोड़ना ।—भाड़ना ।—बदलना ।

मुहा०—कंकुल बदलना = पेशाक बदलना । कगड़ा बदलना ।

कंकुल में आना वा भागना = कंकुल छोड़ने पर होना ।

कंकुली-वि० [हि० कंकुल] के कुल की तरह का ।

धा०—कंकुली लचका वा कंकुली का लचका = एक प्रकार का लचका जो रसिकों पर संत की तरह बढ़ता है ।

संज्ञा स्त्री० दे० "कंकुल" ।

कंकुआ-संज्ञा पु० दे० "कंकुआ" ।

कंक-संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का मोटा चेंत जिसकी छड़ियाँ बनती हैं ।

कंकु-संज्ञा पु० [सं०] तेंदू का पेड़ ।

कंकुचाल-संज्ञा पु० [सं०] नाव खेने का डाँड़ । बहा । धरित्र । केनिपात ।

कंकु-संज्ञा पु० [सं० केन्द्र] तेंदू ।

कंकु-संज्ञा पु० [सं० । व० केन्द्र] (१) किसी वृत्त के मीतर का वह बिंदु जिससे परिधि तक सीधे हुई सब रेखाएँ परस्पर साधारण हैं । नाभि । (२) किसी निश्चित धरा से ६०, १२०, २७० धरा ३६० धरा के अंतर का स्थान । (३) ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों के दो कंकु होंगे हैं, शीघ्रकेंद्र और मंदकेंद्र । ग्रह के मध्य में से मंदोच्च पड़ने से मंदकेंद्र और शीघ्रोच्च पड़ने से शीघ्रकेंद्र का ज्ञान होता है । (४) कलित के अनुसार कुंडली में पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान । (५) मुख्य वा प्रधान स्थान । सदा बढ़ने का स्थान । (६) बीच का स्थान ।

कंकु-वि० [सं० कंकु] कंकु में स्थित । कंकुस्थित । उ०—कंकु ही है नवयें कर स्वामी योग चंद्र चंद्रामणि । गुरु दिन भक्त सकल गुण सागर दाता शूर शिरामणि ।—रघुराज ।

कंक-प्रत्य० [हि० का] संश्लेषमूलक "का" विभक्ति का बहुवचन रूप, जैसे—राम के घोड़े ।

विशेष—यदि संश्लेषमान के आगे वेदों विभक्ति होती है तो एक वचन में भी "का" के स्थान पर "के" आता है, जैसे, (क) वह राम के घोड़े से गिर पड़ा । (ख) हम उससे घर (पर) गए थे ।

† सर्व० [सं० "क" का बहु०] कैन ? (अर्थ) । उ०—केइ तव नासा कान निपाता ?—तुलसी ।

कंकुआ-संज्ञा पु० [सं० कंकुआ] (१) कच्छ । (२) लुंकर । (३) शलगम ।

कंकु-सर्व० [हि० कं + व (क्य०) = भो] केइ । उ०—अलस अलौकिक रूप तव, तारकि सके नहिं केइ । जानै सोइ करि कृपा तुम, जाहि जनानी देइ ।—विद्यानाम ।

कंकुटा-संज्ञा पु० [सं० कंकुटा] एक प्रकार का बहुत विषाल काला साँप । शीपों में हस्ती का विष काम में आता है । करेन ।

कंकुटी-वि० दे० "कंकुटी" ।

कंकुआ-संज्ञा पु० [सं० कंकुआ, प्रा० कंकुआ] पानी का एक कीड़ा जिसे आठ रंगों और दो पंजे होते हैं । यह साधारण गृहस्थों से लेकर समुद्र तक में पाया जाता है और भिन्न भिन्न प्रकार का छोटा पड़ा और कई रंगों का होता है । यह अंडज है और इसके विषय में कहा जाता है कि इसकी माना अंडा देने से पहले मर जाती है । वरसात में कंकुआ जोड़ा खाते हैं और जब मादा का पेट अंडों से भर जाता है तब वह मर जाती है और अंडे में से, पकने पर, छोटे छोटे बच्चे निकलते हैं । कहते हैं कि पाँच खोल बदलने पर यह पूरा कंकुआ होता है । कंकुआ सूखी भूमि पर भी चल सकता है । गरमी में वे द्रिक्ले पानी या किनारे पर रहते हैं और जाड़े में गहरे जल में चले जाते हैं जहाँ फुंड बंध कर किसी दरार वा गड्ढे में रहते हैं । यहाँ कंकुआ अपने से छोटे और निर्बल कंकुआ को खा जाता है । भिन्न भिन्न प्रदेशों में लोग इसका मांस भी खाते हैं । वैद्यक में सफ़ेद कंकुआ का मांस बायु और पित्त को नारा करनेवाला और संपिकाक तथा काले कंकुआ का मांस बलकारक, गरम और वातनाशक माना गया है ।

मुहा०—कंकुआ की चाल = उठती तिरछी चाल ।

कंकय-संज्ञा पु० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम । रामायण के अनुसार यह देश व्यास और शाल्मली नदी की दूसरी ओर था और उस समय यहाँ की राजधानी गिरिवृज वा राजगृह थी । अब यह देश कश्मीर राज्य के अंतर्गत है और कक्षा कहलाता है । यहाँ के निवासी कंकय वा कका कहलाते हैं । (२) [सं० कंकय] कंकय देश का राजा वा निवासी । (३) दशरथ के असुर और कंकयी के पिता का नाम ।

केकयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] केकय देश की स्त्री । (२) राजा दशरथ की रानी जिससे भरत जी उत्पन्न हुए थे । दे० “केकयी” ।

केकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूँचा । भेंगा । (२) तंत्र में चार शस्त्रों का एक मंत्र ।

केकरा—संज्ञा पुं० दे० “केकड़ा” ।

केकसी—संज्ञा स्त्री० दे० “केकसी” ।

केका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोर की बोली । मोर की बूक ।

केकी—संज्ञा पुं० [सं० केकिन्] मोर । मयूर । उ०—(क) केकि कंठ द्रुति स्यामल श्रेणा । तद्रित विनिदक बसन सुरंगा ।—तुलसी । (ख) केकिल केकी कपोतन के कुल केकि करेँ अति शानेद बारी ।—मतिराम ।

केचित्—सर्व० [सं०] कोई । कोई कोई ।

केजा—संज्ञा पुं० दे० “केजा” ।

केडवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० केन = साग भली + वारी] (१) वह भाग जिसमें साग, तरकारी, फलादि बोए और लगाए जाय । (२) नये पौधों का बाग । नौरंगा ।

केड़ा—संज्ञा पुं० [सं० करर = बंस का कन्ना] (१) नया पौधा या शंकर । कोपल । कला । (२) नवयुवक । उ०—वह सदा इसी ताक में रहा करता था कि किस घराने में कौन कौन नये केड़े हैं ।—सा अज्ञान और एक मुजान । (३) खेत से काटी हुई फसल या घास का गट्टा ।

केष्िक—संज्ञा पुं० [सं० केष्िका] स्त्रीमा । तंजू । रावटी । [हिं०] ।

केत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर । भवन । (२) स्थान । जगह । यस्ती । उ०—फूल फूल फिर पहुँचा जा पहुँचा यहि केत । तन नेत्रदायर के मिलौं ज्यो मधुकर निव देत ।—जायसी । (३) केतु । ध्वजा । (४) बुद्धि । प्रज्ञा । (५) संकल्प । (६) मंशखा । सहाह । (७) धन्न, जैसे—केतपू ।

केतक—संज्ञा पुं० [सं०] केवड़ा । उ०—लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीचण जाति तजे हरि के ।—केशव ।

वि० [सं० कति + एक] (१) कितने । किस कदर । (२) बहुत । उ०—केतक दिवस राज्य तव कियज । एक दिना नारद मुनि गयज ।—सखल ।

केतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छोटा झाड़ू या पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी, सुकीली, चिपटी, कोमल और चिकनी होती हैं और जिनके किनारे और पीठ पर छोटे छोटे कण्टे होते हैं । केतकी दो प्रकार की होती हैं, एक सफेद और दूसरी पीली । सफेद केतकी को हिंदी में बंबड़ा और पीली या सुवर्ण-केतकी को केतकी कहते हैं । इसकी पत्तियों से चटाह्या, छूते और टोपियां बनती हैं । इसका तना नरम होता है और बोटलों में डट लगाने के काम में आता है । कहीं कहीं इसकी नरम पत्तियों का साग भी बनाया जाता है । भारत में इसमें फूल लगते हैं जो लंबे, सफेद रंग के

और बहुत सुगंधित होते हैं । इसका फूल बाल की तरह होता है और ऊपर से लंबी लंबी पत्तियों से ढका हुआ होता है । फूल से अंतर और सुगंधित जल बनाया जाता है और उससे कथा भी बनाया जाता है । ऐसा प्रसिद्ध है कि इस फूल पर औरा नहीं बैठता । पुराणों के अनुसार यह फूल शिव जी को नहीं चढ़ाया जाता । वैद्यक में सफेद केतकी बालों की दुर्गंधि दूर करनेवाली मानी गई है और इसका शाक वा मूल स्याद में कटुधापन लिए हुए मीठा और गुण्य में कफनाशक और लघुपाक कहा गया है ।

पर्या०—शूचीपत्र । हलीन । जंबूल । जंबूक । तीक्ष्णपुष्पा । विफला । धूलिपुष्पा । मेध्या । इंदुकलिका । शिवदिष्टा । भ्रुकचा । दीर्घपत्रा । स्थिरगथा । कंटयला । दलपुष्पा । केवड़ा । (२) एक रागनी का नाम । उ०—रामकली, गुन कली, केतकी, सुर सुपराई गयो । जैवंती, जगतमोहिनी, सुर सेां यीन यजायो ।—सूर ।

केतन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) निर्मंत्रण । आह्वान । (२) ध्वज । निशान । (३) चिह्न । (४) घर । (५) स्थान । जगह ।

केतपू—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न साफ करनेवाला ।

केता*—वि० [सं० कियद्] [शि० केती] कितना ।

केतिक*—वि० [सं० कति + एक] कितना । किस कदर । उ०—कहै दात अपने गोकुल की केतिक प्रीति प्रजबालहि ।—सूर ।

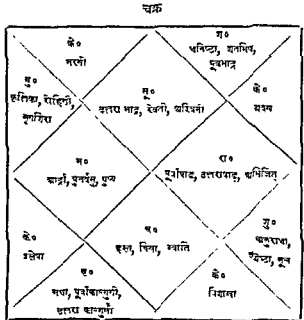
केती*—वि० दे० “केता” ।

केतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्ञान । (२) वीसि । प्रकरण । (३) ध्वज । पताका । (४) निशान । चिह्न । (५) पुराणानुसार एक राक्षस का कबंध । यह राक्षस समुद्र मयन के समय देवताओं के साथ बँट कर अमृत पान कर गया था इस लिये विष्णु भगवान् ने इसका सिर काट डाला, पर अमृत के प्रभाव से यह मरा नहीं और उसका सिर राहु और कबंध केतु हो गया । कहते हैं कि इसे सूर्य और चंद्रमा ही ने पहचाना था । इसी लिये यह शय तक ग्रहण के समय सूर्य और चंद्रमा को ग्रसता है । (६) एक प्रकार का तारा जिसके साथ एक प्रकार की पूँछ दिखाई देती है । यह पुच्छ-तारा कहलाता है । इस प्रकार के अनेक तारे हैं जो कभी कभी रात को झाड़ू की तरह भिन्न भिन्न आकार के दिखाई देते हैं । भारतीय ज्योतिषियों में इनकी संख्या के विषय में मतभेद है । कोई हजार, कोई १०१, कोई कुछ कोई कुछ मानता है । भारत जी का मत है कि केतु एक ही है और वहीं भिन्न भिन्न रूप का दिखाई पड़ता है । फलित में भिन्न भिन्न केतुओं के उदय का भिन्न-भिन्न फल माना गया है । ज्योतिषियों का मत है कि केतु अपने उदयकाल ही में वा उदय से पंद्रह दिन पीछे शुभ वा अशुभ फल देते हैं । आज कल

के पाश्चात्य ज्योतिषियों ने दूरबीन द्वारा यह निश्चय किया है कि केतुओं की संख्या अनिश्चित है और वे भिन्न भिन्न पटल में भिन्न भिन्न दीर्घवृत्त या परवलयवृत्त कक्षाओं में भिन्न भिन्न वेगों से घूमते हैं। इन कक्षाओं की दूरा नाभियों में सूर्य एक नाभि होता है। दीर्घवृत्तात्मक कक्षा होने से ये तारे जय रश्मिनीच के, या सूर्य के समीपवर्ती कक्षाओं में होते हैं तभी दिखाई पड़ते हैं। रश्मिनीच के कक्षाओं में आते ही ये तारे कुछ दिखाई पड़ने लगते हैं और पहले पहल प्रकार के घट्ये की तरह दूरबीनों से दिखाई पड़ते हैं। ज्यों ज्यों ये सूर्य के समीप आते जाते हैं इनकी केतुनामि दिखाई पड़ने लगती है, फिर क्रमशः स्पष्ट होती जाती है। पर कितने ही केतुओं की केतुनामि नहीं दिखाई पड़ती। उनमें केतुनामि है वा नहीं, यह संदिग्ध है। इन तारों की केतुनामि उनके आन्वर्षण में लिपटा हुई सूर्य से २ श्रेय से ६० श्रेय तक में दिखाई पड़ती है। इन तारों के साथ प्रकार की एक धड़ी लगी होती है जिसे केतुपुच्छ कहते हैं। इस केतुपुच्छ में स्वयं प्रकार नहीं होता। यह स्वयं स्वच्छ पारदर्शी और वायुमय होता है जिसमें सूर्य के साक्षिच्य से प्रकार था जाता है। यही कारण है कि पुच्छ की दूसरी ओर का छोटे से छोटा तारा तक दिखाई देता है। सन् १६८२ ई० के एक के ज्योतिषियों की यह धारणा थी कि पुच्छ तारे बिना टुक टुकाने के मनमाने घूमा करते हैं, न इनकी कोई नियत कक्षा है और न इनके घूमने का कोई नियम है। सन् १६८२ ई० में हेली साहय ने हिसाब लगा कर एक तारे के विषय में यह अच्युती तरह सिद्ध कर दिया कि यह यद्दहले की तरह नहीं घूमता बल्कि लगभग ७६ वर्ष के बाद दिखाई पड़ता है। इस तारे को हेली साहय का पुच्छल तारा वा हेलीकेतु कहते हैं। तब से ज्योतिषियों का प्यान इन केतुओं की गति की और थाकपित हुआ और शय तक कितने ही तारों की गति और कक्षा आदि का पूरा पता लग चुका है। ऐसे तारों को ज्योतिष में नियतकालिक केतु कहते हैं। सय से बिलक्षण बात—जिसका पता सन् १८६२ में इटली के शेपरले नामक ज्योतिषी ने लगाया—यह है कि कितने ही पुच्छल तारों की कक्षा और कितने ही उल्कापुंजों की कक्षा एक ही है। इसने इस बात को सिद्ध कर दिया कि १८६२ के केतु और विहगत उल्का ये एक ही कक्षा में भ्रमण करते हैं। केतु को पुच्छलतारा, यद्दनी, भाद्र आदि भी कहते हैं। ३०—कह प्रभु हैसि जनि हृदय बराह। लूक न अस्तमि केतु नहिं राहू।—गुलामी। (७) नवग्रहों में से एक ग्रह। यद्यपि फलित में इसे ग्रह माना है तथापि सिद्धांत-ग्रंथों में चंद्रकण और मतिरेख के अद्य-पात के चिह्न को ही केतु माना है।

विशेष—दे० "पात"।

केतुकुंडली—संज्ञा छी० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार बारह कोणों का एक चक्र जिससे प्रत्येक वर्ष का स्वामी निकाला जाता है। इस चक्र के बनाने की रीति यह है कि कोणों में पहले कोष्ठ से शरारंभ करके ग्रहों के नाम इत प्रम से रखते हैं, सूर्य, केतु, बुध, मंगल, केतु, बुधस्पति, चंद्रमा, केतु, शुक्र, राहु, केतु और शनि। फिर उत्तराभाद्र से शरारंभ करके नक्षत्रों को कोणों में इस प्रकार भरते हैं कि सूर्य आदि ग्रहों के नीचे तीन तीन नक्षत्र और केतु के नीचे एक एक नक्षत्र यथाक्रम पड़े। इसके उपरान्त चक्र में कुंडली वाले के जन्म नक्षत्र का देखने हैं। यह नक्षत्र जिन ग्रह के कोष्ठ में होता है यही प्रथम वर्ष का वर्षा होता है। इसी प्रकार दूसरे, तीसरे आदि वर्षों का भी निकालते हैं। इसका प्रचार वंश देश में विशेष है।



केतुपताका—संज्ञा छी० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार नौ कोणों का एक चक्र जिसमें वर्षों निकाला जाता है। इस चक्र में नवों ग्रह, सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, शनि, बुधस्पति, राहु, शुक्र, केतु प्रम से रखे जाते हैं। फिर कृत्तिका से लेकर भरणी तक और सूर्य से लेकर शुक्र तक प्रत्येक ग्रह के कोष्ठ में तीन तीन अक्षर लिखे जाते हैं। इस प्रकार जन्मनक्षत्र से वर्षों का निश्चय किया जाता है। वर्षों के वर्ष में शय्य ग्रहों का धनर्दिन होता है। इसका भी प्रचार बंगाल में अधिक है।

केतुमती—संज्ञा छी० [सं०] (१) एक वर्षाई समुत्त का नाम जिसके विषय पादों में सगाय, जगय, सगय और एक गुरु होता है और सप्त पादों में भगय, रायय, नगय और दो गुरु होते हैं। ३०—प्रभु जी हरी हमहिं तारो, मो मनवें सभी अय निकारो। अपने दिने यह विचारो, राम अनाथ को लाग।

उबरो। (२) रावण की नानी अर्थात् सुमाली राघव की पत्नी का नाम।

केतुमान्-वि० [सं०] (१) तेजवान्। तेजस्वी। (२) ध्वजावाला। जिसके पास ध्वजा हो। (३) बुद्धिमान्।
 संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरिवंश के अनुसार काशिराज दिवोदास के बंधु का एक राजा जो धन्वंतरि का पुत्र था। (२) एक दानव का नाम।

केतुमाल-संज्ञा पुं० [सं०] जंबू द्वीप के नौ खंडों में से एक खंड। प्रयागद्वारा के अनुसार इसमें मात पर्वत और कई नदियाँ हैं। सिद्ध और देवर्षि प्रायः इन्हीं नदियों में स्नान करना पसंद करते हैं। इस खंड में प्रायः जंगली जानवर भी रहते हैं।

केतुरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] लहसुनिया नामक रत्न।
केतुवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मेरु के चारों ओर के पर्वतों पर के वृक्षों का नाम। विष्णुपुराण के अनुसार मेरु की पूर्व दिशा में मंद्राचल है जिस पर कंदय का वृक्ष है, दक्षिण ओर गंधमादन पर जंबू, पश्चिम ओर विपुलनिरि पर पीपल और उत्तर ओर सुपाथर्ष पर्वत पर वट वृक्ष हैं। इन्हीं चारों वृक्षों को केतुवृक्ष कहते हैं।

केतो-संज्ञा पुं० [देग०] अमेरिका के गरम देशों में रहनेवाला एक जानवर जो लोमड़ी के आकार का होता है और ईश्वर के सेतों के धड़ी हानि पहुँचाता है।
 * वि० [सं० कति] कितना।

केदली-संज्ञा पुं० [सं० कदली] केले का पेड़। कदली वृक्ष।
 उ०—विधिदिं बंदि तिन कीह शरंभा। विरचे कनक केदली रंभा।—तुलसी।

केदार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह खेत जिसमें धान बोया वा रोग जाता है। कियारी। (२) वृक्ष के नीचे जमीन पर बना हुआ धाला। धांवला। (३) मेघराग का चौथा पुत्र। यह संपूर्ण जाति का राग है और रात के दूसरे पहर में गाया जाता है। (४) हिमालय पर्वत का एक शिखर और प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ केदारनाथ नाम का एक शिवलिंग है।

विशेष-दे० "केदारनाथ"।

(२) कामरूप देश का एक तीर्थ।

केदारक-संज्ञा पुं० [सं०] साड़ी धान।

केदारगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गढ़वाल प्रांत की एक प्रसिद्ध नदी जो गंगा में मिलती है।

केदारनट-संज्ञा पुं० [सं० केदार + नट] पाइव जाति का एक संकर राग जो नट और केदार को मिला कर धनता और रात के दूसरे पहर में गाया जाता है। इसमें ऋषभ वज्रित है। पर संगीतपारिजात में इसे शोडश जाति का राग माना

है और इसमें ऋषभ और धैवत वज्रित धतलाया है। किसी किसी के मत से यह नट-नारायण का छठा पुत्र भी है।
केदारनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के श्रंतगत एक पर्वत का नाम जिसके शिखर पर केदारनाथ नामक शिवलिंग है। यह समुद्र से ७३३३ फुट ऊँचा है। इसका ऊपरी भाग महापथ कहलाता है और सदा बर्फ से ढका रहता है। बहुत प्राचीन काल से यह स्थान एक पवित्र तीर्थ माना जाता है और इसके पास ही और भी अनेक छोटे छोटे तीर्थ हैं। वैसाख से कार्तिक तक भारत के मित्र भिन्न प्रांतों से अनेक यात्री दर्शनों के लिये यहाँ जाते हैं।

केदारा-संज्ञा पुं० दे० "केदारी"।

केदारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक राग की पांचवीं रागिनी। यह रात के समय दूसरे पहर की पहली घड़ी में गाई जाती है। यह शोडश जाति की रागिनी है और इसमें ऋषभ और धैवत स्वर वज्रित हैं। इसका सरगम यह है।—नि स ग म प नि नि। पर सोमेश्वर के मत से यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और संध्या के समय गाई जाती है। इसका व्यवहार प्रायः वीर और शृंगार रस के वर्णन में किया जाता है।

केन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध उपनिषद् जिसका पहला मंत्र "केनेपितं०" "केन" शब्द से आरंभ होता है। इसे तत्त्वकार उपनिषद् भी कहते हैं। यह सामवेदी है और इसमें चार खंडों में ३४ मंत्र हैं।

संज्ञा स्त्री० [देग०] जिला बाँदा की एक नदी जो विंध्याचल से निकल कर यमुना में गिरती है।

केना-संज्ञा पुं० [सं० केथि = मोल लेना] (१) यह योद्धा सा शत्रु जिसे देकर देहात में लोग सरकारी इत्यादि मोल खेते हैं। कनूका। केजा। (२) सागपात। सरकारी। भाजी।

केनिपात, केनिपातक-संज्ञा पुं० [सं०] डाँढ़ वा बड़ी जिससे नाव चलाई जाती है। बहना। अत्रित।

केमद्रुम-संज्ञा पुं० [सं० केनेद्रुम] ज्योतिष में चंद्रमा का एक योग जो उस समय होता है जब कि चंद्रमावाली राशि के श्रागे वा पीछेवाली राशि पर कोई और ग्रह न हो। फलित के अनुसार यदि इस योग में किसी राजकुमार का भी जन्म हो तो वह सदा दुःखी और दरिद्र रहता है।

केमुक-संज्ञा पुं० [सं०] केरवा। बंधा।

केयूर-संज्ञा पुं० [सं०] बाँह में पहनने का आभूषण। विजायट। यजुहा। श्रगद। बहुँटा। भुजवंद। भुजभूषण।

केयूरबल-संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक बौद्ध देवता।

केयूरी-वि० [सं०] जो केयूर पहने हो। केयूरधारी।

केरी-अर्थ [सं० कल] (क्री० केरी) संबंधसूचक अर्थव्यय। अर्थवी भाषा में यह "का" "के" विभक्तियों के स्थान में आता

है। उ०—छमद्द एक अनजानत बेरी। चहिय विग्र वर
कृपा धनेरी।—सुलसी।

केरक—संज्ञा पु० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन प्रदेश।
केरल—संज्ञा पु० [सं०] (१) दक्षिण भारत का एक देश जो कन्या-
कुमारी से गोकर्ण तक मलयबार पर समुद्र के किनारे किनारे
फैला हुआ है। इस देश की सीमा मिस्र भिन्न समयों में बद-
लती रही है। तबों के अनुसार केरल के तीन विभाग थे—
सिद्ध केरल (सुवर्णयुग से जगदैन तक), हंसकेरल
(रामेश्वर से वैकट गिरि तक) और केरल (अर्धत शील
से अरण्य तक)। आज कल इस देश को कनारा
कहते हैं और यहाँ कनारी भाषा बोली जाती है।
(२) [श्री० केरली] केरल-देश वासी पुरुष। (३) एक
प्रकार का फलित ज्योतिष जिसका आविष्कार केरल देश में
हुआ था। इसमें स्वर और व्यंजन अक्षरों के लिये कुछ अंक
नियत होते हैं और उन्हीं की सहायता से गणित करके प्रश्न
का फल या उत्तर निकाला जाता है।

केरा।—संज्ञा पु० दे० “केला”।
संज्ञा श्री० [दे०] एक प्रकार की वस्तु जिसे “पतारी”
भी कहते हैं।

केराना।—क्रि० सं० [सं० किरण वा हिं० गिराना] रूप में अत्र रस
कर वसे हिला हिला कर बड़े और छोटे दाने अलग करना।
भजा पु० [सं० ग्रयण] नमक, मसाला, हलदी आदि चीजों
जो मिला के व्यवहार में आती और पंसारियों के यहाँ
मिलती हैं।

केरानो—संज्ञा पु० [सं० विश्विन] (१) वह मनुष्य जिसके माता
पिता में से कोई एक बुनोपियन और दूसरा हिंदुस्तानी हो।
किरंटा। सुरेशियन। (२) अंगरेजी दफ्तर में लिखने पढ़ने का
काम करनेवाला मुर्दा। इकं।

थि०—केरानीपाना = अँगरेजी दफ्तर।

केराया।—संज्ञा पु० दे० “किराया”।
केराया।—संज्ञा पु० [सं० कलय] मटर।
केरावल—संज्ञा पु० दे० “किरावल”।
केरि।—अण्य० [सं० कृत] दे० “केरी”।
संज्ञा श्री० दे० “केलि”।

केरी।—अण्य० [सं० शत] की।
विशेष—यह “केर” का क्रीलिंग रूप है।
संज्ञा श्री० [दे०] आम का फल और छोटा नया फल।
शैविया।

केरीसिम—भजा पु० [सं०] मिठी का नेल।
केल—संज्ञा पु० [सं० कैलिक, प्रा० कैलिय] एक वृक्ष जो हिमालय
पर ६००० से ११००० फुट की ऊँचाई तक होता है। यह
वेद सत्या और बहुत बढ़ा होता है। इसकी लकड़ी प्रति घन

फुट १६-१७ से भारी होती है। इसके दो भेद होते हैं—
देरी और तिलायती। दोनों की लकड़ी प्रायः इमारत के
काम में आती है। देरी केल की लकड़ी में से चीड़ के तेल
की तरह तेल निकलता है और उसका कोयला भी अच्छा
होना है जिससे लोहा पिघल जाता है। तिलायती केल की
लकड़ी जलाने के काम में नहीं आती है। यह जलाने से चिड़-
चिड़ाती और जल्दी बुक जाती है। दोनों की छाल हड़
होती है और छत पाटने के काम में आती है। केल की
पत्तियाँ और डालियाँ पिचाली के काम में लाई जाती हैं।
तिलायती केल को पेड़ देखने में सधिये और सुंदर होते हैं इस
लिये सड़कों पर और मैदानों में लगाए जाते हैं।

केलक—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार के नाचनेवाले जो हाथ में
तबलार, कटारी आदि ले कर नाचते हैं।

केला—संज्ञा पु० [सं० करल, प्रा० कयल] (१) एक पेड़ जो
भारतवर्ष, बरमा, चीन, मलाया के देशोंमें, अफ्रिका, अमेरिका,
दक्षिणी यूरोप आदि गरम स्थानों में होता है। इसके पत्ते गड़
पेड़ गड़ कंचे और हाथ भर चीड़े होते हैं। इस पेड़ में
ढालियाँ नहीं होतीं, अर्थात् बड़े आदि की तरह पेड़ी वा पत्ती
ही से एक एक पत्ता निकलता है। पेड़ी चिकनी, अर्थात्दार,
सिद्धमय और पानी से भरी होती है। केले के लिये पानी
की आवश्यकता बहुत होती है, इसी से इसे नालियों में
लगाते हैं। पेड़ साल भर में पूरी पाड़ को पहुँचता है और
तब उसके बीच से कमल के आकार का, काजपान लिये
साल रंग का बहुत बड़ा फूल निकलता है जो नीचे की ओर
कुल होता है। यह फूल एकवारगी नहीं गिनलता। प्रति
दिन एक एक दल खुलता है जिसके भीतर आठ दम छोटी
छोटी फलियों की पंक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। इन फलियों के
सिरों पर पीले पीले फूल खगते हैं। इन फलियों की पंक्ति
को पंजा कहते हैं। प्रत्येक दल के नीचे एक एक पंजा
निकलता है। पीले फूलों के गिर जाने पर येही फलियाँ
बढ़ कर बड़ी बड़ी होती हैं। पूरे अंडल के। जिसमें फलियों
के कई पंजे होते हैं घोंद कहते हैं। केले की अनेक जातियाँ
होती हैं, जिनमें मसंबान, चंग, चीनिया, मालभोग आदि
प्रसिद्ध हैं। केले के फल साधारणतया पकने पर पीले होते
हैं, पर कहीं कहीं लाल, गुलाबी और हरे रंग के केले भी
मिलते हैं। केले की फलियाँ चार शंखुज से लेकर षेड़ लिये
तक की होती हैं। जाया में एक प्रकार का केला इतना बड़ा
होता है जिसमें चार आठमियों का पेठ भर सकता है। इस
केले का फूल पेड़ों के बाहर नहीं निकलता, भीतर ही भीतर
फलता फूलता है। पेड़ में एक ही फल खगता है जिसके
पकने पर पेड़ों पट जाती है। फिलिपाइन द्वीप में भी बहुत
बड़े बड़े केले होते हैं। बहुत से केले कीड़े होते हैं जिनकी

फलियों में काले काले गोल बीज भरे रहते हैं। इन्हें कच्चे-केला कहते हैं। कच्चे केले की लोग तरकारी बनाते हैं। कच्चे केले को सुखा कर आटा भी बनाता है जो हलका होता है और दूध के काम में आता है। बंगाल में केले के कोमल डंठल की भी तरकारी बनती है। पत्तों के डंठल से जो रेशे निकलते हैं उनसे चटाई बुनी जाती है और कागज़ भी बनाता है। आमाम और चटगांध की ओर केलों के जंगल भी हैं।
(२) केले का फल।

पर्याय—रंभा। मोचा। कदली। शंशुमन्फला। वारणुषुपा। वारुषुपा। सुफला। निःसार। भानुफला। गुच्छफला। वारणश्लभा। वनलक्ष्मी। रोचक। चमरावती।
(३) पुरुषेंद्रिय। (वाजाह्)।

केलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खेल। क्रीड़ा। (२) रति। मैथुन। समागम। स्त्रीप्रसंग। उ०—अम कदि अमित बनाये श्रंग। कीन्ही केलि सवन के संग।—रघुनाथ।
धै०—केलिमंदिर। केलिभवन।

(३) हँसी। डहा। मज़ाक। दिहगी। (४) पृथ्वी।

केलिक—संज्ञा पुं० [सं०] शशोकवृक्ष।
केलिकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती की वीणा। (२) दे० “केलि (२)”।

केलिकिल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाटक का विदूषक। (२) शिव के कुम्भांडक नामक अनुचर का एक नाम।
संज्ञा स्त्री० कामदेव की स्त्री, रति।

केली—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्षी, प्रा० कर्षी] केले की एक जाति जिसके फल छोटे होते हैं। दे० “केला”।

केलूराय—संज्ञा पुं० [दे०] दे० “केल”।
केली—संज्ञा पुं० [दे०] दे० “केल”।
केवका—संज्ञा पुं० [सं० कवक = प्राप्त] वह मसाला जो प्रमत्ता खियों को दिया जाता है।

केवकी—संज्ञा स्त्री० दे० “केवटी”।
केवट—संज्ञा पुं० [सं० केवट, प्रा० केवट] छत्रिय पिता और वैश्या माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति। इस जाति के लोग आज फल नाव चलाने तथा मिट्टी खोदने का काम करते हैं। उ०—तव केवट ऊँचे चढ़ि जाई। फहेव भरत सन शुभा उटाई।—तुलसी।

केवटी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का बहुत छोटा फीड़ा।
केवटीदाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० केवट = एक संकर जाति + दाल] दो या अधिक प्रकार की, एक में मिली हुई दाल।

केवटीमोथा—संज्ञा पुं० [सं० केवट्युरता] एक प्रकार का सुगंधित मोथा जो मालवा में होता है। इसकी जड़ बहुत सुगंधित होती है और ओषधि के काम में आती है। वैचक में

इसे गरम और कफ तथा वात को नाश करनेवाला और दाह, शूल, ग्रंथ और रक्तविकार को दूर करनेवाला माना है।

केवडई—वि० [हिं० केवडा + ई० (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंग जो केवड़े की तरह हलका पीला और हरा मिला हुआ सफ़ेद होता है और जो शहय, खटाई और गुन के फूलों के मिलाने से बनता है।

केवडा—संज्ञा पुं० [सं० केविका] (१) सफ़ेद केतकी का पौधा जो केतकी से कुछ बड़ा होता है। इसके फूल और पत्तियाँ केतकी से बड़ी होती हैं। केतकी की पत्तियों की भांति इसकी पत्तियाँ चटाईयाँ आदि बनाने के काम आती हैं और इसके फूल से भी अंतर और सुगंधित जल बनाता और कच्चा बसाया जाता है। इसमें भी केतकी के प्रायः सव गुण हैं। इसके सिवा वैचक में इसके केसर को गरम और कंदुनाशक माना है और इसके फल को वात, प्रमेह और कफ का नाशक कहा है।

विशेष—दे० “केतकी”।

(२) इस पौधे का फूल। (३) इसके फूल से उतारा हुआ सुगंधित जल या आसव। (४) एक पेड़ जो हरदार के जंगलों और वरमा में होता है। यह गरमी के दिनों में फूलता है। इसकी लकड़ी सागवन आदि की तरह मजबूत होती है जिससे तख्तों से मेज़ कुर्सी संकू आदि बनाए जाते हैं।

केवरा—संज्ञा पुं० दे० “केवड़ा”।
केवल—वि० [सं०] (१) एकमात्र। अकेला। (२) शुद्ध। पवित्र। (३) उत्कृष्ट। उत्तम। श्रेष्ठ।
कि० वि० मात्र। सिद्ध।

संज्ञा पुं० [वि० केवशी] (१) वह ज्ञान जो आंतिशून्य और विशुद्ध हो। सांख्य के अनुसार इस प्रकार का ज्ञान तत्त्वभ्यास से प्राप्त होता है। यह ज्ञान मोक्ष का साधक होता है। इससे ज्ञानी को यह साक्षात् हो जाता है कि न मैं करता हूँ, न मेरा किसी से कुछ संबंध है और न मैं स्वयं प्रयत्न कुछ हूँ। इस प्रकार के ज्ञान से वह पुरुष को साक्षीमात्र के रूप में देखता है। (२) जैनशास्त्रानुसार सम्यकज्ञान। (३) वास्तु-विद्या में स्तंभ के आधार अर्थात् कुंभी के ऊपर का ढाँचा।—

केवलात्मा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप और पुण्य से रहित—ईश्वर। (२) शुद्ध स्वभाववाला मनुष्य।

केवली—संज्ञा पुं० [सं० केवल + ई० (प्रत्य०)] (१) मुक्ति का अधिकारी साधु। केवल-ज्ञानी। (२) मुक्तिप्राप्त साधु। तीर्थंकर। [जैन०]।

केवलव्यतिरेकी—संज्ञा पुं० [सं० केवलव्यतिरेकिन्] एक प्रकार का अनुमान जिसे “शेषवन्” कहते हैं। दे० “अनुमान”।

केषलान्वयी-संज्ञा पुं० [सं० केषलान्वयित्] एक प्रकार का अनुमान जिसे "पूर्वक" कहते हैं। दे० "अनुमान" ।

केवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० केवा] कुट्टे ।

केवाच-संज्ञा स्त्री० दे० "कीच" ।

केवा-संज्ञा पुं० [सं० क्व = कमल] कमल । कमल कली । उ०—(क) तोहि प्रलि कीन्ह छाप भा केवा । हां पठ्या गुरु कीच परेवा ।—जायसी । (ख) स्वर्ग सूर सुदं ससर केवा । बनलैंड भवैर होय रम-लेवा ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० [सं० किंवा] बहाना । मिस । थानाकनी । सेरोच । उ०—रघुराज कीन्ह विसच नहिं होन पीहं, पासे पासे खुरी खेल ल्य खेलवैहें में । केवा जनि कीचे मोरि सेवा सच भांति लीजें, मीठ मीठ मेवा लै कह्योवा करवैहें में ।—रघुराज ।

कंघाड़-संज्ञा पुं० दे० "किवाड़" ।

कंघाड़ा-संज्ञा पुं० दे० "किवाड़ा" ।

केविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक फूल का नाम जो कोंकण प्रदेश में होता है । सद्गंधा ।

केदा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रगि। किरण । (२) ब्रह्म की शक्ति का एक भेद । (३) वरण । (४) विश्व । (५) विष्णु । (६) सूर्य । (७) सिर का बाल ।

कै०—केशविन्यास = शाल संवारना । केराकेरी = वह लड़ाई जिसमें दो आदमी एक दूसरे का बाल पटक कर खींचें ।

(क) शेर और घोड़े के गले पर का बाल । (६) बेरी नामक द्रव्य ।

केदाकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाल झड़ने और गूँथने की कला । केशविन्यास । (२) केदांत नामक संस्कार ।

केदाकीट-संज्ञा पुं० [सं०] बूँद ।

केदाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खटमल । (२) विष्णु । (३) छुआ । (४) कामदेव के पांच वायों में से शोषण नामक वायु । (५) श्योनाक वृक्ष । रेंदू ।

केदापर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्यापार्णी ।

केदापाशा-संज्ञा पुं० [सं०] बालों की लट । काकुल ।

केदाबंध-संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य का एक ढम्क जिसमें हाथों को कंधे पर से घुमाते हुए कमर पर लाते हैं, और फिर ऊपर सिर की ओर ले जाते हैं ।

केदामधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी का पेड़, जिनके कांटों में बाल उलक जाते हैं ।

केदारंजन-संज्ञा पुं० [सं०] अरुण । भँगरैया ।

केदार-संज्ञा पुं० दे० "केसर" ।

केदारान्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का अन्न जो पत्नी । (२) भँगरैया । अरुण ।

केदाराम्ब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनाद । (२) विनोदनी नीच ।

केदारी-संज्ञा पुं० दे० "केसरी" ।

केदारुपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पेड़ पर का बियाँदा ।

केदारुच-संज्ञा पुं० [सं०] सिर के बाल मोचनेवाला जैन यति ।

केदार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम । (२) कृष्णचंद्र का एक नाम । (३) ब्रह्म । परमेश्वर । उ०—अश्वतो वे प्रकारांतं मम ते केदारसंज्ञिताः । संज्ञाः केदारं तस्मात् प्राहुर्मिं द्विजसंततमाः ।—सहाभारत (४) विष्णु के चौबीस मूर्तियों में से एक । (५) दुष्प्रण वृक्ष ।

केदारपनीथ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अतिराम यज्ञ जो देव पशुबंध योगों के अन्तर्गत किया जाता है । इस यज्ञ के अंत में जेठा पौर्णमासी सुखा सोमयाग करना पड़ता है ।

केदारविहिनो-संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी नाम की वृद्धी । सहदेइया ।

केदारवायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का वायुध । (२) ग्राम ।

केदारवालय-संज्ञा पुं० [सं०] पीपल । वासुदेव-वृक्ष ।

केदारविन्यास-संज्ञा पुं० [सं०] बालों की सजावट । बालों का संवारना ।

केदारहंजो-संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी-वृक्ष ।

केदारान्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोलह संस्कारों में से एक जो ब्राह्मणों को सोलहवें, क्षत्रियों को यादसर्वे और वैश्यों को चौबीसवें वर्ष करने का विधान है । यह संस्कार यज्ञोपवीत के बाध और समावर्तन के पहले होता था, इसमें ब्रह्मचारी के सिर के बाल गूँथे जाते थे । इसे गोदात्मकर्म भी कहते हैं । (२) मुंडन । (३) बाल का सिरा ।

केदारदहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी नामक वृद्धी । सहदेइया ।

केदा-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस जिसे कृष्ण ने मारा था ।

केदािका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावरी ।

केदािनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जटामांसी । (२) चोरे-पुष्प नाम की एक शोषधि । (३) वह स्त्री जिसके सिर के बाल मुंदर और चूड़े हों । (४) एक अस्त्र का नाम । यह वरुण की पत्नी प्रधा की कन्या थी । (५) पार्वती की एक सहचरी । (६) राजा अजमीर की रानी का नाम । (७) राजा सगर की एक रानी का नाम । (८) भागवत के अनुसार रावण की माता कैकयी का एक नाम । (९) एक प्राचीन नगरी का नाम । (१०) दमयंती की उस दूती का नाम जो नल के भेस बदल कर छाने पर उसके पास दमयंती का संदेश लेकर गई थी ।

केरी-संज्ञा पुं० [सं० केरिण्ड] [स्त्री० केरिनी] (१) प्राचीन काल के एक पृथ्वी का नाम । (२) एक अस्त्र जिसे कृष्ण ने मारा । (३) घोड़ा । (४) सिंह । (५) एक यादव का नाम । वि० (१) किरण वा प्रकाशवाला । (२) अच्छे बालोंवाला । संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पीथा । (२) भूतकेय । भूतकेय नाम की शोषधि । (३) केवाच । (४) एक वृक्ष जिसकी पत्तियाँ खरूर की पत्तियों से मिलनी जुलती होती हैं ।

कंद्य-संज्ञा पुं० [सं०] काला अमर ।

कंस-संज्ञा पुं० [सं० कंस] (१) दे० "केश" । (२) शाल का एक रोग जिसमें शाल के कोने में खाल मांस निकलता है जो क्रमशः बढ़ता जाता है और धीरे धीरे सारी शाल को एक लेता है ।

संज्ञा पुं० [*०] (१) किमी चीज के रखने का खाना या घर । जैसे—घरमें का कंस । (२) सुवृद्धा । (३) बुद्धयन्ता । (४) लकड़ी का एक प्रकार का चाँकोर घेरा जो प्रायः एक हाथ चौड़ा, दो हाथ लंबा और तीन चार अंगुल ऊँचा होता है और जिसमें दाढ़प रखने के लिये बहुत छोटे छोटे खाने बने होते हैं । (छापानाना) ।

कंसई-संज्ञा स्त्री० दे० "कसई" वा "कसेई" ।

कंसर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह बाल की तरह पतले पतले सँके जो फूलों के बीच में रहते हैं । कंसर दो प्रकार का होता है । एक वह जो खुँडी के किनारे किनारे होता है और जिसमें नोक पर छोटे चिपटे दाँने होते हैं । इसमें पराग रहता है और यह पराग-कंसर कहलाता है । दूसरा वह जो खुँडी के बीच में होता है । इसमें पराग नहीं होता और यह गर्भ-कंसर कहलाता है । (२) एक प्रकार के फूल का कंसर जिसका पीधा बहुत छोटा होता है और पत्तियाँ घास की तरह लंबी और पतली होती हैं । कंसर का पीधा स्पेन, फारस, कश्मीर और चीन में होता है । पर कश्मीर का कंसर सर्वोत्तम माना जाता है । इसका फूल बैंगनी रंग की भाँड़े लिए बहुत रंग का होता है और पीधे में फूल निकलने के बाद पत्तियाँ लगती हैं । प्रत्येक फूल में बेंबल तीन कंसर होते हैं, इसी लिये आधी छटाक घसली कंसर के लिये प्रायः चार हज़ार फूलों की आवश्यकता होती है । कंसर निकाल लेने के बाद फूल को धूप में सुखाकर हलके डंडों से घूटते हैं और तब उसे किमी जल-भरे धरतन में डाल देते हैं । उसमें से जो अंश नीचे बैठ जाता है वह "मोगला" कहलाता है और मध्यम श्रेणी का कंसर होता है । जो अंश जल में न डूब कर पानी के ऊपर रह जाता है वह फिर सुखा और घूट कर पानी में डाला जाता है । इस बार जो कंसर जल में डूब जाता है वह निकृष्ट श्रेणी का होता है और "मीबल" या "निबल" कहलाता है । कंसर का पीधा विशेष प्रकार की डालुधाँ ज़मीन में होता है जो इसी कार्य के लिये आठ वर्ष पहले से बिलकुल परती छोड़ दी जाती है । इस पीधे की गाँठें ज़मीन में गाड़ी जाती हैं और एक बार की लगाई हुई गाँठों से चौदह वर्ष तक फूल निकलते रहते हैं । इसके फूल कालिक में लगते और संग्रह किये जाते हैं । कंसर बहुत ही सुगंधित और गरम होता है और खाने पीने की चीज़ों में सुगंध के लिये डाला जाता है । कंसर का रंग देखने में गहरा खाल होता है, पर पीसने पर पीला हो जाता

है । वैद्यक में कंसर को सुगंधित, तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक, कांतिवर्द्धक, कटुनाशक, विरेचक और कास, घातु, कफ, रुमि और विद्रोप का नाशक माना है । दाहरी मत से यह ज्वर और यक्षुन् नाशक और रोगनिःसारक है; पर श्रांत कल के कुछ नये दाह्यर इसका कोई गुण स्वीकार नहीं करते ।

पर्या०—कारमीरजन्म । अग्निशिल । पित्त । रक्त । संकोच । पिंडन । लोहित चंदन । चारु । रुचिर । शठ । शोषित । श्रस्य । कांत । खल । रज । दीपक । सौरभ । चंदन । (३) घोड़े, सिंह आदि जानवरों की गरदन पर के बाल । अयाल । (४) नागकंसर । (५) बकुल । मोलसरी । (६) पुष्पाग । (७) हाँग का पेड़ । (८) एक प्रकार का विष । (९) स्वर्ग । (१०) कसीस ।

कंसरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सतदेई ।

कंसरिया-वि० [सं० कंसर + रिया (प्रत्य०)] (१) कंसर के रंग का पीला । जूई । जैसे—कंसरिया घाग । (२) कंसर के रंग में रंगा हुआ । (३) कंसर-मिश्रित । जैसे—कंसरिया चंदन । कंसरिया बरफी ।

कंसरी-संज्ञा पुं० [सं० कंसरी] (१) सिंह । (२) घोड़ा । (३) नागकंसर । (४) पुष्पाग । (५) विजैरा मीव । (६) हनुमान् जी के पिता का नाम । (७) उड़ीसा का एक प्राचीन राजवंश । (८) एक प्रकार का यहुला । (९) एक प्रकार का शारखाना । (कपड़ा) ।

कंसारी-संज्ञा स्त्री० [सं० कंसर, प्रा० कंसर] मटर की जाति का एक अन्न जिसे दुधिया मटर भी कहते हैं । इसके दाँने छोटे चिपटे, चौकोर और मटमैले होते हैं और पत्तियाँ लंबी और पतली होती हैं । इसकी फलियाँ छोटी और चपटी होती हैं, जिन पर कभी कभी छोटे दाँग भी होते हैं । वैद्यक में यह कटु कड़ा यथा है और दाहरी मत से इसे खाने से लकवा हो जाता है । इसे कसारी, खेतारी, और लतरी भी कहते हैं ।

कंसरी-संज्ञा पुं० [सं० कंसर] डाक । टेवु । पलास ।

कंसरी-संज्ञा पुं० [सं० कंसरी] (१) सिंह । शेर । उ०—कंसरीकर बाहु बिसाला । उर अति रुचिर नाम मखि माला ।—तुलसी । (२) घोड़ा ।

संज्ञा स्त्री० [फा० कासा = पैसी] एक छोटा जुवदान जिसमें दर्जी मोची आदि अपने सने की चीज़ों वा खियाँ श्रावश्यक सामान रखती हैं । छोटी धैली ।

केहा-संज्ञा पुं० [सं० केहा, प्रा० केबा] (१) मोर । मयूर । (२) एक छोटा जंगली पक्षी जो बटेर के समान होता है । उ०—फरी परेवा पांडुक हेरी । केहा कद्रो उतर धरोरी ।—जायमी ।

केहि-वि० [सं० किं] किस । उ०—केहि कारय धागमन मुहारा । कहहु न कसत न लाहुँ भारा ।—तुलसी । विद्रोप—यह अथवा 'के' का कर्म, संप्रदान और अधिकरण रूप है ।

कैहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कफोष्ण] (१) कोहनी । कुहनी । (२) पीतल वा ताम्बे की यह टेढ़ी नली जो नीचे में में और जलैवी को जोड़ती है ।

कैहूँ—क्रि० वि० [सं० कथम्] किसी प्रकार । किसी भाँति । किसी तरह ।

कैकर्यै—संज्ञा पुं० [सं०] किंकरता । मेवकाई । सेवा । विद्वमन । उ०—मगहरि मंदकिनि नित जाई । निज कर करि कैकर्यै सदाई ।—रघुरामिंह ।

कैचा—वि० [हिं० काना + पैचा = कनेचा] पुँचाताना । सेंगा । संज्ञा पुं० [सं० कैचा] यह बाल जिसका एक सोंग सीधा खड़ा हो और दूसरा सोंग धाँप के ऊपर होता हुआ नीचे को जाता हो ।

सझा पुं० [हिं० कैचा] बड़ी कैची । कैची—संज्ञा स्त्री० [तु०] (१) बाल, कपड़े आदि काटने वा कतरने का एक औजार । कतरनी ।

विशेष—इसमें दो समान आकृति के लंबे फाल होते हैं जो परस्पर एक दूसरे के ऊपर रख कर कील से जड़े होते हैं । कैची कई प्रकार की होती है—जैसे बाल काटने की कैची, बत्ती काटने की कैची, दर्ज़ी की कैची, लोहार की कैची, बागवान की कैची, बाकूर की कैची, हथ्यादि ।

मुहा०—कैची करना = काटना । छांटना । जैसे, बागवान पेड़ों को कैची कर रहा है । कैची काटना = (१) नज़र बचा कर निकल जाना । कतराना । रास्ता फाट कर निकल जाना । (२) पहने यह कर फिर गिली बात से इनकार कर जाना । काट जाना । कैची बाँधना = (१) देना । राने से दशाना (खार) । (२) विपत्ती को अपने नीचे लाकर देना । राने से दशाना (कुहती) । कैची लगाना = (१) काटना । छांटना । कनम करना । (२) सिर के थाले को कैची में काटना । शाल छांटना । (३) दो सीपी सीलियाँ वा सकड़ियाँ जो कैची की तरह एक दूसरे के ऊपर तिरछी रखीं, बाँधी वा जड़ी हो ।

विशेष—छात्रण में कमी कमी एक मीची धरन के स्थान पर दो बड़ी हुई सकड़ियाँ लगाते हैं जो निरों के पास एक दूसरे पर आड़ी बांध दी जाती है ।

धौ—कैची का औलवा = वह जँगना जिसमें पतली पतली तीजियाँ एक दूसरे पर तिरछी लगीं हो ।

मुहा०—कैची लगाना = दो वा अधिक सकड़ियों को कैची की तरह एक दूसरे के ऊपर तिरछा रखना वा बाँधना । (३) सवारे के लिये धरन के बहुत में लगी हुई दो तिरछी सकड़ियाँ । (५) कुत्ता का एक पँच जिसमें प्रतिपत्ती की दोनों शोंगों में धरनी टाँग कैना कर उसे गिराते हैं ।

क्रि० प्र०—बाँधना । (२) मालखंभ की एक बसत जिसमें खेलाड़ी दीपता हुआ

वा उड़ कर सीधे बिना मालखंभ को हाथ लगाए, कमरेपेटे की रीति से मालखंभ को बाँधता है ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

कैडल—संज्ञा पुं० [हिं० कैडा वा देग०] एक प्रकार का पत्ती । बनतीतर ।

कैड़ा—संज्ञा पुं० [सं० काड = एक प्रकार का बगं मप] (१) वह यंत्र जिसमें किन्मी चीज़ का नक़्का ठीक किया जाता है । टाल चलने का औज़ार । (२) किन्मी वस्तु को विस्तार आदि नापने का थं हड़ा । पैमाना । मान ।

मुहा०—कैड़ा करना = (१) सरसरी तौर से नापना । अंदाज़ा करना । (२) डीग ठानना । कैड़ा खेना = चिट्ठा लेना । खाका बनाना ।

(३) चाल । टंग । तर्ज़ । काटछाँट । उ०—वह न जाने किम कैड़े का आदमी है । (४) चालबाज़ी । चतुरगई ।

कैना—संज्ञा पुं० [हिं० कैत = किनारा] पथर की वह पट्टी जो दीवार में फरकी को दोनों तरफ चौड़ाई के बल उसे रोकने के लिये आड़ी लगाई जाती है ।

कैप—संज्ञा पुं० [थ०] हाकिमों या सेना के टहलने का स्थान । पड़ाव । लश्कर । छावनी । कँप ।

कैबा—संज्ञा पुं० दे० “कैना” ।

कौ—वि० [सं० कवि, प्रा० कड] कितना । किम कदर । जैसे—के

आदमी आये हैं ? अथवा [सं० कि] या । वा । शयवा । या तो । उ०—जन्म सिराने ऐसे ऐसे । कै घर घर भ्रमत् यदुपति विन कै सोवत कै जैसे । कै कहुँ खान पान रमनादिक कँ कहुँ धाद धरैसे ।—सूर ।

विशेष—इस शब्द के भाव प्रथम में “धौ” प्रायः आता है । संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का मोटा जड़हन धान । संज्ञा स्त्री० [थ० कै] वमन । छाँट । उलटी ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—होना ।

कैकस—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस ।

कैकसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुमाली राक्षस की कन्या और रावय की माता ।

कैकयै—संज्ञा पुं० [सं०] कैकी । कैकय गोत्र का पुरव । कैकयो—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कैकय गोत्र में उत्पन्न स्त्री । (२) राजा दशरथ की रानी जो भरत की माता थी और जिसने मंथरा के यहकाने से रामचंद्र को बनवास दिलवाया था ।

कैगर—संज्ञा पुं० [सं० कैकर = कैकर] एक प्रकार का ऊँचा और सुंदर पेड़ ।

कैटभ—संज्ञा पुं० [सं०] मधु नामक दैत्य का छोटा भाई जिसे विष्णु ने मारा था ।

कैटभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम । कैटभारि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

कैट्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कायफल । (२) नीम । (३)

मदानिष । (४) मदनवृष । मयनी ।

कैट्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कायफल । (२) करंज । (३) धुनि-
करंज ।

कैती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कित] शेर । तरफ़ ।

कैनच—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यहाना । घोला । फूल । कपट ।
धूर्ता । (२) जुधा । घृतभीड़ा । (३) वैश्य मण्डि ।
लहसुनियार । (४) घग्गा ।

वि० (१) घोलेवाज । लुकी । (२) धूर्त । शठ । (३) जुधा
खेलनेवाला । जुधारी ।

कैतवापट्टुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपट्टुति शर्लकार का एक भेद
जिसमें प्रकृत अर्थात् वास्तविक विषय का गोपन या निषेध
स्पष्ट शब्दों में न कर के प्याज से किया जाय । इसमें प्रायः
प्याज मिस आदि शब्द द्या जाते हैं । व०—रसना मिस
विधि ने धरी, साँपनि खल मुय माहिँ । इस में जिह्वा का
निषेध शब्दों द्वारा नहीं बल्कि अर्थ से होता है । इसे अर्थों
भी कहते हैं ।

कैतून—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की पारीक लस जो कपड़ों में
किनारे किनारे लगाई जाती है । यह सुनखे तार और रेशम
से बनाती है, कभी कभी गूलावन या रेशम की भी बनाई
जाती है ।

कैथ—संज्ञा पुं० [सं० कथिय, प्रा० कथ्य] एक कैंटीला पेड़ जो पेल
के पेड़ के समान होता है और जिसमें बेल के आकार के
फल लगते हैं । इसकी पत्तियाँ छोटी, जड़ की शेर लंबोवारी
और आगे की शेर गोख होती हैं और एक सीके में लगी
रहती हैं । फल खाने में कसैला और खटमिट्टा होता है और
जससे घटनी और अचार बनाते हैं । लोग कहते हैं कि
हाथी पूरा कैथ बिना चबाये निगल जाता है और कुछ समय
बाद उसकी लीद के साथ पूरा कैथ निकलता है जिसमें
गुदे के स्थान में लीद भरी होती है । हनी लिये संस्कृत-
बाली ने एक "गजकथिय" न्याय बना रखा है । इसकी
लकड़ी जरदी लिए सफ़ेद और मजबूत होती है और संगदे
बनाने के काम में आती है ।

पर्या०—कथिय । दधिय । माही । मन्थ । दधिफल ।
पुंयफल । दंतशठ । कथिय । मालूर । मंगल्य । नील-
महिका । माहिफल । चिरपाकी । प्रथिफल । कुचफल ।
कथिष्ठ । गंधफल । दंतफल । करभबहभ । काटिन्यफल ।
करंजफलक ।

कैथा—संज्ञा पुं० दे० "कैय" ।

कैथिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० काय] कायस्थ जाति की स्त्री ।

कैथी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कैय] एक प्रकार का कैथ जिसके फल छोटे
छोटे होते हैं ।

यंता स्त्री० [हिं० काय] एक पुरानी लिपि जो नागरी से
मिलती जुलती है । यह शीघ्र लिखी जाती है, और इसमें
डेक या शीर्ष-रेखा नहीं होती । इसमें एक ही स्वर होना
है और घ घ ख ख स्वर तथा ट, थ, य व्यंजन नहीं
होते । मयुक प्रांत तथा बिहार में छिटी पत्री और हिंसा
विनाय आदि हरी लिपि में लिखे जाते हैं ।

कैद—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कैदी] (१) बंधन । श्रवण ।
(२) एक प्रकार का दंड जो राजनियम के अनुसार या
राजाशा से दिया जाता है और जिसमें अभियुक्त को किसी
यंद स्थान में रखते हैं । कारागारवास । कारावास ।

विशेष—आज फल अंगरेजी कानून में कैद तीन प्रकार की
होती है—कैद महज या सारी कैद, कैद सख्त और कैद
तनहाई ।

धी०—कैदगाना ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।—सुगतना ।

मुहा०—कैद काटना या भाना = कैद में दिन बिताना । कैद में
रहना ।

(३) किसी प्रकार की शर्त, शर्तक या प्रतिबंध । जैसे, (क)
पहले मिचिल पास सुग्तारी की परीक्षा दे सकने से, पर अब हम
में पढ़ेंस की कैद लगा गई है । (ख) सरकारी नौकरी में उन्न
की कैद है ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—लगाना ।—होना ।

कैदक—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कागज़ का बंद या पट्टी
जिसमें किसी एक विषय या व्यक्ति से संबंध रखनेवाले
कागज़ आदि रखे जाते हैं ।

कैदखाना—संज्ञा पुं० [सं०] यह स्थान जहाँ कैदी रहे जाते हैं ।
कारागार । बंदीगृह । जेलखाना ।

कैद तनहाई—संज्ञा स्त्री० [सं० कैद + फ़ा० तनहाई] वह कैद जिस
में कैदी को बहुत ही छोटी और संग कोठरी में धकेला रखा
जाय । कालकोठरी ।

कैद सख्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कैद जिसमें कैदी को किसी
प्रकार का परिश्रम या काम न करना पड़े । सारी कैद ।

कैद सख्त—संज्ञा स्त्री० [सं० कैद + फ़ा० सख्त] यह कैद जिसमें
कैदी को कठिन परिश्रम करना पड़े । कड़ी कैद ।

कैदसोवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कैद + सोवारी] तबले की एक गत
जिसका बोल यह है—
कैदे ता दिनेता अकेडे, धकिडे दिनेता
धाकेट धाकेट । दिनेता । धा ।

कैदार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रवाल नाम की लकड़ी । पत्रकाष्ठ ।
(२) शालिधान । (३) एक प्रकार का पड़िया धान ।

कैदी—संज्ञा पुं० [ष०] यह जो कैद किया गया हो। यह जिसे कैद की सजा दी गई हो। **कैदी**। बँधुवा।

कैदी—अश्व० [हिं० कै + धी] या। वा। घषया। उ०—प्यारी की ठोड़ी को बिन्दु दिनेश किर्पों विसराम गोविन्द को जी को। चाह चुम्बो कनिका मनि नील को कैदीं जमाव जगयो रजनी को। कैदीं अनेग विंगार को रंग लिखयो वर मंत्र पसीवर पी को। फूले सरोज में मारी वली किर्पों फूल ससी में लाग्यो बरसी को।—दिनेश।

कैदी—संज्ञा स्त्री० [सं० कचिका] (१) बाँस की टहनी। (२) किरारी वृक्ष की पत्तनी टहनी।

कैलित—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक खनिज पदार्थ जो खाद के काम में आता है। इसमें जवाहरात वा पुराण का रंग अधिक होता है।

कैफ—संज्ञा पुं० [ष०] (१) जशा। मद। उ०—हरो हरो रँग देखि कै भूलत है मन हँफ। नीम पौवन में मिलै कहूँ भाँग को कैफ।—रसनिधि। (२) तुल तुल के खिलान का यह धारा जिसमें भाँग वा और कोई माइक द्रव्य मिला रहता है और जो उसे खपाने के पहले दिया जाता है।

कैफियत—संज्ञा स्त्री० [ष०] (१) समाचार। धषण। (२) विचारण। तफूसील।

कि० प्र०—माँगना।—देना।—लिखना।—पढ़ना।

मुहा०—कैफियत तलब करना = नियमानुसार विचारण माँगना। कारण पढ़ना।

(३) आश्रयजनक वा हर्षोत्पादक घटना। जैसे—आज बड़ी कैफियत हुई।

कि० प्र०—दिखाना।—हेतना।

कैफी—वि० [ष०] (१) मनवाला। मदभरा। उ०—नेहिन उर आवत लावो जगही धीरज सैन। सैफी हंरन में पदे कैफी तेरे नैन।—रसनिधि। (२) नरोबाज।

कैवर—संज्ञा स्त्री० [दे०] वीर का फूल वा गाँसी। उ०—(क) सीस करोखे डारि कै, नर्गकी घूँघट डारि। कैवर सी कसकै हिये धरिनी चितवन नारि।—शू० सत०। (ख) रंगी नैन में सौरी लखाई दुरि छाई है। कि साँवो काम कैवर विश शोनिन में हुआई है।—प्रताप। (ग) विप भरे कैवर नरै वर गरु पदे तेरे तुल्य बचन प्रपंचिन को गावो है।—दुलह।

कैविनेट—संज्ञा स्त्री० [ष०] (१) यह कमरा जिसमें राजा महाराजा आदि अपने विभासपात्र मंत्रियों के साथ प्रबंधसंबंधी सलाह करते हैं। (२) मुख्य मंत्रियों की यह विषय सभा जो किसी एकत स्थान में बैठ कर राज्य-प्रबंध पर विचार करे। मंत्रि-समाज। मंत्रिमंडल। (३) लकड़ी का बना हुआ सामान। जैसे, मेज, आलमारी, दरान हवादि। (४) कैदी का एक भाकार जो कोई माइक से दूना होता है।

कैमा—संज्ञा पुं० [सं० कदव] एक प्रकार का कदव जिसके पत्ते कचनार की तरह चौड़े सिरे के होते हैं। इसके फूल कदव ही की तरह के पर उससे छोटे होते हैं और उनके ऊपर सफेद सफेद और नई लगने। इसकी लकड़ी पीले रंग की और बहुत मजबूत होती है, तथा इमारतों में लगती है। **कैमा**। उ०—अव तज नाम उवाय को, आयो सावन मास। खेल न रहियो खेम सो, कैम कुमुम की वास।

कैमुतिक न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय वा उक्ति नियमका प्रयोग यह दिखलाने के लिये होता है कि जब इतना बड़ा काम हो गया, तब यह क्या है ?

कैमरा—संज्ञा पुं० दे० “कमरा”।

कैया—संज्ञा पुं० [दे०] (१) टीन का काम करनेवालों का एक औजार जिससे बरतन रंगे जाते हैं। यह करछी के धाकार का और लोहे का होता है और इसमें एक थोर लकड़ी की मूठ लगी रहती है। (२) मध्यभारत का धी तेल आदि नापने का एक मान जो लगभग घाघ पाव का होता है।

कैर—संज्ञा स्त्री० दे० “करील”।

कैरध—संज्ञा पुं० [सं०] [सं० कैरवा] (१) कुमुद। (२) सफेद कमल। (३) शत्रु। (४) सुधारी।

कैरधि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

कैरयो—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चांदनी (रात)। (२) मेघी।

कैरा—संज्ञा पुं० [सं० कैर = कुमुद] [स्त्री० कैरी] (१) भूरा (रंग)।

(२) वह सफेदी जिसमें लखाई की मलक वा श्राय हो। (३) रंग के भेद से एक प्रकार का बेल जिसके सफेद रोपों के भीतर से चमड़े की लखाई मलकती है। ऐसे बेल बड़े तेज पर सुखमार होते हैं। सोकना। सोकन।

वि० (१) कैरे रंग का। (२) जिसकी धारें भूरी हों। कैजा।

कैराटक—संज्ञा पुं० [सं०] स्थावर विप का एक भेद जिसके शत-गंत अफ्रिम, कनेर, सोखिया आदि हैं।

कैरात—वि० [सं०] (१) किरात जाति-संबंधी। (२) किरात-देश-संबंधी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिरायत। (२) शंकर चंद्रन। (३) बलवान् मनुष्य। (४) करैत सर्प। (५) एक प्रकार की चिड़िया। (६) युद्ध राग का एक भेद (संगीत)।

कैराल—संज्ञा पुं० [सं०] यापविडंग।

कैरी—वि० स्त्री० [हिं० कैरी] (१) भूरे रंग की। जैसे—कैरी आंख।

(२) लखाई मिले सफेद रंग की। जैसे—कैरी गाय।

संज्ञा स्त्री० दे० “कैरी”।

कैराल—संज्ञा स्त्री० [हिं० कडा] किरारी वृक्ष की नई निकली हुई लंबी पत्तली शाखा। कनसाल।

कैलास—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिमालय की एक चोटी का नाम जो तिब्बत में राषसताल वा राष्यहृद से ऊपर और पचास

मील की दूरी पर है। पुराणानुसार यद् शिव जी का निवास-स्थान माना जाता है।

धा०—कैलासनाथ, कैलासवति = शिव। कैलासयास = मर्या। मृत्यु।

(२) एक प्रकार का पृथकोष्ण देवमंदिर जिसमें षाड भूमि थीर अनेक शिखर होते हैं। इसका विस्तार षट्पद ह्रास होता है। (३) स्वर्ग। उ०—कैची पर्वी ऊँच उडामा। जनु कैलास ईद कर यामा।—जायमी।

कैलासी—संज्ञा पुं० [सं० कैलास + ई० (प्रल०)] (१) कैलास-निवासी। महादेव। (२) कुंभर।

कैलेयाँ—संज्ञा पुं० [सं० कैलासात्] तालमखाना।

कैवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार मार्ग पिता थीर शयोगनी माता से उत्पन्न एक वर्षोत्तरक जाति। प्रदायैवत् पुराण में कैवर्त की उत्पत्ति पत्रिय पिता थीर वैश्या माता से विरती है। यह जाति आज कल केवट कहलाती है।

कैवर्तमूस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] कैवर्तीमोषा।

कैवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम जो मालवा में होती है। यह औषध के काम आती है, हलकी, सूख और फसैली होनी है तथा कफ, पार्सी थीर मंदाग्नि को दूर करनेवाली समझी जाती है।

पर्यो—सुरंग। दशरुहा। रंगिनी। यसरंगा। सुभगा।

कैवल—संज्ञा पुं० [सं०] यागविडंग। यागिरंग।

कैवल्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुद्धता। ये-भोजन। निरलिप्तता। एकता। (२) दर्शनों का यह सिद्धांत है कि जीवात्मा या तो श्रावण के कारण शय्या शविता से भ्रमयश संसार में सुख दुःख भोग रहा है। उसे शुद्ध या भ्रमरहित करना ही शाश्वत ने शयना परम कर्तव्य समझा है थीर उससे भिन्न भिन्न साधन बतलाए हैं। सांख्य शास्त्र में त्रिविध दुःख की अत्यंत निवृत्ति या कैवल्य माना है थीर विवेक को उसका एकमात्र साधन बतलाया है। योगशास्त्र में विरोपदर्शी ध्याम-भाव की भावना श्रयार्थ शहंकार की निवृत्ति को कैवल्य बतलाया है थीर चित्त की वृत्तियों के विरोध को ही उसका साधन कहा है। पेशान में श्रद्धितीय प्रह्लाभाव की प्राप्ति को कैवल्य माना है थीर श्रविषा की निवृत्ति को इसका साधन बहराया है। न्याय में दुःख की अत्यंत विमुक्ति को कैवल्य या श्रपवर्ग कहा है थीर बसका साधन प्रमाणादि पोष्य पदायों का तत्त्व ज्ञान बतलाया है। मुक्ति। श्रपवर्ग। निर्वर्ण। (३) एक उपनिषद् का नाम।

कैशिक—वि [सं०] कैशवाला। श्रेष्ठ श्रेष्ठ शालीवाला। संज्ञा पुं० [सं०] (१) देशप्रसूह। (२) शृंगार। (३) श्रव्य का एक भाव जिसमें सुकुमारता से किसी की नकल की जाती है।

कैशिकनिपाद—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो तीव्र नामक स्वर से शारंभ होता है थीर जिसमें तीन श्रुतियां लगती हैं।

कैशिकपंचम—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो संदीपनी नाम की श्रुति से शारंभ होता है थीर जिसमें चार श्रुतियां लगती हैं।

कैशिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक की मुख्य चार वृत्तियों में से एक। यह वृत्ति शृंगाररसप्रधान नाटकों में होती है। इसमें श्रव्य, गीत, गद्य थीर भोग विज्ञातों का श्रधिक वर्णन किया जाता है। ऐसे नाटकों में श्रिंपात्र श्रधिक होते हैं।

कैसर—संज्ञा पुं० [सं० सं.प्र.] (१) सम्राट। यादुराह। जैम, कैसरहिंद। (२) जर्मनी के सम्राट की वंशधि।

कैस—वि० [सं० कैस, प्रा० कैस] [स्त्री० कैसी। कि० वि० कैसे] (१) किस प्रकार का। किस ढंग का। उ०—यह कैसा श्रान्नी है ? (२) (निपेयार्थक प्रश्न के रूप में) किस प्रकार का ? किसी प्रकार का नहीं। उ०—जब हम उस घर में रहते नहीं तब किराया कैसा ?

कैसे—कि० वि० [हिं० कैसा] (१) किस प्रकार से ? किस ढंग से ? उ०—यह काम कैसे होगा ? (२) किस हेतु ? किस लिये ? क्यों ? उ०—तुम यहाँ कैसे आये ?

कैसा—वि० दे० "कैसा"।

कौई—संज्ञा पुं० दे० "कुई"।

कौंकण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिण भारत का एक प्रदेश जिसके अंतर्गत कनाड़ा, रत्नागिरी, बालासा, बर्हई थीर धाना श्रादि हैं।

विरोप—प्राचीन काल में केरल, तुलब, सारार, कौंकण, करहद, कर्णाट, थीर कर्नूर मिल कर सप्त कौंकण कहलाते थे।

(२) उफ, देश का निवासी।

कौंकणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] परशुराम की माना रेणुका। इन्हें कौंकणावती भी कहते हैं।

कौंकणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौंकण देश की भाषा जो शार्य थीर द्राविड़ भाषा के मेल से बनी है।

कौंचना—कि० सं० [सं० कुच = लिखन, शरीरना] चुभाना। गोदना। गड़ाना।

कौंचफली—संज्ञा स्त्री० दे० "कौंच"।

कौंचा—संज्ञा पुं० [सं० कौंच] एक प्रकार का जलपपी।

संज्ञा पुं० [हिं० कौंचना] (१) बहैलियों की यह लंबी लण्घी जिसके पत्तों सिरे पर ये लोग छासा लगाए रहते हैं थीर जिससे श्रुच पर बैठे हुए पपी को कौंच कर फेंका लेते हैं। (२) भइशूँजे का यह फलछा जिससे बालू निकाला जाता है।

कोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० कण, प्रा० कण्ठ] [कि० कोष्ठियाना] खिचे के अंशका का एक कोना ।

मुह—संज्ञा भवना = अंचल के केने में चावल, मिठूई, हूनदी आदि मग्नद्रव्य डालना । (सौम्याम्बवती स्त्री के प्रस्थान के समय तथा सीमंतोत्थान संस्कार में यह रीति होती है)

कोष्ठाना—कि० सं० [हि० काष्ठ] कोष्ठियाना । व०—केसर सों बगरी अम्हवाह खुनी सुनरी लुटकी सों कोष्ठी । बेनी लु मांग भरे मुक्ता बड़ो बेनी सुगंध फुलेल तिलोष्ठी ।—बेनी । कोष्ठियाना—कि० घ० [हि० कौष्ठी] (खियों की) साड़ी का वह भाग खुनना जो पहनने में पेट के भागे खोसा जाता है । कुनती खुनना ।

कोष्ठ स० [हि० कौष्ठ] (खियों के) कोष्ठ में कोई चीज भर कर उसके दोनों छोरों के आगे की और कमर में खोस लेना । कोष्ठी—संज्ञा स्त्री० [हि० काष्ठ] साड़ी या धोती का वह भाग जिसे खुन कर खियों पेट के आगे खोसती है । कुनती । तिष्ठी । नीवी ।

कोइई—संज्ञा पुं० [देग०] एक कटीला झाड़ू या पेड़ जो देहरादून, कमाऊँ, बंगाल और दक्षिण भारत में होता है । पत्तियाँ इसकी ३-४ अंगुल लंबी होती हैं । इसमें बहुत छोटे फूल छोटे छोटे गुच्छों में लगते हैं । पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं, फल खाये जाते हैं, जड़ और छाल की दवा बनती है ।

कोइरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुंठ] सोह का यह कड़ा जो मोट के मुँह पर लगा रहता है । गोटरा ।

कोइरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवली] हुडक बाजे की वह लकड़ी जिस पर चमड़ा मड़ा रहता है ।

कोइहा—वि० दे० "कोइहा" ।

कोइ—संज्ञा पुं० [सं० कुंठ] धातु का यह छेदा या कड़ा जिसमें जंजीर या और कोई वस्तु अटकवाई जाती है ।

वि० [हि० कोठा + हा (श्रय०)] जिसमें कोठा लगा हो । (रथया) जिसमें कोठा खरी रहने का चिह्न हो ।

विशेष—हस देश में रथयों में छेद करके उनकी माला पिरा कर खियों और बसों को पहनाते हैं । ऐसे रथयों को माली में से निकाल कर बाजार में बचाने से पहले उनके छेद चाँदी से बंद कर लेते हैं । इस प्रकार के रथयों को कोइहा या कोइहा कहते हैं ।

कोइ—संज्ञा स्त्री० दे० "कोइहा" ।

संज्ञा स्त्री० [सं० कौष्ठ] मुँहवैची कली । अगखिली कली ।

कोइयाँ—संज्ञा पुं० [देग०] कुइरों की परिनाया में बर्तन आदि का वह पूर्व रूप जो मिट्टी को चार पर रखने के बाद बनना है ।

कोइयाना—कि० अ० दे० "कूँस्ताना" या "कूँधना" ।

कोइयाना—कि० अ० [हि० कोपल] कोपल निकलना या लगना ।

कोइरा—संज्ञा पुं० [हि० कोपल] छोटा ब्रह्मपका या दाल का पका आम ।

कोइल—संज्ञा स्त्री० [सं० कोमल या कुपन्धव] वृष्ट आदि की छोटो, बड़े और सुलायम पत्ती । अंजुर । कड़ा । कगला ।

कोइरा—वि० [सं० कोमल] नरम । मुलायम । नाजुक । उ०—कोइरे पानि रची मेहदी टफ नीके बजाय हरे हिवरा री ।—सुंदरी सर्वस्व ।

कोइसाँ—संज्ञा पुं० [सं० कोप] छामी । लंबी कली ।

कोइइयाँ—संज्ञा पुं० दे० "कुइइयाँ" ।

कोइइरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कौइयाँ + री] कुइइ या पेड़े की बनाई हुई घरी ।

कोइहरा—संज्ञा पुं० [देग०] [स्त्री० कोइरी] उबाले हुए खड़े चने या मटर, जिनके तेल में दूँक कर और नमक मिचें लगा कर खाते हैं । घुँघनी ।

कोइहार—संज्ञा पुं० दे० "कुइहार" ।

कोइ—सर्व० [सं० कः] कौन ।

कर्म और संप्रदान का विभक्ति प्रत्यय, जैसे—साँप को मारो । राम को दो ।

कोइ—संज्ञा पुं० [सं० कोप वा हि० कोसा] (१) रोम के कीड़े का घर । कुमियारी । (२) टसर नामक रोम का कीड़ा । (३) महुप का पका फल । कोलंदा । गोलेँदा । (४) कटहल के पके हुए बीजकोष । (५) खुने हुए ऊन की पानी जिसे कात कर ऊन का तामा निकालते हैं (गड़रिया) । (६) दे० "कोइया" ।

कोइआर—संज्ञा पुं० [देग०] कोरा नाम का वृक्ष ।

कोइइयाँ—संज्ञा पुं० दे० "कोइइयाँ" ।

कोइइरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कोइरी] महुप का बीज ।

कोइइरारा—संज्ञा पुं० [हि० कोइरा + आर (श्रय०)] यह खेत या खान जहाँ कोइरी लोग साग तरकारी आदि धोते हैं ।

कोइइना—संज्ञा पुं० [हि० कोइहा + इना (श्रय०)] महुप का पका फल । गोलेँदा ।

कोइरी—संज्ञा पुं० [हि० कोइरा = सम पत्त] एक छोटी जाति । इस जाति के लोग साग तरकारी धोते और बेचते हैं । काड़ी ।

कोइल—संज्ञा स्त्री० [कुंठली] (१) वह गोल छेददार लकड़ी जो मखन निकालने के समय दूध के मटके या मेहँड़े के मुँह पर रखी जाती है और जिसके छेद में मयानी इसलिये डाल दी जाती है कि जिसमें वह लीपी बूमे और उससे मटका न फूटे । (२) करवे में वह लकड़ी जो दरकी के बगल में लगी रहती है (लुलादा) ।

संज्ञा स्त्री० (१) दे० "कोइलारी" । (२) दे० "कोइल" ।

कोइलसाँ—संज्ञा पुं० दे० "कोइली (१)" ।

कोइला-संज्ञा पुं० दे० "कोयला" ।

कोइलारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कोइला] (१) गरित्र की सुयी । (२) लकड़ी का यह गोला कड़ा जिसे बदमाश चौपायों के गोंयाय में इसलिये फँसा देते हैं कि जिसमें भटकना देने या खींचने से घनका गला दूबे । इसके व्यवहार से बदमाश चौपाये सीधे हो जाते और चुपचाप खड़े रहते हैं ।

कोइलिया*-संज्ञा स्त्री० दे० "कोयला" ।

कोइली-संज्ञा स्त्री० [हिं० कोइल] (१) यह कच्चा ग्राम जिसमें किसी प्रकार का आघात लगने से एक काइला सा दाग पड़ जाता है । ऐसा ग्राम कुछ सुगंधित और स्वादिष्ट होता है । विशेष-साधारण लोगों का विश्वास है कि ग्राम की यह दशा उस पर कोयल के पाने या बँडने से हो जाती है । (२) ग्राम की गुठली । (३) दे० "कोयल" ।

कोई-सर्व० [सं० कोषि, प्रा० कोवि] (१) ऐसा एक (मनुष्य वा पदार्थ) जो अज्ञात हो । न जाने कौन एक । उ०-यहाँ कोई खड़ा था, इसीसे मैं नहीं गया ।

मुद्दा०-कोई न कोई = एक नहीं तो दूसरा । यह न सही, वह । उ०-कोई न कोई तो हमारी यात सुनेगा ।

(२) ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो । बहुतेरों में से चाहे जो एक । अविशेष वस्तु वा व्यक्ति । उ०-(क) वहाँ बहुत सी पुस्तकें पड़ी हैं उनमें से कोई ले लो । (ख) हमारा कोई क्या कर लेगा ?

मुद्दा०-कोई एक वा कोई सा = जो चाहे या एक ।

(३) एक भी (मनुष्य) । उ०-वहाँ कोई नहीं है ।

वि० (१) ऐसा एक (मनुष्य वा पदार्थ) जो अज्ञात हो । न जाने कौन एक । उ०-वहाँ कोई आदमी खड़ा है ।

मुद्दा०-कोई दम का मेहमान = थोड़े ही काल तक और अनिश्चल । शीघ्र मरनेवाला ।

(२) बहुतेरों में से चाहे जो एक । ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो । उ०-इनमें से कोई पुस्तक ले लो । (३) एक भी । कुछ भी । उ०-(क) कोई चिंता नहीं । (ख) यह कोई पढ़ना नहीं है ।

मुद्दा०-यह भी कोई बात है ? = यह कोई बात नहीं है । ऐसा नहीं हो सकता । ऐसा नहीं होना चाहिए । उ०-(क) जब हम आते हैं तब तुम चल देते हो, यह भी कोई बात है । (ख) यह भी कोई बात है कि जो हस्त कहे यह न हो । कि० वि० लगभग । करीब करीब । उ०-कोई दस आदमियों ने चंदा दिया होगा ।

कोइडा*-सर्व० [हिं० [हिं० को + इ = भी] कोई] उ०-कोइ नूप होय हर्म का हानी ।

कोइडा*-सर्व० [हिं० कोइ + एक] कोई एक । कतिपय । कुछ लोग ।

कोऊडा*-सर्व० [हिं० को + इ = भी] कोई ।

कोकंब-संज्ञा पुं० [देग०] एक पेड़ जिसके सप थंग खटे होले हैं । दे० "वितांबिल" ।

कोक-संज्ञा पुं० [सं०] [यी० कोको] (१) चकवा पत्ती । चकवाड़ा । सुग्गाव ।

यी०-कोकंबु = सुग्गा ।

(२) एक पंडित का नाम जो रति शब्द का आचार्य माना जाता है । उसका पूरा नाम कोकदेव कहा जाता है ।

यी०-कोकराज ।

(३) संगीत का छुड़ा भेद, जिसमें नायिका, नायक, रस, रसाभास, थलंकार, वहीचन, थालंचन, समय और समाजदि का ज्ञान आवश्यक है । (४) विष्णु । (५) भेड़िया ।

यी०-कोकमुख । कोकाच ।

(६) मंडक ।

यी०-कोकाद = लोमड़ी ।

(७) जंगली खरूर ।

कोकई-वि० [तु० कोक] ऐसा नीला जिसमें गुलाबी की मूकक हो । कैंडियाला ।

संज्ञा पुं० [तु० कोक] कैंडियाला रंग । ऐसा नीला रंग जिसमें गुलाबी की मूकक हो ।

विशेष-यह नील, शहाय और मजीठ के संगम से बनता है ।

कोककला-संज्ञा स्त्री० [सं०] रति विद्या । संगम संबंधी विद्या ।

कोकदेव-संज्ञा पुं० कोकराज वा रतिराज का रचियता ।

कोकन-संज्ञा पुं० [देग०] एक ऊँचा पेड़ जो आसाम और पूर्वी बंगाल में होता है । इसकी पत्तियाँ शिशिर में झड़ जाती हैं । इसकी लकड़ी भीतर से सफेद निकलती है जिस पर पीली पीली धारियाँ होती हैं । लकड़ी का बज्रन प्रति घन फुट १० से १२ सेर तक होता है । यह देखने में तो सुलायम होती है, पर न फटती है और न झुकती है । यह पाय के संदूक और नाव बनाने के काम में आती है तथा मकानों में भी लगती है ।

कोकनद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल कमल । (२) लाल सुमुद ।

कोकना-कि० सं० [फा० कोक = कच्ची सिखाई] कच्ची सिखाई करना । कच्चा करना । लंगर ठालना ।

कोकनी-संज्ञा पुं० [सं० कोक = कच्चा] एक प्रकार का तीतर । संज्ञा पुं० [देग०] (१) एक प्रकार का संतरा जो सहारनपुर और दिल्ली में होता है ।

संज्ञा पुं० [तु० कोक = आसतानी] एक प्रकार का रंग जो शहाय, साजबंद और फिटकिरी से बनता है ।

वि० [देग०] छोट्टा । नन्दा । जैसे, कोकनी घेर, कोकनी कला । (२) घटिया । निहट्ट । जैसे, कोकनी कलाघत्त ।

कोकाम—संज्ञा पुं० [दे०] एक छोटा सदाबहार पेड़ जो केवल दक्षिण भारत में होता है ।

विशेष—दे० “अमरसूत्र” ।

कोकच—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो पूर्वी चित्तलव, बेंदारा मारु और देवगिरी से मिला कर बनाया गया है ।

कोकघा—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घाँस जो घरमा और घासाम में बहुतायत से होता है । यह दोखरे बनाने के काम में आता है ।

कोकशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कोक कृत रतिशास्त्र ।

कोका—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणी अमेरिका का एक वृक्ष जिसकी सुखई हुई पत्तियाँ चाय या कढ़वे की भाँति शक्ति-बर्द्धक समझी जाती हैं । इसके व्यवहार से थकावट और भूख नहीं मालूम होती, इसीलिये यहाँ के निवासी पहाड़ों पर चढ़ने से पहले यहाँ की सूखी पत्तियाँ चबा लेते हैं । इनमें एक प्रकार का नशा होता है, इसलिये एक बार इनका व्यवहार आरंभ करके फिर उसे छोड़ना कठिन हो जाता है । कोकेन इसी से निकलती है ।

संज्ञा पुं० और स्त्री० [उ०] घाय की संतान । दूध पिलाने-वाली की संतति । दूध भाई या दूध बहिन ।

संज्ञा पुं० [हिं० कोक] एक प्रकार का कच्चा ।

संज्ञा स्त्री० [?] नीली कुमुदिनी ।

विशेष—दे० “कोका बेती” ।

कोकावेरी, कोकावेली—संज्ञा स्त्री० [सं० कोका + वेली] नीली कुमुदिनी जो पुरानी स्त्रियों या तालाबों में होती है । इसका फूल नीले रंग का, बढ़ा और सुहावना होता है । इसमें भी कुई की तरह बीज होते हैं जिनका आटा घृत में फलाहार की तरह खाया जाता है । इसके बीज भूतने से लाया हो जाता है, जिसे चीनी में पाग कर खड़ा बनाते हैं । नीली कुई । उ०—कोका बेली, पवन सियरी, वारि की चारनाई । को है पेता, कारहिं नहिं ये जासु कहीनासाई ।—द्विवेदी ।

कोकामुख—संज्ञा पुं० [सं०] भारत का एक प्राचीन तीर्थ जिसका उल्लेख महाभारत में आया है ।

कोकाह—संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद रंग का घोंडा । उ०—हरे कुरंग मधुख बहु भाँती । गर कोकाह बलाह सुंपाँती ।—जायसी ।

कोकिल—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोयल ।

पर्या०—पिक । पस्थन । ताम्राक्ष । वनप्रिय । परपुष्ट । अन्वपुष्ट । वसंतदूत । रक्षाक्ष । मधुगायन । फलकंड । कामोद्य । काकलीत्व । कुहुरद ।

(२) नीलम की एक जाति । (३) एक प्रकार का चूहा जिसके काठने से ज्वर हो जाता और बहुत जलन होती है ।

(४) छपपया का १६ वाँ भेद जिसमें १२ गुरु, ४८ लघु, (१०० बंध) और १६२ मात्राएँ होती हैं । (५) जवता हुआ अंगारा ।

कोकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल । पिक ।

कोकिल्लाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ताल मखाना ।

कोकिलाम्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक ताल जिसमें एक झुत्त, झुत्त की तीन मात्राएँ, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक झुत्त और सप्त झुत्त की तीन मात्राएँ होती हैं । इसे लोग परमलु भी कहते हैं । इसके मूढ़द के बोल ये हैं—धीकून धीकृत विधिभिन्ति उ देक थैं । तकिभिग्नि विधिभिग्नि मों थैं डे ।

कोकिलारव—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक ।

कोकिलासन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक शासन ।

कोकिलेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी जामुन । फेंदा ।

कोकोन—संज्ञा स्त्री० दे० “कोकेन” ।

कोकुभा—संज्ञा पुं० [सं० कोकप्र] समष्टिल नाम का बीया ।

पर्या०—महाप्र । अन्नप्रयोजक । कोकात्र । कंडक फल । उपदेय । कोकेन—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोका नामक वृक्ष की पत्तियों से तैयार की हुई एक प्रकार की श्रापध जो गंधहीन और सफ़ेद रंग की होती है । यह दूध की भाँति खाने, मरहमों में मिलाने और अर्ध श्रादि वेमल अंगों पर अथ विक्रिस्ता करने से पहले, उन स्थानों को सुखा करने के काम में आती है । इधर कुछ दिनों से भारत में इसका प्रयोग मादक द्रव्यों की भाँति होने लगा था और लोग इसे पान के साथ खाते थे, पर अब सब साधारण में इसका प्रचार सरकार द्वारा रोक दिया गया है ।

धौ०—कोकेनची = मादक द्रव्य की भाँति कोकेन का उपयोग करनेवाला । कोकेन का नशा खानेवाला ।

कोको—संज्ञा स्त्री० [अ०] कौआ । लड़कों को बहकाने का शब्द । उ०—मैं तो साथ रही सुख नौद पिया को कोको ले गढ़ रे । (गीत) ।

विशेष—जब किसी वस्तु को बर्था के सामने से हटाना होता है तब उसे हाथ में लेकर कहीं छिपा देते हैं और उनके बहकाने के लिये कहते हैं कि “कौआ ले गया” ? “कोको ले गई” ।

कोख—संज्ञा पुं० [सं० कुभि, प्रा० कुभिज] (१) वृद्ध । जड़ । पेट ।

(२) पसलियों के नीचे, पेट के दोनों बगल का स्थान ।

मुहा०—कोखें लगना या सटना = पेट खाली रहने या बहुत अधिक भूख लगने के कारण पेट अंदर धँस जाना । (३) गर्भाशय ।

विशेष—इस अर्थ के सब मुहावों और वैयक्तिक शब्दों का प्रयोग कोयल क्रिया के लिये होता है ।

धौ०—कोखवंद । कोखजली ।

मुहा०—कोख उजड़ना = (१) संतान मर जाना । पात्रक मर जाना । (२) गर्भ मर जाना । कोख बंद होना = अंध्या होना । संतति उत्पन्न करने के अयोग्य होना । कोख, या, कोख भाँग से,

ठंडी, या, भरी पूरी रहना = बालक, या, बालक और पति का मुँह देखते रहना । (आसीस) । कोख मारी जाना = दं० "कोख बंद होना" । कोख की घीमारी या रोग = संतति न होने या श्वेतर मर जाने का रोग । कोख की आँच = संतान का विशेष । संतान का बड़ । उ०—सब दुःख सहा जाता है, पर कोख की आँच नहीं सही जाती । बाल खुलना = बाल-पन दूर होना ।

कोखजली-वि० [हि० कोख + बरना] जिसकी संतति होकर मर जाती है । जिसके बालक मर जाते हैं ।

कोखबंध-वि० [हि० कोख + बंध] बंध्या । बाल्म । जिसे संतति न होती है ।

फोगी-संज्ञा पुं० [दे०] लोमड़ी से मिलता जुलता एक प्रकार का जानवर जो मुँह में रहता और फसल को बहुत हानि पहुँचाता है । कहते हैं कि इनका मुँह मिल कर शेर पर टूट पड़ता और उसके शरीर का सारा मांस खा जाता है । जिस जंगल में फोगी का मुँह जाता है उसमें से शेर दर कर निकल जाते हैं ।

कोच-संज्ञा पुं० [अ०] (१) एक प्रकार की चौपटिया बड़िया घोड़ा-गाड़ी ।

धौ०—कोचबकस । कोचयान ।

(२) गौद्वार बड़िया पलंग, बेंच या आराम कुर्सी ।

संज्ञा पुं० [हि० कोचना] यह लंबी छड़ जिसकी सहायता से भट्टे में से बले हुए बरतन निकाले जाते हैं ।

संज्ञा पुं० [?] दूटे हुए जहान का टुकड़ा (लश०) ।
कोचकी-संज्ञा पुं० [?] मन्नेहया से मिलता जुलता एक प्रकार का रंग जो ललाई लिए भूरा होता है, और कढ़े प्रकार से बनाया जाता है ।

कोचना-क्रि० सं० [सं० कुच = लकड़ कराना, सिलना] धँसाना । चुभाना । गढ़ाना ।

मुहा०—कोचा करेला = वह चेहरा जिस पर शीतला के बहुत से दाग हैं ।

कोचनी-संज्ञा स्त्री० [हि० कोचना] (१) लोहे का एक छोटा औजार जो सुई के आकार का होता है और जिससे तलवार की म्यान के ऊपर का चमड़ा सीया जाता है । (२) बेल हाँकने की छड़ी । पैना । औगी ।

कोचबकस-संज्ञा पुं० [अ० कोच + बकस] घोड़ा गाड़ी में वह ऊँचा स्थान जिस पर हाँकनेवाला बैठता है ।

कोचरा-संज्ञा पुं० [दे०] बड़े पेड़ों पर चढ़नेवाली एक प्रकार की पत्ती खाता जिसकी पत्तियाँ एक अंगुल लंबी, तथा दोनों ओर मुकीनी होती हैं । जेठ असाढ़ में इसमें पीले रंग के फूल गुच्छों में लगते हैं, और दूसरे बसंत तक फल पक जाते हैं । यह खाता, गोड़ा, यहराहू तथा खसिया और भूदान में होती है ।

कोचरी-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पत्ती ।

कोचयान-संज्ञा पुं० [अ० कोचयान] घोड़ा-गाड़ी हाँकनेवाला ।

कोचा-संज्ञा पुं० [हि० कोचना] (१) तलवार कटार आदि का हलका धाव जो पार न हुआ हो ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

(२) लगती हुई बात । सुटीली बात । ताना । ब्यंज ।

क्रि० प्र०—देना ।

कोचिंडा-संज्ञा पुं० [दे०] जंगली प्याज जो दक्षिण हिमालय में होता और खाने और दवा के काम में आता है । काड़ा ।

कोची-संज्ञा पुं० [?] बकल की किसिम का एक जंगली पेड़ जो पूरब और दक्षिण भारत के जंगलों में अधिकता से होता है । इसकी छाल और पत्तियाँ प्रायः औषध के काम में आती हैं । इसकी सूखी फलियों को लोग आँवले या इमली की भाँति रगड़ कर उससे सिर के बाल धोते हैं । बनरीडा । सीकाकाई ।

कोचिला-संज्ञा पुं० दे० "कुचला" ।

कोचीन-संज्ञा पुं० [दे०] मद्रास प्रांत की एक देशी रिप्यास जो ट्रावेनकोर राज्य के उत्तर में है ।

कोजागर-संज्ञा पुं० [सं०] आरिवन मास की पृथ्वीमा । शरद प्लो ।

विशेष—प्लो माना गया है कि इस रात को लक्ष्मी संसार का भ्रमण करती है और जिसे जागरण करते और उसब मनाते पाती हैं, उस पर प्रसन्न होती और उसे धन देती है माने लक्ष्मी तजार्थ करती फिरती है कि "को जागर" अर्थात् कौन जागता है ।

कोट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुर्ग । गढ़ । किला ।

धौ०—कोटपाल ।

(२) शहर-पनाह । माचीर । (३) राजमंदिर । महल । राजप्रासाद ।

संज्ञा पुं० [सं० कोटि] समूह । युध । जत्या । उ०—चले दुर्ग अथवा कोटि कोटि को कोट किरि । सोहत सकल सवार रामागमन अनंद भरि ।—रघुराज ।

संज्ञा पुं० [अ०] एक औंगरेड़ी ढंग का पहनावा जो कमीज़ या जूते के ऊपर पहना जाता है और जिसका सामना बदनदार होता है ।

कोट-अरलू-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मछली जो समुद्र में होती है और जिसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है ।

कोटगीपल-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी कठोर, चिकनी और मजबूत होती और इमारत के काम में आती है । बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में यह पेड़ अधिकता से होता है ।

कोटचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का चक्र जिसका प्रयोग युद्ध से पहले अपने दुर्ग का शुभाशुभ परि-

याम जानने के लिये होता है। यह धाट प्रकार का होता है, गिनके नाम ये हैं—सूत्रमय, जलकोटक, प्रामकोट, गह्वर, गिरि, धामर, वक्रभूमि और विषम।

कोटपाल—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्ग की रक्षा करनेवाला। किलेदार। कोटपीस—संज्ञा स्त्री० दे० “कोटपीस”।

कोटभरियार्—संज्ञा स्त्री० [सं० कोट + हि० भरना] वह लकड़ी जो नाव के किनारे किनारे ऊपर की ओर जड़ी रहती है।

कोटमास्टर—संज्ञा पुं० दे० “कार्टे मास्टर”।

कोटार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेड़ का खोलना भाग। (२) दुर्ग के आस पास का वह कृत्रिम बन जो रक्षा के लिये लगाया जाता है।

कोटारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बायासुर की माता का नाम।

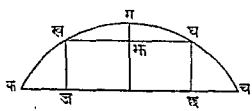
कोटरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्ग। चंडिका।

कोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धनुष का सिरा। कमान का गोश्या। (२) किसी शस्त्र की नोक या धार। (३) यर्ग। श्रेणी। दूरता। (४) किसी यादविवाद का पूर्वपत्र। (५) जलकृष्टता। उन्नतता। (६) अर्धचंद्र का सिरा। (७) समूह। जया। (८) किसी १० शंखा के घाय के दो भागों में से एक। (९) क से घ तक का घाय १० शंखा का है। उसका एक शंखा क-ग उसके दूसरे शंख ग-घ की कोटि है और ग-घ उसके दूसरे शंखा क-ग की कोटि है।

(६) किसी त्रिशुल या चतुर्भुज की भूमि या आधार और कर्ण से मिले रेखा। (१०) राशिचक्र का श्रेणीय शंखा। (११) जलवनरना नामक सुगंधि द्रव्य जो धौलपथ के काम में आता है। पुं० [सं०] सी लास की संख्या। करोड़।

कोटिक—वि० [सं० कोटि + क] (१) करोड़। (२) अमित। अमरुष्य। अनगिनत। बहुत अधिक।

कोटिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रही की स्पष्टता के लिये बनाए हुए एक प्रकार के शंख का एक विशेष शंखा।



दस श्रेण में ख—क या घ—क, और ख—ज या घ—घ शंखा कोटिया हैं।

कोटितीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थ विशेष। ह्य नाम के तीर्थ अनेक स्थानों पर हैं, पर उज्जैन और चित्रहट के तीर्थ अधिक प्रसिद्ध हैं।

कोटिकली—संज्ञा पुं० [सं०] गोदावरी नदी के सागर-संगम के निकट का एक प्रसिद्ध तीर्थ। जब सिंह राशि पर बृहस्पति धाता है तब इस स्थान पर बड़ा मेला लगता है। उस समय इस तीर्थ में स्नान करने का बड़ा फल है। कहते हैं कि ईश्वर का अहल्या-गमन-पाव इसी तीर्थ के स्नान से होता था।

कोटिदा—कि० वि० [सं०] अनेक प्रकार से। बहुत तरह से। वि० बहुत अधिक। बहुत बहुत। अनेकानेक। उ०—आपको कोटिया; धन्यवाद।

कोट्ट—संज्ञा पुं० दे० “कूट”।

कोटिदान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लेख या वाक्य का उद्धृत शंखा। उद्धरण। (२) सीमे का दला हुआ चौकोर पोला टुकड़ा जो कंठोत्र करने में, खाली स्थान भरने के काम में आता है। यह काष्ठ से बना होता है। इसकी चौड़ाई ४ एम पाइका और लंबाई २, ४, ६ या ८ एम पाइका तक होती है।

कोट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बायासुर की माता। जब श्रीकृष्ण और बायासुर में युद्ध हुआ था तब यह अपने पुत्र की रक्षा के लिये मंगी हो कर युद्ध क्षेत्र में उतरी थी। (२) मंगी स्त्री। (३) दुर्गा।

कोट्याधीश—संज्ञा पुं० [सं०] करोड़पति। करोड़ी। बहुत बड़ा धनी।

कोठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कंठ जो मंदलाकार होता है।

वि० [सं० उठ] मुठिन। जिससे कोई वस्तु कुंची या चलाई न जा सके।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दांतों के लिये उस समय होता है जब वे खट्टे वस्तु लगने के कारण कुछ देर के लिये बेकाम से हो जाते हैं।

कोठड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० “कोठरी”।

कोठर—संज्ञा पुं० [सं०] शंकोल का पेड़।

कोठरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्या नामक वृष।

कोठरियार्—संज्ञा स्त्री० दे० “कोठरी”।

कोठरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कोठ + टी (टी) (कण्ठ + क्त्वं)] (मन्त्र आदि में) यह क्षोटा स्थान जो चारों ओर दीवारों या दरवाजों आदि से घिरा और ऊपर से ढाया हुआ हो। क्षोटा कम्बल। संग कोठ।

मुहा०—सँघेरी कोठरी। सँघेरी कोठरी का यार—दे० “सँघेरी” के अंतिम महापरे। बाल कोठरी—दे० “बाल कोठरी”।

कोठा—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठक] (१) बड़ी कोठरी । चौड़ा कमरा ।
(२) स्थान जहाँ बहुत सी चीजें संग्रह करके रक्खी जाय ।
भंडार ।

धौ०—कोठादार । कोठारी ।

(३) मकान में छत वा पाटने के ऊपर का कमरा । अथारी ।

धौ०—कोठेवाली = वा मारू खाँ । बेरथा ।

मुहा०—कोठे पर चढ़ना = किसी ऐसे स्थान पर पहुँचना जहाँ सब लोग देख सकें । अधिक शक्त वा प्रसिद्ध होना । उ०—
(बात) “थोठे निकली, कोठे चढ़ी” । कोठे पर बैठना =
बेरथा बनना । कतब कमाना ।

(४) उदर । पेट । पक्कापय ।

मुहा०—कोठा बिगड़ना = अन्न आदि रोग होना । कोठा साफ
होना = साफ दस्त होने के बाद पेट का हज़मका हो जाना ।

(५) गर्भाशय । धरन ।

मुहा०—कोठा बिगड़ना = गर्भाशय में किसी प्रकार का रोग होना ।

(६) खाना । घर । जैसे शतरंज वा चौपड़ के कोठे ।

मुहा०—कोठा खींचना = लकड़ों से खाना बनाना । कोठा भरना =
हिंदुओं में कालिक स्नान करनेवाली छिवो का विशेष तिथियों
का भूमि पर ३१ खाने खींच कर प्राज्ञव्य का दान देने के अभि-
प्राय वे उनमें अन्न वस्त्र आदि पदार्थ भरना ।

(७) किसी एक श्रेणिक का पहाड़ा जो एक खाने में लिखा
जाता है । जैसे—अन्न उसने चार कोठे पढ़ाड़े याद किए ।

(८) शरीर या मस्तिष्क का कोई भीतरी भाग जिसमें कोई
विशेष शक्ति रहती हो ।

मुहा०—कोठों में चित्त भरना या जाना = अनेक प्रकार की
आशंकाएँ होना । उ०—तुम्हारे चले जाने पर मुझे बहुत
चिंता हुई, न जाने कितने कोठों में चित्त भरमा । किसी
कोठे में चित्त जाना = किसी प्रकार की प्रति प्रति या वास्तव
होना । अंधे कोठे का = मूर्ख । बेवकूफ । विचारशून्य । कोठा न
होना—कोठा साफ होना, = अंतःकरण शुरू होना । दृश्य में कोई
बुरा विचार न रहना ।

कोठाकुचाल—संज्ञा पुं० [हिं० कोठा + कुचाल] हाथियों की वह
वीमारी जिसमें उनकी भूख मारी जाती है ।

कोठादार—संज्ञा पुं० [हिं० कोठा + दा०] भंडारी । कोठारी ।
भंडार का अधिकारी ।

कोठार—संज्ञा पुं० [हिं० कोठा] अन्न धनादि रखने का स्थान ।
भंडार ।

कोठारी—संज्ञा पुं० [हिं० कोठार + ई (प्रत्य०)] वह अधिकारी जो
भंडार का प्रबंध करता और उसके लिये पदार्थ आदि
संग्रह करता हो । भंडारी ।

कोठिला—संज्ञा पुं० दे० “कुठला” ।

कोठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठा] (१) बड़ा पक्का मकान । हवेली ।

(२) अंगरेजों के रहने का मकान । बैंगला । (३) वह मकान
जिसमें रुपए का लेन देन या कोई बड़ा कारबार हो ।
बड़ी दुकान जिसमें धोक की बिक्री होती है । जैसे—(क)
महाजन की कोठी । (ख) नील की कोठी ।

मुहा०—कोठी करना या खोलना = महाजनी का काम शुरू करना ।
लेन देन का व्यवहार करना । कोई बड़ा कारबार शुरू करना ।
बड़ी दुकान खोलना । कोठी चलना = महाजनी का कारबार
होना । लेन देन का व्यवहार होना । जैसे—उनकी इस समय कई
कोठियाँ चलती हैं । कोठी बैठना = दिवालिया निकलना । कार-
बार में घाटा आना ।

धौ०—कोठीवाला ।

(४) अनाज रखने का कुटला । बखार । गंज । जैसे—कोठी
में चावल भरा पड़ा है । (५) ईंट वा पत्थर की वह जोड़ाई
जो कुएँ की दीवार या पुल के खंभे में पानी के भीतर की
जमीन तक होती है । यह जोड़ाई जमवट वा गोले के ऊपर
होती है । जमवट उभें उभें नीचे धँसता जाता है खों खों
जोड़ाई नीचे तक पहुँचती जाती है और उसके ऊपर नई
जोड़ाई होती जाती है ।

क्रि० प्र०—बांधना ।

मुहा०—कोठी उतारना, पैठाना या हालना = दे० “कोठी गलाना” ।

कोठी गलाना = कुएँ या पुल के खंभे में जमवट वा गोले के
ऊपर की जोड़ाई को नीचे धँसाना । लाल कोठी = व्यभिचारीणी
छिवो का अड्डा । (पंजाब)

(६) बंदूक में वह स्थान जहाँ बारूद ठहरती है । (७)
गर्भाशय । बच्चादान । (८) ग्यान की साम ।

संज्ञा स्त्री० [सं० कोठि = समूह] उन प्रसिद्धों का समूह जो एक
साथ मंजलाकार उगते हैं । जैसे,—चार कोठी बाँस फट गए ।

कोठीवाल—संज्ञा पुं० [हिं० कोठा + वाला (प्रत्य०)] (१) वह जिस-
के यहाँ कोठी चलती हो । वह जिसके यहाँ लेन देन या हुंभी
पुरजें का व्यवहार होता हो । महाजन । साहूकार । (२)
कोई बड़ा कारबार करनेवाला । बड़ा व्यापारी । (३) महा-
जनी शरर जो कई प्रकार के होते हैं, और जिनमें शीर्ष
रेखाएँ और मायाएँ नहीं होतीं । मुड़िया ।

कोठीवाली—संज्ञा स्त्री० (१) कोठी चलाने का काम । (२)
कोठीवाल शरर ।

कोठुना—क्रि० सं० [सं० कुट्ट = खंडित एक] खेत गोड़ना । खेत की
मिट्टी को कुछ गहराई तक खोद कर उलट देना ।

कोठुवाना—क्रि० सं० [हिं० कोठना का प्र०] दूसरे के द्वारा कोठने
का काम कानना ।

कोठ्ठा—संज्ञा पुं० [सं० कवठ = गुये हुए काल] (१) एक छोटा दंड
या दस्ता जिसमें चमड़ा या सूत आदि बटकर जगगाया जाता

है और जो मनुष्यों या जानवरों को मारने के काम में खाता है। चातुक। सांडा। हुरा।

क्रि० प्र०—अड़ना ।—पटकारना ।—मारना ।—लगाना ।—बैठना ।

(२) उच्चैः जात ७ मर्मस्पर्शी यात। जैसे, मैं तो स्वयं ही यह काम करने को था, इस पर तुम्हारा कहना और भी एक कोड़ा हुआ।

क्रि० प्र०—रोना ।—लगाना, आदि।

(३) चेतावनी।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का बांस जो दक्षिण-भारत में होता है। (२) कुत्ती का एक बंध जिसमें विपची के दाहिने पैरों पर खड़े होने पर बाएँ हाथ की कोहनी से उमरी दाहिनी रान दबाते और दाहिने हाथ की कलाई से उमके दाहिने पैर का गद्दा उठा कर दोनों हाथों को मिला कर जोर करके उसे चित्त गिरा देते हैं।

कोड़ाई—संज्ञा—श्री० [हिं० कोड़ना] (१) खेत गोड़ने की मजूरी।

(२) खेत गोड़ने का काम।

कोड़ानां—क्रि० सं० [हिं० कोड़ना का प्रे०] दूसरे के द्वारा कोड़ने का काम कराना।

कोड़ार—संज्ञा पुं० [सं० कुंडल] लोहे का एक प्रकार का गोल बंद जो कोरहू की लकड़ी के चारों ओर इसलिये जड़ा होता है कि जिसमें बंद पट न जाय। पश्चिम में इसे चरम कहते हैं। कुंडरा। तौक।

कोड़िक—संज्ञा पुं० [सं० कोट = सुभर] सुभर पालनेवाली एक जाति।

कोड़ी—संज्ञा श्री० [सं० स्त्री या सं० कोटि] (१) यीम का समूह। भीसी (२) पक्का घोना। तालाब का पक्का निकाम जिससे तालाब-भर जाने पर अधिक पानी निकल जाता है।

कोड़—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड] [वि० कोड़ा] एक प्रकार का रक और लवचा संबंधी रोग जो संक्रामक और पुराण-सुम्रमिक होता है। वैद्यक के अनुसार कोड़ १८ प्रकार का होता है जिनमें से काराल, अट्टुवर, मंडला, सिपु, काच्यक, पुंडरीक और श्रधनिद्ध नामक सात प्रकार के कोड़ मडाकुट कहे और शलाघ्य समझे जाते हैं और एककुट, राजचर्म, चर्मदल, चिचिचिका, विरादिका, पामा, कच्छ, वट्ट, विपेट, किरिम और धलसक नामक शेष ग्यारह प्रकार के कोड़ पुण्ड्र कुट कहे और साध्य समझे जाते हैं। कोड़ होने से पहले चमड़ा खाल हो जाता है और उसमें यहून जलन होती है। मलित कोड़ से हाथ पैर की उँगलियाँ गल गल कर गिर जाती हैं। बाबूनों के मन से यह सर्वोप ध्यायी रोग है और रणीपद आदि भी इसी के अंतर्गत हैं। इस रोग से पीड़ित मनुष्य धुपित और अस्पृश्य समझा जाता है।

मुहा०—कोड़ चना या टपकना = कोड़ के फारय श्रेणी का

गन गत कर गिरना। कोड़ की खाज या कोड़ में खाज = दुःख पर दुःख। विपत्ति पर विपत्ति। उ०—एक तो काराल कलिकाल खल मूल तामें, कोड़ में की खाजु सी मनीचरी है मीन की।—तुलसी।

कोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कोड, प्र० कोडट] खेत में बंद बाड़ा या खान जहाँ खाद के लिये गोबर आदि संप्रद करने के अभिप्राय से पशुओं को रखते हैं।

कोड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० कोड़] एक प्रकार का रोग जो तमाख के पत्तों में होता है और जिसके कारण उसपर चकत्ते या दाग पड़ जाते हैं।

कोड़ी—संज्ञा पुं० [हिं० कोड] [की० कोटिन] कोड़ रोग से पीड़ित मनुष्य।

कोष्य संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक विंदु पर मिलती या कटती हुई दो ऐसी रेखाओं के बीच का अंतर जो मिल कर एक न हो जाती हों। कोन। गोथा।

विशेष—जिन दो रेखाओं से कोष्य बनता है उनकी लंबाई के घटने बढ़ने से कोष्य के मान में कुछ अंतर नहीं पड़ता। कोष्य का मान निकालने का ढंग यह है कि जिन विंदु पर दोनों रेखाएँ मिलती हैं उसे केंद्र मान कर दोनों रेखाओं को काटता हुआ एक वृत्त बनावे, फिर उसकी परिधि को ३६० अंशों में विभक्त करे। जितने अंश कोष्य बनानेवाली रेखाओं के बीच पड़ेंगे, उतने अंशों का वह कोष्य कहा जायगा। रेखागणित में कोष्य कई प्रकार के होते हैं जैसे, समकोष्य (९० अंश का), मधुन कोष्य (९० से कम का), इत्यादि।

(२) दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा। कोष्य चार हैं—पश्चिम कोष्य (पूर्व और दक्षिण के बीच का कोष्य), नैऋति (पश्चिम और दक्षिण का), ईशान (पूर्व और उत्तर का), वायव्य (उत्तर और पश्चिम का)। (३) सारंगी की फरानी। (४) धियारों की पाड़। तलवार आदि की धारा।

(५) सांडा। हंडा। लाठी। (६) दोल पीटने की धारा।

संज्ञा पुं० [व० कोनस] (१) शनि ग्रह। (२) मंगल ग्रह।

कोष्यनर—संज्ञा पुं० दे० "कोष्यनरु"।

कोष्यप—संज्ञा पुं० दे० "कोष्यप"।

कोष्यवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] यह देशांतर वृत्त जो उत्तर पूर्व से दक्षिण-पश्चिम या उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर गया हो।

कोष्यदोक्त—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की वह स्थिति जहाँ कि वह न तो कोष्यवृत्त में हो और न दग्गंडल में हो।

कोष्यस्पृग्गवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जो किसी वृत्त के सभ कोनों को छूता हुआ सौंघा जाय।

कोष्याकोषी—अर्थ [सं०] एक कोने से दूसरे कोने तक।

कोणाघात—संज्ञा पुं० [सं०] दस हज़ार डोलों और एक लाख हुड्डियों के एक साथ बजने का शब्द ।

कोखाफे—संज्ञा पुं० [सं०] जगन्नाथपुरी का एक प्रसिद्ध तीर्थ ।

कोत—संज्ञा स्त्री० [प्र० कुत] बल । शक्ति । जोर । उ०—
फौंदर, फौंदल, जपदल, विद्रुम का दूतनी जो बंदूक में कोत है ।—शंभु ।

† संज्ञा स्त्री० दे० “कोद” ।

कोतरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मछली ।

कोतल—संज्ञा पुं० [फ़०] (१) राजा सजाया घोड़ा जिम पर कोई सवार न हो । जलूसी घोड़ा । (२) स्वयं राजा की सवारी का घोड़ा । उ०—गवर्नरहि भरत पयादेहि पाये । कोतल संग जाहि होरिषाये ।—तुलसी । (३) वह घोड़ा जो ज़रूरत के वक के लिये साथ रखा जाता है ।

वि० [फ़०] खाली । जिसे कोई काम न हो ।

कोतलगारद—संज्ञा पुं० [प्र० कवर्द गवर्द] छावनी का यह प्रधान स्थान जहाँ हर समय गारद रहती है और जहाँ दखेल-वालें की निगरानी होती है ।

कोनवाल—संज्ञा पुं० [सं० कानवाल] (१) पुलिस का एक प्रधान कर्मचारी जो किसी ज़िले के प्रधान नगर में रहता है और जिसके अधीन कई थाने और यानेदार होते हैं । इसपर नगर की शांति-रक्षा का भार रहता है । पुलिस का इंस्पेक्टर । (२) वह कार्यकर्ता जिसका काम पंडितों की सभा या पंचाहत वाली धिरादरी अथवा साधुओं के अखाड़े की बैठक, भोज आदि का निर्माण देना और उनका ऊपरी प्रबंध करना हो ।

कोनवाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोतवाल + ई (मल०)] (१) यह स्थान वा मकान जहाँ पुलिस के कोतवाल का कार्यालय है । (२) कोतवाल का पद । कोतवाल का ओहदा ।

कोनह—वि० [फ़०] छोट्टा । कम ।

कोतह गर्दन—संज्ञा पुं० [फ़०] यह जिसकी गर्दन छोटी अर्थात् बहुत कम लंबी हो ।

कोता * १—वि० [फ़० कोतह] [स्त्री० कोती] छोट्टा । कम । अल्प । उ०—सुर गधर्व सरिस नर नारी, नहिं विद्या बुधि कोती ।—रघुराज ।

कोताह—वि० [फ़०] छोट्टा । कम । अल्प ।

कोताही—संज्ञा स्त्री० [फ़०] मुट्टि । कमी । कोर कसर ।

कोतिस—संज्ञा स्त्री० [सं० कुत्र = किर] दिशा । ओर । उ०—
दामिनि ! निज दुति दरपि कै चमकु न अथ इहि कोति ।
—शु० सत० ।

कोथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आँल की पलक के भीतर का एक रोग । कुष्ठरोग । (२) मगदर ।

कोथमीर—संज्ञा पुं० [?] हरा धनिया ।

कोथला—संज्ञा पुं० [हिं० गुथ अथवा कोठला] (१) बड़ा धंला । (२) पेट ।

मुहा०—कोथला भरना = भोजन करना । (प्यंथ) ।

कोथली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोथला] रुपए आदि रखने की एक प्रकार की लंबी पतली थैली जिसे लोग कमर में बांध कर रखते हैं । हिमपायी । उ०—राम रतन घट कोथली, प्राहक आगे खोल । जय रे मिलेगा पारखी, तब लोग मड़ेंगे मोल ।
—कवीर ।

कोथी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (तलवार के) श्यान के सिरे पर लगा हुआ धातु का छुल्ला या टुकड़ा । श्यान की साम ।

कोदंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष । कमान ।

धो०—कोदंडकला = धनुषिया ।

(२) धन राशि । (३) मोंह । (४) एक प्राचीन देव ।

कोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोण अथवा कुण] (१) दिशा । ओर । तरफ । उ०—साग के भाजन जात जहाँ चहुँ कोदनि मोह विनोद निषाये ।—गुमान । (२) कोना । उ०—साखी हैं बेनी प्रवीन सु पै अथहीं इतै भाजि दुरे कहुँ कोद मैं ।—बेनी ।

कोदइत—संज्ञा पुं० [हिं० कोदो + इत (मल०)] कोदो दखनेवाला ।

कोदई—संज्ञा स्त्री० [सं० कोद्व] कोदो ।

कोदरा—संज्ञा पुं० दे० “कोदो” ।

कोदरता—संज्ञा पुं० [हिं० कोदो + दरता] कोदो दखने की चक्री जो प्रायः चिकनी मट्टी की बनती है ।

कोदच—संज्ञा पुं० [सं० कंद्व] कोदो ।

कोदचला—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोदो] कोदो के पेड़ के आकार की एक एक प्रकार की घास, जिसके नरम पत्ते चौपाये शौक से खाते हैं ।

कोदो, कोदो—संज्ञा पुं० [सं० कोद्व] एक प्रकार का कद्व जो प्रायः सारे भारतवर्ष में होता है । इसका पौधा घान या यड़ी घास के आकार का होता है, इसकी फसल पहली वर्षा होते ही बो दी जाती है और भादों में तैयार हो जाती है । इसके लिये बड़िया भूमि या अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती । कहीं कहीं यह रुई या अरहर के खेत में भी बो दिया जाता है । अधिक पकने पर इसके दाने मड़ कर खेत में गिर जाते हैं, इसलिये इसे पकने से कुछ पहले ही काट कर खलियान में डाल देते हैं । झिलका उतरने पर इसके अंदर से एक प्रकार के गोल चावल निकलते हैं जो खाए जाते हैं । कभी कभी इसके खेत में अगिया नाम की घास उत्पन्न हो जाती है जो इसके पौधों को जला देती है । यदि इसकी कटाई से कुछ पहले बदली हो जाय तो इसके चाबलों में एक प्रकार का विष आ जाता है । वैद्यक के मत से यह मधुर, तिक्त, रूखा तथा कफ और पित्त नाशक है । मया

कोदो गुल्फक होता है। कोदो के रोगी को इसका पथ्य दिया जाता है। कोदरा। कोदई।

मुद्रा—कोदो देकर पढ़ना या सीखना = श्रुती या वेदंगी शिक्षा पाना। कोदो दलना = निकृष्ट, पर अधिक परिश्रम का काम करना। छाती पर कोदो दलना = किसी को दिव्यता पर कोई ऐसा काम करना जिससे उसे ईर्ष्या और जल हो। किसी को जलाने या कुत्ताने के निम्ने उसे दिखला कर या उकरी जानकरी में कोई काम करना।

कोद्व—संज्ञा पुं० [सं०] कोदो। कोदई।

कोध—संज्ञा स्त्री० दे० “कोद्”। उ०—नर नारी सय दंसि चकित भे दावा लगयो चहुँ कोध।—सूर।

कोन—संज्ञा पुं० [सं० कोष] कोना।

मुद्रा—कोन देना = कोने पर से हृत्त को घुमाना। कोन भारना = जोतने में छूटे हुए कोनों का गोड़ना।

संज्ञा पुं० [दे०] ना की संख्या (दलाली)।

धो—कोनलाय।

कोनलाय—संज्ञा पुं० [दे०] १३ की संख्या। (दलाली)।

कोनसिला—संज्ञा पुं० [हिं० कोना + सिला] कोनिया की धाजन में यह मोटी बाकड़ी जो बेंडेर के सिरे से दीवार के कोने तक तिरछी गई हो। कोरे इस्ती के आधार पर रखे जाते हैं।

कोना—संज्ञा पुं० [सं० कोण] (१) एक बिंदु पर मिलती हुई ऐसी दो रेखाओं के बीच का अंतर जो मिल कर एक रेखा नहीं हो जाती। अंतराल। गोरा। (२) चुकीला किनारा वा छोर। चुकीला सिरा। जैसे—उसके हाथ में रस्ती का कोना धँस गया।

मुद्रा—कोना निकालना = किनारा बनाना। कोना मारना या धरटना = दे० “धिर मारना”।

(३) धोर का यह स्थान जहाँ लंबाई चौड़ाई मिलती हो। खूँट। जैसे—दुपट्टे का कोना।

मुद्रा—कोना दबना = दे० “कोर दबना”।

(४) कोदरी या घर के भीतर की यह सँकरी जगह जहाँ लंबाई चौड़ाई की दीवारें मिलती हैं। गोरा।

मुद्रा—कोना अंतर = घर के भीतर का ऐसा स्थान जहाँ छवि अर्दी न पड़ती हो। छिपा स्थान। जैसे,—(क) उतने सारा कोना अंतरा छूँट बाला। (ख) चीज कहीं कोने अंतरे में पड़ी होगी।

(४) एकाल और छिपा हुआ स्थान। जैसे—(क) कोने में बैठ कर गाकी देना धीरता नहीं है। (ख) पर नारी का संभवा, अंगे लहसुय की धान। कोने बैठ के खाइए, परगट होय निदान।—कबीर।

मुद्रा—कोना कानिना = किसी बात के पढ़ने पर भय वा लजा से जी चुराना। किसी बात से बचने का उपयय करना। जैसे—

सुम करने को तो सार कुछ करते हो पर पीछे कोना कानिने लगते हो।

(६) चार भागों में से एक। चौथाई। चहासम। (दलाजी)।

मुद्रा—कोने से = चार आने की रूप के हिसाब से।

कोनिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोना] (१) वह धामन जिसमें बेंडेर के दोनो सिरे पालों पर नहीं रहते बल्कि दीवार के कोनों से कुछ दूर पर रखती हुई धरन के ऊपर रहते हैं जहाँ मे दीवार के कोनों तक धरने (कोनसिले) तिरछी रखनी जाती हैं। ऐसी धाजन के लिये पाले की आवश्यकता नहीं होती।

(२) काठ की पटरी या पथर की पटिया जो दीवार के कोने पर चीजें रखने के लिये बँटाई जाती हैं। पटनी।

कोनेदंड—संज्ञा पुं० [हिं० कोना + दंड] यह दंड वा कसरत जो घर के कोने में दोनो थोर की दीवारों पर हाथ रख कर की जाती है।

कोप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उचित] क्रोध। रिस। गुस्सा।

धो—कोपभवन। कोपभाजन।

कोपड़—संज्ञा पुं० [दे०] पहटा। साराई। हँगा।

विदोष—दे० “हँगा”।

कोपनक—संज्ञा पुं० [सं०] घोवा नामक गंधद्रव्य।

कोपना—क्रि० अ० [सं० कोष] क्रोध करना। मुद्र होना। नाराज होना। उ०—कोप्यो समर धी राम।—मुलती।

कोपभवन—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई मनुष्य क्रोध करके या अपने घर के प्राणियों से रुठ कर जा रहे। उ०—कोपभवन गवनी कँकेपी।—मुलती।

कोपर—संज्ञा पुं० [सं० कपाल] पीतल वा अन्य किसी धातु का बड़ा घाल जिसमें एक ओर उसे सरलता से उठाने के लिये कुंडा लगा रहता है। उ०—कनक फलय भरि कोपर धारा। भाजन ललित अनेक प्रकार।—मुलती।

संज्ञा पुं० [हिं० कोपन] डाल का पका हुआ धाम। टपका। सीकर। सॉय।

कोपल—संज्ञा पुं० [सं० कोमज वा उपलज] शृच आदि की नई मुलायम पत्ती। कला। शंकर।

कोपलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनकोड़ा नाम की वेल।

कोपली—वि० [हिं० कोपल] कोपल के रंग का। धाम के नए निकले हुए पत्त के रंग का। बैंगनी।

संज्ञा पुं० एक रंग जो धाम के दुरंत के निकले हुए पत्त के रंग का अर्थात् कालापन लिप हुए लाल वा बैंगनी होता है और जो मज्जित और नील के मिलाने से बनता है।

कोपिली—दे० “कोइली (१)”।

कोपी—वि० [सं० कोपि] (१) क्रोधी। पोप करनेवाला। (२) एक प्रकार का पत्ती जो जल के किनारे रहता है। (३) सदीयें राम का एक भेद।

वि० [सं० कोऽपि] कोई। कोई भी। उ०—विमुर राम प्राता नहि कोपी।—तुलसी।

कोपीन—संज्ञा पुं० दे० “कौपीन”।

कोप्ल—संज्ञा पुं० [फा०] लोहे पर सोने या चाँदी की पचीकारी। जरनिशां।

संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) रंज। दुग्ध। खेद। (२) तरदुद। परेशानी। हैरानी।

क्रि० प्र०—उठाना।—गुजरना।—होना।

कोप्लगरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] लोहे के दरतनों या हथियारों पर चाँदी या सोने की पचीकारी करने का काम।

कोप्ला—संज्ञा पुं० [फा०] कूटे हुए मांस का बना हुआ एक प्रकार का कबाब जो आमुत के आकार का होता है और जिसके श्रेद शदरक, पुद्दिना, एसखस, भूने चने का धाटा आदि भरा रहता है।

कोपलही—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का वृष जो परमा और नेवाल में अधिकता से होता है।

कोवा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) मोंगरी। (२) बुरमुट। (३) चमारों का यह औज़ार जिससे वे चमड़ा ढूँटते हैं।

कोविद—संज्ञा पुं० दे० “कोविद”।

कोविदार—संज्ञा पुं० दे० “कोविदार”।

कोधी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोभी] गोभी का फूल।

कोमता—संज्ञा पुं० [देग०] कीकर की जाति का एक बड़ा, मुहावना और सदाबहार पेड़ जो सिंध और अजमेर के रेतिले इलाकों में अधिकता से होता है। इसमें कठि बहुत अधिक होते हैं।

कोमर—संज्ञा पुं० [देग०] खेत का वह कोना जो किसी और कुछ अधिक बढ़ गया हो।

कोमल—वि० [सं०] [सजा कोमलता] (१) सृष्ट। मुलायम। नरम। (२) सुकुमार। नाजुक। (३) अपरिपक्व। कच्चा। जैसे—कोमलमति बालक। (४) सुंदर। मनोहर।

धौ०—कोमलचित्त = दयापूर्ण चित्त। वह चित्त जो शांति प्रकटित हो जाय।

(४) स्वर का एक भेद। (संगीत)

विशेष—संगीत में स्वर तीन प्रकार के होते हैं—शुद्ध, तीय और कोमल। पद्म और पंचम शुद्ध स्वर हैं, और इनमें किसी प्रकार का विकार नहीं होता। शेष पाँचों स्वर (श्रपभ, गंधर्व, मध्यम, धैवत और निषाद) कोमल और तीय दो प्रकार के होते हैं। जो स्वर पीमा और अपने स्थान से कुछ नीचा हो वह कोमल कहलाता है। धीमेपन के विचार से कोमल के भी तीन और भेद होते हैं—कोमल, कोमलतर और कोमलतम।

कोमलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सृष्टलता। मुलायमता। नरमी। (२) मधुरता। सात्वित्य।

कोमला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह वृत्ति जिसके अनुप्रासों में व्यासपद हों पर उसकी मधुरता यनी रहे। इसके दूसरे नाम प्रमाद और लाठी या लातानुमास हैं। (२) गिरनी का पेड़। कोयला—सर्व० दे० “कोई”।

कोयता—संज्ञा पुं० [सं० कर्षा, प्रा० कषा = छुट] ताड़ी टपकाने वालों का एक औज़ार जिसमें ये छेय लगते हैं।

कोयरी—संज्ञा पुं० [सं० कोपय] (१) माग पात। सज्जी तरकारी। (२) वह हरा घारा जो गाँव के आदि में दिया जाता है।

कोयल—संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल] काले रंग की एक प्रकार की चिट्ठिया जो आकार में कौवे से कुछ छोटी होती है और मँदरानों में वर्षत ऋतु के आरंभ से वर्षा के थंत तक रहती है। यह चिट्ठिया सारे संगमर में पाई जाती है, और प्रायः सभी भाग्यों में इसके नाम भी इसके स्वर के अनुकरण पर बने हैं। भारत की कोयल अपने थंडे कौवे के चोंचले में रस देती और यहाँ वसमें से बचा निकलता है। इसी लिये इसे संस्कृत में शन्यपुष्ट भी कहते हैं। इसकी थालें लाल, चोंच कुछ भुकी हुई और दुम चोड़ी और गोल होती है। इसका स्वर बहुत ही मधुर और म्रिय होता है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस पित्तनाशक और कफ़ बढ़ानेवाला है। कोकिला। कोइली।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की लता जिसकी पत्तियाँ गुदाय की पत्तियों से मिलती खुलती पर कुछ छोटी होती हैं। इसमें नीले और सफ़ेद फूल होते हैं, और एक प्रकार की फलियाँ लगती हैं। इसका प्रयोग औषधियों में बहुत होता है। वैद्यक के अनुसार यह ठंडी, विरेचक और घमनकाटक होती है। इसकी पत्तियों का रस पीने से सांभ का विष उतर जाता है। कभी कभी इसका प्रयोग अंगरेजी दवायों में भी होता है। अपराजिता।

कोयला—संज्ञा पुं० [सं० कोकिल = जसदा, दुष्का अंगार] : (१) वह जला हुआ अंश या पदार्थ जो जली हुई लकड़ी के अंगारों को बुझाने से बच रहता है। (२) एक प्रकार का खनिज पदार्थ जो कोयले के रूप का होता और जलाने के काम में आता है। यह कई रंग और प्रकार का होता है। जहाँजहाँ और रेलों के इंजिनों तथा भट्टों आदि में यही भोंका जाता है। इसकी आँच बहुत तेज होती है और बहुत देर तक टहरती है। इसकी खानें संसार के प्रायः सभी भागों में पाई जाती हैं। यनस्पति और वृक्ष आदि के मिट्टी के नीचे दब जाने और बहुत दिनों तक उसी धरा में पड़े रहने के कारण उनकी सड़ी लकड़ियाँ आदि जम कर पत्थर या चट्टान का

रूप धारण कर लेती हैं और अंदर की गरमी से जलकर होने वह रूप प्राप्त होता है जिसमें वह खानों से निकलता है। इसी लिये इसे पथर का कोयला भी कहते हैं। इसमें मट्टी का भी कुछ अंश मिला रहता है जो इसके जल चुकने पर राख के साथ बाकी रह जाता है।

मुहा०—कोयलों पर मोहर होना = केवल छेपे और तुच्छ खरबों की अधिक जांच पड़तान होना। छेपे और तुच्छ पदार्थ की अधिक और अनावश्यक रक्षा होना।

संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बहुत बड़ा पेड़ जो आसाम में होता है। इसकी लकड़ी बिकनी, कड़ी और बहुत मजबूत होती है और इमारत के काम में आती है। इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को खिलाई जाती हैं। इसे सोम भी कहते हैं।

कोया-संज्ञा पुं० [सं० कोय] (१) अंगल का डेला। ३०—(क) कहत भरे जल लोचन कोये।—तुलसी। (ख) बाल काह जाली परी लोचन कोचन माँह। लाल तिहारे रगन की परी रगन में छाँहें।—विहारी। (२) अंगल का कोना।

संज्ञा पुं० [सं० कोय] कटहल के फल के भीतर की यह गुठली जो चारों ओर गूदे से ढकी होती है और जिसके अंदर बीज होता है। कटहल का बीजकोय।

कोर-संज्ञा पुं० [सं०] अंडवृद्धि का देग।

कोरगा-संज्ञा पुं० [दे०] गोथर और मट्टी से पेली हुई एक प्रकार की दीरी जिसमें घनाज आदि रखते हैं।

कोरगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छेटी इलायची। (२) पिप्पली।

कोरजा-संज्ञा पुं० [हिं० कोर + जान] वह अन्न जो मजदूरों को मजदूरी में दिया जाता है।

कोर-संज्ञा स्त्री० [सं० कोय] (१) किनारा। सिरा। हाशिया।

मुहा०—कोर निकालना = किनासा बनाना। कोर मारना या छांटना = बड़े हुए या धारदार किनारे को कम या बराबर करना। (१) बड़ई और संगतरास।

(२) कोना। गोरा। अंतराल।

मुहा०—कोर दबना = किसी प्रकार के दबाव या बरा में होना। कल में होना। ३०—(क) अब तो उनकी कोर दबनी है, अब वे कहाँ जायगे ? (ख) जब तक उनकी कोर न दबेगी, तब तक वे रुपया न देंगे।

(३) द्वेष। घैर। घैमनस्य। ३०—उतले सूत्र न टारत कतहूँ, मेलेसें मानत कोर।—सूर।

क्रि० प्र०—मानना।—रखना।

(५) दोष। घृण। उराई।

क्रि० प्र०—निकालना।

धौ०—कोर कसर।

(४) हथियार की धार। चाड़। (६) बंकि। अंधेरी। कतार।

३०—कोर बाँधि पांचो भये ठाढ़े। आगे धरे जंगलन गाढ़े।—सूदन।

क्रि० प्र०—पाँचना।

संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) धनी फसल की पहली सिंचाई। (२) वह चबैना या और खाद्य पदार्थ जो मजदूरों या कुलियों को जलपान के लिये दिया जाता है। पनपिवाव। छाक।

क्रि० प्र०—देना।—रखना।—पाना।—लेना, आदि।

संज्ञा पुं० [सं०] सुभूत के अनुसार शरीर की आठ प्रकार की संधियों में से एक प्रकार की संधि। इस संधि पर से श्रवण मुड़ सकते हैं। बैंगली, कलाई, कुहनी और घुटने की संधियाँ इसी के अंतर्गत हैं।

कोरई-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की घास जो हिमालय में काश्मीर से बरमा तक ६००० फीट उँची पहाड़ियों और तराईयों में पैदा होती है। बंगाल और मद्रास में अधिकता से इसकी चटाइयाँ बनती हैं। इसे कहीं कहीं मुद्राकटी भी कहते हैं।

कोरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कली। मुकुल। (२) फूल या कली का वह बाहरी भाग जो प्रायः हरा होता है और जिसके अंदर पुष्पदल रहते हैं। फूल की कटोरी। ३०—कोरक सहित अगलिया लख्यो राहुँ अथतार। कला कलाधर की गिली जनु उगिलत पदि मार।—गुमान। (२) कमल की नाल या डंडी। छप्पाल। (५) चौरक नाम का गधधव्य। (४) शीतल चीनी।

संज्ञा पुं० [सं० कोरक = वृक्ष] एक प्रकार का मोटा और मजबूत पेठ जो आसाम और बरमा में होता है और जिसको छड़ियाँ बनती हैं।

कोर कसर-संज्ञा स्त्री० [हिं० कोर + का० कसर] (१) दोष और सुटि। घृण और कमी। (२) अधिकता या न्यूनता। कमी बरती। जैसे,—अगर इसके दाम में कुछ कोर कसर हो तो उसे ठीक कर दीजिये।

क्रि० प्र०—निकालना।—निकालना।

कोरट-संज्ञा पुं० [सं० कोट + भाक काटस] (१) कोटें बनाए जाईं स। जैसे, कोरट का सुहरिर। (२) किसी जायदाद का कोटें भाक वाटस के प्रबंध में थाना या लिया जाना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—कोरट छूटना = किसी जायदाद का कोटें भाक वाईं स के प्रबंध से निकलना। किसी जायदाद पर से कोरट का प्रबंध उठना। कोरट बैठना = किसी जायदाद का कोरट के प्रबंध में थाना।

कोरना-क्रि० सं० दे० “कोठना”।

कोरनी-संज्ञा स्त्री० [दे०] पथर पर खुदाई का काम। संगतराशी।

कोरमा-संज्ञा पुं० [उ०] अधिक ची में भुना हुआ एक प्रकार का

मांस जिसमें जल का अंश या शोरवा बिलकुल नहीं होता ।

कोरवा—संज्ञा पुं० [दे०] (१) पान की खेती का दूसरा वर्ष ।

विशेष—जो पान पौधों में दूसरे वर्ष लगता है वह अधिक उत्तम समझा जाता है ।

(२) दे० "कोरा" ।

कोरसाकेन—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बड़ा और सुहावना पेड़ जो अरब, बंगाल, आसाम और मद्रास में अधिकता से होता है । लगते ही यह पेड़ बहुत जल्दी बढ़ जाता और घना और छायादार हो जाता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती, अधिक दामों पर बिकती और इमारत के काम में आती है ।

कोरहा—वि० [हि० कोर + रा (प्रत्य०)] [स्त्री० कोरही] कोरदार । नोकदार ।

यो०—कोरही सवरी = कसेरा की वह पतली और छोटी सवरी जो महीन काम करने के लिये होती है ।

वि० [हि० कोर = गोर] गोद में बहुत रहनेवाला ।

कोरा—वि० [सं० केवल] [स्त्री० कोरी] (१) जो बर्तों न गया हो । जिसका व्यवहार न हुआ हो । नया । अदृष्ट ।

मुहा०—कोरा छुरा वा उत्तरा = वह उत्तरा जिस पर ताजा सान रखा हो । वह सान रखा हुआ छुरा जो चलाया न गया हो ।

कोरे छुरे वा उत्तरे से मूँड़ना = (१) ताज़ा धार के छुरे से तिर मूँड़ना जिसमें याल जड़ से मुड़ जाय अथवा बड़ा फट हो ।

(२) गूला मूँड़ना । बिना पानी लगाए मूँड़ना । (३) छुर लट्ठना । छुर भँसना । कोरी धार वा बाढ़ = हथियार की धार जिस पर सान रखा हो । तीक्ष्ण धार । कोरा पिंडा = अदृष्टा शरीर ।

बिन ब्याह्ण पुरुष वा बिन ब्याही स्त्री ।

(२) (कपड़ा वा मिट्टी का बरतन) जो धोया न गया हो । जिसमें जल का स्पर्श न हुआ हो । जैसे, कोरा घड़ा । कोरा कपड़ा । कोरा नैनसुख ।

मुहा०—कोरा बरतन = (१) मिट्टी का वह बरतन जिसमें पानी न डाला गया हो । (२) नवोद्गा स्त्री । अदृष्टी कुमारी (वाजारू) ।

कोरा सिर = (१) वह सिर जिसमें छुरा न लगा हो । वह सिर जिसमें पेट के बाल हों । (२) वह मला हुआ सिर जिसमें तेल न लगा हो ।

(३) जो रंगा न गया हो । जिस पर कुछ लिखा वा चित्रित न किया गया हो । जिस पर कोई दाग वा चिह्न न हो । सादा । साफ़ । जैसे, कोरा कागज़ ।

मुहा०—कोरा जवाब = साफ़ इनकार । स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार ।

(५) खाली । रहित । वंचित । विहीन । जैसे,—उन्हें कुछ नहीं मिला, वे कोरे लौट आए ।

मुहा०—कोरा रह जाना = कुछ न पाना । तिरिङ्ग लाभ न करना । वंचित रह जाना ।

(१) जिस पर कोई आघात वा घुरा प्रभाव न पड़ने पाया हो । आपत्ति वा दोष से रहित । निरपद वा निकलक । यद्यपि ।

क्रि० प्र०—कोरा बचना = किसी आपत्ति वा दोष में साफ़ बचना ।

(६) विद्या विहीन । मूर्ख । अपढ़ । जड़ । (७) धनहीन । अकिंचन । (८) केवल । सिर्फ़ । खाली । जैसे,—कोरी बातों से काम न चलेगा ।

संज्ञा पुं० [सं० कारक] एक चिड़िया जो तालों के किनारे रहती है । इसकी चोंच पीली और पैर लाल होते हैं । यह जेठ असाढ़ में अंडे देती है और श्रुत के अनुसार रंग बदलती है ।

संज्ञा पुं० [?] बिना किनारे की रेयमी धोती ।

संज्ञा पुं० [सं० कोद] गोद । उडंग ।

क्रि० प्र०—लेना ।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक पेड़ जो गढ़वाल, धरार, मध्य प्रदेश और आसाम में बहुतायत से होता है । यह पेड़ कद में छोटा होता है । इसके हीरे की लकड़ी सफेद, चिऊनी और नरम होती है । देहरादून और सहारनपुर में इसपर खोदाई का काम होता है । छाल, फल और पत्ते दवा के काम में आते हैं । (२) एक प्रकार का सतमो जो फारसोय के काम में आता है । (३) ऊल के खेत की पहली सिंचाई ।

कोरान—संज्ञा पुं० दे० "कुरान" ।

कोरापन—संज्ञा पुं० [हि० कोरा + पन (प्रत्य०)] नवीनता । अदृष्टापन ।

कोरि—वि० दे० "कोटि" ।

कोरी—संज्ञा पुं० [सं० कोल = शुभ्र] [स्त्री० कोरि] हिंदुओं की एक नीच जाति जो सादे और मोटे कपड़े धुनती है । हिंदू खुलावा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० कोटि वा अं० स्कोर] बीस घन्टुओं का समूह ।

वि० स्त्री० [हि० कोरा] (१) अदृष्टी । नवीन । जो काम में न लाई गई हो । (२) जिस पर रंग न चढ़ाया हो । जिस पर कुछ लिखा न गया हो । सादी । दे० "कोरा" ।

कोरो—संज्ञा पुं० [हि० कोर] (१) वह लकड़ी जिससे पनवारी का भीटा छाया जाता है । (२) काँड़ी जो सपरैल में लगती है । (३) रेंड का सूखा पेड़ ।

कोर्ट—संज्ञा पुं० [अ०] थदाखत । कचहरी ।

संज्ञा पुं० [वं०] कोर्टपीस नामक तारा के खेल में एक प्रकार की जीत जो सात धाजियाँ जीतने के बराबर समझी जाती है ।

कोर्ट आफ वाईस—संज्ञा पुं० [अं०] वह सरकारी विभाग जिसके

द्वारा किसी अनाथ, विधवा या श्रमोपय मनुष्य की जायदाद का प्रबंध होता है। कोर्ट।

कोर्ट ईस्पेक्टर—संज्ञा पुं० [अं] पुलिस का यह कर्मचारी जो पुलिस की धोर से फैजदारी अदालतों में मुकदमों की पेशी करता है।

कोर्टपीस—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार का ताग का खेल जो चार आदमियों में होता है।

कोर्टफीस—संज्ञा स्त्री० [अ० कोर्ट + फी] अदालती रसम।

विशेष—दे० "रसम"।

कोर्ट-मार्शल—संज्ञा पुं० [अं०] कौड़ी अदालत जिसमें सेना के नियमों का भंग करनेवाले, सेना छोड़ कर भागनेवाले, तथा वाणी सिपाहियों का विचार होता है।

कोर्टशिप—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रथा जिसके अनुसार पुरुष किसी स्त्री को श्रयने साथ विवाह करने के लिये उचित और अनुकूल करता है। कन्या—संयरण।

विदोष—यह प्रथा युरोप अमेरिका आदि सभ्य देशों में प्रचलित है। प्राचीन काल में आर्यों में भी यह प्रथा थी पर अजय भारत की बंबल कुछ असभ्य जातिधर्म में ही देखी जाती है। यह प्रथा स्त्रियों के आठ प्रकार के विवाहों में से गार्भ विवाह के अंतर्गत आती है।

कोलम्बक—संज्ञा पुं० [सं०] चीपा का सूँटा और दंड।

कोल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चुभर। (२) शूकर। (३) गौद। उल्गेग। (४) आलिंगन करने में दोनों भुजाओं को बीच का स्थान। (५) चीता नाम की शोषधि। चित्रक। (६) शनैश्चर प्रह। (६) घेर। बदरीफल। (७) एक लाल जो तोले भर की होली है। (८) मिर्च। काली मिर्च। (९) शीतलघोनी। चय्य नाम की शोषधि। (१०) पुरुवरी आफ्रीड नामक राजा का पुत्र। (११) एक प्रदेश या राज्य का प्राचीन नाम।

विदोष—हरिचंद्र में कोल राज्य का नाम दक्षिण के पांड्य कोल कोल के साथ आया है। पर बौद्ध ग्रंथों में कोल राज्य कपिलवस्तु के पूर्व रोहथी नदी के उस पार अताताया गया है। शुद्धावन और सिद्धार्थ दोनों का विवाह हींदू संश में हुआ था। इस कोल वंश के विषय में बौद्धों में ऐसा प्रसिद्ध है कि इक्ष्वाकु वंश के चार पुरुष अपनी कोलिन बहन को हिमालय के अंचल में ले गए और वसे एक गुफा में बंद कर आये। कुछ दिनों के उपरान्त काफ़ी का एक कौड़ी राजा भी वही स्थान पर पहुँचा और काली मिर्च (कोल) खा कर अच्छा हो गया। राजा ने एक दिन दंप्ता कि एक सिंह उस गुफा के द्वार पर दिए हुए पत्थर के हथाना चाहता है। राजा ने सिंह को मारा और गुफा से उम कन्या का उद्धार करके उसका कुछ रोग छुड़ा दिया। उन्हीं दोनों के संयोग से कोल वंश की उत्पत्ति हुई। स्कंद पुराण के हिमवत खंड में

लिखा है कि कोल एक भ्लेच्छ जाति थी जो हिमालय में शिकार करती घूमती थी।

(१२) एक जंगली जाति।

विशेष—ब्रह्मवैवत पुराण में कोल को लेट पुरुष और तीव्र स्त्री से उत्पन्न एक वर्षांशकर जाति लिखा है। स्कंद पुराण में इसे भ्लेच्छ जाति लिखा है। पत्र पुराण में लिखा है जब यवन, पल्लव, कोलि, सर्प आदि सगर के भय से वशिष्ठ की शरण आए तब उन्होंने उनका सिर आदि मुँड़ा कर उन्हें केवल संस्कार भट कर दिया। आज कल जो कोल नाम की एक जंगली जाति है वह आर्यों से स्वतंत्र एक प्रादिम जाति जान पड़ती है और छोटा नागपुर से लेकर मिरजापुर के जंगलों तक फैली हुई है।

संज्ञा पुं० [सं० कवत्र] चनेना। दाना। धरबग।

कोलकंद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कंद जिसे कारामीर में पुटाख कहते हैं। यह गरम होता है और कृमिरोप दूर करता है। इस कंद के ऊपर सूअर के से रोएँ होते हैं, इसलिये इसे वाराही कंद भी कहते हैं।

कोलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) थररोट का पेड़। (२) काली मिर्च। (३) शीतलघोनी।

संज्ञा पुं० [दे००] एक प्रकार का छोटा लंबा और गरम जिसकी सतह पर दानुने होते हैं। इससे रंती और भारी तेज की जाती है।

कोलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का कोलाचल नामक पर्वत। इसे आज कल कोलाचल कहते हैं।

कोलदल—संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंधद्रव्य।

कोलना—क्रि० सं० [सं० कोटन] लकड़ी पत्थर आदि को बीच से तोड़ कर पोला या खाली करना।

कोलपार—संज्ञा पुं० [दे००] ममोले कद का एक प्रकार का दूध जो बारा और शरजिलिंग की तराहियों में होता है। इसमें एक प्रकार की कलियाँ लगती हैं, जिन्का सुरक्षा बनता है। इसकी लकड़ी मगधूत होती है और खेती के अंगार बनाने और इमारत के काम में आती है। चीरने के समय लकड़ी का रंग अंदर से गुलाबी निकलता है पर दया लगने से यह काला हो जाता है। इसे साना भी कहते हैं।

कोलपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद धाल। काँक। कंक।

कोलशिबी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम की फली।

कोलसा—संज्ञा पुं० दे० "हृग्नी"।

कोला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी पीपर। पिपली (२)

चय्य। (३) वैट का पेड़।

संज्ञा पुं० [दे००] गीदड़।

संज्ञा पुं० [अं०] आश्रिका के गर्म प्रदेशों में होनेवाला एक पेड़ जिसके फल अफरोट की तरह के होते हैं। इन

फलों के बीजों में धकावट दूर करने, और नरो का चक्का छुड़ाने का गुण होता है। ये बीज निर्मली के समान जल साफ़ करने के काम में भी आते हैं।

कोलाहट-संज्ञा पुं० [सं०] वह नृत्य में प्रवीण मनुष्य जिसके श्रंग खूब टूटे हों, जो श्रंगों को खूब मोड़ माड़ सकता हो, जो तलवार की धार पर नाच सकता हो और जो सुई से मोती पिरो सकता हो।

कोलाहल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत से लोगों की व्यस्य चिल्लाहट। शोर। हौरा। हल्ला। रौला।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

(२) संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण, कान्हड़ा और विहाग के मेल से बनता है। इसमें सय शुद्ध स्वर लगते हैं।

कोलिआर-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का झाड़ीदार पेड़ जो दक्षिण हिमालय, बरमा, और मध्य तथा दक्षिण भारत में होता है। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है और इस की छाल रँगने और चमड़ा सिक्नाने के काम में आती है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। बंधई में इसकी पत्तियों में तमाहू या सुरती लपेट कर बीड़ी बनाते हैं।

कोलियाँ-संज्ञा स्त्री० [सं० कोल = रास्ता] (१) तंग रास्ता। पतली गली। (२) वह छोटा खेत जिसका आकार पतला और लंबा हो।

कोलियाना-क्रि० अ० [हिं० कोलिया] (१) तंग गली में चला जाना। तंग गली से निकल जाना। (२) दे० "कोरियाना"।
संज्ञा पुं० [हिं० कोली + आना (भय०)] किसी गाँव का वह भाग या स्थान जहाँ कोली रहते हैं। कोलियों के रहने का स्थान।

कोली-संज्ञा स्त्री० [सं० कोल, प्रा० कोल] गोद। थकवार। आलिंगन के समय दोनों मुजाबों के बीच का स्थान।

क्रि० प्र०—में भरना वा लेना।—भरना।

संज्ञा पुं० [हिं० कोरा] हिंदू जुलाहे। कोरी।

संज्ञा स्त्री० [?] यह कालापन जो हाथों और पैरों में मँहड़ी लगाने के उपरांत आता है।

कोलैदा-संज्ञा पुं० [सं० कोल = वेर + दंड] महुए का पका फल। गोलेदा। कोहना।

कोलहाड़-संज्ञा पुं० [हिं० कोल्ह + आर (प्रय०)] वह स्थान जहाँ ऊख पेर कर रस निकाला और गुड़ बनाया जाता है।

कोल्हूआ-संज्ञा पुं० [हिं० कोल्हा] कुस्ती का एक पंच। दे० "कोल्हा"।
संज्ञा पुं० दे० "कोल्हू"।

कोल्हू-संज्ञा पुं० [हिं० कोल्हा] (१) तेल या ऊख पेरने का यंत्र जो कुछ ऊँच बमरू के आकार का और बहुत बड़ा होता है। यह प्रायः पत्थर का, और कभी कभी लकड़ी या लोहे का भी

होता है। इसके बीच में थोड़ा सा खोखला स्थान होता है जिसे हाँड़ी या हूँड़ी कहते हैं। इसके पेंदे में एक नाडी होती है जिसमें से तेल या रस निकल कर बाहर की ओर रले हुए बरतन में गिरता है। हूँड़ी के मध्य में लकड़ी का मोटा और ऊँचा लट्टा लगा रहता है जिसे जाड कहते हैं। यह जाड नीचे हुए बेल या बेलों के चकर काटने से घूमती है जिसके कारण हूँड़ी में डाली हुई चीज़ पर उसका दाय पड़ता है।

क्रि० प्र०—पेरना।—चलाना।

मुहा०—कोल्हू फाट कर मोंगरी बनाना = कोई छोटी चीज बनाने के लिये थड़ी चीज़ नष्ट करना। थोड़े से लाभ के लिये बहुत सी हानि करना। कोल्हू का बेल = बहुत कठिन परिश्रम करनेवाला। दिन रात काम करनेवाला। बोंहू में डाल कर पेरना = बहुत अधिक कष्ट पहुँचा कर प्रायः लेना। बहुत दुःख देकर जान से मारना।

कोल्हेना-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का मोटा चावल जो पंजाब में होता है।

कोवारी-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का जल पत्ती।

कोविद-वि० [सं०] [को० कोविदा] पंडित। विद्वान। कृतविद्य।

कोविदार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कचनार का पेड़। (२) कचनार का फूल।

कोश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) थंड। थंडा। (२) संपुट। दिवा। गोलक। व०—नेत्रकोश। (३) फूलों की रंधी कली। (४) मयपात्र। शराव का प्याला। (५) पंचपात्र नामक पूजा का बरतन। (६) तलवार, कटार आदि की भ्यान। (७) आचरण। खोल। जैसे, वीजकोश।

विशेष—वेदांती लोग मनुष्य में पाँच कोशों की कल्पना करते हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनंदमय। अन्न से उत्पन्न और अन्न ही के आधार पर रहने के कारण देह को अन्नमय कहते हैं। पाँच कर्मों द्वियों के सहित प्राण अथवा आदि पाँच प्राणों का प्राणमय कोश कहते हैं जिसके साथ मिलकर देह सव क्रियाएँ करती है। श्रोत्र, चक्षु, आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के सहित मन को मनोमय कोश कहते हैं। यही मनोमय कोश अविद्या रूप है और इसीसे सांसारिक विषयों की प्रतीति होती है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों के सहित बुद्धि को विज्ञानमय कोश कहते हैं। यही विज्ञानमय कोश कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुःख आदि अहंकार विशिष्ट पुरुष के संसार का कारण है। सर्वव्याप्य विशिष्ट परमात्मा के आचरक का नाम आनंदमय कोश है।

(८) धली। (९) संचित धन। (१०) वह ग्रंथ जिसमें धर्म या पर्याय के सहित शब्द हकूट्टे किए गए हों। अभिधान। जैसे, अमरकोश, मैदिनीकोश। (११) सभू।

(१२) खान से ताजा निकला हुआ सोना या चाँदी। (१३) अंडकोर। (१४) मीन। (१५) सुशुन के अनुसार घाय पर बांधने की एक प्रकार की पट्टी। (१६) एक प्रकार का पात्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में देव राजाओं के बीच संधि स्थिर करने में होता था। (१७) ज्योतिष में एक योग जो शनि और बृहस्पति के साथ किसी तीसरे ग्रह के आने से होता है। (१८) रेशम का कोषा। कुसुवारी। (१९) कटइल आदि फलों का कोषा। (२०) दे० "कोशापान"।

कोशाकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तलवार कटार आदि के लिये म्यान बनानेवाला। (२) शब्द-कोषा बनानेवाला। अर्थ सहित शब्दों का क्रमानुसार संग्रह करनेवाला। (३) रेशम का कीड़ा। (४) एक प्रकार का ऊल। कुसियार।

कोशाकीट-संज्ञा पुं० [सं०] रेशम का कीड़ा।

कोशाचक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] सारस।

कोशाज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेशम। (२) स्तूप, शंख, घोघे आदि में रहनेवाले जीव। (३) मोती। मुक्ता।

कोशानायक-संज्ञा पुं० [सं०] स्वजानची। कोशाप्यक्ष। यह कर्मचारी जिसके जिम्मे स्वजाने का हिसाब किताब और उसकी रचा का भार हो।

कोशापति-संज्ञा पुं० [सं०] कोशाप्यक्ष। स्वजानची।

कोशापान-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की प्राचीन परीक्षाविधि जिसमें अनुसार यह जाना जाता था कि अभियुक्त अपराधी है अथवा नहीं। इसमें अभियुक्त को एक दिन उपवास करने के बाद परीक्षा के समय कुछ प्रतिष्ठित लोगों के सामने तीन शुक्ल जल पीना पड़ता था।

कोशाफल-संज्ञा पुं० [सं०] स्वजाने की रचा करनेवाला।

कोशाफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंडकोर। (२) जायफल। (३) पिया, तराई, कद्दू, कुम्हड़ा, बकड़ी, तरवून इत्यादि फल।

कोशाफल-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिया, तराई, लौकी, ककड़ी, खीर, कुम्हड़ा इत्यादि के पेड़।

कोशाज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरयू वा घाघर नदी के दोनों छोरों पर का देश। उत्तर तटवाले को उत्तर कोशल और दक्षिण तटवाले को दक्षिण कोशल कहते हैं। किसी युग में इस देश के ४ संद और किसी में ७ संद बतलाए गए हैं। प्राचीन काल में इस देश की राजधानी अयोध्या थी। (२) उपयुक्त देश में बसनेवाली। पशुपि जाति। (३) अयोध्या नगर। (४) एक राग जिसमें गंधार और धैवत तीनों कोमल और शेष सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कोशाज्ञा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोशल की राजधानी, अयोध्या।

कोशादिक-संज्ञा पुं० [सं०] अकोष। धूम। शिववत।

कोशावृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंडवृद्धि का रोग।

कोशाभ्य-संज्ञा पुं० [सं०] सुशुन के अनुसार पाँच प्रकार के जीनों में से एक। शंख, घोघे आदि इसकी ओर धर्तव्य हैं। इस जाति

के जीवों का मांस मजुर, शीतल, वायुनाशक और कफ बढ़ानेवाला होता है।

कोशांड-संज्ञा पुं० [सं०] अंडकोष।

कोशाधी-संज्ञा स्त्री० दे० "कोशाधी"।

कोशागार-संज्ञा पुं० [सं०] स्वजान। भंडार।

कोशातक-संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद की कंड नाम की शाखा।

कोशातकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तराई। तराई।

कोशाघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] कोसम नामक वृक्ष या उसका फल।

कोशाधिप, कोशाधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] कोशाप्यक्ष। स्वजानची।

कोशाधीश-संज्ञा पुं० [सं०] स्वजानची। भंडारी।

कोशािश-संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम। चेष्टा। उर्ध्वग।

कोष-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "कोश"।

कोषफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंडोह मिर्च। (२) दे० "कोशफल"।

कोषफला-संज्ञा स्त्री० दे० "कोशफला"।

कोषवृद्धि-संज्ञा स्त्री० दे० "कोषवृद्धि"।

कोषकार-संज्ञा पुं० दे० "कोषकार"।

कोष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उदर का मध्य भाग। पेट का भीतरी हिस्सा।

द्यौः—कोष्ठवद्। कोष्ठवृद्धि।

(२) शरीर के अंदर का कोई वह भाग जो किसी आवरण से घिरा हो और जिसके अंदर कोई विशेष शक्ति रहती हो। जैसे, पक्षराज, मृदापाय, गर्भाशय आदि। (३) कंठा। घर का भीतरी भाग। (४) वह स्थान जहाँ अन्न संग्रह किया जाय। गोला। (५) कोष। भंडार। स्वजान। (६) प्रकार। कोट। शहरपनाह। चहारदीवारी। (७) वह स्थान जो किसी प्रकार चारों ओर से घिरा हो। (८) शरीर के भीतरी छः चर्मों में से एक जो नामि के पास है। इसे मलियुर भी कहते हैं।

कोष्ठक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी प्रकार की दीवार, लकीर या और कोई चीज़ जो किसी स्थान या पद को घेरने के काम में आती हो। (२) किसी प्रकार का चक्र जिसमें बहुत से गुाने या घर हों। सारणी।

(३) लिपि में एक प्रकार का चिह्न का जोड़ा जिसके अंदर कुछ वाक्य या श्लोक आदि लिखे जाते हैं। यह कई प्रकार का होता है, जैसे—[], [], [], [], [], []

१				६
	२		८	
		३	४	
६				५

() आदि।

कोष्ठक [सारणी]

विशेष—(क) जय यह चिह्न किसी वाक्य के श्रंतगत आता है।
 तो इसके भीतर आए हुए शब्दों का परस्पर तो व्याकरण संबंध होता है पर प्रधान वाक्य से व्याख्यान या निदर्शन रूप अर्थ-संबंध होते हुए भी प्रायः उसका व्याकरण-संबंध नहीं होता।
 (ख) गणित में इन चिह्नों के श्रंतगत आए हुए अंक कुल मिलाकर एक समके जाते हैं, और उनमें से किसी एक अंक का कोष्टक के बाह्यवाले किसी अंक से कोई स्वतंत्र संबंध नहीं होता।

(४) कोष्ट ।

कोष्टपाल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर या स्थान की रक्षा करनेवाला ।

कोष्टयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] पेट में मल का रचना । कयज्ञियत ।

कोष्टयुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट का मलरहित और विलकुल साफ हो जाना ।

कोष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यह पत्र जिसमें किसी मनुष्य के जन्म-काल के ग्रह और नक्षत्र आदि दिए हैं । जन्मरत्नी ।

कोष्ण—वि० [सं०] कुछ गरम और कुछ ठंडा । कटुष्ण ।

कोस—संज्ञा पुं० [सं० क्रोग] दूरी की एक नाप जो प्राचीन काल में ४००० हाथ, या किसी किसी के मत से ८००० हाथ की होती थी । आज कल कोस प्रायः दो मील का माना जाता है ।

मुहा.—कोसों या काले कोसों = बहुत दूर । कोसों दूर रहना = अलग रहना । बहुत बचना । कोसों भागना = दे० “क्रेतो दूर रहना” ।

कोसना—क्रि० सं० [सं० क्रोग] शाप के रूप में गालियाँ देना । दुर्बचन कहकर बुरा मनाना ।

मुहा.—पानी पी पीकर कोसना = बहुत अप्पिक कोसना ।

कोसना काटना = शाप और गाली देना ।

कोसम—संज्ञा पुं० दे० “कोसम” ।

कोसम—संज्ञा पुं० [सं० क्रोगम्] एक प्रकार का बड़ा पेड़ जो पंजाब, मध्य भारत और मद्रास में अधिकता से होता है और जिसका पत्रभङ्ग प्रति वर्ष होता है । इसकी हरि की लकड़ी ललाई लिए हुए भूरी, बहुत कड़ी और मजबूत होती है और इमारत के काम में आती है । इससे हल और खेती के दूसरे औजार भी बनाए जाते हैं । इसमें लाख बहुत लगती और बहुत अच्छी होती है । इसका फल कुछ खटा-पन लिए हुए मीठा होता है । वैद्यक में इसका फल वष्य, गुरु, पित्तवर्द्धक और दाहकारक माना है । इसके बीजों से एक प्रकार का तेल निकलता है जो वैद्यक के अतिसार सारक, पाचक और शक्कारक होता है । सुधुत में लिखा है कि इस तेल के मलने से कोष्ठ या फोड़ा अच्छा हो जाता है ।

कोसल—संज्ञा पुं० दे० “कोशल” ।

कोसली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पादुव जाति की एक रागिनी जिसमें श्रापभ वर्जित है ।

कोसा—संज्ञा पुं० [हिं० कोष] एक प्रकार का रेशम जो मध्यभारत में अधिक होता है ।

संज्ञा पुं० [सं० क्रोग = प्यास] [स्त्री० कोसिया] मिट्टी का बड़ा दीया जो घड़ा ढकने या खाने पीने की वस्तु रखने के काम में आता है ।

संज्ञा पुं० दे० “कोसाकाटी” ।

कोसाकाटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोसना + काटना] शाप के रूप में गाली । बद्-दुआ ।

कोसिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोसा] (१) मट्टी का छोटा कसोटा । (२) चूना रखने की हूँड़ी । (तेंपेली)

कोसिला—संज्ञा स्त्री० दे० “कोसाल्या” । उ०—विहंग थाय माता सों मिला । रामहिँ जमु भेंटी कोसिला ।—जायसी ।

कोसिली—संज्ञा स्त्री० [देग०] पिराक या गुफिया नाम का पकान ।

कोसी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोषिकी] एक नदी जो नेपाल के पहाड़ों से निकल कर चंपारन के पास गंगा में मिलती है । इसका बहाव बहुत तेज है । रामायण में लिखा है कि विरवागिरि की बहन सत्यवती (दूसरा नाम कौशिकी) जब अपने पति के साथ स्वर्ग चली गईं तो इस नदी की उत्पत्ति हुई भी, और एक मास तक इसके किनारे पर रहने से एक धरवमेष ब्रह्म का फल होता है ।

संज्ञा स्त्री० [सं० कोषिका] अनाज के घे दाने जो दाने के बाढ़ धाल या फली में लगे रह जाते हैं । गुड्डी । चैचरी ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः जुआर या मूँग के लिये ही आता है ।

कोहड़ौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उम्हड़ + वरी] उर्द की पीठी और कुम्हड़े के गुदे से बनाई हुई बरी ।

कोह—संज्ञा पुं० [फा०] पर्वत । पहाड़ ।

यौ०—कोहिलान ।

संज्ञा पुं० [सं० क्रोष] क्रोध । गुस्सा । उ०—किंकर, कंचन, कोह काम के ।—मुलसी ।

संज्ञा पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] अजुन वृक्ष ।

कोहकाफ—संज्ञा पुं० [फा० कोह = पहाड़ + फा० काफ] एक पहाड़ जो यूरोप और एशिया के बीच में है । इसके आस पास के स्थानों के निवासी बहुत सुंदर होते हैं । फारस आदि देशों के निवासियों का विश्वास है कि इस पहाड़ पर देव और परियों रहती हैं ।

कोहनी—संज्ञा स्त्री० दे० “कुहनी” ।

कोहिनूर—संज्ञा पुं० [फा० कोह + नूर] एक बहुत बड़ा और प्रसिद्ध हीरा जिसके विषय में कहा जाता है कि यह राजा कर्ण के पास था और पीछे मालवे के राजा विक्रमादित्य के

द्वाप सगा. या। सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में यह हीरा स्वतंत्रिय के एक राजा ने गोलकुंडा के बादशाह को दिया था। सन् १७३६ में करनाल के युद्ध के बाद यह नादिरशाह के पास चला गया। उसने बंशज शाहजुमा से यह हीरा राजा रणजीतसिंह ने ले लिया। शंत में सन् १८५६ में यह शंकरराजे के हाथ आया और दूसरे वर्ष हंगलैंड में महाराणी विक्टोरिया की भेंट हुआ और अब तक वहां के राजनेत्रा में बर्तमान है। पहले यह हीरा ३१६ रत्ती का था और सेसपर में सबसे बड़ा समझा जाता था। पर अब यह फिर से काटा गया है और ताल में केवल १०२२ रत्ती रह गया है।

कोहबर-संज्ञा पुं० [सं० कोडर] वह स्थान या घर जहां विवाह के समय कुलदेवता स्थापित किए जाते हैं और जहां कई प्रकार की लौकिक रीतियां की जाती हैं। उ०—कोहबरहिं धाने कुं चर कुं चरि सुधासिनिन सुख पाह के। अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाह के।—तुलसी।

कोहरी-संज्ञा पुं० [हिं० उदर] कुहासा। कुहरि। कुहरा।
कोहरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] उवाले या तले हुए चने आदि। घुंफली।

कोहल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मुनि जिन्होंने सोमेरव से संगीत सीखा था और जो नाच शास्त्र के प्रणेता कहे जाते हैं। (२) जौ की शराय। (३) कुम्हड़े की शराय। (४) एक प्रकार का बाजा।

कोहरी-संज्ञा पुं० दे० "कुम्हार"।
कोहरी-संज्ञा पुं० [सं० कोग = पत्र] (१) मट्टी का बड़ा कूड़ा जिसमें प्रायः ऊख का रस, या कांजी धादि रखते हैं। नोद। (२) कपाल की धाकृति का मिट्टी का वर्तन।

कोहान-संज्ञा पुं० [फा०] उंट की पीठ पर का कछुआ या कूबड़।
कोहाना-संज्ञा पुं० [हिं० कोह] (१) रुग्णता। नाराज होना। मान करना। उ०—नुमाहिं कोहाय परम प्रिय अहहं।—तुलसी। (२) सुस्मा होना। मोक्ष करना।

कोहिल-संज्ञा पुं० [दे०] नर शार्ङ्ग का बाज।
कोहिलस्तान-संज्ञा पुं० [फा०] पर्वतस्थली। पहाड़ी देश।
कोही-वि० [हिं० कोह] प्रवेची। गुम्सिल। मोक्ष करनेवाला। उ०—याज्ञ प्रणचारी अति कोही। विरभ विदित सत्री कुल दोही।—तुलसी।
वि० [फा० कोह] पहाड़ी।

थो-कोही भांग = एक प्रकार की भांग जो तिंघ में होती है और जिससे भांग या चरस नहीं निकलता। इसके बीजे का तेज निकाला जाता है और उसे से रस्सी धादि बनाते हैं।

संज्ञा स्त्री० [दे०] शार्ङ्ग नामक बाज पक्षी की मांदा।
कोकिर-संज्ञा स्त्री० [सं० ककर, हिं० ककर] कनी। हारे की कनी। कांच की किरिच। कांच का मुकीला टुकड़ा। कांच की रेत।

उ०—होता दिन कजरा में देही। जा दिन नन्देदन के नैनन धपने नैन मिलेही। सुनरी सबी इहं जिय मेरे भूलि न और चितेही। अब ठर सूर इहं त्रते मेरे कौकिर से मरि जैही।—सूर।

कौकुम-संज्ञा पुं० [सं०] तीन पूँछ वा चोटियाले लाल रंग के पुच्छल तारे जो बृहस्पति के अनुसार संख्या में ६० हैं और मंगल के पुत्र माने जाते हैं। ये उत्तर की ओर उदय होते हैं।

कौंच-संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छ] (१) सेम की तरह की एक खेल जिसमें सेम ही की ऐसी पत्तियां, फूल और फलियां लगती हैं। सेम की फलियों से कौंच की पत्तियां अधिक गोल, बड़ी, सुंदर और रोशनी होती हैं। कौंच तीन प्रकार की होती है, भूरी, काली और सफेद। भूरी और काली फलियां रोशनी होती हैं, सफेद बिना रोशनी की होती है। काली और सफेद तरकारी के काम में आती हैं, भूरी का अधिकतर व्यवहार औषध में होता है और इसके भूरे और चमकदार रंगों के शरीर में लगने से बुजुर्गी और सूजन होती है। वैद्यक में कौंच अत्यंत वीर्यवर्द्धक, पुष्ट, मधुर और वातघ्न मानी जाती है। इसके बीज वाजीकरण औषधों में पड़ते हैं। (२) इस खेल की फजी।

एयी-कफिकच्छु। शामगुता। शुक्रसिंघा। कहरा। रायः-शोषा। शूका। शूकवती। शपन। जटा। गायभेगा। प्राण्यु। वानरी। खंगली। कुंडली। रोमवल्ली। वृष्या, हृत्पदि।

कौची-संज्ञा स्त्री० [सं० कचिच] घास की पतली टहनी।
कौडिन्ध-संज्ञा पुं० [सं०] [की० कौडिने] (१) कुंडिन मुनि के गोत्र का। (२) कुंडिन मुनि का पुत्र।

कौतल-वि० [सं०] कुंतल देहा संबंधी। कुंतल देहा का।
कौतिक-संज्ञा पुं० [सं०] भालेवाला। बरछा चलानेवाला।
कौती-संज्ञा स्त्री० [सं०] रेखुका नाम का गंधद्रव्य।
कौतिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुधधिर आदि कुली के पुत्र। (२) अत्रु न वृक्ष

कौंध-संज्ञा स्त्री० [हिं० कौपना] विजली की चमक।
कौंधना-वि० [सं० कनन = चमकना + ऋच या सं० कच] विजली का चमकना।

कौंधनी-संज्ञा स्त्री० [सं० किकिणी] कचरणी।
कौंधा-संज्ञा स्त्री० [हिं० कौंधना] विजली की चमक। कौंध। उ०—कारी घटा सभूष देविपति अति गति पवन चलायो। चारो दिता चिते किन देवैषा दामिनि कौंधा लायो।—सूर।

कौम-कौमोसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] सै। बरस का पुराना घी, जो बहुत गुणकारी समझा जाता है। (वैद्यक)
कौर-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पड़ा पेड़ जो प्रायः पंजाब, नेपाल और बम्बई तराहों में होता है। इसकी लकड़ी चंदर

से हलकी गुलाबी होती है और इमारत के काम में आती है। इसके काठ से थालियाँ और रिकावियाँ भी बनाई जाती हैं। इसके फलों ने पहाड़ी लोग सुला कर चन्नी में पीसते और दूसरे भनाज के साथ मिला कर खाते हैं। घन खौर।

कौरा-संज्ञा पुं० दे० "कविरा"।

कौरि-संज्ञा स्त्री० [दे०] पान की चौपाई टोली, जिसमें २० पान होते हैं। कंबी।

कौल-संज्ञा पुं० दे० "कमल"।

कौली हड्डी-संज्ञा स्त्री० [सं० कौमल + हि० हड्डी] कुकुरी हड्डी।

कौसलर-संज्ञा पुं० [सं०] परामर्शदाता। सम्मति देनेवाला।

कौसिल-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी विषय पर विचार करने के लिये कुछ लोगों की बैठक। (२) कुछ विशेष मनुष्यों की यह सभा जो किसी राजा या शासक को शासन के संबंध में परामर्श देने के लिये बनाई जाती है। जैसे यहूतों की कांसिल, प्रिची कांसिल, आदि।

कौहर-संज्ञा पुं० [दे०] इन्द्रायन की जाति का एक प्रकार का फल जो पकने पर बहुत सुंदर लाल रंग का हो जाता है। कहते हैं कि जिस स्थान पर यह फल रखा रहता है वहाँ साँप नहीं आता। कवि लोग प्रायः इसके पौंजी की उपासना दिया करते हैं। उ०—(क) कौहर सी पौंजी की लाजरी देवि सुमाइ। पाय महावर देन को थाप भई बेसाइ।—विदारी। (ख) कौहर, कौल, जरादज, चिहुम का इतनी जो बँक में कोत है।—शंभु।

कौहरी-संज्ञा स्त्री० दे० "कौहर"।

कौघा-संज्ञा पुं० दे० "कौवा"।

कौघाना-संज्ञा [हि० कौघा] (१) आँचका होना। चकपकाना। आश्रय से ह्वर उबर साकना। (२) सोते में स्वप्न देखकर वा मेढ़ी अचानक कुछ घड़ बड़ा उठना।

संघो-संज्ञा पुं०—उठना।

कौघारो-संज्ञा पुं० [हि० कौघा + सं० रव = गघर] कौघों का शब्द। कौघारो। काँच काँच की पुकार। शोर, गुल।

कौघाली-संज्ञा पुं० [सं० कौघाली] कौवाली। गानेवाला।

कौघाली-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "कौवाली"।

कौकुच्यातिचार-संज्ञा पुं० [सं० ककुच्यातिचार] यह वाक्य जिसके कहने, बोलने, या पढ़ने से अपनेवा औरों के मन में काम क्रोध आदि उत्पन्न हों। जैसे, गंगार के कवित्त, थारहमसा आदि। (जैन)

कौच-संज्ञा स्त्री० [सं०] मोटे गड़े का औरगड़ी पलंग या बँच।

कौचुमार-संज्ञा स्त्री० [सं०] ६४ कलायों में से एक। कुरुप को सुंदर बनाने की विद्या।

कौटिल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवायन। (२) कुटिलता। कपट। (३) चाणक्य का नाम।

कौटु-विक-वि० [सं०] (१) कुटुंबी। कुटुंब. संबंधी। (२) परिवारवाला।

कौड़ा-संज्ञा पुं० [सं० कपर्क, प्रा० कवरप, कवडवप] बड़ी कौड़ी। उ०—कौड़ा आंसू बूँद, करि साँकर बहनी सजत। कौने बदन निबूँद, दग मलंग डारे रहें।—विदारी। संज्ञा पुं० [सं० कुंड] चाड़े के दिनों में तापने के लिये किसी गड्डे में खर पतवार फूँक कर जलाई हुई आग। छलाव। संज्ञा पुं० [सं० कंदज] एक प्रकार का जंगली प्याज़। भोचिंडा। फफार।

कौड़िया-वि० [हि० कौड़ी] कौड़ी की तरह का। कौड़ी के रंग का। कुछ स्थाई लिए हुए सफ़ेद।

कौड़ियाला-वि० [हि० कौड़ी] कौड़ी के रंग का। वह हलका नीला (रंग) जिसमें गुलाबी की कुछ भ्रवक हो। कोकई। संज्ञा पुं० (१) कोकई रंग। (२) एक प्रकार का विपैला साँप, जिसपर कौड़ी के रंग और आकार की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। (३) कृषक धनाश्रय। वह धनी जो साँप की तरह खपके ऊपर बंदा रहे, उसे खर्च न होने दे। कंजूल।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि कृषक जब मरते हैं तब दूसरे जन्म में साँप होकर अपने खेताने पर आकर बैठते हैं।

(४) एक पौधा जो उत्तर भूमि में होता है। इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और कुछ मटमैले रंग की होती हैं। इसमें कीर वा चुच्चड़ी के आकार के छोटे छोटे फूल लगते हैं। फूल के रंग के विचार से कौड़ियाला तीन प्रकार का होता है। सफ़ेद फूल का, लाल फूल का, और नीले फूल का। नीले फूल के कौड़ियाले को विष्णुप्रकता कहते हैं। वैद्यक में कौड़ियाला तीक्ष्ण, गरम, मेघाजनक तथा कृमिनाश और विषम समक्य जाता है। इसे शंसपुष्पी वा शंखाहुली भी कहते हैं। उ०—कौड़ियाला मेरी तुरतय पै लगाना थारो। नामनी हुरफ के काटे की यह पहचान रहे।

पर्याय—मेष्पा। चंडा। सुपुष्पी। किरिटी। कंजुमालिनी। भूलमा। वनमालिनी। मलविनाशिनी। सर्पाकी, हलादि।

कौड़ियाली-संज्ञा स्त्री० दे० "कौड़ियाला (४)"।

कौड़ियाही-संज्ञा स्त्री० [हि० कौड़ी] मजदूरी की एक रीति जिसमें मजदूरों को मिट्टी हैं टें आदि उठाने की मजदूरी प्रति हैं टें वा प्रति खेप कुछ कौड़िया दी जाती है। इस रीति से काम जल्दी होता है।

वि० स्त्री० बहुत थोड़े धन की लालच से कोई काम करनेवाली।

कौड़िया-संज्ञा पुं० [हि० कौड़ी] (१) मजली पकड़ कर खाने वाली एक चिड़िया। किलकिळा। (२) कली नाम का पौधा जिससे संस्कृत में कश्यप और गवेषुक कहते हैं। दे० "कसी"।

कौड़ियाही-संज्ञा स्त्री० दे० "कौड़ियाही"।

कौड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्णिका, प्रा० कर्णदिहण] (१) समुद्र का एक कौड़ा जो घोंघे की तरह एक अस्थिवेदा के भीतर रहता है। यह अस्थिकोशा उभड़ा हुआ और घमकियाला होता है तथा इसके नीचे चूड़ा लंबा पतला छेद होता है जिसके दोनों किनारों पर दांत होते हैं। सुले मुँह को आवश्यकतानुसार बंद करने के लिये उसपर दृश्य नहीं होता। छेद के बाहर इसका सिर रहता है जिसमें दो काने निकले रहते हैं जो स्पृशद्विष का काम देते हैं। कौड़ियाँ भारत महासागर में लंका, मलाया, स्वाम, सिंहल, मालदीप आदि के पास इकट्ठी की जाती हैं। राजनिघंट में पंच प्रकार की कौड़ियाँ बतलाई गई हैं—(क) सिंही, जो सुनहले रंग की होनी है, (ख) व्याधी जो धूमले रंग की होती है, (ग) सृगी, जिसकी पीठ पीली और पेट सफेद होता है, (घ) हंसी जो बिलकुल सफेद होती है और (च) चिंघता, जो बहुत बड़ी नहीं होनी। प्रच्य रूप से कौड़ी का व्यवहार भारत, चीन आदि देशों में बहुत प्राचीन काल से होता आया है। वास्तवमें ही संहिता में इसका उल्लेख आया है। मास्कराचार्य ने लीलावती में इसके मूल्य का विवरण दिया है। आज कल पैसे के आगे को छोड़कर, चौधवाँ के तुकड़ा वा छुदाम और अष्टमांश को दमड़ी कहते हैं। एक पैसे में प्रायः ८० कौड़ियाँ वा २६ दाम माने जाते हैं। ३ दाम की एक दमड़ी, ६ दाम का एक तुकड़ा और ३२॥ दाम का एक छोपेला माना जाता है।

पर्याय—कपर्दिका। चराटिका।

मुहा०—कौड़ी का = जिसका कुछ मूल्य नहीं। तुच्छ। कौड़ी काम का नहीं = किसी काम का नहीं। निकम्मा। निहट्ट। कौड़ी या दो कौड़ी का = (१) जिसका कुछ मूल्य नहीं। तुच्छ। निकम्मा। (२) निहट्ट। हारा। कौड़ी के काम का नहीं = दे० "कौड़ी काम का नहीं"। कौड़े के तीन तीन विकना = बहुत सस्ता विकना। कौड़ी के तीन तीन होना = (१) बहुत सस्ता होना। (२) तुच्छ होना। बेकदर होना। नाचीन होना। कौड़ी के मोल विकना = बहुत सस्ता विकना। कौड़ी को न पछुना = (१) मुझ भी न लेना। विनकुज निकम्मा समझना। (२) निजत तुच्छ ठहराना। कुछ भी कदर न करना। उ०—बर्दा सुन्दे कोई कौड़ी को भी न पछेगा। कौड़ी बोस दैइना = एक कौड़ी के पीछे कौड़ों का धावा करना। थोड़ी ही धनु के लिये बहुत परिश्रम करना। कौड़ी कौड़ी = एक एक कौड़ी। कौड़ी कौड़ी को मुहताज = सप पैसे से बिलकुल खाती। दरिद्र। कौड़ी कौड़ी अदा करना, —सुकाना, भरना = सप मृषा सुका देना। कुछ बेवका बर देना। कौड़ी कौड़ी भर पाना = सारा लहना बखल कर घेना। कौड़ी कौड़ी जोइना = बहुत थोड़ा थोड़ा करके धन खड़ा करना। बड़े कष्ट से सपया बटोरना। कौड़ी फिरना =

(१) जुए में अपना दाँव पड़ने लगना। (२) पैतृजा सिपाहियों का किसी विषय में एकमत होना। (पहले जब सिपाहियों ने किसी बात में एका करना होता था तब वे कौड़ी घुमाते थे। जिन सिपाहियों को यह बात स्वीकार होती थी वे कौड़ी ले लेते थे।) कौड़ी फेरा करना = घड़ी घड़ी अपना जाना। थोड़ी थोड़ी बात के लिये भी अपना जाना। बहुत से जेरे लगाना। उ०—अप तो यह थापके सुहले में था गप है कौड़ी फेरा करेगे। कौड़ी भर = बहुत थोड़ा सा। जरा सा। तनिक सा। उ०—कौड़ी भर चूता ला दे। कौड़ी लेना = मल्ल के चारों ओर रसी लपेटना। (लरा०) कानी, माँकी या फूटी कौड़ी = (१) वह कौड़ी जो टूटी हो। (२) अर्थात् अप्रस द्रव्य। कम से कम परिमाण का धन। उ०—हम तुम्हें एक कानी कौड़ी भी न देंगे। चित्तौ कौड़ी = वह कौड़ी जिसकी पीठ पर उमठी हुई गाँठें हैं। (इसका व्यवहार जुए में होता है।) (२) धन द्रव्य। सया पैसा। उ०—ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, कर्हिन न दूसरि यात। कौड़ी लागि लोभ यस, कर्हिन विप्र गुरु पात — तुलसी। (३) यह कर जो सम्राट् अपने अधीन राजाओं से लेता है।

कि० प्र०—देना।—लेना।

(४) आँस का देला। (५) छाती के नीचे बीचोबीच की वह छोटी हड्डी जिसपर सबसे नीचे की दोनो पसलियाँ मिलती हैं। मुहा०—कौड़ी जलना = भूत कोष आदि से शरीर में ताप होना। उ०—उसकी कौड़ी तो योही जल रही है, क्यों विद्युते हो ? (६) जंवे, फाल, वा गले की गिलटी।

कि० प्र०—भरना।—उकसना।—घुटकना।—निकलना।

(७) कटार की नोक। उ०—कौड़ी के आर पार है कौड़ी फटार की।

कौड़ी गुड़गुड़—संज्ञा पुं० [हिं० कौड़ी + गुड़गुड़] लड़कों का एक खेल।

विशेष—बहुत से लड़के दो दोर दो पंक्तियों में आमने सामने बैठते हैं। इन दोनों पंक्तियों के दो सरदार होते हैं। पैसा वा जुता आदि उड़ाकर चित पट से इस यात का निश्चय किया जाता है कि पहले कौन पंक्ति से खेल आरंभ होगा। जिस पंक्ति से खेल आरंभ होता है उसका सरदार खँडुली में धूल भर लेता है जिसके भीतर एक कौड़ी छिपी होती है। सरदार थोड़ी थोड़ी धूल अपनी पंक्ति के सप लड़कों के हाथ में डाल आता है। फिर दूसरी पंक्तिवाले लड़के घूमने हैं कि धूल के साथ कौड़ी किस लड़के के हाथ में गई है। यदि वे ठीक चूरु गप तो जिसके हाथ में कौड़ी रहती है उसे बपत लगाते हैं।

कौड़ी जगनमगन—संज्ञा पुं० दे० "कौड़ी गुड़गुड़"।

कौडीजूडा—संज्ञा पुं० [हिं० कौडी + जूडा] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियों मिर पर पहनती हैं ।

कौडेना—संज्ञा पुं० [देग०] [अल्प० कौडेनी] कसैरों का लोहे का एक आकार जिससे बरतनों पर नकारी की जाती है । यह वेदु या लिखत लंबा और नोक पर से पतला और चिपटा होता है ।

संज्ञा पुं० [हिं० कौडियाला] कौडियाला नाम की जड़ी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "कौडियाही" ।

कौष्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राक्षस । (२) वासुकी के वंश का एक सर्प ।

कौष्यदंड—संज्ञा पुं० [सं०] भीम ।

कौतुक—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कौतुकी] (१) कृतहल । (२) आश्चर्य । अचंभा । (३) विनोद । दिहगी । (४) आनंद । प्रसन्नता । (५) खेल तमाशा ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिलखाना ।—देखना ।—हाना ।

(६) यह मांगलिक सूत्र जो विवाह से पहले हाथ में पहना जाता है ।

कौतुकिया—संज्ञा पुं० [हिं० कौतुक + या (प्रत्य०)] (१) कौतुक करनेवाला । (२) विवाह संबंध करानेवाले नाऊ, पुरोहित आदि । उ०—तौ कौतुकिग्रन्ध आलस नाहीं । बर कन्या अनेक जग माहीं ।—तुलसी ।

कौतुकी—वि० [सं०] (१) कौतुक करनेवाला । विनोदशील । उ०—सुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ । पुरयासिन सय पूइत अऊ ।—तुलसी । (२) विवाह संबंध करानेवाला । (३) खेल तमाशा करनेवाला ।

कौतुहल—संज्ञा पुं० [सं०] कुवहल । कौतुक ।

कौतामत—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जिनका धर्म गोप्य ब्राह्मण में आया है ।

कौत्स—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम जो कुत्स ऋषि के पुत्र, वसंतु के शिष्य और जैमिनि के आचार्य्य थे । (२) कुत्स नामक ऋषि के बनाए हुए कुछ साम (गान) जो विकृत यज्ञ में गाए जाते थे ।

कौथी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौन + तिथि] (१) कौन सी तिथि । कौन तारीख । जैसे—आज कौथि है ? (२) कौन संबंध । कौन वास्तु । उ०—राम नाम को छोट्टि के शलै करया चौथ । सो तो होयगी सुकरी, तिन्है राम सेई कौथि ।—कबीर ।

कौथी—वि० [हिं० कौन + सं० रथा (स्थान)] किस संख्या का । गणना में किस स्थान का । जैसे—दरजे में तुम्हारा नंबर कौथा है ?

कौथी—संज्ञा स्त्री० दे० "कौथ" ।

कौथुमी—संज्ञा पुं० [सं०] कौथुमी शाखा का अध्ययन करनेवाला ।

कौथुमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सामवेद की एक शाखा जिसका प्रचार कुथम ऋषि ने किया था ।

कौदन—वि० [का०] मंदबुद्धि । कम-समक । ना-समक ।

कौदालीक—संज्ञा पुं० [सं०] धीवर पिता और घोषिन माता से उत्पन्न एक वर्षासंकर जाति ।

कौदविक—संज्ञा पुं० [सं०] सौरचर नोन । काला नमक ।

कौथनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किंकिचो । करघनी । कौथनी ।

कौन—सर्व० [सं० क०, किम् । प्रा० कवथ] एक प्रश्नवाचक सर्वनाम जो अभिप्रेत व्यक्ति वा वस्तु की जिज्ञासा करता है । उस मनुष्य वा वस्तु को सूचित करने का शब्द जिससे पूछना होता है । जैसे—(क) तुम्हारे साथ कौन गया था ? (ख) इन ग्रामों में से तुम कौन लोगे ?

मुहा०—कौन सा = कौन । कौन किसका होता है ? = कौन किसके काम आता है । कोई दूतरे की सहायता नहीं करता । कौन होना = (१) क्या अधिकार रखना । क्या भवज्ञान रखना । जैसे—तुम हमारे बीच में घोलनेवाले कौन होने हो ? (२) क्या संबंध देना । क्या रिश्ता या नाता होना । जैसे—ये तुम्हारे कौन रहेते हैं ।

विशेष—विभक्ति लगने के पहले "कौन" का रूप "किस" हो जाता है, जैसे, किसने, किसको, किससे, किसमें इत्यादि । यद्यपि संप्रकृत के अनुसार हिंदी व्याकरणों में इस शब्द को केवल सर्वनाम ही लिया है पर जब इसके आगे संज्ञा शब्द भी था जाता है—जैसे, "कौन मनुष्य"—तब यह विशेषण ही के समान जान पड़ता है ।

वि० किस जाति का ? किस प्रकार का ? जैसे—यह कौन ग्राम है, लेंगड़ा या बंबई ?

कौनप—संज्ञा पुं० दे० "कौष्य" ।

कौपीन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाचारिणों और संन्यासिणों आदि के पहनने की लेंगेटी । चौर । कफनी । काँडा । (२) शरीर के वे भाग जो कौपीन से ढाँके जाय—गुदा और लिंग । (३) पाप । गुनाह । (४) अनुचित कार्य्य ।

कौम—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षा । जाति । नस्ल ।

कौमकुम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक केंदु तारा जिसकी तीन शिखाएँ हैं और जो मंगल का साठवाँ पुत्र माना जाता है । (२) रक्त । खून । लहू ।

कौमार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कौमारी] (१) कुमार श्रवस्था । जन्म से पाँच वर्ष तक की श्रवस्था ।

विशेष—तंत्र के मत से सोलह वर्ष तक की श्रवस्था को कौमार कहते हैं ।

(२) एक प्रकार की ऋषि जिसकी रचना सनतकुमार ने की थी । (३) कुमार ।

कौमारभृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुके के आलन पालन और

विक्रमाश्रमि की विद्या । यह प्रायुर्वेद का एक श्रेण है ।
 प्रायुर्विद्या । दायगीरी ।
 कौमारिक-संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें
 सप्त शुद्ध स्वर लगते हैं ।
 कौमारिकेय-संज्ञा पुं० [सं०] यह पुत्र जो किसी स्त्री को कुमारी
 श्रवणा में उत्पन्न हुआ हो । कानीन ।
 कौमारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पुत्र की पहली स्त्री ।
 (२) सात मातृकार्मों में से एक, कार्तिकेय की शक्ति ।
 (३) पार्वती का एक नाम । (४) शाराहीकंद । कोलकंद ।
 कौमुद-संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिक मास । कार्तिक ।
 कौमुदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज्योत्स्ना । चांदनी । जुन्हाया ।
 यौ०—कौमुदीपति = चंद्रमा ।
 (२) कार्तिकोत्सव, जो कार्तिक की पूर्णिमा को होता है ।
 (३) कार्तिकी पूर्णिमा । (४) श्राविकी पूर्णिमा । (५)
 दीपोत्सव तिथि । (६) कुमुदिनी । कोहड़ । (७) दक्षिण देश
 की एक नदी ।
 कौमुदीचार-संज्ञा पुं० [सं०] कोजागर पूर्णिमा । शरत्
 पूर्णिमा ।
 कौमोदकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की गदा ।
 कौमोदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की गदा । कौमोदकी ।
 कौर-संज्ञा पुं० [सं० कवच] (१) उत्तमा भोजन जितना एक पार
 सुह में डाला जाय । भास । गस्ता । निवाला । उ०—राम
 नाम धुनि जो भरोसे करे और को । तुलसी परसेसे त्यागि
 माँरी बुर कैरे को ।—तुलसी ।
 क्रि० प्र०—उठाना ।—खाना ।
 मुहा०—सुह का कौर छीनना = देखते देखते किसी का धंसा
 दया बैठना ।
 (२) उनना धन्न जितना एक पार चकी में पीसने के लिये
 डाला जाय ।
 क्रि० प्र०—डालना ।
 संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का छोटा, फैलनेवाला भात जो
 उत्तर भारत की पहाड़ी और पहाड़ी भूमि में होता है ।
 कौरना-क्रि० सं० [हिं० कौर] थोड़ा भूना । संकना । उ०
 —कुँडू और कौरना करे । कचरी चार चैंबेडा सैरे ।
 —र ।
 कौरय-संज्ञा पुं० [सं०] [सं० कौर क्रि० कौर] कुरु राजा की
 सैन्य । कुरुयोज्य ।
 वि० [सं०] कुरु संघर्ष । जैने, कौरवी सेना ।
 कौरयपति-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गोधन । मुषोधन ।
 कौरव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौरव । कुरु सैन्य । (२) एक नगर
 जिसका वर्णन महाभारत में थाया है ।
 पारार-संज्ञा पुं० [सं० कौल, कौल] [सं० कौर] द्वार के द्वार

उपर का वह भाग जिससे घुलने पर क्रियाद्विभूते रहते हैं ।
 द्वार का कोना । उ०—द्वार द्वार फिरत भ्रष्ट तिथि । करेन
 सधिया धीतर नवतिथि ।—सूर ।
 मुहा०—कौर लगना = (१) किसी वस्तु को चुपचाप सुनने के लिये
 द्वार के कोने में छिप कर खड़ा होना । किसी पाल में छिपा
 रहना । उ०—मन निनि सुनै शाल यह माई । कौर लख्यो
 होइगो किनहूँ कदि देखै सो जाई ।—सूर । (२) रूठ कर
 द्वार के कोने में खड़ा होना । दुँह फुलाना ।
 संज्ञा पुं० [सं० कवच] वह खाना जो कुत्ते श्रवण प्रादि को
 दिया जाय ।
 क्रि० प्र०—डालना ।—देना
 संज्ञा पुं० दे० 'कौर' ।
 कौरी-संज्ञा स्त्री० [सं० कौप] (१) धंकार । गौद । उ०—कौरी
 में न धावे जिन्हें बाहु न हिलावे वनयानन मुकावे एने मान
 उिटीप्रत है ।—भारतेंदु ।
 मुहा०—कौरी भर कर मिलना = श्रान्तिगन करके मिलना ।
 उ०—दुप्रसाल ल्यों गये विनोरी । भेटे रतन साहु भर कौरी ।
 —लाल ।
 (२) एक धंकार भर कटे हुए धनाज के पीपे जो फसल के
 समय मनुष्यों को मनुष्यों में छिपू जाते हैं ।
 संज्ञा स्त्री० [सं० गोरुषी] ग्वालिन की फली । गुवार ।
 कौल-संज्ञा पुं० [सं० कौल] एक प्रकार का दर्द जो पसलियों
 के नीचे होता है । धापमूल ।
 कौल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम कुल में उत्पन्न । अच्छे खान-
 दान का । (२) धाममागी ।
 ष-संज्ञा पुं० [सं० कवल] कमल । सरोज ।
 संज्ञा पुं० [सं० कवल] कौर । प्रास ।
 संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का खल्ला गाना ।
 कौल-संज्ञा पुं० [सं० कौल] सेना की छावनी का मध्य भाग ।
 संज्ञा पुं० [सं०] (१) कथन । उक्ति । धापव । (२) प्रतिज्ञा ।
 मण । वादा । इकरार ।
 यौ०—कौल करार = परस्पर दंड प्रतिज्ञा । कौल का पूरा या
 पका = शत का सया । जयान का धनी ।
 मुहा०—कौल तोड़ना = किसी से की हुई प्रतिज्ञा तोड़ना ।
 प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य न करना । कौल देना = किसी से
 प्रतिज्ञा करना । किसी को वचन देना । कौल खेना = प्रतिज्ञा
 कथन । वचन देना । कौल से फिरना = दे० 'कौल तोड़ना' ।
 कौल हारना = दे० 'कौल देना' ।
 कौल-वि० [हिं० कौल = संगत] लताई लिये पीला । संगतरे के
 रंग का । नारंगी ।
 कौलदुर्गा-वि० [हिं० कौल = कवल + दुर्गा = दुन्दर] कवल की एक

जाति। इस जाति के क्यूरा की दुम लंबी और कमल की पत्ती की तरह छिड़खली होती है।

कौलव-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में वव आदि ग्यारह करणों में से तीसरा। इसके देवता मित्र हैं। इस करण में जन्म लेने-वाला विद्वान् और गुणी पर कृतज्ञ होता है।

कौला-संज्ञा पुं० [सं० कमला] एक प्रकार का संगतरा जो बहुत अच्छा और स्वादिष्ट होता है। कमला।

संज्ञा पुं० [सं० काल = क्रोध, मोद] (१) द्वार के इधर उधर का वह भाग जिससे खुलने पर किवाड़े भिड़े रहते हैं। कोना। कौर।

मुहा०—कौले लगना = (१) रुठ कर द्वार के कोने में खड़ा होना। (२) किसी बात को चुप चाप सुनने के लिये द्वार के कोने में छिप कर खड़ा होना। घात में रहना। कौले सँचिना = पूजा यात्रा आदि के समय द्वार के इधर उधर पानी छिड़कना। (२) पाला।

कौलिया-संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का छोटा मयूल जो बरार में होता है।

कौलीय-संज्ञा पुं० [सं०] छत्रियों की एक प्राचीन जाति जिसका उल्लेख बौद्ध शास्त्रों में आया है।

कौलेज-संज्ञा पुं० दे० "कालिज"।

कौलौ-संज्ञा पुं० दे० "कौलव"।

कौवा-संज्ञा पुं० [सं० काक, प्रा० ककरो] [सं० कौवी। क०] (१) एक प्रसिद्ध पक्षी जो संसार के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं, पर भारत में प्रायः दो ही प्रकार के कौवे पाये जाते हैं। साधारण कौवा आकार में डेढ़ चालितर होता है, इसकी चोंच लंबी और कड़ी होती है और पैर बहुत मजबूत होते हैं। इसका भड़ या अगला भाग खाकी और पीछे का भाग काला होता है। इसकी नाक ठीक मध्य में नहीं होती, कुछ किनारे हट कर होती है। यह प्रायः चुपों की टहनियों पर घोंसला बनाता है। यह बैसाख से भादों तक श्रद्धे देता है जिनकी संख्या ४ से ६ तक होती है। कहते हैं यह अपने जीवन में केवल एक बार श्रद्धा देता है। श्रद्धे का रंग हरा होता है और उसपर काले दाग होते हैं। कौवल भी अपने श्रद्धे इसी के घोंसले में रख जाती है, पर जब उसमें से बच्चा निकलता है तो यह उसे अपने घोंसले से निकाल देता है। दूसरे प्रकार का कौवा आकार में बड़ा और प्रायः एक हाथ लंबा होता है। इसका सर्वांग विलकुल काला होता है। इस जाति के कौवे आपस में बहुत लड़ते और प्रायः एक दूसरे को मार डालते हैं। यह पूर से फागुन तक श्रद्धे देता है। इसे डोम कौवा कहते हैं। शेष सब बातों में यह प्रायः साधारण कौवे से मिलता जुलता होता है। दोनों प्रकार के कौवे बहुत पूरते होते हैं और किसी ऐसे स्थान पर जहाँ जरा भी भय की आशंका हो, नहीं

जाते। पर शहरों और गाँवों में रहनेवाले कौवे बहुत ही होते हैं। साधारण कौवे जब तक श्रद्धे देने की आवश्यकता न हो, घोंसला नहीं बनाते। कौवे दिन के समय भोजन आदि के लिये अपने रहने के स्थान से १०-१२ कोस दूर तक निकल जाते हैं। यह प्रायः सभी खाद्य और अखाद्य पदार्थ खा जाते हैं। लोग कहते हैं कि इसकी केवल एक ही पुतली होती है जो आवश्यकतानुसार दोनों श्रापों में घूमा करती है। यह बहुत जोर से काँव काँव शब्द करता है जो बड़ा अग्रिय होता है। इसका मांस बहुत निकट होता है और मनुष्य या पशु पक्षियों के खाने योग्य नहीं होता।

धौ०—कौवा गुहार या कौवा रोरा = बहुत अधिक बकबक। बहुत जोर जोर से और व्यर्थ घोरना। फागोराल।

मुहा०—कौवा गुहार में पढ़ना या पँसना = हुड़ड़ या रोरा में पढ़ना। बहुत पोजनेवालों के बीच में फँसना। कौवे उड़ाना = व्यर्थ या अनावश्यक कार्य करना।

(२) बहुत पूरते मनुष्य। काँहियाँ। (३) वह लकड़ी जो बँडेरी के सहारे के लिये लगाई जाती है। कौहा। घुड़ियाँ। (४) एक प्रकार का सरकंडे का खिलौना। (५) गले के श्रद्ध, तालू की झालर के बीच का लटकता हुआ मांस का टुकड़ा। घाँटी। घंटी। लंगर। ललरी।

मुहा०—कौवा उड़ाना = बुरी या अधिक लटकती हुई बुरी की दृष्टि कर यासाथान करना।

विशेष—कभी कभी कौवा अधिक लटक कर जीभ तक धा पहुँचता है जिससे कुछ दर्द और खाने पीने में बहुत कष्ट होता है। यह दृष्टा वास्तवस्था में अधिक और उसके बाद कम होती है।

कौवाटोंठी-संज्ञा स्त्री० [सं० काकतुपेठी] एक प्रकार की लता जिसके फूल सफेद और नीले रंग के तथा आकार में कौवे की नाक के समान होते हैं। इसमें फलियाँ लगती हैं जिनमें लोविये के समान बीज होते हैं। बवासीर दूर करने तथा वालों को पकने से रोकने के लिये इसका प्रयोग औषध की भाँति होता है।

पर्या०—काकनासा। वायसी। सुरंगी। काफकी। शिरोवाला। **कौवापरी-संज्ञा स्त्री०** [हिं० कौवा + परी] बहुत काली और कुरूप स्त्री। (व्यंग्य)।

कौवारी-संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) एक प्रकार की चिड़िया। (२) क्यूरे के आकार का एक वृक्ष जिसमें बहुत से खाल फूलों का एक गुच्छा लगता है। इसकी जड़ औषध के काम में आती है। (३) कौवाटोंठी।

कौवाल-संज्ञा पुं० [प०] सुसलमानों में गवियों की एक जाति। इस जाति के लोग कौवाली गाते हैं।

कौवाली-संज्ञा स्त्री० [प०] (१) एक प्रकार का गाना जो परियों

की मजार या स्तूपियों की मजलिसों में होता है। इसके गाने की एक विशेष धुन होती है। इसमें प्रायः धर्म संबंधी वा धार्मिक गज़लें होती हैं जिनके फारस कभी कभी सुननेवाले तन्मय हो जाते हैं। (२) इस धुन में गाई जानेवाली कोई ग़ज़ल। (३) सांगीत में तिताला धराने का एक भेद। यह मध्यमान में दूना जल्दी बजाया जाता है। कौवाली की ग़ज़लों के सिवा और रागिनियों में भी इसका प्रयोग होता है।

इसका तबले का बोल यह है—धा दिन् दिन् धा, धा दिन् दिन् धा, ना तिन् तिन् ता। ता दिन् दिन् धा। धा। धयवा—धा धिन् धिन् धा, धिन् धायो धिन् धिन् धा, ना तिन् तिन् ता, तागे धिन् धिन् धा। धा।

(४) कौवालों का देश।

कौशा—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कौशेय। स्त्री० कौशी] (१) कुशा-द्रव्य। (२) एक गोत्र का नाम। (३) रेशमी कपड़ा।

कौशाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुशलता। चतुराई। नियुक्ता। (२) मंगल। (३) कौशल देश का निवासी।

कौशालेय—संज्ञा पुं० [सं०] कौशल्या के पुत्र, रामचंद्र।
कौशाद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कौशल के राजा दशरथ की प्रधान स्त्री और रामचंद्र की माता। (२) पुरुराज की स्त्री और जन्मभय की माता। (३) सत्वान् की स्त्री। (४) धृतराष्ट्र की माता। (५) पंचमुनी धारती। वत्ती की धारती।

कौशाबी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बहुत प्राचीन नगर जिसे कुशा के पुत्र कौशांब ने बसाया था। इसका दूसरा नाम कल्पवृक्ष है। प्राचीन काल में यह नगर जमुना के किनारे था, पर जब जमुना वह स्थान छोड़ कर दूर चली गई है। बुद्धदेव कुछ दिनों तक इस स्थान पर रहे थे, और यहाँ एक मंदिर में उनकी चंदन की बहुत बड़ी मूर्ति है। इसलिये यह स्थान बौद्धों का एक तीर्थ हो गया है। यह स्थान प्रयाग से पंद्रह कोस पश्चिम की ओर है और अब भी यहाँ कोसम नामक एक छोटा गाँव और बहुत से पुराने ढोंढर हैं।

कौशािक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) कुशिक राजा के पुत्र गाँव, जो इंद्र के शंश से उत्पन्न हुए थे। (३) विरचामित्र। (कुशिक राजा के शंशज) (४) अरक्षंध के एक सेनापति का नाम। (५) कौशाध्यक्ष। (६) कौशकार। (७) उल्लू। (८) नेवजा। (९) अरयकण्ठी। (एक प्रकार का शाल वृक्ष) (१०) रेशमी कपड़ा। (११) शृंगार रस। (१२) मग्ना। (१३) एक उपपुराण। (१४) हनुमत के मत से छः रागों में से एक। कुकुमा, संभावती, गुणकिरी, गौरी और तोड़ी

रागिनी इसकी परिभाषा है (संगीत)। (१५) श्रयर्वेद का एक मंत्र। इसमें देव, पितृ तथा पाकयज्ञ, मंत्रों के गण, युद्ध तथा राजनीति, वज्र तथा वृष्टि निवारण के मंत्र, विद्या-विधि, वेदार्थ और वेदाध्ययन की विधि आदि विषयों का वर्णन है।

कौशािका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जल आदि पानी का बरतन। कटोरा। गिलास। (२) गुणुल।

कौशािकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंडिका। (२) राजा कुशिक की पत्नी और श्रेष्ठीक मुनि की स्त्री जो अपने पति के साथ सदेह स्वर्ग गई थी। (३) कोसी नाम की नदी। विशेष—दे० 'कोसी'।

(४) एक रागिनी। हनुमत के मत से यह मालदेव्य राग की श्राद्ध भार्याओं में से एक है। कोई कोई इसे परिवा और अजयगल आदि के संयोग में उत्पन्न संकर रागिनी मानते हैं। (५) काव्य में चार प्रकार की वृत्तियों में से पहली वृत्ति। जहाँ कल्प्या, हास्य और शृंगार रस का वर्णन हो और सरल वर्ण आये उसे कौशािकी वृत्ति कहते हैं।

कौशािकी कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कौशिकी + कान्हड़ा] एक संकर राग जो कौशािकी और कान्हड़ा के योग से बनता है। इसमें सब स्वर कामल लगते हैं।

कौशािक्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक श्रेष्ठि।

कौशािक्या—संज्ञा स्त्री० दे० 'कौशल्या'।

कौशािक्यान्व—संज्ञा पुं० [सं०] यह अनाज जो कोश में उपन्न होते हैं, जैसे तिल आदि।

कौशािक—संज्ञा पुं० [सं०] मृगधर। प्रधान नट।

कौदमाडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदों की ३४ पवित्र करनेवाली श्चाचार्यों में से एक।

कौपारय—संज्ञा पुं० [सं०] कुषाह मुनि के पुत्र, संश्रेय।

कौपिक—संज्ञा पुं० दे० 'कौशिक'।

कौपिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक देवी जिनकी उत्पत्ति काली के शरीर से हुई थी। इनके दस हाथ हैं और इनका वाहन सिंह है। इनकी श्राद्ध सत्तियाँ हैं जो सदा इनके साथ रहती हैं। (२) दे० 'कौशािकी'।

कौपीतक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुपीतक श्रेष्ठि के पुत्र और श्रव्येद की एक शाखा के प्रवर्तक। (२) श्रव्येद के श्रव-गंत एक ब्राह्मण।

कौपीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अगस्त्य मुनि की स्त्री का नाम। (२) श्रव्येद की एक शाखा। (३) श्रव्येद के श्रव-गंत एक ब्राह्मण या उपनिषद्।

कौसल—संज्ञा पुं० दे० 'कौशल'।

कौसल्या—संज्ञा स्त्री० दे० 'कौशल्या'।

कौस्तिक—संज्ञा पुं० दे० 'कौशिक'।

जाति। इस जाति के कव्तर की हुम खंबी और कमल की पत्ती की तरह छिड़ली होती है।

कौलव—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में वष आदि म्यारह करणों में से तीसरा। इसके देवता मित्र हैं। इस कर्ण में जन्म लेने-वाला विद्वान् और गुणी पर वृत्तप्र होता है।

कौला—संज्ञा पुं० [सं० कमला] एक प्रकार का संगतरा जो बहुत अच्छा और स्वादिष्ट होता है। कमला।

संज्ञा पुं० [सं० कौल = कौल, गोर] (१) द्वार के इधर उधर का वह भाग जिससे खुलने पर किवाड़े भिड़े रहते हैं। कोना। कौर।

मुहा०—कौले लगना = (१) रुठ कर द्वार के कोने में खड़ा होना। (२) किसी बात को चुप चाप सुनने के लिये द्वार के कोने में छिप कर खड़ा होना। बात में रहना। कौले सींचना = पूजा याज्ञा आदि के समय द्वार के इधर उधर पानी छिड़कना। (२) पास्ता।

कौलेया—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का छोटा बयल जो बरार में होता है।

कौलीय—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों की एक प्राचीन जाति जिसका उल्लेख बौद्ध शास्त्रों में आया है।

कौलेज—संज्ञा पुं० दे० "कालिज"।

कौली—संज्ञा पुं० दे० "कौलव"।

कौवा—संज्ञा पुं० [सं० काक, प्रा० कणो] [र्का० कौवी। क०] (१) एक प्रसिद्ध पक्षी जो संसार के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं, पर भारत में प्रायः दो ही प्रकार के कौवे पाये जाते हैं। साधारण कौवा आकार में डेढ़ यालित होता है, इसकी चोंच खंबी और फट्टी होती है और पैर बहुत मजबूत होते हैं। इसका धड़ या श्रगला भाग लाली और पीछे का भाग काला होता है। इसकी नाक ठीक मध्य में नहीं होती, कुछ किनारे हट कर होती है। यह प्रायः, वृक्षों की टहनियों पर घोंसला बनाता है। यह बसाल से भादों तक थंडे देता है जिसकी संख्या ४ से ६ तक होती है। कहते हैं यह अपने जीवन में केवल एक बार शंका देता है। शंके का रंग हरा होना है और उसपर काले दाग होते हैं। कोयल भी अपने थंडे हस्ती के घोंसले में रख जाती है, पर जब बसमें से सधा निकलता है तो यह उसे अपने घोंसले से निकाल देता है। दूसरे प्रकार का कौवा आकार में बड़ा और प्रायः एक हाथ लंबा होता है। इसका सर्वांग विलकुल काला होता है। इस जाति के कौवे थापस में बहुत लड़ते और प्रायः एक दूसरे को मार डालते हैं। यह पूस से फागुन तक थंडे देता है। इसे टोम कौवा कहते हैं। शेष सब ऋतों में यह प्रायः साधारण कौवे से मिलता जुलता होता है। दोनों प्रकार के कौवे बहुत पूरुं होने हैं और किसी ऐसे स्थान पर जहाँ ज़रा भी भय की आशंका हो, वहीं

जाते। पर शहरों और गांवों में रहनेवाले कौवे बहुत ही डरे होते हैं। साधारण कौवे जय तक थंडे देने की आवश्यकता न हो, घोंसला नहीं बनाते। कौवे दिन के समय भोजन आदि के लिये अपने रहने के स्थान से १०-१२ कोस दूर तक निकल जाते हैं। यह प्रायः सभी खाद्य और श्रालात् पदार्थ खा जाते हैं। लोग कहते हैं कि इसकी केवल एक ही पुतली होती है जो आवश्यकतानुसार दोनों आँसों में घुसा करती है। यह बहुत जोर से काँव काँव शब्द करता है जो पक्ष अभिय होता है। इसका मांस बहुत निष्ठुर होता है और मनुष्य या पशु पक्षियों के खाने योग्य नहीं होता।

यो०—कौवा मुहार या कौवा रोर = बहुत अधिक परवक। बहुत जोर जोर से और व्यर्थ बोलना। कागोरल।

मुहा०—कौवा मुहार में पड़ना या फँसना = हूडह या गोर में पड़ना। बहुत बोलनेवालो के बीच में फँसना। कौवे उड़ाना = व्यर्थ या अनावश्यक कार्य करना।

(२) बहुत धूर्त मनुष्य। काँहर्पा। (३) वह लकड़ी जो बँडरी के सहारे के लिये लगाई जाती है। काँहा। बहुँयाँ। (४) एक प्रकार का सरकंडे का खिलाना। (५) गले के थँदर, तालू की मालर के बीच का लटकता हुआ मांस का टुकड़ा। घाँटी। घंटी। लंगर। लखरी।

मुहा०—कौवा उड़ाना = बर्दी या अधिक लटपटी हुई घंटी को दवा कर यथास्थान करना।

विशेष—कभी कभी कौवा अधिक लटक कर जीभ तक आ पहुँचता है जिससे कुछ दर्द और खाने पीने में बहुत परेशान होता है। यह दवा धार्यावस्था में अधिक और उसके बाद कम होती है।

कौवाठोटी—संज्ञा श्री० [सं० काकतुपडी] एक प्रकार की लता जिसके फूल सफेद और नीले रंग के तथा आकार में कौवे की नाक के समान होते हैं। इसमें फलियाँ लगती हैं जिनमें ज्योतिष के समान चीजें होते हैं। बवागीर दूर करने तथा बालों को पकने से रोकने के लिये इसका प्रयोग शीघ्र की भाँति होता है।

पर्या०—काकनासा। वायली। सुरंगी। काकाणी। शिरोपात्रा। **कौवापरी**—संज्ञा श्री० [हि० कौवा + परी] बहुत काली और कुरूप शी। (व्यंग्य)।

कौवाती—संज्ञा श्री० [देग०] (१) एक प्रकार की चिट्ठी। (२) कच्चे के आकार का एक वृक्ष जिसमें बहुत से काल फूलों का एक गुच्छा लगता है। इसकी जड़ शीघ्रपच के काम में आती है। (३) कौवाठोटी।

कौवाल—संज्ञा पुं० [५०] मुसलमानों में गर्वियों की एक जाति। इस जाति के लोग कौवाली गाते हैं।

कौवाली—संज्ञा श्री० [५०] (१) एक प्रकार का गाना जो परियों

की मजार या स्तूपों की मजलिसों में होता है। इसके गाने की एक विशेष धुन होती है। इसमें प्रायः धर्म संबंधी या धार्मिक गानों होती हैं जिनके कारण कभी कभी सुननेवाले लज्जित हो जाते हैं। (१) इस धुन में गाई जानेवाली कोई गजल। (२) संगीत में तिताला बजाने का एक भेद। यह मध्यमान से दूना जल्दी बजाया जाता है। कौवाली की गजलों के सिवा और रागिनियों में भी इसका प्रयोग होता है।

हमसा तबले का बोल यह है—धा दिन् दिन् धा, धा दिन् दिन् धा, ना तिन् तिन् ता। ता दिन् दिन् धा। धा।

अथवा—धा धिन् धिन् धा, धिन् धागे धिन् धिन् धा, ना तिन् तिन् ता, तागे धिन् धिन् धा। धा।

(४) कौवाली का पेशा।

कौशा—संज्ञा पु० [सं०] [वि० कौशेय । स्त्री० कौशी] (१) कुश-द्वीप। (२) एक गोत्र का नाम। (३) रेवती कण्डा।

कौशल—संज्ञा पु० [सं०] (१) कुशलता। चतुराई। निपुणता। (२) मंगल। (३) कौशल देश का निवासी।

कौशलेय—संज्ञा पु० [सं०] कौशल्या के पुत्र, रामचंद्र।
कौशलया—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) कौशल के राजा दशरथ की प्रधान स्त्री और रामचंद्र की माता। (२) पुराण की स्त्री और जन्मभय की माता। (३) सत्वात् की स्त्री। (४) धृतराष्ट्र की माता। (५) पंचमुखी शारती। बत्ती की शारती।

कौशाधी—संज्ञा स्त्री [सं०] एक बहुत प्राचीन नगर जिसे कुश के पुत्र कौशांध ने बसाया था। इसका दूसरा नाम कस्यपहन है। प्राचीन काल में यह नगर जमुना के किनारे था, पर यह जमुना वह स्थान छोड़ कर दूर चली गई है। बुद्धदेव कुछ दिनों तक इस स्थान पर रहे थे, और यहाँ एक मंदिर में उनकी चंदन की बहुत बड़ी मूर्ति है। इसलिये यह स्थान यहाँ का एक तीर्थ हो गया है। यह स्थान प्रयाग से पंद्रह कोस पश्चिम की ओर है और अथ भी यहाँ कोसम नामक एक छोटा गाँव और बहुत से पुराने खँडहर हैं।

कौशिक—संज्ञा पु० [सं०] (१) इंद्र। (२) कुशिक राजा के पुत्र गांधि, जो इंद्र के अश्व से उत्पन्न हुए थे। (३) विश्वामित्र। (कुशिक राजा के संज्ञक) (४) जरसंध के एक सेनापति का नाम। (५) कौशाध्यय। (६) कौशाकार। (७) उल्लू। (८) वेवला। (९) अरथक्य। (एक प्रकार का शाल वृक्ष) (१०) रेवती कण्डा। (११) शृंगार रस। (१२) मग्ना। (१३) एक उपपुराण। (१४) हनुमन के मत से छः रागों में से एक। कुकुमा, रंभावती, गुणकिरी, गौरी और तोड़ी

रागिनी इसकी पक्षियाँ हैं (संगीत)। (१५) अथर्ववेद का एक सूत्र। इसमें देव, पितृ तथा वाकपत्र, मंत्रों के गण्य, युद्ध तथा राजनीति, धर्म तथा वृष्टि निवारण के मंत्र, विवाह-विधि, वेदारंभ और वेदाध्ययन की विधि आदि विषयों का वर्णन है।

कौशिका—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) जल श्रादि पीने का बरतन। कटोरा। गिलास। (२) गुणज।

कौशिकी—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) चंद्रिका। (२) राजा कुशिक की पत्नी और शचीक मुनि की स्त्री जो अरुने पति के साथ सदेह स्वर्ग गई थी। (३) कोसी नाम की नदी।

विशेष—दे० 'कोसी'।

(४) एक रागिनी। हनुमन के मत से यह मालदेव्य राग की श्राद्ध भाय्याओं में से एक है। कोई कोई इसे पुरिया और अजयपाल आदि के संयोग से उत्पन्न संकर रागिनी मानते हैं। (५) काव्य में चार प्रकार की वृत्तियों में से पहली वृत्ति। जहाँ कल्पना, हास्य और शृंगार रस का वर्णन हो और सरल वर्ण आधे उसे कौशिकी वृत्ति कहते हैं।

कौशिकी कान्हड़ा—संज्ञा पु० [हि० कौशिकी + कान्हड़ा] एक संकर राग जो कौशिकी और कान्हड़ा के योग से बनता है। इसमें सब स्वर कोमल लगते हैं।

कौशल्य—संज्ञा पु० [सं०] एक गौत्रप्रवर्तक श्राधि।

कौशलया—संज्ञा स्त्री दे० 'कौशलया'।

कौशीधान्य—संज्ञा पु० [सं०] यह अनाज जो कोषा में उत्पन्न होते हैं, जैसे तिल आदि।

कौशील—संज्ञा पु० [सं०] सूत्रधार। प्रधान नट।

कौहमांडी—संज्ञा स्त्री [सं०] वेदों की ३४ पवित्र करनेवाली श्रुचाओं में से एक।

कौषार्य—संज्ञा पु० [सं०] कुषार मुनि के पुत्र, मंत्रेय।

कौषिक—संज्ञा पु० दे० 'कौशिक'।

कौषिकी—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) एक देवी जिनकी उत्पत्ति काली के शरीर से हुई थी। इनके दस हाथ हैं और इनका वाहन सिंह है। इनकी श्राद्ध संधियाँ हैं जो सदा इनके साथ रहती हैं। (२) दे० 'कौशिकी'।

कौषोतक—संज्ञा पु० [सं०] (१) कुषीतक ऋषि के पुत्र और ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक। (२) ऋग्वेद के अंत-गंत एक ब्राह्मण।

कौषोतकी—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) अथारस्य मुनि की स्त्री का नाम। (२) ऋग्वेद की एक शाखा। (३) ऋग्वेद के अंत-गंत एक ब्राह्मण था उपनिषद्।

कौसल—संज्ञा पु० दे० 'कौशल'।

कौसल्या—संज्ञा स्त्री दे० 'कौशलया'।

कौसिक—संज्ञा पु० दे० 'कौशिक'।

कौसिया—संज्ञा पुं० [रेग०] एक संकर राग (संगीत) ।
 कौसिला—संज्ञा स्त्री० दे० "कौसाण्या" ।
 कौस्तुभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंगली कुसुम । यन्कुसुम । (२)
 एक प्रकार का साग जो बहुत कोमल होता है ।
 कौस्तुभचिंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो दस रातों
 में होता है ।

कौस्तुभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक स्न जो समुद्र
 मगने के समय निकला था और जिसे विष्णु अपने चक्रव्यूल पर
 पहने रहते हैं । (२) तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा ।

कौह—संज्ञा पुं० [सं० कृत्त्र] अशुभ वस्तु ।

कौहरा—संज्ञा पुं० [देग०] ईद्रावन ।

कौहा—संज्ञा पुं० [देग० या हिं० कौवा] वह लकड़ी जो बेंडेरी के सहारे
 के लिये लगाई जाती है । बहुधा कौवा ।

क्या—सर्व [सं० किर] एक प्रत्ययचक शब्द जो उपस्थित या
 अभिप्रेत वस्तु की जिज्ञासा करता है । उस वस्तु को सूचित
 करने का शब्द जिसे पूछना रहता है । कौन वस्तु ? कौन
 यात ? जैसे—(क) तुम्हारे हाथ में क्या है ? (ख) तुम क्या
 करने चाए थे ?

मुद्रा—क्या उखाड़ना = कुछ न कर सकना । कुछ ध्यान न
 पूरना सकना । (बाजार) । क्या कहना है ! = (१) (प्रशास-
 रत्नक वाक्य) धन्य । साधु साधु । शावरा । वाह वा । बहुत
 अच्छा है । बहुत बढ़िया है । (२) प्रशंसा के योग्य नहीं है ।
 बहुत बुरा है । बहुत अनुचित है । बिलकुल ठीक नहीं
 है । ऐसा नह है । (धर्म) । जैसे—पहला व्यक्ति—बह
 बहुत अच्छा लिखता है । दूसरा व्यक्ति—क्या कहना है !
 क्या खूब = दे० "क्या कहना है !" । क्या क्या = सब कुछ ।
 बहुत कुछ । क्या कुछ, क्या क्या कुछ = सब कुछ । बहुत
 कुछ । बहुत ही वस्तु । बहुत ही बात । जैसे—(क) उसने क्या
 क्या कुछ नहीं दिया ? (ख) तुमने क्या क्या कुछ नहीं कह
 डाला ? क्या यह धीर क्या यह = (१) जैसा यह होता यह ।
 दोना बराबर है । जैसे—(क) उनके लिये क्या थोपेता धीर
 क्या उगाला । (ख) उसका क्या रचना और क्या न रहना ।
 (२) जब इसी को हम कुछ नहीं समझते तब उसका क्या
 समझते हैं । दोना उच्छ है । जैसे—क्या भेड़, क्या भेड़ की
 खात ? यह क्या करते हो ? = यह ठीक नहीं करते है ।
 यह बुरा करते है । यह निरुत्पन्न कार्य करते है । (आश्रय
 और लोद सूचक) । यह क्या किया ? = दे० "यह क्या करते हो ?"
 (किसी की) क्या पछाने हो = क्या प्रश्न लाते है ? क्या
 चर्चा करते हो ? सब ही कुछ और है । दशा ही भिन्न है ।
 बराबरी नहीं कर सकते । जैसे—उनकी क्या पछानते हो ? ये
 भगीर है चाहे हम कोई रखते । क्या चीज है ? = क्या चीज
 है । उच्छ है । (किसी की) क्या पछाने = दे०

है" । क्या जाता है ? = क्या नुकसान होता है । रोज ता
 हने होता है ? कुछ ध्यान नहीं । जैसे—जरा कह देना,
 तुम्हारे क्या जाता है ? क्या जाने ? = कुछ नहीं जानते ।
 श्रात नहीं । मात्रम नहीं । जैसे—हम क्या जाने, यह कहा
 क्या है ? क्या जाती दुनिया देखी ? = क्या आपाए हुआ
 (जो समाज विरुद्ध कार्य किया) । क्या नाम ? = नाम सरख
 नहीं आता । (जब बात चीत करते समय कोई बात याद नहीं
 आती तब इस वाक्य को बीच में बोध कर कुछ एक जाते हैं
 जैसे, तुम्हारे साथ उस दिन वही = क्या नाम ? = मधुराम-
 साद थे न ?) । क्या पढ़ना ? = क्या आवश्यकता हैना ।
 कुछ जरूरत न हैना । कुछ गुराज न हैना । जैसे—हमें क्या
 पढ़ी है जो हम पूछने जाय ? क्या पूछना है ? = दे० "क्या
 कहना है" । क्या हुआ ? = क्या हुआ है । कुछ हुआ नहीं है ।
 कुछ पर्या नहीं है । क्या बात !, क्या-यात है ! = दे० "क्या
 कहना है" । क्यासे क्या हो हो गया = बिलकुल बदल गया ।
 और ही दशा हो गई । क्या समझते वा गिनते हैं ? = कुछ
 नहीं समझते हैं । कुछ समझते हैं । तो फिर क्या है ? = तो
 और किया बात की आवश्यकता नहीं । तो सब पूरा है । तो
 ख ठीक है । तो वही अच्छी बात है । जैसे—ये धा जाय
 तो फिर क्या है ?

विशेष—इसके यह शब्द सर्वनाम है पर इसमें विभक्ति नहीं
 लगती । यही से वस्तु की जिज्ञासा के लिये दो सर्वनाम हैं
 "कौन" और "क्या" । "कौन" में विभक्ति लाग सकती है
 "क्या" में नहीं । "क्या" के आगे संज्ञा प्राने से वह विशेष्य
 पण्यव हो जाता है, जैसे, क्या घरतु । इस शब्द के आगे
 अधिकतर वस्तु, पदार्थ, चीज आदि सामान्य शब्द विशेष्य
 रूप से आते हैं, विशेष जाति वा व्यक्ति बोधक शब्द नहीं ।
 वि० (१) कितना ? किस कदर ? जैसे—इस काम में
 तुम्हारा क्या रुचें पड़ा ? (२) बहुत अधिक । बहुतया से ।
 इतना अधिक । देना । जैसे—(क) क्या पानी बरसा कि
 सब तलावे हो गए । (ख) क्या भीड़ थी कि तिल रतने को
 जगह न थी । (३) कैसा ? किस प्रकार का ? विलक्षण रंग
 का । अर्थात् विचित्र । जैसे—(क) वह भी क्या आदमी
 है ? (ख) क्या क्या लोग हैं । (घ) बहुत अच्छा । बहुत
 ठकाम । कैसा उराम ? जैसे—यारु साहय भी क्या आदमी है
 कि जो मिलता है प्रसन्न हो जाता है ।
 कि० वि० (१) क्यों ? किस लिये । किस कारण । जैसे—(क)
 तुम मुझसे क्या कहते हो, मैं कुछ नहीं कर सकता । (ख)
 अब हम वहाँ क्या जाय ?

मुद्रा—देना क्या = देना क्यों ? इसकी क्या आवश्यकता है ?
 क्या चाए क्या चले ? = बहुत जल्दी आ रहे है । अपनी रीति
 और देना । (जब कोई किसी के यहाँ जाता है और अपनी
 जाना चाहता है तब उरते प्रति यह कहा जाता है) ।

(२) नहीं। जैसे—जब उसमें दमही नहीं तब क्या चलेगा ? अथ० देवल प्रननयक शब्द। जैसे—क्या वह चला गया ?

मुहा०—क्या भाग में डालूँ = इस वस्तु को लेकर क्या करूँ। यह मेरे किस काम का है ? (खिया विमलता कर ऐसा बोल देता है)।

प्यारा—संज्ञा पुं० [सं० केदार] वेद का धाता। धावता।

प्यारी—संज्ञा स्त्री० दे० "कियारी"।

क्यों—कि० वि० [सं० किल] (१) किसी व्यापार वा घटना के कारण की निश्चिन्ता करने का शब्द। किस कारण ? किम निमित्त ? किस लिये ? किस वास्ते ? जैसे—तुम यहाँ क्यों जा रहे हो ?

ध्या०—क्योंकि = इतलिये कि। इस कारण कि। जैसे—अब यहाँ से जाओ, क्योंकि यह छाता होगा।

मुहा०—क्यों कर = किस प्रकार ? कैसे ? जैसे—मैं यहाँ क्यों कर रह सकता हूँ ? क्यों नहीं ? = (१) ऐसा ही है। ठीक कहते हो। निःसंदेह। येशक। (किसी बात के समर्थन में) (२) हाँ। जल्द। (स्वीकार में)। जैसे—प्रनन—तुम यहाँ जाओगे। उत्तर—क्यों नहीं ? (३) ऐसा नहीं है। ठीक नहीं कर रहे हो। (व्यंग्य)। (४) कभी नहीं। मैं ऐसा नहीं कर सकता। (व्यंग्य)। कौन न हो = (१) तुम ऐसे महातुमान हो ऐसा उगम काव्ये क्यों न हो ? वाह या ! क्या ग्ल ! धन्य हो ! (२) ऐसी विनम्रता मत क्यों न करोगे ? छिः (व्यंग्य)। (३) किम भीति ? किस प्रकार ? कैसे ? उ०—क्यों किसप क्यों निवहिष, नीति नेह पुर नाहि । सागलगी लोपन करे, माहक मन धँचि जाहि ।—विहारी।

क्योलारी—संज्ञा स्त्री० दे० "केहूलारी"।

कान्दन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोना। विलाप। (२) बुद्ध के समय यौतों का ध्यादान।

क्रकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अतिथि में एक योग जो उस समय पड़ता है जब कि वार और तिथि की संख्या का जोड़ १३ होता है। इसकी गणना के लिये शिववार को पहला, सोमवार को दूसरा, मंगल को तीसरा और इसी प्रकार शनिवार को सप्तमां दिन मानते और उसी दिन की संख्या का तिथि की संख्या में जोड़ते हैं। जैसे, यदि शुक्रवार को सप्तमी, गृहपति को अष्टमी, बुध को नवमी वा शनि को द्वादशी हो तो क्रकृत् योग होता है। इस योग में कोई शुभ कार्य करना परजित है। (२) करील का वेड़। (३) धारा। करवत। (४) एक प्रकार का धान। (५) एक नरक का नाम। (६) गणित में एक प्रकार की क्रिया जिसके अनुसार ऋद्धी के सन्ने धारते की मन्त्रद्वी गियर की जाती है।

क्रकृत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी।

क्रकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) करील का वेड़। (२) किलकिला नाम की चिट्ठिया। (३) केकड़ा। (४) धारा। करवत। (५) दरिद्र।

क्रकुच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] भद्रकण्य के पाँच बुद्धों में से पहले बुद्ध।

क्रानक—संज्ञा पुं० [सं०] यमुदेव के पुत्र का नाम।

क्रतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) निश्चय। संकल्प। (२) इच्छा। अभिलाषा। (३) विवेक। प्रज्ञा। (४) इन्द्रिय। (५) जीव। (६) विन्दु। (७) यह, विशेषतः अश्वमेध।

ध्या०—क्रतुपति = विष्णु। क्रतुपशु = घोड़ा। क्रतुकल = यह का फल, स्वर्ग आदि।

(८) ध्यापात्र (प्रायः यह इसी महीने में होते हैं)। (९) श्रद्धा के एक मानस पुत्र जो सप्तऋषियों में से हैं। इनकी उत्पत्ति प्रज्ञा के क्षय से हुई थी। इनका विवाह कष्टम प्रजापति की कन्या क्रिया से हुआ था जिसके गर्भ से साठ हजार वालखिल्य ऋषि उत्पन्न हुए थे। (१०) विरवेदेवा में से एक। (११) कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (१२) प्रचद्वीप की एक नदी का नाम।

क्रतुर्धर—संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति का यह नष्ट करनेवाले, शिव।

क्रतुपशु—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा। अश्व।

क्रतुपुरुष—संज्ञा पुं० दे० "यज्ञपुरुष"।

क्रतुभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] यह पदार्थ जो यह में देवताओं को अर्पण किया जाता है।

क्रतुभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] देवता। सुर।

क्रतुराज—संज्ञा पुं० [सं०] राजघृष्यपक्ष।

क्रतुविभ्रयो—संज्ञा पुं० [सं०] धन लेकर धन का फल बेचनेवाला।

क्रतुस्थल—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अथस्ता जितना नाम यमुदेव में धारा है। पुराणानुसार यह चैत में सूर्य के रथ पर रहती है।

क्रतुर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञों का अर्थवाद और विधान जो पुरुरार्थ की भांति कर्त्तों की इच्छा के अनुसार नहीं बल्कि शाश्वत के नियम के अनुकूल होता है। जैसे, धैर्यमाम आदि यज्ञों में फल की लिप्ता वा धरणी इच्छा से प्रवृत्ति होती है और इस यज्ञ वा उसकी फलविधि को पुरुरार्थ कहते हैं। पर व्ययमें प्रवृत्त होने पर अथयत्कारण, मोदेहन् और अथयाम आदि यज्ञ के अंग प्रथम संन्याय हस्ती" को शाश्वत की विधि और अर्थवाद के अनुकूल ही करना पड़ता है। इसी विधि और अर्थवाद को अर्थयत् कहते हैं। संन्याय यज्ञ नियम निमित्त किया जाय वह फलविधि है, और यह का एक एक अंग जिस प्रयोजन से किया जाय वह अर्थवाद है।

क्रथ-संज्ञा पुं० (१) विदर्भ नामक यादव राजा का एक पुत्र और कैशिक का भाई । (२) कंद का एक गण । (३) एक अशुर का नाम ।

क्रथकैशिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रथ और कैशिक का संज्ञा । (२) धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

क्रथन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवयोगिनी । (२) धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

क्रथनक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद अंगर । (२) ऊँट ।

क्रप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दयालु । (२) कृपाचार्य्य ।

क्रम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैर रखने की क्रिया । ढग भरने की क्रिया । (२) पूर्वोपर संवेची व्यवस्था । वस्तुओं वा कार्यों के परस्पर आगे पीछे आदि होने का नियम । शैली । प्रणाली । तरतीब । सिलसिला । संज्ञे, —(क) इन पदों को किस क्रम से लगाओगे ? (ख) इन श्रृंखलें का क्रम ठीक नहीं है ।

मुद्रा०—क्रम से = क्रमानुसार ।

क्रि० प्र०—रखना ।—लगाना ।

(३) किसी कार्य के एक अंग को पूरा करने के उपरांत दूसरे अंग को पूरा करने का नियम । कार्य के उचित रूप से धीरे धीरे करने की प्रणाली ।

क्रि० प्र०—बांधना ।

मुद्रा०—क्रम क्रम करने = धीरे धीरे । शनैः शनैः । उ०—जो कोउ दूर चलन को करे । क्रम क्रम करि ढग ढग पग धरे ।

—पूर । क्रम से, क्रम क्रम से = धीरे धीरे ।

(४) वेदपाठ की प्रणाली जो दो प्रकार की है । प्रकृति रूप और विकृति रूप । प्रकृति रूप के दो भेद हैं—रूढ़ और योग । जैसे—“श्रुति मीले पुरोहितम्” इस प्रकार का पाठ रूढ़ और “श्रुतिम् ईले पुरोहितम्” इस प्रकार का पाठ योग कहलावेगा । विकृति रूप के आठ भेद हैं—जटा, माला, शिखा, लेखा, प्वज, दंड, रथ, घन । उ०—पवन सत्यो भैंसा तथ वेदा । पद क्रम जटा क्रमहु बिन खेदा ।—रघुराज । (५) वैदिक विधान । किस कृत्य के पीछे कौन सा कृत्य करना चाहिए इसकी व्यवस्था । कल्प । (६) आक्रमण । (७) धामन का एक नाम जिन्होंने पृथ्वी को तीन डगों में नापा था । (८) वह काव्यालंकार जिसमें प्रथमात्क वस्तुओं का वर्णन क्रम से किया जाय । इसे यथासंख्यालंकार भी कहते हैं । उ०—नूतन धन हिम कनक कांतिधर । लगपति वृष मराल वाहन धर । सरितपती गिरि सरसिग ब्रालप । हरि हर विधि जसवैत प्रतिपालय ।

क्रमण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैर । पांव । (२) पारे के अठारह संस्कारों में से एक ।

क्रमदंडक-संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार । यह विकृति रूप के आठ भेदों में से एक है ।

कामनासा-संज्ञा पुं० दे० “कर्मनाशा” ।

कामपद-संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार ।

कामपाठ-संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार जिसमें संहिता और पाठ दोनों को मिला कर पाठ करते हैं ।

कामपूरक-संज्ञा पुं० [सं०] यकूल वृक्ष । मौलसिरी का पेड़ ।

कामशा-क्रि० वि० [सं०] (१) क्रम से । सिलसिलेवार । (२) धीरे धीरे । धोड़ा धोड़ा करके ।

कामसंन्यास-संज्ञा पुं० [सं०] यह संन्यास जो क्रम से ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, और वानप्रस्थ आश्रम में रह चुकने के बाद लिया जाय ।

कामागत-वि० [सं०] (१) क्रमशः किसी रूप को प्राप्त । जो धीरे धीरे होता आया हो । (२) परंपरागत । जो परंपरा से होता आया हो ।

कामानुकूल-क्रि० वि० [सं०] श्रेणी के अनुसार । नियमानुसार । क्रम के अनुसार । क्रम से । सिलसिलेवार ।

कामानुसार-क्रि० वि० [सं०] क्रमशः । क्रमानुकूल ।

कामान्वय-क्रि० वि० [सं०] क्रम से । एक के बाद एक ।

कामि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कीड़ा । कृमि । (२) पेट का एक रोग जिसमें आंतों में छोटे छोटे सफेद कीड़े पैदा हो जाते हैं । इन कीड़ों को चुसा या खूनूना कहते हैं ।

कामिक-क्रि० वि० [सं०] (१) क्रमयुक्त । क्रमागत । (२) परंपरागत ।

कामुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुपारी का पेड़ । उ०—घर धर तोरण विमल पताके कंचन कुंभ धरापु । क्रमक रम के संभ विराजत पथ जल सुरभि सिंघापु ।—रघुराज । (२) नागर मोथा । (३) कपास का फल । (४) सहवृत्त का पेड़ । (५) पठानी घोष । (६) एक प्राचीन देश का नाम ।

कामेल, क्रामेलक-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट । शतुर ।

काम्य-संज्ञा पुं० [सं०] मोल लेने की क्रिया । खरीदने का काम ।

धौ०—क्रय विक्रय = खरीदने और बेचने की क्रिया । व्यापार ।

काम्यविक्रयानुशय-संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार अठारह प्रकार के विधानों में से एक ।

विशेष—दे० “क्रीतानुशय” ।

काम्यारोह-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ खरीदने बेचने का काम होता हो । हाट । बाजार । मंडी ।

काम्यी-संज्ञा पुं० [सं०] मोल लेनेवाला । खरीदनेवाला ।

काम्य-वि० [सं०] जो विक्री के लिये रखा जाय । जो चीज बेचने के लिये हो ।

काम्य-संज्ञा पुं० [सं०] मांस । गोस्त ।

काम्याद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मांस खानेवाला । यह जो मांस खाता हो । जैसे, राक्षस, गिद्ध, सिंह आदि । (२) वह प्राण जिससे भय जलाय जाता है । चिता की आग ।

क्रांत-वि० [सं०] (१) दबा या ढका हुआ। जिसे कोई वस्तु ऊपर से आकर ढुंके हो। जिसे कोई वस्तु ऊपर से ढोपे हो। प्रत्न। जिस पर आक्रमण हुआ हो। उ०—महाबली विक्रम विक्रांत क्रांत भद्रगिरि कीन्दे—रघुराज।

धा०—भारक्रांत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) धागे बड़ा हुआ। अतीत।

धा०—सीमाक्रांत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा पुं० (१) घोड़ा। (२) पैर।

क्रांतदर्शी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। परमेश्वर। (२) त्रिकाल-दर्शी। सर्वज्ञ।

क्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डग भरने की क्रिया। कदम रखना। गति। एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन। (२) खगोल में वह कल्पित घूर्णन जिस पर सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता जान पड़ता है।

पर्याय—अपमंडल। अणवृत्त। अपक्रम। अपम।

धा०—क्रांतिघेन। क्रांतिज्या। क्रांतिपात। क्रांतिभाग। क्रांतिमंडल। क्रांतिमाला। क्रांतिवलय। क्रांतिवृत्त।

(२) खगोलीय नाडीमंडल से किसी नक्षत्र की दूरी। (५) एक दशा से दूसरी दशा में परिवर्तन। फेरफार। उलटफेर। जैसे, राज्यक्रांति।

क्रांतिक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह क्षेत्र जो क्रांति निकालने के लिये बनाया जाय।

क्रांतिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रांतिवृत्त क्षेत्र में अणु क्षेत्र का एक अंग। दे० “ज्या”।

क्रांतिपात—संज्ञा पुं० [सं०] वे विंहु जिन पर क्रांतिवलय और खगोलीय विद्युत् की रेखाएँ एक दूसरे को काटती हैं।

विशेष—इन विंहुओं पर जब पृथ्वी घाती है तब रात और दिन बराबर होता है।

क्रांतिभाग—संज्ञा पुं० [सं०] खगोलीय नाडीमंडल से क्रांतिमंडल के किसी विंहु की दूरी।

क्रांतिमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिस पर सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता जान पड़ता है।

क्रांतिवृत्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य का मार्ग। क्रांति।

क्रांतिसाध्य—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में ग्रहों की तुल्यक्रांति।

विशेष—वर्षभ सव ग्रहों की तुल्यक्रांति होती है पर सूर्य चंद्र के क्रांतिसाध्य में मंगल कार्ययं चर्जित है।

क्राइस्ट—संज्ञा पुं० [अ०] ईसा मसीह।

क्राउन—संज्ञा पुं० [अ०] (१) राजमुकुट। ताज। (२) धागे के

कागज़ की एक माप जो १२ इंच चौड़ी और २० इंच लंबी होती है।

धा०—डबल क्राउन=क्राउन से दूना, ३० इंच लंबा और २० इंच चौड़ा।

क्राण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसा करना। (२) एक नाग का नाम। (३) एक यंत्र का नाम जिसने राम रायण के युद्ध में सेनापति का काम किया था। (५) एक राजा का नाम जो याहू-प्रह के अवतार माने जाते हैं। उ०—चल्यो क्राय नर-नाय माय पर मुकुट मनाहर।—गोपाल। (२) छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

क्रिकेट—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का धर्मेशी बंग का गेंद का खेल जो त्वारद त्वारद आदिमियों के दो पक्षों में खेला जाता है। गेंद बहता।

धा०—क्रिकेट बैट=क्रिकेट खेलने का बड़ा।

क्रिचयना—संज्ञा पुं० [सं०] ऊर्ध्वचन्द्रायण] चांद्रायण प्रत।

क्रिमि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कीड़ी। कीट। (२) पेट का एक रोग।

विशेष—दे० “कृमि”।

क्रिमिकोड—संज्ञा पुं० [सं०] खेल देय के एक राजा का नाम। यह कटर शंख था और इसने अपने देस के सब पंडितों से लिखवा लिया था कि ऋषि सर्वोत्कृष्ट देवता हैं। इसने रामानुज स्वामी को कैद भी करना चाहा था, पर सफलता न हुई।

क्रिमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाह। लाल।

क्रिमिभक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

क्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ राशि।

क्रियमाद्य—वि० [सं०] (१) जो किया जा रहा हो। जो हो रहा हो। (२) कर्म के चार भेदों में से एक। दे० “कर्म”।

क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी प्रकार का व्यापार। किसी काम का होना या किया जाना। कर्म। (२) प्रयत्न। चेष्टा। हिलना धोलना। (३) अनुष्ठान। आरंभ। (५) व्याकरण का वह अंग जिसमें किसी व्यापार का होना या करना पाया जाय जैसे, धामा, जाना, मारना इत्यादि। (२) शौच आदि कर्म। नित्यकर्म। स्नान, संध्या, तर्पण आदि कृत्य। उ०—प्रात क्रिया करि गे गुरु पाहीं। महा प्रमोद प्रेम मन माहीं।—तुलसी। (६) भाद्र आदि प्रेत कर्म। उ०—अपिरल भगति मांगि घर गीध गयउ हरियाम। सेहि की क्रिया योपचित निज घर फीन्हों राम।—तुलसी।

धा०—क्रिया कर्म=युक्त कर्म। अंशेति क्रिया।

(७) प्रापरिचत आदि कर्म। (८) उपाय। उपचार। चिकित्सा। (६) व्यायस वा विचार का साधन। सुकर्म की कारवाही।

क्रियाकांड—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मकांड । वेदशास्त्र जिसमें यज्ञादि का विधान है ।

क्रियाचतुर—संज्ञा पुं० [सं०] शंभार रस में नायक का एक भेद । वह नायक जो क्रिया या पात में चतुर हो और उसकी सहायता से प्रीति-कार्य साथे ।

क्रियातिपत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें प्रकृत से भिन्न कल्पना करके किसी विषय का वर्णन किया जाय । जैसे, मन्मथ यदि सहस्र दृग धारिहं । तुव सुंदरता निर्णय करिहं ।

विशेष—कुछ लोग इसे अतिशयोक्ति का एक भेद और कुछ लोग संभावना अलंकार के अंतर्गत मानते हैं ।

क्रियाद्वेषी—संज्ञा पुं० [सं० क्रियादेषिन्] धर्मशास्त्र में वह प्रतिवादी जो साक्षी और प्रमाथ आदि को न माने ।

विशेष—ऐसा प्रतिवादी पांच प्रकार के हीन प्रतिवादिषों में माना गया है ।

क्रियानिष्ठ—वि० [सं०] ज्ञान, संध्या, तर्पण आदि नित्य कर्म करनेवाला ।

क्रियापथ—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मकांड । ३०—क्रियापथ श्रुति ने जो भाष्यो से सब असुर मिटाये । वृहद्नालु हैं के हरि-प्रगटे षय में फिर प्रगटायो।—सूर ।

क्रियापाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्ददर्शन के अनुसार विद्यापाद आदि चार पादों में से दूसरा पाद, जिसमें दीक्षा विधि का श्रंग और उपांग सहित प्रदर्शन हो । (२) धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवहार (सुकृदमे) के चार पादों वा विभागों में से एक जिसमें वादी की कथन और प्रतिवादी के उत्तर लिखाने के उपरांत वादी अपने कथन वा दावे का प्रमाथ आदि उपस्थित करता है । दे० "व्यवहार" ।

क्रियाफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदांत परिभाषा में कर्म के चार फल वा परिणाम, अर्थात् उत्पत्ति, प्राप्ति, विकृति और संस्कृति ।

विशेष—भीमांसा में गुणकर्म वा उसके फल के भी ये ही चार भेद किए गए हैं ।

(२) यज्ञादि कर्म से होनेवाला फल वा पुण्य ।

क्रियायुगमे—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार किसी दूसरे का खेत इस शत पर जोतने के लिये लेना कि उसमें जो खाना उपयुक्त हो वह खेत का मालिक और जोतनेवाला दोनों प्राया प्राया पाँट लें । अधिया ।

क्रियामातृकाक्षीप—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का एक रोग जिसमें उन्हें जन्म से दसवें दिन, मास या वर्ष उजर, कंप और अधिक मल मूत्र होता है ।

क्रियायोग—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार देवताओं की पूजा करना और मंदिर आदि बनवाना ।

क्रियार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वेद में यज्ञादि कर्म का प्रतिपादक विधि वाक्य ।

विशेष—भीमांसा ने ऐसे ही वाक्य को प्रमाथ माना है ।

क्रियालक्षणायोग—संज्ञा पुं० [सं०] जप और ध्यानादि द्वारा आत्मा और ईश्वर का संबंध स्थापित करना ।

क्रियावसन्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह वादी जो साक्षी या प्रमाथ न देने के कारण हार जाय ।

क्रियावान्—वि० [सं०] कर्मप्रवृत्त । कर्मनिष्ठ । कर्मठ ।

क्रियाविदग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो नायक पर किसी क्रिया द्वारा अपना भाव प्रगट करे ।

क्रियाविशेषण—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण के अनुसार वह शब्द जिससे क्रिया के किसी विशेष काल, भाव वा रीति आदि का बोध हो । जैसे, शय, तव, यहाँ, यहाँ, क्रमशः, अध्यानक, इत्यादि । जैसे—(क) वह धीरे धीरे चलता है । (ख) वह शय जायगा ।

क्रियाशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर से उत्पन्न वह शक्ति जिससे ग्रहांड की सृष्टि का होना माना जाता है । सांख्य में इसी को प्रकृति और वेदांत में माया कहा है ।

क्रियाशून्य—वि० [सं०] कर्महीन ।

क्रियाज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के अनुसार ज्ञान की एक विधि जिसके अनुसार ज्ञान करने से तीर्थज्ञान का फल होता है ।

क्रिस्टल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रफटिक । किल्लौर । (२) शीशे आदि का जमा हुआ रवादार टुकड़ा । कलम ।

क्रिस्तान—संज्ञा पुं० दे० "क्रिस्तान" ।

क्रिस्तान—संज्ञा पुं० [सं० क्रिथियन] ईसाई । ईसा के मत पर चलनेवाला ।

क्रिस्तानी—वि० [हिं० क्रिस्तान + ई (प्रय०)] ईसाईयों का । ईसाई मत के अनुसार ।

क्रीटकी—संज्ञा पुं० [सं० क्रीट] क्रीट नाम का शिरोभूषण । ३०—क्रीट सुकृत शोभा यनी शुभ श्रंग यनी वनमाल । सूरदास प्रभु गोखल जनमे, मोहन मदन गोपाल ।—सूर ।

क्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कल्लोल । केलि । धामोद प्रमोद । खेल हूद । (२) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक । गिन ताल में केवल एक प्लुत हो उसे क्रीड़ा ताल कहते हैं । (संगीत) । (३) एक वृत्त का नाम । इसके प्रत्येक चरण में एक गणध और एक गुरु होता है । (155 + 5) ३०—सुरी चारो । हरी तारो । करे क्रीड़ा । सबो क्रीड़ा ।

क्रीडाचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] छः गणध का एक वृत्त । इसका दूसरा नाम मयामिदकारी वृत्त है । ३०—यथा यो यथोदा तु को लाडिला जो कलापूर्वकारी । जिहीं भक्त गाँवें सदा चित्त लाये गुरारी पुकारी । यही परवंगो सयै लाइसा तो बला देवे । गाय जाये महा मोदकारी तयै काय्य नकी ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] पाई वाग । नजर वाग ।
 श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] कूलों का रथ ।
 श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] बनावटी पर्वत । नकरी पहाड़ । उ०—
 श्रीऋषयः गिरि ते शक्ति की धवली चली प्रकार ।—केशव ।
 श्रीऋषयः-वि० [सं०] मय किया हुआ । खरीदा या मोल
 लिया हुआ ।
 संज्ञा पु० [सं०] (१) मनु के अनुसार वारह प्रकार के
 पुत्रों में से एक, जो मोल लिया गया हो । श्रौतक । (२)
 पंद्रह प्रकार के दासों में से एक जो मोल लिया गया हो ।
 * संज्ञा शी० [सं०] कौशिली । कौशिली । मुनाम । उ०
 सुनी पाँदै कान अपनी लोक लोकनि श्रौति । सूर प्रभु अपनी
 सचाई रही निगमनि श्रौति ।—सूर ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] मनु के अनुसार वारह प्रकार के पुत्रों
 में से एक, जो माता पिता को धन देकर उनसे खरीदा गया
 हो । ऐसे पुत्र का केवल अपने मोल लेनेवाले की संपत्ति के
 अतिरिक्त पतृक संपत्ति पर किसी प्रकार का अधिकार नहीं
 होता । आज कल इस प्रकार का पुत्र बनाने का विधान
 नहीं है ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] धर्मशास्त्र के अनुसार अष्टादह प्रकार
 के विवादों में से एक । जब कोई मनुष्य किसी चीज़ को
 मोल लेने के बाद, नियमों के विरुद्ध, उसे फौज चलाता है
 तो उस समय जो विवाद उपस्थित होता है उसे श्रीऋषयः
 कहते हैं ।

श्रीऋषयः-वि० [सं०] कोपयुक्त । क्रोध में भरा हुआ ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] सुपारी ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] शृंगाल । सियार । गंदड़ ।

श्रीऋषयः-वि० [सं०] (१) पर पीड़क । दूसरों को कष्ट
 पहुँचानेवाला । (२) निष्ठुर । निर्दयी । जालिम । (३)
 कठिन । (४) तीक्ष्ण । तीला । (५) उष्ण । गरम । (६)
 भीच । घुरा । सूर्य । (७) घोर । (८)
 संज्ञा पु० [सं०] (१) पका हुआ चावल । भात । (२) लाल
 कनेर । (३) बाज पत्ती । (४) सफेद चील । कंक । (५)
 भूतलुहा । नाचतुर्वा । (६) ज्योतिष में विषम (पहली, तीसरी
 पाचवीं, सातवीं, नवीं और ग्यारहवीं) राशियाँ । (७)
 रवि, मंगल, शनि, राहु और केतु ये पाँच ग्रह, जिन्हें
 पापग्रह भी कहते हैं । जिस राशि में कोई पापग्रह हो, उस
 में यदि कोई शुभग्रह था जाय तो यह भी क्रूर कहलाता है ।
 पाराशर के मत से खन से तीसरे, छठे या नवममें घर का
 स्वामी—चाहे जो ग्रह हो—क्रूर या पापग्रह कहलाता है ।
 क्रूर ग्रह-युक्त तिथि या नक्षत्र में यात्रा या विवाह आदि
 शुभ कर्म बर्जित हैं ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] (१) क्रूर काम करनेवाला । (२)
 तिलौकी का पेड़ । (३) सूरजमुली । अर्कमुष्ठी ।

श्रीऋषयः-वि० [सं०] जिसका कौटा बहुत कड़ा हो । जिसका पेड़
 कड़ी दवाकर दवाओं से भी साफ़ न हो ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] गंधक ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० दे० "क्रूर (६) और (७)" ।

श्रीऋषयः-संज्ञा शी० [सं०] (१) निष्ठुरता । निहंयता । फटेरता ।
 (२) दुष्टता ।

श्रीऋषयः-संज्ञा शी० [सं०] दुर्गा का एक नाम ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] (१) शनिग्रह । (२) मंगल ग्रह । (३)
 दुष्ट । खल ।

श्रीऋषयः-संज्ञा शी० [सं०] (१) लाल फूल की गद्दहपत्ती । (२)
 कौड़ी ।

वि० शी० क्रूर स्वभाववाली ।

श्रीऋषयः-वि० [सं०] दुष्ट प्रकृति । दुःस्वभाव ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] ईसाहर्षी का एक प्रकार का धर्म-चिह्न
 जिसका आकार त्रिभुज से मिलता जुलता होता है और जिस
 में दो रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई होती हैं । यह कई
 प्रकार का होता है । जैसे—†, +, ×, † । सलीय ।

विशेष—इस चिह्न का अभिप्राय उस स्त्री से है जो ईसा के
 मारने के लिये खड़ी की गई थी और जिसका आकार † था ।
 उन दिनों रोमन लोग इसी प्रकार की स्त्री पर अपराधियों
 को चढ़ाते थे ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] खरीदनेवाला । मोल लेनेवाला ।
 खरीददार ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] साकमेध यज्ञ का एक हवि जो मरुत
 देवता के उद्देश्य से दिया जाता है ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] श्रौच पर्वत ।

श्रीऋषयः-संज्ञा शी० [सं०] (१) आर्लिगन में देनेवाले चारों के बीच
 का भाग । भुजांतर । बचःस्थल । (२) गोद । शिकार ।
 काल । (३) सुधरा । (४) शनिग्रह । (५) चारही कंद ।

श्रीऋषयः-संज्ञा शी० [सं०] यज्ञी गोरखमुंठी ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] यह पत्र जो किसी पुस्तक या समाचार-
 पत्र में उसकी पूर्ति के लिये ऊपर से लगाया जाय । अति-
 रिक्त पत्र । पूरक । जमीना ।

श्रीऋषयः-संज्ञा शी० [सं०] अटकटैया । कटेरी ।

श्रीऋषयः-संज्ञा शी० [सं०] मोया ।

श्रीऋषयः-संज्ञा पु० [सं०] (१) चित्त का वह तीव्र उद्भेग जो किसी
 अनुचित और हानिकारक कार्य के होते हुए देव कर
 उत्पन्न होता है और जिसमें उस हानिकारक कार्य करनेवाले
 से बदला लेने की इच्छा होती है । कोप । रोष । गुस्सा ।

विशेष—पैरोपिक में क्रोध को द्वेष का एक भेद माना है और उसे क्रोध आदि की अपेक्षा शीघ्र नष्ट होजानेवाला कहा है। भगवद्गीता के अनुसार जो अग्निबाला पूरी नहीं होती है वही रजोगुण के कारण प्रदल कर "क्रोध" बन जाती है। पुराणानुसार यह शरीरस्थ मुष्ट शस्त्रों में से एक है। साहित्य में इसे रौद्र रस का स्थायी भाव माना है।

पर्याय—धमर्ष। प्रतिव। भीम। क्रुधा। रथा। क्रुत।
(२) साठ संवत्सरों में से उनसठवाँ संवत्सर। इस संवत्सर में धाकुलता और क्रोध की वृद्धि होती है। (ज्योतिष)।

क्रोधज—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध से उत्पन्न। मोह।
क्रोधन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोप करनेवाला। क्रोधी। (२) कौशिक के एक पुत्र का नाम जो मां मुनि के शिष्य थे।
(३) अयुक्त के पुत्र और देवतादि के पिता का नाम। (४) क्रोध नामक संवत्सर।

क्रोध भवन—संज्ञा पुं० [सं०] कोप भवन।
क्रोधवन्त—वि० [हिं० क्रोध + वन्त = वान्त] क्रुपित। गुस्से में आ हुआ। उ०—मादव्य धर्मराज वै छाये। क्रोधवन्त यह वचन सुनाये।—सूर।

क्रोधवश—किं० वि० [सं०] क्रोधवशात्। क्रोध में। जैसे—उसने क्रोधवश ऐसा कहा।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राज्य का नाम। (२) काद्रवेष नामक सर्पों में से एक।

क्रोधवशा—संज्ञा धी० [सं०] दूष प्रजापति की एक कन्या और कश्यप प्रजापति की छाट पत्नियों में से एक।

क्रोधित—वि० [हिं० क्रोध] क्रुपित। क्रुद्ध। क्रोधयुक्त।
क्रोधी—वि० [सं०] [धी० क्रोधिनी] क्रोध करनेवाला। गुस्सावर।
संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध नामक संवत्सर।
संज्ञा धी० [सं०] गांधार की दो धृतियों में से धर्मित धृति। (संगीत)।

क्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] कोस।
क्रोशनाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा आनन वाना जिसे दहक कहते हैं।

क्रोष्टशीर्षक, क्रोष्टुशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें घात के कारण घृत्नों में पीड़ा और सूजन होती है।

क्रौंच—संज्ञा पुं० [सं०] (१) करंजुक नामक पक्षी। (२) हिमालय के शीतल एक पर्वत का नाम, जो पुराणानुसार, मैनाक का पुत्र है। (३) पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक। विष्णु पुराण के अनुसार यह द्वीप दक्षिण में बड़े समुद्र से घिरा हुआ है और धृतिमान् नामक राजा यहाँ का अधिपति था, पर भागवत के अनुसार यह श्रीरत्नगर से घिरा हुआ है और विष्णुवत का पुत्र श्वेतशृङ्ग हंसका राजा था। हंस द्वीप के सात शत या वर्ष हैं और प्रत्येक वर्ष में एक नदी और एक पहाड़

है। (४) एक राज्य का नाम जो मय दानव का पुत्र था और जिसे क्रौंच द्वीप में स्कंद भगवान ने मारा था।

यो०—क्रौंचसूदन। क्रौंचदारण = काफिर।
(३) यहाँ की एक ध्वजा। (४) एक प्रकार का वस्त्र। उ०—
—अग्नि शस्त्र अरु पर्वताक्ष पुनि ल्यों पवनाक्ष प्रभाषी।
शिरभ्रक्ष क्रौंच धाम्द्रु पुनि लेहु लक्षण के साथी।—सुरारज।
(१) एक वर्षों वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में भगव, भगव्य, समाद्य, भगव्य, चार नामाद्य चौर शत में एक गुरु (आ ५५५ ५५ ५५ ५५ ५५ ५५ ५५) होता है। जैसे—पूर्व सुभीना वीणुन रात्रि वसति सुमतिर्युत जहं नर अश्वरी। अग्नि सनेहा और नथ विद्या लखि तिन कर मन हरपत अश्वरी। पूत जहाँ है मानत माता जनक महित नित अरचन करि कै। नारि सुरीला क्रौंच समाना पति वचननि सुन तिव तन धरि कै।

क्रौंचपदी—संज्ञा धी० [सं०] एक तीर्थ का नाम।
क्रौंचरथ—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत की एक घाटी का नाम। पुराणानुसार परशुराम ने क्रौंच पर्वत को एक तीर से छेद कर यह घाटी बनाई थी। ऐसा प्रसिद्ध है कि हंस इसी मार्ग से मानसरोवर जाते और यहाँ से आते हैं।

क्रौंचारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की रूढ़ रचना।
क्रौंची—संज्ञा धी० [सं०] कश्यप ऋषि की वाद्या नामक पत्नी से बलरु पांच कन्याओं में से एक। यह अदृक् पक्षियों की आदि माता थी।

क्रुच—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य, विज्ञान, राजनीति, आदि साधे-जनिक विषयों पर विचार करने चयना सामोदे प्रमोद के लिये संगठित की हुई कुट्ट लोगों की सभिति।

क्रुमथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्यावस। परिश्रम। मिहनत। (२) अधिक्त परिश्रम या शालस्य के कारण शरीर की थकावट या शिथिलता।

क्रुर्क—संज्ञा पुं० [सं०] किमी कार्यालय का यह कर्मचारी जो पत्र व्यवहार करने, नकल करने तथा हिसाब आदि रखने का काम करता हो। सुंशी। लेखिया। मुहरिर।

क्रुत—वि० [सं०] थका हुआ। श्रुति।
क्रुति—संज्ञा धी० [सं०] (१) परिश्रम। (२) थकावट।
क्रुतन—संज्ञा पुं० [सं०] सरसक आदि का मसजरा।
क्रुका—संज्ञा धी० [सं०] बड़ी पक्षी जो लकड़ी आदि के बीजों में जड़ी होती है। यह प्रायः लंगर के सहारे चलती और बड़े आदि बजाती है। परमपक्षी।

क्रुरनेट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शैरगुली बाजा जो सुँह से बजाया जाता है। यह सहनताई के थाकर और प्रकार का पर उससे कुछ अधिक लंबा होता है।

क्रुरेट—संज्ञा धी० [सं०] एक प्रकार की विलायती शराब।
क्रुरास—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ा। श्रेणी। दरजा। जमाअत।

हिप-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कमानी जो चिट्टियों, कागज़ों आदि को एकत्र करने उनमें इसलिये लगा दी जाती है कि जिसमें वे हथर उधर न हो जाय। यह सादी, पंजे के आकार की तथा और कई तरह की होती है। पंजा। बुटकी।

हिपवर्म-संज्ञा पुं० [सं०] हिपवर्म नामक अरिष का रोग।

हिपित-वि० [सं०] जिसे बहुत होना हुआ हो।

हिप-वि० [सं०] (१) झंशयुक्त। हिपित। दुग्धी। दुग्ध से पीड़ित। (२) (वेमेज) यात। पर्वार विरुद्ध (वाक्य)। (३) कठिन। सुराकिल। जैसे, हिप मापा। हिप शब्द। (४) जो कठिनता से सिद्ध हो। लोच तान का। जैसे, हिप कल्पना।

हिपवर्म-संज्ञा पुं० [सं०] शीत का एक रोग जिसमें पलक में लाली और पीड़ा होती है। इस रोग में प्रायः अरिषचिकित्सा कराने की आवश्यकता हुआ करती है।

हिपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिप का भाव। (२) दे० "हिपत्व"।

हिपत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिप का भाव। कठिनता। हिपता। (२) अलंकार यात्र के अनुसार काव्य का यह दोष जिसके कारण उसका भाव समझने में कठिनता हो। जैसे, ग्रहपति सुत हित-अनुचर को सुत जारत रहत हमसे।—सूर। यहाँ कवि ने हाथे यह न कह कर कि "काम सदा जलाया करता है" कहा है—ग्रहपति सूर्य के पुत्र सुमीय, उनके हित (मित्र) रामचंद्र, उनके अनुचर हनुमान, और उनका पुत्र मकरध्वज (काम) सदा जलाया करता है।

विद्योप—यदि काव्य में किसी एक पद का अर्थ लगाने के लिये पहले या पीछे के दो तीन पदों तक जाना पड़े, अथवा उनके साथ उसका अन्वय करना पड़े तो यह भी "हिपत्व" दोष माना जाता है।

हिप्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पतंजलि के अनुसार वे चित्तवृत्तियाँ जिनसे आत्मा को कष्ट पहुँचा हो।

होत-संज्ञा पुं० [सं०] सुधुस के अनुसार कीड़ों की एक जाति जिसकी अल्पित मूल मूत्र और सड़ी लाश आदि से होती है और जिनके काटने से पित्त कुपित होता है।

होतकिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पेड़।

होय-वि० पुं० [सं०] (१) पंड। नपुंसक। नामर्द। (२) बर-पोक। कायर। कमहिम्मत।

होयता-संज्ञा स्त्री० [सं०] होय का भाव। दे० "नपुंसकता"।

होयत्व-संज्ञा पुं० [सं०] नपुंसकता। हिजड़ापन। नामर्दी।

होद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शोदायन। गीलापन। चार्दता। (२) पसीना।

होदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पसीना लानेवाला। शरीर में एक प्रकार का कफ जिससे पसीना उत्पन्न होता है। होदन। (२) शरीर में दस प्रकार की धमि में से एक।

होदन-संज्ञा पुं० (१) शरीर में पाँच प्रकार की श्लेष्माओं में से एक। यह श्यामाशय में उत्पन्न होती, वहाँ रहती और भोजन पचाती है। शेष चारों श्लेष्माएँ भी इसी की सहायता से काम करती हैं। (२) पसीना लाने का कार्य।

होदु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्र। (२) सन्निपात।

होश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुग्ध। कष्ट। मय्या। वेदना।

क्रि० प्र०—उग्रता।—देना।—पाना।—सहना।—भोगना।
विद्योप—योग शास्त्रानुसार होश के पाँच भेद हैं—अविद्या, अस्मितता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। बौद्ध शास्त्रानुसार होश दस हैं—ज्येष्ठा, द्वेष, मोह, मान, इष्टि, विचिकित्सा, स्थिति, उद्वेग, अहीक और अतुषाण।

†-(२) समझा। लड़ाई। टंटा। जैसे—दिन रात होश करना अच्छा नहीं।

क्रि० प्र०—सञ्चाना।—करना।—रखना।

होसित-वि० [सं०] जिसे होश हो। दुःखित। पीड़ित।

होव्य-संज्ञा पुं० [सं०] होवता। नपुंसकता। हिजड़ापन।

वि० दे० "नपुंसकता"।

होम-संज्ञा पुं० [सं०] दाहिनी ओर का फेफड़ा। फुफ्फुस।

होरोफाम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध तरल श्लेष्मि जिसमें एक विविध मीठी गंध होती है। इसका मुख्य उपयोग ऐसे रोगियों को अचेत करने के लिये होता है, जिनके शरीर पर भारी अन्नचिकित्सा या इसी प्रकार की शरीर को बहुत अधिक वेदना पहुँचानेवाली कोई और चिकित्सा की जाती है। इसे सूँघते ही पहले कुछ हलका सा नशा होता है और थोड़ी देर में मनुष्य चिलकृत अचेत हो जाता है और गान्धी निद्रा में सोया हुआ मालूम होता है। यदि मात्रा अधिक हो जाय तो मनुष्य मर भी सकता है। यह देखने में स्वच्छ जब की तरह और भारी होता है और यदि कुछ धोड़ा दिया जाय तो शीघ्र बढ़ जाता है। इसका स्वाद बहुत मीठा और भला मालूम होता है। खुले स्थान या प्रकार में रखने से इसमें विकार उत्पन्न हो जाता है।

मुहा०—होरोफाम देना = होरोफाम सूँघना।

कचित्-क्रि० वि० [सं०] कोई ही। शायद ही कोई। बहुत कम।
कण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धीणा का शब्द। (२) घुँघरू का शब्द।

कथिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वीरक में एक प्रकार का रसा जो धी में भूरी हुई हृदयी की दूध में पकाने से बनता है। यह बहुत पाचक होता है। (२) एक प्रकार का भासव जो शहद से बनता है।

कार्वाचर—संज्ञा पुं० [सं० कुचर] गरियार बैल । यह बैल जो काम करते करते बैठ जाय ।

वि० दुर्बल । कमजोर ।

कार्टाइन—संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ झुग या दूसरी छूत-वाली धीमारी के दिनों में खेल या जहाज के यात्री कुछ दिनों के लिये सरकार की थोर से रोक कर रखे जाते हैं ।

कार्वा—संज्ञा पुं० दे० “कुमार” ।

कार्वा—वि० दे० “कारा” ।

कारापन—संज्ञा पुं० दे० “कारापन” ।

काड—संज्ञा पुं० दे० “काट्टे” ।

काट्टे—संज्ञा पुं० [अ०] छापे में सीसे का टला हुआ चौकोर टुकड़ा जो कंपोज करने में खाली लाइन आदि भरने के काम में आता है । यह स्पेस से बड़ा और कोटेशन से छोटा होता है । इसकी चौड़ाई टाइप के बराबर और लंबाई १ एन्, से ४ एम् तक होती है । काड ।

काथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी में डबाल कर श्रोपधियों का निकाला हुआ गाढ़ा रस । कादा । जोर्यादा ।

विशेष—जिस श्रोपधि का काथ बनाना हो, उसे एक पल लेकर सोलह पल पानी में भिगोकर मिट्टी के बरतन में आग पर चढ़ा देते हैं और जब उसका आठवाँ शंश बाकी रह जाता है तब उतार लेते हैं । यदि श्रोपधि अधिक और तैल में एक कुड़ब तक हो तो उसमें आठगुना जल और यदि एक कुड़ब से अधिक हो तो उसमें चौगुना जल देना चाहिये और कम से, आधा और तीन चौथाई बच रहने पर उतार लेना चाहिये ।

(२) ग्यसन । (३) बहुत अधिक दुःख ।

काथोद्भय—संज्ञा पुं० [सं०] रसैत ।

कारछल—संज्ञा पुं० [सं०] उभार, हिं० क्वारा + छल] कारापन ।

मुहा०—कारछल उतारना = प्रथम समागम करना ।

कारपत—संज्ञा पुं० दे० “कारछल” या “कारपन” ।

कारपन—संज्ञा पुं० [हिं० कारा + पन (प्रत्य०)] कारापन । कुमारपन । कारा का भाव ।

मुहा०—कारपन उतारना = विवाह होना । कारपन उतारना = प्रथम समागम करना । अक्षरार्थ सेना ।

कारा—संज्ञा पुं०, वि० [सं० कुगर] [स्त्री० क्वारी] जिसका विवाह न हुआ हो । कुआरा । वित्त व्याह ।

कारापन—संज्ञा पुं० दे० “कारपन” ।

कार्टेमास्टर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) एक फौजी अफसर जिसका पद लेफ्टनेंट के बराबर समझा जाता है और जिसका काम सैनिकों के लिये स्थान, भोजन और बख आदि आवश्यक सामग्रियों का प्रबंध करना है । (२) जहाज का एक अफसर जो रानी कर्की, लाबोटेन या अन्य संकेत दिखाता कर मछलियों को जहाज चलाने में सहायता देता और उन्हें समुद्र की गहराई और दिशा आदि बतलाता है । कोर्टमास्टर ।

कासि—वाक्य [सं०] तू कहाँ है ? तू किस स्थान पर है ? उ०—
चलौ किन मानिनि कुंज झुटीर तुव बिन कुँपर कोटि
बनिता तज सहत मदन की पीर । गह्वर भुर पुलकित विरहानल
ध्रुवत विलोचन नीर । कासि कासि घुंगमानुमंदिनी
पिलखत विपिन शशीर ।—सूर ।

किनाइन—संज्ञा पुं० [अ०] कुनैन ।

किन्ड—संज्ञा पुं० [अ०] कुछ विशिष्ट पक्षियों के देवों का पर जो लिखने के लिये कलम बनाने के काम आता है ।

कीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] महारानी । राजमहिषी । मलका ।

कौलारी—संज्ञा स्त्री० दे० “कोरलारी” ।

क्षंतदय—वि० [सं०] क्षमा करने के योग्य । क्षम्य ।

क्षंता—वि० [सं०] क्षमाशील । क्षमा करनेवाला ।

क्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० नायिक] (१) काल या समय का एक बहुत छोटा भाग ।

मुहा०—क्षण मात्र = थोड़ा देर ।

विशेष—क्षण की मात्रा के विषय में बहुत मत भेद है । महा-भाष्यकार परंजल के मत से काल का वह छोटा भाग, जिसके टुकड़े या विभाग न हो सकें, क्षण है । उनके मतानुसार क्षण का काल के साथ बड़ी संबंध है जो परमाणु का द्रव्य के साथ है । किसी के मत से पल या निमेष का चतुर्थांश, और किसी के मत से दो दंड या मुहूर्त एक क्षण के बराबर है । धम्म के अनुसार तीस कला या मुहूर्त के बारहवाँ भाग का एक क्षण होता है । पर स्याय के मत से महाकाल नियत द्रव्य है और उसके भाग या शंश नहीं हो सकते, इसलिये क्षण कोई अलग पदार्थ नहीं है ।

(२) काल । (३) अवसर । मौका । (४) समय । वक्त । (५) उत्सव ।

क्षय्यद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल । (२) ज्योतिषी । (३) वह जिसे रात को दिखाई न पड़ता हो ।

क्षयदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि । रात । (२) हल्दी ।

क्षयदाकर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

क्षयद्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत् । बिजली ।

क्षणप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली । विद्युत् ।

क्षणमंग—संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध सिद्धांत जिसमें वस्तुओं की स्थिति एक क्षण की मानी गई है । इसे क्षणिकवाद भी कहते हैं ।

विशेष—दे० “क्षणिकवाद” ।

वि० [सं० क्षणमंगुर] क्षण भर में नाश होनेवाला । अनित्य । नाशवान् । उ०—समर मरथ्य पुति सुरसर तीर । राम काज क्षणमंगु शरीर ।—तुलसी ।

क्षणमंगुर—वि० [सं०] क्षीण नष्ट होनेवाला । क्षण भर में नाश होनेवाला । अनित्य । उ०—सुख संपति द्वारा सुत ह्य गय

हूँ लखे समुदाय । अणभंगुर ए सत्रं यथाम भितु श्रुत नाहिँ
सैग जाय ।—धूर ।

शब्दिक-वि० [सं०] एक अण रहनेवाला । अणभंगुर । अन्वित्य ।
संज्ञा पुं० [सं०] शब्दिकवाद्य ।

शब्दिकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शब्दिक का भाव । अणभंगुरता ।

शब्दिकचाद-संज्ञा पुं० [सं०] सौदाँ का एक सिद्धांत जिसमें
प्रत्येक वस्तु को उसकी उत्पत्ति से दूसरे अण में नष्ट हो जाने-
वाला मानते हैं । इस मत के अनुसार प्रत्येक वस्तु में प्रति
अण कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है और उसकी अवस्था
या स्थिति बदल जाती है । इस सिद्धांत में सब पदार्थों को
अन्वित्य मानते हैं । इसे शब्दिक या अणभंगम भी कहते हैं ।

शब्दिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] विजली । विद्युत् ।

शब्दिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात ।

शब्द-वि० [सं०] जिसे अति या आघात पहुँचा हो । जो किसी
प्रकार दूटा दूटा या चीरा फाड़ा हो ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) घाय । कृषम । (२) अण्य । फोड़ा ।
(३) एक प्रकार का फोड़ा जो गिरे, दौड़ने या किसी प्रकार
का मूँ कर्म करने से हृदय में हो जाता है । इसमें शरीर को
उपर आता है और हाँसे से सुँह से रक्त निकलता है ।
(४) मारना । काटना । (५) अति या आघात पहुँचाना ।

शब्दज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] कुकराँचा ।

शब्दज्ञी-संज्ञा स्त्री० [सं०] साल । लाह ।

शब्दज-वि० [सं०] (१) अत से उत्पन्न—जैसे अतज शोष, अतज
विद्रधि । (२) साल । सुँह । उ०—अतज नयन उर वाहु
विशाला । हिमगिरि निभ तनु कधु इक लाला !—तुलसी ।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्त । रधिर । रून । (२)
मवाद । पीय । (३) एक प्रकार की खाँसी जो अत रोग में
होती है । इसमें खखार के साथ रधिर निकलता है और
शरीर के जोड़ों में पीड़ा होती है । (४) सात प्रकार की प्यास
में से एक जो शरीर में शर्बों का पाव लगाने या पशुत
अधिक रक्त निकल जाने के कारण लगती है । यह प्यास
शरीर पर गीला कपड़ा लपेटने से बुझती है ।

शब्दयेनि-वि० [सं०] जिस ची का पुरुष के साथ समागम हो
सुका हो ।

संत विश्रुत-वि० [सं०] (१) जिसे बहुत चोटें लगी हों ।
घायल । लहलुहान । (२) जिसे बहुत आघात पहुँचा हो ।
जो बहुत नष्ट अष्ट किया गया हो ।

शब्दमण्य-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में छः प्रकार के फोड़ों में से
एक । किसी स्थान के कटने या उखरने चोट लगने के बाद,
उस स्थान के पक जाने को शब्दमण्य कहते हैं ।

शब्दमत्त-संज्ञा पुं० [सं०] अयकीर्ण मत्त ।

शब्दहृ-संज्ञा पुं० [सं०] अणुर का पेड़ ।

शस्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जिसका विवाह से पहले ही
किसी पुरुष से द्यूत संबंध हो चुका हो ।

शस्तादीच-संज्ञा पुं० [सं०] वह शरीर जो किसी मनुष्य को घायल
या जखमी होने के कारण लगता है । इस शरीर में मनुष्य
किसी प्रकार का श्रोत या स्पर्श कार्य नहीं कर सकता ।

शस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] हानि । नुकसान । अण्य । नाश ।

श्रि० प्र०—करना ।—पहुँचना ।—पहुँचाना ।—होना ।

शस्तादर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उदर रोग जिसमें अन्न
के साथ रेत, तिनका, लकड़ी, हड्डी या काँटा आदि पेट में
उतर जाते, अधिक जँभाई आने या कम भोजन करने के
कारण अति द्यूद जाती हैं और उनमें से जल रस कर गुदा
के मार्ग से निकलता है । इसे परिस्त्राणुदर भी कहते हैं ।

शस्त्रा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हारपाल । दरयान । (२) मड़ली । (३)
निर्वाण करनेवाला पुरुष । (४) दासीपुत्र । (५) वह वर्ष-
संकर जिसकी उत्पत्ति अत्रिया माता और शूद्र पिता से हो ।

शस्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बल । (२) राष्ट्र । (३) धन । (४)
शरीर । (५) जल । (६) तगर का पेड़ ।

[स्त्री०] नानाजी । अत्रिय ।

शस्त्रकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] अत्रियवित्त कर्म । यह कर्म जिसका
करना अत्रियों के लिये आवश्यक हो । जैसे, युद्ध से कमी न
हटना, यथासक्ति दान देना, शत्रुओं को दमन करना,
इत्यादि ।

शस्त्रधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] अत्रियों का धर्म । यथा, अश्वधन,
दान, यज्ञ, और प्रजापालन करना, विषय वासनाओं से दूर
रहना, आदि ।

शस्त्रधर्मो-वि० [सं०] (१) अत्रियों के धर्म को पालन करनेवाला ।
(२) धीर । योद्धा ।

शस्त्रधृति-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो सावन की
पूर्णिमा को किया जाता है ।

शस्त्रप-संज्ञा पुं० [सं० वा पु० का०] ईरान के प्राचीन मोंडलिक
राजाओं की उपाधि ।

विशेष—आगे चलकर भारत के शक तथा गुजरात के एक
प्राचीन संघ के राजाओं ने भी यह उपाधि धारण कर ली थी ।

शस्त्रपति-संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।

शस्त्रवंधु-संज्ञा पुं० [सं०] पतित, नाम मात्र का या कर्तव्य रहित
अत्रिय ।

शस्त्रयोग-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का योग ।

विशेष—दे० "राजयोग" ।

शस्त्रविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्रियों की विद्या । धनुर्विद्या ।

शस्त्रधृष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] मुचकुंद का पेड़ ।

शस्त्रधृष्ट, शस्त्रधृष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] शेरध्वं मनु के पुत्र का
नाम ।

क्षत्रवेद—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्वेद ।
क्षत्रसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ आदि जो केवल ऋषिय ही कर सकते हैं जैसे अश्वमेध ।

क्षत्रांतक—संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम ।

क्षत्रिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ ।

क्षत्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ऋषिया, जामानां] (१) हिंदुओं के चार वर्णों में से दूसरा वर्ण । इस वर्ण के लोगों का काम देश का शासन और शत्रुओं से उसकी रक्षा करना है । मनु के अनुसार इस वर्ण के लोगों का कर्त्तव्य वेदाध्ययन, प्रजा पालन, दान और यज्ञादि करना तथा विषय वासना से दूर रहना है । वशिष्ठ जी ने इस वर्ण के लोगों का मुख्य धर्म अध्ययन, शास्त्राभ्यास और प्रजा पालन यत्नवाया है । वेद में इस वर्ण के लोगों की सृष्टि प्रजापति की यादु से कही गई है । वेद में जिन ऋषिय वर्णों के नाम हैं वे पुराणों में दिए हुए अथवा वर्त्तमान नामों से विबलकुल भिन्न हैं । पुराणों में ऋषियों के चंद्र और सूर्य केवल दो ही वर्णों के नाम द्याए हैं* । पीछे से इस वर्ण में अग्नि तथा और कई वर्णों की सृष्टि हुई और शक आदि विदेशी लोग आकर मिल गए । आज कल इस वर्ण के बहुत से अर्थांतर भेद हो गए हैं । इस वर्ण के लोग प्रायः ठाकुर कहलाते हैं । (२) इस वर्ण का पुरुष । (३) राजा । (४) बल । शक्ति ।

क्षत्री—संज्ञा पुं० वे० “ऋषिय” ।

क्षदन—संज्ञा पुं० [सं०] दांत ।

क्षपणक—वि० [सं०] निर्लज्ज ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) नंगा रहनेवाला जैन यती । दिगंबर यती । (२) बौद्ध संन्यासी या भिक्षु । (३) एक कवि जो विक्रमादित्य के नौ शकों में से एक माना जाता है । इसने अनेकार्थव्यनिर्मंजरी नामक एक केश्य धनाया या और ब्यादि सूत्र पर एक वृत्ति लिखी थी ।

क्षपांत—संज्ञा पुं० [सं०] प्रमात । मोर ।

क्षपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात ।

यौ०—छपाकर । छपाचर ।

विशेष—“छपा” शब्द के अंत में पति या नाथ वाची शब्द जोड़ने से चंद्रमा वाची शब्द बनता है । जैसे छपाधिप, छपेश, छपाकर, आदि ।

(२) छद्मी ।

क्षपाक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।

क्षपाकर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जपाचर] निश्चर । राजस ।

क्षपाट—संज्ञा पुं० [सं०] राजस ।

क्षपानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । उ०—महामीशु दासी सदा पाई धोवे । प्रतीहार है के कृपा शूर सोवे । छपानाथ लीये रहे छत्र जाके । करौता कहा शत्रु सुधीव ताके ।—केवल । (२) कपूर ।

क्षपापति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।

क्षम—वि० [सं०] शक्त । योग्य । समर्थ । व्ययुक्त ।

विशेष—हिंदी में यह शब्द केवल समस्त पद या पौर्णिक शब्द के अंत में आता है, जैसे, अक्षम, सज्जम, कार्येत्तम, आदि ।

संज्ञा पुं० [सं०] शक्ति । बल ।

क्षमणीय—वि० [सं०] क्षमा करने योग्य । माफ करने लायक ।

क्षमता—संज्ञा पुं० [सं०] योग्यता । सामर्थ्य । शक्ति ।

क्षमाना—क्रि० सं० [हिं० क्षमा] क्षमा करना । माफ करना ।

उ०—(क) हम अपराध देखीं मरेगे लिख्यो न मेव्यो जाई ।

मैं अपराध किया शिष्ट मारे कर जेरे विललाई ।—सूर ।

(ख) क्षमिदहिं सज्जन मोरि डिडाई । सुनिईं याल बचन मन लाई ।—गुलसी ।

क्षमनीय—वि० [सं०] क्षमणीय । क्षमा करने योग्य ।

वि० [सं०] क्षम । बलवान । शक्तिराज । उ०—अंतरिक्ष गच्छनीनि यच्छुन सुलच्छनीनि अर्च्छी अर्च्छी अर्च्छनीनि क्षुवि क्षमनीय है ।—केशव ।

क्षमवाना—क्रि० सं० [हिं० क्षमना] क्षमना का प्रेरणार्थक रूप । क्षमा कराना । माफ कराना । उ०—भदुरि विधि जाय क्षमाघाय के रूढ़ को विष्णु विधि रूढ़ तहैं हुरत धारै ।—सूर ।

क्षमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चित्त की एक प्रकार की वृत्ति जिससे मनुष्य दूसरे द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट को चुपचाप सह लेता है और उसके प्रतिकार या दंड की इच्छा नहीं करता । यह वृत्ति तितित्पा के अंतर्गत मानी गई है । शांति । (२) सहिष्णुता । सहनशीलता । (३) तैर का पेड़ । (४) पृथिवी । (५) एक की संख्या । (६) वेणवती या यतवा नदी का एक नाम । (७) दूध की एक कच्चा का नाम । (८) दुर्गा का एक नाम । (९) महावैवत् के अनुसार राधिका की एक स्त्री का नाम । (१०) तेरह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति का नाम जिसमें क्रम से दो नगण्य, एक जगण्य, एक सगण्य और अंत में एक शुभ (न न ज त गु) होता है और सातवें और छठे वर्ण पर यति होती है । जैसे—न निज तिगम सुभाव छुड़ि खला । यद्यपि नित उठ पाव ताके फला । तिमि न सुजन समाज धारै तमा । जग जिनकर सुसाज नीती छुमा । (११) चंद्रबोखर के अनुसार आर्यावर्द्ध का एक भेद जिसमें २२ गुरु और १३ लघु होते हैं ।

क्षमाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० क्षमा + ई] क्षमा करने की क्रिया ।

उ०—केवल चरण गिरयो उत धाई । करहु नाथ अपराध छुमाई ।—रघुराज ।

क्षमादंड—संज्ञा पुं० [सं०] सहजन का पेड़ ।

क्षमाना—क्रि० सं० [हिं० क्षमना] क्षमना का प्रेरणार्थक रूप । क्षमा कराना । माफ कराना । उ०—संत जाय सिंगरे सिंरा नाये । निज अपराध अगाय क्षमाये ।—रघुराज ।

८ कि० सं० [हि० चामा] क्षमा करना । माफ़ करना । उ०—
तय हरि जनके दोष क्षमाये ।—सूर ।

क्षमापन^१—संज्ञा पु० [हि० चामा + पन] (१) क्षमा करने का काम । माफ़ी । (२) माफ़ कराने का काम । उ०—(क) इस नगर-के परिवाग कर दूसरी ओर इससे उत्तम रीति से काबजपान करे और परमेस्वर से स्वापराध क्षमापन के लिये प्रयत्न करे ।—हरिश्चंद्र । (३) सकल जाप ताके पद परहू । निज अपराध क्षमापन करहू ।—रघुराज ।

क्षमापुत्र—वि० [सं०] क्षमालाल । क्षमावान् ।
क्षमापना^२—क्रि० सं० [हि० क्षमा का प्रे०] क्षमा कराना । माफ़ कराना । उ०—(क) परी पाँड़ अपराध क्षमावत सुगत मिलेगी धाय । सुगत यवन दुष्टिका बदन ते स्वाम चले अकुलाय ।—सूर । (ख) कछौ कौन कीन्हौ अपराधा । काह क्षमावहु केहि की याधा ।—रघुराज ।

क्षमावान्—वि० पुं० [सं० क्षमावत्] [स्त्री० क्षमावती] (१) क्षमा करनेवाला । माफ़ करनेवाला । (२) सहनशील । सहिष्णु । गमलोर ।

क्षमाशील—वि० [सं०] (१) माफ़ करनेवाला । क्षमावान् । (२) शांतप्रकृति ।

क्षमाष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्दश ताल का एक भेद । (संगीत) ।
क्षमित्य—वि० [सं०] क्षमा करने योग्य । जो क्षमा किया जा सके ।
क्षमी—वि० [सं० क्षमा + ई० (अथ०)] (१) क्षमाशील । क्षमावान् । माफ़ करनेवाला । उ०—सुर हरि अरि असुर हरि दोही । सुर अति क्षमी असुर अति कोही ।—सूर । (२) शांतप्रकृति ।
वि० [क्षम = समर्थ] समर्थ । सराफ़ । उ०—भदन बदन सेत लाज को सदन देति, यदपि जगत जीव मोहिये को है क्षमी ।—केशव ।

क्षम्य—वि० [सं०] माफ़ करने योग्य । जो क्षमा किया जाय ।

क्षयकर—वि० [सं०] नाराक । नारा करनेवाला । क्षयकारी ।

क्षय—संज्ञा पुं० [सं०] [भ्र० क्षयि] (१) धीरे धीरे घटना । हास । धयपय । (२) प्रलय । कल्पति । (३) नारा । (४) घर । मकान । (५) निवास-स्थान । रहने की जगह । (६) यामा नामक रोग । क्षयी । (७) रोग । क्षीमारी । (८) अंत । समाप्ति । (९) नीति शास्त्र के अनुसार राजा के धर्म, वस्ती, दुर्ग, सेतु, हस्त्रिबंधन, खाव, कर्मप्रहय और सेना के समूह (ग्रहवर्ग) का हास या नाश । (१०) साठ संवत्सरो में से अंतिम संवत्सर का नाम । यह वर्ष बहुत भयानक और उपद्रवकारी होता है । (११) ज्योतिष में एक प्रकार का मास जो शुद्ध पक्ष की प्रतिपदा से आरंभ हो कर अमावस्या तक रहता है । इस मास में दो संक्रांति होती हैं और इससे तीन मास पहले और तीन मास पीछे एक एक अधिमास पड़ता है । क्रांतिक, अग्रहन और पूस के

अतिरिक्त और कोई महीना क्षयमास नहीं हो सकता । सिद्धांत शिरोमणि के अनुसार यह मास प्रायः १४१ वर्ष के अंतर पर पड़ता है । इस मास में किसी प्रकार का मंगल-कार्य करना निषिद्ध है । कोई कोई इसे अहस्पति भी कहते हैं ।

क्षयकास—संज्ञा पुं० [सं०] चर्चो रोग में होनेवाली खाँसी ।

क्षयतप—संज्ञा पुं० [सं०] ख्याली का वृत्त । बेलिया । पीपल ।

क्षयधु—संज्ञा पुं० [सं०] खाँसी । कास ।

क्षयनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती या ढोड़ी का वृक्ष ।

क्षयपञ्च—संज्ञा पुं० [सं०] छन्द पञ्च । अंधेरा पञ्च ।

क्षयवान्—वि० [सं० क्षयवत्] [स्त्री० क्षयवती] नाराशान् । नष्ट होनेवाला ।

क्षयिस्व—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय का भाव ।

क्षयिष्णु—वि० [सं०] क्षय होनेवाला । नष्ट होनेवाला ।

क्षयी—वि० [सं०] (१) क्षय होनेवाला । नष्ट होनेवाला । (२) क्षय-

रोग-ग्रस्त । जिसे क्षय या यामा रोग हो ।

संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा । (पुराणानुसार दश के शाप से चंद्रमा को क्षय रोग हो गया था, इसीसे उसे क्षयी कहते हैं ।)

संज्ञा स्त्री० [सं० क्षय] एक प्रसिद्ध रोग जिसमें रोगी का फेफड़ा सूझ जाता और सारा शरीर धीरे धीरे खाल जाता है ।

इसमें रोगी का शरीर गरम रहता है, उसे खाँसी आती है और उसके मुँह से बहुत बदबूदार कफ निकलता है जिसमें रक्त का भी कुछ श्रेय रहता है । धीरे धीरे इस रक्त की मात्रा बढ़ने लगती है और रोगी कभी कभी रक्त-वमन भी करता है ।

अश्वेद के एक यूक का नाम यक्ष्माइ है जिससे जाना जाता है कि वैदिक काल में इसका रोगी मंत्रों से इलाज जाता था ।

परक ने इस रोग का कारण वेगवेगरे, धातुचय, दुःसाहस और विषमभय आदि बतलाया है । और सुश्रुत के मत से इन कारणों के अतिरिक्त बहुत अधिक या बहुत कम भोजन करने से भी इस रोग की उत्पत्ति होती है । वैद्यलोग इसे महापातकों का फल समझते हैं और ऐसे रोगी को चिकित्सा करने के पहले उससे प्रायश्चित्त करा लेते हैं । मनु जी ने इसे पुरुष-पुनर्जन्म बतलाया है और ऐसे रोगी के विवाह आदि संबंध का निषेध किया है । डाकूरी मत से इस रोग की तीन अवस्थाएँ होती हैं । आरंभिक अवस्था में रोगी को सूखी खाँसी आती है, पकावट मालूम होती है, नाड़ी तेज़ चलती है और कभी कभी मुँह से कफ के साथ रक्त भी निकलता है । मध्यम अवस्था में खाँसी बढ़ जाती है, रात को ज्वर रहता है, अधिक पसीना होता है, शरीर में यत्न नहीं रह जाता, छाती और पसलियों में पीड़ा होती है, मुँह से कफ की पीली गठि निकलती हैं, धीरे धीरे धारण लगता है । इस अवस्था के आरंभ में यदि चिकित्सा का ठीक प्रबंध हो जाय तो रोगी

बच सकता है। अंतिम अवस्था में रोगी का शरीर विलकुल क्षीण हो जाता है और मुँह से अधिक रक्त निकलने लगता है। उस समय यह रोग विलकुल असाम्य हो जाता है। यदि अधिक प्रयत्न किया जाय तो रोगी कुछ काल तक जी सकता है। यक्ष्मा। राजपत्रा। चय। तपेदिक।

क्षय-वि० [सं०] चय होने के योग्य। जिसका चय हो सके।

क्षर-वि० [सं०] नाशवान्। नारा होनेवाला। चल।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। (२) मेघ। (३) जीवात्मा। (४) शरीर। (५) ध्यान। (६) कार्य कारण रूप, वस्तु या द्रव्य जिनका चय चय अवस्थांतर हुआ करता है।

क्षर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रस रस के चय। घाय होना। रसना। (२) झड़ना। (३) विकार प्राप्त होना। नाश वा चय होना। (४) छटना।

क्षरपत्रा-संज्ञा स्त्री० दे० "क्षरपत्रा"।

क्षरी-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाकाल। बरसात।

क्षयक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपामार्ग। लटजीरा। (२) राई। (३) लार्ही।

क्षयकृत-संज्ञा पुं० [सं०] नकल्लि कनी नामक पौधा।

क्षयधु-संज्ञा पुं० [सं०] नाक के ३१ प्रकार के रोगों में से एक प्रकार का रोग जिसमें धुँके बहुत अधिक आती हैं। सुधुस के अनुसार अधिक तीव्र और धरपरे पदार्थ सूँघने, सूखे की शोर देखने और नाक में अधिक बत्ती आदि हूँसे तो उसके भीतर का समस्थान दूषित हो जाता है और अधिक धुँके आने लगती हैं। इसी को क्षयधु कहते हैं।

क्षयपत्रा, क्षयपत्रो-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षोणुपुत्री। गुमा।

विशेष-क्षोणुपुत्री की पत्ती सूँघने से धुँक आती है, इसी-लिये उसे क्षयपत्रा कहते हैं। कोई कोई इसे "क्षरपत्रा" भी कहते हैं।

क्षयिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बनभंटा जो देखने में भटकटैया से मिलता जुलता होता है। इसके पत्ते बैंगन के पत्ते से मिलते हैं और फल भटकटैया के समान पर उससे कुछ ही बड़े और चितकत्रे होते हैं। यह खाने में कहुआ, धारपा और गरम होता है और भटकटैया के समान शोषधियों में काम आता है। कटाई। बरहटा।

पत्र्या-सर्पतनु। पीतलहुला। पुत्रप्रदा। महुफला। गोधिनी।
क्षार-वि० [सं०] [स्त्री० नाति] (१) समशील। सम करने-वाला। (२) सहनशील। सहिष्णु।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक क्षपि का नाम। (२) उन सात ध्याओं में से एक जिन्हें अपने गुरु गार्ग मुनि की गौएँ मार डालने के कारण शाप मिला था।

क्षारि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहिष्णुता। सहनशीलता। (२) क्षमा।

क्षार-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

क्षार-वि० [सं०] क्षयिप संकीर्ण। क्षयिओं का। जैसे-क्षय पर्व। क्षारयुष, क्षारि।

संज्ञा पुं० [सं०] क्षयिपत्न। क्षयि पत्न।

क्षार-वि० [सं०] [स्त्री० नात्मा] (१) क्षीण। क्षय। दुबला पतला।

यौ०-क्षारोदरी = पत्नी कमरवाली (स्त्री)।

(२) दुबल। बलहीन। कमगोर। (३) अल्प। योधा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) क्षय। नाश।

क्षारय-वि० [सं०] समशील। क्षमा किए जाने योग्य।

क्षार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाहक, जाहक, विस्फोटक या क्षारी प्रकार की और धानस्पत्य शोषधियों को जलाकर या खनिज पदार्थों को पानी में घोब और रसायनिक क्रिया द्वारा साफ करके तैयार की हुई राख का नमक। यह खूला, साफ, चमकीला, मैल काटनेवाला और फवस या रवे के रूप में होता है। डाकूरी मत से चार उस पदार्थ को कहते हैं जो पानी में अच्छी तरह घुल सकता हो, भस्म या तेजाब की शक्ति नष्ट करके उसका नमक बना सकता हो और भिन्न भिन्न धानस्पत्य रंगों को पदल सकता हो। (२) चक्रदत्त के अनुसार एक प्रकार की शोषधि जो मोला नामक वृक्ष की पत्तियों के चार से बनती है। (३) नमक। (४) सज्जी। खार। (५) शोरा। (६) सुहागा। (७) भस्म। राख। (८) काँच। शीशा। (९) गुड़।

वि० [सं०] (१) क्षरणीय। (२) क्षार। (३) धूर्त।

क्षारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार। (२) सज्जी। (३) चिड़िया फँसाने का जाल। (४) मछली पकड़ने की खाँची या दौरी।

क्षारकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

क्षारगुड-संज्ञा पुं० [सं०] चक्रदत्त के अनुसार एक शोषधि का नाम। यह शोषधि पंचमूलादि के २१ चार फूँके भस्म को गुड के पानी में मिला कर पकाने से बनती है। इसकी मोलियाँ रुदाह के बराबर बनती और अजीर्ण, पांडु, छिदा, अर्शशोष कफादि रोगों में उपकारी होती हैं।

क्षार-संज्ञा पुं० [सं०] रसेधर क्षारों के अनुसार चारों का पंद्रहवाँ संस्कार।

क्षारत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी, शोरा और सुहागा इन तीन चारों का समूह।

क्षारदूषक-संज्ञा पुं० [सं०] दूध चारों का समूह। सहिजन, मूली, पलास, चूकाशाक वा तिनपतिषा, चित्रक, अमक, नीम, ईल, अपामार्ग, और केले के चारों का समूह।

क्षारद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] मोला नाम का वृक्ष।

क्षारपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] यधुषा नामक साग।

क्षारपत्रक-संज्ञा पु० [सं०] यधुधा नामक साग ।
 क्षारपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्ठी नामक साग ।
 क्षारपाक-संज्ञा पु० [सं०] मोला के पौधे से निकले हुए चार को
 कोरैया, पलाय, बहेड़ा, सोप, केला, चीता, कनेर आदि
 शोषार्थियों के साथ जल में पकाने से बना हुआ पाक जो
 खेदर खेदर अर्थात् पीड़ा कुंती पहाने के काम में आता है ।
 क्षारपाल-संज्ञा पु० [सं०] एक श्रपि का नाम ।
 क्षारमेह-संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का मेह रोग ।
 क्षारलघण्य-संज्ञा पु० [सं०] क्षारी नमक ।
 विदोष-वैद्यक में यह नमक पेशाब और दम लानेवाला माना
 गया है ।
 क्षारधर्म-संज्ञा पु० [सं०] समीसार, सोहागा और शोरा इन तीनों
 का समूह ।
 क्षारश्रेष्ठ-संज्ञा पु० [सं०] (१) वज्रघार । (२) पलाय । (३)
 मोला । सुष्ककण्डुप ।
 क्षारपटक-संज्ञा पु० [सं०] छः प्रकार के धारों का समूह । पय,
 अषामर्ग, कोरैया, सांगली, तिल और मोला जिनके भस्म
 से चार निकलता है ।
 क्षारगुग्ग-संज्ञा पु० [सं०] सुधुत के अनुसार एक शौषध जो
 पलाय, नीम, देवदार, पय, शबिला, भिलावर्ष, आम आदि
 कई लकड़ियों के भस्म को क्षारपाक की रीति से गोमूत्र में
 मिला कर पकाने से बनती है । यह शौषध शर्श, वातगुल्म,
 कान, शर्शर्श, संप्रहृषी आदि रोगों में दी जाती है ।
 क्षाराष्टक-संज्ञा पु० [सं०] आठ प्रकार के धारों का समूह ।
 विदोष-पलाय, हड़नोष्ठ, चिचड़ा, इनली, तिल, मदार, जौ
 तथा समीसार इस पाँच के अंतर्गत हैं ।
 क्षारित-वि० [सं०] (१) श्रपवाद्-प्रल । दूषित । (२) क्षावित ।
 भरा हुआ ।
 क्षारोद-संज्ञा पु० [सं०] खारा समुद्र । लवण समुद्र ।
 क्षिति-संज्ञा पु० [सं०] (१) पृथिवी । (२) वासस्थान । जगह ।
 (३) गोरोचन । (४) एक श्रपि का नाम । (५) पंचम स्वर
 की चार ध्रुतियों में से पहली ध्रुति । (६) चय । (७)
 प्रलयकाल ।
 क्षितिक्षाम-संज्ञा पु० [सं०] शैर का पेड़ ।
 क्षितिक्ष-संज्ञा पु० [सं०] (१) मंगल ग्रह । (२) नरकानुर ।
 (३) कंबुधा । (४) वृष । पेड़ । (५) समोल में यह तिल्यंग
 वृक्ष जिसकी दूरी आकाश के मध्य से ६० अंश हो । ऊँचे
 स्थान पर लड़े होकर देखने से चारों ओर दिखाई पड़ता हुआ
 यह वृक्षाकार स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी दोनों मिले जान
 पड़ते हैं ।
 क्षिद्र-संज्ञा पु० [सं०] (१) रोग । (२) सूक्ष्म । (३) मींग ।
 क्षिपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंकना । (२) रत ।

क्षित-वि० [सं०] (१) व्यक्त । (२) विकीर्ण । (३) श्रवणशत ।
 श्रपमानित । (४) पतित । (५) वात रोग प्रल ।
 क्षिप्र-क्रि० वि० [सं०] (१) शीघ्र । जल्दी । (२) तत्त्वण ।
 गुरत ।
 वि० [सं०] (१) तेज । जल्द । जैसे क्षिप्रजय, क्षिप्रहोम ।
 (२) बंचल ।
 संज्ञा पु० [सं०] (१) सुधुत के अनुसार शरीर के एक ही
 सात भस्म स्थानों में से एक जो शैगुटे और दूसरी उँगली के
 बीच में है । (२) एक सुहृत् का पंद्रहवाँ भाग ।
 क्षिप्रपाकी-संज्ञा पु० [सं०] गर्दभांड नाम का वृक्ष । पारस्य-पील ।
 क्षिप्रमूत्र-संज्ञा पु० [सं०] सुषुंदिप्य सैर्षधी एक प्रकार का रोग ।
 क्षिप्रद्येन-संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार की शिकारी चिड़िया ।
 क्षिप्रहस्त-वि० [सं०] शीघ्र या तेज काम करनेवाला ।
 संज्ञा पु० [सं०] (१) श्रति का एक नाम । (२) एक
 राक्षस का नाम ।
 क्षिप्रहोम-संज्ञा पु० [सं०] सूर्यकाल और प्रातःकाल का होम, जो
 संक्षिप्त और जल्दी होता है ।
 क्षीण-वि० [सं०] [भा० संज्ञा पौक्या और देव्य ।] (१) दुषला ।
 पतला । (२) सूक्ष्म । (३) क्षयशील । (४) घटा हुआ । जो
 कम हो गया हो । जैसे-क्षीणकोप, क्षीणवृत्ति ।
 क्षीणचंद्र-संज्ञा पु० [सं०] वह चंद्रमा जिसमें सात वा इससे कम
 कलाएँ हैं । शून्यपत्र की शब्दार्थ की शब्दार्थी तक
 का चंद्रमा "क्षीणचंद्र" कहलाता है ।
 क्षीणता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निर्मलता । कमजोरी । (२)
 दुषलापन । पतलापन । (३) सूक्ष्मता ।
 क्षीयमान-वि० [सं०] (१) निवृत्त घटने वा कम होनेवाला ।
 (२) नाशवान् ।
 क्षीर-संज्ञा पु० [सं०] (१) दूध । पय ।
 धौ०-क्षीरस्तार = महानन ।
 (२) द्रव वा तरल पदार्थ । (३) जल । पानी । (४) पेड़ों का
 रस वा दूध । निर्वास । (५) खीर । (६) सरल नामक
 वृक्ष का गोंद ।
 क्षीरकंद-संज्ञा पु० [सं०] क्षीरविदारी ।
 क्षीरकौडक-संज्ञा पु० [सं०] (१) घृहड़ । (२) मंदार ।
 क्षीरकाकोली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की काकोली जड़ी जो
 हलकी और पीप्ल्यवर्द्धक होती है और जिसके राने से क्षिपों
 का दूध बनता है । यह श्रष्टवर्ग के अंतर्गत है ।
 क्षीरपञ्चूर-संज्ञा पु० [सं०] विद्वान्मूत्र ।
 क्षीरघृत-संज्ञा पु० [सं०] यह मत्स्यन का दूध को मय के तिकाक
 गया है । सुधुत के अनुसार यह मजरोषक, मृच्छां हृ
 करनेवाला और भेयों को हितकारी होता है ।

क्षीरज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) शंख । (३) कमल ।
(४) दही ।

वि० [सं०] दूध से बल्पत्र या घना हुआ ।

क्षीरजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी ।

क्षीरतैल—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का
श्रौषधसिद्ध तैल ।

क्षीरदल—संज्ञा पुं० [सं०] मंदार । आक ।

क्षीरद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] अशक्य ।

क्षीरधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

क्षीरधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार की कल्पित
गौ जो घड़े आदि को स्थापित कर के बनाई और दान की
जाती है ।

क्षीरनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

क्षीरनीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आलिंगन । गले लगाना । (२)
मिल जाना । मिलन ।

क्षीरपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदार । आक ।

क्षीरपलांडु—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद प्याज ।

क्षीरपाक—वि० [सं०] दूध में पकाया हुआ ।

संज्ञा पुं० [सं०] यह श्रौषधि जो अशुने दूध और चौगुने
जल में छँटा कर तैयार की जाय । (वैद्यक)

क्षीरभृत—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार वह ग्वाला या चरवाहा
जो अपने वेतन-स्वरूप केवल दूध ही ले ।

क्षीरविद्यारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्यारी कंद से मिलती जुलती
एक प्रकार की जड़ी जिसमें से दूध निकलता है । यह शूल
और प्रमेह रोगों में उपकारी होती है ।

पर्याय—इच्छंगंधा । क्षीरवही । पयःकंद । पयोलता ।

क्षीरवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उर्दुब । गूलर । (२) महुआ ।
(३) अशक्य । (४) सिरनी ।

क्षीरव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] केवल दूध पीकर रहने का व्रत ।

क्षीरदाक—संज्ञा पुं० [सं०] कच्चा फटा हुआ दूध । वैद्यक में इसे
बहुत धलकारक माना है ।

क्षीरपट्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] दूध में पकाया हुआ साठी चावल
का भात जो ब्रह्मपत्र में बुध ग्रह को अर्पित किया जाता है ।

क्षीरसंतानिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का चिगाड़ा हुआ
दूध ।

क्षीरस—संज्ञा पुं० [सं०] दूध या दही पर की मलाई ।

क्षीरसागर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक,
जो दूध से भरा हुआ माना जाता है । नारायण इसी समुद्र
में शेषशय्या पर सोते हैं ।

क्षीरस्फटिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़िया स्फटिक ।

क्षीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशोली नाम की जड़ी ।

क्षीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पिंड खर । (२) चंशलोचन ।

क्षीरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्षीर काशोली । (२) सिरनी ।
(३) दुग्धी नाम की लता । (४) पराहमंता ।

क्षीरोद—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीर समुद्र ।

यौ०—क्षीरोद-तनया = लक्ष्मी ।

क्षुत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूख । हुआ । उ०—छूटे सबै सयनि के
सुख छत्र पिपासा । विद्वद्दिनेद गुणगीत विधानं यासा ।
—केशव ।

क्षुत—संज्ञा पुं० [सं०] झूँक ।

क्षुद्र—वि० [सं०] (१) क्रुप्य । कंजूस । (२) अधम । नीच ।
(३) अल्प । छोटा वा थोड़ा । (४) फूर । खोटा । (५)
वृद्धि । निर्धन ।

संज्ञा पुं० [सं०] चावल का कण ।

क्षुद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जो
वर्तमान पंजाब के श्रंतर्गत है । (२) छुद्र । (३) तोला
(परिमाण) ।

क्षुद्रघटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का प्राचीन
आभूषण जो कमर में पहना जाता था । इसमें छुँधरु वा
घंटिया लगी रहती थी जो चलने में बजती थीं । छुँधरुदार
करघनी । (२) छुँधरु ।

क्षुद्रचंदन—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन ।

क्षुद्रजंतु—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत छोटा और बिना हड्डी का जंतु या
कीड़ा मकोड़ा ।

क्षुद्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीचता । कमीनापन । (२)
शोचन्यपन ।

क्षुद्रतुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की बबई तुलसी ।

क्षुद्रधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] कंगनी, चेना, कोर्दा आदि कुधान्य ।
वैद्यक के अनुसार इस प्रकार के धान्य रूखे, कसैले, हलके
और वातकारक होते हैं ।

क्षुद्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर । उ०—रुद्रपति, बुद्रपति,
लोकपति, योक्षपति, धरनिपति, गगनपति, श्रगमयानी ।
—सूर ।

क्षुद्रपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमलोनी । नेनिया साग ।

क्षुद्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] बच ।

क्षुद्रप्रकृति—वि० [सं०] थोड़े या छोटे स्वभाववाला । नीच
प्रकृति का ।

क्षुद्रफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जामुन । (२) इंद्रायण ।

क्षुद्रबुद्धि—वि० [सं०] (१) दुष्ट या नीच बुद्धिवाला । (२) नासमक ।
रूखे ।

क्षुद्रम—संज्ञा पुं० [सं०] घातु आदि तौलने के लिये छः मासे की
एक लौह जिसे "क्षुद्राम" भी कहते हैं ।

क्षुद्रमुस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कसेरु ।

क्षुद्ररोग-संज्ञा पुं० [सं०] छोटे रोग, सुषुप्त के अनुसार जिनकी संख्या ४८ है और जिनमें फोड़ा, कुंसी, मुहाला, माई, कुनल आदि सम्मिलित हैं।

क्षुद्रश्वास-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का श्वस रोग जो सुषुप्त के अनुसार अधिक भोजन या कम परिश्रम करने और दिन को सोने से होता है।

क्षुद्रसुषुप्त-संज्ञा पुं० [सं०] पीतल।

क्षुद्रहा-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

क्षुद्रांजन-संज्ञा पुं० [सं०] सुषुप्त के अनुसार एक प्रकार का श्रम जो शोषे हुए शोके आदि से बनाया जाता है।

क्षुद्रांत्र-संज्ञा पुं० [सं०] हृदय के पास की एक छोटी नाड़ी।

क्षुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेरया। (२) चंगरी। अमलोनी। लोनी। (३) जटामाती। बालघुड़। (४) एक प्रकार की मनुष्यकी जिसे सरपा कहते हैं। (५) रावेयुक। कौशिकाला। कौशिला। (६) कंठकारी। (७) दिचकी।

क्षुद्रावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्रघंटिका। किंकिणी। उ०—श्रंग श्रंगप्रथम जननि उतारति। दुवरी प्रीय माल मोतिनि की केदुर ली भुज श्याम निहारति। क्षुद्रावली उतारति कटि ते संति धरति मनही मन धारति।—सूर।

क्षुद्राशय-वि० [सं०] नीच प्रकृति। कमीना। "महाशय" का उलटा।

क्षुद्रेशुदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जवासा।

क्षुधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि०] दुधित, गुणवृत्ति। भोजन करने की इच्छा।

क्षुधानुर-वि० [सं०] भूला।

क्षुधातु-वि० [सं०] जिसे सदैव भूख लगी रहती हो। भुखड़।

क्षुधावर्त-वि० [वि०] गुणा + वर्त (प्रत्य०) या सं० गुणावर्त का बहु० गुणवर्त। भूला। क्षुधा पीड़ित। उ०—क्षुधावर्त रजनीचर मेरे।—सुलसी।

क्षुधावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विशेष प्रकार की तैयार की हुई औषधि जिसके सेवन से भूख बढ़ती है।

क्षुधित-वि० [सं०] भूला। जिसे भूख लगी हो।

क्षुप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटी ढालियोंवाला वृक्ष। पौधा। झाड़ी। (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जिसका जन्म संवत्समा के गर्भ से हुआ था। (३) महाभारत के अनुसार प्रसंग के पुत्र और इक्ष्वाकु के पिता का नाम।

क्षुष्य-वि० [सं०] (१) चंचल। अधीर। (२) व्याकुल। विह्वल। (३) भयभीत। डरा हुआ। (४) कुपित। क्रुद्ध।

क्षुंग पुं० [सं०] (१) मयानी की डंढी। (२) एक प्रकार का रतिबंध या कामराज की क्रिया।

क्षुमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य के एक प्रकार के परिपूर देवता।

क्षुम्भिन-वि० [सं०] क्षुब्ध।

क्षुमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि०] नीम। (१) बाण। (२) एक प्रकार के पौधों की जाति जिनकी डाली पतली और लीची तथा झाल रेसेदार और दृढ़ होती है। जैसे थलनी, पटसन, सन, इत्यादि। (३) थलसी। (४) समई। (५) नील का पौधा।

क्षुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छुरा। अल्लुरा।

षी०—क्षुरमिया = हजामत।

(२) वह बाण जिसकी गांसी की धार छुरे के सररा होती है।

(३) मौखल। (४) पशुओं के पाँव का छुर।

क्षुरधान-संज्ञा पुं० [सं०] नाई की किसमत।

क्षुरधार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नरक का नाम। (२) एक प्रकार का बाण।

वि० [सं०] जिसकी धार छुरे की तरह तेज हो।

क्षुरपत्र-वि० [सं०] [स्त्री०] क्षुरपत्र, क्षुरपत्री। जिसके पत्ते छुरे की तरह धारदार हों।

संज्ञा पुं० (१) शर नामक सुच्छ। (२) क्षुरधार नामक बाण।

क्षुरमांड-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "क्षुरधान"।

क्षुरपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पालकी नाम का साग। पालक।

क्षुरपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पातकी। पालक।

क्षुरपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] घया। बघ।

क्षुरम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बाण जिसकी गांसी की धार तेज छुरे की धार के समान होती है। (२) क्षुरा।

क्षुरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छुरी। चाह। (२) पालकी नामक साग। (३) मुक्तिपत्रिपत्र का नाम।

क्षुरी-संज्ञा पुं० [सं०] क्षुरि। [स्त्री०] क्षुरिणी। (१) नाई। हजामत।

(२) वह पशु जिसके पाँव में छुर हों।

संज्ञा स्त्री० [सं०] छुरी। चाह।

क्षुरक-संज्ञा पुं० [सं०] छुर।

क्षुर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छींक। (२) राई। (३) लाही।

क्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ धर्म योग्य जाता हो। क्षेत्र। (२) समतल भूमि। (३) उत्पत्ति स्थान।

यह जगद जहाँ कोई चीज पैदा हो। (४) स्थान। प्रदेश। जैसे, हरिहरक्षेत्र। क्षुरक्षेत्र। (५) पुण्य-स्थान। तीर्थ-स्थान। (६) राशि। (मेघ आदि)।

(७) की। लोह। (८) क्षीर। पदम। (९) मीठा के अनुसार पाँचों क्षणद्विष्य, पाँचों कर्मद्विष्य, मन, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संस्कार, चेतना और छति। (१०) संनःकरण।

(११) वह स्थान जो रेखाओं से घिरा हो।

षी०—क्षेत्रव्यवहार = किसी क्षेत्र का वर्णन करने वाला भाषा का नाम।

क्षेत्रगणित—संज्ञा पुं० [सं०] गणित विद्या की वह शाखा जिसमें क्षेत्रों के मापने और उनके क्षेत्रफल निकालने की विधि का वर्णन रहता है ।

क्षेत्रज्ञ—वि० [सं०] जो क्षेत्र से उत्पन्न हो ।

संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्रानुसार ब्राह्म प्रकार के पुत्रों में से एक । वह पुत्र जो किसी श्रयोपय या श्रमसमर्थ पुरुष की विना संतानवाली स्त्री अथवा मृत पुरुष की विना संतानवाली विधवा के गर्भ और नियुक्त देवर आदि के धीर्य से उत्पन्न हो । इस प्रकार का पुत्र अपनी माता के पति के स्वयं का अधिकारी माना जाता है । कलियुग में इस प्रकार का पुत्र उत्पन्न करना वर्जित है ।

क्षेत्रज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद कंटकारी । (२) एक प्रकार की ककड़ी । (३) गोमूत्र वृष्य । (४) शिल्पिका । शिल्पी घास ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर का अधिष्ठाता, जीवात्मा । (२) परमात्मा । (३) किसान । खेतिहर । (४) साधु । वि० [सं०] जानकार । ज्ञाता ।

क्षेत्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेत का रखवाला । क्षेत्रपाल । (२) खेतिहर । फारतकार । (३) जीवात्मा । (४) परमात्मा ।

क्षेत्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षेत्ररक्षक । खेत का रखवाला । (२) एक प्रकार के भैरव जो संख्या में ४६ हैं और पश्चिम के दृशनाथ माने जाते हैं । (३) द्वापाल । (४) किसी स्थान का प्रधान प्रबंधकर्ता । स्वयंभू । भूमिया ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] किसी क्षेत्र का वर्गात्मक परिमाण जो एक क्षेत्र के क्षेत्रफल और चौड़ाई के घात या गुणन से जाना जाता है ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज्ञ ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज्ञ ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज्ञ ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज्ञ ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज्ञ ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज्ञ ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज्ञ ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज्ञ ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज्ञ ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज्ञ ।

क्षेत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज्ञ ।

क्षेत्रणीय—वि० [सं०] फेंकने योग्य ।

क्षेत्रमंक्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की चीज विपन्न गला सफेद होता है । (२) एक देवी का नाम ।

क्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राप्त वस्तु की रक्षा । सुरक्षा । धी०—योगक्षेम ।

(२) कल्याण । कुशल । मंगल । (३) श्रम्युद्योग । (४) सुख । धानद । (५) सुक्ति । (६) फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म के नक्षत्र से चौथा नक्षत्र । (७) चौवा । (८) प्रभु का एक पुत्र जो शक्ति के गर्भ से उत्पन्न हुआ था ।

क्षेत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छद्मद्वीप के एक वर्ष का नाम । (२) शिव के एक गण का नाम । (३) एक राक्षस का नाम । (४) एक नाग का नाम ।

क्षेत्रकर्षी—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के पौत्र का नाम जो जन्मेव का सत्ता था । कहते हैं कि अय्य का सेरी नामक नगर क्षेत्रकर्षण ने ही बसाया था ।

क्षेत्रकल्याण—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेम + कल्याण । हम्मीर और कल्याण के संयोग से बना हुआ एक संकर राग । (संगीत) ।

क्षेत्रधूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम जिसने महाभारत के युद्ध में दुर्योधन का पक्ष लिया था ।

क्षेत्रफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजुबर । गूलर ।

क्षेत्रपती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम जिसका वर्णन बौद्ध ग्रंथों में आया है और जो कदाचित् वत्सभान गोरखपुर जिले का क्षेत्राजपुर हो ।

क्षेत्रमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कात्यायिनी का एक नाम । (२) एक अक्षरा का नाम ।

क्षेत्रासन—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्र के अनुसार एक प्रकार का प्रासन जिसमें दाहिने हाथ पर दाहिना पैर रख कर बैठते हैं । इस प्रासन से उपासना करने से स्वर्ग-प्राप्ति होती है ।

क्षेत्री—वि० [सं०] क्षेत्री । (१) क्षेम कुशल करनेवाला । मंगल-कारक । शुभदायक । उ०—जस सस करि हरि पूजन प्रेमी । लियो कस करि हरि पूज । क्षेमी ।—रघुराज । (२) कुशल वादनेवाला । अर्थात् वादनेवाला । उ०—ज्ञान विराग विवेक अथ नैम । प्रेम अधिक सय ते अहै दायक ।

का एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि, यह हिंदू होने पर भी बौद्धधर्म के कई शैव, वैष्णव और पुरा नाम क्षेमेंद्र नाम के भी

क्षेप-वि० [सं०] छप किये जाने के योग्य ।
 क्षेप्य-संज्ञा पुं० [सं०] क्षेप का भाव । क्षेपता ।
 क्षोड्ड-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी बाँधने का छूँटा । झालान ।
 क्षोण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर च
 जा सके । (२) एक प्रकार की बीणा ।
 क्षोण्यि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी ।
 यौ०—क्षोण्यि ।
 (२) एक की संख्या ।
 क्षोण्यिप-संज्ञा पुं० [सं०] राजा । उ०—क्षोण्यी में छाँट्यो छप्यो
 क्षोण्यिप को छौना छोटे क्षोण्यिप छपय बाँके विरद ब्रह्म
 हैं।—मुलसी ।
 क्षोणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । जमीन ।
 क्षोणीपति-संज्ञा पुं० [सं०] राजा । नरेश । उ०—क्षोणी में के
 क्षोणीपति छानै निहँदै छय छाया, क्षोणी क्षोणी छाये छिति
 छाये निमिराज के।—मुलसी ।
 क्षोद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूर्ण । बुकनी । सक्क । (२) चूर्ण
 करने या पीसने का काम । (३) जल । पानी ।
 क्षोभ-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दुःख, दुःखित] (१) विचलता ।
 उलझाव । (२) व्याकुलता । घयड़ाहट । (३) भय । डर ।
 (४) रंज । शोक । (५) क्रोध ।
 क्षोभक-संज्ञा पुं० [सं०] कामाख्या का एक पहाड़ ।
 क्षोभकृत-संज्ञा पुं० [सं०] साठ संवत्सरो में से छठीसवर्ष संवत्सर ।
 क्षोभण-वि० [सं०] क्षोभित करनेवाला । क्षोभक ।
 संज्ञा पुं० [सं०] (१) काम के पांच पायों में से परू । (२)
 विष्णु । (३) शिव ।
 क्षोभिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में निषाद स्वर की दो ध्रुतियों
 में से अंतिम श्रुति ।
 क्षोभिन-वि० [सं० भोग] (१) घयड़ाया हुआ । व्याकुल । (२)
 विचलित । चलायमान् । (३) भयभीत । डरा हुआ ।
 (४) क्रुद्ध ।
 क्षोभी-वि० [सं० क्षोभिन्] उद्वेगील । व्याकुल । चंचल । उ०—
 हरि सुमिरन कीजै निमि लोनी । निंसि दिन रहै द्रव्य छित
 क्षोभी ।—रतुनाथ ।
 क्षोभ-संज्ञा पुं० दे० 'क्षोभ' ।

क्षोषि, क्षोषी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुषि । (२) एक की
 संख्या ।
 यौ०—क्षोषीमाचीर = समुद्र ।
 क्षोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] छुरे, चाहू घादि की धार लेज करने का
 यंत्र । सान ।
 क्षोद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छद्र का भाव । छद्रता । (२) छोटी
 मक्खी का मधु जो पतला, ठंडा, हलका और छेदनायक होता
 है । छद्रा नामक मक्खिलों का एकट्ठा किया हुआ मधु । (३)
 जल । (४) चंचा का पेड़ । (५) पूल । (६) मागधी माता
 से उत्पन्न एक वर्षासंकर जाति ।
 क्षोद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शहद । मधु । (२) छद्रक नामक
 प्राचीन देश जो यत्तमान पंजाब के अंतर्गत था ।
 क्षोद्रज-संज्ञा पुं० [सं०] छद्रा मक्खी का मोग ।
 क्षोद्रधातु-संज्ञा पुं० [सं०] सोना मक्खी ।
 क्षोद्रप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] मधुमेह ।
 क्षौम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अलसी, सन आदि के रेशों से बना
 हुआ कपड़ा । (२) बख । कपड़ा । (३) घर या अटारी के
 ऊपर का कमरा ।
 क्षौमका-संज्ञा पुं० [सं०] चोचा ।
 क्षौमिक-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सन या अलसी के रेशे के तारों
 से बनी हुई कपडनी । (२) चीम बख की बनी हुई गुदड़ी
 या कपटी ।
 क्षौर, क्षौरकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] हनामन ।
 क्षौरिक-संज्ञा पुं० [सं०] नाई । हज्जाम ।
 क्षमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी । धरती ।
 यौ०—क्षमाएति, क्षमारति, क्षमापाल = राजा ।
 (२) एक की संख्या ।
 क्षवेड्ड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्र्यक शब्द या ध्वनि । (२) विप ।
 ऊहर । उ०—गरल हलाहल रमेडे गर कालकूट रम भाग ।
 रस में विरस न घेरि बलि चलिये बन करु दाम ।—
 नंददास । (३) शब्द । ध्वनि । (४) कान का एक रोग
 जिसमें सनसनाहट सी सुनाई पड़ती है । (५) चिकनाई ।
 चिकनाहट ।
 वि० [सं०] (१) क्षियेरा । नीच प्रवृत्ति । (२) कुटिल । कपटी ।

—101—

ख

ख-हिंसी वर्षामाला में स्वरो व्यंजन के अंतर्गत कर्णों का दूसरा
 अक्षर । यह महाभाष्य है और इसका उच्चारण फंटा से होता
 है । क, ग, घ और ङ इसके सवर्ण हैं ।
 ख-संज्ञा पुं० [सं० खन्] (१) शून्य स्थान । खाली जगह । (२) मित्र ।
 मित्र । (३) आकार । (४) निकलने का मार्ग । (५) श्रद्धि ।
 (६) सिद्ध । शून्य । मित्र । (७) स्वरो । देखलोक । (८) सुख ।

(९) कर्म । (१०) कुंडली में जन्म लग्न से दसवाँ स्थान ।
 (११) अक्षर । (१२) प्रज्ञा । (१३) मोक्ष । निर्विषय ।
 खेक-वि० [सं० कंख] दुर्बल । बलहीन ।
 खेख-वि० [सं० कंख] (१) छुड़ा । खाली । (२) बजाइ । वीरान ।
 खेखरा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंबो का बड़ा देग जिसमें चाय
 खादि पकाया जाता है । (२) दे० 'खेखर' ।



खँखार-संज्ञा पुं० दे० "खलार" ।

खँखारना-क्रि० अ० दे० "खलारना" ।

खँग-संज्ञा पुं० [सं० खङ्ग] (१) तलवार । उ०—भट पातक दादुर
मौर न घोले । घपला चमकै न फिरै खँग खोले ।—केराव ।
(२) गैडा ।

खँगड़-संज्ञा पुं० दे० "खँगड़ खँगड़" ।

वि० † उड़ड । उम । उजड़ ।

खँगना-क्रि० सं० [सं० फग या हिं० खँगना] फग होना । घट
जाना । उ०—उखल में पुनि बांधन लागी । खँगी युगांयुलि
रजु पुनि मांगी ।—विश्राम ।

खँगर-संज्ञा पुं० [दे०] अधिक पकने के कारण परस्पर सटी
हुई कई ईंटों का चक ।

वि० बहुत सूखा । शुष्क ।

मुहा०—खँगर लगना = सुखेडी रोग होना । दुखेसला का रोग होना ।

खँगहा-वि० [हिं० खँग + हा (हाय०)] रगिवाला । जिसे खँग
या निकले हुए दांत हों ।

संज्ञा पुं० गैडा ।

खँगारना-क्रि० सं० दे० "खँगालना" ।

खँगालना-क्रि० सं० [सं० गालन] (१) हलका घेना । ढोड़ा
घेना । जैसे बोटा खँगालना । गहना खँगालना । (२) सय
कुछ उड़ा ले जाना । स्याली कर देना । जैसे रात को उनके
घर चोर थापू थे, सय खँगाल जे गए ।

खँगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खँगना] कमी । घटी । उ०—हिय हरपि
शिखु मुर चूमि गुंभुरि सकल दुखराये लगिं । अनपार भँ
ज्वीनार निज रचि सरस तहै रहै का रीची ।—विश्राम ।

खँगुवा-संज्ञा पुं० दे० "खँग (३)" ।

खँगैल-वि० [हिं० खँग] (१) खँग रोग से पीड़ित । जिसके खुर
पके हों । (२) धँतला । लंबे दांतवाला (हाथी) ।

खँगीरिया-संज्ञा स्त्री० [दे०] हँसुली नाम का गहना ।

खँगारना-क्रि० सं० दे० "खँगालना" ।

खँचना-क्रि० अ० [हिं० खँचना] चिह्नित होना । निशान पड़ना ।
उ०—लाजमकी मुर धाम भई पछितायो स्वयंभू महा मन
लेलै । दूसरी और बनाइये को त्रिबली खँची तीन तलाक की
रेलै ।—शंभु कवि ।

खँचाना-क्रि० सं० [हिं० खँचना] (१) अंकित करना । चिह्न
बनाना । उ०—(क) राधिका की त्रिबली को बनाव
विचारि विचारि बहै हम लेलै । ऐसी न और न और न
और हँ तीन खँचाप दई विधि रेलै ।—कोई कवि । (ख)
रामासुज लसु रेल खँचाई । सो नहिं लावेहु अस मनुसाई ।—
तुलसी । (२) जल्दी जल्दी लिखना । (३) दे० "खँचना" ।

खँचिया-संज्ञा स्त्री० दे० "खँची" ।

खँखुला-संज्ञा पुं० [स्त्री० खँखुली] दे० "खँचा" ।

खँचिया-वि० [हिं० खँचना] खँचनेवाला ।

खँजा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का रोग जिसमें मनुष्य
का पैर जकड़ जाता है और वह चल फिर नहीं सकता ।
पैरक के अनुसार इस रोग में कमर की वायु गर्ज की नसें
को पकड़ लेती हैं जिससे पैर स्तम्भित हो जाता है । उ०—
गूँगे कुयने बायरे बहिरै बामन पूद । यान लये जनि झाड़ो
खैरे खँज प्रसिद्ध ।—केराव । (२) लँगड़ा । पंगु ।

संज्ञा पुं० [सं० खँजन] खँजन पत्ती । उ०—शालिगन है
श्रधर पान करि खँजन खँज लरे ।—मूर ।

खँजक-वि० [सं०] लँगड़ा । पंगु ।

संज्ञा पुं० [दे०] पिरते की जाति का एक पेड़ जो बिल्-
विलान में होता है और जिसमें रूमी मल्हगी के समान ही
एक प्रकार का गोंद निकलता है । यह गोंद उतने काम का
नहीं समझा जाता । इसकी पत्तियों के किनारे धोड़े की नाज
के आकार में लाही लगती है । पत्तियाँ रंगने और चमड़ा
सिक्काने के काम में आती हैं ।

खँजकारि-संज्ञा पुं० [सं०] खेसारी ।

खँजड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "खँजरी" ।

खँजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध पत्ती जिसकी अनेक
जातियाँ, एशिया, यूरोप और अफ्रिका में अधिकता से पाई
जाती हैं । इनमें से भारतवर्ष का खँजन मुख्य और असली
माना जाता है । यह कई रंग और आकार का होता है ।
भारत में यह हिमालय की तराई, आसाम और बरमा में अधि-
कता से होता है । इसका रंग बीच बीच में कहीं सफेद कहीं
काळा होता है । यह प्रायः एक वालिशत लंबा होता है
और इसकी चोंच लाल औरे दुम हलकी काली झाई लिय
सफेद और बहुत सुंदर होती है । यह प्रायः निर्जन स्थानों
में और अकेला ही रहता है और जाड़े के आरंभ में पहाड़ों
से नीचे उतर आता है । लोगों का विरवास है कि यह पाला
नहीं जा सकता और जब इसके तिर पर चोटी निकलती है
तब यह छिप जाता है और किसी को दिखाई नहीं देता । यह
पत्ती बहुत पंचल होता है, इसी लिए कवि लोग नेत्रों
की उपमा इससे देते हैं । ऐसा प्रसिद्ध है कि यह बहुत कम
और छिप कर रति करता है । कहीं कहीं लोग इसे "खँदि-
रिच" या "ममोला" भी कहते हैं ।

पर्या०—खँजवेल । मुनिपुत्रक । भद्रनाभा । रत्ननिधि । चर ।
काकड़ड़ । नीलकंठ । कपाटीर ।

(२) खँदरिच के रंग का ढोड़ा । (३) 'गंगापर' या
'गंगोदक' नामक छंद का एक नाम ।

खँजनरति-संज्ञा पुं० [सं०] (खँजन की तराई का) बहुत ही
गुप्त विहार ।

का लय हो जाता है केवल प्रथा मात्र रह जाते हैं। पुराणानुसार इस प्रलय में सूर्य का तेज सहस्रगुणा बढ़ जाता है और रद्द समस्त प्राणियों का संहार कर डालते हैं।

खंडप्रस्तार-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताल। (संगीत)

खंडफय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

खंडमेध-संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल की वह रीति जिसके द्वारा मेरु या एकावली मेरु के बनाए बिना ही मेरु का काम निकल जाता है।

खंडहर-संज्ञा पुं० [हिं० खंडहर] टूटे। या गिरे हुए मकान का अवशेष भाग। खंडहर।

खंडहरा-संज्ञा पुं० [सं० खंड + हिं० वरा] एक प्रकार का चौकोर बड़ा जो सूखा और गीला दोनों प्रकार का होता है। इसके बनाने के लिये पहले घेसन घोलकर उसे कड़ाही में पकाते हैं, जिसे पाक उठाना कहते हैं। पाक तैयार हो चुकने पर उसे थाली में डाल कर जमा देते हैं। उंडा होकर जम जाने पर उसे चौकोर टुकड़ों में काट कर तेल में तल लेते हैं। इसी को सूखा खंडहरा कहते हैं। पीछे इसे मसालों के साथ, किसी फाँजी या रसे में भिगा देते हैं। उ०—खंडहरा खंड जो खंडे खंडे। बरी शकोतर से कई हंडे।—जायसी।

खंडरिच-संज्ञा पुं० दे० "खंजन (पत्नी)"।

खंडल-संज्ञा पुं० [सं०] खंड धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० खंड] खंड। (हिं०)

खंडलवय-संज्ञा पुं० [सं०] काला नामक।

खंडला-संज्ञा पुं० [सं० खंड] टुकड़ा। कतरा।

खंडवानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खंड + पानी] (१) वह पानी जिसमें खंड या चीनी घोली हुई हो। शरबत। उ०—कड़ी संवारी और फुलारी। श्री खंडवानी लाप बरौरी।—जायसी। (२) कन्या पशुबालों की शोर से बरातियों को जलपान या शरबत भोजने की क्रिया। उ०—(क) घोली समई यारि कुं भलानी। फरहु सिंगार देहु खंडवानी।—जायसी। (ख) भइ जेनार फिरा खंडवानी। फिर अरगना कुहूँ कुहूँ भानी।—जायसी।

खंडव्यायाम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य जिसमें केवल कमर और पैरों के गति देते हैं।

खंडशीला-संज्ञा स्त्री० [सं०] नट चरित्रवाली स्त्री। बेरया।

खंडसर-संज्ञा पुं० [सं०] सेवारी खंड। चीनी।

खंडसार, खंडसाल-संज्ञा स्त्री० [सं० खंड + साल] दाँव या शकट बनाने का कारखाना। यह स्थान जहाँ खंड बनती हो।

खंडहर-संज्ञा पुं० [सं० खंड + हिं० घर] किसी टूटे फूटे या गिरे हुए मकान का बचा हुआ भाग। खंडर।

खंडाप्र-संज्ञा पुं० [सं०] दाँतों का एक रोग।

खंडाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तेल नापने का एक परिमाण।

(२) काम की हथका रखनेवाली स्त्री।

खंडा-संज्ञा पुं० [सं० खंड] (१) चावल का टुकड़ा। खद। (२) खंड। छोटी सलवार।

खंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काँच। कँलरी। (२) वह विद्याओं जो किसी ग्रंथ को खंड खंड करके पढ़े। (३) एक शक्ति का नाम।

खंडित-वि० [सं०] (१) टूटा हुआ। भंग। (२) अधूर्ण। जो पूरा न हो।

खंडिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जिसका नायक रात को किसी अन्य नायिका के पास रह कर सपने बसके पास धावे और वह उसमें संभोग के चिह्न देखकर क्रुपित हो।

खंडिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

खंडिया-संज्ञा पुं० [सं० खंड + हिं० इया (श्रवण०)] हँस का कट कर उसकी छोटी छोटी गँडेरियाँ या टुकड़े बनानेवाला।

संज्ञा स्त्री० [सं० खंड] टुकड़ा। खंड। जैसे, मड़ली की खंडिया।

खंडी-संज्ञा स्त्री० [सं० खंड] (१) गाँव के आस पास के वृत्तों का समूह। (२) लगान वा किराये की किस्त।

मुहा०—खंडी करना = किस्त बंधना।

खंडुआ-संज्ञा पुं० [हिं० खंड] (१) यह कुर्मा जिसकी फोटी पत्थर के ढोकें से घनाई गई हो। (२) दे० "कँडुआ"।

खंडेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक खंड का राजा।

खंडैरा-संज्ञा पुं० [हिं० खंड + और (श्रवण०)] मिसरी का खंडू। ओला। उ०—पुहुप सुँग रस अमिरित सधि। कै अस सुँग खंडैरा बांधे।—जायसी।

खंडैरी-संज्ञा स्त्री० [सं० खंड] चावल के घे यड़े यड़े टुकड़े जो कूटने में टूट जाते हैं।

खंडरा-संज्ञा पुं० [सं० कांशर या हिं० खंडरा] (१) दरार। खंडरा। (२) कोना। श्रंतरा। उ०—.....

श्रंतरों ने एक एक कोना खंडरा छान डाला, पर किसी को श्रविलाहना का चिह्न भी हस्तगत न हुआ।—भारतेंदु।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः "कोना" के साथ यौगिक शब्दों में श्रंत में आता है। जैसे—कोना खंडरा।

खंडता-संज्ञा पुं० [सं० खंडित या हिं० खनना] [स्त्री० खण्ड० खंडी] (१) वह श्रौंकार जिससे जमीन आदि खोदी जाती हो। (२) वह गड्ढा जिसमें से कुम्हार मिट्टी खाते हैं।

खंडक-संज्ञा पुं० [ख०] (१) शहर वा किले के चारों ओर खोदी हुई खाई। (२) बड़ा गड्ढा।

खंडा-संज्ञा पुं० [हिं० खनना] खोदनेवाला। उ०—द्वैत्य दलन गजदंत उपानन केस केराधरि कंदा। सुरदास बलि जाई यशो-मति मुख के सागर दुख के खंडा।—सूर।

खंडवाना-क्रि० सं० [हिं० खंडी] खंडियाना का प्रेरणार्थक रूप। खाली कराना। उ०—कंचन के धँला अवर भरैवा सुमन सखैवा खंडवाये।—विद्याम।

संध्या-संज्ञा पु० [सं० स्कंधक] आर्यगीति नामक छंद का एक नाम ।

संध्यारी-संज्ञा स्त्री० दे० "कंधारी" ।

संध्यासाहिनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० संध्या] संध्या या आर्यगीति नामक छंद का एक नाम ।

संधियाना-क्रि० सं० [हिं० संध्या] (पदार्थ को पात्र में से) बाहर निकालना । खाली करना ।

संध्यायची, संध्यायती-संज्ञा स्त्री० दे० "खम्माच" ।

संध्या-संज्ञा पु० [सं० स्कंध या संभ प्रा० संभ] (१) स्तंभ । खंभा । (२) संधारा । आसरा । उ०—विन जेवन भइ आस पराई । कहाँ सो पूत संभ होइ आई ।—जायसी ।

संध्या-संज्ञा पु० [सं० स्कंध या स्तंभ, प्रा० संभ] [स्त्री० संधिया] (१) पथर वा काठ का लंबा खड़ा टुकड़ा अथवा ईंट आदि की थोड़े घेरे की ऊँची खड़ी जोड़ाई जिसके आधार पर छत या स्तंभन रहती है । स्तंभ ।

विशेष—जहाँ छत वा स्तंभन के नीचे का स्थान कुछ खुला रहना होता है वहाँ संधियों का व्यवहार किया जाता है, जैसे, ओसारे, बरामदे, वारहदरी, पुल आदि में । संधे का व्यवहार भारतीय ख्यात में बहुत प्राचीन काल से है, तथा उसके भिन्न भिन्न विभाग भी किए गए हैं, जैसे नीचे के आधार को कुंभो (कुंभिया) कहते हैं और ऊपर के सिरे को भग्या ।

संध्यात-संज्ञा पु० [सं० रत्नभावता] (१) गुजरात के पश्चिम प्रांत का एक राज्य जो हली नाम के उपसागर के किनारे है । (२) इस राज्य की राजधानी ।

संध्यायची कान्दु-संज्ञा पु० दे० "खम्माच कान्दु" ।

संध्या-संज्ञा पु० [सं० सोम, प्रा० सोम] (१) प्रदेश । चिंता । (२) धयराइट । व्याकुलता । (३) डर । भय । (४) शोक । उ०—(क) कौतुक विलोकित लोकपाल हरि हर विधि, सोचननि चक्राचौंधी चित्तन संध्यासो ।—तुलसी । (ख) हरसर हृत संध्यास, निज शरणागत जनन को । भायत अहाँ हुम्दार, करत भ्रमय संसार ते ।—रघुराज ।

संध्या स्त्री० दे० "संधारी" ।

संध्यारी, संधारी-संज्ञा स्त्री० [सं० कारगटे, प्रा० कन्हरी] गंधारी नामक वृक्ष विशेष । दे० "गंधारी" ।

संध्यायती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्कंधयती] पाइय जाति की एक रागिनी जो मालकोस राग की दूसरी स्त्री मानी जाती है । इसके गाने का समय प्राची रात है ।

संधिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० संध्या] संध्या का शब्दार्थक रूप । श्रेष्ठ पतला (विशेषतः काष्ठ वा) खंभा ।

संध्या-संज्ञा स्त्री० [सं० सं] यह गड़वा जिसमें थनाज भर कर रखते हैं । खत्ता ।

संध्या-संज्ञा पु० [हिं० संधे] यड़ी रौंवे । बड़ा खत्ता ।

संध्या-संज्ञा पु० [सं०] (१) गड़वा । गतं । (२) खाली स्थान । (३) निर्गम । निकाल । (४) छेद । विल । (५) इन्द्रिय । (६) गले की वह नाली जिससे प्राणवायु आती जाती है । (७) कुशा । (८) तीर का घाव । (९) गाड़ी के पहिये की नाभि का छेद जिसमें घुटा रहता है । आटा । (१०) धाकारा । (११) स्वर्ग । (१२) सुख । (१३) कर्म । (१४) जन्मकुंडली में दसवाँ स्थान । (१५) शून्य । (१६) विंदु । सिफर । (१७) ब्रह्म । (१८) शब्द ।

संध्या-संज्ञा स्त्री० [सं० संधे] (१) चुपकारिणी क्रिया । (२) लड़ाई । युद्ध । (३) तकरार । झगड़ा । उ०—ग्रेश परायण शैत न नीके मांगत ही सब करत संधे ।—सूर ।

संध्यासाहु-संज्ञा पु० [हिं० संध्या + साहु] (१) यह मनुष्य जो ब्यापार में बहुत चतुर हो । (२) खत्री जाति का व्यापारी ।

संध्या-संज्ञा पु० [सं० कृष्ण] जूरे की हली । शट्टहास । कृष्ण । उ०—पाद के खर खड़ी खुरी मान खरसा मारि, खलक के खाली करिये को खर भैर से ।—रघुराज । संज्ञा पु० [देव०] अमु०] (१) पंजाबी सिपाही ।

विशेष—पंजाब के खत्री प्रायः अपने आपको "खरसा" कहा करते हैं, हली से यह शब्द अनेक अर्थों में व्यवहृत होने लगा । (२) अनुमती पुरफ । तर्ककार भादमी । (३) यज्ञ और जैत्रा हाथी ।

संध्या-संज्ञा पु० [हिं० खलव] (१) खैलरा । देग । (२) धांस का बना हुआ बड़ा टोकरा ।

संध्या-संज्ञा स्त्री० [देव०] मंदे और बेसन की बनी हुई पापड़ की तरह की एक प्रकार की हलकी पतली पूरी जो अलौनी होती ।

संध्या-संज्ञा पु० दे० "खैलसा" ।

संध्या-संज्ञा पु० [अमु०] गाढ़ा धूक वा कफ जो खलारने से निकले । कफ ।

संध्या-क्रि० सं० [सं० तरण] (१) पेट की वायु को फेंकने से इस प्रकार निकालना जिससे कुछ खरखराहट का शब्द हो तथा कमी कमी कफ या धूक भी निकले । (२) दूसरे को सावधान करने के लिये गले से खरखराहट का शब्द निकालना ।

संध्या-क्रि० सं० [सं० खेट + धिकार] (१) दयाना (२) पीछा करना । भगाना । (३) पापल करना । छेदना । उ०—वेई पठने सेन सांगन खखेटे भूरि, धूरि सेन खपेटे, खेटे भेटे मद्दाकाल के ।—सूदन ।

संध्या-संज्ञा पु० [सं० ख + केर] (१) पेड़ के कोटर में बना हुआ किमी पक्षी का घोंसला । (२) खलू पक्षी का घोंसला ।

खलोरना—क्रि० सं० [दे०] अर्द्धी तरह दूँडना । सय जगह खोज डालना । खाने चीन करना ।

खगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा । मंदाकिनी ।

खग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश में चलनेवाली पस्तु वा व्यक्त ।

(२) पत्नी । विधिया । (३) गंधर्व । (४) बाण । तीर । (५) मूढ । तारा । सितारा । (६) बादल । (७) देवता । (८) सूर्य । (९) चंद्रमा । (१०) वायु । हवा । उ०—खग रवि खग शशि खग पवन खग शंखुद खग देव । खग विहंग हरि सुतरु तजि खग उर सँवल सेव ।—थने० ।

खगकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ । उ०—वरयि न जाय समर खगकेतु ।—सुलसी ।

खगना—क्रि० सं० [हिं० खग = कौटा] (१) गड़ना । पैटना । चुभना । घँसना । उ०—कह टाकुर नेहूँ के नेलन की उरमें खनी खानि खगी सेा खगी ।—ठाकुर । (२) चिंत में बैठना । मन में घँसना । असर करना । उ०—जाही सों लगत नैन ताहीं के खगत येन नख मिलि लौं सय गात प्रसति ।—सूर । (३) लग जाना । लिप्त होना । अनुरक्त होना । उ०—प्रफुलित पदन सरोज सुंदरी खनि रस नैन रँगै । पुहुकर पुंडरीक पदन मतो खंवन केलि खगे ।—सूर । (४) चिह्नित हो जाना । छाप जाना । इपट थाना । उभर थाना । उ०—यह सुनि धावत धनि चरन की प्रतिमा खगी पंथ में पाई ।—सूर । (५) शक रहना । अचल हो कर रह जाना । अड़ जाना । उ०—करि के महाधमसान । खगि रहे खेत पठान ।—सूदन ।

खगपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ ।

विशेष—पत्नीवाची शब्द के बाद स्वामीवाची वा ध्वजावाची शब्द लगा देने से वह समस्त शब्द "गरुड़" वाची हो जायना । जैसे—खगपति, विहंगराज, खगकेतु, खगनाथ, खगनायक । (२) सूर्य ।

खगहा—संज्ञा पुं० [हिं० खग = निरुला हुआ पैना दाँत] गंडा उ०—खगहा करि हरि बाघ बराहा । देखि महिष चूप साउ सराहा ।—सुलसी ।

खगेश—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ ।

खगोल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश मंडल । यद्यपि आकाश की कोई धातुति नहीं है पर परिमित दम्रिम के कारण वह गोलाकार देख पड़ता है । जिस प्रकार विद्वानों ने पृथ्वी की गोलाई में विषुवरेखा, अक्षांश और देशांतर रेखाओं तथा भ्रुव की कल्पना की है ठीक उसी प्रकार खगोल में भी रेखाओं और भ्रुव की कल्पना की गई है । ज्योतिषियों ने ताराओं के प्रधान तीन भेद किए हैं, नक्षत्र, प्रद और उपप्रद । नक्षत्र वह है जो सदा अपने स्थान पर अटल रहे । प्रद वह तारा है जो अपने सौर जगत् के गच्छन की परिक्रमा करे । और उपप्रद वह है जो अपने प्रद की परिक्रमा करता हुआ उसके साथ गमन करे । जिस तरह हमारे सौर जगत् का नक्षत्र हमारा

सूर्य है उसी तरह प्रत्येक अन्य सौर जगत् का नक्षत्र उसका सूर्य है । पृथिवी की दैनिक और वृत्ताकार गतियों के कारण इन नक्षत्रों के उदय में विभेद पड़ता रहता है । यद्यपि गगनमंडल सदा पूर्व से पश्चिम की घुमता हुआ दिखाई पड़ता है पर फिर भी वह धीरे धीरे पूर्व की ओर संलक्षता जाता है । इस लिये प्रदेशों की स्थिति में भेद पड़ना करता है । प्राचीन आर्य ज्योतिषियों ने कुछ ऐसे तारों का पता लगाया था जो अर्धों की अपेक्षा अत्यंत दूर होने के कारण अपने स्थान पर अचल दिखाई पड़ते थे । उन लोगों ने ऐसे कई तारों के योग से अनेक धातुतियों की कल्पना की थी । इनमें वे धातुतियाँ जो सूर्य के मार्ग के आस पास पड़ती थीं अष्टादश थीं । इन्हें वे नक्षत्र कहते थे । इन तारों से जड़ा हुआ गगनमंडल अपने भ्रुवों पर घुमता हुआ माना गया है । समस्त खगोल को आधुनिक ज्योतिर्विदों ने बारह वीथियों में विभक्त किया है जिनमें प्रत्येक वीथी के अंतर्गत अनेक मंडल हैं । प्रथम वीथी में पशु, त्रिकोण, मेघ, निमि, यक्षुंड और यमी ६ मंडल हैं । द्वितीय में चित्रकमेल, मूष, चूप, घटिका, सुवर्णाश्रम और आद्रक ६ मंडल हैं । तृतीय में मिथुन, कालपुरुष, शश, कपोल, मृगश्राध, अर्धवयान, चित्रपट्ट, अन्न और चत्वाल नाम के ६ मंडल हैं । चतुर्थ में वन मारजार, कर्कट, शुनी, एकदंति, चूकलास, और पतंग्रिमीन मंडल नाम के ६ मंडल हैं । पंचम वीथी में सिंहशायक, सिंह, ह्रदसर्प, पक्षी और वायुयंत्र नाम के २ मंडल हैं । षष्ठ में सप्तर्षि, सारमेय, फरिमुंड, कन्या, करतल, काश्य, त्रिशंकु, और मक्षिका ८ मंडल हैं । सप्तम में शिशुमार, मृतेश, गुला, शाहूल, महिषासुर, वृत्त और धृष्टाट नामक ७ मंडल हैं । अष्टम में हरिकुल, किरिट, सर्प, वृश्चक, और दक्षिण त्रिकोण ५ मंडल हैं । नवम वीथी में तक्षक, वीणा, संपर्णाथ, चतुष, दक्षिण किरिट, दूरवीरण और वेदि ७ मंडल हैं । दशम में वक्र, श्याल, वाय, गरुड़, श्रविष्ठा, मकर, अष्टवीरण, सिंधु, मयूर, और अष्टांश नाम के १० मंडल हैं । एकादश में शेफालि, गोधा, पक्षिराज, अश्वत्थ, कुंभ, दक्षिण मीन, सारल और चंतुचूत ८ मंडल हैं । और द्वादश वीथी में काश्यपीय, ध्रुवमाता, मीन, भास्कर, संपाति, हृद, और प्राय ७ मंडल हैं । इन सब को लेकर बारह वीथी और ८३ मंडल हैं । इनमें से प्राचीन भारतीय विद्वानों को शिशुमार (विष्णुपुराण), त्रिशंकु (वाल्मीकि), सप्तर्षि इत्यादि मंडलों का पता था । इन वीथियों को क्रमशः मेघ, चूप, मिथुन आदि वीथियाँ भी कहते हैं । सूर्य के मार्ग में अष्टादश नक्षत्र पड़ते हैं, जिनका नाम अधिनी आदि हैं । सूर्य मेघ आदि बारह वीथियों में क्रमशः होकर जाता हुआ दिखाई पड़ता है जिसे राशि वा लन कहते हैं । (२) खगोल विद्या ।

खगोलविद्या-संज्ञा श्री० [सं०] वह विद्या जिससे खगोल अर्थात् ग्रह आदि की गति का ज्ञान प्राप्त हो। ज्योतिष।

खगोल-संज्ञा श्री० [सं०] खगु, प्रा० खगु] तलवार।

खग्रास-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा प्रदण्ड जिसमें सूर्य या चंद्र का साग मंडल टूट जाय। पूरा ग्रहण।

खचन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० खचित] (१) वांछने या जड़ने की क्रिया। उ०—सर्व साधारणों के मनोरंजनार्थे रत्न को जैसे कुंदन में खचित करना पड़ता है वैसे ही काव्य को उक्त गुणों से अलंकृत करना चाहिये। (२) अंकित करने या होने की क्रिया। चित्रित होने की क्रिया। उ०—प्यान रूपी चित्रालय में कौन कौन चित्र खचित हो गए।

खचना—कि० प्र० [सं०] खचन = बंधना, जड़ना] (१) जड़ा जाना। उ०—मनि दीप राजहिं भवन आरहिं देहरी विद्रुम रची। मनिसंभ भीति विरंचि विरची कनकमणि मरकत खची। सुंदर मनेाहर मंदिरायत अतिर अरफरिजन रचे। प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु वज्रन खचे।—मुलसी। (२) अंकित होना। चित्रित होना। उ०—देत भांवरि कुंज मंडप सुलिन में बेदी रची। बँटे जो श्यामा श्याम घर प्रैलोक की शोभा खची।—सूर। (३) रम जाना। अग्र जाना। उ०—भाउ गुणि ऐसो रास रच्यो।..... रास गुण मद भ्रमिमान अधिक रुचि लै लोचन मन तँदँह खच्यो।—सूर। (४) अटक रहना। सँसना। उ०—नैना पंकज पंक खचे। मोहन मदन श्याम मुख निरखत भुव विलास रचे।—सूर।

खचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) मेघ। (३) ग्रह। (४) नक्षत्र। (५) वायु। (६) पृथ्वी। (७) बाण। तीर। (८) राक्षस। (९) संगीत दामोदर के अनुसार एक ताल का नाम जिसे रूपक भी कहते हैं। (१०) कर्सी।
वि० प्राकार्य में खचनेवाला।

खचरो-वि० [हिं० खचर] (१) वर्षासेकर। दोगला। (२) हुट्ट। नीच।

खचाखच-कि० वि० [खचु] बहुत मरा हुआ। टसाठम। जैसे, देखते ही देखते सारा कमरा खचाखच भर गया।

खचाना-कि० स० [हिं० खचाना] दे० “खंचाना”।

मुहा०—अपनी खंचाना = अपनी ही कही हुई बात को बारंबार पुट करते जाना, दूसरे के तर्कों को कुञ्चन मुनना। उ०—सुनो धीं दे कान अपनी लोक लोकन कीति। सूर प्रभु अपनी खचाई रही निगमन कीति।—सूर।

खचाघट-संज्ञा श्री० [हिं० खंचना] खचन। गठन।

खचित-वि० [सं०] खंचा हुआ। चित्रित या लिखित।

खचिया-संज्ञा श्री० दे० “खंचिया”।

खचोना-संज्ञा पुं० [हिं० खंचना] (१) रेखा। लकीर। (२) चिह्न।

खचर-संज्ञा पुं० [देग०] (१) गधे और घोड़े के संयोग से बरप एक पशु जो घोड़े से बहुत मिलता जुलता होता है। इसके कान आदि अंगवगंधे के समान होते हैं, पर शक्ति इसकी घोड़े से भी कुछ अधिक होती है। यह दीर्घ-जीवी होता, बहुत कम बीमार पड़ता और अधिक परिश्रम कर सकता है, इसी लिये कई श्रवसतों पर यह घोड़ों की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है। यह घोड़े की तरह समभदार होता है और जैची नीची मूमि पर इसका पैर बहुत मजबूत बैठता है। फौजों में और पहाड़ों पर इससे बहुत काम निकलता है। (२) दे० “खचरा”।

खज-वि० सं० खय, प्रा० खज] खाने योग्य। जो खाया जा सके। भय। उ०—चाली हंसन की चले परन चींच करि लाख। लखि परिहै एक तप कला, भुख भारत ततकाल। फल भारत ततकाल प्यान सुनिवर सों धारत। विहरत पंख फुलाय नहीं खज अखज विचारत। परनै दीनदयाल बँठि हंसन की चाली। मंद मंद पग देत अहो यह छल की चाली।—दीनदयाल।

खजला-संज्ञा पुं० [हिं० खजा] एक प्रकार का पकवान जिसे खाना भी कहते हैं। उ०—गुपुत्पु गुना गुल धारिपर्या। खजला सुखचरि खजा परिर्वा।—सूदन।

खजलिया-संज्ञा पुं० [देग०] अंगूर के पौधों का एक रोग जिसमें उसके पत्तों और ढंठलों पर काली काली धूल सी जम जाती है और पौधा धीरे-धीरे सूखता जाता है।

खजहजा-संज्ञा पुं० [सं०] खणख, प्रा० खजान] खाने योग्य उष्ण फल या मेवा। उ०—(क) नरियर फरे फरे खरही। फरे जानु इंद्रासन पुरी। पुनि महुवा सुव अथिक मिठासु। महु जल मीठ पुहुपु जल बासु। और खजहजा उतकर नाऊं। देखा सय राजन अंधराऊं।—जायसी। (ख) फरे खजहजा दाहिम दाख। जो वहि पंय जाइ सो चाख।—जायसी।

खजानची-संज्ञा पुं० [फा०] कोशाप्यच। खजाने का अर्थसर।

खजाना-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह स्थान जहाँ धन संग्रह करके रक्खा जाय। धनगार। (२) यह स्थान जहाँ कोई चीज संग्रह करके रक्खी जाय। कोष (३) राजस्व। कर।

कि० प्र०—देना।—मोगना।—जमा करना।—गहुँचाना आदि।

खजित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के श्युवादी बौद्ध।

खजिली-वि० [फा०] खजित। शरमिंदा।

खजुआ, खजुवा-संज्ञा पुं० [हिं० खजा] खजा नाम की मिठाई।

खजला। उ०—देना मेखि धरे हँ खजुआ। हँस होय तो क्पाऊं पूवा।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं०] खय, प्रा० खज] भटवाँस नामक अन्न। भटनास।

खजूरहट, खजूरहटी—संज्ञा स्त्री० [हि० खजूर] नेपाल की तराईयों में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की खजूर जिसके पेड़ हाथ खेड़ हाथ ऊँचे होते हैं। इसकी पत्तियाँ साधारण खजूर से कुछ छोटी होती हैं और चटाई आदि बनाने के काम में आती हैं। इसके फल में प्रायः बीज ही बीज होता है जिसके कारण यह खाने योग्य नहीं होता।

खजुरा—संज्ञा पुं० [हि० खजूर] दो या तीन लर का बटा हुआ एक प्रकार का डोरा जिसके एक सिरे पर कुँदना होता है और जिसके साथ खियाँ सिर की चोट्टी गूथती हैं।

खजुराही—संज्ञा स्त्री० [हि० खजूर] यह स्थान जहाँ खजूर के बहुत से पेड़ हैं।

खजुरियाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० खजूरिका] (१) एक प्रकार की खजूर जिसके फल कुछ छोटे होते हैं। (२) खजूर नाम की मिठाई। (३) एक प्रकार की ह्वेय जो मूरत के आस पास होती है।

खजुरलाना—क्रि० घ० दे० “खजुरलाना”।

खजुरली—संज्ञा स्त्री० [हि० खजूर] (१) दे० “खजुरली”। (२) एक प्रकार की काई जिसके छू जाने से खजुरली उत्पन्न हो जाती है।

संज्ञा स्त्री० [हि० खजुर] खाने की तरह की एक मिठाई जो चीनी में पगी होती है।

खजूर—संज्ञा स्त्री० [सं० खजूर] (१) एक जाति का पेड़ जो गरम देशों में समुद्र के किनारे या रेतीले मैदानों में होता है। इस जाति के पेड़ सीधे खाने की तरह ऊपर चले जाते हैं और उनके निचे पर पत्तियाँ बहुत कड़ी, चार श्रेणुल से छः सात श्रेणुल तक लंबी, पतली और नुकीली होती हैं और एक स्त्रीके या छड़ीके दोनें और लगती हैं। पत्ते की यह छड़ी दो तीन हाथ तक लंबी होती है। खजूर कई प्रकार के होते हैं, जिनमें मुख्य दो हैं—एक जंगली, दूसरा देगी। जंगली खजूर को सेंधी, खरक आदि कहते हैं। यह बहुत ऊँचा नहीं होता और हिंदुस्तान में पंगाल, विहार, गुजरात, कर्नाटक आदि प्रदेशों में होता है। लगापु हुप खजूर में जड़ के पास शंकर निकलते हैं, जंगली में नहीं। जंगली के फल भी किसी काम के नहीं होते। ताड़ की तरह इसमें से भी पाँच कर एक प्रकार का सफ़ेद रस वा दूध निकालते हैं और उसे भी ताड़ी कहते हैं। खजूर की ताजी ताड़ी मीठी होती है और उससे गुड़ और सिरका भी बनाया जाता है। लगापु जाने-वाले खजूर के पिंड खजूर कहते हैं। इराका पेड़ साठ सत्तर हाथ ऊँचा होता है और जभ छः वर्ष से ऊपर का हो जाता है तब उसके नीचे जड़ के पास बहुत से छोटे छोटे शंकर निकलते हैं। इस प्रकार के खजूर सिंध, पंजाब, गुजरात और दक्षिण में अधिक होते हैं। वहाँ इनकी खेती की जाती है।

पौधे बीज से और जड़ के पास के शंकरों से उत्पन्न किए जाते हैं। पेड़ लगाने के लिये बलुई, दोमट और मटियार सब प्रकार की भूमि काम में लाई जा सकती है, पर-पृथिवी में खार का शंरा कुछ अवश्य होना चाहिए। तीन से छः वर्ष तक के शंकर मुख्य पेड़ के पास से खाद लिए जाते हैं और उनकी बड़ी बड़ी पत्तियाँ काट कर फेंक दी जाती हैं। फिर इन पौधों को तीन फुट गहरे और चौड़े गड्ढों में दो बाईं सेर खली मिली हुई खाद के साथ बैठाते हैं। जब पौधा आठ वर्ष से अधिक पुराना होता है तब वह फलने लगता है। माघ मास में बालियाँ निकलती हैं। ये बालियाँ पत्ते के आवरण में लिपटी रहती हैं और पीछे बढ़ कर फूल की धाँद हो जाती हैं। फल बड़े बड़े धाँद में लगते हैं। जब तक फल पक नहीं जाते, बराबर अधिक पानी देने की आवश्यकता पड़ती है। फल पकने के समय पीले होते हैं, फिर फूल आते हैं और अंत में लाल हो जाते हैं। इन फलों को सुहारा कहते हैं। सिंध में पेड़ के पके फल को खुरमा और पकने के पहले तोड़े हुए फल को सुहारा कहते हैं। इनकी श्रेणक जातियाँ हैं पर नूर आदि श्रेणकी मानी जाती है। लकड़ी बढ़ने के काम आती है और इससे पुल भी बनाया जाता है। इसकी पत्तियों को डंडल से घर छाप जाते हैं और उनकी छड़ी भी बनाई जाती है। इसकी छाल से एक प्रकार की लाल धुक्नी निकलती है जिससे चमड़ा रंगा जाता है। इसकी छाल चमड़ा सिक्काने के भी काम आती है। इससे एक प्रकार की रोटी भी निकलती है जिसे हुकमचिल कहते हैं और जो दवा के लिये काम आती है। इसकी नरम पत्तियाँ, जिन्हें गाड़ी कहते हैं, सुला कर रक्नी जाती है और उनकी तरकारी बनाई जाती है। इसके छाल के रेशे से रस्ती बनी जाती है। धरत में इसके फूल की बाली के शावरण से जिसे तर कहते हैं एक प्रकार का गुलाब केवड़े की तरह का अंक निकाला जाता है। वैद्यक में इसका फल पुष्टिकारक, वृष्य, वातघ्नक नाराक, कफघ्न, रुचिकर और शक्तिवर्धक माना गया है। (२) एक प्रकार की मिठाई जो धाटे में घी और शकर मिलाकर गूँथ कर बनाई जाती है। यह राने में रखलगी और स्वादिष्ट होती है।

खजूर छड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० खजूर + छड़ी] एक प्रकार का रोसमी कपड़ा जिस पर खजूर की पत्तियों की तरह छड़ियाँ वा धारियाँ होती हैं।

खजूरा—संज्ञा पुं० [हि० खजूर] (१) फूस से छाई हुई छत की बेंडर जो प्रायः खजूर की होती है। मँगरा। (२) दे० “कनखजूरा”।

खजूरी—वि० [हि० खजूर] (१) खजूर संबंधी। खजूर का। (२) खजूर के आकार का। खजूर की तरह का। (३) तीन लर का गूया हुआ, जैसे, खजूरी चोटी, खजूरी डोरा।

खट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कफ़। चलगम। (२) शंघा कूर्च। (३) धूँसा। मुक्का। (४) एक प्रकार की सुगन्धित घास। (५) कुल्हाड़ी।

संज्ञा पुं० [सं० पद] (१) भाव्य जाति का एक राग जो दीपक राग का पुत्र माना जाता है। इसके गाने का समय प्रातःकाल एक दंड से पाँच दंड तक है। इसमें मध्यम स्वर पायी होता है। कोई कोई इसे आसावरी, ललित, योगी, भैरवी आदि रागिनियों से उल्लेख संकर राग मानते हैं। (२) दे० "पट"।

संज्ञा पुं० [ऋ०] दो चीजों के परस्पर टकराने या किसी कड़ी चीज के टूटने से उत्पन्न शब्द।

धा०—खटखट। खटाखट। खटपट।

मुद्रा०—खट से = तुरंत। तत्काल। जैसे,—जुरा याद दिलाते ही इसने खट से रूपय गिन दिए।

खटक-संज्ञा स्त्री० [ऋ०] (१) खटका। (२) "खटकना" का भाव।

खटकना-कि० अ० [ऋ०] (१) 'खट' 'खट' शब्द होना। खट-खटाहट होना। जैसे, किवाड़ खटकना। (२) शरीर में किसी कड़े शक्ति के गड़ने या कंकरी तिनका शक्ति याहरी चीजों के भा पड़ने के कारण रह रह कर पीड़ा होना। जैसे, पैर में कटा खटकना या आँसों में सुलमा खटकना। (३) डुरा मालूम होना। चलना। जैसे, तुम्हारा यहाँ रहना सब को खटकना है। दे० "आँस में खटकना"। (४) विरक्त होना। उचटना। हटना। जैसे, अथ तो हमारा जी यहाँ से खटक गया। (५) डरना। भय करना। जैसे, वह यहाँ आते हुए खटकते हैं। (६) परस्पर झगड़ा होना। आपस में लड़ाई होना। जैसे, आज कल दोनों भाइयों में खटक गई है। (७) किसी प्रकार के अनिष्ट या अपकार का अनुमान होना। अनिष्ट की भावना या आशंका होना। जैसे, हमें यह बात उसी समय खटकी थी, पर कुछ सोच कर हम चुप रह गए। (८) अनुपपुक्त जान पड़ना। रीक न जान पड़ना।

उ०—यह शब्द कुछ खटकना है, बदल दो।

संघा० कि०—जाना।

खटका-संज्ञा पुं० [हिं० खटकना] (१) 'खट खट' शब्द। जैसे, जुरा सा खटका होते ही पची उड़ गए। (२) डर। भय। आशंका उ०—अब कोई खटका नहीं है, वासमती कुछ कर नहीं सकती।—अयोध्या।

कि० प्र०—लगाना।—मिटना।—पड़ना।—होना।

(३) चिंता। मुक्ति। जैसे, तुम्हारे न आने के कारण रात भर सब को खटका लगा रहा।

सि० प्र०—लगाना।—मिटना।—होना।—पड़ना।

(४) किसी प्रकार का पंच, कील या कमानी जिसकी सहा-

यता से किसी प्रकार का आवरण खुलता या बंद होता अथवा इसी प्रकार का और कोई कार्य होता है। जैसे, (क) खटका दवाते ही दरवाजा खुल गया। (ख) खटका दवाते ही सारे कमरे में बिजली का प्रकाश हो गया।

कि० प्र०—दवाना।

मुद्रा०—खटके पर होना = खटके के सहारे रहना। जैसे, कमरे के बीच में खटके पर एक चौकोर पत्थर था, जो पैर से दवाते ही नीचे की धोर मूलने लगा।

(५) किवाड़े की सितकिनी। बिह्ली।

कि० प्र०—गिराना।—लगाना।

(६) बाँस का यह टुकड़ा जो फलदार वृक्षों में पक्षियों को डरा कर उड़ाने के लिये बाँधा जाता है। इसके नीचे जमीन तक लटकती हुई एक लंबी रस्सी बँधी रहती है जिसे हिलाने या झटका देने से वह टुकड़ा किसी ढाली या तने से टकरा कर 'खट खट' शब्द करता है। खटखटा। खड़खड़ा।

कि० प्र०—लगाना।—बाँधना।

खटकाना-कि० सं० [हिं० खटकना] (१) 'खट' 'खट' शब्द करना। किसी धनु पर इस प्रकार धायात करना जिसमें खटखट शब्द हो। जैसे, किवाड़ खटकाना। जंगीर खटकाना। (२) शंका उत्पन्न करना भड़काना। (क०)

खटकामुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नुल में एक प्रकार की चेटा। (२) तीर चलाने का एक यन्त्र।

खटकीरा, खटकीड़ा-संज्ञा पुं० दे० "खटमल"।

खटखट-संज्ञा स्त्री० [ऋ०] (१) 'खट' 'खट' शब्द। (२) झंझट। झमेला। जैसे, इस काम में बड़ी खटखट है, यह हम से न होगा। (३) लड़ाई। झगड़ा। जैसे, रात दिन की खटखट चुरी होती है।

खटखटा-संज्ञा पुं० [ऋ०] दे० "खटका (६)"।

खटखटाना-कि० सं० [ऋ०] (१) खट खट शब्द करना। किसी वस्तु को ठेंकना या पीटना। खड़खड़ाना। जैसे, दरवाजा या कुंडी खटखटाना (२) सरस्य कराना। याद दिलाना। जैसे, बीच बीच में उसे खटखटाप चलो, सभया मिल ही जायगा।

खटपट-संज्ञा स्त्री० [ऋ०] (१) अनयन। लड़ाई। झगड़ा।

उ०—(क) उन दोनों में न जाने क्यों खटपट हो गई है। (ख) रोज रोज की खटपट अच्छी नहीं। (२) दो कठोर वस्तुओं के टकराने का शब्द। "खट खट" का शब्द। उ०—श्रीम दचाम वल्लुरि पग धरें। भटपटहिं गदा गदा सों सरें। खटपट खोट गदा फटकारी। लागत शब्द केलाइह भारी।—लल्लु।

खटपटिया-वि० [हिं० खटपट] लड़ाई करनेवाला। झगड़ालू।

खटपद-संज्ञा पुं० दे० "पटपद"।

खटपदी-संज्ञा स्त्री० दे० "पटपदी"।

खटपाटी—संज्ञा स्त्री० [हि० खट+पाट] पाट की पाटी ।
 उ०—खचि लाय रही खटपाटी करौट ली मानो महोदधि को
 तट ज्यों । कटु बोल सुनो पटुता मुख की पटु दे पलटी
 पलटी पर ज्यों ।—देव ।
मुहा०—खटपाटी लेना या लगना = छट या क्रोध के कारण
 क्रिया का काम घंघा छोड़ देना ।
खटपापड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे०] फरसई नाम का पेड़ जिसे अमली
 भी कहते हैं ।
खटपूरा—संज्ञा पुं० [हि० खट्ट + पूरा] मिट्टी फोड़ कर बराबर करने
 की मुं गरी ।
खटसुना—संज्ञा पुं० [हि० खट + सुना] खाट या चारपाई आदि
 सुननेवाला ।
खटभिलाचा—संज्ञा पुं० [दे०] पियाल नामक वृक्ष जिसमें
 चिंरांजी होती है ।
खटभेमल—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो
 हिमालय की तराई, आसाम, बंगाल तथा दक्षिण भारत में
 होता है । इसकी पत्तियां बहुत छोटी छोटी होती हैं और
 चारे के काम में आती हैं । जेठ से कुंआर तक इस में एक
 प्रकार के पीले छोटे फूल और तदुपरांत मटर के समान छोटे
 फल लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते हैं ।
खटमल—संज्ञा पुं० [हि० खट + मल = मेष] मटमैले उज्रायी रंग
 का एक प्रसिद्ध कीड़ा जो गरमी में मंडी खाटों, फुरसियों
 और विस्तारों आदि में उत्पन्न होता है । यह अपने डंक द्वारा
 मनुष्यों के शरीर से रक्त चूसता है । यह आकार में प्रायः
 उरद के दाने के बराबर होता है और इसके शंभे बहुत छोटे
 छोटे और सफेद होते हैं । शंभे से निकलने के प्रायः तीन
 मास बाद यह पूरे आकार का होता है । इसे छूने से बहुत
 जुरी दुर्गंध निकलती है । बहुत अधिक गरमी या सर्दी में
 यह मर जाता है । खटकीड़ा । उबुस ।
खटमली—वि० [हि० खटमल] खटमल के रंग का । गहरा उज्रायी
 या खैरा (रंग) ।
खटमिठा—वि० [हि० खट + मीठा] कुछ खटा और कुछ मीठा ।
 जिसमें खटा और मीठा दोनों स्वाद हों ।
खटमीठा—वि० दे० "खटमिठा" ।
खटमुख—संज्ञा पुं० दे० "पटमुख" ।
खटरस—वि० दे० "पटरस" ।
खटराग—संज्ञा पुं० दे० "पटराग" ।
 संज्ञा पुं० [सं० पटराग = कई चीजों का मेल] (१) कंकट ।
 बखेड़ा ।
क्रि० प्र०—करना ।—कैलाना ।—मघाना ।
 (२) थंगड़ खंगड़ । काठ कपाड़ । स्थर्य और अनावश्यक
 चीजें ।

क्रि० प्र०—कैलाना ।

खटरिया—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का कीड़ा ।
खटलर—संज्ञा पुं० [दे०] सान धरनेवालों का एक औजार जो
 लकड़ी का होता है ।
खटला—संज्ञा पुं० [दे०] खियों के फानों का छेद जिसमें
 चे बालियां पहनती हैं ।
 संज्ञा पुं० [सं० कलन] खी और थाल बच्चे परिवार । (दक्षिण) ।
खटवाट—संज्ञा स्त्री० दे० "खटपाटी (३)" । उ०—में तोंहि खागि
 खेति खटवाट । खोजित पतिहि जहाँ लागि भट्ट ।
 —जायसी ।
खटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खटा] (१) खट्टापन । अमृता । तुरशी ।
 (२) यह वस्तु जिसका स्वाद खटा हो । जैसे, धाम, इमली,
 आदि ।
मुहा०—खटाई देना या में देना = गहने आदि को साफ करने के
 लिये खटाई में रखना । खटाई में डालना = बहुत दिनों तक
 व्यर्थ किसी चीज या काम को कर लटकाए रखना । ममेले में
 डालना । दुविधा में डालना । कुछ निर्माण न करना । खटाई में
 पड़ना = दुविधा में पड़ना । अनिश्चित दशा में होना । (सेनारत
 को जो चीजें बनाने को दी जाती हैं, तकाजा करने पर वे
 कभी कभी कह देते हैं कि कभी खटाई में पड़ी है) ।
खटाका—संज्ञा पुं० [अनु०] 'खट' का शब्द ।
खटाखट—संज्ञा पुं० [अनु०] 'खट खट' का शब्द ।
क्रि० वि० (१) खटखट शब्द के साथ । (२) खटखट । जैसे,
 तकाजा नहीं करना पड़ा, मूरत देखते ही उसने खटाखट
 बप गिन दिए । (३) जवरी ।
खटाना—क्रि० अ० [हि० खटा] खटा होना । किसी वस्तु में
 खटपन आ जाना । जैसे, सिरके का खटाना ।
क्रि० अ० [सं० कृष्ण, स्वप्न, प्रा० खट्ट = उदर वृक्षा] (१)
 निर्वाह होना । निभना । गुजारा होना । टिकना । उ०—(क)
 सदन पकाकिन के भवन, कयहुँ न नारि खटाहि ।—मुलसी ।
 (ख) ज्यों जलमीन कमल मधुपन को खिन नहिं प्रीति
 खटाति ।—सूर । (२) परीचा में उतरना । उ०—जो मन
 लागी राम चरन अस ।.....इंद्रदहित गतमान ज्ञानरत
 विषयविरत खटाप माना कस ।—मुलसी ।
खटापट, खटापटी—संज्ञा स्त्री० दे० 'खटपट' ।
खटाला—संज्ञा पुं० [सं० कटाल] समुद्र की ऊँची लहर जो
 पृथिव्या के दित उठती है ।
खटाव—संज्ञा पुं० [हि० खटाना] निर्वाह । गुजर । जैसे, तुम्हारी
 ऐसी जुरी आदत है कि किसी के साथ तुम्हारा खटाव नहीं
 हो सकता ।
 संज्ञा पुं० [दे०] यह खूँटा जिसे गाड़ कर नाव बंधते हैं ।

खटास-संज्ञा पुं० [सं० खयस] मुख्य विलास । गंध विलास ।
 सखा श्री० [हिं० खटा] खटापन । खटाई । तुररी ।
 खटिक-संज्ञा पुं० [सं० खटिक] [श्री० खयकेन] हिंदुओं के
 श्रतर्गत एक छोटी जाति जिसका काम फल तरकारी आदि
 बोना और बेचना है । बुंदेलखंड में इस जाति के लोग भंग
 और विहार में ताड़ी भी बेचते हैं ।
 खटिया-संज्ञा श्री० [हिं० खाट] छोटी चारपाई या खाट ।
 खटोली ।
 विशेष—इस शब्द के मुहावरों के लिये 'खाट' शब्द देवे ।
 खटोक-संज्ञा पुं० दे० "खटक" ।
 खटेटी-वि० [हिं० खाट + पीठ ?] जिसपर विद्योत्पान न हो । जैसे,
 खटेटी खटिया ।
 खटोलना-संज्ञा पुं० दे० "खटोला" ।
 खटोला-संज्ञा पुं० [हिं० खाट + ओला (भय०)] [श्री० अय०
 खटोली] छोटी खाट या चारपाई ।
 था०—उड़न खटोला ।
 संज्ञा पुं० [दे०] एक प्राचीन देश का नाम जो बुंदेलखंड
 के श्रतर्गत था । यहाँ भीलों की वन्म अधिका थी ।
 वत्समान सागर दमोह आदि प्रांत उसी के श्रतर्गत हैं । उ०—
 पूछो जहाँ कुंड थी गोला । तजि धामे' श्रथियार खटोला ।
 —जायसी ।
 खटा-वि० [सं० कट] कच्चे आम इमली आदि के स्वाद का ।
 तुर्रा । अन्नल ।
 मुहा०—खटा होना = अग्रवत् होना । नाराज होना । खटा
 खाना = अग्रवत् रहना । मुँह फूलाना । जी खटा होना =
 चित्त अग्रवत् होना । दिल फिर जाना ।
 था०—खटमिट्टा । खटाचूक । खटा मीठा ।
 संज्ञा पुं० [हिं० खटा] मीच की जाति का एक बहुत पटा
 फल जिसे गवगल भी कहते हैं ।
 संज्ञा पुं० [सं० खटवा] पलंग । चारपाई ।
 खटाचूक-वि० [हिं० खटा + चूक] बहुत अधिक खटा ।
 खटा मीठा-संज्ञा पुं० [हिं० खटा + मीठा] खटमिट्टा । कुछ खटा
 और कुछ मीठा ।
 मुहा०—जी खटा मीठा होना = जी ललचना । जीभ में पानी
 भर आना ।
 खट्टी मट्टी-संज्ञा श्री० [हिं० खट्टा + मट्टी] एक प्रकार की लता ।
 खट्ट-संज्ञा पुं० [दे०] जैलखमेर में होनेवाला एक प्रकार का
 संगमरमर जिसका रंग पीला होता है ।
 संज्ञा पुं० [वंश० खटना = रपका पैदा करना] कमनेवाला ।
 खटवाग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक सूर्यवंशी पैरायिक राजा का
 नाम जिसका वर्णन भागवत में आया है । (२) चार-
 पाई का पाया या पाटी । (३) शिव के एक अन्न का नाम ।

(४) एक प्रकार का पात्र जिसमें प्राथमिक करते समय भिन्ना
 मांगी जाती है । (५) संज्ञा के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा
 जिससे देयता बहुत प्रसन्न होते हैं ।
 खट्या-संज्ञा श्री० [सं०] (१) खटिया । चारपाई । (२) सुश्रुत के
 अनुसार फोड़ा आदि बांधने की १४ प्रकार की पट्टियों में से
 एक जिसका व्यवहार माथे या गले आदि को बांधने के
 लिये होता है ।
 खट्टजा-संज्ञा पुं० [हिं० खटा + ञग] ईंटों की खड़ी खुनाई । खड़ी
 ईंटों का जोड़ना । (यह जोड़ाई फर्मा पर होता है)
 कि० प्र०—जोड़ना ।
 खड्ड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घान की पेड़ी । पयाल । (२)
 घास । (३) रयोगाक । (४) एक ऋषि का नाम । (५)
 चांदी सोने आदि की बुकनी जिसकी सहायता से गिलट
 की हुई चीनों पर जिला करते हैं ।
 खड्डक-संज्ञा श्री० दे० "खटक" ।
 खड्डकना-कि० अ० [अ०] [संज्ञा खड्डकाइट] 'खड्ड खड्ड' शब्द
 होना ।
 विशेष—दे० "खटकना" ।
 खड्डका-संज्ञा पुं० दे० "खटका" ।
 खड्डकाना-कि० सं० दे० "खटकाना" ।
 खड्डखड्डा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) दे० "खटखटा" या "खटका
 (१)" । (२) काठ का एक प्रकार का टांचा जिसमें जेत कर
 गाड़ी के लिये घोड़े सथाप या निकाले जाते हैं ।
 खड्डखड्डाना-कि० अ० [हिं० खड्ड] खड्डखड्ड शब्द करना ।
 जैसे, धाम में सूखी पत्तियाँ खड्डखड्डा रही हैं ।
 कि० सं० [हिं० खड्ड] किसी वस्तु में खड्डखड्ड शब्द उत्पन्न
 करना । जैसे, वह कुंभी खड्डखड्डा रहा है ।
 खड्डखड्डाइट-संज्ञा श्री० [हिं० खड्डखड्डाना] (१) "खड्ड खड्ड"
 शब्द । (२) "खड्डखड्डाना" का भाव ।
 खड्डखड्डिया-संज्ञा श्री० [हिं० खड्डखड्डाना] पालकी जिसे चार
 कहार उठाते हैं । पीनस ।
 खड्डग-संज्ञा पुं० दे० "खड्डग" ।
 खड्डगी-वि० [सं० खड्डगि] तजवार लिए हुए । तलवारधारी
 संज्ञा पुं० [सं० खड्डा] गंडा नामक जंतु ।
 खड्डजी-संज्ञा पुं० दे० "खड्डगी" । उ०—खड्डगी खजाने, दरमोस
 विलवत्खाने, सीतौ खोले खसराधने खासत खलीम हैं ।—
 भूपाल ।
 खड्डखड्ड-संज्ञा श्री० [अ०] (१) खड्डखड्ड । खटखट । (२)
 व्यनिक्रम । उलट फेर । (३) हलचल ।
 खड्डखड्डाना-कि० अ० [अ०] (१) विचलित होना । घबराना ।
 (२) क्रमहीन होना । बेतरतीब होना ।
 कि० सं० (१) किसी वस्तु को उलट पुलट कर "खड्डखड्ड"

शब्द उत्पन्न करना। (२) क्रम विहीन करना। उलट फेर करना। (३) विचलित करना। धरना देना।

खड़बड़ाहट-संज्ञा स्त्री० [हि० खड़बड़ाना] "खड़बड़ाना" का भाव।
खड़बड़ी-संज्ञा स्त्री० [हि० खड़बड़ाना] (१) व्यतिक्रम। उलट फेर।

(२) हलचल। धरनाहट।

खड़बिड़ा-वि० [हि० खड़ + सं० विघट, प्रा० विहट] ऊँचा नीचा।
असमतल।

खड़बीहड़-वि० दे० "खड़बिड़ा"।

खड़मंडल-संज्ञा पुं० [सं० खंड + मंडल] गड़बड़। घोटाला।

खड़सान-संज्ञा पुं० दे० "खरसान"।

खड़ा-वि० [सं० खडक = खमा, धृती] [स्त्री० खड़ी] (१) धरातल से समकोण पर स्थित। सीधा ऊपर को गया हुआ। ऊपर को उठा हुआ। जैसे, खड़ी लकीर, खड़ा घाँस, मंडा खड़ा करना।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

(२) जो (प्राणी) पृथ्वी पर पैर रख रगियों को सीधा करके अपने शरीर को ऊँचा किए हो। दंडायमान्। जैसे, इतना सुनते ही वह खड़ा हो गया और चलने लगा।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

मुहा०—खड़े खड़े = (१) खड़े रहने की दशा में। उ०—खड़े खड़े पानी मत पीये = (२) तुरंत। मत्पट। उ०—यों खड़े खड़े बेई क़ाम नहीं होता है। खड़ा जवाब = तुरंत प्रखीरार। वह इनकार जो चटपट किया जाय। खड़ा दाँव = जूए का वह दाँव जो बुझारी उठते उठते समय लगाते हैं। खड़ा होना = सह्यपता देना। मदद करना। उ०—कोई किली की विपत्ति में नहीं खड़ा होता। खड़ी पढ़ाड़े खाना = कोप या शोक से पृथ्वी पर गिर गिर पड़ना।

(३) स्थिर। ठहरा हुआ। टिका हुआ। रुका हुआ।

उ०—(क) इस तरह यहाँ दीवार कय तक खड़ी रहेगी।

(ख) घोड़ा खड़ा करो। (घ) उत्पन्न। प्रस्तुत। उपस्थित।

तैयार। पैदा। जैसे, दाम खड़ा करना, रुग्ण खड़ा करना, मोमला खड़ा करना। उ०—(क) उसने अपना

दाम खड़ा कर लिया। (ख) उसने वीच में एक नई यात

खड़ी कर दी। (४) सज्जद। उद्यत। तैयार। उ०—(क)

जिस काम के लिये आप खड़े होंगे वह क्यों न होगा ?

(ख) बात समझते नहीं, खड़ने को खड़े हो जाते हो।

मुहा०—खड़ा दोना = मिठाई आदि जो फिटी पीर को चढ़ाई जाय।

(६) आरंभ। जारी। जैसे, काम खड़ा करना। (७) (घर, दीवार आदि ऊँची वस्तुओं के विषय में) स्थापित। निर्मित।

उठा हुआ। जैसे, इमारत खड़ी करना, तंबू खड़ा करना।

मुहा०—खड़ा करना = टाँचा खड़ा करना। स्थूल रूप से आकार

आदि बनाना। उ०—सुम्हारा क़रता खड़ा कर चुके हैं, सीना

वाकी है।

(८) जो उखाड़ा न गया हो। जो काटा न गया हो। जैसे, खड़ी फसल। खड़ा खेत। (९) बिना पका। अस्थिर। कच्चा। जैसे, खड़ा चावल। (१०) समूचा। पूरा। उ०—खड़ा चना चयाना। (११) स्थिर। जिसमें गति न हो। ठहरा। जैसे, खड़ा पानी।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

खड़ाऊँ-संज्ञा स्त्री० [हि० काठ + षोड वा 'खटसट' से ऋनु०] पैर में पहनने के लिये तलपु के आकार की, काठ की पटरी। इसमें आगे की ओर एक खूँटी लगी होती है, जिसे पहनने के समय पैर के थँगूड़े और उसके पास की डँगली में अटक लेते हैं। पादुका।

खड़ाका-संज्ञा पुं० [ऋनु०] खड़ खड़ शब्द। खटका।

खड़ा दसरंग-संज्ञा पुं० [देग०] कुरती का एक पेंच। इसमें प्रतिदिन दी की जॉच में अपना हाथ अड़ा कर उसी के बल से उसके उस हाथ को जो अपने पेट पर हो, दबा कर, उसकी पीठ पर जाना और उसे मरोड़ा देकर गिराना पड़ता है। इसे हनुमंतबंध भी कहते हैं।

खड़ा पठान-संज्ञा पुं० [देग०] जहान के पिघले भाग का मसूल (खो०)।

खड़िया-संज्ञा स्त्री० [सं० खडिका] एक प्रकार की सफ़ेद मिट्टी या पर्यर की जाति का एक बहुत मुलायम सफ़ेद पदार्थ जो जमीन के अंदर संघ घोवे आदि जानवरों की हड्डियों के चूने से आप ही आप जमकर बनता है। खड़िया गैलैंड में लंदन के आस पास और फ्रांस के उत्तरी भाग में बहुत होती है। इससे दीवारों पर चूने की भाँति सफ़ेदी की जाती है और अनेक प्रकार की धानुपु साफ़ की जाती हैं। प्रायः काले तूखों पर इससे लिखा जाता है। यह कई प्रकार की होती है। एक प्रकार की खड़िया बहुत कड़ी होती और इमारत में पत्थर के स्थान पर काम आती है। एक और प्रकार की खड़िया काली होती है जो स्लेट के अंतर्गत है। खरिया। खड़ी। लुही।

मुहा०—खड़िया में कोयला = धेगल वात। अन्धे के साथ डुरे का संयोग।

संज्ञा स्त्री० [सं० काठ वा हि० खड़ा] अरहर का यह पेड़ या यड़ा डंठल जिसमें पत्तियाँ या फलियाँ विशकुल न हों। लाड़ी। रूठा।

खड़ी-संज्ञा स्त्री० [हि० खडिया] खड़िया मट्टी। लुही।

संज्ञा स्त्री० [हि० खड़ा = संधा] (१) पहाड़। (२) दे० "अरह खड़ी"।

खड़ीडंकी-संज्ञा स्त्री० [देग०] मालखंभ की एक फसल।

खड़ी मसकली-संज्ञा स्त्री० [हि० गड़ + ष० मसकला = रेती]

रुहानी की तरह का छुंद धार का एक औजार जिससे सिरुली करनेवाले बरतन को सुरंच कर जिला करते हैं।

खड़ीसकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खटा + सकी (देग०)] खुरती का एक पंच। इसमें बाएँ हाथ से प्रतिद्वंदी की दाहिनी कलाई पकड़ और दाहिने हाथ से उसकी कुहनी को पकड़ कर अपनी श्रोत्र खींचना और अपने दूढ़ने पैर को उसके पैरों में डाल कर उसकी पिंडली और पैरों को अपनी श्रोत्र खींचते हुए उसकी छाती पर धका देकर उसे पित्त गिरा देना पड़ता है।

खड्गधा—संज्ञा पुं० [हिं० कडा] हाथ या पाँव में पहनने का कड़ा। चूड़ा।

खड्ग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध शस्त्र जिसका व्यवहार आज कल केवल पशुशौर्य को बलि देने के लिये होता है। तलवार इसी का एक भेद है। खाँडा। (२) गेंडा। (३) एक युद्ध का नाम। (४) चोर। भेड़र (गंधद्रव्य)। (५) संत्र के अनुसार शक्ति पूजा की एक मुद्रा।

खड्गपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की कटारी जो प्रायः एक हाथ लंबी और दो अंगुल चौड़ी होती थी और जिसका व्यवहार बहुत निकट घाए हुए शत्रु पर प्रहार करने के लिये होता था।

खड्गपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० दे० "खड्गपुत्र"।

खड्गारीट—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े की ढाल।

खड्गिक—संज्ञा पुं० (१) खाद्येत् करनेवाला। शिकारी। (२) भैंस के दूध का फेन।

खड्गी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके पास राज हो। खड्गधारी। (२) गेंडा।

खड्ग—संज्ञा पुं० [सं० राघ] गड्ढा। गड़ा।

खड्गडा—संज्ञा पुं० [सं० खत = खड्ग] (१) गड्ढा। गड़ा। (२) बहुत अधिक राग के कारण पड़ा हुआ चिड़।

खगक—संज्ञा पुं० [सं० खनक] चूड़ा। मूसा। (हिं०)

खगनाडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नाथ + नाडिका] धर्म घड़ी। (हिं०)

खतंग—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का कपूर जिसका रंग कुछ मैलापन लिए होता है।

खन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पत्र। चिट्ठी।

धा०—सूत किताबत = पत्र व्यवहार।

(२) खिराबत। जैसे, मैं पहचानता हूँ, यह उन्हीं का सूत है। (३) रेखा। लकीर। धारी। (४) दाढ़ी के बाल। (हिं०) (५) इनामत।

कि० प्र०—धनामा।—वनवाना।

(१) इनामत में माये का ऊपरी भाग।

मुहा०—खन बनाना = माये के ऊपरी भाग को बाँधो को उल्टो से बंधकर बनाना।

संज्ञा स्त्री० [सं० निवि, प्रा० निवि] सुविधि। क्षमीन। (हिं०) खतखोटा—संज्ञा स्त्री० [सं० खन + हिं० खुट्टु] घाव के ऊपर की खुलती हुई पपड़ी। खुरंड। उ०—तिय नित्र हिय जो लगी चलत पिय नखरेल खरोट। सूरत देति न सरसई खोटाँटि खोटाँटि खतखोटे।—विहारी।

खतना—संज्ञा पुं० [सं०] मुसलमानों की एक रस्म, जिसमें उनके लिंग के अगले भाग का बड़ा बुद्धा चमड़ा काट दिया जाता है। सुखत। मुसलमानी।

खतम—वि० [सं०] पूर्ण। समाप्त।

मुहा०—खतम करना = मार डालना। जैसे, एक को तो वहाँ खतम कर डाला है, एक बचा है सो देखा जायगा। खतम होना = मर जाना। प्राण निकल जाना।

खतमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुललैरु की जाति का एक प्रकार का घाघा जो काश्मीर और पश्चिम हिमालय में होता है। इसमें नीले, लाल, बैंगनी आदि कई रंग के फूल होते हैं। पर सफेद फूल की खतमी सब से अच्छी समझी जाती है। इसकी पत्तियाँ पीस कर लोग फोड़े पर लगाते हैं और इसके बीज और जड़ का व्यवहार शोषधियों में होता है। इसके बीज को गुप्पम खतमी और जड़ को रेशा खतमी कहते हैं।

खतरमना—संज्ञा पुं० [हिं० खत्रे] (१) खत्रियों का समाज। (२) वह स्थान जहाँ अधिकतर खत्री रहते हैं।

खतर, खतरा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) डर। भय। मौफ़। (२) आशंका।

खतरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खत्री] खत्री जाति की स्त्री।

खतरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० खत्री + टा (शब्द०)] खत्री। उ०—केते मुगलाने से पदाने सैयद याने बोधि चढ़े। कायव खतरेटे लोह लपेटे देत चपेटे चाह पड़े।—सूदन।

खता—संज्ञा पुं० [सं०] [हिं० खतवार] (१) कम्बू। अग्रपार्थ। (२) घोषा। फुत्तय।

मुहा०—खता खाना = घोषे में पड़ना अथवा घोसे में पड़ कर हानि उठाना।

(३) मूल। पूक। गलती।

मुहा०—खता खाना = चूकना। गलती करना।

खता संज्ञा पुं० [सं० खत] खत। धाव। उ०—सोई साधु को कश्यो बोलार्हे। कैना चरयोदक दिप लार्हे। कस्यो साधु सय को मैं लायो। खता चरण लखि एक बचयो।—पुरुजान।

खताघाट—वि० [सं० खता + का० घाट] दोषी। अग्रपार्थी।

खेति—संज्ञा स्त्री० [सं० खति] खति। डानि। नुकसान। उ०—कई पदमाकर खीं वदन विशाल होत, लाल होत देरी धुन विद्वन की खति की। गमा जी तिहारे गुणवान करे अजगये आन होत चरण सुधानंद की खति की।—पद्माकर।

खतिया-संज्ञा पुं० दे० "खती" ।
 संज्ञा स्त्री० [हिं० खत्ता] छोटा गडदा ।
 खतियाना-क्रि० सं० [हिं० खत्ता] प्रति दिन के प्रायः व्यय और क्रय विक्रय आदि को खते में अलग अलग मद में लिखना ।
 खतियानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खतियाना] (१) वह बही या किताब जिसमें खतियाया जाय । खाता । (२) खतियाने का काम । (३) पटवारी का वह कामज जिसमें प्रत्येक अंशामी का रकबा और लगान आदि दर्ज हों ।
 खत्ता-संज्ञा पुं० [सं० खत्ता] [स्त्री० खती] (१) गडदा । (२) अन्न रखने का स्थान । (३) नील या शेरार वनागैका गडदा ।
 खत्म-वि० दे० "खतम" ।
 खत्रवाटख, खत्रवाट-संज्ञा स्त्री० [सं० शत्री + वट (भाष०)] (१) खत्रीपन । (२) वीरता । (डि०) ।
 खत्रिय-संज्ञा पुं० [सं० खत्रिय, प्रा० खत्रिय] खत्रिय । (डि०) ।
 खत्री-संज्ञा पुं० [सं० शत्रिय, प्रा० खत्रिय] [स्त्री० खतरानी] (१) हिंदुओं में खत्रियों के अंतर्गत एक जाति जो अधिकतर पंजाब में बसती है । इस जाति के लोग प्रायः व्यापार करते हैं । (२) खत्रिय । (डि०) ।
 खत्री परदेदार-संज्ञा स्त्री० लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का टप्पा जिससे कपड़ों पर बेल बूटे छुपे जाते हैं । यह टप्पा ३ इंच से ६ इंच तक लंबा होता है ।
 खत्रीवाटख-संज्ञा स्त्री० दे० "खत्रवट" ।
 खद-संज्ञा पुं० [सं० खद वा निषिद्ध] सुसलमान । (डि०)
 खदखदाना-क्रि० प्र० दे० "खदयदाना" ।
 खदवदाना-क्रि० प्र० [अनु०] "खदवद" शब्द करना जो प्रायः किसी चीज के उबलने से उत्पन्न होता है ।
 खदरा-संज्ञा पुं० [हिं० खत्ता] (१) गडदा । (२) बिना निकाला हुआ छोटा बैल । यद्वा ।
 खि [सं० खद] निकम्मा । रही । बेकाम का । जैसे, खदरा माल ।
 खदशा-संज्ञा पुं० [अ०] भय । डर । घारांका ।
 खदान-संज्ञा स्त्री० [हिं० खोदना वा खान] वह गडदा जिसे खोद कर उसके भीतर से कोई पदार्थ निकाला जाय । खान ।
 खदिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वौर का पेड़ । (२) वौर । कथ्या । (३) चंद्रमा । (४) इंद्र । (५) एक शक्ति का नाम ।
 खदिरपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] लानवंती या लजापुर नाम की लता ।
 खदिरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वराहक्रांती । (२) लानवंती । लजापुर ।
 खदी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की घास जो तालों में उत्पन्न होती है ।
 खदीय-संज्ञा पुं० [फ़ा०] मिस्र के बादशाह की उपाधि ।
 खदुका-संज्ञा पुं० [सं० खदक = खण्डन] (१) मद्गहन से कड़ू लेकर व्यापार करनेवाला श्रादमी । (२) श्राणी । कड़ूदार ।

खदुहा-संज्ञा पुं० [हिं० खदुका] छोटी जाति का या छोटा व्यापार करनेवाला मनुष्य ।
 खदुर्यासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की एक शक्ति का नाम ।
 खदेरना-क्रि० सं० [हिं० खेरना] हटाना । भगाना । दूर करना ।
 खद्योत-संज्ञ पुं० [सं०] (१) जुगनू । (२) सूर्य ।
 खद्योतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल बहुत विषैला होता है ।
 खनकी-संज्ञा पुं० [सं० खन] (१) खण । खमडा । (२) समय । बक । (३) तुरंत । तत्काल । उ०—चेरी प्राय सुनत खन धाईं । हीरामन लै प्राय घोलाईं ।—जायसी ।
 संज्ञा पुं० [सं० खड] (मकान का) खंड । मरतिय । तहा । भंजिल । जैसे, चार खन का मकान । उ०—चार पन की शरारी के ।—लक्ष्मण ।
 संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का वृक्ष जो "खोर" की तरह होता है । (२) एक प्रकार का कपड़ा जिससे महाराष्ट्र खियाँ पोती बनाती हैं ।
 खनक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूहा । सूया । (२) सेंध लगानेवाला । संधिया खोर । (३) ज़मीन खोदनेवाला । (४) वह स्थान जहाँ सोना आदि उत्पन्न होता है । (५) भूतत्व शास्त्र जाननेवाला ।
 खनकाना-क्रि० प्र० [अनु०] "खन खन" शब्द होना । खनखाना । उ०—कांफिरियां भनकेंगी खरी, खनकेंगी खुरी खन कौ तन तोरे ।—मिथारीदास ।
 खनकाना-क्रि० सं० [अनु०] "खन खन" शब्द उत्पन्न करना ।
 खनखजुरा-संज्ञा पुं० दे० "कनखजुरा" ।
 खनखना-संज्ञा पुं० [अनु०] यह जिससे 'खन खन' शब्द उत्पन्न हो ।
 खनखनाना-क्रि० प्र० [अनु०] 'खन खन' शब्द होना । खनकना ।
 क्रि० सं० [अनु०] 'खन खन' शब्द उत्पन्न करना । जैसे, रूपया खनखनाना ।
 खननाकी-क्रि० सं० [सं० खनन] (१) खोदना । उ०—(क) कीन्हेसि लोथय इंद्रुत घाटी । कीन्हेसि बहुत रहैं खनि माटी ।—जायसी । (ख) रूप खनि कत जाय रे नर जत भयन शुभाव । मूर हरि को भजन करि ले जग मरख नशाय ।—सूर । (२) कोड़ना ।
 खनियत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] खती नामक शीतल ।
 खनयाना-क्रि० सं० [हिं० खनना] खनना का प्रेरणार्थक रूप ।
 खनहनी-वि० [सं० नषि + हनी] (१) दुबला पतला । कमजोर । (२) जिसमें भक्षण न हो । सुंदर । खलपूरत । जैसे, खनहन सुखड़ा ।
 खनिज-वि० [सं०] खान से खोदकर निकाला हुआ ।

खनित्र, खनित्रक—संज्ञा पुं० [सं०] संता नामका रोदने का औजार।
गैनी।

खनाना—क्रि० सं० [हिं० खनना] खनना। खोदना। उ०—राधे-
कृत निकुंज ठाड़ी रोवति। इंदु ज्योति मुखारविंद की चकित
चहूँ दिशि जोवति। हुम शाला अथर्वलव बेलि गहि नख सो
भूमि खनोवति। मुकुलित कच तन घन की ओट छे छँसुवन
चौर निचोवति। सूरदास प्रभु तबी गर्व ते भने प्रेम गति
गोवति।—सूर।

खन्ना—संज्ञा पुं० [सं० खनन = काटना] चारा काटने का स्थान।
खपची—संज्ञा स्त्री० [उ० कमची] (१) कमड़ी। बांस की
पतली तीली। (२) कवाय भूनने की सील। (३) बांस की
पतली पटरी जिससे टाक्टर या जाईह टूटा हुआ धांग
बांधते हैं।

खपटा—संज्ञा पुं० दे० “खपड़ा”।

खपटी—संज्ञा स्त्री० [सं० खपड़ा] (१) छोटा खपड़ा। (२) तारने
के छोटे छोटे टुकड़े जो कढ़ियों के बीच में आइनाबंदी के लिये
जड़े जाते हैं।

खपड़भार—संज्ञा पुं० [हिं० खपड़ा + भारना] किसानों की एक
रसम जो प्रति वर्ष पहले पहल ऊल पेरने के समय की जाती
है। इसमें आसपासों और गरीबों को नया रस पिलाया जाता
है और थोड़ा मुड़ बना कर देवता के निमित्त प्रसाद बाँटा
जाता है।

खपड़ा—संज्ञा पुं० [सं० खपर, प्रा० खपट] (१) मिट्टी का पका
हुआ टुकड़ा जो मकान की छाजन पर रखने के काम आता
है। यह प्रायः दो प्रकार का होता है। एक प्रकार का खपड़ा
चरदा और औराकर होता है जिसे “धपुआ” या “पट्टी”
कहते हैं। और दूसरे प्रकार का खपड़ा नाली के आकार का
और लंबा होता है, इसे “नरिया” कहते हैं। “धपुआ”
खपड़ा छाजन पर बिछा कर उनकी संधियों पर “नरिया”
खपड़ा बाँधा कर रख देते हैं। भिन्न भिन्न स्थानों के खपड़ों
के आकार प्रकार आदि में थोड़ा बहुत भेद होता है।
नए ढंग के औराड़ी खपड़े केवल “धपुआ” के आकार के
होने हैं और उनमें “नरिया” की आवश्यकता नहीं होती।
क्रि० प्र०—छाना।

(२) मिट्टी के घड़े के नीचे का आधा भाग जो मोल होता
है। (३) मिट्टी का यह वस्तुन जिसमें मिलसंगे भील
माँगे हैं। खपपर। (४) मिट्टी के टूटे हुए वस्तुन का टुकड़ा।
ठिकरा। (५) कड़ुप की पीठ पर का कड़ा डकन।

संज्ञा पुं० [सं० खपण] वह तीर जिसका फल थोड़ा हो।
संज्ञा पुं० [दे०] गेहूँ में होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

खपड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० खपर] (१) मिट्टी की वह हड़िया जिसमें
भाड़ूँने दाना भूनते हैं। (२) नाँद की तरह का मिट्टी का
घोरा वस्तुन। (३) दे० “खोपड़ी”।

खपड़ूल—संज्ञा स्त्री० दे० “खरैल”।

खपन, खपती—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपना] (१) समावेश। समाई।
जुगुप्सा। (२) माल की कटती या थिकी।

खपना—क्रि० प्र० [सं० खेपण] [संज्ञा खपत] (१) किसी प्रकार
व्यय होना। लगना। कटना। काम में आना जैसे, (क) याजार
में माल खपना। (ख) व्याह में खपना खपना। (ग) पूरी में ची
खपना। (२) निभना। चलाजाना। गुजर होना। समाई होना।
जैसे, बहुत से शरछे खपने में दो चार घुरे खप भी खप जाते
हैं। (३) नष्ट होना। उ०—(क) जो खेर भरे नू जाता है वह
खेप मियाँ मत जान खपनी। श्रय कोई घड़ी पल साहत में
यह खेप बदन की है खपनी।—नजीर। (ख) इस खुद
में कई हजार अदमी खप गए।

संयोग क्रि०—जाना।

(४) तंग होना। टिक होना।

खपर—संज्ञा पुं० दे० “खपड़ा”।

खपरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० खपरि] भूरे रंग का एक खनिज पदार्थ
जो वैद्यक में जलसे का उपघातु और चय, उजर, विप और
कुट आदि का दूर करनेवाला माना गया है। यह अर्थात् के अंजन
और सुम्ने आदि में भी पड़ता है। फारस आदि स्थानों में
नकली खपरिया भी बनती है।

पर्या०—चतुष्टय। दुर्बिका। रसक।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खपड़ा का खपण] (१) छोटा खपड़ा। (२)
एक प्रकार का कीड़ा जो चने की फसल में लगता है।

खपरैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपड़ा + ऐल (अल)] (१) खपड़े से
छाई हुई छत।

मुहा०—खरैल डालना = खपड़े की छत छाना।

(२) वह मकान जिसकी छत खपड़े से छाई हो।

खपली—संज्ञा पुं० [हिं० खपण] एक प्रकार की गेहूँ जो बंबई,
सिंध और मैसूर आदि प्रांतों में पैदा होती है। यह खलीक
की फसल में होती है और इसके दानों को भूरी से भलग
करने में यड़ी कठिनाता होती है। इसे कहीं कहीं गोपी या
कफली भी कहते हैं।

खपाच—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपची] (१) रेशमवालों का एक औजार
जो बाँस की दो खपचियों को तले ऊपर बाँध कर बनाया
जाता है। (२) दे० “खपची”।

खपाची—संज्ञा स्त्री० दे० “खपची”।

खपाट—संज्ञा पुं० [हिं० खपची या कपाट] धाँकनी के मुँह पर लगे
हुए लकड़ी के छोटे ढंडे जिनके सहारे वह उठाई और दवाई
जाती है।

खपाना—क्रि० सं० [सं० खेपण] (१) किसी प्रकार व्यय करना।
लगाना। काम में खाना।

मुहा०—माया या सिर खपाना = सिर पची करना। मतिष्क से बहुत अधिक या व्यर्थ काम लेना। हैयन हेना
(२) निर्वाह करना। निभाना। (३) नष्ट करना। समाप्त करना। उ०—मनों मेयनायक चतुः पावस वायु वृष्टि करि सैन रपयो।—सूर। (ख) भूषण शिवजी गान्धी खग से खपाने खल खाने खलन के खरे भये खीस हैं।—भूषण। (घ) खंग करना। दिक् करना।

खपुआ—वि० [हि० खपना = नष्ट होना] डरपोक। भगोड़ा। कायर। उ०—तुलसी करि केहरि नाद निरे भट खग खगे खपुआ खरके। नल दंतन सों भुजदंड विहंडव, मुंडे सों मुंड परे करके।—तुलसी।
संगा पुं० [हि० खपचो] लकड़ी की वह खपची जो किसी दरवाजे के नीचे उसकी चूल को छेद में दड़ बैधाने के लिये लगाई या टोंकी जाती है।

खपुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधर्व मंडल जो कभी कभी आकाश में उद्भू होता है और जिसके उद्भू होने से अनेक शुभाशुभ फल माने जाते हैं। (२) पुराणानुसार एक नगर जो आकाश में है और जिसे पुलोमा और कालका नाम की दैत्य-कन्याओं के प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने बनाया था। (३) राजा हर्षिचंद्र की पुत्री जो आकाश में स्थित भानी जाती है। (४) सुपारी का पेड़। (५) भद्रमोथा। (६) बाधनस। बधनखा।

खपुप्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश कुसुम। (२) असंभव धात। अनहोमी घटना।

खपुड—संज्ञा पुं० दे० "खप्पर"।

खप्पर—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] (१) तसले के आकार का मिट्टी का पात्र। (२) काली देवी का वह पात्र जिसमें वह स्फिर पान करती हैं।

मुहा०—खप्पर भरना = खप्पर में मंदिर आदि भर कर देवी पर चढ़ाना।

(३) सिचापात्र। (४) लोपड़ी।

खपुगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) अमरसन्नता। नाराजगी। (२) क्रोध। क्रोध।

खपुगा—वि० [अ०] (१) अमरसन्न। नाराज। नाखुश। (२) क्रुद्ध रूप।

खपुगी—वि० [अ०] (१) अल्प। थोड़ा। कम। (२) हलका। (३) तुच्छ। क्षुद्र। (४) लजित। शरमिंदा।

खपुगी—वि० [अ०] दे० "खपुगी"।

खपुफा—संज्ञा पुं० [देग०] कुत्ती का एक वैध। इसमें विपरी की गरदन पर चाप हाथ से थपकी देकर तुरंत अपने दाहिने हाथ में उसे इस प्रकार फांस लेते हैं, जिसमें अपनी फलाई उसके गले पर रहे और तब अपने चाप हाथ से उसका दाहिना

पहुँचा पकड़ कर थोड़ा ऊपर उठाते या झटका देते हैं, जिससे विपरी तिर पड़ता है।

खबर—संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) समाचार। वृत्त। हाल। उ०—भूप हार तिन खबरि जगई। वरारय गृप सुनि लीं थोलाई।—तुलसी।

कि० प्र०—आना।—जाना।—पहुँचना।—पाना।—भेजना।—मिलना।—खाना।—सुनना।

मुहा०—खबर उठना = चर्चा फैलना। अफवाह होना। खबर फैलना = खबर उठना। खबर लेना = (१) समाचार जानना वृत्त। (२) दोन दशा पर ध्यान देना सहायता करना, या सहायभूति दिखलाना। जैसे, आ तो कभी हमारी खबर ही नहीं लेते। (३) दंडित करना सजा देना। जैसे, आज उनकी खबर खर ली गई।

(२) सूचना। शान। जानकारी। जैसे, (क) हमें क्या खबर कि आप आए हुए हैं। (ख) उन्हें इन बातों की क्या खबर है।

कि० प्र०—खलना।—होना।

(३) भेजा हुआ समाचार। संदेश।

कि० प्र०—आना।—जाना।—भेजना।—मिलना। आदि।

(४) चेत। सुधि। संज्ञा। जैसे, उन्हें अपने तन की खबर नहीं रहती।

कि० प्र०—रहना।—होना।

(५) पता। खोज।

कि० प्र०—मिलना।—लगना।

खबरगोरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) देवसेल। देवलभास। चौकस। (२) सहायभूति और सहायता।

कि० प्र०—करना।—खलना।

खबरदार—वि० [फा०] (संज्ञा खबरदारी) हेरियार। सजग चेतन्य। सावधान।

खबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] सावधानी। हेरियारी।
खबरि—संज्ञा स्त्री० दे० "खबर"।

खबरिया—संज्ञा स्त्री० दे० "खबर"। उ०—पुष्टत चञ्जी खबरिया मितवा तीर। हर्षित अतिहिं तिरियावा, पहिरत चीर।—रहीम

खबरी—संज्ञा पुं० [फा०] दूत। (हिं०)

खबीस—संज्ञा पुं० [फ०] [अ० खवास, खबीसी] वह जो दुःख और भयंकर हो।

खब्त—संज्ञा पुं० [अ०] [हिं० खप्ती] पागलपन। सनक। मूक मुहा०—खब्त खवार होना = सनक चढ़ना। पागलपन रहना।

खबी—वि० [अ०] जिसे खब्त हो। सनकी। सौदाई। पागल खबर, खबल—संज्ञा पुं० [देग०] दूध नाम की घास।

खब्या—वि० [दे०] (१) बायाँ। दाहिने का उल्टा। (२) बाएँ हाथ से काम करनेवाला।

संस्कृत-वि० [२०] संस्कृत वा हि० साम् । बुद्धा और दुर्बल । दुःखता पतला । उ०—गद् गाय तो बिलकुल संस्कृत हो गई है ।

संस्कृत-वि० [हि० भग्न] (१) मिलाया । मिश्रित करना । जैसे, गेहूँ के आटे में जौ का आटा संस्कृत । (२) उजल पुयल मथाना । उ०—घोड़ि अदिन के डाल टकेला । भलो लरयो थल करत बुँदेला । संभरि खेत सँह पर विचखायो । सुपन के उर साल सलायो ।—आल ।

संस्कृत-वि० [हि० संभग्न = मिलना] पुँशली स्त्री से अपभ्रंश यालक । हिनाल का लड़का

संस्कृत-संज्ञा पु० दे० "संभगर" ।

संस्कृत-संज्ञा पु० [का०] (१) देवान्न । देड़ाई । फज । मुक्का ।

सुहा०—सुम खाना = (१) सुहना । सुफना । दयना । (२) हारना । पराजित होना । नीचा देवना । उ०—(क) पहर रात भर मार मचाई । मुरकयो तुक उर्दा सुम खाई ।—आल । (ख) सुदन समर साहि सैन गुन गुन गनी हनी देह गोलिन न खाई खेत खम है ।—सुदन । सुम टोकना = (१) लड़ने के लिये ताल टोकना । उ०—घ्रापू तहाँ जहाँ खल छुलकारी । फँट बाँधि सुम टोकि खरारी ।—लखलू । (२) टड़ता दिल-बाना । सुम टोक कर = (१) ताल टोक कर । (२) टड़ता या निश्चय पूर्वक । जैर देकर । जैसे, मैं सुम टोक कर यह थात कह सकता हूँ । सुम बजाना या मारना = दे० "सुम टोकना" ।

सुहा०—सुमदम । सुमदार ।

(२) गाने के बीच बीच में वह विभ्राम जो लय में लोच या लचक लाने के लिये लिया जाता है ।

सुहा० प्र०—खेना ।

संस्कृत-वि० अ० [अ०] लय लय शब्द करना । उ०—सुम-कंत थीर करि करि सुचोस । सुमकंत सुरंगम पाइ पोष ।—सुदन ।

संस्कृत-संज्ञा पु० [का०] सुम + अ०] पुरपार्थ । साहस ।

संस्कृत-वि० [का०] मुक्का हुआ । टेढ़ा ।

संस्कृत-वि० [हि० सं] दे० "संभरना" ।

संस्कृत-संज्ञा पु० [अ०] सुमसः = पंच सक्थी] (१) एक प्रकार की गजल जिसके प्रत्येक थंड में पांच चरण होते हैं । (२) संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमें पंच आघात और तीन खाली होते हैं । इसका योज यह है । धा, धा, केटे, तागू तरे केटे, धा, धा, धा ।

संस्कृत-संज्ञा पु० दे० "सुमा" । (हि०)

संस्कृत-संज्ञा पु० [दे०] (१) रत्न के हरे फल जो पश्चिम में

भेड़, पकरी और गाँवों को मिलाए जाते हैं । (२) जहाँ में असुख की लड़ाई । लड़नी ।

संस्कृत-संज्ञा पु० [अ०] (१) गूँधे हुए आटे का सड़ाव ।

सुहा० प्र०—उटना ।—उठाना ।

सुहा०—सुमीर विगड़ना = गूँधे हुए आटे का अधिक उठने के कारण बहुत लट्टा हो जाना । सुमीर खटा होना = दे० "सुमीर विगड़ना" ।

(२) गूँध कर उठाना हुआ आटा । माया । (३) कटहल अन्नदास आदि को सड़ा कर तैयार किया एक पदार्थ जो तंत्राह में उसे सुगंधित करने के लिये डाला जाता है । (४) स्वभाव । प्रकृति ।

सुहा०—सुमीर विगड़ना = स्वभाव या व्यवहार आदि में भेद पड़ना ।

संस्कृत-वि० पु० [अ०] [अ०] सुमीरी] (१) सुमीर उठा कर बनाया या सुमीर मिलाया हुआ । जैसे, सुमीरी रोटी । सुमीर तंत्राह । (२) चीनी या शरीर में पका कर बनाई हुई शोषधि जैसे, सुमीर धनपत्रा ।

संस्कृत-संज्ञा पु० [दे०] एक छोटा सदावहार पेड़ । यह भारतवर्ष, बर्मा और अंधमन टापू में समुद्र के मटियाले किनारों और दरारों में उगता होता है । इसके छिलके में सजी का अंध अधिक होता है और यह चमड़ा सिम्माने के काम आता है । इससे एक प्रकार का रंग निकलता है जिसमें सूती कपड़े रंगे जाते हैं । इसके फल खाने में मीठे होते हैं और खाये जाते हैं । इसकी छालियों से सूत की तरह पतली जटा निकलती है जिससे एक प्रकार का नमक बनता है । इसकी लकड़ी भी अच्छी होती है पर बहुत कम काम में आती है । इसे मोर और राई भी कहते हैं ।

संस्कृत-वि० दे० "सुमोश" ।

संस्कृत-संज्ञा स्त्री० दे० "सुमोशी" ।

संस्कृत-संज्ञा स्त्री० [हि० संभवती] मालकोस राग की दूसरी रागिनी । यह पाड़व जाति की रागिनी है और रात के दूसरे पहर की पिछली घड़ी में गाई जाती है ।

संस्कृत-संज्ञा पु० [हि० संभवत् + कान्हडा] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो रात के दूसरे पहर में गाया जाता है ।

संस्कृत-संज्ञा स्त्री० [हि० संभवत् + देरी] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो संभावती और देरी से मिल कर बनती है ।

संस्कृत-संज्ञा स्त्री० दे० "संभवत्" ।

संस्कृत-संज्ञा स्त्री० [सं० नाय] (१) विनाय । ध्य । (२) प्रलय । क्षयान्त-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) धरोहर रखी हुई वस्तु न देना अथवा कम देना । गुवन । (२) चोरी या बहूनी ।

संस्कृत-संज्ञा पु० दे० "संखाल" ।

संस्कृत-वि० दे० "संखाली" ।

मुहा०—माधा या सिर खपाना = सिर पधा करना । मतिष्क से बहुत अधिक या व्यर्थ काम लेना । हेरान देना
(२) निर्वाह करना । निमाना । (३) नष्ट करना । समाप्त करना । उ०—मनें मेघनाथक ऋतु पावस घाय वृष्टि करि सैन खपाने।—सुर । (ख) भूषण शिवाजी गान्धी तमग से खपाने खल खाने खाने खलन के खरे भये व्रीस हैं ।—भूषण ।
(४) तंग करना । दिक् करना ।

खपुआ—वि० [हि० खपना = नष्ट होना] दरपोक । भगोड़ा । कायर । उ०—तुलसी करि कंहरि नाद भिरे भट खगा खने खपुआ खरके । नख दंतन सेां भुजदंड विहंडत, मुंडे सेां मुंडे परे करके ।—तुलसी ।
संज्ञा पुं० [हि० खपना] लकड़ी की वह खपची जो किसी दरवाजे के नीचे उसकी चूल को छेद में रड़ बैठाने के लिये लगाई या ठेंकी जाती है ।

खपुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधर्व मंडल जो कभी कभी आकाश में उदय होता है और जिसके उदय होने से अनेक शुभाशुभ फल माने जाते हैं । (२) पुराणानुसार एक नगर जो आकाश में है और जिसे पुलोमा और कालका नाम की देव-कन्याओं के प्रार्थना करने पर प्रज्ञा ने बनाया था । (३) राजा हर्षिंद्र की पुरी जो आकाश में स्थित मानी जाती है । (४) सुपारी का पेड़ । (५) भद्रमोषा । (६) बाधनस । धयनसा ।

खपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश कुसुम । (२) असेभव वात । अरनहेली घटना ।

खपुड—संज्ञा पुं० दे० “खप्पर” ।
खप्पर—संज्ञा पुं० [सं० खपर] (१) तसले के थाकार का मिट्टी का पात्र । (२) काली देवी का वह पात्र जिसमें वह स्थिर पान करती हैं ।

मुहा०—खप्पर भरना = खप्पर में मदिरा आदि भर कर देवी पर चढ़ाना ।
(३) बिचापात्र । (४) खोपड़ी ।

खफ़ी—संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) अग्रमज्जता । नाराजगी । (२) क्रोध । कोप ।

खफ़ा—वि० [फ०] (१) अग्रसज्ज । नाराज । नाखुश । (२) क्रुद्ध रूढ़ ।

खफ़ीक—वि० [फ०] (१) अल्प । थोड़ा । कम । (२) हलका । (३) सुच्छ । झुड़ । (४) लज्जित । शर्मिंदा ।

खफ़ीफ़ा—वि० स्त्री० [फ०] दे० “खफ़ीक” ।

खफ़ा—संज्ञा पुं० [देग०] कुस्ती का एक पेंच । इसमें विपक्षी की गर्दन पर बाएँ हाथ से धपकी देकर तुरंत अपने दाहिने हाथ में उसे हल प्रकार फांस लेते हैं, जिसमें अपनी कलाई उसने गले पर रहे और तब अपने बाएँ हाथ से उसका दाहिना

पट्टा या पकड़ कर थोड़ा ऊपर उठाते या झटका देते हैं, जिस से विपक्षी सिर पड़ता है ।

खबर—संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) समाचार । वृत्तान्त । हाल । उ०—भूप द्वार तिन खबरी जनाई । दशरथ नृप मुनि लीन बोलाई ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—थाना ।—जाना ।—पहुँचना ।—थाना ।—भोजना ।—मिलना ।—खाना ।—सुनना ।

मुहा०—खबर उड़ना = चर्चा फैलना । अफ़वाह होना । खबर फैलना = खबर उड़ना । खबर लेना = (१) समाचार जानना । वृत्तान्त समझना । (२) दैनिक दशा पर ध्यान देना । सहायता करना, या सहायता दिलवाना । जैसे, आप तो कभी हमारी खबर ही नहीं लेते । (३) दंडित करना । सजा देना । जैसे, ध्यान उनकी खूब खबर ली गई ।

(२) सूचना । ज्ञान । जानकारी । जैसे, (क) हमें क्या खबर कि आप आए हुए हैं । (ख) उन्हें इन बातों की क्या खबर है ।

क्रि० प्र०—खलना ।—होना ।

(३) भेजा हुआ समाचार । वैंदेस ।

क्रि० प्र०—आना ।—जाना ।—भोजना ।—मिलना । आदि ।

(४) खेत । बुधि । संज्ञा । जैसे, उन्हें अपने तन की भी खबर नहीं रहती ।

क्रि० प्र०—रहना ।—होना ।

(५) पता । खोज ।

क्रि० प्र०—मिलना ।—जानना ।

खबरगोरी—संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) देखरेख । देखभाष । चौकशी । (२) सहायता और सहायता ।

क्रि० प्र०—करना ।—खलना ।

खबरदार—वि० [फ०] (संज्ञा खबरदारी) होशियार । समग्र । चैतन्य । सावधान ।

खबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फ०] सावधानी । होशियारी ।

खबरी—संज्ञा स्त्री० दे० “खबर” ।

खबरिया—संज्ञा स्त्री० दे० “खबर” । उ०—पूजित चकी खबरिया, मितवातीर । हर्षित अतिहिं तिरियवा, पहिरत धीर।—रहीम ।

खबरी—संज्ञा पुं० [फ०] दूत । (हिं०)

खबीस—संज्ञा पुं० [फ०] [भाव० खबसत, खबीसी] वह जो दुष्ट और भयंकर हो ।

खुदत—संज्ञा पुं० [फ०] [हिं० खन्तो] पागलपन । सनक । क्रुद्ध ।

मुहा०—खुदत खबर होना = सनक चढ़ना । पागलपन रहना ।

खुदती—वि० [फ०] जिसे खुदत हो । सनकी । सौदाई । पागल ।

खुदर, **खुदल**—संज्ञा पुं० [देग०] दूध नाम की फास ।

खुदा—वि० [फ०] (१) बायीं । दाहिने का उल्टा । (२) बाएँ हाथ से काम करनेवाला ।

खम्भङ्गा-वि० [५० खम्बिता वा हि० खामड] बुडूवा और दुबैल ।
दुबला पतला । उ०—यह गाय तो बिलकुल खम्भङ्ग हो
गई है ।

खम्भरना-वि०-क्रि० सं० [हि० भरना] (१) मिलाया । मिश्रित करना ।
जैसे, गेहूँ के आटे में जौ का आटा खम्भरना । (२) उपल
पुयल मथाना । उ०—आदि दिन के डाल दकेला । भला
सरसो बल करत बुँदेला । खम्भरि खेत तहँ पर बिचबायो ।
गुवन के उर साल सलायो ।—हाल ।

खम्भरना-वि० [हि० खम्भरना = मिश्रण] पुँडवली स्त्री से उपज
यालक । खिनाल का लड्डका

खम्भर-संज्ञा पुं० दे० “खम्भर” ।

खम्भ-संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) टेढ़ापन । टेढ़ाई । कज । मुकव ।

मुदा०—खम खाना = (१) मुडना । मुकना । दयना । (२)
हराना । पराजित होना । नीचा देखना । उ०—(क) पहल रात
भर मार मचाई । मुरखयो हुक उर्हा खम खाई ।—हाल ।
(ख) सुदन समर साहि सैन वृन वृन गनी हनी देह गोलिन
न खाई खेत खम है ।—सुदन । खम टोकना = (१) लड़ने
के लिये ताल टोकना । उ०—आपू तहँ जहाँ खल मुलकारी ।
फँट बांधि खम टोकि खरारी ।—खलवू । (२) दृढ़ता दिल-
खाना । खम टोक कर = (१) ताल टोक कर । (२) दृढ़ता या
निश्चय पूर्वक । जेर देकर । जैसे, मैं खम टोक कर यह बात
कह सकता हूँ । खम बजाना या मारना = दे० “खम
टोकना” ।

घा०—खमदम । खमदार ।

(२) गाने के बीच बीच में बह विधाम जो लय में लोच या
लचक लाने के लिये लिया जाता है ।

क्रि० प्र०—खेना ।

खमकना-क्रि० अ० [अ०] खम खम शब्द करना । उ०—खम-
कंत थीर करि करि सुघोल । लमकंत सुरंगम पाह पोष
।—सुदन ।

खमदम-संज्ञा पुं० [फ्रा० खम + दम] पुरुषार्थ । साहस ।

खमदार-वि० [फ्रा०] झुका हुआ । टेढ़ा ।

खमसना-वि०-क्रि० सं० दे० “खम्भाना” ।

खमसा-संज्ञा पुं० [५० खमसः = पंच संख्या] (१) एक प्रकार की
गज़ल जिसके प्रत्येक शब्द में पंच चरख होते हैं । (२) संगीत
में एक प्रकार का ताल जिसमें पंच आघात और तीन खाली

होते हैं । इसका योज यह है । धा, धा, केडे, तागू तरे केडे,
४ ० +
तागर, देत, धा ।

खमा-संज्ञा स्त्री० दे० “खमा” । (हि०)

खमाली-संज्ञा पुं० [रंग०] (१) लम्बे के हरे फल जो पवित्रम में

भेड़, बकरी और गावों को रिलाप जाते हैं । (२) जहाज में
असवाय की लदाई । लदनी ।

खमीर-संज्ञा पुं० [५०] (१) गूँधे हुए आटे का सड़ाव ।

क्रि० प्र०—उठना ।—उठाना ।

मुहा०—खमीर विगड़ना = गूँधे हुए आटे का अधिक उठने के
कारण बहुत लट्टा हो जाना । खमीर खटा होना = दे० “खमीर
विगड़ना” ।

(२) गूँध कर उड़ाया हुआ आटा । माया । (३) कटहल
अनजाल आदि को सड़ा कर तैयार किया एक पदार्थ जो तंबाकू
में उसे सुगंधित करने के लिये डाला जाता है । (४) स्वभाव ।
प्रकृति ।

मुहा०—खमीर विगड़ना = स्वभाव या व्यवहार आदि में भेद
पड़ना ।

खमीर-वि० पुं० [५०] [स्त्री० खमीरी] (१) खमीर उड़ा कर
बनाया या खमीर मिलाया हुआ । जैसे, खमीरी रोटी ।
खमीरा तंबाकू । (२) चीनी या शरीर में पका कर बनाई हुई
शोषधि जैसे, खमीरा बनगुला ।

खमो-संज्ञा पुं० [रंग०] एक छोटा सदाचहार पेड़ । यह भारतवर्ष,
यम्मा और श्रीलंका आदि में समुद्र के मरिचाले किनारों और
दरारों में उत्पन्न होता है । इसके खिलके में सजी की का शंख
अधिक होता है और वह चमड़ा सिमाने के काम आता है ।
इससे एक प्रकार का रंग निकलता है जिसमें सूती कपड़े रंगे
जाते हैं । इसके फल खाने में मीठे होते हैं और खाये जाते हैं ।
इसकी खालियों से सूत की तरह पतली जटा निकलती है
जिससे एक प्रकार का नमक बनता है । इसकी लकड़ी भी
अच्छी होती है पर बहुत कम काम में आती है । इसे भोर
और राई भी कहते हैं ।

खमोश-वि० दे० “खमोशा” ।

खमोशी-संज्ञा स्त्री० दे० “खमोशा” ।

खम्माच-संज्ञा स्त्री० [हि० खम्बाने] मालकोट राग की दूसरी
रागिनी । यह पाड़व जाति की रागिनी है और रात के दूसरे
पहर की पिडली घड़ी में गाई जाती है ।

खम्माच कान्हूड़ा-संज्ञा पुं० [हि० खम्माच + कान्हूड़ा] संपूर्ण जाति
का एक संकर राग जो रात के दूसरे पहर में गाया जाता है ।

खम्माच टोरी-संज्ञा स्त्री० [हि० खम्बाने + टोरी] संपूर्ण जाति की
एक रागिनी जो खम्बावती और टोरी से मिल कर बगती है ।

खम्माची-संज्ञा स्त्री० दे० “खम्माच” ।

खय*ी-संज्ञा स्त्री० [सं० खय] (१) विनाश । जय । (२) प्रलय ।
खयानत-संज्ञा स्त्री० [५०] (१) परोहर रची हुई वस्तु न देना
अथवा कम देना । गुवन । (२) बेचरी या बेईमानी ।

खयाल-संज्ञा पुं० दे० “ख्याल” ।

खयाली-वि० दे० “खयाली” ।

खरजा—संज्ञा पुं० [दे०] (१) यह ईंट जो बहुत अधिक पकने के कारण जल गई हो। भाँवा। (२) खड़जा।

खर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गधा। (२) खर। (३) बगला। (४) कौवा। (५) एक राक्षस जो रावण का भाई था और पंचवटी में रामचंद्र के हाथ से मारा गया था। (६) टण। तिनका। धास।

यौ०—खरपतवार = कूड़ा फरकट।

(७) ६० संवसरो में से २५ वाँ संवत्। इस वर्ष में बहुत उपद्रव होते हैं। (८) प्रलंबासुर का एक नाम। (९) छप्य छंद का एक भेद। (१०) एक चौकोर वेदी जिस पर यज्ञों में यज्ञपात्र रखे जाते हैं। (११) कंक। (१२) कुरा पत्नी। (१३) सूर्य का पार्ष्वधर।

वि [सं०] (१) कड़ा। सख्त। (२) तेज़। तीक्ष्ण। (३) घना। मोटा। (४) दानिकर। अमौलिक। जैसे, खर मास। (५) तेज़ धार का। (६) आड़ा। तिरछा।

संज्ञा पुं० दे० “खराई”।

†संज्ञा पुं० [सं० खर = तेज] करारा। कुरकुरा।

मुहा०—(बी) खर करना = (धी) गरम कर के लगाना।

खरक—संज्ञा पुं० [सं० खड़क = रथाण्ड] (१) जंगलों आदि में लकड़ियों के खंभे गाड़ कर और उनमें झाड़ी बसिलियाँ बांध कर घेरा और छाया हुआ स्थान जिसमें गाएँ रखी जाती हैं। इसे कहीं कहीं ठाड़ा भी कहते हैं। उ०—यहूरा सखी एक भयो खरका तेँ महुँ तेहिँ दैरि पखेरेा कियो।—सेवक। (२) पशुओं के चरने का स्थान। चौरों हुए पतले बाँसों को बाँध कर बनाया हुआ किवाड़ जिसे गरीब लोग अपने घरों में लगाते हैं। टट्टर।

संज्ञा स्त्री० दे० “खटक” या “खड़क”।

खरकन्ता—संज्ञा पुं० [दे०] लटोरे की जाति का एक पत्नी।

खरकना—कि० ख० [खनु०] खरखराना। खर खर शब्द होना। कि० ख० [हिं० खर] (१) फाँस जुभने के कारण दर्द होना। (२) फाँस जुभने का सा दर्द होना। (३) खड़कना। सरकना। चलदेना। उ०—मुलसी करि केहरि नादु भिरे भट खग खगे, खपुआ खरके।

खरकचट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खर = तिनका वा आड़ा] दो श्रंगुल चौड़ी एक चिकनी पट्टी जो कपड़े में दो छूँटियों पर थटका कर झाड़ी रखी जाती है और जिस पर ताना फैला कर विनाई होती है। इसका व्यवहार प्रायः गुलाबदन आदि विनने के समय होता है।

खरका—संज्ञा पुं० [हिं० खर] कड़ा तिनका।

मुहा०—खरका करना = भोजन के उपरांत दाँतों में कैंबे हुए

अन्न आदि को तिनके से खोद कर निकालना।

संज्ञा पुं० दे० “खरक”।

खरकाय—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पत्नी। (हिं०)

खरखरा—वि० दे० “खुरखुरा”।

खरखरा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) भगड़ा। लड़कें। (२) भय। आशंका। डर। (३) मँफट। बलेड़ा।

खरखौकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खर + खाना] खर, रूप आदि खाने-पाने की धानि। उ०—लागि दयारि पहार ठही खरकी कवि लंक यया खरखौकी।—मुलसी।

खरग—संज्ञा पुं० दे० “खरग”।

खरगोश—संज्ञा पुं० [फा०] खरहा। चीगाड़ा।

विरीप—दे० “खरहा”।

खरख—संज्ञा पुं० दे० “खरख”।

खरचना—कि० ख० [फा० खर्न] (१) व्यय करना। खर्च करना। उठाना। लगाना। (२) व्यवहार में लाना। धरतना।

खरचा—संज्ञा पुं० दे० “खर्चा”।

खरची—संज्ञा स्त्री० दे० “खर्ची”।

खरज—संज्ञा पुं० दे० “पड़ज”।

खरजूर—संज्ञा पुं० दे० “खजूर” या “खनूर”।

खरतरगच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] जैन संप्रदाय की एक शाखा।

खरतली—वि० [हिं० खर] (१) खरा। स्पष्टवादी। (२) शुद्ध हृदयवाला। (३) सुरीष्पत न फूरेनाला। शील संकेच न करनेवाला। (४) साफ़। स्पष्ट।

कि० प्र०—रहना।—कहना।

(५) प्रचंड। उग्र।

खरतुआ—संज्ञा पुं० [हिं० खर + कपुआ] यद्युप की तरह की एक घास जो पंजाब और मध्य प्रदेश में अधिकता से होती है। इसे खमर यद्युआ भी कहते हैं।

खरदंड—संज्ञा पुं० [सं०] पद्म।

खरदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरदना] खरादने का औजार। खराद। कजनी।

खरदा—संज्ञा पुं० [दे०] अंगूर का एक रोग जिसमें उसकी दालियों पर लाल रंग की उरुनी चैठ जाती है और पौधे की बाड़ नष्ट हो जाती है।

खरदूषण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खर और दूषण नामक राक्षस जो रावण के भाई थे। (२) धनूरा।

वि० [सं०] जिसमें बहुत से दोष हों।

खरधार—संज्ञा पुं० [सं०] तेज धारावाला अस्त्र।

खरध्वंसी—संज्ञा पुं० [सं० खरध्वंसीन्] (१) रामचंद्र। (२) कृष्णचंद्र।

खरनादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रेणुका नाम का गंधद्रव्य।

खरना—कि० ख० [हिं० खर] उनको पानी में डबाल कर साफ़ करना।

खरपत—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का वृक्ष जो, रुहेलखंड, बम्बय, बर्मा तथा नीलगिरि में अधिकता से होता है और

जो जेठ वैशाख में फूलता और काविक अगहन में फलता है। इसका फल मन्केय के आकार का होता और कच्चा खाया जाता है। इसकी पत्तियों को हाथी बहुत रुचि से खाते हैं। इसकी छाल से घमड़ा तिकाया जाता है और इसमें से हरा-पन लिए हुए पीले रंग का एक प्रकार का रोंद निकलता है। इसे योगर भी कहते हैं।

खरपा—संज्ञा पुं० [सं० खर्] शीघ्रगता।

खरब—संज्ञा पुं० [सं० खर्] (१) मी श्रय। संख्या का चारहवाँ स्थान। (२) बाह्ये स्थान की संख्या।

खरबुजा—संज्ञा पुं० [फ्रा० खर्बुजा] (१) ककड़ी की जाति की एक खेल जिसके फल गोल, बड़े मीठे और सुगंधित होते हैं। इसके बीज प्रायः नदियों के किनारे पूर माघ में गड़दे खोद कर बो दिए जाते हैं और प्रास हूए से ढक दिए जाते हैं जिनसे शीघ्र ही बहुत बड़ी बड़ी बेलें निकल कर चारों ओर खूब फैलती हैं। बीत से आषाढ़ तक इसमें फल लगते हैं। इसकी सरदा, सफेदा, चितला आदि अनेक जातियाँ हैं। इसके बीज डेंडाई के साथ पीस कर पिपू जाते हैं और कई तरह से चीनी आदि में पाक कर खाए जाते हैं। बीजों से एक प्रकार का तेल भी निकल सकता है जो खाने और साबुन बनाने के काम में आ सकता है। (२) इनका फल।

खरबोजना—संज्ञा पुं० [हिं० खर + बोजना] रंगरेजों का वह मट-पट्टा जिस पर रंग का माट रख कर रंग टपकाते हैं।

खरघ्रां—वि० [हिं० खरा] चरित्रहीन। यद्बचलन।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः खियों के लिये ही होता है।

खरभर—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) खरभर का शब्द। (२) हीरा। शेर। गुल गपाड़ा। रौला। (३) हलचल। गड़बड़। उ०—(क) खरभर देखि सकल पुर नारी। सब मिलि देहिँ महीपन गारी।—तुलसी। (ख) होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर परा। दुइ माघ केहि रतिनाथ जेहि कहेँ कोपि कर घनुपर धरा।—तुलसी।

खरभराना—कि० अ० [हिं० खरभर] (१) खरभर शब्द करना। (२) शेर करना। रौला करना। (३) गड़बड़ या हलचल मचाना। (४) चंचल होना। व्याकुल होना।

खरभंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमामात्रों। विचङ्गा।

खरमत्ती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दुष्टता। पापीपन। शरारत।

कि० प्र०—करना।—सूचना।

खरमास—संज्ञा पुं० दे० "खरबोस"।

खरमिटावा—संज्ञा पुं० [हिं० खरदे + मिटाना] जलपान। फलेवा।

खरमुख—संज्ञा पुं० [सं०] एक राष्ट्र का नाम जिसे केकय देश में भरतमी ने मारा था।

खरल—संज्ञा पुं० [सं० गल] पत्थर की गहरी, गोल या लंबोवली हुई जिनमें दूते से ओपधियाँ हूटी जाती हैं। गल।

मुहा०—खरल करना = ओपधि आदि को खरल में डाल कर महीन पीसना। महीन कटना।

खरली—संज्ञा स्त्री० दे० "खली"।

खरबट—संज्ञा स्त्री० [देग०] काठ के दो टुकड़ों से बना हुआ एक तिकोना औजार जिसमें रेती जानेवाली बन्तु को फँसा कर बसे रेतते हैं।

खरवाँस—संज्ञा पुं० [हिं० खर + वाँस] पूस और घेत का महीना जब कि सूर्य धन और मीन का होता है। इन महीनों में मांगलिक कार्य करना बर्जित है।

खरदाला—संज्ञा पुं० [सं०] मंदिर आदि की कुत्सी का वह ऊपरी भाग जिस पर सारी इमारत खड़ी रहती है।

खरस—संज्ञा पुं० [फ्रा० खर्स] रीढ़। भावू। (कर्मदरों की बोली)।

खरसा—संज्ञा पुं० [सं० पडस] एक प्रकार का भोज्य पदार्थ। उ०—भईँ मिथौरी सिरका परा। सोड लाय के सरसा धरा।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की मछली जो आसाम और प्रता देश की नदियों में पाई जाती है।

संज्ञा पुं० [देग०] (१) प्रीम श्वतु। गरमी के दिन। (२) अकाल। कूहत।

संज्ञा पुं० [फ्रा० खरिंग] खान। सुनली। स्मरिश।

खरसान—संज्ञा स्त्री० [हिं० खर + सन] एक प्रकार की सान जो अधिक तीक्ष्ण होती है। इस पर तखवार उतारी जाती है।

उ०—(क) शिष्य खंडा गुरु भसकला चट्टे शब्द खरसान। शब्द सदे संमुख रई निबने शिष्य सुजान।—कबीर। (ख) यासा तेरे नैन की विमान साज सीतल के बलभद्र साने हैं सुहाग खरसान के।—बलभद्र।

खरसुमा—वि० [फ्रा० खर + सुम] जिस (घोड़े) के सुम गधे के सुमों की भांति बिलकुल खड़े हों।

खरसैला—वि० [हिं० खरसा = खान] जिसे सुनकी हुई हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः पशुओं के लिये होता है।

खरहर—संज्ञा पुं० [देग०] बल्लू की जाति का एक पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है। इसकी पत्तियाँ घेर की पत्तियों से बनी होती हैं। फल यलून ही के से होते हैं। इसकी कधी लकड़ी जो सफेद होती है और पकने पर गहरी भूरी हो जाती है मोती के औजार बनाने के काम में आती है। धातु से घमड़ा तिकाया जाता है।

खरहरना—कि० अ० [हिं० खर = तिनका + हरना] झाड़ू देना।

खरहरा—संज्ञा पुं० [हिं० खरहरना] [श्री० अ० खरहरा] (१)

रुहंदा या खरहर की कंठियों से बना हुआ मजदू जिने कंठिया भी कहते हैं। (२) एक पीकेर छोटी पट्टी जिसमें पायु की धनी हुई, छोटे दाँतों की बंधियाँ जड़ी होती हैं। यह पोड़े का बदन सुनकी और उसमें से गर्द और पूत निकालने के

अरंजा-संज्ञा पुं० [दे०] (१) वह ईंट जो बहुत अधिक पकने के कारण जल गई हो। भाँवा। (२) खड़जा।

अर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गधा। (२) खर। (३) बगला। (४) कौवा। (५) एक रावस जो रावण का भाई था और पंचवटी में रामचंद्र के हाथ से मारा गया था। (६) नृप। तिनका। घास।

थी०—अरपतवार = कूड़ा फरफट।

(७) ६० संवत्सरो में से २५ वाँ संवत्। इस वर्ष में बहुत उपद्रव होते हैं। (८) प्रलंबासुर का एक नाम। (९) छप्य छंद का एक भेद। (१०) एक चौकोर वेदी जिस पर यज्ञों में यज्ञपात्र रखे जाते हैं। (११) कंक। (१२) कुर पत्नी। (१३) सूर्य का पार्वर्य चर। वि [सं०] (१) कड़ा। स.प्ल। (२) तेज़। तीक्ष्ण। (३) घना। मोटा। (४) हाकिम। अर्थात्गणिक। जैसे, खर मास। (५) तेज धार का। (६) झाड़ा। तिरछा।

संज्ञा पुं० दे० "खराई"।

संज्ञा पुं० [सं० खर = तेज] करारा। कुरकुरा।

मुहा०—(घी) खर करना = (घी) गरम कर के तपाना।

अरक-संज्ञा पुं० [सं० खरक = रयाण] (१) जंगलों आदि में लकड़ियों के खंभे गाड़ कर और उनमें झाड़ी बलियाँ बांध कर घेरा और छाया हुआ स्थान जिसमें गाएँ रखी जाती हैं। इसे कहीं कहीं ठाड़ा भी कहते हैं। उ०—बसुरा सखी एक भग्यो खरका ते' महुँ तेहि' दैरि पछेरो कियो।—सेवक। (२) पशुओं के चरने का स्थान। चारे हुए पत्तले घोंसों को बांध कर बनाया हुआ किवाड़ जिसे गरीब लोग अपने घरे में लगाते हैं। टट्टर।

संज्ञा स्त्री० दे० "खटक" या "खड़क"।

अरकचा-संज्ञा पुं० [दे०] लटोरे की जाति का एक पत्ती।

अरकना-कि० अ० [अनु०] अरखराना। अर खर शब्द होना। कि० अ० [हिं० खर] (१) फाँस चुमने के कारण दर्द होना। (२) फाँस चुमने का सा दर्द होना। (३) खड़कना। अरकना। चलदेना। उ०—तुलसी की केहरि नाद भिरे भट लग्य खगे, खपुआ खरके।

अरकवट-संज्ञा स्त्री० [हिं० खर = तिनका वा झाड़ा] दो अंगुल चौड़ी एक चिकनी पट्टी जो करघे में दो सूँटियों पर अटका कर झाड़ी रखी जाती है और जिस पर ताना फैला कर बिनाई होती है। इसका व्यवहार प्रायः गुलबदन आदि विनने के समय होता है।

अरका-संज्ञा पुं० [हिं० खर] कड़ा तिनका।

मुहा०—अरका करना = भोजन के उपरांत दूध में फेंके हुए अन्न आदि को तिनके से खोद कर निकालना।

संज्ञा पुं० दे० "खरक"।

अरकाख-संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पत्ती। (हिं०)

अरखरा-वि० दे० "खुरखुरा"।

अरखड़ा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) मगड़ा। लड़ाई। (२) भय। आशंका। डर। (३) अमंजत। बखेड़ा।

अरखौकी*-संज्ञा स्त्री० [हिं० खर + खाना] खर, वृष आदि खाने-वाली शरिन। उ०—लागि दवारि पहार ठही लहकी कपि लंक पया अरखौकी।—तुलसी।

अरग-संज्ञा पुं० दे० "खग"।

अरगोश-संज्ञा पुं० [फा०] खरहा। चौगड़ा।

विशेष—दे० "अरहा"।

अरख-संज्ञा पुं० दे० "खर्व"।

अरचना-कि० सं० [फा० खर्व] (१) व्यव करना। खर्व करना। उठाना। लगाना। (२) व्यवहार में लाना। धरतना।

अरचा-संज्ञा पुं० दे० "खर्चा"।

अरची-संज्ञा स्त्री० दे० "खर्ची"।

अरज-संज्ञा पुं० दे० "पड़ज"।

अरजूर-संज्ञा पुं० दे० "खजूर" या "खनूर"।

अरतरणच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] जैन संप्रदाय की एक शाखा।

अरतला-वि० [हिं० खर] (१) खर। स्पष्टवादी। (२) शुद्ध हृदयवाला। (३) सुरीयवत न कूरनेवाला। शील संकोच न करनेवाला। (४) साफ़। स्पष्ट।

कि० प्र०—रहना।—कहना।

(५) प्रचंड। उग्र।

अरतुआ-संज्ञा पुं० [हिं० खर + कथुआ] कथुप की तरह की एक घास जो पंजाब और मध्य प्रदेश में अधिकता से होती है। इसे चमर कथुआ भी कहते हैं।

अरदंड-संज्ञा पुं० [सं०] पत्र।

अरदनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० अरदान] खरादने का औजार। खराद। कजनी।

अरदा-संज्ञा पुं० [दे०] अंगूठ का एक रोग जिसमें उसकी दालियों पर खाल रंग की बुकनी पैड जाती है और पीपे की बाढ़ नष्ट हो जाती है।

अरदूपख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खर और दूपण नामक रावस जो रावण के भाई थे। (२) धनूरा।

वि० [सं०] जिसमें बहुत से दोष हों।

अरधार-संज्ञा पुं० [सं०] तेज धारवाला अन्न।

अरध्वंसी-संज्ञा पुं० [सं० अरध्वंसिन्] (१) रामचंद्र। (२) कृष्णचंद्र।

अरनादिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रेणुका नाम का गंधद्रव्य।

अरना-कि० सं० [हिं० खर] जन को पानी में डगल कर साफ करना।

अरपत-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का वृष जो, श्वेतसंब, भव्य, धर्मा तथा नीलगिरि में अधिकता से होता है और

जो जेठ वैसाख में फूलता और काठिक अगहन में फलता है। इसका फल मकैये के आकार का होता और कच्चा खाया जाता है। इसकी पत्तियों को हाथी बहुत रुचि से खाते हैं। इसकी छाल से चमड़ा सिक्काया जाता है और इसमें से हरा-पन लिए हुए पीले रंग का एक प्रकार का गोंद निकलता है। इसे पोगर भी कहते हैं।

खरपा—संज्ञा पुं० [सं० खर्व] बीयागला।

खरब—संज्ञा पुं० [सं० खर्व] (१) सै अरब। संख्या का बारहवाँ स्थान। (२) बारहवें स्थान की संख्या।

खरबूजा—संज्ञा पुं० [फा० खबुज] (१) ककड़ी की जाति की एक बेल जिसके फल गोल, बड़े मीठे और सुगंधित होते हैं। इसमें चीन प्रायः नदियों के किनारे पूस माघ में गड़वे खोद कर बो दिए जाते हैं और घास फूस से ढक दिए जाते हैं जिनसे मीघ्र ही बहुत बड़ी बड़ी बेलें निकल कर चारों ओर प्य फैलती हैं। चैत से आषाढ़ तक इसमें फल लगते हैं। इसकी सरदा, सफेदा, चितला आदि अनेक जातियाँ हैं। इसके बीज टंडाई के साथ पीस कर पिए जाते हैं और कई तरह से चीनी आदि में पाग कर खाए जाते हैं। बीजों से एक प्रकार का तेल भी निकल सकता है जो खाने और साबुन बनाने के काम में आ सकता है। (२) इसका फल।

खरबोजना—संज्ञा पुं० [हिं० खार + बोजना] रंगरेजों का वह मट-बड़ना जिस पर रंग का माट रल कर रंग टपकाते हैं।

खरघा—वि० [हिं० खरप] चरित्रहीन।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः खियों के लिये ही होता है। खरभरा—संज्ञा पुं० [खनु०] (१) खरभर का शब्द। (२) हौरा। शेर। गुल गण्डा। रौला। (३) हलचल। गड़बड़। उ०—(क) खरभर देखि सकल पुर नारी। सव मिलि देखि महीपन गारी।—मुलसी। (ख) होनिहार का करतार को रजवार जग खरभर पर। दुष्ट भाष्य केहि रतिनाथ जेहि कहे कोपि कर भनुसर धरा।—मुलसी।

खरमारना—क्रि० अ० [हिं० परभर] (१) खरभर शब्द करना। (२) शेर करना। रौला करना। (३) गड़बड़ या हलचल मचाना। (४) घंवल होना। व्याकुल होना।

खरमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अणामार्ग। चिचड़ा।

खरमस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] बुद्धता। पार्श्वपन। शरारत।

क्रि० प्र०—करना।—सूफना।

खरमास—संज्ञा पुं० दे० "हरवस"।

खरमिटावा—संज्ञा पुं० [हिं० खरट + मिटाना] जलपान। कलेवा।

खरमुख—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जिसे केकर देश में भारतजी ने मारा था।

खरल—संज्ञा पुं० [सं०] खरल, गोल या लंबोवर्ती है। खल।

मुहा०—खरल करना = योग्यि आदि को खरल में डाल कर महीन पीतना। महीन कूटना।

खरली—संज्ञा स्त्री० दे० "खली"।

खरचट—संज्ञा स्त्री० [दे०] काठ के दो टुकड़ों से बना हुआ एक तिरोना औजार जिसमें रेती जानेवाली बस्तु को फँसा कर उसे रेतते हैं।

खरचाँस—संज्ञा पुं० [हिं० खर + चाँस] पल और चैत का महीना जब कि सूर्य धन और मीन का होता है। इन महीनों में मांगलिक कार्य करना बर्जित है।

खरदाला—संज्ञा पुं० [सं०] मंदिर आदि की छतरी का वह ऊपरी भाग जिम पर सारी इमारत खड़ी रहती है।

खरस—संज्ञा पुं० [फा० खरस] रीढ़। भाजू। (कलंदरों की बोली)।

खरसा—संज्ञा पुं० [सं० पड़स] एक प्रकार का भोज्य पदार्थ। उ०—भईं मिथौरी सिरका पर। सोड जाय कै खरसा धरा।—जायसी।

सजा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मड़ली जो आसाम और ब्रह्मा देण की नदियों में पाई जाती है।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) मीमं ऋतु। गरमी के दिन। (२) शकाल। कहत।

संज्ञा पुं० [फा० खारि] खान। सुजली। खारि।

खरसान—संज्ञा स्त्री० [हिं० खर + सान] एक प्रकार की सान जो अधिक तीक्ष्ण होती है। इस पर तखवार उतारी जाती है।

उ०—(क) शिष्य खंडां गुरु मसकला चडे शब्द खरसान। शब्द सदे ससुल रहं निपनै शिष्य सुजान।—कबीर। (ख) बाबा तरे नैन की विसाल सल सैतन के धलभद्र साने हैं सुहाय खरसान के।—धलभद्र।

खरसुमा—वि० [फा० खर + सुम] जिस (घोड़े) के सुम गधे के सुमों की भांति बिलकुल परे हों।

खरसैला—वि० [हिं० सरसा = खान] जिसे सुजली हुई हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः पशुओं के लिये होता है।

खरहर—संज्ञा पुं० [दे०] बलूत की जाति का एक पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है। इसकी पत्तियाँ घेर की पत्तियों से बड़ी होती हैं। फल पल्लु ही के से होते हैं। इसकी कधी लकड़ी जो सफेद होती है और पकने पर गहरी भूरी हो जाती है येती के औजार बनाने के काम में आती है। छाल से चमड़ा सिक्काया जाता है।

खरहरना—क्रि० अ० [हिं० खर + तिनका + हरना] भाड़ देना।

खरहरा—संज्ञा पुं० [हिं० खरहरना] [खी० अण्य० खरहरा] (१) रहते या खरहर की संज्ञा से बना हुआ भाड़ जिसे मूँहरा भी कहते हैं। (२) एक चौकोर छोटी पट्टी जिसमें धातु की बनी हुई, छोटे दाँतों की कंधियाँ जड़ी होती हैं। यह घोड़े का बदन चुनवाने और उसमें से गर्द और धूल निकालने के

काम में जाती है। चमड़े के टुकड़े में एक विशेष प्रकार से लोहे के तार जड़ कर भी खरहरा बनाया जाता है।

खरहरी—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक मेवा (कदाचित् रज्जु)।
३०—(क) तहरी पाक घेने श्री गरी। परी चिरौजी श्रीर खरहरी।—जायसी। (ख) नरियर फरे फरी ररहरी। फरे जानु ईंद्रासन पुरी।—जायसी।

खरहा—संज्ञा पुं० [हि० खर = घास + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० खरहरी] चूहे की जाति का, पर उससे कुछ बड़े आकार का एक जंतु जिसके कान लंबे, मुँह और सिर गोल, चमड़ा नरम और रोपेंदार पूँछ छोटी और पिछली टांगें अथेलाइन बड़ी होती हैं। यह संसार के प्रायः सभी उत्तरी भागों में भिन्न भिन्न आकार और वर्ण का पाया जाता है। यह जंगलों और देहातों में जमीन के श्वेदर बिल खोद कर कुंड में रहता है और रात के समय घास पास के खेतों, विरोपतः ऊँच के खेतों को बहुत हानि पहुँचाता है। यह बहुत अधिक डरोपक और अत्यंत कोमल होता है और जरा से आघात से मर जाता है। यह छुलामें मारता हुआ बहुत तेज दौड़ता है। इसके दाँत बड़े तेज होते हैं। खरही छः मास की होने पर गर्भवती हो जाती है और एक मास पीछे सात श्राव्य च्चे देती है। दस पंद्रह दिन पीछे वह फिर गर्भवती हो जाती है और इसी प्रकार बराबर च्चे दिया करती है। किसी किसी देश के खरहे जाड़े के दिनों में सफ़ेद हो जाते हैं। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। राश्यों के अनुसार यह भक्ष्य है और वैद्यक में इसका मांस ठंडा, लघु, शोथ, श्रतीसार, पित्त और रक्त का नाशक और मलबद्धकरक माना गया है। इसे चौगुड़ा, लमहा और खरगोश भी कहते हैं। इसका संस्कृत नाम 'शश' है।

खरही—संज्ञा स्त्री० [हि० खर] (घास या अन्न आदि का) ढेर। समूह। राशि।

खराडक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

खराड्यु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

खरा—वि० [सं० खर = तीक्ष्ण] [स्त्री० खरी] (१) तेज़। तीखा। चोखा। (२) अच्छा। बढ़िया। स्वच्छ। विशुद्ध। विना मिलावट का। "खोटा" का उलटा। जैसे, खरा सोना। खरा रूपया। ३०—राजें नवीन निकरई भरी रतिहू ते खरी ये दुहुँ परजक में।—सुंदरीसर्वस्व।

मुहा०—खरा खोटा = मल्ला बुया। खरा खोटा होना = चित्त चलायमान होना। मन डिगना। डुरी नीयत होना। खरे आए = अच्छे मिले। अच्छे आए। (एवंग्य)।

(३) करारा। सँक कर कड़ा किया हुआ।

मुहा०—कान खरा करना = कान गरम करना। कान मलना।

(४) चीमड़। कड़ा। जो झुकाने या मोड़ने से टूट जाय। (५) साफ़। छल छिद्र शुष्य। जिसमें किसी प्रकार की बेईमानी न हो। जिसमें किसी प्रकार का घोखा न हो। जो व्यवहार में सच्चा और ईमानदार हो। जैसे, खरा मामला। खरा आदमी।

मुहा०—खरा आदमी = लेन देन में सज़ाई रखनेवाला आदमी। व्यवहार में सचा मनुष्य। ईमानदार। खरा खेल = साफ़ मामला। शुद्ध व्यवहार। खरा खेल फरुँखायादी = फरुँखायाद के रूप की तरह शुद्ध और सचा व्यवहार। (फरुँखायाद की टकसाल का रूपया किसी समय में बहुत खरा और चोखा समझा जाता था)।

(६) नक़द (दाम)। ३०—खरी मजूरी चोखा काम।

मुहा०—खरए खरे होना = खरए मिलने का निश्चय होना। ३०—नुम्हारे खरए तो खरे हो गए थव हमारा इनका मामला रह गया है।

(७) उचित बात कहने वा करने में शील संकोच न करने वाला। लगी लिपटी न कहनेवाला। स्पष्टवक्ता। (८) (बात के लिखे) यथातथ्य। सचा। प्रामिय सत्य। जैसे, खरी बात।

मुहा०—खरी सुनाना, खरी ररी सुनाना = सची बात कहना, चाहे किसी को गुप्त लगे चाहे भला।

(९) बहुत। अधिक। ज्यादा। ३०—(क) धरे परेले को करे, तुही विलोक विचार। केहि नर केहि सर राखिये, खरे बड़े पर पा।—विहारी। (ख) रस के उपजावत पुंज खरे मिय लेत परे रस के चसके।—तूंद।

खराई—संज्ञा स्त्री० [हि० खरा + ई (प्रत्य०)] "खरा" का भाव। खरापन।

संज्ञा स्त्री० [देग०] सघरे अधिक देर तक जलपान या भोजन आदि न मिलने के कारण झुकाम होना, गला बँडना, या प्रकृति में इसी प्रकार और कुछ गड़बड़ होना।

मुहा०—खराई मारना = जल पान करना। फलेया करना।

खराऊँ—संज्ञा स्त्री० दे० "खड़ाऊँ"।

खराद—संज्ञा पुं० [अ० खरीत से फा० खराद] एक औजार जिस पर चड़ा कर लकड़ी, धातु आदि की सतह चिकनी और सुडौल की जाती है। चारवाई के पाये, डियिया, खिलौने आदि बड़ई खराद ही पर चड़ा कर सुडौल करी चमकीला करते हैं। ठंडे भी बरतनें को चिकना करने और चमकाने के लिये उन्हें खराद पर चढ़ाते हैं। ३०—मार्नें खराद चड़े रवि की किरणें गिरी आनि सुमेरु के ऊपर।—पजनेस।

मुहा०—खराद या खराद पर चढ़ना या उतरना = (१) ठीक होना। डुरुस्त होना। सुधरना। (२) लौकिक व्यवहार में कुशल होना। अनुभव प्राप्त होना। खराद वा खराद पर चढ़ाना वा उतारना = ठीक करना। सुधारना। डुरुस्त करना। सँवारना।

उ०—हैंचि खराद चढ़ाने नहीं न सुदार के डारनि मण्य
 डराये ।—सरदार ।
 संगा छी० (१) खरादने का भाव । (२) खरादने की क्रिया ।
 (३) रंग । वनावट । गड़न ।
 खरादना—कि० सं० [हि० खराद] (१) खराद पर चढ़ा कर किसी
 पत्तु को साफ़ और सुदौल करना । (२) काट ड़ाट कर सुदौल
 बनाना ।
 खरादी—संज्ञा पुं० [हि० खराद] जो खरादने का काम करे ।
 खरादनेवाला ।
 खरापन—संज्ञा पुं० [हि० खरा + पन] (१) खरा का भाव । (२)
 सलता । सचाई ।
 मुहा०—खरापन मथारना = सचाई की डँग मारना । बहुत
 अधिक सचा बनना ।
 (३) वनमत्तता ।
 खराब—वि० [च०] (१) बुरा । निकृष्ट । हीन । अच्छा का उलटा ।
 (२) दुर्दशाग्रस्त । जो बहुत दुरवस्था में हो । जैसे, मुकुन्दमा
 लड कर उठ्येनि अपने खराब से नाराय कर दिया । (३)
 पतित । मर्यादा भ्रष्ट ।
 मुहा०—(किसी को) खराब करना = (किसी पर छीं के साथ)
 कुफर्मा करना । नाराय होना = दुष्टचरिता होना । यद-
 चनन होना ।
 खराबी—संज्ञा छी० [फ़ा०] (१) बुरापन । दोष । अवगुण । (२)
 दुर्दशा । दुरवस्था ।
 कि० प्र०—खाना ।—खाना ।—खाना ।
 मुहा०—खराबी में पड़ना = विपत्ति या दुर्दशा में फँसना ।
 (३) गंदगी । गलीज । (क़हारों की बेलती) ।
 विरोध—जब अगला कहार कहीं विद्या आदि पढ़ी हुई देखता
 है तब विपुले कहार को सचेत करने के लिये इस शब्द का
 प्रयोग करता है ।
 खराब्दा कुरक—संज्ञा पुं० [सं०] सहसुनियों नाम का रत्न ।
 वैदूर्य मण्यि ।
 खरादि, खरारी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामचंद्र । (२) विष्णु-
 भगवान । (३) हृष्यचंद्र । (४) बलराम (धेनुक असुर के
 गारने के कारण) । (५) एक अर्द्ध का नाम जो ३२ मात्राओं
 का होता है ।
 परादा—संज्ञा छी० [फ़ा०] यह हलका धाव जो द्धिनन आदि के
 कारण हो जाता है । खरींच । धिंजन ।
 खरिक—संज्ञा पुं० [देग०] यह ऊप जो खरीफ की फसल के पाद
 कोई जाव ।
 संज्ञा पुं० दे० “खरक”, “खरका” ।
 खरिच्य—संज्ञा पुं० दे० “खरिच” ।
 खरिया—संज्ञा छी० [हि० ख + रिया (११०)] पत्तड़ी रस्मी से बनी

हुई जाती जो घाम, भूसा आदि रॉचने के काम में आती
 है । पॉती । उ०—कुछगता ललता जो रोदिन को घर बात
 धरे खुरगा खरिया ।—सुजसी ।
 खरा छी० [हि० खर = राख] कंडे की राख ।
 संज्ञा छी० [देग०] यह लकड़ी जिसकी सहायता से नांद में
 नील कस कर भारते या दूपाते हैं ।
 संज्ञा छी० दे० “खरिया” ।
 खरिहटा—संज्ञा छी० [हि० खर] यह पतली लकड़ी या तिनका
 जिसमें एक थोरा बँधा रहता है और जिसकी सहायता से
 कुम्हार बने हुए बर्तन आदि को चाक की मिट्टी से काट कर
 अलग करता है ।
 खरिहान—संज्ञा पुं० दे० “खलियान” ।
 खरी—संज्ञा छी० [देग०] एक प्रकार की ईल ।
 संज्ञा छी० दे० “तरिया”, “खली” ।
 खरीता—संज्ञा पुं० [च०] [खी० अण० खरीति] (१) खैली ।
 खीसा । (२) जेब । (३) यह यद्वा लिफाफा जिसमें किसी
 बड़े अधिकारी आदि की ओर से मातहत के नाम आजापत्र
 आदि भेजे जाव ।
 खरीतिया—संज्ञा पुं० [च० खरीत] मुसलमानी राजत्व काल का
 एक प्रकार का कर । इसे अकपर ने उठा दिया था ।
 खरीद—संज्ञा छी० [फ़ा०] (१) मय । मोल लेने की क्रिया ।
 यौ०—खरीद-गुरोमत = मय-विक्रय ।
 (२) मोल लिया हुआ पदार्थ । खरीदी हुई चीज । जैसे, यह
 दुखाला पचास रुपय की खरीद है ।
 खरीदना—कि० सं० [फ़ा० खरीदना] मोल लेना । मय करना ।
 खरीदा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) मोल लेनेवाला । प्राहक ।
 (२) चाहनेवाला । इच्छुक ।
 खरीदारी—संज्ञा छी० [फ़ा०] मोल लेने की क्रिया । मय ।
 खरीफ—संज्ञा छी० [च०] यह फसल जो आषाढ़ में भापे अगहन
 के बीच में काटी जाय । इस फसल में धान, मकई, बाजरा,
 उद, मोड, मूँग आदि अन्न होते हैं ।
 खरीम—संज्ञा छी० [देग०] सुर्ग की जाति की एक चिड़िया जो
 प्रायः पानी के किनारे रहती है । इसके पर तीतर की तरह
 चित्तले होते हैं ।
 खरिल—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का जेवर जिसे खिया बंदी
 की भांति सिर पर पहनती हैं ।
 खरे—संज्ञा पुं० [देग०] एक धाने प्रति रुपय की दलाली ।
 (दलालों की बेलती) ।
 खरेड—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का धान जो अगहन में
 तैयार होता है ।
 खरेडुआ—संज्ञा पुं० दे० “खरीती” ।
 खररा—संज्ञा पुं० दे० “खरहा” ।

खरौच—संज्ञा स्त्री० [सं० खरुण] (१) नल आदि लगने या और किसी प्रकार छिलने का हलका चिद्र। खराश। (२) पतौर नामक भोज्य पदार्थ जो अरुई आदि के पत्तों को पीठी या घेघन में खपेट कर तलने से बनता है।

खरौचना—क्रि० सं० [सं० खरुण] खुरचना। करौना। छीलना।

खरोट—संज्ञा पुं० दे० “खरौच”।

खरोटना—क्रि० सं० दे० “खरौचना”।

खरोरारा—संज्ञा पुं० दे० “खरौरा”।

खरोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़ा] छुकड़ा गाड़ी में दोनों ओर के वे खूँटे जिन पर रोक के लिये बांस बंधे रहते हैं।

खरोट्टो, खरोट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लिपि जो अशोक के समय में भारत की पश्चिमोत्तर सीमा की ओर प्रचलित थी। यह लिपि फारसी की तरह दाहिने से बाएँ को लिखी जाती है। इसे गांधार लिपि भी कहते हैं।

खरौटा—संज्ञा स्त्री० [हि० खरौच] खरौच। खराश। उ०—मैं धरजी के बार दू उस कित सेत करौट। पशुरी गढ़ गुलाब की परिहे गात खरौट।—विहारी।

खरौटाना—क्रि० सं० दे०, “खरौचना”।

खरौहारा—वि० [हि० खारा + रा] कुछ कुछ खारा। कुछ नमकीन। उ०—स्थाम सुरति करि राधिका तकति तानिजा तीर। शंसुवन करति तौरु को दिनक खरौहो नीर।—विहारी।

खरौदा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का इंद्रजाल।

खर्च—संज्ञा पुं० [श० खर्ज] (१) किसी काम में किसी वस्तु का लगाना। व्यय। सरफा। खचत। जैसे, (क) इस रूपय खर्च हो गए। (ख) इस शहर में पानी का बहुत खर्च है।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—घाटना।

मुहा०—खर्च उठाना = व्यय का भार सहना। खर्च करना। जैसे, इस महीने में उन्हें बहुत खर्च उठाना पड़ा। खर्च में डालना = (१) व्यय करने के लिये विवश करना। (२) किसी रकम का खर्च के मद में लिखना। खर्च में पड़ना = व्यय करने के लिये विवश होना। (३) किसी रकम का खर्च के मद में लिखा जाना। खर्च चलाना = व्यय का निर्वहण करना आवश्यक व्यय के लिये धन देते रहना।

धौ०—ऊपरी खर्च = नियमित से अतिरिक्त या अनिश्चित व्यय। फुटकर खर्च।

(२) वह धन जो किसी काम में लगाया जाय। जैसे, उनके पास कुछ भी खर्च नहीं है।

खर्चना—क्रि० सं० दे० “खरचना”।

खर्ची—संज्ञा पुं० दे० “खर्च”।

खर्ची—संज्ञा स्त्री० [हि० खर्च] वह धन जो घेरया आदि को कुकर्म करने के निमित्त मिले। कसय कराने का पुरस्कार।

क्रि० प्र०—कमाना।

मुहा०—खर्ची पर चलना या जाना = कुकर्म करना। प्रसंग कथना।

खर्चीला—वि० [हि० खर्च + ईला (प्रत्य०)] जो बहुत अधिक व्यय करे। खूब खर्च करनेवाला।

खर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी मिट्टी।

खर्जिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदेश या गरमी नाम का रोग।

खजूर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खजूर। (२) चाँदी। (३) दरताल (४) विच्छू।

खजूरवेध—संज्ञा पुं० [सं०] उपोत्पि में एक प्रकार का योग जिसमें विवाह होना वर्जित है। इसे एकगोल भी कहते हैं।

खर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तमले के आकार का मिट्टी का बरतन। (२) काली देवी का यह पात्र जिसमें यह खपर पान करती हैं। (३) भिष्मापात्र। (४) लोपड़ा। (५) चौर। (६) भूष। (७) खपरिया नामक उपजात।

खर्व—वि० [सं०] (१) जिसका शंग मग्न या धारण हो। न्यूनांग। (२) छोटा। लघु। उ०—महामत्त राजाज को वरा कर थंरुखा खर्वे।—तुलसी। (३) धामन। यौना।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) संटना का बारहवाँ स्थान। सौ अक्षर। खरय। (२) बारहवें स्थान की संख्या।

विशेष—वैदिक काल में संख्या का पैंतीसवाँ स्थान एवं कहलाता था।

(३) कुवेर की नौ निधियों में से एक। (४) कृजा नाम का वृक्ष।

खर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहाड़ के ऊपर बसा हुआ गाँव। (२) वह गाँव जो चार सौ गाँवों के बीच में बसा हो।

खर्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह अमावास्या जिसमें चतुर्दशी भी मिली हुई हो। ऐसी अमावास्या बहुत कम होती है। (२) वह तिथि जिसका काल-मान पहले दिन की तिथि के काल-मान से कुछ कम हो।

खरौचा—वि० दे० “खर्चीला”।

खरौट—वि० दे० “खरौट”।

खरौ—संज्ञा पुं० [खर पर से बनू०] (१) वह लंबा या बड़ा कागज़ जिसमें कोई भारी हिसाब या विवरण लिखा हो। (२) एक प्रकार का रोग जिसमें पीठ पर छोटी छोटी कुत्तियाँ निकल आती हैं और चमड़ा कड़ा और खुरदुरा हो जाता है।

खरौटा—संज्ञा पुं० [खरू०] वह शब्द जो सेते समय नाक से विशेषतः बलगामी आदमी की नाक से निकलता है।

मुहा०—खरौटा भरना, मारना या लेना = बेलवर लेना।

खल—वि० [सं०] [भाव० खलता] (१) क्रूर। (२) नीच। अधम। (३) दुर्जन। दुष्ट। (४) सुगुल्लोर। (५) निर्लज्ज।

बेव्या। (६) धोखेवाज। फरेबी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्यं। (२) तमाल का पेड़। (३) धनुर्। (४) खलियान। (५) कौटिल्या। (६) तलवट। (७) पृथ्वी। (८) स्थान। (९) खरल।

मुहा०—खल करना = खल में महीन पीसना। खल होना = पीसना। चुर चुर होना। उ०—खल भई लोक लाज कुल फानी।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० खल = खरल] (१) पथर का बड़ा टुकड़ा। उ०—इसी मान यह सूर महा शठ इति नम बद्धि महा खल आनत।—सूर। (२) सोनारों का 'किटकिया' नाम का ठप्पा।

खलई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खल + ई (प्रत्य०)] खलता। उ०—सीदत साधु साधुना सोचति खल विनसत दुलसति खलई है।— तुलसी।

खलझा—संज्ञा पुं० [ख०] (१) सृष्टि के प्राणी वा जीवधारी। (२) दुनिया। संसार। जगत।

खलकृत—संज्ञा स्त्री० [ख०] (१) सृष्टि। (२) भीड़। कुंड। खलखलाना—क्रि० प्र० [अ०] किरती ब्रह्मपदार्थ का उबलना। खोलना।

खलडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खल + डी (प्रत्य०)] खाल। चमड़ा। खलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुदता। नीचता। 'खल' का भाव।

संज्ञा पुं० [हिं० खल] सिपाहियों का वह धैला जिसमें वे अपना जरूरी सामान रखते हैं। भोला। धैला।

खलरव—संज्ञा पुं० [सं०] खलता। हुदता।

खलना—क्रि० प्र० [सं० खर = वीक्षण] बुरा लगना। नागवार मालूम होना। शत्रिय होना।

क्रि० प्र० [हिं० खल] पत्तर आदि को नली के रूप में बनाने के लिये मोड़ना वा मुकाना। (सोनारों की परिभाषा)।

खलनी—संज्ञा स्त्री० [फा० खली] सोनारों का एक औजार जिस पर खर धुंधी आदि बनाई जाती है।

खलघल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) हलचल। (२) शोर। हल्ला। (३) कुलबुलाहट।

खलघलाना—क्रि० प्र० [हिं० खलघल] (१) खलघल शब्द करना। (२) बोलना। (३) कुलबुलाना। हिलना डोलना (४) विचलित होना। खड़बड़ाना।

खलघली—संज्ञा स्त्री० [हिं० खलघल] (१) हलचल। (२) घबराहट। घ्याकुलता।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचन।

खलमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] पाता।

खलपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] खलियान में होनेवाला एक प्रकार का पक्ष।

खलल—संज्ञा पुं० [ख०] रोक। अवरोध। रुकावट। बाधा।

क्रि० प्र०—खलना।—पड़ना।
धौ०—खलल दिगम्—पागलपन। सनक।

खलसा—संज्ञा स्त्री० [सं० खलिस] एक प्रकार की बड़ी मछली जो समतल उतर भारत, आसाम तथा चीन में होती है। इसमें कठि अधिक होते हैं और जल से निकाल लेने पर भी यह कुछ समय तक जीती रहती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस रुखा और वात बढ़ानेवाला होता है।

खलारती—संज्ञा स्त्री० [हिं० खल + रत (प्रत्य०)] धौंकनी। भागी।

खलारि—संज्ञा स्त्री० [हिं० खल + ई (प्रत्य०)] खलता। हुदता। उ०—फाने कृपाल चड़े नतपाल गण खल खेर खल खलाई।—तुलसी।

खलानाकी—क्रि० प्र० [हिं० खली] (१) पात्र आदि में से भरी हुई चीज बाहर निकालना। खाली करना। (२) गड़बा करना। गड़बा बनाना। जैसे, कुर्या खलाना। (३) सोने के पत्तर को धुंधी आदि धाने के लिये बीच में दबा कर कटोरी की तरह बनाना। (४) पचकाना। किमी फूली हुई सहा को नीचे की ओर धँसाना। जैसे, पेट खलाना। उ०—मांगत पेट खलाय।—तुलसी।

खलार—वि० [हिं० खली] नीचा। गहरा। जैसे, खलार भूमि।

खलार—वि० [ख०] (१) छूटा हुआ। मुक्त। (२) खतम। समाप्त।

खलारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खलार] मुक्ति। हुदकार। छुटी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।

संज्ञा पुं० [उर्दू] (१) जहाज़ पर का वह नाकर जो पाल चढ़ाना, रस्से बाँधना तथा इैसी प्रकार के और कार्य करता है। (२) लेमा आदि सड़क करने और असवाय होनेवाला नाकर।

खलाल—संज्ञा पुं० [ख०] धातु आदि का बना हुआ लंबा, चुकीला, छोटा टुकड़ा जिससे दाँतों में फँसा हुआ अन्न आदि खोद कर निकालते हैं।

खलाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० खल] (ताश आदि के खेल में) पूरी बानी की हार। पूरी मात।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।

मुहा०—खलाल देना = भात करना।

खलित—वि० [सं० खलित] (१) खलायमान। चंचल। डिगा हुआ। उ०—दिगम खलित खलित मुनि ध्यासत इन्द्रादिक भय मान।—सूर। (२) गिरा हुआ। पतित।

मुहा०—खलित होना = वीथ्य-यात होना। वीथ्य निकल पड़ना।

उ०—वारवती ऐसी पत्नी जाकी ताको मन क्यों डोला।

खलित भये सुवि देखि मोहिनी हा हा करि के बोला।—कबीर।

खलिन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़े की लगाम। (२) यह घोहा

जिसमें लगान घँपी रहती है और जो घोड़े के मुँह में रहता है।

खलियान-संज्ञा पुं० [सं० खल + यान] (१) खेतों के पास वह स्थान जहाँ फसल काट कर रखी, मीठी और बरसाई जाती है। खाना और भूसा दोनों यहाँ अलग अलग किए जाते हैं।

मुहा०—खलियान करना = (१) काटी हुई फसल का ढेर लगाना। (२) तिर तिर करना। नष्ट करना।

(२) राखि। ढेर। उ०—मुझे तो यहाँ कपड़ों का खलियान लगा रखा है।

क्रि० प्र०—लगाना।

खलियाना-क्रि० सं० [हिं० खल] खाल उतारना। चमड़ा अलग करना।

क्रि० सं० [हिं० खली] खाली करना।

खलियर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] मसूढ़ों का एक रोग जिसमें वायु के प्रकोप से मसूढ़ों की जड़ का मांस पड़ जाता है और बड़ी पीड़ा होती है।

खलिशा-संज्ञा पुं० [सं०] खलसा नाम की मसूढ़ी।

संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] वह फसक या पीड़ा जो किसी चीज के चुभने प्रथम घाय आदि के भरने के उपरान्त पीय आदि दूषित श्रेणों के बाकी रह जाने के कारण होती है।

खलिहानी-संज्ञा पुं० दे० "खलियान"।

खली-संज्ञा स्त्री० [सं० खलि] तेल निकाल लेने पर तेलहन की बची हुई खली।

वि० [हिं० खलना] जो घुरा मालूम हो। खलने या खटकने-वाला। उ०—करि शरि आगे खली बुट होई।—विधाम।
संज्ञा पुं० [सं० खलीन्] (१) महादेव। (२) एक प्रकार के दानव जिन्हें महाभारत के अनुसार वशिष्ठ देव ने मारा था।

खलीज-संज्ञा स्त्री० [फ०] खाड़ी।

खलीता-संज्ञा पुं० दे० "खरीता"।

खलीफा-संज्ञा पुं० [फ०] (१) अध्यक्ष। अधिकारी। (२) कोई युवा व्यक्ति। (३) खुर्रैट (दरजी)। (४) खानसामा। पायची। (५) हज्जाम। नाई।

खलु-अर्थ०, क्रि० वि० [सं०] (१) शत्रुालंकार। (२) प्ररन। (३) प्रार्थना। (४) नियम। (५) निषेध। (६) निश्चय। अवश्य। उ०—तव प्रभाव यद्द्वयानलहिं जाति सन्ने रलु खल।—गुलसी।

खलुरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] यह स्थान जहाँ अन्न शख का अभ्यास या व्यायाम इत्यादि हो।

खलेल-संज्ञा पुं० [हिं० खली + लेल] खली आदि का यह श्रेण जो फुलेल में रह जाता है और निधाने या छानने पर निकलता है। फुलेल का गाज। उ०—सुख सनेह सय दियो दशरथहि खरि खलेल थिरपानी।—गुलसी।

खलु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का कपड़ा। (२) चमड़े की मराक। (३) चमड़ा। (४) चातक। (५) शोषधि बूटने का खल। खल।

खलुङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० खल] (१) चमड़े की मराक या धैला। (२) शोषधि बूटने का खल। (३) चमड़ा। उ०—मारते मारते खलुङ्ग खेड़ देंगे। (४) वह वृद्ध मनुष्य जिसका चमड़ा मूक गया हो।

खलुङ्गा-संज्ञा पुं० [हिं० खली] (१) नृत्य में एक प्रकार का भाव जिससे पैर का खाली होना मलकता है। (२) जूता।

संज्ञा पुं० [सं० खल] खलियान।

संज्ञा स्त्री० [सं० खल = चमड़ा] जूता।

खलुङ्गासर-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में दसवाँ योग।

खलुङ्गा-संज्ञा पुं० [सं०] एक वायु रोग जिसमें हाथ पंख मुड़ जाते हैं। यह घात के २५ रोगों के श्रेणगत है।

संज्ञा स्त्री० दे० "खली"।

खलुङ्गीट-संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जिससे तिर के बाल कड़ जाते हैं। गंजा।

खल्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह रोग जिसके कारण तिर के बाल कड़ जाते हैं। (२) एक प्रकार का घान। (३) चना।

खल्व्याट-संज्ञा पुं० [सं०] गंजरोग जिसमें मिरके बाल कड़ जाते हैं।

वि० [सं०] जिसके तिर के बाल कड़ गए हों। गंजा।

खघा-संज्ञा पुं० [सं० खंघ] कंधा। सुजमूल। उ०—(क) कच समेटि कर भुज उलटि खघ सीम पट टारि। काको मन बांधे न यह जुरो बांधनिहारि।—विहारी। (ख) माघव जी धावनहार भये। अंचल उड़त मन होत राहगहो चरकत नैन खघ। देही देरि सोचि शिय अपने चितवत सगुन दए।—सूर। (ग) खघ लगि बाँध उसारि उसारि। भये हत उत जबै तिस धारि।—सूदन।

मुहा०—खवे से खवा छिलना = (बहुत अधिक भीड़ के कारण) कंधे से कंधा छिलना।

खवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० खाना] (१) खाने की क्रिया। (२) यह पत्र आदि जो भोजन करने के उपरकार में दिया जाय। जैसे, कलेवा खवाई।

विशेष—विवाह आदि के अवसर पर घर या दर-पक्ष के लोगों को जलपान के समय कहीं कहीं नेत्र देने का नियम है।

संज्ञा स्त्री० [देग०] नाथ में यह गड्ढा जिसमें मस्तूल खड़ा किया जाता है।

खवाना-क्रि० सं० [हिं० खाना] भोजन करना। खिलाना।

खवास-संज्ञा पुं० [फ०] [स्त्री० खवासिन] राजाओं और रहस्यों आदि का लिखतगार जिसका काम कपड़े पहनाना, हुका भरना, पान खाना आदि है।

खवासी-संज्ञा स्त्री० [हि० खवास + ई (प्रत्य०)] (१) खवास का काम । खिदमतवासी । (२) चाकरी । मीकरी । उ०—उमसेन की करत खवासी ।—विभ्राम । (३) हाथी के हाँदे, या गाड़ी आदि में पीछे की ओर वह स्थान जहाँ खवास बैठता है ।

संज्ञा स्त्री० [?] श्रीगिया में यह जोड़ जो बगल में रहता है ।

खस-संज्ञा स्त्री० [का० खसिद = हरी घास वा फसल] एक प्रकार की घास जिसे पंजाब में पटियारी कहते हैं । यह श्रीगिया घास की तरह होती है और इसमें से सुगंध आती है । इसकी पत्तियाँ लंबी होती हैं जिनसे एक प्रकार का सुगंधित तेल निकलता है और श्रापथ के काम में आता है । यह काराची से पेशावर और लुधियाना तक रेगिस्तान में और बलुई भूमि में उपजती है । इसे संस्कृत में "भृश्लुष" कहते हैं ।

खरिया-संज्ञा पुं० [हि० खाना + येा (प्रत्य०)] खानेवाला ।

खदा-संज्ञा पुं० दे० "खस" ।

खस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्तमान गढ़वाल और उसके उत्तर पूर्वी प्रांत का प्राचीन नाम । (२) इस प्रदेश में रहनेवाली माल्य क्षत्रिय से उद्भूत एक प्राचीन जाति जिसका वर्णन महाभारत और रामचरितमणि में आया है । इस जाति के वंशज श्रय तक नेपाल और किल्साड (काश्मीर) में इसी नाम से विख्यात हैं और अपने श्राप को क्षत्रिय बतलाने हैं । वे लोग बड़े परिश्रमी और साहसी और प्रायः सैनिक होते हैं । इन्होंने को खालिया भी कहते हैं । उ०—स्वरच सवर खस अमन लड़ पांवर कोल किरात । राम कहत पावन परम होत सुवन विषयात ।—तुलसी ।

संज्ञा स्त्री० [का०] गाढर नामक घाम की प्रसिद्ध सुगंधित जड़ जो भारत, बरमा और लंका के मैदानों और छोटी पहाड़ियों पर विरोपतः भदियों और सालों के किनारे उल्लस होती है । गर्मी के दिनों में कमरे आदि टेंडे रखने के लिये दरवाजे और खिड़कियों में इसकी टटियाँ लगाई जाती हैं । कहीं कहीं इसकी पत्तियाँ और टोकरियाँ भी बनती हैं । इसका इत्र भी बहुत प्रशस्त बनता है और अधिक दामों में विक्रता है । अनेक प्रकार की सुगंध पनाने के लिये विज्ञान में भी इसकी बहुत खपत होती है ।

खसकना-संज्ञा स्त्री० [हि० खसकना + थत (प्रत्य०)] खसकने का काम ।

खसकना-क्रि० प्र० [प्र०] धीरे धीरे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना । अपने स्थान से इधर उधर हट जाना । स्थानांतरित होना । सरकना । जैसे, (क) यह हँट खसक गई है । (ख) उधर बहुत जगह है, थोड़ा खसक चलो । (ग) हमें देखने ही वे खसक गए ।

संज्ञा० क्रि०—आता ।—चलना ।—जाना ।—देना ।—पड़ना ।

खिद्योप-इस शब्द में 'गुप्त' से या 'अनजान में' का भी कुछ भाव मिला हुआ है ।

खसकवाना-क्रि० सं० [खसकना का प्रे०] खसकाने का काम करना ।

खसकाना-क्रि० सं० [हि० खसकना] (१) खसकना का सक्रमक रूप । स्थानांतरित करना । हटाना । (२) गुप्त रूप से कोई चीज़ हटाना या देना । जैसे, (क) उन्होंने सी। दण्ड खसकाए, तब पिंड छूटा । (ख) चार दिन पहले ही उन्होंने सत्र चीज़ें खसका दी थीं ।

संज्ञा० क्रि०—देना ।

खसखस-संज्ञा स्त्री० [सं० खसखस] पोस्ते का दाना जो आकार में सरसों के बराबर और सफ़ेद रंग का होता है । वैद्यक में इसे कफनाशक और मादक माना है और इसके अधिक सेवन से पुरुषत्व की हानि बतलाई गई है ।

खसखसा-वि० [प्र०] भुरभुरा । जिसके कण्ठ दवाने से बालू की तरह थलक थलक हो जाय । उ०—बालू जैसी खसखसी, उज्वल जैसी पूष । ऐसी मीठी कुल नहीं, जैसी ठीमी चूष । वि० [हि० खसखस] बहुत छोटा । जैसी, खसखसी दाढ़ी ।

खसखाना-संज्ञा पुं० [का०] खम की टटियाँ से बिरा हुआ स्थान । यह घर या कोठी जिसके चारों ओर खस की टटियाँ लगी हों । उ०—घाघ पैसी खसखानन हाप निकुंजन पुंज फिरि भरमी में ।—दत्त ।

खसखस-संज्ञा स्त्री० दे० "खसखस" ।

खसना-क्रि० प्र० [हि० खसकना] अपने स्थान से हटना । खसकना । गिरना । उ०—(क) सदा कहत करजोरि धवन मृदु मनहुँ खसत सुख फूला ।—रघुनाम । (ख) एसी मांज मुरति सुसुकानी ।—तुलसी ।

खसनीध-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का गंधाविरोधा जो शरीर से आता है ।

खसम-संज्ञा पुं० [प्र०] (१) पति । श्राविंद । उ०—नियत खसम किन अमन रमाये ।—चूर ।

मुहा०—खसम करना = किसी पुरुष से पति-संबंध स्थापित करना ।

धा०—खसमरीटी = पति की मृत्यु देखनेवाली । विधवा । (शांती) ।

(२) स्वामी । मालिक । उ०—रसम चिन तेजी के रैज भयो ।—कबीर ।

खसरा-संज्ञा पुं० [प्र०] (१) पटवारी का एक कामगुरु जिनमें प्रत्येक छेत का नंबर, रकबा आदि लिखा रहता है । (२) किसी हिसाब-किताब का कच्चा चिट्ठा ।

संज्ञा पुं० [का० खसरीय] एक प्रकार की गुजड़ी जिससे बहुत कट होता है ।

खसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] उड ।

खसलत-संज्ञा स्त्री० [ख०] स्वभाव । आदत । प्रकृति ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—ढालना ।

खसाना-क्रि० सं० [हि० खसाना] नीचे की ओर उफेलना या फेंकना । गिराना ।

खसिया-वि० [ख० खसी] (१) जिसके थंडकोय निकाल लिए गए हों । यधिया । (२) नपुंसक । दिजड़ा । (३) बकरा । ३०—
फह कबीर के दुनों भूले रामहिं किन्हुं न पाया । चे खसिया
ये राग फटावै यादै जन्म गँवाया ।—कबीर ।

खसियाना-क्रि० सं० [हि० खसी या खसिया] थंडकोया निकाल
या छूट कर पुंसत्व हीन करना । यधिया करना ।

खसी-संज्ञा पुं० दे० "खससी" ।

खसीस-वि० [ख०] कंजूस । सूम ।

खसोट-संज्ञा स्त्री० [हि० खसोटना] (१) बुरी तरह उखाड़ने या
भोचने की क्रिया । (२) बलपूर्वक लेने या छीनने की क्रिया ।

खसोटना-क्रि० सं० [सं० छट] (१) बुरी तरह उखाड़ना या
उखाड़ना । भोचना । जैसे, (क) बाल खसोटना । (ख) पत्ते
खसोटना । (२) बल पूर्वक लेना । छीनना ।

खसोटा-संज्ञा पुं० [हि० खसोटना] कुस्ती का एक पेंच ।

खसोटी-संज्ञा स्त्री० दे० "खसोट" ।

खस्तानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दृष्टिविी ।

खस्ता-वि० [फा० खस्त] बहुत थोड़ी दाब से टूट जानेवाला ।
थुरथुरा ।

थी०—खस्ता कचौड़ी = एक प्रकार की छोटी कचौड़ी जो गोयन
ढाल कर बनाई जाती और बहुत थुरथुरी होती है ।

खवस्तिफ-संज्ञा पुं० [सं०] यह कल्पित विंदु जो सिर के ऊपर
आकाश में माना गया है । शीर्षविंदु । यह पाद-विंदु का
उलटा है ।

खस्ती-संज्ञा पुं० [ख०] बकरा ।

मुहा०—खस्ती चढ़ाना = बकरे को बलिदान करना ।

वि० [ख०] (१) यधिया । (२) दिजड़ा । नपुंसक ।

खहर-संज्ञा पुं० [सं०] राशित में यह राशि जिसका हर शून्य हो ।
इस राशि में कोई राशि जोड़ने या घटाने से भी वह राशि
ज्यों की खो बनी रहती है, घटती या बढ़ती नहीं । जैसे,
५, इसमें यदि ३ जोड़ दिया जाय तो भी योग ५ ही रहेगा
और यदि ३ घटा दिया जाय तो भी ५ ही शेष रहेगा ।
(५ + ३ = ८ + ३ = ५ । ५ - ३ = २ - ३ = ५) ।

खी-संज्ञा पुं० दे० "खान" ।

खी-संज्ञा स्त्री० दे० "खी" ।

खीखी-संज्ञा स्त्री० [सं० ख] छेद । स्राव ।

खीखार-वि० [हि० खीख] (१) जिसमें बहुत छेद हों । स्रावदार ।
जैसे, खीखार बरतन । (२) जिसकी विनायट दूर दूर पर

हो । जैसे, (क) खीखार कपड़ा । (ख) खीखार खटिया । (३)
खीखला । मोला ।

खीगा-संज्ञा पुं० [सं० खी, प्र० खीगा] (१) कांटा । कंटक ।

क्रि० प्र०—गड़ना ।—लगना ।

(२) वह कांटा जो तीतर मुगुग आदि पक्षियों के पैरों में निरू-
लता है । (३) गँडे के मुँह पर का साँग । (४) जंगली
भूखर का वह दाँत जो मुँह के बाहर कांटे की तरह निकला
होता है ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—मारना ।

खीगा पुं० [सं० खी] सुखावले पशुओं का एक रोग जिसमें
उनके खुरों में घाव हो जाता है । खुरपका ।

खी संज्ञा स्त्री० [हि० खीगना] घुटि । कमी ।

खीगना-क्रि० ख० [सं० खीग = खीगा] खीगा या चलने में अस्-
मर्थ होना । ३०—होय अथ कुशल एक पै मांगडै । प्रेम-बंध
सत बाधि न खीगडै ।—जायसी ।

[सं० खीग, हि० खीगना] कम होना । घटना ।

खीगड़, खीगड़ा-वि० [हि० खीग + ड (प्रत्यय)] (१) जिसके
खीग हो । खीगवाला । (२) हृषियार्यद । शम्भुधारी । (३)
बलवान । (४) अस्खड़ । चूड़ ।

खीगी-संज्ञा स्त्री० [हि० खीगना] कमी । घाटा । घुटि ।

खीचा-संज्ञा पुं० [हि० खीचना] (१) दो वस्तुओं के बीच की
जगह । संधि । जोड़ । (२) गटन । खचन ।

खीचाना-क्रि० सं० [सं० कर्षण या कसन = खीचन । अथवा
खचन = बैठना] [वि० खीचना] (१) धंक्रित करना । चिह्न
बनाना । खीचना । ३०—चाप कीय रेख खीचि देव साधि
दे चले । नाधि हँ ते भस्म होहिँ जीव जे बुरे भले ।—
केशव । (२) खींच या कस कर बनाना । जैसे, (क)
जाली खीचना । (ख) ढलिया खीचना । (३) जल्दी जल्दी
लिखना ।

खीचा-संज्ञा पुं० [हि० खीचना] [स्त्री० खीची] (१) पतली टहनी
आदि का बना बड़ा टोकरा । भाया । (२) बड़ा पिँजड़ा ।

खीड़-संज्ञा स्त्री० [सं० खीड़] विना साफ़ की हुई चीनी । कच्ची
शक्कर ।

खीड़घ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन वन जिसे अजुन ने
जलाया था । महाभारत और तैत्तिरीय आरण्यक में इसका
वर्णन पाया जाता है । इन्द्रप्रस्थ नगर इसी वन में बसाया गया
था । (२) खीड़ की बनी हुई मिठाई ।

खीड़घप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक ग्राम जो पांडवों को पतलाइ
की ओर से मिला था । पीछे पांडवों ने वहाँ पर इन्द्रप्रस्थ
बसाया ।

खीड़विक-संज्ञा पुं० [सं०] मिठाई बनानेवाला । हजवाई ।

खाँड़ा-संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] खड्ग (खड्ग) । उ०—जाति सुर
 घर खाँड़ सुरा । अत्र बुधियंत सवई गुन पूरा ।—जायसी ।
 संज्ञा पुं० [सं० खट] माया । टुकड़ा । विशेषतः चतुर्षोष ।

खाँड़िक-संज्ञा पुं० [सं०] खाँड़िक । हलवाई ।

खाँड़ि-संज्ञा पुं० दे० "पाड़व" ।

खापना-क्रि० स० [सं० खेपन, प्रा० खेपन] (१) खोसना । (२)
 उड़ना । लगाना । (३) घारपाई की चुनावट में, पक लुकीली
 किल से उसकी घुमन को फस या दवा कर टूट करना । गड़ना ।

खाँस-संज्ञा पुं० [हिं० खंसा] खंसा । रसम ।

खंसा पुं० [हिं० खाम] लिफाफा । उ०—ताहि पाणि ते लियो
 निकारी । बाँधन लागी खंभ उवारी ।—रघुराज ।

खाँसना-क्रि० स० [हिं० खाम] लिफाफे में बंध करना । उ०—
 अस पाती लिखि खाँसि देवाना । चंद्रहास कर दिवो
 प्रज्ञाना ।—रघुराज ।

खाँस-संज्ञा पुं० [सं० र] अधिक चौड़ी खाई । उ०—कंचन के
 कौट पे कँहूरे धति स्ने बने, खाँस जल पूरे रचै शूरे शम्भ
 घारे हैं ।—रघुराज ।

खंसा पुं० [दे०] एक प्रकार का छोटा पाँधा जिमके फूल
 सफ़ेद होते हैं ।

खाँसना-क्रि० अ० [सं० कसन, प्रा० खोसन] कफ वा श्वाँर फोड़
 भटक हुई चीज निकालने या केवल शब्द करने के लिये
 वायु को मटकके के साथ कंठ से बाहर निकालना ।

खाँसि-संज्ञा स्त्री० [सं० काग, कास] (१) गले और श्वास की
 नलियों में फँसे या जमे हुए कफ अथवा अन्य पदार्थों का
 बाहर फेंकने के लिये भटके के साथ हवा निकालने की क्रिया
 जिममें कुछ शब्द भी होता है । यह क्रिया कुछ तो स्वाभा-
 विक और कुछ प्रयत्न करने पर होती है । डारूरी मत्त में
 यह कलेजे और फेफड़े से संबंध रखनेवाले अनेक साधारण
 रोगों का चिह्न मात्र है । कास । (२) वैद्यक के अनुसार एक
 स्वतंत्र रोग जो श्वास की नलियों में धूँरा और पूल लगने,
 रुखा अथ खाने, भोजन पदार्थों के श्वास की नलियों में चले
 जाने या स्निग्ध पदार्थ खा कर उपर से जल पीने से उत्पन्न
 होता है । इसमें उदान-वायु के अनुगत हो कर प्राण-वायु
 वृषित हो जाती है और वायु के जोर से खों खों शब्द के
 साथ कफ निकलता है । खाँसि होने पर गलों में मुरसुराहट
 होती है, भोजन गले में कुछ कुछ रुकता है, आवाज विगड़
 जाती है और शक्ति-भेदना तथा श्रक्ति हो जाती है । इसके
 पद जाने से रात्रयचना और उरःशत शक्ति भयंकर रोग
 उत्पन्न होने हैं । श्लेत्ति-भेद से यह पाँच प्रकार की मानी
 गई है । यथा—घातज, पित्तज, कफज, चयज और शतज ।
 जिस खाँसि के साथ मुँह से कफ निकले उसे तर और

जिसके साथ कुछ भी न निकले उसे सूखी खाँसी कहते हैं ।

(३) खाँसी की क्रिया ।

खि० प्र०—खाना ।—उठना ।—होना ।

(४) खाने का शब्द ।

खाई-संज्ञा स्त्री० [सं० खानि, प्रा० खाई] यह नहर जो किसी गाँव,
 किले, वागु या महल आदि के चारों ओर रक्षा के लिये
 खोदी गई हो । खंदक । उ०—चहूँ शोर फिर खाई । जिन
 देवी तिन खाई । (खाई की पहली ।)—सुसरत ।

खाऊ-वि० [हिं० खाना (खा + क (अध०)] बहुत खानेवाला
 पेट ।

खाक-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) धूल । मिट्टी । गद । राख ।
 भ्रम ।

मुहा०—(फर्हाँ पर) खाक उड़ना = बरसाद होना । तथाही
 होना । नाश होना । उजाड़ होना । जैसे, अथ वहाँ पर
 खाक उड़ रही है । खाक उड़ाना = खाक उड़ाना । मारा मारा
 फिरना । उ०—वह इधर उधर खाक उड़ता फिरता है ।
 किसी की खाक उड़ाना = उपहास करना । मिट्टी पत्तीद
 करना । धूल उड़ाना । जीट उड़ाना । उ०—सोर्गों ने उसकी
 खूप खाक उड़वाई । गुाक करना = तथाह करना । बरसाद
 करना । नष्ट भ्रष्ट करना । खाक चाटना = सिर नवाना ।
 नम्रता करना । अनुनय विनय करना । खाक छानना = (१)
 बहुत छूटना । अच्छी तरह छतारा करना । उ०—कहाँ कहीं की
 गुाक छाना पर वह न मिला । (२) मारा मारा फिरना ।
 अवाारा फिरना । चारों ओर भटकते फिरना । उ०—वह नौकरी
 के लिये चारों ओर खाक छानता फिरा । खाक ढालना
 = (१) छिपाना । दवाना । उ०—उसके पैरों पर कहाँ तक
 खाक ढाली जाय । (२) भूल जाना । गई गुजरी करना ।
 उ०—पुरानी बातों पर खाक ढाल कर अथ मेल करलो ।
 खाक सिर पर उड़ाना वा ढालना = शोक करना । रोना
 पीटना । खाक बरसाना = अच्छी दशा न रहना । नष्ट भ्रष्ट
 हो जाना । खाक में मिलना = विगडना । बरसाद होना ।
 चौपट होना । नष्ट भ्रष्ट होना । खाक में मिलाना = विगाडना ।
 तथाह करना । नष्ट भ्रष्ट करना । सत्यानारा करना । उ०—उसने
 सारी आबखू खाक में मिला दी ।

(२) तुच्छ । अकिंचन । (३) कुछ नहीं । उ०—वे खाक
 पड़ते लिखते हैं ।

खाकरोव-संज्ञा पुं० [फा०] गलियों में झाड़ू देनेवाला ।

खाकसीर-संज्ञा स्त्री० [फा० खाकसी] एक शीघ्र जिसे खूप-
 कला भी कहते हैं । यह एक घास का बीज है जो मैदानों,
 बागों तथा जंगल, पहाड़ों में होता है । इसकी पत्तियाँ लंबी
 और टहनियाँ के दोनों ओर आसने सामने लगती हैं । फूल मऊ

जाने पर छोटी छोटी धुंधियां लगती हैं जिनमें छोटे छोटे दाने मिलती हैं लिपटे रहते हैं। खाकसी दो प्रकार की होती है—एक छोटी, दूसरी बड़ी। छोटी का रंग कुछ सुर्खी लिए होता है और बड़ी का रंग कुछ स्याही लिए होता है। छोटी बड़ी से अधिक कड़ुई होती है। यह घास शरय, फ़ारस आदि पच्छिमी देशों में होती है।

खाका-संज्ञा पुं० [फ़ा० खाक] (१) डौल । डांचा । नक़्शा । चित्र का डौल ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—खाँचना ।—बनाना ।

मुहा०—खाका उड़ाना = (१) नक़्शा उतारना । एकही ढाँचे पर बनाना । (२) उपहास करना । निंदा करना । (३) धूल उड़ाना । बदनामी करना ।

(२) चिट्ठा । किसी काम का तक़दमा । वह कागज़ जिसमें किसी काम के खूबों का अनुमान लिखा जाय । तख़्मीना । (३) ससैदा । कच्चा चिट्ठा ।

खाकी-वि० [फ़ा] (१) मिट्टी के रंग का । भूरा । (२) बिना साँचो हुई भूमि ।

संज्ञा पुं० [फ़ा० खाक] (१) एक प्रकार के वैष्णव साधु जो तमाम शरीर में राख लगाया करते हैं । (२) मुसलमान फ़कीरों का एक संप्रदाय जो खाकीराह का अनुयायी है ।

मुहा०—खाकी श्रंढा = (१) वह श्रंढा जो भीतर से विगड़ गया हो और जिसमें से बच्चा न निकले । बयंडा । गंदा श्रंढा । (२) हुरामनादा ।

खाखा-संज्ञा स्त्री० दे० “खाक” ।

खाखाखा-संज्ञा पुं० [फ़ा० खपखाथ] पोस्ते का दाना ।

खाग-संज्ञा पुं० दे० “खाँग” ।

खागना-क्रि० अ० [हिं० खाँग = काँध] खुभना । गड़ना । उ०—(क) शर से प्रति वासर वासर लागै । तन घाय नहीं मन प्राणन खागै ।—केशव । (ख) नाशा तिलक प्रसून पद विपर चिबुक चारु चित खाग ।—सूर ।

क्रि० अ० दे० “खाँगना” ।

खाज-संज्ञा स्त्री० [सं० खजुं] एक रोग जिसमें शरीर बहुत खुजलाता है । खुजली ।

मुहा०—कोड़ की खाज = दुःख में दुःख बढ़ानेवाली वस्तु । विगति पर विपत्ति ला देनेवाली वस्तु । उ०—एक तो कराल कलिकाल सुख भूल तामें, कोड़ में की खाज ली सनीचरी है मीन की ।—मुलसी ।

खाजा-संज्ञा पुं० [सं० खाथ, पा० खज] (१) भक्ष्य वस्तु । खाद्य । जैले, बिखली का खाजा ।

मुहा०—खाजा होना = शिकार होना ।

(२) एक प्रकार को मिठाई जो थारीक मँदे से बनाई जाती है । मुँके हुए मँदे को धी लगा कर सीधा पेलते हैं फिर

मोयन देकर उसे दोहर देते हैं और फिर पेलते हैं । इसी प्रकार बार बार थेल कर मोयन देते, दोहरते और फिर पेलते जाते हैं । थेत को उसे चाँकेर बना कर धी में तलते हैं और चीनी की चाशनी में पागते हैं । खाजा प्रायः दूध में मिनी कर खाया जाता है । (३) एक जंगली पेड़ जो बहुत बड़ा नहीं होता ।

खाट-संज्ञा स्त्री० [सं० खट्वा] चारपाई । पर्तगड़ी । खटिया । माचा ।

थी०—खाट खटोला = बचना शेरिया । कपड़ा छाता । यहूखी का सामान । उ०—बस शयना खाट खटोला ले जाये ।

मुहा०—खाट पड़ना वा खाट पर पड़ना = बीमार पड़ना । बीमार हो कर चारपाई पर पड़ना । किसी की खाट कटना = किसी का इतना बीमार पड़ना कि उसके मतमूत्र त्याग के लिये चारपाई की बुनावट काटनी पड़े । बहुत बीमार पड़ना । खाट लगना वा खाट से लगना = बहुत बीमार पड़ना । इतना बीमार पड़ना कि उठ बैठ न सकता । खाट से उतारा जाना = अत्यन्त-मरण होना । मरने के समीप होना ।

विशेष—हिंदू-धर्म के अनुसार चारपाई पर मरना युग सप्तका जाता है । इससे जप प्राणी मरने के निकट होता है तब वह चारपाई से उतार दिया जाता है ।

खाटिनी-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का धान जो अग्रहर्ष में तैयार होता है ।

खाटो०-वि० दे० “खट्वा” ।

खाड़-संज्ञा पुं० [सं० खात] गड़वा । गनें । उ०—तुई अस बहुत खाड़ खनि मूदी । बहुरन निकल याह होय खूदी ।—जायसी । **खाड़य-संज्ञा पुं०** [सं० पाडव] वह राग जिसमें केवल धः स्वर लगते हों । पाडव ।

खाड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खाड़] समुद्र का वह भाग जो तीन ओर स्थल से घिरा हो । धालात । खलीज ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खोड़] भरहर का सुला और बिना फज पत्ते का पेड़ ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० काढ़ना] किसी चीज में से अंतिम बार निकाला हुआ रंग ।

खाड़-संज्ञा पुं० [हिं० खंड] वे लंबी पतली लकड़ियाँ जिनके ऊपर रल कर खपड़े छाए जाते हैं ।

खाडर-संज्ञा पुं० दे० “खादर” ।

खात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खोदना । खोदाई । (२) तालाब । शुष्क-नियी । (३) कुर्मी । (४) गड़वा । (५) वह गड़वा जिसमें खाद बनाने के लिये कूड़ा और मैला आदि जमा किया जाता है ।

† संज्ञा स्त्री० (१) मद्य बनाने के लिये रखा हुआ महुए का ढेर । (२) वह स्थान जहाँ मद्य बनाने के लिये महुया रखा जाता है । (३) दे० “खादर” ।

वि० मीला । गंदा ।

खानक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा तालाब । तलैया । (२) खाई । परिसर । (३) शय्या । अग्रमण्ड । कुर्चदार ।

खात-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) परिसर । खाई । (२) कूप का गड्ढा । खात ।

खातव्यचहार-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गणित जिससे पेशेवर तालाब खादि का उपेक्षल जाना जाता है ।

खातमा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) श्रंत । समाप्ति । (२) ख्युल ।

खाता-संज्ञा पुं० [सं० वच] यज्ञ रखने का गड्ढा । बखार ।

संज्ञा पुं० [हिं० पत] (१) वह गहरी या किताब जिसमें प्रथेक अक्षामी या व्यापारी खादि का हिसाब मिलीवार और ब्योरेवार लिखा हो ।

मुहा०—खाता खोलना = (१) दे० "खाता खानना" । (२) नया संबंध स्थापित करना । नया व्यवहार करना । खाता खानना = हिसाब खोलना । लेन-देन आरंभ करना । खाता पढ़ना = लेन-देन आरंभ होना । खाते चाकी = वह रकम जो खाते में बाकी निकलती है ।

(२) मद । विभाग । जैसे,—घरमें खाता । खर्च खाता । मास खाता

खातिर-संज्ञा स्त्री० [अ०] आदर । सम्मान ।

† अर्थ० [अ०] वास्ते । सिये । कारण ।

खातिरखाह-अर्थ०, कि० वि० [फा०] जैसा चाहिए वैसा । इच्छानुसार । यथेच्छ ।

खातिरजमा-संज्ञा स्त्री० [अ०] संतोष । इतमीनान । तसल्ली । कि० प्र०—रखना ।

खातिरदारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] सम्मान । आदर । श्रावभगत

खातिरी-संज्ञा स्त्री० [फा० खातिर] (१) सम्मान । आदर । श्राव-भगत । उ०—मचुर यह परिचारकदल महँ खबरि बरातिन लीन्हौं । श्रावन की पुनि श्रावन शयन की सयन खातिरी कीन्हौं ।—रघुराज । (२) तसल्ली । इतमीनान । संतोष ।

संज्ञा स्त्री० [देग०] वह फसल जो नदी के किनारे खाद के बल से वा हाथ से पानी सोंच सोंच कर पैदा की जाय ।

खाती-संज्ञा स्त्री० [सं० खात] (१) खेती हुई भूमि । खेती । (२) छोटा ताल । (३) जमीन खोदनेवाली एक जाति । खतिवा । (४) यड़ई ।

खाद-संज्ञा स्त्री० [सं० खात] वह पदार्थ जो खेत खादि में उनकी बरब्राक शक्ति बढ़ाने के लिये डाला जाता है । पॉस ।

कि० प्र०—डाकना ।—देना ।

विरोप—सब प्रकार की पत्तियाँ, टंडल इङ्गककैट, कीचड़, पत्रियों और पशुओं का मल-मूत्र और मृत-शरीर खादि सभी चीजें सड़ गल कर बहुत अच्छी खाद का काम देती हैं । इसके अतिरिक्त चूना, सड़ियाँ खादि खनिज पदार्थों और अनेक धारों से भी खाद बनती है ।

खादक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अणु लेनेवाला । अग्रमण्ड । (२) किसी पशु का वह भस्म जो खाने के काम में जाता हो । वि० खानेवाला । भक्षक ।

खादन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० खादि, वच] (१) भक्षण । भोजन । खाना । (२) दाँत । (हिं०)

खादनीय-वि० [सं०] भक्षणयोग्य । खाने योग्य । खाद्य ।

खादर-संज्ञा पुं० [हिं० खाद] (१) वह नीची जमीन जिसमें वर्षा का पानी बहुत दिनों तक रुका रहता है । ऐसी जमीन प्रायः नदी, झील खादि के किनारे होती है । बांगर का उलटा । तराई । कटार । उ०—(क) मोघ परस्पर यह कहत हैं भोय करहु गिरि खादर ।—सूर । (ख) रूम रुंदि डारें खुरस्तान खूदि मारें खाक खादर लौं मारें ऐसे साहु की वहार है ।—भूपण । (२) पशुओं के चरने की जगह । चरागाह ।

मुहा०—खादर लगना = पशुओं के चरने योग्य धात उगना ।

खादि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भक्ष्य । खाद्य । (२) जिरहकतर । कवच (३) इच्छाया । दम्पना ।

संज्ञा स्त्री० [सं० किद] दोष । देव ।

खादि-वि० [सं०] खाया हुआ । भक्षित ।

खादिम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) नाँकर । सेवक । (२) दरगाह खादि में रहनेवाला रक्षक ।

खादिर, खादिरसार-संज्ञा पुं० [सं०] कथा । तंत्र ।

खादी-वि० [सं० खादिद] (१) खानेवाला । भक्षक । (२) रक्षक । शत्रु को नाश करनेवाला । (३) कँटीला ।

संज्ञा स्त्री० [देग०] गजी या इमी प्रकार का और कोई मोटा कपड़ा । उ०—सब इक से होत न कहूँ, होत सवन में फेर । कपरो खादी बाफता, लोह तवा शमरोर ।—समा० वि० । [हिं० [हिं० खादि = दोष] (१) दोष निकालनेवाला । छिद्रान्वेषी । (२) दूषित । जियमें ऐव हो ।

खादुक-वि० [सं०] जिसकी प्रशुति सदा हिंसा की ओर रहे । हिंसालु ।

खाद्य-वि० [सं०] खाने योग्य । भोज्य । भव्य ।

खाद्य पुं० [सं०] वह जो खाना जाय । भोजन ।

खाद्यु-संज्ञा पुं० [सं० खाद्य] भोज्य पदार्थ । भोजन । खाद्य । उ०—(क) जोवन पंली विरह वियापू । केहर भयो कुर्-गिन खापू ।—जायसी । (ख) भई व्याधि तृप्या संग खापू । सुन्नी मुक्ति न सुन्नी व्यापू ।—जायसी ।

खाद्युफर्-संज्ञा पुं० दे० "खाद्यु" ।

खान-संज्ञा पुं० [हिं० खाना] (१) खाने की क्रिया । भोजन ।

उ०—खान तजोगी और पान तजोगी और मान तजोगी न काहू लजोगी ।—विभ्राम । (२) भोजन की सामग्री । (३) भोजन करने का ढंग वा आचार । उ०—उनका खान पान ठीक पढ़ें हैं ।

थी०—खानपान ।

संज्ञा स्त्री० [सं० खानि] (१) वह स्थान जहाँ से धातु, पथर आदि खोद कर निकाले जाय। खानि। आकर। खदान ।

क्रि० प्र०—खुलना = खान के खोदने का काम जारी होना ।

(२) आधार-स्थान । शक्ति-स्थान । जैसे, गुणों की खान ।

(३) खजाना । जहाँ कोई वस्तु बहुत ली है। उ०—यहाँ क्या रुपए की खान खुली है ?

संज्ञा पुं० [सत्तार वा मंगोल काठ = सरदार] (१) सरदार । उमराव । उ०—मैंन केँ येँ तुहिँ मैंन कहा मत मान । मोहिँ देखत पहुँतै छुलेँ इननेँ खान सुमान ।—रसनिधि । (२) पदार्थों की उपाधि

संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खाना] कोरहू का यह छेद जिसमें ऊख की गड़दियाँ वा तेरहन भर कर परते हैं । रौं । घर ।

खानक—संज्ञा पुं० [सं० खन] (१) खान खोदनेवाला । (२) बेलदार । (३) मेमार । राज । थवई । उ०—दाहू-कर्मकारक अरू खानक अरू दैवज्ञ साहाये ।—रघुराज ।

खानक़ाह—संज्ञा स्त्री० [फ०] मुसलमान साधुओं वा धर्म-शिष्यों के रहने का स्थान वा मठ ।

खानखाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० खानेखानान] (१) सरदारों का सरदार । बहुत ऊँचे दर्जे का सरदार । (२) एक उपाधि जो मुगल राज्यों में मुसलमान सरदारों को दी जाती थी ।

खानखानाह—क्रि० वि० दे० “खाहमखाह” ।

खानगी—वि० [फ्रा] जिससे बाहरवालों का कुछ संबंध न हो । निज का । आपस का । घरेलू । घर ।

संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] केवल कृत्य करानेवाली और बहुत लुच्छ वेरया । कृतवी ।

खानजादा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) अमीर का पुत्र । अमीरजादा । (२) ऊँचे घराने का व्यक्ति । (३) अच्छी जाति के वे हिंदू जिनके पूर्वजों ने मुसलमानों के राजव-काल में मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया था । इनमें अधिकांश खली ही हैं ।

खानदान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] [वि० खानदानी] वंश । कुल । घराना ।

खानदानो—वि० [फ्रा०] (१) ऊँचे वंश का । अच्छे कुल का । (२) वंश-परंपरागत । वैत्रिक । पुरतैनी ।

खानदेश—संज्ञा पुं० [खान्द = जंगली जाति + देश] बंधई प्रांत का एक प्रदेश । यह प्रदेश सतपुरा की पर्वतमाला के दक्षिण में है ।

खान पान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरा पानी । आशदाना । भोजन और जल । (२) भोजन करने और जल पीने की क्रिया । खाना पीना । (३) खाने पीने का ढंग वा भोजन करने की रीति । खाने पीने का आचार । (४) खाने पीने

का संबंध । खुर्दोश । उ०—उनसे हमारा खान पान नहीं है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—रहना ।—चलना खाना ।

खानबहादुर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक खिताब जो सरकार की ओर से मुसलमानों को दिया जाता है ।

खानसामा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] शंगरेजों मुसलमानों आदि का भंडारी ।

खाना—क्रि० सं० [सं० खानन, पा० खाणन, खान] [प्रे० निखाना]

(१) आहार को मुँह में चबा कर निगलना । भोजन करना । भक्षण करना । पेट में डालना । (इसका प्रयोग घन पदार्थों के लिये होता है, द्रव के लिये नहीं, यद्यपि किसी किमी के मुँह से जल खाना आदि भी सुना जाता है ।)

संयो० क्रि०—जाना ।—डालना ।—लेना ।

थी०—खाना कमाना । खाना पीना । खाना उड़ाना ।

मुहा०—जिसका खाना उसके गुर्गाना = जिसका अन्न खाना उठी के अंश दिखाना । उपकार न मानना । खाता कमाता आदमी = खाने पीने भर के कमनेवाला आदमी । वह मनुष्य जिसके पास घन संचित न हो । खाना कमाना = काम बंधा कर के जीविका निर्वाह करना । मिहनत भूनभूरी करके गुजर करना । खाने के दांत और दिलाने के और = बाहर कुछ भीतर कुछ । करना कुछ और प्रगट करना कुछ और । खा पका जाना, डालना = खर्च कर डालना । उड़ा डालना । खाना पीना = (१) भोजन पान करना । (२) सुख से दिन बिताना । उ०—खड़के बाले भूखों मरते हैं और आप खाता पीता है । खाना पीना लहू करना = कुछ वा खिन्न करके खाने पीने को निरासंद कर देना । मोघ वा खेद उत्पन्न करना । खाने पीने से अच्छा, सुख = सुख से जीवन निर्वाह करनेवाला । खाओ यहाँ तो पानी पिओ यहाँ = खाने के बाद पानी पीने के लिये भी यहाँ न उहाँ, तुरंत चले आओ । थाने में छाया भर की भी देर न करो । परओ यहाँ तो हाथ पोओ यहाँ = तुरंत चले आओ । खाना न पचना = चैन न पड़ना । खी न मानना । उ०—जय तक वह इधर उधर गप नहीं मारता तब तक उसका खाना नहीं पचता ।

विशेष—‘खाना’ क्रिया का प्रयोग कभी कभी अकर्मक के समान भी होता है, जैसे, वह खाने गया है । (२) हिंसक जंतुओं का शिकार पकड़ना और भक्षण करना । जैसे, उसे शेर खा गया ।

मुहा०—खा जाना = मार डालना । उ०—वह ऐसा ताकता है माने खा जायगा । कच्चा खा जाना = मार डालना । प्राय से लेना । उ०—जी चाहता है कि उसे कच्चा खा जाऊँ । खाने दौड़ना = चिड़चिड़ाना । क्रुद्ध होना । उ०—जय उसके पास खाना मारने जाते हैं तब वह खाने दौड़ता है ।

मुहा०—खा जाना = मार डालना । उ०—वह ऐसा ताकता है माने खा जायगा । कच्चा खा जाना = मार डालना । प्राय से लेना । उ०—जी चाहता है कि उसे कच्चा खा जाऊँ । खाने दौड़ना = चिड़चिड़ाना । क्रुद्ध होना । उ०—जय उसके पास खाना मारने जाते हैं तब वह खाने दौड़ता है ।

मुहा०—खा जाना = मार डालना । उ०—वह ऐसा ताकता है माने खा जायगा । कच्चा खा जाना = मार डालना । प्राय से लेना । उ०—जी चाहता है कि उसे कच्चा खा जाऊँ । खाने दौड़ना = चिड़चिड़ाना । क्रुद्ध होना । उ०—जय उसके पास खाना मारने जाते हैं तब वह खाने दौड़ता है ।

मुहा०—खा जाना = मार डालना । उ०—वह ऐसा ताकता है माने खा जायगा । कच्चा खा जाना = मार डालना । प्राय से लेना । उ०—जी चाहता है कि उसे कच्चा खा जाऊँ । खाने दौड़ना = चिड़चिड़ाना । क्रुद्ध होना । उ०—जय उसके पास खाना मारने जाते हैं तब वह खाने दौड़ता है ।

मुहा०—खा जाना = मार डालना । उ०—वह ऐसा ताकता है माने खा जायगा । कच्चा खा जाना = मार डालना । प्राय से लेना । उ०—जी चाहता है कि उसे कच्चा खा जाऊँ । खाने दौड़ना = चिड़चिड़ाना । क्रुद्ध होना । उ०—जय उसके पास खाना मारने जाते हैं तब वह खाने दौड़ता है ।

विशेष—विपल कीड़ों के काटने के अर्थ में केवल 'काला' (सांग) के साथ इस क्रिया का प्रयोग होता है। जैसे, तुम्हें काला खाए। उ०—(क) आगुहिँ मेरे घर खेलन आई। जात कहूँ कारे तेहि खाई।—सूर। (ख) ताकी माता खाई कारे। सो मरि गई शाप के मारे।—सूर। पर अलंकरण वा मुहाबिरेदार भाषा में अत्युक्ति का भाव लेकर इस क्रिया से अलमल मच्छड़ आदि का बहुत काटना भी व्यक्त किया जाता है। जैसे, आत्म रात खटमलों ने खा डाला। यहाँ से मच्छड़ खाए डालते हैं।

(३) किमी इंद्रिय वा अंग को उसके अरुचिकर विषय उपस्थित करके पीड़ित करना। अंग करना। दिक् करना। कष्ट देना।—(क) तुम तो हमारे कान खा गए (कड़े शब्द से)। (ख) क्यों मरि या जान खाते हो। (घ) (कीड़ों का) किसी वस्तु को कुतरना वा काटना। जैसे, किताब को कीड़े खा गए। लकड़ी को दीमक खा गए। छुटी को मुर्चा खा गया। (ङ) चवाना। मुँह में रख कर रस खादि चूसना। जैसे, पान खाना, संघाड़ खाना। (ङ) मष्ट करना। वस्त्राद करना। सलानाया करना। उ०—(क) तुम्हारी चालाकी तुम्हें खा गई। (ख) क्रोध मन्युष्य को खा जाता है। (ग) विदेशी माल देशी कारीगरी को खा गया। (ग) उड़ा देना। दूर कर देना। न रहने देना। उ०—चूना दीवार को रंग को खा गया। (ङ) हड़प करना। मार लेना। हड़प जाना। उ०—चे कोठी का बहुत सा शरया खा गए। (१) खर्च करना। उड़ाना। उ०—तनराह में से कुछ बचाते भी हो कि सत्र खा डालते हो? (१०) वेदमानी से रुपया पैदा करना। निरापत आदि लेना। उ०—अमले और नौकर-चाकर सब जगह खाते पीते हैं। (११) खर्च करवाना। रुपया खरायाना। उ०—यह मकान उनकी सारी कमाई खा गया। (१२) अमाना। समाना। खेंटना। खाना। भरना। जैसे, छोटी सी कुम्भी ५ सेंर पी खा गई। (१३) किसी काम को करते हुए उसके किसी अंग को छोड़ जाना। जैसे, लिखने पढ़ने में किसी अक्षर को छोड़ जाना। उ०—तुम लिखने में कई अक्षर खा गए हो। (१४) (आघात, प्रभाव आदि) लटना। ध्वंसारत करना। प्रभाव पड़ने देना। जैसे, मार-खाना, जाल खाना, छुड़ी खाना, गांजी खाना, चोट खाना, सरदी खाना, धूप खाना, हवा खाना, गम खाना, हार खाना। मुहा०—मुँह की खाना—(१) छुपई का ठीक बदला पना। धर मौंचा देखना। फिर का पूरा फल पना। (२) पराजित होना। हार जाना।

खाना—संज्ञा पु० [फा०] (१) आलय। घर। मकान। जैसे, हाक-खाना, दवाखाना, इन्सुखाना आदि। (२) किसी चीज़ के रूपों का घर। बेंस। जैसे, चरामे का खाना, धड़ी का खाना,

आदि। (३) अलमारी, मेज वा संदूक आदि में चीज़ें रखने के लिये पदरियों वा तख्तों के द्वारा किया हुआ विभाग। (४) सारणी या चक्र का विभाग। कोष्टक।

फि० प्र०—यनाना।—पूरना।—भरना।

(२) संदूक। घेटी। (लख०)

खानाखराब—वि० [फा०] [संज्ञा खान, खराबी] (१) खैपट करनेवाला। सत्यानारी। (२) जिसके रहने का ठिकाना, या घर बार न हो। आघात।

खानाजर्मी—संज्ञा स्त्री० [फा०] श्रापस की लड़ाई। परस्पर का झगड़ा।

खानाजाद—वि० [फा०] घर में पैदा या वाला पोसा हुआ। घरजाया (गुलाम)।

संज्ञा पुं० [फा०] सेवर। गुलाम। दास। उ०—मन विगारयो ये मन विगारो।.....। ए सय कहीँ फाँद हैं मेरे खानाजाद विचारे।—सूर।

खानातलाशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] किसी खोई, छिपी या अनजानी चीज़ के लिये मकान के भीतर छान धीन करना।

विशेष—यह क्रिया प्रायः राज्य वा किसी बड़े अधिकारी की ओर से या आस्था से होती है।

खानादारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] गृहस्त्री।
खाना पीना—संज्ञा पुं० [हिं० खाना + पीना] खाने पीने का व्यवहार वा संवैध। खान पान।

फि० प्र०—खूटना।

खानापुत्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाना + पुत्री] किसी चक्र या सारणी के कोठों में यथास्थान संख्या वा वाक्य आदि लिपना। नक़्शा भरना।

खानाघदेश—वि० [फा०] जिसके रहने वा रहने का कोई निश्चित स्थान न हो। जिसका घर बार न हो।

खानाखुमारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] किसी गांव या नगर आदि के मकानों की गिनती का काम।

खानि—संज्ञा स्त्री० [सं० खनि] (१) दे० "खान"। (२) अस्थि-स्थान। उपजने की जगह। उ०—दरिद विदारिचे की प्रभु को तलास, तो हमारे इहाँ अथनिन दरिद की खानि हैं।—दास। (३) वह जिसमें या जहाँ कोई वस्तु अधिकता से हो। खजाना। उ०—हा गुणरानि जानकी सीता।—गुलामी।

(४) भोर। तहक। उ०—यत द्वारे में दूत सय करते पेंचा तानि। उतने कभू न छूटना फिरता चारों खानि।—कबीर।

(५) प्रकार। तरह। अंग। उ०—चार खानि जग जीव जहाना।—गुलामी।

खानिक—संज्ञा स्त्री० [हिं० खानि] खान। खदान। उ०—सुम्हई रामप्रति मखि मानिक। गुप्त प्रगत जई जो जेहि खानिक।—गुलामी।

खापट-संज्ञा स्त्री० [हिं० खपड़] एक प्रकार की भूमि जिसमें लोहे का अंश अधिक होता है। इसकी मिट्टी बहुत कड़ी और भारी होती है और पानी बसने पर बहुत लसदार हो जाती है। ऐसी भूमि केवल बरसात में ही जोती जा सकती है और इसमें धान के अतिरिक्त और कोई चीज नहीं उगाई जा सकती। इसकी मिट्टी से, जिसे कपसा और काविस भी कहते हैं, कुम्हार लोग मिट्टी के बरतन बनाते हैं।

खापर-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "खापट"। (२) ऊमड़ खाभड़ भूमि। ऊँची नीची जमीन।

खापड़*-संज्ञा पुं० [फ्रा० खपड़] खाम। उ०—प्यारी के पायन की उपमा द्विज कों सव जानि परी जिमि खाय की। पंकज पात की यात कहीं जिन कोमलता लई जीत गुलाब की।—द्विज।

खाबड़ खूबड़*-वि० [अ०] जो सम न हो। ऊँचा नीचा। यह विशेषण प्रायः 'भूमि' के लिये ही आता है।

खामा-संज्ञा पुं० [हिं० खामना] मिट्टी का एक बरतन जिससे तेली कोल्हू के नीचे के बरतन में से तेल निकालते हैं।

खाम-संज्ञा पुं० [हिं० खामना] (१) चिट्ठी का लिफाफा। उ०—वाँचत न कोऊ अब बैसई रहत खाम, खुबनी सकल जानि गई गति याकी है।—द्विज देव। (२) संधि। जोड़। रंका।

क्रि० प्र०—लगाना।

विशेष—कहीं कहीं यह शब्द खोलिंग भी बोला या लिखा जाता है।

खंभा पुं० [हिं० खंभा] (१) खंभा। स्तंभ। (२) जहाज का मस्तक। (लश०)।

खं वि० [सं० खाम] घटने या क्षीय होनेवाला। उ०—नाम रूप अरु लीला धामा। रहत निलय ये पटत न खामा।—विद्याम।

खाम-वि० [फ्रा०] (१) जो पका न हो। कच्चा। (२) जो हड़ या पुट न हो। (३) जिसे सज्ज्या न हो। अशुभवर्दीन।

खामखाही, **खामखाही**-क्रि० वि० दे० "खाहमखा"।

खामना-क्रि० सं० [सं० खंमन = बँदना, रोकना, प्रा० खंभन] (१) गीली मिट्टी या आटे आदि से किसी पात्र का मुँह बंद करना। (२) चिट्ठी को लिफाफे में बंद करना।

खामी-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) कच्चाई। कच्चापन। (२) नातजुहवे-कारी। (३) कमी। अपूर्णता।

खामोश-वि० [फ्रा०] चुप। मौन।

खामोशी-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] मौन। चुप्पी।

खामा-संज्ञा पुं० [फ्रा०] अंधकाय।

खाम-संज्ञा पुं० [सं० खार, प्रा० खार] (१) दे० "खार"। (२) सज्जी। (३) लोना। लोनी। कहर। रेह।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—खार लगना = दुःखपान।

(४) धूल। राख। (५) एक प्रकार की झाड़ी जिससे खार निकलता है। यह पंजाब में नमक के पहाड़ के आसपास तथा पच्छिमी प्रांतों में होती है।

खार-संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) कौटा। कंठक। फांस। (२) सुगर्भ, तीव्र आदि पक्षियों के पैर का कौटा। खोंग। (३) बाह। जलन। हूपे।

मुदीरा—खार खाना = बाह करना। जलना। खार गुजरना = बुरा लगना। खटपटना।

खारका-संज्ञा पुं० [सं० खारक, प्रा० खारक] छोहारा। उ०—खारक दास दयाप मरो किन उँटहिँ उँटकराहिँ भावै।—केशव।

खारवा*-संज्ञा पुं० [दे०] खलासी। महाह। जहाजी।

खारा-वि० पुं० [सं० खार] [स्त्री० खारी] (१) खार या नमक के सवाद का। (२) कड़वा। अरुचिकर उ०—कृपासिंधु में देखा विचार। यहि मरने ते जीवन खारी।—विद्याम।

खंभा पुं० [सं० खारक] (१) एक प्रकार का कपड़ा जो धारीदार होता है। (२) [स्त्री० अ० खारी] धास वा सूखे पत्ते धारधने के लिये जालदार बँधना जिसे घसियारे और भड़भूँजे काम में लाते हैं। (३) वह जाली या धँला जिसमें भर कर तोड़े हुए आम पेड़ से नीचे लटकाए जाते हैं। (४) धास, सरकंठे, वा रहडे आदि का बड़ा-छोटा गहरा टोकरा। यह विशेषतः चौखूँटा होता है। फावा। रंका। (५) धास का बड़ा पिंजड़ा। (६) उलटे टोकरे के धाकार का सरकंठे आदि का बना हुआ एक प्रकार का चौक्रेर आसन जिसका व्यवहार प्रायः राजपूतों में विवाह के अवसर पर वर और कन्या के बैठने के लिये होता है।

खारिक*-संज्ञा पुं० [सं० खारक] छोहारा। खारक। उ०—(क) खारिक दाख खोपरा खीरा। केरा थाम ऊपर रस खीरा।—सूर (ख) खारिक खात न दारिई दाख न भावन हू सह मेटि ह्यार्इ।—केशव।

खारिज-वि० [फ्रा०] (१) बाहर किया हुआ। निकाला हुआ। यहिच्छत। (२) भिन्न। अलग। (३) जिस (अभिमत) की सुनवाई न हो।

खारिजा-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] सुजली। खान।

खारिजत-संज्ञा स्त्री० दे० "खारिजा"।

खारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के मत से खार और किसी के मत से सोलह द्रोण की एक सौल।

खंभा स्त्री० [हिं० खार] (१) एक प्रकार का खार लवण जो दवा के काम में आता है। संदाल में मल मलाने के लिये भी खारी डालते हैं। (२) खार-युक्त। जिसमें खार का मेल हो। जैसे, खारी माट।

खारीमाट-संज्ञा पुं० [हिं० खरी + मा = गडका] नील का रंग तैयार करने का एक ढंग। इसमें एक बड़े मटके में लगभग चार मन पानी छोड़ कर उसमें सेर सेर भर कच्चा नील, चूना और सजी खालते और थोड़ा सा गुड़ मिला कर उठने के लिये रख देते हैं। गरमियों में यह एक दिन में और जाड़े में तीन चार दिनों में तैयार हो जाता है। अधिक जाड़े में इसे कभी कभी भाग भर भी चढ़ा देते हैं।

खाह्रा, खाह्या-संज्ञा पुं० [सं० खाह्रक] (१) खाल से बना हुआ एक प्रकार का रंग जिसमें मोटे कपड़े रंगे जाते हैं। (२) इस रंग से रंगा हुआ एक प्रकार का मोटा कपड़ा जो विशेषतः काल्सी में तैयार होता है।

खारेजा-संज्ञा पुं० [फा० खारिजा] एक प्रकार का जंगली कुसुम या धरें जो पंजाब के मैदानों में बहुत उगता है और धरें की अपेक्षा अधिक कँटीला होता है। इसके दाने बहुत छोटे और निकम्मे होते हैं और इसमें अनेक रंग के सुहावने फूल लगते हैं। बगधरें। बगकुसुम। कँटियारी।

खारो-वि० दे० "खारा"।

खाजूर-संज्ञा पुं० [सं०] खजूर के रस से बनी हुई मदिरा जो प्रायः महुए की मदिरा के समान होती है। बँधक में इसे रुचिकर, कफघ्न, कपाय और हृद्य माना है।

खाल-संज्ञा स्त्री० [सं० क्षाल, शं० खाल] (१) मनुष्य, पशु आदि के शरीर का उपरी आवरण। चमड़ा। त्वचा।

मुहा०—खाल उड़ाना = बहुत मानना या पीटना। खाल धेड़ना या खींचना = (१) शरीर पर ते समझा खींच कर अलग कर लेना। (२) बहुत मानना पीटना या कडा दंड देना। खाल विगड़ना = दुर्दशा कराने या दंष्ट्रित होने की इच्छा होना। शांमत आना।

(२) किसी चीज का अंगीभूत आवरण। जैसे, बाल की खाल। (३) आधा चरसा। अपेक्षा। (४) धौंकनी। भायी। (५) सत शरीर। उ०—कहि नू अपने स्वारथ सुख को रोकि कदा करि है खलु खालहि।—घूर।

खला स्त्री [सं० खल या शं० खाली] (१) नीची भूमि। (२) खाड़ी। खलीज। (३) खाली जगह। अचक्र। (४) गह्राई। निचाई।

खालफुका-संज्ञा पुं० [हिं० ख.स + फूकना] धौंकनी धौंकनेवाला। भायी चकानेवाला।

खालसा-वि० [शं० खालिस = शुद्ध जिसमें किसी प्रकार का मेल न हो] (१) निग पर केवल एक का अधिकार हो। जैसे, उनकी सारी जायदाद खालसा है। (२) राज्य का। सरकारी।

मुहा०—खालसा करना = (१) स्वाधत्त करना। अंडत्त करना। (२) नष्ट करना। चौपट करना। खालसे लगाना = खालसा करना। संज्ञा पुं० विक्खों की एक विशेष मंडली।

खाला-वि० [हिं० खाल या खाली] [शं० खाली] नीचा। निम्न। मुहा०—खाला जैचा = (१) जो समतल न हो। (२) मज्जा बुरा, या हानि लाभ।

खाला-संज्ञा स्त्री० [शं०] माता की यहिन। मौसी।

मुहा०—खाला जी का घर = बहु काम जिसके करने में अधिक परिश्रम न करना पड़े। सहज काम।

खालिक-संज्ञा पुं० [शं०] थनानेवाला। सिरजनहार। सटा। सृष्टिकर्ता।

खालिस-वि० [शं०] जिसमें कोई दूसरी वस्तु न मिली हो। शुद्ध।

खाली-वि० [शं०] (१) जिसके भीतर कुछ न हो। जिसके भीतर का स्थान शून्य हो। जो भरा न हो। रीता। रिक्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—खाली करना = भीतर कुछ न रहने देना। भीतर की वस्तु या शर निकाल लेना। जैसे, घड़ा खाली करना, संकू खाली करना।

(२) जिस पर कुछ न हो। जिस पर कोई वस्तु या व्यक्ति न हो। जैसे, खाली खाली करना, मेरु खाली करना।

(३) जिसमें कोई एक विशेष वस्तु न हो। किसी विशेष वस्तु से शून्य। उ०—(क) जंगल जानवरों से खाली हो गया। (ख) हमारा मकान खाली कर दो।

मुहा०—हाथ खाली होना = (१) हाथ या मुट्ठी में रखा पैसा न होना। अकिंचन या निर्धन होना। खुबख होना। उ०—भाई! आज कल हमारा हाथ खाली है, हम कुछ नहीं दे सकते। (२) हाथ में कोई हथियार न होना। (३) हाथ में किया हुआ काम समाप्त होना। फुरसत मिलना। अचक्राश्र मिजना। खाली पेट = बिना कुछ अन्न खाए हुए। निरुन्ने पेट। वासी मुँह। उ०—खाली पेट पानी मत पीओ। खाली हाथ = (१) बिना मुट्ठी में कुछ दाम किए। बिना कुछ रुपए पैसे के। उ०—(क) खाली हाथ मेले में जाना ठीक नहीं। (ख) माहण्य को खाली हाथ मन लौटाओ। (२) बिना किसी हथियार के। उ०—रात को जंगल में खाली हाथ निकलना अशुद्ध नहीं।

(४) रहित। विहीन। उ०—(क) उनकी कोई यात मतलब से खाली नहीं होती। (ख) शुभ आचार धर्म को ज्ञान रखो तब ये खाली।—खुराज। (५) जिसे कुछ काम न हो। जो किसी कार्य में न जाग हो। (व्यक्तिक) उ०—अब हम खाली हैं, जाओ तुम्हारा काम देख ले'।

मुहा०—खाली पैदना = (१) कोई काम धाम न करना। (२) वे रोजगार रहना। बिना जीविका के रहना।

(६) जो व्यवहार में न हो। जिसका काम न हो। (वस्तु) उ०—(क) चाकू खाली हो गया हो तो धर जाओ। (ख) इतने शेत खाली पड़े हैं। (७) व्यर्थ। निष्फल। उ०—(क)

तुम्हारा प्रयत्न खाली न जायगा । (ख) पुनि लक्ष्मी हित उद्यम करे । अरु जब उद्यम खाली परे । तब वह रहे बहुत दुख पाई ।—सुर ।

कि० प्र०—जाना ।—पड़ना ।

मुहा०—निशाना या चार खाली जाना = निशाना या चार ठीक न बैठना । अन्न का लक्ष्य पर न पहुँचना । आक्रमण व्यर्थ होना । यात खाली जाना या पड़ना = बचन निष्फल होना । कहने के अनुसार कोई बात न होना । वादा झूठा होना । उ०—(क) हमारी बात खाली न जायगी, वह कल अवश्य आवेगा । (ख) अगर आज हफ्ता उनके यहाँ न पहुँचेगा तो हमारी बात खाली जायगी । खाली दिन = वह दिन जिस दिन कोई नया या शुभ कार्य न किया जाय । उ०—कल तो शुभ है, खाली दिन है, कल आरंभ करना ठीक नहीं है । खाली देना = जिस पर बार था आघात किया जाय उसका बार का बचा जाना । साफ़ निकल जाना ।

कि० वि० कैयल । सिर्फ़ । अकेले । उ०—खाली रटने से काम न चलेगा, समझे ।

संज्ञा पुं० तथला, सृदंग आदि ध्वजाने में वह ताल जो खाली छोड़ दिया जाता है और बापूँ पर आघात नहीं लगाया जाता । इसका व्यवहार ताल की गिनती ठीक रखने के लिये किया जाता है ।

खात्—संज्ञा पुं० [का०] [खी० खला] माता की यहिन का पति । भाँसा ।

खाली—कि० वि० दे० “खाला” या “खाल” (नीचा) । उ०—गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले । चञ्चल कुमग पग परहि न खाले ।—तुलसी ।

खार्चा—संज्ञा स्त्री० [सं० ख] अथकाय । खाली जगह । संज्ञा स्त्री० [दे०] जहाज़ की वह कोठरी जिसमें माल रखा जाता है । (खर०)

खार्चा—संज्ञा पुं० दे० “खाँचा” ।

खाचिंद—संज्ञा पुं० [का०] (१) पति । स्वामि ।

मुहा०—खाचिंद करना = नया पति करना ।

(२) मालिक । स्वामी ।

खाची—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाना] वह अन्न या धन जो मालिक अपने नौकरों को धरपूँ के आरंभ में पेशगी देता है ।

खास्त—वि० [ख०] (१) विशेष । मुख्य । प्रधान । ‘शाम’ का उलटा । उ०—सुधि किये बलि जाउ दास खास पूजिई खास खीन की ।—तुलसी ।

मुहा०—खास कर = विशेषतः प्रयत्नतः । खास खास = खुने खुने । खुनिदे । अर्थात् और प्रतिष्ठित । उ०—खास खास लोगों को खोता दिया गया है ।

(२) निज का । आत्मीय । चाहता । प्रिय । उ०—(क) यह

खास घर के आदमी हैं । (ख) खास दाम रावरो निवास सेरो तासु उर तुलसी से देव दुखी देखियत भारिये ।—तुलसी । (३) स्वयं । खुद । जैसे, खास राजा के हाथ से हुनाम लूँगा । (४) ठीक । ठेंठ । विशुद्ध । उ०—यह खास दिखी की बोल चाल में लिखा गया है ।

संज्ञा स्त्री० [ख० कीस] (१) एक गाढ़े कपड़े की धैली जिसमें शकर भर के बोरे में भरी जाती है । (२) कपड़े की वह धैली जिसमें बनिपू नमक चीनी आदि रखते हैं ।

खासकरतम—संज्ञा पुं० [ख०] वह लेखक या सहायक जो धड़े लोग अपने निज के कार्यों के लिये रखते हैं । निज का सुर्ग । प्राइवेट सेक्रेटरी ।

खासगी—वि० [ख० खास + गी (प्रत्य०)] राजा या मालिक आदि का । निज का ।

खासतराश—संज्ञा पुं० [का०] वह नाई जो राजा के धाल बनाया करता है ।

खासतहसील—संज्ञा स्त्री० [ख०] वह तहसील जो उस स्थान में हो जहाँ राजा वा प्रांत का शासक स्वयं रहता हो । हुजूर तहसील । जिला तहसील ।

खासदान—संज्ञा पुं० [उर्दू] गिलौरी का सामान रखने का डिब्बा । पानदान ।

खासनवीस—संज्ञा पुं० दे० “खासकलम” ।

खासबरदार—संज्ञा पुं० [का०] वह सिपाही जो राजा की सवारी के साथ साथ सवारी के ठीक आगे आगे चलता है ।

खासबाज़ार—संज्ञा पुं० [का०] वह बाज़ार जो राजा के मरल के सामने वा निकट हो और जहाँ से राजा वस्तुएँ मोल लेता हो ।

खासा—संज्ञा पुं० [ख०] (१) राजा का भोजन । राजभोग । (२) राजा की सवारी का घोड़ा वा हाथी । (३) एक प्रकार का पतला सफ़ेद सूती कपड़ा । (४) एक मोहनदार पूरी । वि० पुं० [उर्दू] [खी० खासा] (१) अच्छा । भला । उत्तम । (२) स्वस्थ । तंदुरुस्त । नीरोग । (३) मध्यम श्रेणी का । (४) सुडैल । सुंदर । भरपूर । पूरा ।

खासियत—संज्ञा स्त्री० [ख०] (१) स्वभाव । प्रकृति । आदत । (२) गुण । सिफ़त ।

खासिया—संज्ञा स्त्री० [सं० खस] (१) आसाम की एक पहाड़ी का नाम । (२) इस पहाड़ी में रहनेवाली एक जंगली जाति । खस ।

खासियाना—संज्ञा पुं० [हिं० खासिया] एक प्रकार की मँगीठ जिसका रंग बहुत अच्छा होता है । यह खामिया से आती है । खासी—वि० स्त्री० [ख०] “खासा” का स्त्रीलिंग ।

संज्ञा स्त्री० [ख०] खास राजा के बंधने की तलवार, ढाल वा बंदूक ।

खास्ता-संज्ञा पुं० [ख०] स्वभाव । आदत । धानि । प्रकृति ।
 खाह-ख्य० दे० "खाह" ।
 खाहनखाह, खाहमखाह-कि० वि० दे० "खाहमखाह" ।
 खाही-वि० दे० "खाही" ।
 खादिश-संज्ञा धी० दे० "खादिश" ।
 खादिशमंद-वि० दे० "खादिशमंद" ।
 खाहीनखाही-कि० वि० दे० "खाहमखाह" ।
 खिग-ज्ञा पुं० [ख०] यह सफेद रंग का बोझ जिसके मुँह पर
 का पट्टा और चारों सुम गुजारीयन लिए सफेद हों । सुकरा ।
 खिगरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] मँदे की यन्त्री हुई बहुत पतली और
 छोटी खस्ता पूरी या मटरी ।

खिचना-कि० अ० [सं० कथ०] (१) किसी वस्तु का इस प्रकार
 एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना कि वह गति के समय
 अपने आकार से लगी रहे । घसितना । जैसे, यह लकड़ी कुछ
 इधर खिंच गई है । (२) किसी कोश धोले आदि में से
 किसी वस्तु का बाहर निकलना । जैसे, दोनों तरफ से तलवारों
 खिंच गईं । (३) किसी वस्तु के एक या दोनों छोरों का एक
 या दोनों ओर बढ़ना । तनना । (४) आकर्षित करना । प्रवृत्त
 होना । किसी ओर बढ़ना या जाना ।

मुहा०—खिच खिचना = मन मोहित होना ।
 (१) सोझा जाना । खपना । चुसना । जैसे, सोमता रखते
 ही वनमें सारी खाही खिंच आई । (६) भभके आदि से
 अर्क या भराव आदि तैयार होना । (७) किसी वस्तु के गुण या
 तत्व का निकल जाना । जैसे, उसकी सारी शक्ति खिंच गई ।

मुहा०—पीड़ा या दर्द खिचना = (औषधि आदि से) दर्द दूर
 होना । जैसे, उस लेप के लगाने ही सारा दर्द खिंच गया ।
 (८) कलम आदि से धन कर तैयार होना । चित्रित होना ।
 जैसे, तस्वीर खिचनी । (९) रुक रहना । रुकना ।

मुहा०—हाथ खिचना = देना आदि बंद होना । जैसे, अग्र
 धर से हाथ खिंचे तो तुम भी काम बंद कर देना ।
 (१०) माल की खलास होना । माल खरना । जैसे, इस
 देश का सारा कच्चा माल बिलायत से खिंचा जाता है ।
 (११) धनुराग कम होना । उदासीन होना । (१२) भाव
 सेन होना । मरहूना होना । जैसे, वरों न होने के कारण दिन
 पर दिन भाव खिंचना जाता है ।

सोया कि०—बुझना ।—जाना ।—पड़ना ।
 खिचवा-वि० [हि० खीचना] खिंचनेवाला ।
 खिचोर—इस शब्द का प्रयोग प्रायः नाच की गूना अथवा खराद
 की पट्टी रींगनेवालों के लिये होता है ।
 खिचवाना-कि० सं० [हि० खीचना] "खीचना" का रेखणार्थक रूप ।
 खिचार्—संज्ञा स्त्री० [हि० खीचना] (१) खींचने की क्रिया । (२)
 खींचने का भाव । (३) खींचने की मजदूरी ।

खिंचाना-कि० सं० दे० "खिंचवाना" ।
 खिंचाव-संज्ञा पुं० [हि० खिचना] "खीचना" का भाव ।
 खिंचावट, खिंचावट-संज्ञा स्त्री० [हि० खिचना] (१) खींचने का
 भाव । (२) खींचने की क्रिया ।

खिंचिया-वि० दे० "खिंचवा" ।
 खिंचाना-कि० म० [सं० खिच] बिखरना । बिखराना । छित-
 राना । इधर उधर फैलाना ।

खिचिंद-संज्ञा पुं० [सं० खिचिण्ड] (१) दक्षिण देश के एक पहाड़
 का नाम जहाँ वनवास के समय में कुछ दिन रामचंद्र जी ने
 निवास किया था । यह पहाड़ मैसूर राज्य के उत्तरी भाग में
 है । किष्किण पर्वत । (२) बीहड़ भूमि ।

खिचडुवार-संज्ञा पुं० [हि० खिचवी + वार] मकर संक्रांति । इस
 दिन खिचड़ी दान की जाती है ।

खिचड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० कुरर] (१) एक में मिलाया या मिला कर
 पकाया हुआ दाल और चावल ।

कि० प्र०—उतारना ।—चढ़ाना ।—डालना ।—भूनना ।—
 पकाना ।

मुहा०—खिचड़ी पकाना = गुन भाव से कोई सजाह देना । दाईं
 चावल की खिचड़ी अलग पकाना = राय की सम्मति के विरुद्ध
 कोई कार्य देना । बहुत के विरुद्ध कोई काम देना ।
 दाईं चावल की खिचड़ी अलग पकाना = राय की सम्मति के
 विरुद्ध कोई कार्य करना । बहुत के विरुद्ध कोई काम करना ।
 खिचड़ी खाते पट्टुं चा उतरना = अश्रवत केमन होना । बहुत
 नाजुक होना । खिचड़ी चुवाना = नव वर्ष से पहले पहन
 भोजन बनवाना ।

(२) विवाह की एक रसम जिसे "भात" भी कहते हैं ।

मुहा०—खिचड़ी खिलाना = वर और वपतिरों के (कच्चा पत्त-
 वालों का) कच्ची रोई दिखाना ।

(३) एक ही में मिले हुए दो वा अधिक प्रकार के पदार्थ ।
 जैसे, सफ़ेद और काले बाल, वा हरण और अशरफिया, अथवा
 जैहदियों की भाषा में एक ही में मिले हुए अनेक
 प्रकार के जवाहिरात । (४) मकर संक्रांति । इस दिन खिचड़ी
 दान की जाती है । (५) मेरी का फूल ।

कि० प्र०—खाना ।

(६) वह पेशगी धन जो बेश्या आदि को, नाच टोक करने
 के समय दिया जाता है । बथना । साईं ।

वि० [सं० कुरर] (१) मिलाजुला । गड़मड़ । (२)
 गड़बड़ ।

खिचना-कि० अ० दे० "खिंचना" ।
 खिचवाना-कि० सं० दे० "खिंचवाना" ।
 खिचाव-संज्ञा पुं० दे० "खिंचाव" ।
 खिचाना-कि० अ० दे० "खीचना" ।

खिजमत, खिजमित—संज्ञा स्त्री० दे० “खिदमत” ।
 खिजलाना—क्रि० अ० [हि० खीजना] मुँहलाना । चिढ़ना ।
 क्रि० सं० [हि० खीजना] “खीजना” का प्रेरणाधिक रूप ।
 दुखी करना । चिढ़ाना ।
 खिज्जा—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) यह शब्द जिसमें पेटों के पत्ते मड़ जाते हैं । पतमड़ की श्रुत । (२) श्रयनति का समय ।
 खिज्जाब—संज्ञा पुं० [अ०] सुफेद धालों को काला करने की औषधि । येर-कल्प ।
 मुहा०—खिजाय करना = वालों में खिजाय लगाना ।
 खिभना—क्रि० अ० [सं० खिभते, प्रा० खिभज] खीजना । उ०—
 सुंदर बासों किता खिभिये न तजै तऊ।आपने शील सुभा-
 इन ।—सुंदर ।
 खिभाना—क्रि० सं० [सं० खिभते, प्रा० खिभजत] चिढ़ाना । दिक्
 करना । उ०—(क) मीया मोहिं दाज पडुत खिभाये ।—
 सूर । (ख) निपट हमारे ख्याल परे हरि वन में नितहिं
 खिभावत ।—सूर ।
 खिभावना—क्रि० सं० “खिभाना” ।
 खिज्जुवर—वि० [हि० खिभना] चिढ़नेवाला । शरीर अप्रसन्न
 होनेवाला ।
 खिडकना—क्रि० अ० [हि० खिसकना] चल देना । चला जाना ।
 खिसक जाना । उ०—घोम भरी तिय को निरखि खिडकी
 सहचरि सोय ।—नेददास ।
 खिडकाना—क्रि० सं० [हि० खिसकना] (१) हटाना । अलग करना ।
 टालना । टकाना । (२) बेंच खालना । धीरे धीरे करना ।
 खिडकी—संज्ञा स्त्री० [सं० खडकिका] (१) किसी मकान या इमा-
 रत की दीवार में प्रकाश और वायु आने के लिये बना हुआ
 छोटा दरवाजा । दरीचा । करोखा ।
 मुहा०—खिडकी निकालना या फोड़ना = खिडकी बनाना ।
 (२) नगर या किले का चौर दरवाजा । (३) खिडकी
 के आकार का कोई खाली स्थान ।
 धौ०—खिडकीदार औरखा = एक प्रकार का औरखा जो आगे
 ऊपर की ओर खुला रहता है । खिडकीदार पगड़ी = एक प्रकार
 की पगड़ी जिसमें ऊपर की ओर कुछ भाग खुला रहता है ।
 खित—संज्ञा स्त्री० [सं० खिति] पृथ्वी । धरती । (हि०)
 खिताब—संज्ञा पुं० [अ०] पदवी । उपाधि ।
 क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।
 खिताबी—वि० [अ०] खिताब पाया हुआ । जिसे पदवी मिली हो ।
 खित्ता—संज्ञा पुं० [अ०] प्रांत । देश ।
 खिदमत—संज्ञा स्त्री० [फा०] सेवा । दहल । श्रम ।
 खिदमतगार—संज्ञा पुं० [फा०] खिदमत करनेवाला । सेवक ।
 दहलुवा ।
 खिदमतगारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] सेवा । दहल ।

खिदमती—वि० [फा० खिदमत] (१) खिदमत करनेवाला । जो कृप
 सेवा करे । (२) सेवा संबंधी श्रमवा, जो सेवा के बदले में
 प्राप्त हुआ हो । जैसे, खिदमती माफी । खिदमती जागीर ।
 खिदिर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) तपस्वी । (३) दीन ।
 खिदिर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोग । (२) दरिद्रता ।
 खिन—संज्ञा पुं० [सं० वाण] चण । लमहा ।
 मुहा०—खिन खिन = प्रति चण । हर दम ।
 खिस्र—वि० [सं०] (१) उदासीन । चिंतित । (२) अप्रसन्न ।
 नाराज । (३) धीन हीन । असहाय । उ०—गिरा अर्थ जब
 वीचि सम, कहियत मित्र न भिन्न । बंदहुं सीताराम पद,
 जिनहिं परम प्रिय खिस्र ।—तुलसी ।
 खिपना—क्रि० अ० [सं० खिप] (१) खपना । (२) मिलजुल जाना ।
 तहलीन होना । निमग्न होना । उ०—मदन महीपति के
 सदन समीप सदा दीपक है दूती दिन दीपति से दिशि रहे ।
 सरस सुजात के परस रस जानि जानु जयत नितंब तीन्ही
 खेलही में खिपि रहे ।—देव ।
 खिपाना—क्रि० सं० दे० “खपाना” ।
 खियानत—संज्ञा स्त्री० दे० “खपानत” ।
 खियाना—क्रि० अ० [सं० खियाने] रगड़ से या काम
 में आते आते कम हो जाना । घिस जाना ।
 क्रि० सं० [हि० खियाना] भोजन कराना । खिलाना ।
 खियाल—संज्ञा पुं० दे० “खयाल” ।
 खिर—संज्ञा स्त्री० [दे०] जो लार्डों की दरकी जिसमें बाने का नृत
 रहता है और जो बुनते समय एक ओर से दूसरी ओर चलाई
 जाती है । इसे नार भी कहते हैं ।
 खिरकी—संज्ञा स्त्री० दे० “खिडकी” ।
 खिरचा—संज्ञा पुं० दे० “खरका” ।
 खिरडरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खिर + डरी] सुगंधित मसाले मिला
 कर बनाई हुई खैर की गोली ।
 खिरनो—संज्ञा स्त्री० [सं० खीरिणो] (१) एक प्रकार का ऊँच और
 छतनार सदा बहार पेटु।जिसके हीरे की लकड़ी खाल रंग की,
 चिकनी, कड़ी और बहुत मजबूत होती है और कोई बनाने
 तथा इमारत के काम में आती है । यह बड़ी सरलता से
 खरादी भी जा सकती है । (२) इस वृक्ष का फल जो निम-
 कांडी के आकार का दूधिया और बहुत मीठा होता है और
 गर्मी के दिना में पकता है ।
 खिराज—संज्ञा पुं० [अ०] राजस्व । कर । मालगुजारी ।
 क्रि० प्र०—लगाना ।—बढ़ाना ।—चढ़ाना ।—देना ।—लेना ।
 खिरिरीना—क्रि० वि० [अ०] (१) सौंके के छात्र में रस कर
 श्रानज को छानना जिसमें खराब, दाने, नीचे गिर पड़ें ।
 (२) खुरचना । खरोचना । उ०—सोई रघुनाथ कपि साथ
 पाधनाय बाधि धायो, नाथ ! भागे से खिरिरी खेद

पाहिमो । गुलसी गरव तजि मिलिये को साज सजि,
 देहि सिय ना तो पिय पायमाळ जाहिमो ।—गुलसी ।
 विरँटी—संज्ञा स्त्री० [सं० वरपट्टका] बला । बरिपारा । चीजयद ।
 खिलप्रत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] वह वस्त्र थादि जो किनी यद्दे राजा
 या बादशाह की श्रेय से सम्मान सूचनार्थ किसी को दिया
 जाता है ।
 क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—यत्पाना ।—मिलना ।—लेना ।
 खिलकृत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] (१) सृष्टि । संसार । (२) बहुत से
 लोगों का समूह । भीड़ ।
 खिलकौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खेल + कौरी (प्रत्य०)] खेल । खिल-
 वाड़ । उ०—यालकहू लागि लेयें संग करि मिय खिलकौरिन ।
 —श्रीधर ।
 खिलखिलाना—क्रि० प्र० [प्र०] खिल खिल शब्द करके हँसना ।
 जोर से हँसना । थटहास करना ।
 खिलजी—संज्ञा पुं० [देग०] अफ़ग़ानिस्तान की सरहद पर रहने-
 वाली पदानों की एक जाति । अलाउद्दीन इस वंश का यद्दा
 प्रसिद्ध सम्राट हुआ है । इस वंश का राज्य भारत में सन्
 १२८८ ई० से सन् १३२१ ई० तक रहा ।
 खिलत, खिलति—संज्ञा स्त्री० दे० “खिलप्रत” । उ०—खिलत
 मिलति तिनके नरपति सों । जिमि वर देत श्रमर वर
 रति सों ।—गोपाल ।
 खिलना—क्रि० स० [सं० खल] (१) कली के दल अलग अलग
 होना । कली से फूल होना । विकसित होना । (२) मसख
 होना । प्रमुदित होना । (३) शोभित होना । उपयुक्त होना ।
 ठीक या उचित जँचना । जैसे यह गमला यहाँ पर खूब खिलता
 है । (४) बीच से पट जाना । जैसे, दीवार का खिल जाना ।
 (५) अलग अलग हो जाना । जैसे, चावल खिलना ।
 संयोग क्रि०—उठना ।—जाना ।—पड़ना ।
 खिलपत—संज्ञा पुं० [प्र०] पृकांत । शून्यस्थान । जहाँ कोई
 न हो ।
 यौ०—खिलवनयाना ।
 खिलवतखाना—संज्ञा पुं० [प्र०] वह स्थान जहाँ कोई गुप्त
 संश्रया या रहस्य हो । पृकांत स्थान । उ०—खड़की नुनाने
 शरगोस खिलवत खाने खीसें खोलो पसखाने खसत खबीस
 हैं ।—भूपय ।
 खिलवाड़—संज्ञा स्त्री० दे० “खेलवाड़” ।
 खिलवाना—क्रि० स० [हि० खाना] दूसरे से भोजन कराना ।
 क्रि० स० [हि० खिलना का प्रे०] प्रफुल्लित कराना ।
 क्रि० स० [हि० खेल] खिले बनवाना । जैसे, भड़भूँजे के
 यहाँ से घान धच्छी तरह खिलवा लेना ।
 क्रि० स० [हि० “खिलना” का प्रे०] खिलौनें लगवाना । खिल
 वा तिनके गोद कर दोने थादि का मुँह बंद करवाना ।

क्रि० स० दे० “खेलवाना”
 खिलवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खाना] (१) भोजन की क्रिया । खाने
 का काम । (२) खिलाने का काम ।
 यौ०—खिलवाई खिलाई = (२) खाना पीना । (२) खिलाना पिलाना ।
 संज्ञा स्त्री० [हि० खिलाना = खेल] वह दाईं या मजदूरनी जो
 यहाँ को जेलासी हो ।
 यौ०—दाईं खिलाई ।
 खिलौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खेल = मुना; दुधा दाना] धनिया और
 खरबूने ककड़ी थादि के भुने हुए चीज जो भोजनेपरांत
 खाए जाते हैं ।
 खिलाड़, खिलाड़ी—संज्ञा पुं० [हि० खेल + ऋद्धि (प्रत्य०)] [स्त्री०
 खिलान्दिन] (१) खेल करनेवाला । खेलनेवाला । कुतरी
 खड्के, पटा बनेटी खेलने या इसी प्रकार के और काम करने-
 वाला । (२) जादूगर ।
 संज्ञा पुं० [देग०] बँडों की एक जाति जो लानदेस, मँसूर
 और हैदराबाद के पहाड़ी भागों में होनी है ।
 खिलाना—क्रि० स० [हि० खेलना] किसी को खेल में नियोजित
 करना । खेल करना ।
 क्रि० स० [हि० खाना] ‘खाना’ का प्रेरणार्थक रूप । भोजन
 कराना ।
 यौ०—खिलाना पिलाना = भोजन कराना ।
 क्रि० स० [हि० खिलना] विकसित करना । फुलाना ।
 खिलाफ़—वि० [प्र०] जो अनुसूल न हो । विरुद्ध । उलटा ।
 विपरीत ।
 खिलाल—संज्ञा स्त्री० [हि० खेल] (ताश थादि के खेल में) पूरी
 यात्री की हार ।
 विदोष—दे० “खलाल” ।
 खिलौना—संज्ञा पुं० [हि० खेल + औना (प्रत्य०)] काठ, मोम,
 मट्टी, कपड़े थादि की बनी कोई भूति या इसी प्रकार की
 और कोई चीज जिससे बालक खेलते हैं ।
 मुहा०—हाथ का खिलौना = अंग्रेद, प्रमोद की वस्तु । वह
 व्यक्ति जिसे मन चहले । मिय व्यक्ति । उ०—धरने गुण की
 बदौलत वह भ्रमोरों के हाथ का खिलौना बना रहता है ।
 खिल्लो—संज्ञा स्त्री० [हि० खिलना] हँसी । हास्य । दिहगी ।
 मनाक ।
 क्रि० प्र०—उठाना ।—करना ।
 यौ०—खिल्लोवाञ्ज = दिहगीवाञ्ज । खिल्लोवाञ्ज = दिहगीवाञ्ज ।
 सिनोद ।
 संज्ञा स्त्री० [हि० गिल्लोरी] पान का बीड़ा । गिल्लोरी ।
 संज्ञा स्त्री० [हि० खिल] कौल । फाँटा ।
 खिल्लो—वि० स्त्री० [हि० खिलना = मसख होना] बहुत अधिक
 हँसनेवाली ।

खियाही—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की हूँख ।
 खिसकना—क्रि० प्र० दे० "खसकना" । उ०—भूलति नाहिं भुलाए
 भट्ट सुधि सों सुधि जात सखै खिसकी सी ।—रघुनाथ ।
 खिसकाना—क्रि० स० दे० "खसकाना" ।
 खिसनाना—क्रि० प्र० दे० "खसनाना" ।
 खिसलना—क्रि० प्र० दे० "फिसलना" ।
 खिसलाना—क्रि० स० खिसलना का प्रे० रूप ।
 खिसलाघा—संज्ञा पुं० [हि० खिसलना या फिसलना] (१) फिसलने
 या खिसलने का भाव । (२) फिसलने या खिसलने की जगह ।
 खिसलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० खिसलना या फिसलना] फिसलने या
 खिसलने का भाव ।
 खिससाना—क्रि० प्र० दे० "खिससाना" । उ०—(क) हुरि गए
 कीर कपोत मधुप पिक सारंग सुधि बिसरी । उड़पति विह्वम
 विंश खिसान्यो दामिनि अषिक डरी ।—सूर । (ख) करेहु
 उषाय पात पला भूमि गाउँ पाइ, रहे ये खिसाइ कह्यौ इतनेहँ
 सीनिप ।—प्रिया ।
 खिससारा—संज्ञा पुं० [फा०] घाटा । नुकसान । हानि ।
 क्रि० प्र०—उठाना ।—पढ़ना ।—सहना ।
 खिसारी—संज्ञा स्त्री० दे० "खिसारी"
 खिसिआनपन—संज्ञा पुं० [हि० खिसिआना + पन] खिसियाना का भाव ।
 खिसिआना—क्रि० प्र० दे० [हि० खिसिआना = खिसिआना] (१) लजाना ।
 लजित होना । शरमाना । उ०—लाज लए प्रभु भावन
 माहौं हँ जो रहे खिसिआने ।—सूर । † (२) लजना
 होना । मुद्द होना । खिसिआना ।
 वि० लजित । शरमिंदा । उ०—यह सुनकर ये तो खिसियाने
 से हो गए ।
 खिसिआहट—संज्ञा स्त्री० [हि० खिसिआना + हट (भय०)] खिसिआना
 का भाव । खिसिआनपन ।
 खिसी—संज्ञा स्त्री० [हि० खिसिआना] (१) लजना । शरम ।
 उ०—(क) सय सिधिल सनु मुहुडित विलोपन पुलक मुख
 शरि में खिसी । इमि निखिल निधुवन की कला पिय को
 हँसी विष को खिसी ।—गुमान । (ख) खिसी दलेल खान
 उर छाई । थाद अनूप अरथ की थाई ।—लाल । (ग) कहा
 चलत वपरावटे, अजहूँ खिसी न गात । कंस सीह दँ
 पृथिये, जिन पटके हँ सात ।—सूर । (२) डिट्टाई ।
 घटता । उ०—दुरै न निघर घंटा दिये, ए राखी कुचाल ।
 विरल सी लागति है सुरी, हँसी खिसी की लाल ।—बिहारी ।
 खींच—संज्ञा स्त्री० [हि० खींचना] खींचना का भाव ।
 खींचतान—संज्ञा स्त्री० [हि० खींच + तान] (१) किसी वस्तु की प्राप्ति
 के लिये दो व्यक्तियों का एक दूसरे के विरुद्ध उल्लोम । खींचा-
 खींची । (२) छिट्ट कल्पना द्वारा किसी शब्द या वाक्य धारि
 का अन्यथा अर्थ करना ।

खींचना—क्रि० स० [सं० कषण] [प्रे० खिंचना] (१) किसी
 वस्तु को इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर करना कि
 वह गति के समय अपने आधार से लगी रहे । घसीटना ।
 जैसे, (क) चारपाईं इपर खींच लाओ । (ख) घड़े में हाथ
 डाल कर उस चीज को खींच लो । (२) किसी कोरा, थैले
 आदि में से किसी वस्तु को बाहर निकालना । जैसे, स्थान से
 तखवार खींचना । (३) किसी ऐसी वस्तु को छोर या बीच से
 पकड़ कर अपनी ओर धराना जिसका दूसरा छोर दूसरी ओर
 भयथा नीचे या ऊपर हो । खींचना । जैसे, पंते या विड़की
 की डोरी खींचना । गुप्पें से पानी खींचना । उ०—रस्सी को
 बहुत मत खींचो, टूट जायगी । (४) आकर्षित करना ।
 बलपूर्वक किसी ओर खे जाना । किसी ओर धराना ।
 किसी ओर प्रवृत्त करना ।
 मुहा०—चित्त खींचना = मन को मोहित करना ।
 (२) सोचना । चूचना । जैसे, उ०—(क) मँदा बहुत धी
 खींचता है । (ख) अभी सोसता रख दो, सब स्याही खींच
 ले । (ग) भभके से अर्के, शराय धारि टपकाना । अर्के
 चुभाना । (घ) किसी वस्तु के गुण या तत्त्व को निकाल
 लेना । जैसे, इस कपड़े में कूल की सारी सुगंधि खींच ली ।
 मुहा०—पीड़ा या दर्द खींचना = औषध आदि का दर्द दूर करना ।
 जैसे, यह लेप सब दर्द खींच लेगा ।
 (न) कूलम फेर कर लकीर आदि टाकना । खिसाना । खिचित
 करना । जैसे, तखवीर खींचना ।
 धा०—खींच खींच कर = झटपट देड़ा सीधा निकल कर । उ०—
 एक चिट्ठी में घंटा भर लगा दिया, खींच खींच कर किनारे करो ।
 (३) रोक रखना । उ०—जितना चाजवी देना है वसमें से
 भी वह कुछ खींच रखना चाहता है ।
 मुहा०—हाथ खींचना = देना या और कोई काम बंद करना ।
 उ०—(क) उसने एक दम अपना हाथ खींच लिया है, एक
 पैसा नहीं देता । (ख) हम अपना हाथ खींच लेते हैं तुम
 अकेले इस काम को करो ।
 (१०) माल की चलान लेना । व्यापार का माल मँगाना ।
 उ०—आज कल कलकत्ता बहुत आनाज खींच रहा है ।
 संयो० क्रि०—ढालना । रखना ।—लेना ।
 खींचाखींची—संज्ञा स्त्री० [हि० खींचना] दे० "खींचतान (१)" ।
 खींचातान—संज्ञा स्त्री० दे० "खींचतान" ।
 खींचातानी—संज्ञा स्त्री० दे० "खींचतान" ।
 खीखर—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बन-विलास जिसे कृतस
 भी कहते हैं ।
 खीज—संज्ञा स्त्री० [हि० खीजना] (१) खीजना का भाव । कुँभलाहट ।
 उ०—रीक लीज मौज कौज दान भी कृपान अँके जगत

बखाने देकर हाथ गोरीनाथ के।—प्रतिपाम। (२) चिट्टाने का शब्द या वाक्य। यह बात जिससे कोई चिढ़े।

मुहा०—खीज निकालना = किसी का चिट्टाने के लिये कोई नई बात निकालना।

खीजना-कि० अ० [सं० खियने, प्रा० खिज्ज] दुःखी और मुद्द होना। मुँहलाना। खिजलाना।

खीम्ना*—संज्ञा स्त्री० दे० "खीजना"। उ०—खीम्ह में रीम्बि के यानि राम रीम्बत हैं रीम्बे हैं राम की दोहाई रघुराय जू।—तुलसी।

खीम्नना*—कि० अ० दे० "खीजना"। उ०—दीन के दयाल की अनूठी यह चाल आली खीम्नत है मान गहे रीम्बत नयनि पै।—दीनदयाल।

खीन*—वि० [सं० खीय] खीय।

खीनता*—संज्ञा स्त्री० [सं० खीयता] खीयता।

खीनताई*—संज्ञा स्त्री० दे० "खीनता"।

खीप—संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का घना सीधा पेड़ जो सिंध, पंजाब, राजपूताना और अफगानिस्तान की पथरीली और बलुई जमीन में होता है। इसकी पत्तियाँ छोटी और लंबेवर्ती होती हैं और इसमें जाड़े के दिनों में छोटे लंबे फूल निकलते हैं। इसकी पत्तियाँ और टहनियाँ सीतल होती हैं और राजपूताने में चारे के काम में आती हैं। पंजाब में इसके रेशे से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। उ०—खीप पिड़ारु कोमल भिंठी।—सूर। (२) लज्जाल। लजापुर। (३) गंध-प्रसारिणी। गंध-पसारा।

खीमा—संज्ञा पुं० दे० "खीमा"।

खीर—संज्ञा स्त्री० [सं० खीर] दूध में पकाया हुआ चावल।

विशेष—लोग प्रायः तीसुर, धीया (लौआ) या इसी प्रकार के और पदार्थ भी दूध में पकाते हैं जिसे खीर कहते हैं।

मुहा०—खीर चटाना = बच्चे का पहने पहल अन्न खिलाना।
 ७५५ पुं० [सं० खीर] दूध। उ०—(क) भरत विनय सुनि स्वधि प्रयत्नी। खीर-नीर बिचरन गति हंसी।—तुलसी।
 (ख) खीर खड्गान को मद बेराय सो पज में करि पान लिपेई।—बैराव।

खीर-चटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खीर + चटाई] बच्चे को पहले पहल अन्न खिलाने का संस्कार। अन्न-प्रदान।

खीरमोहन—संज्ञा पुं० [हि० खीर + मोहन] छेने की बनी हुई एक प्रकार की बंगाल मिठाई।

खीरा—संज्ञा पुं० [सं० खीरक] बरसात में होनेवाला ककड़ी की जति का एक फल जो कुछ मोटा और एक बालितर तक लंबा होता है। इसकी तरकारी भी बनती है, परंतु अधिकतर लोग इसे नमक मिर्च के साथ कच्चा ही खाते हैं। इसके बीज दवा के काम में आते हैं। फल तथा बीजों की तासीर ठंडी है।

मुहा०—खीरा ककड़ी = अत्यंत तुच्छ वस्तु। मात्र मूली।

खीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० खीर] खीराओं के धन के ऊपर का यह मांस जिसमें दूध बनता और रहता है। बाल।

खील—संज्ञा स्त्री० [हि० खिलना] भूना हुआ धान। लावा।

† संज्ञा स्त्री० [हि० खील] (१) कील। कटा। मेल। (२)

खींग नाम का जेवर जिसे खिवाँ नाम में पहनती है। (३) मांस कील।

संज्ञा स्त्री० [दे०] वह भूमि जो बहुत दिनों तक परती पड़ी रहने के उपरान्त पहले पहल जोती गई हो। नौतोड़।
 खीलना—कि० सं० [हि० खील] (१) खील लगाना। तिनके गोद कर पत्ते को देने आदि का मुँह बंद करना।

खीला—संज्ञा पुं० [हि० खील] कटा। मेल। कील। उ०—दादू खीला गाड़ि का निहचल यिर न रहाइ। दादू पग नहिँ साँच के भरमइ इइ दिसि जाइ।—दादू।

खीली—संज्ञा स्त्री० [हि० खील] पान का बीड़ा। खिखी।

खीवन, खीवनि—संज्ञा स्त्री० [सं० खीवन] मतबलापन। मली। उ०—भेरे माई स्वाम मनोहर जीवनि। निरखि नयन मूले ते बदन छुचि मथुर हंसनि पै खीवनि।—सूर।

खीचर*—संज्ञा पुं० [सं० खीच = मस्त] सूर। वीर। सुभट। यहधुर। (दि०)

खीस—वि० [सं० खिच = बध, नाथ] नष्ट। बरबाद। उ०—सती भजन सुनि शंभुगाय, लगे कान मख खीस।—गुलसी।

मुहा०—खीस जाना = नष्ट होना। उ०—काम्ह कृपाल बड़े गतपाल गये खल खेचर खीस पलाई।—तुलसी। खीस ढालना = नष्ट करना। उ०—काहे को निगुंथ ज्ञान गनत हो नित तित डारत खीस।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [हि० खीज] (१) अग्रसजता। नाराजगी। (२) क्रोध। रोप। गुस्ता।

संज्ञा स्त्री० [हि० खिचिपाना] "खिसिपाना" का भाव लज्जा। शरम।

कि० प्र०—मिटाना।

संज्ञा स्त्री० [सं० खीप = बंदर] श्रोत से बाहर निकले हुए दांत।

मुहा०—खीस काड़ना = (१) वेदोंगे तौर से हँसना। (२) दोन होकर कुछ मींगना। (३) सर जाना।

संज्ञा स्त्री० [सं० खिसारा] घाटा। हानि।

कि० प्र०—उठाना।—पढ़ना।

संज्ञा स्त्री० [दे०] गाय का वह दूध जो ध्याने के पीछे सात दिन तक निकलता है। पेउस।

खीसा—संज्ञा पुं० [सं० फा० खीसा] [खी० खप० खंसी] (१) धैला। धैली। (२) जेब। पाकेट। खलीता। (३) एक प्रकार की कपड़े की धैली जिसे हाथ में पहन कर लोग बदन साफ करते हैं।

क्रि० प्र०—करना = खीसे से शरीर मलना ।

†गंजा पु० [हिं० खंस] थोंठ से बाहर निकले हुए दांत ।

खूँ टकड़चा—संज्ञा पु० [हिं० खूँट + कड़ना] कान की मूल निकालनेवाला । कनमलिया ।

खूँ टफारी—वि० हिं० खूँट + फारना] बहुत दुष्ट या पाजी (बालक) ।

खूँ ड—संज्ञा पु० [दे०] (१) एक प्रकार की मोटी घास जो काली मिट्टी की भूमि में अधिकता से होती है । यह एक गज़ तक ऊँची होती है और इसका दंडक बहुत मोटा होता है । खूले पर तो कभी नहीं पर हरी रहने पर कभी कभी पशु इसे खा लेते हैं । इसे गुँड या गूतर भी कहते हैं । (२) एक प्रकार का पहाड़ी टट्टू जिसे गूँट वा गुंटा भी कहते हैं ।

खूँ डला—संज्ञा पु० [सं० खंडल] हटा-हूटा घर । छोटा झोपड़ा ।

खूँ दाना—क्रि० सं० [सं० सुष्य = रीस कुष्ण] (घोंडा) कुदाना ।

खूँ दी—संज्ञा स्त्री० दे० "खूँद" ।

खूँ बी—संज्ञा स्त्री० दे० "खुनी" ।

खूँ मी—संज्ञा स्त्री० दे० "खुमी" ।

खुआर—वि० [फा० खार] (१) दुर्देशा-प्रसू । खराब ।

ज०—नतख प्रजा पुरजन परिवारः । हमहिं सहित सब होत

खुआरः—मुलसी । (२) जिसकी कुछ प्रतिष्ठा न हो । बेइज्जत ।

खुआरी—संज्ञा स्त्री० [फा० खारी] (१) घरपदी । खराबी । नारा । (२) अनादर । अप्रतिष्ठा । बेइज्जती ।

खुफ्त—वि० [सं० शुफ्त या सं० तुफ्त, प्रा० हुफ्त] (१) जिसके पास कुछ न हो । छुड़ा । खाली । (२) जो खिलाल हो गया हो । (ताश का खेल) ।

खुखंड—संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार की राई ।

खुखड़ा—संज्ञा पु० [हिं० खुस्य] वह पेड़ जो धुन गया हो या जिसका गूदा सड़ कर निकल गया हो ।

खुखड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) लकड़ा पर चढ़ा कर ऊपर लपेटा हुआ सूत या ऊन जो धुनने के काम आता है । लकड़ी । (२) एक प्रकार की बड़ी छुरी जो प्रायः नेपाल में बनती है ।

खुखला—वि० दे० "खोलला" ।

खुखड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "खुखड़ी" ।

खुगीर—संज्ञा पु० [फा०] (१) वह जमी कपड़ा जो घोड़ों के चार-जामा के नीचे लगवाया जाता है । नमदा । (२) चारजामा । जीन ।

मुहा०—खुगीर की भरती = बहुत ही अनावश्यक और व्यर्थ के लोगों या पदार्थों का संग्रह ।

खुचर, खुचुर—संज्ञा स्त्री० [सं० कुचर = पराप रोप निकालनेवाला] वर्षक के क्षेत्र निकालने की क्रिया । सूट मूट अवगुण दिखलाने का कार्य ।

क्रि० प्र०—करना ।—निकालना ।—लगाना ।

खुजलाना—क्रि० सं० [सं० खूँट, खर्वन] [संज्ञा, खुजलाहट, खुजली] खटमल, मच्छड़, आदि के काटने के कारण वा यों ही किसी थंग में सुरसुराहट मालूम होने पर नाखून आदि से उसे राड़ना । खुजली मिटाने के लिये नख आदि को थंग पर फेरना । सहलाना । उ०—(क) वह सिर खुजला रहा है । (ख) दिहन सींगों से एक दूसरे को खुजला रहे हैं ।

संयो० क्रि०—घालना ।—देना ।—लेना ।

क्रि० अ० किसी थंग में सुरसुरी वा खुजली मालूम होना । उ०—हमारे हाथ खुजला रहे हैं ।

मुहा०—किसी काम के लिये कोई थंग खुजलाना = किसी काम के करने वा होने के लिये किसी थंग वा चंचन होना वा फड़कना । किसी काम के किए वा हुए बिना न रहा जाना । उ०—(क) तुम्हें मारने के लिये हमारे हाथ खुजलाते हैं ।

(ख) मार खाने के लिये तुम्हारी पीठ खुजलाती है । (ग) बोले बिना तुम्हारा मुँह खुजलाता है ।

खुजलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुजलाना] थंग में खटमल, मच्छड़ आदि के काटने वा किसी छुमि के घारे घारे रंगने का सा अनुभव । सुरसुरी । खुजली ।

खुजली—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुजलाना] (१) खुजलाहट । सुरसुरी ।

क्रि० प्र०—उठना ।—होना ।

(२) एक रोग जिसमें शरीर बहुत खुजलाता है और उस पर छोटे छोटे दाने निकल आते हैं ।

मुहा०—खुजली उठना = (१) दब-पाने की इच्छा होना । शोमत आना । (विशेषतः बालकों के लिये) (२) प्रलय कराने की इच्छा होना । (वाज्रास्) खुजली मिटना = (१) दंड मिलना । फिटना । (२) प्रसंग होना ।

खुजचाना—क्रि० सं० दे० "खोजवाना" ।

खुजाना—क्रि० सं०, क्रि० अ० दे० "खुजलाना" ।

खुजभ्रा—संज्ञा पु० दे० "खुम्भा" ।

खुभड़ा—संज्ञा पु० दे० "खुम्भा" ।

खुभर—संज्ञा पु० [सं० कु + हिं० बर] पेड़ की वह गड़ जो धरती के भीतर कम जाती है, ऊपर ही धारों और फैलती है ।

खुटका—संज्ञा स्त्री० [हिं० खटकना] खटका । धाराका । चिंता । उ०—मन में नेक खुटक जनि राखहु । दीन वचन मुख से तुम भाखहु ।—सूर ।

खुटकना—क्रि० सं० [सं० खुट् + खुँट] किसी वस्तु का शिरोभाग तोड़ना । किसी वस्तु को ऊपर ऊपर से तोड़ वा नेच लेना ।

खुटका—संज्ञा पु० दे० "खटका" ।

खुटचाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेटी + चाल] (१) दुष्टता । पापीपन । उ०—करै क्यों न खुटचाल पति सो पति न कहुक तिय ।

चंद्रकला हरमाल, संज्ञा एक परिवार है।—गुमान। (२) कुस्तिन चाचरण। पत्राच घाल चलन। (३) उपद्रव।

सुटवाली—वि० [हि० सुटवान + ई (प्रत्य०)] (१) बुट। प्राची। उपद्रवी। (२) दुराचारी। बदचलन।

सुटना।—कि० अ० [सं० सुट्] सुलना। उ०—तौ लगी या मन-सदन में, हरि शायें कहि पाट। निपट विकट जो लौ जुटे, सुटहि न कपट कपाट।—विहारी।

कि० अ० [हि० सुटना] अलग होना। श्रयक् होना। संबंध छोड़ देना।

कि० अ० [सं० सुट् या खेट] समाप्त होना। खतम होना।

सुटपन, सुटपना—संज्ञा पुं० [हि० खेटा + पन, पना (प्रत्य०)] खोटापन। दोष। ऐव।

सुटपना। कि० अ० [सं० सुट् = खोटा होना, या खेट] सुटना। समाप्त होना। खतम होना। उ०—जहि सुभाय चितवहिं दित जानी। सो जानै जनु आयु सुटानी।—तुलसी

सुटार्—संज्ञा स्त्री० [हि० खेटार्] खोटापन। दोष। उ०—शरी मयुर अचरान ते, कटुक बचन मत खेल। तनक सुटार् ते घटे, लखि सुबरात को मौल।—रसनिधि।

सुटिदर—संज्ञा पुं० [देग०] करनफूल नामक फल का गहनत। उ०—सुटिदा सुभग जराई के, सुटतामनि छवि देत। प्रगट भयो घन मध्य से, शशि मनु नखत समेत।—सूर।

सुटेरार्—संज्ञा पुं० [सं० खटिर] कौर का पेड़।

सुट्ठी—संज्ञा स्त्री० [सुट् से अट्] छोटी नाम की मिठाई जो तिल और चीनी या गुड़ से बनती है।

सुट्ठी—संज्ञा स्त्री० [?] घाव से निकला हुआ वह मवाद जो सूख कर घाव के ऊपर ही जम जाता है। घाव पर जमी हुई पपड़ी। सुरदं।

सुटमेर्—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का मोटा या निरुद्ध पान।

सुटला—संज्ञा पुं० [देग०] मुर्गियों का दवा। चिड़ियाखाना (छा०)

सुटुआ—संज्ञा पुं० [देग०] वर्षा या जाड़े आदि से बचने के लिये एक विशेष प्रकार से तिर पर ढाला हुआ कंगल या छोर कोई करना। पोथी।

कि० प्र०—भारना।—सगावा।—देना।

सुट्टी, सुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० सुट्ट] (१) पालाने में पैर रखने के पायदान। (२) पायखाना फिरने का गड्ढा।

सुतका—संज्ञा पुं० दे० "सुतका"।

सुतका—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारीफ। प्रशासक। (२) सामयिक रामा की प्रशासक जो हूत हूत से सर्व-साधारण को सुनाई जाय कि सब लोग उस रामा की शक्त को मान लें।

सुहा—किसी के पास का सुतना पत्रा जाना = सर्व-साधारण को खाना देने के लिये किसी के विहावनाश्रीन होने की वा-पणा होना।

सुतय—संज्ञा पुं० [हि० सुट्ट] पेड़ की जड़ के ऊपर का वह भाग जो पेड़ काट लेने पर रह जाता है।

सुत्पी, सुत्पी—संज्ञा स्त्री० [हि० सुट्टे] अरहर, ज्वार इत्यादिके पेड़ों का वह भाग जो फसल काट लेने पर पृथ्वी पर गड़ा रह जाता है। सुत्पी। सुत्पी। (२) धाती। घोरेहर। अमानत। (३) यह पत्रकी लंबी पंथी जिसमें रुपया भर कर कर्म में बंधते हैं। यस्नी। हिनयानी। (४) धन। दालत। संपत्ति। उ०—द्वीपदी की देह में सुत्पी ही कहा दुःशासन खरोई सिसानो लेंचि बसन न सुत्प्यो है।—केशव।

सुद—अव्य० [फा०] स्वयं। आप।

मुहा०—सुद-अ-सुद = आप से आप। बिना किसी दूसरे के प्रयास, यत्न या सहायता के।

सुदका—संज्ञा पुं० दे० "कुनका"।

सुदकादत—संज्ञा स्त्री० [फा०] वह, जमीन जिसे बसका मालिक स्वयं जोते बोधे, पर वह सीर न हो।

सुदकुशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] अपने हाथों अपने को मार डालना। आत्महत्या।

सुदगरज—वि० [फा०] [संज्ञा सुदगरजी] अपना मतलब साधने-वाला। स्वार्थी।

सुदगरजी—संज्ञा स्त्री० [फा०] स्वार्थपरता।

सुदना—कि० अ० [हि० खेटना] खोटा जाना।

सुदमुखतार—वि० [फा०] जिस पर किसी का दबाव न हो। अनिहद। स्वतंत्र। स्वयंसेव।

सुदमुखतारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] स्वतंत्रता। स्वयंसेवता।

सुदरा—संज्ञा पुं० [सं० सुद] छोटी और साधारण वस्तु। फुटकर चीज।

यौ०—सुदराफुरोरा = छोटी छोटी वस्तुएँ बेचनेवाला। फुटकर चीजें बेचनेवाला।

मुहा०—सुदरा कराना = नोट या रुपया आदि सुनाना।

सुदरार्—संज्ञा स्त्री० [फा०] खेड्याचर। (क०)

सुदराय—वि० [फा०] खेड्याचारी। (क०)

सुदयार्—संज्ञा स्त्री० [हि० सुयाना] सुदवाने का भाव। (२) सुद-वाने की क्रिया। (३) सुदवाने का मजदूरी।

सुदधाम—कि० अ० [हि० सोदना] 'सोदना' का मेरपापक स्व। सोदने का काम कराना।

सुदा—संज्ञा पुं० [फा०] स्वयंभू। ईश्वर।

यौ०—सुदा-न-ख्याना = ईश्वर ऐला न करे। ईश्वर न करे ऐला है।

मुहा०—सुदा सुदा करके = बहुत कठिनाता से। बड़ा मुशकिल से। सुदा की मार = ईश्वरी मंत्राप। (शा०)

सुदार्—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) ईश्वरता। (२) सृष्टि।

छाा स्त्री० [हि० सोदना] (१) सोदने का भाव। (२) सोदने का काम। (३) सोदने की मजदूरी।

(२) सब प्रकार का काम करनेवाला। ऊँच नीच सब प्रकार की टहल या सेवा करनेवाला। (३०० ख०)

सुरामदी टट्ट—संज्ञा पुं० [हि० सुरामदी + टट्ट] वह जिसकी जीविका केवल सुरामद से ही चलती है। भारी सुरामदी।

सुरशियाली—संज्ञा स्त्री० [फा० सुरशाली] (१) आनंद। सुरशी। प्रसन्नता। (२) कुशल सेम। नैर-आफ़ियत।

सुरशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) आनंद। प्रसन्नता।
क्रि० प्र०—करना।—मानना।

मुहा०—सुरशी सुरशी = प्रसन्नता से। आनंद सहित।

(२) ठगों की भाषा में, उनका निशान और कुल्हाड़ा जो उनके गरोह के आगे चलता है।

सुरक-वि० [फा० सुरक। सं० शुक] (१) जो तर न हो। सुखा।
धौ०—सुरक साली।

(२) जिसमें रसिकता न हो। रूपे स्वभाव का। (३) बिना किसी और प्रकार की शाय या सहायता के। केवल। मात्र।
उ०—नौकर को सुरक ध, मिलते हैं। (इस अर्थ में इसका प्रयोग केवल चेतन के लिये आता है)।

सुरक साली—संज्ञा स्त्री० [फा०] अनादृष्टि।

सुरका—संज्ञा पुं० [फा०] केवल पानी में डबाल कर पकाया हुआ चावल। भात।

सुरकी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) रूपायन। खलाई। शुष्कता नीरसता।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।

(२) स्थल वा भूमि। (जल का विरोधी)। उ०—सुरकी के रास्ते से जाने में १० दिन लगेंगे। (३) वह सूखा आटा जो गीले आटे की लोई वा पेड़े पर लगाया जाता है। पलेपन।
(४) आकाल। अवर्षण। सुरकसाली।

सुरसाल, सुरसाल-वि० [फा० सुरशाल] आनंदित। सुदित। सुरश।
उ०—हुटन न पैयत छिनक यसि नेह नगर यह चाल।
मारयो फिरि फिरि मारिये खूती फिरत सुरसाल—विहारी।

सुरसुर फुसुर—संज्ञा स्त्री० [फु०] बहुत घीमी आवाज से कही हुई बात। चुपके चुपके की बात चीत। कानाफूसी।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

क्रि० वि० बहुत घीमी आवाज से। अस्फुट स्वर से। सार्य-सार्य। फुस फुस।

सुरी—सं० स्त्री० [सं० खेसक] इस प्रकार लपेट कर बनाया हुआ कुंवल या कपड़ा, कि उसे सिर पर डाल लेने से शरीर का ऊपरी भाग शीत वा गर्म से बचा रहे। खोही। घेघी। खड्ग। (आहीर गड़रिये आदि हमका व्यवहार प्रायः करते हैं)। उ०—साँवरी कामरी की है सुरी, बहि, साँवरे पै चवी साँवरी है कै।—परमाकर।

खूँ खार-वि० [फा०] (१) रक्तपात करनेवाला। खून पीनेवाला।
(२) भयंकर। डरावना। (३) मरू। निर्देय।

खूँट—संज्ञा पुं० [सं० खड] (१) छोर। क्रोना। उ०—पीतांबर को खूँट है आए अवध विसेवि।—विश्राम। (२) भारी, चौकोर या गोल पत्थर जो मकान की मजदूरी के लिये कोनों पर लगाया जाता है। (३) शोर। प्रांत। तफ। उ०—दुह ध्रुव दुहूँ खूँट बैसारे।—जायसी। (४) भाग। हिस्सा। जैसे, खूँटत। (५) बहुत छोटी पूरी जो देवी देवता को चढ़ाने के लिये बनती है। (६) लकड़ी पर का मड्डल।

संज्ञा स्त्री० [दे०] कान का एक बड़ा गहना जो गोल दिने के आकार का होता है। खिरिया। डार। उ०—तेहि पर खूँट दीप दुई बारे। दुई ध्रुव दुहूँ खूँट बैसारे।—जायसी।
संज्ञा पुं० [दे०] आठ सेर की ताल जो घी तेल आदि के लिये प्रचलित थी।

संज्ञा स्त्री० [हि० खूँटना] रोक। पड़ ताड़। उ०—वहाँ किसी तरह की खूँट पड़ नहीं होती, तुम डरते क्यों हो।

संज्ञा पुं० [?] कान की मूल।

धौ०—खूँटकड़वा।

खूँटना—क्रि० सं० [सं० खंडन। खंड = तैदना] (१) टेंकना। कुड़ पड़ ताड़ करना। (२) छेड़ छाड़ करना। उ०—गगरी मारे कांकी से लागी मेरे गात री। गील मांक छोड़ा रहै मोहिं खूँटे थायत जात री। (३) कम होना। घटना। चुकना। (४) दे० “खोटना”।

खूँटा—संज्ञा पुं० [सं० खोड़] [अस्प० खी० खूँटी] (१) बड़ी मेल जिसको भूमि पर गाड़ कर उसमें किसी पशु को बांधते हैं। (२) कोई लकड़ी जो भूमि पर खड़ी गड़ी हो और जिसमें कोई वस्तु बांधी या अटकवाई जाय। (३) कोई खड़ी गड़ी हुई लकड़ी।

मुहा०—खूँटा गाड़ना = सीमा निर्धारित करना। हद बांधना।
केंद्र निर्धारित करना।

खूँटी—संज्ञा स्त्री० [हि० खूँटी] (१) छोटी मेल। (२) नील, अरहर वा ज्वार के बीजे की वह सूखी चट्टल जो फसल काट लेने पर खेत में गड़ी रह जाती है। (३) गुल्ली। थेंदी। (४) बालों के कड़े अंकुर जो मूँड़ने के पीछे रह जाते हैं या निकलते हैं।

मुहा०—खूँटी निकालना वा लेना = ऐसा मूँड़ना कि बाल की जड़ तक न रह जाय।

(५) नील की दूसरी फसल जो एक बार फसल काट लेने पर उसकी जड़ से पैदा होती है। इसे दोरेनो भी कहते हैं।

(६) सीमा। हद। (७) मेल के आकार का लकड़ो आदि का वह चौटा टुकड़ा जो किसी चीज में किसी दूसरी चीज के अटकाने आदि के लिये लगा रहता है। जैसे, खड़ाई की खूँटी। सितार की खूँटी।

खूँटीउखाड़-संज्ञा पुं० [हि० खूँटी + उखाड़ना] घोड़े की एक भौंरी जो पैरों में उड़ने के पास होती है और जिसका मुँह ऊपर की ओर को होता है। जिस घोड़े को यह भौंरी होती है वह बड़ा पेची समझा जाता है।

खूँटीगाड़-संज्ञा पुं० [हि० खूँटी + गाड़ना] घोड़े की एक भौंरी जो पैरों में उड़ने के ऊपर होती है और जिसका मुँह नीचे की ओर होता है। जिस घोड़े को यह भौंरी होती है वह कुछ पेची समझा जाता है।

खूँडा-संज्ञा पुं० [सं० षोड = खूँडा] खोहे की यह पतली छड़ जिसमें मरा लगा कर जुलाहे ताना तनते हैं।

खूँडी-संज्ञा स्त्री० [हि० पैदा] एक पतली लकड़ी जिसके सिरे पर काँच का एक खुड़ा फोड़ कर बाँध देते हैं। इसी खुल्ले में रेशम के महीन तागे डाल कर जुलाहे ताना तनते हैं।

खूँधी-संज्ञा स्त्री० दे० "खुची"।

खूँद-संज्ञा स्त्री० [हि० खूँदना] घोड़ी जगह में घोड़े का इधर उधर चलते रहना।

विशेष—किसी चंचल घोड़े को जो सवार एक स्थान पर कुछ देर तक खड़ा रखना चाहता है, तो वह घोड़ा सीधा और खुपचाप खड़ा न रह कर थोड़ी सी जगह में ही आगे पीछे हटता और घूमना रहता है। इसी हटने और घूमने को खूँद कहते हैं। उ०—करे चाहें तो खुटकि के खरे उदोहें मैंन। साम नवाये तारपतत करत खूँद सी मैंन।—विहारी।

खूँदना-क्रि० अ० [सं० कृष्ण = पिता वा कुञ्जल हुआ। अयवा कुञ्जल = खूँदना] (१) उड़ल छूट करना। पैर उठा उठा कर जल्दी जल्दी भूमि पर पटकना। (२) पैरों से रौंदना। रौंद रौंद कर खराब कर देना। उ०—खभरी खोद खूँद धिमला सो। रौंद राट भंजो भौता सो।—लाल। †(३) कुचलना। छूटना।

खूँसी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक कीड़ा जो चैती फसल को जाड़े में नारा करता है। हकी। हुकुड़ी। गेहूँ।

खूर-संज्ञा पुं० [फा० खूर] शकर। सुधर।

खूच-संज्ञा स्त्री० [दे०] जल-वमरु-मय्यु। (बरा०)

खूमा-संज्ञा पुं० [सं० गुण, श० गुम्फ] (१) किसी फल आदि के भीतर का वह रेशेदार भाग जो निकम्मा समझ कर फेंक दिया जाता है। जैसे, नेलुफ का खूमा। (२) बहुत उलम्हा हुआ रेशेदार लच्छा जो किसी अच्छे काम में न था सके। जैसे, रेशम का खूमा।

खूटना-क्रि० अ० [सं० कुंडन] (१) अचपल होना। रुक जाना। बंद हो जाना। उ०—घोड़ दई सरिता सय काम मनोप्य के रय की गति खूटी।—जैनाय। (२) कम हो जाना। सुक जाना। खतम हो जाना। उ०—कागज गरे

मेघ मति खूटी शर दी लागि जरे। सेवक सूर लिले ते आघो पलक कपाट धरे।—सूर।

क्रि० सं० [सं० खूब] खूँडना। उ०—धसनेदिन हित नगर में सकत न कोज खूट। चतुर जगाती लाल टग लेत सनेदिन खूट।—रसनिधि।

खूद, खूदड़, खूदरा-संज्ञा पुं० [सं० खूद] किसी पस्तु को छान लेने वा साफ कर लेने पर निकम्मा बचा हुआ भाग। तलखूट। मँल।

खून-संज्ञा पुं० [फा०] (१) रक्त। रूधिर। लहू।

क्रि० प्र०—गिरना। यहना।—निकलना।—निकालना।—चलना।

मुहा०—**खून उबलना वा खालना** = क्रोध से शरीर लाल होना। गुस्ता चढ़ना। **आँखों में खून उतरना** = अत्यंत क्रोध के कारण आँखें लाल हो जाना। **खून का प्यासा** = वच का इच्छुक। **खून खुरक होना वा खूनना** = अत्यंत भयभीत होना। **खून खफ हो जाना** = सुजन्ता या स्नेह आदि का नष्ट हो जाना। **खून सिर पर चढ़ना वा सवार होना** = किसी को मार डालने या इसी प्रकार का और कोई अनिष्ट करने पर उद्यत होना। **खून बियगड़ना** = (१) रक्त में किसी प्रकार का विकार होना। (२) फोड़ी हो जाना। **खून का जोश** = ईश या कुल का प्रेम। **खून बहाना** = मार डालना। **खून निकलवाना** = फरद खुसवाना। **खून पीना** = (१) मार डालना। (२) बहुत तंग करना। छताना। (३) बहुत दुःख सहना। (४) बध। हत्या। कत्ल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

धा०—खून खराया।

खून सराबा-संज्ञा पुं० [हि० खून + खराबी] मार काट।

संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की धार्मिक जो लकड़ी पर की जाती है।

खूनी-वि० [फा०] (१) मार डालनेवाला। हत्यारा। पातक। उ०—हुटन न पयत दिनक बसि नेह नगर यह खाल। मारयो फिरि फिरि मारिये खूनी फिरत खुस्वाल।—विहारी। (२) अत्याचारी। जालिम।

खूब-वि० [फा०] [संज्ञा खूँ] अच्छा। भला। उमदा। उत्तम।

धा०—खूबखूरत।

क्रि० वि० [फा०] पूर्ण रीति से। अच्छी तरह से।

खूबकलौं-संज्ञा स्त्री० [फा०] फारस देश के माजिदर नामक प्रांत में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की घास के बीज जो पोस्ते के दानों के समान और गुलाबी रंग के होते हैं। खाकसीर।

विशेष—दे० "खाकसीर"।

खुबड़ खाबड़-वि० [अनु०] जो बराबर या समथल न हो।
जँचा नीचा।

खुबसूरत-वि० [फा०] सुंदर। रूपवान्।

खुबसूरती-संज्ञा स्त्री० [फा०] सौंदर्य। सुंदरता।

खुबानी-संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार का मेवा जिसे जरदाखु भी कहते हैं। इसका पेड़ काबुल की पहाड़ियों पर होता है। वहाँ से यह मेवा भारत में आता है। इसके फल सुखा लिए जाते हैं और ताजे भी खाए जाते हैं। इसके बीज से तेल निकाला जाता है जिसे "कटुपु यादाम का तेल" कहते हैं। इसके पेड़ से एक प्रकार का कत्तीरे की भाँति का गोद निकलता है जिसे "चेरीगम" कहते हैं। इसके फल मई से सितंबर तक पकते हैं। इसका पेड़ मकोले झील का होता है और हर साल इसके पत्ते झड़ते हैं। जरदाखु। कुरमाखु।

खुबी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) भलाई। अच्छाई। अच्छापन। उम्दगी। (२) गुण। विशेषता। विलक्षणता।

खून-संज्ञा स्त्री० [सं० नुर] हाथियों के पैरों के नाखूनों की एक धारियाँ जिसे नाखून फट जाता है। इसमें कुछ पीड़ा भी होती है जिसे हाथी लँगडने लगता है।

खुस्त-संज्ञा पुं० [सं० कौशिक] उबलू। धुपू। उ०—दोप खँजियार पैद जस तपे। खुस्त मुँह न दिखाये छुपे।—जायसी।

वि० (१) मनहूस। शुष्कहृदय। अरसिक। जिसे आमोद प्रमोद न भाये। (२) बुड्ढा खजूस। डोका।

खुस्त-संज्ञा पुं० दे० "खुस्त"। उ०—राजमाल का बालक पैल की पालत लालत खुस्त को।—मुलसी।

वि० दे० "खुस्त"।

खुटीय-वि० [हि० खीट + सं० इय (प्रत्य०)] ईसा संवत्की। ईसा का। ईसाई।

खेड़ी-संज्ञा स्त्री० [देग०] भड़पैरी की खुली भाड़ी। भाड़ू मंलाड़।

खेऊ-संज्ञा पुं० [देग०] मझा, स्वाम और मनीपुर के जंगलों में होनेवाला एक बड़ा पेड़। इसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है, और इस पेड़ का रस धनी बनाई चारनिश का काम देता है। जुलाई से अक्टूबर तक इसके पेड़ों से जो रस निकाला जाता है वह उच्चम समझा जाता है।

खेकसा, खेखसा-संज्ञा पुं० [देग०] परवल के आकार का फल जो तरकारी के काम में आता है। जंगलों और भाड़ियों में इसकी बेल प्रायः आपसे आप उगती है। यह बेल कुं दुरू की बेल के समान होती है और इसमें पीले फूल लगते हैं। इस का कच्चा फल हरा होता है और पकने पर लाल हो जाता है। इसका स्वाद करीब से मिलता जुलता होता है और इसके ऊपरी भाग में मोटे कड़े कटि या रोपू होते हैं। वैद्यक में इसे चरपरा, गरम, पित्त वात और विप-नाशक, दीपन और रुचिकारक कहा है और कुट, अरुचि, आस, खाँसी

और ज्वर को दूर करनेवाला माना है। इस के पत्ते धीरे-धीरे क, त्रिदोषनाशक और रुचिकारक होते तथा हृमि, चप, हिचकी और बवासीर को दूर करते हैं। कफोड़ा।

खेचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाशचारी। यह जो धासमान में चले। (२) सूर्य चंद्रादि ग्रह। (३) तागण्य। (४) वायु। (५) देवता। (६) विमान। (७) पत्नी। (८) बादल। (९) भूत प्रेत। (१०) रावण। (११) विद्याधर। (१२) शिव। (१३) पाप। (१४) कसीस।

खेचरात्र-संज्ञा पुं० [सं०] खिचड़ी।

खेचरी मुद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार योगसिद्ध एक प्रकार की गोली जिसको मुँह में रखने से आकाश में उड़ने की शक्ति आजाती है।

खेचरी मुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) योगसाधन की एक मुद्रा जिस में जयान को उलट कर तालू से लगाते हैं और दृष्टि को दोनों ओरों के बीच मस्त्रक पर लगाते हैं। इस स्थिति में चित्त और जीम दोनों ही आकाश में स्थित रहते हैं, इसी लिये इसे "खेचरी" मुद्रा कहते हैं। इसके साधन से मनुष्य को किसी प्रकार का रोग नहीं होता। (२) तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिस में दोनों हाथों का एक दूसरे पर लपेट लेते हैं।

खेजड़ी-संज्ञा स्त्री० [देग०] शमी का वृक्ष।

खेट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेतियों का गाँव। खेड़ा। खेरा। (२) धास। (३) बारहो ग्रह। (४) घोड़ा। (५) मृगया। शिकार। आखेट। (६) कफ। (७) सिर। ढाल। (८) लाठी। छड़ी। (९) चमड़ा। (१०) एक प्रकार का अन्न। (११) मृग। तिनका।

खेटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेड़ा। गाँव। (२) सितारा। तारा। (३) बलदेव जी की गदा। (४) ढाल। (५) लाठी। खेड़ा पुं० [सं० आखेट] शिकार। मृगया।

खेटकी-संज्ञा पुं० [सं०] भड़री। भदरिया। भडूर। उ०—कोई पूँछे खेटकीन कोई पूँछे खेटकीन कोई नैफिकिन पूँछे कोई पूँछे काग ते।—खुराज।

संज्ञा पुं० [सं० आखेट] (१) शिकारी। अहंरी। (२) बधिक।

खेड़ा-संज्ञा पुं० [सं० खेट] छोटा गाँव।

धा०—खेड़ापति।

मुद्रा०—खेड़े की दूब = अर्थात् यज्ञहीन, दुर्बल या दुच्छ। उ०—नैद नैदन लै गपु हमारी सब व्रज कुल की जय। सूर.श्याम तजि औरै सुके ज्यों खेरे की दूब।—सूर।

संज्ञा पुं० [देग०] कई प्रकार का मिला हुआ रबी और सझा अनाज जो प्रायः पालव चिकियों विशेषतः क्यूतलों को खिलाया जाता है।

खेड़ापति—संज्ञा पुं० [हि० खेड़ा + सं० पति] (१) गाँव का मुखिया । (२) गाँव का पुरोहित ।

खेड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) एक प्रकार का देशी लोहा जिस के बने हुए हथियार बहुत तेज़ होते हैं । यह एक भंति का फूलादाई और मंगाल में बहुतायत से वनता है । इसे कहीं कहीं सुखडुटिया लोहा भी कहते हैं । (२) यह मांसखंड जो जरायुज जियों के बच्चों की नाल के दूसरे छेदर में लगा रहता है ।

खेड़ा—संज्ञा पुं० [का० खेत वा हि० खेड़ा] समूह । जमात ।

खेड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "खेड़ी" ।

खेत—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्र] (१) वह भूमि खंड जो जोतने, बोने और धनाज आदि की फसल उत्पन्न करने के योग्य हो । जोतने बोने की जमीन ।

क्रि० प्र०—जोतना ।—निराना ।—बोना ।

मुहा०—**खेत कमाना** = खाद आदि डाल कर खेत को उपजाऊ बनाना । **खेत करना** = (१) समझल करना । उ०—सोखि कै खेत कै थांधि सेतु करि उतरिगे वदधि न बोहित चदिबो । —सुखसी । (२) उद्यम के समय चंद्रमा का पहले पहल भ्रमण केनाना । **खेत काटना** = खेत में उपजी हुई फसल काटना । **खेत रहना** = खेत की रखवाली करना । उ०—राखति खेत परी परी खरे जोजन बाल ।—विहारी ।

(२) खेत में खड़ी हुई फसल ।

क्रि० प्र०—काटना ।—साना ।

(३) किसी चीज के विशेषता; प्रसूयों आदि के उत्पन्न होने का स्थान वा देश । जैसे, यह घोड़ा श्रच्छे खेत का है । (४) समरभूमि । रणक्षेत्र । उ०—हतिहैं खेत त्रिलाड खिलाई । तोहिं शबहिं का करं बड़ाई ।—जायसी ।

मुहा०—**खेत धाना** = युद्ध में मारा जाना । उ०—रहगी न खेत धायो, कोपित करिदैं धायो, भरत बचायो सुहरायो रघुवीर को ।—रघुनाज । **खेत करना** = युद्ध करना । लड़ना । **खेत छोड़ना** = रणभूमि में पराज होना वा रणभूमि छोड़ कर भागना । **खेत पढ़ना** = दे० "खेत धाना" । **खेत रहना** = समर में विजय प्राप्त करना । **खेत रहना** = दे० "खेत धाना" । (४) तलवार का फल ।

खेतहर—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्र + हि० खेती + हर] खेती करने वाला । कृषक । किसान ।

खेती—संज्ञा स्त्री० [हि० खेत + ई (प्रत्य०)] (१) खेत में धनाज बोने का कार्य । कृषि । किसानी । कारतकारी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धा०—खेती बारी ।

(२) खेत में बोई हुई फसल । उ०—खेती सूख रही है ।

मुहा०—**खेती मारी जाना** = कृषक मर जाना ।

खेती बारी—संज्ञा स्त्री० [हि० खेती + बारी = बग कमीचा] किसानी । कृषि ।

खेद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० खेदित, खिन] (१) अमसन्नता । दुःख । रंज । (२) खलानि । चिन्ता की शिथिलता । यकावट । जैसे, सुरति खेद ।

खेदना—क्रि० सं० [सं० खेद] भगाना । खदेरना । मार कर हटाना । क्रि० सं० [सं० खेद] शिकार के पीछे दौड़ना । शिकार का पीछा करना ।

खेदा—संज्ञा पुं० [हि० खेदना] (१) किसी बर्तले पशु को मारने वा पकड़ने के लिये घेर कर एक उपयुक्त स्थान पर लाने का काम । (२) शिकार । अहेर । श्राखेट ।

खेदाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खेदना] (१) खेदने का भाव । (२) खेदने का काम । (३) खेदने की मजदूरी ।

खेदित—वि० [सं०] (१) दुःखित । खिन्न । रंजीदा । (२) परिश्रम से थका हुआ । शिथिल ।

खेना—क्रि० सं० [सं० खेपण, प्रा० खेवण] (१) नाव चलाना । नाव के बर्तों को चलाना जिसमें नाव चले । (२) चिताना । काटना । गुनगुनाना । काबज्जे करना । उ०—हमने धपने उरे दिन स डाले ।

खेप—संज्ञा स्त्री० [सं० खेप] (१) उतनी वस्तु जितनी एक बार में खे जाई जाय । एक बार का बोझ । खदान । खदा माल । उ०—धायो धोप बड़ो ध्यापारी । खादि खेप गुन ज्ञान जोग की मय में धानि उतारी ।—सूर ।

मुहा०—**खेप हारना** = माल में पाटा उठाना ।

(२) गाड़ी नाव आदि की एक बार की यात्रा । उ०—दूसरी खेप में इसे भी खेते जाना ।

संज्ञा स्त्री० [सं० खेपण] दोप । पूव ।

क्रि० प्र०—देंना ।—परना ।—लवाना ।

संज्ञा स्त्री० (१) खोटा सिका । (२) यह सिका जो कोंडा खाने की बजह से धातार में न चल सके ।

खेपना—क्रि० सं० [सं० खेपण] चिताना । काटना । गुनगुनाना । उ०—जैसे दिन खेप रे ।—कबीर ।

खेपड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० खेपणी] नौका खेने का दंड । डांड । (हि०) ।

खेम—संज्ञा पुं० दे० "खेम" ।

खेमकल्याणी—संज्ञा स्त्री० दे० "खेमहरी" ।

खेमटा—संज्ञा पुं० [दे०] (१) बारह माशायों का एक ताल जिसमें तीन आचात और एक खाली होता है । दूसका बाल यह है ।

+ ३ ० १ १ +
धा क ट ना धि ना से ट धि ना धि ना । धा । कोई कोई

इसे केवल आठ मात्राओं का ताल मानते हैं। उनके अनुसार इसका षोडश इस प्रकार है।

धाम्गि नातिन नागधि नातिन धा । अथवा, धाकड़े

धिन् धिन् ताकड़े तिन् तिन् धा । (२) इस ताल पर गाय जायेवाला गाना । (३) इस ताल पर होनेवाला नाच ।

खेमा—संज्ञा पुं० [अ०] तंजु । डेर ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।—गाड़ना ।

खेरवा—संज्ञा पुं० [हि० खेना] समुद्र में जहाज आदि चलानेवाला महाह ।

खेरा—संज्ञा पुं० दे० “खेड़ा” । उ०—यन प्रदेश मुनि यास खेरे ।
जनु पुर नगर गाँवें गन खेरे ।—तुलसी ।

खेरापति—संज्ञा पुं० दे० “खेड़ापति” ।

खेरी—संज्ञा स्त्री० [दे० (१)] बंगाल में अधिकता से होनेवाली एक प्रकार की गेहूँ जो लाल रंग की और बहुत कड़ी होती है ।

(२) एक प्रकार की घास जो आस्ट्रेलिया देश में बहुतायत से होती है । यह पशुओं के लिये बहुत अच्छा चारा है । (३)

एक प्रकार का जलपपी जो प्रायः दलदलों में रहता है और शत्रुपरिवर्तन के साथ साथ अपना स्थान भी बदलता रहता है । यह उड़ता कम और दौड़ता अधिक है । इसका मांस स्वादिष्ट होता है इसलिये लोग इसका शिकार भी करते हैं ।

(४) दे० “खेड़ी” ।

खेल—संज्ञा पुं० [सं० कोषि] (१) केवल चित्त की उमंग से अथवा मन बहलाने वा व्यायाम के लिये हथर उधर उड़ल कूद और दौड़ धूप या और कोई साधारण मनोरंजक फल्य, जिसमें कभी कभी हार जीत भी होती है । जैसे, आँसुमिचौली, कवड़ी, ताप, गेंद, शतरंज आदि ।

क्रि० प्र०—खेलना ।

मुहा०—खेल खेलाना = बहुत तंग करना । खूब दिक् करना ।

(२) मामला । बात ।

मुहा०—खेलें बिगड़ना = (१) काम खराब होना । (२) रंग में मंग होना ।

(३) बहुत हलका या मुच्छ काम ।

क्रि० प्र०—जानना ।—समकना ।

मुहा०—खेल करना = किसी काम का अन्यावरण या मुच्छ समक कर हँसी में बड़ाना । खेल समकना = साधारण या मुच्छ समकना ।

(४) कामक्रीड़ा । वियप विहार । (२) किसी प्रकार का अभिनय, तमारा, स्वंग या करतब आदि । (३) कोई अद्भुत कार्य । विचित्र लीला । उ०—यह देखो कुदरत का खेल ।—कहावत ।

संज्ञा पुं० वह छोटा कुंड जिसमें सौपापू पानी पीते हैं ।

खेलक—संज्ञा पुं० [हि० खेलना] खेलनेवाला व्यक्ति । वह जो खेलै । खेलवाड़ी । उ०—ज्योम विमाननि विबुध विलोक्त खेलक, पेलक छाँह द्यये ।—तुलसी ।

खेलना—क्रि० अ० [सं० खेल, केलन] [प्र० खेलना] (१) केवल चित्त की उमंग से अथवा मन बहलाने वा व्यायाम के लिये हथर उधर उड़लना, कूदना, दौड़ना आदि । उ०—लड़के बाहर खेल रहे हैं ।

मुहा०—खेलना खाना = आनन्द से दिन बिताना । निरिचंत हो कर चैन से दिन काटना । जैसे, अभी तुम्हारे खेलने खाने के दिन हैं, सोच करने के नहीं । उ०—(क) खेलत खात रहे प्रज भीतर । नाहो जाति तनिक धन ईतर ।—सूर ।
(ख) खेलत खात लरिकपन गो जोचन जुवतिन लियो जीति ।—तुलसी ।

(२) विहार करना । काम क्रीड़ा करना ।

मुहा०—खेली खाई = पुष्य समाग से जानकार । खुल खेलना = खुलमखुला कोई ऐसा काम करना जिसके करने में लोगों को लज आती है । सब की जान में फेरी बुरा काम करना ।

(३) भूत प्रेत के प्रभाव से स्तिर और हाय यैर आदि हिलाना । अशुभाना । (४) विचरना । चलना । बढ़ना । उ०—भयै रजायसु आगो खेलहि । गढ़ तर छाँड़ि थंत होय मेळहि ।—जायसी ।

क्रि० सं० (१) ऐसी क्रिया करना जो केवल मन बहलाव वा व्यायाम आदि के लिये की जाती है और जिसमें कभी कभी हार जीत का भी विचार किया जाता है । जैसे, गेंद खेलना, जुधा खेलना, ताम्र खेलना, इत्यादि ।

मुहा०—जान या जी पर खेलना = अपने जीने की बाली लगाना । अपना प्राण भय में डालना । ऐसा काम करना जिसमें मृत्यु का भय हो । (जान या जी के समान स्तिर, धन, हज्जत आदि कुछ और शब्दों के साथ भी यह मुहाविरा प्रायः बोला जाता है ।

(२) किसी वस्तु को लेकर अपना जी बहलाना । किसी वस्तु को मनोरंजन के लिये हिलाना, डुलाना आदि । जैसे, खेलौना खेलना । उ०—फागुन यहाँ न छोड़ो नहीं तो लड़के खेल डालेंगे । (३) अभिनय करना । नाटक वा स्वंग रचना । उ०—यह नाटक कय खेला जायगा ।

खेलवाड़ी—संज्ञा पुं० [हि० खेल + वड़ी] खेल । क्रीड़ा । तमारा । मनबहलाव । दिखगी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

खेलवाड़ी—वि० [हि० खेल + वार (अल०)] (१) खेलनेवाला ।

३०—वह पड़ा खेलवाड़ी सड़का है । (२) विनाद-शील । किमुकप्रिय ।

खेलयाना—कि० सं० [हि० खेलना] दूसरे को खेलाने में प्रवृत्त करना ।

खेलवाड़ी—संज्ञा पुं० [हि० खेल + वाड़] खेल करनेवाला ।
३०—संपति चकई भारत चक मुनि धायमु खेलवात । तेहि निशि धाम्रम पाँजरा राखे भा भिगसार ।—तुलसी ।
संज्ञा पुं० दे० “खेलवाड़ ” ।

खेलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खेल] (१) खेलने का काम । खेल । जैसे, आज कल वहाँ खूब शतरंज की खेलाई हो रही है ।
(२) खेलाने की मजदूरी ।

खेलाई-वि० [हि० खेल + वार (प्रत्य०)] (१) खेलनेवाला ।
क्रोडरखील । (२) विनादी ।

संज्ञा पुं० [हि० खेल] (१) वह जो खेले । खेल में सम्मिलित होनेवाला व्यक्ति । (२) माताश्रा करनेवाला । (३) ईश्वर । ३०—उस खेलवाड़ी के अग्रज खेल हैं ।

खेलाना—कि० सं० [हि० ‘खेलना’ का प्रे०] (१) किसी दूसरे को खेल में लगाना । दे० ‘खेलना’ । (२) खेल में शामिल करना । ३०—जाय, हम धय तुहें नहीं खेलायेंगे । (३) पहलवान । उलम्फाए रखना ।

मुहा०—खेला खेला कर मारना = दौड़ा दौड़ा कर धीरे धीरे मारना । हाँसत से मारना । ३०—अर्थहैं बहुत का करीं पड़ाई । इतिहैं तोहि खेलाई खेलाई ।—तुलसी ।

खेलार—संज्ञा पुं० [हि० खेल + वार (प्रत्य०)] दे० “खेलाड़ी” ।
३०—खेलत फाय खेलार धरे अतुराग भरे यद्द भाग कन्हाई ।
—सुंदरी सवैख ।

खेलुआ—संज्ञा पुं० [हि० खिलना या गिञ्जना] रक्षाधी या धाली के आकार का चमड़ा रँगनेवालों का फाट का एक यंत्र जिस से चमड़े को रँगने के पहले मुलायम करने और खिलाने के लिये उस पर खारी नमक आदि रगड़ते हैं ।

खेलाना—संज्ञा पुं० दे० “खिलौना” ।
खेय—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार की घास जो वर्षा ऋतु में पहला पानी पड़ते ही बहुत अधिकता से उगती है और जिसे मोड़े बहुत प्रसन्नता से खाते हैं । इसे पलंजी या उत्तर की घास भी कहते हैं ।

खेयक०—संज्ञा पुं० [सं० केयक] नाव खेनेवाला । महाह । केयट ।
माँकी । ३०—राजा कर भा अगमन खेवा । खेवक आगे सुवा परेवा ।—नायसी ।

खेवट—संज्ञा पुं० [हि० खेल + वट] पट्यारी का एक कागज़ जिसमें हर एक पट्टीदार के हिस्से की तादाद और मालगुजारी का विवरण लिखा रहता है ।

थार०—खेवटदार = हिसेदार । पट्टीदार ।

संज्ञा पुं० [हि० खेना] नाव खेनेवाला । महाह । माँकी ।

खेयटिया—संज्ञा पुं० [हि० खेवट] खेवट । महाह ।

खेयली—संज्ञा स्त्री० [सं० पैयली] नाव का ढाड़ । (हि०)

खेवनहार—संज्ञा पुं० [हि० खेना + वार (प्रत्य०)] (१) खेनेवाला । महाह । केयट । (२) ठिकाने तक पहुँचानेवाला । पार लगानेवाला ।

खेयना—कि० सं० दे० “खेना” ।

खेयनाय—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का बड़ा वृष जो उत्तर भारत में चिनाय नदी के पूर्व धीर बंगाल तथा उड़ीसा की नदियों के किनारे अधिकता से पाया जाता है । इसके गूदे से एक प्रकार के रेशे निकलते हैं जो रस्सी बटने के काम में आते हैं । इसमें एक प्रकार की लाह भी लगी है । कहीं कहीं इसे हुंवरसे भी कहते हैं ।

खेवरियाना—कि० सं० [देग०] पकड़ करना । संग्रह करना । घटोला ।

विरोप—इस शब्द का प्रयोग प्रायः चरवाहे अपनी गौओं के लिये करते हैं ।

खेया—संज्ञा पुं० [हि० खेना] (१) वह धन जो केयट को नाव द्वारा पार बतारने के बदले में दिया जाय । नाव खेने का किराया । (२) नाव द्वारा नदी पार करने का काम ।

३०—अभी यह पहला खेया है । (३) धार । दफा । अवनर । जैसे, (क) पिचले खेये उहोने कइ भूलें की थीं । (ख) इस खेये सब मगड़ा निपट जायगा । (इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल कार्य्य आदि करने के संबंध में होता है ।) (घ) थोक से लदी हुई नाव ।—३० राजा का भा अगमन खेवा । खेवक आगे सुवा परेवा ।—जायसी ।

खेयाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खेना] (१) नाव खेने का काम । नाव चलाने की क्रिया । (२) नाव खेने की मजदूरी । (३) वह रस्सी जो खंड को नाव से बांधने के काम में आती है ।

खेस—संज्ञा पुं० [देग०] बहुत मोटे देरी सूत की बनी हुई एक प्रकार की बहुत लंबी चादर जो पश्चिम में अधिकता से बनती और प्रायः विद्युत् के काम में आती है ।

खेसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० हसर वा खेनकरि] एक प्रकार की मटर जिसकी फलियाँ चिपटी होती हैं । इसकी दाल बनती है । यह अन्न बहुत सस्ता होता है और प्रायः सारे भारत में, और विशेषतः मध्य भारत तथा सिंध में इसकी खेती होती है । यह अग्रहन में बोई जाती है और इसकी फसल तैयार होने में प्रायः साढ़े तीन मास लगते हैं । लोग कहते हैं कि इसे अधिक खाने से आदमी खँगड़ा हो जाता है । पैथक में इसे रुला, कफु-पित्त-नासाक, रुचिकारक, मज्जरोधक, शीतल, रक्त-शोधक और पीथिक कहा गया है और यह शूल, सूजन, दाह,

ववासीर, हृद्दरोग और खेज उपयुक्त करनेवाला कहा गया है । इसके पत्तों का साग भी बनता है, जो वैद्यक के अनुसार वादी, रुचिकारी, और कफ-पित्त-नाशक होता है । लतरी । तेजरा । दुविया मटर । चिपटेया मटर ।

खेह—संज्ञा स्त्री० [सं० खार, पं० खेह] धूल । राख । प्लाक । मट्टी । उ०—(क) कीन्हेसि अग्निनि पवन जल खेहा । कीन्हेसि बहुते रंग उरहेहा ।—आयसी । (ख) दादू क्योकर पाह्ये उन चरनन की खेह ।—दादू ।

मुहा०—खेह खाना = (१) धूल फाँकना । मट्टी छानना । मूत्र मारना । व्यर्थ समय खेना । नष्ट जाना । उ०—सुनि सीता-पति सील सुभाऊ । मोद न मन तन पुलक नवन जल सो नर खेहहिं छाऊ ।—तुलसी (२) बुद्धशा-मस्त धेना । उ०—सोई रघुनाथ कपि साथ पाप नाथ वांधि धायो नाथ भागे ते किरिर खेह खाहियो ।—तुलसी ।

खैंग—संज्ञा पुं० [फा० खिंग] घोड़ा । (हिं०)

खैचनाना—क्रि० सं० दे० “खैचनाना” ।

खैचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खैचनी] डेढ़ हाथ लंबी एक चित्ता चौड़ी देवदार की लकड़ी की एक तपती जिस पर तेल लगा कर सीकल किए हुए औजार साफ किए जाते हैं ।

खैचा—संज्ञा स्त्री० दे० “खैचा खैची” ।

खैचतान—संज्ञा स्त्री० दे० “खैचतान” ।

खैचतानी—संज्ञा स्त्री० दे० “खैचतान” ।

खैवर—संज्ञा पुं० [दे०] भारत और अफ़्ग़ानिस्तान के बीच की एक घाटी का नाम ।

खैर—संज्ञा पुं० [सं० खैरि] (१) एक प्रकार का बबूल जिसका पेड़ बहुत बढ़ा होता है और प्रायः समस्त भारत में अधिकता से होता है । इसके हीर की लकड़ी भूरे रंग की होती है, घुनती नहीं और धर तथा खेती के औजार बनाने के काम में आती है । बबूल की तरह इसमें भी एक प्रकार का मोद निकलता है और बड़े काम का होता है । कय-कीकर । सोन-कीकर । (२) इस वृक्ष की लकड़ी के टुकड़ों को उयाल कर निकाला और जमाया हुआ रस जो पान में चूने के साथ लगाकर खाया जाता है । कथ्या ।

संज्ञा पुं० [दे०] दक्षिण भारत का भूरे रंग का एक पत्ती जो लंबाई में एक बालिरत से कुछ अधिक होता और भोवट्टियों या छोटे पेड़ों में घोंसला बना कर रहता है । इसका घोंसला प्रायः जमीन से सटा हुआ रहता है । इसकी गरदन और चोंच कुछ सफ़ेदी लिए होती है ।

संज्ञा स्त्री० [फा० खैर] कुशल । चेम । भलाई ।

धैर—खैर-आफ़ियत ।

अय्य० [फा० खैर] (१) कुछ चिंता नहीं । कुछ परवा नहीं ।

(२) अस्तु । अच्छा ।

खैर-आफ़ियत—संज्ञा स्त्री० [फा०] कुशल मंगल । चेम कुशल । क्रि० प्र०—कहना ।—पहुँचना ।

खैरखाह—वि० [फा०] भलाई चाहनेवाला । शुभचिंतक ।

खैरखाही—संज्ञा स्त्री० [फा०] शुभचिंतन । भलाई सोचना ।

खैरखाल—संज्ञा पुं० [दे०] कोलियार नाम का वृक्ष ।

खैरसार—संज्ञा पुं० [सं० खदिर + सार] कथ्या । खैर ।

खैरा—वि० [हिं० खैर] खैर के रंग का । कथ्य है ।

संज्ञा पुं० [हिं० खैर] (१) वह कद्दूर या घोड़ा जिसका रंग कथ्य है हो । (२) एक प्रकार का यगुला जिसका रंग कथ्य है होता है ।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) धान की फसल का एक रोग, जिसमें उसकी बाल पीली पड़ जाती है । (२) तबला बनाने में एकताले (ताल) की दून । (३) एक प्रकार की छोटी मछली जो बंगाल की नदियों में अधिकता से पाई जाती है ।

खैरात—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० खैरती] दान । पुण्य ।

क्रि० प्र०—करना ।—चाहना ।—बोटना ।—पाना ।—माँगना ।

खैरियत—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) कुशल चेम । राजी खुशी । (२) भलाई । कथ्याए ।

खैलर—संज्ञा स्त्री० [सं० खेल] मपानी ।

खैला—संज्ञा पुं० [सं० खेल] वह बैल जिससे अभी तक कुछ काम न लिया गया हो । नाटा । बड़बड़ा ।

खोइचा—संज्ञा पुं० [हिं० खैर] (खियों के कपड़ों का) अंचल । किनारा ।

मुहा०—खोइचा भरना = शकुन के रूप में किटी (सूँ) के अंचल में चावल, गुड़ आदि देना ।

खोखनाना—क्रि० अ० [खों खों से अतु०] खाँसना ।

खोखल—वि० दे० “खोखल” ।

खोखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोखना] खाँसी । कास ।

खोखी—संज्ञा पुं० [अतु०] खाँसने का शब्द ।

क्रि० प्र०—करना ।

खोखा—संज्ञा पुं० [दे०] अटकाव । रुकावट ।

संज्ञा पुं० [सं० खोखाह] वह बैल जो अभी किसी काम में न लगाया गया हो । नाटा । बड़बड़ा ।

खोखाह—संज्ञा पुं० [सं०] पीलापन लिए सफ़ेद रंग का घोड़ा ।

खोखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोखना या दे०] लगे हुए पानों का चौबड़ा ।

खोच—संज्ञा स्त्री० [सं० खूच] (१) किसी लुकीली चीज से दिखने का आयात । (२) किसी मेल या कटि आदि में फँस कर कपड़े आदि का फट जाना ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) मुट्टी। (२) वतना अन्न या श्रौत कोई पदार्थ जो एक मुट्टी में आ जाय।

संज्ञा पुं० [सं० शौच] एक प्रकार का वगुला।

शैवा-संज्ञा पुं० [सं० कुच] (१) यहलियों का वह लंबा र्थान जिसके सिरे पर लासा लगा कर वे पक्षियों को फँसाने हैं।
३०—पाँच धान कर शैवा लासा भरे सो पाँच। पाँच भरा तन उरमा कित मारे विन पाँच।—जायसी।

क्रि० प्र०—मानना।

(२) दे० "शौच"।

शैविया-संज्ञा पुं० [हि० शैवी] (१) शैवी लेनेवाला। (२) मिथुन। भित्तमंगा।

शैवी-संज्ञा स्त्री० [दे०] यह योद्धा अन्न, फल, तरकारी आदि जो इकानदार मंडी या बाजार में छोटी छोटी सेवाएँ करनेवाले या भित्तमंगा को देते हैं। उ०—खाई शैवी मांगि मैं तेरो नाम लिया रे। तेरे वर यहि आतु शौं जग जागि किया रे।—तुलसी।

शैवना-संज्ञा सं० [सं० मुञ्ज] किसी वस्तु का ऊपरी भाग तोड़ना। जैसे, साग शैवना। कपटना। नोचना।

शैवा-वि० दे० "शैवा"।

शैवुर-संज्ञा पुं० [सं० कोटर] वेष्ट का भीतरी पोला भाग।

शैवुहा-वि० दे० "शैवुहा"।

शैवा-वि० [सं० गुड] जिसका कोई श्रेयः अंग हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः उस मनुष्य के लिये होता है जिसके धागे के दो तीन दाँत टूटे हों।

शैवल-संज्ञा पुं० [हि० शैका] शैला। घोंसला। उ०—यह सुधि नहि' किहि की जयन में खगकुल शैवल लागे।—प्रताप।

शैवा-संज्ञा पुं० [दे०] घास, फूस घाल आदि का बना हुआ चिड़ियों का निवास-स्थान जो प्रायः घुँघों आदि पर होता है। शैसला।

शैवा-संज्ञा पुं० दे० "शैवा"।

शैवा-संज्ञा स्त्री० [हि० शैवना] सिखाई में दूर दूर पर लगा हुआ रङ्गा। सर्लगा।

क्रि० प्र०—भरना।—मानना।

शैवना-क्रि० सं० [षु०] धँसना। यथाना।

शैवा-संज्ञा पुं० [हि० शैवच] [सं० शैविक, शैवी] (१) हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है। (२) धामन का कोला। (३) भूसा रखने का घेरा जो छप्पर से ढाया रहता है।

शैवी-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "शैवी"। (२) हजामत में रून का कोना।

शैसना-क्रि० सं० [सं० शैव + ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु को कटौ

थिर रखने के लिये उसका कुछ भाग किसी दूसरी वस्तु में चुसेद देना। अटकाना। उ०—सती री मुरली धौंजी चेर।
.....कवहूँ कर कवहूँ अघरन पर कवहूँ कटि में शैसत जोर।—सूर।

शैवा-संज्ञा पुं० दे० "शैवा"।

शैव्या-संज्ञा स्त्री० दे० "शैवी"।

शैवहार-संज्ञा पुं० [हि० शैव + हार (प्रत्य०)] कोल्हार में वह स्थान जहाँ शैवी जमा की जाती है।

शैवलर-संज्ञा स्त्री० [सं० शैव] बांस की तीन चार हाथ लंबी छुड़ा जिन से कोल्हू में पड़े हुए गंधों को उलटते पलटते हैं।

शैवहा-संज्ञा पुं० [हि० शैव + हा (प्रत्य०)] कोल्हार का यह मजदूर जो शैवी उग्राता या फँसता है।

शैवी-संज्ञा स्त्री० [सं० शैवी] (१) ऊप्य के गंधों के ये ढंठल जो रस निकल जाने पर कोल्हू में शेष रह जाते हैं। शैवी। (२) भुने हुए चावल या धान के खील। लाई। (३) कंचल की धोपनी।

शैवधर-संज्ञा पुं० [दे०] संपूर्ण जाति का एक राग जो मालकोस राग का पुत्र माना जाता है। इसके गाने का समय दिन का पहला पहर है।

शैखरा-संज्ञा पुं० [हि० शैख का खोलसा] टूटा हुआ जहान्न। (सरा०)।

शैखला-वि० [हि० शैखल + ला (प्रत्य०)] जिसके भीतरी भाग में कुछ न हो। साराहीन। पोला।

संज्ञा पुं० (१) गार्वाी स्थान। पोली जगह। (२) रंभ। यज्ञ छेद।

शैघा-संज्ञा पुं० [हि० शैखल] वह कागज जिस पर हुंसी लिखी गई हो, विशेषतः वह हुंसी जिसका रूपया चुका दिया गया हो।

संज्ञा पुं० [सं० शैका] [सं० शैवी] शालक। लड़का।

शैगीर-संज्ञा पुं० दे० "शैगीर"।

शैचकिर्ला-संज्ञा पुं० [दे०] चिड़ियों का शैला। घोंसला।

शैज-संज्ञा स्त्री० [हि० शैजना] (१) अतुसंधान। ललाय। शोष।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—देना।

(२) चिह्न। निशान। पता। उ०—(क) रथ कर शैज कतहूँ नहि' पावहि'। राम राम कहि चहूँ दिशि धावहि'।—तुलसी। (ख) रावौ नहि' काहूँ सव मारीं। भज गोत्रल को शैज निवारीं।—सूर।

क्रि० प्र०—पाना।—लगाना।

शैजा-संज्ञा मिथाना = नष्ट करना। च्यल करना। बरबाद करना। चिह्न तक न रहने देना।

(३) माफ़ी के पक्षियों की शीक शय्या पैर आदि का चिह्न। उ०—चंदन नाभि सुरनिम शैजा। शोहिं हो। पाव को रात्रा भोजू।—जायसी।

मुहा०—शोज मारना = लीक या पैर आदि का चिह्न इस प्रकार बनाना या नष्ट करना जिसमें कोई पतन लगा सके। उ०—शोज मारि रथ हँकहु ताता। आन उपाय घनहि नहिं याता।—नुलसी।

शोजक—वि० [हि० शोज + क (प्रत्य०)] शोज करनेवाला। हूँ डनेवाला। तलारा करनेवाला। (क०)

शोजना—क्रि० स० [सं० शोज = चोराना] तलारा करना। पता लगाना। हूँ डना।

संयो० क्रि०—डालना।—मारना।—रखना।

शोजमिटा—वि० [हि० शोज + मिटना] [श्री० शोजमिथे] जिसका चिह्न न रह जाय, जिसका नाम निशान न रह जाय। नष्ट। जो सत्यानाश जाय। (इस शब्द को छियाँ परस्पर अधिक बोलती हैं।)

शोजघाना—क्रि० स० [हि० शोजना] शोजना का प्रेरणार्थक रूप। हूँ डवाना। पता लगवाना।

शोजा—संज्ञा पुं० [फ्रा० स्वामा] (१) वह नपुंसक व्यक्ति जो मुसलमानी घरों में द्वार-रक्षक या सेवक की भाँति रहता है। (२) सेवक। नौकर। (३) सरदार। माननीय व्यक्ति।

शोजाना—क्रि० स० दे० “शोजघाना”।

शोजी—वि० [हि० शोज + ई (प्रत्य०)] शोजनेवाला। हूँ डनेवाला। (क०)

शोट—संज्ञा स्त्री० [सं० शेट = सोडां (द्रवित)] (१) दोप। ऐव बुराई। उ०—सूरदास पारस के परसे मिटत लोह की शोट।—सूर। (२) किमी उत्तम वस्तु में निकृष्ट वस्तु की मिलावट। (३) वह निकृष्ट वस्तु जो किमी उत्तम वस्तु में मिलाई जाय।

शोटता—संज्ञा स्त्री० [हि० शेट] खोटाई। बुराई। शोटापन। (क०)। उ०—अमरापति चरयन पर लोयत। रही नहीं मन में कहु शोटत।—सूर।

शोटापन—संज्ञा पुं० दे० “शोटापन”।

शोटा—वि० [सं० शूद्र या शेट = खोडा (द्रवित)] [स्त्री० शोटी] जिसमें कोई ऐव हो। दूषित। बुरा। “खरा” का उलटा। जैसे, खोटा खरा, खोटा सोना, खोटा आदमी।

मुहा०—खोटा खरा = भला बुरा। उत्तम और निकृष्ट। खोटा खाना = बेईमानी से या बुरी तरह से कमा कर खाना। उ०—फाटक दे के हाटक माँगत भोरो निपट सुपारी। खुर ही से खोटा खायो है लिये फिरत सिर भारी।—सूर। खोटी करना = खोटापन या बुराई करना। खोटी बोलना = बुरी बात बोलना। खोटी खरी सुनाना = दुबचन कहना। डाँटना। फटकारना।

खोटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खोटा + ई (प्रत्य०)] (१) बुराई। दुष्टता। श्रद्धा। (२) कुल। कपट। उ०—अहह येषु तँ

कीन्ह खोटाई। प्रथमहिं मोहिं न जगायसि आई।—नुलसी। (३) दोप। ऐव। तुच्छ।

खोटाना—क्रि० अ० दे० “खुटना” या “खुटाना”।

खोटापन—संज्ञा पुं० [हि० खोटा + पन (प्रत्य०)] खोटा होने का भाव। श्रद्धा।

खोड़—संज्ञा स्त्री० [हि० खोट] देवता पितर भूत प्रेत आदि का कोप। देवकोप। ऊपरी फेर। उ०—उसे किसी देवता की खोड़ है।

खोड़रा—संज्ञा पुं० [सं० केटर] पुराने पैड़ का खोखला भाग।

खोद—संज्ञा पुं० [फ्रा०] टोप। कूड़। शिरग्राण। लोहे का बना हुआ टोप जिसे घोड़ा लड़ाई के समय पहनते थे।

संज्ञा पुं० [हि० खोदना] जाँच परताल। पूछ पाछ।

धौ०—खोद विनोद।

खोदाई—संज्ञा पुं० [दे०] एक छोटा पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है। यह रंगने और दवा के काम में आता है।

विशेष—दे० “लोप”।

खोदना—क्रि० स० [सं० खुर = भेदन करना] (१) किसी स्थान को गहरा करने के लिये वहाँ की मिट्टी आदि उखाड़ कर फेंकना। खनना। गड्ढा करना। जैसे, ज़मीन खोदना, कुर्था खोदना।

संयो० क्रि०—डालना।—फेंकना।

(२) खोद कर उखाड़ना वा गिराना। जैसे, कुच खोदना, घर खोद डालना। (३) किसी कड़ी वस्तु पर पानी वा तुकीली वस्तु से कुछ चिह्न, थँक वा खेलकूटे आदि बनाना। नकशी करना। जैसे, मोहर खोदना। (४) डँगली, छड़ी आदि से छूना वा दधाना। डँगली वा छड़ी आदि से हिलाना, हुलाना, गड़गना। उ०—(क) उसे खोद कर जगा दे। (ख) यह लड़का उसके गाल में खोद कर भागता है। (ग) लकड़ी थोड़ा खोद तो आग जलने लगेगी। (द) छेड़ना। छेड़ छ़ाड़ करना।

मुहा०—खोद खोद कर पूछना = एक एक बात पर संज्ञा कर्के पूछना। अच्छी तरह पूछना।

(३) उसकाना। उभाड़ना। वस्तेजित करना।

खोदनी—संज्ञा स्त्री० [हि० खोदना] खोदने का छोटा औज़ार।

धौ०—दूँत-खोदनी = दूँत से खोद कर भैल निकालने की संक या कील। कन-खोदनी = कान से खोद कर भैल निकालने की संक वा कील।

खोदघाना—क्रि० स० [खोदना का रूप] खोदने में लगाना। खोदने का काम करवाना।

खोद विनोदा—संज्ञा पुं० [हि० खोद + विनोद] छान वीन। जाँच पड़ताल। पूछ पाछ। छेड़ छ़ाड़।

खोदाई—उठा छी० [हि० खेदना] (१) खोदने का काम । (२) खोदने की मजदूरी । (३) कड़ी यत्न पर किसी नेकदार यत्न से धक, चिढ़, बेल वृत्ते धादि बनाने का काम । उ०—शाहजहाँपुर में लकड़ी पर खोदाई अच्छी होती है ।

खोना—क्रि० स० [सं० खोप, प्रा० खोपय] (१) व्यर्थ फेंक देना । अपने पास की वस्तु को निकल जाने देना । उ०—उत्तने अपनी पुस्तक खो दी । (२) भूल से किसी वस्तु को कहीं छोड़ जाना । (३) स्तब्ध करना । शिगाड़ना । नष्ट करना ।

संयो० क्रि०—देना । डालना ।

क्रि० अ० पास की वस्तु का निकल जाना । किसी वस्तु का कहीं भूल से छूट जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—संयोज्य क्रिया के साथ ही यह क्रिया शकर्मक भाव-वाच्य रूप में आती है, अकेले नहीं ।

मुहा०—खोया जाना = चकपका जाना । सिटपिटा जाना । धरराना । टूटकर बका होना ।

खोनाचा—संज्ञा पुं० [फा० खान्चा] (१) एक बड़ी परत या थाल जिसमें मिठाई या और बाने पीने की वस्तु भरी रहती है । (२) वह थाल जिसमें रख कर फेरीवाले मिठाई बेचते हैं ।

मुहा०—खोचा लगाना = बेचने के लिये खोनाचे में मिठाई लगाना या रखना ।

खोपड़ा—संज्ञा पुं० [सं० खोपड़ा] (१) सिर की हड्डी । कपाल । (२) सिर । (३) गरी । गरी का गोला । (४) नारियल । (५) भिडुकों का खप्पर जिसमें वे सीख लेते हैं । बहुधा यह दरियाई नारियल का धाधा टुकड़ा होता है । (६) गाड़ी में वह मोटी लकड़ी जो दोनों पहियों के बीच पुर्ण से मिलती होती है ।

खोपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० खोपड़ा] (१) सिर की हड्डी । कपाल । (२) सिर ।

मुहा०—खोपी खोपड़ी का, खोपी खोपड़ी का = नासमझ । मूर्ख । खोपड़ी खा जाना = बहुत बात करके दिक् करना । खोपड़ी घाट जाना = बकवाद करके तंग करना । खोपड़ी घट-करना = अधिक पूरा, प्यास या पीडा के कारण सिर में गर्मी और चकर मारना होना । सिर टनकरना । खोपड़ी खुजलाना = (१) ऐसी कोई बात या शरारत करना जिससे मार खाने की नीकत आये । मार खाने का जी चाहना । उ०—तुम न मानोगे, छुहारी खोपड़ी खुजला रही है । (२) सिर पर जूता मारना । खोपड़ी गंजी होना = मार खाते खाते सिर के थाल फूट जाना । सिर पर खूब जूते पड़ना । खोपड़ी गंजी करना = मारते मारते सिर के थाल न रहने देना । सिर पर खूब जूते लगाना ।

खोपरा—संज्ञा पुं० दे० “खोपड़ा” ।

खोपा—संज्ञा पुं० [सं० खोपा, हि० खोपड़ा] (१) छप्पर का कोना । (२) मकान का कोना जो किसी रास्ते की ओर पड़े । (३) फेराबिन्वास में वह तिकेनी बनावट जो ठीक प्रखरंभ पर पड़ती है । इसके सिरे का कोना मीग से मिला रहता है और ठीक हूली के आधर पर जुड़ा बांधा जाता है । (४) गुडा बाँधी हुई पेयी । उ०—सरवर तीर पदमिनी आई । खोपा टोरी कैसे दिखलाई ।—जायसी । † (५) गरी का गोला ।

खोवा—संज्ञा पुं० [दे० ख] गव या पल्लवर पीठने की चापी ।

खोमरना—क्रि० अ० [?] धाड़ा पड़ना । धीच में पड़ना । **खोमराना**—क्रि० अ० दे० “खुमराना” ।

खोमार—संज्ञा पुं० [?] गड्ढा जिसमें कूड़ा कंकट फेंका जाय ।

खोम—संज्ञा पुं० [सं० खोम] समूह । मुंड । उ०—सिवाजी की धाक, मिले खल कुल खाक, यसे खलम के खेरन खपीसन के खोम हैं ।—भूपय ।

संज्ञा पुं० [सं० खोम] किले का युक्त । (डि००)

खोय—उठा छी० [फा० खोय] आदत । बान । स्वभाव ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

खोया—संज्ञा पुं० [सं० खोया] (१) अर्ध पर चड़ा कर हतना गाड़ा क्रिया हुआ दूध कि उसकी पिंडी बाँधसके । मात्रा । खोवा । (२) ईंट पायने का गार ।

क्रि० उ० ‘खोना’ का भूत फाल ।

खोर—संज्ञा स्त्री० [हि० खोर] (१) सँकरी गली । कूचा । दखियों की संग गली । (२) नंद जिसमें चौपायों को चारा दिया जाता है ।

संज्ञा पुं० [दे० ख] बबूल की जाति का एक ऊँचा सुंदर पेड़ जो सिंध के रेगिस्तानों में होता है । इसकी लकड़ी पीलावन लिए सफ़ेद भारी और सख्त होती है और साफ़ करने पर खूब चिकनी हो जाती है । यह रेतों के झोंझार बनाने के काम आती है । इसे लान, साही-कांडा और धनरीठा भी कहते हैं ।

खोरना—क्रि० अ० [सं० खोरना] नहाना । छान करना । उ०—मजबनता रवि को कर जोर । शीत भीत नहिं करत छहें श्रद्ध विविध फाल यमुना जल खोरें ।—सूर ।

खोरनी—संज्ञा स्त्री० [हि० खोदना] वह लकड़ी जिससे भड़भूँजे भाइ भेकले समय बाहर रह गये हुए ईंधन को भाड़ के नीवर करते हैं ।

खोरा—संज्ञा पुं० [सं० खोराक । फा० खोरौरा] (१) खोरिया । (२) कटोरा । बेल । (३) आबखोरा । गिलास । पानी पीने का बरतन ।

†**वि०** [सं० खोर वा खोट] लंगड़ा । लूना । शंगमंग । उ०—फाने खोरे छूरे कुटित कुचाली जानि । तिय विशेष पुनि घेरि कहि भरत मातु मुसकनि ।—मुलसी ।

खोरक-संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० खोरकी] (१) भोजन सामग्री ।

(२) खाने की माग्रा । उ०—वसकी खोरक बहुत है । (३)

श्रीपथ की माग्रा जो एक धार सेवन की जाय । उ०—इतने में चार खोरक होगी ।

खोरकी-वि० [फा० खोरक + ई (प्रय०)] खूब खानेवाला ।

अधिक भोजन करनेवाला ।

खंशा स्त्री० [फा० खोरक] यह धर और खोरक के लिये दिया जाय ।

खोरि-संज्ञा स्त्री० [हि० खुर] तंग गली । उ०—खेलत श्रमथ

खोरि, मोक्षा भीरा चक डेरि, मूरति मधुर वसै तुलसी के हियरे—तुलसी ।

खंशा स्त्री० [सं० खोट वा खोर] (१) देव । द्रौप । जुवस ।

उ०—(क) कहीं पुकारि खोरि मोहैं, नार्हीं—तुलसी ।

(ख) साँकी गैल वा खोरि हमैं किन खोरि लगाय सिर्जोवो फरो कोव ।—देव ।

क्रि० प्र०—हलना ।

(२) घुराई ।

खंशा स्त्री० दे० “खौरवा” “खौरि” । उ०—तनु श्रनुहरत सुचंदन खोरि । श्यामल गौर मनोहर जेरी ।—तुलसी ।

खोरिया-संज्ञा स्त्री० [हि० खोरा] (१) छोटा कटोरा वा बेलिया ।

छोटा श्यावखोरा वा गिलास । पानी पीने का छोटा बर्तन ।

(२) छोटे चमकीले बुँदे जिन्हें खियाँ वा खिलयाले शेम्मा के लिये मुँह पर चिपकाते हैं । (३) कुपूँ की पैड़ी का पह सत्र से विचलता भाग जो तरसा खींचते खींचते बौलों के पहुँचने पर कुपूँ के मुँह पर थाजता है ।

खोल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिलाफ । ऊपर से चम्पा हुआ ढकना ।

उद्गाह । (२) कीड़ों का ऊपरी चमड़ा जिसे समय समय पर वे बदला करते हैं । (३) शोड़ने का मोटा फणड़ा । मोटी चादर ।

खोलना-क्रि० घ० [सं० खुल, खुल = भेदन] (खुलाना का सं० रूप)

(१) किसी वस्तु के मिले वा जुड़े भागों को एक दूसरे से इस प्रकार अलग करना कि उसके भीतर वा उसके पार तक शाना, जाना, टयेलना, देखना आदि हो सके । छिपाने वा रोकनेवाली वस्तु का हटाना । श्रवरोध या श्रावरण का दूर करना । जैसे, कियाड़ खोलना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग श्रावरण और श्रावृत तथा श्रवरोध और श्रवत्पद दोनों के लिये होता है । जैसे, कोटरी खोलना, कियाड़ खोलना ।

संयो० क्रि०—हालना ।—देना ।

(२) देसी वस्तु को हटाना वा इधर उधर करना जो किसी दूसरी चीज को छाप वा घेरे हो । (३) दवार करना । छेद करना । शियाफ़ करना । जैसे, फोड़े का, मुँह खोलना ।

(४) रॉपने या जोड़नेवाली वस्तु को अलग करना । बंधन तोड़ना । जैसे, टाँका खोलना, गाँठ खोलना, पैड़ी खोलना ।

(५) किसी वँधी हुई वस्तु को मुक्त करना । जैसे, पेलत खोलना, घोड़ा खोलना । (६) किसी क्रम को चलाना या जारी करना । जैसे, तपस्त्राह खोलना । (७) देसी वस्तु का तैयार करना जो दूर तक देखा के रूप में चली गई हो और जित पर किसी वस्तु का शाना जाना हो । जैसे, सड़क खोलना, नहर खोलना । (८) कोई ऐसा नया कार्य श्रांरभ करना जिसका लगव श्रयैसाधारण या बहुत से लोगों के साथ हो । जैसे, कारखाना खोलना, पाठशाळा खोलना, दूकान खोलना । (९) किसी कारखाने, दूकान, बफ़ोर श्रादि का दैनिक कार्य श्रांरभ करना । जैसे, वह निल बड़े तड़के दूकान खोलता है । (१०) किसी देसी सचारी को चला देना जिस पर बहुत आदमी एक साथ बैठ सकें । जैसे, गाध खोलना । (११) किसी गुप्त या गुड धात को प्रकट वा स्पष्ट कर देना । जैसे, आपके पछुते ही वे सब खोल देंगे ।

संयो० क्रि०—हालना ।—देना ।

(१२) किसी को श्रयने मन की धात कहने के लिये उद्यत करना । जैसे, हमने उसे खोलना चाहा पर यह नहीं सुला ।

खोरिया-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की पनालीदार खली जिस्से बड़ई लकड़ी पर फूल पत्ती वा येलवूटे खोदते हैं ।

खोवा-संज्ञा पुं० [सं० खुद = वेपथे, पीतना ?] खोया । मावा ।

खोह-संज्ञा स्त्री० [सं० गेह] (१) गुहा । गुफा । कंदरा । (२) पहाड़ के बीच का राहटा राहटा । (३) दौ पहाड़ों के बीच में की तंग जगह ।

खोही-संज्ञा स्त्री० [सं० खोलक] (१) पत्तों की छुत्ती । उ०—सिरनि जया मुकुट मंजुल सुमन युत तैसियै लसति नव पहव खोही ।—तुलसी । (२) घोषी । खुदुभा ।

खौ-संज्ञा स्त्री० [सं० खर] (१) खात । गडदा । (२) श्रध संचित करने का गहटा गडदा । इसका मुँह ऊपर कुपूँ का सा होता है पर नीचे कुछ शोधक बीड़ा होता है ।

खौचा-संज्ञा पुं० [सं० पद + च] साढ़े छः का पहाड़ा । जैसे, हाँचा, बाँचा इत्यादि ।

खंशा पुं० [फा० खानिच] एक प्रकार का संदुक जिसमें मिठाई आदि खाने पीने की वस्तु रखी जाती है ।

खौड़ा-संज्ञा पुं० [सं० खन वा खल] (१) खी । श्रनाज रखने का गडदा । (२) गडदा ।

खोरक-संज्ञा पुं० [ख०] [वि० खोरक] डर । भय । भीति । दहशत ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगना ।—होना ।

खोर-संज्ञा स्त्री० [सं० खौर वा खूर] (१) मल्लक पर लगे हुए चंदन का धाड़ा वा धनुःकार तिलक । त्रिपुंड । चंदन का धाड़ा टीका ।

विशेष—चंदन का मलक पर खेप करके उस पर बैंगली से खोंच कर चिद्र बनाते हैं ।

क्रि० प्र०—देना । लगाना ।

(२) खियों का एक राहना जो मलक पर पहना जाता है ।

(३) मद्रली फसाने का एक प्रकार का जाल ।

शौरना—क्रि० सं० [हि० खोर] खौर लगाना । तिलक करना । चंदन का टंका लगाना ।

शौरहा—वि० [हि० खौर + हा (प्रत्य०)] [खी० खौरहा] (१) जिसके सिर के बाल रुद्ध हुए हों । (२) जिसे खौरा हुआ हो । जिसके शरीर में सुजली का रोग हो ।

शौरा—संज्ञा पुं० [सं० शौर । प्रा० बालखौरा] [वि० खौरा] एक प्रकार की घुरी सुजली जिसमें चमड़ा बिलकुल सूखा हो जाता है और बाल प्रायः मरुत जाते हैं । यह रोग कुत्तों और विडियों आदि को भी होता है ।

वि० जिसे खौरा हुआ हो ।

शौरि—संज्ञा स्त्री० दे० "शौर" । व०—तनु अनुहरत सुचंदन शौरी । श्यामलगर मनोहर जोरी ।—तुलसी ।

शौरिणी—संज्ञा स्त्री० [हि० खेपण] खेपण्नी । [दे०] (सोनारों की बोली में) राल ।

मुहा०—शौरी करना = राल में मिला देना । राल के रूप में कर देना । सोने या चांदी को राल कर देना ।

शौरा—संज्ञा पुं० [दे०] बैब या सार्ज की डकार वा बोली ।

शौलना—क्रि० अ० [सं० शूल] (किसी सरल पदार्थ का) उबलना । जोरा खाना । शयंत गरम होना ।

मुहा०—मिठाऊ या दिमाग शौलना = बहुत अधिक क्रोध वा आवेश खाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

शौलाना—क्रि० सं० [हि० शौलना] उबालना । गरम करना ।

शौहदा—वि० दे० "शौदा" ।

शौहा—वि० [हि० शना] (१) बहुत अधिक खानेवाला । जिसकी खुराक बहुत ज्यादा हो । (२) जिसको खाने की लालच बहुत अधिक हो । (३) दूसरे की कमाई खानेवाला । जो दूसरे की कमाई पर अपना जीवन व्यतीत करे ।

श्यात—वि० [सं०] प्रसिद्ध । सिद्धि । मयाहूर ।

श्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसिद्धि । शोहरत । नामवती ।

क्रि० प्र०—बैठना ।—होना ।

श्याल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० श्वकी] (१) ध्यान ।

मुहा०—श्याल करना = धोचना । याद करना । श्याल पढ़ना = ध्यान में खाना । याद खाना । श्याल पर चढ़ना = दे० "श्याल पढ़ना" । श्याल में खाना = समक में खाना । श्याल रखना = ध्यान रखना । देखते मालते रहना । याद रखना । स्मरण रखना । श्याल रहना = याद रहना । श्याल से उतरना या

उतर जाना = भूल जाना । विस्मृत हो जाना । किसी के श्याल पढ़ना = किसी के पीछे पढ़ना । किसी को दिक् करने पर उतराक देना । व०—राधा मन में यह विचारति । ये सब मेरे श्याल परी हैं अथवा यातन हैं निरुधारति ।—सूर ।

(२) अनुमान । शंदाज्ञ । अटकल । जैसे—हमारा श्याल है कि यह यहाँ नहीं थायेगा ।

मुहा०—श्याल बांधना = अनुमान लगाना । कहना करना ।

(३) विचार । भाव । सम्मति । जैसे, उनके बारे में आपका क्या श्याल है । (४) धादर । लिहाज़ ।

मुहा०—श्याल करना = रियायत करना । श्याल में खाना =

(१) रियायत करना । (२) महत्वपूर्ण सम्मना । श्याल रखना = (१) लिहाज़ रखना । (२) कृपादृष्टि रखना ।

(४) एक विशेष प्रकार का गान जिसमें केवल एक स्थायी पद और एक श्रंतरा होता है तथा अधिकतर श्रंगार रस का वर्णन रहता है । यह अनेक राग रागिनियों का होता है और तिलवाड़ा ताल पर गाया जाता जाता है । जैसे, श्याल केदारा, श्याल बेस, श्याल जैतथी, श्याल सिंदूरिया, आदि ।

(६) लावनी गाने का एक ङंठ ।

† संज्ञा पुं० [हि० शैल] खेल । झोंड़ा । हँसी । दिहगी । व०—(क) यह मुनि एकमिनि भई येहाल । जानि परयो नहीं हरि को श्याल ।—सूर । (ख) कंत वीसजोचन विलोकिये सुमंत फल श्याल लंका लाई कपि रांड की सी भेपण्डी ।—तुलसी ।

श्याली—वि० [हि० श्याल] (१) कविपत । पूर्ण । अनुमित ।

मुहा०—श्याली पुलाव पकाना = असंभव बातें सोचना । मनोरंज्य करना ।

(२) खूबती । सतकी । बहनी ।

वि० [हि० शैल] किसी प्रकार का खेल या कौतुक करनेवाला । व०—श्याली कपाली है श्याली चहूँ दिसि मंग के टाटिन को परदा है ।—तुलसी ।

श्यालान—संज्ञा पुं० [हि० शैल] ईसाई । क्रिस्तान ।

श्यालीय—वि० [सं० श्याल] (१) ईसाई । (२) ईसासंबंधी । ईसाई धर्मसंबंधी ।

श्याल—संज्ञा पुं० [सं० श्याल] [वि० श्यालीय] दूरत ईसामसीह ।

श्याल—संज्ञा स्त्री० = श्यालिय ।

श्याल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मालिक । (२) सरदार । (३) कोई प्रसिद्ध पुरुष । (४) बाग़ व्यापारी । (५) ऊँचे दर्जे का सुमलमान पन्धरी । (६) रनिवास का गर्वुसक श्रव्य । एवाज-सरा । श्याल ।

श्याल—संज्ञा पुं० [सं०] शाल । परत ।

श्याल—श्यालपत्र = वह कपड़ा जिससे पकवान, मिठाई आदि से भर खान को ढका देते हैं ।

खान्वा-संज्ञा पुं० [फा०] एक बड़ी धाली जिसमें मिठाई पकाना आदि घेचने के लिये रखते हैं। दे० 'खान्वा'।

खवाब-संज्ञा पुं० [फा०] (१) सेने की अवस्था। नींद। (२) स्वप्न।

धी०—खवाबगाह = सेने का घर। शयनागार।

मुहा०—खवाब होना या हो जाना = स्वप्नदेय होना। स्वप्न में वीर्यपात हो जाना।

खवार-वि० [फा०] (१) खरार। घबराव। नष्ट। सत्यानाश। (२) श्रानाहत। तिरस्कृत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ख्यारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) बर्बादी। खराबी। नष्टता। अष्टता। (२) श्रानादर। तिरस्कार। बेहूज्जती। अपमान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ख्यास्तगार-संज्ञा पुं० [फा०] [भाव० ख्यास्तगारी] चाहनेवाला। इच्छा करनेवाला।

ख्याह-अर्थ० [फा०] या। अथवा। या तो।

धी०—ख्याह-म-ख्याह = (१) चाहे कोई चाहे या न चाहे अपनी देक से। ज़रदती। (२) ज़रूर। अवश्य।

ख्याहाँ-वि० [फा०] (१) इच्छा रखनेवाला। इच्छुक। (२) चाहनेवाला। अनुरागी। प्रेमी।

ख्याहिश-संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० ख्याहिशमंद] इच्छा अभिलाषा। आकांक्षा।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

ख्याहिशमंद-वि० [फा०] ख्याहिश रखनेवाला। इच्छुक। आकांक्षी।

ख्वैतर-संज्ञा पुं० [देग०] गोफना। डेलवास। (खरा०)

—:—

ग

ग-व्यंजन के स्पर्श-त्रिक में कवर्ग का तीसरा वर्ण। इसका उच्चारण खान कंठ है और शिष्वा में यह "क" का गंभीर संस्पृष्ट रूप माना गया है। इसका प्रयत्न अघोष अल्पप्राण्य है।

गंगा-संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा] (१) एक मासिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ६ मात्राएँ होती हैं। श्रंत में दो गुरु होना आवश्यक है। उ०—राम भजै रे। काम तजै रे। नित याहि कीजे। सव छाड़ि दीजे। (२) एक कवि का नाम जो अकचर के समय में था।

संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] गंगा नदी।

विशेष—समास में समस्त पद के आदि में गंगा का कभी कभी गंग हो जाता है। जैसे, गंगदत्त, गंगदास, गंगजल इत्यादि।

गंगाई-संज्ञा स्त्री० [अयु० गंगे] मैना की जाति की एक चिड़िया। यह ग्यारह इंच लंबी और गहरे भूरे रंग की होती है। यह भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में होती है और खेतों, मैदानों और जंगलों में छोटे छोटे झुंडों में फिरती है। इसके अंडा देने का कोई नियम समय नहीं है। यह झाड़ू में घोंसला बनाती है और चार अंडे देती है। यह बहुत बोलती है। गलगलिया।

गंगकुरिया-संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा + कुर] एक प्रकार हल्दी जो फटक में होती है। इसकी गाँठें लंबी और घड़ी होती हैं।

गंगतिरिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० गंगा + तीर] एक पौधा जो सजल भूमि में होता है और जिसकी पत्तियाँ बड़ी नोनिया की पत्तियों के समान तिर पर मुकीली होती हैं। इसमें पीपल

के समान बाल निकलती है। वैद्यक में यह शीतल, रूही, कड़ु, नेत्र और हृदय को हितकारी, शुक्रजनक, मलरोधक तथा दाह और वृष्य को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसे पनिसिंगा और जलपीपर भी कहते हैं।

गंगबारा-संज्ञा पुं० [हिं० गंगा + बारा = बारा या ऊपर का बूझ] वह जमीन जो गंगा या किसी और नदी की धारा या बाढ़ के हटने से निकल आती है और जिस पर उस नदी के द्वारा लाई हुई मिट्टी जमी रहती है।

गंगरी-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की कपास जिसे बनी भी कहते हैं। इसकी पत्तियाँ चौड़ी और बड़ी तथा रेठे पतले और नरम होते हैं। फूल के नीचे की कमरली पत्तियाँ बड़ी और बैंगनी रंग की होती है। इसे विदार में जेठी, धंगल में भोगला, बरार में टिकड़ी, जुड़ी आदि कहते हैं।

गंगला-संज्ञा पुं० [हिं० गंगल] एक प्रकार का शलगम जो गंगा के किनारे होता है। यह आकार में बड़ा और अच्छा होता है।

गंगवा-संज्ञा पुं० [देग०] एक पेड़ का नाम जो दक्षिण में समुद्र के किनारे तथा बर्मा, अंडमन और लंका में होता है। यह सदायदार होता है। इससे सफ़ेद रंग का दूध निकलता है जो हवाबुलबाने से अम जाता है और काले रंग का होता है। तामा दूध बहुत खटा होता है और लोगों का विश्वास है कि जहरीला होता है। इसकी लकड़ी दियासलाई आदि बनाने के काम में आती है। इसे कडुवा फल या कडुवा पल भी कहते हैं।

गंगादिक्स्त—संज्ञा पुं० [हिं० गंगा + क्त = क्तञ्ङा हुञ्ङा] यह धूमिल जिते बेराई नदी काठ ले गई हो ।

गंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारतवर्ष की एक प्रधान नदी जो हिमालय से निकल कर १२६० मील पूर्ये को बह कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है । इसका जल श्रव्यंत स्वच्छ और पवित्र होता है और इसमें कभी कीड़े नहीं पड़ते । हिंदू इस नदी को पवित्र मानते हैं और उसमें स्नान करना पुण्य समझते हैं । पुराणों में इसे हिमालय की पुत्री माना है और इसकी माता का नाम मनोरमा लिखा है जो सुमेरु की कन्या थी । कहते हैं कि गंगा पहले स्वर्ग में थी । जय सगर के साठ हजार पुत्रों को कपिल जी ने भस्म कर डाला तब वनके उदार के लिये भगीरथ गंगा जी को स्वर्ग से पृथिवी पर लाए । गंगा जब स्वर्ग से गिरी थी तब उन्हें शिवजी ने अपनी जटा में धारण किया था । इसी से शिवजी की जटा में गंगा मानी जाती है । पृथिवी पर गिरने पर गंगा भगीरथ के साथ गंगासागर को जहाँ कपिलजी ने सगर के पुत्रों को भस्म किया था, जा रही थी कि इसी बीच में जहूँ धूपि ने उन्हें पी लिया और भगीरथ की बड़ी प्रार्थना पर उन्हें अपने जलु से निकाला । इसी से गंगा का नाम जहूँसुता धादि पड़ा । पुराणानुसार गंगा की तीन धाराएँ हैं एक स्वर्ग में जिते 'शारदा गंगा' कहते हैं, दूसरी पृथिवी पर और तीसरी पाताल में । यह नदी गंगोत्तरी की पहाड़ी से, जो १३८०० फुट ऊँची है, बर्फ के पिघलने से निकलती है और मंडाकिनी और अलकनंदा से मिल कर हरिद्वार के पास पथरीले मैदान में बहती है । यमुना, गोमती, पाचर, यानगंगा, गंडक धादि नदियाँ इसमें गिरती हैं । हिंदूओं के प्रधान तीर्थ काशी, प्रयाग धादि इसी के किनारे हैं ।

दी०—गंगाधर । गंगाजल । गंगापुत्र ।

मुहा०—गंगा उठाना = गंगा जल उठा कर शय्य खाना । गंगा की शय्य करना । गंगा पार करना = देहा से निकालना । गंगा नहाना = हृत्पार्य होना । छुट्टी पाना । उ०—तुम यहाँ से जायो तो हम गंगा नहायें । गंगा बुझाएँ = गंगा की शय्य ।

पर्या०—बन्धुपदी । जाहूँवी । भागीरथी । विपयगा । सुर-निक्षत्रा । त्रिमोता । स्वरापगा । सुरापगा । अलकनंदा । मंदाकिनी । सुरनदी । शय्यगा ।

गंगाचिह्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जलपक्षी जिह्वाका सिर काले रंग का होता है ।

पर्या०—देवती । विषका । जलकुण्डुटी ।

गंगाजमुनी—वि० [हिं० गंगा + जमुना] (१) मिला जुला । संकर । दो-रंगा । (२) सोने चाँदी, पीतल ताम्र आदि दो धातुओं का बना हुआ । सुनखले स्पष्टले सारों का बना हुआ । जिस पर सोने चाँदी दोनों का काम हो । (३) फलता उजला । स्वाद सफ़ेद । अयलक ।

गंगा स्त्री० (१) कान का एक गहना । (२) क्रेन्टी दाल । वह दाल जिसमें अरहर और उर्द की दाल मिकी हो । (३) जुरतारी का पेशा काम जिसमें सुनहले और स्पष्टले दोनों रंग के तार हो ।

गंगाजल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंगा का पानी । (२) एक कपड़े का नाम जो बारीक और सफ़ेद रंग का होता है । पश्चिम में लोग इसकी पगड़ी बाँधते हैं । उ०—गंगाजल की पाग सिर सोहत थी रघुनाथ । शिव सिर गंगाजल कियौ चंद्र चंद्रिका साथ ।—देव्याव ।

गंगाजली—संज्ञा स्त्री० [सं० गंगाजल] (१) कर्च वा धातु की बनी हुई सुराही या शशी जिसमें बाती गंगाजल भर कर ले जाते हैं ।

मुहा०—गंगाजली उठाना = गंगाजली हाथ में लेकर शय्य खाना । गंगा की कुलम खाना ।

(२) धातु की सुराही जिसमें पीने के लिये पानी रखा जाता है ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार की रोहूँ जो भूरे रंग की और कड़ी होती है ।

गंगाजाल—संज्ञा पुं० [सं० गंगा + जाल] बंगाल के मड़वाहों का जाल जो रीहा पास से बनता है ।

गंगाद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] हरिद्वार ।

गंगाधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । महादेव । (२) एक शीपथ का नाम जो नागमोषा मोक्षस आदि के योग से बनती है और संग्रहणी रोग में दी जाती है । इसे गंगाधर इस भी कहते हैं । (३) चौबीस अक्षर का एक वर्ष्य बृच जिसके अत्येक चरण में ८ रण्य होते हैं । इसे गंगादक भी कहते हैं । दे० "गंगोदक" ।

गंगापथ—संज्ञा पुं० [सं०] प्राकार । (हिं०)

गंगापाट—संज्ञा पुं० [हिं० गंगा + पाट] एक भँरी जो घोड़े के तंग के नीचे होती है । यह भँरी यदि तंग से बाहर हो तो शुभ मानी जाती है अन्यथा तंग के नीचे पड़ने से अशुभ होती है ।

गंगापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भीम । (२) एक प्रकार के मालव्य जो गंगा धादि नदियों के किनारे के नगरों में रहते हैं और घाटों पर दान लेते हैं । (३) ब्रह्मवैवर्त के अनुसार एक वर्षसंकर जाति जो खेत पिता और तीवरी माता से पैदा हो । यथा लेटा तीव्र कन्यायां गंगातीरं च शौनक । बभूव सत्यो यो यावो गंगा-पुत्रः प्रकीर्तितः ।

गंगापूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विवाह के बाद की एक रीति जिसमें गाँव और कुड़ुँच की खियाँ पर को माथ लेकर गाँवी बजाती गाँव के बाहर नदी या तालाब पर जाती हैं और वहाँ गाँव के देवता धादि की पूजा करने पर लौट आती हैं । इसी दिन घर या घर के हाथ के कंगन छोले जाते हैं । इस दिन विवाह का

द्वय समाप्त होता है। इस रीति को कंगन छोड़ना वा धरन वाट भी कहते हैं।

गंगायात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मरणासन्न मनुष्य का गंगा के तट पर मरने के लिये गमन।

गंगाराम—संज्ञा पुं० [हि० गंगा + राम] तोते का प्यार का नाम।

गंगाल—संज्ञा पुं० [सं० गंगा + अल्प] पानी रखने का बड़ा धरतन। कंडाल।

गंगाला—संज्ञा पुं० [सं० गंगा + अल्प] वह भूमि जहाँ तक गंगा का बहाव पहुँचता है। कडार।

गंगालाम—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा की प्राप्ति। मृत्यु।

मुद्गा—गंगालाम होना = (१) गंगा के किनारे पर मरना। मुक होना। (२) डूब कर मरना। मरना।

गंगासागर—संज्ञा पुं० [हि० गंगा + सागर] (१) एक तीर्थ जो उस स्थान पर है जहाँ गंगा समुद्र में गिरती है। कहते हैं कि यहाँ कपिल मुनि का आश्रम था और यहाँ सागर के पुत्रों को इन्होंने भस्म किया था। यह स्थान कलकत्ते से दक्षिण-पूर्व मुद्रव्यन में है जहाँ मकर की संक्रांति के दिन बड़ा मेला लगता है। (२) मोटे कपड़े की छुरी हुई जूनानी घेती जो सत्रह अठारह हाथ लंबी होती है। (३) एक प्रकार की बड़ी देदीदार रानी जो हाथ धुलाने के काम आती है।

गंगासुत—संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म।

गंगेटी—संज्ञा स्त्री० [सं० गंगेटी] एक वृद्धि जो दूबा के काम में आती है। यह फोड़े को गलाती और मल मूत्र काती है।

गंगेरन—संज्ञा स्त्री० [सं० गंगेरनी] एक प्रकार का पौधा जो श्रीपथ-शास्त्र में चतुर्विधिवला के अंतर्गत माना जाता है और सह-देहे के वीधे के समान होता है। सहदेहे से इस में भेद यह है कि इसके पत्ते अधिक मोटे और दो अनीवाले होते हैं। फूल गुलाबी होते हैं और फल भी कुछ बड़े होते हैं। फल में विरोधता यह है कि पकने पर उसके पंच भाग हो जाते हैं। गंगेरन के गुण भी वैद्यक में उषधियात वा खिरौंटी के से माने जाते हैं। यह मूत्रकृच्छ्र, चत और पीथ रोग, हजली, कुष्ठ आदि में दी जाती है। गंगेरन दो प्रकार की होती है। एक छोटी, दूसरी बड़ी। बड़ी गंगेरन भी शम्ब, मजुर, त्रिदोष-नाशक तथा दाह और ज्वर को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसे गुलशकरी भी कहते हैं।

पर्व्या—नागवला। गंगेरनी। रूपा। ज्वलावेयुका। खरगंधिनी। गोरखचंडुला। भद्रादीनी। चतुःपला। खरवहिरिका। महाद्वया। महापत्रा। विश्वदेवी। प्रतिष्ठा। देवदांड।

गंगेहवा—संज्ञा पुं० [गंगेहक] एक पहाड़ी पेड़ जिसके फल आंबले की तरह छोटे छोटे होते हैं। पत्तियों की पंक्ति सीकें में लगी होती है। वैद्यक में इस पेड़ का फल कफ-प्रात-नाशक,

पित्तकारक, भारी, गरम और स्निग्ध माना जाता है। फल दो प्रकार के होते हैं, सहे और सीडे।

गंगेरु—संज्ञा स्त्री० दे० "गंगेरन"।

गंगेश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

गंगोत्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गंगावतार] गङ्गाल में हिमालय पर्वत पर एक स्थान जहाँ गंगा ऊपर से गिरती है। यह हिंदुओं का एक प्रधान तीर्थ है और यहाँ गंगा देवी का एक मंदिर बना हुआ है।

गंगोदक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंगाजल। (२) चौबीस अक्षर का एक वर्ष्य वृत्त जिस में आठ रण्य होते हैं। इसे गंगाधर, खनन आदि भी कहते हैं। यह यथार्थ में सविष्णु वृद्ध का दूना है। उ०—जन्म मीता तवै, चेत मीता श्रवै, कीजिए का तवै, काल ले भान कै। मुं दमाला गरै, सीस गंगा धरै, आठ यामे हरै, प्याह लै गान कै।

गंगोल—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेदक नामक मणि। उ०—गंधक गुआफल गंगोला। गोपी चंद्रन लुटेड धतौला।—सूदन।

गंगीटी—संज्ञा स्त्री० [हि० गंगा + तिष्ठ] गंगा के किनारे की बालू या मिट्टी।

गंगीलिया—संज्ञा पुं० [हि० गंगाल] एक प्रकार का खटा नीव। इसका छिन्नका शानेदार होता है।

गंज—संज्ञा पुं० [सं० कञ्ज वा कञ्ज] (१) एक रोग का नाम जिसमें सिर के बाल उड़ जाते हैं और फिर नहीं जमते। चाई। चंदलाई। खलवाट। बुर्का। (२) सिर का एक रोग जिस में सिर में छोटी छोटी जुनसियाँ निकलती रहती हैं और जवदी शच्छी नहीं होती। माइसोरा।

संज्ञा पुं० [फा० सं०] (१) खजाना। कोप। (२) डेर। खंवार। राशि। अटाला।

क्रि० प्र०—लगाना।

(३) समूह। कुंड। उ०—कै निदरहु कै आदरहु सिंहहि स्थान लियार। हरप विपारद न केसरिहि कुंजर गंज निहार।—मुलसी। (४) वह स्थान जहाँ शत्रु आदि रखा जाय। गज्जालाना। खंवारखाना। फोटी। भंडार। (५) गल्ले की मंडी। गोला। हाट। बाजार।

मुद्गा—गंज डालना = बाजार लगाना। मंडी आवाद करना।

(६) वह धावादी जिसमें बलिये बसाए जाते हैं और बाजार लगता है। जैसे, रायगंज, पहाड़गंज। (७) मधुपत्र। (८) महिराजप। कलवरिया। (९) वह चीज जिसमें बहुत सी काम की चीजें एक साथ एकत्र हों। जैसे, एक धरतन जो गगरे के आकार का होता है और जिसमें रसोई बनाने के बहुत से बर्तन होते हैं गंज कहलाता है। इसी प्रकार यह चाहू जिसमें चाहू, कैंची, मोचने आदि बहुत सी चीजें हो हैं गंज कहलाता है।

संज्ञा पुं० [सं०] अथवा । तिरस्कार ।

संज्ञा स्त्री० [दे०] एक मोटी लता जिसमें नीचे की धोर लुकी हुई टहनियाँ निकलती हैं । इसकी पत्तियाँ सीक्री में झुकी हैं और ४ से ८ इंच तक लंबी, सिरि की धोर चौड़ी, दुबदार और चिकनी होती हैं । इसमें पाँच सात इंच लंबी, एक इंच मोटी फलियाँ लगती हैं जिन पर रोड़े होते हैं । टहनियों से रेशा निकलता है और पत्तियों चौपायों को रिलताई जाती हैं । यह लता जंगल के पेड़ों को बहुत हानि पहुँचाती है और देहरादून से लेकर गोरखपुर और बुंदेलखंड तक पाई जाती है । इसे गोंज भी कहते हैं ।

गंजगोला—संज्ञा पुं० [हिं० गंज + गोला] तंग का वह गोला जिसके भीतर बहुत सी छोटी छोटी गोतियाँ मरी रहती हैं । (लघु०)

गंजन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अथवा । तिरस्कार । ४०—(क) रस सिंगार गंजन किये, कंजन गंजन दें । गंजन रंजन हूँ बिना खंजन गंजन नैन ।—विहारी । (ख) काली विष गंजन दूह भाये ।—सूर । (ग) पुण्यात्मा सुख से, वे पापी सब नाना गंजन से जाते हैं ।—सद्वलमिश्र । (२) संगीत में छंद ताब के छंद भेदों में से एक ।

गंजना—कि० व० [सं० गंज] (१) अथवा करना । निरादर करना । (२) घूर घूर करना । मार करना । ४०—(क) राम कामभर कर धनु भंजा । भ्रूपति सहित भूपन मद गंजा ।—विश्राम । (ख) जुरे सुद कर तेग लै पंचम के असवार । गंजि गये गरीबीन के करे अरिन पर बार ।—जाज ।

गंजनी—संज्ञा स्त्री० [?] एक घास जो सुगंध बनाने के काम में आती है । इसकी महक नीच से मिलती सुलती होती है ।

गंजा—संज्ञा पुं० [सं० राज का कज] गंज रोग । दे० "गंज" ।
वि० [श्री० गंजी] जिसके गंज रोग हो गया हो । जिसके सिर के बाल झड़ गए हों ।

गंजिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गंजिका वा फा० गंज] (१) मूल की बुनी हुई रस्पा रखने की जालीदार ढली । (२) यह जाल की ढली जिसमें पसियारे पास रखते हैं । खारी । बसुली । गंजा । (३) मिट्टी का बना हुआ एक धरतन जिसका मुँह तंग होता है । यह दबकी की तरह चिपटा होता है । पहले इसमें शराब रखते थे ।

गंजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंज] (१) डेर । समूह । गंज । जैसे, घास की गंजी । अन्न की गंजी । (२) कंदा । शकर कंद ।
संज्ञा स्त्री० [सं० गुरलेडी = एक दारू] बुनी हुई छोटी कुन्ती या बंदी जो बदन में चिपकी रहती है । बनीयावन ।

गंजीफा—संज्ञा पुं० [फा०] एक लंबे जो घाट रंग के ३६ पत्तों से रेशा जाता है । पत्तों के धाकार गोले होते हैं और रंग साज । ये पत्ते कड़े होते हैं और फेंकने से सुझने नहीं हैं । रंगों के नाम चंग, धात, किमास, रामसेर आदि हैं ।

प्रत्येक रंग के १२, १२ पत्ते होते हैं । इस खेज के गीन आदमी खेतते हैं ।

गंजिहो—वि० [हिं० गंजा + पड़ी (प्रय०)] गंजा पनीवाला ।

गंजम—संज्ञा पुं० [?] जोड़े की कुलम जिससे ताड़ पत्र पर लिखते थे ।

गंडकटा—संज्ञा पुं० [हिं० गंड + कटाना] गंड में बंधे हुए रूप्य पैसे को काट लेनेवाला । गिरहकट । उचका ।

गंडजाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गंड + जेढ़ना] गंड्यघन । ४०—जनक स्वयंवर धर धनु तोरा । सत्य विवाहि करयो गंडजोरा ।—गोपाल ।

गंडयंघन—संज्ञा पुं० [हिं० गंड + यंघन] विवाह की एक रीति जिसमें घर और घर के वरक को परस्पर बंध देते हैं । इस अवस्था में दोनों कुछ पूजा आदि करते हैं । यह संस्कार विवाह के बोधे दिन या किसी और दूसरे दिन अच्छी साइत देल कर होता है ।

गंडयन—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रंथिपर्था] ग्रंथिपर्था । दे० "गठियन" ।

गंडुआ—संज्ञा पुं० [हिं० गंड] ताने या बाने के दूटे हुए तारों को अथवा नई पाई के तारों को पुराने उत्तरे हुए कपड़े के तारों से जोड़ना । (लुलाहा)

गंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपोल । गाल । (२) कनपटी । (३) ज्योतिष के अनुसार ज्येष्ठ, श्लेषा और रेवती के श्रत के पांच दंड और मूल, मघा और अश्विनी के आदि के तीन दंड । इनमें उत्पन्न होनेवाले लडके को दूतित मानते हैं । लोग का विश्वास है कि गंड में उत्पन्न लडके का मुँह पिता को नहीं देखना चाहिए । दिन में ज्येष्ठ और मूल का गंड, रात में श्लेषा और मघा का गंड तथा सायंकाल, प्रातःकाल रेवती और अश्विनी का गंड अधिक दोषकारक माना जाता है और इनमें उत्पन्न लडके क्रम से पिता, माता और अपनी धातक माना गया है । (४) गंडा जो गले में पहना जाता है । (५) फोपा । (६) चिड़ । खकीर । दूत । (७) गोले मंडलाकार चिड़ या खकीर । गाराडी । गंडा । (८) गंड । (९) गेंदा । (१०) धीपी नामक नाटक का एक श्रेण जियमें सहसा प्रभोत्तर होते हैं ।

गंडक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गले के पहनने का जंतर या गंडा । (२) वह देश जहाँ गंडकी नदी बहती है तथा यहाँ के निवासी । (३) गंड । (४) एक रोग जिसमें बहुत से फेड़े निकलते हैं । (५) गंजा । (६) चिड़ ।
संज्ञा स्त्री० दे० "गंडकी" ।

गंडका—संज्ञा स्त्री० [सं०] यौस यषों का एक वृक्ष जिसे वृक्ष और दंडिका भी कहते हैं ।

गंडकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो नैपाल में हिमालय से निकलती है और बहुत सी छोटी नदियों को खेती हुई पटने के पास गंगा में गिरती है । इसमें काले रंग के गोत्र

गंधिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

गंधियाँ-संज्ञा पुं० दे० "गंधू" ।

गंडीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साग जिसे गिँदनी भी कहते हैं । वैद्यक में यह कफनाशक माना जाता है । (२) पोई का साग । (३) सेहूँड़ ।

गंडीरी-संज्ञा स्त्री० दे० "गंधीर" ।

गंडुपद-संज्ञा पुं० [सं०] फीलपात्र रोग ।

गंडू-संज्ञा पुं० दे० "गंधू" ।

गंडूक-संज्ञा पुं० दे० "गंडूप" ।

गंडूपद-संज्ञा पुं० [सं०] केंचुआ ।

घौं—गंडूपदभव ।

गंडूपदभव-संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु । (दि०)

विशेष—संभव है कि प्राचीनों का यह विश्वास रहा हो कि केंचुप से 'सीसा' निकलता है जैसे धव तक बहुत से लोगों की धारणा है कि मोर के पंख से लोहा निकलता है ।

गंडूप-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गंडूपा] (१) चुल्हा । हथेली का गड्ढा । (२) कुल्ही । (३) हाथी की सूँड़ की नाक ।

गंडेरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कण्ठ का गण्ड । (१) ईश्वर या गन्धे का छोटा टुकड़ा जो चूल्हे या कौल्ह में सेते के लिये काटा जाता है । (२) छोटा लंबोत्ता टुकड़ा ।

घौं—गंडेरी का लड्डू = एक मिठाई जो गुँधे हुए भेद के छोटे छोटे टुकड़ों के घी में छाल और चायनी में मिला कर लड्डू की तरह बंधने से बनी है ।

गंडोरा-संज्ञा पुं० [सं०] गंडोल = ईश्वर का पुत्र । हरा कथा खगल ।

गंडोल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुड़ । कच्ची राख । (२) ईश्वर । (३) मास । कौर ।

गंता-संज्ञा पुं० [सं०] गन्ध [स्त्री० गंधी] जानेबाला । व०—अघट घटना सुघट विघट विघटन विघट भूमि पाताल जल गगन गंता ।—तुलसी ।

विशेष—इसका प्रयोग विशेष करके समस्त पद के अंत में होता है । जैसे, धारमंता ।

गंदगी-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) मैलापन । मलिनता । (२) अप-विप्रेता । अशुद्धता । नापाकी ।

दि० प्र०—करना ।—कैलना ।—मैलाना ।—होना ।

(३) मैल । गुलीज़ । मल ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] गंध] दुर्गंध । बदरू ।

गंदना-संज्ञा पुं० [सं०] गंधन, वा फा०] (१) लहसुन प्याज़ की तरह का एक मसाला जो सरकारी धादि में ढाला जाता है । (२) एक घास जो लहसुन की गाँठ में जी ढाल कर घोंसे से बंधपं होती है । यह घटनी धादि के लिये काम धाती है । इसे दंडना भी कहते हैं ।

गंदम-संज्ञा पुं० [देग०] [स्त्री० गंदमी] एक पत्ती जो मास सादे सात इंच लंबा होता है और अन्न के अनुसार रंग बदलता है । जाड़े के महीने में यह पंजाब और संयुक्तप्रान्त में दिखाई पड़ता है । यह सुँड़ में रहता है, और छोटी फाड़ियों में घास पूस से प्याले के धाकार का घासला बनाता है ।

गंदला-वि० [हिं०] गंध + ला (प्रथ०)] गंधा । मैला कुँबेला । मलिन । व०—तालाब का पानी गंदला हो गया ।

गंदा-वि० [फ्रा०] [स्त्री० गंदी] (१) मैला । मलिन । व०—बरसात में नदियों का पानी गंदा हो जाता है । (२) नापाक । अशुद्ध । व०—एक मद्यकी सारे तालाब को गंदा करनी है । (३) विनोता । धृषित । व०—तुम्हारी गंदी धादन नहीं जाती ।

घौं—गंदादहन । गंदापानी ।

मुहा०—गंदा करना = (१) खराब करना । भ्रष्ट करना । (२) दागी करना । दाग लागाना । कलंकित करना ।

गंदादहन-वि० [फ्रा०] जिसके मुँह से दुर्गंध आती हो ।

गंदापानी-संज्ञा पुं० [फ्रा०] गंदा + पानी] (१) मद्य । शराब । (२) वीर्य । घातु । (बाजारी)

मुहा०—गंदा पानी निकालना = संभोग करना । अश्लील स्त्री से मैयुन करना ।

गंदाभगल-संज्ञा पुं० [हिं०] गंदा + भगल] यह घोड़ा जिसके दोनों बगल दो भैंरियाँ हों ।

गँदीला-संज्ञा पुं० [सं०] गंध] एक धास जो काकी मिट्टी में तथा ऊसर और तर भूमि में बजनी है ।

विशेष—दे० गंधिया ।

गंदुम-संज्ञा पुं० [फ्रा०] सं० गेहूँ] [वि० गंदुमी] गेहूँ ।

गंदुमी-वि० [फ्रा०] गंदुम] गेहूँ के रंग का । गेहूँयाँ । ललाई लिय हुए भूरा । जैसे, गंदुमी रंग ।

गँदोलना-वि० [फ्रा०] गंदा] गंदा करना । गँदला करना । तालाब धादि के पानी को मद्य कर मर्दमीला करना ।

गंध-संज्ञा स्त्री० [सं०] गन्ध] (१) घास । महक । स्वाय वा वैशेषिक में गंध को पृथिवी का गुण और प्राण वा नासिका का विषय कहा है । यद्यपि साधारण भेद दो हैं—सुगंध और दुर्गंध, पर शास्त्रकारों ने इनके प्रधान दस भेद किए हैं । (क) दूध, जैसी कस्तूरी धादि की । (ख) अतिष्ठ जैसी सुदें धादि की । (ग) मद्युर, जैसी मधु, फूल धादि की । (घ) अम्ल, जैसी आम, थांवेले धादि की । (च) कटु, जैसी मिर्च धादि की । (ङ) तिहरी, जैसी होंग धादि में । (ज) संहत, जैसी चिन्तमंध की । (झ) स्निग्ध, जैसी घी की । (ट) रज, जैसे सरसों, राई धादि की । (ड) विराद, जैसे थावल धादि की । (७) मरिच । मसूर ।

- विशेष—इसे लोगों ने ५ प्रकार की मांगा है। (१) चूर्णीकृत।
 (२) गूदा। (३) दाहाकवित्त। (४) सम्मर्दन और (५) प्राण्यगोद्भव।
 (३) सुगंधित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाय। जैसे, चंदन आदि का लेप। (४) खोरा। छालुमात्र। संस्कार। संवंध। उ०—(क) उसमें भलमंसाहत की गंध भी नहीं है। (ख) जेहि धंध जाकर मन यस्ये सपने सुक सो गंध। तेहि कारन तपसी तप सापदि करहि प्रेम विगत धंध।—जापसी।
 (४) गंधक। (६) शोभाजन। सद्गुणन।

गंधक—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० गंधकी] एक खनिज पदार्थ। इसे वैद्यक में उपधातु माना है। यह धाती और बिना स्वाद की और ज्वालामुखिणी होती है। इसकी कलमें चमकदार होती है। और इसे किसने या गरम करने से इसमें से एक प्रकार की धमका तीव्र गंध निकलती है। यह ज्वालामुखी पर्वतों से निकले पदार्थों में प्रायः मिलता है। धातुओं के साथ भी यह लगी मिलती है। गंधक पानी, धलजोहल और ईंधन में नहीं घुलती पर द्विगंधित कार्बन, मिट्टी के तेल और योजन में सुगमता से घुल जाती है। आग में जलाने से इसमें से नीली रंग की धाँ निकलती है। यह २३८ दूजों की आंच में पिघलती है और २२४ दूजों की आंच में उबलने लगती है। उबलने के समय इसमें से लाल रंग का धना भाग निकलता है। आइसलैंड के ज्वालामुखी पर्वतों के पास यह शुद्ध रूप में मिलती है पर सिल्वरी में यह नीली मिट्टी के साथ मिली हुई पाई जाती है। साफ करने के लिये एक गिळी हुई मिट्टी के एक गड्डे में आग के ऊपर रख कर ऊपर से मिट्टी डाल देते हैं। इस से गंधक जलने लगती है और दिव्य टिघल कर नीचे गड्डे में जमा होती जाती है। इसे हिंदुस्तान में फिर साफ करके बतियों के रूप में बनाते हैं। ये बतियाँ वाज़ार में शिमस्टोन या गंधक की बतियाँ कहलाती हैं। गंधक प्रायः लोहा, ताँबे आदि धातुओं और कभी कभी पत्थर, पत्थी और चनसतियों में भी मिलती है। इसमें रख भी कड़ा करते हैं। चर्मरोग में यह लगाई और लिखाई जाती है। वैद्यक के ग्रंथों के अनुसार गंधक चार प्रकार की होती है; सफ़ेद, लाल, पीली और नीली। पर लाल और सफ़ेद गंधक देखने में नहीं आती, पीली और नीली मिलती है। नीली को वृषिया, नीला घोषा आदि कहते हैं। गंधक शब्द से आज्ञ कल केवल पीली गंधक समझी जाती है। कुछ लोग हरताल को भी एक प्रकार की गंधक मानते हैं। वैद्य लोग खाने के लिये गंधक को शोधते हैं। शोधने के लिये इसकी छुक्की को धौलते घी में डालते हैं फिर जब घी में मिली गंधक खूप गरम हो जाती है तब उसे एक बर्तन में दूध रख कर धानते हैं जिससे गंधक धन कर नीचे

यैद जाती है। यह क्रिया तीन बार की जाती है। बाक़ लोग गंधक जला कर वातु शुद्ध करते हैं।

पथ्यो०—गंधारमा। गंधमोहन। पृतिगंध। शक्तिगंध। वर। सुगंध। दिव्यगंध। कीटव्य। ऋरुगंध। गंधी। गंधिक। पामागंध। रसगंधक। सौगंधिक। सुगंधिक। कुटारि। गौरीधोज। गंधकवट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक श्रौष्यक या गोली जो शुद्ध गंधक, चित्रक, मिर्च, पीपल आदि के योग से बनाई जाती है। यह गोली अजीर्ण, शूल, घामदोष, गोल आदि रोगों में दी जाती है।

गंधकालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सस्यवती। योजनगंधा।
गंधकाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सस्यवती। योजनगंधा।
गंधकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] अगद। अगद की लकड़ी।
गंधकी—वि० [गन्धक] गंधक के रंग का। हलका पीला।
 संज्ञा पुं० एक रंग जो कुछ सफ़ेदी लिए पीला होता है। यह रंग अस्वर्ण से निकाला जाता है और छूट छापने तथा सूती और रेयमी कपड़े रँगने में काम आता है।
गंधकी तेजाव—संज्ञा पुं० [हिं० गंधकी + तेजाव] गंधक का तेजाव।
गंधकुट्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी देवालय के चतुर्गते वर कमरा या दालान जिसमें बहुत सी देवमूर्तियाँ रखी हैं।
गंधकोकिल—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंधित वस्तु। सुगंध कोकिल।
गंधगात—संज्ञा पुं० [सं०] गंधगाय। चंदन। (डि००)
गंधजात—संज्ञा पुं० [सं०] तेजाव।
गंधप्राण—संज्ञा पुं० [सं०] गंध + प्राण। नीली चाय। ज्वररुग्ना नाम की चास जिसमें से नीचू की री गंध आती है।
गंधद—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।
गंधदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।
गंधन—संज्ञा पुं० दे० "गंधना"।
 संज्ञा पुं० [?] सोना। (सुनारों की बोली)
गंधनाकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नाकुली कंद जो साधारण नाकुली से अर्द्धा होता है। राला। गोदरसन।
गंधनाल—संज्ञा पुं० [हिं० गंध + नाल] नाक का छेद। मधुना। उ०—गंधनाल हुद राह एक सम राखिये। चढ़े सुखमना घाट अमीरस चाखिये।—कवीर।
गंधपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफ़ेद तुलसी। (२) मर्या। (३) नारंगी। (४) पेल।
गंधपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपर कपती।
गंधपथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।
गंधपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सस्यवती।
गंधपलाशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपर कचरी।
गंधपसार, **गंधपसारी**—संज्ञा स्त्री० दे० "गंधप्रसारिणी"।
गंधप्रस्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्राण्यद्विय। नाक।
गंधप्रसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता जिसकी पत्तियाँ डेढ़ इंच चौड़ी और दो इंच लंबी तथा चुकीली होती हैं।

पत्तियों के किनारे कटावदार होने हैं। इसकी गंध कटुई और धमदा होती है। वैद्यक में इसे गरम, भारी तथा बल और धीर्यवर्द्धक माना है। यह धातु-पित्त-नायक तथा टूटी हड्डियों को जोड़नेवाली है। खाने में कटुई चरपी होती है। इसका प्रयोग वैद्यक में स्वरमंज और घवासीर में भी लिया है। गंधवसारि। गंधवसार।

पर्याय—सारिवा। शारिवा। गोपी। उष्यन्नारिवा। भद्रवाडी। नागजिह्वा। करावा। भद्रवल्लिका। गोपवली। सुगंधा। भद्रश्यामा। शारदा। चापेयता। काष्ठारिवा। धवलशारिवा।

गंधप्रियंगु—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियंगु। फूलफेन।

गंधफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कैया। (२) खेल।

गंधफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रियंगु। (२) विदारी।

गंधफली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रियंगु। (२) चंग।

गंधबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] आम।

गंधबबूल—संज्ञा पुं० [सं० गंध + बबूल] बबूल की जाति का एक छोटा वृक्ष जिसके फूल विशेष सुगंधित होते हैं। यह अमेरिका से भारतवर्ष में लाया गया है और अत्र भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में मिलता है। इसे लोग खिलायती बबूल या कीकर कहते हैं। फ्रांस देश में इसके फूलों से इत्र निकाला जाता है और वहाँ इसकी खेती भी लोग बहुत करते हैं। हिंदुस्थान में भी इसके फूलों से तेज तैयार किया जाता है।

गंधविलाय—संज्ञा पुं० [सं०] नेबल की तरह का एक जंतु जो अफ्रिका में होता है। यह दोफुट लंबा और पीलावर्ण त्विष्ट रूप भूरे रंग का होता है। इसके सारे धनु में मटमले रंग के दाग पत्तियों में होते हैं। इसके बल्लके पास गिलडी होती है जिसमें पीले रंग का चेष होता है। हवरा में लोग इस जंतु को इसी चेष के लिये पाखते हैं। यह मांसभक्षी है। इसे कच्चा मांस दिया जाता है। सप्ताह में दो बार इसकी गिलडी से पीले चेष को निकालते हैं। एक गंधविलाय से अधिक से अधिक एक बार में एक ड्राम चेष निकलता है जो सुगंधित होता है और वैद्यिक औषध में काम आता है। इसे मुरकविलाय भी कहते हैं।

गंधधेन—संज्ञा पुं० [सं० गंधधेन] एक घास जो अरबत सुगंधित होती है। इसका तेज निकाला जाता है। रोहिप। रस्ता। सूरिण। सुरोस।

गंधमृग—संज्ञा पुं० [सं०] कलरुमृग।

गंधमाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मीरा। (२) एक यादव का नाम।

गंधमाजोर—संज्ञा पुं० [सं०] गंधविलाय।

गंधमादन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पर्वत का नाम। उराणा-सुसार पर्वत पर्वत इनाहूष और अदाष श्रेत के बीच में है।

(२) रामायण के अनुसार एक पर्वत। (३) मीरा। (४) एक सुगंधित द्रव्य।

गंधमादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मय। (२) लाल।

गंधमालती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंध द्रव्य।

गंधमासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयामासी।

गंधमुंड—संज्ञा पुं० [सं०] एक लता का नाम।

पर्याय—नेदी। तारपाकी। फलपाकी। पीतक। गर्दभांड। विप्रपाकी।

गंधमूली—संज्ञा स्त्री० [सं० गंध + मूल] कपूर कचरी।

गंधमृगिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छट्टेदार।

गंधरव—संज्ञा पुं० दे० "गंधर्व"।

गंधरविम—संज्ञा स्त्री० दे० "गंधविन"।

गंधरस—संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधसार।

गंधराज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोगरा बेला। (२) तल नामक सुगंध द्रव्य। (३) चंदन।

गंधराज-सुग्गुल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की धूप या गोंद। दे० "सुग्गुल"।

गंधराजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तल नामक सुगंधित द्रव्य।

गंधर्व—संज्ञा पुं० [सं०] [सं० स्त्री० गंधर्व, हिं० स्त्री० गंधर्विन] (१)

देवताओं का एक भेद। ये पुराण के अनुसार स्वर्ग में रहते हैं और वहाँ गाने का काम करते हैं। अग्निपुराण में गंधर्वों के न्याह गण्य माने गए हैं—। अश्रावण, संवारी, चंभारि, शूर्यवर्षा, छुपु, हल, सुहृद, स्वन, सूर्यन्वा, विश्वायसु, शुराणु। इन गंधर्वों में हाहा हूह, चित्ररथ, हंस, विश्वायसु, गोमायु, सुंदर, नंदि प्रधान माने गए हैं। वेदों में गंधर्व दो प्रकार के माने गए हैं—एक पृथ्वान के दूसरे अंतरिक्ष स्थान के। पृथ्वान के गंधर्वों को दिव्य गंधर्व भी कहते हैं। ये सोम के रथक, रोगों के चिकित्सक, सूर्य के अर्धों के याहक, तथा स्वर्गीय ज्ञान के प्रकाशक माने गए हैं। यम यमी के बन्धक भी गंधर्व ही कहे गए हैं। मध्यस्थान के गंधर्व नक्षत्र चक्र के प्रवर्तक और सोम के रथक माने गए हैं। इन्द्र इन से लड़कर सोम को छीनता और मनुष्यों को देता है। इनका स्वामी ब्रह्म है। पृथ्वान के गंधर्व से सूर्य, सूर्य की रश्मि तेज प्रकाश इत्यादि और मध्यस्थान के गंधर्व से मेघ, चंद्रमा, विद्युत् आदि निकल शस्त्र के आधार पर लिए जाते हैं क्योंकि 'गा' वा 'गो' का धाराय करनेवाला गंधर्व कहा जाता है, और 'गो' वा 'गो' से पृथिवी, वासी, किरण इत्यादि का ग्रहण होता है। इसके अतिरिक्त उगनिपदों और प्राण्य ग्रंथों में भी गंधर्वों के दो भेद मिलते हैं, देव गंधर्व और मनुष्य गंधर्व। कहीं कहीं गंधर्वों को राक्षस, पिशाचादि के समान एक प्रकार का भूत माना है।

पर्याय—विधापर।

(२) मृग। (३) घोड़ा। (४) वह आत्मा जिसने एक शरीर छोड़ कर दूसरा ग्रहण किया हो। प्रेत। (५) स्त्रियों की वह ब्यवस्था जब उनके स्वर में माधुर्य उत्पन्न होता है। (६) वैद्यक में एक प्रकार का मानसिक रोग जिसे ग्रह कहते हैं। इस रोग से ग्रस्त मनुष्य चाग, धन, नदी, कर्तों के किनारे घूमता है। गंध और माल्य उसे श्रद्धे लगते हैं। वह नाचता, गाता, हँसता और दूसरों से कम बोलता है। (७) एक जाति जिनकी कल्याण नाचती गाती और वेदयज्ञति करती हैं। ये लोग कमाऊँ आदि पहाड़ों तथा कारी आदि नगरों में पाए जाते हैं। (८) संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक, यथा—चचारो गुरयो विदुश्चारश्चतुःता अपि, विद्वो दश पटलाश्च ताले गंधर्वे संज्ञके।—संगीत धामोदर। (९) विधवा स्त्री का दूसरा पति।

गंधर्व तैल—संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ी का तेल।

गंधर्व नगर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नगर भ्राम आदि का वह मिथ्या आभास जो आकाश में वा स्थल में दृष्टि क्षेत्र से दिखाई पड़ता है। गरमी के दिनों में मरुभूमि वा समुद्र में जय घायु की तहों का घनत्व उष्णता के कारण असमान होता है उस समय प्रकाश की गति के विच्येद से दूर के शहर, गाँव, वृक्ष, नौका आदि का प्रतिबिंब आकाश में पड़ता है और कभी कभी उस आकाश के प्रतिबिंब का प्रतिबिंब पलट कर प्रथिवी पर पड़ता है जिस से कभी दूर के गाँव, नगर आदि वा तो आकाश में उलटे ढंगे या समीप दिखाई पड़ते हैं। यह दृष्टिदोष वायु की असमान तद के कारण उस समय होता है जय नीचे की तह की वायु इतनी जल्दी हलकी हो जाती है कि ऊपर की वायु और ऊपर नहीं जा सकती। गंधर्वनगर का फल बृहत्संहिता में लिखा है। (२) मिथ्या भ्रम। वेदांत में संसार की उपमा गंधर्वनगर से दी जाती है। (३) चंद्रमा के किनारे का मंडप जो उस रात को दिखाई पड़ता है जब आकाश हलके बादलों की तह से ढका रहता है। (४) वह दरम जो कोसों तक फैली हुई नमक की चट्टानों पर सूर्य की किरनों के पड़ने से दिखाई पड़ता है। (५) संख्या के समय पश्चिम दिशा में रंग विरंगे बादलों के बीच फैली हुई लाली। (६) महाभारत के अनुसार मानसरोवर के निकट का एक नगर जिसकी रक्षा गंधर्व करते थे। अर्जुन ने इस नगर को जीत कर तित्तिर कुवमाप और मंडूक नामक घोड़े प्राप्त किए थे।

गंधर्व पुर—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व नगर।

गंधर्वयधु—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीड़ा नामक गंध द्रव्य।

गंधर्वहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] पंढर। रेंद।

गंधर्वविद्या—संज्ञा पुं० [सं०] गानविद्या। संगीत।

गंधर्वविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] द्याट प्रकार के विवाहों में से एक।

यह संबंध जो पिता माता की आत्मा के बिना घर और धनु अपने मन से परस्पर कर लेते हैं।

गंधर्ववेद—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत शास्त्र। यह चार ऋग्वेदों में है। इसमें स्वर ताल राग रागिनी आदि का वर्णन है।

गंधर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

गंधर्वास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र का नाम।

गंधर्विन—संज्ञा स्त्री० [सं० गंधर्व + वि० इग, (प्रत्य०)] (१) गंधर्व की स्त्री। (२) गंधर्व जाति की स्त्री, जो बड़ी सुंदरी होती है। उ०—जो तुम मेरी इच्छा धरो। गंधर्विन के हित तप करो।—सूर।

गंधर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंधर्व की स्त्री। (२) सुरभी की पुत्री। यह पुराणानुसार घोड़ों की आदि माता है।

वि० [गंधर्व + ई (प्रत्य०)] गंधर्व का। गंधर्व संबंधी। उ०—पुनि शकुनी अतिसय रिसि छाया। कस्त भयो गंधर्वी मार।—गोपाल।

गंधर्वोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्वमह। गंधर्व रोग। दे० "गंधर्व"।

गंधवह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) नाक। (वि०)

गंधवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

गंधसार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन। (२) मेगता पेला। (३) कपूर।

गंधहर—संज्ञा पुं० [सं०] नाक। (वि०)

गंधहस्ती—संज्ञा पुं० [सं०] वह हाथी जिसके कुंभ से मद पड़ता है। मदेन्मत्त हाथी।

गंधाना—कि० सं० [गंध] गंध देना। धसाना। दुर्गा ध करना। संज्ञा पुं० [गंधन] रेशा छंद का एक नाम।

गंधानुवासन—संज्ञा पुं० [सं०] घाँ का एक संस्कार। श्रक केो गंध की वासना देना जिससे वह तेज रहे।

गंधाविरोजा—संज्ञा पुं० [हि० गंध + विरोजा] चोर का गोद। यह एक वृक्ष का गोद है जो फारस से आता है। शीतल और विरमान इसके लिये प्रसिद्ध स्थान हैं। यह तीन प्रकार होता है—खलनिव जो खेवालेट से आता है, विरोजा सुक और विरोजा गावरीर वा जवाशीर। विरोजा या गावरीर पीले रंग का गोद है जो बहुत पतला होता है। यह कभी कभी हरापन्न लिये भी होता है। इसमें दंडल फूल और पत्तियाँ मिलती रहती हैं। इस की गंध उरी नहीं होती और इसका स्वाद कड़वा होता है। यहाँ इसे शूद्र करते हैं और इससे स्निग्ध कर विरोजा का तेल निकालते हैं। मिट्टी के तेल में से भी इस का तेल निकाला जाता है। यह औषध में बहुत काम आता है। इसका मोषा हुआ सत निकाल कर दवा में मिलाते हैं और महाम वना कर फोड़े आदि पर भी लगाते हैं। सुक विरोजे में ताड़पीन के पत्तों गंध आती है। इसे उतुरु भी

कहते हैं। यह हिमालय और शिवालक के पर्वतों के जंगल से भी आता है। गंधाभिरोजा [सरल का गेदू। चंद्रस।

पर्याय—श्रीवास। धीवेट। वृषभूपक। श्रीपिट। पद्मदर्शन। वृषभूप। यास। वायस। चित्तार्गंध। श्रीरस। धूर्ग। तिलपर्य।

गंधार—संज्ञा पुं० दे० “गंधार”।

गंधारी—संज्ञा स्त्री० दे० “गंधारी”।

गंधाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी। गंधपसार।

गंधादान—संज्ञा पुं० [सं०] पवन। वायु।

गंधाटक—संज्ञा पुं० [सं०] आठ गंध द्रव्यों के मिलाने से बना हुआ एक संयुक्त गंध। अष्टगंध। यह पूजा में चढ़ाने और यंत्रादि लिखने के काम में आता है। तंत्र के अनुसार भिन्न भिन्न देवताओं के लिये भिन्न भिन्न गंधाटक का विधान पाया जाता है। तंत्र में पंचदेव प्रधान हैं। उन्हीं के अंतर्गत सय देवता माने गए हैं, अतः गंधाटक भी पांच ही हैं। शक्ति के लिये चंदन, अगर, कपूर, चौर, कुंडुम, रोचन, जटामासी, कपि; विष्णु के लिये चंदन, अगर, हीवर, कुट्ट, कुंडुम, उरीर, जटामासी और मुर; शिव के लिये चंदन, अगर, कपूर, तमाल, जल, कुंडुम, कुडीद, कुट्ट; गयोंरा के लिये चंदन, चौर, रोचन, अगर, मुर, और सुगी का मद, कस्तूरी और कपूर अपवा चंदन, अगर, कपूर, रोचन, कुंडुम मद, रक्तचंदन, हीवेर; सूर्य के लिये जल, केसर, कुट्ट, रक्तचंदन, चंदन, उरीर, अगर, कपूर।

गंधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिता। मुर। शराय।

गंधिया—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोवड़ारे की जाति का एक छोटा कीड़ा। यह बरसात के दिनों में रात को उड़ता है और बहुत दुर्गंध करता है। (२) एक हरे रंग का कीड़ा। यह भुनने के आकार का होता है और धान मक्का आदि को हानि पहुँचाता है।

क्रि० प्र०—लगना।

संज्ञा स्त्री० एक बरसाती घास। इसके पत्तियाँ पतली पतली होती हैं और इसके बीच में एक सीका निकलता है। यह उतरी आत के मैदानों में नीची उपजाऊ भूमि में होती है। इ देल-पंड में बहुत मिलती है। गांधी।

गंधी—संज्ञा पुं० [सं० गंधीर] [स्त्री० गंधीर, गंधिन] (१) सुगंधित तेल और द्रव आदि सेबनेवाला। अचार। उ०—(क) दूध देवोगी जाय उतरे संदेत वट-केदि मिसि देखन पाऊँ ।
..... चंदन अरगता मुर केसर धरि लेऊँ । गंधिन है आँउ निरलि गैन सुख देऊँ ।—सूर। (ख) गू गंधी, मति भंग नू अतर दिवावत कादि । करि कुलेल को आचमन मीठा कहत सराहि ।—विहारी। (२) एक घास। गांधी। गंधिया। (३) एक कीड़ा। गंधिया।

गंधीला—वि० [हिं० गंध] मैला। गँदला। उ०—यहना पानी निर्मला, चँपा गंधीला होय। सारू जन रमने भले, दाग न लागी कोय।—कबीर।

गंधेज—संज्ञा स्त्री० [सं० गंध] एक प्रकार की घास। अगिया घाम।

गंधेल—संज्ञा पुं० [सं० गंध] एक छोटा पेड़ या झाड़ू जो हिमालय के किनारे किनारे पंजाब से सिक्किम तक होता है। यह बंगाल और दक्षिण में भी मिलता है। इसकी पत्तियाँ और टहनियाँ में रोड़े होती हैं और उनमें से एक कड़ी सुगंध निकलती है। पत्तियाँ आठ दस इंच लंबे सीकें में लगती हैं जो तुकीली और छेड़ दो इंच लंबी होती हैं। इसमें सफेद रंग के फूल और लंबी लंबी बरे के समान फलियाँ लगती हैं। पत्तियाँ मसाले के काम में तथा द्याल और जड़ दवा के काम में आती हैं।

गंधेला—संज्ञा पुं० [हिं० गंध] [स्त्री० गंधेला] एक चिड़िया का नाम।

† वि० दुर्गंध करनेवाला।

गंधीली—संज्ञा स्त्री० [सं० गंध] कपूर कचरी।

गंधय—संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधि। यह वस्तु जिसमें अच्छी महक हो।

गंधारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बड़ा पेड़। इसके पत्ते पीपल के पत्तों से थोड़े होते हैं, द्याल सफेद रंग की होती है और उस से दूध निकलता है। फूल और फल पीले होते हैं। इसकी द्याल और फल दवा में काम आते हैं। द्याल कुड़ू कसैलापन और मिठास लिए कुड़ू होती है। बँधक में यह भारी, दीपक, पाचक, घृण्य, मेधाजनक तथा रचक मानी गई है। इसका प्रयोग आमशूल, बवासीर, शोथ, चर्बी और ज्वरादि में होता है। फल पकने पर कसैला और खटमिठा होता है।

पर्याय०—कारमरी। धीपर्या। मधुपर्या। भद्रपर्या। भद्रा।

गोपभद्रा। कृष्यफला। फटफला। कंभारी। कुमुदा। हीरा।

कृष्यवृत्तिका। सर्वतोभद्रिका। महाभद्रा। स्निग्धपर्या।

कृष्या। रोहिणी। गृष्टि। मधुमती। सुफला। मोहिनी।

महाकुमुदा। कारमरी। मधुसरा।

गंधीर—वि० [सं०] (१) नीचा। गहरा। जिसकी घाह जल्दी न मिले। जैसे, गंधीर नदी। (२) जिसमें जल्दी सुख न सके। घना। गहन। (३) जिसके अर्थ तक पहुँचना कठिन हो। गूढ़। अजलि। जैसे, गंधीर विचार। (४) घोर। भारी। जैसे, गंधीर निनाद। (५) शांत। सौम्य। जैसे, वह बड़ा गंधीर आदमी है।

संज्ञा पुं० (१) जंभीरी नीरू। (२) कमल। (३) अश्वत्थ में एक प्रकार का मंत्र। (४) शिव। (५) एक राम जो श्रीराम का पुत्र माना जाता है। हनुमत् के मत से यह हिंदोल राम का पुत्र है।

गंभीरवेदी—संज्ञा पुं० [सं० गंभीरवेदिर्] यह हाथी जो अकृत्रम की गहरी घोट को भी कुच न माने । मत्त हाथी ।

गंभीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी डोल ।

गँध—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्ध] (१) घात । दूब । (२) मतलब । प्रयोगन । उ०—(क) यह हमारे गँध का है । (ख) बड़ अपनी गँध का थार है ।

क्रि० प्र०—गाँठना ।—साधना ।

(१) बसस । मौका । उ०—गँध देल कर फाम करना चाहिए ।

क्रि० प्र०—तकना ।—देखना ।

(४) ढंग । उपाय । युक्ति । उ०—उससे किसी गँध से खया निकालना चाहिए ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—मिलना ।

मुहा०—गँध से = ढंग से । युक्ति से । † * धीरे से । चुपके से । उ०—(क) बँडे हँस लखन अर सीता । पंचवटी घर परनकुटी तर कहै कछु कथा सुनीता । कपट कुरंग कनक मनि मय लखि प्रिय सो कहति हँसि बाबा । पाप पल्लवे जोग मंजुश्या मंजुल धाला । प्रिया-यचन सुनि बिहँसि प्रमेवस गँधहि चाप सर लीन्हे । बह्यो सो भाजि फिरि फिरि हेरत मुनि रखवारे चीन्हे ।—तुलसी । (ख) रावन बान भद्रामट मारे । देखि सरासन गँधहि सिघारे ।—तुलसी ।

गँधई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंध] [वि० गंधकी] गाँव । छोटा गाँव । उ०—कर ले सूँघि सराहि कै, सवै रहै गहि मान । गंधी अंध गुलाब को, गँधई गाढ़क कान ।—विद्यारी ।

गँधरदल—वि० [हिं० गंधर + दल] (१) गँधारों का सा । गँधार के समान । गँधार । (२) भद्रा । बेहदा ।

गँधर भसला—संज्ञा पुं० [हिं० गंधर + भस] गंधारों की कहावत । ग्रामीणों की उक्ति ।

गँधरियाँ—संज्ञा पुं० [सं० गोघ्न = प्रतिघि] प्रतिघि । मेहमान ।

गँधाना—क्रि० सं० [सं० गन्धन, पुं० हिं० गन्ध] (१) (समय) विताना । (समय) फाटना । उ०—दई दई कैसे तितु गँधई । सिरि पंचमी पूजी धाई ।—जायसी । (२) खोना । पास की वस्तु को निकल धाने देना । उ०—खोम से उसने अपने हाथ की पूँजी भी गँधा दी ।

गँधार—वि० [हिं० गंध + धार (प्रत्य०)] [स्त्री० गंधारी, गंधारि । वि० गंधक, गंधारी] (१) गाँव का रहनेवाला । ग्रामीण । देहाती । असम्य । जैसे, यह गँधार आदमी सम्भों की बात क्या जाने । उ०—(क) धरने तुलसीदास-किसि धति मति-भंद गँधार ।—तुलसी । (ख) तुम हो दो अर्धही गँधारी धीर मधुरा की हँ सुँदरी भारी ।—लखण ।

मुहा०—गँधार का बट्ट = उजड़ । उजड़क ।

(२) बेवहफ़ । मूर्ख । (३) धनाही । अज्ञान । नासमक ।

गँधारता—संज्ञा स्त्री० [गंधर + ता (प्रत्य०)] गंधारपन । उ०—उत्तर पौन सो देहँ कहा मैं गँधारता कैसी रही दरदारी ।—सेवक ।

गँधारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंधार] (१) गंधारपन । देहातीपन । (२) मूर्खता । बेवहफ़ी । अज्ञानता । (३) गँधार स्त्री ।

वि० स्त्री० [हिं० गंधार + ई (प्रत्य०)] (१) गंधार का सा । जैसे, गँधारी बाल । (२) भद्रा । बड़घरत । घेदना । जैसे, गँधारी चूड़ी । गँधारी हज़ारखंद ।

विरोध—इस विरोध का प्रयोग स्त्रीबिग ही में विरोध होता यद्यपि दिल्ली आदि में पुं० में भी होता है ।

गँधारू—वि० [हिं० गंधार + रू (प्रत्य०)] गंधार का सा । गंधार की रूचि का । भद्रा । घेदना ।

गंस—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थि] (१) गाँठ । द्वेप । पैर । उ०—(क) कहा हमहि रिसि करत कन्दाई । इह रिसि जाइ करो मथुरा पर जहाँ है कंस बसाई । अपने घर के तुम रामा हो सब के राजा कंस । धूर ख्याम हम देखत ठाढ़े ध्रुव सीधे पू मंठी ।—सूर । (ख) मानी राम अधिक जननी से अनभिहूँ गँस न गंधी । सीय लखन रिपुदमन राम खल लखि सब की निबही ।—तुलसी । (२) लाग की बात । मनु में बुझने-वाली बात । अच्येप । ताना । लुटकी- । उ०—चलत सो सोरति गति गजहंस । हँवति परस्पर गावत गंस ।

संज्ञा स्त्री० [सं० कषा = चतक] तीर की मोक । गाँधी ।

गँसना—क्रि० सं० [सं० ग्रन्थन] (१) जकड़ना । गाँठना । अच्युत तरह कसना । उ०—बाल उन सुनि मनोहर बंसी । नहिँ सँभार अजहूँ युवातिन पलमदन सुभ्रंगम दसी । वृँदावन की माल कलेवर लता माधुरी गँसी । वृँदास प्रभु सब सुखदात लै मुंज धीष प्रहंसी ।—सूर । (२) बुनावट में याने को कसना । बुनावट में तारों वा सूतों को परस्पर दृष मिलाना, जिसमें घेद न रह जाय ।

क्रि० प्र० (१) बुनावट में सूतों का दृष पास पास होना । गँड जाना । कस जाना । (२) टसाउस भरना । धाँ जाना । उ०—(क) मनी रघुराज मयलोक से अच्येप लीग गगन में गँसितो सिमल के कतार हँ ।—रघुराज । (ख) विपु कैरी कलं बधू गँधनि में गँसी वाड़ी गोपाल जहाँ जुरिगो ।—पननेस ।

गँसीला—वि० [हिं० गँसा] [स्त्री० गँसीली] गँसवाली । तीर के समान मोकदार । बुझनेवाली । उ०—खरनि गँसीली लीं फँसीली नय फँसी थी हँसीली सो हिय में विषम विष बै गई ।

वि० [हिं० गँसना] गँसा हुआ । टस । दे० “गँसीला” ।

ग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गीत । (२) गंधर्व । (३) गुलाम्रा । (४) गणेश ।

संज्ञा पु० [सं०] (१) गानेवाला । जैसे, नामग । (२) जाने-वाला । पहुँचनेवाला । जैसे, अग्रज, कर्म ।

विद्योद—इस शब्द में यह समस्त शब्दों के अंत में आता है ।

गर्द*—संज्ञा पु० दे० "गर्द" ।

गर्द करना—कि० प्र० [सं० गति, प्र० गृह + हि० करना] तरह देना । जाने देना । छोड़ देना । ध्यान न देना । उ०—(क) कलियुग को रैन परी है, परीक गर्द करि जाहु दई के निहारे । —दास । (ख) हुन्दै लग लागी सुवाक कान सुगमर हो सुल सागर सार । नई दुखडी की लहरता देखि गई करि जैत बाराहिं पार । —सुधारक ।

गर्दबहार—वि० [हि० गया + बहुरि] खोई हुई हुई वस्तु को पुनः देने अथवा बिगड़ी हुई वस्तु को बनायेवाला । उ०—गर्द बहारे गरीब निचाव । सरल सबल साहब रघुराव । —सुलसी ।

गर्दब—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की घास जो अफगानिस्तान और विसेषिस्तान में पाय से प्राय होती है और भारत में अनेक स्थानों में ब्यारे के लिये बोई जाती है । इसे सैयार करने के लिये पहले जमीन को अच्छी तरह जोतते और उसमें खाद डालते हैं । इसमें धीन कुआर कातिक में खेत में बनाई हुई मोड़ों पर जो देते हैं और पानी से खूब सींचते हैं । जाड़े में आठवें दिन और गरमी में पाँचवें छुटे दिन इस में पानी की आवश्यकता होती है । पहली बार यह छः महीने में सैयार होती है और तबुप्रांत साल भर में इस बार काटी जा सकती है । इसे विजापती होल या हूल भी कहते हैं ।

गड़—संज्ञा स्त्री० [सं० गी] गाय । गौ ।

गड़र—संज्ञा पु० [सं० कर्षण] पंजाब के उत्तर-पश्चिम में रहनेवाली एक जाति ।

गगन—संज्ञा पु० [सं०] (१) आकाश ।

मुहा०—गगन खेलना = बहते हुए पानी या नदी आदि का उद्वलना । गगन होना = पत्नी का शूरी आदि का बहुत ऊपर आकाश में जाना ।

धौ०—गगनपत्र । गगनध्वज । गगनेश्वर । गगनेश्वरमुक ।

(२) शून्य स्थान । (३) दुःख छंद का एक भेद जिसमें १२ गुरु, १२ म लघु, १४० वर्ष और १२२ मासार्थ या १२ गुरु, १२४ लघु, १२६ वर्ष और १४० मासार्थ होती हैं । (४) धरक ।

गगनकुमुभ—संज्ञा पु० [सं०] आकाशकुमुभ ।

गगनपति—संज्ञा पु० [सं०] (१) यह जो आकाश में चले । आकाशकारी । (२) शून्य छंद आदि प्रह । (३) दुःख ।

गगनचर—संज्ञा पु० [सं०] (१) पक्षी । (२) प्रह । नक्षत्र ।

संज्ञा पु० [सं०] आकाश में चलनेवाला । आकाशगामी ।

गगनपूर—संज्ञा पु० [सं० गगन + हि० पूर] (१) बुद्धिपुष्प का

एक भेद । यह गोल गोल लगेद रंग का होता है और बरसात के दिनों में सावू आदि के पेड़ों के नीचे या मैदानों में निकलता है । साने फूल की तरकारी बनाई जाती है । कई दिनों का हो जाने पर इसके बीच से सूखने पर हरे रंग की मैली फूल निकलती है जो कान बदन की बहुत अच्छी दवा है । (२) केवड़े या केतकी के फूल पर की पूल ।

गगनध्वज—संज्ञा पु० [सं०] (१) शून्य । (२) यदल ।

गगनपति—संज्ञा पु० [सं०] इंद ।

गगनवाटिका—संज्ञा पु० [सं०] आकाश की वाटिका । (धर्मभव बात) दे० "गाधवेनार" । उ०—गगनवाटिका सींचतीं भरी भरी सिंधु तरंग । तुलसी गगनहिं मोद मन ऐसे अथम अमंग । —गुलसी ।

गगनभेड़—संज्ञा स्त्री० [हि० गगन + भेड़] करकिल या कूँज नाम की चिट्टिया जो पानी के किनारे रहती है ।

गगनभेदी—वि० [सं०] आकाशभेदी । बहुत ऊँचा ।

गगनवटी—संज्ञा पु० [सं० गगनवती] शून्य । (हि०)

गगनवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशवाणी ।

गगनस्पर्शी—वि० [सं०] आकाश को छूनेवाला । बहुत ऊँचा ।

गगनस्पृक्—वि० [सं०] आकाश को छूनेवाला । बहुत ऊँचा ।

गगनांगना—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षरा ।

गगनांगु—संज्ञा पु० [सं०] आकाश से गिरा हुआ जल । वृष्टि का जल, जो वैद्यक में विदेयान्न, बलकारक, रसायन, शीतल और विषनाशक माना जाता है ।

गगनानेग—संज्ञा पु० [सं०] पचीस मास्यों का एक भाद्रिकछंद जिसके प्रत्येक चरण में सोलहव्यों मासा पर विभ्राम होता है और आरंभ में रण्य होता है । इस छंद में विशेषता यह है कि प्रत्येक चरण में पांच गुरु, और पंद्रह लघु होते हैं । किसी किसी के मत से बाह्य मात्राओं के बाद भी यति होती है । उ०—माधव परम वेद निधि देवक, धसुर हरंत वृ । पावन धरम सेतु कर धूरण, सजन गर्हेन वृ । दानव हरण हरि सुजन सैतल, काज करंत वृ । देवहु कम न नीति कर सुदि कहुँ, मान परंत वृ ।

गगनापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा ।

गगनेचर—संज्ञा पु० [सं०] (१) प्रह । नक्षत्र । (२) पक्षी । (३) देवता । वि० [सं०] आकाश में चलनेवाला ।

गगनेश्वरमुक—संज्ञा पु० [सं०] मंगलप्रह ।

गगरी—संज्ञा पु० [सं० गगरी = गरी मपने का वर्तन] [सं० चरण] पीतल, ताँबे, बर्तने आदि का बना हुआ बड़ा घड़ा । कलमा ।

गगरिया*—संज्ञा स्त्री० दे० "गमती" ।

गगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गगरी = गरी मपने की रई] ताँबे, पीतल,

मिठी आदि का छोटा घड़ा । कलसी । उ०—नीके देतु न मोरी गगरी ।जमुना वह गँडुही फटकारी फोरी सब सिर की धस गगरी ।—सूर ।

गगली—संज्ञा पुं० [रेग०] शगर की एक जाति ।

गगोरी—संज्ञा पुं० [सं० गगं] एक छोटा कीड़ा जो पृथ्वी के भीतर खिल बना कर रहता है ।

गच—संज्ञा पुं० [अजु०] (१) किसी नरम वस्तु में किसी कड़ी वा पनी वस्तु के घँसने का शब्द । जैसे, गच से तुरी घँस गई ।
या०—गचागच = चार चार घँसने का शब्द ।

(२) चूना सुरखी आदि के मेल से बना हुआ मसाला, जिससे जमीन पकी की जाती है । उ०—जातरूप मनि-रचित श्रदारी । नाना रंग रचि रच गच दारी ।—तुलसी ।

(३) चूना सुरखी आदि से पिठी हुई जमीन । खेत । पकी कृषि । उ०—महि बहुरंग रचि रच काँचा । जो विलोकि मुनिवर रचि राँचा ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—पीटना ।

या०—गचकारी ।

(४) पकी छत । (५) संगजराहत या सिलखड़ी झूँक कर बनाया हुआ चूना जिसे शंगरेशी में डाक्टर ब्राफ पैरिस कहते हैं । यह पत्थर राजपूताने और दक्षिण (चिंगलपट, नैलोर आदि) में बहुत होता है । राजपूताने में खिड़की की आलियाँ बनाने में इसका उपयोग बहुत होता है । इस मसाले से मूर्ति या खिलौने आदि भी बहुत अच्छे बनते हैं ।

गचकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गच + फा० कारी] गच पीटने का काम । चूने सुरखी का काम ।

गचगर—संज्ञा पुं० [हिं० गच + फा० गर = बनानेवाला] कारीगर जो गच बनाता हो । गच पीटनेवाला । धवई ।

गचगीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गच + फा० गीर] गचकारी । चूने सुरखी का पक्का काम । उ०—कायर का घर फूस का भभकी चहुँ पड़ित । सूर के फणु दर नहीं गचगीरी की सीत ।—कबीर ।

गचना—क्रि० सं० [अजु० गच] (१) टूस के भरना । बहुत अधिक या कस के भरना । उ०—तिनों लोक रचना रचत हैं विरंच यासें अचल खजानी जानौ राख्यो गुण गचि के ।—गोपाल ।
(२) दे० “गंसना” ।

गचपच—संज्ञा पुं० दे० “गिचपिच” ।

गचाका—संज्ञा पुं० [हिं० गच से अजु०] गच से गिरने वा जगने का शब्द ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० गच से अजु०] जवान स्त्री । जवानी से भरी स्त्री । (बाजारी)
वि० भरपूर ।

गच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेड़ । गाड़ । (२) साधुओं का मठ (जेठ) । (३) वे साधु जो एक ही गुरु के शिष्य हों । (जैठ) ।

गछना—क्रि० अ० [सं० गच्छ = जाना] चलना । जाना ।

क्रि० सं० (१) चलाना । निवाहना । उ०—अवधि अघार न होतो जीवन को गछता ।—ध्यास । (२) अपने-जिम्मे लेना । अपने ऊपर लेना ।

गज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गजौ] (१) हाथी । (२) एक राक्षस का नाम, जो महिषासुर का पुत्र था । (३) एक वंदर का नाम जो रामचंद्र की सेना में था । (४) घाट की संख्या । (५) मकान की नौवाँ या पुरता ।

गज—संज्ञा पुं० [फा०] (१) लंबाई नापने को एक माप जो सोलह गिरह वा तीन फुट की होती है ।

विशेष—गज कई प्रकार का होता है किसी से कपड़ा, किसी से जमीन, किसी से लकड़ी, किसी से दीवार नापी जाती है । पुराने समय से भिन्न भिन्न प्रतीति तथा भिन्न भिन्न व्यवसायों में भिन्न भिन्न माप के गज प्रचलित थे और उनके नाम भी भ्रमण भ्रमण थे । उनका प्रचार अब भी है । सरकारी गज ३ फुट वा ३६ इंच का होता है । कपड़े नापने का गज प्रायः लोहा वा लकड़ी की छड़ का होता है जिसमें १६ गिरह होते हैं और चार चार गिरह पर चौपाटे का चिह्न होता है । कोई-कोई २० गिरह का भी होता है । राजगीरों का गज लकड़ी का होता है और उसमें २४ तत्तु होते हैं । एक तत्तु एक इंच के बराबर होता है । यहाँ गज यकई भी काम में लाते हैं । अब विशेष कर चिन्तालयी वे फुटे से काम लिया जाता है । दक्खिणों का गज कपड़े के पीठे का होता है जिसमें गिरह के चिह्न होते हैं ।

मुहा०—गजभर = बनीयो का । बोल चाल में एक रूप में सोलह तेर का भाव ।

(२) वह पतली लकड़ी जो सैलगाड़ी के पहिये में सूँझी से पुड़ी तक लगाई जाती है । यह धारे से पतली होती है और सूँझी के भीतर धारे को छेद कर लगाई जाती है । यह पुड़ी और धारों को सूँझी में जकड़े रहती है । गज चार होते हैं ।

(३) वह लोहा वा लकड़ी की छड़ जिससे पुराने ढंग की बंदक भरी जाती है अर्थात् जिससे वास्तव गोली आदि बंदक में दूसी जाती है ।

क्रि० प्र०—करना ।

(४) कमानी जिससे सारंगी आदि पजाते हैं । (५) एक प्रकार का तीर जिसमें पर और पैकान नहीं होता । (६) लकड़ी की पट्टी जो घोड़िया के ऊपर रखी जाती है ।

गजअसन—संज्ञा पुं०—दे० “गजासन” ।

गजइलहाही—संज्ञा पुं० [फा० गज + इलहाही] शकरी गज जो ४१ अंगुल का होता है ।

गजकंद—संज्ञा पुं० [सं०] एक औषधि । हृत्किंद ।

गजक—संज्ञा पुं० [फा० कजक] (१) वह कीड़ा जो शरारत आदि पीने के

बाद सुँह का स्वाद बदलने के लिये छाई जाती है। जैसे, कबाब, पापक, दालमोट, सेव, पादाम, पिस्ता आदि शराब के बाद और मिठाई, दूध, रबड़ी आदि अन्तिम या अंत के बाद। (२) तिलपपड़ी। तिल शक्की। (३) भारत। जल-पान। घटपट ला जाने की चीज।

गजकरण आलू—संज्ञा पुं० [सं० गजकण्ठि] धरुवा नाम की खाद्य जिसमें लंबा कंद पकता है। दे० "धरुवा"।

गजकुंभ—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का उभर हुआ मखक। हाथी के माथे पर दोनों ओर बड़े हुए भाग।

गजकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] भागकैसर।

गजकैसर—संज्ञा पुं० [सं० गज + कैसर] एक प्रकार का घान जो अगहन में सँवार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

गजक्रीडित—संज्ञा पुं० [सं०] मूल में एक प्रकार का भाव।

गजगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथी की चाल। (२) हाथी की सी मंद चाल। (किये का घीरे घीरे चलना भारतपर्य में शुलचय समझा जाता है।) (३) रोहिणी, मृगशिरा और धात्रों में शुक्र की स्थिति या गति। (४) एक वर्षावृत्त जिसके प्रत्येक चरण में नगद, भाग्य, तथा एक लघु और एक शुभ होता है। ३०—न भल गोपिकन से। हँसन जाल छल से।

गजगमन—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी की सी मंद चाल।

गजगामी—वि० [सं० गजगमिन] [स्त्री० गजगामिनी] हाथी के समान मंद गति से चलनेवाला। मंदगामी। (इस वि० का प्रयोग किये के लिये अधिकतर होता है क्योंकि उनकी मंद चाल अच्युती समझी जाती है।)

गजगाह—संज्ञा पुं० [सं० गज + गाह] (१) हाथी की मूल। ३०—(क) सावित्री के सनाह गजगाह सगवाह दल महाधरती धापु धीर आशुपान धीर के।—तुलसी। (ख) गजगाह गंगप्रवाह सम निदिगाह दुति भोगिन लसे। तिर चंद चंद दुचंद दुति धनंद कर मनियम नसे।—गोपाल। (२) मूल। पाण्ड ३०—सैसे चँवर बनाने की घाले लस। प। बाँध सेत गज-गाह लई लो देले लो संघ।—आवली।

गजगीन—संज्ञा पुं० दे० "गजगमन"।

गजगीनी—वि० स्त्री० दे० "गजगामिनी"।

गजगीह—संज्ञा पुं० [हिं० गज + का० गीह] गजमेठी। गज-मुक्ता। ३०—भीषम की क्यों गनै गरीमी गजगीह बाह गुलाब गौरीरे।—पद्मकर।

गजचर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी का चमड़ा। (२) एक रोग, जिसमें शरीर का चमड़ा हाथी के चमड़े की तरह मोटा और कड़ा हो जाता है। यह रोग घोड़े की भी होता है। इसमें धान भी होती है।

गजचर्मिटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रायन।

गजचर्मिटा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

गजचर्मिटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रायन।

गजच्छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष का एक योग जो उस समय होता है जब कृष्णप्रवेदशी के दिन चंद्रमा मघा मघ्न में और सूर्य इस नक्षत्र में हो। यह योग धाद्र के लिये अष्टमा माना जाता है।

गजट—संज्ञा पुं० [सं० गजट] (१) समाचारपत्र। अलुवार। (२) वह चित्रोप सामयिक पत्र जो भारतीय सरकार अध्याय प्रांतीय सरकारों द्वारा प्रकाशित होता है और जिसमें बड़े बड़े अफसरों की नियुक्ति, नए कानूनों के मसौदे और मित्र मित्र सरकारी विभागों के संबंध की विशेष और सर्वसाधारण के जानने योग्य बातें प्रकाशित की जाती हैं।

गुहा—गजट कराना = किसी प्रकार की सूचना आदि को गजट में प्रकाशित कराना। गजट होना = (१) किसी बात का गजट आदि में प्रकाशित होना। (२) किसी बात का बहुत अधिक प्रसिद्ध होना।

गजता—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथियों का कुँड।

गजदंत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी का दाँत। (२) वह लुँटी जो दीवार में कपड़े आदि लटकाने के लिये गाड़ी जाती है। (३) एक प्रकार का घोड़ा जिसके दाँत हाथी के दाँतों की तरह सुँह के बाहर ऊपर की ओर निकले रहते हैं। (४) दाँत के ऊपर निकला हुआ दाँत। (५) मूल में एक प्रकार का भाव जिसमें दोनों हाथ सीधे करके कंधे के पास लाते हैं और हाथों की उँगलियों को साँप के फन की तरह बना कर धागे की ओर झुकाते हैं।

विद्योप—प्राचीन काल में मूल का यह भाव उस समय दिखलाया जाता था जब कि विवाह के उपरान्त कन्या को घर से धाता था। इसके अतिरिक्त मूलने अथवा वृष आदि उखाड़ने की मुद्रा दिखलाने के समय इस भाव का व्यवहार होता था।

गजदंतफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिचडा।

गजदंती—वि० [सं० गजदंत + ई (अल०)] हाथी के दाँत का। हाथी दाँत का बना हुआ। ३०—कर कंकय चुरो गजदंती। नल मरिय भाषिक मेठति देती।—सूर।

गजदान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी का दान। (२) हाथी का मद।

गजधर—संज्ञा पुं० [हिं० गज + धर] (१) मकान बनानेवाला मिस्त्री। राज। मेमार। धवड़े। (२) वह राज या मेमार जो घर बनाने के पहले उसका मकूटा आदि सँवार करता हो।

गजनवी—वि० [का०] गजनी नगर का रहनेवाला। जैसे, महमूद गजनी।

गजनाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की बड़ी तोप जिसे हाथी खींचते थे। बड़ी भारी तोप।

गजनी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की मिठी।

गजनी—संज्ञा पुं० [सि० सं० गजनी] [सि० गजनी] अफगानिस्तान के एक नगर का नाम, जहाँ महमूद की राजधानी थी।

गजपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह राजा जिसके पास बहुत से हाथी हों। ३०—असुपतीक सिर मार कहवै। गजपतीक श्राद्धस गजनावै।—जायसी। (२) कलिंग देश के राजाओं की उपाधि। महाराज विजयनगर वा विजयानगरम् के नाम के साथ थय भी यह उपाधि लगाई जाती है। ३०—रतनसेन भा जेती जती। सुनि भेट्टे थावा गजपती।—जायसी। (३) बहुत बड़ा हाथी।

गजपाँच—संज्ञा पुं० [हि० गज + पंच] एक प्रकार का जलपक्षी जिसके पैर खाल, सिर, गरदन, पीठ और डीने काले तथा बाकी अंग सफेद होते हैं। यह जाड़े के दिनों में उड़े देरों से भारतीय मैदानों में चला थाता और प्रायः तीन चार थंडे देता है।

गजपादप—संज्ञा पुं० [सं०] मेलियापीपल।

गजपाल—संज्ञा पुं० [सं०] महाव्रत। हाथीवान।

गजपिप्ली—संज्ञा पुं० [सं०] ममोले कद के एक पौधे का नाम जिसके पत्तें चौड़े और गुदार होते हैं और जिसके किनारे पर लहरिया नोकदार कटाव होता है। इसमें दो तीन पर्तों के धाद बीच से एक पतला सीका निकलता है जिसके सिरे पर दस बारह श्रृंगुल लंबी एक इंच के लगभग मोटी मंजरी निकलती है। मंजरी में छोटे छोटे फूल लगते हैं। यह मंजरी सुखाई जाती है और सुखने पर बाजारों में औषध के लिये विकती है। बाजार में इसके एक श्रृंगुल मोटे और चार पाँच श्रृंगुल लंबे टुकड़े मिलते हैं। स्वाद में यह मंजरी कड़ु है और चरपरी होती है। वैद्यक में यह गरम, मलरोधक, कफ-घात नाशक, स्तन को बढ़ानेवाली, रुचिकारक और अमिद्रीयक मानी गई है और कहा गया है कि पकने से पहले इसमें और भी ऊड़ गुण होते हैं।

पृथ्या—करीपिप्ली। इभक्या। कपिवही। कपिलिका।

घथिर। कोलवही। चव्यफल। दीपैर्मयी। तैजसी।

गजपीपर—संज्ञा स्त्री० दे० “गजपिप्ली”।

गजपीपल—संज्ञा स्त्री० दे० “गजपिप्ली”।

गजपुट—संज्ञा पुं० [सं०] धातुओं के फूँकने की एक रीति। इस में सवा हाथ लंबा, सवा हाथ चौड़ा और सवा हाथ गहरा एक गड्ढा खोदते हैं। उसमें सूँची या तिनूए कड़े बिद्या कर शीश में जिस पदार्थ को सजाना होता है उसे रप कर ऊपर से फिर ५०० फंडे बिद्या कर गड्ढे के सुँह पर चारों ओर से मिट्टी ढाल देते हैं। केवल योद्धा सा स्थान बीच

में खुला छोड़ देते हैं। इस प्रकार जय सब ठीक कर चुकने हैं तब ऊपर से उसमें धाग लगा देते हैं। इस रीति को गजपुट कहते हैं।

गजपुर—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर।

गजपुरप—संज्ञा पुं० [सं०] नागपुरी। नागदौल।

गजपुरपी—संज्ञा स्त्री० दे० “गजपुरप”।

गजप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] सखई। शकली।

गजबंध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्रकाम्य। इस में किसी कविता के अक्षरों को एक विशेष रूप से हाथी का चित्र बना कर उसके अंग प्रत्यंग में भर देते हैं।

गज्वज—संज्ञा पुं० [अ० गज्व] (१) कोप। रोप। गुस्ता।

धौ०—गज्वज हलाही = ईश्वर का कोप। दैवी कोप। ३०—का पै यों परंवां भयो गज्वज हलाही है।—पद्मकर।

क्रि० प्र०—घाना।—टूटना।—पड़ना।

(२) आपत्ति। आफत। विपत्ति। अनर्थ। जैसे, वन पर गज्वज टूट पड़ा।

क्रि० प्र०—घाना।—करना।—टूटना।—टाना।—तोड़ना।—निरना।—खाना।—पड़ना।

(३) अंधेर। अन्ध्या। शुष्म। जैसे, क्या गज्वज है कि तुम तूखर की बात भी नहीं सुनते। (४) विलक्षण बात। विचित्र बात।

मुहा०—गज्वज का = विलक्षण। अपूर्व। बड़ा भारी। अत्यंत। अधिक। ३०—(क) यह गज्वज का चोर है। (ख) यहाँ गज्वज की भीड़ और गरमी थी। (ग) उस की खूबसूरती गज्वज की थी।

गजवदन—संज्ञा पुं० [सं०] गव्दर।

गजवर्चक, गजवाग—संज्ञा पुं० [सं० गज + वर्चक वा वग] हाथी का चंद्रधनु।

गजवेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक की गति के विचार से रोहिणी, मृगशिरा और श्रद्धा के समूह का नाम जिसके बीच से हो कर शुक गमन करे।

गजवेली—संज्ञा स्त्री० [सं० गज + वल्ली] एक प्रकार का लोहा। काँतिसार। ३०—भाला मार गजवेली का सौँहँ निसरि गयो वहि पार।—श्रावह।

गजवक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल।

गजमणि—संज्ञा स्त्री० पुं० [सं०] गजमुक्ता। ३०—वीथी सकल सुगंध यतारै। गजमनि रचि बहु शौक पुरारै।

गजमनि—संज्ञा स्त्री० पुं० दे० “गजमणि”।

गजमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीनों के अनुसार एक मोती जिस का हाथी के मस्तक से निकलना प्रसिद्ध है। प्राज्ञ तक ऐसा मोती कहीं पाया नहीं गया।

गजमुख-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का नाम ।

गजमोचन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक रूप जिसे धारण कर उठने प्राण से एक हाथी की रक्षा की थी । उ०—गजमोचन ओं भयो धवतार । कहीं सुनो सो अथ चित्तधार ।—सूर ।

गजमोती-संज्ञा पुं० [सं०] गजमोचन, प्रा० गजमोतिप्र] गजमुक्ता ।

गजर-संज्ञा पुं० [सं० गज, हिं० गरज] (१) पहर पहर पर घंटा बजने का शब्द । पारा । उ०—पहरि पहर गरज नित होई । हिया निसोगा जाग न कोई ।—जायसी ।

क्रि० प्र०—बजना ।

(२) घंटे का वह शब्द जो प्रातः काल चार बजे होता है । सबरे के समय का घंटा । उ०—फजर को गरज यगार्क तरे पास नै ।—सुंदर ।

मुद्रा—गजदम या गरज बजे = तड़के । पै फट्ठे । खरे । भोरे । उ०—यद् गरजदम उठ खड़ा हुआ । गरज का बज् = ध्वज । उपा काठ । उ०—उठो गरज का वज्, हुआ ईश्वर का नाम लो ।

(३) जगने की घंटी । जगीनी । धलाराम । (४) चार घाट और धारा बजने पर उतनी ही धार जल्दी जल्दी फिर घंटा बजने का शब्द ।

संज्ञा पुं० [हिं० गजर = मित्र गुण] जाल और सफेद मिखा हुआ गेहूँ ।

गजर-संज्ञा पुं० [सं०] वह बड़ा रथ जिसे हाथी खींचते हैं । पहले ऐसे रथ राजाओं के यहां होते थे और लोग उन पर चढ़ कर लड़ाई में जाते थे ।

गजरप्रवेश-संज्ञा पुं० [सं०] गायन और मुख्य आदि के धारम में श्रोताओं के सामने गाने और बजानेवालों का अपना-स्वयं और धारा आदि मिलाना ।

गजर घजर-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) घाल मेल । वेमेल की मिलावट । अहबंड ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

(२) छाछालाघ । भक्ष्यापच्य । पच्यापच्य । उ०—खड़के ने कुछ गरज बजर सा खिया होगा ।

गजरभात, गजरभाचा, संज्ञा पुं० [हिं० गजर + भात] गजर के टुकड़ों को मिला कर बनाया हुआ चावल ।

गजरा-संज्ञा पुं० [हिं० गजर] गजर के पत्ते जो चौपायों को खिलाए जाते हैं ।

संज्ञा पुं० [हिं० गज = समृद्ध] (१) मूल आदि की घनी गुंथी हुई माला । माला । हार । उ०—कर मंडित सोलिन को गजरा रग मीठत ध्यान चोपान से ।—भनी । (२) एक गहना जो कलाई में पहना जाता है । उ०—द्विप घला मुं दूरी भूमके दमके पट्टे की गजरा मिति माने ।—गुमान । (३) एक प्रकार का देशी कपड़ा । मरुत् ।

गजरज-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा हाथी । उ०—महामत्त गजराज कहै मस कर अकुस खर्यै ।—मुलसी ।

गजरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गजर] एक आभूषण जिसे खिया कहाई में पहनती हैं ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० गजर] छोटी गजर । इसके कंद छोटे पर अधिक मीठे होते हैं ।

गजराट-संज्ञा स्त्री० [हिं० गजर + शेट (प्रय०)] गजर की पत्ती । गजरा ।

गजल-संज्ञा स्त्री० [फा०] फारसी और उर्दू में शृंगार रस की एक कविता जिसमें बौद्ध शृंगलायद्ध कथा नहीं होती किंतु प्रेमियों के स्फुट कथन या प्रेमी अथवा प्रेमिका के हृदय के उद्गार आदि होते हैं । इसका कोई निपत छंद नहीं होता ।

गजलील-संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य बंदों में से एक जिसमें चार छद्म मात्राएं और अंत में विराम होता है ।

गजयदन-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश ।

गजयान-संज्ञा पुं० [हिं० गज + यान (प्रय०)] महायत हाथियान ।

गजशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिसाल । यह पर जिसमें हाथी बांधे जाते हैं । फूलखाना ।

गजही-संज्ञा स्त्री० [हिं० गज = फेन] (१) वह लकड़ी जिससे कच्चा दूध मय कर मखन निकाला जाता है । यह चार पांच हाथ लंबी एक बॉस की लकड़ी होती है जिसका एक सिरा चौकोर चिरा होता है । (२) ये पतली लकड़ियां जिन से दूध मय कर फेन निकालते हैं ।

गजाधर-संज्ञा पुं० दे० "गदाधर" ।

गजानन-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का एक नाम ।

गजारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह । (२) एक प्रकार का शाल वृक्ष जो प्रायः ब्राह्मणों में अधिकता से होता है । इसके पत्ते बड़े होते हैं और इसकी बालियों से खूबियां बनाते हैं ।

गजाल-संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार की मक्खली । (२) खैरी ।

गजाशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीपल । (२) अश्वत्थ वृक्ष ।

गजास्थ-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का एक नाम ।

गजिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० गज] बियाई करनेवालों का एक आजार जिस पर बिया हुआ तार उतारा जाता है । यह लकड़ी की होती है और इसके दोनों कोने मुकने होते हैं ।

गजी-संज्ञा पुं० [फा० गज] कुछ कम पाड़ा एक प्रकार का मोटा देशी कपड़ा जो सस्ता होता है । गाड़ा । सलम ।

मुद्रा—गजी गाड़ा = भाड़ा साधारण और सस्ता कपड़ा ।

संज्ञा पुं० [सं० गज + ई (प्रय०)] कच्चा गजेंद्र] हाथी का सवार । वह जो हाथी पर सवार हो ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी ।

गजेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देशवत । (२) यद्वा हाथी । गजराज ।

गजेंद्रशुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रताल का एक भेद । (संगीत) ।
 गज्वर-संज्ञा पुं० [अनु०] यह भूमि जो कीचड़ से भरी हो और
 जिसमें पैर धँसे । दलदल ।
 गज्जल-संज्ञा पुं० [सं०] शंखरी ।
 गज्जमा-संज्ञा पुं० [सं० गज्ज = गज्ज] (१) बहुत से छोटे छोटे
 बुलबुलों का समूह जो पानी, दूध या किसी और तरल पदार्थ
 में उत्पन्न हो । गाज ।

मुहा०—गज्जमा देना या छोड़ना = मज्जली का पानी के भीतर से
 बाहर बुलबुला फेंकना । सैरी या गिरदा मज्जली के पानी के
 भीतर साँस लेने से प्रायः ऊपर बुलबुले निकलते हैं । इसे
 शिकारी या मछुड़े “गज्जमा देना या छोड़ना” कहते हैं । इसके
 उन्को मात्स्य हो जाता है कि यहाँ सैरी या गिरदा मज्जली है ।
 गज्जमा मारना = गज्जमा छोड़ना ।

† (२) गज ।

† संज्ञा पुं० [सं० गज, फ्रा० गंज] (१) वेर । गंज । शंखार ।
 (२) खूनाना । केदार । (३) धन । संपत्ति ।

मुहा०—गज्जमा मारना = माल मारना । रुपया छाप में फटना ।
 गज्जमा दवाना = माल दवाना या हड़प करना । अनुचित रूप से
 बहुत सा धन एक बारगी छे लेना । मारना ।
 (४) खान । फ्रायदा । मुगनाज़ा ।

गमिनी-वि० [हिं० गंजना] (१) सघन । घना । (२) गाढ़ा ।
 मोटा । जैसे, गमिनी कपड़ा ।

गटई-संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठ, पुं० हिं० घंट,] (१) गला ।
 उ०—जय जमराज राजायसु ते तोहि लै चलिहैं भट बाँधि
 गटइया ।—सुजसी । (२) दे० “गिहरी” । (३) दे०
 “गोटी” ।

गटकना-कि० सं० [सं० कण्ठ, वा हिं० गटई, अथवा गट से अनु०] (१)
 खाना । निगलना । उ०—(क) मीठा सप कोई खात है विष
 दोह लागी धाय । नीब न कोई गटकई, सयै रेग मिटि
 जाय ।—कबीर । (ख) खटक निरखन लाग्यो मटक सप भूलि
 गयो हटक हूँचै गयो गटक शिल सो रखो मीजु जागी ।
 मुटि के गटई भवि के धारण सुखुट करयो कंस कोजुकं
 भयो भई रंग भूमि अनुराग रागी ।—सूर । (२) हड़पना ।
 दबा लेना । जैसे, वृत्तों का माल गटकना सहज नहीं है ।

गटगट-संज्ञा पुं० [अनु०] किसी पदार्थ को फट्टे धार करके निग-
 लने या घूँट घूँट पीने में गले से उत्पन्न होनेवाला शब्द ।
 कि० वि० गट गट शब्द के सहित । धड़धड़ । लगातार (कोई
 चीज खाना या पीना) जैसे, साहब बहादुर देखते देखते सारी
 बोलल गटगट कर के खाती कर गट ।

गटनार-कि० अ० [सं० अण्यन, प्रा० गटन] गँटना । धँचना । उ०—
 हृदय की क्यहूँ न पीर घटी । भिनु गोपाल विषया या तनु
 की कैसे जात झटी । अपनी रुचि जितही तित धँचति इंदिय

माम गटी । होति तदीं उठि चलति कपट लागि बाँधे नयन
 पटी ।—सूर ।

गटपट-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) दो या दो से अधिक मनुष्यों या
 पदार्थों का परस्पर बहुत अधिक मेल । मिलावट । (२)
 सहवास । संयोग । प्रसंग । उ०—जासों गटपट भए प्रास
 राखो चाही की ।—ध्यास ।

गटा-संज्ञा पुं० दे० “गटा” ।

गटागट-कि० वि०, संज्ञा दे० “गटगट” ।

गटापारचा-संज्ञा पुं० [मरा० गट = गोंद + पारचा = घन अथवा
 शुभ्रा शेष का नाम] एक प्रकार का गोंद जो कई ऐसे वृक्षों
 से निकलता है जिनमें सफेद दूध रहता है । यह प्रायः रबर
 की तरह काम में आता है पर उतना मुलायम और लचीला
 नहीं होता । विलकुल खुले स्थानों में पूँप और पानी आदि
 सहता हुआ भी यह दस दस परस तक ज्यों का ह्यों रहता है
 और यदि नालियों आदि से सुरक्षित स्थानों में रखा जाय तो
 बीस बीस वर्ष तक काम देता है । यह प्रायः विजली के तारों
 के ऊपर रचायें लगाया जाता है ।

गटी-संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि, पा० गंठि] गाँठ । उ०—(क) चेटक
 लाइ हरहि मन, जय लागि हो गटि फँट । साठ नाठ उठि
 भागहि, ना पहिचान न भेट ।—जायसी । (ख) रंग भरि
 भाये ही मेरे लखना शायँ कहत ही अटपटी । अति शलसात
 जगहात ही प्यारे पिय प्रगत त्रिया प्रताप छूटत नाहिन शंतर
 की गटी ।—सूर ।

गह-संज्ञा पुं० [अनु०] किसी वस्तु के निगलने में गले से उत्पन्न
 होनेवाला शब्द ।

मुहा०—गह करना = (१) निगल जाना । खाना । (२) हड़प
 जाना । दबा बैठना । अनुचित अधिकार कर लेना ।

गह-संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथ, प्रा० गठ, हिं० गाँठ] (१) हथेली और
 पट्टों के बीच का जोड़ । कलाई ।

मुहा०—गहा पकड़ना = तगाहा या मगहा करने अथवा बलपूर्वक
 कुछ मंगाने या पकड़ने आदि के लिये किसी की कलाई पकड़ना ।
 गहा उल्लाड़ना = पराप्त करना । दवाना । गहा उल्लाड़ना = कलाई
 की हड्डी का टूट या टरक जाना ।
 (२) पैर की नली और तालुए के बीच की गाँठ । (३) गाँठ ।
 उ०—कमल के हिरदय महुँ जो गट । हर हर हार कीन्ह का
 घटा ।—जायसी । (४) नीचे की नीचे की घट गाँठ जहाँ दोनों
 ने मिलती हैं और जो फुसी या टुकके के मुँह पर रहती है ।
 (५) बीज । जैसे, कमलगट, सिंघाड़े का गहा । (६) एक
 प्रकार की मिठाई जो चीनी या साकर का तार खींच कर उसे
 गोला या चौकोर टुकड़ों में काट कर बनाई जाती है ।

गहरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) जहाज या नाव में उस धमे के
 नीचे की चूल जिसमें पाव बँधी रहती है । (सर०)

मुद्रा—गंठी करना = किसी खंभे में ड़ीधी हुई पात्र का चून के सहारे घुमाना ।

(२) नदी का किनारा ।

गह्वर—संज्ञा पुं० [हिं० गह्वर] सुटिया । दस्ता ।

गह्वर—संज्ञा पुं० [हिं० गंठ] बड़ी गठरी । गट्टा । बोमना ।

मुद्रा—गह्वर साधना = घुटनों को ज़ाती से लगा कर और ऊपर से हाथ बांध कर पानी में कूटना ।

गट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० गंठ] [श्री० अल्प० गट्टी, गठिया] (१) घास जकड़ी आदि का बोम । भार । गट्टर । (२) बड़ी गठरी । बुकथा । (३) प्याज़ या लहसुन की गंठ ।

† (४) ज़रिया का बीसवाँ भाग जो तीन गज़ का होता है । कट्टा ।

गठजोरा—संज्ञा पुं० दे० "गंठजोड़ा" ।

गठडंड—संज्ञा पुं० [हिं० गठडा + डंड = एक प्रकार की कलहट] एक प्रकार का डंड जो दोनों हाथों के बीच के स्थान में गठडा बना कर किया जाता है । इस प्रकार डंड करने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है ।

गठबंधन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थबन्धन, पा० गण्यबन्धन] विवाह में एक रीति जिसमें वर और बधू के घरों के घोर को परस्पर मिला कर गंठ बांधते हैं ।

गठन—संज्ञा श्री० [सं० ग्रन्थन, पा० गण्यन] बनावट ।

गठकाटा—वि० पुं० [हिं० गंठ + काटना] (१) गंठ काट कर रूप ले लेनेवाला । गिरहकट । (२) घोरता दंकर या बेईमानी से रुपया लेनेवाला ।

गठना—क्रि० अ० [सं० ग्रंथन, प्रा० गंठन, हिं० गंठना का शकर्मक रूप] (१) दो घन्तुओं का परस्पर मिल कर एक होना । जुड़ना । सटना । जैसे, ये दोनो वेड़े आपस में बंध गठ गए हैं । (२) मोटी सिलाई होना । बड़े बड़े टाँके लगना । जैसे, जूना गठना । (३) बुनावट का बड़ होना ।

धा—गंठी बरिय्या = एक प्रकार की बरिय्या जिसे पोतदाना भी कहते हैं । इसमें पहले जिस स्थान पर यह गठना कर आगे की ओर निकालते हैं फिर उसी स्थान के पास ही उलट कर यह गठते और यह निकलने के पहलेवाले स्थान से ऊँच और आगे बढ़ा कर निकालते हैं और इसी प्रकार बरिय्या खींचते हुए चले जाते हैं । इष्ट में ऊपर की सिलाई एकदही और नीचे की दोहरी होती जाती है । दोहरी की बरिय्या में और इशमें केवल यही भेद है कि दोहरी की बरिय्या में केवल आधा दूर तक चोट कर हुई बरिय्या है और गंठी बरिय्या में पूरी दूरी तक चोट कर हुई बाकी जाती है । गठना बदन = पैसा हज़र शरीर को बरत आधिक भोजन न हो ।

(२) किसी पदपत्र या पुस्तक विचार में सहमत या सम्मिलित

होना । जैसे, अगर वह किसी तरह गठ जाय तो सब काम बन जाय । (४) श्रमही तरह निर्मित होना । भली भाँति रचा जाना । ठीक ठीक बनना । उ०—अप्य श्रंग यनी मानो लिखी चित्र यनी गठी, निज मय मनी आउत यों भूप काम को।—हनुमान । (६) स्त्री-पुरुष या नर-मादा का संयोग होना । विषय होना । (७) श्रमिक मेल मिलान होना । जैसे, भाज कल उन लोगों में खूब गठती है ।

संयोग क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

गठरी—संज्ञा श्री० [हिं० गह्वर का श्री० और अल्प०] (१) कपड़े में गंठ देकर धाँया हुआ सामान । बड़ी पोतली । एकची ।

मुद्रा—गठरी बांधना = (१) (अथवा बांध कर) याया की सैयारी करना । (२) पैरा और घुटनों को ज़ाती से लगा कर और ऊँचे दोनों हाथों से जकड़ कर गठरी की आकृति बना लेना । गठरी साधना = दे० "गह्वर साधना" गठरी कर देना = (१) हाथ पैर छोड़ या बांध कर शयना और किसी प्रकार बेकाम कर देना । ढेर करना । भार कर गिरा देना । (२) जुकरी में बिपली को इस प्रकार दोहड़ कर देना कि जिसमें उसकी आकृति गठरी के समान हो जाय । गठरी मारना = दे० "गठरी बांधना (२)" ।

(२) संचित धन । जमा की हुई दौलत ।

मुद्रा—गठरी मारना = श्रुतचित रूप से किसी का धन ले लेना । ठगना ।

(३) एक प्रकार का तैरना जिसमें तैरनेवाला अपने पैरों और घुटनों को ज़ाती से लगा कर और ऊँचे दोनों हाथों से जकड़ कर गठरी की सी आकृति बना लेता है ।

गठवेरवाँ—संज्ञा पुं० [हिं० गंठ] चँपायों का एक रोग । चँपायों को पहले ज्वर आता है फिर उसकी जाँघ, पसली और जीभ के नीचे और विशेष कर गले के नीचे सूजन हो आती है । उसे साँस लेने में कष्ट होता है और यह चल फिर नहीं सकता । यह पैरों को जोड़ कर सड़ा रहता है । यह घृत का रोग है और अचानक होता है । पशु इस रोग में विशेष कर मर जाते हैं । पहले लोगों का अनुमान था कि यह रोग सर्दी लगने या बदहज्मी से होता है । पर थय दावतों ने यह निरचय किया है कि यह रोग रक्त के विकार से कीटाणुओं द्वारा फैलता है । इस रोग में रोगी को वेद और गर्म साफ़ सुपरे और सूखे में रखना चाहिए । खाने के लिये सूखे स्थान की घास, सूखा भूना और जौ के धाँटे की खेई या गर्म माइ उपयोगी है । इसे गह्वरुलाँ और हादा भी कहते हैं ।

गठवाँसी—संज्ञा श्री० [हिं० गठ + वाँ] गट्टे या बिस्वे का बीसवाँ भाग । किरवाँसी ।

गठवाना—क्रि० अ० [हिं० गठना] (१) गठना । सिलवाना । जैसे, जूना गठवाना । (२) मोटी मोटी सिलाई करना । टाँका

मरवाना । (३) जुड़वाना । जोड़ मिलवाना ! (४) जोड़ खिलाना । संयोग कराना ।

गठाना—क्रि० सं० [हि० गठना] (१) गठवाना । खिलवाना । मोटी सिलाई कराना । जैसे, जूते गठाना । (२) जोड़ मिलवाना । संज्ञा पुं० [हि० घटना] यह जलस्थल जहाँ कम पानी हो । (मार्मन्ती)

गठानो—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का कर जो जमींदार असा-मियों से वसूल करता है ।

गठाय—संज्ञा पुं० [हि० गठना] गठन । घनावट ।

गठित—वि० सं० अभित, पा० गठित] गठा हुआ । घना हुआ ।

गठिवध—संज्ञा पुं० [सं० गठिवधन] गठवधन । गठनोद्धार । उ०—
यद्गु प्रतीत गठिवध ते भद्रो जोग ते धूम । यद्गु सुसेवक साहू
ते यद्गु नेम ते प्रेम ।—तुलसी ।

गठिया—संज्ञा स्त्री० [हि० गैठ] (१) यह घोरा वा दोहरा धैला जिस में व्यापारी अन्न आदि भर कर छोड़े या बँद की पीठ पर लादते हैं । खुरजी । (२) पोदली । छोटी गठी । (३) कोरे कपड़े के धारों की बँधी हुई बड़ी गठी । (४) एक रोग जिसमें जोड़ों में विलोप कर घुटनों में सूजन और पीड़ा होती है । जिस श्रम में यह रोग होता है वह श्रम फैल नहीं सकता और जकड़ जाता है । इसमें कभी कभी ज्वर और सत्रिपात भी हो जाता है जिससे रोगी शीघ्र मर जाता है । वैद्यक में यदुविकार इसका कारण माना जाता है । उपदंश, सूजाक आदि के कारण भी एक प्रकार की गठिया हो जाती है । (५) शीशों या बूझों का एक रोग जिसमें आँखियों का बड़ना बंद होजाता है, पत्तियाँ सिकुड़ कर पेट जाती हैं । गड़े पत्तियाँ घनी और परस्पर लिपटी हुई निकलती हैं । यद्यपि यह रोग आम आदि बड़े पेटों में भी होता है पर फूलती शीशों में बहुत देखा जाता है । जड़, सूँग तथा कुम्हड़न, ककड़ी, करंदा आदि तरकारियों में यह रोग प्रायः लग जाता है ।

गठियाना—क्रि० सं० [हि० गैठ] (१) गैठ देना । गैठ लगाना । (२) गैठ में बाँधना । गैठ में रखना ।

मुहा०—किसी बात को गठिया रखना = किसी बात को निरचय समझना ।

गठिवन—संज्ञा पुं० [सं० गठिवन] मध्यम आकार का एक पेड़ जिसकी आँखियाँ पतली होती हैं । इसकी पत्तियों में स्थान स्थान पर गैठें होती हैं । फूल नीले रंग के होते हैं । यह नेपाल की तराई में अधिक होता है । इसकी गोल गोल छुट्टियाँ या कलियाँ शीपथ के काम में आती हैं और मानुष में गठिवन के नाम से विकती हैं । काले रंग का गठिवन उत्तम, पाँड़ु रंग का मध्यम और स्थूल निरुद्ध समझा जाता है । वैद्यक में इसे तीक्ष्ण, चरपरा, गरम, अग्निदीपक, तथा

कफ, घात, रवास, और हुँगंध को नाश करनेवाला माना है । शरीर पर इसका लेप करने से हवाई आती है और खुजली दूर होती है ।

गठीला—वि० [हि० गैठ + ईला (मूल०)] [स्त्री० गठीली] गाँठ-वाला । जिसमें बहुत सी गाँठें हों । उ०—यह छड़ी गठीली है ।

वि० [हि० गठना] (१) गठा हुआ । सुस्त । सुदौल । जैसे, गठीला यदन । (२) मनुष्य । इड़ । अच्छा ।

गठुआ—संज्ञा पुं० दे० “गठुआ” ।

गठुरा—संज्ञा पुं० [हि० गैठ] भूसे की गाँठ जो खलिहान में फँक दी जाती है । इसे बुँदेलखर में गठुआ और प्रयध में खूँटी कहते हैं ।

गठुचा—संज्ञा पुं० [हि० गैठ] (१) कपड़े का वह टुकड़ा जिसे जुलाई करघे में इस लिये रखते हैं कि उसके ताने से ताने के तानों को गठ कर धुनने के लिये चढ़ावे । (२) भूसे के छोटे छोटे गाँठुरा टुकड़े जो खलिहान में फँक दिए जाते हैं । गठुरा । गठुरा । खूँटी ।

गठौद—संज्ञा स्त्री० [हि० गैठ + द] (१) गैठ की पैघाई । गिरद-बंदी । (२) वह माल जो अन्न वा धान्य पर अमानत की तरह रक्खा जाय । धरोहर । धाती ।

गठौत—संज्ञा स्त्री० [हि० गठना] (१) मेल । मिलाप । मिश्रण । धनिष्ठता । (२) गठी गठाई यात । मिल कर पकी की हुई यात । श्रांत साँट । अभिसंधि ।

क्रि० प्र०—करना ।—गाँठना ।

(३) वयस्युक्ता । मोगानियत ।

गठौती—संज्ञा स्त्री० [हि० गठना] (१) मेल जाल । मंत्रो । धनिष्ठता । (२) गठी गठाई यात । श्रांत साँट । अभिसंधि । पद्मचक्र ।

क्रि० प्र०—करना ।—गाँठना ।

गडक, गडंग—संज्ञा पुं० [हि० गड + ङ] यह स्थान जहाँ धातु गोल और हथियार आदि रखे जाते हैं । मेगडकीन ।

गडंगी—संज्ञा पुं० [सं० गड, उ० हि० गरो] [वि० गडंगिया] (१) धमंड । शोली । डींग । (२) धातुस्थान । यज्ञाई ।

मुहा०—गडंग मारना वा डींगमारा = (१) डींग मारना । शोली धराना । यद् यद् के बातें धराना । (२) धमंडकार धराना । शोली धराना ।

गडंगिया—वि० [हि० गडंग] धमंडी । डींग मारनेवाला । शोली-वातु । यद् यद् कर बात करनेवाला ।

गडंगत—संज्ञा स्त्री० [हि० गडंग] वह वस्तु जिसे लोग टोकने वा अभिचार के लिये गाड़ देते हैं । तांत्रिक वा प्रेत-विद्या के जाननेवाले प्रायः मारन, मोहन और खबादन आदि के लिये कुछ पदार्थों को मंत्र पढ़ कर किसी धारा में गाड़ देते हैं ।

श्रीर इस गङ्गाने को गङ्ग'त कहते हैं। यह गङ्ग'त कमी कमी आगतुक दुःखों के निवारण के लिये भी की जाती है।

गङ्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोट। आङ्ग। (२) घेरा। वार दीवारी। यह घुसस या टीला जो किसी स्थान के चारों ओर बनाया जाय। (३) गङ्गा। राजई। (४) आकार। गङ्ग।

गङ्ग-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की मङ्गली।

गङ्गकाना-क्रि० अ० [अ०] गङ्ग गङ्ग शब्द करना।

गङ्गकाना-क्रि० अ० [अ०] गङ्ग + क [गङ्ग गङ्ग शब्द उत्पन्न करता। गङ्गगङ्गा।

क्रि० सं० [अ०] गङ्ग [हुवाना। शराघोर करना।

गङ्गकाना-संज्ञा पुं० [अ०] गङ्ग (१) हुवाना। (२) हुवाने का शब्द। गङ्गगङ्ग-संज्ञा पुं० दे० "गङ्गगङ्ग"।

गङ्गगङ्गा-संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का हुका।

गङ्गगङ्गाना-क्रि० अ० [हिं०] गङ्गगङ्ग गङ्गगङ्ग करना। कङ्कना। उ०—आज सवेरे से चादल गङ्गगङ्ग रहा है।

क्रि० सं० गङ्ग गङ्ग बोलना। गङ्ग गङ्ग शब्द निकालना।

गङ्गगङ्गाना। उ०—ये दिन भर बैठे बैठे हुका गङ्गगङ्गा करते हैं।

गङ्गगङ्गाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं०] गङ्गगङ्गा (१) गङ्गगङ्गाने का शब्द। गाङ्गी चलने, गाङ्गी चलने या चादल गङ्गाने आदि का शब्द। कङ्क। (२) हुका पीने का शब्द।

गङ्गगङ्गी-संज्ञा स्त्री० [हिं०] गङ्गगङ्गी नगाङ्गा। हुगी। उ०—डोल दमामा गङ्गगङ्गी शहनाई था वर। तनीने निकसि न वाडुरें साडु सती थी वर।—कवीर।

गङ्गगङ्गदङ्ग-संज्ञा पुं० [अ०] गङ्गदङ्ग [चियङ्गा लचा। उ०—बखान-बाबो का पहनावा बनाना है, पानामे की मोहङ्गियाँ हतनी चाङ्गी रखते हैं कि उठायें तो सिर तक पहुँचे और पगङ्गियाँ का घेरा हतना बङ्गा कि घुलती का भी काम न पड़े, योग में तो छोटी मोटी गङ्ग से कम न होगी, वरन कहीं खूब जाये तो श्रद्ध से गङ्गगङ्ग का डेर हतना निकल पड़े कि एक टोकरी भरे।

गङ्गगङ्गा-संज्ञा पुं० [?] (१) धमकी। पुङ्गकी। (२) दबोच। (३) चकमा।

गङ्गगङ्गार-संज्ञा पुं० [हिं०] गङ्गना + दार [यह मौकर जो मस्त हाथी के साथ साथ भाडा लिए हुए चलता है और जब हाथी धुपर उधर धरने मन से जाना चाहता है तब उसे भाडे से मार कर राह पर ले चलता है। उ०—(क) धली धली नवला हिले, पिप प सात्रि सिं गार। ज्यों अनया बङ्गद्वार को लिये जात गङ्गद्वार।—मतिराम। (ख) धरे ते गुलसखाने दीच घेसे उमर दी चले मनाय महाराज सिवराज को। दावदार निरपि

रिलाने दीदलराज जैसे गङ्गद्वार बङ्गद्वार गङ्गाराज को।—भूपय।

गङ्गना-क्रि० अ० [सं०] गङ्ग + ना [(१) धँसना। घुसना। चुभना। जैसे, काँटा गङ्गना। उ०—खर्कें छुपि आनि गङ्गी उर में शूष रावर मैन रमे कलकै।—गुमान। (२) शरीर में घुसने की सी पीड़ा पहुँचाना। खुरखुरा लगना। उ०—पीठ के नीचे कंकड़ गङ्ग रहे हैं। (३) दई करना। पीड़ित होना।

विशेष—इस अर्थ में "गङ्गना" केवल "श्राँल" और "पेट" के साथ आता है। जैसे, श्राँल गङ्ग रही है। पेट गङ्गता है। (४) मिट्टी आदि के नीचे दबना। दफन होना। नीचे पड़ जाना। उ०—जमीन में गङ्ग पत्थर निकाले।

मुहा०—गङ्गे मुद्दे उखाड़ना = दबी दुश्वादे वा पुगनी बात उमाड़ना। (५) समाना। पैटना। उ०—स्यों न गङ्गिजाडु गाङ्ग गङ्गिरी गङ्गत जिन्हें गोरी गुलजन लारा निगङ्ग गङ्गाहती।—देव।

मुहा०—गङ्ग जाना = भे पना। लजित होना। लजाना। उ०—तुम तो बेदमा हो दूसरा बेई होता तो गङ्ग जाता। लज्जा ग्लानि आदि से गङ्गना = लज्जा आदि से छिद्र नीची करना। उ०—देसि भत गति सुनि खुदुवानी। सव सेवक गन गारहैं ग्लानि।—तुलसी।

(६) खड़ा होना। भूमि पर उठरना। जमीन पकड़ना। जैसे, कँडा गङ्गना, खामा गङ्गना। उ०—भूलेहु जहि विबोकात ही गङ्गि गाङ्गे रहे अति ही दगङ्ग पर। (७) जमना। स्थिर होना। उटना। उठरना। स्तम्भित होना। उ०—(क) उनकी श्रांस बहानें गङ्गी है। (ख) तुम तो जहाँ जाते हो वहाँ गङ्ग जाते हो। (ग) प्यारी कृप श्यामता की हीन गङ्गी श्यामता पँ कहे हनुमान इन काहू को न चीन्ही है।

गङ्गपंछ-संज्ञा पुं० [सं०] गङ्ग + पंछ [(१) एक बड़ो चिड़िया। (२) बङ्गकों का एक पंछ जिस में वे कितनी बङ्गकों से यह कह कर कि तुम्हें उड़ना सिखावेंगे उस के हाथ पैर बंदों में बांध देते हैं और प्योती दोल देते हैं।

मुहा०—गङ्गपंछ बनाना = मूख बनाना। बेवकूफ बनाना।

गङ्गप-संज्ञा स्त्री० [अ०] पानी की चङ्ग आदि में किसी वस्तु के सहसा समाने का शब्द। उ०—उसका पैर गङ्ग से पानी में चला गया।

मुहा०—गङ्गप से = गङ्गप शब्द करके (पानी) आदि में एक चारगी पड़ जाना।

विशेष—छट, चट आदि अनुकरण शब्दों के समान प्रकार सूचित करने के लिये इस शब्द के साथ भी प्रायः "सं" आता है।

गङ्गपना-क्रि० अ० [अ०] गङ्गप [(१) निगबना। सा खेना।

(२) किसी की चीज हड़म करना। किसी की वस्तु पर अशुचित अधिकार करना।

गङ्ग्या-संज्ञा पुं० [हिं० गङ्ग] (१) भारी गड्ढा जिसमें कोई वस्तु मट से चली जाय वा गिर पड़े। (२) धोखा खाने का स्थान।

गङ्गवङ्ग-वि० [हिं० गङ्ग = गङ्ग + वङ्ग = वङ्ग ऊँचा] [वि० गङ्गवङ्गिया] (१) ऊँचा नीचा। असमतल। उ०—गङ्ग वङ्ग रास्ते से मत चलो। (२) क्रमविहीन। अस्त व्यस्त। अँधबँध। ऊटपटांग। अनियमित। घेठिकाने का। घेठीक। उ०—उसका सय फाम गङ्गवङ्ग होता है।

संज्ञा पुं० (१) क्रमभंग। गोलमाल। ऊटपटांग कार्रवाई। नियम विरुद्ध कार्य। अल्पवस्था। कुमबंध। उ०—हम ने सय ठीक कर दिया है, अथ इसमें गङ्गवङ्ग मत करना।

यौ०—गङ्गवङ्गमाला = गोलमाल। अल्पवस्था। ऊटपटांग फाम। गङ्गवङ्गध्याय = दे० “गङ्गवङ्गमाला”।

(२) उपद्रव। दंगा। उ०—यहाँ गङ्गवङ्ग मत फरो, चलो।
क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

(३) (रोग आदि का) उपद्रव। धापति। उ०—शहर में आज कल यद्वा गङ्गवङ्ग है, मत जाये।

विशेष—कोई कोई इस शब्द को खीलिंग भी बोलते हैं।

गङ्गवङ्गा-संज्ञा पुं० [सं० गङ्ग, प्रा० गङ्ग] खता। गड्ढा।

गङ्गवङ्गाना-क्रि० अ० [हिं० गङ्गवङ्ग] (१) गङ्गवङ्गी में पड़ना। चकर में धाना। क्रम का ध्यान न होना। भूल में पड़ना। उ०—धोड़ी दूर तक तो उसने ठीक ठीक पढ़ा, पीछे गङ्गवङ्ग गया। (२) क्रमभ्रष्ट होना। अल्पव्यस्त होना। (३) अस्तव्यस्त होना। बिगड़ना। नष्ट होना। उ०—यहाँ का सय मामला गङ्गवङ्ग गया।

क्रि० सं० (१) गङ्गवङ्गी में डालना। चकर में डालना। (२) भ्रम में डालना। भुलवाना। (३) क्रमभ्रष्ट करना। अल्पव्यस्त करना। अँध बँध करना। बिगाड़ना। खराब करना।

गङ्गवङ्गिया-वि० [हिं० गङ्गवङ्ग] गङ्गवङ्ग करनेवाला। क्रम बिगाड़नेवाला। उपद्रव करनेवाला।

गङ्गवङ्गी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गङ्गवङ्ग] (१) अल्पवस्था। गोलमाल। दे० “गङ्गवङ्ग”।

गङ्गारा तथा-संज्ञा पुं० [दे० गङ्गा = गङ्गा + हिं० वारा] एक प्रकार का लोहा जो पहले मध्य भारत में निकलता था।

गङ्गारिया-संज्ञा पुं० [सं० गङ्गारिक, प्रा० गङ्गारिच] [स्त्री० गङ्गारि] एक जाति जो भेड़ें पालती और उनके ऊन से कंबल बुनती है। दे० “गङ्गारिया”।

यौ०—गङ्गारिया पुरान = अर्धरा गङ्गारियों की कहानी। गँवारों की बात।

गङ्गरी-संज्ञा स्त्री० दे० “गङ्गरी”।

गङ्गरू-संज्ञा पुं० दे० “गङ्गरू”।

गङ्गलवण-संज्ञा पुं० [सं० गङ्गलवण वा गङ्गलवण] वह नमक जो खिलों से विशेष कर सांभर से निकलता है। सांभर लवण।

गङ्गवाँस-संज्ञा स्त्री० [हिं० गङ्गा + वाँस] गाड़ी के पहिए का चिह्न। लीक।

गङ्गवाँ-संज्ञा पुं० दे० “गाङ्गा”।

गङ्गवाट-संज्ञा स्त्री० [हिं० गङ्गना] (१) ज़मीन में गाड़ने की क्रिया। (२) गाड़ना खोदने का काम।

गङ्गवाना-क्रि० सं० [हिं० गाड़ना का प्रे० रूप] गाड़ने का काम कराना। गाड़ने में लगाना।

गङ्गहा-संज्ञा पुं० [सं० गर्भ, प्रा० गङ्ग] [स्त्री० अण० गङ्गही] वह ज़मीन जो अपने आस पास की चारों ओर की ज़मीन से एक बारगी गहरी या नीची हो। ज़मीन में वह खाली स्थान जिसमें खंवाई, चौड़ाई और गहराई हो। खाता। गड्ढा। खूट।

क्रि० प्र०—करना।—खोदना।—भरना।—होना।

मुहा०—गङ्गा पड़ना = गङ्गा होना। उ०—यहाँ की मिट्टी वह जाने से जगह जगह गङ्गे पड़ गई है। गङ्गा खोदना =

खुराई करना। हानि पहुँचाना। उ०—तुम ने जो हमारे खिचे गङ्गा खोदा है उसका फल तुम्हें मिल जायगा। गङ्गा भरना

या पड़ना = (१) ठोड़ा भरना। कमी या चाप पूरा करना। उ०—वह तो खा पका कर चलते घने, गङ्गा भरने को हम

रह गए। (२) खली खली से पेट भरना। भली बुढ़ी चीज से पेट भरना। उ०—व्या करे पेट नहीं मानता, किसी तरह गङ्गा भरना ही पड़ता है। गङ्गे में पड़ना = अर्थभंगव में

पड़ना। फेर में पड़ना। कठिनाई में पड़ना।

गङ्गही-संज्ञा स्त्री० [हिं० गङ्गा] छोटा गङ्गा।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [सं० गण्य = समूह] ढेर। शक्ति। अदाला। शंवार।

यौ०—गङ्गावट्टाई।

गङ्गाकू-संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्ग] एक प्रकार की मट्टली।

गङ्गाना-क्रि० सं० [हिं० गङ्गना] खुशाना। चँताना। भौंकना।

क्रि० सं० [हिं० “गाड़ना” का प्रे० रूप] गाड़ने में लगाना। गाड़ने का काम कराना।

गङ्गाप-संज्ञा पुं० [अनु०] पानी आदि में डूबने का शब्द। उ०—पैर गङ्गाप से पानी में चला गया।

गङ्गापा-संज्ञा पुं० [हिं० गङ्गाप] गङ्गाप से डूबने लायक स्थान। गहरा स्थान।

गङ्गावट्टाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० गङ्गा = ढेर + वट्टाई] खेत की उपज की वट्टाई जिसमें बिना धाई हुई फसल के भाग लगाए जाते हैं।

गङ्गायत-वि० [हिं० गङ्गना] गङ्गनेवाला। खुभनेवाला। उ०—
धरों न गङ्गि जाहु गङ्ग गहरी गङ्गति जिन्हें गौरी गुलन खान
निगड़ गङ्गायती।—देव।

गङ्गारी-संज्ञा स्त्री० [सं० उँठक] (१) मंडलाकार रेखा। गोल

लकीर । वृत्त । (२) घेरा । मंडल । जैसे, गङ्गादीवार पापनामा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गंड = णिङ्] छाड़ी धारी । छाड़ी लकीरों की शक्ति । गंडा । जैसे, कनखनूरे की पीठ पर या रूप्य की पीठ पर जो धारियाँ होती हैं वे गङ्गारियाँ कहलती हैं ।

संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] (१) गोल चरती जिस पर रस्सी चढ़ा कर कुण्ड से पानी खींचते हैं । चिरनी । (२) चिरनी के बीच का गहरा गड्ढा जिसमें रस्सी बँटाई जाती है । (३) एक घास जिसका साग बनाया जाता है ।

गङ्गादीवार-वि० हिं गङ्गा + वार [(१) जिस पर गंडे वा धारियाँ पड़ी हों । जैसे, गङ्गादीवार रूपया, गङ्गादीवार कसीदा ।

(२) जिसमें गङ्गादी के पेंसा लंबा गड्ढा हो । (३) घेरदार ।

घौं—गङ्गादीवार पापनामा = घौंड़ी भोहरी का पापनामा ।

गङ्गाघन-संज्ञा पुं० [सं० गङ्गवचन] एक प्रकार का नमक ।

गङ्गासा-संज्ञा पुं० दे० "गङ्गासा" ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [हिं० गंड] कटी हुई फसल के बंडलों का ढेर जो दाएँ जाने के लिये खलिपान में रखता हो । गाँज । खरही ।

गङ्गाघटाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० गङ्गा = गंज + घटाई] यह घँटाई जिस में फसल दाएँ जाने के पहले बंडल सहित बाँटी जाय ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बघा । बघड़ा । (२) मट्टर बेल ।

गङ्गाघार-वि० दे० "गङ्गाघार" ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बतौरी । बूबड़ । (२) गलगंड ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० दे० "गङ्गावा" ।

गङ्गा-संज्ञा स्त्री० [हिं० गङ्गा] पानी पीने का एक छोटा घरतन जिसमें टेढ़ी लगी रहती है । यह गङ्गा से छोटी होती है ।

गङ्गा ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० दे० "गङ्गा" ।

गङ्गाल-संज्ञा पुं० [सं०] कुण्ड का धारमी ।

वि० कुण्ड । कुण्ड ।

गङ्गालना-संज्ञा पुं० दे० "गङ्गालना" ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [हिं० गंगा = गिरणा + उवा (प्रव०) -गेवा] वह छोटा जिसमें पानी गिराने के लिये बसल की गर्दन के आकार की एक पतली टेंटी लगी रहती है । समझा । उ०—गङ्गावन हीर पदारथ लागे । देखि विमोहे पुएर समाने ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० सरसों के फूलों का गुच्छा या गुलदस्ता जिसे गङ्गा में रख कर घसत के दिन धोग मंदिरों में चढ़ाने वा घड़े आदिमियों को भेंट करने के लिये जाते हैं ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा, पा० गङ्गा] [स्त्री० गङ्गा] एक जाति जो भैंसों, पावती और इनके ऊँट से कंकल चुपती है ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा = गङ्गा] एक रोग जिसमें चौपाये के गले में एक गोला सा बन् जाता है जिसके कारण वह

खाँसता रहता है । यह गोला जब तक चौपाये के गले से याहर नहीं निकल जाता वा टूट कर भीतर नहीं सरक जाता तब तक वह घसता करता है । चौपाये एक दूसरे को घाटते हैं, हुसले घाटने में उनके गले के भीतर कुछ रोएँ चले जाते हैं जो एक दूसरे से चिपटते जाते हैं और उन पर घास भूसी की तरह भी जमती जाती है । श्रंत में होते होते गंद सा एक गोला बन जाता है ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [हिं० गङ्गा] चुमाना । घँसाना । घुसेड़ना ।

गङ्गाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मास । कौर । (२) गुड़ ।

गङ्गालना-संज्ञा पुं० [हिं० गङ्गा + बाला, बोलना (प्रव०)] छोटी गाड़ी जिसमें चर्यों को चढ़ा कर फिरोते हैं ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [हिं० गङ्गा] पान की एक जाति ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [हिं० गङ्गा] कटिया । उ०—सुनि तुम्हार मँसार बड़ाना । योग कीन्ह तब कीन्ह गङ्गा ।—जायसी ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [सं० गण] [स्त्री० गङ्गा] एक ही आकार की ऐसी बस्तुओं का समूह जो एक के ऊपर एक जमा कर रखी हों । गंज । जैसे, ताश का गङ्गा । कागज का गङ्गा ।

मुह्रा-संज्ञा पुं० दे० "मुह्रा" ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [सं० गंज = गङ्गा] गड्ढा । खसा ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [हिं० गङ्गा] घाल मेल । धरला । येमेल की मिलावट । क्रमशून्य मिश्रण । उ०—मैं ने धरमी सब पने छुटि कर धरला किए थे उसने आकर सब गङ्गा कर दिया । वि० बिना किसी क्रम के मिला जुला । श्रद्धयंत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गङ्गा] वि० गङ्गा] भेड़ा । सेप ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० [सं०] गङ्गा] रिया ।

वि० भेड़ा का । भेड़ा रोधी । भेड़ा के पेंसा ।

घौं—गङ्गा-संज्ञा पुं० दे० "गङ्गा" । एक के पीछे दूसरे का गमन ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० दे० "गङ्गा" ।

गङ्गा-वि० [सं० गंज + व्याग] नीच । लुच्चा । बदमाश । पाजी ।

गङ्गा-वि० [सं० गंज + व्याग + घी] नीच । लुच्चा । बदमाश । पाजी ।

गङ्गा-संज्ञा स्त्री० [हिं० गङ्गा] (१) एक ही आकार की ऐसी बस्तुओं का ढेर जो सले ऊपर रखी हों । गंज । जैसे, कागज की गङ्गा, ताश की गङ्गा, पान की गङ्गा । (२) ढेर । समूह । गाँज । जैसे, आमों की गङ्गा ।

गङ्गा-संज्ञा पुं० दे० "गङ्गा" ।

गङ्गा-वि० [हिं० गङ्गा] कल्पित । बनापटी (बात) । उ०—सुम्हारी गर्वत बातों पर कौन विश्वास करे ।

संज्ञा स्त्री० (१) घनाचटी घात । कल्पित प्रसंग । मन की उपज । उ०—ये आध्यात्मिकाएँ मन की गड़त नहीं हैं, सर्वथा संयम हैं।—सरस्वती । (२) कुश्ती के तीन भेदों में से एक । यह कुश्ती भैसे, हाथी और भेड़ें आदि की लड़ाई का अनुकरण है । पंजाबी और मधुरा के चौथे प्रायः गड़त कुश्ती लड़ते हैं ।

गढ़—संज्ञा पुं० [सं० गढ़ = खोई] [स्त्री० रूप० गढ़ी] (१) खोई । (२) किला । कोट । उ०—गढ़ पर बसहि चार गढ़पती ।—जायसी ।

मुद्रा०—गढ़ जीतना या गढ़ तोड़ना = (१) क्लृप्ता जीतना । किले पर अधिकार करना । (२) कठिन काम करना । उ०—कौन सा गढ़ तोड़ना था जो इतनी देर लगी = (३) प्रथम समामग में कृतकार्य होना । (यात्री)

(३) युद्ध की सामग्री में एक लकड़ी की बड़ी संदूक वा फोडरी । इसमें कुछ श्राद्धमियों को बैठा कर किले में डाल देते हैं । वे लोग उसमें बैठे हुए सुरंग खोदते हैं । दबाया ।

गढ़कसान—संज्ञा पुं० [हि० गढ़ + अ० केषेज] किलेदार । किले की फौज का अफसर ।

गढ़त—संज्ञा स्त्री० [हि० गढ़ना] घनाचट । ढाँचा । रचना । धारुति । गढ़न—संज्ञा स्त्री० [हि० गढ़ना] घनाचट । गठन । उ०—उसके मुँह की गढ़न बड़ी लुभावनी है ।

गढ़ना—क्रि० सं० [सं० घटन, प्रा० घटन] (१) किसी सामग्री को काट छाँट वा ठोक ठाँक कर कोई काम की वस्तु बनाना । रचना । सुपटित करना । उ०—(क) सोनार दूकान पर गढ़ने गढ़ता है । (ख) गढ़े कुम्हार भरे संसार । (ग) तुलसी रही है डाढ़ी, पाहन गढ़ी सी काढ़ी, न जानै कहाँ ते आई कौन की कोही ।—तुलसी । (२) ठोक ठाँक कर सुझाल करना । तोड़ कर या झूल छाल कर डुरुल करना । उ०—इसमें गढ़ गढ़ कर ईंटे खगाई जायगी । (३) (घात) बनाना । फरोल कल्पना करना । मूठ मूठ की बात खड़ी करना । जैसे, गढ़ी हुई बात, बहाना गढ़ना, कथा गढ़ना, इत्यादि ।

मुहा०—गढ़ गढ़ कर बातें करना वा बनाना = झूठ मूठ की कल्पना करके बात कहना । नमक मिचं लगा कर बातें करना । उ०—तू मोही को मारन जानति । उनके चरित कहा कोउ जानै, उनहि कही तू मानति । कदम तीर ते मोहि खलाने गढ़ि गढ़ि बातें भानति । मटकति गिरी गागरी सिर ते श्रय पेसी सुधि टातति ।—सूर ।

(४) मारना । पीटना । ठोकना । उ०—तुम खप गड़े जाओगे तब मानोगे ।

गढ़पति—संज्ञा पुं० [हि० गढ़ + पति] (१) किलादार । उ०—गढ़ पर बसि चार गढ़पती । धनुपति गजपति भू-नरपती ।—जायसी (२) राजा । सरदार ।

गढ़वार*—संज्ञा पुं० दे० “गढ़वाल” ।

गढ़वाल—संज्ञा पुं० [हि० गढ़ + वाला] गढ़वाला । वह जिसके अधिकार में गढ़ हो ।

संज्ञा पुं० एक प्रदेश का नाम जो हिमालय वा उत्तराखण्ड में हरद्वार के उत्तर पड़ता है । बदरीनाथ और केदारनाथ नामक तीर्थ इसी प्रदेश में हैं ।

गढ़ा—संज्ञा पुं० दे० “गड़वा” ।

गढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० गढ़ना] (१) गढ़ने की क्रिया । गढ़ने का काम । (२) गढ़ने की मजूदारी । वह मजूदारी जो सोनारों बड़इयों आदि को कोई चीज बनाने के बदले में दी जाती है । गढ़ाना—क्रि० सं० [हि० गढ़ना का प्रे० रूप] गढ़वाना । बनवाना । गढ़ने का काम कराना ।

क्रि० अ० [हि० गढ़ = कठिन] खलना । कष्टकर प्रतीत होना । मुश्किल गुजरना । घुरा लगना । उ०—विना काम के किसी के घर जाना बड़ा गढ़ता है ।

गढ़िया—संज्ञा पुं० [हि० गढ़ना] गढ़नेवाला ।

गढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० गढ़] छोटा किला । किले वा कोट के ढंग का मजूदारी भूकान । जैसे, हनुमानगढ़ी ।

गढ़ीस*—वि० [हि० गढ़ + सं० ईय] गढ़ का मालिक । किलादार । गढ़पति । उ०—सोभा सुमेर की संधितटी किरीं मीन मवास गढ़ीस की घाटी ।—धामदधन ।

गढ़ैया—वि० [हि० गढ़ना] गढ़नेवाला । बनानेवाला । रचनेवाला । उ०—(क) पड़यो है छपद छुपिले कान्ह केहूँ केहूँ खोजिये खवास खासे क्यारी से पाल के । ज्ञान के गढ़ैया विनु गिरा के पढ़ैया पार खाल के कढ़ैया श्रो बड़ैया उर साल के ।—तुलसी । (ख) आनि धरयो नंद द्वार अति ही सुंदर सुदार मजबूत देलें बार बार सोभा नहिं बार पार धनि धनि धन्य है गढ़ैया ।—सूर ।

गढ़ाई*—संज्ञा पुं० [हि० गढ़] किलादार । गढ़पति ।

गाव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह । कुंड । जल्य । (२) भेगी । जाति । कोटि । (३) ऐसे मनुष्यों का समुदाय जिनमें किसी विषय में समानता हो । (४) जैनशास्त्रानुसार एक स्वधर या आचार्य के शिष्य । महावीर स्वामी के शिष्य । (५) वह स्थान जहाँ कोई स्वधर अपने शिष्यों को शिक्षा देता हुआ रहता हो । (६) सेना का वह भाग जिसमें तीन गुलम धर्पाव २७ हाथी, २७ रथ, ८१ घोड़े और १३२ पैदल हों । (७) नद्यों की तीन कोटियों में से एक । कल्पित ज्योतिष के अनुसार नद्यों के तीन गण हैं, देव, मनुष्य और राक्षस । अधिनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अश्लेषा, श्रमिष्ठिर और श्रवण देव गण हैं । पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ पूर्वभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तरभाद्रपद, भरणी, आश्लेष और रोहिणी मनुष्य गण हैं । और शेष विष्णु, मेष,

विद्याया, ज्येष्ठा, शतभिषा, मूल, घनिष्ठा, अश्लेषा और कृत्तिका राषट गण हैं। (८) धृं-द-शाघ्र में तीन षणों का समूह। लघु, गुरु के क्रम के अनुसार गण ८ माने गए हैं।

- यथा—सगण—५५५ (गुरु गुरु गुरु) जैसे, माघे जू ।
 दगण—१५५ (लघु गुरु गुरु) " सुनो रे ।
 तगण—३५५ (गुरु लघु गुरु) " राम के ।
 सगण—११५ (लघु लघु गुरु) " सुमिरे ।
 तगण—५५५ (गुरु गुरु लघु) " श्यावास ।
 जगण—१५५ (लघु गुरु लघु) " विमान ।
 भगण—३५५ (गुरु लघु लघु) " फारन ।
 नगण—१५५ (लघु लघु लघु) " सुजन ।

इनके अतिरिक्त २ भांगिक गण भी होते हैं, यथा—
 टगण—६ माघाशौं का
 टगण—६ " " "
 दगण—५ " " "
 दगण—३ " " "
 दगण—२ " " "

पर इनका प्रयोग प्राचीन ग्रंथों में ही मिलता है ।
 (१) व्याकरण में धातुओं और शब्दों के ये समूह जिनमें समान लोप, भागम, वर्णविकारादि हैं। ये दो प्रकार के हैं—
 एक धातु के गण दूसरे शब्दों के। शब्दों के गण गणपाठ में ही और धातुओं के गण धातुपाठ में। धातुओं के प्रथम दस गण हैं। म्यादि, अदादि, जुदोलादि वा ह्लादि, दिवादि, रवादि, गुदादि, रुधादि, सतादि, मयादि, चुगादि। (१०) शिव के परिपद। प्रमथ। (११) दूत। सेवक। परिपद।
 ३०—(क) जम-गन-सुं ह-मसि-अग अनुनासी। जीवन सुकृति हेतु जनु कासी।—तुलसी। (ख) गयन समेत सती तहै गई। तारीं दूष यान नहि कही के।—मूर। (१२) परिचारक घरी। अनुपरो के दूष। (१३) पचताती। अनुपायी।
 ३०—ये सब जहाँ के गण हैं, इनसे सावधान रहना। (१४) पोसा। एक मुगंथ मय्य। ३०—स्वेंद भरे तनसिग खरे, करज लपो गन टाम। सुपरे कप विधुरे धरी खरी लखन ते घाम।—शू० सत० ।

- गणक—संज्ञा पुं० [सं०] [ली० गणकी] औपतिपी ।
 गणककेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धूमकेतु जो तारापुंज के पैसा दिखाई पड़ता है। दूरदर्शिता के अनुसार यह मका का पुत्र है और इस प्रकार के धातु धूमकेतु हैं ।
 गणकयौगिका—संज्ञा ली० [सं०] इंद्रवारुणी ।
 गणदीक्षी—संज्ञा पुं० [सं०] वह धार्मिक जो बहुतों को पण करता हो ।
 वि० (१) बहुपाजक। बहुतों को पण करानेवाला। (२) गणेशरूपित। जो शिव या गणेश की रीति ग्रहण करे ।

गणदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] समूह-वारी देवता। ये एक प्रकार के देवता हैं जो समूह में रहते हैं। गणदेवता ६ हैं आदित्य १२, विरवेदेवा १०, वसु ८, तुषिग ३६, अश्विन ६४, धानिल ४३, महाराजिक २२०, साय १२, रद ११ ।

गणद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जिस पर मनुष्यों के गण वा समुदाय का समान अधिकार हो। सर्वसंपादाय की संरक्षि।
 गणधर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के जैनाचार्य जो तीर्थ-करो के शिष्य होते हैं। ये लोग तीर्थ-करो के उपदेशों का संग्रह कर उन्हें साचारंग आदि चारह श्रेणों में विभाजित करते हैं और शिष्यों में उनका प्रचार करते हैं ।

गणन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गणनैव, गणिन, गण्य] (१) गिनना। (२) गिनती।

गणनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गिनती। शुमार। (२) हिसाब। (३) संख्या। (४) केशव के मत से एक अलंकार जिसमें एक ही संख्या बार बार आई हो। ३०—(क) एक आत्मा चक रवि, एक शुक्र की दिष्टि। पूर्व दशन गणेश को, जानति सगरी सृष्टि। (ख) गंगांगम गंगेश दग प्रिय रेल गुण खेति। पावक काल त्रिशूल पक्षि, संख्या तीनि विष्टि।

गणनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणों का मालिक। (२) गणेश। (३) शिव।

गणनापक—संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० गणनविज्ञ] (१) गणेश। (२) शिव।

गणनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

गणनीय—वि० [सं०] (१) गिनने योग्य। गिनती के योग्य। (२) नामी। प्रसिद्ध।

गणप—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

गणपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणों का मालिक वा स्वामी। (२) गणेश। (३) शिव।

गणपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] वह पर्वत जहाँ प्रमथ वा शिव के गण रहते हैं। कैलास।

गणपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक ग्रंथ का नाम जिसमें अष्टाध्यायी में धातु हुए गणों के अंतर्गत शब्दों का प्रत्येक गण में दितर-वाया है।

गणराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह राज्य जो किसी एक राजा के अधीन न हो बल्कि प्रजा में से चुने हुए सुविधों वा गणों के द्वारा चलाया जाता है। (२) एक देश जो दूरदर्शिता के अनुसार उपास्यमान्युनी, हस्त और विश्व के अधिका में है।
 गणपती—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मवति दिव्योदान की माता का नाम।

गणायिप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणों का मालिक वा अधिपति। (२) गणेश। (३) जैसे के अनुसार साधुओं के समुदाय में जो सब से श्रेष्ठ वा दृढ़ हो। साधुओं का अधिपति वा महंत।

गणारथक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणों का स्वामी । (२) गणेश ।
(३) शिव ।

गणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेद्या । (२) गनियार वृष्ट ।
(३) एक फूल जो चमेली की तरह का होता है । (४) नायिका के तीन भेदों में से एक । यह नायिका था स्त्री जो द्रव्य के योग से नायक से प्रीति रखे ।

गणिकारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियार का पेड़ ।

गणिकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियार का पेड़ ।

गणित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शास्त्र जिसमें मात्रा संख्या और परिमाण का विचार हो । इसमें निर्धारित नियमों और क्रियाओं द्वारा ज्ञात मात्राओं, संख्याओं वा परिमाणों के संबंध के आधार पर अज्ञात मात्रा, संख्या और परिमाण का निश्चय किया जाता है । अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, कोणमिति, आदि इसकी शाखाएँ हैं ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

(२) हिसाब ।

गणितज्ञ-वि० [सं०] (१) गणित शास्त्र जाननेवाला । हिसाबी ।
(२) ज्योतिषी ।

गणेश-संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के एक देवता जिन का सारा शरीर मनुष्य का है पर सिर हाथी का सा है । इनके चार हाथ और एक दाँत है । तोंद निकली हुई है । सिर में तीन आँखें और खलाट पर अर्धचंद्र हैं । ये महादेव के पुत्र माने जाते हैं । इनकी सवारी चूहा है । पुराणों में लिखा है कि पहले इनका सिर मनुष्य का सा था पर शनैश्चर की दृष्टि पड़ने से इनका सिर कट गया । इस पर विष्णु ने एक हाथी का सिर काट कर धड़ पर जोड़ दिया । इसके पीछे ये एक धार परशुराम की से भिड़े जिस पर परशुराम की ने एक दाँत परशु से तोड़ डाला । किसी किसी पुराण में लिखा है कि दाँत रावण ने उखाड़ा था । किसी के मत से वीरभद्र या काचित्केय ने दाँत तोड़ा था । इसी प्रकार सिर कटने के विषय में भी मतभेद है । गणेश महादेव के गणों के अधिपति हैं । पुराणों का कथन है कि जो शुभकार्यों के आरंभ में इनकी पूजा नहीं करता उसके काम में ये विघ्न कर देते हैं । इसी लिये समस्त मंगल कामों में इनकी पूजा होती है । यह लेखक भी करते हैं । ऐसा प्रसिद्ध है कि व्यास के महाभारत को पहले पहल इन्होंने लिखा था । इनके हाथों में पाश, अत्रिश, प्रस और परशु है । ये हिंदुओं के पंचदेवों अर्थात् पाँच प्रधान देवताओं में हैं ।

पर्याय०—विनायक । विघ्नराज । हँसातुर । गद्याधिप । एकदंत । हेरंय । क्षंबोदर । गजानन । विघ्नेश । परशुपायि । गजास्य । आशुवा । शूर्पकर्ण । गजानन ।

वि० गणों का मालिक । गण का स्वामी । गण में जो प्रधान हो ।

गणेशकुसुम-संज्ञा पुं० [सं०] लालकनेर ।

गणेशक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] योग की एक क्रिया जिसमें वैजली आदि की सहायता से युवा का मूल साफ करते हैं ।

गणेशचतुर्थी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों और माघ की शुद्ध चतुर्थी । इस दिन गणेश का मत और पूजन किया जाता है ।

गणेशपुराण-संज्ञा पुं० [सं०] एक उप पुराण का नाम ।

गणेशभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर ।

गण्य-वि० [सं०] (१) गिनने के योग्य । गिनती के लायक ।

(२) नित्यकी पद्धत है । जिसे लोग बड़ समझे । प्रतिष्ठित ।

धा०—गण्यमान्य = प्रतिष्ठित ।

गतंङी-संज्ञा पुं० [सं० गत, ङ] [स्त्री० गतंङी] हिजड़ा । नपुंसक ।
(मारवाड़ी) ।

गत-वि० [सं०] (१) गया हुआ । बीता हुआ । जैसे, गत मास, गत दिन, गत वर्ष ।

विशेष—समस्त पद के आदि में यह शब्द 'गया हुआ', 'रहित', 'शून्य' का अर्थ देता है और अंत में 'प्राप्त', 'प्राया हुआ', 'पहुँचा हुआ' का अर्थ देता है । जैसे, गतप्राय, गतायु तथा कंगाल, कुचिगत । ३०—अंत्रजित-गत सुभ सुमन त्रिभि सम सुगंध कर दाउं ।—तुलसी ।

मुहा०—गत होगा = मरना । मर जाना ।

(२) रहित । हीन । खाली । ३०—सरिता सर निर्मल जल तोहा । संत हृदय जस गत भद्र मोहा ।—तुलसी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गते] (१) अचस्था । दूरा । हालते ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—गत का = काम का । अचछा । भ्रष्ट । ३०—गत का कपड़ा भी तो उसके पास नहीं । गत बनाता = (१) दुर्दशा करना । दुर्गति करना । (२) अग्रमान करना । अटना उपटना । मानना पीटना । दंड देना । खर लेना । ३०—घर पर जाओ, देखां तुम्हारी कैसी गत बनाई जाती है । (३) हँसी उठके में लज्जित करना । उपहास करना । क्षिप्ताना । उल्लेख करना । ३०—ये अपने को यज्ञा बोलनेवाला लगते थे, कल उनकी भी खूब गत बनाई गई ।

(२) रूप । रंग । थपे । आकृति ।

मुहा०—गत बनाना = (१) रूप रंग बनाना । वेप धारण करना । ३०—तुमने अपनी क्या गत बना रखी है । (२) अदृष्ट रूप रंग बनाना । आकृति विगाडना । ३०—हाली में उनकी खूब गत बनाई जायगी ।

(३) सुगति । उपयोग । काम में लाना । ३०—ये ग्राम रखे हुए हैं, इनकी गत कर डालो ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(१) दुर्गति। दुर्गत्या। नाश। उ०—तुमने तो इस किताब की गत कर डाली।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) श्रुतक का क्रिया-कर्म। (३) संगीत में धारों के कुछ योजनों का क्रमबद्ध मिलान।

क्रि० प्र०—निकालना।—थमाना।

(३) मूल्य में शरीर का विशेष संभालन और सुज्ञा। नाचने का छटा। जैसे, मोर की गत, धाली की गत, सुरसुर की गत।

क्रि० प्र०—भरना।

गठका—उग्रा पु० [सं० गठ ना गठक] (१) लकड़ी का एक बड़ा जिसके ऊपर चमड़े की छाल चढ़ी रहती है। यह बड़ा ढाई तीन हाथ लंबा होता है जिसमें प्रायः दस बी लखा रहता है। लोग इसे लेकर खेलते हैं। खेलने समय दो खेलाड़ी परस्पर खेलेते हैं। खेलनेवाले दाढ़ने हाथ में गठका और बायें हाथ में फरी रखते हैं। गठके की धार को विपरी फरी से रोकता है और रोक न सकने की अवस्था में फोट धा मार पाता है। कभी कभी खेलाड़ी केवल गठके ही से खेलते हैं उस समय में खेल को एकंगी कहते हैं। (२) यह खेल जो फरी गठके से खेला जाता है।

गठकुल—उग्रा पु० [सं०] यह संपत्ति जिसका कोई अधिकारी न बचा हो। शावरासी मास वा जायदाद।

गठप्रत्यागत—उग्रा पु० [सं०] संगीत में ताल के साठ भेदों में एक। गठप्रत्यागता—उग्रा शी० [सं०] धर्मशास्त्र में वह स्त्री जो अपने पति के घर से उसकी आज्ञा के विना निकल कर चली गई हो और फिर कुछ दिन बाद स्पष्ट पतिहर रह कर अपने पति के घर लौट आई हो। ऐसी स्त्री के साथ उसके पूर्व पति का शास्त्रानुसार पुनर्विवाह संस्कार होना लिखा है।

गठांक—वि० [सं०] जिसमें संपुण्य के चिह्न अथ न रह गए हों। गवा होता। निकम्मा। उ०—जाति का रघु महाहय या पर कदर्यता में अर्थत पामर महायुद्ध से भी गठांक केवल नाम-धारी ब्राह्मण था।—सै भवान और एक सुज्ञान।

गतागत—वि० [सं०] आया गया।

संज्ञा पु० [सं०] आवागमन। अनुसरण।

गतात्—उग्रा शी० [सं० मर्क] (१) पैल के जूए में वे दोनों लकड़ियाँ जो उपरोक्षी और तरोक्षी के बीच समावांतर लगी रहती हैं। इन लकड़ियों के इधर उधर पैल गाने जाते हैं। (२) यह रस्मी जो जूए में पैल सांघने पर दोनों को गले के सीपे से जो आकर लगा दी जाती है जिसमें पैल जूए को सबसे धीरे नहीं सकने। (३) यह रस्मी जिसमें पैल बांधा जाता है। जल।

गतात्—उग्रा शी० दे० "गतात्"।

गतात्—उग्रा शी० [सं०] (१) जिसे श्रुत वा रजो दर्शन न होता हो। (२) बंध्या। (३) वृद्ध।

गति—उग्रा शी० [सं०] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान पर क्रमशः जाने की क्रिया। निरंतर स्थान-त्याग की परंपरा। चाल। गमन। उ०—यह बड़ी मंद गति से जा रहा है। (२) हिलने डोलने की क्रिया। हरफन। उ०—उसकी नाड़ी की गति मंद है। (३) शयस्था। दशा। हालत। उ०—मह गति स्वीप छुट्टू दर केरी।—तुलसी। (४) स्वप्न। वेप। उ०—तन खीन, केश थति पीन पावन केश अभावन गति परे।—तुलसी। (५) पट्टूच। प्रवेश। पैठ। दण्ड। उ०—(क) मनुष्य की क्या बात यहाँ तक बायु की गति भी नहीं है। (ख) राजा के यहाँ तक उनकी गति कहाँ। (ग) इस शास में उनकी गति नहीं है। (६) प्रयान की सीमा। संतित उवाय। दौड़। तद्विपर। उ०—उसकी गति बस यहाँ तक थी, आगे वह क्या कर सकेगा ? (७) सहारा। सहजत्व। शरण। उ०—तुमहिँ छुट्टि दूसरि गति नाहीं। बसहु राम तिनके उर माहीं।—तुलसी। (८) चाल। घेठा। करनी। क्रिया कलाप। प्रयत्न। उ०—उसकी गति सदा हमारे प्रति-दूल रहती है। (९) लीला। विधान। माया। उ०—द्वानिधि तेरा गति जलि न परे।—सूर। (१०) ढंग। रीति। चाल। दसूर। उ०—बढ़ा की से गति हरि निरासी है। (११) जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन।

विशेष—हिंदू शास्त्रों के अनुसार जीव की तीन गतियाँ हैं। ऊर्ध्वगति (देवगति), मध्यगति (मनुष्य योगि) और अधोगति (तिर्य्यकगति)। जैन शास्त्रों में गति पाँच प्रकार की है—पारकगति, तिर्य्यगति, मनुष्यगति, देवगति, और सिद्धगति।

(१२) श्रुतु के उपरांत जीवात्मा की दशा। उ०—(क) गीघ अथम लग धानिप भोगी। गति दीर्घीं जो जांचत जोगी।—तुलसी। (ख) सायुन की गति पावन पारी।—केशव। (१३) श्रुतु के उपरांत जीवात्मा की उत्तम दशा। मोक्ष। मुक्ति। उ०—(क) पापियों की गति नहीं होती। (ख) हे हरि कौन दोष तोहि दीजे। जेहि उवाय सपने दुर्लभ गति सोइ मिसि दास्त कीजै।—तुलसी। (१४) कुत्सी आदि के समय खदनेवालों के पैर की चाल। पैतरा। उ०—जे मल युद्धि पै च वनिस गतिहु मल्यगतादि। से करत लंका-नाय पानरनाय हैन न ममादि।—पुरुषोत्तम। (१५) प्रहों की चाल जो तीन प्रकार की होगी है, रतिप्र, मंद और उच्च। (१६) ताल और स्वर के अनुसार षंग-चालन। उ०—(क) सव षंग करि राखी सुधर नायक नेह मिरास्य। रस सुत सेति अनंत गति पुतरी पाउर हाय।—बिहारी। (ख) कबहिँ धरप आनर थक सीका। अनुहरि नाख गतिहि करि नाय।—तुलसी। (१७) मित्रा आदि बचाने में कर्म-रि।—कर्मवद निबन्ध। दे० "गल (१)"।

गतिमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] शून्य में एक प्रकार का अंगहात ।
 गतिया।—संज्ञा स्त्री० [हिं० गत + इय (प्रत्य०)] सवलाची ।
 गतिविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित और विज्ञान का वह विभाग जिस में द्रव्य की समता या गति संबंधी सिद्धांत निरधारित किए जाते हैं ।

गत्त—संज्ञा पुं० [दे०] कागज़ के कई परतों को साठ पर बनाई हुई दफती जो प्रायः जिल्द आदि बांधने के काम आती है ।
 छुट ।

गत्तालछाती—संज्ञा पुं० [सं० गत्त, प्रा० गत्त + हिं० खाता] बहा-
 खाता । गढ़े कीती रकम का खेला ।

मुहा०—गत्तालछाते में जाना = हज़म हो जाना । हड़प हो जाना ।
 उ०—हमने जो १० पेनागी दिए वह सब गत्तालछाते में गए ।
 गत्तालछाते लिखना = हज़म हुआ समझना । गया हुआ समझना ।

गत्य०—संज्ञा स्त्री० दे० “गय” ।
 गत्यर—वि० [सं०] [श्री० गत्वा] (१) जानेवाला । गमनशील ।
 (२) शक्ति । नारायण ।

गतवरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाय जो ८० हाथ लंबी, १० हाथ चौड़ी और ८ हाथ ऊँची होती थी और समुद्रों में चलती थी ।

गद्य—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ, प्रा० गद्य] (१) पूंजी। जमा। गाँठ का धम । उ०—(क) चिंता न कह अचित रहू देनहार समरथ्य । पसू पखेरू जंतु गिव, तिनकी गाँठि न गद्य ।—कवीर । (ख) शक्ति मलीन दृषमान कुमारी । हरि श्रम जल अंतर तनु भीजे ता क्षालच न धुवावति सारी । अधोमुख रहति उरघ नहिँ चितवति ज्यों गद्य हारे धचित लुआरी ।—सूर । (ग) बाजार घाट न थनह भरनत वस्तु विनु गद्य पाइये ।—तुलसी । (२) माल । उ०—मेरे इन नयनन इतने करे । मोहन बदन चकोर चंद्र ज्यों इकटक तेँ न दरे ।..... रही तडी खिगि लाज लकुट ले एकहु डर न बरे । सुरदास गय होठो काहे पारवि दोष धरे ?—सूर । (३) छुट । गरोह । उ०—पटकारि सेलहिँ हत्य मैं । हय हाँकियाँ अरि गत्य मैं ।—सूदन ।

गद्यना—किं० सं० [सं० ग्रन्थ] एक को दूसरे से मिलाना । एक में एक जोड़ना । आपस में गद्यना । उ०—रथ ते रथ गथि मार मचावहिँ । भट ते भट फिर तनहिँ मचावहिँ ।—गोपाल ।

गद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) निप । (२) रोग । (३) श्रीकृष्णचंद्र का छोटा भाई । यह भगवान् का भक्त था । उ०—(क) बल्यो धुपद दूध विसद घोर भद्रमत घोर धर । लँग पदचर हय दुदद दिवे गदबंध घेर धर ।—गोपाल । (ख) साथकि दानपती छतवर्मा । गद श्लुकु निसदु छतवर्मा ।—रघुराज ।

घा०—गदाग्रन = कृष्य । गदबंधु = कृष्य ।

(४) रामचंद्रजी की सेना का सेनापति एक क्षत्रिय । उ०—संग नील नल कुसुद गद जामयंत सुवराज । चले रामपद नाइ सिर सगुन सुमंगल साज ।—तुलसी । (५) एक असुर का नाम ।

संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो किसी गुलगुली वस्तु पर या गुलगुली वस्तु के आघात लगाने से होता है । जैसे, पीठ पर गेंद गद से गिरा ।

घा०—गदाग्रद = एक के ऊपर एक । लगातार (आघात) ।

गदका—संज्ञा पुं० दे० “गतका” ।
 गदकारी—वि० पुं० [अनु० गद + कार (प्रत्य०)] [श्री० गदकारी] गुलगुला । गुदगुदा । मुलायम और दवाने से दब जानेवाला । उ०—गोरी गदकारी परे, हँसत कपोल न गाइ । कैसी लखति गँवारि यह, सुनकिव्या की आइ ।—विहारी ।

गदगद—वि० दे० “गद्गद्” ।

गदगदा—संज्ञा पुं० [दे०] रत्ती का पाँधा ।
 गदचाम—संज्ञा पुं० [सं० गदचम] हाथी का एक रोग जिसमें उसकी पीठ पर घाव हो जाता है ।

गदना—किं० सं० [सं० गदन] कहना । उ०—गदेउ गिरा गीर्वाणन सेग गुणि बहुरि यतावहु थाता । कौन उपाय पाय सुर अघि गुणि करहिँ लंकपति घाता ।—रघुराज ।

गदम—संज्ञा पुं० [अ० कदम या दे०] वह लकड़ी या कड़ी जो नाव धराने या भरमत्त करने के समय उसके मेंदे में दोनों ओर हूब लिये लगा देते हैं कि जिसमें वह धर उपर गिर न पड़े । घाम । छाए । पुरता ।

किं० प्र०—लगाना ।

गदर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) हलचल । लजबली । उपद्रव । (२) बलया । यगायत । विद्रोह ।

किं० प्र०—करना ।—मचाना ।

गदर—संज्ञा पुं० [हिं० गप] पुष्टिमार्ग के अनुसार एक प्रकार की रुईदार यगलवेदी जो गाड़े में टाकुर जी को पहनाते हैं ।

गदरा—वि० दे० “गद्दर” ।

गदराना—किं० अ० [अनु० गर] (१) (फल आदि का) पकने पर होना । परिपक्व होने के निकट होना । उ०—हल वेद के फल खूब गदराए हैं । (२) जवानी में अँगो का भरना । युवावस्था के आरंभ में शरीर का पुष्ट और सुदौल होना । जैसे, गदराया यदन । (३) आँस में कीचड़ आदि भ्राना । आँसु भ्राने पर होना । जैसे, आँसु गदराना ।

गदला—वि० [प्रा० गंदा] मरमला । गंदा । मिट्टी या कीचड़ मिश्रा हुआ । (पानी के लिये)

गदलाना—किं० सं० [हिं० गदला] गदला करना । मरमला करना । (पानी के लिये)

किं० अ० गदला होना । मरमला होना ।

गदहपचीसी—संज्ञा स्त्री० [हि० गरहा + पचीसी] प्रायः १६ से २६ वर्ष तक की अवस्था जिसमें लोगों का विश्वास है कि मनुष्य अननुभवी रहता है और उसकी बुद्धि अपरिपक्व होती है। उ०—सच पूछो तो विचार के अभावका उमर के घँसने ही पर मिलता है, गदह पचीसी प्रसिद्ध है।—हिं दी प्रदीप।
 गदहपन—संज्ञा स्त्री० [हि० गरहा + पन (प्रत्य०)] मूर्खता। बेवकूफी।
 गदहपूरना—संज्ञा स्त्री० [सं० गरह = रोग हरनेवाला + पुनर्ना] पुनर्नेवा नाम का पौधा जो दवा के काम में आता है। दे० “पुनर्नेवा”।

गदहरा—संज्ञा पुं० (१) दे० “गदहा”। (२) दे० “गद्रेला”।
 गदहला—संज्ञा पुं० दे० “गदहिला”।
 गदहलोट—संज्ञा स्त्री० [हि० गरहा = गवा + लोटना] कुत्ती का एक पंच।

गदहलोटन—संज्ञा पुं० [हि० गरहा + लोटना] (१) पक्कावट मिटाने या प्रसन्नता धादि के लिये गदहे का जमीन पर लोटना। (२) वह स्थान जहाँ पर गदहा लोटता है।
 गिरोप—साधारणतः लोगों का विश्वास है कि ऐसी स्थान पर पैर रखते ही मनुष्य थक जाता है और उस के पैरों में दर्द होने लगता है।

गदहहँचू—संज्ञा पुं० [हि० गरहा + हँचू (गदहे की बोली)] लड़कों का एक खेल जिसमें एक लड़का एक दूसरे लड़के की थाँतें बंद करके बैठ जाता और उस लड़के से शेष हथर वपर छिपे हुए लड़कों का पता पृथुता है। जिन लड़कों का पता बंद ठीक बतला दे उन्हें “गदही” और जिन्हें ठीक न बतला सके उन्हें “गदहा” कहते हैं। पीछे “गदहे” एक एक करने “गदहियों” पर चढ़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। इस खेल को “गदहा गदही” भी कहते हैं।

गदहा—संज्ञा पुं० [सं०] रोग हरनेवाला। वैद्य। चिकित्सक।
 संज्ञा पुं० [सं० गरभ, प्रा० गरह] [की० गरही] (१) घोड़े के आकार का पर बसते कुड़ घोड़ा एक प्रसिद्ध पौधाया जो प्रायः मटमले रंग का और देह हाथ ऊँचा होता है। इसका कान और गिर अपेक्षाकृत बड़ा होता है और पैर छोटे और बहुत मजबूत होते हैं, जिनके कारण यह कैनी या डाहुर्धी जमीन पर बड़ी सरलता से चल सकता है। यह बहुत मजबूत होता है और बहुत अधिक बोझ उठा सकता है। इस देश में इन से प्रायः घोषी, कुन्हार धादि अधिक काम लेते हैं। अंगली गदहे, जो कि प्रायः मध्य एशिया और फारस धादि में ऊँच बांध कर रहते हैं अधिक धवल होते हैं, पर पाबलू गदहे थोड़े होते हैं। किसी किसी देश के गदहे सफ़ेद रंग के या घोड़े से बड़े भी होते हैं। फारस में गदहे का शिकार किया जाता है और लोग उसका मांस बड़ी रुचि से खाते हैं। इसकी अवस्था प्रायः २०

से २६ वर्ष तक की होती है। यूरोप धादि देशों में इनके धमड़े के जूते और थैले धादि बनते हैं। घोड़ी के साथ गदहे का अथवा गदही के साथ घोड़े का संयोग होने से खबर की उत्पत्ति होती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस कुछ भारी और दलप्रद होता है और इसका मूत्र कड़ुया, गरम और कफ, महापात, विष तथा उन्माद का नाशक और दीपक माना गया है। गधा। गदमं। खर।

पय्यां—चम्रीवान। घालेय। रासम। खर। शंककर्थे। पूसर। भारग। येराय। शीललावाहन। वैशाखनंदन।
 धौं—गदहलोटन। गदहहँचू।
 मुं—गदहे पर घड़ना = बहुत बेदमन या बदनम करना। गदहे का हल चलना = थिलकुल उजड़ जाता। बरसाद हो जाता।
 उं—बहाँ कुछ दिनों में गदहों के हल चलेंगे।
 (२) मूले। बेवकूफ़। नासमक।

धौं—गदहपचीसी।
 गदहागदही—संज्ञा स्त्री० दे० “गदहहँचू”।
 गदहियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० गरहा] गदही।
 गदहिला—संज्ञा पुं० [सं० गरभो, प्रा० गरहो] [की० गदहिलो] (१) वह गदहा जिस पर हँट मुरली धादि खाते हैं। (२) गोमयूरे की तरह का एक विपैला कीड़ा जो बने धादि की फुल में लग कर उसे मत् करता है।

गदाँवर—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ।
 गदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्राचीन अस्त्र का नाम जो लोहे का होता है। इसमें लोहे का एक डंडा होता है जिसके एक सिरे पर भारी लट्टू लगा रहता है। इसका बँधा थकड़ कर लट्टू की ओर से शत्रु पर प्रहार करते हैं। (२) कसलत के सामानों में से एक, जिसमें बस के एक मजबूत बँदे के सिरे पर पत्थर का गोला छेद कर लगाते और उसे मुहर की मति भाँजते हैं। लोढ़।

गदाई—वि० [का० गम = फकीर + ई० (प्रत्य०)] (१) तुच्छ। नीच। सुद्र। (२) धादिपात। रदी।
 गदाकाँ—वि० [हि० गद] गुदार और सुडौल शरीरवाला।
 संज्ञा पुं० किसी को उठाकर जमीन पर पटकने की क्रिया।
 मुहा०—गदाका सुपाना = मिडकी मुनाना। फटकारना।
 गदाघर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। नायायय।
 विशेष—विष्णु ने गवासुर नामक राक्षस की हथियों से एक गदा बना कर धारय की, इसी से उनका नाम गदाघर पड़ा।
 वि० गदा धारय करनेवाला। जिसके पास गदा हो।
 गदाला—संज्ञा पुं० [हि० गंदा] हाथी पर कसने का गदा।
 गदाधारय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्राचीन बाजा, जिसमें तार लगा रहता था।
 गदित—वि० [सं०] कहा हुआ। कथित।

गद्दी-वि० [सं० गदित्] [स्त्री० गदिनी] (१) रेगी। (२) जो गद्दा लिखे हो। जिसके पास गद्दा हो।

गद्दला-संज्ञा पुं० [हिं० गदा] (१) रुई या पर आदि से सजा हुआ बहुत मोटा शोड़ना या बिछौना। (२) टाट का बना हुआ वह मोटा और भारी गद्दा जो हाथी की पीठ पर कसा जाता है।

[देय०] छोटा लड़का। बालक।

गद्दीसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गदी] हथेली।

गद्गद्-वि० [सं०] (१) अत्यधिक हर्ष, प्रेम, श्रद्धा आदि के आवेग से इतना पूर्ण कि अपने आपको भूल जाय और स्पष्ट शब्द उच्चारण न कर सके। (२) अधिक हर्ष, प्रेम आदि के कारण रुका हुआ, अस्पष्ट या अश्लेष्य। जैसे, गद्गद् धाणी। गद्गद् कंठ। (३) मसज। अर्थात् विलुप्त।

संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जिसमें रोगी शब्दों का स्पष्ट उच्चारण न कर सके अथवा उसके दोषवशात् एक एक अक्षर का कई कई बार उच्चारण करे। यह रोग या तो जन्म से होता है या चीज में लकवे आदि के कारण हो जाता है। हकलाना।

गद्-संज्ञा पुं० [अ०] (१) मुलायम जगह पर किसी चीज के गिरने का शब्द। (२) किसी गरिष्ठ या अशुद्ध न पकनेवाली चीज के कारण पेट का भारीपन।

मुद्दा- (किसी चीज का) गद् करना = (किसी चीज का) पेट में जाकर न पचना और जम जाना। गद् धरना = गद् का रोग होना।

(३) एक कल्पित लकड़ी जिसके विषय में गैबार्डों का विश्वास है कि वह जिसे स्पर्श करा दी जाय उसे मूर्ख बना देती अथवा स्पर्श करानेवाले को चरा में कर देती है।

मुद्दा- गद् मारना = अपने चरा में करना। गद् मारा जाना = जड़ हो जाना। डेवकूक बन जाना।

वि० जड़। मूर्ख। डेवकूक।

गद्म-संज्ञा पुं० [देग०] यीले रंग की एक छोटी चिड़िया जिसका पैर सफ़ेद और पेट लाल होता है।

गद्दर-वि० [देग०] (१) जो अच्छी तरह पका न हो। अचक-चरा। अथपका। (२) मोटा गद्दा।

गद्दा-संज्ञा पुं० [हिं० गद से अ०] (१) रुई पवाल आदि भरा हुआ बहुत मोटा और मुदमुदा बिछौना। भारी तोशक आदि। गद्दला। (२) टाट का बना हुआ फुट भर मोटा एक चौकोर बिछौना जिसके बीच में प्रायः गद्द भर लंबा एक छेद होता है और जो हाथी की पीठ पर दौदा करने से पहले रख कर बांधा जाता है।

क्रि० प्र०-कसना।-लौचना।

(३) घाल, पवाल, रुई आदि मुलायम चीजों का बोझ।

(४) किसी मुलायम चीज की मार या ठोकर।
क्रि० प्र०-लगाना।-लगाना
संज्ञा पुं० दे० "गद्दहिला"।

गद्दी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गदा का स्त्री० और अ०] (१) छोटा गद्दा। (२) वह कपड़ा जो घोड़े, ऊँट आदि की पीठ पर काठी या जीन आदि रखने के लिये डाला जाता है। (३) व्यवसायी आदि के बैठने का स्थान। जैसे, सराफ की गद्दी, कलवार की गद्दी। (४) किसी बड़े अधिकारी का पद। जैसे, राजा की गद्दी, मर्दत की गद्दी। उ०-इंद्र ने..... देव-तारों के देखते मुझे अपनी गद्दी पर बिठाया।-लक्ष्मणसिंह।
शै०-राजगद्दी। गद्दीनरीन।

मुद्दा- गद्दी पर बैठना = (१) सिंहासनाब्ध होना। (२) उत्तर-धिकारी होना। गद्दी लगाना कर बैठना = अधिकार जवाते हुए प्रामाणिक के साथ बैठना।

(३) किसी राजवंश की पीढ़ी या आचार्यों की शिष्य परंपरा। जैसे, (क) चार गद्दों के बाद इस वंश में कोई न रहेगा। (ख) यह..... गुप्त की चौथी गद्दी है।

मुद्दा- गद्दी चलाना = वंशपरंपरा वा शिष्यपरंपरा का जारी होना। उत्तरधिकारियों का क्रम चलाना।

(४) कपड़े आदि की बनी हुई वह मुलायम तह जो किसी चीज के नीचे रखी जाय। (५) हाथ या पैर की हथेली।

मुद्दा- गद्दी लगाना = घोड़े को हथेली या कुद्दी से मड़ना।
(६) एक प्रकार का मिट्टी का गोल धरतन जिसमें छोटी रंग रख कर छपाई का काम करते हैं।

गद्दीनशीन-वि० [हिं० गदी + फा० नशीन] (१) सिंहासनाब्ध। जिसे राज्याधिकार मिला हो। (२) उत्तरधिकारी।

गद्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह लेख जिसमें मात्रा और वर्ण की संख्या और स्थान आदि का कोई नियम न हो। वास्तविक। यचनिका। पद्य का उलटा। (२) काव्य के दो भेदों में से एक जिसमें छंद और वृत्त का प्रतिबंध नहीं होता और बाकी रस अर्थकार आदि सब कुछ होते हैं। अग्निपुराण में गद्य तीन प्रकार का माना गया है-पूर्वक, उत्कलिका और वृत्तगंधि। पूर्वक यह है जिसमें छोटे छोटے समास हों। उत्कलिका यह है जिसमें बड़े बड़े समास बंद हों और वृत्तगंधि यह है जिसमें कहीं कहीं पद्य का सा आभास हो। जैसे, हे, वनवारी, कुंजविहारी, कृष्णसुरारी, यशोदानंदन हमारी विनती सुने। यामन ने भी अपने वामन-सूत्र में ये ही तीन अंश माने हैं। विश्वनाथ महापात्र ने साहित्यदर्पण में एक और भेद सुकक माना है जिसमें कोई समास नहीं होता। ये भेद दो पद योजना का शैली के अनुसार हुए। साहित्यदर्पण के अ० सार गद्य काव्य दो प्रकार का होना है-कथा और आख्यायिका। कथा वह है जिसमें सरल प्रसंग हो, सज्जन और

खल्लों के व्यवहार आदि का वर्णन हो, आरंभ में पद्यबद्ध प्रसंग हो। आख्यायिका में केवल इतनी विरोधता होती है कि उसमें कवि के वंश आदि का भी वर्णन होता है। गद्य के विषय में आर्यों के ये सब विवेचन आज कल बतने काम के नहीं हैं। (२) संगीत में शब्द राग का एक भेद।

गद्यात्मक—संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग देव का एक प्राचीन मान जो ३३३ ई० तक रती वा ६४ छँ घण्टियों का होता था।
गद्यात्मक—वि० [सं०] [श्री० गणालिखता] गद्य का। गद्य में लिखा वा रचा हुआ।

गधा—संज्ञा पुं० [हिं० गदधा] [श्री० गधी] गद्दा।
गधीला—संज्ञा पुं० [दे०] [श्री० गधीला] एक जंगली जाति।
संज्ञा पुं० दे० “गद्दिला”।
गधूल—संज्ञा पुं० [?] एक फूल का नाम।
गन०—संज्ञा पुं० दे० “गण”।

गनक०—संज्ञा पुं० दे० “गणक”।
गनकेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० गणकेंद्रिका] एक घास जो गाय भैंस के चारे के काम में आती है।

गनगौर—संज्ञा स्त्री० [सं० गण + गौर] चंद्र शुद्धा नृत्या। इस दिन गणेश और गौरी की पूजा होती है।

गनती०—संज्ञा स्त्री० दे० “गिनती”।
गनना—क्रि० सं० दे० “गिनना”।
संज्ञा स्त्री० दे० “गणना”।

गननाना—क्रि० सं० [षट्० गन, गन] (१) गूँजना। शब्द से भर जाना। उ०—हुटे वान कुह कुह कुह बोला। नम गननाह उठे गुह गोला।—छाल। (२) घूमना। फिरना। चकर में आना।

गननायक०—संज्ञा पुं० दे० “गणनायक”।
गनप०—संज्ञा पुं० दे० “गणप”।
गनपति—संज्ञा पुं० दे० “गणपति”।
गनराय०—संज्ञा पुं० [सं० गणराय] गणेश।
गनधर—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंध + धर] (प्रय०) एक घास। भरकट।
गनिका०—संज्ञा स्त्री० दे० “गणिका”।

गनियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गणिकारी] समी की तरह का एक पौधा जो काष्ठ जिसे शर्मेय वा घोटी शरनी (घरसी) भी कहते हैं। इसकी पत्तियाँ बसूल की पत्तियों से थोड़ी और गोलाई लिए होती हैं। इसमें सफ़ेद फूल और करींदे के समान छोटे छोटे फल लगते हैं। हमकी बकरी रगड़ने से घाग जल्दी निकलती है इसीसे इसे बुद्धाग्निसंय कहते हैं। वैद्यक में गनियारी कटु, कषय, अग्निदीपक, और याननायक मानी जाती है।

गनी—वि० [षट्०] घनी। घनवान्। उ०—(क) गनी, गरीब, घनी नम नागर।—मुछनी। (ख) सच भाँति विनीषन की घनी। क्रिया कृपाळ धमय काष्ठू ले गद् संघटि हाँसति

घनी।.....रंक निवाज रंक राजा किये गये गयय गरी गरि गनी।—मुछली।

गनीम—संज्ञा पुं० [षट्०] (१) तुटेरा। डाँह। (२) बैरी। शत्रु। उ०—एक पक्ष बौलै येँ गनीम श्री गुनाही है।—पद्माकर।
गनीमता—संज्ञा स्त्री० [षट्०] (१) लूट का माल। वह माल जो विना परिश्रम मिले। मुछू का माल। उ०—उससे जो कुछ मिल जाय वही गनीमता है।

क्रि० प्र०—जानना।—समझना।
(२) संतोष की बात। धन्य मानने की बात। बढ़ी बात। उ०—किसी तरह पेट पाल ले यही गनीमता है।

मुहा०—किसी का दम गनीमत्त होना = किसी का बना रहना। किसी के लिये अच्छा होना। किसी के जीवन से किसी प्रकार का भलाई होना।

गनेल—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की घास जो छप्पर छाने के काम में आती है।

गनौरिया—संज्ञा स्त्री० [श्री०] सुजाक।
गनौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० शत्रु] नागरमोष।

गन्ना—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ] ईँख। जूस।
गन्नी—संज्ञा पुं० [हिं० गेन वा गून = रस्सी] (१) पाट का टाट जिसके धोरे आदि बनते हैं। (२) भँगरा की तरह का एक कपड़ा जो निमिज में बनता है। यह रीठा घास वा उसी तरह के और पौधों की छाल से बनता है।

गप—संज्ञा स्त्री० [सं० कप, प्र० कप] [हिं० गप] (१) इधर उधर की घास जिसकी सलता फ निश्रप न हो। यह घास जो केवल जी बढलाने के लिये की जाय। यह घास जो किसी प्रयोजन से न की जाय। बकयाद।

क्रि० प्र०—मारना।
घौ०—गप शय = इधर उधर की राते। बर्तालाप।

(२) झूठी बात। मिथ्या प्रवृत्त। कपोल-कल्पना। उ०—यह सब गप है, एक बात भी ठीक नहीं है। (३) झूठी बखर। मिथ्या संवाद। झगुवाह।

मुहा०—गप उड़ना = झूठी बखर फैलना।
(४) यह झूठी बात जो बड़ाई प्रकट करने के लिये की जाय। बँस।

क्रि० प्र०—मारना।—हाँकिना।
संज्ञा पुं० [षट्०] (१) यह शब्द जो मूट से निकलने, किसी मंत्रम श्रवण गृहीत वस्तु में घुसने वा पड़ने आदि से होता है। उ०—(क) यह मिठाई गप से टा गया। (ख) धाप में इतनी सजाई गप से घुल गई।

घौ०—गपागप = जड़ी जड़ी। भयपट।
विशेष—हूत प्रकाश के चंद्र धनुस्वरय शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी प्रकार सूचिन करने के लिये प्रायः “से” के साथ होता है।

(२) निगलने वा खाने की क्रिया । भक्षण । उ०—(क) सब मत गप कर जावो, हमारे खाने के लिये भी रहने दो । (ख) मीठा मीठा गप, कड़वा कड़वा घू ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गपफना—क्रि० सं० [अनु० गप + हि० करना] चटपट निगलना । मूठ से खा लेना । उ०—यह धाली में का सब भात गपफ जायगा ।

गपछैया—संज्ञा स्त्री० [?] रेगमाही ।

गपड़चौथ—संज्ञा पुं० [हि० गपेज = बत चीत + चौथ] व्यर्थ की गोष्ठी । वह व्यर्थ की बात चीत जो चार आदमी मिल कर करें ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

वि० लीप बात । श्रद्ध बंद । उद्वेगपूर्ण ।

गपना—क्रि० सं० [हि० गप] गप मारना । दफना । व्यर्थ बात करना । बकवाद करना । उ०—राम राम राम राम राम राम जपत । मंगल मुद्र उदित होत कलिमल धूल धुपत । कहु के लह फल रसाल धरुर चीज घपत । हरहि जनि जन्म जाय गालगुल गपत ।—सुलसी ।

गपिया—वि० [हि० गप] गप्पी । गप मारनेवाला । मूठ मूठ की बात कहनेवाला । बकवादी ।

गपिहा—वि० [हि० गप + हा (अर्थ०)] गप्पी । गप हाँकनेवाला । बकवादी । उ०—कूकें कलारी न चूकें कहूँ सुकि भूकें समीर की श्रान भूकेरत । त्योँ पपिहा पपिहा गपिहा भयो पीच का नाव लै हीय हलोरत ।—सुंदरीसर्वश्व ।

गपोड़—वि०, संज्ञा दे० “गपोड़ा” ।

गपोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गप] गप । मिथ्या बात । कपोल-कल्पना । उ०—आज कल ये खूब गपोड़े उढ़ाते हैं ।

क्रि० प्र०—उड़ना ।—उड़ाना ।—मारना ।

धो०—गपड़वीथ । गपोड़ेवाजी ।

गपोड़ेवाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० गपोड़ा + जा०] मूठ मूठ की बकवाद ।

गप्य—संज्ञा स्त्री० दे० “गप” ।

गप्पी—वि० [हि० गप] (१) गप मारनेवाला । जल्पक । छोट्टी बात को बढ़ा कर कहनेवाला । (२) मूड़ा । मिथ्याभाषी ।

गपफा—संज्ञा पुं० [अनु० गप] (१) बढ़ा बढ़ा भास जो खाने के लिये उढ़ाया जाय । बढ़ा कौर । उ०—दो गपफे खा लें तब चले ।

मुहा०—गपफा मारना = बढ़ा कौर खाना ।

(२) लाम । फायदा । उ०—जिधर गपफा अच्छा मिले वहाँ चले जाय ।—सत्यार्थप्रकाश ।

गपफ—वि० [सं० गपफ = गुच्छा] घना । ठस । गाढ़ा । गफिन । ‘करोना’ का उलटा ।

विशेष—यह शब्द ऐसी बुनावट के लिये प्रयुक्त होता है जिसके तागे घने अर्थात् परस्पर खूब मिले हों, जैसे, यह कपड़ा गफ है, यह खाट गफ हुनी है ।

गफलट—सं० स्त्री० [अ०] (१) असावधानी । बेपरवाई । (२) बेखुबरी । चेत वा सुच का अभाव । (३) अज्ञान । मूल । चूक । भ्रम ।

गफिलाई—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) असावधानी । बेपरवाई । (२) भ्रम । मोह । उ०—ऐसा योग न देता भाई । भूला किरै लिये गफिलाई ।—कवीर ।

गवड्डी—संज्ञा स्त्री० दे० “कवड्डी” ।

गवदी—संज्ञा पुं० [देग०] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है और डालियाँ घनी और दृढ़तर होती हैं । इसकी पत्तियाँ तीन चार इंच लंबी होती हैं और उनके पीछे की ओर रोई होती हैं । माघ फागुन में इसमें सुनहले पीले रंग के फूल लगते हैं । यह पेड़ सिवालिक की पहाड़ियों तथा उत्तरीय श्रवथ, बुंदेलखंड और दक्षिण में होता है । इस की छान से कत्तीर की तरह की एक सफ़ेद गोंद निकलती है ।

गवद्—वि० [हि० गवदी] जड़ । मूल । पशु की सी बुद्धिवाला ।

गवन—संज्ञा पुं० [अ०] व्यवहार में मालिक के या किसी दूसरे के हाँपे हुए माल को खा लेना । ख्यानत ।

क्रि० प्र०—करना ।

गवर—संज्ञा पुं० [अ० स्केपर] वह पाल जो सब पालों के ऊपर होता है ।

गवरगंड—वि० [हि० गेवर + सं० गंड = मूले] मूल । अज्ञानी । जड़ । उ०—क्या चमा के योग्य पर चमा न करना, अयोग्य पर चमा करना गवरगंड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है ।—सत्यार्थ-प्रकाश ।

गवरहा—वि० [हि० गेवरहा] गोबर मिला । गोबर लगा ।

मुहा०—गवरहा करना = वातन के राँचे पर गोबर और मिट्टी चढ़ाना ।

गवकून—वि० [अ० खूब] (१) बभइती जवाती का । जिसे रेल उठती हो । पट्टा । उ०—काहे को भये उदास सँया गवकून । तुमरी खुरती से खुरती मोरे लवरून ।—हुंमनासद । मिश्र । (२) भोला भोला । सीधा ।

संज्ञा पुं० बूढ़ा । पति ।

गवकून—संज्ञा पुं० [अ० गवकून] चारखाने की तरह का एक मोटा कपड़ा जो बुधियाने में बुना जाता है ।

विशेष—कहते हैं कि यह गंवकून नामक स्थान से पहले आता था । गंवकून को कोई कोई फारस के बंदर अथवास का पुराना नाम बतलाते हैं और कोई श्याम देव । (सरिया) का गंवकून निया नामक नगर बतलाते हैं ।

गभीना-संज्ञा पुं० [दिग्ग०] कृतीला । कर्तीरा ।

गम्हर-वि० [सं० गम्, पा० गम्] (१) गर्मर्षी । गर्वाला । गर्हकारी ।

उ०—सजि चतुरंग थीर रंग में सुरंग चढ़ि सरजा सिवा जी जेप जीवन चलत है । भूपन भगत नाद बिहद नगारन के नदी नद मद्द गम्हरन के खलत हैं ।—भूषण । (२) कहने पर किसी काम को जल्दी न करनेवाला । घुलने पर किसी बात का उत्तर जल्दी न देनेवाला । मट्टर । हट्टी । (३) बहु-मूल्य । कीमती । जैसे, गम्हर माल । (४) मालदार । धनी । जैसे, गम्हर धरसासी ।

गम्हा-संज्ञा पुं० [सं० गर्भ, पा० गम्भ] (१) वह विद्यापन जिसमें रहै मरी हुई हो । गम्हा । तोषक । (२) धारे का गट्टा ।

गम्भ-संज्ञा पुं० [पा०] पारसी । जरहुस्त का अनुयायी । पारस देश का शक्तिपूजक ।

गम्भ-संज्ञा पुं० [सं०] भग ।

गम्भीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरत । (२) सूर्य । (३) बाह । हाथ ।

संज्ञा स्त्री० शक्ति की स्त्री स्वरूपा ।

गम्भीरपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

गम्भीरमान-संज्ञा पुं० [सं० गम्भीरमान] (१) सूर्य । (२) एक द्वीप का नाम । (३) एक पाताल का नाम ।

गम्भीरहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

गम्भीर-वि० दे० 'गम्भीर' ।

गम्भीर-वि० [सं० गर्भ, पा० गम्भ + धार (भय०)] [स्त्री० गम्भीर] (१) गर्भ का (पाल) । जन्म के समय का रखा हुआ (पाल) । उ०—(क) कनक रत्न मय पालनी रच्यो मार सुत हार ।..... गम्भीर अलकावली बसैं लटकन ललित छलाट । जनु उड़गने विधु मिलिन कैं चले तम विदारि करि पाट ।—सुजती । (ख) श्रान्त रथाम नचावहिं यगोमति नैदुगनी । तारी दे दे गावहिं मपुर सुदुवानी ।... गम्भीर सिक्के हैं से भूँ सँवार । लटकन लटक माल पर विधु मधि गत सारे ।—सूर । (२) जिसके सिर के जन्म के पाल न कटे हो । जिसका मुँह न हुआ हो । गदान । बहुत छोटा । अन्तमान । उ०—अमर सरित सुन्दर सुदुवि ता पर भति गम्भीर । नहिं आनत रणविधि कष्ट नहिं देहीं निज धार ।—रघुनाथ ।

गम्भीर-वि० दे० 'गम्भीर' ।

गम्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राह । मार्ग । राह । (२) गमन । मंथन । सहवास ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गम्भ] (किमी बस्तु या विषय में) प्रवेश । पहुँच । गुजर । पड़ । उ०—(क) चार्दी जहाँ न चढ़ि सकैं राई नहिं, उदराह । आबागमन कि गमे नदीं तहैं सकलो जाग जाह ।—कवीर । (ख) अनुपपति भति ही गवँ धरयो ।

सभा माफ बँदे गमंत है सोलव रोप भरयो ।..... तिहूँ युवन भरि गम है मेरो मो सम्मुख को आहूँ ?—सूर । (ग) जिस विषय में तुम्हारी गम नहीं है उसमें न बोलो ।

मुहा०—गम करना = चट कर जाना । घेत में डांट देना । ला देना । उ०—चारि बृचु छु शाखा बाके पत्र थराह भाई । एतिक हँ गैया गम कीन्हों गैया भति हरहाई ।—कवीर ।

गम-संज्ञा पुं० [पा०] (१) हुल्ल । शोक । रंज ।

मुहा०—गम खाना = क्षमा करना । ध्यान न देना । जाने देना । उ०—तत्कर के कुत धर्म, दुष्ट के कुत गम खाना ।—रघुनाथ । गम गुलत करना = हुल्ल खलना । शोक दूर करने का प्रयत्न करना ।

(२) चिंता । फ़िक्र । ध्यान । उ०—सरत सर जिन बेधिया सर विनु गम कछु नाहिं । लागी चोट जो शब्द की करक करने माहिं ।—कवीर ।

गमक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जानेवाला । (२) बोधक । सूचक । घतलानेवाला । (३) संगीत में एक श्रुति या स्वर पर से दूसरी श्रुति या स्वर पर जाने का एक प्रकार । इसके सात भेद हैं । कपित, स्फुरित, लीन, निम्न, स्थविर, आहत और आदोलित । पर साधारणतः लोग गाने में स्वर के कँपाने को ही गमक कहते हैं । (४) तबले की गंभीर ध्रावाज ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गमक = जाने वा फैलनेवाला] मङ्गक । सुगंध । उ०—इस फूल की गमक चारों ओर फैल रही है ।

गमकीला-वि० [हिं० गमक] गमकने वा मड़कनेवाला । सुगंधित ।

गमखोर-वि० [पा० गमखार] [संज्ञा गमखेरी] सहिष्णु । सहनशील ।

गमखोरी-संज्ञा स्त्री० [पा० गमखोरी] सहिष्णुता । सहनशीलता ।

गमगोन-वि० [पा०] दुखी । सिद्ध । उदात्त ।

गमत-संज्ञा पुं० [सं० गमन वा गमय = पथिक] (१) रास्ता । मार्ग ।

(२) पैया । व्यवसाय ।

गमतखाना-संज्ञा पुं० [?] नाँव में वह स्थान जहाँ पानी रस कर वा घेंदों से धाकर इकट्ठा होता है और उलीच कर बाहर फेंक दिया जाता है । बंधाल । गमतरी । (लश०)

गमतरी-संज्ञा स्त्री० [?] गमतखाना । बंधाल । (लश०)

गमता-वि० [?] [स्त्री० गमती] चलेवाला । (लश०)

गमध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार्ग । राह । (२) व्यापार । पैया । (३) आमोद-अमोद । (४) पथिक । राह चलनेवाला ।

गमन-संज्ञा पुं० [सं०] [हिं० गम्भ] (१) जाना । चलना । यात्रा करना । (२) वैरोपिक दर्शन के धनुमार पंच प्रकार के कर्मों में से एक । किसी बस्तु के क्रमशः एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त होने का कर्म । (३) संयोग । मंथन । जैसे,

वेद्यागमन । (४) राह । रास्ता । (५) संवारी आदि जिनकी सहायता से यात्रा की जाय ।

गमननाह—क्रि० घ० [सं० गमन] जाना । उ०—साहसुतां गमनी तहाँ विशद कनात लिवाह ।—रघुराज ।

गमनपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने का अधिकार मिले । चालान । रवशा ।

गमना—क्रि० अ० [सं० गमन] जाना । चलना । उ०—अगम सयदि यनत पर धरनी । जिमि जल हीन मीन गसु धरनी ।—गुलसी ।

गमनाक—वि० [का०] शोकपूर्ण । दुःखमर ।

गमला—संज्ञा पुं० [?] (१) नदि के आकर का मिट्टी या धातु आदि का बना हुआ एक प्रकार का पात्र जिसमें फूलों के पेड़ और पौधे लगाए जाते हैं । (२) सोदे, चीनी-मिट्टी आदि का बना हुआ एक प्रकार का बरतन जिसमें पालाना फिरते हैं । कनोड ।

गमनागम—संज्ञा पुं० [सं०] आना जाना ।

गमाना—क्रि० स० [हिं०] खोना । गुम करना । गंवाना । उ०—लखना गुम ऐसे लाड़ लड़ाए । ले कर चीर कदम पर बँडे केहि ऐसे बंग लाए । हा हा करति कंबुकी मांगति शंवर दिए मन भाए । कीनी प्रीति प्रगट मिलिबे की अँखियन शर्म गमाए ।—सूर ।

गमार—वि० [हिं० गंवार] गांव का रहनेवाला । गंवार । देहाती । उ०—सौं रन टाठ बुँ देला टाटे । खेत गमार चारु सै फाटे ।—लाल ।

गामी—संज्ञा स्त्री० [अ० गम] (१) शोक की अवस्था या काल । (२) वह शोक जो किसी मनुष्य के मरने पर उसके संबंधी करते हैं । सोग । (३) शत्रु । मरनी । जैसे, उनके यहाँ गमी हो गई है । उ०—स्पया इस मुलक के आदिमियों का गादी गमी में बहुत खर्च होता है ।—शिवप्रसाद ।

गमती—संज्ञा स्त्री० [मराठी] (१) हँसी दिखनी । विनोद । (२) मौज । धहार ।

गम्य—वि० [सं०] (१) जाने योग्य । गमन योग्य । (२) प्राप्य । लभ्य । (३) गमन करने योग्य । संभोग करने योग्य । भोग्य । (४) साध्य ।

गयंद—संज्ञा पुं० [सं० गयन्द, प्रा० गयँद, गयँद] (१) यज्ञ हाथी । (२) दोहे का दुसरा भेद जिसमें १३ गुरु और २२ खण्ड होते हैं । उ०—राम नाम गणि धीष धर, जीह देही दार । गुलसी भीतर गोहिरहु जो चाहसि वैजियार ।—गुलसी ।

गय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर । भूकान । (२) अंतरिक्ष । आकाश । (३) धन । (४) प्राप्य । (५) रामायण के अनुसार एक वानर का नाम जो रामचंद्र की सेना का एक सेनापति था । (६) महाभारत के अनुसार एक राजपि का नाम जिनकी कथा

द्रोण पर्व में है । (७) पुत्र । अपत्य । (८) एक असुर का नाम । (९) गया नामक तीर्थ ।

गंजा पुं० [सं० गज, प्रा० गज] हाथी । उ०—सुर गय सहित ईद ब्रज आवत । पवळ बरन पेरपति देख्यो उत्तरि गगन ते धरिषु चँसवत । धमरा शिव रवि शशि चतुरानन हय गय बसह हंस रुंग जावत ।—सूर ।

गयनाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० गय + नाल = नाली] एक प्रकार की तोप जिसे हाथी खींचते हैं । गजनाल ।

गयल—संज्ञा स्त्री० दे० "गैल" ।

गयली—संज्ञा पुं० [दे०] मर्मोले कद के एक पेड़ का नाम जो धवप, अजमेर, गोरखपुर और मध्यदेश में होता है । इसका फल लोग खाते हैं और दाल चमड़ा सिक्कने के काम में लाते हैं । इसकी लकड़ी मजबूत होती है और, सेवी के संगे और गाड़ी बनाने के काम में आती है ।

गयया—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मजली जिसे मोहली भी कहते हैं ।

गयशिर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतरिक्ष । आकाश । (२) गया के पास का एक पर्वत जिसके विषय में पुराणों का कथन है कि यह गय नामक असुर के सिर पर है । (३) गया तीर्थ ।

गया—संज्ञा पुं० [सं०] विहार का नाम देश का एक विशेष उपस्थान जिसका उल्लेख महाभारत और वाल्मीकी रामायण से लेकर पुराणों तक में मिलता है । यह एक प्राचीन तीर्थस्थान और यज्ञस्थल था । पुराणों में इसे राजपि गय की राजधानी लिखा है जहाँ गयशिर पर्वत पर उन्होंने एक बृहत् यज्ञ किया था और ब्रह्मसर नामक तालाब बनवाया था । महाभा बुधदेव के समय में भी गयशिर प्रधान यज्ञस्थल था । राजपूट से आकर वे पहले यहाँ पर उदरे थे और किसी यज्ञ के यजमान के अतिथि हुए थे । फिर वे यहाँ से योड़ी दूर निरंजना नदी के किनारे उल्लेखा गाँव में तप करने चले गए थे । इस स्थान को आजकल बोधगया कहते हैं । यहाँ बहुत सी छोटी छोटी पहाड़ियाँ हैं । यह तीर्थ आदि और पिठदान आदि करने के लिये बहुत प्रसिद्ध है और हिंदुओं का विश्वास है कि यिना वहाँ जाकर पिठदान आदि किए पितरों का मोच नहीं होता ।

क्रि० अ० [सं० गय] 'जाना' क्रिया का भूतकालिक रूप । प्रस्थानित हुआ ।

गुहा—गया गुफरा वा गया धीता = बुरी दशा को पहुँचा हुआ । नष्ट । निहृष्ट ।

गयापुर—संज्ञा पुं० दे० "गया" ।

गयारी—संज्ञा स्त्री० [दे०] किसी कार्तकार की वह जोत जिसे वह सावितिस छोड़ कर भंग गया हो ।

गयाल—संज्ञा स्त्री० [दे०] वह जायदाद जिसका कोई उत्तराधिकारी वा दावेदार न हो । गलशर ।

गयावाल-संज्ञा पुं० [दि० गया + बाल] गया तीर्थ का पंदा ।

गरुड-संज्ञा पुं० [सं० गरुड = गरुडशकार रेखा] चक्री के चारों ओर
यना हुआ मिट्टी का घेरा जिसमें छाटा गिरता है ।

गरुड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बहुत कटुधा और मादक
रस जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था । (२) एक
रोग जिसमें विषयी रोग आती और सूखी आती है । (३)
रोग । धीमारी । (४) विष । जहर । (५) वस्तुनाम । धनुनाम ।
(६) ग्राहक कर्यों में से पांचवां करण । (ज्योतिष)

संज्ञा पुं० [दि० गया] गला । गरदन । उ०—होती जा
अज्ञान ही न जानती इतीक विधा मेरे त्रिप जान तेरो
जानिवो गरे परवो ।—देव ।

प्रस० [फ०] (किसी काम को) बनाने या करनेवाला ।
इसका प्रयोग केवल समस्त पदों के अंत में होता है । जैसे,
सोदागर, कारीगर, धात्रीगर, कलईगर, कुंदीगर, आदि ।

गरुड-वि० [फ० गरुड], (१) दूबा हुआ । निमग्न । (२) विलुप्त
नष्ट । बरबाद । सबाह । (३) (किसी कार्य आदि में)
लीन । मग्न

गरुड-संज्ञा पुं० [फ०] डूबने का भाव । दुबाव ।

वि० (१) निमग्न । दूबा हुआ । (२) बहुत अधिक लीन ।

गरुड-संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) डूबने की क्रिया या भाव । डूबना ।

मुहा०—गरुड देना = कष्ट देना । हुला देना ।

(२) पानी का इतना अधिक दरसना या बाढ़ आना कि जिससे
फसल आदि हूय कर नष्ट हो जाय । सूझा । झनकृष्टि ।

क्रि० प्र०—लाना ।

(३) वह भूमि जो पानी के नीचे हो । (४) नीची भूमि जहाँ
पानी रुकता है । खलार । (५) खंगोटी । कीपनी ।

संज्ञा स्त्री० चरखी । घिरनी । गाराड़ी ।

गरगाज-संज्ञा पुं० [दि० गरु + गज] (१) किले की दीवारों पर
यना हुआ गुज जिस पर तोपें रहती हैं । उ०—गरगाज
बौरि कमानें धरी । वज्र चरित मुख दारू भरी ।—
जायसी । (२) वह ऊँचा कृत्रिम दूध या मीठा जिस पर युद्ध
की सामग्री रखी जाती है और जहाँ से शत्रु की सेना
का पता चलता जाता है ।

क्रि० प्र०—घाँचना ।

(३) तल्लो से घनी हुई नाव के ऊपर की छत । (४) वह
तल्ला जिस पर फौजी देन के समान अस्त्रादी को खड़ा करके
उसके गले में फेंदा जाता है । टिकरी ।

† वि० बहुत बढ़ा । बियाख । जैसे, गरगाज फौजा, गरगाज
जवान ।

गरगाज-संज्ञा पुं० [फ०] गाराड़ी । घिरनी । चरखी । (संज्ञा)

गरगाज-संज्ञा पुं० [दि०] (१) नंग मीरपों । बिण्डा । (२) एक
प्रकार की घास जो पान की कमल को बढ़ने नहीं देती ।
इसे केवल मीसे खाती है ।

गरगाज-वि० दे० "गरकाज" ।

गरज-संज्ञा स्त्री० [सं० गरुज] बहुत गंभीर और तुमुल शब्द । जैसे,
बादल की गरज, तिमि की गरज, वीरों की गरज, आदि ।

गरज-संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) आवाज । प्रयोजन । मतलब । उ०—
अपनी गरज न बोलियत कहा निहारे तोहि । दू प्यारों मो
जीव को मो त्रिप प्यारो मोहि ।—बिहारी ।

मुहा०—गरज गाँठना = मतलब चीप करना । प्रयोजन निकालना ।
फार सिद्ध करना ।

(२) आवश्यकता । जरूरत ।

क्रि० प्र०—रखना ।—रहना ।—निकालना ।

(३) चाह । इच्छा ।

धा०—गरजमंद ।

क्रि० प्र०—रखना ।—रहना ।—होना ।

मुहा०—गरज का बावला = अपनी गरज के लिये सब कुछ करने
वाला । जो अपनी लाजला पूरी करने के लिये भला बुरा सब
हुल करने को सँवार हो जाय । जो अपना मतिव पूरा करने
के लिये हानि भी सह ले ।

क्रि० वि० (१) निदान । आलिरकार । अंततोगचा । (२)
धनु । भला । अच्छा । और ।

विरोध—यह संयोजक शब्धय का भाव लिये रहता है ।

मुहा०—गरज कि = मतलब यह कि । तात्वर्थ यह कि । अपूर्ण ।
यानी ।

गरजन-संज्ञा पुं० [सं० गरुज] गंभीर शब्द । गरज । कड़क ।

(१) गरजने का भाव । (२) गरजने की क्रिया ।

गरजना-क्रि० प्र० [सं० गरुज] (१) बहुत गंभीर और तुमुल शब्द
करना । जैसे, बादल का गरजना, शेर का गरजना, वीरों
का गरजना । उ०—(क) धन धर्मद नभ गरजत धारा । मिया हीन
अपत मन मोरा ।—तुलसी । (ख) दस दस सर सब मारोसि,
परे भूमि कपि और । निं हुनाद करि गरजा, मेघनाद बलवीर ।
—तुलसी । (२) चटकना । तड़कना । जैसे, मोती का गरजना
या गरमां हुआ मोती ।

गरजना-वि० [फ०] [स्त्री० गरजनी], (१) जिसे आवश्यकता
है । जरूरतवाला । (२) इच्छुक । चाहनेवाला ।

गरजी-वि० [फ० गरुज + ई (प्रत्य०)] (१) गरजमंद । गरजवाला ।
मतलब रखनेवाला । (२) चाहनेवाला । इच्छा करनेवाला ।

गाँहक उ०—बजराज कुमार विना सुनु भूँ ग घनेग भयो त्रिप
को गती ।—तुलसी ।

गरजूभा-संज्ञा पुं० [दि० गरुजना] एक प्रकार की सुनौरी । यह गोल
और सफेद रंग की होती है और धरसात में पहना पानी
पड़ने पर प्रायः साँव आदि के देवों के आस पास या मीठानों
में भूमि से निकल आती है । इसके भीतर बड़ी और ऊपर

धृत्वा नहीं होता, केवल गूदा ही गूदा होता है। इसकी सरकारी खाने में स्वादिष्ट होती है। लोगों का विश्वास है कि यह बादल के गरजन से गृध्री से निकलती है। सफर, गगनपूज आदि इसी के भेद हैं।

गरजू—वि० दे "गरजी"।

गरजू—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ, पा० गंध, हि० गद्ग]-समूह । कुंड । उ०—(क) गजन गरजू दे की याजिन के ठट्ट दे की प्राम धाम दे की प्रियवृद्द सतकारे हैं ।—रघुराज । (ख) ह्यैर हरट्ट साजि गैर गरट्ट'सम पैदर के ठट्ट कीज जुरी तुरकाने की ।—भूपय ।

गरद—वि० [सं०] विप देनेवाला । विपप्रद ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) विप । (२) एक प्रकार का रोगसी कपड़ा ।

संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० "गर्द" ।

गरदन—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) धड़ और सिर को जोड़नेवाला श्रम । मीया ।

मुहा०—गरदन बढाना = विषय करना । सिर उठाना । गर्दन बढाना = सिर फाटना । मार डालना । गरदन घुँटना = दे० गरदन मोड़ना । गर्दन, घुँटी रहना = धमंड में या नाराज रहना । गरदन काटना = (२) धड़ से सिर अलग करना । मार डालना । (२) मुर्दा करना । हानि पहुँचाना । गरदन का टोरा = गले की वे नोँ से जो सिर के हिलाने या घात करने के समय हिलती हुई दिखाई पड़ती हैं । गरदन का बोक = कर्तव्य या उत्तरदायित्व संघर्षी भार । गरदन झुकना = (१) नम्र, आशाकारी या अधीन होना । (२) लजित होना । गरमाना । (३) बेहोश होना । (४) मरना । गरदन झुकाना = (१) नम्रता, आशाकारिता या अधीनता प्रकाशित करना । (२) लजित होना । भेचना । गरदन बलना या बलकना = मरना । आतप मरणा होना । गरदन न बढाना = (१) सब बातों को चुपचाप सुन या सह लेना । (२) लजित होना । शर्मिंदार होना । (३) बीमारी के कारण पड़े रहना । उ०—जय से यह लड़का सुखार में पड़ा है सब से इसने गरदन नहीं उठाई । गरदन नांपना = (१) कहीं से निकाल बाहर करने के लिये किसी की गरदन पकड़ना । गरदनियाँ देना । (२) अपमान करना । (३) वेदजती करना । गरदन पकड़ कर निकालना = अपमान करना । वेदजती करना । गरदन पर = ऊपर । जिम्मे । जैसे, इसका पाप तुम्हारी गरदन पर है । गरदन पर खून लेना = अपने ऊपर हत्या लेना । हत्या का का अपराध होना । (अपनी) गरदन पर बुधा रखना = किसी भारी काम का योग्य होना । किसी भारी काम में तैयार होना । (दूसरे की) गरदन पर खूब रखना = भारी काम सुपुर्द करना । गरदन पर बोक होना = (२) खसना । बुरा लगना । कष्टकर प्रतीत होना । (२)

भार होना । सिर पडना । गरदन पर सवार होना = दे० " सिर पर सवार होना " । गरदन फँसना = (१) अधिकार में थाना । धरा में होना । क्यूँ में होना । (२) जोखों में पडना । गरदन सरोडना = (१) गला बचाना । मार डालना । (२) पीड़ित करना । फट पहुँचाना । गरदन मारना = सिर फाटना । मार डालना । गरदन में हाथ देना या डालना = (१) अपमान करना । वेदजती करना । (२) कहीं से निकाल बाहर करने के लिये गरदन पकड़ना । गरदनियाँ देना । गरदन हिलाने लगना = बहुत धक होना । (२) वह आड़ी लंबी लकड़ी जो जुलाहों की लपेट के दोनों सिरों पर आड़ी साजी जाती है । साल । (३) मरतन आदि का ऊपरी पतला भाग ।

गरदन-घुमाव—संज्ञा पुं० [हि० गरदन + घुमाना] कुस्ती का एक पंच जिसमें खेलाड़ी अपने जोड़ का दाहिना वा बायाँ हाथ पकड़ कर अपनी गरदन पर खड़ा और उसे सामने की ओर पटक देता है ।

गरदन-तोड़—संज्ञा पुं० [हि० गरदन + तोड़ना] कुस्ती का एक दवा । इसमें जोड़ की गरदन पर दोनों हाथों की उंगलियों को गाँठ कर ऐसा झटका देते हैं कि वह मुक जाता है और कुछ अधिक जोर करने पर पेटका हो कर गिर जाता है ।

गरदन-घाँघ—संज्ञा पुं० [हि० गरदन + घेंघना] कुस्ती का एक पंच । इसमें जोड़ की गरदन पर से दोनों हाथ उसकी थाल में से लेजा कर भीतर उसकी छाती पर बाँधते और उसके सिर को थाल में दबा कर पैर के मटके से गिरा देते हैं ।

गरदना—संज्ञा पुं० [हि० गरदन] (१) मोटी गरदन । गरदन । (२) वह धौल या झटका जो गरदन पर लागे ।

कि० प्र०—जड़ना— देना ।—लगाना ।

मुहा०—गरदना सही या रसीद करना = गरदन पर धौल लगाना ।

(३) गरदन पर का मांस । (कसाई) ।

गरदनियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० गरदन + इयाँ (प्रय०)] (किसी को किसी स्थान से) गरदन पकड़ कर या गरदन में हाथ डाल कर निकालने की क्रिया । अर्द्धचंद्र ।

कि० प्र०—देना ।—खाना ।—मिखना ।

गरदनी—संज्ञा स्त्री० [हि० गरदन] (१) शरीर या कुत्ते आदि का गला । गरीयान । (२) एक शामूयण जो गले में पहना जाता है । हंसुली । (३) अर्द्धचंद्र । गरदनियाँ । (४) घस्सा जो पहलवान दूसरे की गरदन पर लगाते हैं । रदा । डंडा । (५) वह कपड़ा जो घोड़े की गरदन से बाँधा और पीठ पर डाला जाता है । (६) कारनिस । कँगनी ।

कि० प्र०—लगाना ।

(०) कुरती का एक पंच ।
 गरदप-संज्ञा पुं० [सं०] सर्प । साँप । युजंग । (अने०)
 गरदा-संज्ञा पुं० [फ्रा० गर] घूल । गुबार । मिट्टी । खाक । गर्द ।
 क्रि० प्र०—उड़ना ।—उड़ाना ।—फेंकना ।—डालना ।
 गरदान-वि० [फ्रा०] घूम फिर कर एक ही स्थान पर आनेवाला ।
 संज्ञा पुं० (१) शब्दों का रूप साधन । (२) बहू कबूतर जो
 घूम फिर कर सदा अपने स्थान पर आता हो ।
 गरदानना-क्रि० उ० [फ्रा० गरदान] (१) शब्दों का रूप साधन ।
 (२) बार बार कहना । उद्धरणी करना । (३) गिनना ।
 समझना । मानना । उ०—वे अपने अपने कितनी की कुछ
 नहीं गरदानते ।
 संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।
 गरदिशा-संज्ञा स्त्री० दे० “गर्दिश” ।
 गरदुभा-संज्ञा पुं० [हिं० गरदन] एक प्रकार का ज्वर जो सर्पों के
 आरंभ में बहुत अधिक भोगने के कारण पशुओं को हो जाता
 है । इसमें उसके सब अंग जकड़ जाते हैं और उसके गले
 में धारदारद होने लगती है । इसे कहीं कहीं गरदुहा, घेरया
 या धुरका भी कहते हैं ।
 गरनाल-संज्ञा स्त्री० [हिं० गर + नली] एक बहुत चौड़े मुँह की तोप
 जिसमें आदिमी चला जा सकता है । धननाल । धननाद ।
 गरधन-संज्ञा पुं० [सं०] विप को धारण करनेवाला । शिव ।
 महादेव ।
 गरध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] अक्रक ।
 गरना-क्रि० अ० (१) दे० “गलना” । (२) दे० “गड़ना”, उ०—
 उहाँ ज्वाल जरी जात, दया खानि गरे गात सूखे सकुचात
 सब कहत पुकार हैं ।—तुलसी ।
 गरमिय-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।
 गरष-संज्ञा पुं० दे० “गर्व” ।
 गरवई-संज्ञा स्त्री० [सं० गर्व] गर्व या अभिमान का भाव । उ०
 —भली गर्द धय गरवई इकताई मुकुताह । भली भई ही
 अमलाई औं पी दई दिखाइ ।—ट० सत० ।
 गरबाना-क्रि० अ० [सं० गर्व] घमंड में आना । अभिमान
 करना । शेखी करना ।
 गरवा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का गीत जो प्रायः गुजराती
 छियाँ गायती हैं ।
 गरवित्त-वि० दे० “गर्वित्त” ।
 गरबीला-वि० [सं० गर्व] जिसे गर्व हो । घमंडी । अभिमानी ।
 उ०—गरबीलन के गरवनि वाई । गरवप्रहारी विरद निवाई ।
 —लाल ।
 गरम-संज्ञा पुं० (१) दे० “गर्म” । (२) दे० “गर्व” ।
 गरभदान-संज्ञा पुं० [सं० गर्भदान] अतुप्रदान । चेट रखना ।

गरभाना-क्रि० अ० [हिं० गर्भ] (१) गर्भिणी होना । गर्भ से
 होना । (२) घात गेहूँ आदि के पीसों में घाल लगना ।
 गरभी-वि० [सं० गर्व] अभिमानी । घमंडी ।
 गरम-वि० [फ्रा० गर्म, मिखाओ स० गर्म] [क्रि० गरमाना, संज्ञा गरमो]
 (१) जिसके छूने से जलन मालूम हो । तप्त । सता । उष्ण ।
 जलना हुआ ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 धौ०—गरमागरम = (१) तपना । उष्ण । तपना पका हुआ ।
 (इसका प्रयोग साधारणतः खाने पीने की वस्तुओं के लिये
 होता है । जैसे, गरमागरम पूरी, हलुवा आदि, पर अलंकार
 से गरमागरम खूबर (= लखी खूबर) आदि भी बोलते हैं)
 मुहा०—गरम चोट = तुरंत की डागी चोट । ताजा पाव । उ०
 —गरम चोट मालूम नहीं होती । गरम मामला = हल्ले की
 बात । ऐसी घटना जिसका प्रभाव लोगों पर बना हो । उ० =
 अभी मामला गरम है जो करना हो सो कर टाडो । गरम पानी
 = वीर्य । शुक्र । (बाजारी) । गरम सर्द उठाना, देखना,
 सहना = सवार का उँचा नीचा देखना । भले भुरे दिन काटना ।
 (२) तीव्र । उग्र । खरा ।
 मुहा०—मिज़ान गरम होना = क्रोध आना । गरम होना = आवेश
 आना । क्रुद्ध होना । जैसे, तुम तो मोढ़ी सी बात में गरम हो
 जाते हो ।
 (३) तेज़ । प्रबल । प्रचंड । ज़ोर शोर का । जैसे, गरम खूबर ।
 मुहा०—किसी चीज़ (प्रायः भाव) का बाज़ार गरम होना
 = किसी चीज़ की अधिकता होना । उ०—आज फल सूट का
 बाज़ार गरम है ।
 (४) जिसका गुण उष्ण हो । जिसके प्यवहार वा सेवन से
 गरमी पड़े । उ०—लहसुन बहुत गरम होता है ।
 धौ०—गरम कपड़ा = शरीर गरम रखनेवाला कपड़ा । जाड़े का
 कपड़ा । ऊनी कपड़ा । गरम मसाला = सुगंध की वस्तु जो
 भोजन को चारपा, पाचक और सुखाद करने के लिये उठमें
 पड़ती है । जैसे, धनियाँ लौना, उठी इलायची, जीरा मिर्च इत्यादि ।
 (५) बसाहपूर्णा । जोषा से भरा । भावपूर्ण । उ०—परम
 धरमपर धरम-करन-कर सुखसे गरम नर ।—गोपाल ।
 गरमाई-संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गरम] गरमी । (पंजाप) ।
 गरमागरमी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गरमा + गरम] सुखेटी । जोष ।
 सखइलत । बसाह । उ०—पदले तो पढ़ी गरमागरमी थी
 धव क्यों टंडे पढ़ गय ?
 गरमाना-क्रि० अ० [हिं० गरम] (१) गरम पड़ना । उष्ण होना ।
 उ०—अभी तो कल्पिते ये पाउने से डरा गरमापू हैं ।
 मुहा०—टेंट वा हाथ गरमाना = टेंट वा हाथ में चपया आना ।
 पात में चपया पैदा आना ।
 (२) उर्मण पर आना । मसलाना । मद् में भरना । जैसे, पौड़ी
 गरमाई है । (३) आवेश में आना । क्रोध करना । नाराज़

होना । आग बधुला होना । झललाना । उ०—मुम तो जरा सी घात में गरमा जाते हैं । (५) कुछ देर लगातार दौड़ने वा परिश्रम करने पर घोड़े आदि पशुओं का तेजी पर घबाना । विशेष—कभी कभी जब घोड़े अधिक गरमा जाते हैं तब बर में नहीं रहते ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

क्रि० सं० गरम करना । तपाना । शीटना । जैसे, दूध गरमाना घूला गरमाना, पानी गरमाना, हत्यादि ।

संयो० क्रि०—हालना ।—देना ।

मुहा०—टेंट वा हाथ गरमाना = दृष्ट में रक्था देना । कुछ हनाम वा शिखर देना ।

गरमाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० गरम] गरमी । उष्णता ।

गरमी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) उष्णता । ताप । ज्वरन । जैसे, आग की गरमी ।

क्रि० प्र०—करना ।—पड़ना ।—होना ।

मुहा०—गरमी करना = प्रकृति में उष्णता लाना । पेट वा कर्नेन में ताप उत्पन्न करना । उ०—कुर्नन बहुत गरमी करता है । गरमी निकालना = (१) उष्णता दूर करना । (२) प्रसंग करना ।

(२) तेजी । उम्रता । प्रचण्डता ।

मुहा०—गरमी निकालना = गर्म दूर करना । उ०—अभी हम तुम्हारी भारी गरमी निकाल देते हैं ।

(३) आनेवा । क्रोध । गुस्सा । उ०—पहले तो घड़ी गरमी दिखाते थे, अब सामने क्यों नहीं आते ? (४) उमंग । जोरा ।

(५) प्रीति भ्रतु । धूप के दिन । (साधारणतः फागुन से जेठ तक गरमी के महीने समझे जाते हैं ।)

क्रि० प्र०—आना ।—जाना ।

मुहा०—गरमियों में = गरमी के दिनों में । प्रीमकाल में ।

(१) हाथी घोड़ों का एक रोग जिसमें उन्हें पेशाब के साथ खून गिरता है । (२) एक रोग । यह प्रायः दुष्ट मनुष्य से बचपन होता है और एत का रोग माना जाता है । इस रोग में गुप्त इंद्रिय से एक प्रकार का स्रेप निकलता है जिसके लग जाने से यह रोग मूक से दूसरे को हो जाता है । पहले छोटी छोटी कुनसियाँ होती हैं, फिर धीरे धीरे चमड़े पर चट्टे पड़ने लगते हैं, यहाँ तक कि सारे शरीर में घाव हो जाते हैं, फफोले पड़ जाते हैं, रग पड़े और हड्डियाँ तक खराब हो जाती हैं । कभी साल बचक जाता है । आतंशक । बपदीय ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—पूटना ।—होना ।

गरमीदाना—संज्ञा पुं० [हि० गरमी + दाना] शैमीरी । शैमीरी । स्रोटे स्रोटे बाल दाने जो गरमी में पसीने के कारण शरीर पर निकलते हैं ।

गरमाह—संज्ञा पुं० [दे० गरमा] एक प्रकार का घोड़ा । गरी । उ०—हरे डुरंग मधुम बहुत भती । गरम कोकाह बसाइ सुमांती ।—जायसी ।

गरराना—क्रि० प्र० [अनु०] शीघ्र ध्वनि करना । गरराना । गंभीर ध्वनि करना । गद्गदगद्गाना । उ०—मुनत मेच्यसंक सांभि सैन सै आए ।..... पहरत तसरात सरात इहरात पररात कहरात माथ बाए ।—सूर ।

गररी—संज्ञा स्त्री० [दे० गर] एक चिड़िया । किल्लेहटी । गलगलिया । सिरौदी । उ०—फटकत अजन खान द्वारे पर गररी करन बराह । माथे पर देँकाक उड़ाने कुचगुन बहुतरु पाई ।—सूर ।

गररल—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विप । गर । डहर । (२) सर्पविप । सर्प का लहर । (३) घास का मुट्ठा । घास की झँटिया । पूता ।

गररलघट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विप धारण करनेवाला । महादेव । (२) सर्प ।

गररलरि—संज्ञा पुं० [सं०] सरकत मण्य । पशा ।

गररमत—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर । मोर ।

गररयाह—वि० [सं० गुरु] [स्त्री० गरवी] गरह । भारी । महान् । उ०—नृ मारणे गारवी गदा मल्लक शरि के जाइ । फूटे सिर निरस्त भई रुधिर धार अधिकाइ ।—गोपाल ।

गररु—संज्ञा पुं० [सं० ग्रह] (१) ग्रह । (२) शरिष्ट । बाधा । दे० “ग्रह” । उ०—ममता दादु कंठ हरपाई । हरप विपाद गरह बहुगई ।—गुलसी ।

मुहा०—गरह कटना = शरिष्ट दूर होना । दुःख नष्ट होना । आपत्ति टलना ।

गररहन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काली मुलसी । (२) बघई । ममरी ।

संज्ञा पुं० [दे० गर] एक प्रकार की मधुली ।

गर संज्ञा पुं० [सं० ग्रहण] (१) चंद्र वा सूर्य ग्रहण । (२) पकड़ने की क्रिया । धारण । दे० “ग्रहण” ।

गररहर—संज्ञा पुं० [हि० गर = गण + हर] यह काठ जो नरलट चौपायों के गले में लटकवाया जाता है । कुंदा । देँगा । डेकुर ।

गररहेडुवा—संज्ञा पुं० [सं० गेडुका] गवेयुक । कसेह । कौरिहा ।

गररघ—संज्ञा स्त्री० [हि० गर = गण] एक दोहरी रस्सी जिसके एक सिरे पर मुन्दी और दूसरे सिरे पर गाँठ होती है । यह पगहे के एक छोर पर यीचोपीच से लगाई जाती है और बेल घोड़े आदि के गले में डाली जाती है ।

गरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली जता । बंदाल । गरामारी । संज्ञा पुं० दे० “गर” वा “गला” ।

गराऊ—संज्ञा पुं० [सं० गरुष] पुराना सेड़ा । (मँडेरियों की बोली) ।

गरामारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली । बंदाल । चयर बेल । बंदाली । सेनिया बेल । कर्कोटी । देवताड़ी ।

गराज—संज्ञा स्त्री० [सं० गरजे] गरजेना । गमीर शब्द । गरज ।
उ०—जलवत् जमावत साजराज । चट्टे किवधान करि
करि गरज ।

गराड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु० गद् गद् या सं० कुंछी] काठ या लोहे
का गोल चक्र जिसके घेरे में रस्सी बँटन के लिये गड़दा बना
रहना है और जिसमें रस्सी डाल कर कुण्ड से घड़ा निकालते
हैं, पंखा खींचते हैं तथा और बहुत से काम करते हैं ।
घिरली । चरली ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गंड = चिड़] रगड़ आदि से पड़ी हुई गहरी
लकीर । गढ्ढे के रूप में दूर तक पड़ा हुआ लंबा चिड़ ।
साँट ।

मुहा०—गराड़ी पड़ना = गहरा चिड़ होना ।

गराना क्रि० सं० [हिं० गलाना] गलाना ।

क्रि० सं० [हिं० गराना] निचोड़ना । निचोड़ कर दूर करना ।
यहाना । उ०—तय मयवा मनमारि हारि कै बड़े सोच सों
बुझी । भयो कृप्य भवतार भूमि पै सोरा गर्व गरायो ।

गराव—संज्ञा पुं० [देग०] (१) तीन मरतूलोंवाला एक प्रकार का
बड़ा जहान जिसका व्यवहार १४ घों और १५ घों शताब्दी
में बंगाल और उसके आस पास की खाड़ियों में होता था ।
(२) साधारण नाव ।

गरारा—वि० [सं० गर्व, प्रा०, पुं० हिं० गरी + आर (अर्थ०)] गर्व-
युक्त । प्रबल । प्रचंड । यलवान् । उद्धत । उ०—(क) कुंडल
मोद बबब धनुषारे । चले सैन महँ सुभट गारारे ।—गोपाल ।
(ख) सुंमन उठाए फिरँ धाये धने सम बडे असवार मिलेँ
सुदित पतंग संग । गराजेँ गारारे कसरारे अति पीह देह विनहिँ
निहारे फिरँ बीर करि धीर भंग ।—गोपाल ।

संज्ञा पुं० [अ० गारग] (१) कंट में पानी डाल कर गर गर
शब्द करके कुल्ली करना ।

क्रि० प्र०—करना ।

(२) गरगरा करने की दवाड़ ।

संज्ञा पुं० [हिं० घरा] (१) पायजामे की हीली मोहड़ी ।
जैमे, गारारदार पाजामा । (२) बीली मोहड़ी का पायजामा ।

(३) वह धौला जिलमैं लीमा भर कर रखा जाता है ।

संज्ञा पुं० [अनु०] चौपायों का एक रोग जिसमें उनके कंठ से
धुरधुर का शब्द निकलना है । सुरकबा ।

गरारी—संज्ञा स्त्री० दे० "गरारी" ।

गराघना—संज्ञा पुं० दे० "गड़ाघन" ।

गराघा—संज्ञा पुं० [देग०] हलकी अमीन । कम उपजाऊ भूमि ।
गरास—संज्ञा पुं० दे० "प्रास" ।

गरास मोहर—संज्ञा पुं० [अ० गरास + मोहर] संदान की घास दरा-
वर करने की कल ।

गरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० गरिमन्] (१) गुरुत्व । भारीपन । बोग ।

(२) महिमा । महत्त्व । गौरव । (३) गर्व । अहंकार । घमंड ।
(४) आभरलाभा । शोषी । (५) श्राद्ध सिद्धियों में से एक सिद्धि
जिससे साधक अपना बोग चाहे जितना भारी कर सकता है ।

गरिया—संज्ञा पुं० [देग०] एक पेड़ जो मध्य प्रदेश, मध्य भारत,
बिहार और मद्रास में होता है । इसका पेड़ साधारण ईंचाई
का होता है और शिथिल श्रातु में इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं ।
इसकी लकड़ी दड़, कटिन, सुंदर चमकीली और साफ
होती है और प्रति घन फुट पचीस तीस सेर तक भारी होती
है । इससे गाड़ी, तस्वीरों के चौखटे, खेती के सामान तथा मंज
पुरती आदि बहुत सी चीजें बनाई जाती हैं । यह पानी में
बहुत दिनों तक धनी रहती है और इस पर नक्षत्री भी
अच्छी होती है । हिंदुमान से यह लकड़ी विलायत को
बहुत जाती है और वहाँ आलमारी, कुर्सी, मेज़, घुआ का
दस्ता आदि बनाने के काम में आती है । इसे बहुलुपी भी
कहते हैं ।

गरियाना—क्रि० प्र० [हिं० गरी + आना (अर्थ०)] दुर्बल कदना ।
गाड़ी देना ।

गरियार—वि० [हिं० गटना = एक जगह रुक जाना] जगह से जल्दी
न हटनेवाला । सुप्त । बोध । मट्टर । (चौपायों के लिये इस
शब्द का प्रयोग अधिक होता है) । उ०—(क) कोई भल जस
धाव सुखारुः । कोह जस चले पैल गरियारुः ।—जायसी ।
(ख) पैंठे पग चालद नहीं, होइ रहा गरियार । राम अथय
निबहै नहीं, सखे को हुसियार ।—दाद ।

गरियालू—संज्ञा पुं० [हिं० करिया से करियालू] एक प्रकार का रंग
जो काला नीला होता है । इसमें ऊन रंगा जाता है । इसके
बनाने की विधि यह है कि दो सेर नील की चुकनी गंधक के
तेजाब में मिला कर एक मजबूत मटके में रख देते हैं । यह
उम में एक दिन रात रखी रहती है । ऊन को रँगने के पहले
उसे चूने के पानी में डुबा कर कई बार साफ पानी से धोकर
धूप में सुखलाते हैं फिर उबलते हुए पानी में थोड़ा सा रंग
मटके में से लेकर मिला लेते हैं और ऊन को उसमें डाल
देते हैं । यह ऊन उसमें तय तक पड़ा रहता है जब तक उस
पर रंग नहीं चढ़ जाता । फिर उसे निकाल कर फिटकरी
मिले पानी में पढ़ार डालते हैं ।
वि० काले नीले रंग का । गरियाले रंग का ।

गरिष्ठ—वि० [सं०] (१) अति गुरु । अत्यंत भारी । (२) जो पचने
में हलका न हो । जो जल्दी न पचे । जिससे कौट बढ़ हो ।
कुञ्ज करनेवाला ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राजा का नाम । (२) एक दानव
का नाम । (३) एक तीर्थ स्थान ।

गरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवनाड़ ।

होना । धागं बधुला होना । भल्लाना । उ०—तुम तो जरा सी घास में गरमा जाते हो । (४) कुछ देर लगातार दौड़ने वा परिभ्रम करने पर घोड़े आदि पशुओं का तेजी पर घाना । विशेष—कभी कभी जब घोड़े अधिक गरमा जाते हैं तब घष में नहीं रहते ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

क्रि० सं० गरम करना । लगाना । श्रौटना । जैसे, दूध गरमाना चूल्हा गरमाना, पानी गरमाना, इत्यादि ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

मुहा०—डेंट वा हाथ गरमाना = हाथ में रफ्या देना । कुछ हानाम वा शिखत देना ।

गरमाहट—उंठा छी० [हिं० गरम] गरमी । उष्णता ।

गरमी—उंठा छी० [फा०] (१) उष्णता । ताप । जलन । जैसे, आग की गरमी ।

क्रि० प्र०—करना ।—पढ़ना ।—होना ।

मुहा०—गरमी करना = प्रकृति में उष्णता लाना । पेट वा कलेजे में ताप उत्पन्न करना । उ०—कुनैन बहुत गरमी करता है ।

गरमी निकालना = (१) उष्णता दूर करना । (२) प्रथम करना ।

(२) तेजी । उमता । प्रचण्डता ।

मुहा०—गरमी निकालना = गर्व दूर करना । उ०—अभी हम तुम्हारी सारी गरमी निकाल देते हैं ।

(३) आघेरा । क्रोध । गुस्सा । उ०—पहले तो बड़ी गरमी दिखाते थे, अब सामने क्यों नहीं आते ? (४) उमंग । जोरा ।

(५) प्रीम्य भ्रतु । धूप के दिन । (साधारणतः फगुन से जेठ तक गरमी के महीने समझे जाते हैं ।)

क्रि० प्र०—खाना ।—जाना ।

मुहा०—गरमियों में = गरमी के दिनों में । ग्रीष्मकाल में ।

(६) हाथी घोड़ों का एक रोग जिसमें उन्हें पेशाब के साथ खून मिरता है । (७) एक रोग । यह प्रायः दुष्ट मैथुन से उत्पन्न होता है और छूत का रोग माना जाता है । इस रोग में गुप्त इंद्रिय से एक प्रकार का चेष निकलता है जिसके लग जाने से यह रोग एक से दूसरे को हो जाता है । पहले छोटी छोटी फुनसियाँ होती हैं, फिर धीरे धीरे चमड़े पर चट्टे पड़ने लगते हैं, यहाँ तक कि सारे शरीर में घाव हो जाते हैं, फफोले पड़ जाते हैं, रग पड़े और हड्डियाँ तक खराब हो जाती हैं । कभी तालू चटक जाता है । आतंशक । उपद्रव ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—फूटना ।—होना ।

गरमीदाना—उंठा पुं० [हिं० गरमी + दाना] शंभौरी । शंभौरी । छोटे छोटे साल दाने जो गरमी में पसलने के कारण शरीर पर निकलते हैं ।

गरमा—उंठा पुं० [देग० गरी] एक प्रकार का घोड़ा । गरी । उ०—हरे कुरंगे महुष यहू भती । गारः कोकाह, बजाह सुमती ।—जायसी ।

गरराना—क्रि० प्र० [श्रुं०] भेषय ध्वनि करना । गरजना । गंभीर ध्वनि करना । गड़गाड़ना । उ०—सुनत मेववसंक साजि सैन लै थापु ।.....घहरात तरतरात गररात हहरात पररात ऋहरात माथ नापु ।—सूर ।

गररी—उंठा छी० [देग०] एक चिड़िया । किल्लेहटी । गलगलिया । सिरौदी । उ०—फटकत श्रवन श्रान द्वारे पर गररी करत बराई । माये पर दै फाक उड़ानो कुशगुन बहुतक पाई ।—सूर ।

गरल—उंठा छी० [सं०] (१) विप । गर । जहर । (२) सर्पविप । सर्प का जहर । (३) घास का मुट्टा । घास की श्रैटिया । पूला ।

गरलघर—उंठा पुं० [सं०] (१) विप धारण करनेवाला । महादेव । (२) सर्प ।

गरलारि—उंठा पुं० [सं०] सरकत मण्डि । पसा ।

गरमल—उंठा पुं० [सं०] मयूर । मोर ।

गरघा—वि० [सं० यु०] [ली० गरवी] गरहै । भारी । महान् । उ०—गद भारयो गरवी गधर मस्तक अरि के जाई । फूटो सिर निसस्त भई रधिपर आर अधिकार ।—गोपाल ।

गरह—उंठा पुं० [सं० प्र०] (१) ग्रह । (२) अरिष्ट । धापा । दे० “ग्रह” । उ०—ममता दादु कंड हरपाई । हरप विपाद गरह बहुताई ।—तुलसी ।

मुहा०—गरह कटना = अरिष्ट दूर होना । दुःख नष्ट होना । श्रापति उलाना ।

गरहन—उंठा पुं० [सं०] (१) काली तुलसी । (२) बयई । ममती । उंठा पुं० [देग०] एक प्रकार की मछली ।

गरसंज्ञा पुं० [सं० प्रथम] (१) चंद्र वा सूर्य प्रथम । (२) पकड़ने की क्रिया । धारण । दे० “ग्रहण” ।

गरहर—उंठा पुं० [हिं० गर = गल + हर] वह काठ जो नरखट चौरावों के गले में लटकवाया जाता है । कुंदा । देगा । डेहुर ।

गरहेडुवा—उंठा पुं० [सं० गवेडुका] गवेयुक । कसई । कौबिला ।

गराँच—उंठा छी० [हिं० गर = गल] एक दोहरी रस्ती जिसके एक सिरे पर सुड़ी और दूसरे सिरे पर गोंठ होती है । यह पगड़े के एक छोर पर बीचोबीच से लगाई जाती है और पैल घोड़े आदि के गले में डाली जाती है ।

गरा—उंठा छी० [सं०] देवदाली बत्ता । देहाल । गारागी । उंठा पुं० दे० “गरः” वा “गला” ।

गराऊ—उंठा पुं० [सं० गरभ] पुराना भेड़ा । (गेंडेरियों की बोली) ।

गरागरी—उंठा छी० [सं०] देवदाली । बंदाल । पजर पैल । बंदाली । सोनैया पैल । कर्कटी । देवताड़ी ।

गराज—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्जन] गजजैना । गंभीर शब्द । गरज ।
उ०—जघन्त जसावत साजपाज । चट्टे किचयान करि
करि गरज ।

गराड़ी—संज्ञा स्त्री० [अजु० गड़ गड़ वा सं० डुएकी] काठ या खोहे
का गोल चक्र जिसके घेरे में रखी घैठने के लिये गड़वा बना
रहता है और जिसमें रखी डाल कर छुपें से धड़ा निकालते
हैं, पंखा स्त्री० चते हैं तथा और बहुत से काम करते हैं ।
घिरनी । चरली ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गंड = विड] राड़ु आदि से पड़ी हुई गहरी
लकीर । गड़दे के रूप में दूर तक पड़ा हुआ लंबा चिह्न ।
साँट ।

मुहा०—गराड़ी पड़ना = गहुर चिह्न देना ।

गराना ० हि० सं० [हि० गलना] गलाना ।

कि० सं० [हि० गारना] निचोड़ना । निचोड़ कर दूर करना ।
यहाना । उ०—तव मयया मनमारि हारि कैं बड़े सोच सेो
छाया । अपे कृप्य श्रवनार भूमि पै मेरो गर्व गरायो ।

गराच—संज्ञा पुं० [देग०] (१) तीन सन्तुलोंवाला एक प्रकार का
बड़ा जहाज जिसका ध्वजहार १४ बीं और ११ बीं गताब्दी
में संगाल और उसके आस पास की स्वादियों में होता था ।
(२) साधारण नाव ।

गरारा—वि० [सं० गर्व, प्रा०, पुं० हि० गारो + आर (श्रव०)] गर्व-
युक्त । प्रबल । प्रचंड । बलवान् । उन्नत । उ०—(क) कुंडल
क्रीड बवच घनुपारे । चले सैन मई सुमत गारारे ।—गोपाल ।
(ख) सुंन उठाए फिरें धापे धने यम बंदे श्रवणार मिले
सुदिन प्रतंग संग । गरजे गारारे कजारे प्रति दोह देह जिनहिं
निहारे फिरें धीर करि धीर भंग ।—गोपाल ।

संज्ञा पुं० [अ० गारण] (१) कंठ में पानी डाल कर गर गर
शब्द बरके कुल्लरी करना ।

कि० प्र०—करना ।

(२) गगरा करने की दवाई ।

संज्ञा पुं० [हि० घेरा] (१) पायजामे की डीली मोहड़ी ।
जैसे, गारोदार पाजामा । (२) डीली मोहड़ी का पायजामा ।
(३) यह थैला जिसमें सीमा भर कर रखा जाता है ।

संज्ञा पुं० [अजु०] चौपायों का एक रोग जिसमें उनके कंठ से
धुरधुर का शब्द निकलता है । धुरकवा ।

गराचीं—संज्ञा स्त्री० दे० “गराड़ी” ।

गराघनां—संज्ञा पुं० दे० “गड़ावन” ।

गराघां—संज्ञा पुं० [देग०] हलकी जमीन । कम उपजाऊ भूमि ।

गरासठ—संज्ञा पुं० दे० “प्रास” ।

गरास मोघर—संज्ञा पुं० [अ० मस + मे. अ०] मंदान की घास बरा-
बर करने की कल ।

गरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० गरिमन्] (१) गुरुत्व । भारीपन । बोरक ।

(२) महिमा । महत्त्व । गौरव । (३) गर्व । अहंकार । घमंड ।
(४) आत्मरक्षाया । योग्यता । (५) भाउ सिद्धियों में से एक सिद्धि
जिससे साधक अपना बोध चाहे जितना भारी कर सकता है ।

गरिया—संज्ञा पुं० [देग०] एक पेड़ जो मध्य प्रदेश, मध्य भारत,
बिहार और मद्रास में होता है । इसका पेड़ साधारण डेंचार्ड
को होता है और गिरिर बहुत मे इसकी पत्तियां ऋतु जाती हैं ।
इसकी लकड़ी दृढ़, कठिन, सुंदर चमकीली और साफ
होती है और प्रति घन फुट पचास तीस सेर तक भारी होती
है । इससे गाड़ी, तस्वीरों के चौराटे, खेती के सामान तथा मेज़
जुसी आदि बहुत सी चीजें बनाई जाती हैं । यह पानी में
बहुत दिनों तक बनी रहती है और इस पर नकारी भी
शक्ती होती है । हिंदुस्तान से यह लकड़ी विलायत को
बहुत जाती है और वहां आलमारी, जुरसी, मेज़, मूश का
दस्ता आदि बनाने के काम में आती है । इसे बहुसुखी भी
कहते हैं ।

गरियानां—कि० अ० [हि० गारी + आना (श्रव०)] दुर्वचन कहना ।
गाली देना ।

गरियार—वि० [हि० गड़ना = एक जगह रक जाना] जगह से जल्दी
न बढनेवाला । सुस्त । थोड़ा । मद्धर । (चौपायों के लिये इस
शब्द का प्रयोग अधिक होता है) । उ०—(क) कोई भल उस
पाव तुलारु । कोई उस चले बैल गरियारु ।—जायसी ।
(ख) पैंठे पग चालदु नहीं, होइ रहा गरियार । राम धरय
निबई नहीं, खड्ये को ह्युगियार ।—दादू ।

गरियालू—संज्ञा पुं० [हि० गरिया से करिपाठ] एक प्रकार का रंग
जो काला नीला होता है । इसमें ऊन रंगा जाता है । इसके
बनाने की विधि यह है कि दूध सेर नील की चुकनी गंधक के
तेजाव में मिला कर एक मजबूत मटके में रख देते हैं । यह
उम में एक दिन रात रखी रहती है । ऊन को रंगने के पहले
उसे चूने के पानी में डुबा कर कई बार साफ पानी से धोकर
पूए में सुखलाते हैं फिर उबलते हुए पानी में थोड़ा सा रंग
मटके में से लेकर मिला लेते हैं और ऊन को उसमें डाल
देते हैं । यह ऊन उसमें तब तक पड़ा रहता है जब तक उस
पर रंग नहीं चढ़ जाता । फिर उसे निकाल कर फिटकिरी
मिले पानी में पढ़ार डालते हैं ।
वि० काले नीले रंग का । गरियाले रंग का ।

गरिष्ठ—वि० [सं०] (१) शक्ति युक्त । श्रम्यंत भारी । (२) जो पचने
में हलका न हो । जो जल्दी न पचे । जिससे कोष्ट बढ़ हो ।
कृष्ण करनेवाला ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राजा का नाम । (२) एक दालच
का नाम । (३) एक तीर्थ स्थान ।

गरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताङ्ग ।

संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति, प्रा० युक्ति] (१) नाभियल के फल के भीतर का यह गोला जो छिलके के तोड़ने से निकलता है और मुलायम तथा खाने लायक होता है। गोला । (२) मेरानी । बीज के भीतर की गूदी । गिरी ।

गरीब-वि० [अ० गरीब] [स्त्री० गरीबिनी (व०)] संज्ञा गरीबी (१) नम्र । दीन । हीन । उ०—(क) कोटि इंद्र रचि कोटि विनासा । मोहि गरीब की केतिक आसा ।—सूर । (ख) देखियत भूप भोर कैसे उड़गन गरत गरीब गलानि है । तेज प्रताप बढत कुँथरनि को जदपि सक्कोची वानि है ।—तुलसी ।

धै०—गरीबनेयाज । गरीबपरवर ।

(२) दरिद्र । निर्धन । अकिंचन । कंगाल । उ०—दे दो गरीब आदमी का भला हो जायगा ।

धै०—गरीब गुरा = निर्धन कंगाल लोग ।

सज्ञा पुं० संगीत में एक आधुनिक राग जो सुकाम राग का पुत्र माना जाता है ।

गरीबनिवाज-वि० [फा० गरीब + नेवाज] दीनों पर दया करनेवाला ।

दुःखियों का दुःख दूर करनेवाला । दयालु । उ०—गाई बहोर गरीबनिवाज । सरल सबल साहेब सधुराज ।—तुलसी ।

गरीबनेवाज-वि० दे० "गरीबनिवाज" ।

गरीबपरवर-वि० [फा०] गरीबों को पालनेवाला । दीन प्रतिपालक ।

गरीबाना-वि० [फा०] गरीबों की तरह का । गरीबामज ।

गरीबामज-वि० [हिं० गरीब + मज (मज०)] गरीबों के योग्य । कंगाल के वित्त के अनुकूल । छोटा मोटा । भला बुरा ।

गरीबी-सज्ञा स्त्री० [अ० गरीब] (१) दीनता । अधीनता ।

नम्रता । उ०—(क) नाथ गरीब नेवान है मैं गही न गरीबी । तुलसी प्रसु निज धार ते' अनि परं सो कीबी ।—तुलसी ।

(व) पुर पांव धारिहैं उधारिहैं तुलसी से जन जिन जानि के गरीबी गाड़ी गही है ।—तुलसी । (ग) कविता केवल राम कहु छुड़ गरीबी लाज । दूर बड़ाई बूड़सी भारी परसी काज ।

—कबीर । (२) दरिद्रता । निर्धनता । कंगाली । सुहातीनी । जैसे, कपड़ा फटा गरीबी आई ।

मुहा०—गरीबी आना = दरिद्रता होना । मुहकजी होना ।

गरीबस-वि० [सं०] [स्त्री० गरीबसी] (१) यज्ञ भारी । गुरु ।

(२) महान् । प्रबल । जैसे, हरीच्छा गरीबसी । (३) गौरवान्वित । महत्त्वपूर्ण ।

गहग्रा-* वि० [सं० गुह] [स्त्री० गह्] भारी । घननी ।

गहग्राई-संज्ञा स्त्री० [हिं० गहग्रा] गुरुता । भारीपन । उ०—हरि हित हरहु चाप गहग्राई ।—तुलसी ।

गहड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु के वाहन जो पक्षियों के राजा माने जाते हैं । ये विनता के गर्भ से उत्पन्न करण्य के पुत्र

हैं । इनकी उत्पत्ति के विषय में यह कहा है कि एक बार कश्यपजी ने पुत्र की इच्छा से यज्ञ का अनुष्ठान किया । उनके यज्ञ के लिये इंद्र, वालखिल्य तथा और और देवता लकड़ी आदि सामग्री एकट्ठी करने लगे । इंद्र ने भोजी ही देर में लकड़ी का डेर लगा दिया और धंगुध भर के वालखिल्यों को एक पत्राया की टहनी घसीटते देल कर वह उनकी हँसी करने लगा । इस पर वालखिल्यगण कुपित होकर कश्यप का पुत्र दूसरा इंद्र उत्पन्न करने के प्रयत्न में लगे । अंत में कश्यप ने उन्हें समझा कर शांत किया और कहा कि तुम जिसे उत्पन्न करना चाहते हो वह पक्षियों का इंद्र होगा । अंत में विनता के गर्भ से कश्यप ने अग्नि और सूर्य के ऐसे गहड़ और अरण्य दो पुत्र उत्पन्न किए । गहड़ विष्णु के वाहन हुए और अरण्य सूर्य के सारथी । गहड़ सर्पों के यज्ञ समझे जाते हैं ।

पर्या०—गुरुमान् । तापं । चैनतेय । सुवर्ण । नागांतक । पद्मगायत । पद्मगारि । पक्षिराज । विष्णुरथ । तक्षरी । अमृताहार्य । शाहमलिन्य ।

धै०—गहड़गामी । गहड़ासन । गहड़क्रेतु । गहड़ध्वज ।

(२) बहुतां के मत से उक्ताय पची जो गिद्ध की तरह पा और बहुत बलवान होता है । उसकी चोंच की नोक कुछ मुड़ी होती है और इसके पैर पंजों तक छोटे छोटे परों से ढके रहते हैं । यह अपने चंगुल में भेड़ पकरी के पच्चों तक को उठाले जाता और खाता है । अपने बल के कारण यह पक्षिराज कहा जाता है । पश्चिम की प्राचीन जातियों में रोमक (रोमन) लोग उक्ताय को जोव (प्रधान देवता, इंद्र) का पची मानते थे और उसे मंगल और विजय का चिह्न समझते थे । अथ भी रूस, आस्ट्रिया और जर्मनी आदि देश उक्ताय का चिह्न ध्वजा आदि पर धारण करते हैं । इन सब बातों से संभव जान पड़ता है कि गहड़ उक्ताय ही का नाम है ।

† (३) एक मकड़ रंग का यज्ञ पची जो पानी के किनारे रहता है । यह तीन साढ़े तीन फुट ऊँचा होता है और इसकी गदरन सारस की तरह लंबी होती है जिसने नीचे एक चौली सी लटकती रहती है । यह मज्जलिय, केकड़े आदि पकड़ कर खाता है । इसे पेंडवा टेक भी कहते हैं ।

(४) सेना की एक प्रकार की व्यूह रचना जिसमें अगला भाग नोकदार, मध्य का भाग विस्तृत और पिछला भाग पतला होता है । (५) बीस प्रकार के प्रासादों में से एक जिसमें बीच का भाग चौड़ा तथा अगला और पिछला भाग चुकीला होता है । (६) चौदहवें कल्प का नाम । (७) जैन मत के अनुयाय चर्तमान् अथसर्पेशी के सोलहवें अर्ध का गणपति । (८) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम । (९) क्षण्य छंद का एक

भेद। (१०) नृत्य में एक प्रकार का स्थानक जिसमें पाँच पैरों को मिश्रित कर दाहिने पैर का घुटना जमीन पर डेकते हैं।

गड़गामी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। उ०—
इहाँ भी कासों कीर्तों गड़गामी।—सूर।

गड़गुंटा-संज्ञा पुं० [सं०] डाबुरजी की पूजा में बनाया जानेवाला वह घंटा जिसके ऊपर गड़गु की मूर्ति बनी रहती है।

गड़गुध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) एक प्रकार का स्तंभ जिस पर गड़गु की आकृति बनी रहती है।

गड़गुपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में डहनी देड़ी कर के दोनों हाथ कमर पर रखने का भाव।

गड़गुपाश-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फंदा या फाँसी। इसे प्राचीन काल में शत्रु को फँसाने और बांधने के लिये उस पर फँकते थे।

गड़गुपुराण-संज्ञा पुं० [सं०] १८ पुराणों में से एक। इसमें विशेष कर यमपुर तथा अनेक प्रकार के नरकों का वर्णन है। देवकर्म का विधान भी इसमें है।

गड़गुस्त-संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में एक प्रकार का भाव जिसमें हाथों को खता की तरह और पैरों को विष्ट की तरह फैला कर झुली ऊपर की ओर बमारते हैं।

गड़गुभक्त-संज्ञा पुं० [सं०] गड़गु की उपासना करनेवाला एक संप्रदाय जो ईसा के जन्म के पूर्व भारतवर्ष में प्रचलित था।

गड़गुयान-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। श्रीकृष्ण।

गड़गुधन-संज्ञा पुं० [सं०] सोलह धरत का एक वर्षा वृत्त। इसके प्रत्येक चरण में नगण, जाणय, भगण, जगण और तगण तथा अंत में एक गुरु होता है। (न ज म ज त ग)। उ०—ननु भजतं पुगल निशिवासर रेभना। लहमि न सौह्य भूलि कहूँ यव कीन्हें घना। हरि हरि के कहे भजत पाप को जूह यों। गड़गुधन सुनै भजत सर्प को व्यूह ज्यों।

गड़गुशुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस्य में सेना के जमाव या स्थापन का एक प्रकार। इसमें सेना का मध्य भाग अधिक विस्तृत तथा धागे और पीछे का भाग पतला होता है।

गड़गु-संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष। पंख। पर।

गड़गामी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुत। भारीपन। (२) गंभीरता। बड़ाई। बड़पन। उ०—कानन की छवि दीह लखै गिरिचढ़ास, गढ़ता अपार जाकी बरनत वेद है।—गोपाल।

गड़गु-संज्ञा पुं० दे० “गड़गु”।

गड़गुई-संज्ञा स्त्री० दे० “गरुआई”। उ०—घरिहीं में गस्तन शय छाई। हरिहीं सकल भूमि गड़गुई।—विद्याम।

गड़गुरी-संज्ञा पुं० [सं०] गुरु + हर (शब्द०) भारी (योग)।

गड़गुर-संज्ञा पुं० [सं०] घमंड। अभिमान।

गड़गुर-संज्ञा पुं० [सं०] गुरुत। घमंड। अभिमान। गर्व। धड़कार। उ०—धुरत पर बल भूरि हृदय मँहें पूरि गस्तत।—गोपाल।

गड़गुरी-संज्ञा पुं० [सं०] गुरुती। अभिमान। संज्ञा स्त्री० अभिमान। घमंड।

गड़गुरिया-संज्ञा पुं० दे० “गड़गुरिया”।

गड़गुरवान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंभु, सुरते आदि कपड़ों की काट और सिलाई में वह भाग जो गले पर पड़ता है। गज्ञा। (२) काट आदि में वह पट्टी जो गले पर रहती है। कालर।

गड़गुरना-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घेरना। उ०—भा धावा गड़गुरना गरी। कोपा कटक लाग चहुँ फेरी।—जायसी। (२) छँकना। रोकना।

गड़गुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] घेरा या गतार्थ। (१) गराड़ी। घिरनी। (२) दे० “गँडरी”। वि० चखरदार। घुमावदार। उ०—खँड खँड तीड़ी भई गरी। उतर्हि चड़हि खोम चहुँ फेरी।—जायसी।

गड़गुरी-संज्ञा स्त्री० दे० “गरीरी”।

गड़गुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गराव। पगहा। उ०—बढ़रै ररी प्यारै गज तिहि कैं पदमाकर को मन ब्यावत है। तिय जानि गरीयँ गही बनमाल मु मुँचे ललाइँ चे आवत है।—बघारू।

गड़गुर-संज्ञा पुं० [सं०] कुंड। जत्था। समूह। गोल।

गड़गुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक ऋषि। ये ऋषिरस भरद्वाज के वंशज थे और ऋग्वेद के छठे मंडल का ४७ वाँ सूक्त इनका रचा हुआ है। (२) अथर्व वेद के परिशिष्ट के अनुयाय एक प्राचीन औषधिपी। (३) धर्मशास्त्र के प्रवर्तक एक ऋषि। (४) वितथ्य राजा का एक पुत्र। (५) नंद के एक पुरोहित का नाम। (६) बेल। साँड़। (७) एक कीड़ा जो पृथिवी में घुसा रहता है। गोरी। (८) विष्ट। (९) कंबुआ। (१०) एक पर्वत का नाम। (११) द्रव्य के एक मानस पुत्र का नाम जिसकी सृष्टि गया में यज्ञ के लिये हुई थी। (१२) संगीत में एक ताल जिसमें चार द्रुत और अंत में एक चाली या विराम होता है।

गड़गुर-संज्ञा पुं० [सं०] कालायन और सूत्र के अनुसार एक प्रकार का योग जो तीन दिनों में होता है।

गड़गुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैबर। (२) एक प्रकार का प्राचीन बाजा जो वैदिक काल में बनाया जाता था। (३) गागर। (४) एक प्रकार की मछली।

गड़गुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह बचन जिसमें दही मया जाता है। माद। दूधेरी। (२) गोरी। कलली। (३) मयवी।

गड़गुर-संज्ञा स्त्री० दे० “गुरज”।

गड़गुर-संज्ञा स्त्री० दे० “गुरज”।

गर्जन-संज्ञा पु० [सं०] गरजना । गरज। भीषण ध्वनि ।
गंभीर वाद ।

यौ०—गर्जन तर्जन = (१) तड़प । (२) डंठ डपट ।

संज्ञा पु० [दे०] शाल की जाति का एक पेड़ जिसके जंगल के जंगल हिन्दुस्तान में झाँकेर, मलायार, कनारा, वोकन, चटगांव, पर्मा, श्रद्धमान आदि में पाये जाते हैं । इसके पेड़ इनकी रंग के सीधे और सै। तया सै। हाथ जैचं होते हैं और इनकी छालियां बहुत दूर तक नहीं फैलतीं । इनके कई भेद हैं जिन में से कई एक सदाशुद्ध भी होते हैं । इस पेड़ से एक प्रकार का निर्यास निकलता है जो कभी कभी इतना पतला होता है कि वह अलसी के तेल की तरह रंगों के काम में लाया जाता है । पर्मा में दो प्रकार के गर्जन होते हैं । एक तेलिया गर्जन जिसका निर्यास लाल रंग का होता है और दूसरा सफ़ेद गर्जन जिसका निर्यास सफ़ेद रंग का होता है । इन दोनों के निर्यास पतले और श्रद्धे होते हैं । तेल निकालने की विधि यह है कि नवंबर से मई तक इसके पेड़ की जड़ में दो तीन गहरे खोकर गहरे खोद दिए जाते हैं, फिर उनके किनारे धाग जलाई जाती हैं जिनसे तेल सिमट सिमट कर गहरे में एकट्ठा हो जाता है और तीसरे चौथे दिन गहटा भर जाता है । जो तेल मट्टी पर बह कर लम जाता है उसे सुख कर पत्थियों में लपेट लेते और मोमबत्ती की तरह जंगलों में जलाते हैं । आमाम और बरमा का दोलंग नामक सदाशुद्ध वृक्ष भी इसी जाति का है जिसका निर्यास बिरोजे की तरह का और सफ़ेद होता है । इस जाति के कुछ वृक्षों का निर्यास अधिक गाढ़ा होता है और शाल की तरह जलाने के काम में आता है । यह वृक्ष चीनों से उगता है और इसके फल और चीज शाल के फलों और चीनों की तरह होते हैं । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और प्रति घन फुट २२-३० सेर भारी होती है और नाव तथा घर बनाने के काम में आती है ।

गर्जना-संज्ञा पु० [सं० गर्जन] दे० "गरजना" ।

गर्त्त-संज्ञा पु० [सं०] (१) गड्ढा । गड़हा । (२) दरार । (३) घर । (४) रथ । (५) जलाशय । (६) एक नरक का नाम ।

गर्द-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] धूल । शाल । खाक ।

क्रि० प्र०—उड़ाना ।—उड़ाना ।

मुद्गा—गर्द उड़ाना वा उड़ाना = दूध के साथ धूल का फैलना ।
गर्द उड़ाना = दूरी की बुनावट में नंचेवाले डंडे के तागों का बैठा चुकने के बाद, रस्सी के दोनो छोंधों को लकड़ी में बांध कर ऊपर के डंडे के तागों का बैठाना वा जमाना । गर्द उड़ाना = नृत या चैपट करना । धूल में भित्ताना । परवाद करना । जैसे, सेना ने नगर की गर्द उड़ान दी । गर्द उड़ाना = ऐसी मार खाना जिसकी परवाह न हो । गर्द फाँकना

= व्यर्थ धूमना । आवाज फिरना । गर्द को न पहुँचाना वा न लगना = सम्झा न कर सकना । गर्द होना = (१) तुच्छ होना । समता के योग्य न होना । हेष होना । जैसे, इसके सामने सय गर्द है । (२) नष्ट होना । चैपट होना ।

यौ०—गर्द गुथार = धूलि मट्टी । गर्दा ।

क्रि० प्र०—उड़ाना ।—उड़ाना ।—निकलाना ।—उड़ाना ।
—जमाना ।

गर्दखोर, गर्दखोरा-वि० [फ्रा० गर्दखोर] जो गर्द वा मिट्टी आदि पड़ने से मिला वा खराब न हो । जैसे, खूनी रंग ।
संज्ञा पु० नारियल की जटा वा इसी प्रकार की और चीनों का बना हुआ गोल वा चौकोर टुकड़ा जो पर्व पोंदने के काम आता है ।

गर्दन-संज्ञा पु० दे० "गरदन" ।

गर्दना-संज्ञा पु० दे० "गरदना" ।

गर्दभंग-संज्ञा पु० [हिं० गर्द + भंग] एक प्रकार का गाँजा जो कश्मीर के दक्षिणी भागों में उत्पन्न होता है । इसे चूल् चरस भी कहते हैं ।

गर्दभ-संज्ञा पु० [सं०] (१) गधा । गढ़ा । (२) श्वेत कुमुद । सफ़ेद कोंडे । (३) विडंग । (४) गदहिला नामक कीड़ा ।

गर्दभयाग-संज्ञा पु० [सं०] धवकीयै याग ।

गर्दभशाक-संज्ञा पु० [सं०] भारंगी । ब्रह्म वटि ।

गर्दभांड-संज्ञा पु० [सं०] पलखा । पाकर । लूच ।

गर्दभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद कंठकारी ।

गर्दभि-संज्ञा पु० [सं०] विश्वामित्र का एक पुत्र ।

गर्दभिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग का नाम जिनमें घात पित्त के विकार से गोल जैची कुंठियां निकलती हैं । इन कुंठियों का रंग लाल होता है और इनमें बहुत पीड़ा होती है । गदहिला । गदहिली ।

गर्दभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक कीड़ा । (सुधुव) (२) अपराजिता नाम की लता । (३) सफ़ेद कंठकारि । (४) गर्दभिका नामक रोग । (५) गदही ।

गर्दभाद-वि० [फ्रा०] (१) गर्द से भर । (२) उजाड़ । ध्वस्त । गिरा पड़ा । † (३) वैसुध । बेहोरा ।

गर्दालू-संज्ञा पु० [फ्रा० गर्द = गै.श + आलू] आलू बुलारा ।

गर्दालू-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) हुमाव । चकर ।

क्रि० प्र०—करना ।

(२) विपत्ति । आपत्ति ।

क्रि० प्र०—खाना ।—होना ।

गर्दुआ-संज्ञा पु० दे० "गर्दुआ" ।

गर्द-संज्ञा पु० [सं०] [वि० गर्द, गर्दित] (१) स्रष्टा । क्षोभ । लिप्सा । (२) गर्दभांड वृक्ष । पलखा । पाकर ।

गर्दित, गर्दित-वि० [सं०] लुप्त ।

गर्दी-वि० [सं० गर्दिर] [श्री० गर्दिनी] (१) लोमी । लालची ।
(२) शुच्य ।

गर्नाल-संज्ञा श्री० दे० "गर्नाल" ।

गवे-संज्ञा पुं० दे० "गवे" ।

गर्भद-संज्ञा पुं० [सं०] वह नाभि जो झंडे की तरह उमरी हो ।

गर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेट के भीतर का बन्धा । इमल । जैसे, उसे तीन गर्भाने का गर्भ है । ३०-—चलत दसानन खोलति अयनी । गर्भत गर्भ खवहिं सुर-रवनी ।—गुलसी ।

मि० प्र०—रहना ।—होना ।

धा०—गर्भगत । गर्भलाय ।

मुहा०—गर्भ गिरना = पेट के बच्चे का पूरा वाढ़ के पहिले निकल जाना । गर्भगत होना । गर्भ गिराना = पेट के बच्चे को शीघ्र प्राणत आदि द्वारा पूरी वाढ़ वा बूरे समय के पहिले निकाल देना । गर्भगत करना ।

(२) श्री के पेट के भीतर का वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है । गर्भाशय । ३०-—जाके गर्भ माहिं रिपु मोरा । ताझे बध करिहैं यहि ठौरा ।—रघुराज । (३) फलित ज्योतिष में नष्ट भेवों की उपति जिससे वृष्टि का भागम होता है ।

विशेष—श्री के रज और पुत्र्य के बीच के संयोग से गर्भ की स्थिति होती है । हारीत के मत से प्रथम दिन शुक्र रोपित के संयोग से जिस सूक्ष्म पिंड की सृष्टि होती है उसे कलक कहते हैं । दूस दिन में यह कलक बच्चों के रूप में होता है । एक गर्भाने में सूक्ष्म रूप में गर्बों द्वित्रियों की उपति और पंचभूतों की प्राप्ति होती है । तीसरे गर्भाने हाथ पैर निकलते हैं और माद्रे तीन गर्भाने पर फिर वा मल्लरु उपपन्न होता है और उसकी मीनती बनापट पूरी होती है । चौथे गर्भाने में रोपू निकलते हैं । पांचवें गर्भाने जीव का संघार होता है । छठे गर्भाने में यथा हिलने डुलने लगता है । इसवें वा अधिक देे अधिक ग्यारहवें गर्भाने में बच्चे का जन्म होता है । इसी प्रकार सुधुत ने पहले मल्लरु, फिर मीवा, फिर दोनों पाश और फिर पीठ का होना लिखा है । सुधुत ने बधस्थल के भीतर कमल के धाकार का दृश्य माना है और उने जीवात्मा वा चेतना शक्ति का स्थान कहा है । कन्या और पुत्र के भेद के विषय में भावप्रकारा धादि में लिखा है कि जब गर्भ में शुक्र की प्रवलता होती है तब पुत्र और जब रज की प्रवलता होती है तब कन्या होती है । प्राधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों के भी मत से रज और शुक्र के संयोग से गर्भ की स्थिति और बच्चे का जन्म होता है । पर उनके मत से छंदकेश के वृद्धिने भाग में ऐसे पदार्थों की स्थिति रहती है जिसमें पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति होती है और शार्प भाग में कन्या उत्पन्न करने की शक्तिवाला पदार्थ रहता है । गर्भाधान के समय जिस पदार्थ की अधिकांश गर्भाशय में

हो जाती है उसी के अनुसार कन्या या पुत्र की सृष्टि होती है । इसी सिद्धांत के चल पर वे कहते हैं कि मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार पुत्र वा कन्या उत्पन्न करने में समर्थ हो सकता है । पारचाल खोज इस विषय में बहुत ध्यान बड़ी हुई है । पुत्र्य-वीर्य के एक बूँद में सूत के से लंबे लंबे सूक्ष्म वीर्याणु रहते हैं जो सूक्ष्म रेशों के सहारे तैरते रहते हैं । श्री के रजाणु वीर्याणु से कुछ बड़े और कौटू की आकार के होते हैं । पुष्ट होने पर वे ही गर्भाणु या गर्भांड कहलाते हैं । इनका व्यास ३२८ इंच होता है और इनके भीतर प्राण रस रहता है । जब रज और वीर्य का संयोग होता है तब सूक्ष्म गर्भाणु और शुक्राणु एक दूसरे से आकर्षित करने मिल जाते हैं । इस आकर्षण का कारण प्राण वा रसानुभव से मिलती जुलती एक प्रकार की चेतना बलबद्ध जाती है, जो इन सूक्ष्म प्राणायुओं वा प्राणकणों में होती है । बहुत से शुक्राणु गर्भाणु की ओर झुकते हैं और उसमें घुसना चाहते हैं, पर धूमने पाता है कोई एक ही । जब कोई शुक्राणु मिर के चल उसमें घुस जाता है तब गर्भांड के उपर की एक मिल्ली छूट कर अलग हो जाती है और एक कोरा की तरह बन जाती है जिसमे और रोप शुक्राणु गर्भांड के भीतर नहीं घुसने पाते । इस प्रकार ही इन दोनों प्राणायुकेतनों के संयोग से एक स्वतंत्र कोरा की सृष्टि होती है जिसे भ्रूवकोश कहते हैं । इसके उपरंत प्राणरस का विभाग होता है । वह विभागक्रम के द्वारा धीरे धीरे बहुत से प्राण-कोशों का समूह बच्चों (वा शहचूत) की तरह बन जाता है जिसे धाधुपैतिक आधाचर्यों ने कलक कहा है ।

गर्भक-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रजीव सृष्ट । पतनिय ।

गर्भकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिससे गर्म रहे । गर्भ धारण करनेवाला । जैसे, पति, जार आदि । (२) सामगान का एक भेद जिसमें वैराज के धादि और श्रंत में रंरत का गान किया जाय ।

गर्भकाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भाधान के उपयुक्त काल । अष्ट काल । (२) यह समय जिसमें श्री के पेट में बच्चा रहता है ।

गर्भकेसर-संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तों में वे बाल घुमे पतले घून जो गर्भनाल के भीतर होते हैं और जिनके माथ परागकेसर के पराग का मेल होने से कर्तों और बीजों की पुष्टि होती है ।

गर्भकौप-संज्ञा पुं० [सं०] गर्भाशय ।

गर्भगृह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकान के बीच की कोठरी । मध्य का घर । (२) घर का मध्य भाग । आंगन । (३) मंदिर में बीच की वह प्रधान कोठरी जिसमें सुम्य प्रतिमा रनी जाती है ।

गर्भघातिनी-संज्ञा श्री० [सं०] लांगलिका सृष्ट ।

गर्भघाती-वि० [सं० गर्भघातिन्] [२१०० गर्भघातिनी] गर्भपात करनेवाला ।

गर्भज-वि० [सं०] (१) गर्भ से उत्पन्न । सेतान । (२) जो जन्म से हो । जिसे साय लेकर कोई उत्पन्न हो । जैसे, गर्भज रोग । गर्भज गुण ।

गर्भज-वि० [सं०] गर्भ देनेवाला । जिसमे गर्भ रहे ।
शशा पुं० पुत्रजीव वृक्ष ।

गर्भदा-संज्ञा स्त्री [सं०] सप्रेद भटकटैया ।

गर्भदाश्री-संज्ञा स्त्री [सं०] स्पेन कटककारि । सप्रेद भटकटैया ।

गर्भदास-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जन्म से दास हो । दामियुव ।

गर्भदिवस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ का समय । गर्भकाल । (२) यूपद्विष्टा के अनुसार १३२ दिन का काल जिसमें संघ था गर्भ होता है । यह समय प्रायः कालिंकी पूर्णिमा के बाद आता है ।

गर्भद्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] पारे का तेरहवां संस्कार जो शुद्धि के लिये किया जाता है ।

गर्भद्रुह-वि० [सं०] जो गर्भ रहने का विरोधी हो । जो गर्भाधान न चाहे ।

गर्भद्रुहा-वि० [सं०] (स्त्री) जो गर्भधारण की विरोधिनी हो । जो गर्भधारण करना न चाहती हो । जो गर्भ गिरावे ।

गर्भध-वि० [सं०] गर्भधारण करानेवाला । गर्भधारक ।

गर्भनाडी-संज्ञा स्त्री [सं०] सुभूत के अनुसार गर्भाशय की एक नाड़ी जिसमे गर्भधारण होता है ।

गर्भनाल-संज्ञा स्त्री [सं०] फूलों के भीतर की वह पानी नाज जिसके सिरे पर गर्भकेसर होता है । इसी गर्भकेसर और पामकेसर के संमिश्रण से फलों और बीजों की पुष्टि और वृद्धि होती है ।

गर्भनिस्त्रय-संज्ञा पुं० [सं०] वह गिह्ठी खादि जो बच्चे के उत्पन्न होने पर पीछे से निकलती है । जैसे, धाँवर लेड़ी ।

गर्भपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाम्भा । कोमल पत्ता । सेपल । (२) फूल के श्रेष्ठ के पत्ते जिनमें गर्भकेसर रहता है । गर्भनाल ।

गर्भपाकी-संज्ञा पुं० [सं०] साडीधान ।

गर्भपात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ का पंचवयं वा छठे महीने में गिर जाना । (२) गर्भ का गिरना । पेट के बच्चे का पूरी थाड़ के पहले निकल जाना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गर्भपातक-संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिजन । रक्तोष्मांजन ।

गर्भपातन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेट गिराना । गर्भ हलवा । (२) रीटा ।

गर्भपातिनी-संज्ञा स्त्री [सं०] (१) कलिहारी । (२) विशालया नामक औषधि ।

गर्भभयन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह घर जो बीच में हो । मध्य की कोठरी । (२) प्रवृत्तिका गृह । सैरी ।

गर्भास-संज्ञा पुं० [सं०] वह महीना जिसमें गर्भाधान हो ।

गर्भरा-संज्ञा स्त्री [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाँव जो ११२ हाथ लंबी, २६ हाथ चौड़ी और २६ हाथ ऊँची होती थी और नदियों में चलती थी ।

गर्भघती-वि० स्त्री [सं०] गर्भिणी । जिसके पेट में बच्चा हो । गर्भिणी ।

गर्भघास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ के भीतर की स्थिति । (२) गर्भाशय ।

गर्भश्याकरक-संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा शास्त्र का वह श्रेय जिसमें गर्भ की उत्पत्ति तथा वृद्धि खादि का वर्णन होता है ।

गर्भद्रुह-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में सेना की एक प्रकार की रचना जिसमें सेना कमल के पत्तों की तरह अपने सेनापति या रथ-पशु के चारों ओर से घेर कर खड़ी होती और लड़ती है ।

गर्भद्रुहा-संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा शास्त्रानुसार एक प्रकार की संवेदी जिससे मरे हुए बच्चे को पेट के भीतर से निकालने में इसके सुँह का घेरा खाद्य श्रेयण का होता है ।

गर्भद्राया-संज्ञा स्त्री [सं०] गर्भ की उत्पत्ति का स्थान ।

गर्भम्य-वि० [सं०] जो गर्भ में हो । जिसका जन्म होनेवाला हो ।

गर्भम्यटी-संज्ञा स्त्री [सं०] गर्भाशय ।

गर्भम्राघ-संज्ञा पुं० [सं०] चार महीने के भीतर का गर्भपान जिसमें रुधिरादि गिरता है । इस अवस्था में शत्रुानुसार जितने महीने का गर्भ होता है उतने दिन तक का सूखक लगता है, जिसे गर्भम्राघ शोध कहते हैं ।

गर्भम्राघी-संज्ञा पुं० [सं०] गर्भनिर्वृत्ति दिताल नामक वृष, जो एक प्रकार का ताड़ है ।

गर्भहत्या-संज्ञा स्त्री [सं०] भ्रूण हत्या । गर्भपात ।

गर्भीक-संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के संकट का एक श्रेय जिसमें केवल एक दृश्य होता है । इसकी समाप्ति पर पहिली जय-निका उदाई थाथा दूसरी गिराई जाती है और तब दूसरा दृश्य शरंभ होता है ।

गर्भागार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कोठरी जो घर के मध्य में हो । घर के बीच का कमरा । गर्भगृह । (२) श्रांगन । (३) गर्भस्थान । गर्भाशय ।

गर्भाधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गृहसूत्र के अनुसार मनुष्य के सोलह संस्कारों में से पहला संस्कार । यह संस्कार उस समय होता है जब स्त्री श्रुतवती हो चुकती है । (२) गर्भ की स्थिति । गर्भ-धारण ।

गर्भाशय-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों के पेट में वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है । बच्चादान ।

विशेष—त्रियों का गर्भाशय वा गर्भकोश वास्तव में बही अव-
यव है जो पुरुषों का श्रद्धकोश है; स्त्रियों में यह भीतर होता
है पुरुषों में बाहर। इसी की भिन्नता से स्त्री और पुरुषों के
और और लक्षणों की भिन्नता उत्पन्न होती है। इसी गर्भा-
शय में रजागु वा गर्भाणु रहते हैं। जो जीव जितने ही
अधिक श्रद्धे देते हैं उतने ही उनके गर्भाशय बड़े होते हैं। स्त्री
का गर्भाशय १३ इंच लंबा, ३ इंच चौड़ा और ३ इंच मोटा होता
है और उसमें एक गर्भनाड़ी रहती है जिससे बच्चा निक-
लता है।

गर्मिणी-वि० [सं०] (१) जिसे गर्भ है। गर्भवती। पेटवाती।
(२) सिरानी का पेड़।

संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नांव जो
८० हाथ लंबी, ४० हाथ चौड़ी और ४० हाथ ऊँची होनी
थी और तमबुद में चलती थी। इस पर यात्रा करना अशुभ
और अनिष्टकारक समझा जाता था।

गर्मित-वि० [सं०] (१) गर्भयुक्त। (२) पूर्ण। पूरित। भरा हुआ।
संज्ञा पुं० [सं०] काव्य का एक दोष जिसमें कोई अति-
रिक्त वाक्य किसी वाक्य के श्रंतर्गत ध्रा जाता है।

गर्भोपघात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ का नष्ट होना। (२)
बादल में जल उत्पन्न करने की शक्ति का नष्ट हो जाना।

गर्भोपनिषद्-संज्ञा पुं० [सं०] धरणी वेद संबंधी एक उपनिषद्
जिसमें गर्भ की उत्पत्ति और उसके बढ़ने आदि का वर्णन
किया गया है।

गर्भोद्-वि० दे० "गरियालु"।

गर्भा-वि० [सं० गरुडिक = लाल] लाल के रंग का। लाली।
संज्ञा पुं० (१) लाली रंग। (२) छोड़े का एक रंग जिस में
लाली बालों के साथ कुछ सफेद बाल मिले होते हैं। (३)
इस रंग का घोड़ा। (४) लाली रंग का कपूतर।

संज्ञा पुं० [अमृ०] (१) बहने हुए पानी का थपड़ा। उ०—
भेड़ा भँगर उदालन चकरा समेट माला। बँदा गंभीर सल्ला
कहे पदार गर्भा—नजीर। (२) सलखन नदी का एक
नाम। (भायलपुर)

संज्ञा पुं० [हिं० गर्भः] गराड़ी।

गर्भ-संज्ञा स्त्री० [हिं० गोत्रा] (१) गलिहान में लगाई हुई ठल
की गाँज। (२) तागा वा तार लपेटने का एक यंत्र।

गर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गर्भत, गर्भवत्] (१) अहंकार।
धमंड। (२) एक प्रकार का संचारी भाव। अपने को सब से
बड़ा और दूसरों को अपने से छोटा समझने का भाव।

गर्भवहारी-वि० [सं०] गर्व का नाश करनेवाला। धमंड वृथ
करनेवाला।

गर्भवत्-वि० [सं० गर्भवत् का वद् + गर्भः] धमंडी। अभिमानी।

अहंकारी। उ०—गर्ववत् सुरपति चडि आये। धाम करन
- गिरि टेकि दिखाये।—सूर।

गर्धाना-वि० [सं० गर्व] गर्व करना। अभिमान करना।
धमंड करना। अहंकार करना। उ०—कहा तुम इतनेदि को
गर्धानी। ज्येन रूप दिवस दूसरी को उषां अंगुरी को पानी।
—सूर।

गर्विता-संज्ञा स्त्री० [सं०] यह नायिका जिसे अपने रूप और गुण
आदि का धमंड है। यह दो प्रकार की होती है; रूपगर्विता
और प्रेमगर्विता।

गर्विष्ठ-वि० [सं०] गर्व-युक्त। धमंडी। अहंकार करनेवाला।

गर्वी-वि० [सं० गर्वित्] धमंडी। अहंकारी। मगसूर।

गर्वीला-वि० [सं० गर्व + ईला (प्रत्ययः)] [स्त्री० गर्वीली] धमंड से
भरा हुआ। अभिमान युक्त। धमंडी। उ०—जैन परे रस
स्वाम सुपा में.....जिनि यह सुपा पान मुल कीन्हे। दे
कैसे कटु देखत। ल्यों ए नैन मद् गर्वीले अच काहे हम
लेखत।—सूर।

गर्हण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गर्हणीय, गर्हित] निंदा। शिकायत।
गर्हणीय-वि० [सं०] निंदा करने के योग्य। बुरा। निन्दनीय।

गर्हो-संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा।

गर्हित-वि० [सं०] जिसकी निंदा की जाय। निन्दित। दूषित।
बुरा।

गर्हो-वि० [सं०] निंदा करने योग्य। निन्दनीय।

गर्लदा-संज्ञा स्त्री० [सं० गर्लतांग] यह जायदाद जिसका मालिक
मर गया हो और उसका कोई उत्तराधिकारी न हो।

गल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गला। कंठ। गरदन। (२) राल।
(३) गड़ाऊ नाम की मसूली। (४) एक प्राचीन यात्रे का
नाम।

गलई-संज्ञा स्त्री० दे० "गलही"।

गलकंबल-संज्ञा पुं० [सं०] गाय के गले के नीचे का वह भाग
जो लटकता रहता है। फालर। लहर। उ०—सेइय सहित
सनेह देइ भरि कामपेनु कलि कासी।.....श्रंत धयन
धयनु भल यनु फल पच्छुवेद विधासी। गलकंबल यरना
विभानि जनु लुम लसति सरिता सी।—तुलसी।

गलका-संज्ञा पुं० [हिं० गलना] एक प्रकार का फोड़ा जो हाथ की
उंगलियों के धगले भाग में होता और बहुत कष्ट देता है।

गलकोड़ा, गलघोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० गला + कोड़ा] (१) मालपत्र
की एक कसत जिस में पीठ की तरफ गरदन पर से घेंत को
ले जाकर एक हाथ में उसे लपेटे होते और दूसरी धार के पांव
में घंटी देकर गले के ऊपर लटक जाते हैं। (२) बुन्ती का
एक पंच जिसमें एक धगल में शयु की गरदन दबा कर दूसरा
हाथ उसकी धगल से पीठ पर ले जाते हैं और उसे उलट कर टांग
के सहारे गिरा देते हैं। (३) एक प्रकार का कोड़ा वा चाबुक।

गलगंड—संज्ञा पुं० [सं०] गले का एक रोग जिसमें गले में सूजन हो जाती है और क्रमशः बढ़ते बढ़ते सामने एक गाँठ सी निकल पड़ती है। यह गाँठ म्लिच्छ म्लिच्छ आकार की होती है और कभी कभी इतनी बढ़ जाती है कि घैले की तरह गले में लटकने लगती है। वैद्यक के अनुसार यह रोग तीन प्रकार का माना गया है, घातज, कफज और भेदज। डाक्टरों का कथन है कि पहाड़ी तराइयों में लोगों को विशेष कर स्त्रियों को गलगंड रोग हो जाता है। उनके मत से इसमें गले के एक या दोनों ओर की भिन्नी फूल जाती है। घेवा।
† संज्ञा पुं० [दे०] हरगीला नाम की चिट्ठिया।

गलगल—संज्ञा पुं० [दे०] (१) मैन की जाति की एक चिट्ठिया जो कुछ सुवीं लिए काले रंग की होती है। इसके गले पर दोनों ओर पीली या लाल धारियाँ होती हैं और इसकी धुम के नीचे का भाग सफेद होता है। सिरगोटी। गलगलिया। (२) एक प्रकार का बहुत बड़ा मीठू जो चकोतरे के बराबर होता और पकने पर गहरे बसंती रंग का हो जाता है। यह बहुत अधिक खटा होता है और अचार ढालने तथा शोषणियों के काम आता है। (३) चर्बी की बत्ती का एक टुकड़ा जो जहाज में समुद्र की गहराई नापनेवाले यंत्र में लीसे की एक नली से लगा रहता है। यह नली बार बार समुद्र में फेंकी और निकाली जाती है और इसमें बालू आदि समुद्र की तह की चीज़ें लग कर बाहर निकलती हैं। (जहाजी) (४) थलसी और चूने के तेल को मिला कर बनाया हुआ एक प्रकार का मसाला जो लकड़ी आदि की चीज़ों को जोड़ने या छोड़ा छोड़ वा दार आदि दंड करने के काम में आता है।

गलगला—वि० [हिं० गीला या अनु०] भीगा हुआ। आर्द्र। तर। उ०—ललन चलन सुनि चुप रही वोनी आधन ईंति। राख्यो गहि गाढ़े गरो मनो गलगली दीठ।—विहारी।

गलगलाना—कि० अ० [हिं० गीला या अनु०] गीला होना। तर होना। भीगना।

गलगलिया—संज्ञा स्त्री० [दे०] किलहँटी या सिरौही नाम की चिट्ठिया।

गलगलाना—कि० अ० [हिं० गल + गलना] सुखी से गरजना। गल बजाना। बड़ बड़ के बातें करना। उ०—राम सुभाउ सुने तुलसी हुलसे थलामी हमसे गलगलाने।—तुलसी।

गलगुच्छा—संज्ञा पुं० दे० “गलगुच्छा”।

गलगुथना—वि० [हिं० गल] मोटा ताड़ा। जिसका बदन पृथ भरा और गाल फूले हैं।

गलगल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैतिय के अनुसार कृष्णवर्ण की चतुर्वी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चमावस्था और प्रतिपदा। गंगादि के मत से जब स्वाध्याय के आरंभ करते

ही स्थिति के अनुसार अनप्याय पढ़ जाये तो उसे भी गलगल कहते हैं। (२) मड़ली का फाँटा। (३) वह आरति जो कठिनता से टले। (४) गले का एक रोग जिसमें कफ बढ़ जाने से गला बंद हो जाता है। (५) एक प्रकार की पकी हुई मड़ली।

गलगल—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला + लंडना] मड़ली के गलगल के दोनों ओर बुरी हड्डियों का बना हुआ, फामानी के आकार का वह भाग जिसके ऊपर लाल सूद्यों की मालर लगी रहती है और जिसकी सहायता से वह पानी में मिली हुई धातु को अंदर खींच कर सांस लेती और पानी को बाहर ही छोड़ देती है।

गलगल—संज्ञा पुं० [सं० गल + गन्ध, पं० जरा] (१) वह जो सदा साथ रहे। गले का हार। वह जो कभी पिंड न छोड़े। (२) वह रूमाल या कपड़े की पट्टी जो गले में उभ समय हाथ के सहारे या उसे लटकाने के लिये बांधी जाती है जब कि हाथ में किसी प्रकार की चोट लगी हो वा कोई घाव हो।

गलगल—संज्ञा स्त्री० दे० “गलगल”।

गलगल—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला + बल] (१) वह रस्सी वा पगड़ी आदि जिससे एक बेल के गले को दूसरे बेल के गले से लगा कर बांधते हैं। गलगल। (२) गले का हार। गलगलदंड।

- † वि० असहय।

गलगल—वि० [हिं० गला + तंग] घे-सुध। वे-सुधर।

गलगल—संज्ञा पुं० [सं० गलित + वग] (१) ऐसा मनुष्य जो कोई संतति न छोड़ कर मरा हो। (२) ऐसे मनुष्य की संतति जिसे कोई संतति न हो।

गलगल—वि० [अ०] [संज्ञा स्त्री० गलगल] (१) अशुद्ध। भ्रममूलक। (२) असत्य। मिथ्या। झूठ।

कि० प्र०—करना—। ठहरना।—उहराना।—होना।

गलगल—संज्ञा स्त्री० [हिं० गल + तक्रिया] छोटा, मोल और सुलायम तक्रिया जो गालों के नीचे रखा जाता है।

गलगल—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला + तना] वह रस्सी जो बेलों के गेरावों में बांधी जाती है। पगहा।

गलगल—वि० दे० “गलगलान”।

गलगल—संज्ञा पुं० [अ० गल + गत] (१) एक प्रकार का बहुत चमकीला और गफ कपड़ा जिसका ताना रेशम का और बाना मून का होता है। यह सादा, धारीदार और कई प्रकार का होता है। (२) मकान की कारतिस।

गलगल—संज्ञा पुं० [सं०] जूट वा जुयाठी की वह सैल या खँटी जो भीतर की ओर होती है।

गलगल—वि० [फा०] लुढ़कता हुआ। चकर मारता हुआ। घूमता हुआ। उ०—गगन हुआरे मन गया फरे अमृत

रस पान । रूप सदा फलकत रहै, गगन मँडल गलतान ।—
कबीर ।

गलती—संज्ञा स्त्री० [सं० गलत + ई० फा०] (१) भूल । चूक ।
धोखा ।

मुद्दा—गलती में पड़ना = धोखा खाना । भूल करना ।
(२) अग्रदि । भूल ।

क्रि० प्र०—करना ।—खाना ।—निकालना ।—पड़ना ।—
होना ।

गलधना—संज्ञा पुं० [सं० गलधन, पा० गलधन, गलधन] ये यैलियाँ
जो एक विशेष प्रकार की पत्तियों की गरदन में दोनों ओर
लटकती रहती हैं । उ०—नाम जपत कन्या भली साकट
मला न पूत । ऐरी के गल गलधना जामे दूध न मूल ।—
कबीर ।

गलधैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० गल + धैली] बंदों के गल के नीचे
की धैली जिम में वे खाने की वस्तु भर लेते हैं ।

गलनहरा—संज्ञा पुं० [हिं० गलना + वर = गलन] हाथियों का एक
रोग जिसमें वनके नाखून गल गल के निकला करते हैं ।
वि० यह हाथी जिसे गलनहरा रोग हो ।

गलना—क्रि० अ० [सं० गलप = तर होना] (१) किसी पदार्थ के
घनत्व का कम या नष्ट होना । किसी द्रव्य के संयोगक धरों
या अणुओं का एक दूसरे से इस प्रकार टूटकर हो जाना कि
जिस से यह द्रव्य विच्छिन्न, कोमल या द्रव हो जाय । यह
विरलेपण किसी द्रव्य के बहुत दिनों तक हो ही शक्य जल,
तेजाय आदि में पड़े रहने, गरमी या आंच लगने शक्यवा
किसी धीरे प्रकार के संयोग के कारण हो जाता है । जैसे,
आंच के द्वारा सोने, चाँदी आदि का गलना ; जल में यतसे
मिट्टी आदि का गलना ; गरम जल की आंच में दाल, चावल
आदि का गलना ; तेजाय में दवा या खनिज पदार्थों का
गलना, कीटाणुओं के संयोग से (कोड़ा आदि प्याथियों में)
शरीर के धरों और बहुत अधिक पकने या अधिक समय
तक पड़े रहने के कारण फल पत्ती आदि का सड़ कर
गलना । (२) बहुत जीर्ण होना । जैसे, कपड़ा या कागज
गलना । (३) शरीर का लुप्त होना । यदन सूखना । जैसे,
आठ दिन की बीमारी में वे बिलकुल गल गए । (४)
बहुत अधिक सरदी के कारण हाथ पैर का ठिठुरना । जैसे,
आज तो सरदी के मारे हाथ गल रहे हैं । (५) घृणा
या निष्कल होना । बेकाम होना । नष्ट होना । जैसे, दाय
गलना, मोहरा गलना ।

मुद्दा—कोठी गलना = कुएं या पुन के लंबे में जमकट या
गले के ऊपर की जाड़ाई का नीचे पँसना । चिनी गलना
= मिठाई आदि बनाने के लिये चिनी का कड़ाही में छाया

जाना । रूपया गलना = धरप व्यय होना । फ झूठ लूच होना ।
जैसे, कल उनके पचास रुपए तमारे में गल गए ।

संयोग क्रि० अ०—जाना ।

गलफड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गल + फटना] (१) जलजंतुओं का यह
श्रवण जिससे वे पानी में साँस लेते हैं । ऐसे जंतुओं में
फेफड़ा नहीं होता । यह सिर के नीचे दोनों ओर होता है
और मिला मिला जलजंतुओं में मिला मिला धाकार का होता
है । मनुष्यों के गले में सिर के दोनों ओर दो अर्धचंद्राकार
छेद का कटाव होते हैं । इन्हीं छेदों के भीतर चार चार
अर्धचंद्राकार कमानियाँ होती हैं जिनके ऊपर लाल लाल
जुकीली सूइयों की फालर होती है जिसे गलछूट कहते हैं ।
इन्हीं गलछूटों से होकर मनुषियों पानी में साँस लेती हैं
जिस से पानी में मिला हुई वायु मात्र भीतर जाती है और
पानी छूट कर बाहर रह जाता है । (२) गले के दोनों ओर
का यह मांस जो दोनों जबड़ों के बीच में होता है । गल
का चमड़ा ।

गलफरा—संज्ञा पुं० दे० 'गलफड़ा' ।

गलफाँस—संज्ञा स्त्री० [सं० गलपथ] मालखंब की एक कसरत
जिसमें घेत को गले में लपेट कर उसके एक छोर को छाती
पर से ले जाकर पैर के अँगूठे के नीचे दबा कर केवल गले
के जोर से श्रवण मांथे को पेट तक मुकाते हैं । इस कसरत
में इस यात पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि
गला अधिक न कसने पावे अन्यथा गले में फाँसी लग जाने
की संभावना होती है ।

गलफाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गल + फाँसी] (१) गले की फाँसी ।
(२) जंतल । कष्टदायक वस्तु या कार्य ।

गलफूट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गल + फूटना] थड़पड़ाने की लत ।
वेधङ्क अथ वंड बकने की लत । कल्ले-दुराजी ।

गलफूला—वि० [हिं० गल + फूलना] जिसकी गाल फूली हो ।
संज्ञा पुं० एक रोग जिस में गले में सूजन होती है ।

गलफेड़ो—संज्ञा पुं० [सं० गल + फेड़] गले की गिलडी ।

गलबंदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गल + बँधना या शुद्धन] गुलबंद
नामक आभूषण जो गले में पहना जाता है ।

गलबंदरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गलना + बंदरी] ऐसा चादल जिनके
साथ हाथ पंख गलानेवाला जाड़ा पड़े । यह शक्यता प्रायः
जाड़े के दिनों में होती है ।

गलबल्लो—संज्ञा पुं० [अनु०] कोजाहल । खलभजी । गड्यड़ी ।
उ०—(क) गलबल्ल सयं गगर परयो प्रगटे यदुबंदी । दारपाव
इहै कही जोषा कोउ क्यो नहीं कथि गजदंत परे सुर
मलधरणी ।—सूर । (ख) गोरद पयोधि करि होलिका ज्यो
साई खंक निपट निसंक पर पुर गलबल्ल भो ।—शुक्सी ।

गलबाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० गल + बाँह] गले में बाँह बाजना ।

कंठालिंगन । ३०—सुमन पुंज विहरत सर्वां दे गलर्वाही माल । बंदीं धरन सरोज तिन जुगुल लाडिली खाल ।

गलमँदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गल + सं० मुद्रा] (१) शिव जी के पूजन शयन आदि के समय उन्हें प्रसन्न करने के लिये गाल बजाने की मुद्रा । गलमुद्रा । (२) गाल बजाना । व्यर्थ धक-बाद या गप्प करना । ३०—इत घृष मुद्रन की गलमँदरी । मिटन न पाई जष तक सगरी ।—विश्राम ।

गलमुच्छा—संज्ञा पुं० [सं० गल + हिं० मूळ] दोनों गालों पर के बड़ाप हुप थाल जो कुछ लोग शोक से रख लेते हैं । ऐसे लोग छोड़ी के बाल तो मुड़वा डालते हैं पर गालों के बाल बड़ने देते हैं । गलयुच्छा ।

गलमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० गल + मुद्रा] शिव जी के पूजन शयन आदि के समय उनके प्रसन्न करने के लिये गाल बजाने की मुद्रा । गलमँदरी ।

गलवाना—क्रि० सं० [हिं० 'गलाना' का प्रे० रूप] गलाने का काम कराना । गलाने में लगाना ।

गलयुद्धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीभ के आकार का मांस का एक छोटा टुकड़ा जो प्राणियों के गले के शंकर जीभ की जड़ के पास होता है । शब्द उच्चारण करने में यह प्रधान सहायक है और इस से स्वांस की नलियों की रचा होती है और उन में खाने पीने की चीजों नहीं जाने पाती । पुरुषों में यह शंख श्वाध इंद्र से कुछ बड़ा और स्त्रियों में कुछ छोटा होता है । शास्त्रावस्था में यह बहुत छोटा रहता है पर युवावस्था में देर तीन वर्षों के शंकर ही इसका आकार दूना या तिगुना हो जाना है । युवावस्था में जो आवाज कड़ी हो जाती है और जिसे कंठ बूटना कहते हैं उसका प्रधान कारण इसी के रूप और आकार का परिवर्तन है । कुछ पशुओं में यह बहुत नीचे की ओर फेफड़े की नलियों के पास होता है । साधारणतः पक्षियों में देर और कभी कभी तीन तक गलयुद्धियाँ होती हैं । छोटी जुवाना या जीभ । जीभी । (२) एक रोग जिसमें कफ और रक्त के विकार के कारण तालू की जड़ में सूजन हो जाती है और खाँसी और सांस की अधि-कता हो जाती है ।

गलसिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गल + श्री] कंठ श्री नाम का गहना जो गले में पहना जाता है ।

गलसूत्रा—संज्ञा पुं० [हिं० गल + सूत्रना] एक रोग जिसमें गाल के नीचे का भाग सूज आता है ।

संज्ञा पुं० [हिं० गला + दलना] पशुओं का एक रोग जिसमें उसके गले में सूजन हो आती है और उसे खाँसी होने लगती है ।

गलसुई—संज्ञा स्त्री० [सं० गल + सुई] गालों के नीचे रखने की एक छोटा, गोल और कोमल तकिया । गलतकिया । ३०

—कुसुम गुलायन की गलसुई । वर्याँ जाय न गयन सुई —केशव ।

गलस्तन—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा गलस्तनी] स्तन के आकार की वे पतली धँलियाँ जो एक प्रकार की बकरियों के गले के दोनों ओर लटकती रहती हैं । गलयन ।

गलस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरियों की एक जाति जिनके गले के पास स्तन के आकार की दो छोटी पतली धँलियाँ लटकती रहती हैं ।

गलस्वर—संज्ञा पुं० [सं० गल + स्वर] एक प्राचीन काल का वाजा जो मुँह से झूँक कर बजाया जाता था ।

गलहँडू—संज्ञा पुं० [हिं० गला + हंडा = एक बरतन] गले का एक रोग जिसमें गले में थैली सी लटक आती है । घेवा ।

गलही—संज्ञा स्त्री० [सं० गला + ही (प्रथ०)] नाँव का वह गमला और ऊपर का भाग जहाँ उसके दोनों पार्श्व आकार समाप्त होते हैं ।

गला—संज्ञा पुं० [सं० गल] (१) शरीर का वह अवयव जो गिर को धड़ से जोड़ता है । इसके भीतर एक पतली नाली रहती है जिससे होकर भोजन किया हुआ पदार्थ तथा श्वास द्वारा खींची हुई वायु पेट में जाती है । नाभिमूल से नाद के साथ उठी हुई वायु इसी में से होकर मुख के भिन्न भिन्न स्थानों में टकराती हुई भिन्न भिन्न प्रकार की प्यभि उत्पन्न करती है । गरदन । कंठ ।

धौ०—गलाफ़ाड़ । गलेयान । गलर्वाही ।

मुहा०—गला धाना = गले के भीतर छाला पड़ना । रजन होना । गला उठाना वा करना = बच्चों के गले में उँगलो डाल कर वा रुमाल बांध कर उनके बड़े हुए कौवे का ऊपर का दधाना जिसमें वह अपने ठिकाने पर आ जावे । धंटी बैठाना । गला कटना = (१) दे० "गरदन कटना" । चड़ से सिर जुदा होना । (२) अनुचित हानि पहुँचना । किसी का विरुद्ध कार-वाई से नुकसान पहुँचना । गला काटना = (१) गरदन काटना । धड़ से सिर जुदा करना । (२) अत्यंत कष्ट पहुँचना । बहुत दुःख देना । अन्याय करना । ३०—वह लोगों का गला काट काट कर रखया इकट्ठा कर रहा है । (३) सूदन, बंडा, आदि का गले के भीतर एक प्रकार की जलन और जुनजुनाहट उत्पन्न करना । गले के भीतर कनरनाना । ३०—यह सूदन बहुत गला काटता है । (४) विरुद्ध कार्रवाई करके हानि पहुँचना । बुराई करना । अहित करना । ३०—जो पहले मित्र बनते हैं वे ही पीछे गला काटते हैं । गला धुँटना = दम करना । अफ़्की तरह साँव न लिया जाना । गला घोटना = (१) गले का ऐंठा दधाना कि साँव रुक जाय । डँडुया दधाना । (२) ऊपरदर्शी कर्माना । जत्र करना । ३०—गला घोट कर कोई किसी से कब तक काम ले सकता है ? (३) मार डालना । गला दधा कर

मार डालना। गला धलना = कंठ से सुरीला स्वर निकलना।
 आवाज का सुरीला होना। जैसे, उसका गला खूब चलता है।
 गला छूटना = पीड़ा छूटना। पत्ता छूटना। छुटकारा मिलना।
 निश्चर होना। किसी अशुचिकर या दुष्टा विरुद्ध वात का गला
 होना। बचाव होना। उ०—उसको रूँ दिष्ट तब जाकर गला
 छूटा। गला छुटाना वा गला छुड़ाना = पीड़ा छुड़ाना। पत्ता
 छुड़ाना। विंढ छुड़ाना। बचाव करना। किसी ऐसी वस्तु को दूर
 करना जिससे विष भ्रम, हैरानी, दवाव वा दुःख में पड़ा हो।
 उ०—(क) उसे कुछ दे लेकर गला छुड़ायो। (ख) कल यह
 रास्ते में मुझसे ऐसा उलफ पड़ा कि गला छुड़ाना कठिन हो
 गया। गला जोड़ना = (१) प्रीति वा मैत्री प्रकट करने के लिये
 एक दूसरे के गले में हाथ डालना। मित्रता। मैत्री करना। (२)
 साथ देना। गला दीपना = दे० “गला दवाना”। गला दवाना =
 (१) गले को इतने जोर से पकड़ना कि सांस रुकने लगे। (२)
 गला दबा कर मार डालना। (३) ज्वरदली करना। अनुक्ति
 दशाव डालना। उ०—(क) उसने लोगों का गला दबा कर
 शय्या बन्धु किया। (ख) जब यह नहीं जाना चाहता तब
 क्यों उसका गला दबाते हो। गला पकड़ना = (१) गले में
 बँटना। किसी खाई हुई बस्तु का गले में चिरमना वा बकना
 तथा नीचे जकड़ी न उतरना। जैसे, सूखा सत गला पकड़ता
 है। (२) कंठावरोध करना। कंठ से शब्द शब्द न निकलने
 देना। गला पड़ना वा बँटना = (१) गले के भीतर दूजान होने
 वा कफ आदि रहने के कारण शब्द दुँह से शब्द न निकलना
 वा परपरागृह के साथ निकलना। उ०—रात भर गले गले
 इसका गला बँट गया। (२) गले के भीतर सरदी के कारण
 छोटी छोटी गिलाटियाँ निकलना जिससे खाने पीने में बहुत
 कष्ट होता है। गला पटना = गला दुखना। गले के भीतर
 दई होना। उ०—चिहाते चिहाते उसका गला पट गया।
 गला फँसना = बँधन में पड़ना। लाचार होना। मजदूर होना।
 फेर देना। विषय होना। उ०—जब बादमी का गला फँसता
 है तब सप कुछ करने को तैयार हो जाता है। गला फँसना =
 (१) दूब में कँटना। बँधन में डालना। बारीशु करना।
 (२) आपत्ति में फँसना। संकट में डालना। मुश्किल में डालना।
 अवाच्यदेही में डालना। श्रुत्य आदि का बोझ उतर डालना।
 उ०—हमारा गला फँसा कर भाग चढ़ते यने। गला
 फँसना = दे० “गला फँसाना”। गला फड़ना = इतना
 चिलाना कि गला छुड़ने लगे। जोर भर आवाज जगाना।
 उ०—(क) यह इनका गला फाड़ फाड़ कर चिहाता रहा
 पर मुझे न घुना। (ख) क्यों व्यर्थ गला फाड़ते हो, यह
 नहीं बोलेगा। गला फिरना = गले का तन और खप पर
 चलना। मने से स्वर का तन स्वर और गिटकरी के अनुगार
 निकलना। गला कूलना = उफटाना जाना। दम पूटाना। गला
 बँधना = (१) मजदूर होना। बँध जाना। विररा होना।

गला बँधना = दे० “गला फँसना”। गला बँधना = (१)
 बँधन में डालना। मजदूर करना। (२) दे० “गला फँसना”।
 गला बंध कर धन जोड़ना = खाने पीने का फट उठा कर
 धन इकट्ठा करना। गला रेतना = (१) अत्यंत पट पहुँचाना।
 अधिक और अत्यंत दुःख देना। (२) अहित करना। दुर्गद
 करना। विरुद्ध कार्यवाई करके हानि पहुँचाना। गले का
 डोलना = गले का थोका। गले का थोका = व्यर्थ का मार।
 ऐसी बस्तु जिसका रहना दुःख जगता हो। गले का हार = (१)
 इतना प्यार (स्वयिक वा वस्तु) कि पाव से कर्मा गुना न किया
 जाय। अत्यंत प्रिय। चिर सहकर। उ०—इस समय यह राजा
 साहय के गले का हार हो रहा है।

कि० प्र०—करना।—याना।—होना।

(२) पीड़ा न छोड़नेवाला। क्षरक न चाहने पर भी सदा पास
 में बना रहनेवाला। यह जो थोका मादम हो। उ०—यहले तो
 उसे परचाते बन्धा छाया, अथ वही गले का हार हो रहा है।

कि० प्र०—होना।

(घात) गले के नीचे उतरना वा गले उतरना = (घात)
 मन में बैठना। जी में जँचना। ध्यान में आना। समझ में आना।
 स्वीकृत होना। उ०—उसे इतना समझाया जाता है पर उसके
 गले के नीचे उतरता ही नहीं। गले उतरना = स्वीकार
 करना। गले पड़ना = (१) दुष्टा के विरुद्ध प्रयत्न होना। न
 चाहने पर भी मिलना। मर्षे पड़ना। उ०—(क) गले पड़ी
 दोल बजाए सिद्ध। (ख) गप निमात्र सुझाने, रोज़ा गले
 पड़ा। (२) गले पड़ना। आगे आना। भोगने वा सहने के
 लिये सामने बसिख होना। उ०—होती अनजान तौ न जानती
 हकीकत चिया मरे जिय जान मरे जानियो गरे परयो।—देव।
 (घपने) गले बंधना = (१) संग जगना। सिर पर से होना।
 (२) व्यर्थ पाव में रखना। निष्प्रयोजन लिए रहना। उ०—
 इस दृष्टे गिलास को लेकर क्या हम गले बंधिये। (३) दुष्टा
 विरुद्ध किसी से विवाद करना। (दूसरे के) गले बंधना =
 दूसरे की दुष्टा के विरुद्ध उठे देना। ज्वरदली देना। दूसरे के
 न चाहने पर भी उठे होने के लिये विवरा करना। उ०—जब
 यह हमे नहीं लेना चाहता तो क्यों उम्मेके गले बंधते हो।
 गले मँडना = (१) किसी की दुष्टा के विरुद्ध उठे
 देना। ज्वरदली देना। उ०—यह दूकानदार दूरी सूटी चीन्ही
 लोगों के गले मँडता है। (२) किसी की दुष्टा के विरुद्ध उठ
 पर किसी कार्य का मार देना। दूसरे के न चाहने पर भी उठे
 कोई काम होना। (३) किसी की दुष्टा के विरुद्ध उठके
 साथ किसी को ब्याहना। उ०—यह कानी की उठके गले
 मँडी गई। गले मिलना = गले पर हाथ रख कर अतिमान
 करना। गले सागना = (१) गले मिलना। मिलना। गले में
 हाथ डालना। (२) गले पड़ना। दुष्टा के विरुद्ध उठे देना।

गले खगाना = गले में देना। दूसरे की इच्छा के विरुद्ध उसे देना। दूसरे के न चाहने पर भी उसे लेने के लिये विवश करना। उ०—यदि आप इसे नहीं लेना चाहते तो कोई आप के गले नहीं लगाता है।

(२) गले का स्वर। कंठ स्वर। जैसे, उसे भगवान ने श्रद्धा गला दिया है। (३) शंकरले, डरते आदि की काठ में कपड़े का वह भाग जो गले पर पड़ता है। शरीरान।

क्रि० प्र०—काठना।—कृता करना।

(४) धरतियों का वह तंग या पतला भाग जो उसके मुँह के नीचे होता है। जैसे, घड़े का गला, लोटे का गला। (५) चिमनी का कड़ा। धरती।

गलाऊ—वि० [हि० गलना] जो गल जाय। जो गल सके। गलने-वाला। जैसे, गलाऊ दाल।

गलाना—क्रि० सं० [हि० गलना का सकर्मक रूप] (१) किसी वस्तु के संयोग्य अणुओं को पृथक पृथक करके उसे नरम, गिला या द्रव करना। जैसे, पानी में थोड़ा गलना, अर्ध पर सोना-चांदी रांगा आदि गलाना, खोलते पानी में दाल धावल गलाना, इत्यादि।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

(२) नरम या मुलायम करना। पुलपुला करना। उ०—यह दवा फोड़े को गला देगी। (३) अणुओं को पृथक पृथक करके किसी वस्तु को धीरे धीरे लुप्त करना। बहुत थोड़ा थोड़ा करके सय करना। उ०—यह दवा तिड़ी को गलाती है। (४) (रूपया) खर्च कराना। उ०—तुमने हमारा बहुत रूपया गलाया।

गलानि—[संज्ञा स्त्री० [सं० गलानि] (१) दुःख या पशुतावे के कारण खिलता। अपने किए का पशुतावा वा खेद। अपनी करनी पर लजना। उ०—(क) गरुड गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषण देई।—तुलसी। (ख) तुम गलानि जिय जनि करहु, समुक्ति मातु करवति। तत कैकेइहि दोष नहि, गई गिरा मति धृति।—तुलसी। (२) खेद। दुःख। परिताप। उ०—(क) राम सुप्रेमहि पोषत बानी। हस्त सकल कौल कलुष गलानी।—तुलसी। (ख) श्रमर नाग मुनि मजुज सपरिजन विगत विपाद गलानि।—तुलसी।

गलार—संज्ञा पुं० [?] एक पेड़ का नाम।

† वि० [हि० गल] मलायाल। योड़ी सी पात के लिये बहुत श्रद्धापूर्वक बकनेवाला।

† संज्ञा पुं० मैना पक्षी।

गलारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गलप, प्रा० गल्ल] गिलगिलिया नाम की चिड़िया।

गलाचट—संज्ञा स्त्री० [हि० गलना] (१) गलने का भाव वा क्रिया।

(२) वह वस्तु जो दूसरी वस्तु को गलावे। जैसे, सोहागा, मैसादर आदि।

गलित—वि० [सं०] (१) गला हुआ। (२) अधिक दिन का होने के कारण नरम पड़ा हुआ। जिस में नपन की सुस्ती और कड़ाई न हो।

यौ०—गलित यौवन।

(३) सुराना पड़ा हुआ। जीर्ण शीर्ष। संवित। (४) सुधा हुआ। स्युत। (५) नष्ट भ्रष्ट। (६) परिपक्व। परिपुष्ट। उ०—दान लौहों सब धंगनि को। अति मद गलित तालफल ते सुष्ट सुगल उरोम अतंगनि को।—सूर।

गलित कुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रकार के कुष्ठों में से एक। इसमें शरीर के अवयव जैसे, हाथ, पैर की कँगलियाँ आदि सड़ने और कट कट कर गिरने लगते हैं। उनमें कीड़े पड़ जाते हैं। यह कुष्ठ सब से घृसाध्य माना गया है।

गलित यौवन—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका यौवन डल गया हो। डलती जवानी की स्त्री। उ०—आम से हमारा काम धही गलित यौवना और चपटी नाकवाली करंगी।—हरिश्चंद्र।

गलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० गली] चढ़ी या जति के ऊपर के पाद में वह श्रेय जिस में से दलने वा पीसने के लिये दाना बाला जाता है।

वि० [हि० गड़ना, गड़ियार] मट्टर। सुस्त। (बैल आदि चौपायों के लिये)।

गलियार—संज्ञा पुं० [हि० गरी + आर (प्रत्य०)] [स्त्री० श्वप० गलियार] पतली वा तंग छोटटी गली।

गलियारी—संज्ञा पुं० [हि० गलियार] गली। पतला मार्ग।

गली—संज्ञा स्त्री० [सं० गल] धरों की पंक्तियों के बीच से हो कर गया हुआ तंग रास्ता जो सड़क से पतला हो। रोती। झुका। उ०—बलवान है शान गली तेहि खाने न गल बनावत सो है।—तुलसी।

मुहा०—गली गली मारे मारे फिरना = (१) इधर उधर व्यर्थ घूमना। (२) जीविका के लिये इधर से उधर मटकना (३) चारों ओर अधिकता से मिन्नना। सय जगह दिखाई पड़ना। साधारण वस्तु होना। उ०—येसे वैच गली गली मारे मारे फिरते हैं। गली कँकाना = इधर उधर हँसना करना। खोज में फिराना। उ०—मुमने हमें कितनी गलियाँ कँकाने हैं। गली कमाना = (१) गली में झाड़ू देना। मेहतर का काम करना। (२) पालवाना साफ़ करना।

(३) महला। महाल। जैसे, कचाड़ी गली।

गलीचा—संज्ञा पुं० [फा० गलीचा (कालीलवा = तु० काली वा कालीन से)] (१) एक प्रकार का खल मोटा बुना हुआ चिड़ौना जिस पर रंग बिरंग के बेल घुंटे बने रहते हैं और घने बालों की तरह खल निकले रहते हैं। अथ तक फ़ारस, दमस्क आदि से ऊन के गलीचे आते हैं। अथ यह सूती भी बनाया जाता

हे । दे० "कालीन" । (२) कहारों की बोली में कंकड़ौली भूमि ।

गलीज-वि० [अ०] (१) गँदला । मैला । (२) नापाक । अशुद्ध । अपवित्र ।

ग्लि० प्र०—करना ।

गला पु० (१) मैला । गंदगी । झूठा करकट । गंदी बस्तु ।

ग्लो०—गलीजखाना = बूझाखाना ।

(२) पालाना । मल ।

गलीतक-वि० [अ० गलीत] मैला चुचैला । मलिन । गंदा । दुर्दशाग्रस्त । उ०—मीत न नीति गलीत है जो धरिये धन जोरि । छाप छरचे जो ऊरे ती जोरिये करोरि ।—विहारी ।

गल्द-संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का पत्थर या नग जिसके प्राचीन काल में मर्यादा धादि धनते थे ।

गलेफ-संज्ञा पु० (१) दे० "गिलाफ" । (२) दे० "गिलेफ" ।

गलेबाज-वि० [हि० गला + बाज] जिसका गला अचछा चलता है । अचछा गानेवाला ।

गलेचा-संज्ञा पु० दे० "गलीचा" ।

गलेना-संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का सुरमा जो कंधार और काबुल से आता है ।

गले-संज्ञा पु० [सं० ग्ले] चंद्रमा । उ०—गंग गाइ गोमती गलौ मधपति अरु सुरगिरि ।—घुदन ।

गलेप्रा-संज्ञा पु० [हि० गल] बंदरों के गालों के भीतर की पैली जिसमें वे अपने खाने की बस्तु को भर लेते हैं ।

गलीच-संज्ञा पु० [सं०] एक रोग जिसमें रोगी के गालों के भीतर एक प्रकार की घुनन हो जाती है, जलन होती है और उसे रास लेने में कठिनता होती है। वैद्यक में यह रोग कफ और रक्त के प्रकोप से माना गया है। इसमें उबर भी आता है ।

गल्प-संज्ञा स्त्री० [सं० गल्प वा कल्प] (१) मिथ्या प्रलाप । गप्प । (२) बौंग । शैली । (३) सूर्य के यात्र प्रवर्धों में से एक । (४) छोटी छोटी कहानियाँ ।

गल्पारा-संज्ञा पु० दे० "गलियारा" ।

गल्द-संज्ञा पु० [सं०] गाल । कपोल ।

संज्ञा स्त्री० [हि० गल वा गल्प । मित्राक्षो क० गिष्ठा] धात । (पंजाबी) उ०—हूरी गल धरि कल में बकसी मुसकाना । इननू वृक्षत तुली क्यों किया पथाना ।—सुदन ।

गल्दर-वि० [हि० गल्द] गल्ले के रूप में ।

संज्ञा पु० (१) यह खेत जिसका खगान तिस में लिया जाता है। बरदाई । (२) खेत का वह लगान जो उसकी उपज के रूप में कालकारों से लिया जाता है ।

गल्हा-संज्ञा पु० [अ० गल्हा, हि० गुल्हा] शेर । हारा । उ०—हल्हा परयो अयच महला ते महला मय्य गल्हा मय्यो थादर ह जनन कुमार को ।—रघुराज ।

संज्ञा पु० [अ० गल्हा] सुँड । दल ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः चरनेवाले पशुओं के लिये होता है। शैले, गाय भैंस का गल्हा, भेड़ बकरियों का गल्हा । संज्ञा पु० [हि० गोल] एक प्रकार का थैल जिसे गोला भी कहते हैं ।

संज्ञा पु० [हि० गल] जतना अन्न जितना एक बार चक्की में पीसने के लिये डाला जाय । कौरी ।

संज्ञा पु० दे० "गल्हा" ।

गल्हा-संज्ञा पु० [अ०] [वि० गल्हर्द] (१) जोतने बोलने से उत्पन्न होनेवाले पैधों के फल, फूल आदि की उपज । फसल । पैदावार । उपज । (२) अन्न । अनाज ।

ग्लो०—गल्हाफुरीया ।

(३) वह धन जो दूकान पर निलय की बिक्री से मिलता है । धनराशि । गोलक । (४) मद् । फंड । खाता ।

गल्हाफुरीया-संज्ञा पु० [अ०] अनाज का व्यापारी । वह दूकानदार जो गल्हा वा अन्न बेचता है ।

गल्हली-संज्ञा स्त्री० दे० "गली" ।

गत्वर्क-संज्ञा पु० [सं०] मद्य पीने का प्याला । प्राचीन काल में यह पात्र गल् नामक पत्थर का बनाया जाता था ।

गर्व-संज्ञा स्त्री० [सं० गर्व, प्रा० गवे] (१) घात । प्रयोजन सिद्ध होने का अवसर । (२) मतलब । प्रयोजन ।

विशेष—दे० "गर्व" ।

गुहा-संज्ञा पु०—(१) घात देल कर । मौका लजवीज कर । (२) धीरे से । चुपचाप । उ०—रावन, धान, महाभट भारे । देखि सरासन गर्वहि सिपारे ।—तुलसी ।

गव-संज्ञा पु० [सं० गवय] एक बंदर का नाम जो रामचंद्रजी की सेना में था ।

गवन-संज्ञा पु० [सं० गवन] (१) प्रस्थान । प्रयाण । चलना । जाना । उ०—सुनि मन गवन कीन्ह रघुनाया ।—तुलसी ।

(२) वक्त्र का पहले पहल पति के घर जाना । गवना । गौना ।

गवनना-संज्ञा पु० [सं० गवन] जाना । उ०—(क) पुनि रानी हैंसि हसल पँछा । कित गवनेहु पींजर करि छुड़ा ।—जायसी । (ख) गवने सुरत तहाँ रिपियारई । जहाँ स्वयंवर भूमि बनाई ।—तुलसी ।

गवना-संज्ञा पु० दे० "गौना" ।

गवय-संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० गवयी] (१) नील गाय । (२) एक धान जो रामचंद्र जी की सेना में था । (३) एक छँद का नाम जिस के प्रथम चरण में ११ मात्राएँ होती हैं और ११ मात्राओं पर विराम होता है। दूसरे चरण में दोहा होता है। उ०—सुरभी केसर वसे नील वद भाई । मनो भगर सुग्रीव को सोहत सुंदर पाई ।

गवनेमेट-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राज्य । शासनपद्धति । (२) शासकमंडल ।

गवर्नर-संज्ञा पुं० [अ०] (१) शासक । हाकिम । (२) किसी प्रांत का वह प्रधान हाकिम जिसे उस पद पर राजा या प्रजा ने चुना हो । (३) वह प्रधान शासक जिसे राजा वा मंत्रि-मंडल किसी देश में शासन करने के लिये नियुक्त करे । (४) भारतवर्ष में किसी प्रेसिडेंसी का वह प्रधान हाकिम जो इंग्लैंड के बादशाह वा मंत्रिमंडल द्वारा गवर्नर जनरल के अधीन रह कर शासन करने के लिये नियत किया गया हो । भारतवर्ष में बंबई, मद्रास और बंगाल में गवर्नर रहते हैं । लाट ।

धा०—गवर्नर-जनरल ।

गवर्नर-जनरल-संज्ञा पुं० [अ०] किसी देश का वह सब से बड़ा हाकिम जिसे राजा वा मंत्रिमंडल ने नियत किया हो और जिसके नीचे कई एक गवर्नर और लफ्टेंट-गवर्नर हों । जैसे भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल, जो संपूर्ण भारतवर्ष का शासन करते हैं और जिन के मातहत बंबई, मद्रास और बंगाल के गवर्नर-तथा संयुक्त प्रांत, पंजाब आदि के लफ्टेंट-गवर्नर रहते हैं । गवर्नरों की नियुक्ति इंग्लैंडेश्वर स्वयं करते हैं पर लफ्टेंट-गवर्नर गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त होते हैं । गवर्नर जनरल एक कांसिल वा मंत्रिमंडल द्वारा शासन करते हैं । वाइसराय । बड़े लाट ।

गवर्नरी-संज्ञा स्त्री० [अ० गवर्नर + ई (प्रत्य०)] (१) जहाँ पर गवर्नर शासन करता हो । प्रेसिडेंसी । (२) शासन । अधिकार ।

गवल्-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली भैंसा । अरना ।

गवहियाँ-संज्ञा पुं० [सं० गोत्र = अतिथि] अतिथि । मेहमान ।

गवाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौला । कुरोला । छोटी खिड़की । (२) एक बंदर का नाम जो रामचंद्र की सेना का सेना-पति था ।

गवाल*—संज्ञा पुं० दे० “गवाच” ।

गवाछ*—संज्ञा पुं० दे० “गवाच” ।

गवाना-क्रि० सं० [सं० गवन, हिं० ‘गवन’ का प्र०] खोना ।

गवार-क्रि० [फा०] (१) मनभाता । अनुकूल । पसंद । (२) सहा । श्रमीकार ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गवालीक-संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह मिथ्याभाषण जो गो आदि चौपायों के लिये किया जाय ।

गवास्त-संज्ञा पुं० [सं० गवायन] गीतारथक । कसाई । हत्यारा ।

उ०—कासी मयु सुरस्तरि क्रमनाशक । मरु मारव महिदेव गवासा ।—तुलसी ।

गवाह-संज्ञा पुं० [फा०] [संज्ञा गवाही] वह मनुष्य जिसने किसी घटना का साक्षात् देखा हो । वह जिसके सामने कोई बात हुई हो । वह जो किसी मामले के विषय में जानकारी रखता हो । साक्षी । साखी ।

धा०—गवाह-साखी ।

मुहा०—गवाह देना = अपने दावे का सिद्ध करने के लिये प्रमाण के लिये साक्षी उपस्थित करना । गवाह बनाना = (१) साक्षी बनाना । मुकदमे में किसी को गवाही देने के लिये नियत करना । (२) झूठा गवाह बनाना । गवाह ऐसी या स्वरूप = वह गवाह जिसने घटना अपनी श्रौंक्षा देली हो । चरमदीद गवाह । गवाह समाई = वह गवाह जिसने घटना श्रौंख से न देखी हो और जो सुनो सुनाई बात कहे । चरमदीद गवाह = वह गवाह जिसने कोई घटना श्रौंख देली हो ।

गवाही-संज्ञा स्त्री० [फा०] किसी घटना के विषय में किसी ऐसे मनुष्य का कथन जिसने वह घटना देखी हो वा जो उसके विषय में जानता हो । साख्य । साखी का प्रमाण ।

मुहा०—गवाही करना वा लिखना = किसी दूतावेज़ पर साक्षी के रूप में हस्ताक्षर करना । गवाही देना = किसी साक्षी का किसी घटना के विषय में अपनी इज़हार लिखाना ।

गवीधुक-संज्ञा पुं० दे० “गवेधुक” ।

गवीशर-संज्ञा पुं० [सं० गवेध] (१) गोस्वामी । (२) विष्णु ।

(३) सांड ।

गवेधु, गवेधुक-संज्ञा पुं० [सं०] कसेई । कौड़िहा ।

विशेष—प्राण्य मयों के अनुसार शब्द देवता के लिये गवेधुक के चर की आहुति दी जाती थी । मीमांसा के अनुसार शब्द को गवेधुक के चर से यज्ञ करने का अधिकार है ।

गवेरक-संज्ञा पुं० [सं०] मोरु ।

गवेली-वि० [हिं० गौव] [स्त्री० गवेक्षी] गँवार । देहाती । उ०—नागरि विविध विलास तजि यसी गवेखिन माहि । मूर्खों में गनिवी किन्तु हूब्यों दै इडलाहि ।—विहारी ।

गवेपणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] खोज । अन्वेषण । तलाश । छानबीन ।

विशेष—प्राचीन काल में आर्यों का सर्वस्व गो थी । जब गो हरी जाती थी वा कोई उसे चुरा ले जाता था तब वे लोग उसे बड़े परिश्रम से ढूँढ़ते थे । वेदों में पण्य असुर के गो चुराने और इंद्र का अपनी कृतिया सरना को बसे ढूँढ़ने को भेजने की गाथा इसका उदाहरण है । इसी लिये यह शब्द जिसका वास्तविक अर्थ गो की इच्छा है खोज, तलाश के अर्थ में लिया गया ।

गवैया-वि० [पू० हिं० गवय = गाला] गानेवाला । गायक ।

विशेष—“गैया” प्रलय पूर्विय है । इससे वह किया अथवा धातु के पूर्विय रूप “गावना” में ही लगता है ।

गवैहरी-वि० [हिं० गौव + री (प्रत्य०)] गौव का रहनेवाला । ग्रामीय । देहाती ।

गव्य-वि० [सं०] गो से उत्पन्न । जो गाय से प्राप्त हो । जैसे, दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र आदि ।

धा०—पंचगव्य ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाय का कुंड। गो-समुद्र। (२) पंचगव्य। उ०—पंचाक्षरी प्रातः सुद माधव गव्यं सु पंचनदा स्ती—तुलसी।

गव्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो कोस का एक मान। दो हजार धनुष की दूरी।

गृश—संज्ञा पुं० [अ० गृषी से फा०] मूछा। बेहोरी। धरंज्ञा। संवर। उ०—अग्नीचंद्र गृश खा के जमीन पर गिर पड़ा।—शिवभसाद।

कि० प्र०—ग्राना।

मुद्गा—गण्ड खाना = मूखित होना। बेहोश होना।

गर्दी—संज्ञा स्त्री० [अ०] बेहोरी।

कि० प्र०—ग्राना।

गदत—संज्ञा पुं० [फा०] [हि० गत] (१) टहलना। धूमना फिरना। श्रमय। दौरा। चकर।

धौ०—गदत गिरदावरी।

कि० प्र०—करना।—होना।

मुद्गा—गदत मारना या लगाना = चकर देना। चारों ओर फिरना।

(२) पुलिस आदि के फर्मचारियों का पहरे के लिये किसी स्थान के चारों ओर गली कूचों आदि में घूमना। रौंड। गिरदावरी। दौरा।

कि० प्र०—घूमना।—फिरना।

(३) एक प्रकार का भाष जिसमें नाचनेवाली बेशर्या बरात के आगे नाचती हुई चलती हैं।

गदत सलामी—संज्ञा स्त्री० [फा० गत + अ० सलाम] वह भेद या नज़र जो पहले दौरे पर गये हुए हाकिमों को मिला करती थी। यह प्रथा अब तक देशी रियासतों में जारी है।

गदनी—वि० [फा०] घूमनेवाला। फिरनेवाला। फिरता। चलता। जैसे, गदती विट्ठी, गदती हुड्डम, गदती परवाना, गदती सङ्घार, गदती हँस्केर हुरगदि।

संज्ञा स्त्री० अर्थमिचारिया। कुलटा।

गसना—कि० अ० [सं० गसन] (१) जकड़ना। गर्दना। (२) बुनावट में जाने को कसना। बुनावट में तानों या सूतों को परस्पर खूब मिलाना जिसमें छेद न रहे जाय।

विशेष—दे० “गंसना”।

गस्तीला—वि० [हि० गयना] [स्त्री० गदती] (१) लकड़वा हुआ। गदत हुआ। एक दूसरे से खूब मिला हुआ। गुणा हुआ।

(२) कपड़ा आदि जिसके सूत परस्पर खूब मिले हों। जिसकी बुनावट घनी हो। गुफ।

गस्सा—संज्ञा पुं० [सं० गस, अ० गस, गस] प्राम। कौर।

मुद्गा—गसना मारना = कौर मुँह में डालना।

गहँडिला—वि० [हि० गहड़ा] [हि० गहरेल] गँडला। मट-मंला (पानी)।

गहकना—कि० अ० [सं० गदर] (१) चाह से भरना। लालसा से पूर्ण होना। ललकना। लहकना। लपकना। (२) उमंग से भरना। उ०—प्रासन के लोदा गहकि गोपन दिपे बड़ा। टुक टुक है कंद जनु गये कृष्ण वै चार।—सुकवि।

गहकोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गहक + कोड़ा (अर्थ०)] गहक। स्त्रीदार। (दिही)

गहगह—वि० [सं० गद = गहग + गद = गदक] गहरा। भारी। घोर। जैसे, गहगह नगा, गहगह छुनना। (इसका प्रयोग नरो या नरो की चीज ही के संबंध में होता है।)

गहगह—वि० [सं० गदर] प्रफुलित। प्रसन्नतापूर्व। उमंग से भरा। कि० वि० धमाधम। धूम के साथ। उ०—गहगह गगन हुं दुभी बाजी—तुलसी। (इस अर्थ में यह वाजों ही के संबंध में आता है।)

गहगहा—वि० [सं० गदर] (१) प्रफुलित। उमंग और आनंद से भरा। उ०—माधव जू आबनहार भपु। शंख उड़त मन होत गहगहा फरकत वैन लपु।—सूर। (२) धमाधम। धमाधम के सहित। उ०—घति गहगहे बाजने बाजे।—तुलसी।

गहगहाना—कि० अ० [हि० गहगहा] (१) आनंद में मग्न होना। बहुत प्रसन्न होना। प्रफुलित होना। आनंद और उमंग से फूलना। उ०—चायस गहगहात शुभवायी विमेल पूर्वदिशि भोले। आतु मिलाओं श्याम मनोहार वू सुनु सानी राधिके भोले।—सूर। (२) फलत आदि का बहुत अचूकी तरह तैयार होना। लहलहाना।

गहगहे—कि० वि० [हि० गहगहा] धड़ी प्रफुलता के साथ। बहुत अच्छी तरह से। उ०—(क) गहगहे गावत गीत मंगल किये मंडल मंजु। कोउ बाल विरद बखानती गति ठान गाजगति मंजु।—रघुगज। (ख) राजरख लरि गुरु भूसुर सुधागिनिनिह समय समाज की टवनि भलि रई है। चली गनी कलत निसान बाजे गहगहे लहलहे लोपन सनेह सरसई है।—तुलसी।

गहन—वि० [सं०] (१) गंभीर। गहरा। अथाह। जैसे, गहन जलाशय। (२) दुर्गम। घना। दुर्गम। जैसे, गहन घन, गहन पर्वत। (३) कठिन। दुरूह। जैसे, गहन विषय। (४) निविड।

संज्ञा पुं० (१) गहगह। थाह। (२) दुर्गम स्थान। जैसे, झाड़ी, गहवा, जंगल, अंधकारपूर्व स्थान। (३) घन वा कानन में गुप्त स्थान। कुंज। निहूज। उ०—गहन उवारि सुत मारि।स, कुशल गये कीस घर वैरिसा को।—तुलसी। (४) दुरग (५) जल।

संज्ञा पुं० [सं० गदक, अ० गदक] (१) प्रहय। (२) कलस। दौर। (३) दुग्ध। कट। विपत्ति। (४) बंधन। रंहेन। संज्ञा स्त्री० [हि० गदना = पकड़ना] (१) पकड़। पकड़ने का

गवर्नर—संज्ञा पुं० [गं०] (१) शासक । हाकिम । (२) किसी प्रांत का वह प्रधान हाकिम जिसे उस पद पर राजा वा प्रजा ने चुना हो । (३) वह प्रधान शासक जिसे राजा वा मंत्रि-मंडल किसी देश में शासन करने के लिये नियुक्त करे । (४) भारतवर्ष में किसी प्रेसिडेंसी का वह प्रधान हाकिम जो इंग्लैंड के वादशाह वा मंत्रिमंडल द्वारा गवर्नर जनरल के अधीन रह कर शासन करने के लिये नियत किया गया हो । भारतवर्ष में बंबई, मद्रास और बंगाल में गवर्नर रहते हैं । लाट ।

घा०—गवर्नर-जनरल ।

गवर्नर-जनरल—संज्ञा पुं० [गं०] किसी देश का वह सब से बड़ा हाकिम जिसे राजा वा मंत्रिमंडल ने नियत किया हो और जिसके नीचे कई एक गवर्नर और लफ्टेंट-गवर्नर हों । जैसे भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल, जो संपूर्ण भारतवर्ष का शासन करते हैं और जिन के मातहत बंबई, मद्रास और बंगाल के गवर्नर-तथा संयुक्त प्रांत, पंजाब आदि के लफ्टेंट-गवर्नर रहते हैं । गवर्नरों की नियुक्ति इंग्लैंडेश्वर स्वयं करते हैं पर लफ्टेंट-गवर्नर गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त होते हैं । गवर्नर जनरल एक कौंसिल वा मंत्रिमंडल द्वारा शासन करते हैं । वाइसराय । बड़े लाट ।

गवर्नरी—संज्ञा स्त्री० [गं० गवर्नर + ई (भव०)] (१) जहाँ पर गवर्नर शासन करता हो । प्रेसिडेंसी । (२) शासन । अधिकार ।

गवल्—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली भैंसा । धरना ।

गवक्षियाँ—संज्ञा पुं० [सं० गोक्ष = अतिथि] अतिथि । मेहमान ।
गवाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौला । कुरेखा । छोटी सिङ्की ।
(२) एक बंदर का नाम जो रामचंद्र की सेना का सेना-पति था ।

गवाक्ष*—संज्ञा पुं० दे० “गवाक्ष” ।

गवाक्ष*—संज्ञा पुं० दे० “गवाक्ष” ।

गवाना—कि० सं० [सं० गमन, हिं० ‘गवन’ का प्रे०] खेना ।

गवारा—वि० [फा०] (१) मनभाता । अनुकूल । परंद । (२) सख । अंगीकार ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

गवालीक—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह मिथ्याभाषण जो गो आदि स्तूपियों के लिये किया जाय ।

गवास—संज्ञा पुं० [सं० गवायन] गोनायक । कुसाई । हत्यारा ।

उ०—कासी मगु सुरसरि क्रमनासा । मरु मारव महिदेव गवासी ।—सुजारी ।

गवाही—संज्ञा पुं० [फा०] [संज्ञा गवाही] वह मनुष्य जिसने किसी घटना को साक्षात् देखा हो । वह जिसके सामने कोई बात हुई हो । वह जो किसी मामले के विषय में जानकारी रखता हो । साबी । सारती ।

घा०—गवाह-साली ।

मुहा०—गवाह देना = अपने दावे को सिद्ध करने के लिये—प्रमाण के लिये साक्षी उपस्थित करना । गवाह बनाना = (१) साक्षी बनाना । मुकदमे में किसी को गवाही देने के लिये नियत करना । (२) झूठा गवाह बनाना । गवाह पੈनी या रूपत = वह गवाह जिसने घटना अपनी आँखों से देखी हो । चरमदीद गवाह । गवाह समाई = वह गवाह जिसने घटना आँख से न देखी हो और जो सुनी सुनाई बात कहे । चरमदीद गवाह = वह गवाह जिसने कोई घटना आँखों से देखी हो ।

गवाही—संज्ञा स्त्री० [फा०] किसी घटना के विषय में किसी ऐसे मनुष्य का कथन जिसने वह घटना देखी हो वा जो उसके विषय में जानता हो । साक्ष्य । साक्षी का प्रमाण ।

मुहा०—गवाही करना या लिखना = किसी दस्तावेज़ पर साक्षी के रूप में हस्ताक्षर करना । गवाही देना = किसी साक्षी का किसी घटना के विषय में अपना हज़ूत लिखाना ।

गवीधुक—संज्ञा पुं० दे० “गवेधुक” ।

गवीश—संज्ञा पुं० [सं० गवीश] (१) गोस्वामी । (२) विष्णु । (३) संई ।

गवेधु, **गवेधुक**—संज्ञा पुं० [सं०] कसेई । कौड़िला ।

विशेष—ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार रुद्र देवता के लिये गवेधुक के चरु की आहुति दी जाती थी । मीमांसा के अनुसार रुद्र को गवेधुक के चरु से यज्ञ करने का अधिकार है ।

गवेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] गेरु ।

गवेली—वि० [हिं० गौव] [स्त्री० गवेली] गँवार । देहाती । उ०—नागरि विविध विलास तजि बसी गवेलिन माहि । मुझें में गनिवी कौह हृदयो दै इत्ताहि ।—विहारी ।

गवेपणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खेन । अन्वेषण । तलाश । खानबीन ।
विशेष—प्राचीन काल में श्राप्यों का सर्वस्व गो थी । जब गो हरी जाती थी वा कोई उसे चुरा ले जाता था तब वे लोग उसे बड़े परिश्रम से ढूँढ़ते थे । घेदों में पवि अचुर के गो चुराने और इंद्र का अपनी कुतिया सरमा को उसे ढूँढ़ने का भेजने की गाथा इसका बदाहरण है । इसी लिये यह शब्द जिसका वास्तविक अर्थ गो की इच्छा है खेन, तलाश के अर्थ में लिया गया ।

गवैया—वि० [पू० हिं० गावय = गाना] गानेवाला । गायक ।

विशेष—“पैया” प्रत्यय पूर्वव है । इससे यह क्रिया अथवा धातु के पूर्वव रूप “गायना” में ही लगता है ।

गवैह—वि० [हिं० गौव + पैह (भव०)] गाँव का रहनेवाला । ग्रामीण । देहाती ।

गव्य—वि० [सं०] गो से उद्भव । जो गाय से प्राप्त हो । जैसे, दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र आदि ।

घा०—पंचगव्य ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाय का कुंठ। गौ-समूह। (२) पंचगव्य। उ०—पंचाङ्गी प्राण मुद माथव गव्य सु पंचनदा स्त्री।—तुलसी।

गड्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो कोस का एक मान। दो हजार धनुष की दूरी।

गदा—संज्ञा पुं० [ञ० गदा से फा०] मूर्धा। वेष्टोदरी। घसंज्ञा। ताँवर। उ०—अग्नीचंद्र गदा स्त्रा के जमीन पर गिर पड़ा।—शिवमसाद।

क्रि० प्र०—घाना।

मुहा०—गदा खाना = मूर्च्छित होना। वेष्टोद होना।

गनी—संज्ञा स्त्री० [ञ०] वेष्टोदरी।

क्रि० प्र०—घाना।

गदत—संज्ञा पुं० [फा०] [वि० गदती] (१) उदलना। धूमना फिरना। भ्रमण। दौरा। चक्कर।

धा०—गदत गिरदावती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—गदत मारना या खगाना = चक्र देना। चारों ओर फिरना।

(२) पुस्तिस आदि के कर्मचारियों का पहरे के लिये किसी स्थान के चारों ओर गली कूचों आदि में धूमना। रौंढ। गिरदावती। दौरा।

क्रि० प्र०—धूमना।—फिरना।

(३) एक प्रकार का नाच जिसमें नाचनेवाली वेश्याएँ बरात के आगे नाचती हुई चलती हैं।

गदत सलामी—संज्ञा स्त्री० [फा० गदत + ञ० सलाम] यह भेंट या नम्र जो पहले दौरे पर गए हुए हाकिमों को मिला करती थी। यह प्रथा अब तक देशी रियासतों में जारी है।

गदती—वि० [फा०] धूमनेवाला। फिरनेवाला। फिरता। चलता। जैसे, गदती चिट्ठी, गदती हुकूम, गदती परवाना, गदती सद्दखर, गदती इस्तेफूर इत्यादि।

संज्ञा स्त्री० ध्वमिचारिणी। कुलटा।

गसना—क्रि० सं० [सं० गसन] (१) जकड़ना। गाँठना। (२) चुनावट में धाने को कमना। चुनावट में तागों वा सूतों को परस्पर खूब मिलावना जिसमें छेद न रह जाय।

विशेष—दे० “गौसना”।

गसोला—वि० [हि० गसन] [स्त्री० गसोली] (१) जकड़ा हुआ। गदा हुआ। एक दूसरे से खूब मिला हुआ। गुथा हुआ।

(२) (कपड़ा आदि) जिसके सूत परस्पर खूब मिले हों। जिसकी चुनावट धनी हो। गफ़।

गस्ता—संज्ञा पुं० [सं० गस्त, प्रा० गस्त, गस्त] प्रास। दौर।

मुहा०—गस्ता मारना = दौर घुँड में खानना।

गहौंडिली—वि० [हि० गहड़ा] [वि० गहड़ैल] गँदना। मट-मंजा (पानी)।

गहकना—क्रि० श्र० [सं० गहर] (१) चाह से भरना। लालसा से पूर्ण होना। ललकना। लहकना। लपकना। (२) उमंग से भरना। उ०—भासन के लोदा गहकि गोपन दिसे उद्यारि। टूक टूक छै कंदे जनु गये कृप्य पै वारि।—सुकवि।

गहकौडी—संज्ञा पुं० [हि० गहक + कोटा (प्रय०)] गहक। खरीदार। (दिहौ)

गहगड़—वि० [सं० गह = गहरा + गड़ = गदना] गहरा। भारी। घोर। जैसे, गहगड़ नगा, गहगड़ छुनना। (इसका प्रयोग नरो वा नरो की चीज ही के संबंध में होता है।)

गहगह—वि० [सं० गह] प्रकुलित। प्रसन्नतापूर्ण। उमंग से भरा। क्रि० वि० धमाधम। धूम के साथ। उ०—गहगह गगन दुहुनी घामी।—तुलसी। (इस अर्थ में यह वाजों ही के संबंध में आता है।)

गहगह—वि० [सं० गह] (१) प्रकुलित। उमंग धीर आनंद से भरा। उ०—माथव जू श्रावणहार भपु। शंचल उडत मन होत गहगहो फरकत नैन खपु।—सूर। (२) धमाधम। धूमधम के सहित। उ०—अति गहगहे वाजने वाजे।—तुलसी।

गहगहाना—क्रि० श्र० [हि० गहगहा] (१) आनंद में मग्न होना। बहुत प्रसन्न होना। प्रकुलित होना। आनंद धीर उमंग से खलना। उ०—बाधस गहगहात श्रुभवार्थी विमेल सुवैदिसि भोले। श्राद्ध मिलायाँ श्याम मनोहर व सुनु सली राधिके भोले।—सूर। (२) फसल आदि का बहुत अच्छी तरह तैयार होना। लहलहाना।

गहगह—क्रि० वि० [हि० गहगहा] बड़ी प्रकुलता के साथ। बहुत अच्छी तरह से। उ०—(क) गहगहे गावन गीत मंगल क्रिये मंडल मंडु। कोव बाल विरह बखानती गति ठान गजगनि मंडु।—रघुराज। (ख) राजखल लखि गुरु भूसुर सुधासिनिन्दि समय समात फी टयनि भलि उई है। चली गान करत निसान धाजे गहगहं लदलहो लोपन सनेह सरसई है।—तुलसी।

गहन—वि० [सं०] (१) गंभीर। गहरा। अथाह। जैसे, गहन जलाशय। (२) दुर्गम। घना। दुर्गम। जैसे, गहन धन, गहन पर्वत। (३) कठिन। दुःख। जैसे, गहन विषय। (४) निविड़।

संज्ञा पुं० (१) गहगह। धाद। (२) दुर्गम स्थान। जैसे, काप्री, गहडा, जंगल, शंभकारापूर्ण स्थान। (३) धन वा कानन में गुप्त स्थान। कुंज। निर्दुर्गम। उ०—गहन उजारि सुत मारि। तव, कुराल गये कीस वर धरि। तारा को।—तुलसी। (४) दुःख। (५) जल।

विधा पुं० [सं० ग्रहण, प्रा० गहण] (१) ग्रहण। (२) कर्लक। दोष। (३) दुःख। कष्ट। विरासि। (४) बंधन। रंजन।

संज्ञा स्त्री० [हि० गहना = पकड़ना] (१) पकड़। पकड़ने का

भाव । (२) हट । ज़िद् । झड़ । टेक । उ०—एकै गहन घरी उन हट करि मेटि वेद विधि नीति । गोपवेश निज सूरस्याम को रही विधवर जीति ।—सूर । (३) जोते हुए खेत से घास निकालने का एक योजन । इसमें दो ढाढ़े हाथ लंबी लकड़ी के नीचे की ओर पतली चुकीली खूंटियाँ गड़ी रहती हैं और ऊपर एक सीधी लकड़ी जड़ी रहती है जिसमें मुठिया लगी रहती हैं । खेत जोते जाने पर इसे वैसे के जुआड़े में बंध कर खेत में फिरते हैं और ऊपर से मुठिया से दबाए रहते हैं । पंथा । पानी ।

संज्ञा स्त्री० [हि० गहना] यह हलकी जुलाई जो पानी भरसने पर धान के बोए हुए खेतों में की जाती है । बिद्धहती ।

गहना—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहण = धारण करना] (१) आभूषण । जेवर । (२) रेहन । बंधक । (३) छोट्टी लोटाया के आकार का मिट्टी का कुम्हारों का एक योजन जिसका व्यवहार घड़े आदि के बगाने में होता है । (४) गहन नामक योजन जिसका व्यवहार जोते हुए खेत में घास निकालने के लिये होता है ।

क्रि० सं० [सं० ग्रहण, प्रा० गहण] पकड़ना । धरना । धामना । उ०—(क) गहत चरन कइ थालिकुमारा । मम पद गहे न तोर उचारा ।—तुलसी । (ख) तब एक सखी प्रीतम ! कहति प्रेम ऐसा प्रगत कीन्हों धीर काहे न गदति ।—सूर । क्रि० सं०^१ दे० “गहना” ।

गहनि—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रहण] टेक । झड़ । ज़िद् । हट । उ०—(क) हरि पिय तुम जिनि बखन कहे । यह जिनि मोहिं सुनावहु बलि जाउँ जिनि जिय गहनि गहो ।—सूर । (ख) छुपि तरंग सरितागय लोचन ए सगर जनु प्रेम धार लोभ गहनि नीके ब्रवगाही ।—सूर ।

गहनो—संज्ञा स्त्री० [?] (१) पलास की जड़ आदि दृढ़ कर उससे नाव के छेदों को बंद करने की क्रिया । (२) पशुओं का एक रोग जिसमें उनके दाँत हिलने लगते हैं । (३) गहन नामक योजन जिससे जोते हुए खेत में से घास निकाली जाती है ।

गवधु*—संज्ञा पुं०, स्त्री० दे० “गहन” ।

गहनो—क्रि० वि० [हि० गहन = बंधक] रेहन में । रेहन के रूप में । बंधक । उ०—जो इन रग पतिआप नहिं प्रीतम साहु सुजान । दरस रूप धन दै इन्हें धर गहने मम प्राण ।—रसनिधि ।

गहघरकी—वि० [सं० गहर] [क्रि० घनराना] (१) दुर्गम । विपम । उ०—नगर सकल वनु गहघर भारी । लग शृंग विपुल सकल मननारी ।—तुलसी । (२) व्याकुल । उद्विग्न । उ०—(क) औरैं सो सब समाज कुसल न देखों आनु गहघरि हिय कहैं कोसल पाल ।—तुलसी । (ख) मुख नलीन हिय गहघर

आवै ।—मान । (३) किसी ध्यान में मन या वेसुध । उ०—सत्रल नयन गदगद गिरा गहघर मन पुलक शरीर ।—तुलसी ।

गहर—संज्ञा स्त्री० [हि० घड़े, घरी वा सं० ग्रह । वा सं० गह = सम्यक्] देर । विलंब । उ०—(क) गहर जनि लावहु गोबुल जाह । तुमहिं विना व्याकुल हम होइहैं यदुपति करी चतुराह ।—सूर । (ख) नेग चाह कहैं नागरि गहर लगावहिं । निरखि निरखि धानंद मुलोचनि पावहिं ।—तुलसी । संज्ञा पुं० [सं० गहर] दुर्गम । गूढ़ । उ०—मन फंजर मयमंत था फिरता गहर मैंभीर । दोहरी तेहरी चौहरी परि गह प्रेम जँजीर ।—कवीर ।

गहरना—क्रि० अ० [हि० गहर = देर] देर लगाना । विलंब करना । उ०—उदरत आवै मनमोहन महारंज उदरत आवै पुंज परिमल पुर को । सेवक स्यों गहरत आवै ज्यों थासुरी सों कहरत आवै मन मेरो मानि दूर को ।—सेवक ।

क्रि० अ० [अ० कृष्ट] (१) कगड़ना । उलझना । उ०—तुम सों कहत सकुचत महरि । श्याम के गुण नहीं जानत जात हम सों गहरि ।—सूर । (२) कुड़ना । नाराज होना । उ०—सुगत श्याम चकित भए बानी । अथर कंप रिसि भीह मरोरयो मन ही मन गहरानी ।—सूर ।

गहरवार—संज्ञा पुं० [गहरिदेव = एक राजा] एक पवित्र वंश । इस वंश के लोग गोरखपुर और गाजीपुर से लेकर कन्नौज तक पाए जाते हैं । ये लोग अपना आदि स्थान प्रायः कार्या बतलाते हैं । जयचंद से चार पंच पीढ़ी पहले के चंददेव और महीपाल आदि कन्नौज के राजा गहरवार थे, ऐसा सिलालेखों से पाया जाता है । बुंदेलखंड के बुंदेल पवित्र भी अपने को कार्या के गहरवार वंश से उत्पन्न बतलाते हैं ।

गहरा—वि० [सं० गभीर, प्रा० गहीर] [स्त्री० गहरी] (१) (पानी) जिसमें जमीन बहुत भीतर जाकर मिले । जिसकी याद बहुत नीचे हो । गंभीर । निद्रा । अतलस्पर्श । जैसे, गहरी नदी । उ०—जिन हूँदा तिन पाहया, गहरे पानी पैठ । हैं। वीरी हूँ बन गई, रही किनारे बँठ ।—कवीर ।

मुहा०—गहरा पेट = ऐसा पेट जिसमें बहुत सी बातें पच जाय । ऐसा हृदय जिसका भेद न मिले । उ०—उसकी बातें कोई नहीं जान सकता, उसका यज्ञ गहरा पेट है ।

(२) जो सतह से नीचे दूर तक चला गया हो । जिसका विस्तार नीचे की ओर अधिक हो । जैसे, गहरा गहवा, गहरा बरतन । (३) बहुत अधिक । ज्यादा । चोर । प्रचंड । भारी । जैसे, गहरा नशा, गहरी नींद, गहरी भूल, गहरी मार, गहरी चोट, गहरी निद्रा, इत्यादि ।

मुहा०—गहरा अत्तामी = (१) भारी आदमी । बड़ा आदमी ।

ज्यादा देनेवाला। गहरे लोग = चतुर लोग। भारी उलाह। धीर धूर्त। ऐसे लोग बिनका भेद कोई न पाये। ३०—लड़के पढ़ी कैसे उगा खे जायगे, यह गहरे लोगों का कल्प है। (२) विद्वान् लोग। ऐसे लोग जिनकी विद्या गंभीर है। गहरा हाथ = दृष्टिकर का भरपूर बार जिधरे लुप्त चोड़ लगे। गहरा का पूर्वी अर्थ। गहरा हाथ मानना = (१) दृष्टिकर का भर-पूर बार करना। (२) मारी माल उड़ाना। लुप्त धन सुराना। (३) बहुत माल पैदा करना। किती बड़ों मारी वा अन्वृष्टी बलु का प्राप्त करना। ३०—हस बार तो तुमने गहरा हाथ मारा। (४) दृढ़। मजबूत। भारी। कठिन। ३०—सौल तराजू उभा सुखलष्य तप, बाके घर लीये। कहीं क्यौर भाव विन सौदा गहरी गाँठ लागैये। (५) गाढ़। जो हलका या पतला न हो। जैसे, गहरा रंग, गहरी मंगा।

मुहा.—गहरी सुँटना = (१) लुप्त गाढ़ी मंग सुँटना वा पिटना। (२) गाढ़ी मिश्रता होना। बहुत अधिक हैज मेत होना। अत्यंत घनिष्ठता होना। (३) साप में लुप्त आमाद प्रभाव होना। ३०—धन लोगों की धान कल लुप्त गहरी घुटती है। गहरी धुनना = (१) लुप्त गाढ़ी वा अधिक मंग का पिना जाना। (२) गाढ़ी मिश्रता होना। अत्यंत घनिष्ठता होना। बहुत हैज मेज होना। (३) साप में लुप्त आमाद प्रभाव होना। लुप्त धुन धुत कर बात नीत होना।

गहराई—संज्ञा स्त्री० [हि० गहरा + ई (प्रत्य०)] गहरा का भाव। गहरापन।

गहराना—कि० अ० [हि० गहरा] गहरा होना। कि० सं० [हि० गहरा] गहरा करना। कि० अ० [हि० गहरा] रुठना। नाराज होना। २० “गहरना”।

गहरावा—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहराई।

गहरु—संज्ञा स्त्री० [हि० घड़ी, घरी वा का० गहर = समय ?] देर। विरलव। ३०—(क) दू रिसि छाड़ि राधे राधे। ज्यों ज्यों तो कैं गहरु ल्यों ल्यों मो कैं विधा री साधे साधे।—हरिदास। (ख) नेग चारु कहे नामरि गहरु लगायहि। निरलि निरलि धानेद मुजोचनि पावहि।—गुनसी।

गहरी—कि० वि० [हि० गहरा] अच्युती तरह। लुप्त। यथेच्छ।

मुहा०—गहरे करना = मात्रा माला। लुप्त नाम उठाना। गहरे चलना = (१) पाल में जगना। (२) जाते हुए पणिक का प्रण लेना। (३) एक के छोड़े का लुप्त जोर से कदम चलना।

गहरेवाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० गहरा + वाजी] एक के छोड़े की लुप्त जोर की कदम चल।

गहरीत—संज्ञा पुं० [?] राजघराने के चरित्रों का एक बंध। सितोदिया और अहरी इनी बंधा की दास्यार्थ है”।

गहरीत नाम के विषय में भिन्न भिन्न प्रकार के प्रवाद प्रचलित हैं। कोई इस गेहदिल, गेमिल से निकला बतनाते हैं। कोई कोई कहते हैं कि गुजरात से भगाए जाने पर जय मेवाड़ के महाराथा के पुत्र पुरुष भागे तप राजमहिषी को एक ब्राह्मण ने शरण दी थीर उन्हें वहाँ एक गुहा में एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिस का नाम गहरीत रखा गया।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा = पकड़ना] सँझसी।

गहरीतना—कि० सं० [हि० गहरा का प्रे०] पकड़ना। पकड़ने का काम करना।

गहरीत—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] पालना। मूला। हिंदोला। रस्ती में लटकाना हुआ खोला जिस पर बच्चों को सुला कर भुलाते हैं”।

गहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहरी—संज्ञा पुं० [हि० गहरा] गहने का भाव। पकड़।

गहेलरारा—वि० [हि० गहेला] [खी० गहेली] (१) पागल । (२) मूर्ख । अज्ञानी । गँवार । उ०—चिरहिन धी तो क्यों रही, जरी न पाषक साथ । रह रह मूढ़ गहेलरी, थप क्यों मीने हाथ ।—कवीर ।

गहेला—वि० [हि० गहना = एकहना + एला (प्रत्य०)] [खी० गहेली] (१) हठी । जिद्दी । (२) अहंकारी । मानी । घमंड़ी । उ०—नारद को मुख मॉड़ि के लीन्हें बदन छिनाइ । गमं गहेली गमं ते, उलटि पली सुसुकाइ ।—कवीर । (३) पागल । खन्ती । उ०—मूया पीछे मुकुति धताये, मूया पीछे मेला । मूया पीछे अमर अभय पद, दादू भूल गहेला ।—दादू । (४) गँवार । अज्ञान । मूर्ख ।

गहैया—वि० [हि० गहना + एया (प्रत्य०)] (१) एकहनेवाला । प्रहय करनेवाला । (२) श्रमीकार करनेवाला । स्वीकार करनेवाला ।

धौ०—हाथ गहैया = तहापक । मददगार ।

गहुर—संज्ञा पु० [सं०] (१) अंधकारमय और गूढ़ स्थान । (२) खिल । जमीन में छेदा सूरार । (३) विषम स्थान । दुर्भेद्य स्थान । (४) गुफा । कंदरा । गुहा । (५) निकुंज । लवागूह । (६) झाड़ी । (७) जंगल । बन । (८) गुप्त स्थान । वह स्थान जिसमें छिपने से छिपनेवाले का पता न चले । (९) दंस । पाखंड । (१०) रोना । (११) गंभीर विषय । वह वाक्य जिसके अनेक अर्थ हो सके हैं । कठिन विषय । गूढ़ विषय । (१२) जल ।

वि० (१) दुर्गम । विषम । (२) गुप्त । छिपा हुआ ।

गंकर—संज्ञा स्त्री० [सं० गंकर + कर] (१) अंगकड़ी । राटी । लिट्टी । (२) थरहर की लिट्टी ।

गंग—वि० [सं०] गंगा संबंधी । गंगा का ।

संज्ञा पु० [सं०] (१) भीष्म । (२) कार्तिकेय । (३) सेना ।

(४) धनुरा । (५) मेवनिःसृत जल । वर्षा का पानी । (६) गंगा वा नदी का किनारा । (७) हेलसा मछली । (८) सागर । लंबा तालाब ।

गंगाट—संज्ञा पु० [सं०] केकड़ा ।

गंगाटन—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की फोड़िया ।

गंगापति—संज्ञा पु० [सं०] (१) भीष्म । (२) कार्तिकेय । (३) एक प्रवरकार ऋषि ।

गंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गंग] गंगा की एक धारा जो बंगाल में गौड़ नगर के पास गंगा से मिलती है ।

गंगोय—संज्ञा पु० [सं०] (१) भीष्म । (२) कार्तिकेय । (३) हेलसा मछली । (४) कसेरू । भद्रनेया । (५) सेना । (६) धनुरा । (७) दक्षिण का एक राजवंश जो पहले कोल्हापुर के पास गंगवाड़ी नामक स्थान में राज्य करता था । प्रहलभ के पुत्र कोसाहल ने कोलाहलपुर या कोल्हापुर यसाया । पीछे बहुत पीढ़ियों के बाद कामार्णव नामक राजा ने चालुक्य

राजा बालादित्य से कलिंग राज्य जीता । इस वंश का राज्य ११ वीं शताब्दी तक विद्यमान था । इसी वंश के राजा अर्नगभीमदेव ने जगन्नाथ का प्रसिद्ध मंदिर बनाया ।

गंगोदक—संज्ञा पु० [सं०] गोरख हमली का वीज ।

गंगोय—वि० [सं० गंग] गंगा संबंधी ।

गंछना—क्रि० सं० [सं० गुच्छन] रूँधना । गांयना । जैसे, मांझा गंछना, नारा गंछना ।

गंज—संज्ञा पु० [फ़ा० गंज] (१) राशि । ढेर । अंवार । (२) डंटल, खर, लकड़ी आदि का बड़ ढेर जो तले ऊपर रख कर लगाया गया हो । जैसे, लकड़ी का गंज, खर का गंज, पयाल का गंज, इत्यादि ।

गंजनार—क्रि० सं० [हि० गंज, फ़ा० गंज] (१) राशि लगाना । ढेर करना । (२) पास, लकड़ी, डंटल आदि को तले ऊपर रख कर ढेर लगाना ।

गंजा—संज्ञा पु० [सं० गंजा] भांग की जाति का एक पौधा । वह देलने में भांग से भिन्न नहीं होता पर भांग की तरह इस में फूल नहीं लगते । नेपाल की तराई, बंगाल आदि में यह भांग के साथ चाप से चाप उगता है पर कहीं कहीं इसकी खेती भी होती है । इसमें बाहर फूल नहीं लगते पर वीज पड़ते हैं । बनस्पति-शास्त्र-विदों का मत है कि भांग के पौधे के तीन भेद होते हैं, खी, पुरुष और उमपलिंगी । इसकी खेती करनेवालों का यह भी अनुभव है कि यदि गंजे के पौधे के पास या खेत में भांग के पौधे हों तो गंजा अच्छा नहीं होता है । इसीलिये गंजे के खेत से किसान प्रायः भांग के पौधे उखाड़ कर फेंक देते हैं । गंजे के पौधे से एक प्रकार का लासा भी निकलता है । यद्यपि नीचे के देतों में यह लासा बतना नहीं निकलता पर हिमालय पर यह बहुतायत से निकलता है और इसी से चरस बनती है । हिंदुस्तान में गंजा खाया नहीं जाता, लोग इसमें तमाकू मिला कर इसे चिलम पर पीते हैं पर थैप्रड़ी दवाओं में इसका सत काम में लाया जाता है । गंजे की कई जातियाँ हैं, बालूचर, पहाड़ी, चण्टा, गोली, अँगोरा इत्यादि । बालूचर के तैवार होने पर उसे काट कर और फूला बना कर पैरों से रँदते हैं । इस प्रकार तले ऊपर रख कर रँदने से कलियाँ चापस में दब कर चिपटी हो जाती हैं । वैद्यक में गंजे को कटुवा, कसैला, तीखा और वष्य लिखा है और उसे कफनाशक, प्रादी, पाचक और धमिर्बक माना है । यह नरबीजा और पित्तोपादक होता है । इसके रेशे मजबूत होते हैं और सन की तरह सुतली बनाने के काम में आते हैं । नेपाल आदि पहाड़ी देशों में इन रेशों से एक प्रकार का मोटा कपड़ा भी बुनते हैं जिसे अँगोरा कहते हैं ।

पर्य्या०—गंजा । गंजिका । वज्रदार । अंगा । भारिता । गजा-

शम । मङ्कूपारि । मातुली । गंजाकिनी । मादिनी । शका-
शम । जया । विजया । तुर्त-भारुदा । हर्षिकी ।

गाँठ—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि, पा० गाँठ] [वि० गंठला] (१) रस्मी
डोरी तागे आदि में पड़ी हुई मुदी की उलम्बन जो खिंच
कर कड़ी और टूट हो जाती है । यह कड़ा उखाड़ जा तागे,
रस्मी डोरी आदि में इनके छोरों को कई फेरे लपेट कर
या नीचे ऊपर निकाल कर खींचने से बन जाता है । गिरह ।
ग्रंथि । ३०—रस्मी में गाँठ पड़ गई है ।

क्रि० प्र०—खोलना ।—ढालना ।—पड़ना ।—बाँधना ।—
देना ।—लगाना ।

धा०—गाँठझीला = गाँठों से भर । गाँठवाला । जिसमें उल-
म्बन और गाँठ हो ।

मुहा०—गाँठ घुलना = उलम्बन मिटना । किसी भारी समस्या
का समाधान होना । कोई भारी प्रश्न हल होना । गाँठ खोलना
या छोरना = उलम्बन मिटना । अड़चन दूर करना । कठि-
नाई मिटना । ३०—कहानि रहनि एक विरति विवेक नीति
वेद सुपसेमत पथन निरवान को । चित्त गुण की कठिन
गाँठि जड़ चेतन की छोरी अनायास साधु सोचक अपान की ।
—नुलसी । मन वा हृदय की गाँठ खोलना = (१) जी श्रोत्र
कर कोई बात कहना । मन में कोई बात गुप्त न रहना । मन में
रही हुई बात कहना । (२) अपनी भीतरी इच्छा प्रकट करना ।
(३) अपना हौसला निकालना । लालसा पूरी करना । (मन
में) गाँठ पकड़ना वा करना = भेद मानना । श्रंता
रखना । बुरा मानना । खिंचा रहना । पैर मानना । फीमा
रखना । गाँठ पर गाँठ पड़ना = (१) उलम्बन बढ़ती जाना ।
किसी बात का उत्तरोत्तर कठिन होता जाना । मामला पेचाला
होता जाना । (२) मनभेदाव बढ़ता जाना । द्वेष बढ़ता जाना ।
मन में गाँठ = चित्त में बुरा भाव । द्वेष भाव । वैर । मन में
गाँठ रखना = जी में बुरा मानना । वैर मानना । मन वा हृदय
में गाँठ पड़ना = आपस के संबंध में भेद पड़ना । मनभेदाव
होना । वैर होना । द्वेष होना । ३०—(क) मन को मारों
परकि के टुक टुक उड़ि जाय । दूरे पाछे फिर उरी, बीच गाँठि
पड़ि जाय ।—कथीर । (ख) दग दरमत्त दूटत कुट्टम उरत
चतुर सैग मीति । परति गाँठ दुर्जन हिपे ददे नई यह
रीति ।—विहारी ।

(२) शंखल चतुर वा किसी कपड़े के छूँट में कोई बस्तु
(जैसे, रुपया) लपेट कर लगाई हुई गाँठ । ३०—राम गाह
आराम रसुभावे हरि जाने विन विकल फिरै । पृकादारी मती
नहिं जानै भूत प्रेत हटि हृदय धरै । तजि कपूर गाँठि विप
धरिं ज्ञान गमाये सुगुण फिरै ।—कथीर ।

मुहा०—किसी की गाँठ कटना = (१) गाँठ में कैंची बलु का
—चोरी जाना । जेब कतर जाना । (२) मोदे में जट जाना ।

अधिक दाम दे देना । टगा जाना । गाँठ कतरना वा काटना =
(१) गाँठ काट कर रुपया निकाल लेना । जेब कतरना । (२)
लूटना । टगना । मूल्य से अधिक लेना । गाँठ कटना = (१)
संग्रह करना । इकट्ठा करना । अपने पास रख लेना । ३०—
रदा द्रव्य तप कीने न गाँठी । पुनि कत मिलै लच्छु जो
नाठी । (२) याद रखना । गाँठ का = पास का । फले का ।
३०—गुप्तारी गाँठ का रुपया लगे तो मालूम हो । गाँठ का
पूरा = धनी । मालदार । ३०—गाँठ का पूरा मति का हीन ।
गाँठ खोलना = पैसों वा जेब से रुपया निकालना । पास का खर्च
करना । गाँठ जोड़ना = विवाह आदि के समय श्री पुरुष के कपड़ों
के फले को एक में बाँधना । गँठजोड़ा करना । ग्रथबंधन
करना । किसी के साथ गाँठ जोड़ना = किसी के साथ ब्याह
करना । गाँठ में = पहले में । पास में । ३०—(क) गाँठ में डुब
है कि यों ही बाहर चले । (ख) राजा पदुमावति सों कदा ।
सॉठ नाठ कहु गाँठ न रहा ।—जायमी । (कोई बात)
गाँठ में बाँधना = अच्छी तरह याद रखना । स्मरना रखना ।
सदा ध्यान में रखना । ३०—कहल हमारा गाँठी बाँधो, निमि
यासरहि हेरहु हुसियारा । ये कलि के गुरु बड़ परपंची, डारि
डौरी सय जग मारा ।—कथीर । गाँठ से = पास से । पहले
से । ३०—गाँठ से लगाना पड़े तो मालूम हो ।

(१) गडरी । घेरा । गट्टा । जैसे, गट्टों की गाँठ, चावल
की गाँठ ।

मुहा०—गाँठ करना = (१) गाँठ में बाँध लेना । (२) बधेरना ।
जमा करना ।

(३) श्रंग का जोड़ । बंद । जैसे, पैर की गाँठ, हाथ की
गाँठ, बैंगली की गाँठ ।

मुहा०—गाँठ उलड़ना = जोड़ उलड़ना । किसी श्रंग का अपने
जोड़ पर से हट जाना ।

(१) ईल, चाँस आदि में थोड़े थोड़े श्रंतर पर कुछ
उभड़ा हुआ कड़ा खान जिसमें गंदा वा चिह्न पड़ा रहता
है और जिसमें से कनयें निकलते हैं । पेर । पर्व ।
जोड़ । (१) गाँठ के आकार की जड़ । शंठी । गुथी ।
जैसे, हट्टी की गाँठ, प्याज की गाँठ । (२) घास का बड़
थोका जिसे एक आकार में बड़ा सके । गट्टा । (३) एक गहना
जो कठोरी के आकार का होता है और जिसकी घाटी में
छोटे छोटे धुँधुल्ले लगे रहते हैं । हल्ले रेशम में गूँथ कर निर्या
हाथों की कुदनी में सँफकारी है ।

गाँठफट—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ + फटना] [सं० गंठकथ] (१)
बड़ पोर जो पहले में बँधे हुए रुपये को बड़ा खेता है ।
गिरहकट । (२) उचित से अधिक मूल्य पर सौदा बेचने-
वाला । टगा ।

गाँठगोभी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ + गोभी] गोभी का एक

भेद । इसके पैधे की पेड़ी में जड़ से चार पांच श्रृंगुल पर एक गांठ पड़ती है जो धीरे धीरे बढ़ कर खरबूते के आकार की हो जाती है । यह गांठ गुदेदार होती है और इस की तरकारी बनाई जाती है ।

गांठदार-वि० [हि० गांठ + दार (प्रल०)] जिसमें बहुत गांठें हों । गोंडला ।

गांठना-क्रि० सं० [सं० ग्रंथन, पा० गणन] (१) गांठ लगाना । सी कर सुरीं लगा कर वा बांध कर मिलाना । साटना । (२) फटी हुई चीजों को टांकना वा उनमें चकती लगाना । गूधना । मरम्मत करना । जैसे, जूता गांठना, गुदड़ी गांठना । (३) मिलाना । जोड़ना । तरतीब देना । क्रमबद्ध करना । जैसे, मनसूचा गांठना, मञ्जून गांठना ।

मुहा०—मलबध गांठना = काम निष्काटना । प्रयोजन सिद्ध करना ।

(४) अपनी शेर मिलाना । अनुकूल करना । पच में करना । उ०—मैं ने सिपाही को खूब गांठ लिया है वह मेरे विरुद्ध कभी न कहेगा । (५) किसी स्त्री को संभोग के लिये मिलाना वा राजी करना । (६) निश्चय करना । निर्धारित करना । निबत करना । सुकरर करना । उ०—तुम ने हमें तंग करना अपने मन में गांठ लिया है । (७) दवाना । दबोचना । गहरी पकड़ पकड़ना । जैसे, पंजा गांठना, सवारी गांठना । (८) बरा में करना । बराभूत करना । दांव पेच पर चढ़ाना । (९) बार को रोकना । आघात को किसी वस्तु पर लेना ।

गांठी-संज्ञा स्त्री० [हि० गांठ] (१) एक आभूषण जिसे स्त्रियां हाथों की कुहनी में पहनती हैं । दे० “गांठ” । (२) भूसे वा डंडल का वह छोट्य छोट्य टुकड़ा जिसमें गांठ ही गांठ होती है । यह किसी काम का नहीं होता, बल भी इसे नहीं खाते । खलिहान में इसे लोग फेंक देते हैं ।

गांड़-संज्ञा स्त्री० [सं० गन्, प्रा० गण्ड] (१) गुदा । पाखाने का मुकाम । शरीर की यह इंद्रिय जिससे मल बाहर निकलता है ।

पर्याय—गुद । अपान । पायु । गुल ।

मुहा०—गांड़ की खबर न होना = सुख वा चेत न होना । सावधानी न होना । गफ़लत होना । किसी बात की जानकारी न होना । गांड़ की खबर न रखना = वैधुष रहना । अचेत रहना । शैवा में न रहना । असावधान रहना । ग्राफ़िल रहना । किसी बात से अमानकार रहना । गांड़ की खबर न रहना = होरा ह्वाश न रहना । जानकारी न रहना । गांड़ की राह वा रास्ते निकलना = (१) किसी वस्तु का न पच कर ज्यों का ज्यों पाखाने से निकल जाना । (२) निकल जाना । जाता रहना । लेा जाता । गांड़ के नीचे वा तले गंगा बहना = अधिक ऐश्वर्य होना । अश्रंत धन होना । गांड़ खोल देना = (१) दूध फर दात मान लेना । डर से किसी की बात मान लेना । अधीन होना । (२) चापशूरी करना । ठकुरसुहाती कहना । गांड़ खोले

फिरना = (१) गंगा फिना । (२) बच्चों की तरह अतनन बना रहना । बचपन की अवस्था में रहना । उ०—फल यह मेरे सामने गांड़ खोले फिरता था आज बढ़ा पंडित बना है । गांड़ गंजीका खेलना = (१) चित संकट में पड़ना । डर और धरारहट होना । (२) तंग होना । हैरान होना । गांड़ गदद न की सुख वा खबर न रखना = वैशेष रहना । अचेत रहना । असावधान रहना । ग्राफ़िल रहना । गांड़ गदद एक हो जाना = (१) पक कर लापप हो जाना । पक कर होरा ह्वाश हो देना । (२) वैशेष हो जाना । वैधुष हो जाना । आग खोना । (३) संट मुसंड हो जाना । वधुत हो जाना । गांड़ गले में आना = (१) संकट में पड़ना । अश्रंत में फँसना । (२) तंग आना । ऊब जाना । आगिज आना । हैरान होना । गांड़ घिसना वा रगड़ना = (१) बड़ा उद्योग करना । बहुत प्रयत्न करना । बड़ी दौड़ धूप करना । कड़ी मिहनत करना । कठिन परिश्रम करना । उ०—१०) महीने पर कौन गांड़ घिसने जायगा । (२) चापशूरी करना । ठकुरसुहाती कहना । खुरामद करना । गांड़ घिसवाना = (१) बड़ी खुरामद करना । बड़ी चापशूरी करना । (२) नाकों चने चयवाना । बहुत तंग करना । गांड़ चलना = दख आना । पेट चरना । गांड़ चाटना = चापशूरी करना । खुरामद करना । (वानारु) गांड़ चिरना = दे० “गांड़ फटना” । गांड़ जलना = (१) गुद लगना । न सुहाना । (२) डाह उत्पन्न होना । ईर्षा होना । गांड़ घेना = आवदख लेना । किसी की गांड़ घेना = चापशूरी करना । खुरामद करना । गांड़ घेने न घाना = कुछ ढंग न आना । कुछ भी शऊर न होना । गांड़ फटना = (१) डर लगना । भय होना । (२) डर के मारे धरारहट होना । गांड़ फट कर हीड़ वा हीज़ होना = भयभीत होना । अतक से घबड़ा जाना । सहम जाना । गांड़फाड़ वा गांड़फार = (१) मयानक । डरावना । (२) कठिन । विकट । हुकर । गांड़ फाड़ना = (१) डराना । घमकाना । भय दिखाना । (२) हिंक करना । उठाना । नाक में दम करना । (३) कठिन काम लेना । अश्रंत अधिक श्रम करना । गांड़ में गू होना = पाप पैदा होना । पाप में धन होना । (किसी की) गांड़ में घुसा रहना = चापशूरी करना । साप साप लगा फिरना । खुरामद करना । गांड़ में घुस जाना = दूर हो जाना । निकल जाना । उ०—चार बात देंगे, सब बदमारी गांड़ में घुस जायगी । गांड़ में चटखनी वा पतिंगी लगना = (१) बुरा लगना । न सुहाना । नागवार गुजरना । (२) डाह होना । जलन होना । गांड़ में धूकना वा धूक लगाना = (१) नीचा दिखाना । कलत्रित करना । भुवा लगाना । अग्रमानित करना । इज्जत उठाना । (२) भिंपाना । सखिज करना । गांड़ मराना = (१) गुदा-मैयुन करना । प्रकृति-विरुद्ध मैयुन करना । (२) हानि सहना । तुकसान उठाना । (३) चापशूरी करना ।

सुरामद करना । दुर्गवहार और दुर्गचन सहना । गाँड मारना = (२) लौटिवाजो करना । (२) खाना । संग करना । हुभज गाँड । (३) अर्थव्यय अधिक काम लेना । कठिन परिश्रम लेना । गाँड में डँगली करना = (१) छेड़ना । छुड़ाना । (२) लोम करना । खाना । खाना । (३) छेड़ना । (२) लोम करना । खाना । खाना । गाँड में मिरचें लगना = चुग लगना । न सहना । खसना । गाँड में खँरोटी न होना = काण्डे विना नंगे फिरना । अर्थात् देखि देना ।

(२) किसी वस्तु के नीचे का वह भाग जिसके चल वह खड़ी रह सके वा खरो जा सके । पेंदी । तला । तली ।

गाँडर—संज्ञा स्त्री० [सं० गणनी] (१) मूँज की तरह की एक घास जिसकी पत्तियाँ बहुत पतली और हाथ सवा हाथ लंबी होती हैं । जड़ से इसके शंक्रुत गुणवै में निकलते हैं । यह घास ताराई में तथा मेसे स्थानों पर होती है जहाँ पानी इकट्ठा होता है । गंगाल की ताराई में तालों और मीलों के किनारे यह बहुत उपजती है । इसकी सूखी जड़ जेठ असाढ़ में पनपती है और उसमें से धनुत से शंक्रुत निकलते हैं जो बढ़ते जाते हैं । कुआर के महीने में बीच से पतली पतली सीकें निकलती हैं जिनके सिरे पर छोटे छोटे जरी लगने हैं । किसान सीकें को निकाल कर उनसे भादू, पंखे, टोकियाँ इत्यादि बनाते हैं और पीपों के काट कर उनसे छपर छाते हैं । इस घास की जड़ सुगंधित होती है और इसे संस्कृत में उगीर तथा फारसी में खस कहते हैं । यह पतली सीकें और लंबी होती और बाजारों में खस के नाम से विक्रती है । उस का अंतर निकाला जाता है और उसकी टटियाँ भी बनती हैं । खस से नेचे भी बंधे जाते हैं । बीरन । खस । ३०—सो में कुमति कही बंदि भांती । बाजु सुराग कि गाँडर तांती ।—तुलसी । (२) एक प्रकार की दूध जिसमें बहुत सी गाँडे होती हैं और जो जमीन पर दूर तक फैलती और जगह जगह जड़ परकृती जाती है । परु इसे बड़े चाव से खाते हैं । यह कटुई, कसैली और मीठी होती है, दाह, मृषा और कफपित्त को दूर करती और रक्षिण के विचार को हरती है । भावप्रकाश में इसे लोह-द्राविणी अर्थात् लोहे को गलानेवाली लिखा है । मंददूर्वा ।

गाँडा—संज्ञा पुं० [सं० काड वा खट] [स्त्री० गेडा] (१) किसी पेड़, पीपे वा छंठल का वह खंड जो उस से काट लिया गया हो । जैसे, लकड़ी का गाँडा, ईँख का गाँडा । (२) ईँख का वह छोटा टुकड़ा जिसे पत्थर वा लकड़ी के कोरह में डाल कर पतले हैं । मँडैरी । (३) ईँख । ३० निगम के भाँडे कत बोलत हैं दघन बाँडे बाहे के पाँडे गाँडे हाथिन सेाँ खात है ।—हनुमान ।

संगा पुं० [सं० गंघ = गंघा । [बह]] वह मँडू वा च्यूरा जो

थादा पीसने की चक्की के चारों ओर इस लिये बनाया जाता है कि छाटा गिर कर दूध उबर न सके । मँडैरी ।

गाँडी—संज्ञा स्त्री० [सं० गंड] एक प्रकार की घास जो चौरागों के चरने के काम आती है । यह घास हिसार और भीर में होती है । मँसें इसे बड़े चाव से खाती हैं । यह सुखा कर रखा जाती है और दस महीने तक बनी रहती है । इसकी जड़ में एक प्रकार की सुगंध होती है । यह अच्छी धरती में जहाँ गेहूँ होता है, उपजती है । इसे गोड़े भी खाने हैं ।

गाँडीव—संज्ञा पुं० [सं०] अत्रुन के धनुष का नाम ।

घौए—गाँडीवन्धना, गाँडीवधर, गाँडीवी = अत्रुन ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि पहले इसे ब्रह्मा ने बना कर सोम को दिया था । सोम ने वरुण को दिया, और अग्नि की प्रार्थना पर वरुण ने अत्रुन को दिया ।

गाँडीवी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अत्रुन । (२) अत्रुन वृक्ष ।

गाँडू—वि० [हिं० गांड] (१) जिसे गाँडू मारने की लत हो । (२) निरुम्मा । (३) डरोक । बुजदिल । असाहसी । जिसमें हिम्मत न हो ।

गांती—संज्ञा स्त्री० दे० "गाती" ।

गांधना—कि० सं० [सं० गंधन] (१) गंधना । गूँधना । ३०—(क) गुरु के घबन फूल हिय गांधे । देखें नवन चढ़ा-चड़ें माये ।—जायसी । (ख) सोहत मउर मनोहर माये । मंगलमय सुकुलामयि गांधे । (२) गाँठना । मोटी सिलाई करना । जोड़ना ।

गाँदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अक्रूर की माता जो काशिराज की कन्या और शफल्क की भार्या थी । (२) गंगा ।

गाँदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँदिनी ।

गांधर्व—वि० [सं०] (१) गंधर्व संबंधी । (२) गंधर्व देशोत्पन्न । गंधर्व जाति का ।

संगा पुं० [सं०] (१) सामवेद का उपवेद जिसमें सामग्रान के स्वर तालादि का वर्णन है । गंधर्व विद्या । गंधर्व वेद । (२) गान विद्या । संगीत शास्त्र । (३) यह मंत्र जिसका देवता गंधर्व है । (४) भारतवर्ष का एक भाग वा उपद्वीप जिसे गंधर्व द्वीप भी कहते थे । यहाँ के लोग गाने बजाने में बड़े चतुर होते थे । इसमें कन्या वर परस्पर मिल कर विवाह करते थे । जिहाँ स्वयंती होती थीं । इस देश के गोड़े अच्छे होते थे । यह देश हिमालय के प्रांत-भाग में माना जाता था । (५) अष्ट प्रकार के विवाहों में एक जिसमें घर और कन्या परस्पर अपनी इच्छा से अनुसारापूर्वक मिल कर पति पत्नी-बन् रहते हैं । मनु के अनुसार चरित्रों के लिये गंधर्व विवाह सिद्ध है । (६) घोड़ा । (७) गंधर्व ।

गांधर्ववेद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद का उपवेद । दे० "गांधर्व" । (२) संगीत-शास्त्र ।

गांधर्विक-वि० [सं०] संगीत-शास्त्र-कुशल । गांधर्ववेद जाननेवाला ।

गांधर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

गांधार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंधु नद के पश्चिम का देश जो पेशावर से लेकर कंधार तक माना जाता था। इस देश की सीमा भिन्न भिन्न समयों में बदलती रही है। हुयनचवांग के समय में इस देश के श्रंतगत सिंधु नद से लेकर जलालापोद तक और स्वात से कालावाग तक का प्रदेश था। ऋग्वेद में यहाँ अर्घुनी भेड़ों का होना लिखा है। गांधारी इसी देश की कन्या थी। (२) [स्त्री० गांधारी] गांधार देश का रहनेवाला। (३) गांधार देश का राजा वा राजकुमार। (४) संगीत में सप्त स्वरों में तीसरा स्वर। इसकी दो ध्रुतियाँ हैं, रात्री और स्रोत। इसकी जाति वैश्य, वर्षे सुनलहा, देवता सरस्वती, अपि चंद्रमा, छंद त्रिष्टुभ, वार मंगल, ऋतु वसंत और स्थान दोनों हाथ हैं। इसकी आकृति अग्नि की संतान, हिंडोल राग है। इसका अधिकार शास्त्राली द्वीप में है। इसका प्रयोग कण्ठ्यरस में होता है। नाजि से उदक कंठ और शरीर में लग कर अनेक गर्भों को लेजानेवाली वायु से इसकी उत्पत्ति होती है। यह स्वर बकरे की बोली से लिया गया है। इसके दो भेद होने हैं। शुद्ध और कोमल। इस स्वर का मह स्वर बनाने से निम्न लिखित प्रकार से स्वर प्राप्त होता है।—(क) गांधार-स्वर। तीव्र मध्यम, ऋषभ। कोमल धैवत-गांधार। धैवत-मध्यम। निपाद-पंचम। कोमल ऋषभ-धैवत। कोमल गांधार-निपाद। कोमल गांधार को मह स्वर बनाने से स्वर प्राप्त इस प्रकार होता है।—(ख) गांधार-कोमल-स्वर। मध्यम ऋषभ। पंचम-गांधार। कोमल धैवत-मध्यम। कोमल निपाद-पंचम। स्वर धैवत। ऋषभ-निपाद। (४) संपूर्ण जाति का एक राग जो प्रातः काल १ दंड से २ दंड तक गाया जाता है। हनुमत् के मत से यह और राग का पुत्र और किसी किसी के मत से दीपक राग का पुत्र है। (५) एक संकर राग जो कई राग और रागिनियों को मिला कर बनाया जाता है। (६) संगीत के तीन स्वर प्रामों में से एक जिसमें नंदा, विद्यासाक्षा, सुसुपी, विचित्रा, रोहिणी, सुपा और आलापनी ये सात मूर्च्छनापूर्व हैं और जिसका व्यवहार स्वर्गलोक में नारद द्वारा होता है। इसके अधिष्ठाता देवता शिव कहे गए हैं। (८) गंध रस नामक सुगंधद्रव्य ।

गांधारपंचम—संज्ञा पुं० [सं०] एक पाठ्य राग। यह मंगलीक राग है और अद्भुत हास्य और कण्ठ्यरस में इस का प्रयोग होता है। इसमें ऋषभ नहीं लगता। म, प, घ, नि, स, ग, म, इसका सरगम है। इसमें प्रसन्न मध्यम अलंकार और फाकली का संचार होना आवश्यक है। इसे केवल गांधार भी कहते हैं।

गांधारऔरव—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग का नाम जो देवगांधार के मिलने से बनता है। इसमें सातों स्वर लगते हैं और यह प्रातः काल गाया जाता है। इसका सरगम यह है—
ध, नि, स, रि, ग, म, प, ध ।

गांधारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गांधार देश की स्त्री वा राजकन्या। (२) पतराष्ट्र की स्त्री वा दुर्योधन की माता का नाम। ये गांधार देश के राजा सुवल् की कन्या थीं। शिव ने इन्हें सौ पुत्र होने का वर दिया था। पतराष्ट्र की पत्नी होने पर इन्होंने पति को अंधा देख अर्पनी शर्माँ पर भी पट्टी बांध ली थी। (३) मेघराज की पार्वती रागिनी। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और दिन के पहले पहर में गाई जाती है। रि, ध, नि, प, म, ग, रि, स' इसका सरगम है। कोई कोई इसे हिंडोल राग की रागिनी मानते हैं। उनका मत है कि यह धनाश्री और स्वराष्टक को मिला कर बनाई गई है। कोई इसे सारस्वत और धनश्री से मिल कर बनी हुई यतलाते हैं। (४) तंस के अनुसार एक नाड़ी। (५) जैनों के एक शासन देवता। (६) पार्वती की एक सर्वा का नाम। (७) जवासा। (८) गाँजा ।

गांधिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधी। (२) एक कीड़ा। गंधी। (३) गंधद्रव्य ।

गांधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक हरे रंग का छोटा कीड़ा जो वर्षाकाल में धान के खेतों में अधिक होता है। इससे धान के पीतों के राई हानि पहुँचती है। इसमें एक तीव्र दुर्गंध होती है। रात को यह चिराग के सामने भी उड़ कर पहुँचता है और इसके आते ही रुदमल की तरह की एक असरा दुर्गंध उठती है। (२) एक घास। (३) हाँग ।

गामीय्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गहराई। गमीरता। (२) स्थिरता। अचंचलता। (३) हर्ष, क्रोध, भय आदि मनोवेगों से चंचल न होने का गुण। धीरता। शांति का भाव। (४) किसी विषय की गूढ़ता। गहनता। जटिलता ।

गाँव, गाँव—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम, पा० गाम, प्रा० गावे] [नि० गँवार] यह स्थान जहाँ पर बहुत से किरानों के घर हों। छोटी बस्ती। खेड़ा ।

मुहा०—गाँव गिरावै—(१) देहलत। (२) ज़मींदारी। गाँव गवई—देहलत। गाँव मारना—डालना मारना। डाका डालना। उ०—जिमींदारसुता ताफे उर्भे भाई रहे आपस में वैर, गाँव मारयो सब छीजिये—मिया ।

गाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० गांसन] (१) बंधन। रोक टोक। प्रतिरोध। उ०—सब गाँस फास मिटाप दास हुलास ज्ञान अलंके के। नहिं नाश तेहि इतिहास सुनिसे आदि धंत प्रचंड के।
क्रि० प्र०—करना।—रखना।—देना।
(२) वैर। द्वेष। ईर्ष्या। मनोमालिन्य। उ०—विपुर्वो जावक

सैति पग, निरखि हँसी गहि गाँस । सलज हँसैहीं लखि
लिया थापी हँसी उमास ।—विहारी ।

कि० प्र०—रपना ।—धरना ।—परइना ।—गहना ।

मुहा०—गाँस निकालना = बैर निकालना ।

(३) हृदय की गुप्त बात । भेद की बात । रहस्य । उ०—
(क) जहाँ कान्ह यह बात सुनाई । प्रज युवती प्रति गई
सुरसाई । जोवन दान लेहिं नो तुम सों ।
चतुराई मिलवति है हम सों । इनकी गाँस कहा री जाने ।
इतनी कही एक जिय मानो ।—सूर । (ख) यह बात साँची
याकी गाँस एक और सुनो साधु को न हँसे कोऊ यह में
विचारी है ।—प्रिया । (घ) गोट । फँदा । गड़न । बनावट ।
जमावट । उ०—इतने सदै चतुराई पास । निरखि न देखहु
श्रंग श्रंग श्रय चतुराई की गाँस ।—सूर । (ङ) तीर वा बर्छी
का फल । हथियार की नेत्रक । उ०—केटिन मनोज की
बनेज जाके धामो पुनि इवति क्लानिधि की खोज को न
काड़ी है । रघुनाथ हरि सोई हरति हरिनैनी गई गाँस
पैनी रीक बतरस वाड़ी है ।—रघुनाथ । †(६) घर । अधि-
कार । शासन ।

मुहा०—गाँस में करना वा रखना = अधिकार में रखना । देल
रेल में रखना । शासन में रखना । उ०—निगुण कौन देस
को बासी । मगध कहि समुझाई सैहि दू बुझत साँच,
न हँसी । पावैगो पुनि कियो आपनो जेर
करेगो गाँसी । सुनत मीन हूँ रखो थावो सूर सयै मति
गामी ।—सूर ।

(७) देल रेल । निगरानी ।

गाँसना—कि० सं० [हि० शंभन] (१) गाँस का सक्मक रूप ।
एक दूसरे से लगा कर कपना । गूथना । (२) सालना ।
छेदना । चुभोना । झार पार करना । (३) रस्मी वा सूत के
बाने बुनने समय उभे ठेक ठेक कर सोने में कपना जिससे
सुनावट बनी हो । गड़ना । कपना । टप करना ।

मुहा०—घात को गाँस कर रखना = मन में बैठा कर रखना ।
दंष्ट्र में जमाना । स्मरण रखना । मन में निद्र रहना । उ०—
दाउं धाउं सुमरी सब जानत । सदा मानि तुम को हम खाईं
अथहूँ तैसद मानत । पुम बह यात गाँस करि गाँसी हम को
गईं सुलाइ । ता दिन कबो नही मैं जानौं मानि लई
सति भाइ ।

†(४) रोचना । इधर उधर न जाने देना । देव रेल में
रखना । घर में रखना । अपने मन का न होने देना । शासन
में रखना । (५) पकड़ में करना । घर में करना । दबोचना ।
(६) हृष्यना । अत्ना । (७) जदान का छेद बंद करना ।

गाँसी—संज्ञा स्त्री० [हि० गंस] (१) तीर वा घरछी आदि का
फल । हथियार की नेत्रक । उ०—पीतम के उर बीच भये
दुखदी बे । विज्ञान मनोज की गाँसी ।—मतिराम ।

मुहा०—गाँसी लगना = तीर लगना । उ०—गाँसी से डुलेल
लागे गाँसी सी गुलाल लागे गाज भरागा लागे चोला
लागे चढ़कन ।

(२) गोट । गिरह । (३) कपट । छलदंष्ट्र । (४)
मनोमालिन्य ।

गाँहका—संज्ञा पुं० दे० “गाहक” ।

गाँह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पथ-प्रदर्शक । रहनुमा । आगे आगे
राम्हा बतझानेवाला । (२) वह पुरुष जो किसी स्थान में
विदेशियों के साथ रह कर उन्हें वहाँ के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थलों
और वस्तुओं को दिखलाता है । (३) वह पुरुष जिसमें
किसी विशेष संस्था वा कार्यविभाग के नियम आदि
लिखे हों ।

गाउन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का लंबा ढीला पहनावा
जो प्रायः शेरप, अमेरिका आदि देशों की स्त्रियाँ पहनती हैं ।
(२) एक प्रकार का चोगा जो कई आकार और प्रकार का
होता है और जिसके पहनने के अधिकारी ईसाई धर्म के
आचार्य, प्रेसिडेंट, बड़े न्यायाधीश अथवा कुछ अन्य विशिष्ट
लोग ही समझे जाते हैं ।

गाऊघण्ट—वि० [हि० गाऊ + घण्ट] (१) दूसरों के माल को हड़प
लेनेवाला । जमातार । (२) बहुत नुचै करनेवाला । बहुत
उड़ानेवाला ।

गामर—संज्ञा स्त्री० [सं० गमर] गमरी । घड़ा ।

गामरा—संज्ञा पुं० (१) दे० “गमरा” । (२) अंगियों की एक
जाति ।

गामरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गमर, पा० गमर] घड़ा । गमरी ।
उ०—नू मोहि को मारन जाननि । उन को चरित कहा कोउ
जाने उनहि कहा व मानति । कथम तीर से मोहि बुलायो गदि
गदि धातें धानति । मटकति गिरी गामरी सिर तें अथ ऐसी
बुधि धानति ।—सूर ।

गाच—संज्ञा पुं० [सं० गाज] बहुत महीन जालीदार सूती कपड़ा
जिस पर देशमी बेल बूटे बने रहते हैं । कुलवर ।

गाछ—संज्ञा पुं० [सं० गच्छ] (१) छोटा पेड़ । पाँधा । (२) पेड़ ।
वृक्ष । (३) एक प्रकार का पान जो उत्तरी बंगाल में होता है ।

गाछो—संज्ञा स्त्री० [हि० गच्छ + ई (अव०)] (१) पेड़ों का कुंड ।
बाग । (२) जगत् की नरम कौपल जिसे लोग पेड़ छट जाने
पर सुखला कर रथ छोड़ने हैं और तारकारी के काम में लाते
हैं । (३) घोरा जो बेल आदि पशुओं की पीठ पर बोध
लादने के लिये रक्था जाता है । भुरजी ।

गाज—संज्ञा स्त्री० [सं० गजे, पा० गज] (१) गर्जन । गरज ।
शोर । उ०—(क) कविरा मृता बयों करै सूतें हाय चक्राज ।
मददा को ध्यानन दियो मुनी काल की गाज ।—कबीर । (ख)
नंदराय के बीच में खड़े करन मय गाज । जब जय करि
विचिथाइए सथै मिलत प्रजाज ।—मुकवि ।

घो०—गाजा बागा = धूम धड़का ।

(२) विजली गिरने का शब्द । घन्नपातज्यनि । ३०—गाज्यो कपिगात्र ज्यो विराज्यो ज्वाल जालयुत भाजे धीर धीर अकुलाह उद्यो रावने ।—तुलसी । (३) विजली । घन्न । ३०—गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि मूँदे फान जातुधान माना गाजे गाज के ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—गाज पड़ना = वज्रपात होना । विजली गिरना । ३०—मानहुँ परी स्वर्ग हुत गाजा । फाटी धरति श्राद्ध जो बाजा ।—जायसी । किसी पर गाज पड़ना = अफ़्त आना । अंत होना । नारा होना । ३०—जो सत पृथ्विसि गंधर्व राजा । सत पर कयहुँ परं नहिँ गाजा ।—जायसी । (किसी बात पर) गाज पड़े = नष्ट हो । दूर हो । न रह जाय । ३०—(क) गाज परं ऐसी साज पै जो भरि लोचन देति न मोहिँ निहारन । (ख) गाज परं मन को बसियो गुमहुँ, सखि, देखति ही बरजोरी ।—दूबह । (किसी को कोसने या किसी बात से अनिच्छा प्रकट करने के लिये इस मुहावरे का प्रयोग किया बहुत अधिक करती है ।) गाज मारना = (१) विजली गिरना । वज्रपात होना । (२) अफ़्त आना । ३०—द्वैव कदा मुनु यदरे राजा । द्वैवहि अगुमन मारा गाजा ।—जायसी ।

पहा पु० [पनु० गजगज] पानी खादि का फेन । फेन । भाग ।

क्रि० प्र०—उटना ।—टूटना ।—छोड़ना ।—निकलना ।—फेंटना ।

संज्ञा स्त्री० [?] काँच की चूड़ी ।

गाजना—क्रि० प्र० [सं० गजिन, पा० गज्जन] (१) गरजना । शब्द करना । हुंकार करना । चिल्लाना । ३०—(क) सेन मेव अस दुहुँ त्रिनि गाजा । स्वर्ग के बीच चीज अस बाजा ।—जायसी । (ख) वनई थाय दुहुँ दल गाजे । हिंदू तुलक देकर सस बाजे ।—जायसी । (२) हृषिक होना । प्रसन्न होना ।

मुहा०—गल गाजना = हृषित होना ।

गाजर—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधे का नाम जिस की पत्तियाँ घनिया की पत्थी से मिलती जुलती पर उस से बहुत बड़ी होती हैं । इसकी जड़ मूली की तरह पर अधिक मोटी और लाल रंग की होती है । यह रंगे में बहुत सीधी होती है । यह गरम होती है और छोटे के बहुत खिलाई जाती है । छोटी और नरम जड़ों को गरीब लोग और बच्चे पड़े भाव से खाते हैं । इसकी जड़ को मुराला कर उसके छोटे का हलुवा बनाया जाता है जो पुष्ट माना जाता है । काड़ी लोग इसे खपने खेतों में कानिक अगहन में बोते हैं । इसकी लकड़ी, खचार और मुरखे भी बनाए जाते हैं ।

मुहा०—गाजर मूली समझना = तुच्छ समझना ।

गाजा—संज्ञा पुं० [फा०] सुँह पर मजने का एक रोगान । पाउडर । क्रि० प्र०—सलना ।

गाजी—संज्ञा पुं० [फ०] (१) मुसलमानों में यह धीर उदार जो धर्म के लिये विधर्मियों से युद्ध करे । (२) यहादुर । धीर । ३०—साहिके सिवाजी गाजी सजा समत्य महा मरुधल अकजलै पंजाय पठयो ।—भूपण ।

गाजो मियाँ—संज्ञा पुं० [फ०] सालार मसजद गाजी जो महमूद गज़नवी का भागजा था । यह हिंदुओं को काफिर समझ उनसे लड़ने के लिये श्रयष तक यद् आया था पर अरब ही में श्रावली (सहेत महेत) के जैन राजा सुद्धदेव के हाथ से बहराद्व में मारा गया । घालेमियाँ ।

गाटर—संज्ञा स्त्री० [पु० हिं० गदर = गल] खुशाटे की यह लकड़ी जिसके छपर उपर बेल जोते जाते हैं ।

संज्ञा पुं० [?] (१) दे० “कटा” । (२) घोम खेत । गाटा ।

संज्ञा पुं० [सं० गदर] लोहे की लंबी धार मोटी धारन जिसे शीशारों पर डाल कर छत पाटी जाती है ।

गाटा—संज्ञा पुं० [हिं० कटा] (१) खेत का छोटा टुकड़ा । छोटा खेत । गाटर । (२) पयाल दाने को चैलों की नखाई ।

गाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० गद, प्र० गदू । मिश्राणो फ० गार] (१) गड़दा । गड़दा । ३०—(क) रूधिर गाड़ भरि भरि जमेउ ऊपर पुरि उड़ाह । जिमि अंगार रामीन पर मसक धूम रह छाह ।—तुलसी । (ख) वेई गाड़ि गाड़ै परी उवयो हार हिये न ।

आज्यो मेगिर मलंग मनु मारि गरेनि सैन ।—विहारी । (ग) चित्त चंचल अग कहत है मो मति सो ठहरै न । या टोड़ी की गाड़ परि थिर होइ सो निकरै न ।—शू० सत० (३) श्रुचि की भीतर रोदा हुभा गड़दा जिसमें अन्न रखा जाता है । (३) कोवहाइ में यह गड़दा जिसमें बचा खुचा रस निचाड़ने के लिये ईस की नोई डालते हैं और ऊपर से पानी छिड़क देते हैं । इसमें चारों ओर हाथ डेढ़ हाथ ऊँची दीवार होती है और भीतर में यह खूब लिपा पुला रहता है । इसमें एक छोरा छोटा सा छेद होता है जिसमें से हो कर खोई से रस निकुड़ा है । (४) नील खादि के कारखाने में यह गड़दा जिसमें पानी भरा रहता है । (५) कुई की डाल । भगाड़ । (६) वह विपला गड़दा जिसमें पानी शीघ्र यह जाता है । बसा । (७) खेत का मेड़ । गाड़ ।

गाड़ना—संज्ञा पुं० [हिं० गद = गड़दा] (१) श्रुचि में गड़दा खोद कर किसी चीज को उसमें डाल ऊपर से मिट्टी डाल देना । जमीन के भीतर दफनाना । सोनना । जैसे, मरणा गाड़ना, मुरादा गाड़ना । (२) श्रुचि में गड़दा खोद कर बच्चों में किसी लंबी चीज के एक सिरे का कुछ भाग डाल कर उसे चढ़ा

करना। जमाना। जैसे, घास गाड़ना, सड़ा गाड़ना, पेड़ गाड़ना। (३) किसी चुकीली चीज़ को मोक के बल किसी चीज़ पर टेंक कर जमाना। घँसाना। जैसे, खँटी गाड़ना, कील गाड़ना। (४) छिपाना। गुप्त रखना। जैसे, वह जिस चीज़ को पाता है, गाड़ रखता है।

गाइर-संज्ञा स्त्री० [सं० गइरी वा गइरिका] (१) मँड़। उ०—(क) स्वामी होने सहज है दुल्लभ होनेा दास। गाइर हाये उन को लागी धरन कपास।—तुलसी। (ख) मतिराम कहै कारवार के फसैया केते गाइर से मूँड़ें जग हाँसी की प्रसंग भो।—मतिराम। (२) दे० “गाइर”।

गाड़ू-संज्ञा पुं० दे० “गाड़ू”।

गाड़ा-संज्ञा पुं० [सं० गऊट, प्रा० सगड] गाड़ी। छुकड़ा। बँल-गाड़ी। उ०—कुँवल कान कँठ माला है भुव नँद प्रति मुख पावे। स्तियो बहुत सुगसुर नँदे गाड़ा भरि पहुँचाये।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० गर्ग, प्रा० गइर] (१) वह गइड़ा जिसमें धागे लोग छिप कर बैठ रहते थे घौर शयू, चौर, चहूँ आदि का पता लेते थे। पात का स्थान। (पहले गावों में ऐसे गइड़े रखा करते थे।

मुहा०—गाड़े बैठना = (१) पात में बैठना। (२) चौकी वा पट्टे पर बैठना। गाड़ा बैठना = चौकी बैठना। पहरा बैठना। (३) वह शक्ता वा गाइड़ा जो केशव के भीचे रहता है—शौर जिसमें सेल वा रस जमा करने के लिये धारन रखा रहता है।

गाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० गऊट, प्रा० सगड] (१) घूमनेवाले पहियों के ऊपर उठरा हुआ लकड़ी कोड़े आदि का ढोचा जिसे घोड़े बँल आदि खींचते हैं शौर जिस पर आदमियों के बैठने वा माल असवाय रखने के लिये स्थान बना रहता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल असवाय वा आदमियों को पहुँचाने के लिये एक यंत्र। पान। शकट। आदमियों को बढानेवाली गाड़ी को सवारी गाड़ी शौर माल असवाय खाने की गाड़ी को छुकड़ा, सगगड़ आदि कहते हैं। सवारी गाड़ी कई प्रकार की होती है जैसे, रथ, पहल, पट्टा, रंगा, बग्गी, जोड़ी, फिटन, टमटम आदि। उ०—(क) गाड़ी के स्थान की नाहें माथा मोह की बढाहें छिनहिँ तजि छिन भजन धरोरि हीं।—तुलसी। (ख) लीक लीक गाड़ी चलै, लीकहिँ चलै सपर।

क्रि० प्र०—चलाना = धुकिना।

मुहा०—गाड़ी भर = बहुत सा। ढेर का ढेर। गाड़ी जेतना = गाड़ों में धोड़े जेतना। चपने के लिये गाड़ी तैयार करना। गाड़ी छटना = गाड़ों का रचना हो जाना। (ऐसा प्रायः ऐसी गाड़ियों के ही संबंध में बोलते हैं जिनका संबंध सर्वसाधारण

से होता है शौर जिनके खाने जाने का समय नियत होता है)।

(२) रेलगाड़ी।

मुहा०—गाड़ी कटना = (१) किसी डिब्बे का देने से अलग होना। (२) चलती गाड़ी में से मान चोरी जाना।

गाड़ीखाना-संज्ञा पुं० [हिं० गाड़ी + खाना] वह स्थान जहाँ गाड़ियाँ रखी जाती हैं।

गाड़ीवान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी हँकनेवाला। (२) कोचवान।

गाड़-वि० [सं०] (१) अधिक। बहुत। अतिशय। (२) रड़। मजबूत। (३) घना। गाड़ा। (४) गहरा। अथाह। (५) विकट। कठिन। डुरूह। दुर्गम। उ०—चेर घगम गड़ गड़ सुदावा। सपनेहुँ नहिँ प्रतिपच्छुन पावा।—तुलसी। संज्ञा पुं० [सं० गाड़] (१) कठिनाई। अप्रति। संकट। उ०—(क) जहँ जहँ गाड़ परें सेतन पर सकल काम तजि हेतु सहगई।—तुलसी। (ख) बसी री माहै रयाम मुश्रंगम कारे। मोहन मुख मुसुकानि मनहुँ विप जाते मरे से। मरे।निर्विष होत नहौँ कँसहुँ करि बहुत गुणी पवि हारे। सूरयाम गाड़ू बिना को सेा सिर गाड़ उतारै।—सूर।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—गाड़े में पड़ना = संकट में पड़ना। आपतिग्रस्त होना। उ०—एक परे गाड़े, एक डाइत ही काड़े, एक देखत हैं टाड़े, कहीं पावक भयापने।—तुलसी।

(२) जुझावों का करवा।

गाड़ा-वि० [सं० गाड़] (१) जो पानी की तरह पतला न हो। जिसमें जल के समान बहनेवाले थँदा के अतिरिक्त ठोस थँदा भी मिला हो। जिसकी तरलता धन्य विप हो। जैसे, गाड़ा दूध, गाड़ा रस, गाड़ी स्वाही, गाड़ा शीरा।

मुहा०—गाड़ी छनना = (१) प्लू भांग का पिया जाना। (२) गइरगइर नया होना।

(२) जिसके सूत परस्पर रूप मिले हों। टस। मोटा। (कपड़े आदि के लिये) जैसे, गाड़ी बुनावट, गाड़ा कपड़ा। (३) धनिष्ठ। गहरा। गूढ़। जैसे, गाड़ी मिश्रता।

मुहा०—गाड़ी छनना = (१) गइरी मिश्रता होना। अत्यंत हेलमन होना। गूढ़ प्रेम होना। उ०—ध्राज कल उन दोनें की खल गाड़ी छनती है। (२) गुन धुन कर बनें होना। गुन सनाह होना। (३) क्षाम डाट होना। विषेप होना।

(४) बडा चढ़ा। चौर। कठिन। विकट। प्रचंड। कटर। डुरूह। जैसे, गाड़ी मिदमत। उ०—दिन देवता घरहि के गाड़े। मिले न कपहुँ सुमट ल गाड़े।—तुलसी।

मुहा०—गाड़े की कमाई = बहुत मिहनत से कमाया हुआ

घन । अर्थत परिश्रम से उपाजित घन । गाढ़े का साथी घा संगी = संकट के समय का मित्र । विपत्ति के समय सहारा देनेवाला । उ०—दुस्तरि गाढ़े कर साथी । बहु अवगाह दीन तेहि हाथी ।—जायसी । गाढ़े दिन = संकट के दिन । विपत्ति काहा । मुसीबत का वक्त । गाढ़े में = विपत्ति के दिनों में । संकट के समय में । उ०—मित्र वही जो गाढ़े में काम आवे ।

संज्ञा पु० [सं० गाढ़] (१) एक प्रकार का मोटा और भद्र सूती कपड़ा जिसे जुलाहे बुनते हैं और गरीब आदमी पहनते हैं । (२) मख हाथी ।

गाढ़ी* कि० वि० [हि० गाढ़ा] (१) दृढ़ता से । जोर से । उ०—में गोरस लै जात अकेली काहिह फान्है यहियां गही मेरी । हार सहित अचरा गद्यो गाढ़े एक कर गद्यो मडुकिया मेरी । तव मैं कह्यो खीज हरि छड़ाहु दूटगी मोतिन लर मेरी ।—सूर । (२) अच्छी तरह । भली भांति । सूत्र । उ०—खाविली के कर की मेंहवी छुपि जात कही नहि शंखुहु जू पर । भूखिहू जाहि विबोक्त ही गडि गाढ़े रहे अति ही दग दू पर ।—शंखु ।

गाद्यापत—वि० [स] गद्यापति संबंधी ।

संज्ञा पु० एक संप्रदाय का गद्यो की उपासना करता है ।

गाद्यपत्य—संज्ञा पु० [सं०] गद्यो का उपासक ।

गात—संज्ञा पु० [सं० गाथ, पा० गथ] (१) शरीर । श्रंग । उ०—बैठे देख कुशासन जटा मुकुट कृष्ण गात ।—तुलसी । (२) गुसांग । लज्जा का श्रंग । जैसे, गात दिखाना । (३) स्तन । कुच ।

मुहा०—गात उमगना = छाती उठना । कुच निकलना ।

(४) गर्भ ।

मुहा०—गात से होना = गर्भवती होना ।

गातलीन—संज्ञा स्त्री० [सं० गतलीन] जहान् में एक डोरी जो मस्तूल के ऊपर एक चरखों में लगी रहती है और रीगिन बढाने में काम आती है ।

गाता—संज्ञा पु० [सं० गात (गता)] गानेवाला । गवैया । उ०—जयति रन अत्रिण गवयर्षे गन गवर्धर फेरि किय राम गुन गाथ गाता ।—तुलसी ।

संज्ञा पु० दे० "गात्ता" ।

गाती—संज्ञा स्त्री० [सं० गती वा गात्रिका] (१) यह चंद्र जिते प्राचीन काल में लोग अपने शरीर पर लपेटते थे और अथ भी साधू अपने गले में बांधे रहते हैं । स्त्रियां बच्चों के गले में अथ भी गाती बांधती हैं । उ०—सारी सुभग काजू सय दिये । पाटंबर गाती सय दिये । एकन आह दूर हरि पाये । सैन देद राधिका गुलाये ।—सूर ।

कि० प्र०—कसना ।—बांधना ।—खगाना ।

मुहा०—गाती मारना = गाती बांधना ।

(२) चंद्र वा शंभोदा लपेटने का एक रंग जिसमें उसे शरीर के चारों ओर लपेट कर गले में बांधते हैं ।

गातु—संज्ञा पु० [सं०] (१) कोयल । (२) भौरा । (३) गंधर्व । (४) गानेवाला । (५) गान । (६) चलनेवाला । पथिक । (७) पृथ्वी ।

गात्र—संज्ञा पु० [सं०] (१) श्रंग । देह । शरीर । (२) हाथी के अगले पैरों का ऊपरी भाग ।

गात्रमुत्त—संज्ञा पु० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र जो लक्ष्मण के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।

गात्रभंग—संज्ञा स्त्री० [सं०] केवांच । कौंच ।

गात्रवत्—संज्ञा पु० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जो लक्ष्मण के गर्भ से हुए थे ।

गात्रवर्षी—संज्ञा पु० [सं०] स्वर साधन की यह प्रणाली जिसमें सखों स्वरों में से प्रत्येक का उच्चारण तीन तीन बार करते हैं । जैसे, सा सा सा, रे रे रे, ग, ग, ग, आदि ।

गात्रविंद—संज्ञा पु० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र जो लक्ष्मण के गर्भ से हुए थे ।

गात्रसम्मिलत—वि० [सं०] तीन महीने के ऊपर का (गर्भ) । (गर्भ) जिसका शरीर बन गया हो ।

गाथ—संज्ञा पु० [सं०] (१) गान । (२) स्तोत्र ।

गाथक—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री०] गायिका । गानेवाला । गायक ।

गाथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्तुति । (२) यह श्लोक जिसमें स्वर का नियम न हो । (३) प्राचीन काल की एक प्रकार की ऐतिहासिक रचना जिसमें लोगों के दान यज्ञादि का वर्णन होता था । (४) आर्यों नाम की वृत्ति । (५) एक प्रकार की प्राचीन भाषा जिसमें संस्कृत के साथ कहीं कहीं पाली भाषा के विकृत शब्द मिले रहते हैं । कालितविस्तर आदि बौद्ध ग्रंथ हली भाषा में लिखे हुए हैं । (६) श्लोक । (७) गीत । (८) कथा । वृत्तत । हाल । उ०—गुर शिप के संवाद की कहीं अथ गाथ नवीन । पेलि जाहि जिनासु-जन, होत विचार प्रवीन ।—भिरखल । (९) बारह प्रकार के बौद्ध शास्त्रों में चौथा । (१०) पारसियों के धर्म ग्रंथ का एक भेद । जैसे, गाथा श्रद्धवति, गाथा उद्वेगि ह्यवादि ।

गाथी—संज्ञा पु० [सं० गाथिन्] सामवेद गानेवाला ।

गादी—संज्ञा स्त्री० [सं० गध = जत्र के नीचे का तब] (१) तख पदार्थ के नीचे बैठी हुई गाड़ी चीज । तखसूट ।

मुहा०—गाद बैठना = तखसूट बैठना । (२) कीट जन्मना ।

(२) तेल का चीकट । कीट । (३) गाड़ी चीज । जैसे, गोंद, राय ।

गादुर्गा—वि० [सं० कतार वा कदर्य, प्रा० कदर] कायर । डरनेक । भीर ।

संज्ञा पु० (१) यह खेल जो मारने पर मी. न चले । (२) [स्त्री०] गद्दी । गीदड़ । सियार । उ०—तहाँ भूप देलेव प्रस

सपना । पकड़ते पैर गादरी छपना । भूप झुझिया चाहत निज पग । तनत न गादरि पकरि जो पग राग ।—निरचल ।
 यज्ञ पुं [सं० गृह्य] भेंड़ा । मेंड़ा । मेप ।
गादरा—वि० [सं० कदार वा कदर्य, प्रा० कदार] (१) दरपोक । भीह । कायर । (२) सुस्त । मड़र ।
 वि०† [हि० गरतना] गदराया हुआ ।
 संज्ञा पुं (१) यह रैल जो जातने पर मारने से भी ड्रागे न बड़े । (२) गीदड़ ।
गादा—संज्ञा पुं [सं० गधा = दलल] (१) खेत का वह अन्न जो अर्धवी तरह न पका हो । गदर । अघपका अन्न । जैसे, मटर का गादा, बाजरे का गादा । (२) येपकी फलल । कच्ची फलल । (३) मट्टप का कूल जो पेड़ से टपका हो । हरा महुआ ।
गादी—संज्ञा स्त्री० [हि० गरी] (१) एक पक्वान का नाम । यह एक छोटी टिकिया होती है जिसमें हलायची चिरंजी और गरी मिला कर पूर भरा रहता है । (२) दे० "गद्दी" ।
गादुर—संज्ञा पुं [सं० कदार, प्रा० कदार = दरपोक] चमगीदड़ ।
गाध—संज्ञा पुं [सं०] (१) स्थान । जगह । (२) पाह । जल के नीचे का स्थल । (३) नदी का बहाव । बूल । (४) लोम । लिप्ता ।
 वि० [स्त्री० मधा] (१) जिसे हल कर पार कर सकें । दिवुला । पायव जो बहुत गहरा न हो । (२) थोड़ा । स्वल्प । उ०—तो गति अगाध सिंधु, गाध मति मेरी यह असायुता को राधे अघराध समा कीजिये ।—देव ।
गाधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाधवी स्वरूपा महादेवी ।
गाधि—संज्ञा पुं [सं०] विश्वामित्र के पिता का नाम । ये कुशिक राजा के पुत्र थे । हरिवंश में लिखा है कि कुशिक ने इंद्र के समान पुत्र प्राप्त करने के लिये तपस्या की तब इंद्र के अंश से विश्वामित्र उत्पन्न हुए ।
धा—गाधिपुत्र । गाधिनगर । गाधिपुर ।
गाधिपुर—संज्ञा पुं [सं०] काव्यकुञ्ज ।
गाधेय—संज्ञा पुं [सं०] विश्वामित्र ।
गाधेया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाधि की कन्या सत्यवती जो भार्गव पुत्र अर्धवीक की पत्नी थी ।
गान—संज्ञा पुं [सं०] [वि० गेय, गेय्य] (१) गाना । गाने की क्रिया । संगीत ।
धा—गानविद्या = संगीतकला ।
 (२) गीत । गाने की शक्ति ।
गाना—क्रि० सं० [सं० गन] (१) ताल स्वर के नियम के अनुसार शब्द उच्चारण करना । आलाप के साथ ध्वनि निकालना । जैसे, गीत गाना, मखार गाना । (२) मजुर ध्वनि करना । जैसे, मूली का गाना, कोहल का गाना । (३) कहना । बर्णन करना । विस्तार के साथ कहना । उ०—द्विजदेव जू देवि

अनेली प्रभा अलि चारन कीरति गाये करे । चिरजीवो वसंत सदा द्विजदेव प्रसूनन की भरि लाये करे ।—द्विजदेव ।
मुद्दा—अपनी अपनी गाना = अपनी अपनी बात तुनना । अपना हलका राना । अपनी ही गाना = अपनी ही बात कहते जाना । अपनी ही हल कहना । अपना ही विचार प्रकट करना । अपने ही मनन की बात करना । उ०—तुम तो अपनी ही गाते हो, दूसरे की सुनते नहीं ।
 (४) स्तुति करना । प्रशंसा करना । बखान करना । जैसे, (क) सब लोग उसका गुन गाते हैं । (ख) वह जिससे पाता है, उसकी गाता है । उ०—(क) गाढ़े गद्यपति जगपदन ।—गुलसी । (ख) द्विज देव जू देवि अनेली प्रभा अलि चारन कीरति गाये करे । चिरजीवो वसंत सदा द्विजदेव प्रसूनन की भरि लाये करे ।—द्विजदेव ।
मुद्दा—गाना पाना = आभार प्रियद करना । उत्सव मनाना । उ०—सब लोग गाते बजाते अपने घर गये ।
 संज्ञा पुं (१) गान । गाने की क्रिया । (२) गीत । गाने की चीज । उ०—कहाँ अर्धवा गाना सुनायो ।
गानिली—संज्ञा स्त्री० [सं०] वच ।
गाफिल—वि० [अ०] [संज्ञा गफिल] (१) बेसुध । बेखबर । (२) असाधधान । बेचाराह ।
गाव—संज्ञा पुं [देव०] एक पेड़ । इस के फल से एक प्रकार का चिपचिपार रस निकलता है जो नाव के पोंडे में खगाया जाता और जल में मीका देने के काम में आता है ।
गावलीन—संज्ञा स्त्री० [अ० नेजुल-शेट] एक बीमार जिससे जहान् पार पाल चढ़ाया जाता है । सिंजालपारी । (इतमें चरल पर चढ़ी हुई एक मोटी रस्सी होती है जो मटके से जपर चकती है ।)
गाम—संज्ञा पुं [सं० गर्म, प्रा० गम्] (१) पशुओं का गर्म ।
मुद्दा—गाम ढालना = (२) गर्म गिराना । गर्म फैलना । वषा बालना । (२) अर्धत भयभंत होना ।
 (३) दे० "गामा" । (३) बरतन का मांचा जिस पर गोबरी की तह न चढ़ाई गई हो ।
गामा—संज्ञा पुं [सं० गर्म, प्रा० गम्] [वि० गामिन] (१) नया निकलता हुआ मुँह धँधा पत्ता जो नरम और हलके रंग का होता है । नया कटा । बोंपल । उ०—पेपन की घोर हुँदु हुँदन की धामा चंपा केतकी बं गामा जीस जेतिन सों जटियत ।—देव । (२) कले धादि के बंदल के भीतर का भाग । पेड़ के भीष का हीर । उ०—(क) चंदन गाम की शुजा सैयारी । जेजों से बेल कमल पानारी ।—जायसी । (ख) धाय हरी मारन की पारी । चंदन गाम बास की मारी ।—जायसी । (३) लिहाफ़ रमाई धादि के भीतर की निकाजी हुई पुरानी रई । मुद्द । (४) भरतवासें

के साँचे के भीतर का भाग । (२) कथा अनाज । खड़ी लेती ।

गामिन-वि० स्त्री० दे० 'गामिनी' ।

गामिनी-वि० स्त्री० [सं० गर्भिणी, पा० गर्भिका] जिसके पेट में बच्चा हो । गर्भिणी । (इस शब्द का प्रयोग चौपायों के लिये अधिक होता है, मनुष्य के लिये कम ।)

गाम-संज्ञा पुं० [सं० आम, पा० गाम] गाँव ।

गामचा-संज्ञा पुं० [फ्रा०] घोड़े के पैर का वह भाग जो सुम और टखने के बीच में होता है । यह चार श्रृंगुल के लगभग होता है ।

गामत-संज्ञा स्त्री० [सं० गमन] विकास । (जहाज़)

मुहा०—गामत होना = पानी का टपकना ।

गामिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो २६ हाथ लंबी, १२ हाथ चौड़ी और १ हाथ ऊँची होती और समुद्रों में चलती थी । ऐसी नाव पर यात्रा करना अशुभ और दुःखदायी समझा जाता था ।

गामी-वि० [सं० गामिन्] [स्त्री० गमिनी] (१) चलनेवाला । चालवाला । जैसे, गमगामिनी, हंसगामी, रथगामी । उ०—फटिन भूमि कोमल पदगामी । कौन हेतु बन विचारहु स्वामी—तुलसी । (२) गमन करनेवाला । संभोग करनेवाला । रमय करनेवाला । जैसे, पर-स्त्री-गामी, बेरया-गामी, इत्यादि ।

गामुक-वि० [सं०] जानेवाला ।

गार्थिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय पर कोई स्थान जिस का उल्लेख महाभारत के उद्योग पर्व में है ।

गाय-संज्ञा स्त्री० [सं० गे] (१) सींगवाला एक, मादा चौपाया जिसके नर को साँड़ या बैल कहते हैं । गाय बहुत प्राचीन-काल से दूध के लिये पाली जाती है । भारतवासियों को यह अत्यंत प्रिय और उपयोगी है । इसके दूध और घी से अनेक प्रकार की खाने की चीज़ें बनाई जाती हैं । गाय बहुत सीधी होती है, यथा भी उसके पास जाय तो नहीं बोलती ।

मुहा०—गाय की तरह कर्पना = (१) बहुत डरना । घर घर कर्पना । चर्पना । गाय का बछिया तले और बछिया का गाय तले करना = हेरी फेरी करना । इधर उधर करना । (२) काम निरालाने के लिये कुछ का कुछ प्रकट करना ।

(२) बहुत सीधा सादा मनुष्य । दीन मनुष्य । उ०—वह बेचारा तो गाय है किसी से नहीं बोलता ।

गायक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गायकी] गानेवाला । गवैया ।

गायकघाट-संज्ञा पुं० [मराठी] बरौदा के महाराजाओं की रपाधि ।

गायपोट-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाय + गोट] गायों के रहने का बाड़ा । गोशाला ।

गायत-वि० [ष०] बहुत अधिक । इद से ज्यादा । अत्यंत । उ०—वह गायत दूरने का पाजी है ।

गायताल-संज्ञा पुं० [हिं० गाय + ताल] (१) बैलों में निहट्ट । निकम्मा चौपाया । (२) निकम्मी और रदी चीज़ । गढ़ गुजरी चीज़ ।

वि० निकम्मा । रदी ।

गौ०—गायताल खाता वा गौतल खाता = बट्टा खाता । गढ़ बीता रकम का लेला ।

मुहा०—गायताल लिखना = बट्टे खाते डालना । गया गुजरा समझना । उ०—टूटे मखि माले निगुण गायताल लिखै पैथिन ही श्रंक मन कलह विचारही—गुमान । गायताल खाते लिखना वा ढालना = बट्टे खाते में डालना । गया गुजरा समझना । गायताल खाते में जाना = बट्टे खाते में जाना । हज़म होना । हृष्ट होना । गया गुजरा होना । उ०—इतना रूपया जो हमने तुम्हें दिया सब गायताल खाते में गया ।

गायत्र-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गायत्री] गायत्री छंद ।

गायत्रो-संज्ञा पुं० [सं० गायत्रिन्] (१) मंत्र का पेड़ । (२) उद्गाराता ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वैदिक छंद का नाम । यह छंद तीन चारों का होता है और प्रत्येक चरण में आठ आठ अक्षर होते हैं । आर्षी, दैवी, ब्राह्मरी, प्राजापत्या, याजुषी, साप्ती, आर्ची और ब्राह्मी, इसके आठ भेद हैं जिनमें क्रमः २४, १, १२, ८, ६, १२, १८ और ३६ वर्ण होते हैं । प्रत्येक भेद के पिपीलिका, मध्या, यवमध्या, निपृच, भूरिच, विराट और स्वराट आदि अनेक भेद होते हैं । (२) एक पवित्र मंत्र का नाम जिसे सावित्री भी कहते हैं । हिंदू धर्म में यह मंत्र बड़े महत्त्व का माना जाता है । द्विजों में यज्ञोपवीत के समय वेदार्थ संस्कार करते हुए आचार्य्य इस मंत्र का उपदेश ब्राह्मणों को करता है । इस मंत्र का देवता सविता और अग्नि विश्वामित्र हैं । मनु का कथन है कि प्रजापति ने प्रकार, उकार और मकार वर्णों, भूः, भुवः और स्वः तीन ब्याहृतियों तथा सावित्री मंत्र के तीनों पादों को ऋक्, यजुः और सामवेद से यथाक्रम निकाला है । इस सावित्री मंत्र के निम्न निम्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न अर्थ किए हैं और ब्राह्मणों, उपनिषदों से लेकर पुराणों और तंत्रों तक में इसके महत्त्व का वर्णन है । सावित्री मंत्र यह है—तसवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । (३) खर । (४) दुर्गा । (५) गंगा । (६) छ अक्षरों की एक वर्णवृत्ति । तनुमध्या, शशिवदना आदि इसके अनेक भेद हैं ।

गायन-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गायनी] (१) गानेवाला । गवैया । गायक । (२) गाने का व्यवसाय करनेवाला । (मनु ने गायन के अन्न भक्षण का निषेध किया है ।)

(३) गान। गाना। (५) क्रांतिचक्र।

गायन-वि० [५०] तुल। श्रंतर्धान। लापता।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

धा०—गायब गुला = ऐसा लुप्त कि फिर पता न लगे।

मुहा०—गायब करना = चुप लेना। उडा लेना। उ०—यह देखते ही देखते चीन्हा गायब कर लेता है। गायब होना = चोरी जाना।

सहा पु० [५०] शतरंज खेलने का एक प्रकार जिसमें खेलनेवाले शतरंज के बिसात से परोख में बैठ कर खेलते हैं। इस खेल में बिसात या तो किसी कोठरी में अथवा अन्यत्र धाड़ में बिछा रहता है अथवा खेलाड़ी बिसात की ओर पीठ करके बैठते हैं और दूसरे धाड़मी उनके आशानुसार मुहरों को चलाते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

गायबाना—क्रि० श्र० [५०] (१) गुप्त रीति से। (२) पीठ पीछे। धनुषस्थिति में।

गायबगला—संज्ञा पुं० [हि० गय+गला] एक प्रकार का बगला जो धान के खेतों में होता है। यह पशुओं के कुँड के साथ रहता है और उनके कीड़ों को खाता है। इसे सुरलिया बगला भी कहते हैं।

गायबौत—संज्ञा पुं० [सं० गौरीचन] गौरीचन।

गायिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गानेवाली स्त्री। (२) एक मासिक छुँद जिसके पारों में क्रमशः १२ + १२ + १२ + २० मास्य हैं होती हैं और प्रत्येक चरण के अंत में गुरु तथा वीर्य वीर्य मात्राओं के पीछे एक जगह होता है। वीर्य मात्राओं के पीछे यदि चार लघु आ जाय तो भी दोष नहीं माना जाता है। उ०—आदी बार मत्ता दूँ मैं ना सजाय मोद लहें। तीनों मानू कीर्ति वीर्य वीर्ये तु गायिनी मुकति करे।

गारा—संज्ञा स्त्री० [हि० गरी] गाली। उ०—बिन औरत न मुहाय तन चंद्रन कीपै गार। औरत की नीकी लगी मीता सी सी गार।—रसनिधि।

संज्ञा पुं० [५०] (१) गहरा गड्ढा। (२) गुफा। कंदरा।

गारत-वि० [५०] नष्ट। बरबाद। मट्टियामेट। अस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गारद—संज्ञा स्त्री० [५० गड] (१) सिपाहियों का कुँड जो एक अस्त्र के मादहत हो। (२) सिपाहियों का कुँड जो किसी व्यक्ति वा वस्तु की रक्षा के लिये अथवा किसी अस्त्रांगी को भागने से रोकने के लिये नियत हो। पहार। चौकी। उ०—जय कोपरा हुया तप हम लोगो की निगारानी के लिये जो गारद थी यह बखल कर दी गई।—दिनेदी।

मुहा०—गारद बैठना = पहर बैठना। हित्ताजत वा निगारानी के

लिये सिपाही नियत होना। गारद बैठना = पहर बैठना। चौकी बैठना। हित्ताजत वा निगारानी के लिये सिपाही नियत करना। गारद में करना = पहर में करना। हवाजात में बद करना। हज्ज में करना। गारद में खालना वा छोड़ना = हवाजात देना। हाज्ज में करना। पहर में करना। गारद में देना = हवाजात में बंद करना। गारद में रखना = पहर में रखना। हवाजात में रखना। नज्मयंद रखना।

गारना—क्रि० सं० [सं० गारत = निचोड़ना] (१) निचोड़ना। दया कर पानी वा रस निकालना। उ०—गीले कपड़े उसने देह से उतारे, उनको भली भांति गारा, देह को पोंछा, पीछे उन्हीं कपड़ों को पहन लिया।—अयोध्या। (२) पानी के साथ घिसना जिसमें उसका अंश पानी में मिले। जैसे, चंदन गारना। उ०—बिन औरत न मुहाय तन, चंद्रन कीपै गार। औरत की नीकी लगी मीता सी सी गार।—रसनिधि।

३ (३) निकालना। त्यागना। दूर करना। उ०—मार दई परबिंदन की तरु मानत नाहिं न औरगन गारे। गारी दई षडितानि भरी अथ लाज गारो कछु नंददुलारे।

५—क्रि० सं० [सं० गार] (१) गलाना। घुलाना।

मुहा०—तन वा शरीर गारना = शरीर गलाना। शरीर को फट देना। तप करना। उ०—अज सुखतिन मन हरयो कन्हारई। रास रंग रस मन रुचि आत्यो निति मन नारि जुलाई। तप तन गरि बहुत अत कीन्हों सो फल परन दैन। वेनुनाद रस विवस कराई सुनि धुनि कीवो गौन।—सूर।

(२) नष्ट करना। खाना। बरबाद करना। उ०—आछो और अकारय गारयो। करी न भकि इषामसुं दर सो जन्म जुआ ज्यो हारयो।—सूर।

गारमेली—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का जंगली फलसा जो उत्तर और पूर्व भारत तथा हिमालय की तराई में चार हजार फीट की उँचाई तक होता है। इसका पेड़ बहुत छोटा होता है और इसकी छाल सूर हरे रंग की होती है। इसकी छालियों के रेशे से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। यह कातिक अगहन में फूलता और पून से मैसाल तक फलता है। फल देशदितियों के खाने के काम आता है।

गारा—संज्ञा पुं० [हि० गारना] मिट्टी अथवा सूना सुर्खी आदि को पानी में साज कर बनाया हुआ लसदार लेप जिस से ईंटों की जोड़ाई होती है।

धा०—चूने गारे का काम = पल्लार वा काम। गच का काम।

सहा पुं० [?] एक संछीपै जाति का राग जो दोपहर को गाया जाता है।

संज्ञा पुं० [दे०] यह नीची भूमि जिसमें पानी बहुत दिन न टिके।

गारा कान्दुडा-संज्ञा० पुं० [दे०] एक संश्लेष जाति का राग जो संध्या के उपरंत गाया जाता है ।

गारी-संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] (१) गाली । हुचंचन । उ०— गारी गारी विनु नहिं बोले पूत करे कलकानी । घर में आदर कादर कोसों स्वीकृत देन विहानी ।—सूर (२) कलक-जनक श्रावणे ।

मुष्टा०—गारी धाना, पड़ना, लगना = कलक लगना । ङांछन लगना । दाग लगना । धनानी होना । उ०—लोचन लास्य भारी । इनके लए साज या तन की सर्व श्याम सो हारी । बरजत मात पिता पति वीधय श्रु धावै कुल गारी । तदपि रहत न नंदनैदन विनु कठिन प्रकृति हट धारी ।—सूर । गारी लाना = कलकित करना । दाग लगाना ।

(१) एक गीत जो विवाह आदि में स्त्रियां भोजन के समय गाती हैं । उ०—(क) नारीचंद्र सुजेवैत जानी । लागी देन गारि स्तुधानी ।—तुलसी । (ख) जे वत देहिं मधुर धुनि गारी । लै लै नाम पुरुष अरु नारी ।—तुलसी ।

फि० प्र०—देना ।—गाना ।

विशेष—दे० “गाली” ।

गारुड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिस मंत्र का देवता गरुड हो । साँप के विष उतारने का मंत्र । उ०—आवति लहरि मदन विरहा की को हरि वेगि हँकारे । सूरदास गिरिधर जो आश्रयै हम तिर गारुड धारे ।—सूर । (२) सेना की एक ब्यूह रचना जिस में सेना गरुड के आकार की बनाते हैं । (३) भरकत मण्डि । पत्ता । (४) सुवर्ण । सेना । (५) एक अन्न का नाम । (६) एक पुराण । गरुड पुराण ।

वि० (१) गरुड संबंधी । गरुड का ।

गारुडि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आठ प्रकार के तालों में से एक । (संगीत) । (२) गरुड ।

गारुडिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप का विष भाड़नेवाला । गारुडी । (२) मंत्र से साँप पकड़नेवाला । सैंपेरा ।

गारुडी-संज्ञा पुं० [सं० गारुडि] मंत्र से साँप के विष को उतारनेवाला । साँप भाड़नेवाला । उ०—(क) चले तव गारुडी पछिताइ । नेकहू नहिं मंत्र लागत समुनि काहु न जाइ ।—सूर । (ख) इसी री मारै श्याम भुंशगम करे । पित-वनि फिरि सुसुकानि महा विष लागत ज्यों शर धारे । तंत्र न फुरै मंत्र नहिं लागै चले गुणी-गथा हारे । प्रेम प्रीति की प्यथा तस तनु से मोहिं धारत मारे । आनहु वेगि गारुडी मोविं दे जो यहि विपहि उत्तारै ।—सूर । (ग) तव स्वरूप गारुडि रघुनायक । मोहिं मिश्रायेहु जन-सुखदायक ।—तुलसी ।

गारुमत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भरकत । पत्ता । (२) गरुड जी का अन्न ।

गारो-संज्ञा पुं० [सं० गर्व] (१) गर्व । धर्मद । घर्हकार । श्रमि-मान । उ०—(क) जेहि घर फंता ते सुधी, तेहि गारो तेहि गर्व ।—जायसी । (ख) सीतापति संवक तेहि देखन के आशो । काके यल रैतैं जे राम ते दयापो ।—..... देखत कपि वाहु दंड तन प्रस्वेद छूटे । जे रघुनाथ नाय कह बंध छूटे । देखत बल दूरि करयो मेरनाद गारो । श्रायुनि भयो सङ्घचि सूर बंधन ते न्यारो ।—सूर । (ग) मुनि खग कहत श्रेय श्रींगी रहि समुनि प्रेम पय न्यारो । गप ते प्रभु पहुँचाइ फिरे पुनि करत काम गुन गारो ।—तुलसी । (२) मान । प्रतिष्ठा । उ०—कान्ह बलि जावै देवी शारि न कीजै । जोह जोह भावै सोह सोह लीजै । जो मेरे लाल रिखावै । सो श्रपना किया फल पावै । तेहि देहो, देश निकारो । ताको प्रज नाहिन गारो ।—सूर । संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक पहाड़ी का नाम जो आसाम के दक्षिण पश्चिम में है । (२) एक जंगली जाति जो गारो पहाड़ में रहती है ।

गार्गी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गर्ग गोत्र में उत्पन्न एक प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी स्त्री । इसकी कथा बृहदारण्यक उपनिषद् में है । (२) दुर्गा । (३) याज्ञवल्क्य ऋषि की एक स्त्री का नाम ।

गार्य-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गार्गी] (१) गर्ग गोत्र में उत्पन्न पुरुष । (२) एक प्राचीन वैशाखण्ड जिसके मत का उल्लेख आर्य और पाणिनि ने किया है । निरुक्त टीकाकार दुर्गासिंह के अनुसार सामवेद के पदपाठ की रचना इन्हीं ने की थी । इनकी बनाई एक स्मृति भी है ।

गार्ड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्षक । पहरा देनेवाला मनुष्य । या०—घाड़ी-गार्ड ।

(२) रेल का वह प्रधान उत्तरदाता कर्मचारी जो ट्रेन की रफा के लिये पीछे प्रेक में रहा करता है । इसके आशानुसार इंजन का द्वाड़वर गाड़ी रोकता और चलाता है । (३) निरी-एक । निगरानी रखनेवाला मनुष्य । जैसे, इतिहास का गार्ड ।

गार्डेन-संज्ञा पुं० [सं०] बाग । धगीचा ।

या०—कंपनी-गार्डेन । गार्डेन-पार्टी ।

गार्डेन-पार्टी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भोज जो नगर के बाहर किसी बाग धगीचे में दिया जाय ।

गार्हपत्याग्नि-संज्ञा स्त्री० [सं०] छः प्रकार की अग्निमें से पहली और प्रधान अग्नि । यज्ञों में पात्रतन आदि कर्म इसी अग्नि में किए जाते थे । श्रौतसूत्र के अनुसार अग्निहोत्र ग्रहण करनेवाले के लिये इस अग्नि का रखना श्रव्यतावश्यक है । साधारण भोजन पकाने से लेकर संस्कार तक सभी कृत्य इसी अग्नि में किए जाते हैं । प्रत्येक गृहस्थ को, शास्त्रानुसार इस अग्नि की रक्षा करनी चाहिए ।

गार्हमेध-संज्ञा पुं० [सं०] पंचवल् आदि गृहस्थों के कर्तव्य कर्म ।
गार्हस्थ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गृहस्थाश्रम । (२) गृहस्थ के मुख्य कृत्य । पंचमहायज्ञ ।

गाल-संज्ञा पुं० [सं० गड, गड] (१) मुँह के दोनों ओर टुण्डरी और कनपटी के बीच का कोमल भाग जो शरीरों के नीचे होता है । गड । कपोल । उ०—साज गुलाल-सा लीनी सुदी भरि दास के गाल की ओर चलवाई ।—देव ।

मुहा०—गाल फुलाना = (१) गर्वपूर्वक श्राद्धति बनाना । अभिमान प्रकट करना । उ०—सा मलु मलु न खाव हम भाई । बचन कहहिं सव गाल फुलाई ।—तुलसी । (२) रुठ कर न थालना । रुठना । रिगाना । उ०—देवत एक सँग न रोइ सुझालू । हँसव छाड़ि फुलाउव गाल ।—तुलसी । गाल बजाना = (१) डींग मारना । बड़ बड़ कर बात करना । उ०—(क) बूधा मरहु जनि गाल बजाई । मनमोदकन कि भूल सुकाई ?—तुलसी । (ख) यलवान-है स्थान गली धरणी तोहि खाज न गाल बजावत सँहै ।—तुलसी । (२) व्यर्थ बकवाद करना । मिथ्या प्रस्ताव करना । उ०—कबीर क्याहिं फेरि के श्रवण भई दिनार । बँठी भ्रापु धरतीत छै कियो भक्त भतार । कबीर बँठी शेष हूँ बिना रूप की राई । गाल बजावै नेति कहि कियो भतारहि भाँद ।—कबीर । गाल में जाना = मुँह में पड़ना । काल के गाल में जाना = मृत्यु के मुख में पड़ना । मरना । गाल में भरना = खाने के लिये मुँह में रखना । गाल मारना = (१) डींग खाना । बड़ बड़ कर बात करना । पीटना । उ०—मूढ़ बूधा जनि मारनि गाला । राम बँर होइई अस हाल ।—तुलसी । (२) व्यर्थ बकवाद करना । वदप्रशाना । मिथ्या जल्पना । उ०—क्यों न माँई गाल बँठा काल बाढ़न बीच ।—तुलसी ।

(२) मुँह नोरी । बड़बड़ाने का स्वभाव । बकवाद करने की लत । उ०—हँस कह रानि गाल बड़ तोरे । दीन्ह लखन सिव अस मन मोरे ।—तुलसी ।

मुहा०—गाल करना = (१) शत्रुओं में शंका संकोच न करना । मुँहजोष करना । मुँह से श्रंखंड निष्पादन । उ०—कत सिप देह हमहिं बँठा भाई । गातु करय केहि कर बल पाई ।—तुलसी । (२) बड़ बड़ कर बात करना । डींग मारना । उ०—गोकुल बँठा कुल देवता श्रीगिरिधर लाल ।.....
... बँगि कयो मीरा कछो पकवान रमाल । वह मयका बलि लेतु है नित करि बरि गात । गिरि गोबहूँन पूजिये जीवन गोपाल । जाके दीन्हे बाढ़री रँवा गख जाल ।—मूर ।

(३) मथ । बीच । उ०—ये पर्वत के गाल में बजते दीखते हैं ।—वायुपागार । (४) बड़ बड़ जो एक धार मुँह में डाला जाय । फंका । प्राप्त । उ०—एक गाल मार खेँ तो चले ।

मुहा०—गाल मारना = भात मुख में रखना । कौर मुँह में डालना ।

(४) बड़ मुट्ठी भर शय जो चकी में पीसने के लिये एक बार डाला जाता है । मँक । (६) मुँह । जैसे, काल के गाल में जाना ।

संज्ञा पु० [दे०] जाना । तमाकू की एक जाति ।

गालगुल*—संज्ञा पुं० [हिं० गाल + गुल०] व्यर्थ बात । गपशप । शनाप शनाप । श्रद्धयंढ बात । उ०—हरहि जनि जन्म जाय गालगुल गपत । कर्मकाल गुन सुभाव सबके नीस तपत ।—तुलसी ।

गालवेद-संज्ञा पुं० [हिं० गाल + वेद] एक प्रकार का पंधन जिसमें चमड़े के तस्से को किसी काँटी में फँसा कर श्रैटकते हैं । (जदाड़ी) ।

कि० प्र०—बाँधना ।

गालमसूरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक पक्षवान या मिठाई । उ०—शर सँसहि गालमसूरी । जेहि खाति सुख मुलु दूरी ।—मूर ।

गालव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम । महाभारत के धनुसाय वे विश्वामित्रजी के श्रुतेवासी थे । विद्या समाप्त कर समावर्तन के समय इन्होंने अपने गुरु विश्वामित्रजी से यषोष्ठ दक्षिणा माँगने के लिये धनुरोप किया । विश्वामित्रजी ने इनके हठ से चिढ़ कर श्राट सौ श्यामकण्य घोड़े माँगे । गालवजी ने राजा यषाति के पास जाकर उनसे श्राट सौ श्यामकण्य घोड़ों के लिये याचना की पर यषाति को यहाँ भी श्राट सौ श्यामकण्य घोड़े नहीं थे शतः यषाति ने उन्हें अपनी कन्या जिसका नाम माधवी या देकर कहा "गालवजी श्राप रूल कन्या को ले जाइये और जो दो सौ श्यामकण्य घोड़े दें उसे इससे एक पुत्र उत्पन्न कर लेंगे दीजिये । इत प्रकार श्राप श्राट सौ घोड़े लेकर अपने गुरु को गुरु दक्षिणा दे दीजिये ।" गालवजी माधवी को लेकर हृष्यंश राजा के पास गए और हृष्यंश ने दो सौ श्यामकण्य घोड़े देकर उनसे एक संतान उत्पन्न किया । इन्हीं तरह वे उसे द्विवेदास और उशीरर के पास से गप और उन लोगों ने भी दो दो सौ घोड़े देकर एक एक पुत्र उत्पन्न किया । शय गालवजी को कोई राजा ऐसा न मिला जो उन्हें शेष दो सौ घोड़े देकर माधवी से एक और पुत्र उत्पन्न करे । अंत को गालवजी छ सौ घोड़े और माधवी को लेकर विश्वामित्र जी के आश्रम पर लौट आये और उन्होंने उनसे सब हाल कहा । विश्वामित्रजी ने उन छ सौ घोड़ों को ले लिया और उस कन्या से एक पुत्र उत्पन्न कर गालवजी को गुरु दक्षिणा के श्रेय से मुक्त किया । इतिव्यं में इन्हें विश्वामित्रजी का पुत्र लिखा है । (२) एक प्रसिद्ध वैद्याकरण्य जिन का मत पाणिनिजी ने अष्टाध्यायी में उद्धृत किया है । (३) लोप का वेद । (४) तँदू का वेद । (४) एक ऋषिद्वार ।

गालवि-संज्ञा पुं० [सं०] गालव के पुत्र प्रासंगवत् । इन्होंने कृषि-
गर्ग की एक वृद्धा कन्या से विवाह किया था ।

गाला-संज्ञा पुं० [हिं० गाल = मास] (१) धुनी हुई रुई का गोला
जो चरले में कातने के लिये धनाया जाता है । पत्ती । (२)
यह रुई जो कपास के बोहे के पटने पर उसमें से निकलती
है । (पंजाय) ।

मुहा०—रुई का गाला = बहुत उज्वल । सफ़ेद । धैर्य ।

गाला सा = बहुत उजला । सफ़ेद । धैर्य ।

संज्ञा पुं० † [हिं० गाल] (१) बड़बड़ाने की छत । थंड थंड
बकने का स्वभाव । मुहजोरी । कल्ले दराड़ी । † (२) मास ।

कीर ।

गालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा ।

गालिवि-वि० [अ०] विजयी । जीतनेवाला । यद् जानेवाला ।

श्रेष्ठ । उ०—गुल पर गालिवि कमल है कमलन पै सुगुलाव ।

—पञ्चाकर ।

मुहा०—किसी पर गालिवि थाना = जीतना । यद् जाना ।

गालिम-वि० [अ० गालिवि] प्रबल । दृढ़ । प्रबंड । यलवान ।

विजयी । उ०—गौरि की प्रसो है गजराज गोड़ गोळो म्राह

गालिम गंभीर नीर चाह्यो सो तिरायो है ।—रघुराज ।

गाली-संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] (१) दुर्वचन । निंदा वा कलंकसूचक
वाक्य । छूहड़ धान ।

धै०—गाली गलौज । गाली गुफ़ा ।

क्रि० प्र०—देना ।—बकना ।—सुनना ।

मुहा०—गाली खाना = दुर्वचन सुनना । गाली सहना । गाली

देना = दुर्वचन कहना । गालियों पर उतरना = गालियों देने

लगाना । गालियां बकने पर उतार देना । गालियों पर सुँह

खोलना = गाली बकना आरंभ करना ।

(२) कलंकसूचक आरोप । उ०—पैसा मत कहाँ, छुई की

गाली पड़ती है ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।—लगना ।

गाली गलौज-संज्ञा स्त्री० [हिं० गली + अ० गलौज] परस्पर गालि-

प्रदान । तू तू में मैं । दुर्वचन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गाली मुफ़ता-संज्ञा स्त्री० [हिं० गली + फा० मुफ़ता = कहना]

(१) परस्पर गाली प्रदान । तू तू में मैं । गालियों की लड़ाई ।

(२) गाली । दुर्वचन ।

क्रि० प्र०—करना ।—बकना ।—होना ।—देना ।

गालना, गालना, गाली-क्रि० अ० [सं० गाल = बत] धातु करना ।

बोलना । उ०—अरपहरे अरस मैं, ऊभोई आहै । दादू पसे

तिनके आला गालहाये ।—दादू ।

गालोडर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमलगट्टा । (२) एक प्रकार का

अनाज ।

गाय-संज्ञा पुं० [सं० गौ । फा० गाय = गाय] गाय । बँस ।

धै०—गायकुरी । गायजयान । गायदुम । गावतकिया । गाव-
खाना । गावपछाड़ । नीलगाय ।

गायकुरी-संज्ञा स्त्री० [फा०] गोघात । गोघप ।

गायकुस-संज्ञा पुं० [सं० मीवा = गश + कुप = फाल] लगाम । (हिं०)

गावकोदान-संज्ञा पुं० [फा०] वह घोड़ा जिसकी पीठ पर बैल
की तरह बूढ़ निकला हो । (पैसा घोड़ा देयी माना
जाता है) ।

गावखाना-संज्ञा पुं० [फा०] गोशाला । खरक । घारी ।

गावबुर्द-वि० [फा०] (१) गुम । हड़प । गायब । लापता । (२)
नष्ट भ्रष्ट । बरबाद ।

मुहा०—गावबुर्द होना = (१) बरबाद जाना । नष्ट भ्रष्ट हो
जाना । बौपट होना । (२) गायब होना । लापता होना । उठ
जाना । उ०—देखते देखते किताब यहाँ से गावबुर्द हो गई ।

गावजवान-संज्ञा स्त्री० [फा०] एक वृद्धि जो फारस देश के
गीलान प्रदेश में होती है । इसकी पत्तियाँ मोटी, खुदरी और
हरे रंग की होती हैं जिन पर बैल की जीभ की तरह छोटे
छोटे सफ़ेद रंग के उभड़े हुए दाँने होते हैं । इसके फूल लाल
रंग के छोटे छोटे होते हैं । यह पत्ती हकीमी की दवा में काम
आती है । प्रकृति इसकी मातृदिल होती है और यह ज्वर,
खाँसी आदि में दी जाती है । मख़्तुनुब्रदविया में लिखा है
कि इस देश में इसे संलाहुली कहते हैं और यह पटने के
पास होती है । पर संलाहुली की पत्ती गावजवान की पत्ती
से नहीं मिलती ।

गावजोरी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) बलप्रदर्शन । सब से लड़ने की
इच्छा । (२) हाथपाई । भिड़ंत ।

गावड-संज्ञा स्त्री० [सं० मीवा] गला । गर्दन । [हिं०]
क्रि० प्र०—करना ।

गावतकिया-संज्ञा पुं० [फा०] बड़ा तकिया जिससे कमर लगा
कर लोग पुरां पर बैठते हैं । मसनद ।

गावदी-वि० [हिं० गाय + सं० धी] श्वेोध । नाससम्भ ।
श्वेकूप । छूड़मज्ज । कुडित बुद्धि का । जड़ ।

गावदुम-वि० [फा०] (१) जो उपर में बैल की पूँछ की तरह
पतला होता आया हो । जिसका घेरा एक और मोटा और दूसरी
ओर बराबर पतला होता गया हो । (२) चढ़ाय-बतार । बालुर्वा ।

गावदुमा-वि० दे० "गावदुम" ।

गावपछाड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाव = गरदन + पछाड़] ऊखती का
एक दाँव जिसमें प्रतिद्वंदी की गर्दन को पकड़ कर पटकते हैं ।

गावल-संज्ञा पुं० [हिं० गौ = पात] दूहाल ।

गावल्लाहि-संज्ञा पुं० [सं०] संशय का नाम जो एतराह का भंजी
और सारथी था ।

गावली-संज्ञा स्त्री० [हिं० गौ = गाव] दूहाली । (दूहाल) ।

गावसुम्मा-संज्ञा पुं० [हिं० गाय + सुम = सुर] यह घोड़ा जिसका

सुम वा धुर भटा है। (इस प्रकार के घोड़े को रखना लोग शब्दा नहीं समझते।)

गार्गी—संगा शी० [?] ऊपर का पाल। (जहाजी) इसके कई भेद हैं। धराले को तिक्केट, विचने को यड़ा और पिछले को किलमी कहते हैं। इसके ऊपर का पाल खायर, उससे ऊपर का ताथार और ताथार के ऊपर का सवाई कहलाता है।

गासु—संगा पुं० [सं० ग्रास] संकट। दुःख। आपत्ति। उ०—यन यन फिरत आपन धेनु। श्याम ह्यपर संग है बहु गोप बाबाक संनु। निदरि चले गोपाल प्रागे यकासुर के पास। सखा मय मिलि कहन लागे तुमहि जय की प्राप्त। अजकुं नाहि ब्रह्मात मोहन यचे किनने गास। तय कइयो इरि चतुनु सन मिलि गरि करहु विनाम।—सूर।

गासिया—संगा पुं० [अ० गार्गिया] जिनपेसा। ग०—पग में पुरट पैनन परे हँकल सुहरन के जड़े। चामर सड़ाके अति प्रभा के गासिया मलमल मड़े।—सुरदास।

गाह—संगा पुं० [सं०] (१) गहन। दुर्गम। (२) श्रवणाहन करनेवाला मनुष्य।

संगा पुं० [सं० ग्राह] (१) ग्राहक। ग्राहक। उ०—लल श्रय अगुन साधु गुन गाहा। उभय शपार उदधि श्रयगाहा।— तुलसी। (२) पकड़। घात। शी। उ०—ताप सेरं पाय को नेउर टारि विचारि रची लखि वे किणे गाहैं।—सेनी। (३) ग्राह। मगर।

गाहक—संगा पुं० [सं०] श्रवणाह करनेवाला।

संगा पुं० [सं० ग्राहक, प्रा० गहक] (१) लेनेवाला। स्वीदनेवाला। स्वीदर। मोल लेनेवाला। उ०—(क) धन्य नर मारि जे निहारि विनु गाहक हूँ धारने आपने सन मोल विनु बीके हैं।—तुलसी। (ख) कर लै रूचि सराहि कै सदै ररे गहि सीत। गयी श्रंघ ! गुलाब को गवैंडै ग्राहक कँन ?।—विहारी।

मुहा०—जी वा प्राय का ग्राहक = प्राय लेनेवाला। मार डालने की ताक में रहनेवाला।

(२) कुर करनेवाला। चाहनेवाला। डूँढ़नेवाला। हस्तुक। भमिलानी। प्रेमी। उ०—(क) उदघ चलो निदुर के जाहपु। हुयोपन के कँन काज जहैं शायर भाव न पाहपु। गुन सी तीन लोक के ठाहर तुम से कहा दुराहपु। हम तो प्रेम प्रीति के ग्राहक मासी साग चलाहपु।—सूर। (ख) हो मन राम नाम को ग्राहक। चैतासी लख त्रिया जेनि में भटकत फिरत अनाहक।—तुलसी। (ग) गुन ना हेरानो गुन ग्राहक हेरानो है।

गाहकी—संगा शी० [हिं० ग्राहक] (१) बिष्टी। (२) ग्राहक।

मुहा०—गाहकी पटना = तैरा पटना।

गाहकतारि—संगा शी० [सं० ग्राहक] कुरदानी। चाह। उ०—

कह कपि तव गुन गाहकतारि। सत्य एवन सुत मोहि सुनाई।—तुलसी।

गाहन—संगा पुं० [सं०] [वि० गहित] गोता लगाने की क्रिया। विलाइन। खान।

गाहना—कि० सं० [सं० श्रवणाहन] (१) हृद कर बाह लेना। श्रवणाहन करना। (२) मथना। विलाइन। हलचल डालना। बुझ करना। उ०—यजराज तिनके घोर तौ यजराज के परताप। जिन साह के दल गाहि के नित्र साहिबी करि थाप।—सूर। (३) धान आदि के डंठल को दाँते समय एक ढंटे से उठा उठा कर गिराना जिसमें दाना नीचे गड़ जाय। ओहना। उ०—कहौ मुहरी लागत काहे। केटिक यतन कहौ जो ऊयो नाहि बड़किहैं गाहे। गाहे को अपने जी मेरी पू सत ले मन चाहे। यह ध्रम तो अचही मिटि जैंदैं ज्यों पवार के गाहे। कारी के लोगन लै सिखयो जो समुभे या माहे। सूर श्याम विहरत प्रज भीतर जीजत है मुस चाहे।—सूर। (४) जडाज के दरारों में सन चादि हूत कर भटना। कालपट्टी करना। (जदान)। (५) खेत में बू दूर जोताई करना।

गाही—संगा शी० [सं० गाया, प्रा० गधा] (१) कथा। यथो०। चरित्र। वृत्तंत। उ०—(क) करन चहौं रघुपति गुन गाहा। लघु मति भौर, चरित श्रवणाहा।—तुलसी। (ख) मगजहिं प्रात सतत उवाहा। कहे परस्पर हरि गुन गाहा।—तुलसी। (२) शार्थी छंद का एक नाम। इसके चारों पदों में क्रमशः १२, १८, १२, और १६ मात्राएँ होती हैं। दे० “शार्थी”। उ०—रामचंद्र पद पर्यं, इंद्राकर इंद्राभिवंदनीयं। केशव मति भूतनया, सोचने चंचरीकापते।

गाही—संगा शी० [हिं० गहना] फल आदि गिनने का एक मान जो पाँच पाँचका होता है। पाँच वस्तुओं का समूह।

मुहा०—गाही के गाही = बहुत अधिक।

गाहू—संगा शी० [हिं० गना] उपगीति छंद का नाम। दे० “उपगीति”।

गिंजाना—कि० अ० [हिं० गिजना का अ० रूप] गीजा जाना। किसी चीज (विशेषतः कपड़े) का हाथ लगाने या अधिक बलदे पुनरे जाने के कारण सिकुड़ जाना अथवा मैला या खराब हो जाना।

गिंजारी—संगा शी० [सं० गिजन = विपाक मांस] एक प्रकार का कीड़ा जो बरसात में पैदा होता है। यह लगभग दो छंगुज से चार छंगुज तक लंबा होता है। कनखरों की भाँति इसके भी बहुत से पैर होते हैं। एक ही स्थान पर इसके ढेर के ढेर पड़े मिलते हैं। कभी कभी कोई कीड़ा एक दूसरे की पीठ पर सवार भी देखा जाता है, इससे इसे पोड़लवार भी कहते हैं। यदि कोई पशु भोले से इसे खा जाय तो वह सुरत मर जाता

हे। ये कीड़े चर्मा के आरंभ में पैदा होते हैं और ऐसा कहा जाता है कि हथिया नक्षत्र के बरसने पर मर जाते हैं।
शालिन। चिनांगी। उ०—चित्रवेतु सुत गगन वै जनमा।
रानी सरुल गिंजाई धन मा। पग तर पीसि गईं मरि जोई।
विप दे बदला लीन्हेनि सोई।—विधाम।

संज्ञा छं० [हिं० गीजना] गींजने का भाव वा क्रिया।

गिंडनी—संज्ञा छं० [दे०] एक प्रकार का साग जिसकी पत्तियां दो दो श्रंगुल लंबी और चौं भर चौड़ी होती हैं। थंडल दरा होता है और उसकी गांठों पर सफेद सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं। फूल झड़ जाने पर छोटे छोटे बीज पड़ते हैं।

गिंडुरी—संज्ञा छं० दे० "हंडुरी"।

गिंदर—संज्ञा पुं० [दे०] एक फीड़ा जो फसल को बहुत हानि पहुँचाता है।

गिंदौरा, गिंदौरा—संज्ञा पुं० [हिं० गेर] बहुत मोटी रोटी के आकार में गला कर ढाली हुई चीनी। इसका व्यवहार प्रायः विवाह आदि शुभ कार्यों में विरादरी में बाँटने के लिये होता है। उ०—पेयाका जलेबी पेरा। गोदवाग तिनगी गिंदौरा।—सूर।

गिघाना—संज्ञा पुं० दे० "ज्ञान"।

गिड—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गला। गरदन। उ०—ध्रुव जो फाँद परा गिड, तव रोए का होय ?—जायसी।

गिचपिच—वि० [अनु०] जो साफ़ या क्रम से न हो। अस्पष्ट। एक में मिला जुला।

गिचपिचिया—संज्ञा छं० दे० "कचपचिया"।

गिचिर पिचिर—वि० दे० "गिचपिच"।

गिजई—संज्ञा पुं० [दे०] सलमे के काम का एक प्रकार का तार।

गिजगिजा—वि० [अनु०] (१) ऐसा गीला और सुलायम जो अच्छा न मालूम हो, जैसे, कच्ची मोटी रोटी दाँत के नीचे गिजगिजी लगती है। (२) जो छूने में मांसज मालूम हो। उ०—पैर के नीचे कुड़ गिजगिजा सा मालूम हुआ, देखा तो मरा साँप था।

गिजा—संज्ञा छं० [अ०] ओजन। खाद्य वस्तु। खोराक। यह जो खाया जाय।

गिटकिरी—संज्ञा छं० दे० "गिट्टी"।

संज्ञा छं० [अनु०] तान लेने में विशेष प्रकार से स्वर का फौपाज जो बहुत अच्छा समझा जाता है। (संगीत)।

किं प्र०—निकालना।—लेना।

गिटकीरी [हिं० गिट्टी] कंकड़ो। पत्थर या गेरू का गोल छोटा टुकड़ा।

गिटपिट—संज्ञा छं० [अनु०] निरर्थक शब्द।

मुहा०—गिटपिट करना = टूटी फूटी या साधारण खोजी भाषा बोलना।

गिट्टक—संज्ञा छं० [हिं० गिट्ट] (१) चिलम के नीचे रखने का कंकड़। घुगल।

संज्ञा पुं० [अनु०] गिटकिरी लेने में स्वर या तान का वह सय से छोटा भाग जो केवल एक कंप में निकलता है। दाना। (संगीत)।

गिट्टा—संज्ञा पुं० [सं० गिरिभ, हिं० गेरू + टा (प्रत्य०)] चिलम का कंकड़। कंकड़।

गिट्टी—संज्ञा छं० [हिं० गिट्ट] (१) गेरू का पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े जो प्रायः सड़क नीचे लुत्त आदि पर बिछा कर दूके जाते हैं। (२) मिट्टी के बरतन का टूटा हुआ छोटा टुकड़ा। (३) चिलम की गिट्टक। (४) बादले या तागे की लपेटी हुई रील। फिरकी।

गिट्टा—संज्ञा पुं० [दे०] जुलाहे का करवा। छट्टा।

गिट्टगा—संज्ञा पुं० दे० "गेट्टरा"।

गिट्टगिट्टाना—क्रि० प्र० [अनु०] आवश्यकता से अधिक चिन्तन और नष्ट हो कर कोई बात या प्रार्थना करना।

गिट्टगिट्टाहट—संज्ञा छं० [हिं० गिट्टगिट्टाना] (१) चिन्तनी। चिन्तरी। (२) गिट्टगिट्टाने का भाव।

गिट्टराज—संज्ञा पुं० [सं० भरराज] सूर्य। [हिं०]

गिट्टा—वि० [दे०] नाटा। टेंगना।

गिट्ट—पुं० संज्ञा [सं०] रथशालक देवता।

गिट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० गीत] एक प्रकार का चलता गीत जिसे कियौं गाती हैं। नकटा।

गिट्ट—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र] (१) एक प्रकार का बड़ा मांसाहारी पक्षी जिसकी छोटी दंड़ी कई जातियां होती हैं। सय से बड़ा गिट्ट प्रायः मीन फुट लंबा होता और प्रायः बकरियों, मुर्गियों तथा दूसरी पालतू चिट्टियों को उठा ले जाता है। यह पक्षी प्रायः भरे हुए जीवों का मांस खाता है इसी से कवियों ने रणस्थल में गिट्टों का रथ प्रायः दिखाया है। इसकी ऊँच बहुत तेज होती है और यह आकार में बहुत ऊँचा उड़ सकता है। इसके शरीर का रंग भटमैला होता है और पैरों में डँगलियों तक पर होते हैं। इसका किसी मनुष्य के शरीर पर बैठना या मरान पर बैठना बहुत अशुभ समझा जाता है। (२) एक प्रकार का दड़ा कनकैया या पतंग। (३) लुपत्य छुंदा का २२ वां भेद।

गिट्टराज—संज्ञा पुं० [हिं० गिट्ट + राज] जटापु।

गिनगिनाना—क्रि० प्र० [अनु० गन गन = कौपना] (१) अधिक बल लगाते समय शरीर का कौपना। उ०—वह पत्थर पकड़ कर धड़ों गिनगिनाता रहा पर पत्थर न हटा। (२) रोमांच होना। रोंगटे खड़े होना।

किं० सं० [हिं० गिनी, पितनी = चकर] पकड़ कर घुमाना

या चकर देना। मकभोरना। उ०—थिली ने चूहे को गिनगिना खाला।

गिनती—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिनना + ती (सत्व०)] (१) वस्तुओं को समूह से तथा एक दूसरे से अलग अलग करके उनकी संख्या निश्चित करने की क्रिया। गणना। शुमार। उ०—गिनती गनिये तें रहे छत हू अछुत समान।—विहारी।

क्रि० प्र०—करना।—गिनना।

मुद्दा०—गिनती में थाना या होना = किसी वस्तु में समझा जाना। कुछ समझा जाना। कुछ महत्व या समझा जाना। उ०—गिन भूपन जग जीति बांघि यम अपनी बाँह बसाये। तेर काल कलेक कीन्हें नू गिनती कय छाये।—तुलसी। गिनती करना = किसी वस्तु के संबंधित समझा जाना। उ०—बह विद्वाने में अपनी गिनती कराने के लिये मरा जाता है। गिनती गिनाने या कराने के लिये = नाम मात्र के लिये। कहने सुनने भर को। उ०—गिनती गिनाने के लिये ये भी घोड़ी देर आकर बैठ गए थे। गिनती होना = किसी महत्व या समझा जाना। कुछ समझा जाना। उ०—वहाँ बड़े बड़े गुना गहाँ तुम्हारी क्या गिनती है ?

(२) संख्या। तादाद। उ०—ये धाम गिनती में कितने होंगे ?

मुद्दा०—गिनती को = बहुत थोड़े। संख्या में बहुत कम। उ०—वहाँ गिनती के आदमी आए थे।

(३) हाज़िरी। उपस्थिति की जांच जो प्रायः नाम बोल बोल कर की जाती है। (सिपाही)

मुद्दा०—गिनती पर जाना = हाज़िरी देने या खिलाने जाना।

(४) एक से सो तक की संख्या। उ०—रलेट पर गिनती लिख कर दिलाये।

गिनना—क्रि० सं० [सं० गणन] (१) वस्तुओं को समूह से तथा एक दूसरे से अलग अलग करके उनकी संख्या निश्चित करना। गणना करना। शुमार करना।

संज्ञे० क्रि०—जाना।—खालना।—देना।—रखना।—लेना।

मुद्दा०—गिन गिन कर सुनाना या गालियाँ देना = बुरी से बुरी गालियाँ देना। बहुत अधिक गालियाँ देना। गिन गिन कर लगाना या मारना = खूँ मारना। खूँ पीटना। गिन गिन कर दिव रलना = बहुत धीरे धीरे और सावधानता से चटना। दिन गिनना = (१) आशा में समय निकलना। सुख की प्राप्ति य दुःख की निवृत्ति के अवसर की ऊँक ऊँक कर प्रतीक्षा करना। उ०—दिन औंधि के की की निर्गन समनी श्रीपरी के पोखर छाले परे।—जादु। (२) किसी प्रकार कालपौष करना।

(३) गणित करना। हिसाब लगाना। उ०—ज्योतिषी ने कुछ गिन गिना कर कह दिया है कि सुदृत्त अच्छा है। (४) कुछ

महत्त्व का समझना। मान करना। प्रतिष्ठा करना। कुछ समझना। स्फुटि में लगाना। उ०—यहाँ तुम्हारे ऐसे को गिनता कौन है ?

गिनयाना—क्रि० सं० दे० “गिनाना”।

गिनाना—क्रि० सं० [हिं० गिनना का प्रे०] गिनने या काम कराना।

गिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोने या सिका जिसका व्यवहार इंग्लैंड में सन् १९६३ में आरंभ हुआ था और सन् १८१३ से जिसका बनना बंद हो गया। यह २१ मिलिंग (लगभग १२॥) १० मूल्य का) की होती थी।

गिरीश—(क) यह सिका पहले पहल अफ्रीका महाद्वीप के गिनी नामक देश से आए हुए सोने से बनाया गया था, इसी से इसका यह नाम पड़ा। (ख) भारत में प्रायः लोग आज कल के प्रचलित पाउंड या सावरेन को ही भूल से गिनी कहा करते हैं।

गिनी-गघट, गिनी प्रांत—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लंबी घास जो अफ्रीका के गिनी नामक देश में होती है। यह अथ भारत में भी लगाई गई है और खूब होती है।

गिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिरी] चकर। घुमाने या चकर खिलाने की क्रिया।

मुद्दा०—गिरी खाना = चकर मारना। (पतंग के लिये प्रायः बोलते हैं)। गिरी खिलाना = चकर देना। संज्ञा स्त्री० दे० “गिरी”।

गिहन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बंदर जो सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों में होता है। इसके पूँछ और गालों की शक्ति नहीं होती। इसकी बाँहें बहुत लंबी होती हैं और खड़े होने पर प्रायः ज़मीन तक पहुँचती हैं। इसकी आकृति मनुष्य से बहुत मिलती जुलती होती है। किसी किसी जाति के गिहन घोड़ा बहुत गाते भी सुने गए हैं।

गिमटो—संज्ञा स्त्री० [सं० डिमटो] एक प्रकार का मजदूर सूती कपड़ा जिसकी बुनावट में वेल धरे देने होते हैं और जो प्रायः विद्युत के काम में आता है।

गिय०—संज्ञा पुं० दे० “गिड”

गियाह—संज्ञा पुं० [सं० ग्य] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—हांसल और, गियाह बलाने।—जायसी।

गिरंट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक रेशमी कपड़ा जो प्रायः मोट लगाने के काम में आता है। गारनट। (२) एक प्रकार की साधारण सूती मजलम जो बस्ती शिले में बनती है।

गिर—संज्ञा पुं० [सं० गिरे] (१) पहाड़। पर्वत। (२) संख्याओं के १० में से एक। (३) काठियावाड़ देश का भैंसा।

गिरई—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली जो हैरी मछली से छोटी होती है।

गिरगिट—संज्ञा पुं० [सं० कृकलास या गहनति] छिपकली की जाति का प्रायः एक श्लिष्ट लंबा एक जंतु जो सूर्य की किरणों की सहायता से अपने शरीर के अनेक रंग बदल सकता है। इस का चमड़ा सदा बहुत ठंडा रहता है और यह कीड़े मकोड़े खाता है। गिरगिटान। गिरदाना। ३०—गिरगिट छंद धरद हुष सेता। खन रन रात पीत खन सेता।—जायसी।

मुद्रा०—गिरगिट की तरह रंग बदलना = बहुत जल्दी सम्मति या सिद्धांत बदल देना। कभी कुछ कभी कुछ कहना और करना।

गिरगिटान—संज्ञा पुं० दे० "गिरगिट"।

गिरगिट्टी—संज्ञा स्त्री० [?] समान उत्तर भारत, चीन और आस्ट्रेलिया तक पाया जानेवाला एक प्रकार का छोटा पेड़ जिस की छाल खाकी रंग की होती है। इसकी पत्तियाँ छोटी, पतली और गहरे हरे रंग की होती हैं जिनका ऊपरी भाग बहुत चमकीला होता है। गरमी और बरसात में इसमें सड़े हुए रंग के बहुत सुगंधित फूल लगते हैं और जाड़े में एक प्रकार के छोटे फूल लगते हैं जिनका रंग पकने पर लाल या गहरा मारंगी होता है। इसकी लकड़ी सुलायम होती है और चीड़ के स्थान में काम आती है। यह बूछ बागों में शोभा के लिये अधिकता से लगाया जाता है और लोग इसकी टहनियों से द्रुमन का काम लेते हैं। घरमावाले कभी कभी चंदन के स्थान में इसकी सुगंधित छाल का भी व्यवहार करते हैं।

गिरगिरी—संज्ञा स्त्री० [चतु०] लड़कों का एक खिलौना जो चिकारे या सारंगी के ढंग का होता है। ३०—फूल बनावत गिरगिरी-गार मदन भेरि धराराइ अपार सतन हित ही फूल खोल।—सूर।

गिरजा—संज्ञा पुं० [दे०] कीड़े मकोड़े खानेवाला एक प्रकार का पक्षी जो पंजाब और राजपूताने के अतिरिक्त सारे भारत में पाया जाता है। यह प्रायः सिंघाड़े के तालाबों के आस पास रहता है और बहुत परिवर्तन के अनुसार अपना स्थान भी बदला करता है। यह बहुत तेज उड़ता है और इसका शब्द बहुत घीमा और विचित्र होता है। यह घुँघों पर घोंसला बनाता है। इसके न्यायिक मांस के लिये लोग इसका शिकार करते हैं।

संज्ञा पुं० [पुर्वे० इभिविया] ईसाइयों का प्रार्थना-मंदिर।

संज्ञा स्त्री० दे० "गिरजा"।

गिरद—अर्थ० दे० "गिरद"। ३०—लार्द मीरहै धर साहरोर। लूटे गाँव गिरद के धोरो।—लाल।

गिरदा—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिर] (१) घेरा। बकर। (२) तकिया। नोडुआ। बालिश। ३०—भनै रघुराज कोई गादी गिरदा पै चढ़ै, कोई गोद गेरे हरे हरे लपटाइ कै।—रघुराज। (३) काठ की थाली जिसमें हलवाई लोग मिठाई रखते हैं। (४) वह गोल कपड़ा जो दरवार के समय राजाओं के हुक्के

के नीचे बिछाया जाता है। (५) ढाल। फली। (६) बोल या खँजड़ी का मेड़रा।

गिरदागिरद—क्रि० वि० दे० "गिरदागिरद"।

गिरदाना—संज्ञा पुं० [हिं० गिरगिट] गिरगिट। ३०—मछड़ी सुल जस के खुआ सुसवन मुँह गिरदान। सर्पन मुहँ गहेजुवा जानि सवन की जान।—कबीर। ६

गिरदानक—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिर] करगढ़ की लकड़ी जो लपेटन में उसे घुमाने के लिये लगी रहती है। (जोलाहे)

गिरदाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिर] लगभग एक हाथ की लंबी थोप-हल लकड़ी जो तुर के छेद में पड़ी रहती है। (जोलाहे)

गिरदालो—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गिर] वह लंबी थोड़सी जिससे गला हुआ कच्चा लोहा समेट समेट कर एकत्र किया जाता है। (लोहार)

गिरदावर—संज्ञा पुं० दे० "गिरदावर"।

गिरदाचरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) गिरदावर का काम। (२) गिरदावर का पद।

गिरधर—संज्ञा पुं० [सं० गिर + धर] (१) वह जो पहाड़ को धारण करे। पहाड़ उठानेवाला व्यक्ति। (२) कृष्ण। वासुदेव।

गिरधारन—संज्ञा पुं० दे० "गिरधर"।

गिरधारी—संज्ञा पुं० दे० "गिरधर"।

गिरना—क्रि० अ० [सं० गहन = गिरना] (१) आघात या अघरोप के अभाव के कारण किसी चीज का एक दम ऊपर से नीचे धा जाना। रोक या सहारा न रहने के कारण किसी चीज का अपने स्थान से नीचे धा रहना। जैसे, दूत पर से गिरना, हाथ में से गिरना, कूद में गिरना, आंस से आंसू गिरना, आंस पानी या थोले गिरना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(२) किसी चीज का खड़ा न रह सकना या जमीन पर पड़ जाना। जैसे, मकान का गिरना, घोड़े का गिरना, पैड़ का गिरना।

धौ०—गिरना पड़ना। ३०—वह गिरते पड़ते किसी प्रकार घर पहुँचा।

(३) सवनति या घटाव पर होना। हासोस्फुल होना। जैसे, किसी जाति या देश का गिरना। (४) किसी जलधारा का किसी बड़े जलाशय में जा मिलना। जैसे, नदी का समुद्र में गिरना, नोरी का कुंड में गिरना। (५) शक्ति, स्थिति, प्रतिष्ठा या श्रेष्ठ्य आदि का कम या मंदा होना। जैसे, किसी मनुष्य का (किसी की दृष्टि या समाज में) गिर जाना, बीमारी के कारण शरीर का गिर जाना, भाव या यात्रा गिरना।

धौ०—गिरे दिन = दरिद्रता या दुर्दशा का समय।

(६) किसी पदार्थ को खींचने के लिये बहुत बल या तेजी से धागे बड़ना। टूटना। जैसे, कबूतर पर धाज का गिरना। माल पर खरीदनेवालों का गिरना, यात्रियों पर डाकुओं का गिरना।
 (७) तीर्थ या दुर्गल होने अथवा इसी प्रकार के अन्य कारणों से किसी चीज का अपने स्थान से हट, निकल, या ऋड़ जाना, जैसे, दांत गिरना, सींग गिरना। बाल गिरना, (घोड़ खाया हुआ) नाखून गिरना, गर्भ गिरना।
 (८) किसी ऐसे रोग का होना जिसके विषय में लोगों का विश्वास हो कि उसका वेग ऊपर की ओर से नीचे को आता वा होता है। जैसे, नजला गिरना, फाल्जि गिरना। (६) सहसा उपस्थित होना। प्राप्त होना। जैसे, तुम यहाँ कहाँ से आ गिरे ? आज बहुत सा काम आ गिरा।

विशेष—इस अर्थ में हममें पहले "धाना" किया लगती है।

(१०) युद्ध में काम धाना। लड़ाई में मारा जाना। खेत रहना। जैसे, यम लड़ाई में दो सौ आदमी गिरे। (११) कबूतर का किसी दूसरे की छतरी पर चला जाना। (कबूतर)

गिरनार—संज्ञा पुं० [सं० गिरि + नार = नगर] [वि० गिरना]
 जैनियों का एक पवित्र तीर्थ जो गुजरात में जूनागढ़ के निकट एक पर्वत पर है। इसे पुराणों में देवतक पर्वत कहते हैं।

गिरनारी, गिरनाली—वि० [हिं० गिरनार] गिरनार पर्वत का निवासी।

गिरफ्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) पकड़। पकड़ने का भाव। (२) पकड़ने की क्रिया।

मुहा०—गिरफ्त करना = कोई दोष निवारण या अपानि करना।

गिरफ्तार—वि० [फा०] (१) जो पकड़ा, कैद किया या बांधा गया हो। (२) प्रमा हुआ। प्राप्त।

गिरफ्तारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) गिरफ्तार होने का भाव। (२) गिरफ्तार होने की क्रिया।

मुहा०—गिरफ्तारी निकलना = किसी के गिरफ्तार होने का परवाना या वारंट निकलना।

गिरवृद्धी—संज्ञा पुं० [सं० गिरि + हिं० वृद्ध] श्रेण्ड-शेफ।

गिरमित—संज्ञा पुं० [सं० गिरमित = बड़ा वरमा] (शकड़ी में छेद करने का) बड़ा वरमा। (चतुर्द्वे)

† संज्ञा पुं० [सं० पदमिद = इकरानामा] (१) वह पत्र जिस में किसी प्रकार की शर्तें लिखी हो, विशेषतः वह पत्र जिस पर कुलियों से उर्द्ध उपनिवेशों में काम करने के लिये भेजने के समय हस्ताक्षर कराया जाता है। इकरानामा। शर्तनामा।

क्रि० प्र०—करना।—लिखना।—होना।

(२) कोई काम करने की स्वीकृति या प्रतिज्ञा। इकरार।

गिरवार—संज्ञा पुं० [सं० गिरि + वर] पहाड़। बड़ा पहाड़।

धा०—गिरवारी = गिरव।

गिरवान—संज्ञा पुं० [सं० गीर्वाण] देवता। देव। सुर। उ०—
 तेरे गुन गुण सुनि गिरवान पुलकित सगल विशोचन विरंचि हरि हर के।—मुलसी।

संज्ञा पुं० [फा० गीवान] (१) श्रेणो धा कुलते का यह गोल भाग जो गर्जन के चारों ओर रहता है। कालर। (२) गर्जन। गला। उ०—नेही समसुप्त झुलत हीं तैहि मन की गिरवान।
 वाहते है रनवावरे तेरे दग गिरवान।—रसनिधि।

गिरवाना—क्रि० सं० [हिं० गिराना] गिराने की प्रेरणा करना। गिराने का काम दूसरे से कराना।

गिरवी—वि० [फा०] गिरोँ रखा हुआ। बंधक। रेहन।

धा०—गिरवीदार। गिरवीनामा। गिरवी-जन्ती। गिरवीगाड़ा = रेहन। बंधक।

क्रि० प्र०—करना।—भारना।—रखना।

गिरवीदार—संज्ञा पुं० [फा०] वह व्यक्ति जिसके यहाँ कोई वस्तु बंधक रखा हो।

गिरवीनामा—संज्ञा पुं० [फा०] वह पत्र जिसमें गिरोँ की शर्तें लिखी हैं। रेहननामा।

गि. वीपत्र—संज्ञा पुं० दे० "गिरवीनामा"।

गिरह—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) गाँड़। भ्रंषि।

क्रि० प्र०—देना।—बांधना।—मारना।—लगाना।

(२) जेब। कीसा। खरीता।

धा०—गिरहकट।

(३) दो पैरों के जुड़ने का स्थान। (४) एक गज का सोलहवाँ भाग जो सवा दो इंच के बराबर होता है। (५) खुरती का एक पंच। (६) कलैया। उलट्टी। उ०—कैथो चिर्न साहित्य गिरह कबूतर खेत। दग भक्तिकत मुलकित यदन तन पुलकित बंदि हेत।—विहारी।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।—लगाना।—खेना।

धा०—गिरहवाज।

गिरहकट—वि० [फा० गिरह = जेब या गैठ + हिं० कटना] जेब या गैठ में बंधा हुआ माल काट लेनेवाला।

गिरहदार—वि० [फा०] गाँड़वाला। गँड़वाला। जिसमें गाँड़ हो।

गिरहवाज—संज्ञा पुं० [फा०] एक जाति का कबूतर जो उड़ते उड़ते उलट कर कलैया पारनामा है और फिर उड़ने लगता है।

गिरहवाज-उड़ती—संज्ञा स्त्री० [फा० गिरहवाज + उड़ी = कलैया] वह उलट्टी कलैया जो कसरत करनेवाले कबूतर की तरह उलट कर लागते हैं।

गिरहरा—वि० [हिं० गिरना + हर (प्रब०)] जो गिरनेवाला हो। जो गिरने के लिये तैयार हो। पतंगमुख।

गिरही—संज्ञा पुं० [सं० शीर्ष] जो घर धार वाला हो। गृहस्थ।

उ०—बाटे बाटे सब कोई हुक्मिया कवा गिरही धीरगी। मुकामार्थं बुल ही के काश्य भारमे माया लगगी।—कबीर।

गिराँ-वि० [फा० गरां] (१) जिसका दाम अधिक हो। मँदगा।
(२) भारी। हलका का उलटा। (३) अग्रिय। जो भला न
मालूम हो।

क्रि० प्र०—गुजरना।

गिरा—सज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह शक्ति जिसकी सहायता से
मनुष्य बातें करता है। बोलने की ताकत। (२) जिह्वा।
जीभ। ज़बान। (३) बोल। बचन। वाणी। कलाम। (४)
सरस्वती देवी।

घौ०—गिरापति। गिरापितु।

(१) सरस्वती नदी। (६) भाषा। बोली। (७) कविता।
शास्त्री।

गिराना—क्रि० सं० [हि० गिराना का सं० रूप] (१) किसी चीज
का आधार या अवरोध आदि हटा कर उसे अपने स्थान से
नीचे डाल देना। पतन करना। जैसे, छत पर से परपर
गिराना, हाथ से छड़ी गिराना, अर्ध से थोड़ा गिराना।
(२) किसी चीज को खड़ा न रहने देकर जमीन पर डाल
देना। जैसे, खंभा गिराना, मकान गिराना। (३) अवनत
करना। घटाना। हान करना। जैसे, विलास-प्रियता ने ही
उस जाति को गिरा दिया। (४) किसी जलधारा या प्रवाह
को किसी ढाल की ओर ले जाना। जैसे, नाली गिराना, मोरी
गिराना। (५) शक्ति, प्रतिष्ठा, मूल्य का स्थिति आदि में कम
कर देना। जैसे, (क) बीमारी ने उसे ऐसा गिराया कि वह
सुः महीने तक किसी काम का नहीं रहा। (ख) रूपाचारियों ने
माल खरीदना बंद करके वाज्रा गिरा दिया। (६) जीर्ण या
दुर्बल करके अथवा हमी प्रकार के किसी और उपाय से किसी
चीज को उसके स्थान से हटा या निकाल देना। जैसे, (क)
वे महीने बाद उसने गर्म गिरा दिया। (ख) यह दवा तुम्हारे
सब दाँत या बाल गिरा देगी। (७) कोई ऐसा रोग उत्पन्न
करना जिसके विषय में लोगों का यह विश्वास हो कि उसका
वेग ऊपर से नीचे की ओर जाता या होता है। जैसे, तुम्हारी
वह लारवाही ज्वर नज़्ज़ा गिरावेगी। (म) सड़ना उत्पन्न
करना। अचानक सामने ला रखना। जैसे, यह भूनेला तुमने
हमारे सिर ला गिराया।

विशेष—इस अर्थ में इसमें पहले “लाना” क्रिया लगती है।

(६) बुद्ध में प्राण लेना। लड़ाई में मार डालना। जैसे, अकेले
उसने पाँच आदमियों को गिराया।

गिरानो—संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) महँगान। महँगी। मूल्य का
अधिक होना। (२) अकाल। कुहल। (३) कमी। अभाव।
टोटा। (४) किसी चीज का विशेषतः पेट का भारीपन।
उ०—रसनिधि ट्रेम तथीय यद् दिशे इलाज यताय। छवि
अज्ञवाद्न चल् दगन विरह गिरानो जाय।—रसनिधि।

गिरापति—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म। उ०—इश्वर न मुनेश न दिनेश

न धनेश न सुरेश सुर गौरि गिरापति नहिं जपने।—
तुलसी।

गिरापितु—संज्ञा पुं० [सं० गिरा + पितृ] सरस्वती के पिता। ब्रह्म।

गिराय—संज्ञा पुं० [फ० श्रेय] तोर का वह गोला जिसमें छोटी
छोटी गोलीयाँ और छुरें भी रहते हैं।

गिरायना—क्रि० सं० दे० “गिराना”।

गिरास०—संज्ञा पुं० दे० “प्रस०”।

गिरासना—क्रि० सं० दे० “प्रसना”। उ०—परी रेणु हेह
रविहिं गिरासा। मानुष पंखि लेहिं फिरि धासा।—
जायसी।

गिरासी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्राचीन जाति जो गुजरात देश
में रहती थी। इस जाति के लोग बड़े फुलादी और चम्बू
होते थे।

गिराह*—संज्ञा पुं० [सं० ग्राह] ग्राह या मगर नामक जलजंतु।

गिरि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्वत। पहाड़। (२) दशनामी संम-
दाय के अंतर्गत एक प्रकार के सेन्यासी जो अपने नामों के
पीछे उपाधि की भाँति “गिरि” शब्द लगाते हैं। (जैसे,
नारायणगिरि, महेशगिरि आदि) उनमें कुछ लोग मठपारी
महंत होते हैं और कुछ ज़मींदारी तथा अनेक प्रकार के
ध्यापार करते हैं। इनमें से कुछ लोग वैष्णव हो गए हैं जो
गिरि वैष्णव कहलाते हैं। ये विवाह नहीं करते। (३) परि-
द्राजकों की एक उपाधि। (४) तांत्रिक सेन्यासियों का एक
भेद। (५) पारे का एक द्रव्य जिसका शोधन यदि न
किया जाय तो खानेवाले का शरीर जड़ हो जाता है। (६)
अर्ध का एक रंग जिसमें डेंडर या टैर निकल आता है
और आँसु कानी हो जाती है।

गिरिकंटक—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

गिरिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) धड़ जो
पर्वत से उदभ्र हो।

गिरिकणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अथराजिता लता। (२)
चिचिंदा। अथामारी।

गिरिकर्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अथराजिता या कोमल नाम की
लता। (२) जरासा।

गिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुधिया। सुदरी (२) दुखंशी यशु
राजा की स्त्री जिसकी कथा महाभारत में है।

गिरिक्षिपु—संज्ञा पुं० [सं०] अक्रूर के एक भाई का नाम।

गिरिज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलाजीत। (२) लोटा। (३)
अन्नक। अन्नक। (४) गेरु। (५) एक प्रकार का पहाड़ी
मटुआ।

गिरिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिमालय पर्वत की कन्या;
पार्वती। गौरी।

यै०—गिरिजापति = महादेव । संहर । गिराकुमार = काति केव ।
 (२) गंगा । (३) चंडीसारा । (४) मल्लिका । (५) पहाड़ी केला ।
 चमेरी ।
 गिरिजामल—संज्ञा पु० [सं०] अन्नक ।
 गिरिजावीज—संज्ञा पु० [सं०] गंधक ।
 गिरिजवर—संज्ञा पु० [सं०] वज्र ।
 गिरिश—संज्ञा पु० [सं०] (१) महादेव । शिव । (२) समुद्र ।
 (जब इंद्र ने पर्वतों के पर काटे थे तब मैनाक पर्वत समुद्र
 में जा डूबा था । इससे समुद्र का यह नाम पड़ा ।)
 गिरिद्रुमी—संज्ञा पु० [सं०] पहाड़ पर बना हुआ किला । (मनु
 ने इस प्रकार का दुर्ग बना उपयोगी बतलाया है ।)
 गिरिधर—संज्ञा पु० [सं०] श्रीकृष्ण ।
 गिरिधरतनू—संज्ञा पु० [सं०] श्रीकृष्ण ।
 गिरिधानु—संज्ञा पु० [सं०] गेरू ।
 गिरिधारन०—संज्ञा पु० [सं०] श्रीकृष्ण ।
 गिरिधारी—संज्ञा पु० [सं०] गिरिशिव । श्रीकृष्ण ।
 गिरिध्वज—संज्ञा पु० [सं०] इंद्र ।
 गिरिनेदिनी—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) पार्वती । (२) गंगा । (३)
 नदी ।
 गिरिनगर—संज्ञा पु० [सं०] गिरिनार पर्वत पर बसा हुआ नगर जो
 जैनिशों का एक पवित्र तीर्थ है ।
 गिरिनाथ—संज्ञा पु० [सं०] महादेव । शिव । उ०—फणु दिन
 तदां रहे गिरिनाथा ।—युवाली ।
 गिरिनिब—संज्ञा पु० [सं०] बकायत ।
 गिरिपीलु—संज्ञा पु० [सं०] फालसा ।
 गिरिपुष्पक—संज्ञा पु० [सं०] पथरफेड़ नाम का पौधा ।
 गिरिप्रिया—संज्ञा स्त्री [सं०] सुरागाय ।
 गिरिभिद्रु—संज्ञा पु० [सं०] पत्तनभेद ।
 गिरिमल्लिका—संज्ञा स्त्री [सं०] कुटज । कैरीया ।
 गिरिमृत—संज्ञा स्त्री [सं०] गेरू ।
 गिरिराज—संज्ञा पु० [सं०] (१) बड़ा पर्वत । (२) हिमालय ।
 (३) गोवर्द्धन पर्वत । (४) मेरू ।
 गिरिशंख—संज्ञा पु० [सं०] (१) बेंकपदेश की राजधानी । (२)
 जरासंध की राजधानी जिसे पीछे राजगृह कहते थे ।
 गिरिशाल—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का धात पत्ती ।
 गिरिवाल्लिनी—संज्ञा स्त्री [सं०] अपराधिता बत्ता ।
 गिरिश्रृंग—संज्ञा पु० [सं०] (१) पहाड़ की चोटी । (२) गणेश ।
 गिरिसार—संज्ञा पु० [सं०] (१) बोहा । (२) रिताजीत । (३)
 शंगा । (४) मलयपर्वत ।
 गिरिसुत—संज्ञा पु० [सं०] मैनाक पर्वत ।
 गिरिसुता—संज्ञा स्त्री [सं०] पार्वती ।

गिरिद्रु—संज्ञा पु० [सं०] (१) बड़ा पर्वत । (२) हिमालय ।
 (३) शिव ।
 गिरि—संज्ञा स्त्री [सं०] गी । (१) वह गूदा जो धीज से लेदने
 पर उसके श्वेद से निकलता है । जैसे, वादाम, बखोट या
 खलूने आदि की गिरि । (२) दे० "गिरि" । (३) दे०
 "गी" ।
 गिरिश—संज्ञा पु० [सं०] (१) महादेव । शिव । (२) हिमालय
 पर्वत । (३) समुद्र पर्वत । (४) कैलाश पर्वत । (५) गोवर्द्धन
 पर्वत । (६) कोई बड़ा पहाड़ ।
 गिरेशान—संज्ञा पु० [सं०] गोवर्द्धन । शले में पड़ने के फाड़े का
 वह भाग जो गार्दन के चारों ओर रहता है ।
 गिरिया—संज्ञा पु० [सं०] गिरि । (१) छोटी पहाड़ी । टीला । (२)
 बर्दाई का रास्ता ।
 गिरिदा—संज्ञा पु० [सं०] गिरि + दा [सं०] (१) बड़ा । (२) विष्णु ।
 गिरियाँ—संज्ञा स्त्री [सं०] गिरि + याँ [सं०] छोटा या पतला गिराव ।
 उ०—सिय जानि गिरियाँ गहो वनमाल से फूँच लखा हँव्यो
 श्रायत है ।—पद्माकर ।
 † गिरि [सं०] गिरि । गिरिवाला । पत्तनमुद्र । जो गिरि
 को हो ।
 गिरि—वि० [सं०] रेहन । संयक । गिरिबी ।
 क्रि० प्र०—करना ।—धरना ।—रखना ।
 यै०—गिरि वाश = रेहन ।
 गिरि—संज्ञा पु० दे० "गिरिगट" ।
 गिरि—संज्ञा पु० दे० "गिरिजा" ।
 गिरि—श्रव्य० [सं०] श्रावसास । चारों ओर ।
 यै०—इई गिरि ।
 गिरिदार—संज्ञा पु० [सं०] (१) धूमनेवाला । दौरा करनेवाला ।
 (२) धूम धूम कर काम की जांच करनेवाला ।
 यै० गिरिदार बानूना = फनकटी मुहकमे का वह छोटा
 झूलर जो गवियों में धूम धूम कर पत्रवारियों के काम की
 जांच करता है ।
 गिरि—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) मिट्टी । (२) गारा ।
 यै०—कदमिज । गिरिकारी ।
 गिरि पु० [सं०] (१) मगर । (२) जंबीरी नीच । (३)
 भक्ष्य करनेवाला । निगलनेवाला ।
 गिरिकार—संज्ञा पु० [सं०] गारा या पलकर करनेवाला
 व्यक्ति ।
 गिरिकाटी—संज्ञा स्त्री [सं०] गारा लगाने या पलकर करने
 का काम ।
 गिरिक्रिया—संज्ञा स्त्री [सं०] गेनुर्था या बियातरी नाम की
 ताकारी ।

गिलागिल—संज्ञा पुं० [सं०] नक्र । नाक नामक जलजंतु ।

गिलगिलिया—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्त्रियोही नाम की चिड़िया जो आपस में बहुत लड़ती है । इसे कहीं कहीं किलहँटी और मंना भी कहते हैं ।

गिलगिली—संज्ञा पुं० [दे०] चोड़े की एक जाति ।

गिलज़ई—संज्ञा स्त्री० [दे०] अफ़ग़ानिस्तान में रहनेवाली एक जाति । इस जाति के लोग अच्छे शूर वीर होते हैं ।

गिलट—संज्ञा स्त्री० [अ० गिलट = सेना चढ़ाना] (१) सेना चढ़ाने का काम । (२) एक प्रकार की बहुत हलकी और कम मूल्य की धातु जिसका रंग सफ़ेद और चमकीला होता है और जिससे ज़ेवर और वरतन बनते हैं ।

गिलटी—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रंथि] (१) चोप की गोल छोटी गाँठ जो शरीर के श्रद्धर संधि स्थान में रहती है । कुहनी, घगल, गर्दन और धुँले में तथा पैरु और रान के बीच में एक से अधिक ऐसी गाँठें होती हैं । (२) एक प्रकार का रोग जिसमें या तो संधि स्थान की इन्हीं गाँठों में से कोई एक गाँठ सूज या फूल जाती है अथवा शरीर के किसी अन्य भाग में ऐसी कोई गाँठ उत्पन्न हो जाती है । भावप्रकाश के अनुसार इनकी उत्पत्ति का कारण मांस, रक्त या मेद आदि का दूषित हो जाना है । गिलटी में प्रायः बहुत पीड़ा होती है, और कभी कभी उसके चारों तरफ की नायब धा जाती है । यदि निकलने के साथ ही गिलटी को सँकड़िया जाय तो वह दब भी जाती है ।

क्रि० प्र०—उभरना ।—निकलना ।—बैटना ।

गिलन—संज्ञा पुं० [अ० गैलन] (१) एक अँगरेजी नाप जो १० पाउंड (प्रायः ५ सेर) का होता है और जिससे प्रायः तरल पदार्थ नापे जाते हैं । (२) टीन आदि का वह वरतन जिसमें उतना पदार्थ नापा जाता है ।

संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गिलित] निगलना । लीलना ।

गिलना—क्रि० सं० [सं० गिराव] (१) किसी चीज़ को बिना दाँतों से तोड़े गले में उतार जाना । निगलना । उ०—(क) वेणु के राज्य में श्रीपथी गिलिगई होइहैं सकल किराण तुम्हारी ।

—सूर । (ख) तिमिर सदन तरनिहि महु गिलई । गगन मगन महु मेघहि मिलई ।—गुलसी । (ग) कोरक सहित अगस्तिया लख्यौ राहु अचतार । कला कलाधर की गिजी जनु उगिलत यहि धार ।—गुमान । (२) मन ही में रखना । प्रकट न होने देना । उ०—कीर्षी हमदि देखि उठि बैँह की उठि हमके मिलिहै । कीर्षी बात उचारि कर्णगी की मनही मन गिलिहै ।—सूर ।

गिलथिला—वि० [अ०] बहुत कोमल । चिलपिला । जैसे, गिलथिला फोड़ा ।

गिलथिलाना—क्रि० अ० [अ०] अस्पष्ट वचन बोलना । अस्पष्ट उच्चारण से कुछ कहना ।

गिलम—संज्ञा स्त्री० [फा० गिलीम = कंबल] (१) ऊन का बना हुआ

नरम और चिकना कालीन । (२) बहुत मोटा मुलायम गद्दा या बिछौना । उ०—(क) मालरनदार कुकि कूलत चितान बिधे गद्दव गलीचा अर गुलपुली गिलमँ—प्रभाकर । (ख) चीन के चीर नवीनन सों गिलमँ गुलजार हजार बिदाई ।—गुमान ।

वि० कोमल । नरम । मुलायम ।

गिलमिल—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का कपड़ा जो पुराने ज़माने में बनता था । उ०—यादला दरिशाई नौरंग साईं ज़कस काईं किलमिल है । ताफ़ता कलंदर याफ़ता वंदर सुसज़र सुंदर गिलमिल है ।—सूदन ।

गिलसुख—संज्ञा स्त्री० [फा०] गेरु ।

गिलहुरा—संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का कपड़ा । यह कपड़ा सूत का बनता है और इसमें मोटी मोटी धारियाँ होती हैं । (२) [अ० गिलहरी] घाँस की फट्टियों आदि का बना हुआ एक पात्र जिसमें पान रक्खा जाता है । गेलहुरा ।

गिलहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरि = बुधिया] एक प्रकार का छोटा जानवर जो एशिया, युरोप और उत्तरी अमेरिका में बहुत अधिकता से होता है । गिलहरी की कई जातियाँ होती हैं और यह चूहे से लेकर बिल्ली तक के आकार की होती है । यह प्रायः छोटे फल और दान खाती है और पेड़ों पर रहती है । इसके कान लंबे और नुकीले होते हैं और दुम घने और मुलायम रोमों से ढकी होती है । इसकी पीठ पर कई रंग की धारियाँ भी होती हैं । इसकी दुम के रोपों से रंग भरने की सूँची बहुत अच्छी बनती है । यह बहुत चंचल होती है और बड़ी सरलता से पाली जा सकती है । यह अपने पिङ्गले पैरों के सहारे बैठ कर अगले पैरों से हाथों की तरह काम ले सकती है । इसकी चंचलता बहुत भली मालूम होती है । एक घार में यह तीन से चार तक बच्चे दे सकती है । इसे कहीं कहीं चिल्लुरी या गिलाई भी कहते हैं ।

गिला—संज्ञा पुं० [फा०] (१) उलाहना । उ०—सूरिकहू नहिं मिले कई कह अनमिले कान दे मिले वृ दिन न थोती ।—सूर । (२) शिकायत । निंदा ।

गिलाई—संज्ञा स्त्री० दे० “गिलहरी” ।

गिलान—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] ग्लानि । घृणा । नफरत ।

गिलाफ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) कपड़े की बनी हुई बड़ी पैली जो तकिप लिहाफ़ आदि के ऊपर चढ़ा दी जाती है । खोल । (२) लिहाफ़ । बड़ी रज़ाई । (३) म्यान ।

गिलाय—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरि = बुधिया] गिलहरी ।

गिटापु—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें गले के श्रद्धर आँवले की गुच्छों के आकार की एक गाँठ हो जाती है । इसमें बहुत पीड़ा होती है और रोगी को गले में कोई चीज़ अटकती हुई मालूम होती है । इस रोग में शक-चिकित्सा कराने की आवश्यकता होती है ।

गिलावा-संज्ञा पुं० [फा० गिला + वा] यह गीली मट्टी जिससे रात्र खोगा ईंट जोड़ते हैं। गारा। उ०-हीरा ईंटें कपूर गिलावा। औ नग साथ खर्ग साथ लावा।-जायसी।

गिलास-संज्ञा पुं० [फ० ग्लास] (१) एक मोल लंबा बरतन जो पेंदी की घोर कम और मुँह की घोर कुछ अधिक चौड़ा होता है और जिसमें पानी बूझ आदि तरल पदार्थ पीते हैं। (२) आलू-भाजू या बोलची नाम का पेड़ जिसका फल बहुत गुलाबम और स्वादिष्ट होता है। यह सावन में केवल १२-२० दिन तक फलता है।

विशेष-दे० "आलू-भाजू"।

गिलिम-संज्ञा स्त्री० दे० "गिलम"। उ०-गिलिम गलीचे बूच-केन को सजाये हैं।-रघुराज।

गिली-संज्ञा स्त्री० दे० "गुली"। उ०-खेलत ही साल संग गयो उठि दाय ले के भारी खँच गिली देखि मंदिर में श्याम है।-प्रिया०।

गिलेफा-संज्ञा पुं० दे० "गिलाफ"।

गिलेध-संज्ञा स्त्री० [फा०] गुरुच। गुदुची।

गिलेरठा-संज्ञा पुं० [फा० गुलेठा] मिट्टी का बना हुआ छोटा मोला जो गुलेख से ढँका जाता है। उ०-तेरी कंठमिठी के नख मुकुता फल न तिनके गिलेठा काम करतु यनाय के।-मुमान।

गिलेदाँ-संज्ञा पुं० दे० "गुलैदा"।

गिलेरी-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक या कई पानों का बनी जो साधारण बीड़े से कुछ भिन्न और निकोना, बीकोना तथा कई धाकार का होता है।

कि० प्र०-यनाना।

भा०-गिलैरीदान।

गिलैरीदान-संज्ञा पुं० [हि० गिलैरी + दान] पान रखने का डिब्बा। पानदान।

गिलटी-संज्ञा स्त्री० दे० "गिलटी"।

गिदवान-संज्ञा स्त्री० दे० "शबानि"। उ०-ताके मन उपजी गियान। मैं कीन्ही बहु विप की हान।-सूर।

गिह्ला-संज्ञा पुं० दे० "गिला"।

गिह्ली-संज्ञा स्त्री० [हि० गुह्ली] गुह्ली।

गुहा०-गिह्लियाँ गढ़ना = विरतवादा करना। व्यर्थ बकवाद करना।

गिरा, गिराणु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद का गानेवाला। यज्ञों में सामवेद के संज्ञों को सविधि गानेवाला मनुष्य। (२) गवैया। गायक।

गीजनाना-कि० सं० [हि० गीजन] किसी कोमल पदार्थ विशेषतः कण्ठे फूल आदि को हाथ से हाथ प्रकार ध्वजाना या मलना कि जिसमें वह पुराय हो जाय। उ०-गीजी फूल माला मी

लसन सेज परी हाथ ऐसी सुकुमारी ऐसे मीनि मारियतु है।-रघुनाथ।

गीर्घा-संज्ञा स्त्री० [सं० गीर्घ] गर्दन। गला।

गी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बाणी। बोलने की शक्ति। (२) सरस्वती देवी।

गीटम-संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का घटिया खादा कालीन या गलीचा।

गीड़ा-संज्ञा पुं० [हि० कीट = मत्त] ब्राह्म का कीचड़ या मल।

गीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वाक्य, पद वा छंद जो गाया जाता हो। गाने की चीज़। गाना।

विशेष-संगीत-शास्त्र के अनुसार जो वाक्य धातु और मात्रा-युक्त हो वही गीत कहलाता है। गीत दो प्रकार का होता है-वैदिक और लौकिक। वैदिक गीत को याम कहते हैं। (दे० "साम") सारा सामवेद ऐसे ही गीतों से भरा हुआ है। लौकिक गीत भी दो भागों में विभक्त है-मार्ग और देशी। शुद्ध राग और रागिनियर्ण मार्ग के शतगंत हैं और आज कल के चलते गाने (दादरा, टप्पा, गुजल, दुमरी आदि) देशी कहलाते हैं। गीत के दो भेद और हैं-यंत्र और गातु। स्वयं निकायनेवाले (वीन, सितार, हारमोनियम आदि) वाजों से उत्पन्न ध्वनिमय या गीत को यंत्र और मनुष्य के गले से निकले हुए को गातु कहते हैं। पर साधारण बोल-चाल में यंत्र को कोई गीत नहीं कहना, केवल गातु को गीत कहते हैं।

कि० प्र०-गाना।

गुहा०-गीत गाना = बडाई करना। प्रशंसा करना। उ०-जिससे चार पैसा पाते हैं उसके गीत गाते हैं। अपना ही गीत गाना = खाना ही चूचात करना। अपनी ही बात कहना, दूसरे की न सुनना।

(२) वड़ाई। यरा। उ०-गीध माने गुरु कवि मालु माने भीत के पुनीन भीत सके सय साहब समथ्य के।-तुलसी।

(३) वह जिसका यश गाया जाय।

गीतक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार की तान।

गीतमिय-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

गीतमिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] कात्तिकेय की एक मन्त्रिका का नाम।

गीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यह ज्ञानमय उपदेश जो किसी बड़े से मांगने पर मिले। जैय, रामगीता, शिवगीता, धनुगीता, उत्तरगीता आदि। (२) भगवद्गीता। (३) संकीर्ण राग का एक भेद। (४) २९ मात्रा का एक छंद जिसमें १४ और १२ मात्राओं पर विराम होता है। उ०-जन शायरे ब्रह्म समम, मैसाय भ्रम दरिपार। इदि तरन को यहि छेदि के कतु नाहि और उपाय। (४) श्रुतार्थ। कथा। हास।

३०—सीता गीता पुत्र की सुनि सुनि भई अचेत । मनो चित्र की सुनिका मन क्रम वचन समेत ।—केदार ।

गीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गान । गीत । (२) आर्या छंद के भेदों में से एक जिसके विषय चारों में १२ और सम चारों में १८ मात्राएँ होती हैं । इसे उद्गाहा या उद्गाया भी कहते हैं ।

गीतिका—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ होती हैं, १४ तथा १२ पर यति होती है और अंत में लघु गुरु होते हैं । ३०—धन्य श्री धनुदेव देविक, पुत्र करि जिन पाइया । धन्य यद्युमति नंद जिन पय प्याय गोद खिलाइया । (२) एक धार्मिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सगण, जगण, भगण, रगण, सगण और लघु गुरु होते हैं । (३) गीत । गाना ।

गीतिरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रूपक जिसमें गद्य कर्म और पद्य या गान अधिक होता है ।

गीत्यायी—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ६ नागण और एक लघु होता है । इसे अचल एति भी कहते हैं ।

गीदड़—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र = लुभ्य वा फा० गीरी] सिंघार । श्यामल । भेड़िए वा कुत्ते की जाति का एक जानवर जो लोमड़ी से मिलता जुलता होता है । यह कुंठों में रहता है और पशिया तथा शम्बीका में सर्वत्र पाया जाता है । दिन में यह मंद में पड़ा रहता है और रात को सुंठ के साथ निकलता है और छोटे छोटे जंतु जैसे भेड़ बकरी, मुर्गी आदि पकड़ कर खाता है । कभी कभी यह सुंदे तथा मरे हुए जीवों की लाश आदि खा कर ही रह जाता है । यह कुत्ते के साथ जोड़ा खा जाता है । गीदड़ बहुत डरपोक समझा जाता है ।

धा—गीदड़ भयकी = मन में डरते हुए ऊपर से दिलाऊ साहस वा शोध प्रकट करने की क्रिया ।

मुहा०—गीदड़ बोलना = बुरा शकुन होना । कितरी स्थान पर गीदड़ बोलना = उजाड़ होना । निर्जन होना ।

वि० डरपोक । असाहसी । बुद्धिल ।

गीदड़रुल—संज्ञा पुं० [हि० गीदड़ + रुल = एन] मंगोल कृद का एक प्रकार का पेड़ जो समस्त उत्तर, मध्य और पूर्व भारत में अधिकता से होता है । इसकी पत्तियाँ छोटी, बड़ी और कई प्रकार के होती हैं और अधिकता से पशुओं के धारे के काम में आती हैं । गाम्भी के धारभ में इसका पतकड़ हो जाता है । चेत से जेठ तक इसमें बहुत छोटे छोटे लंबोत्तरे और खाल रंग के फूल होते हैं । इसमें बर से कुछ छोटे नोल फल भी लगते हैं जो देहात में खाने के काम में आते हैं ।

गीदर—संज्ञा पुं० दे० 'पीदड़' ।

गीदी—वि० [फा०] जिसे साहस न हो । डरपोक । कायर ।

गीध—संज्ञा पुं० दे० 'गृध' ।

गीधना—वि० [सं० गृध = लुभ्य] एक बार कोई अनुकूल बात होते देख सदा उसके प्रयत्न में रहना । एक बार कोई लाभ उठा कर सदा उसका हृद्युक्त रहना । परचना ।

३०—(क) कौन भांति रहिहै पिरद अत्र देखियो मुरारि धीधे मो सो आर्य के गोधे गीधहि तारि ।—विहारी । (ल) गीधो दीठ हैमतकर ज्यों अति आतुर मतिमंद ।—सूर ।

गीधती—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) अनुपस्थिति । गैर-हाजिरी । (२) पिशुनता । चुपुलखेरी । चुपुती ।

गीर—संज्ञा स्त्री० [सं० गिर । गीः] वाणी । ३०—कुंज तजि सुंज गहिर गीर तीर तीर रहयो रंगभान भरि मीरन की भीर से ।—देव ।

गीरथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति का एक नाम । (२) जीवात्मा ।

गीरवाच, गीरवान—संज्ञा पुं० [सं० गीर्वाण] देवता । सुर । ३०—चहूँ थोर सब नगर के खसत दिवाल्य वाह । धाम-मान तजि जनु रखौ गीरवान परिवार ।—गुमान ।

गीर्वा—वि० [सं०] (१) परिणत । कहा हुआ । (२) निगला हुआ ।

गीर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धर्यन । स्तुति । (२) निगलने की क्रिया ।

गीर्दोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती । शारदा ।

गीर्पति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति । (२) विद्वाप ।

गीर्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] देवता । सुर । ३०—गयो गिरा गीर्वाण ते सुनि यहुरि पताबहु याता ।—विश्राम ।

गीर्वाणकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] लवंग । लौंग ।

गीर्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकैंगनी ।

गीला—वि० [हि० गलना] [स्त्री० गीला] भीगा हुआ । तर । गम ।

३०—पग हूँ चलत टडकि रहै उड़ी मीन धरे हरि के स गीली ।—सूर ।

संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार की जंगली लता ।

गीलापन—संज्ञा पुं० [हि० गीला + पन (भव०)] गीला होने का भाव । नमी । तरी ।

गीली—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जिसके द्वार की लकड़ी चिकनी, भारी, मजबूत और मुर्चा लिये पीले रंग की होती और मेन, कुरसियाँ आदि बनाने के काम में आती है । इसका पेड़ हिमालय की तराई में अधिकता से होता है । धरती ।

गीव—संज्ञा पुं० दे० 'गिब' । 'गीवा' ।

गीधपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति । (२) विद्वाप । पंडित ।

सुं गा—वि० दे० 'गुं गा' ।

शुं गवधरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुं गा + बधरी] एक प्रकार की लंबी

मङ्गली जो देवने में साँप की तरह मालूम होती है।
घाम। घाँसी।

गुंगा-वि० दे० "गुंगा"।

गुगी-संज्ञा स्त्री [हि० गुंग] देसुर्दा साँप। सुन्दर।

वि० स्त्री० दे० "गुंगा", "गुगी"।

गुगुघाना-क्रि० अ० [अ०] (१) गुंघा देना। अर्घुनी तरह न
जलना। उ०—निरह की छोटी जाकरी, मपवे धी गुगुघाय।
दुस से तयहाँ पाँचि है, जय सगरो जरि जाय।—कवीर।
(२) गुं गुं शब्द करना। अस्पष्ट शब्द निकालना। गुंगे की
तरह बोलना।

गुग्घा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) कली। कोरक। (२) नाच रंग।
विहार। जहन।

गुग्घा-गुग्घा मिलना = गुग्घा नाच रंग देना। जहन देना।
आनंद उठना।

गुग्घी-संज्ञा स्त्री० दे० "गुग्घी"।

गुग्घा-संज्ञा स्त्री० [सं० गुग्घ] (१) औरों के मनभानने का शब्द।
गुग्घार। (२) आनंदध्वनि। कलरव। (३) दे० "गुग्घा"।

धारो-गुग्घमाल। गुग्घहार।

(४) सोने के तारों को गुंघा का बनाया हुआ कई लड़क का
गहना जो गले में पहना जाता है। गोप।

संज्ञा पुं० सगई का पेड़।

गुग्घन-संज्ञा स्त्री० [सं०] औरों के गुंघने की क्रिया। मनभना-
हट। कोमल मधुर ध्वनि निकालने की क्रिया।

गुग्घना-क्रि० अ० [सं० गुग्घ] औरों का मनभानना। मधुरध्वनि
निकालना। गुग्घाना। उ०—सुंदर वन कुसुमित अति
सोभा। गुग्घन मधुप-निकर मधु सोभा।—गुलसी।

गुग्घनिकेतन-संज्ञा पुं० [सं० गुग्घ + निकेतन] औरों। मधुकर।
उ०—अति मंगुल वंगुल कुंज विराजै। बहु गुग्घ निरहेतन
पुजनि साजै।—केशव।

गुग्घरना-क्रि० अ० [हि० गुग्घर] (१) गुग्घार करना। औरों का
गुग्घना। मनभानना। मधुर ध्वनि निकालना। उ०—और
भक्ति कुंजन में गुग्घरत और भीर और और औरन में औरन
के है गध।—पद्मकर। (२) शब्द करना। राजना।
उ०—नाथ सिंह गुग्घरत, पुंज कुंजर सह तोरत।—केशव।

गुग्घा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंघनी नाम की लता जो जंगल में
कानों पर चढ़ती है और जियकी फलियों में से अरहर के
बायर लक्ष साल दाने निकलते हैं।

विदोष-दे० "गुग्घनी"।

गुग्घाई-संज्ञा पुं० [का०] (१) स्थान। जगह। बैठने की जगह।
समाने भर को स्थान। अचक्रान। उ०—हस कोठरी में दस
आदमियों से अधिक की गुग्घाईय नहीं है। (२) समाई।
सुधीना। उ०—हस समय हूतने की गुग्घाईय तो हमारे यहाँ
नहीं है।

गुग्घान-वि० [का०] घना। अचिरल। सघन।

गुग्घायमान-वि० [सं०] मधुर ध्वनि करता हुआ। गुग्घारता
हुआ। गुंघाता हुआ।

गुग्घाट-संज्ञा पुं० [सं० गुंघ + घाट] औरों की गुंघ। मनभनाहट
उ०—जहाँ गुंघावन खादि घनर जहाँ कुंघलता विहार।
तहाँ विहरत त्रिय प्रीतम दोउ निगम भृंग गुग्घार।—सूर।

गुग्घिया-संज्ञा स्त्री० [हि० गुंघ = लपेटा हुआ पतला तार] एक प्रकार
का जेवर जिसे औरते कात में पहनती हैं।

गुग्घा-संज्ञा पुं० [दे०] ताल। छोटा जलाशय।

गुग्घा-संज्ञा पुं० [हि० गग्घा] एक प्रकार का धोड़ा जो नादे
कद का होता है। टंगन। उ०—नौद किसमी भुग्घर कुल-
वाई। गरी गुंघ सुमिल दरियाई।—विश्राम।

† वि० [दे०] नादे कद का। नाटा। घौना।

गुग्घ-संज्ञा पुं० [?] मलार राग का एक भेद। उ०—
पिकरवनी सुगलोचनी सारद ससि सम तुंड। राम सुवय सव
गावहीं सस्वर सारंग गुग्घ।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं०] कसेरु का पौधा।

वि० पिसा हुआ। चूर्ण किया हुआ।

गुग्घई-संज्ञा स्त्री० [हि० गुंघ] गुंघापन। शोहदापन। बदमासी।

गुग्घली-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंघली] (१) फेंटा। कुंघली। (२) गोंडरी।
हड्डी।

गुग्घा-पि० [सं० गुग्घक = मकन] [स्त्री० गुंघी] (१) दुग्घुत्ति।
पापी। यदचलन। कुमारी। बदमास। (२) दैत।
चिकरिया।

संज्ञा पुं० बदमास आदमी।

गुग्घापन-संज्ञा पुं० [हि० गुंघा + पन (पत्य०)] बदमासी।

गुग्घी-संज्ञा स्त्री० दे० "गोंडरी"।

गुग्घला-संज्ञा पुं० [सं० गुंघला] नागरमोथा नाम की घास जो
प्रायः बलदल के पास होती है।

गुग्घीला-वि० दे० "गोंदीला"।

गुग्घना-क्रि० अ० [सं० गुंघ = कौड़ा] पानी में सन कर मसला
जाना। मीठा जाना। साना जाना। उ०—आटा गुंघ
रहा है।

क्रि० अ० [सं० गुंघत वा गुंघय = गुंघक] तारों, थाल की धातों,
या इसी प्रकार की और वस्तुओं का गुंघेदार लहरी के रूप में
बनना। गुंघना। जैसे चेटी गुंघना।

गुग्घाना-क्रि० सं० [हि० गुंघना का प्रे०] गुंघने का काम दूसरे
से कराना।

गुंघाई-संज्ञा स्त्री० [हि० गुंघना] (१) गुंघने का माफने की क्रिया
वा भाव। (२) गुंघने वा माफने की मङ्गुदरी। (३) गुंघने
की क्रिया वा भाव। (४) गुंघने वा गुंघने की मङ्गुदरी।
जैसे, चेटी गुंघाई।

गुं धावट-संज्ञा स्त्री० [हि० गुंघना] (१) गुंघने वा गुंघने की क्रिया। (२) गुंघने वा गुंघने का ढंग।

गुं फ-उंसा पु० [सं०] [वि० गुंफत] (१) उलझन। फँसाव। दो या कई वस्तुओं का परस्पर गुंथमगुंथा। (२) गुच्छा। (३) दाढ़ी। गलमुच्छा। (४) कारणमात्रा अलंकार।

गुं फन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गुंफित] उलझाव। फँसाव। गुंथमगुंथा। गुंघना। गांघना।

गुं घज-संज्ञा पुं० [फा० गुंघर] देवालियों की गोल छत। धाँ-गुंघनदार।

गुं घजदार-वि० [फा० गुंघर + दार] जिस पर गुंघन है।

गुं वद-संज्ञा पुं० दे० "गुंघन"।

गुं धा-संज्ञा पुं० [हि० गोल + ध्व = धाम] यह कड़ी गोल सूजन जो सिर या मथ्ये पर चोट लगने से होती है। गुलमा।

गुं धी-संज्ञा स्त्री० [सं० गुंघ = गुच्छा] श्रृंखुर। गाम। उ०—टरति न टारे यह छुवि मन में चुभी।.....सूरदास मोहन मुख निरखे उपजी सकल तन काम गुं धी।—सूर।

गुं धी-संज्ञा स्त्री० [हि० गुं = रस्सी] पाल खींचने की रस्सी।

गुं धाँ-गुं धी बंधना = पात को खींच खींच कर ढीक करना। (लश०)।

गुं धा-संज्ञा पुं० [सं० गुंघक] (१) एक प्रकार की सुपारी। चिकनी सुपारी। उ०—गुं धा सुपारी जायफर सच फर करे धूपर। श्रास पास घन हूँ विली श्रध घन तार पसूर।—जायसी। (२) सुपारी। उ०—घोटा कुकर्म गुं धा पुनि पूरा सुपारी जाहि।—वेददास।

गुं धार-संज्ञा स्त्री० [सं० गोपणी] स्वार।

गुं धारपाठा-संज्ञा पुं० दे० "स्वारपाठा"।

गुं धारी-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वार"।

गुं धास्त्रिज-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वार"।

गुं धर्पा-संज्ञा स्त्री० पुं० [हि० गोहन = साथ] साथी। सखा। सखी। सहचरी। उ०—तुम्हारे धन्य भाग जो तुम्हारे पास सब से छुपके मेँ जो इनकी लक्ष्मण की गुं धर्पा हूँ मुझे अपने साथ ले के धाई हूँ।—अयोध्या। दे० "गोधर्पा"।

गुं धरू-संज्ञा पुं० दे० "गोलरू"।

गुं धरल-संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार की बस्तू।

गुं धानी-संज्ञा स्त्री० [देग०] पानी के ऊपर की हलकी हिलोरे जो थोड़ी हवा के कारण उठती है। खलमनी। (लश०)

गुं धुलिया-संज्ञा पुं० [अनु०] धँदर नचानेवाला। मटारी।

गुं धुर-संज्ञा पुं० दे० "गुंघुल"।

गुं धुल-संज्ञा पुं० [सं०] एक कठिदार पेड़ जो सिंच, कटियावाड़, राजपूताना, खानदेश आदि में होता है। इस पेड़ के छिलके को जाड़े के दिनों में स्थान स्थान पर छील देते हैं जिससे उन स्थानों से कुछ हरापन लिए भरे

रंग का गोद निकलता है। यही गोद याज़र में गुंघुल के नाम से बिकता है। यह पेड़ वास्तव में मरुभूमि का है हमसे थार और अफ्रीका में इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं। बलसाँ और बोल (सुर) नाम के गोद जो मथा और अफ्रीका से आते हैं पश्चिमी गुंघुल ही से निकलते हैं। इनमें से काम या घँदर-कम उत्तम और मीटिया या चिनाई-बोल मध्यम होता है। भारतवर्ष में गुंघुल की खलान विशेष कर अमरावती से होती है। बंबई में इसे गारे में भी मिलते हैं जो दर्जबंदी के काम में आना है। गुंघुल को चंदन हत्यादि के साथ मिलाकर सुगंध के लिये जलाने हैं। वैद्यक में गुंघुल कीर्त्य-जनक, पलकाक, टूटी टूटी जोड़नेवाला, स्वरोग्यक तथा वातव्याधि और कोष्ठ के दूर करनेवाला माना जाता है। राजनिघंटु में गुंघुल के रस के अनुसार पांच भेद किए हैं। प्रयोगशाला में गुंघुल की परीक्षा विधि इस प्रकार लिखी है—जो धाग में गिरने से जल जाय, गरमी पाकर पिघल जाय, गरम और जल में डालने से घुल जाय, यह गुंघुल उत्तम होता है। औषध में नया गुंघुल काम में लाना चाहिए, पुराना नहीं। खाने के लिये गुंघुल प्रायः शोध कर काम में लाया जाता है। इसे कई प्रकार से शोधते हैं। कोई मिलोले या त्रिकला के काढ़े में ध्रुव दूध में पकाने हैं, कोई दूधमूल के गरम काढ़े में डाल कर उसे छान लेते हैं और फिर पूर में गुल देते हैं।

पर्याय—कालनिर्पात। महिषाक्ष। पलंकप। जटापु। कैशिक। भूत। देवभूप। शिव। पुर। कुंभ। उल्लसक। सर्वसह। वप। कुंती। पवनद्विष्ट पुट। वायुभ्र। ह्यगंधक।

(२) एक बड़ा पेड़ जो दक्षिण में कोंकण आदि प्रदेशों में होता है। इसके पत्ते जय तक नष्ट रहते हैं ध्वानी रंग के दिखाई पड़ते हैं। पच्छिमी घाट के पहाड़ों पर इन पेड़ों की यड़ी शोभा दिखाई पड़ती है। इनमें से एक प्रकार की राल या गोद निकलता है जो दक्षिण का काला डामर कहलाता है। यह राल वारनिश बनाने के काम में विशेष आती है। पेड़ को राल-पूर और मंद-पूर भी कहते हैं। (३) सबई का पेड़ जिससे राल या पूर निकलती है।

गुं च-संज्ञा पुं० [हि० गंज] डाढ़ीदार भेड़। यह भेड़ पंजाब में पाई जाती है।

गुं ची-संज्ञा स्त्री० [सं० गुच्छ] सौ पानों की गड्डी। धापी ढोली।

गुं च्ची-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) भूमि में बना हुआ बहुत छोटा गड्ढा। (२) यह छोटा गड्ढा जो लड़के गोली या गुली डंडा खेलते समय बनाते हैं।

वि० बहुत छोटी। नन्ही। जैसे, गुचो भाँस।

गुं च्चीपारा, गुं च्चीपाठा-संज्ञा पुं० [हि० गुच्छी = गड्ढा + पारना

= द्रवणा] एक खेल जिसमें लड़के एक छोटा सा गड्ढा बना कर उसमें कौड़ियाँ फेंकते हैं ।

गुच्छ, गुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुच्छा। एक में बँचे या लगे हुए फूलों, फलों या पत्तियों का समूह । (२) घास की गुरी । **गो०**—गुच्छदंतिका । गुच्छपत्र । गुच्छपुष्प । गुच्छफल । गुच्छमूलिका । गुच्छाद ।

(३) यह बीया जिसमें हड़ कांड या पेड़ी न हो, केवल पत्तियों वा पतली लचीली टहनियाँ फैलें । झाड़ू जैसे, धान्य मण्डिका आदि । (४) बत्तीस लड़ी का हार । (५) मोती का हार । (६) मोर की पूँछ ।

गुच्छदंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली । केला ।

गुच्छपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़ ।

गुच्छपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्लोक घृण । (२) सतिवन वा सतिवन का पेड़ । (३) रीठा । (४) धवई या धाय का पेड़ । घातकी ।

गुच्छफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रीठा । (२) निर्मली । (३) दूना । (४) मकोष । काकामाची । (५) शंशु । (६) कदली ।

गुच्छमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोदला घास ।

गुच्छा—संज्ञा पुं० [सं० गुच्छ] (१) एक में लगे या बँचे कई पत्तों, फूलों वा फलों का समूह । जैसे, शंशु का गुच्छा, फूलों का गुच्छा । (२) एक में लगी, गुँधी या बँधी छोटी छोटी वस्तुओं का समूह । जैसे, छुँसुरों का गुच्छा, ऊँजियों का गुच्छा । (३) फुलारा । फुँ दूना । मन्वा ।

गुच्छातारा—संज्ञा पुं० [हिं० गुच्छा + तारा] कचपचिया नाम का तारा ।

गुच्छार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] चौबीस लड़ी का हार, किसी किसी के मत से सोनह लड़ी का हार ।

गुच्छी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुच्छ] (१) करंज । कंजा । (२) रीठा । (३) एक प्रकार का बीया जो पंजाब के ठंडे स्थानों में होता है । इसके फूलों या बीजकोश के गुच्छों की तरकारी बनती है और वे सुखा कर बाहर भेजे जाते हैं ।

गुच्छेदार—वि० [हिं० गुच्छा + का० दार (प्रत्य०)] जिसमें गुच्छा हो ।

गुञ्ज—संज्ञा पुं० [देग०] बांस की एक कील जो सीखी और परे के गोड़ के छेदों में लगाई जाती है । (रेसाम खोलनेवाले)

गुञ्जर—संज्ञा पुं० [फा०] (१) निकाय । गति । उ०—उस रास्ते से गुञ्जर मुश्किल है । (२) पैठ । पहुँच । प्रवेश । उ०—वहाँ फ़रिस्तों तक का तो गुञ्जर नहीं, आदमी की कान चलाये । (३) निर्वाह । कालपेप । उ०—इतने पतन में कैसे गुञ्जर हो सकता है ।

गो०—गुञ्जर वसर । गुञ्जरथान । गुञ्जराह ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गुञ्जराह—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) रास्ता । बाट । (२) घाट जहाँ से कोई नदी पार की जाय ।

गुञ्जरना—क्रि० अ० [फा० गुञ्जर + ना (प्रत्य०)] (१) समय व्यतीत करना । होना । फटना । बीतना । उ०—रात तो जैसे जैसे गुञ्जरी पर दिन कैसे कटेगा ।

मुहा०—किसी पर गुञ्जरना = किसी पर (संकट वा विपत्ति) पटना । उ०—इस पर जो गुञ्जरी, हसीं जानने हैं ।

(२) किसी स्थान से हो कर धराना या जाना । उ०—बड़े खाट साइथ शिमला से कलकत्ता जाते समय बनारस में गुञ्जते ।

मुहा०—गुञ्जर जाना = मर जाना । उ०—कई दिन हुए वे गुञ्जर गए ।

† (३) नदी पार करना । (४) निर्वाह होना । पटना । निपटना । बनना । निभना । उ०—तुम चिंता न करो, उन दोनों की खूब गुञ्जरेगी ।

गुञ्जर वसर—संज्ञा पुं० [फा०] निर्वाह । गुजारा । कालपेप ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गुञ्जरवान—संज्ञा पुं० [फा०] (१) महाह । पार उतारनेवाला । (२) वह व्यक्ति जो घाट की उतराई बसूल करता हो ।

गुजरात—संज्ञा पुं० [सं० गुज्ज + राट्ट] [हिं० गुजराति] भारतवर्ष के पश्चिम प्रांत का एक देश जो राजपूताने के आगे पड़ता है ।

गुजराती—वि० [हिं० गुजरात] (१) गुजरात देश का । गुजरात का निवासी । गुजरात देश संबंधी । गुजरात देश में उत्पन्न । जैसे, गुजराती इलायची । (२) गुजरात का बना हुआ । जैसे, गुजराती सेंडुर ।

संज्ञा स्त्री० (१) गुजरात देश की भाषा । (२) छोटी इलायची ।

गुजरात—संज्ञा पुं० [फा०] दे० "गुञ्जर (२)" ।

गुजरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुञ्जर] गुञ्जर जाति की स्त्री म्वास्त्रिन । गोरी ।

गुजरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुञ्जर] (१) कलाई में पढ़ने की एक प्रकार की पट्टी जो जिसके गोल धारों की कोर पर छोटी छोटी सिं दियॉ रहती हैं । मारवाड़िने इसे बहुत पढ़नती हैं । (२) दीपकनाम की एक रागिनी । (कोई कोई इसे मेघ राग की रागिनी मानते हैं) ।

गुजरेटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुञ्जर] (१) गुञ्जर जाति की कन्या । गुञ्जर की बेटी । (२) गुञ्जरी । म्वास्त्रिन ।

गुमुदता—वि० [फा०] धीता हुआ । गत । व्यतीत । भूत (काल) ।

गुजारना—क्रि० सं० [फा०] बिताना । काटना ।

मुहा०—नमान गुजारना = ईश्वर की आर्पणा करना । धरज्जी गुजारना = किसी बड़े हाकिम के दरबार में प्रार्थनापत्र पेश करना ।

गुजारा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) गुजर । गुजरान । निर्वाह । (२) वृत्ति जो किसी को जीवन-निर्वाह के लिये दी जाय । (३) नाय या घाट की उत्तराई । (४) महसूल लेने का स्थान जो सड़क पर हो ।

गुजारिश—संज्ञा स्त्री० [फा०] निवेदन ।

गुजी—[सं० गुण] नाक का मल जो सूख कर नयनों के भीतर ही जम जाता है । मकटी ।

गुजुवा—संज्ञा पुं० [देग०] [स्त्री० गूजी, गुजुई] एक प्रकार का काला कीड़ा वा गुदरैला जो बरसात में पैदा होता है । यह गोबर के नीचे बिल बना कर रहता है ।

गुजरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गूजरी । (२) एक रागिनी जो भैरव राग की छी है । (किसी किसी का मत है कि यह मेघ राग की छी है ।)

गुज्जा—संज्ञा पुं० [सं० गुज्जक] (१) गोम्फा नाम की घास की कोला । दे० "गोम्फा" । (२) एक प्रकार की कँटीली घास । गोम्फा । (३) गुद्ध । रोशेदार गुद्ध ।

† वि० द्विधा हुआ । अप्रकट । गुप्त । भीतरी ।

गुफरोटा*—संज्ञा पुं० [सं० गुफ, प्रा० गुफ्म + सं० आवर्त्त] (१) कपड़े की सिकुड़न । शिकन । सिलवट । उ०—कर उठाय घूँघट करति, उसन पट गुफरोट । सुख मोटे लूटी ललन, लखि बलना की लोट ।—विहारी । (२) क्रियों की नाभि के आस पास का भाग जहाँ चिबली वा पेटी रहती है ।

गुफरोट—संज्ञा पुं० दे० "गुफरोट" ।

गुफिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गुफक, प्रा० गुफक्य, गुफका] (१) एक प्रकार की पकवान । कुसली । पिराक । (मैदे की छोटी लोई में मीठा मसाला आदि पूर भर कर उसे दोहर देते और फिर उसकी धनुषाकार शीठ वा किनारे को मोड़ मोड़ कर बंद कर देते हैं । थल में इसी बंद लोई को धी में छान लेते हैं) । (२) टोप की एक मिठाई जो ऊपर लिप्टी पकवान के आकार की होती है और जिसके भीतर थोड़ी मिश्री अथवा हलायची और मिर्च रहती है ।

गुफ्रोटा—संज्ञा पुं० दे० "गुफरोट" ।

गुटकना—क्रि० थ० [अज०] कचूतर की तरह गुदरगुँ करना ।

क्रि० म० [हिं० गुटकना] (१) निगलना । (२) खा जाना ।

गुटका—संज्ञा पुं० [सं० गुटिका] (१) दे० "गुटिका" । (२) छोटे आकार की गुस्तक । (३) लट्ट । (४) गुप्तपुत्र मिठाई । (५) एक प्रकार का मसाला जो जावित्री, पिल्लू, करया, लौंग, हलायची, सुपारी हलादि मिला कर बनाया जाता है और कहीं कहीं पान के स्थान पर खाया जाता है ।

गुटबंगन—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का कँटीला पौधा ।

गुटगुँ—संज्ञा स्त्री० [अज०] कचूतरों की बोली ।

गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बटिका । बटी । गोली । (२)

एक सिद्धि जिसके अनुसार एक गोली वा गुटिका मुँह में रल लेने से कहते हैं कि जहाँ चाहे वहाँ चले जाय कोई नहीं देख सकता । उ०—श्रजन, गुटिका, पाटुका, घातुमेद, वैताल, नर रसायन जोगिनी, मोहि सिद्ध यहि काल।—हरिश्चंद्र ।

गुट्ट—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ = समूह] समूह । कुँड । वल । यूप । उ०—उन लोगों का गुट्ट ही भ्रमण है ।

गुट्टा—गुट्ट बांधना = कुँड इकट्ठा करना । उ०—बाइ गुट्ट बांध कर चलते हैं । गुट्ट करना = मिल जुल कर सहाह करना ।

गुट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० गोटी] लाख की घनी हुई चौकोर गोटी जिनसे लड़कियाँ खेला करती हैं ।

वि० [देग०] नाटा । डँगना ।

गुट्टल—वि० [हिं० गुठल] (१) (फल) जिसमें बड़ी गुठली हो । (२) जड़ । मूख । षड् मण्ड । (३) गुठली के धाकर का । संज्ञा पुं० (१) किसी वस्तु के इकट्ठा होकर जमने से बनी हुई गाँठ । गुलथी । उ०—न जाने यह रजाई कैसे मरी गई है कि जगह जगह गुट्टल पड़ गए हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

(२) गिलटी ।

गुट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] किसी फल का यड़ा और कड़ा बीज । ऐसे फल का बीज जिसमें एक ही यड़ा बीज होता हो । जैसे आम की गुट्टी, घेर की गुट्टी ।

गुडंबा—संज्ञा पुं० [हिं० गुड + बंध, आम] कच्चा आम जो उबाल कर शीरे में डाला गया हो ।

गुड़—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाह में गाढ़ा पका कर जमाया हुआ ऊन का रस जो कतरे, बटी वा भेलो के रूप में होता है ।

विशेष—समूह के फलों के रस का भी गुड़ बनता है ।

मुहा०—कुहिया में गुड़ फूटना = (१) गुप्त रीति से कोई कार्य होना । छिपे छिपे कोई सहाह होना । (२) गुप्त रीति से कोई पान होना । गुड़ भरा हँसिया = अयमंत्रण का काम जिसे न तो करते ही बने और न छोड़ते ही । ऐसा काम जिसे करने से भी जी हिचकता है और छोड़ने को भी जी नहीं चाहता । जो गुड़ खाया सो कान छेड़नेगा = जो कुछ धन लेगा उसे कप भी उठाना होगा । (लड़कों का कान छेड़ते समय प्रायः रीति है कि लड़कों के हाथ में कुछ मिठाई दे देते हैं जिसमें वे उसी में भूले रहें और मूट से कान छेड़ दिव जाय । गुड़ खायगी छेड़ने में आरुणी = जो कुछ काम उठानेगा उसे समय पर काम देना ही पड़ेगा । गुड़ दिला कर देला मारना = कुछ लाभ देकर फिर ऐसा बरताव करना जिससे कुछ प्राप्त न हो, उबला कट उठाना पड़े । गुड़ दिव मरे तो लहर क्यों दे = जब काम सत व्यग्र हो के काम

निकले तब कड़ाई करने की क्या आवश्यकता। जब सीधे से काम चले तब कोई उग्र उपाय क्यों करे। गुड़ खाना गुलगुलों से चिंताना = कोई बड़ी बुराई करना और छोटी बुराई से बचना। किसी कार्य का बड़ा खंश करना और छोटे से दूर रहना। गुँने का गुड़ = दे० "गूँगा"। गुड़ होगा तो मन्त्रिणा बहुत या जर्पणी = पाप में धन होगा तो खानेवाले बहुत आजायगे।

गुड़गुड़-संज्ञा पुं० [चनु०] यह शब्द जो जल में नली आदि के द्वारा वेगपूर्वक वायु के घुसने और बुलबुला छूटने से होता है, जैसा हुक में है।

गुड़गुड़ाना-कि० अ० [चनु०] गुड़गुड़ शब्द होना। (जल के भीतर वेग से नली आदि द्वारा वायु के घुसने से ऐसा शब्द होता है) उ०—आज तो पेट गुड़गुड़ा रहा है।

कि० उ० [चनु०] हुका पीना। हुका या फुररी को गुँह से लगा कर इस प्रकार खींचना कि उसमें से गुड़गुड़ शब्द निकले। उ०—सुम तो अब देवो तब हुका गुड़गुड़ाया करते है।

गुड़गुड़ाना-कि० स० [देग०] गुड़ना का सक्रमक रूप।

गुड़गुड़ाइट-संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड़गुड़ाना + इट (प्रत्य०)] गुड़गुड़ शब्द होने का भाव।

गुड़गुड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड़गुड़ाना] फुररी। एक प्रकार का हुका। पंचमान।

गुड़च-संज्ञा स्त्री० दे० "गुरुच"।

गुड़घनिया, **गुड़घानी**-संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड़ + घन] लड़ू जो मुने हुए गहूँ को गुड़ में पाग कर बंधे जाते हैं। (ऐसे लड़ू प्रायः महावीर या गणेश को चढ़ाए जाते हैं)

गुड़ना-कि० स० [देग०] बंदे को इस तरह फेंकना कि वह अपने मित्रों के बल पलटा खाता हुआ दूर तक चला जाय।

विरोध—लड़के एक प्रकार का खेल खेलते हैं जिसमें इस प्रकार रंडा फेंकते हैं।

गुड़हर-संज्ञा पुं० [हिं० गुड़ + हर] गुड़हल का पेड़ या फूल। अर्थात् उ०—भले पधारो पाहुने के गुड़हर को फूल।

विरोध—पुराना विश्वास है कि गुड़हर का फूल यदि घर में रखना जाता है तो लड़ाई होती है।

(२) एक छोटा घुघ। इसकी पत्तियाँ और इसके फूल अरहर के से होते हैं। इसकी दो तीन पत्तियाँ चबा कर यदि गुड़ लाया जाय तो गुड़ का स्वाद ही नहीं जान पड़ता।

गुड़हल-संज्ञा पुं० दे० "गुरुहर"।

गुड़ाकू-संज्ञा पुं० [हिं० गुड़] गुड़ मिला हुआ पीने का सम्राह।

गुड़ाकेंडा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) अर्जुन।

गुड़िया-संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड़ या गुड़ा] (१) कपड़ों की बनी हुई पुतली जिसे लड़कियाँ खेलती हैं।

कि० प्र०—खेलना।

गुड़ी—गुड़िया स्त्री = छोटी और सुंदर। रूपवती। गुड़िया सँवारना = वित्त के अच्युतर लड़कों का व्याह करना। गुड़ियों का खेल = सहज काम। गुड़ियों का व्याह = (२) लड़कियों का खेल जिसमें वे गुड़ी और गुड़िया की शादी करती हैं। (२) गरीब आदमी का व्याह जिसमें बहुत धूम धाम नहीं होती।

गुड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड़ी] पतंग। बंग। कनकौया। गुड़ी। उ०—गुड़ी-उड़ी खलिल लाल की श्रंगना श्रंगना मारि।

बैरी लौं दौरी फिरें छुबत छपीली छाहिं।—विहारी।

संज्ञा स्त्री० † [सं० गुड़िका] (१) गाँव। गोली। (२) कपट की गाँस। मन मोटाव। कीना। द्वेष।

गुड़च-संज्ञा स्त्री० दे० "गुरुच"।

गुड़रू-संज्ञा स्त्री० [सं० गुडरू] (१) द्वार में वह लकड़ी का टुकड़ा जो नीचे दीवार में धँसा रहता है और जिस पर कियाड़ के घूमने के लिये गड्ढा बना रहता है। देहरी। चू। (२) मंडलाकार रेखा। (३) छोटा गड्ढा या विल।

गुड़वा-संज्ञा पुं० [सं० गुड = लक्ष्मण की गोभी] कपड़े का बना हुआ पुतला।

गुड़वी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुच। गिलोच।

गुड़ा-संज्ञा पुं० [सं० गुड़ = लक्ष्मण की गोभी] गुड़वा। कपड़े का बना हुआ पुतला जिसे लड़कियाँ खेलती हैं।

गुदा—गुदा बंधना = अशर्मा करने फिलना। निंदा करना।

विरोध—भाट लोग जब अपने किसी जमान से इच्छागुहार भन नहीं पाते तब एक लंबे धंस में एक पुतला बांध कर लटकते हैं और उस पुतले को बड़ी सुम जमान मानकर उसकी निंदा करते फिरते हैं। इसी को गुड़ा बांधना कहते हैं। अथवा में "पुनला बांधना" बोलते हैं जैसे कि गो० तुलसीदास ने लिखा है। उ०—अथ तुलसी पुनरा बांधि है सहि न जात मोसों परिहास मुने।

संज्ञा पुं० † [हिं० गुड़ा] बड़ी पतंग।

गुड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० गुड़ + उड़ान] पतंग। कनकौया। बंग। उ०—हम दामिनि विनमोल की कपोलझरी गुड़ी बस देत।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [सं० गुदेना] (१) गुटने की हड्डी।

घौं—हड्डी गुड़ी। उ०—ऐसी मार मारूँया कि सेरी हड्डी गुड़ी न बचेगी।

(२) एक प्रकार का छोटा हुका। (३) चिट्ठियों के ढँकों का परों की वह स्थिति जो उड़ने के कुछ पहले होती है। कुंदा।

गुड़ह-संज्ञा स्त्री० दे० "गुरुह"।

संज्ञा पुं० [हिं० गुड़रू] एक छोटा कीड़ा जो फूल में घर बना कर रहता है। इसका घर भँवर के आकार का होता है।

घट्टधा लड़के चंटी पकड़ कर उसमें डालते हैं जिसे वह कीड़ा खा जाता है ।

गुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] वि० गुणी] (१) किसी वस्तु में पाई जानेवाली वह बात जिसके द्वारा वह वस्तु दूसरी वस्तु से पहचानी जाय । वह भाव जो किसी वस्तु के साथ लगा हुआ हो । धर्म । विपुल ।

विशेष—सांख्यकार तीन गुण मानते हैं । सच्च, रज और तम, और इन्हीं की साम्यावस्था के प्रकृति कहते हैं जिससे सृष्टि का विकास होता है । सतोगुण हलका और प्रकाश करनेवाला, रजोगुण बंचल और प्रवृत्त करनेवाला और तमोगुण भारी और रोक्नेवाला माना गया है । तीनों गुणों का स्वभाव है कि वे एक दूसरे को दबा कर अपना प्रभाव दिखाते, एक दूसरे को आश्रय से रहते तथा एक दूसरे को उलट करते हैं । इससे सिद्ध होता है कि सांख्य में गुण भी एक प्रकार का द्रव्य ही है जिसके अनेक धर्म हैं और जिससे सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं । विज्ञानभिक्षु का मत है कि जिससे आत्मा के बंधन के लिये महत्सत्त्व आदि रज्जु तैयार होती है उसी को सांख्यकार ने गुण कहा है । वैशेषिक गुण को द्रव्य का आश्रित मानता है और उसने उसकी परिभाषा इस प्रकार की है—जो द्रव्य में रहनेवाला हो, जिसमें कोई गुण न हो, जो संयोग विभाग का कारण न हो वह गुण है । रूप, रस, गंध, स्पर्श, परत्त्व, अपरत्त्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह और वेग ये मूर्त द्रव्यों के गुण हैं । बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये अमूर्त द्रव्यों के गुण हैं । संपत्ता, परिमाण, उपपत्त, संयोग और विभाग ये मूर्त और अमूर्त दोनों के गुण हैं । गुण दो प्रकार के माने जाते हैं । विशेष और सामान्य । रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्नेह, सांख्यिक द्रवत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये विशेष गुण हैं धातु इनसे द्रव्यों में भेद जाना जाता है । संपत्ता, परिमाण, उपपत्त, संयोग, विभाग, परत्त्व, अपरत्त्व, गुरुत्व, नैमित्तिक द्रवत्व, और वेग ये सामान्य गुण हैं । द्रव्य स्वयं आश्रय हो सकता है पर गुण स्वयं आश्रय नहीं हो सकता । कर्म संयोग विभाग का कारण होता है, गुण नहीं ।

(२) निपुणता । प्रवीणता । (३) कोई कला या विद्या । हुनर ।

श्री०—गुण्यग्राहक । गुण्यग्राही ।

क्रि० प्र०—आना ।—जानना ।—सिलाना ।—सीखना ।

(४) अक्षर । तारीख । प्रभाव । फल । उ०—यह दवा अक्षर्य अपना गुण दिखावेगी ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिखाना ।

(५) तारीफ़ की बात । अच्छा स्वभाव । शीघ्र । सद्बुद्धि ।

उ०—पहरी तो उनमें बड़ा भारी गुण्य है कि वे मोचें नहीं करते ।

श्री०—गुण्यग्राहा । उ०—मान पियारे की गुणग्राहा साथ कहा तक मैं गाऊँ ।—श्रीधर ।

मुहा०—गुण्य गाना = प्रशंसा करना । तारीफ़ करना । गुण्य मानना = एहसान मानना । निहेरा मानना । कृतज्ञ होना ।

(६) विशेषता । स्वभाव । लक्षण । खासियत । प्रवृत्ति ।

उ०—अपने इन्हीं गुणों से तो तुम मार खाते हो । (७) तीन की संख्या । (८) राजनीति में परराष्ट्र के साथ व्यवहार करने के ६ टंग—संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वेष और आश्रय ।

(९) प्रकृति । (छांदोग्य) (१०) व्याकरण में 'श', 'पु' और 'शो' को गुण्य कहते हैं । (११) रस्ती या तागा । डेरा । मूल । (१२) धनुष की प्रयंत्रा । (१३) वह रस्ती जिससे महाह नाव खींचते हैं ।

प्रत्य० एक प्रत्यय जो संख्यावाचक शब्दों के आगे लगता है । यह जिस संख्या के आगे लगता है उतनी ही बार किसी विशेष संख्या, मात्रा वा परिमाण को सूचित करता है । जैसे, द्विगुण्य, चतुर्गुण्य ।

गुण्यक—संज्ञा पुं० [सं०] वह श्रंक जिससे किसी श्रंक को गुण्य करें । गुण्यकर—वि० [सं०] फायदेमंद । लाभदायक ।

गुण्यकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो किसी के मत से भैरव राग की और किसी के मत से हिंडोल राग की भावों मानी जाती है । हनुमत के मत से इसका स्वरप्राम इस प्रकार है ।—प नि सा रा म प नि । अथवा—सा ग म प नि सा । इसके गाने का समय सपेरे १ दूब से २ दूब तक है ।

गुण्यकर्म—संज्ञा पुं० दे० "कर्म"

गुण्यकली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी । दे० "गुण्यकरी" । उ०—सखि गावती अहलादिनी अहलादिनी वर रागिनी । गुण्यकली रामकली भली मुक्कली, संसय सुहागिनी ।—रघुराज ।

गुण्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत विद्या का पूर्ण ज्ञाता । (२) पाठकर्त्ता । रसोद्भवा । शायची । पाठक । (३) पाठ्याग्न का ज्ञाता । (४) भीमसेन । (पांडव)

गुण्यकारक—वि० [सं०] फायदा करनेवाला । लाभदायक । गुण्यकारी—वि० [सं०] गुण्यकरित । [स्त्री०] गुण्यकरिणी । लाभदायक । फायदेमंद । (औपध के लिये अधिक आता है ।)

गुण्यगौरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गौरी के समान गुण्यवाली कोई सौभाग्यवती स्त्री । पतिव्रता स्त्री । सौहागिन स्त्री । उ०—धनि धनि धनि तुव यहियाँ ए गुनगौरि । कंकन की जड़े कीमति लाख करेरे ।—सेवक । (२) शिवों का एक पूत जो वैत में चौप के दिन किया जाता है । सौभाग्यवती स्त्रियों इस दिन पूत करती हैं । उ०—घोस गुण गौरि के सु गिरिजा

गोसाइन को धावन यहाँ ही श्रुति धाँद देती रही।—
पद्माकर ।

गुणप्राहक—संज्ञा पुं० [सं०] गुण की शोच करनेवाला मनुष्य ।
गुणियों का श्रादर करनेवाला मनुष्य । कुदरदान ।
वि० गुण की शोच करनेवाला । गुणियों का श्रादर करने-
वाला ।

गुणप्राही—वि० [सं० गुणप्राहिद्] [स्त्री० गुणप्राहिणी] गुण की
शोच करनेवाला । गुणियों का श्रादर करनेवाला ।

गुणप्रद—वि० [सं०] (१) गुण का जाननेवाला । गुण को पदधा-
ननेवाला । गुण का पारसी । (२) गुणी ।

गुणप्रज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुण की जानकारी । गुण की परख ।
गुण की पदधान ।

गुणपन—उज्ञा पुं० [सं०] [वि० गुण्य, गुणनीय, युक्ति] गुणा ।
जुरख ।

गुणनफल—संज्ञा पुं० [सं०] वह श्रंक वा संख्या जो एक श्रंक को
दूसरे श्रंक के साथ गुणा करने से आवे ।

गुणना—क्रि० सं० [सं० गुणन] जुरख देना । गुणन करना ।
गुणनीय—वि० [सं०] गुणा करने योग्य ।

गुणघंत—वि० [सं०] [स्त्री० गुणती] जिसमें गुण हो । गुणी ।
गुणवती—वि० स्त्री० [सं०] गुणवाली । जिसमें कुछ गुण हो ।

गुणवाचक—वि० [सं०] जो गुण को प्रकट करे ।
धै०—गुणवाचक संज्ञा = व्याकरण में वह संज्ञा जिससे द्रव्य का
गुण सूचित हो । विशेषण्य ।

गुणवाद—संज्ञा पुं० [सं०] मीमांसा में अर्थवाद का एक भेद ।
कुमारिल के अनुसार अर्थवाद तीन प्रकार का है, गुणवाद,
अनुवाद और भूतार्थवाद । जहाँ विशेषण और विशेष्य का
एक में अन्वय करने से टीक अर्थ नहीं सिद्ध होता वहाँ विशेष-
ण्य पद का कुछ दूसरा अर्थ कर लेते हैं और उसे अंगकथन
वा गुणवाद कहते हैं । जैसे यजमानः प्रस्तरः । प्रस्तर शब्द
का अर्थ है कुत्रासुति । वहाँ विशेषण्य और विशेष्य के द्वारा
कोई अर्थ नहीं निकलता इससे प्रस्तर का कुत्रासुतिघाती अर्थ,
कर लिया गया ।

गुणधान—वि० [सं०] [स्त्री० गुणधनी] गुणवाला । गुणी ।
गुणविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीमांसा में वह विधि जिसमें गुण
कर्म का विधान हो । जैसे 'दद्यात् सुहेति' वहाँ से धर्मिर्होत्र
कर्म । धर्मिर्होत्र करने का विधि-वाच्य दूसरा है । अतः उसी
धर्मिर्होत्र के अंतर्गत जो आहुति का विधान है उसकी विधि
इस वाच्य में है ।

विशेष—दे० "कर्म" ।
गुणप्रत—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों में मूलवृत्तों की रक्षा करनेवाले
तीन वृत्त—द्विवृत्त, भ्रोगोपभोगनिवृत्त और अनर्प-द्वेह-
निवृत्त ।

गुणसागर—वि० [सं०] गुणों का समुद्र । गुणों से भरा ।
संज्ञा पुं० [सं०] हिंदोल राग का एक गुण ।

गुणांक—संज्ञा पुं० [सं०] वह श्रंक जिस को गुणा करना हो ।

गुणा—संज्ञा पुं० [सं० गुणन] [वि० गुण्य, गुणि] गणित की एक
क्रिया । एक श्रंक पर दूसरे श्रंक का ऐसा प्रयोग जिसके
द्वारा यही फल निकलता है जो पहले श्रंक को उतनी धार
अलग अलग रख कर जोड़ने से निकलता है जितना दूसरा
श्रंक है । जुरख ।

क्रि० प्र०—करना ।—ज्ञाना ।—सीखना ।

गुणाख्य—वि० [सं०] गुणपर्यं । बहुत गुणोंवाला । व०—
सनाथ्य जाति गुणाख्य है जग सिद्ध शुद्ध स्वभाव ।—केशव ।

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध कथि जिसने पैराची भाषा में
बहुत ग्रंथ लिखा था जिसके आचार पर पीछे से फेमिंद्र
ने शूद्रकथा और सोमदेव ने कथासरित्सागर नाम की पुस्तकें
लिखीं । कथासरित्सागर में गुणाख्य की कथा इस प्रकार
लिखी है । प्रतिष्ठानपुर में सोमशर्मा नाम का एक ब्राह्मण
रहता था जिसे धृतरथ नाम की एक परम सुंदरी कन्या थी ।
इस कन्या के साथ नागराज वासुकि के छोटे भाई कीर्तिसेन
ने गंधर्व-विवाह किया । इसी कन्या के गर्भ से गुणाख्य का
जन्म हुआ । गुणाख्य के बचपन ही में उसका पिता मर गया ।
गुणाख्य ने दक्षिणापथ में जाकर गुरु विद्याभ्यसन किया और यह
बड़ा प्रसिद्ध विद्वान् हो कर प्रतिष्ठान प्रदेश के राजा सातवाहन
की सभा में रहने लगा । राजा संस्कृत नहीं जानता था, मूर्ख
था । एक दिन वह अपनी रानी के व्यवहार से अपनी मूर्खता
पर बड़ा लज्जित हुआ और उसने संस्कृत सीखने का विचार
किया । गुणाख्य ने उसे ६ वर्षों में व्याकरण सिखा देने का वादा
किया । शर्वधर्मा नामक एक पंडित ने छुः महीने में ही
राजा को व्याकरण सिखा देने का कहा । इस पर गुणाख्य ने
चिढ़ कर कहा "यदि तुम राजा को छुः महीने में सिखा दोगे
तो मैं संस्कृत, ब्राह्मण भादि सप्तस्य देवी भाषाओं का व्यव-
हार छोड़ दूँगा ।" शर्वधर्माने ने कलाप व्याकरण की रचना
करके छुः महीने में राजा को व्याकरण सिखा दिया । इस पर
गुणाख्य ने बस्ती का रहना छोड़ दिया और वह जंगल में जाकर
पिशाचों के बीच रहने और उहाँ की भाषा का व्यवहार
करने लगा । वहाँ पर उससे कायप्रति से साक्षात्कार हुआ
जो कुवेर के शप से पिशाच हो गया था । कायप्रति के मुख
से गुणाख्य ने पुनर्पत का कहा हुआ सप्तकथामय उपाख्यान
सुना और उसे लेकर सात लाख रत्नों का पिशाच भाषा
का एक ग्रंथ लिखा ।

गुणाख्य—वि० [सं०] गुणों से परे । जो गुणों के प्रभाव से
अलग हो । त्रिगुणात्मिका से निकलित ।
संज्ञा पुं० परमेश्वर ।

गुणातीत—वि० [सं०] गुणों से परे । जो गुणों के प्रभाव से
अलग हो । त्रिगुणात्मिका से निकलित ।
संज्ञा पुं० परमेश्वर ।

बहुधा लड़के चींटी पकड़ कर उसमें डालते हैं जिसे वह कीड़ा खा जाता है ।

गुण-संज्ञा पुं० [सं०] वि० गुण] (१) किसी वस्तु में पाई जानेवाली वह बात जिसके द्वारा वह वस्तु दूसरी वस्तु से पहचानी जाय । वह भाव जो किसी वस्तु के साथ लगा हुआ हो । धर्म । निष्पत्त ।

विशेष—सांख्यकार तीन गुण मानते हैं । सत्व, रज और तम, और इन्हीं की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं जिससे सृष्टि का विकास होता है । सतोगुण हलका और प्रकाश करनेवाला, रजोगुण चंचल और प्रवृत्त करनेवाला और तमोगुण भारी और रोकनेवाला माना गया है । तीनों गुणों का स्वभाव है कि वे एक दूसरे को दबा कर अपना प्रभाव दिखाते, एक दूसरे के आश्रय से रहते तथा एक दूसरे को उत्पन्न करते हैं । इससे सिद्ध होता है कि सांख्य में गुण भी एक प्रकार का द्रव्य ही है जिसके अनेक धर्म हैं और जिससे सत्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं । विज्ञानमिच्छा का मत है कि जिससे आत्मा के बंधन के लिये महत्त्व आदि रज्जु तैयार होती है उसी वे सांख्यकार ने गुण कहा है । वैशेषिक गुण को द्रव्य का आश्रित मानता है और उसने उसकी परिभाषा इस प्रकार की है—जो द्रव्य में रहनेवाला हो, जिसमें कोई गुण न हो, जो संयोग विभाग का कारण न हो वह गुण है । रूप, रस, गंध, स्पर्श, परस्त्व, अपरस्त्व, गुरुत्व, द्रव्यत्व, स्नेह और वेग ये मूर्त्त द्रव्यों के गुण हैं । बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये अमूर्त्त द्रव्यों के गुण हैं । संख्या, परिमाण, प्रथक्त्व, संयोग और विभाग ये मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों के गुण हैं । गुण दो प्रकार के माने गए हैं, विशेष और सामान्य । रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्नेह, सांख्यिक द्रव्यत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये विशेष गुण हैं अर्थात् इनसे द्रव्यों में भेद जाना जाता है । संख्या, परिमाण, प्रथक्त्व, संयोग, विभाग, परस्त्व, अपरस्त्व, गुरुत्व, नैमित्तिक द्रव्यत्व, और वेग ये सामान्य गुण हैं । द्रव्य स्वयं आश्रय हो सकता है पर गुण स्वयं आश्रय नहीं हो सकता । कर्म संयोग विभाग का कारण होता है, गुण नहीं ।

(२) निरूपयता । प्रवीणता । (३) कोई कला या विद्या । हुनर ।

गुण-गुणप्राहक । गुणप्राही ।

क्रि० प्र०—जानना ।—जानना ।—सिलाना ।—सीखना ।

(४) अक्षर । तारीर । प्रभाव । फल । उ०—यह दवा अक्षर्य अपना गुण दिखावेगी ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिलाना ।

(५) तारीफ़ की बात । शर्चा स्वभाव । शील । सद्वृत्ति ।

उ०—यहाँ तो उनमें बड़ा भारी गुण है कि ये क्रोध नहीं करते ।

गुण-गुणमाथा । उ०—प्राण पिपादे की गुणमाथा साधु बड़ा तर्क में गाँजे ।—श्रीधर ।

मुहा०—गुण गाना = प्रशंसा करना । तारीफ़ करना । गुण मानना = एहसान मानना । निहेरा मानना । कृतज्ञ होना ।

(६) विशेषता । स्वभाव । लक्षण । खासियत । प्रवृत्ति ।

उ०—अपने इन्हीं गुणों से तो तुम मार खाते हो । (७) तीन की संख्या । (८) राजनीति में परराष्ट्र के साथ व्यवहार करने के ६ ढंग—संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वेष और आश्रय ।

(९) प्रकृति । (छान्दोग्य) (१०) व्याकरण में 'अ', 'ए' और 'ओ' को गुण कहते हैं । (११) रस्सी या तागा । डोला । सूत । (१२) धनुष की प्रथंचा । (१३) वह रस्सी जिससे महाह नाव खींचते हैं ।

प्रत्य० एक प्रत्यय जो संख्यावाचक शब्दों के आगे लगता है । यह जिस संख्या के आगे लगता है उसनी ही मार किसी विशेष संख्या, मात्रा वा परिमाण के सूचित करता है । जैसे, द्विगुण, त्रुगुण्य ।

गुणक-संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक जिससे किसी अंक को गुणा करें । **गुणकर-वि०** [सं०] फायदेमंद । लाभदायक ।

गुणकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो किसी के मत से भंवर राग की और किसी के मत से हिंदोल राग की भाव्यों मानी जाती है । हनुमत के मत से इसका स्वप्नम इत प्रकार है ।—प नि सा रा म प नि । अथवा—सा ग म प नि सा । इसके माने का समय सवेरे १ दंड से २ दंड तक है ।

गुणकर्म-संज्ञा पुं० दे० "कर्म"

गुणकली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी । दे० "गुणकरी" । उ०—सखि गावती अहलादिनी अहलादिनी वर रागिनी । गुणकली रामकली भली सुरकली, सरस सुहागिनी ।—रघुनाथ ।

गुणकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत विद्या का पूर्ण ज्ञाता । (२) पाककर्ता । रसोद्भवा । बावर्ची । पाचक । (३) पाकवाहक का ज्ञाता । (४) भीमसेन । (पांचव)

गुणकारक-वि० [सं०] फायदा करनेवाला । लाभदायक ।

गुणकारी-वि० [सं० गुणकारिण] [स्त्री० गुणकारिणी] लाभदायक । फायदेमंद । (शीघ्र के लिये अधिक धाता है ।)

गुणगौरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गौरी के समान गुणवाली कोई सौभाग्यवती स्त्री । पतिप्रता स्त्री । सौभागिन स्त्री । उ०—धनि धनि धनि तुव बहियां पृ गुणगौरि । कंकन की जहँ कीमति खाल करोरि ।—सेवक । (२) जियों का एक वृत्त जो चैत में धीप के दिन किया जाता है । सौभाग्यवती जियों इस दिन वृत्त करती है । उ०—धौस गुण गौरि के सु गिरिजा

गोसाइन को धावत यहाँ ही प्रति आनँद इतै रहै ।—

पदाकर ।

गुणप्रादहक—संज्ञा पुं० [सं०] गुण की खोज करनेवाला मनुष्य ।

गुणियों का आदर करनेवाला मनुष्य । कृदरदान ।

वि० गुण की खोज करनेवाला । गुणियों का आदर करनेवाला ।

गुणप्राही—वि० [सं० गुणप्राहि] [श्री० गुणप्राहिणी] गुण की खोज करनेवाला । गुणियों का आदर करनेवाला ।

गुणज्ञ—वि० [सं०] (१) गुण का जाननेवाला । गुण को पहचाननेवाला । गुण का पारखी । (२) गुणी ।

गुणज्ञता—संज्ञा श्री० [सं०] गुण की जानकारी । गुण की परख । गुण की पहचान ।

गुणज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गुण्य, गुण्यन्, गुण्य] गुणा । ज्ञय ।

गुणानफल—संज्ञा पुं० [सं०] वह शक था संख्या जो एक शक को दूसरे शक के साथ गुणा करने से आवे ।

गुणना—क्रि० सं० [सं० गुणन] ऊपर देना । गुणन करना ।

गुणनीय—वि० [सं०] गुणा करने योग्य ।

गुणधर्म—वि० [सं०] [श्री० गुणधर्मी] जिसमें गुण हो । गुणी ।

गुणधर्ती—वि० श्री० [सं०] गुणवाली । जिसमें कुछ गुण हो ।

गुणवाचक—वि० [सं०] जो गुण को प्रकट करे ।

धौ०—गुणवाचक संज्ञा = आकरण्य में वह संज्ञा जिससे द्वय का गुण सूचित हो । विशेषण ।

गुणवाद—संज्ञा पुं० [सं०] मीमांसा में अर्थवाद का एक भेद ।

कुमारिल के अनुसार अर्थवाद तीन प्रकार का है, गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद । जहाँ विशेषण और विशेष्य का एक में श्रव्य करने से ठीक अर्थ नहीं सिद्ध होता वहाँ विशेषण पद का कुछ दूसरा अर्थ कर लेते हैं और उसे श्रव्यकथन या गुणवाद कहते हैं । जैसे यज्ञमानः प्रस्तरः । प्रस्तर शब्द का अर्थ है कुलमुष्टि । वहाँ विशेषण और विशेष्य के द्वारा कोई अर्थ नहीं निकलता इससे प्रस्तर का कुलमुष्टिधारी अर्थ कर लिया गया ।

गुणवान्—वि० [सं०] [श्री० गुणवती] गुणवाला । गुणी ।

गुणविधि—संज्ञा श्री० [सं०] मीमांसा में वह विधि जिसमें गुण कर्म का विधान हो । जैसे 'दूध जुहोति' दूध से अग्निहोत्र करे । अग्निहोत्र करने का विधि-वाक्य दूसरा है । अतः उसी अग्निहोत्र के अंतर्गत जो आहुति का विधान है उसकी विधि इस वाक्य में है ।

विशेष—दे० 'कर्म' ।

गुणप्रत—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों में मूलवृत्तों की रक्षा करनेवाले तीन वृत्त—दिग्वृत्त, भोगोपभोगनियम और अन्वय-वृत्त-नियम ।

गुणसागर—वि० [सं०] गुणों का समुद्र । गुणों से भरा ।

संज्ञा पुं० [सं०] हिं डोल राग का एक पुत्र ।

गुणांक—संज्ञा पुं० [सं०] यह शक जिस को गुणा करना हो ।

गुणा—संज्ञा पुं० [सं० गुण] [वि० गुण्य, गुण्य] गणित की एक क्रिया । एक शक पर दूसरे शक का ऐसा प्रयोग जिसके द्वारा वही फल निकलता है जो पहले शक को उतनी बार शलग शलग रर कर जोड़ने से निकलता है जिनका दूसरा शक है । ऊपर ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।—सीखना ।

गुणाख्य—वि० [सं०] गुणाख्य । बहुत गुणोंवाला । उ०—

सनाथ्य जाति गुनाथ्य है जग निरद शुद्ध स्वभाव ।—केशव ।

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध कवि जिसने पौराणी भाषा में

बहुत बड़ा ग्रंथ लिखा था जिसके आधार पर पीछे से जेम्स

ने शुद्धकथा और सोमदेव ने कथासरित्सागर नाम की पुस्तकें

लिखीं । कथासरित्सागर में गुणाख्य की कथा इस प्रकार

लिखी है । प्रतिष्ठानपुर में सोमशर्मा नाम का एक ब्राह्मण

रहता था जिसे भूतार्थ नाम की एक परम सुंदरी कन्या थी ।

इस कन्या के साथ नागराज घासुकि के छोटे भाई कीर्तिसेन

ने गार्भ-विवाह किया । इसी कन्या के गर्भ से गुणाख्य का

जन्म हुआ । गुणाख्य के बचपन ही में उसका पिता मर गया ।

गुणाख्य ने दक्षिणापथ में जाकर खूब विद्याध्ययन किया और यह

बड़ा प्रसिद्ध विद्वान् हो कर प्रतिष्ठान प्रदेश के राजा सातवाहन

की सभा में रहने लगा । राजा संस्कृत नहीं जानता था, मूर्ख

था । एक दिन वह अपनी रानी को व्यवहार से अपनी मुखता

पर बड़ा खिन्नत हुआ और उसने संस्कृत सीखने का विचार

किया । गुणाख्य ने उसे ६ वर्षों में व्याकरण्य सिखा देने का वादा

किया । शर्वशर्मा नामक एक पंडित ने छः महीने में ही

राजा को व्याकरण्य सिखा देने का कहा । इस पर गुणाख्य ने

चिढ़ कर कहा "यदि तुम राजा को छः महीने में सिखा दोगे

तो मैं संस्कृत, प्राकृत आदि समस्त देशी भाषाओं का व्यव-

हार छोड़ दूँगा ।" शर्वशर्मा ने कलाप व्याकरण्य की रचना

करके छः महीने में राजा को व्याकरण्य सिखा दिया । इस पर

गुणाख्य ने बन्दी का रहना छोड़ दिया और वह जंगल में जाकर

पिराचों के बीच रहने और वहाँ की भाषा का व्यवहार

करने लगा । वहाँ पर बसते काण्यभूति से साक्षात्कार हुआ

जो कुबेर के शप से पिराच हो गया था । काण्यभूति के मुल

से गुणाख्य ने पुनर्जित का कथा हुआ सप्तकथामय उपाख्यान

सुना और उसे लेकर सात लाख रत्नों का पिराच भाषा

का एक ग्रंथ लिखा ।

गुणातीत—वि० [सं०] गुणों से परे । जो गुणों के प्रभाव से

अलग हो । त्रिगुणात्मिका से निश्चित ।

संज्ञा पुं० परमेश्वर ।

गुणानुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] गुणकथन । प्रशंसा । तारीफ़ ।
यज्ञार्ह ।

गुणित—वि० [सं०] गुणा किया हुआ ।

गुणी—वि० [सं०] गुणित । गुणवाला । जिसमें कोई गुण हो । जो किसी कला वा विद्या में निपुण हो ।

संज्ञा पुं० (१) निपुण मनुष्य । कलाकुशल पुरुष । हुनरमंद आदमी ।

३०—जोरिय फौज यज्ञ गुनी हुलाई ।—गुलसी । (२) भाड़ फूँक करनेवाला । नायत । आम्ना । यंत्र मंत्र करनेवाला ।

३०—श्याम भुजंग टस्यो हम देखत क्यायहु गुणी योलाई ।
रोखत जननि कंठ लपटानी सूर श्याम गुनराई ।—सूर ।

गुणीभूत व्यंज्य—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में वह व्यंज्य जो प्रधान न हो वरन् वाच्यार्थ के साथ गौण रूप से आया हो ।

गुणोच्चार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीमें गुणों पर प्रसुख रखनेवाला । परमेश्वर । ईश्वर । (२) चित्रदृष्ट पर्वत ।

गुणोपेत—वि० [सं०] (१) गुणी । गुणयुक्त । जिसमें गुण हो । (२) किसी कला में निपुण ।

गुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह श्रेय कियेया गुणा करना हो ।

गुण्यांक—संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक जो गुणा किया जाय ।

गुतेला—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की मछली जिसे बंगू भी कहते हैं ।

गुत्ता—संज्ञा पुं० [दे०] (१) लगान पर खेत देने का ब्यवहार । (२) लगान ।

गुत्थ—संज्ञा पुं० [हिं० गुथना] (१) हुक्के के नैचों की वह गुनावट जो चट्टाई की गुनावट के ढंग की होती है । (२) इसी गुनावट का नैचा ।

गुत्थमगुत्था—संज्ञा पुं० [हिं० गुथना] (१) उलफाव । फंसाव । दो या कई वस्तुओं का ऐसा मिलना वा जुटना कि दोनों के कई धंग करे और से आकर लिपट गए हों । (२) हाथापाई । भिड़ंत । लड़ाई ।

गुत्थी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुथना] वह गाँठ जो कई वस्तुओं के एक में गुथने से बने । गिरह । उलझन ।

किं० प्र०—रचना ।

गुत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० “गुच्छ” ।

गुथना—किं० अ० [सं० गुथन, प्रा० गुथन] (१) कई वस्तुओं का तारी आदि के द्वारा एक में बँधना वा फँसना । कई वस्तुओं का एक लड़ी वा गुच्छे में बांधा जाना । (२) किसी वस्तु का दूसरी वस्तु में सुई तारो आदि के सहारे टँकना । गाँथा जाना । ३०—झूल में मोती गुथे हुए थे । (२) भरी सिलाई होना । टाँका लगना । टाँके वा सिलाई द्वारा दो वस्तुओं का जुड़ना । (४) एक का दूसरे के साथ लड़ने के लिये खूब लिपट जाना ।

संयो० किं०—जाना ।—पड़ना ।

गुथ्या—वि० [हिं० गुथना] जो गुथ कर बनाया गया हो ।

गुथवाना—किं० स० [हिं० गुथना का प्रे०] गुथने का काम करवाना ।

गुद—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँड़ ।

गुदकार, गुदकारा—वि० [हिं० गुद का गुदर] (१) गुददेवर । जिस में गुद हो । (२) गुदगुदा । मोटा । ३०—चाह कपोल गोदा/गुदकारे अरु सु हार सी डोड़ी । परति धाई कै होड़ा होड़ी सय की धीठि निगोड़ी ।—सूदन ।

गुदकील—संज्ञा पुं० [सं०] धर्राँ रोम । बवासीर ।

गुदगुदा—वि० [हिं० गुद] (१) गुददेवर । मांसज । मांस से भरा हुआ । (२) गुदगुदा । जिसकी सतह दवाने से दब जाय । मुलायम ।

गुदगुदाना—किं० अ० [हिं० गुदगुदा] (१) काँख, तलवे, पेट आदि मांसज स्थानों पर उँगली आदि फेरना जिससे सुरसुराहट या मीठी खुजली मालूम हो और आदमी हँसने और उड़लने हूदने लगे । किसी को हँसाने वा छेड़ने के लिये उसके तलवे काँख आदि को सुहराना । (२) मनबहलाव वा विनाद के लिये छेड़ना ।

मुहा०—गुदगुदाना यहाँ तक जहाँ तक हँसी आये = उतनी हँसी दिहानी करना जितनी श्रद्धाँ लगे ।

(३) चित्त को चलायमान करना । उमगाना । उलकंडा उत्पन्न करना ।

गुदगुदाहट—संज्ञा स्त्री० दे० “गुदगुदी” ।

गुदगुदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुदगुदाना] (१) वह सुरसुराहट वा मीठी खुजली जो काँख, पेट आदि मांसज स्थानों पर उँगली आदि छू जाने से होती है ।

किं० प्र०—लगाना—होना ।

मुहा०—गुदगुदी करना = गुदगुदाना ।

(२) उलकंडा । शोक । (३) आह्लाद । उहास । उमंग । (४) प्रसन्नोच्छ्वा । काम का वेग । खुल ।

गुदग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठग्रह का रोग । उदावर्त रोग ।

गुदङ्घिया—संज्ञा पुं० [हिं० गुदर] (१) गुदङ्घी पढ़ने वा ओढ़ने-वाला ।

गौ०—गुदङ्घिया फकीर = गुदङ्घी पहननेवाला फकीर । गुदङ्घिया पीर = गंव के पास का वह पेड़ जिस पर गंधर्व चिपड़े इत्यादि बांधते और मँतौली मानते हैं ।

(२) फटे पुराने कपड़े आदि बेचनेवाला । (३) खेमा, फर्यो, दरी आदि भाड़े पर देनेवाला ।

गुदङ्घी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुथना = मँतौली सिलाई करना] फटे पुराने कपड़ों की कई तहों को एक में गाँथ वा सी कर बनाया हुआ ओढ़ना वा विद्यावन । फटे पुराने टुकड़ों को जोड़ कर बनाया हुआ कपड़ा । कंधा । (साधुओं की गुदङ्घी में कभी कभी रंग विरंगो कपड़ों के जोड़ भी लगते हैं ।

मुहा०—गुदङ्घी में झाल = तुच्छ स्थान में उत्तम वस्तु । छोटे

रघुन में बहुमुख्य वस्तु वा सुष्ठी व्यक्ति । शुद्धी का लाल = कोई ऐसा धनो वा सुष्ठी जिसके रूप रंग वेश आदि से उसका धन वा सुष्ण न प्रगट होता हो । क्या शुद्धी है ? = क्या वित्त है ? क्या भोजन है ? क्या हर्षवत है ? शुद्धी बाजार = संज्ञा पु० [हि० शुद्धी + फा० बाजार] । वा शुष्ठी बाजार] वह बाजार जहाँ फटे पुराने कपड़े वा टूटी फूटी चीजें विक्रयी हैं । यह बाजार प्रायः संध्या के समय लगता है ।

शुद्धहारि-संज्ञा स्त्री० दे० "गोदहारी" ।
शुद्धना-संज्ञा पु० दे० "गोदना" ।
क्रि० अ० [हि० गेरुना] सुभना । धौसना । गढ़ना । सुभना ।
शुद्धनी-संज्ञा स्त्री० दे० "गोदनी" ।

शुद्धपाक-संज्ञा पु० [सं०] शुद्ध के एक जान का रोग ।
विशेष—छोटे बच्चों को यह रोग बहुधा हुआ करता है ।
शुद्धश-संज्ञा पु० [सं०] काँच निकलने का रोग ।
शुद्धमा-संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का मोटा और सुखायम कंबल जो ठंडे पहाड़ी देशों में बुना जाता है ।

शुद्धरना * १-क्रि० अ० [फा० शुन्न + हि० ना (प्रत्य०)] (१) स्वाग करना । छलना रहना । दरगुजर करना । उ०—मिलि न जाय नहिं शुद्धरत धनहिं । सुकथि लखन मन की गति भनहिं ।—तुलसी । (२) निवेदन करना । हाल कहना । उ०—तब हापर ही गुण सो शुद्धे । सुकदेव अर्थं दरबार करे ।—केशव ।

शुद्धरानना * १-क्रि० सं० [फा० शुन्नान + हि० ना (प्रत्य०)] (१) पेश करना । सामने रखना । उपस्थित करना । नगुर करना । भेंट देना । उ०—शुद्धरानी तेहि दूरि ते पारिजात की माल ।—गुमान । (२) निवेदन करना । हाल कहना । उ०—देखि सिन्हिं तब दूरि ते दुरान्यो प्रतिहार । छाये विश्रामिन जू जनु दूजो करतार ।—केशव ।

शुद्धरिगा-संज्ञा स्त्री० दे० "शुद्धरी" ।
संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का मीठू ।
शुद्धरी-संज्ञा स्त्री० दे० "शुद्धरी" ।

शुद्धरैन-संज्ञा स्त्री० [हि० शुन्नना] (१) पड़ा हुआ पाठ शुद्धतापूर्वक सुनाना, जिससे शक्त हो जाय कि पाठ भली भाँति याद किया गया है । जायज़ा । (२) परीचा । इन्तहाल । परताल । उ०—सारे शुद्ध शुभ मराब, केकी कोकिल रसाळ योखत कल पारावत भूरि भेंद गुणिये । मनुहु मदन पंडित श्रयि गिष्णु गुणन मंडित करि अरुनी शुद्धरैन देन पठये प्रसु सुनिये ।—केशव ।

शुद्धीकुर-संज्ञा पु० [सं०] यवासीर । अर्थ ।
शुद्धी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मकदार । गाँड़ ।
शुद्धीज-वि० [फा०] शुद्धीदार । गदरया हुआ । शुद्धकारा । मांस से भरा हुआ ।

शुदाना-क्रि० सं० [हि० गोदना का प्रे०] गोदने की क्रिया कराना ।
शुदाम-संज्ञा पु० दे० "गोदाम" ।

शुदारी-संज्ञा पु० [सं० बदन, हि० तुलम] बदन । शुंठी ।
शुदारी-वि० [हि० गूदा] गूदेदार । जिसमें अधिक गूदा हो । मैसीला । गुदाज । पुष्कारा ।

शुदारा-संज्ञा पु० [फा० शुन्नार] (१) नाव पर पदी पर करने की क्रिया । उतारा । उ०—यहि विधि राति लोग सब जागा । भा भिनसार शुदारा लाग ।—तुलसी ।
क्रि० प्र०—लगाना ।
(२) दे० "गुदारा" ।
वि० दे० "गुदर" ।

शुदियारा-वि० दे० "शुद्धकारा" ।
शुदी-संज्ञा स्त्री० [दे०] नदियों के किनारे का वह स्थान जहाँ नावें बनती हैं वा मरमत के लिये रखी जाती हैं ।

शुदुरी-संज्ञा स्त्री० [हि० गुराना] (१) मटर की फली । (२) एक प्रकार का कीड़ा जो मटर और बने की फसल को हानि पहुँचाता है ।

शुदा-संज्ञा पु० दे० "गूदा" ।
संज्ञा पु० [दे०] पेड़ की मोटी छाल ।
शुही-संज्ञा पु० [हि० गुदा] (१) मीठी । गिरी । किसी फल के बीज के भीतर का गुदा । मरु । (२) सिर का पिछला भाग । ह्योँड़ी ।

मुहा०—अर्थात् शुही में होना वा चली जाना = सुभाई न देना । देल न पड़ना । सम्भ में न आना । किसी वस्तु के प्रत्यक्ष देखे हुए भी उसे न देखना वा न सम्भना वा न मानना ।
गुही नापना = गुही पर धौल लगाना । गुही की नागिन = गर्दन के पीछे शरीर की मैरी जिसे खोना अशुभ समझते हैं ।
गुदी से जीभ खींचना = ज्ञान खींच लेना । बहुत कडा दंड देना । (गाली)
(३) हथेली का मांस ।

गुन-संज्ञा पु० दे० "गुण" ।
गुनगुना-वि० [अ०] नाक में बोलनेवाला ।
वि० दे० "कुनकुना" ।

गुनगुनाना-क्रि० अ० [अ०] (१) गुनगुन शब्द करना । (२) नाक में बोलना । (३) अस्पष्ट स्वर में गाना ।

गुनघंती-वि० [हि० गुन + घंति (प्रत्य०)] [स्त्री० शुन्नती] जिसमें कोई गुण हो । गुणी ।

गुनहगारी-वि० [फा०] (१) पापी । (२) दोषी । अपराधी ।
गुनहगारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) पाप । (२) दोष । अपराध ।
गुनही-संज्ञा पु० [फा० शुन्नह] गुनहगार । अपराधी । उ०—जो गुनही ती मारिए अखिल माहि अमोदि ।—बिहारी ।
गुना-संज्ञा पु० [सं० शुन्न] (१) एक प्रत्यय जो केवल संख्यावा-

चक्र शब्दों के श्रंत में लगता है। यह जिस संख्या के श्रंत में लगता है वतनी ही बार कोई मात्रा, संख्या या परिमाण सूचित करता है। जैसे, दुगुना, त्रैगुना, दसगुना, बीसगुना।

(२) गुणा। (गणित)

गुनाह—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) पाप। (२) दोष। कसूर। अपराध।

गुनाही—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) पाप करनेवाला। पापी। (२) अपराध करनेवाला। दोषी। कुसूरवार।

गुनिया—संज्ञा पुं० [हि० गुण] वह व्यक्ति जिसमें गुण हो। गुणवान्।

संज्ञा स्त्री० [हि० कोन] रातों बड़हयों और संगतरारों का एक झौंझार जिससे वे कोने की सीध नापते हैं। साधन। दे० 'गोनिया'।

संज्ञा पुं० [सं० गुण] वह महाह जो नाव की गूँत खींचता है। गुनरखा।

गुनी—वि०, संज्ञा पुं० दे० 'गुणी'।

गुनेाबर—संज्ञा पुं० [फ्रा० सनेबर] एक प्रकार का देवदार या सनेबर जो उत्तर-पश्चिमी हिमालय में ६००० से १०००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और कड़ी होती है। पर उसका कोई-विशेष उपयोग नहीं होता। चिलगोजा नामक मेवा इसी का फल है। इस वृक्ष को चीनी भी कहते हैं।

गुन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण, हि० गूँत = रस्सी] एक प्रकार का कोड़ा जिससे प्रजमंडल में होली के अवसर पर स्त्री पुरुष एक दूसरे को मारते हैं।

गुणचुप—वि० वि० [हि० गुण + चुप] बहुत गुप्त रीति से। छिपाकर। चुपचाप। चुपके से। जैसे, तुम अपना काम कर के वहाँ से गुणचुप चले थाना।

संज्ञा स्त्री० (१) एक प्रकार की मिठाई जो बहुत हलकी होती है और सुँह में रखते ही घुल जाती है। यह छोबे और मँदे या सिंघारे के आटे को घी में पकाकर और शीरे में डाल कर पनाई जाती है। (२) लकड़ों का एक खेल जिसमें एक गाल फुलाता है और दूसरा उस पर घूँसा मारता है। (३) एक प्रकार का खिलौना।

गुपाल—संज्ञा पुं० दे० 'गोपाल'।

गुप्त—वि० [सं०] (१) छिपा हुआ। गोपनीय।

यो०—गुप्त चर। गुप्त गोष्ठी। गुप्त दान।

(२) गुप्त। जिसके जानने में कठिनता हो। (३) रक्षित।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) पदवी जिसका व्यवहार वैश्य अपने नाम के साथ करते हैं। (२) एक प्राचीन राजवंश जिसने पहले मगध देश में राज्य स्थापित करके सारे उत्तरीय भारत में अपना साम्राज्य फैलाया। इस वंश में समुद्र गुप्त बड़ा प्रतापी

सम्राट हुआ। इस वंश का राज्य ईसा की २वीं और ६वीं शताब्दी में वर्तमान था। चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त और स्कंदगुप्त आदि इसी वंश में हुए थे। गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त का दूसरा नाम विक्रमादित्य भी था। बहुत लोगों का मत है प्रसिद्ध विक्रमादित्य चंद्रगुप्त ही हैं।

गुप्त काशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तीर्थ जो हरिद्वार और यदरीनाथ के बीच में है।

गुप्त चर—संज्ञा पुं० [सं०] वह दूत जो किसी बात का चुपचाप भद लेता हो। मेदिना। जासूस।

गुप्त दान—संज्ञा पुं० [सं०] वह दान जिसे देते समय दाता ही जाने और कोई न जाने। (ऐसा दान लोग प्रायः बिना अपनी नाम प्रकट किए छपवा यन्त्र को छिपा कर देते हैं। ऐसा दान बहुत श्रेष्ठ समझा जाता है।)

गुप्त मार—संज्ञा स्त्री० [सं० गुप्त + हि० मार] (१) ऐसा आघात जिसका शरीर पर कुछ चिह्न न रहे। ऐसी मार जिससे शरीर से रक्त आदि न निकले, जैसे घूँसे, पत्थर आदि की। भीतरी मार। (२) छिपा हुआ दाँव पैँच। ऐसा अग्नि जो बहुत छिपा कर किया जाय।

गुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह नायिका जो सुरति छिपाने का उद्योग करती है। यह छु प्रकार की परकीया नायिकाओं में से एक मानी गई है। काल के अनुसार इसके तीन भेद हैं—(क) भूत सुरति गुप्ता। (ख) वर्तमान सुरति गुप्ता और (ग) भविष्य सुरति गुप्ता। (२) रखी हुई स्त्री। सुरतिन।

गुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छिपाने की क्रिया। (२) रखा करने की क्रिया। (३) तंत्र के अनुसार प्रदण किए जानेवाले मंत्र का एक संस्कार। (४) कारागार। कैदखाना। (५) गुफा। (६) गड्ढा। अहिंसा आदि योग के दंग। यम।

गुप्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० गुप्त] वह लड़ी जिसे अंधे गुप्त रूप से किरच या पत्थरी तखवार इस प्रकार रखी हो कि धारयकता पढ़ने पर तुरंत वाहर निकाली जा सके।

क्रि० प्र०—चलाना।

गुप्तोपदेशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उपदेश जिसमें "मानो", "जानो" आदि सादरय वाचक शब्द न हों। प्रतीयमाना उपदेश।

गुप्ता—संज्ञा पुं० [सं० गुप्ता] (१) कुँदना। क्यूा। (२) फूलों का गुच्छा।

गुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० गुप्ता] वह गहरा और गड्ढा जो जमीन या पहाड़ के नीचे बहुत दूर तक खला गया हो। कंदरा। गुहा।

गुफ्तु—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] यातचीत। घातलाप।

गुबरेला—संज्ञा पुं० [हि० गेवर + रेला (मल०)] एक प्रकार का छोटा क्रीड़ा जो गोबर और मल आदि खाता और इकट्ठा

करता है । यह गोवर की गोलियाँ लुढ़कता हुआ प्रायः खेतों
आदि में पाया जाता है ।

गुहार-संज्ञा पुं० [अ०] (१) गर्द । धूल ।

धा०—गर्द गुहार ।

क्रि० प्र०—उड़ना ।—उड़ना ।—घाना ।

(२) मन में दयाया हुआ क्रोध, दुःख या द्वेष आदि ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकलना ।—रखना ।

गुहारा-संज्ञा पुं० दे० "गुहारा" ।

गुविंद-संज्ञा पुं० दे० "गोविंद" ।

गुवा-संज्ञा पुं० [दे०] रस्ती के बीच में ढाला हुआ फेंदा ।

(लरा०)

गुवाड़ा-संज्ञा पुं० दे० "गुवारा" ।

गुवारा-संज्ञा पुं० [हिं० वृषा] (१) वह धैली या उसके आकार की
और कोई चीज जिसके अंदर गरम हवा या हवा से हलकी किसी
प्रकार की भाप आदि भर कर आकाश में उड़ाते हैं । इसके
बनाने में पहले रेशम या इसी प्रकार की और किसी चीज
के धैले पर रबर की या और वानिश चढ़ा कर उसमें से
हवा या भाप निकलने का मार्ग बंद कर देते हैं और तब
उसमें गरम हवा या हवा से हलकी और कोई भाप भर देते
हैं । इस धैले को एक जाल में भर कर उस जाल के नीचे
कोई बड़ा संदूक या खटोला बांध देते हैं । जिसमें आदमी
बैठते हैं । गुवारा हवा से हलका होने के कारण आकाश में
उड़ने लगता है । उसे नीचे लाने के लिये हस्ते की गरम
हवा या भाप निगाहा देते हैं । (२) गुवारे के आकार का
कागज़ का बना हुआ बड़ा गोला जिसके नीचे तेल से भिगा
हुआ कपड़ा जला कर रख देते हैं । इस के धुँसे से गोला भर
जाता और आकाश में उड़ने लगता है । इसका व्यवहार
आतिशबाज़ी में या विवाह आदि शुभ अवसरों पर होता है ।
(३) एक प्रकार का बड़ा गोला जो आकाश की ओर फेंकने
पर फट जाता है और जिसमें से आतिशबाज़ी छूटती है ।

क्रि० प्र०—उड़ना ।—उड़ाना ।—छटना ।—टोड़ना ।

गुम-संज्ञा पुं० [दे०] समुद्र की खाड़ी । (लरा०)

गुमीला-संज्ञा पुं० [दे०] गोदा जो मल ढकने के कारण पेट में
पड़ जाता है ।

गुम-वि० [फा०] (१) गुप्त । छिपा हुआ । अप्रकट । (२) अम-
विद । (३) चोया हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—जाना ।—होना ।

धा०—गुमनाम । गुमनाह ।

गुमक-संज्ञा धी० दे० "गुमक" ।

गुमकना-क्रि० सं० [सं० गुम] शब्द का भीतर ही भीतर गुँजना ।

गुमकारी-संज्ञा पुं० [दे०] भूरी से दाना अलग करने का काम ।

गुमची-संज्ञा धी० [सं० गुम] गुंजा । गुमची ।

गुमटा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का कीड़ा जो कपास के
फूल को नष्ट कर देता है जिससे फसल मारी जाती है ।

संज्ञा पुं० [सं० गुम + टा (प्रत्य०)] वह गोल वृजन जो
मथ्ये या सिर पर चोटा लगने से होती है । गुलमी ।

गुमटी-संज्ञा धी० [फा० गुम] मकान के ऊपरी भाग में मीठी
या कमरों आदि की छत जो शेष भाग से अधिक ऊपर उठी
हुई होती है ।

संज्ञा पुं० [?] नाव या जहाज़ में का पानी बाहर फेंकने-
पाला महाहवा खलासी ।

गुमना-क्रि० अ० [फा० गुम] गुम होना । खो जाना ।

गुमनाम-वि० [फा०] अप्रसिद्ध । अज्ञात । जिसे कोई न
जानता हो ।

गुमर-संज्ञा पुं० [फा० गुमान] (१) अभिमान । घमंड । शैली ।

(२) मन में छिपया हुआ क्रोध या द्वेष आदि । गुहार (३)
धीरे धीरे की धातचीत । कानाकुमी । उ०—सिरे नैन श्रंजन
तिहारे अघरन पर शोभा देखि गुमर बढ़ाये सब सखियाँ ।—
रसकुमुमाकर ।

गुमराह-वि० [फा०] (१) कुपयागी । घुरे मार्ग में चलनेवाला ।

(२) भूला हुआ । भटका हुआ ।

गुमराही-संज्ञा धी० [फा०] (१) भूल । अम । (२) कुपय ।
घुरा मार्ग ।

गुमान-संज्ञा पुं० [फा०] (१) अनुमान । कयास । (२) घमंड ।
अहंकार । गर्व ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गुमाना-क्रि० सं० [फा० गुम = खंदा हुआ] खोना । गँवाना ।

गुमानो-वि० [हिं० गुमान] घमंडी । अहंकारी । गस्त्र करनेवाला ।

गुमादना-संज्ञा पुं० [फा०] वह मनुष्य जो किसी बड़े व्यापारी
या कोठीवाल की ओर से बड़ी छद्मि लिखने या माल
खरीदने और बेचने पर नियुक्त हो ।

गुमादतागीरी-संज्ञा धी० [फा०] (१) गुमारते का पद । (२)
गुमारते का काम ।

गुमितना-क्रि० अ० [सं० गुमित] लिपटना । लपेटा जाना ।

गुमितना-क्रि० सं० [सं० गुमित] लपेटना ।

गुमट-संज्ञा पुं० [फा० गुंबद] गुंबद । गुंबज ।

गुम्मा-संज्ञा पुं० [दे०] बड़ी मोटी हैंट जो दरगहों वगैरे की
दमरालों में लगती है ।

गुर्रबा-संज्ञा पुं० दे० "गुर्रबा" ।

गुर-संज्ञा पुं० [सं० गुरु मय] वह साधन या क्रिया जिसके करते ही
कोई काम तुरंत हो जाय । मूलमंत्र । सार ।

संज्ञा पुं० [सं० गुण] तीन की संख्या । (डि०)

पिंडा पुं० दे० "गुर" ।

संज्ञा पुं० दे० "गुरु" ।

गुरखई—संज्ञा स्त्री० [सं० गो + हि० खलना] एक प्रकार की रेहन वा यंधक ।

गुरखई—संज्ञा स्त्री० [दे०] वह रेहन जिसमें रेहन रखनेवाला रेहन रखी हुई जमीन की १/५ मालगुजारी देता है ।

गुरगा—संज्ञा पुं० [सं० गुरुग] [स्त्री० गुरगी] (१) गुरु का अनुगामी । चेला । शिष्य । (२) दहलुआ । नौकर । छोकरा । अनुचर । (३) चर । दूत । गुप्त चर । जासूस ।

मुहा०—गुरे छूटना = दूतों वा गुप्त चरों का किसी कार्य के निपे प्रस्थान करना ।

गुरगाची—संज्ञा पुं० [फा०] मुंडा जूता ।

गुरच—संज्ञा पुं० दे० "गुरुच" ।

गुरचियाना—क्रि० प्र० [हि० गुरुच] सिकुड़ कर टेढ़ा मेढ़ा हो जाना ।

गुरचों—संज्ञा स्त्री० [हि० गुरुच] सिकुड़न । बट । थल ।

गुरचों—संज्ञा स्त्री० [अनु०] परस्पर धीरे धीरे बातें करना । काना-फूसी ।

गुरज—संज्ञा पुं० दे० "गुरुज" ।

गुरजा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पक्षी जिसे लोवा भी कहते हैं ।

गुरदा—संज्ञा पुं० [फा० । सं० गेर्द] (१) रीढ़दार जीवों के श्रंदर का एक श्रंग जो कलेजे के निकट होता है । इसका रंग लाली लिए भूरा और आकार आलू का सा होता है । इसके चारों ओर चरबी मढ़ी होती है । साधारणतः जीवों में दो गुरदे होते हैं जो रीढ़ के दोनों ओर स्थित रहते हैं । शरीर में इनका काम पेशाब को बाहर निकालना और खून को साफ रखना है । यदि इनमें किसी प्रकार का दोष आ जाय तो रक्त विगड़ जाता और जीव निरबल हो जाता है । मनुष्य में चारों गुरदा कुछ ऊपर की ओर और दाहिना कुछ नीचे की ओर हट कर होता है । मनुष्य के गुरदे प्रायः ८-१६ श्रंगल लंबे ४ श्रंगल चौड़े और २ श्रंगल से अधिक मोटे होते हैं । (२) साहस । हिम्मत । जैसे, (क) वह बड़े गुरदे का आदमी है । (ख) वह बड़े गुरदे का काम है । (३) एक प्रकार की छोटी तोप । (४) लोहे का एक बड़ा करछा या चमचा जिससे गुड़ घनाते समय डबलता हुआ पाग चलाते हैं ।

गुरनियमालू—संज्ञा पुं० [दे०] स्तालू जमीकंद आदि की जाति का एक कंद जो बंगाल और मध्य, पश्चिम तथा दक्षिण भारत में होता है । इसका रंग ऊपर से लाल होता है और इसकी बहुत बड़ी लता होती है ।

गुरमुख—वि० [हि० गुरु + मुख] जिसमें गुरु से मंत्र लिया हो । दीक्षित ।

गुरमटा—संज्ञा पुं० [हि० गुरु + अं] मीठे आम का बृक्ष । आम का वह बृक्ष जिसका फल मीठा होता हो । ३०—बृच

गुरमर यैति अमृत फल साह्ये । जन्म जन्म की मूल से तुतं बुभाह्ये ।—कवीर ।

गुरवार—संज्ञा पुं० दे "गुस्वार" ।

गुरवी—वि० [सं० गुरु] घमंडी । घँकरी । ३०—देहे कृष्ण दूसरी उरवी । गुरु के सखिस्त बुभावत गुवी ।

गुरसल—संज्ञा पुं० [दे०] गिलगिर्ला । सिराही । किलहँटी ।

गुरसी—संज्ञा स्त्री० दे० "गोरसी" वा "घोरसी" ।

गुरसुम—संज्ञा पुं० [दे०] सोनारों की एक प्रकार की छेनी ।

गुरहा—संज्ञा पुं० [दे०] (१) वह तपसा जो छोटी नावों में श्रंदर की ओर दोनों सिरों पर जड़ा रहता है । इन्हीं तपसों में से एक पर खेनेवाला मछाह बैठता है । (२) एक प्रकार की छोटी मछली जो प्रायः एक यासिद्धन लंबी होती है । यह युक्तप्रान्त, बंगाल और आसाम की नदियों में पाई जाती है ।

गुराई—संज्ञा स्त्री० दे० "गोराई" ।

गुरात्र—संज्ञा पुं० [दे०] (१) तोप लादने की गाड़ी । ३०—तिमि घर नाल और करनालें सुतरवाल जंगालें । गुर गुरात्र रहके भले तहें लागे विपुल ययालें ।—रघुनाम । (२) वह यद्दी नाव जिसमें केवल एक मत्तल हो । (लख०) ।

गुराच—संज्ञा पुं० [हि० गुरिया] (१) चोपियों को खिलाने के लिये चारा टुकड़े टुकड़े करने की क्रिया । (२) वह हथियार जिससे चारा काटा जाता है । गड़ासा ।

गुरिदा—संज्ञा पुं० [फा० गुर्दा] गदा । (फ०) । ३०—मार्घ थासुधि गुरिद सदाई । मदि पर पटकत थरि मरि जाई ।—रघुनाम ।

गुरिदल—संज्ञा पुं० [दे०] (१) किलकिला की जाति का एक पक्षी जो अलासियों के निकट रहता और मछली खाता है । इसे बदामी भी कहते हैं । (२) कचनार का पेड़ ।

गुरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गुरिका] (१) यह दाना, मनका या गंड जो किसी प्रकार की माला या लड़ी का एक श्रंग हो । जैसे, माला की गुरिया, रीढ़ की गुरिया, सांप की गुरिया, आदि । (२) चौकरा या गोल छोटा टुकड़ा जो काट कर अलग किया गया हो । कटा हुआ छोटा खंड ।

संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) दरी बुनने के कार्य की वह बड़ी लकड़ी या शहतीर जिसमें बै का बर्तस लगा रहता है । इसे किल्लन भी कहते हैं । (२) हंगे वा पोटे की वह रस्सी जिसका सिरा हंगे में और दूसरा बौलों की गरदन के पास बंध के बीच में बँधा रहता है ।

गुरिहा—संज्ञा पुं० दे० "गोरिहा" ।

गुरु—वि० [सं०] [संज्ञा गुरुच, गुरुता] (१) लंबे चौड़े आकारवाला बड़ा । (२) भारी । चञ्चली । जो लील में अधिक हो । (३) कठिनता से पकने या पचनेवाला (खाद्य पदार्थ) । (४) चौड़ा । (डि०) ।

संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गुरुचाली] (१) देवताओं के आचार्य, गुरुपति । (२) गुरुपति नामक ग्रह ।

धौ०—गुरुवार ।

(३) पुत्र्य नक्षत्र, जिसके अघिष्ठाता वृहस्पति हैं । (५) धपने धपने गुरु के अनुसार यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला, जो कि मायत्री मंत्र का उपदेश होता है । आचार्य्ये । (२) किसी मंत्र का उपदेश । (६) किसी विद्या या कला का शिक्षक । सिखाने, पढ़ाने या बतलानेवाला । वस्तुत् ।

धौ०—गुरुवल ।

(७) दो भाद्रपदोंवाला अक्षर । दीर्घ अक्षर जिस की दो मात्रायाँ का कलाएँ गिनी जाती हैं । जैसे, 'राम' में 'रा' । (पिं गल) ।
विशेष—संयुक्त अक्षर के पहलेवाला अक्षर (लघु होने पर भी) गुरु ही माना जाता है । पिं गल में गुरु वर्ष का संकेत ५ है । अनुस्वार और विसर्गयुक्त अक्षर भी गुरु ही माने जाते हैं ।
(८) वह ताल जिसमें एक दीर्घ या दो सप्ताप्य मात्राएँ हों । पिं गल के गुरु की भाँति ताल के गुरु का चिह्न भी ५ ही है । (संगीत) । (९) वह व्यक्ति जो विद्या, बुद्धि, बल, धन या पद में अपने से बड़ा हो ।

धौ०—गुरु जन ।

(१०) मन्दा । (११) विष्णु । (१२) शिव । (१३) कौतू ।

गुरुभ्राह्म—संज्ञा धौ० [सं० गुरु + भ्राह्म (भव०)] (१) गुरु की धी । (२) वह धी जो शिक्षा देती हो ।

गुरुधार्—संज्ञा धौ० [सं० गुरु + धर् (प्रत्य०)] (१) गुरु का धर्म । (२) गुरु का कृत्य । गुरु का काम । (३) चालाकी । धूर्तता ।

गुरुकु—इली—संज्ञा धौ० [सं०] फलित ज्योतिष में एक चक्र जिसके द्वारा जन्म नक्षत्र के अनुसार एक एक वर्ष के अघि-पति प्रह का निश्चय किया जाता है । इन चक्र के मध्य में गुरु अर्थात् वृहस्पति रखे जाते हैं और उनके आठ और आठ प्रह रखे जाते हैं । इसी से इस चक्र को गुरुकुंडली कहते हैं ।

गुरुकुल—संज्ञा पुं० [सं०] गुरु, आचार्य्य या शिक्षक के रहने का वह स्थान जहाँ वह विद्यार्थियों को अपने साथ रह कर शिक्षा देता हो ।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवर्ष में यह प्रथा थी कि गुरु और श्राचार्य्य लोग सत्पात्रय मनुष्यों के निवास-स्थान से बहुत दूर एक ही स्थान में रहते थे और लोग अपने बालकों को शिक्षा के लिये वहीं भेज देते थे । वे बालक जब तक उनकी शिक्षा समाप्त न होती वहाँ रहते थे । येने ही स्थानों को गुरुकुल कहते थे ।

गुरुधर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रताल के छः भेदों में से एक भेद । (संगीत) ।

गुरुभ्रा—संज्ञा पुं० [सं०] वह पापी जिसने अपने किसी गुरु जन को मार बाका हो । गुरु को मार बाकनेवाला व्यक्ति ।

गुरुच—संज्ञा धौ० [सं० गुरुच] एक प्रकार की मोटी पेल जो रस्सी के रूप में बहुत दूर तक चली जाती है, पैदों पर चढ़ी मिलती है और बहुत दिनों तक रहती है । इसकी पत्थियाँ पान के आकार की गोल गोल होती हैं । इसकी गाँठों में से जटाएँ निकलती हैं जो बड़ बड़ जड़ पकड़ लेती हैं । गुरुच दो प्रकार की देखने में आती है । एक में फल नहीं लगते । दूसरी में गुच्छों में मशरूम की तरह के फूल, फल लगते हैं और उसके पत्ते कुछ छोटे होते हैं । गुरुच की डंडल का प्रयोग आयुर्वेदीय औषधियों में बहुत होता है । वैद्यक में गुरुच तिक्त, उष्ण, मलैरोधिक, अग्निदीपक तथा ज्वर, दाह, धमन, कोष्ठ आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है । नीम पर की गुरुच दवा के लिये अच्छी मानी जाती है । इसे बूट कर इसका सत भी पचाने हैं । ज्वर में इसका काड़ा बहुत दिया जाता है ।

पर्याय—गुरुची । अमृतवल्ली । कुंडली । मधुपर्णी । सोमवल्ली । विशाल्या । तंत्री । निजैरा । कम्पादनी । क्षिप्ररहा । अमृता । जीर्वातिका । उद्धारा । वरा । ज्वरारि । श्यामा । चक्रांगी । मधुपर्णिका । रसापनी । क्षिप्वा । मिषकप्रिया । चंद्रहासा । नागकुमारिका । कुम्भा ।

गुरुच स्थाप—संज्ञा पुं० [सं०] बड़हों का रंदि की तरह का एक औजार जिससे लकड़ी गोल की जाती है ।

गुरुचंद्रा—वि० [सं० गुरुचंद्राय] गुरु और चंद्रमाहृत । जो गुरु और चंद्रमा के योग से होता हो । (ज्योतिष)

विशेष—ज्योतिष में वृहस्पति और चंद्रमा का कर्कराशि में होना गुरुचंद्रा योग कहलाता है । जिसकी जन्मकुंडली में यह योग लग्न या दशम स्थान में पड़ता है वह दीर्घजीवी और भाग्यवान् होता है ।

गुरुजन—संज्ञा पुं० [सं०] बड़े लोग । माता पिता आचार्य्य आदि ।

गुरुनन्द—संज्ञा पुं० [सं०] विमाता से गमन करनेवाला पुरुष । (मनु ने येने पुरुष को महापातकी लिया है और उसके लिये यही प्रायश्चित्त का दंड लिखा है कि वह या तो जलने हुए लोहे के बरतन में सोकर वा लोहे की जलती हुई धी को आलिंगन करके मर जाय ।)

गुरुनन्दरग—संज्ञा पुं० दे० "गुरुनन्द" ।
गुरुता—संज्ञा धौ० [सं०] (१) गुरुत्व । भारीपन । (२) महन् । वरप्पन । (३) गुरुपन । गुरु का कर्मण्य । गुरुधार् ।

गुरुताई—संज्ञा धौ० [सं० गुरु + ई० (प्रत्य०) दे० "गुरुता" ।

गुरुतोमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक खंड जो तोमर खंड के अंत में दो मात्राएँ और रर देने से घन जाता है । जैसे, सल धी प्रसेन पुकारि के । धरते मये धनु धारि के ।

गुरुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भारीपन । वजन । बोझ । विशेष—पदार्थ विज्ञान के अनुसार पदार्थों का गुरुत्व मास्य में,

उस वेग या शक्ति की मात्रा है जिससे वह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति द्वारा नीचे की ओर जाता है। वेग की इस मात्रा में उस श्रंखर का विचार भी कर लिया जाता है जो अणु पर घूमती हुई पृथ्वी के उस वेग के कारण पड़ता है जिससे वह पदार्थों को (केंद्र से) बाहर हटाती है। अतः आकर्षण वेग की मात्रा समुद्रतल और मांति वृत्त पर ३२६.१ और भ्रुव पर ३८०.१ इंच प्रति सेकेंड होती है। यह गुरुत्व वेग समुद्रतल पर की अथेषा पदार्थों पर कुछ कम होता है, अर्थात् वसमें प्रति दो मील की ऊँचाई पर सहस्रांश की कमी होती जाती है। किसी पदार्थ का वज़न जितना मांतिवृत्त पर तौलने से होगा उससे भ्रुव पर ले जाकर उसे तौलने से ३२६ वॉ भाग अधिक रहेगा। वैज्ञानिक सूत्र में रूप, रस आदि केवल १० गुण बतलाए हैं पर प्रशस्तपद भाष्य में गुरुत्व, द्रव्य आदि ६ गुण और बतलाए हैं। गुरुत्व को मूल और सामान्य गुण माना है, अर्थात् ऐसा गुण जो पृथ्वी, जल, वायु आदि स्थूल वा सूक्ष्म द्रव्यों में पाया जाता है तथा जो अनेक ऐसे द्रव्यों में रहता है। प्राचीन नैययिक केवल जल और मिट्टी में ही गुरुत्व मानते थे। उनके मत से तेज, वायु आदि में गुरुत्व नहीं। सांख्य मतवाले गुरुत्व को तमोगुण का धर्म मानते हैं, सत्व वा रजोगुण में गुरुत्व नहीं मानते। आज कल की परीक्षाओं द्वारा वायु आदि का गुरुत्व अच्छी तरह सिद्ध हो गया है।

(२) महत्त्व। यद्व्यन। (३) गुरु का काम।

गुरुत्व-केंद्र—संज्ञा पु० [सं०] पदार्थ विज्ञान में पदार्थों के बीच वह बिंदु जिस पर यदि उस पदार्थ का सारा विस्तार समेट कर आजाय तो भी गुरुत्वाकर्षण में कुछ श्रंखर न पड़े। किसी पदार्थ में वह बिंदु जिस पर समस्त वस्तु का भार एकत्रित हुआ और कार्य करता हुआ मान सकते हैं।

विशेष—इस गुरुत्वकेंद्र का पता कई रीतियों से लग सकता है। वृत्ताकार या गोल वस्तुओं का केंद्र ही गुरुत्वकेंद्र होता है। पर बेलनाकार वस्तुओं में गुरुत्वकेंद्र वह होता है जिसे किसी नाक पर टिकाने से वह पदार्थ ठीक ठीक तुल जाय, इधर उधर झुका न रहे। प्रायिक तारा या तुला में इस प्रकार का गुरुत्वकेंद्र होता है।

गुरुत्व-लंब—संज्ञा पु० [सं०] वह रेखा जो किसी पदार्थ के गुरुत्वकेंद्र से सीधे नीचे की ओर खींची जाय।

गुरुत्वाकर्षण—संज्ञा पु० [सं०] वह आकर्षण जिसके द्वारा भारी वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती हैं।

विशेष—इस आकर्षण शक्ति का योद्धा बहुत पता भास्कराचार्य को १२०० संवत् में लगा था। उन्होंने अपने सिद्धांत-शिरोमणि में स्पष्ट लिखा है—“आकृष्टिशक्तिश्च महीतयात, तस्य गुरु स्वाभिमुखं सशक्त्या। आकृत्यते तस्यतटीय भाति,

समे समन्तात्क पतितवयं रवे।” अर्थात् पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है इसी से वह आकाशस्थ (निराधार) भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है। जो पदार्थ गिरते हैं वे पृथ्वी के आकर्षण से ही गिरते हैं। योरप में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का पता सन् १६८० ई० में न्यूटन को लगा। उसने अपने बगीचे में पेड़ से फल नीचे गिरते देखा। उसने सोचा कि वह फल जो ऊपर या अगल गलल की ओर न जाकर नीचे पृथ्वी की ओर गिरा इसका कारण पृथ्वी की आकर्षण शक्ति है। इस आकर्षण की विशेषता यह है कि यह ज्वल और नष्ट नहीं किया जा सकता और न किसी व्यवधान को बीच में पड़ने से वसमें कुछ रुकावट या श्रंखर आता है।

गुरुदक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्या पढ़ने पर जो दक्षिणा गुरु को दी जाय। आचार्य की भेंट।

विशेष—जब लोग गुरु के पास विद्या पढ़ने जाते थे तब घर जाने के समय गुरु को वही दक्षिणा देते थे जो गुरु मांगे और गुरु का भरपूर सेतोप कर आगत की पदवी पाकर गृहस्थ देते थे।

गुरुद्वैत—संज्ञा पु० [सं०] पुत्र्य नष्टय।

गुरुद्वारा—संज्ञा पु० [सं०] गुरु + द्वार] गुरु का स्थान। आचार्य वा गुरु के रहने की जगह।

गुरुपुण्य—संज्ञा पु० [सं०] बृहस्पति के दिन पुत्र्य नष्टय के पढ़ने का योग। ज्योतिष में यह एक अच्छा योग माना जाता है।

गुरुम—संज्ञा पु० [सं०] (१) पुत्र्य नष्टय। (२) मीन राशि। (३) धनुराणि।

गुरुमार्ग—संज्ञा पु० [सं०] गुरु + हिं० मार्ग] देा या देा से अधिक ऐसे पुरुष जिनमें से प्रत्येक का गुरु बही हो जो दूसरे का। एक ही गुरु के शिष्य।

गुरुमुख—वि० [सं०] गुरु + मुख] दीक्षित। जिसने गुरु से मंत्र लिया हो।

क्रि० प्र०—करता।—होना।

गुरुमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरु + मुखी] गुरु नामक की बत्तारी हुई एक प्रकार की क्षितिप जो पंजाप में प्रचलित है। यह देव नगर का परिचित स्तूप माना है।

गुरुबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] संजीवनी राम का एक भेद।

गुरुवार—संज्ञा पु० [सं०] गुरुवार] बृहस्पति का दिन। बृहस्पति। शंके। सप्ताह का पाँचवा दिन

विशेष—बृहस्पतिजी देवताओं के गुरु थे इसी से गुरु शब्द से बृहस्पति का ग्रहण होता है।

गुरुविनी—संज्ञा स्त्री० दे० “गुरुविनी”।

गुरुद्वार—संज्ञा पु० [सं०] (१) पोखराज नाम का दर। (२) गोमिंद नामका स्तूप।

गुरुसिंह—संज्ञा पु० [सं०] एक पर्व जो उस समय लगता है जब बृहस्पति सिंह राशि पर आता है। इस पर्व में नासिक चैत्र

की यात्रा और गोदावरी नदी का स्नान करना पुण्य समझा जाता है। उ०—सुनौ प्रभास महात्म राजा। अथ कहै हरत पुन्य कर ताजा। गोदावरी गुरसिंह नदाई। कुंभ माहिँ हरि क्षेत्र मुहाई।—गि० दा०

गुरू-संज्ञा पुं० [सं० गुरू] गुरू। अघ्यापक। आचार्य्य।

धौ०—गुरूघटाल = (१) बड़ा भारी चात्ताक। अत्यंत चतुर। (२) धूर्त। चातुराज।

गुरेट-संज्ञा पुं० [हिं० गुर, गृह + रेट] चार पंच हाथ के बंडे में लगा हुआ एक प्रकार का बेलन जिससे कढ़ाह में पकता हुआ ईल का रस चलाया जाता है।

गुरेरना-कि० सं० [सं० गुरू = बड़ा + रेना = शक्तता] आसिँ फाड़ कर देपना। धूर्ता।

गुरेरा-संज्ञा पुं० दे० "गुलेरा"। उ०—वेई गड़ि गाईं परीं उष्यो हार दिवे न। आन्यो मोरि मंतग मनु मारि गुरेरनि सैन।—विहारी।

गुरे-संज्ञा पुं० [फा०] गद्दा। सोटा। उ०—कोई हुकर शकर पर कोई। कर में गुजें अयानक सोई।—रघुनाथ।

धौ०—गुरेदार = गदाधारी सैनिक।

संज्ञा पुं० [फा० गुर्व] कोट या शहरपनाह की दीवार का वह स्थान जो कुछ मोक्षकार बना दिया जाता है। यहाँ पर पेदाओं के लिये विशेष श्रोत होती है जिसमें छिपे छिपे वे आक्रमणकारी शत्रु पर वार कर सकते हैं। गुर्जा। उरज। उ०—कंचन कोट धँगरे कलशा गोपुर गुर्जे दुधारा।—रघुराज।

गुरेमार-संज्ञा पुं० [फा० गुर्व + हिं० मार] एक प्रकार के सुसलमान फकीर जो लोहे का गुर्जा लिए रहते हैं। ये दूकानों पर मांगते फिरते हैं। यदि ये कहीं कुछ नहीं पाते हैं तो वही गुर्जे से वे अथनी आरि पर या और किसी धंग पर आघात करते हैं। इन्हें मुँडधरि भी कहते हैं।

गुरे-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुजरात देश। (२) गुजरात देश का निवासी। (३) एक जाति। गूर।

गुरेराट-संज्ञा पुं० [सं० गुर्व + राट] गुजरात देश।

गुरेरी-संज्ञा स्त्री० [म०] (१) गुजरात देश की स्त्री। (२) भैरव राग की स्त्री। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है। इसमें तीव्र, मध्यम और शेष सब स्वर कोमल लगते हैं। यह रामकली और क्षलित को मिला कर बनती है। इसके गाने का समय दिन के १० बजे से १६ बजे तक है।

धौ०—गुरेरी वेड़ी = संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

गुरे-संज्ञा पुं० [फा०] गुर्दिस्तान का निवासी।

गुरिस्तान-संज्ञा पुं० [फा०] फारस के उत्तर का एक प्रदेश जिसका कुछ भाग आज बख्तर खान के अधीन रहता है। इसे कुर्दिस्तान भी कहते हैं।

गुरी-संज्ञा पुं० [?] यह रस्ती जिससे पुनिवा धनुही का फारहा कसते हैं।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) मुहरम महीने की द्वितीया का र्थाद। द्वितीया तिथि। (२) तातील। नागा।

मुहा०—गुरी करना = (१) तातील करना। डुटी करना। (२) लंघन करना। फाका करना। गुरी देना = (१) नागा करना। (२) लंघन करना। फाका करना। गुरी धताना = (२) तातील का वादा करना। (२) नागा करना। (३) लंघन करना। (४) टालटूल करना।

गुरीना-कि० अ० [अ० अ०] (१) क्रोधवश गले से भारी धावाड़ निकालना। डराने के लिये धुर धुर की तरह गंभीर शब्द करना। (जैसा, कुत्ते विली आदि करते हैं।) उ०—कुत्ता गुराँ कर चढ़ बैठा। (२) क्रोध या अस्मिमान के कारण भारी और कड़ेय स्वर से बोलना। उ०—तुम काम भी विगाड़ते हो और कहने से गुरीते हो।

गुरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] सुने हुए जी।

गुरीदित्य-संज्ञा पुं० [सं०] गुर्वत। सूर्य्य और वृहस्पति का एक राशि पर गमन। विवाह आदि शुभ कार्य्य इस योग में वर्जित हैं।

गुरिणी-वि० स्त्री० [सं०] सगर्वा। गर्भवती। उ०—प्रियतमा पतिदेवता जेहिँ उमा रत्ना सिद्धाईं। गुरिणी सुकुमारि सिय तियनिथि समुक्ति सकुचार्हिं।—गुजरी।

गुरी-वि० स्त्री० [सं०] गर्भवती। गर्भिणी।

संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी या छोटी स्त्री। उ०—निगम अगम अगत गुरिँ तथ गुण कपन उविधर करत जेहिँ सहस जीहा।—गुजरी।

गुल-संज्ञा पुं० दे० "गुहुच"।

गुल-संज्ञा पुं० [फा०] (१) गुलाब फूल।

धौ०—गुलकंद। गुलरोपण।

(२) फूल। शुष्य।

धौ०—गुलदान। गुलदस्ता। गुलकारी, आदि।

मुहा०—गुल खिलना = (१) विचित्र घटना होना। अद्भुत बात होना। ऐसी बात होना जिसका अनुमान पहले से लोगों के मन में न हो। मजेदार बात होना। कोई ऐसी घटना होना जिस से लोगों के मन में हो। (२) बल्लेबाजी खेला होना। उपद्वय 'मचना। उ०—हमने उसकी सारी बरतल उसने पर कह दी है, देखो कैसे गुल खिलता है। गुल खिलाना = (१) विचित्र घटना उत्पन्न करना। ऐसी बात उत्पन्न करना जिसका अनुमान पहले से लोगों के मन में न हो। (२) बल्लेबाजी खेला करना। उपद्वय 'मचना। गुल फलना = (१) कामना या कर्मादि के फल पड़े बनाना। (२) कोई विद्वत्पण या अज्ञेयता काम करना। गुल खिलाना।

(३) पशुओं के शरीर में फूल के आकार का भिन्न रंग का गोल दाग ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

(४) फूल के आकार का वह गडढा जो फूले हुए मालों में हँसने आदि के समय पड़ता है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

(५) वह चिह्न जो मनुष्य या पशु के शरीर पर गरम की हुई धातु आदि के दागने से पड़ता है । दाग । छाप ।

मुहा०—गुल खाना = अपने शरीर पर गरम धातु से दागना ।

क्रि० प्र०—दागना ।—देना ।

(६) दीपक आदि में बत्ती का वह धंरा जो विलकुल जल जाता है ।

क्रि० प्र०—काटना ।—पड़ना ।

धौ०—गुलगीर = चिराग की बत्ती काटने की कैंची ।

मुहा०—(चिराग) गुल करना = (चिराग) बुझाना या ठंडा करना ।

(७) तमाहू का वह जला हुआ धंरा जो चिलम पाने के बाद धच रहता है । जड़ा । (८) जूते के तले का वह चमड़ा जो पृष्ठी के नीचे रहता है और जिसमें नाल आदि लगाई जाती है । जूते का पान ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—जड़ना ।

(९) कारचैबी की बनी हुई फूल के आकार की बड़ी टिकुली जिसे कहीं कहीं खिया सुंदरता के लिये अपनी कनपटी पर लगाती हैं । (१०) नूने की वह गोत्र बिंदी जो थारों दुखने के समय उनकी लाठी दूर करने के लिये कनपटियों पर लगाते हैं ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(११) किसी चीज पर बना हुआ भिन्न रंग का कोई गोल निशान ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—घनना ।

(१२) अरस का डेला । (१३) एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना । (१४) जलता हुआ कोपला । धंगार ।

मुहा०—गुल बँधना = (१) आग का अचूकी तरह गुलम जाना ।

(२) पास में कुछ धन हो जाना । कुछ पूँजी हो जाना ।

(१५) कोपले या गोबर का बना हुआ छोटा गोला जिसे धाग को अधिक देर तक रखने के लिये शँगीठी आदि में राख के नीचे गाड़ देते हैं । (१६) सुंदरी की । मायिका ।

संज्ञा पु० [देय०] (१) हलवाई का भट्टा । (२) खेतों में बहुत दूर तक पानी ले जाने के लिये बना हुआ सह धराहा जो जमीन से कुछ ऊँचा होता है । (३) अरस और कान के बीच का स्थान । कनपटी । उ०—गुल तासु गोली सों फुटी । कर की न धाग तऊ छुटी ।—सुंदर ।

गुल-संज्ञा पु० [फा०] शोर । हल्ला ।

धौ०—गुल-गपाड़ा ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।

गुल-अज्ञायव-संज्ञा पु० [फा० गुल + अ० अज्ञायव = अज्ञायव का बहु०] (१) एक प्रकार का फूल । (२) इस फूल का धौधा ।

गुल-अज्ञास-संज्ञा पु० [फा० गुल + अ० अज्ञास] अज्ञास नाम का धौधा जिसमें बरसात के दिनों में लाल या पीले रंग के फूल लगते हैं ।

गुल-अज्ञासी-वि० [फा० गुल + अ० अज्ञास + ई (प्रत्य०)] हलकी स्वादी लिप हुए एक प्रकार का खुलता लाल रंग जो ४ छटांक शहाब के फूल, ३ छटांक ग्राम की छटाई और ८-९ माथे नील के मिलाने से बनता है । इसमें यदि नील की मात्रा बढ़ाते जाय तो क्रमशः कर्नादिया, किरमिगो, अवीरी और सौसनी रंग बनता जाता है ।

गुल-अदर्शी-संज्ञा पु० [फा०] एक प्रकार का पीले रंग का फूल ।

गुलउर्दा-संज्ञा पु० दे० "गुल्लूर" ।

गुल-पौररंग-संज्ञा पु० [?] एक प्रकार का रंग ।

गुलकंद-संज्ञा पु० [फा०] मिस्री या चीनी में मिसली हुई अमल-तास या गुलाब के फूलों की पत्तरियाँ जो धूर की गरमी से पकाई जाती हैं । इनका व्यवहार प्रायः दस्त साफ़ करने के लिये होता है ।

विशेष—सेवती के फूलों का जो गुलकंद बनता है उसकी तालीर ठंडी होती है । इसमें विशेषता यह है कि इसे चंद्रमा की चांदनी में सिद्ध करते हैं ।

गुलकट-संज्ञा पु० [फा० गुल + हि० काटना] शीशम की लफड़ी का बना हुआ छीपियों का एक प्रकार का टप्या जिससे कपड़े पर बेल सूटे छापे जाते हैं ।

गुलकार-संज्ञा पु० [फा०] किसी प्रकार के बेल सूटे बनानेवाला कारीगर ।

गुलकारी-संज्ञा धी० [फा०] (१) किसी प्रकार के बेलसूटे या फूल पत्ती इत्यादि बनाने, तरारने या काढ़ने का काम । (२) कोई ऐसा काम जिसमें बेल सूटे आदि बने हों ।

गुलकेश-संज्ञा पु० [फा० गुल + केश] (१) सुगंध का धौधा । कलना । (२) सुगंध का कलने का फूल । उ०—जो गुल-केश के फूल सारहें । मंग तुरीन के जीन कषाहें ।—गुमान ।

गुलखैर-संज्ञा पु० [फा० गुल + खैर] (१) एक धौधा जिसमें नीले रंग के फूल लगते हैं । (२) इस धौधे का फूल ।

गुलगन्धिया-संज्ञा धी० दे० "गिलगिलिया" ।

गुल-गपाड़ा-संज्ञा पु० [अ० गुल + गप] बहुत अधिक चिटाहट । शोर । गुल । हल्ला ।

गुलगीर-संज्ञा पु० [फा०] चिराग का गुल बतारने की कैंची । बत्ती काटने की कैंची ।

गुलगुल-वि० [हि० गुलगुल] नरम । मुलायम । कोमल ।

गुलगुला-वि० पुं० [हि० गुलगुल] कोमल । नरम । मुलायम ।

संज्ञा पुं० [हि० गेल + गेला] (१) एक प्रकार का पकवान जो ममीरी छाटे या मँदे के लहसू के आकार के गोल टुकड़े बना कर धी या तेल में पकाने से बनता है । यह प्रायः मीठा और कभी कभी ममकीन भी होता है । (२) कनपटी । श्राव और कान के बीच का वह स्थान जहाँ घाँस के कुछ रोमों को रोकने के लिये गुल लगवाए जाते हैं ।

संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की घास जो प्रायः ऊसर ज़मीन में उगती है ।

गुलगुलाना-क्रि० सं० [हि० गुलगुल] किसी ग़द्वेदार या उसी प्रकार की और किसी चीज़ को दबा या मल कर मुलायम करना । जैसे, रस सुसने के लिये आम गुलगुलाना ।

गुलगुलिया-संज्ञा पुं० [?] बंदर नचानेवाला । मदारी ।

गुलगुली-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मड़ली जो हिमालय के भूतनों में बहुत पाई जाती है । यह लगभग २ हाथ तक लंबी होती है और इसका मांस बहुत कठिंदर होता है ।

गुलगोधाना-संज्ञा पुं० [हि० गुलगुल + तन] ऐसा नाटा मोटा शरीर जिसके गाल आदि श्रेय लक्ष फूले हों । यह निम्नका शरीर, लूय भा आ और फूला हो ।

मुहा०—गुलगोथना सा = मोटा ताना । फूले हुए गानवाका ।

गुलचना-क्रि० सं० [हि० गुलचा] गुलचा मारना ।

गुलचला-संज्ञा पुं० [हि० गेला + चलना] गोला चलानेवाला । तोप । दामनेवाला । तोपची ।

गुलचादिनी-संज्ञा पुं० [फा० गुल + हि० चोदनी] (१) एक प्रकार का पाँचा जिसमें फूल लगते हैं । (२) इस पाँचे का फूल जो रंगत में सफ़ेद होता और प्रायः रात को खिलता है ।

गुलचा-संज्ञा पुं० [हि० गल] हाथ की उँगलियों से या मुट्टी बाँध कर पीरे से और प्रेमपूर्वक गालों पर किया हुआ आचात ।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—पड़ना।—मारना।—लगाना ।

गुलचाना-क्रि०, गुलचियाना-क्रि० सं० [हि० गुलचा + ना] गुलचा मारना वा लगाना ।

गुलची-संज्ञा स्त्री० [?] रंड़े की तरह का बड़बुधों का एक औरत जिससे लकड़ी में गलता बनाया जाता है ।

गुलचीन-संज्ञा पुं० [?] (१) एक प्रकार का बूछ जो कलम से लगाया जाता है और वारों महीने फूलता है । इसका पेड़ बड़ा होता है और पत्ते बहुत कड़े और लंबे होते हैं । (२) इस बूछ का फूल जो ऊपर से सफ़ेद और भीतर की ओर कुछ पीले रंग का होता है और जिसमें चार पाँच पल्लियाँ होती हैं । कहते हैं कि इस फूल को अधिक सूँघने से पीनस रोग हो जाता है ।

गुलछरी-संज्ञा पुं० [हि० गेला + छरी] वह भोग विद्याम या बैन

जो बहुत स्वयंसेवता पूर्वक और अनुचित रीति से किया जाय ।

मुहा०—गुलछरी बड़ाना = निर्द्वंद्व रूप से अनुचित और बहुत अधिक भोग विनाश करना ।

गुलजलील-संज्ञा पुं० [फा०] अथर्वनाम का फूल जिससे रोराम रंगा जाता है और जो सुरासन से खाता है ।

गुलज़ार-संज्ञा पुं० [फा०] वाग । वाटिका ।

वि० हरा भरा । थानेद और रोमा-युक्त । जो देखने में बहुत भन्ना मालूम हो । बहुत पहल से भरा । जैसे, उसके रहने से सारा सुदृष्टा गुलज़ार रहता था ।

गुलभट्टी-संज्ञा स्त्री० [हि० गेल + सं० भट्ट = जमाव] (१) तागे आदि फी वह उलभन जो बैठ कर गोलों के आकार की हो जाती है । उलभन की गाँठ ।

मुहा०—गुलभट्टी पड़ना = जी में गाँठ पड़ना । मनोमालिन्य होना । गुलभट्टी निकालना = मनोमालिन्य दूर करना ।

(२) सिक्कड़न । शिकन ।

क्रि० प्र०—पड़ना।—निकालना ।

गुलभट्टी-संज्ञा स्त्री० दे० "गुलभट्टी" ।

गुलतराश-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह कैंची जिससे चिराग का गुल काटते हैं । (२) वह मौकर जो चिराग का गुल काटता है । (३) वह कैंची जिससे माली लोग धाग के पाँचों को फतने वा छूँटते हैं । (४) धाग के पाँचों को काटने छूँटनेवाला माली । (५) संगतियों का वह औरत जिससे वे पत्थरों पर फूल पतियाँ बनाते हैं । इसका आकार गहरनी का सा होता है और इसमें लकड़ी का दस्ता लगा रहता है ।

गुलता-संज्ञा पुं० [हि० गेल] मिठो की यनी हुई वह गोलनी जो गुलेले से छोड़ी जाती है ।

गुलतुरी-संज्ञा पुं० [फा०] कलगा नाम के पाँचे का फूल जो गहरे लाल रंग का होता है । सुफ़ेदा । अद्यधारी ।

गुलथी-संज्ञा स्त्री० [हि० गुलथी] उबाला हुआ चावल जो भात से अधिक गीला और गला हो । यह प्रायः बच्चों और पेट के रोगियों को दिया जाता है ।

गुलथी-संज्ञा स्त्री० [हि० गेला + सं० थरिय] पानी ऐसी पतली यस्तुओं के गोड़े होकर स्थान स्थान पर उमने से बनी हुई गुठली वा गोलनी ।

गुलदस्ता-संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक विशेष प्रकार से बाँधा हुआ कई प्रकार के सुंदर फूलों और पतियों का समूह जो सजावट या किसी उपहार देने के काम में आता है । फूलों का गुच्छा । (२) वह घोड़ा जिसका अगला बायाँ पैर गाँठ तक सफ़ेद हो और दाहिने पैर का रंग पिपुले दोनों पैरों के रंग के समान हो । ऐसा घोड़ा ऐसी नहीं समझा जाता ।

गुलदान—संज्ञा पुं० [फा०] गुलदस्ता रखने का पात्र ।

विशेष—गुलदान प्रायः लंबोत्तरा और चीनी मटो, कांच या इस्ती प्रकार के किसी और पदार्थ का बनाया जाता है । इसके ऊपर रोभा के लिये थच्छा पालिया करके रंग विरंगे खेल बूटे बना देते हैं ।

गुलदाउदी—संज्ञा स्त्री० [फा० गुल + दाउदी] (१) एक प्रकार का छोटा पौधा जिसकी लंबी कटावदार पत्तियों में भी उसके फूल की भांति हलकी भीनी खुवाचू होती है । कालिंक-श्रगहन में इसमें कई रंगों के छोटे और बड़े फूल लगते हैं जो देखने में बहुत सुंदर होते हैं । घर्षा के पानी में यह पेड़ नष्ट हो जाता है इसलिये लोग इसे गमलों में लगा कर धारा में रखते हैं । (२) इस पौधे का फूल ।

गुलदाना—संज्ञा पुं० [फा०] बुंदिया नाम की मिठाई जिससे लखू भी बनते हैं ।

गुलदार—संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक प्रकार का सफ़ेद रंग का कबूतर जिस पर लाल या काले रंग के छोटे छोटे कई चिह्न होते हैं । (२) एक प्रकार का कशीदा ।

वि० जिस पर गोल फूल के आकार के कुछ चिह्न बने हों । फूलदार ।

गुलदावदी—संज्ञा स्त्री० दे० “गुलदावदी” ।

गुलदुपहरिया—संज्ञा पुं० [फा० गुल + हि० दुपहरिया] (१) एक प्रकार का पौधा जो दो बार्डे हाथ ऊँचा होता है । इसकी एकें सीधी डाल होती है और इसमें चारों ओर टहनियां नहीं निकलतीं । इसकी पत्तियां लंबी और कटावदार होती हैं और उनका रंग फालापन लिए हुए गहरा हरा होता है । (२) इस पौधे का फूल जो कटोरे के आकार का गहरे लाल रंग का होता है । इसका घेरा थकहरे दल का होता है । यह फूल अधिक धूप चढ़ने पर फूलता है । कुछ लोग भूल से चरनमुली को भी गुलदुपहरिया कहते हैं ।

गुलदुम—संज्ञा स्त्री० [फा०] गुलदुल ।

गुलनरगिस—संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार की लता ।

गुलनार—संज्ञा पुं० [फा०] (१) अन्नार का फूल । (२) एक प्रकार का रंग जो अन्नार के फूल के रंग का सा गहरा लाल होता है । यह रंग रंगने के लिये कपड़े को पहले हलदी में और तब शहाय में रंगते हैं । (३) एक प्रकार का अन्नार जिसमें फल नहीं लगते, केवल बड़े बड़े सुंदर फूल ही लगते हैं ।

गुलपपड़ी—संज्ञा स्त्री० [फा० गुल + हि० पपड़ी] सोहनहलुवे की तरह की एक मिठाई जिसे पपड़ी भी कहते हैं ।

गुलप्यादा—संज्ञा पुं० [फा०] सदागुलाव । वह गुलाब जिसमें महक कम होती है ।

गुलफानूस—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो रोभा के लिये लगाया जाता है ।

गुलफिरकी—संज्ञा स्त्री० [फा० गुल + हि० फिरकी] एक प्रकार का बड़ा पौधा जिसमें गुलाबी रंग के फूल लगते हैं ।

गुलफुंदना—संज्ञा पुं० [हि० गोल + फुंदना] एक प्रकार की घास जो खेतों में बगती है ।

गुलफकावली—संज्ञा स्त्री० [फा० गुल + सं० फकावली] (१) एक प्रकार का पेड़ जो नर्मदा नदी के उदगम के पास अमरकंटक के वन में होता है । यह हल्दी के पेड़ से मिलता जुलता होता है । (२) इस पौधे का फूल जो रंगत में सफ़ेद और बहुत सुगंधित होता है । जिस प्रांत में यह होता है उस प्रांत के लोग इसे पीस कर श्राई हुई धाँसों पर लगाते हैं । कहते हैं कि यह श्राँल के कई रोगों की बहुत थच्छी दवा है ।

विशेष—गुलफकावली के संवंध में लोगों में कई तरह की दंत-कथाएँ प्रसिद्ध हैं ।

गुलबन्सर—संज्ञा पुं० [फा० गुल + दे० बन्सर] नकस के खेल में एक प्रकार की जीत की बागी जो एक खिलाड़ी के हाथ में दो बादराह और एक एका या दो वेगमें और एक एका आ जाने से बनती है । (सुधारी)

मुह्रा—गुल फँसना = (किसी खिलाड़ी को) दो बादराहों या वेगमें के बीच में एक एका की मितना ।

गुलबदन—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का बहुमूल्य रेशमी कपड़ा जो प्रायः लहरियेदार या धारीदार होता है । यह पहले केवल लाल या गुलाबी रंग का होता और कारी में बनता था, पर थप यह सब रंगों का और पंजाब के कुछ भागों में भी बनने लगा है ।

गुलबादला—संज्ञा पुं० [फा०] ऊदल नाम का पेड़ जिसके रेशों से मोटे रस्से बनते हैं । पृटी ।

गुलबूटा—संज्ञा पुं० [फा० गुल + हि० बूटा] (किसी चीज पर बनाया हुआ) खेलपूटा । नकारा ।

गुलबेल—संज्ञा स्त्री० [फा० गुल + हि० बेल] एक प्रकार की लता ।

गुलमा—संज्ञा पुं० [?] मसालेदार कीमा भरी हुई बकरी की शैली । हुलमा । लँगूचा ।

संज्ञा पुं० [सं० गुम्भ] स्त्री० गुलमा] यह गोल फड़ी सूनन जो चोट लगने से मथे वा सिर पर होती है ।

गुलमें हदी—संज्ञा स्त्री० [फा० गुल + हि० मेहदी] (१) एक प्रकार का पौधा जो कुश्रार में फूलता है । (२) इस पौधे का फूल जो कई रंगों का होता है ।

गुलमेख—संज्ञा पुं० [फा०] यह फील जिसका सिरा फूल के आकार का गोल होता है । कुलिया ।

गुलरेज—संज्ञा पुं० [फा०] आतिशयामी की एक प्रकार की फुल-फड़ी जिसमें से कई तरह के बड़े बड़े फूल बढ़ते हैं । यह शोरा, गंधक, कौमला, लोहचून और धारुद मिला कर बनती है ।

गुललाली—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) एक प्रकार का पौधा जो पोन्ने के पौधे के समान होता है। (२) इस पौधे का फूल जो लाल रंग का, बहुत सुगंधित और कोमल होता है। दे० "गुललाली"।

गुलदाकरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) चीनी और गुलाब के फूल से बनी हुई एक मिठाई। (२) गैंगेर।

गुलदान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] घाटिका। घाग। फूलवारी।

गुलदाभ्या—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) लहसुन से मिलता सुलता एक प्रकार का छोटा पौधा जिसको रजनीगंधा, सुगंधता वा सुगंधिराज भी कहते हैं। (२) इस पौधे का फूल, जो सफेद रंग का और बहुत सुगंधित होता है। यह रात के समय फूलता है। (३) एक खेल जो विराग युक्ता कर खेला जाता है। इसमें लोग एक दूसरे को चपत लगाते हैं।

गुलसुम—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुल + हि० सुमन] सोनारों का नक्षत्री करने का एक औजार जिससे फूल आदि बनाते हैं।

गुलसासन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक प्रकार का फूल जो हलके आसमानी रंग का होता है। यह फारस में बहुत होता है।

गुलहजारा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक प्रकार का गुललाला।

गुलहथी—संज्ञा स्त्री० दे० "गुलथी"।

गुलाब—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) एक झाड़ू या कटीला पौधा जिसमें बहुत सुंदर सुगंधित फूल लगते हैं।

विशेष—गुलाब के सैकड़ों भेद होते हैं पर मुख्य ३० जातियाँ मानी गई हैं। गुलाब संसार में प्रायः सर्वत्र १६ से लेकर ७० अक्षांश तक भूगोल के उत्तरार्द्ध में होता है। भारतवर्ष में यह पौधा बहुत दिनों से लगाया जाता है और कई स्थानों में जंगली भी पाया जाता है। कारमीर और भूतान में पीले फूल के जंगली गुलाब बहुत मिलते हैं। वयः अवस्था में गुलाब में चार पांच छितराई हुई पलकियों की एक हरी पंक्ति होती है पर बगीचों में सदा और यत्न पूर्वक लगाए जाने से पलकियों की संख्या में वृद्धि होती है पर केंसरों की संख्या घट जाती है। कृष्ण पर्वद आदि के द्वारा सैकड़ों प्रकार के फूल-वाले गुलाब भिन्न भिन्न जातियों के मेल से उत्पन्न किए जाते हैं। गुलाब के कलम ही लगाए जाते हैं। इसके फूल कई रंगों के होते हैं—लाल (कई मेल के हलके गहरे), पीले, सफेद, हल्कादि। सफेद फूल के गुलाब को सेवती कहते हैं। कहीं कहीं हरे रंग के फूल भी होते हैं। जता की तरह चढ़ने-वाले गुलाब के झाड़ू भी होते हैं जो बगीचों में दृष्टियों पर चढ़ाए जाते हैं। श्रद्ध के अनुसार गुलाब के दो भेद भारतवर्ष में माने जाते हैं। सदागुलाब और चैती। सदागुलाब प्रत्येक ऋतु में फूलता है और चैती गुलाब केवल बसंत ऋतु में। चैती गुलाब में विशेष सुगंध होती है और यही इत्र और दवा के काम का समझा जाता है। भारतवर्ष में जो चैती गुलाब होते हैं वे प्रायः यस्ता वा दमिरक जाति के हैं। ऐसे गुलाब की खेती

गाड़ीपुर में इत्र और गुलाबजल के लिये बहुत होती है। एक कोचे में प्रायः हजार पौधे खाते हैं जो चैत में फूलते हैं। यड़े तड़के उनके फूल तोड़ लिए जाते हैं और अचरों के पास भेज दिए जाते हैं। वे देग और भभके से उनका जल खींचते हैं। देग से एक पत्तरी बांस की नली दूसरे धारतन में गई होती है जिसे भभका कहते हैं जो एक पानी से भरी नाद में रखवा रहता है। अचर पानी के साथ फूलों का देग में रख देते हैं जिस में से सुगंधित भाप उठ कर भभके के धारतन में सरदी में द्रव होकर टपकती है। यही टपकी हुई भाप गुलाबजल है। गुलाब का इत्र बनाने की सीधी युक्ति यह है कि गुलाबजल को एक छिद्रले धारतन में रतकर धारतन को गीली जूनी में कुछ गाड़ कर रात भर खुले मैदान में पड़ा रहने दे। सवेरे सरदी से गुलाबजल के ऊपर इत्र की बहुत पतली मलाई सी पड़ी मिलेगी जिसे ह्राप से काँच ले। ऐसा कहा जाता है कि गुलाब का इत्र नूरजहाँ बेगम ने १६१२ ईसवी में अपने विवाह के अवसर पर निकाला था। भारतवर्ष में गुलाब जंगली रूप में उगता है पर बगीचों में यह कितने दिनों से लगाया जाता है इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता। कुछ लोग संस्कृत के "शतपत्री" "गदलि" आदि शब्दों को गुलाब का पर्याय मानते हैं। रशीउद्दीन नामक एक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि चौदहवीं शताब्दी में गुजरात में सचर प्रकार के गुलाब लगाए जाते थे। धार ने भी गुलाब लगाने की बात लिखी है। जहाँगीर ने तो लिखा है कि हिंदुस्तान में सच प्रकार के गुलाब होते हैं। गुलाब का फूल कोमलता और सुंदरता के लिये प्रसिद्ध है, इसी से लोग छोटे बच्चों की बपमा गुलाब के फूल से देते हैं। (२) गुलाबजल।

गुहा—गुलाब चिड़कना = गुलाबजल चिड़कना। गुलाब चिड़काई की रत्न करना।

गुलाबचन्दम—संज्ञा पुं० [फ्रा०] बड़े रंग की एक प्रकार की चिड़िया जिसकी चोंच काली और पैर लाल होते हैं। यह मधुर स्वर में और बहुत श्रविक बोलती है।

गुलाब-छिड़कवा—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गुलाब + हि० छिड़कना] (१) विवाह में एक रीति जिसमें बर पच और कन्या पच के लोग एक दूसरे पर गुलाबजल छिड़कते हैं और कन्या पच के लोग बर पच को कुछ भेंट देते हैं। (२) वह द्रव्य जो ऊपर लिखी रत्तम में दिया जाय।

गुलाबजम—संज्ञा पुं० [?] आसम की पहाड़ियों में होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी जिसकी पत्तियों से एक प्रकार का भूरा रंग निकलता है और जिसकी छाल के रेशे से रस्सियाँ बनती हैं। इसे सोनाफूल भी कहते हैं।

गुलाबजामुने—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुलाब + हि० जामुन] (१) एक प्रकार की मिठाई जिसे बनाने के लिये पहले रोबे में अंडा

या सिंघाड़े का आटा मिलाते हैं और तब उसके गोल या लंबेवारे टुकड़े करके घी में छानते और पीछे चायानी में हुबो देते हैं। (२) एक प्रकार का वृष जो बंगाल और आसाम में अधिकता से होता है। यह देखने में बहुत सुंदर होता है और प्रायः यामों में शोभा के लिये लगाया जाता है। गरमी के थंन और बरसात के आरंभ में इसमें फल लगते हैं। (३) इस वृष का फल जो रंगत में नासपाती का सा और आकार में नीचू के बराबर पर कुछ चपटा होता है। इसके अंदर लाली रंग का गोल बीज होता है और ऊपर की ओर मोटे दल का गुदेदार मीठा छिलका सा होता है जिसमें से गुलाब की सी सुगंध आती है और जो खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है।

गुलाबनालू—संज्ञा पुं० [फा० गुलाब + तालू] वह हाथी जिसका तालू गुलाबी रंग का हो। ऐसा हाथी बहुत अच्छा समझा जाता है।

गुलाबपाशा—संज्ञा पुं० [फा०] मारी के आकार का एक प्रकार का लंबा पात्र जिसके मुँह पर हजारा लगा रहता है और जिसमें गुलाबजल आदि भर कर शुभ भयसरो पर लोगों पर छिड़कते हैं।

गुलाबपादरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] गुलाब जल छिड़कने की क्रिया।

गुलाबस—संज्ञा पुं० दे० "गुल-अय्यास" या "अय्यास"।

गुलाब-भाड़ी—संज्ञा स्त्री० [फा० गुलाब + हिं० कड़ी] वह आमोद या उसख जिसमें फोड़े स्थान गुलाब के फूलों से सजाया जाता है, गाना बजाना होता है और लोग गुलाबी कपड़े पहनते हैं। चैत के महीने में यह उत्सव होता है।

गुलाबा—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का बरतन। उ०—चमचा, चमची, जाम, तवा, तंदूर, गुलाबा।—सूदन।

गुलाबी—वि० [फा०] (१) गुलाब के रंग का। जैसे, गुलाबी गाल, गुलाबी कागज। (२) गुलाब संबंधी। (३) गुलाबजल से सजाया हुआ। जैसे, गुलाबी रेवड़ी। (४) घोड़ा या फम। हलका।

विशेष—इस अर्थ में "गुलाबी" शब्द का प्रयोग केवल "जाड़ा" और "नशा" शब्दों के पर्यायवाची शब्दों के साथ पाया जाता है।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का रंग जो गुलाब की पत्तियों के रंग से मिलता जुलता होता है और राहाय और लठार्दे के मेल से बनाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० (१) शराब पीने की प्याली। (२) गुलाब की पल्लड़ियों से बनी हुई एक प्रकार की मिठाई। (३) एक प्रकार की मीना जो ऋतु-अर्ध के अनुसार अपना रंग बदलती है। गरमी के दिनों में यह पहाड़ों में चली जाती है। यह मध्य एशिया और युरोप में भी पाई जाती है और प्रायः चड़े

चड़े ऊँचों में रहती है। यह पीलला नहीं बनाती बल्कि घोड़ी सी घास चिखा कर उसी पर रहती है और पत्थरों या कंकड़ों के नीचे ४-५ अंटे देती है।

गुलाम—संज्ञा पुं० [फ०] (१) मोल लिया हुआ वाम। गुरीदा हुआ नौकर।

मुहा०—(मनुष्य आदि को) गुलाम करना या बनाना = अपने बश में करना। पुरी तरह से अधिकार में करना। गुलाम का तिलाव = बहुत ही तुच्छ सेवक। सेवक का सेवक।

श्लो०—गुलाम-गदिश। गुलाम-माल।

विशेष—कभी कभी योलनेवाला (उत्तम पुरुष) भी नश्रात प्रकट करने के वारते अपने लिये इस शब्द का प्रयोग करता है। जैसे, गुलाम (मैं) हारिज है, क्या आश्रा है ?

(२) साधारण सेवक। नौकर। (३) गंजीफे का एक रंग।

(४) तारा का एक पत्ता जो दहले से बड़ा और बेगम से छोटा समझा जाता है। इस पर दास्यरूप में एक आदमी का चित्र बना रहता है।

गुलाम-गदिश—संज्ञा स्त्री० [फ० गुलाम + फा० गदिश] (१) वह छोटी दीवार जो जमानखाने में अंदर की ओर सद्द दरवाजे के ठीक सामने अथवा जमानखाने और दीवानखाने के बीच में परदे के लिये बनी हो। इस दीवार के रहने से खिया आंगन में धूम फिर सकती है और बाहर के लोगों की दृष्टि उन पर नहीं पड़ सकती। (२) फेरी या महल आदि के चारों ओर बना हुआ वह बरामदा जहाँ धरदली, चपरासी, दर्यां और दूसरे नौकर चाकर रहते हैं।

गुलाम-माल—संज्ञा पुं० [फ०] थोड़े दामों की पर बहुत दिनों तक चलनेवाली और सय तरह का काम देनेवाली चीज। जैसे, कंबल, लोहे, आदि।

गुलामी—संज्ञा स्त्री० [फ० गुलाम + ई० (प्रत्य०)] (१) गुलाम का भाव। दासत्व। (२) सेवा। नौकरी। (३) परतियता। परतंत्रता।

गुलाल—संज्ञा पुं० [फा०-गुलाल] एक प्रकार की लाल चुकनी या चूर्ण जिसे हिंदू लोग होली के दिनों में एक दूसरे के चेहरों पर मलते हैं अथवा कुमकुमे आदि में भर कर फेंकते और उड़ाते हैं। उ०—जिन वनन बसत है रसनिधि मोहन लाल। तिन में क्यों घालत धरी तैं भर मूठ गुलाल।—रसनिधि।

फि० प्र०—उड़ाना।—मलना।

विशेष—पहले गुलाब या देरू की पल्लड़ियों में चंदन का डुरादा और केसर मिला कर गुलाल बनाया जाता था, पर आजकल सिंगरक या राहाय में रंगा हुआ सिंघाड़े का आटा ही गुलाल कहलाता है।

गुलाला—संज्ञा पुं० दे० "गुलाला"।

गुलिया—वि० [हिं० गुल] मधुप के बीज की मिर्गी का। गुली से निकाला हुआ। जैसे, गुलिया तेल।

गुलियाना—कि० सं० [सं० गित = गिगना] शीघ्र या धीर
कोई तरल पदार्थ यांम के धीमे में भर कर पशु को पिलाना ।
इसे "डरका देना" भी कहते हैं ।
कि० सं० दे० "गोलियाना" ।

गुली—संज्ञा स्त्री० दे० "गुली" ।

गुलुफा—संज्ञा पुं० दे० "गुलुक" ।

गुलु—संज्ञा पुं० [दे०] (१) नेपाल की तराई, बुटवलखण्ड और
बंगाल की सुदूरक चट्टानों और छोटी पहाड़ियों पर और
दक्षिण भारत तथा बरमा के जंगलों में होनेवाला एक प्रकार
का बड़ा पेड़ जो २५ से ४० हाथ तक ऊँचा होता है । इसमें
टहनियों के तिरों पर गुच्छों में लंबी पत्तियाँ लगती हैं ।
जाड़े में इसका पत्तझड़ जाता है और माघ फागुन में इसमें
गंदकी रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं । इस वृक्ष की टहनियों,
पत्तियों और कतीरा नाम की गोंद का उपयोग शीघ्रपथ में
पहुँच होता है और गरीब लोग इसके बीज भून कर खाते
हैं । कहीं कहीं लोग इसकी जड़ भी खाते हैं । इस वृक्ष की
ऊपरी छाल शुक्रायाम होती है और उसमें परत निकलते हैं ।
जब यह वृक्ष बरस का पुराना हो जाता है तब इसके
तने के चार चार हाथ लंबे टुकड़े काट लेते हैं और उनके
ऊपर की छाल निकाल लेते हैं । इसके हीरे में से बहुत
बढ़िया रेगा निकलता है जिससे रस्ते बनते हैं और एक
प्रकार का कपड़ा भी बुना जाता है । इसकी लकड़ी से कई
तरह के पिछाने आदि बनते हैं । प्रायः अफाल में इसकी
छोटी छोटी टहनियाँ पशुओं के चारे का काम देती हैं ।
कतीरा नाम का गोंद हमी वृक्ष से निकलता है । (२) एक
प्रकार की मद्धली जो हाथ सवा हाथ लंबी होती है । (३)
एक प्रकार की घटेर ।

गुलुधंद—संज्ञा पुं० [फा०] (१) सलाई से या कचे पर बुनी हुई
थड़ सूती, ऊनी या रेगमी लंबी और प्रायः एक बालिरत
चौड़ी पट्टी जो सर्राही से बचने के लिये सिर, गले या कानों
पर लपेट दी जाती है (२) शिबों के पहनने का एक प्रकार
का जूँपर जो गले से सटा रहता है ।

गुल्लेदा—संज्ञा पुं० [हि० गोल] महुए का पका फल । कोल्लेदा ।

गुले—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो उत्तर भारत
में अधिकता से होता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और
बमकदार होती है जिस पर सुलाई का काम बहुत थपका
होता है । कहीं कहीं इसके बीजों की माला बनाई जाती है ।
इसे रंग चाल भी कहते हैं ।

गुलेटन—संज्ञा पुं० [हि० गोल] कुरंड पत्थर का वह छोटा गोला
जिससे मिक्कीयर बनना मसाला तैयार होता है ।

गुलेनार—संज्ञा पुं० दे० "गुलनार" ।

गुलेराना—संज्ञा पुं० [फा० गुल + न० राना] (१) सुंदर फूल ।

(२) एक फूल जो भीतर की ओर लाल और बाहर की ओर
पीला होता है ।

गुलेल—संज्ञा स्त्री० [फा० गिल्ल] यह कमान वा धनुष जिससे
चिड़ियों और बंदरों आदि को मारने के लिये मिट्टी की
गोलियाँ चलाई जाती हैं । उ०—(क) गुल गुलेल सेलखे
धारे । रिपु चिरई दिव लासक मारे ।—हनुमान । (१)
तिलकविंदु के मानि निरामना । गुरा हनत गुलेल महाना ।
—सुराज ।

गुं मंजा पु० दे० "गुदुच" ।

गुलेलची—संज्ञा पुं० [हि० गुलेल + ची (प्रत्य०)] गुलेल चलाने-
वाला । यह मनुष्य जो गुलेल चलाने में पतुर हो ।

गुलेला—संज्ञा पुं० [फा० गुल्ला] (१) मिट्टी की बनाई हुई गोली
जिसके गुलेल से फेंक कर चिड़ियों का शिकार किया जाता
है । (२) गुलेल ।

गुल्लेदा—संज्ञा पुं० दे० "गुल्लेदा" ।

गुल्लेहा—संज्ञा स्त्री० [फा० गुलेल + गुदुच] गुदुच ।

गुल्लौर, गुल्लौरा—संज्ञा पुं० [सं० गुल्ल = गुल्ल + भीग (प्रत्य०)] यह
स्थान जहाँ रस पकने का भट्टा हो और जहाँ गड़ बनाया
जाता हो ।

गुलगा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का तराई जो सुंदर बन में
पानी के किनारे लता की तरह फैलता है तथा चटगाँव,
बरमा आदि में भी पाया जाता है । इसके पुराने फल जिन्हें
गोलफल कहते हैं बहुत बड़े बड़े होते हैं और समुद्र में बहते
बहते बहुत दूर तक चले जाते हैं । पत्तों के हड्डियों के एक
में बाँध कर बन पर सुंदरपन के लझे बहाए जाते हैं । पत्ते
छुपर बनाने के काम में आते हैं और 'गोलपत्ता' कहलाते हैं ।

गुलफ—संज्ञा पुं० [सं०] पेंडू के ऊपर की गाँठ ।

गुलम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देता पैशा जो एक जड़ से कई
दोहर निकले और जिसमें कड़ी लकड़ी वा डंठल न हो ।
जैसे, हूल, मर, आदि । अरुप्रकाश में गुलम गय के अंत-
गत बरियारा, पाठा, तुलसी, काकजंघा, चिरिया आदि पैशे
जिए गए हैं । (२) रसना का एक समुदाय जिसमें ६ हाथी,
६ रय, २ घोड़े, और ४२ पैदल होते हैं । (३) पैद का
एक रोग जिसमें उसके भीतर एक गोला सा बँध जाता
है । हृदय के नीचे से लेकर पैद तक के बीच कहीं पर यह
गोला उपग्रह हो सकता है । सायप्रकाश के अनुसार यह
रोग अनिश्चित आहार विहार तथा वायु और पित्त के दूषित
होने से होता है । शिबों को एक प्रकार का गुलम आर्चक के
दूषित होने से होता है । (४) नसों की सूजन जो गाँठ के
आकार की हो ।

गुलुक—संज्ञा पुं० [हि० गुलुक] यह संदुक वा पैली जिसमें विद्वो
हार वा और किसी प्रकार आई हुई रोजाना धामदनी रनी
जाती है ।

या सिंघाड़े का आटा मिलाले हैं और तब उसके गोल या लंबोतरे टुकड़े करके धी में छानले और पीछे चारानी में हुवा देते हैं। (२) एक प्रकार का वृष जो बंगाल और आसाम में अधिकता से होता है। यह देखने में बहुत सुंदर होता है और प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। गरमी के अंत और धरसात के आरंभ में इसमें फल लगते हैं। (३) इस वृष का फल जो रंगत में नासपाती का सा और आकार में नीचू के बराबर पर कुछ चपटा होता है। इसने अंदर लाली रंग का गोल बीज होता है और ऊपर की ओर मोटे दल का गूदेदार भीजा छिलका सा होता है जिसमें से गुलाब की सी सुगंध आती है और जो खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है।

गुलाबतालू-संज्ञा पुं० [फा० गुलाब + तालू] वह हाथी जिसका तालू गुलाबी रंग का हो। ऐसा हाथी बहुत अच्युत समझा जाता है।

गुलाबपाश-संज्ञा पुं० [फा०] भारी के आकार का एक प्रकार का लंबा पात्र जिसके मुँह पर हजारों लगा रहता है और जिसमें गुलाबजल आदि भर कर शुभ अवसरों पर लोगों पर छिड़कते हैं।

गुलाबपाशी-संज्ञा स्त्री० [फा०] गुलाब जल छिड़कने की क्रिया।

गुलाबस-संज्ञा पुं० दे० "गुल-अनुस" या "अनुस"।

गुलाब-चाड़ो-संज्ञा स्त्री० [फा० गुलाब + चो० नदी] वह आमोद या उसव जिसमें कोई स्थान गुलाब के फूलों से सजाया जाता है, गाना बजाना होता है और लोग गुलाबी कपड़े पहनते हैं। चैत के महीने में यह उत्सव होता है।

गुलाबा-संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का परतन। उ०—चमचा, चमची, जाम, तवा, तंदूर, गुलाबा।—सूदन।

गुलाबी-वि० [फा०] (१) गुलाब के रंग का। जैसे, गुलाबी गोल, गुलाबी कागज। (२) गुलाब संबंधी। (३) गुलाबजल से धसाया हुआ। जैसे, गुलाबी रेवड़ी। (४) थोड़ा या कम। हलका।

विशेष-रस अर्थ में "गुलाबी" शब्द का प्रयोग केवल "जाड़ा" और "नरारा" अथवा इनके पर्यायवाची शब्दों के साथ पाया जाता है।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का रंग जो गुलाब की पत्तियों के रंग से मिलता जुलता होता है और महाव और लटार्ह के मेल से बनाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० (१) शराब पीने की प्याली। (२) गुलाब की पत्तियों से बनी हुई एक प्रकार की मिठाई। (३) एक प्रकार की मैना जो श्रद्ध-भेद के अनुसार अपना रंग बदलती है। गरमी के दिनों में यह पहाड़ों में चली जाती है। यह मध्य एशिया और युरोप में भी पाई जाती है और प्रायः चड़े

चड़े मुँहों में रहती है। यह घोंसला नहीं बनाती, बल्कि थोड़ी सी घास चिड़ा कर उसी पर रहती है और पत्थरी या कंकड़ों के नीचे ध-र अड़े देती है।

गुलाम-संज्ञा पुं० [फा०] (१) माल लिया हुआ दास। ख्रीदा हुआ नौकर।

मुहा०—(मनुष्य आदि को) गुलाम करना या बनाना = अपने बंध में करना। पूरी तरह से अधिकार में करना। गुलाम का तिलाम = बहुत ही पुच्छ सेवक। सेवक का सेवक।

या०—गुलाम-गर्दिश। गुलाम-माल।

विशेष—कभी कभी बोलनेवाला (उत्तम पुरुष) भी नम्रता प्रकट करने के चारते अपने लिये इस शब्द का प्रयोग करता है। जैसे, गुलाम (ई) हाज़िर है, क्या आज्ञा है ?

(२) साधारण सेवक। नौकर। (३) गंभीर का एक रंग। (४) ताश का एक पत्ता जो दहले से बड़ा और बेगम से छोटा समझा जाता है। इस पर दास-रूप में एक आदमी का चित्र बना रहता है।

गुलाम-गर्दिश-संज्ञा स्त्री० [फा० गुलाम + फा० गर्दिश] (१) वह छोटी स्त्री जो जानानखाने में अंदर की ओर सदर दरवाने के दीक सामने अथवा जानानखाने और दीवानखाने के बीच में परदे के लिये बनी हो। इस दीवार के रहने से खिर्वा शांगन में घूम फिर सकती है और बाहर के लोगों की दृष्टि उन पर नहीं पड़ सकती। (२) कौड़ी या महल आदि के चारों ओर बना हुआ वह बरामदा जहाँ अरदली, चरारसी, दर्वाज और दूसरे नौकर चाकर रहते हैं।

गुलाम-माल-संज्ञा पुं० [फा०] थोड़े धामों की पर बहुत दिनों तक चखनेवाली और सब तरह का काम देनेवाली पीठ। जैसे, कंबल, लोई, आदि।

गुलामी-संज्ञा स्त्री० [फा० गुलाम + ई (प्रत्यय०)] (१) गुलाम का भाव। दासत्व। (२) सेवा। नौकरी। (३) परार्थिता। परतंत्रता।

गुलाल-संज्ञा पुं० [फा०-गुलाल] एक प्रकार की लाल चुकनी या चूर्ण जिसे हिंदू लोग होली के दिनों में एक दूसरे के चेहरों पर मलते हैं अथवा कुमकुमे आदि में भर कर फेंकते और डढ़ाते हैं। उ०—जिन नैनन बसत है रसनिधि मोहन लाल। तिन में क्यों घालत धरती तैं भर भूड गुलाल।—रसनिधि।

फ्रि० प्र०—उड़ाना।—भलना।

विशेष—पहले गुलाब या टेम्बू की पत्तियों में चंदन का धारा और केसर मिला कर गुलाल बनाया जाता था, पर आज कल सिंगरफ या शहाब में रंगो हुआ सिंघाड़े का आटा ही गुलाल कहलाता है।

गुलाला-संज्ञा पुं० दे० "गुलाला"।

गुलिया-वि० [हिं० गुली] महुए के पीज की निर्गी का। गुली से निकाला हुआ। जैसे, गुलियां तेल।

गुलियाना—कि० सं० [सं० गित = गिगलना] श्रौपथ या श्रौर
कोई ताल पदार्थ वांस के चींगे में भर कर पशु को पिलाना ।
इसे "ढरका देना" भी कहते हैं ।
कि० सं० दे० "गोलियाना" ।

गुली—संज्ञा स्त्री० दे० "गुली" ।

गुलुफा—संज्ञा पुं० दे० "गुलुक" ।

गुलु—संज्ञा पुं० [दे०] (१) पैपाल की तराई, उ० देवलखंड श्रौर
बंगाल की खुदक चट्टानों और छोटी पहाड़ियों पर और
दक्षिण भारत तथा परमा के जंगलों में हेनेवाला एक प्रकार
का बड़ा पेड़ जो २२ से ४० हाथ तक ऊँचा होता है, इसमें
टहनियों के खिरे पर गुच्छों में लंबी पत्तियाँ बनती हैं ।
जाड़े में इसका पतझड़ होता है और माघ फागुन में इसमें
गंधकी रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं । इस वृक्ष की टहनियों,
पत्तियों और कतीरा नाम की गोंद का उपयोग श्रौपथों में
बहुत होता है और गरीब लोग इसके बीज मूत्र कर खाते
हैं । कहीं कहीं लोग इसकी जड़ भी खाते हैं । इस वृक्ष की
जपरी छाल मुजायम होती है और इसमें पत्ते निकलते हैं ।
जब यह वृक्ष पत्त भरना का पुराना हो जाता है तब इसके
तने के चार चार हाथ लंबे दुकड़े काट लेते हैं और उनके
ऊपर की छाल निकाल लेते हैं । इसके हीरे में से बहुत
बढ़िया रेखा निकलता है जिससे रस्मे बनते हैं और एक
प्रकार का कपड़ा भी बना जाता है । इसकी लकड़ी से कई
तरह के पिलौने आदि बनते हैं । प्रायः अफाज में हथकी
छोटी छोटी टहनियाँ पशुओं के चारे का काम देती हैं ।
कतीरा नाम का गोंद इसी वृक्ष से निकलता है । (२) एक
प्रकार की मछली जो हाथ सवा हाथ लंबी होती है । (३)
एक प्रकार की घटेर ।

गुलुबंद—संज्ञा पुं० [फा०] (१) सलाई से या कपड़े पर बुनी हुई
वह सूती, ऊनी या रेसमी लंबी और प्रायः एक घालियत
चौड़ी पट्टी जो सरदी से बचने के लिये सिर, गले या कानों
पर लपेटा जाती है (२) दिनों के पहनने का एक प्रकार
का जूवर जो गले से सजा रहता है ।

गुलुदा—संज्ञा पुं० [हि० गोल] महुए का पका फल । कोलुंदा ।

गुले—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो उत्तर भारत
में अधिकता से होता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और
धमकदार होती है जिस पर सुड़ाई का काम बहुत अच्छा
होता है । कहीं कहीं इसके बीजों की माला बनाई जाती है ।
इसे रंग चाल भी कहते हैं ।

गुलेटम—संज्ञा पुं० [हि० गोल] कुरंड पथर का वह छोटा गोला
जिससे सिकलीयार अपना मसाला रगड़ते हैं ।

गुलेनार—संज्ञा पुं० दे० "गुलनार" ।

गुलेराना—संज्ञा पुं० [फा० गुल + न० राना] (१) सुंदर फूल ।

(२) एक फूल जो भीतर की ओर लाल और बाहर की ओर
पीला होता है ।

गुलेल—संज्ञा स्त्री० [फा० गिलज़] वह कमान या धनुष जिससे
चिट्टियों और बंदरों आदि को मारने के लिये मिट्टी की
गोलियाँ चलाई जाती हैं । उ०—(क) गुल गुलेल सालमें
घारे । रिपु चिदाई दिन लाखक मारे ।—हनुमान । (१)
तिलकविंदु का मानि निशाना । गुरा हनन गुलेल मदाना ।
—सुराज ।

† संज्ञा पुं० दे० "गुदुच" ।

गुलेलची—संज्ञा पुं० [हि० गुलेल + ची (प्रत्य०)] गुलेल चलाने-
वाला । वह मनुष्य जो गुलेल चलाने में चतुर हो ।

गुलेला—संज्ञा पुं० [फा० गुल्ला] (१) मिट्टी की बनाई हुई गोली
जिसको गुलेल से फेंक कर चिट्टियों का शिकार किया जाता
है । (२) गुलेल ।

गुलुंदा—संज्ञा पुं० दे० "गुलुंदा" ।

गुलुहा—संज्ञा स्त्री० [फा० गिल्लेय] गुदुच ।

गुलौर, गुलौरा—संज्ञा पुं० [सं० गुल = गुड + भीग (प्रत्य०)] वह
स्थान जहाँ रस पकाने का भट्टा हो और जहाँ गड़ बनाया
जाता हो ।

गुल्गा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का ताड़ जो सुंदर धन में
पानी के किनारे लता की तरह फैलता है तथा चटगाँव,
परमा आदि में भी पाया जाता है । इसके पुराने फल जिन्हें
गोलफल कहते हैं बहुत बड़े बड़े होते हैं और समुद्र में पहले
बहते बहुत दूर तक चले जाते हैं । पत्तों के डंडलों के एक
में बांध कर उन पर सुंदर धन के लट्टे बहाए जाते हैं । पत्ते
छपर बनाने के काम में आते हैं और 'गोलपत्ता' कहलाते हैं ।

गुल्फ—संज्ञा पुं० [सं०] पैरों के ऊपर की गाँठ ।

गुलम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देसा पैथा जो एक जड़ से कई
होकर निकले और जिसमें कड़ी लकड़ी वा डंडल न हो ।
जैसे, हूँ, गर, आदि । अरुप्रकार में गुलम गण के शंत-
गंत परियास, पाडा, गुलसी, काकजंघा, चिचिरा आदि पैथे
लिए गए हैं । (२) सेना का एक समुदाय जिसमें ३ हाथी,
३ रथ, २० घोड़े, और ४२ पैदल होते हैं । (३) पेट का
एक रोग जिसमें उसके भीतर एक गोला सा बँध जाता
है । हृदय के नीचे से लेकर पेट तक के बीच कहीं पर यह
गोला बसता है सकता है । भावप्रकार के अनुसार यह
रोग अनियमित आहार विहार तथा वायु और पित्त के दूषित
होने से होता है । दिनों को एक प्रकार का गुलम शर्चव के
दूषित होने से होता है । (४) मसों की सूजन जो गाँठ के
आकार की हो ।

गुलुक—संज्ञा पुं० [हि० गोलुक] वह सख्खु का पैली जिसमें विष्ठी
द्वारा या और किसी प्रकार आई हुई रोगाना आमदनी रखी
जाती है ।

गुह्यरा—संज्ञा पुं० दे० "गुह्यर" ।

गुह्य—संज्ञा पुं० [हिं० गोला] (१) मिट्टी की बनी हुई गोली जो गुलेल से फेंकी जाती है। (२) एक बँगला मिठाई जो फटे दूध के घेने की गोल गोल पिंडियों को शोरे में हुयेने से बनती है। इसे रसगुहा भी कहते हैं।

संज्ञा पुं० [अ० गुञ्ज] शोर। हला। ऊँचा शब्द। उ०—
आये निशाचर साहनी साजि मरीच सुगुह्य मुने माल गुहा ।
—रघुनाथ ।

गो—हला गुहा = शोर गुत्त ।

संज्ञा पुं० [हिं० गुत्ता] ऊँच का कटा हुआ छोटा टुकड़ा।
गँडेरी। गाँड़ा ।

संज्ञा पुं० [हिं० गुत्त] यह धनुष जिससे मिट्टी की गोली फेंकी जाती है। गुलेल। उ०—पूक उगहुँ से होय जे गाँधे
बाली गुहा —निरप ।

संज्ञा पुं० [दे०] दूरी काजीन बुनने के करघे में यह धाँस
जिसमें बज के दोनें सिरे धँधे रहते हैं ।

संज्ञा पुं० [दे०] यह ताना जो रेशमी धोतियों के किनारे
बुनने में अलग तन कर भाँज में लगाया जाता है ।

संज्ञा पुं० [हिं० गुत्ता] रस्ती में चौड़ी हुई यह छोटी लकड़ी
जो पानी साँचने की लोटी (लुटिया) में पड़ी रहती है और
जिसके शैटकाय के कारण भरी हुई लोटी रस्ती के साथ खिँच
आती है ।

संज्ञा पुं० [दे०] एक पहाड़ी पेड़ जो बहुत ऊँचा होता
है। इसके हीरे की लकड़ी सुगंधित, हलकी और भूरे रंग
की होती है तथा मजबूत होने के कारण इमारत के काम में
आती है। नैनीताल में यह पेड़ बहुत होता है। इसे "सराप"
भी कहते हैं ।

संज्ञा पुं० [दे०] गोटा पट्टा बुननेवालों का एक डोरा जो
मजबूत होता है और जिसके दोनें निरों पर सरकंडे की
लकड़ियाँ लगी होती हैं। यह डोरा ताना के बदले में पड़ा
रहता है। इसका एक सिपा डेकली में लगा रहता है और
दूसरा सिपा पविड़की में बँधा होता है ।

संज्ञा पुं० [हिं० गुत्ता] रुई श्रोतने की चरली में लोहे का यह
छड़ जो लगभग छेड़ बालिस्त लंबा होता है और पिड़की की
खँटों के बीच में टोका रहता है। इससे पिड़की या
सरकने या हिलाने नहीं पावे ।

गुहाला—संज्ञा पुं० [का०] एक प्रकार का लाल फूल ।

पौधा पोस्ते के पौधे के समान होता है। फूल भी
के समान पर लाल होता है। फूल (क) कत

मोगरें सोनगुही निस सैन (क) करे

रँग नैन ।—विहारी । (ख) करे

दुख मोचन गरे ।
रोचन धरे ।—गोपाल ।

गुह्यी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुह्यिका = गुह्यी] (१) किसी फल की गुहली।
किसी फल का बड़ा और लंबातरा बीज। (२) महुवे की
गुहली। गुलेंदे का बीज। शुक्ल। कोयेंदा। (३) किसी बालु
का कोई लंबातरा छोटा टुकड़ा जिसका पेदा गोल हो। जैसे,
काठ की गुहली, सोने की गुहली, रुपयों की गुहा, इत्यादि।
उ०—हल के पीछे जो लोहे की तीली गुह्यी रहती है उससे
धरती खुदती है।—शिवप्रसाद ।

गुहा—गुह्यी धँचना = धीर्य का पुत्र देना। युवायसा आना।

(४) काठ का चार छः अंगुल लंबा टुकड़ा जिसके दोनें छोर
जो की तरफ मुकील होते हैं तथा पेदा मोटा और गोल होता
है। इसे छंडे से मार मार कर लड़के एक प्रकार का खेल
खेलते हैं। छंटी। छँटई। उ०—यह लड़का दिन भर गुह्यी
छंडा खेला करता है। (५) छत्ते में यह जगह जहाँ मधु होता
है। (६) केवड़े का फूल। (७) मकई की बाल जिसके दाने
निकाल लिए गए हों। सुखड़ी। (८) एक प्रकार की मूना।
गगा मूना। (९) ऊँच की गँडेरी। गाँड़ा। (१०) छोटा गोल
पासा। कोई पासा ।

गो—गुह्यीवाला = पाठा बननेवाला।

(११) मिकलीगारों का एक औजार जिससे वे तलवार या
किसी हथियार का जंग (मोरचा) घुंरघते हैं। (१२) जिन्द-
साजों का एक औजार जिससे रगड़ कर वे जिन्द की सीवन
घरायर करते हैं। (१३) पगड़ी बुननेवालों का एक औजार
जिसे बुनते समय पाग के दोनें छोर इसलिये लगाते हैं जिसमें
पाग तनी रहे ।

विशेष—कई और पेशेवालों के गुह्यी के आकार के औजार इती
नाम से प्रसिद्ध हैं ।

गुवाक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुपारी। (२) चिकनी सुपारी ।

गुवार—संज्ञा पुं० दे० "गवाल" ।

गुवारपाठा—संज्ञा पुं० दे० "गवारपाठा" ।

गुवाल—संज्ञा पुं० दे० "गवाल" ।

गुविंदा—संज्ञा पुं० दे० "गोविंद" ।

गुसल—संज्ञा पुं० दे० "गुस्ल" ।

गुं पुं० दे० "गोस्वामी" ।

उ०—घुरदास धरपति के थलि

ले काग ।—सूर ।

वि० [अशालीन। अशिष्ट। दोषद्वय ।

अशिष्टता ।

गुस्लखाना—संज्ञा पुं० [च० गुस्ल + फा० खाना] स्नानागार ।
नहाने का घर । उ०—अरे ते गुस्लखाने बीच ऐसे उमराव,
लै चले मनाय महाराज शिवराज को ।—भूपेण ।

गुस्सा—संज्ञा पुं० [च०] [वि० गुस्साव, गुस्सेज] क्रोध । कोप । रिस ।
क्रि० प्र०—ग्रामा ।—करना ।—होना ।—में आना ।

गुहा—गुस्सा उतरना = क्रोध शांत होना । (किसी पर)
गुस्सा उतरना = (१) क्रोध में आ देखा हो उसे पूर्ण करना ।
कोप प्रकट करना । अरि कोप का फल चरना । (२) एक के
कारण जो क्रोध हो उसे दूसरे पर प्रकट करना । उ०—
उससे जो जीतते नहीं, हमारे ऊपर गुस्सा उतारते हो । गुस्सा
चढ़ना = क्रोध का आवेश होना । रिस का लगना । गुस्सा
चूक देना = क्रोध को दूर कर देना । छमा करना । गर्द गुजरी
करना । (छियाँ) गुस्सा निकलना = “दे० “गुस्सा उता-
रना” । नाक पर गुस्सा होना = बहुत जल्दी क्रोध में आना ।
वात वात पर क्रोध करना । क्रोध करने के लिये उदा तैयार
रहना । गुस्सा पीना = क्रोध रोकना । भीतर ही भीतर क्रोध
करके रह जाना, प्रकट न करना । गुस्सा मारना = क्रोध
रोकना । गुस्से से लाल होना = क्रोध से तमतमाना । क्रोध के
आवेश में आना ।

गुस्सेल—वि० [च० गुस्सा + हि० शेल (प्रच०)] जिसे जल्दी क्रोध
आये । गुस्सावर । घोड़ी घोड़ी बात पर विगड़नेवाला ।
उ०—वह थड़ा गुस्सेल आदमी है, उससे मत बोलो ।

गुह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्तिकेय । (२) अश्व । घोड़ा । (३)
विष्णु का एक नाम । (४) निवाद जाति का एक नायक जो
शंभुपुर में रहता था और राम का मित्र था । (५) विं-
दुच्छी जता । पिठवन । (६) शालपर्णी । सरियन । (७)
गुफा । (८) हृदय । (९) माया । (१०) मेढ़ा । (११)
सुद । (१२) बंगाली कायस्थों की एक जाति ।

† संज्ञा पुं० [सं० गुह] गूह । मैला ।

विशेष—महावैरी आदि के लिये दे० “गूह” ।

गुहड़ा—संज्ञा पुं० [देग०] धौपायों का एक रोग जिसे सुरपका भी
कहते हैं । इसमें उनके मुँह से लार बहती है, सुर में जाने
पड़ जाते हैं और इनका शरीर गरम रहता है । चलने में भी
वे लौंफाते हैं ।

गुहना—क्रि० सं० [सं० गुफन] (१) गूँघना । एक में विरोध ।
गूँघना । गणना । उ०—(क) शंभु जू मंडु गये गुन
सो वर भारत औरै बड़ी हुति भारि की ।—शंभु । (ख) पर
कीने कदा यदि गाँव के लोग गुहँ चरवान को सौसर है
।—झूरी सर्यल । (२) सुई तागे से टड़ करके सी देना ।

गुहाराज—संज्ञा पुं० [सं०] यह प्रसाद वा महल जो गुह (कार्ति-
केय) के आकार का बनता है । इसका विष्णु सोलह हाथ
का होता है । (धूरलक्षिता)

गुहराना—क्रि० सं० [हि० गुहर] पुकारना । चिल्लाकर बुलाना ।
उ०—कहै खुरान सो करि द तजि कंद सय कर अरवि द लै
नोविंद गुहरापो है ।—रघुराज ।

गुहघाना—क्रि० सं० [हि० गुहना का प्र०] गुहने का काम कराना ।
गूँघवाना ।

गुहपट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सगहन सुनी घड़ जो कार्तिकेय की
जन्मतिथि मानी जाती है ।

गुहाजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुह + जनी] धौल की पलक पर
होनेवाली कुड़िया । बिलनी । घुरघुरी । शंजनहारी ।

गुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुफा । कंदरा । उ०—केल विलोकि भूप
बड़ धीरा । भागि पैठ गिरिगुहा गौरीरा ।—गुलसी ।

गुहाना—क्रि० सं० दे० “गूधवाना” ।

गुहार—संज्ञा स्त्री० [सं० गो + हार] रक्त के लिये पुकार । देहाई ।
उ०—(क) बात कहत भई देश गुहारी ।—जायसी । (ख)
भाँकी दर्द अनाकनी फीकी परी गुहारी ।—पिहारी ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।—मारना ।—लगाना ।—लगाना ।

विशेष—दे० “गोहार” ।

गुहारि—संज्ञा स्त्री० दे० “गुहार” ।

गुहावर—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म ।

गुहाली—संज्ञा पुं० [सं० गोपाल] गोराला । गायों के रहने का
स्थान ।

गुहेरा—संज्ञा पुं० [सं० गोथ, हिं० गोह] गोह नाम का कीड़ा ।
गोथ ।

गुह—वि० [सं०] (१) गुप्त । छिपा हुआ । पोछीदा । (२) गोप-
नीय । छिपाने योग्य । (३) गुड़ । जिसका तात्पर्य सहज में
न समझा जा सके ।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) छल । कपट । दूँभ । (२) कलुषा ।
कच्छप । (३) गुदर, भरा, खिंय आदि गोपनीय अंग । (४)
विष्णु । (५) शिव ।

गुहाक—संज्ञा पुं० [सं०] वे यष जो कुबेर के खजानों की रक्षा
करते हैं । निधि-रक्षक यष ।

धौ०—गुहाकेय ।

गुहाकेदयर—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

गुहापति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

गूंगा—वि० [फा० गुंग = जो बेक न सके] [स्त्री० गूंगी] जो बेक
न सके । जिसके मुँह से स्पष्ट शब्द न निकले । जिसे वाणी
न हो । मूक ।

संज्ञा पुं० वह मनुष्य या प्राणी जो बोल न सके ।

गुहा—गूंगे का गुड़ = ऐसी बात जिसका अनुभव हो पर वर्णन
न हो सके । ऐसी बात जो कहते न बने । (गूंगा मनुष्य गुड़
का स्वाद अनुभव तो करता है पर उसे प्रकट नहीं कर
सकता ।) उ०—असुत कदा धमित गुन प्राटै सो हम कदा

पतावे'। सूरदास गूंगे के गुर ज्यों वृकति कहा सुकावे ।—सुर ।
गूंगे का गुड़ खाना = गूंगे के द्वारा गुड़ का खाया जाना ।
(क) नैवेद्य इन्हिं मोति श्री गूंगा । अस गुर खाय रहा
कै गूंगा ।—जायसी । उ०—(ख) ज्यों गूंगा गुर खाह कै
स्वादन न सकै भयानि ।—तुलसी । (बहुते लोगों ने विशेष कर
उड़्यालो ने 'गूंगे का गुड़' का मतलब 'गूंगे का दिया हुआ
गुड़' समझा है और इसी अर्थ में इसका प्रयोग भी किया
है । ऐसा प्रयोग अशुद्ध है जैसा कि हिंदी कवियों के उदा-
हरणों से स्पष्ट है ।) गूंगे का सपना = दे० "गूंगे का
गुह" । गूंगी पहेली = वह पहेली जो गुह से न फही जाय,
इसारी में कही जाय ।

गूंगी—संज्ञा स्त्री० [हि० गूंगा] जिनमें की बेंगली में पहनने की एक
प्रकार की विड़िया जो आकार में गोला होती है ।

वि० 'गूंगा' का स्त्री० ।

गूँच—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्ज] गुंजा । घुँघरी ।

संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मछली ।

गूँछ—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की बड़ी मछली जो ६ फुट
तक लंबी होती है और भारत की सब नदियों में पाई जाती
है । इसका मुँह नीचे की ओर होता है । आकार भी इसका
बहुत भद्दा होता है । यह प्रायः बहुत गहरे पानी में रहती
है । इससे जख्दी नहीं फैसती । घूँच ।

गूँज—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्ज] (१) औरों के गूँजने का शब्द ।
कलध्वनि । गुंजार । भिनभिनाहट । उ०—अपनी भंठी गूँज
से (आंरा) उसके रस को उभाड़ता है और तब उस पर रस लेने
के लिये बैठता है ।—अयोध्या । (२) प्रतिध्वनि । ग्यासध्वनि ।
देर तक बना रहनेवाला शब्द । (३) लट्टू में नीचे की ओर
जड़ी हुई वह लोहा की कील जिस पर लट्टू घूमता है । (४)
कान में पहनने की बालियों आदि में शोभा के लिये घोड़ी
दूर तक लपेटा छोटा पतला तार ।

गूँजना—क्रि० अ० [सं० गुञ्ज] (१) औरों या मक्खियों का
भिनभिनाना । औरों का मयुर ध्वनि करना । गुंजाना ।
उ०—झूले घर धसत धन धन में फुडूँ मालती नयेली ।
तापे मदमाते से मयुरक गूँजत मयुस रेली ।—हरिचंद्र ।
(२) (किसी स्थान का) प्रतिध्वनित होना । शब्द से ध्यास
होना । उ०—बाजे के स्वर से सारा घर गूँज उठा ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

(३) शब्द का खूब फैलना और देर तक बना रहना । ध्वनि
ध्यास होना । प्रतिध्वनि होना । उ०—यहाँ आवाज खूब
गूँजती है ।

गूँठ—संज्ञा पुं० [हि० गंठा = छोटा, नाटा] पहारी टट्टू । टाँग ।

गूँधना—क्रि० सं० दे० "गुधना" ।

गूँदा—संज्ञा पुं० दे० "गोदा" ।

गूँदी—संज्ञा स्त्री० [?] गेंबेला नाम का पेड़ जो गिरगिटों की
जाति का होता है और जिसकी जड़, छाल और पत्तियाँ
औषध के काम में आती हैं ।

गूँधना—क्रि० सं० [सं० गुण = फीटा] पानी में सान कर हाथों से
दबाना या मलना । माड़ना । मसलना । जैसे, आटा
गूँधना ।

क्रि० सं० [सं० गुंफन] (१) गूँधना । पिरोना । जैसे, माला
गूँधना । (२) कई तारों या बालों की लट्टों को घुमा घुमा
कर इस प्रकार एक दूसरे पर चढ़ाते हुए फैलाना कि एक
लट्टी सी बन जाय । बालों या तारों को लेकर इस प्रकार
घटना कि धरावर गुच्छे से बनते जाय । जैसे, पोटी गूँधना ।

गुगल, गुगुल—संज्ञा पुं० दे० "गुगुल" ।

गुजर—संज्ञा पुं० [सं० गुर्जर] (१) गुजरी, गुजरीया] (१)
घड़ीरों की एक जाति । ग्वाला । (२) उड़ियों का एक भेद ।

गुजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुर्जरी] (१) गुजर जाति की स्त्री ।
ग्वालिन । (२) पैर में पहनने का एक जेवर । उ०—सीतलिन को
करि ढारिहै गुजरी ऊजरी गुजरी गुजरी सेरी ।—सुंदरीसर्वस्व ।
(३) एक रागिनी ।

गुजी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुजुवा का स्त्री०] एक प्रकार का छोटा
काला बीड़ा ।

गुम्ना—संज्ञा पुं० [सं० गुम्ना, प्रा० गुम्ना] [स्त्री० गुम्ना] (१)
बड़ी पिराक । आटे या मीदे का एक पकवान जो आकार में
धदधेन्द्र होता है । इसके भीतर मीठा तथा गरी, चिरांजी,
किसमिस आदि मीचे भरे रहते हैं । (२) गुदा । (३) फलों
के भीतर का रोना ।

गुटी—संज्ञा स्त्री० [दे०] लीची का पेड़ लगाने की एक युक्ति ।

संज्ञा स्त्री० [दे०] बीपियों का एक रोग ।

गुड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुदा वा गुण] ज्वार या बाजरे की बाल में
वह गड़वा या प्याली जिसमें दाना गाड़ा रहता है ।

गुद—वि० [सं०] (१) गुस । छिपा हुआ ।

धा०—गुदगु, गुदगद = सन ।

(२) जिसमें बहुत सा अन्नप्राय छिपा हो । अन्नप्राय-गमित ।
गंधोर । उ०—इसकी बाते बहुत गुद होती हैं । उ०—कह
सुनि विहँसि गुद गुदुवानी । सुता गुम्हारि सकल गुणखानी ।—
तुलसी । (३) जिसका आराय जख्दी समझ में न आवे ।
अयोधगम्य । कठिन । जटिल । जैसे, गुद विषय ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थिति में पाँच प्रकार के साधियों में
से एक साधी जिसे अर्थी ने प्रसथी का वचन सुना दिया
हो । (२) एक अलंकार जिसे सुध भी कहते हैं । (दे०
"सुधालंकार") गुडोत्तर, गुडोक्ति । सुध, पदाधिक
और विद्युत्तैकि नामक अलंकार सब इसी के अंतर्गत आ
सकते हैं ।

गूढज, गूढजात—संज्ञा पु० [सं०] बाह्य प्रकार के पुत्रों में से एक । वह पुत्र जिसे पति के घर रहते हुए भी पत्नी ने अपने किसी गुप्त जार से पैदा किया हो और वह जार उसके पति का स्वर्ण ही हो ।

गूढता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुप्तता । छिपाव । पीसरीदगी । (२) श्रेयोधाम्यता । गंभीरता । कठिनता ।

गूढत्व—संज्ञा पु० [सं०] (१) गूढता । गुप्तता । (२) गंभीरता । श्रेयोधाम्यता । कठिनता ।

गूढनीड—संज्ञा पु० [सं०] खनन पक्षी ।

गूढपत्र—संज्ञा पु० [सं०] (१) करील वृक्ष । (२) भेनोट का पेड़ ।

गूढपद्म, गूढपाद—संज्ञा पु० [सं०] सर्प । साँप ।

गूढपद्म—संज्ञा पु० [सं०] (१) पीपल, बड़, गूलर, पाकर, हुवादि वृक्ष । (२) मौलसिरी । पकुरकुर ।

गूढफल—संज्ञा पु० [सं०] बेर का पेड़ ।

गूढमंडप—संज्ञा पु० [सं०] किसी देव मंदिर के भीतर का धरा मट्टा था धालान ।

गूढमैथुन—संज्ञा पु० [सं०] काक । कौवा ।

गूढव्यंग्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम्य में एक प्रकार की लक्षणा जिस में व्यंग्य का अभिप्राय सर्वसामान्य को जल्दी समझ में नहीं आ सकता ।

गूढांग—संज्ञा पु० [सं०] कथुवा ।

गूढांगि—संज्ञा पु० [सं०] सर्प । साँप ।

गूढा—संज्ञा पु० [सं०] मोटी और लंबी लकड़ी जो नाव में कोअभरिया के ऊपर लगाई जाती है । यह किरती की लंबाई के हिसाब से डेढ़ डेढ़ या दो दो हाथ की दूरी पर नाव की मजदूरी के लिये लगाई जाती है ।

गूढोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें कोई गुप्त बात किसी दूसरे के ऊपर छोड़ किसी तीसरे के प्रति कही जाती है । उ०—रूप भाग्य पर खेत से, आर्या पृथक खेत । यहाँ समीप चरते हुए बैल के घटाने परकीया के नाथक के प्रति बात कही गई है ।

गूढोत्तर—संज्ञा पु० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें प्रश्न का उत्तर कोई गुप्त अभिप्राय या मतवश लिपि हुए दिया जाता है । जैसे, खालिन देहुं बलाइ हीं मोहिं कष्ट तुम देहु । यंसीषट की छौंह में खाल जाय तुम लेहु ।—नितिराम । यहाँ उत्तर में खाल शब्द के द्वारा नाथक से मिलने का संकेत है ।

गूयना—संज्ञा पु० [सं०] गंधन] (१) कई वस्तुओं को तागे धादि के द्वारा एक में बांधना वा फैलाना । कई चीजों को एक गुच्छे वा लड़ी में बांधना । पिरोना । जैसे, माला गूयना । (२) किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में छुई तागे से अटकना । टांकना । उ०—कूनों पर स्थान स्थान पर मोली गुयें गप ये । (३) टाँके धादि के द्वारा दो वस्तुओं को एक में जोड़ना ।

टाँके से जोड़ मिलाना । (४) भरी सिलाई करना । टाँका मारना । सीना । गांधना ।

गूदा—संज्ञा पु० [सं०] गुप, प्रा० गुप] गूदा [मग्नु]

संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भ] (१) गड्ढा । गर्भ । (२) गहरा चिह्न । निशान । दाग । उ०—उसके चेहरे पर शीतला की गूँहें थीं ।

गूदड़—संज्ञा पु० [हि० गूदना] [स्त्री० गूदड़ी] चिपड़ा । फटा पुराना कपड़ा । उ०—हय गयदं उत्तरि कहा गदंम चर्दि धाऊँ । कंचनमयि खोलि दारि कांच गर वेंघाऊँ । कुंडम को तिलकमेदि काजर मुख लाऊँ । पाठंवर अंवर तजि गूदर पहिराऊँ ।—सूर ।

घा०—गूदड़ग्राह वा गूदड़साई = गूदड़ पहननेवाला सधू या फकीर ।

गूदर *—संज्ञा पु० दे० "गूदड़" ।

गूदा—संज्ञा पु० [सं०] गुप, प्रा० गुप] [स्त्री० गूदा] (१) किसी फल का सार भाग जो छिलके के नीचे होना है । फल के भीतर का वह अंश जिसमें रस धादि रहता है । (२) भोजन । मग्नु । खोपड़ी का सार भाग । उ०—सोनिग सो सानि गूदा दात सेतुवा से एक, एक मेत पियत बहोरि घोरि घोरि कै ।—मुलसी ।

मुहा०—मारते मारते गूदा निकालना = गहरी मार मारना ।

(३) किसी चीज के भीतर का सार भाग । मींगी । गिरी ।

(४) किसी वस्तु का सार भाग ।

मुहा०—बातों का गूदा निकालना = बात की खाश निकालना । बहुत खाद बिन्दो करना ।

गून—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुब = रस्ती] (१) रस्ती जिससे नाव रीं चले है (२) रीहा धास ।

गूना—संज्ञा पु० [सं०] गून = रंग] एक प्रकार का सुनहला रंग जो पीपल या सोने से बनाया जाता है और संकुकें, शीशों तथा धातु की और और वस्तुओं पर चढ़ाया जाता है ।

गूमड़ा—संज्ञा पु० [सं०] गुम] वह गोल और फीके सृजन जो सिर या माथे पर बाँध लगेने से होती है ।

गूमना—क्रि० सं० [?] (१) गूचना । माँड़ना । धाटे की तरह माँड़ना । (२) कुचलना । रँदना ।

गूमा—संज्ञा पु० [सं०] कुंफ, कुंफ] एक छोटा पीपल जिसकी गाँठ गाँठ पर गुच्छा सा होता है । इसी गुच्छे पर दो पत्ते निकलते हैं और सफ़ेद फूल भी लगने हैं । यह औषध के काम में आता है ।

पय्या०—द्रोषा । द्रोयपुत्री । कुंमा । कुंमेयिनि ।

गूरा—संज्ञा पु० [हि० गूरा] गुला । देवा ।

गूलर—संज्ञा पु० [सं०] गूलर ?] घटवर्ग चर्माय पीपल और बरगड की जाति का एक बड़ा पेड़ जिसकी पेड़ी, टाज धादि से एक

प्रकार का वृष निकलता है। इसके पत्ते महुये के पत्ते के आकार के पर-उससे छोटे होते हैं। पेड़ों और बाल की छाल का रंग ऊपर कुछ सफ़ेदी लिए और भीतर खलवाई लिए होता है। शरययों के और पेड़ों के समान इसके घुम फूल भी अंतगुण अर्थात् एक कोश के भीतर बंद रहते हैं। पुं० पुष्प और स्त्री० पुष्प के अलग अलग कोश होते हैं। गर्भाधान कीड़ों की सहायता से होता है। पुं० केंसर की वृद्धि के साथ साथ एक प्रकार के कीड़ों की उत्पत्ति होती है जो पुं० पराग को गर्भकेंसर में ले जाते हैं। यह नहीं जाना जाता कि वे कीड़े किस प्रकार पराग ले जाते हैं पर यह निश्चय है कि ले अवश्य जाते हैं और उसी से गर्भाधान होता है तथा कोश बंद कर फल के रूप में होते हैं। यह बिलकुल मांसल और मुलायम होता है। उसके ऊपर बड़ा छिन्नका नहीं होता, बहुत महीन झिल्ली होती है। फल को तोड़ने से उसके भीतर परिपक्व गर्भकेंसर और महीन महीन बीज दिखाई पड़ते हैं तथा भुगने या कीड़े भी मिलते हैं। गूलर की दाया बहुत शीतल मानी जाती है। पौधक में गूलर शीतल, पाव को भरनेवाला, कफ, पित्त और छातीसार को दूर करनेवाला माना है। इसकी छाल भी गर्भ को हितकारी, दुग्धवर्द्धक और व्रणनाशक मानी जाती है। धेनीर आदि घट जति के और फलों के समान इसका फल भी रेषक होता है।

पर्व्या०—उद्वर। असुमा। सीरी। रास्यत्रिका। कुष्ठी। राजिका। ककुवाटिका। अनाजी। कल्पुनी। मलयु।

गुहा—गूलर का कीड़ा = एक ही स्थान पर पड़ा रहनेवाला। अतु-भव प्राप्त करने के लिये घर वा देश से बाहर न निकलनेवाला। इधर उधर की कुछ भी खबर न रखनेवाला। कुणमंत्रक। गूलर का फूल = यह जो फानी देखने में न आवे। कुर्लम व्यक्ति वा यष्ट। गूलर का फूल होना = फानी देखने में न आना। हुनैम होना। गूलर का घेठ फड़वाना = गुन वा दबी दवाई यत् प्रकट करना। भंडा फोड़वाना। भेद चुनवाना। गूलर फोड़ कर जीव बढ़ाना = गुन भेद प्रकट करना।
 १ संज्ञा पुं० [दे०] मेवक। दादुर।

गूलर-कथाय—संज्ञा पुं० [हिं० गूलर + कथा० कथय] एक प्रकार का कथाय जो अबले और बिले हुए मांस के भीतर अदरक, उरीना, आदि भर कर भूनेसे से बनाता है।

गूल्ह—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक वृष का नाम जिसे पुट्टक भी कहते हैं। इससे एक प्रकार का सफ़ेद गोद निकलता है जिसे कतीला वा कतीरा कहते हैं और जो पानी में नहीं घुलता। इस वृष की छाल की रसिसर्मा बटी जाती है। जब यह वृष दस वर्ष का हो जाता है तब इसे काट डालते हैं और छालियों को छाँट कर तने के छ छ पुट्ट के टुकड़े कर डालते हैं। फिर छाल को उत्तर पर रसिसर्मा बटते हैं।

पत्तियों और छालियों चारे और दवा के काम आती हैं। लकड़ी के लिसैने तथा सितार सारंगी आदि बाने बनते हैं। कोई कोई जड़ों की सरकारी बनाते हैं या उम्हें गुड़ के साथ मिला कर खाते हैं। यह उत्तरीय भारत, मध्य भारत, दक्षिण तथा बर्मा के सूखे जंगलों में होता है। पश्चिमी घाट के पहाड़ों पर यह बहुत मिलता है।

गुपया—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोर की गूँघ पर बना हुआ अर्द्धचंद्र चिह्न।

गूह—संज्ञा पुं० [सं० गृह] गलीज। मल। मैला। शिवा। धीठ।
गुहा—(१) गूह छानना = पावना साफ़ करना। (२) गुच्छ से गुच्छ सेवा करना। बड़ी सेवा करना। गूह की तरह बचाना = घृणा पूर्णक दूर रहना। ३०—हम ऐसे आधुनिकों को गूह की तरह बचाने हैं। गूह का बोध = मद्रा और पिनीना (यष्ट वा व्यक्तिक)। गूह की तरह छिपाना = निंदा और लजा के भय से गुन रखना। गूह बढ़वाना = फलक फैलाना। निंदा होना। गूह बढ़ाना = बदनामी करना। गूह करना = रोदा और मीसा करना। गूह का देकरा = बदनामी का देकरा। फलक का भार। गूह खाना = बहुत अतृपित और भ्रष्ट कार्य करना। गूह गोपने करना = अगम्य छिपने से गुन करने किना। गूह घापना = होश में न रहना। पगतपन के काम करना। गूह में देला कंकना = उरे आदमी से छेड़ छेड़ करना। [बर्षों और रोगियों का] गूह मूत करना = मलमूत साफ़ करना। सुँह में गूह देना = बहुत थिकारना। किसी को छोड़ी कहना।

गूह—संज्ञा स्त्री० दे० 'गूहजनी'।
गूहाछोछो—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूह + छाँ] बुरे रूप का कण्ठा। गंदी कहा सुनी। बदनामी। अववाद। कलंक।
गूजन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नागर। (२) शलगम।
गूध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिद्ध। गीध। पत्ती। (२) जयपु, संज्ञाति आदि वीर्यापिक पत्ती।
घी०—गूधट। गूधमूह।

गूधकूट—संज्ञा पुं० [सं०] राजगूह के निरुद्ध एक पर्वत का नाम।
गूधमूह—संज्ञा पुं० [सं०] सेना की एक प्रकार की रचना वा स्थिति जो गीध के आकार की होती थी। ३०—तय प्रमुद्र हुत प्रभु देरा। गूधमूह विरचहु दल कोरा।—रघुनाथ।
गूधसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वात रोग जो पहले बूढ़े से उठता है और घीरे घीरे नीचे को उतरता हुआ दोनों पैरों को जकड़ लेता है। इसमें सुँहें चुनने की सी पीड़ा होती है, पैर कानेने लागते हैं, रोगी बहुत घीरे चलता है, तैज नहीं चल सकता।
गूह—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गूह] (१) घर। मकान। निवास-स्थान। आश्रम। (२) कुट्टय। खानदान। बंध।

गृहकन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] धीकुन्या । घृतकुमारिका । ग्वारपाया ।
 गृहकुमारी-संज्ञा स्त्री० दे० "गृहकन्या" ।
 गृहगोधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षिपकली । विसतृप्या ।
 गृहगोधि-का-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षिपकली । विसतृप्या ।
 गृहणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्मिणी ।
 गृहनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] कव्तर ।
 गृहनीड-संज्ञा पुं० [सं०] गीरा पत्नी गौरिवा ।
 गृहप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का मालिक । (२) घर का रक्षक । चौकीदार । (३) कुत्ता । उ०—(क) गृहप गोध गोमाक कलोलै छोटत भूँइ कपाली डोलै ।—विश्राम । (ख) यथा गृहप श्वकास्थि द्वै क्षिप चासत सह प्रीति । निज तावुगत सजुन भस्ति मान्य तोष धर्माति ।—विश्राम । (४) अग्नि । ब्राम ।
 गृहपति-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गृहपती] (१) घर का मालिक । (२) कुत्ता । (३) अग्नि ।
 गृहपशु-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता ।
 गृहपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का रक्षक । चौकीदार । पहरू । (२) कुत्ता । उ०—गृहपालहू ते अति निरारुद खान पात न पावई ।—तुलसी ।
 गृहमणि-संज्ञा पुं० [सं०] दीपक । चिराम ।
 गृहमृग-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता ।
 गृहस्वर्त-संज्ञा पुं० दे० "गृहस्व" ।
 गृहस्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाचर्य के उपरंत विवाह कर के दूसरे आश्रम में रहनेवाला व्यक्ति । ज्येष्ठधर्मी । (२) धार-वार-पाला । बाल-बच्चों-बाला आदमी । † (३) खाने पीने से लुग्रा आदमी । वह मनुष्य जिसके यहाँ खेती आदि होती हो ।
 गृहस्वाधम-संज्ञा पुं० [सं०] घर आश्रमों में से दूसरा आश्रम जिसमें महाचर्य अर्थात् विंशोपध्वन आदि के उपरंत लोग विवाह करके प्रवेश करते थे और घर का काम काज देखते थे । जीवन की वह अवस्था जिसमें लोग स्त्री पुत्र आदि के साथ रहते और उनका पालन करते हैं ।
 गृहस्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] गृहस्व + ई (प्रत्य०) । (१) गृहस्वाधम । गृहस्व का कर्तव्य । (२) धारवार । गृह प्यवस्था । (३) कुटुंब । सड़के वाले । उ०—वे अपनी गृहस्त्री लेते गए हैं ।
 मुदा०—गृहस्त्री सँभालना = घर का काम काज देखना । कुटुंब का पालन पोषण करना ।
 (४) घर का सम्मान । माल धर्मव्यय । उ०—इतनी गृहस्त्री कौन दो कर ले जाय ।
 † (५) खेती बारी । काम काज ।
 गृहिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घर की मालिकिनी । (२) आर्या । स्त्री ।
 गृही-संज्ञा पुं० [सं०] गृहिर । [स्त्री० गृहिणी] गृहस्व । गृहस्वाधम ।

गृह्य-वि० [सं०] (१) गृह संबंधी । गृहस्त्री से संबंध रखने-वाला ।
 गृह्यसूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह वैदिक पद्धति पुस्तक जिसमें लिखे हुए नियमों के अनुसार गृहस्थ लोग सुंउन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि सब संस्कार और कार्य करते हैं । पांच गृह्यसूत्र बहुत प्रसिद्ध हैं—(१) आश्वलायन, (२) कात्यायन, (३) सत्यायन, (४) मान्य और (५) गोभिल ।
 गेंगटा-संज्ञा पुं० [सं० कर्कट] केकड़ा ।
 गेंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गृधि, प्रा० गिदि, गेदि] बाराही कंद ।
 गेंडू-संज्ञा पुं० [सं० कांड] जल के ऊपर का पत्ता । अंगीरा ।
 सज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] (१) जल की पत्तियों, सरसों की डंडलों, और अरहर की काँटियों से बना हुआ घेरा जिसमें नीचे ऊपर भूसा देकर किसान अन्न रखते हैं ।
 गि० प्रा०—बालना ।—देना ।
 (२) किसी प्रकार का घेरा ।
 गेंडुना-कि० सं० [हिं० गंड] (१) किसी खेत को पतली छेटी दीवार से घेरना । खेतों को मंडू से घेर कर हद बंधना । (२) अन्न रखने के लिये गेंडू बनाना । (३) घेरना । गेंडना । (४) लकड़ी के बड़े छेदे टुकड़े काटने के लिये उसके चारों ओर कुहाड़ी से छेप लगाना ।
 गेंडुली-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] कुंडल । फेंटा । रस्सी के ऐसी धतु की वह स्थिति जिसमें एक दूसरे के भीतर कई मंडलाकार घेरे हों । उ०—साँप गेंडुली मार कर पैदा है ।
 गि० प्रा०—बोधना ।—मारना ।
 गेंडुहिया-संज्ञा स्त्री० [वि०] सत्र रंग के मिले हुए रोपें वा ऊन । (गड़रियों की बोली)
 गेंडू-संज्ञा पुं० [सं० कांड] (१) ईंख के ऊपर के पत्ते । अंगीरी । (२) ईंख । गड्डा । (३) ईंख की बड़ी गड़री । (४) ईंख के कटे हुए टुकड़े जो खेत में बोए जाते हैं । (५) पत्थर की विहाई जिस पर पीतल और ताँबा लाल करके पीठते हैं । इसका व्यवहार प्रायः मिर्गुंवर में है । † (६) दे० "गेंडू" ।
 गेंडु, गेंडुक-संज्ञा पुं० [सं०] गेंडू । कंदुक ।
 गेंडुआ-संज्ञा पुं० [सं० गंडुक = गेर] (१) तकिया । सिरदाना । उसीसा । उ०—(क) लोगनि भलो मनाइयो भलो होन की आस । करत गगन को गेंडुआ सो सड तुलसीदास ।—तुलसी । (ख) श्रम को क्षिपंरारा गेंडुआ की गलसुई किथीं कदि जेव ही उर को कि हार है ।—केवय । (ग) चंपक दख गुति गेंडुसे । मनहुँ रूप के रूपक उये ।—केवय । (२) बड़ा गेंडू ।
 गेंडुरी-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] (१) रस्सी का बना हुआ मंडरा जिस पर बड़ा रखते हैं । इंडुरी । विषया । उ०—अतिहि करत तुम श्याम अचंगरी । काहू की धीनत हो गेंडुरी काहू

की फेरत ही गमरी।—सूर। (२) फेंटा। कुंडली। (३) तबले वा वाएँ के नीचे की गेंडुली जिसमें बंदी लगा कर कसते हैं। (४) सोंपों का कुंडलाकार हो कर गोल बैठना।

क्रि० प्र०—मारना।—मार कर बैठना।

गेंडुली—संज्ञा स्त्री० दे० “गेंडुली”।

गेंती—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो अथर्व में छोटी छोटी नदियों और स्रोतों के किनारे और नेपाल की तरई में अधिकता से पाया जाता है। इस की पत्तियाँ ४-५ अंगुल लंबी और प्रायः हृत्ती ही चौड़ी होती हैं। गर्मी के आरंभ में इस में हरापन लिए हुए पीले रंग के छोटे छोटे फूलों के गुच्छे भी लगते हैं।

गेंद—संज्ञा पुं० [सं० गेंदुक, केंदुक] (१) कपड़े, रबर वा चमड़े का गोला जिससे लड़के खेलते हैं। केंदुक। उ०—लागे खेलन गेंद कन्हाई। चढ़े विटप शिशु मारिसि धाई।—विभ्राम।

क्रि० प्र०—उछालना।—खेलना।—कंकना।—मारना।

धौ०—गेंदधर। गेंदतड़ी। गेंदबहा।

(२) कालिय जिस पर रत्न कर लोपी बनाते हैं। कलवृत्त। (३) रोशनी करने की एक वस्तु जिसमें तार की जालियों से बने हुए एक गोले के भीतर रोशनी जलती है।

गेंदई—वि० [हि० गेंदा] गेंदे के फूल के रंग का। पीले रंग का। संज्ञा पुं० गेंदे के फूल के समान पीला रंग।

गेंदधर—संज्ञा पुं० [हि० गेंद + धर] (१) वह स्थान जहाँ लोग क्रिकेट, टेनिस आदि खेल खेलते और आमोद प्रमोद करते हैं। क्लबघर। (२) वह मकान जिसमें श्रीगणेश विलियर्ड नामक खेल खेलते हैं। विलियर्ड रूम।

गेंदतड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० गेंद + तड़तड़] लड़कों का एक खेल जिसमें वे एक दूसरे को गेंद मारते हैं, जिसे गेंद लगता है वह चार होता है।

गेंदबहा—संज्ञा पुं० [हि० गेंद + बहा] (१) गेंद और उसे मारने की लकड़ी। (२) वह खेल जिसमें लकड़ी की एक पट्टी से गेंद मारते हैं।

गेंदरा मारना—क्रि० अ० [हि० गेंद] लंगर बाले हुए जहाज का हवा वा लहर के कारण धुंध उभर हो जाना। (लश०)

गेंदघाँ—संज्ञा पुं० [सं० गेंदुक] तकिया। उत्तीसा। सिरहाना। उ०—प्रेम क पलंगा दिगे है विद्याय। सुरति के गेंदवा दिए दरकाय।—कवीर।

गेंदा—संज्ञा पुं० [हि० गेंद] (१) दो बड़े हाथ ऊँच एक पीथा जिसमें पीले रंग के फूल लगते हैं। इसमें लंबी पतली पत्तियाँ सींके के दोनो और पंक्तिमें भी लगती हैं। यह देर प्रकार का दोनो में आता है एक अंगली वा टिराँ जिसके फूल चार ही पांच दल के होते और बीच का फेर-गुच्छ दिखाई पड़ता है और दूसरा हजार जिसमें बहुत दल होते हैं।

फूलों के रंगों में भी भिन्नता होती है, कोई हलके पीले रंग के होते हैं, कोई नारंगी रंग के होते हैं। एक लाल रंग का गेंदा भी होता है जिस को डंडले कालापन लिए लाल होती हैं और फूल भी वही मलमली रंग के लगते हैं। गेंदे की सुलाई हुई पत्तियों को फिटकरी के साथ पानी में उबालने से गंधकी रंग बनता है। (२) एक प्रकार की आतिशायनी जिस में गेंदे के फूल की आकृति के गुल निकलते हैं। (३) सोने या चाँदी का सुपारी के आकार का एक बुसुफदार गहना जो जेथान या थाजू में घुँडी के स्थान पर होता है और नीचे लटकता रहता है।

गेंदुक—संज्ञा पुं० [सं० गेंदुक] गेंद। केंदुक। उ०—सारी केंवुकि केमरि टीके। करि सिंगार सप फूलनि ही के। कर राजत गेंदुकि नौलारी। सुटि दामिनि सी ईपद हाँसी।—सूर।

गेंदुवा—संज्ञा पुं० [सं० गेंदुक] गेंदुवा। उत्तीसा। तकिया। गोल तकिया। उ०—गुलगुली गोल मखमूल का सी गेंदुवा गड़े न गुड़ी जी में जऊ करत बिटाई सी।—देव।

गेंदाइया—संज्ञा स्त्री० [?] वरियों की एक जाति।

गेंदारा—संज्ञा पुं० [हि० गेंद] एक मिठाई। चीनी की रोटी। खाँद की रोटी। दे० “गिंदाइया”।

विद्योप—चीनी की चारणी को गाढ़ा करते करते गुँचे हुए आटे की तरह कर डालते हैं और तब उसकी पाव पाव या धाप धाप सेर की सोदानी (रेड़े) बना कर कपड़े पर फैला देते हैं और उन लोहाइयों पर दबा कर डैंगलियों के चिह्न बना देते हैं। ये लोहाइयों विवाह आदि उत्सवों पर विराद्री में बँधे के रूप में बाँटी जाती हैं।

गेगम—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक धारीदार वा चारखाना कपड़ा। सूँगिया। सींकिया।

गेगला—संज्ञा पुं० [?] मसूर की जाति का एक प्रकार का जंगली पौधा जो पंजाब से अंगाल तक ६००० फुट की ऊँचाई तक होता है। यह प्रायः आप ही आप होता है पर कभी कभी चारे के लिये बोया भी जाता है। इस के दाने काले रंग के होते हैं और प्रायः गेहूँ में मिले हुए देखे जाते हैं। गेहूँ के खेत में उदरप हो कर यह फसल को कुछ हानि भी पहुँचाता है। वि० [दे०] मूएँ। जड़। चबकूक। गेंदु।

गेगलापन—संज्ञा पुं० [हि० गेगला] मूखता। जड़ता। भौंड़पन। गेजुनियार—संज्ञा पुं० [दे०] गुलदुपहरिया।

गेटिस—संज्ञा पुं० [अ० गेट] (१) कपड़े वा चमड़े का बना हुआ एक आभूषण जिससे घुटने से ले कर पैरों तक ढेर ढँका रहता है। इसे खवार लोग अधिक काम में लाते हैं। (२) सोना आदि बंधने के लिये रबर, कपड़े वा चमड़े का पीता।

गेडुना—क्रि० सं० [सं० गंड = विह। हिं० गंडा] (१) लकड़ी से घेरना ।
मंडलाकार रेखा खींचना । (२) परिक्रमा करना । चारों ओर घूमना ।

गेडूँ—संज्ञा स्त्री० [सं० गंड = विह। हिं० गंडा] (१) लकड़ों का एक खेल जिस में धूथी पर एक लकड़ी खींच कर कुछ दूर पर एक लकड़ी रख देते हैं । जो लकड़ा उस लकड़ी पर चोट लगा कर उसे लकड़ी के पार कर देता है वह जीतता है । (२) वह लकड़ी जो इस खेल में रखी जाती है ।

गेदा—संज्ञा पुं० [सं० गूढ = पत्ती विरेण, प्रा० गिद] चिट्ठिया का वह वधा जिस पर न निकले हों ।

गेदुर—संज्ञा पुं० [देग०] एक धारामाली घास जो पशुओं के चारे के काम आती है और सूखने पर छाजने के काम आती है । इसे गोमुर या गुर भी करते हैं ।

गेधा—संज्ञा स्त्री० [देग०] ताने की कंधी की तीलियाँ । इन तीलियों के बीच बीच में ताने के सूत बिरोए रहते हैं जिस में वे एक दूसरे से सट कर उलकने न पावें । इन की संख्या ताने के सूत की संख्या के हिसाब से होती है । वे तीलियाँ लकड़ी की चिरी हुई पतली फट्टियों की होती हैं । (जुलारे)

गेध—वि० [सं०] गाने के योग्य । गाने के लायक । कवीरान करने योग्य ।

गेरना—क्रि० सं० [सं० गहन वा गिरण] (१) गिराना । नीचे डालना । (२) डालना । डेंडलना । उ०—(क) बारंबार लगा-वत माता लोचन खोलि पलक मुनि गोरत ।—सूर । (ख) भाल पै लाल गुलाल गुलाल सो गेरि गेरे गजरा अलबेली ।—पद्माकर । (३) डालना । धारोप करना । जैसे, सुरमा गेरना (भाल में), आचार गेरना ।

क्रि० थ० [हिं० घेरना] परिक्रमा करना । चारों ओर फिरना ।

गेरवा—संज्ञा पुं० [फा० गेरवी] गोरब । पशु के बंधन का वह धरा जो गले में लपेटा रहता है ।

गेरवई—संज्ञा स्त्री० [फा० गेरवी] गोरब ।

गेरवा—संज्ञा पुं० [फा० गेरवी वा हिं० गर + बंध] बंधनार्थ के बंधन का वह धरा जो गले में लपेटा रहता है ।

गेहना—वि० [हिं० गेह + ना (प्रत्य०)] (१) गेहूँ के रंग का । मटमलापन लिए लाल रंग का । (२) गेहूँ में रूँगा हुआ । गैरिक । जोगिया । मगधा । उ०—चला कटक जोगिन कर के गेहना सब भेल । कोस धीस चारहूँ दिस जनाहूँ फूला देस ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० (१) गेहूँ के रंग का एक कौड़ा जो मास के महीने में अधिक वर्षा होने से उत्पन्न होता है और धर्र के क्षेत्रों में लगा जाता है जिस से यनाज के पैड़ पीले पड़ जाते हैं । (२) गेहूँ के वैधों का एक रोग जिसके

कारण वे कमजोर हो जाते हैं और अन्न नहीं पैदा कर सकते । इसे गेहई और कुहड़ी भी कहते हैं ।

गेहई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेहूँ] चैत की फसल का एक रोग जो यनाज के वैधों की जड़ के घाम लाल रंग के महीने महीने कीड़े उलव हो जाने के कारण होता है । ये कीड़े फल जाते हैं और पत्तों पर लाली छा जाती है । इस से दाने मारे जाते हैं । सब से अधिक इसका असर गेहूँ की फसल पर होता है । जिस साल कुआर के पीछे जाड़े में वर्षा अधिक होती है उस साल यह रोग होता है ।

गेहूँ—संज्ञा स्त्री० [सं० गेहूँक] एक प्रकार की लाल कड़ी मिट्टी जो खानों से निकलती है । यह दो रूपों में मिलती है—एक तो धुरमुठी होती है और कच्ची गेहूँ कहलाती है, दूसरी कड़ी होती है और पकी गेहूँ कहलाती है । गेहूँ कई कामों में आती है । इससे सोने के गहने पर रंग दिया जाता है । रंगेज भी इस के मेल से कई प्रकार के रंग पजते हैं । धोयीं इसे धौंड छापने के काम में लाते हैं । औषध में भी इसका व्यवहार होता है ।

पथ्या—बालमिट्टी । गिरमाटी । गिरिस्त । सुरंगपाथ । गवेरक । गैरिक । ताप्रवर्णक । कठिन ।

गेला—संज्ञा पुं० [फ० गेला] छापेखाने में बड़ी गेली ।

गेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] छापेखाने में धातु या लकड़ी की एक छिद्रली करती जिस पर टाढ़र रख कर पहले पहल वह कागज छाप जाता है जिस पर संशोधन होता रहता है । इसके ऊपर पहले टाढ़र जमाकर रखे और रस्मी से कस दिए जाने हैं, फिर कागज छाप लिया जाता है ।

गेल्हा संज्ञा पुं० [देग०] चमड़े का कृप्या जिसमें सेली तेल रखते हैं ।

गेवर—संज्ञा पुं० [देग०] एक पैड़ । दे० “पैगवा” ।

गेह—संज्ञा पुं० [सं० गूह] घर । मकान । निवासस्थान । उ०—करि दूंदवत खली ललित जो गहै राधिको गेह ।—सूर ।

गेहनी—संज्ञा [हिं० गेह] घरवाली । गृहणी । भार्या । पत्नी । उ०—तुम रानी वसुदेव गेहनी हैं गंधारि मजरासी । पड़े देहु भेरे। लाइ लड़ने वारों पैनी हामी ।—सूर ।

गेहपति—संज्ञा पुं० [हिं० गेह + पति] गृहस्थानी । घर का मालिक ।

गेही—संज्ञा पुं० [हिं० गेह] गृहस्थ । घर-वार-वाला ।

गेहूँ अन्न—संज्ञा पुं० [हिं० गेहूँ] एक प्रकार का अत्यंत विषमर फनदार सौर जिस का रंग मटमला होता है ।

गेहूँ आ—वि० [हिं० गेहूँ] गेहूँ के रंग का । बादामी ।

गेहूँ—संज्ञा पुं० [सं० गेहूँ] एक यनाज जिस की फसल अगहन में बोई जाती और चैत में काटी जाती है । इस का वैष्या देड़ या पीने देा हाथ ऊँचा होता है और इस में बुद्ध की तरह खंबी पतली पत्तियाँ पैदी से खगी हुई निकलती हैं । पैदी

के बीच से सीधे ऊपर की ओर एक सीक निकलती है जिस में बाल लगती है। इसी बाल में दाने गुड़े रहते हैं। गेहूँ की खेती अत्यंत प्राचीन काल से होती आई है। चीन में ईसा से २७०० वर्ष पूर्व गेहूँ बोया जाता था। मिश्र के एक ऐसे स्वरूप में भी एक प्रकार का गेहूँ गढ़ा पाया गया जो ईसा से ३२५६ वर्ष पूर्व का माना जाता है। जंगली गेहूँ अथ तक कहीं नहीं पाया गया है। कुछ लोगों की राय है कि गेहूँ जव-गोधी वा खपली नामक गेहूँ से उत्पन्न कर के उत्पन्न किया गया है। गेहूँ प्रधानतः दो जाति के होते हैं एक दूँबवाले दूसरे दिना दूँबके। इन्हीं के अंतर्गत अनेक प्रकार के गेहूँ पाए जाते हैं, कोई कड़े, कोई नरम, कोई सफेद, कोई लाल। नरम वा अच्छे गेहूँ उत्तरीय भारत में ही पाये जाते हैं। नर्मदा के दक्षिण केवल कठिया गेहूँ मिलता है। संयुक्त प्रदेश और बिहार में सफेद रंग का नरम गेहूँ बहुत होता है और पंजाब में लाल रंग का। गेहूँ के मुख्य मुख्य भेदों के नाम ये हैं— दुधिया (नरम और सफेद), जमाली कड़ा भूरा), गंगा-जली, खेरी (लाल कड़ा), दाऊदी (उत्तम, नरम और श्वेत), सुँगेरी, सुँड़िया (दिना दूँब का, नरम, सफेद), पिनी (बहुत नरम और सफेद), जललिया (कड़ा, सफेद, खसदार), सहरिया (नरम और सफेद), कठिया (कड़ा और खसदार), घंसी (कड़ा और लाल)। भारतवर्ष में जितने गेहूँ बोए जाते हैं वे अधिकांश दूँबदार हैं क्योंकि किसान कहते हैं कि दिना दूँब के गेहूँओं को चिटिया खा जाती है। दाऊदी गेहूँ सबसे उत्तम समझा जाता है। जललिया की सूजी अच्छी होती है। वंशई मात में एक प्रकार का धरुयी गेहूँ भी होता है। खली वा जवगोधी नाम का बहुत मोटा गेहूँ सिंध से लेकर मैसूर तक होता है। इसमें विशेषता यह है कि यह खुरीफ की फसल है और सब गेहूँ रबी की फसल के अंतर्गत है। यह खराब जमीन में भी हो सकता है और इसे उत्पन्न करने में उतना परिश्रम नहीं पड़ता। भारतवर्ष में गेहूँ के तीन प्रकार के चूर्ण बनाए जाते हैं, मैदा, आटा और सूजी। मैदा बहुत महीन पीसा जाता है और सूजी के चूड़े चड़े रवे वा कण होते हैं। नियत व्यवहार में रोटी बनाने के काम में आटा आता है। मैदा अधिकतर पी मिठाई आदि बनाने के काम में आता है, सूजी का हलुवा अच्छा होता है।

पर्या०—गोभूम। बहुदुग्ध। अल्प। सुच्छभोजन। यवन। निस्तुप। घीरी। रसाल। शुभन।

गैटा—संज्ञा पुं० [दे०] कुयडाई।

गैडा—संज्ञा पुं० [सं० गंडक] अँ से के आकर का एक बड़ा पशु जो नदी किनारे के ऐसे दलदलों और कछारों में रहता है जहाँ जंगल होता है। यह जंगली भाड़ियों की जड़ों और नरम कोयलों को खाता है और प्रायः कीचड़ में पड़ा रहता है।

यह जिस प्रकार ढील ढाल में बढ़ा उसी प्रकार बलवान भी होता है पर दिना छोड़े किसी से नहीं चालता। इसे काठेवाले कुजुरदंत नहीं होते केवल वाडे होती हैं। इसके पैरों में तीन तीन डँगलियाँ होती हैं। इस का चमड़ा बिना बाल का तथा अत्यंत मोटा और ठोस होता है। इस की नाक की टुड़ी बड़ी मजबूत होती है और उस पर एक पीना साँग होता है जो चमड़े और बालों से दूर तक बका रहता है। मुद्द होने पर यह इसी से चोट करता है। इसके चमड़े की बालें बनती हैं। इसके ध्यान पर के सींग का भारतवर्ष में अर्थात् बनता है जो पितृत्वंपण के लिये उत्तम माना जाता है। गंगासागर के पास सुंदर बन में गेँडे बहुत मिलते हैं।

गैती—संज्ञा स्त्री० [दे०] जमीन खोदने का एक आजार। कुदाव।

गैती—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक पेड़ जो हिमालय के किनारे होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और अंदर से सुलई होती है। यह नकारा के लिये बहुत अच्छी होती है और इससे अनेक प्रकार के सामान बनते हैं। कमाऊँ और नैगल में इससे शेर और कटोरे भी बनाए जाते हैं।

गैन०—संज्ञा पुं० [सं० गन्न] (१) गैल। मांग। राप्ता। उ०—(क) प्रीत चलावे जित हूँदें तितै धरेँ ये गैन। नेह मनो-रथ रहे वे अथल्ल ह्य नैन।—रसनिधि। (ख) तारावन शशि रैन प्रति सूर हेहिहँ शशि गैन। तदपि अंधेरे है सनी पीड न देखे नैन।—रहीम।

गैना—संज्ञा पुं० [हिं० गव] [सं० गैनी] छोटी जाति का बैल। नाटा बैल। उ०—गैना नैना लाल के हित में जानत नाह। नहे नेह की बहल में घुरला जानत नाह।—रसनिधि।

गैफल—संज्ञा पुं० [?] जहाज के आगे की तरफ का एक छोटा सा पाल। (ख०)।

गैफलकंजा—संज्ञा पुं० [?] पाल को चढ़ाने उतारने की एक रस्सी। (ख०)।

गैब—संज्ञा पुं० [च०] परोच। वह जो सामने न हो।

गैा०—गैवर्दा। गैवदानी।

गैबर्दा—वि० [च०] परोच का जाननेवाला। संपदेश और सर्वकालक्ष। ऐसी बातों का जाननेवाला जो प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा न जानी जा सकें।

गैबर—संज्ञा पुं० [दे०] एक चिट्ठिया जिनके ढंने, दाती और पीठ सुफेद, हुम काली तथा बोंच और पैर लाल होते हैं।

गैबी—वि० [च० गैन] (१) गुप्त। छिपा हुआ। (२) अज्ञानी। अज्ञात। अयोपगम्य। उ०—(क) हिंदू कहुँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नहीं। पाँच तत्त्व का पूतला, गैबी खेले माहिँ। गैबी आया गैब ते, इहाँ सगया पेय। उलटि समानो गैब में, तब कहुँ रहँगा पेय। गैबी तो गलियाँ फिर, अज-गैबी कोइ एक। अजगैबी कोसों लखे, जाके हृदय विवेक।—

कवीर। (ख) गैबी जाने श्राय समाना नरियर में जस दूध भँके। जस भूमि सरजू वरर दिसि प तीनों जहाँ घ्राई नके।—देवखामी।

गैयर-संज्ञा पुं० [सं० गजवर] हाथी। गज। उ०—(क) विधिष भाति के घाजन घाने। हैवर गैयर गण बहु गाजे।—रघुराम। (ख) बहु नामन पर नैवत घाजे। तिन के गुरु गैयर गण गाजे।—रघुराम। (ग) पापी प्राह गैरि चङ्गि गैयर में भारो जाह थापि तेरी थीरता प्रवीरन अघारे हैं।—रघुराम।

गैयर-संज्ञा स्त्री० [सं० गे] गाय। गऊ। उ०—धनि यह वृंदावन की रेनु। मंदकुमार चंराई गैयाँ, सुनै यजार्ई बेनु।—सूर।

गैर-वि० [अ०] (१) शत्रु। दूसरा। (२) अजनबी। अपने कुटुंब वा अपने समान से बाहर का (व्यक्ति)। पराया। उ०—(क) चीनी लोग गैर आदमी को अपने देश में नहीं आने देते थे। (ख) आप कोई गैर से हैं नहीं, फिर आप से क्यों घात छिपावे। विशेष—इस शब्द का प्रयोग विरुद्ध अर्थवाची उपसर्ग के समान भी होना है। जिस विशेषण शब्द के पहले यह लगाया जाता है उसका अर्थ उल्टा हो जाता है, जैसे गैर-सुमकिन, गैरसुनासिध, गैरहाज़िर।

गैर-संज्ञा स्त्री० [अ०] अलाचार। अनुचित वताव। धोखे। उ०—(क) मेरे कहे मेर कर, सिवा जी सेाँ चैर करि गैर करि गैर निज नाहक उगारे तै।—भूषण। (ख) धावत हैं हम कबु दिन माहीं। चले गैर तिनकी तर नाहीं।—विभ्राम। क्रि० प्र०—करना।

संज्ञा पुं० दे० "गैयर"।

संज्ञा स्त्री० दे० "गैल"।

संज्ञा स्त्री० दे० "दैर"।

गैरखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गर + रखे] (सुनारों की बोली) हँसुकी।

गैरत-संज्ञा स्त्री० [अ०] लज्जा। शर्म। हया।

धौ०—गैरतदार।

गैरमनकूला-वि० [अ०] जिसे एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर न ले जा सके। स्थिर। अचल। (इस शब्द का प्रयोग आपदाद शब्द के साथ कानूनी कारवाइयों में विशेष कर होना है। आपदाद गैरमनकूला ऐसी संपत्ति को कहते हैं जो या तो भूमि हो या भूमि में बिलकुल गाड़ी हुई हो, जैसे, घर, खेत, वेड़, इत्यादि।)

गैरमासुली-वि० [अ०] (१) घलापारथ। (२) निलय नियम के विरुद्ध।

गैरमुनासिध-वि० [अ०] अनुचित। अयोग्य।

गैरमुमकिन-वि० [अ०] असंभव। न होने योग्य।

गैरवसली-संज्ञा स्त्री० [अ०] कच्चे मकानों की छत छाने की वह क्रिया जिसमें घास की पतली कमचियों को इकट्ठापूर्वक फेरवत उन देते हैं और उन्हें रसियों से नहीं बाँधते।

गैरवाजिब-वि० [अ०] अयोग्य। अनुचित। बेजा।

गैरहाज़िर-वि० [अ०] अनुपस्थित। जो मौजूद न हो।

गैरहाज़िरी-संज्ञा स्त्री० [अ०] अनुपस्थिति। नामाङ्कगी।

गैरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गेरु।

धौ०—गैरिकाष।

(२) सेना।

गैरिकाष-संज्ञा पुं० [सं०] जल महुष।

गैरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] खरही। ढाँठ का ढेर। खेत से कटे हुए खंडलों का ढेर।

संज्ञा स्त्री० [सं०] लांगलिकी वृक्ष। विपलांगला।

संज्ञा स्त्री० [सं०] गत वा अ० गार] गड्ढा। यह गड्ढा जिसमें किसान खाद इकट्ठी करते हैं। कूड़ा, फरकट, गोबर आदि फँकने का गड्ढा।

गैरिय-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजतु। शिलाजीत।

गैल-संज्ञा स्त्री० [हिं० गली] मार्ग। राह। रास्ता। गज़ी। कूचा।

उ०—(क) है। तुम मान हिंदू सिगरी कवि सेलर देहु सिखा-वन यामें। गैल में गोपद् नीर भयो सपि चौप को चंद परयो लखि तामें।—सेखर। (ख) मूला कट्टे बिलार सेाँ, सुन रे घोट लिठैल। हम निकसत हैं सैर को, तुम पैठत हो गैल।—गिरधर।

मुहा०—किसी की गैल जाना = (१) किली के साथ जाना।

(२) किली का अनुसरण करना। किसी को गैल करना = किसी को साथ कर देना। गैल लेना = साथ में लेना।

गैलडू-संज्ञा पुं० [अ० गैर + हिं० कड़का] किसी स्त्री के पहले पति का लड़का जिसे लेकर वह दूसरे पति के यहाँ जाय।

गैलन-संज्ञा स्त्री० [अ०] पानी दूध आदि द्रव पदार्थ मानने का एक धोखेरीज मान जो तीन सेर का होना है।

गैलरी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) नीचे ऊपर बैठने का सीढ़ीनुमा स्थान जैसा कि थिएट्रों और व्याख्यानालयों आदि में रहना है। (२) सैदागरी की सीढ़ीनुमा दूकान जिसमें बिक्री की वस्तुएँ पंक्तियों में सजा कर नीचे ऊपर रखी जाती हैं।

गैला, गैलारा-संज्ञा पुं० [हिं० गैल] (१) गाड़ी के पहिये की लीक। पहिये की लकीर। (२) गाड़ी का मार्ग। यह चौड़ा रास्ता जिससे गाड़ी जा सके।

गैल-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) प्रकृति में वायु के समान एक अत्यंत अगोचर और सूक्ष्म द्रव्य जिसके निम्न निम्न स्थलों के संयोग से जल वायु आदि पदार्थ बनते हैं। वह द्रव्य जिसके अणु अत्यंत सूक्ष्म वा चंचल हों और जो अत्यंत प्रसरणशील हो। विशेष—गैसों के अणु निरंतर गति में रहते हैं और ये एक स्तंभ में चल कर एक दूसरे से टकराते हैं तथा जिन घातन में गैस रहती है उसकी दीवारों पर दबाव डालते हैं। अधिक दबाव और सखी से गैस दबीभूत हो सकती है।

हे, पर मित्र मित्र गैसों के लिये मित्र मित्र मात्रा के दबाव और सरदी की आवश्यकता होती है। गैस की बड़ी भारी विशेषता यह है कि वह जितना खाली स्थान पाती है उतने भर में फैल कर भरना चाहती है, अर्थात् उसका कोई परिमित तल या विस्तार नहीं होता। बोतल में यदि हम बोतल भर पानी न डालेंगे तो पानी बोतल में कुछ दूर ही तक रहेगा। पर यदि उसी बोतल में गैस भरेंगे तो वह सारी बोतल में भर जायगी।

(२) एक प्रकार की सीध और गंधयुक्त वायु जो कोयले की पानों धादि से निकलती है। (३) बहुत सी मित्र मित्र गैसों का देसा मिश्रण जिससे गरमी पहुँचाने या रोशनी करने का काम लिया जाता है।

गोईटाँ—संज्ञा पुं० [सं० गो + विष्णु] गोबर का खूना हुआ चिप्पड़। कंदा। उजड़ा। गोहरा।

गोईङ्गा—संज्ञा पुं० [हिं० गौन + गेड़] गाँव का किनारा। गाँव का सिवान। गाँव के आस पास की भूमि।

गोईङ्गा—संज्ञा पुं० दे० “गोईङ्ग”।

गोईयाँ—संज्ञा पुं० स्त्री० दे० “गोइयाँ”।

गोईनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोहन] घेरी की जोड़ी।

गोइयाल—संज्ञा पुं० [दे०] घेरों की एक जाति।

गोचि—संज्ञा पुं० [सं० गोचरना] जोक।

गोड—संज्ञा स्त्री० [हिं० गधमेठ] गलमेठा। गलमेठा।

गोहा—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बड़ी लता जो देहरादून, श्रवण, गोवालपुर, बुंदेलखंड, बंगाल और मध्यभारत के जंगलों में विशेषतः जहाँ साल के वृक्ष हों अधिकता से होती है। यह बहुत अधिक फैलती है और यदि समय समय पर काटी छूटी न जाय तो जंगलों को बहुत हानि पहुँचती है। इसकी पत्तियाँ बड़ी और चौड़ी होती हैं और चारे के काम आती हैं। इसकी छालियों से एक प्रकार का रेशा भी निकाला जाता है। इसकी टहनियों के सिरे पर गुच्छों के फूल भी लगते हैं जो गरमी के दिनों में फूलते हैं।

गोटा—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो उत्तर भारत में पेशावर से भूटान तक, दक्षिण भारत तथा जावा में होता है। बरसात में इसमें बहुत छोटे छोटे फूल और जाड़े में काले रंग के छोटे मीठे फल लगते हैं जो खाने में बहुत स्वादिष्ट होते हैं। इसकी लकड़ी कड़ी होती है।

गोट—संज्ञा स्त्री० [सं० गेठ] धोती की लपेट जो कमर पर रहती है। सुरी।

गोठना—क्रि० सं० [सं० गुंठन] (१) किसी वस्तु की नोक या कोर गुंठली कर देना। (२) एकवान बनाने में गोमे या पुवे की कोर को मोड़ मोड़ कर उभड़ी हुई लकड़ी के रूप में करना।
क्रि० सं० [सं० गेठ, प्रा० गेठ + ना (अथ०)] चारों ओर

लकीर से घेरना। जैसे, चौका गोठना, घर गोठना (अस्तादी पृथिवी को)।

गोठनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंठना] खोदे या पीतल का एक चौड़ा जिससे गोकिया गोठते हैं।

गोड़—संज्ञा पुं० [सं० गोपद] (१) एक धसम्य जंगली जाति जो मध्य-प्रदेश में पाई जाती है। गोड़वाना प्रदेश का नाम इसी जाति के निवासस्थान होने के कारण पड़ा। (२) बंग और भुवनेश्वर के बीच का देरा। (३) एक राग जो वर्षाकाल में गाया जाता है। कोई इसे मेघ राग का पुत्र और कोई घनाशो माछार और खिलावल के मेल से बना एक संकर राग मानते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० गोप] गायों के रहने का स्थान।

संज्ञा पुं० [सं० गोपद] नाभि का लटका हुआ मांस।

संज्ञा पुं० [सं० गुंठ] खंगर के ऊपर का भाग जो गोल होता है।

संज्ञा पुं० [सं० (नाभि) गुंठ] यह मनुष्य जिसकी नाभि निकली हो।

गोटकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोट = राग + किरी] एक रागिनी जो गोट राग का एक भेद मानी जाती है।

गोटरी—संज्ञा पुं० [सं० गुंठल] [स्त्री० गोदरी] (१) वह कुंडलाकार गोल लकड़ी या सोदे की छड़ जो मोट के मुँह पर बँधी रहती है। सोदे का मँडरा जिस पर मोट का घासा लटकता है। (२) कोई गोल वस्तु जो कुंडल के आकार की हो। मँडरा। (३) लकीर का गोल घेरा।

क्रि० प्र०—खींचना।—डालना।

गोटरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंठल] (१) कुंडल के आकार की कोई वस्तु। मँडरा। (२) हँडुरी।

गोटुला—संज्ञा पुं० [सं० गुंठल] लकीर का गोल घेरा।

क्रि० प्र०—खींचना।—डालना।

विशेष—त्रयः भोजन आदि के समय इस प्रकार का घेरा, छत छत बचाने के लिये बनाया जाता है।

गोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० गोष] (१) बाड़ा। घेरा हुआ स्थान। (विशेष कर चौपायों के लिये) (२) मोहड़ा। पुरा। गाँव। खेड़ा। यस्ती। (३) खेतों का उतना घेरा जितना एक किसान का हो और एक ही अगह पर हो। (४) बड़ी चौड़ी सड़क। (५) सहन। चौक। आँगन। (६) वह न्योछावर जो लड़कीवाले के घर पर बरात के पहुँचने पर की जाती है। परछन।

मुहा०—गोड़ा सीजना = बरात के पहुँचने पर कन्या के परवालों का न्योछावर के रूप में कुछ द्रव्य बाँटना वा लुटाना।

गोई—संज्ञा पुं० [सं० गुंठन वा हिं० गुदा] पेड़ों के तने से निकला हुआ चिपचिपा या लसदार, पसेव जो खूबने पर कड़ा और

चमकीला हो जाता है। घुँघों का निर्यास। ३०—एक श्रंग वृषण को देना। गोंद होइ प्रकाश तिन कीने।—सूर।

गौं—गोंदानी = यह बतन जिसमें गोंद भिगा कर रखा रहे। संज्ञा स्त्री० [सं० गुन्द्रा] एक प्रकार की घास जिससे गोंदरी बनाई जाती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "गोंदरी"। ३०—गोंदकली सम चिकसी ऋतु बसेत श्री फाग।—जायसी।

गोंदनी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोंद] गोंद की पेड़। दे० "गोंदरी"।

गोंदपैत्री—संज्ञा स्त्री० [हि० गोंद + पैत्री] गोंद मिला हुई पैत्री जिसे प्रयुक्त खियों को खिलाने हैं।

गोंदपाग—संज्ञा पुं० [हि० गोंद + पाग] गोंद और चीनी के मेल से बनी हुई एक प्रकार की मिठाई। बपड़ी। ३०—वेडापाग, जलेबी, पेरा। गोंदपाग, तिनगरी, मिंदेरा।—सूर।

गोंदमखाना—संज्ञा पुं० [हि० गोंद + मखाना] भूरा हुआ मखाना जिसमें और मसालों के साथ गोंद मिला होता है और जो प्रयुक्त खियों को दिया जाता है।

गोंदरा—संज्ञा पुं० [सं० गुन्द्रा = एक घास] (१) नरम घास या पवाल का बना हुआ एक प्रकार का आसन जिस पर किसान खोग साधारणतः या चौपायों के लिये चारा काटने के समय बैठते हैं। (२) गोनरा घास।

गोंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुन्द्रा] (१) एक प्रकार की घास जो पानी में उगच होती है और बहुत लंबी कोमल और गरम होती है। (२) इसी घास की बनी हुई चटाई। (३) पवाल की बनी हुई चटाई।

गोंदला—संज्ञा पुं० [सं० गुन्द्रा] (१) यज्ञा नागरमोया जो जला-शयों के किनारे उगता और प्रायः एक गज तक ऊँचा होता है। (२) एक प्रकार की घास जिससे गोंदरी बनाई जाती है।

गोंदा—संज्ञा पुं० [हि० गूँघना] (१) मुने चने का घेसन जो पानी में गूँघ कर खुलबुलो को खिलाना जाता है।

गुदा—गोंदा दिखाना = (१) खुलबुलो को लड़ाने के लिये उन्हें दिखाने पर उनके बीच में चारा फेंकना। (२) केई ऐसी बात उपस्थित करना जिससे दो पक्ष परस्पर लड़ जाय। लड़ाई लगाना।

(२) घारा। मिट्टी का कपसा।

गोंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोंदनी = भिंयुं] (१) गौलसिरी की तरह का एक पेड़ जिसके पत्ते मौसली के पत्तों से कुछ लंबे होते हैं। फागुन चैत में इसमें लाल रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं। यह जंगलों और मैदानों में होता है। बहुत से स्थानों में बैध लोग भिंयुं शब्द से इसी रूपा का प्रहय करते हैं और इसके फूल, फल, छाल आदि का औषध में प्रयोग करते हैं। (२) इंगुरी। हिंदीगो।

गुदा—गोंदी सा लदना = (१) बहुत अधिक फनना। फलें

से गुदना। (२) शरीर में शीतला के या और किसी प्रकार के बहुत से राने निकलना।

गोंदीला—वि० [हि० गोंद + ईला (शब्द०)] जिस (वृष) में से गोंद निकलता हो। जैसे, बवल, डार आदि।

गौ—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाव। गऊ। (२) प्रकाशरश्मि। किरण। (३) वृष राशि। (४) ऋषभ नाम की ऋषधि। (५) इंदिय। (६) बोलने की शक्ति। धारणा। (७) सरस्वती। (८) ब्राह्म। षटि। देखने की शक्ति। (९) विज्ञप्ति। (१०) पृथ्वी। जमीन। (११) दिशा। (१२) माता। जननी। (१३) किसी धातु की बनी गोमूर्ति। (१४) बकरी, भैस, भेड़ इत्यादि पशु देनेवाले पशु। (१५) जीम। जवान। जिह्वा। संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल। (२) नंदी नामक शिवमण। (३) घोड़ा। (४) सूर्य। (५) चंद्रमा। (६) धारण। तीर। (७) गवैया। गानेवाला। (८) प्रशंसक। (९) आकाश। (१०) स्वर्ग। (११) जल। (१२) यज्ञ। (१३) शब्द। (१४) ना का शक। (१५) शरीर के रोम।

अर्थ० [का०] यद्यपि। जैसे, गो ऐसी धातु है, पर मैं कह तो नहीं सकता।

गौ—गोकि = यद्यपि। गो।

अर्थ० [का०] कहनेवाला। जैसे, कानूनगो, दोगूगो।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द योगिक के अंत में आता है।

गौँजी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मधुरी जिसका सुँह और रूँह दोनों एक ही तरह के होते हैं। इस पर झिलका नहीं होता।

गौँठा—संज्ञा पुं० [सं० गो + विधा] ईँधन के लिये सुखाया हुआ गोबर। उपला। कंठा। गोहरा।

गौँठारा—संज्ञा पुं० [हि० गौँठ + आर (अर्थ०)] उपले जमा करने या रखने का स्थान। कंठारा।

गौँड—संज्ञा पुं० [सं० गो + ध = धाम] (१) गांव की मीमा। गाँव का घेरा। (२) गाँव के पास की जमीन। (३) आस पास का स्थान।

गौँदा—संज्ञा पुं० [का०] यह मनुष्य जो छिपे छिपे किसी बात का भेद लेने के लिये किसी के द्वारा निवृत्त हो। गुप्त भेदिया। गुप्तचर। गुप्त रूप से समाचार पहुँचानेवाला।

गौँनका—संज्ञा पुं० [दे०] मारवाड़ी बँरों की एक जाति।

गौँर्या—संज्ञा पुं० स्त्री० [हि० गोहमियों] साथ में रहनेवाला। साथी। सहचर। ३०—राम लखन एक और भरत रिपुद्वयन लाल एक और भप। सरजुवरीर सम सुखद भूमि यल गनि गनि गौँर्या बंदि लए।—गुलसी।

गौँर्यार—संज्ञा पुं० [दे०] लाली रंग का एक छोटा पक्षी।

गौँलवाला—संज्ञा पुं० [दे०] बँरों की एक जाति।

गौऊं—वि० [हि० गो + ऊं (अर्थ०)] सुनानेवाला। छिपाने-

है, पर भिन्न भिन्न गैसों के लिये भिन्न भिन्न मात्रा के दबाव और सरदी की आवश्यकता होती है। गैस की बड़ी भारी विशेषता यह है कि वह जितना सूखी स्थान पाती है उतने भर में फैल कर भरना चाहती है, अर्थात् उसका कोई परिमित तल वा विस्तर नहीं होता। घेतल में यदि हम घेतल भर पानी न डालेंगे तो पानी घेतल में कुछ दूर ही तक रहेगा। पर यदि उसी घेतल में गैस भरेंगे तो वह सारी घेतल में भर जायगी।

(२) एक प्रकार की तीव्र और गंधयुक्त वायु जो कोयले की लानों आदि से निकलती है। (३) बहुत ही भिन्न भिन्न गैसों का ऐसा मिश्रण जिससे गरमी पहुँचाने वा रोपानी करने का काम लिया जाता है।

गोंडटाँ—संज्ञा पुं० [सं० गो + विष्णु] गोबर का खुला हुआ चिप्पड़। कंढा। उपल्ला। गोहरा।

गोंडिङ्ग—संज्ञा पुं० [हिं० गोंड + मंड] गाँव का किनारा। गाँव का सिवान। गाँव के आस पास की भूमि।

गोंडिङ्ग—संज्ञा पुं० दे० "गोंडिङ्ग"।

गोंडियाँ—संज्ञा पुं० स्त्री० दे० "गोंडियाँ"।

गोंडिँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोंड] बैलों की जोड़ी।

गोंगवाल—संज्ञा पुं० [दे०] वैश्यों की एक जाति।

गोंगवाँ—संज्ञा पुं० [सं० गोचंद्रना] जोंक।

गोंड—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंधमेख] गलमेछा। गलमेछा।

गोंडा—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बड़ी लता जो देहरादून, श्रवध, गोरखपुर, बुंदेलखंड, बंगाल और मध्यभारत के जंगलों में विशेषतः जहाँ साल के वृक्ष हों अधिकता से होती है। यह बहुत अधिक फैलती है और यदि समय समय पर काटी छाँटी न जाय तो जंगलों को बहुत हानि पहुँचाती है। इसकी पत्तियाँ बड़ी और चौड़ी होती हैं और चारे के काम आती हैं। इसकी डालियों से एक प्रकार का रेशा भी निकाला जाता है। इसकी टहनियों के निचे पर गुच्छों के फूल भी लगते हैं जो गरमी के दिनों में फूलते हैं।

गोंटा—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो उत्तर भारत में पेशावर से भूटान तक, दक्षिण भारत तथा जावा में होता है। बरसात में इसमें बहुत छोटे छोटे फूल और जाड़े में काले रंग के छोटे सठे फल लगते हैं जो खाने में बहुत स्वादिष्ट होते हैं। इसकी लकड़ी कड़ी होती है।

गोंट—संज्ञा स्त्री० [सं० गोंड] घोती की लपेट जो कमर पर रहती है। मुर्ती।

गोंटना—क्रि० सं० [सं० गुटन] (१) किसी वस्तु की नोक वा कोर गुडती कर देना। (२) पकवान बनाने में गोमे वा पुचे की कोर को मोड़ मोड़ कर उभड़ी हुई लड़ी के रूप में करना। क्रि० सं० [सं० गोंड, प्रा० गेंड + ना (श्रवण०)] चारों ओर

लकीर से घेरना। जैसे, चौका गोंटना, घर गोंटना (असाढ़ी पृथिमा को)।

गोंठनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोंठना] लोहे वा पीतल का एक चौड़ा जिससे गोमिया गोंठते हैं।

गोंड—संज्ञा पुं० [सं० गोंड] (१) एक असभ्य जंगली जाति जो मध्य-प्रदेश में पाई जाती है। गोंडवाना प्रदेश का नाम इसी जाति के निवासस्थान होने के कारण पड़ा। (२) बंग और भुवनेश्वर के बीच का देश। (३) एक राग जो वर्षाकाल में गाय जाता है। कोई इसे मेघ राग का पुत्र और कोई घनाश्री महार और विलावल के मेल से बना एक संकर राग मानते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० गोंध] गायों के रहने का स्थान।

संज्ञा पुं० [सं० गोंपठ] नामि का लटका हुआ मांस।

संज्ञा पुं० [सं० कुंड] लंगर के ऊपर का भाग जो गोल होता है।

संज्ञा पुं० [सं० (नामि) कुंड] वह मनुष्य जिसकी नामि निकली हो।

गोंडकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गेंड = राग + किरी] एक रागिनी जो गोंड राग का एक भेद मानी जाती है।

गोंडहरा—संज्ञा पुं० [सं० कुंडल] [स्त्री० गोंडरी] (१) वह कुंडलाकार गोल लकड़ी वा लोहे की छड़ जो मोट के मुँह पर बँधी रहती है। लोहे का मँडरा जिस पर मोट का चरसा लटकता है। (२) कोई गोल वस्तु जो कुंडल के आकार की हो। मँडरा। (३) लकीर का गोल घेरा।

क्रि० प्र०—खींचना।—डालना।

गोंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडल] (१) कुंडल के आकार की कोई वस्तु। मँडरा। (२) हँडरी।

गोंडुला—संज्ञा पुं० [सं० कुंडल] लकीर का गोल घेरा।

क्रि० प्र०—खींचना।—डालना।

विशेष—प्रायः भोजन आदि के समय इस प्रकार का घेरा, छूत छूत बचाने के लिये बनाया जाता है।

गोंडा—संज्ञा पुं० [सं० गोंड] (१) बाड़ा। घेरा हुआ स्थान। (विशेष कर चौपायों के लिये) (२) मोहला। पुता। गाँव। खेड़ा। बस्ती। (३) खेतों का उतना घेरा जितना एक किसान का हो और एक ही जगह पर हो। (४) बड़ी चौड़ी सड़क। (५) सहन। चौक। आँगन। (६) वह न्योछावर जो लकड़ीवाले के घर पर बरात के पहुँचने पर की जाती है। परछन।

मुहा०—गोंडा सीजना = वरात के पहुँचने पर फन्स के घरवालों का न्योछावर के रूप में कुछ द्रव्य घोटना वा लुटाना।

गोंद—संज्ञा पुं० [सं० कुंडर वा हिं० गुटा] पेड़ों के तने से निकला हुआ चिपचिपा वा ससदार पसेव जो सूखने पर कड़ा और

चमकीला हो जाता है। घुचों का निर्यास। उ०—एक श्रया घुचन कों दीने। गौद होइ प्रकारा तिन कीने।—सूर।
 धौ०—गौदनी = बहु बतन जिसमें गौद भिगा कर रखा रहे।
 संज्ञा स्त्री० [सं० शुद्रा] एक प्रकार की घास जिससे गौदरी बनाई जाती है।
 संज्ञा स्त्री० दे० "गौदरी"। उ०—गौदकली सम विकली श्रयुत बसंत श्री फाम।—जायसी।

गौदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौद] गौद्री का पेड़। दे० "गौद्री"।
 गौदपैत्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौद + पैंत्री] गौद मिली हुई पैंत्री जिसे प्रयुता क्रियों को खिलाने हैं।

गौदपाग—संज्ञा पुं० [हिं० गौद + पाग] गौद और चीनी के मेल से बनी हुई एक प्रकार की मिठाई। पपड़ी। उ०—वेडापाग, जलेबी, पेरा। गौदपाग, तिनगरी, गिंदेरा।—सूर।

गौदमखाना—संज्ञा पुं० [हिं० गौद + मखाना] मूला हुआ मखाना जिसमें और मसालों के साथ गौद मिला होता है और जो प्रयुता क्रियों को दिया जाता है।

गौदरा—संज्ञा पुं० [सं० शुद्रा = एक घास] (१) नरम घास या पयाल का बना हुआ एक प्रकार का घायन जिस पर किसान खोग साधारणतः या चौपायों के लिये चारा काटने के समय बैठते हैं। (२) गोनरा घास।

गौदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० शुद्रा] (१) एक प्रकार की घास जो पानी में उपज होती है और बहुत लंबी कामल और गरम होती है। (२) इसी घास की बनी हुई चटाई। (३) पयाल की बनी हुई चटाई।

गौदला—संज्ञा पुं० [सं० शुद्रा] (१) यद्वा नागरमोषा जो जलाशयों के किनारे उगता और प्रायः एक गज तक ऊँचा होता है। (२) एक प्रकार की घास जिससे गौदरी बनाई जाती है।

गौदा—संज्ञा पुं० [हिं० गौधना] (१) सुने चने का वेसन जो पानी में गूँध कर घुलबुली को खिलवाया जाता है।

गुहा०—गौदा दिखाना = (१) सुनसुनों को लुप्ताने के लिये उन्हें दिखाने का उनके बीच में चार फँसना। (२) कोई ऐसी बात उपरिष्ठ करना जिससे वे पक्ष परस्पर शत्रु जाय। लड़ाई लगाना।

(२) गारा। मिट्टी का कपसा।

गौदी—संज्ञा स्त्री० [सं० गौदनी = प्रियुत] (१) मौसलिकी की तरह का एक पेड़ जिसके पत्ते मौसली के पत्तों से कुछ लंबे होते हैं। फागुन पौत में हल्में खाल रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं। यह जंगलों और मैदानों में होता है। बहुत से स्थानों में वैद्य लोग प्रियुत शुद्ध से इसी वृक्ष का प्रहण करते हैं और इसके फूल, फल, धातु खादि का औषध में प्रयोग करते हैं। (२) इंदुरी। हिंदी गौद।

गुहा०—गौदी सा लदना = (१) बहुत अधिक पचना। कली

से गुड़जाना। (२) शरीर में शीतज्ञा के या और किसी प्रकार के बहुत से दाने निकलना।

गौदीला—वि० [हिं० गौद + ईला (प्रत्य०)] जिस (वृक्ष) में से गौद निकलता हो। जैसे, वयूल, दाऊ खादि।

गौ—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाय। गऊ। (२) प्रकलारमि। किरण्। (३) वृष राशि। (४) श्रयपम नाम की औषधि। (५) इंदिय। (६) बोलने की शक्ति। बाण्य। (७) सरस्वती। (८) प्रांख। दृष्टि। देखने की शक्ति। (८) बिजली। (१०) पृथ्वी। जमीन। (११) दिशा। (१२) माता। जननी। (१३) किसी पातु की बनी गोमूर्ति। (१४) बकरी, भैंस, भेड़ी हत्यादि वृक्ष देनेवाले पशु। (१५) जीभ। जवान। जिह्वा। संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल। (२) नदी नामक शिवगण्य। (३) घोड़ा। (४) सूर्य। (५) चंद्रमा। (६) बाण्य। तीर। (७) गर्वया। गानेवाला। (८) प्रशंस्कर। (९) श्राध्याय। (१०) स्वर्ग। (११) जल। (१२) वज्र। (१३) शब्द। (१४) नौ का शंख। (१५) शरीर के रोम।

श्रय० [फा०] यद्यपि। जैसे, गौ ऐसी बात है, पर मैं कह तो नहीं सकता।

घौ०—गोकि = यद्यपि। गौ।

प्रय० [फा०] कहनेवाला। जैसे, कानूनगो, दरोहगो।

विशेष—इस शब्द में यह शब्द वैयक्तिक के श्रंत में आता है।

गौईजी—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की मड़ली जिसका मुँह और पूँछ दोनों एक ही तरह के होते हैं। इस पर खिलका नहीं होता।

गौईठा—संज्ञा पुं० [सं० गौ + विष्टा] ईंधन के लिये सुखाया हुआ गोबर। उपजा। कंडा। गोहरा।

गौईठारा—संज्ञा पुं० [हिं० गौईठा + षारा (प्रत्य०)] उपले जमा करने या रखने का स्थान। कंडारा।

गौईठु—संज्ञा पुं० [सं० गौष्ठ = प्राय] (१) गाँव की सीमा। गाँव का घेरा। (२) गाँव के पास की जमीन। (३) आस पास का स्थान।

गौईदा—संज्ञा पुं० [फा०] वह मनुष्य जो छिपे छिपे किसी बात का भेद लेने के लिये किसी के द्वारा निवृत्त हो। गुप्त भेदिना। गुप्तचर। गुप्त रूप से समाचार पहुँचानेवाला।

गौइनका—संज्ञा पुं० [देग०] मारवाड़ी बिरयों की एक जाति।

गौइयाँ—संज्ञा पुं० स्त्री० [हिं० गौइयिणी] साय में रहनेवाला। साथी। सहचर। उ०—ताम लखन एक घोर भरत रिपुदवन साल एक घोर भय। सरजुवीर सम सुपद भूमि थल गनि गौइयाँ धादि लए।—सुखमरी।

गौइयार—संज्ञा पुं० [देग०] साकी रंग का एक छोटा पत्ती।

गौइयाला—संज्ञा पुं० [देग०] वैरमें की एक जाति।

गौऊ—वि० [हिं० गौना + ऊ (प्रत्य०)] धुरानेवाला। छिपाने-

वाला । हरण करनेवाला । उ०—रयाम यनी अय जेरी नीकी सुगहु सली मान लीज हँ । सूर रयाम जितने रंग कावत युवती जन मन के गोज हँ ।—सूर ।

गोकटक—संज्ञा पुं० [सं०] गोजर । गोजरू ।

गोकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु । उ०—मुनि वशिष्ठ हिय हर्षित भयज । देव मिलि गोकन्या दिग गयज ।—विश्राम ।

गोकर—संज्ञा पुं० [सं०] सुख्ये । भानु । रवि । उ०—प्रयत्त गिरा गिरि ईश्वर गवरी गौरी गिरिधारन । गोकर गायत्री सुगो-धरन तिय गोधारन ।—सूदन ।

गोकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंदुओं का एक शैव क्षेत्र जो मालाधार में है । रावण कुंभकरण आदि ने यहाँ तप किया था । (२) इस स्थान में स्थापित शिवमूर्ति का नाम । (३) नीलमाम । (४) खखर । (५) (खी० गोकर्ण) एक प्रकार का सर्प जिसके कान होते हैं । (६) वालिरत । विष्ठा । (७) कारमीर देश के एक प्राचीन राजा का नाम । (८) शिव के एक गण का नाम । (९) पुंभकारी के भाई का नाम जिससे भागवत सुन कर पुंभकारी तर गया था । (१०) एक मुनि का नाम । (११) गाय का कान । (१२) नृत्य में एक प्रकार का हस्तक । वि० [सं०] जिसके गऊ के से लंबे कान हों ।

गोकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसकी पत्तियाँ छीकुराकी तरह चिकनी थीं मोटी होती हैं और जिसमें छोटे मोटे फल लगते हैं । सुरही । चुनहार ।

गोकील—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल । (२) मूसल ।

गोकुंजर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खूब मोटा ताजा और पल्लित बैल । सांड । (२) शिवजी का नंदी गण ।

गोकुंद—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मछली जो दक्षिण की नदियों में पाई जाती है ।

गोकुल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौश्रां का कुंड । गो-समूह । (२) गौश्रां के रहने की जगह, गोपाला, खरिका आदि । (३) एक प्राचीन गाँव जो वर्तमान मथुरा से पूर्व-दक्षिण की ओर प्रायः तीन कोस दूर जमुना के दूसरे पार था और जिसे आज कल महापन कहते हैं । श्रीकृष्णचंद्र ने अपनी बाल्या-वस्था यहाँ बिताई थी । आजकल जिस स्थान को गोकुल कहते हैं वह नवीन और इससे भिन्न है ।

गोकुलस्थ—वि० [सं०] गोकुल-निवासी । जो गोकुल ग्राम में रहता हो ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बलभी गोस्वामियों का एक भेद । (२) तैलंग ब्राह्मणों का एक भेद । प्रभाकर कवि इसी वंश के थे ।

गोकोस—संज्ञा पुं० [सं० गो + कोष] (१) जतनी दूरी जहाँ तक गाय के बोलने का शब्द सुन पड़े । (२) छोटा फौस । हलका फौस । गोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जोक नामक कीड़ा । उ०—कचम मकर धूरम

उरग प्राद गोह शिशुमार । विद्युलत पक्षिजत वच्छलत धावन मुर पुनि धार ।—विश्राम ।

गोभुर—संज्ञा पुं० [सं०] गोजरू नामक सुप या उसका फल ।

गोखग—संज्ञा पुं० [सं० गो + खग] खलवर । पशु । जानवर । उ०—गोखग, खेखग, बारिखग, तीना माह विसैक । तुलसी पीवे फिरि चलै, रहे फिरि सँग एक ।—तुलसी ।

गोखरू—संज्ञा पुं० [सं० गेखुर] (१) एक प्रकार का सुप जिसमें चने के आकार के कड़े और कँटीले फल लगते हैं । ये फल चौपच में काम आते हैं और वैद्यक में इन्हें शीतल, मधुर, पुष्ट, रसायन, दीपन और फाय, वायु, अर्थ और प्रयानशक कहा है । यह फल बड़ा और छोटा दो प्रकार का होता है । कहीं कहीं गरीब लोग इसके बीजों का आटा बना कर खाते हैं ।

पर्या०—शिकंठक । गोकंठक । त्रिपुट । कंठक फल । स्वादुकंठक । छुरक । वनस्पंटाक । श्वंदूरका । भयकंठक । सुरंग ।

(२) गोजरू के फल के आकार के धातु के बने हुए गोल कँटीले टुकड़े जो प्रायः मल दापियों को पकड़ने के लिये उनके रास्ते में फैला दिए जाते हैं और जिनके पैरों में गड़ने के कारण हाथी चल नहीं सकते । (शत्रु सेना की गति रोकने के लिये भी मार्ग में पहले ऐसे ही कटि बिछाए जाते थे) । (३) गोटे और बादले के तारों से गूथ कर बनाया हुआ एक प्रकार का साज जो प्रायः स्त्रियों और बालकों के कपड़ों में टंका जाता है । (४) कड़े के आकार का एक प्रकार का श्राभूषण जो हाथों और पैरों में पहना जाता है । (५) तखवे, छेपेली आदि में पड़ा हुआ यह घट्टा जो काँटा गड़ने के कारण होता है ।

गोखा—संज्ञा पुं० [सं० गखाण] दीवार में चना हुआ वह छोटा छेद जिसमें से बाहर की चीजें देखी जाय । मोला । भरोला । गोखा । उ०—भाकि फिरी भँजेतीन भरोखन गोखनहूँ खिनहूँ सुख सैनन ।—देव ।

संज्ञा पुं० [हिं० गो + खल] गाय वा बैल का कच्चा चमड़ा । गोखुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ का पैर । (२) गौ के खुर का वह चिह्न जो उसके चलने से जमीन पर पड़ जाता है ।

गोखुरा—संज्ञा पुं० [हिं० गो + खुर] करैत साँप । विशेष—इसका पन गौ के खुर के समान होता है, इसी से इसका यह नाम पड़ा ।

गोगा—संज्ञा पुं० [दे०] छोटा काँटा । मेख ।

गोगापीर—संज्ञा पुं० एक पीर वा देवता जिसकी पूजा अथिकतर नीच जाति के हिंदू और सुसलमान राजपूताने पंजाप आदि में करते हैं ।

विशेष—गोगा के विषय में निम्न निम्न प्रकार की कथाएँ प्रसिद्ध हैं । कोई कोई कहते हैं कि यह जाति का चौहान राजपूत था और चौकानेर की राजगढ़ तहसील के अंतर्गत ओड़रा में

उत्पन्न हुआ था। मैं बाप से खट कर वह जोगी हुआ और फिर मुसलमान हो गया। कहते हैं कि मुसलमान होते ही वह थोड़ा और हथियारों समेत तौहर नामक स्थान में पूछी में समा गया जहाँ उसकी समाधि अब तक बनी हुई है और भाई मुदी ८-६ को बड़ा मेला लगता है। दूर दूर से लोग आ कर मनाती चढ़ाने हैं। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि गोमा अब मुसलमान होकर अपनी छो की भी मुसलमान करना चाहता था तब प्रतापसिंह नामक किसी राजा ने उसे पूछी में चुनवा दिया। साँपों को दूर रखने के लिये गोमा की पूजा दूर दूर तक होती है।

गोप्रास—संज्ञा पुं० [सं०] पके हुए अन्न का वह थोड़ा सा भाग जो भोजन या श्राद्धादिक के आरंभ में गी के लिये अलग निकाल कर रख दिया जाता है।

गोघाटी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की कपास जो भड़ौच और बरोदा में होती है।

गोघात—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोहत्या।

गोघातक, गोघाती—संज्ञा पुं० [सं०] गोहिंसक। बृचर। कृसाई।

गोप्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गी को मारनेवाला। गी का वध करनेवाला। (२) अतिथि। मेहमान। पाहुना।

विशेष—प्राचीन काल में किसी अतिथि के आने पर मनुष्य के लिये गोहत्या करने की प्रथा थी, इसी से 'अतिथि' को 'गोप्र' कहने लगे।

गोचंदन—संज्ञा पुं० [सं०] सुधुम के अनुसार एक प्रकार का चंदन।

गोचंद्रना—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जखरीली जोक जिसकी दुम कुछ मोटी और प्रायः दो भागों में बँटी सी मालूम होती है। सुधुत के अनुसार इसके काटने से काटा हुआ स्थान सूज जाता है शरीर सुख हो जाता है और मनुष्य के कं और सूँझाँ होती है।

गोचरना—कि० सं० [पू० हिं० अनेकना] रोकना। रुकना। किसी वस्तु की गति रोकना।

संज्ञा पुं० [हिं० गेहूँ + चना] चना मिला हुआ गेहूँ।

गोचनी—संज्ञा स्त्री० दे० "गोचना"।

गोचर—वि० [सं०] जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह विषय जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके। वह बात जो इंद्रियों की सहायता से जानी जा सके। जैसे, रूप, रस, गंध आदि। (२) गीशों के चरने का स्थान। चरागाह। चरी। (३) देण। प्रांत। (४) ज्योतिष में किसी मनुष्य के प्रसिद्ध नाम की राशि के अनुसार गणित करके निकाले हुए ग्रह जो जन्मराशि के ग्रहों से कुछ भिन्न होते और स्थूल माने जाते हैं।

गोचरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गी + चर] मिश्रावृत्ति।

गोचर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गी का चमड़ा (जिस पर कुछ

विशेष कर्म आदि करने के समय धैरते हैं)। (२) जमीन, खेत आदि की प्राचीन काल की एक नाप, जो २१०० हाथ लंबी और इतनी ही चौड़ी होती है। इसे चरस या चरसा भी कहते हैं।

गोची—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की मछली। (२)

हिमालय की छो का नाम।

गोज—संज्ञा पुं० [का०] अथानवायु। पाद।

कि० प्र०—करना।

गोजर—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेहूँ + जो] गेहूँ और जौ मिला हुआ अन्न।

गोजर—संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धा बँल।

संज्ञा पुं० [सं०] खर्रुं वा हिं० गुग्गुलु] कमलवृद्धा नाम का कीड़ा।

गोजर—संज्ञा पुं० [हिं० गेहूँ + जव] जौ मिला हुआ गेहूँ।

गोजा—संज्ञा पुं० [सं० गवाजन] दोटे पैरों का बया कछा जो सीधा निकलता है।

[संज्ञा पुं०] [स्त्री० गोजी] यह लकड़ी जो घरवाहे अपने साथ पशुओं को हाँकने के लिये रखते हैं।

गोजिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गोजिया] गोमी या बनगोमी नाम की घास। विशेष—दे० "गोमी"।

गोजिहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोमी या बनगोमी नाम की घास जो शीघ्र के काम आती है। दे० "गोमी"।

विशेष—कुछ लोग भूल से गावर्जा को भी गोजिहा कहते हैं।

गोजी—संज्ञा स्त्री० [सं० गवाजन] (१) गी हाँकने की लकड़ी। (२) बड़ी लाठी। लट्ट।

मुदा—गोमी चलना = लड़कियों से मार पीट होना।

(३) एक प्रकार का खेल जिसमें पटे बनेकी आदि की तरह लकड़ी भाँजते हैं।

कि० प्र०—खेलना।

गोजीन—वि० [सं०] जिससे इंद्रियों को जीत लिया हो। जितेंद्रिय।

गोभनवटा—संज्ञा पुं० [दे०] खिरों की साड़ी का वह भाग जो पीठ और सिर पर रहता है। अंचल। पहा।

गोभा—संज्ञा पुं० [सं० गुलक] [स्त्री० अल्प० गेफिया, गुफिका] (१)

गुफिया नामक पकाव जो मँदे में चूसा या नया आदि भर कर बनता है। ३०—(क) गोभा बहुपूरण पूरे। भरि भरि कपूर रस चूरे।—सूर। (ख) भय जीव विन नावत घोभा। विप भइ पूरि काल भए गोभा।—जायसी। (२) लकड़ी की डील जो फाट के सामान में सरस लगा कर ठोंकी या चँलाई जाती है और जिसका बाहर निकला हुआ भाग आरी से फाट कर लकड़ी की सतह के बराबर कर दिया जाता है। गुम्का। बंसकील। (३) एक प्रकार की कँटीली घास। गुम्का। (४) जौ। खीसा। खलीता।

गोट—संज्ञा स्त्री० [सं० गेट] (१) वह पट्टी या फीता जिसे किसी

वाला । हरण करनेवाला । उ०—श्याम धनी श्रव जोरी नीकी सुगहु सखी मान तौऊ हैं । सूर श्याम जितने रंग कावट सुवती जन मन के गोरु हैं ।—सूर ।

गोकटक-संज्ञा पुं० [सं०] गोरु । गोलरु ।

गोकन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु । उ०—सुनि वशिष्ट हिय हर्षित भयक । देव मिलि गोकन्या विप्र गवक ।—विश्राम ।

गोकर्-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । शनि । उ०—प्रणत गिरा गिरि द्वेष गवरी गौरी गिरिधारन । गोकर् गायत्री सुगो-धरन तिय गौदारन ।—सूदन ।

गोकर्षी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंदुओं का एक शैव क्षेत्र जो मालावार में है । रावण कुम्भकरण आदि ने यहीं तप किया था । (२) इस स्थान में स्थापित शिवमूर्ति का नाम । (३) नीलमाम । (४) खबर । (५) (की० गोकर्षी) एक प्रकार का साँप जिसके कान होते हैं । (६) बालिरत । वित्त । (७) कारमीर देश के एक प्राचीन राजा का नाम । (८) शिव के एक गण का नाम । (९) धुंधकारी के भाई का नाम जिससे भागवत सुन कर धुंधकारी तर गया था । (१०) एक मुनि का नाम । (११) गाय का कान । (१२) नृत्य में एक प्रकार का हलक ।

वि० [सं०] जिसके गऊ के से लंबे कान हैं ।

गोकर्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की खता जिसकी पत्तियाँ धीकुमार की तरह विकर्णी और मोटी होती हैं और जिसमें छोटे मीठे फल लगते हैं । सुरहरी । सुरनहार ।

गोकौल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हज । (२) मूसल ।

गोकुंजर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खूब मोटा तागा और बलिष्ठ बैल । साँड़ । (२) शिवजी का नंदी गण ।

गोकुंद-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की मछली जो दक्षिण की नदियों में पाई जाती है ।

गोकुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौशों का कुंड । गो-समूह । (२) गौशों के रहने की जगह, गोशाला, खरिका आदि । (३) एक प्राचीन गाँव जो वर्तमान मथुरा से पूर्व-दक्षिण की ओर प्रायः तीन कोस दूर जमुना के दूसरे पार था और जिसे आज कल महावन कहते हैं । श्रीकृष्णचंद्र ने अपनी शाल्या-पत्या यहीं वितार्हे थी । आजकल जिस स्थान को गोकुल कहते हैं वह नवीन और इससे भिन्न है ।

गोकुलद्वय-वि० [सं०] गोकुल-निवासी । जो गोकुल ग्राम में रहता हो ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) पलभी गोस्वामियों का एक भेद । (२) लौंग ब्राह्मणों का एक भेद । पनाकर कवि इसी वंश के थे ।

गोकौस-संज्ञा पुं० [सं० गो + कौस] (१) बतनी दूरी जहाँ तक गाय के चलने का शब्द सुन पड़े । (२) छोटा फोस । हलका फोस ।

गोस्त-संज्ञा पुं० [सं०] जोक नामक कीड़ा । उ०—कच्युम मकर हूम

उरग प्राद गोड शिशुमार । विदुलत पदुलत उदुलत धावन सुर धुनि धार ।—विश्राम ।

गोशुर-संज्ञा पुं० [सं०] गोरुख नामक सुप वा उसका फल ।

गोश्याग-संज्ञा पुं० [सं० गो + श्या] बलचर । पशु । जानवर । उ०—गो-श्याग, खैलाग, धारिलग, तीना माह विसंके । तुलसी पीवै फिरि चले, रहे फिरै सँग एक ।—तुलसी ।

गोलरु-संज्ञा पुं० [सं० गे.रु] (१) एक प्रकार का सुप जिसमें चने के आकार के कड़े और कँटीले फल लगते हैं । ये फल श्राप्य में काम आते हैं और चैतक में इन्हें शीतल, मधुर, पुष्ट, रसायन, दीपन और फाय, वायु, शर्मा और वयनशक कहा है । यह फल बड़ा और छोटा दो प्रकार का होता है । कहीं कहीं गरीब लोग इसके पीतों का आटा बना कर खाते हैं ।

पर्या०—त्रिकंठक । गोकंठक । त्रिपुट । कंठक फल । स्वादुकंठक । सुरक । धनगं गोटक । श्वदंष्ट्रका । भयकंठक । सुरंग ।

(२) गोलरु के फल के आकार के धातु के बने हुए गोल कँटीले टुकड़े जो प्रायः मत्त हाथियों को पकड़ने के लिये उनके रास्ते में फैला दिए जाते हैं और जिनके पैरों में गड़ने के कारण हाथी चल नहीं सकते । (शयु सेना की गति रोकने के लिये भी मार्ग में पहले ऐसे ही कटि विद्याएँ जाले ये) । (३) गोटे और वादले के तारों से गूथ कर बनाया हुआ एक प्रकार का साज जो प्रायः खियों और बालकों के कपड़ों में टँका जाता है । (४) कड़े के आकार का एक प्रकार का श्राप्य जो हाथों और पैरों में पहना जाता है । (५) तलवे, हथेली आदि में पड़ा हुआ वह पट्टा जो काँटा गड़ने के कारण होता है ।

गोशा-संज्ञा पुं० [सं० गवान] दीवार में बना हुआ यह छोटा छेद जिसमें से बाहर की चीजें देखी जाय । मोखा । भरोखा । गिहा । उ०—भाँकि फिरि भँकैरीन भरोखन गोखनहँ खोलहँ सुख सैनन ।—देव ।

संज्ञा पुं० [हिं० गो + खाण] गाय वा बैल का कच्चा चमड़ा ।

गोखुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ का पैर । (२) गौ के खुर का यह चिह्न जो उसके चलने से ज़मीन पर पड़ जाता है ।

गोखुरा-संज्ञा पुं० [हिं० गो + खुर] करैत साँप ।

विशेष—इसका फन गौ के खुर के समान होता है, इसी से इसका यह नाम पड़ा ।

गोगा-संज्ञा पुं० [देग०] छोटा काँटा । मेल ।

गोगापीर-संज्ञा पुं० एक पीर वा देवता जिसकी पूजा अधिकतर नीच जाति के हिंदू और मुसलमान राजपूताने पंजाब आदि में करते हैं ।

विशेष—गोगा के विषय में भिन्न भिन्न प्रकार की कथाएँ प्रसिद्ध हैं । कोई कोई कहते हैं कि वह जाति का चौरान राजपूत था और धीकानेर की राजगढ़ तहसील के संतर्गत छोड़रा में

उत्पन्न हुआ था। मैं बाप से रुठ कर वह जैसी हुआ और फिर सुखमान हो गया। कहते हैं कि सुखमान होते ही वह छोड़े और हथियारों समेत तोंदर नामक स्थान में पृथ्वी में समा गया जहाँ उसकी समाधि अब तक यनी हुई है और भादों सुदी ८-९ को बड़ा मेला लगता है। दूर दूर से लोग आ कर मनाती चढ़ाते हैं। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि गंगा जब सुखमान होकर अपनी स्त्री को भी सुखमान करना चाहता था तब प्रतापसिंह नामक किसी राजा ने उसे पृथ्वी में चुनवा दिया। साँपों को दूर रखने के लिये गंगा की पूजा दूर दूर तक होती है।

गोप्रास—संज्ञा पुं० [सं०] एके हुए अथ का वह थोड़ा सा भाग जो भोजन या आध्यात्मिक के आरंभ में गी के लिये अलग निकाल कर रख दिया जाता है।

गोघरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की कपास जो भड़ोंच और परीदा में होती है।

गोघात—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोहत्या।

गोघातक, गोघाती—संज्ञा पुं० [सं०] गोहिंसक। बृष। कुसाई।

गोघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गी को मारनेवाला। गी का वध करनेवाला। (२) अतिथि। मेहमान। पाहुना।

विशेष—प्राचीन काल में किसी अतिथि के आने पर मधुपर्क के लिये गोहत्या करने की प्रथा थी, इसी से 'अतिथि' को 'गोघ्न' कहने लगे।

गोचंदन—संज्ञा पुं० [सं०] सुशुभ के अनुसार एक प्रकार का चंदन।

गोचंदना—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जहरीली जोंक जिसकी दुम कुछ मोटी और प्रायः दो भागों में बँटी सी मालूम होती है। सुशुभ के अनुसार इसके काटने से काटा हुआ स्थान रूज आता है शरीर सुख हो जाता है और मनुष्य के कं और सूझाँ होती है।

गोचरना—कि० सं० [पू० हिं० अगेजना] रोकना। रुकना। किसी वस्तु की गति रोकना।

संज्ञा पुं० [हिं० गोहूँ + चना] घना मिला हुआ गोहूँ।

गोचनी—संज्ञा स्त्री० दे० "गोचना"।

गोचर—वि० [सं०] जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह विषय जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके। यह बात जो इंद्रियों की सहायता से जानी जा सके। जैसे, रूप, रस गंध आदि। (२) गीशों के घरने का स्थान। चरगाह। बत्ती। (३) देव। प्रांत। (४) ज्योतिष में किसी मनुष्य के प्रसिद्ध नाम की राशि के अनुसार गणित करके निकाले हुए ग्रह जो वनराशि के ग्रहों से कुछ निम्न होते और स्थूल माने जाते हैं।

गोचरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गो + चर]। मित्रावृत्ति।

गोचर्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गी का चमड़ा (जिस पर कुछ

विशेष कर्म आदि करने के समय धँठने हैं)। (२) जमीन, खेत आदि की प्राचीन काल की एक नाप, जो २१०० हाथ लंबी और इतनी ही चौड़ी होती है। इसे चरस या चरसा भी कहते हैं।

गोची—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की मछली। (२) हिमालय की स्त्री का नाम।

गोज—संज्ञा पुं० [फा०] अणानवायु। पाद।

क्रि० प्र०—करना।

गोजर्—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोहूँ + जो] गोहूँ और जौ मिला हुआ अन्न।

गोजर—संज्ञा पुं० [सं०] बूढ़ा बैल।

संज्ञा पुं० [सं०] लखं वा हिं० गुजगुना] कनखजुरा नाम का कीड़ा।

गोजरा—संज्ञा पुं० [हिं० गोहूँ + जर] जौ मिला हुआ गोहूँ।

गोज्रा—संज्ञा पुं० [सं० गवानन] छोटे पीपों का नया कड़ा जो सीधा निकलता है।

[संज्ञा पुं० [स्त्री० गोभी] यह लकड़ी जो चरवाहे अपने साथ पशुओं को हानिके के लिये रखते हैं।

गोजिहा—संज्ञा स्त्री० [सं० गोजिहा] गोभी या बनगोभी नाम की घास।

विशेष—दे० "गोभी"।

गोजिहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोभी या बनगोभी नाम की घास जो औषध के काम आती है। दे० "गोभी"।

विशेष—कुछ लोग मूल से गावज्या को भी गोजिहा कहते हैं।

गोजी—संज्ञा स्त्री० [सं० गवानन] (१) गी हाँकने की लकड़ी।

(२) बड़े लारी। लट्ट।

मुहा०—गोभी चलना = बालियों से मार पीट देना।

(३) एक प्रकार का खेल जिसमें पटे येनेकी आदि की तरह लकड़ी भाँजते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

गोजीन—वि० [सं०] जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो। जितेंद्रिय।

गोभनघटा—संज्ञा पुं० [दे०] स्त्रियों की साड़ी का वह भाग जो पीठ और सिर पर रहता है। अंचल। पहा।

गोभा—संज्ञा पुं० [सं० गुधक] [स्त्री० कन्य० गोकिका, गुफिका] (१)

गुफिका नामक पर्वत जो मैदों में चूरमा या मेवा आदि भर कर बनता है। ३०—(क) गोभा बहुपूरण पूरे। भरि भरि कपूर रस चुरे।—सूर। (ख) मय जीव विन नाउत घोभा।

विष भइ परि काल भय गोभा—जायसी। (२) लकड़ी की कील जो काठ के सामान में सरसे लगा कर ठेंकी या धँसाई जाती है और जिसका बाहर निकला हुआ भाग आरी से

काट कर लकड़ी की सतह के बराबर कर दिया जाता है। गुम्हा। बंसकील। (३) एक प्रकार की कँटीली घास।

गुम्हा। (४) जीव। खीसा। खीसाती।

गुम्हा। (५) जीव। खीसा। खीसाती।

गोट—संज्ञा स्त्री० [सं० गेट] (१) यह पट्टी या फीता जिसे किसी

कपड़े के किनारे किनारे खूबसूरती के लिये लगाते हैं। मगजी।

(२) किसी प्रकार का किनारा।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—टंकना।—लगाना।

संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] गाँव। खेड़ा। टोली।

संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठी] (१) मंडली। गोष्ठी। (२) वह रसैर जो नगर के बाहर किसी धारा या उपवन आदि में हो और जिस में खाने पीने विशेषतः कच्ची रसोई आदि का प्रबंध हो।

संज्ञा स्त्री० दे० 'गोटी'।

संज्ञा स्त्री० [सं० युटिका] चौपड़ का मोहरा। नरद। गोटी।

गोटवस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोट + वस्ती] वह भूमि जिस पर गाँव बसा हो।

गोटा—संज्ञा पुं० [हिं० गोट] (१) सुनहले या रंगहले चादले का बुना हुआ पतला फोता जो प्रायः सुंदरता के लिये कपड़ों के किनारे पर लगाया जाता है।

धो०—गोटा पट्टा।

(२) धनिया की सादी या भूनी हुई गिरी। (३) छोटे छोटे टुकड़ों में कतरी और एक में मिली हुई इलायची, सुगरी, और खरबूजे तथा बादाम की गिरी। (४) सूखा हुआ मल। कंढी। सुदा।

गोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० युटिका] (१) कंकड़, गेरू, पत्थर इत्यादि का छोट्टा गोल टुकड़ा जिस से लड़के अनेक प्रकार के खेल खेलते हैं। (२) हाथोर्दात, हड्डी, लकड़ी इत्यादि का बना हुआ चौपड़ खेलने का मोहरा। नरद। (ये गोलियाँ गिनती में कुल १६ होती हैं जिनमें से ४ खाल, ४ हरे, ४ पीले और ४ काले रंग की रहती हैं।)

मुहा०—गोटी जमना या बैठना = खेल के आरंभ में पी आदि दाँव पड़ने पर नई गोटी का चलने योग्य बनना। गोटी मरना = खेल के मध्य में पीछे से दूसरे खिलाड़ी की किसी नई गोटी के उस स्थान पर आ जाने के कारण पहले वाली गोटी का अपने स्थान से हटा कर खेल से श्रान्त कर दिया जाना। गोटी बैठना = एक ही घर में एक खिलाड़ी की दो गोटियों का एक साथ रखा जाना। इस दशा में पीछे से आनेवाली गोटियों का मार्ग रुक जाता है और वह उस समय तक आगे नहीं बढ़ सकती जब तक कि दोनों गोटियों अलग अलग घेरे में न चली जाय। इस प्रकार बैठी हुई गोटियाँ मारी भी नहीं जा सकतीं। गोटी मारना = खेल में किसी गोटी का चलने योग्य न रहना। किसी गोटी के खाने में विपत्ती की गोटी का आ जाना जिस से पहली गोटी खाने से हटा दी जाती है। गोटी मारना = खाल द्वारा किसी खाने से कोई गोटी हटा कर अपनी गोटी बैठाना। विपत्ती की गोटी का बेकाम करना। गोटी खाल होना = लाम होना। प्राप्ति होना।

(३) एक खेल जो ३, १२, १८ या इस से अधिक गोटियों से भूमि पर एक दूसरी को काटती हुई कई खाड़ी और सीपी रेखाएँ बना कर खेला जाता है।

धो०—गोटिया खाल = दाँव पेश की जात। कुटित नीति।

(४) उपाय। युक्ति। तद्वीर। लाम का आयेजन। प्राप्ति का डोल। श्रामदनी की सुरत। उ०—वहाँ २०० की गोटी है वे क्यों न जाँयें ?

मुहा०—गोटी जमना या बैठना = युक्ति चरना। उपाय वा युक्ति सफल होना। प्राप्ति का डोल होना। श्रामदनी की सुरत होना। गोटी बैठना या जमना = युक्ति लगाना। तद्वीर लगाना। जैसे, उन्होंने अपनी गोटी बैठा ही है, अब वहाँ किसी की दाल न गलेगी।

गोठ—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठ] (१) गोशाला। गोस्थान। उ०—जे अथ मातु पिता सुत मारे। गाइ गोठ महिसुर पुर जारे।—पुलसी। (२) गोष्ठी आदि। (३) रसैर सपाटा।

विशेष—दे० 'गोठ'।

गोठिला—वि० [सं० कुटित] जिसकी धार खराब हो गई हो। कुटित। कुंद।

गोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० गण, गो] (१) पैर। पाँव। उ०—(क) गोड़ न मूडू न प्राण्य ब्रधारा। तामे भरमि रहा संसारा।—कवीर। (ख) मकर महीषव सेो मालि के मसंगज को प्रस्यो गसि गोड़े गोड़े गैवर चिकारयो है।—रघुराज।

मुहा०—गोड़ भरना = (१) पैर में महावर लगाना। (२) ब्याह की एक रसम जितमें वर की माता या चाची उसे गोद में ले कर मंडप में बैठती है और नादन उसके पैर में महावर लगाती है। (३) भूजों की एक जाति। (३) जहाज के लंगर की फाल। (लरा०)

गोड़हत—संज्ञा पुं० [हिं० गोईड + हत (मल०)] (१) गाँव में पहरा देनेवाला चौकीदार। (२) वह दरकारा या कर्मचारी जो पुराने जमाने में एक गाँव की चिट्ठियाँ दूसरे गाँव में पहुँचाया करता था।

गोड़ई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेड़ + पाई] कचे की वे लकड़ियाँ जो पाई करने में पाई के दोनों ओर खड़ी की जाती हैं। (जोलाहे)

गोड़गाव—संज्ञा पुं० [हिं० गेड़ + गाव] यह छोटी रस्ती जिसे गिरावों की तरह बना कर और पिछाड़ीवाली रस्ती के सिरे पर बाँध कर घेड़े के पिछले पैर में फँसा देते हैं।

गोड़ना—संज्ञा पुं० [दे०] वह क्रिया जिसके अनुसार ऐसी मिट्टी से भी नामक बना लिया जा सकता है जो नैनी न हो।

गोड़ना—क्रि० स० [हिं० कोड़ना] मिट्टी को किसी भूमि को कुछ गहराई तक खोद कर उलट पुलट देना जिसमें वह पोखी और सुरसुरी हो जाय। कोड़ना। जैसे, खेत गोड़ना, बलाड़ा गोड़ना।

विशेष—जय पेड़ गोड़ना कहेंगे तब उससे तात्पर्य होगा—पेड़ की जड़ की मिट्टी को जल देने के लिये खोद कर पोखी और

शुरुआती करना। उ०—नाम जाके कामतर देत फल चारि,
 ताहि तुलसी विहाइ के बरु रँडू गोड़िये।—तुलसी।

गोडूली—संज्ञा स्त्री० पुं० [कर्णोद्यो] वह स्वरूप या छी जो संगीत
 विशेषतः मृदय में बहुत प्रवीण हो।

गोडूवास—संज्ञा पुं० [हिं० गोडू = पैर + वास = रस्ती] यह रस्सा
 जो पशुओं के पैर में फँसा कर खूँटे से बाँध दिया जाता है।

गोडूवाना—क्रि० सं० [हिं० गोडूना का प्रे०] गोड़ूने का काम करना।

गोडूसंकरा—संज्ञा पुं० [हिं० गोडू + संकर] पैरों के पहनने का
 छिपों का एक गढ़ना।

गोडूसिहा—वि० [हिं० गोडू + सिहना] बहा करनेवाला। कुड़ने-
 वाला। जलनेवाला।

गोडूहरा—संज्ञा पुं० [हिं० गोडू + हर (भल०)] पैर में पहनने का
 कोई अंतर विशेषतः कड़ा।

गोडूगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोडू + गी] पापजामा।

गोडू—संज्ञा पुं० [हिं० गोडू] पैर और जपि के बीच का जोड़। धुटना।

गोडू—संज्ञा पुं० [हिं० गोडू = पैर] (१) पलंग आदि का पाया।
 (२) घोड़िया। उ०—चर्दि सूर्य देव गोडू कीन्हे मारु
 दीप किय ताना।—कवीर। (३) वह रस्मी जो खेतों में
 पानी चलाने की दौरी से बँधी रहती है और जिसे पकड़
 कर पानी डलीचते हैं।

गोडू पुं० [हिं० गोडूना] पाया। भासबास।

गोडूई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोडूना] (१) गोड़ूने की क्रिया। (२)
 गोड़ूने का भाष। (३) गोड़ूने की मजदूरी।

गोडूना—क्रि० सं० [हिं० गोडूना का प्रे०] गोड़ूने का काम दूसरे
 से करना।

गोडूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोडूई] हरी धास जो धरमी खोद कर
 लाई गई हो।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० गोडू = पैर + चरी (भय०)] (१) पलंग
 आदि का वह भाग जिसपर पैर रहता है। पैताना। (२) जूता।

गोड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोडू = पैर का रूप०] छोटा पैर।

उ०—छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ चुकीली छोटी नख जोती
 मोती माने कमल दलन पर।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० गोटी = झुक्ति] झुक्ति लगानेवाला। तरकीब
 खदानेवाला।

संज्ञा पुं० [देग०] मछड़ा।

गोडू—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोटी] लाम। फ़ायदा। लाम का धारोजन।
 प्रालि का देग।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—गोडूी जमाना या लगना = उद्योग में सक्रिय होना।
 फ़ायदे के लिये जो चाहे चर्चाई गई हो उसका सफल होना।
 लाम होना। गोडूी हाथ से जाना = हुदुद हाथ में लगना।
 हुदुद लाम न होना।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० गोडू = पैर] पैर। चरप।

मुहा०—गोडूी खाना या पढ़ना = चरप पढ़ना। किसी का
 किसी स्थान पर प्राप्त होना।

गोकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टाट का दोहरा वेरा जिसमें खनाज
 खादि भर जाता है। मोन। (२) एक पुरानी भाष या तोल
 जो सुधुत के अनुसार दो रूप के बराबर होती थी। (३)
 भीना कपड़ा। छुनना।

गोत—संज्ञा पुं० [सं० गोत्र] (१) कुल। वंश। खादान। उ०—
 राम भक्त धरसल निज धाने। आति गोत कुल नाम गनत
 महि रंक होइ के राने।—सूर। (२) समूह। जया।
 गरोह। उ०—(क) सुनि यह स्थाम विरह भरे।
सखिन तव भुज गहि उठाए कदा बावरे होत। सूर
 प्रभु तुम चतुर मोहन मिलो थपने गोत।—सूर। (ख) दिन
 शैने में भावन के रबी गोत उदोत मई नित जान्यो परे।—
 हरिसंभव।

गोतम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोत्रप्रवक्तक ऋषि। (२) एक
 मंत्रकार ऋषि।

गोतमस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

गोतमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोतम ऋषि की स्त्री अहल्या का एक
 नाम।

गोता—संज्ञा पुं० [सं०] जल आदि तरल पदार्थों में डूबने की
 क्रिया। हुदुदी।

मुहा०—गोता खाना = (१) जल आदि तरल पदार्थों में डूबना।
 हुदुकी लगना। (२) धेरे में खाना। फ़रेव में खाना। गोता
 देना = (१) हुदुना। (२) धेरा देना। गोता मारना = (१)
 हुदुकी लगाना। डूबना। (२) स्त्री प्रसंग करना। (अशिष्ट)
 (३) बीच में अनुपस्थित रहना। नागा करना। गोता
 लगाना = दे० “गोता मारना”।

धो०—गोताखोर। गोतामार।

गोताखोर—संज्ञा पुं० [सं०] हुदुकी लगानेवाला। हुदुकी मारने-
 वाला।

विशेष—गोताखोर प्रायः कूँ या लालाच आदि में गोता लग
 कर उद्योग से कोई गिरी हुई चीज लाते अथवा समुद्र आदि
 में गोता लगा कर सीप मोती खादि निकालते हैं।

गोतामार—संज्ञा पुं० दे० “गोताखोर”।

गोतिया—वि० [सं० गोत्र + इया (भय०)] [स्त्री० गोतीनी] धपने
 गोत्र का। गोती।

गोती—वि० [सं० गोत्रीय] धपने गोत्र का। जिसके साथ शोषारोच
 का संबंध हो। गोत्रीय। भाई संयु। उ०—विशु धानन
 पर दीप लोचन वाला लटकत मोती री। माने सोम संग
 करि लीने जानि आपने गोती री।—सूर।

गोतीत—वि० [सं०] जो ज्ञानद्वियों द्वारा न जाना जा सके।
 ज्ञानद्वियों द्वारा न जानने योग्य। अगोचर। उ०—(क)

भक्तहेतु नर विग्रह सुर पर गुन गोतीत ।—तुलसी । (ख) देव ब्रह्म व्यापक अमल सकल पर परमहित ज्ञान गोतीत गुन वृत्ति हूँ ।—तुलसी । (ग) अतुलित बल वीर्य विरक्त वर । गुण ज्ञान निरा गोतीत वर ।—विश्राम ।

गोतीर्थक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार फोड़े आदि चीरे का एक प्रकार जिसके अनुसार कई छेदोंवाले फोड़े चीरे जाते हैं ।

गोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) संतति । संतान । (२) नाम । (३) घेत्र । घर्मे । (४) राजा का छत्र । (५) समूह । जग्या । गरीह । (६) वृद्धि । बढ़ती । (७) संपत्ति । धन । दौलत । (८) पहाड़ । (९) वंश । भाई । (१०) एक प्रकार का जाति विभाग । (११) वंश । कुल । धानदान । (१२) कुल या वंश की संज्ञा जो उसके किसी मूल पुरुष के अनुसार होती है ।

विशेष—अत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य द्विजातियों में इनके भिन्न भिन्न गोत्रों की संज्ञा उनके मूल पुरुष या गुण आदिओं के नामों के अनुसार है ।

गोत्रज—वि० [सं०] एक ही गोत्र में उत्पन्न । एक ही पूर्वज की संतान । एक ही वंश परंपरा का ।

विशेष—धर्मशास्त्रों के अनुसार गोत्रज दो प्रकार के होते हैं—गोत्रज सर्पिंड और गोत्रज समानोदक । सात पीढ़ी के अंदर जिसके एक ही पूर्वज हों वे गोत्रज सर्पिंड और सात से ऊपर चौदह पीढ़ियों तक जिनके पूर्वज एक ही हों वे गोत्रज समानोदक कहलाते हैं ।

गोत्रसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्यंत की पुत्री । पार्वती । उ०—बंदत देव अदेव सर्वे मुनि गोत्रसुता धरधंग धरी है ।—केशव ।

गोत्री—वि० [सं०] समान गोत्रवाला । गोत्रज । गोतिया ।

गोदंती—वि० [सं०] गोदत । कच्चा । सफ़ेद । (इस अर्थ में यह विशेषण केवल हरताल के लिये आता है ।)

गोद—संज्ञा स्त्री० [सं० श्लो०] (१) वह स्थान जो वषट्काल के पास एक या दोनों हाथों का घेरा बनाने से बनता है और जिस में प्रायः बालकों को लेते हैं । उत्सव । कोरा । थोली । उ०—(क) व्यापक ब्रह्म निर्जनन निगुन विगत विनोद । सो अन्न प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद ।—तुलसी । (ख) त्रिय मुख लखि हीरा जरी बँदी बड़े विनोद । सुत सनेह मानै लियो विधु पूरन छुप गोद ।—विहारी ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—लेना ।

मुहा०—गोद का = (१) छोटा बालक । बच्चा । (२) बहुत समीप का । पास का । जैसे, गोद की चीन्ही छोड़ कर इतनी दूर जाना ठीक नहीं । गोद बैठना = दत्तक बनना । गोद लेना = दत्तक बनाना । गोद देना = अपने हाइके बेटे दूसरे को दत्तक बनाने के लिये देना ।

शो०—गोदभरी = बाल बच्चोंवाली स्त्री ।

(२) खियों की साड़ी का वह भाग जो वषट्काल के पास रहता है । अंचल । उ०—शबरी कटुक घेर तजि मंडि भावि गोद भर लाई । जूड़े की कटु शंक न मानी भय किये सत भाई ।—सूर ।

क्रि० प्र०—पसारना ।—भरना ।

मुहा०—गोद पसार कर विनती करना या माँगना = अर्घ्य अर्पित करने का माँगना या प्रार्थना करना । गोद भरना = (१) विवाह आदि शुभ अवसरों पर अथवा किसी के आने जाने के समय सौभाग्यवती स्त्री के अंचल में नारियल आदि पदार्थ देना जो शुभ समझा जाता है । (२) संज्ञान होना । औसाद होना ।

गोदमुदालो—संज्ञा पुं० [दे०] गूलू नाम का पेड़ ।

गोदनहर—संज्ञा स्त्री० दे० “गोदनहारी” ।

गोदनहारा—संज्ञा पुं० [हिं० गोदना + हारा (प्रत्य०)] टीका लगा देनेवाला । माता छापनेवाला ।

गोदनहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोदना + हारी (प्रत्य०)] कंजड़ या नट जाति की स्त्री जो गोदना गोदने का काम करती है ।

गोदना—क्रि० सं० [हिं० खेदना = गड़ना] (१) किसी लुकीली चीज को भीतर चुनाना । गड़ाना । (२) किसी कार्य के लिये बार बार जोर देना । कोई काम करने के लिये पीछे पड़ना । (३) छेड़ छाप करना । चुमती या लगती हुई बात कहना । ताना देना । (४) हाथी को अंकुश देना । † (५) गोदना ।

संज्ञा पुं० (१) तिल के धाकार का एक विशेष प्रकार का काला चिह्न जो कंजड़ या नट जाति की खियाँ लोगों के शरीर में नील या कोयले के पानी में डूबी हुई सूह्यो से पाए कर बनाती हैं । इसमें पहले दो एक रोज तक कुछ पीड़ा होती है पर पीछे यह चिह्न स्थायी हो जाता है ।

विशेष—भारत में अनेक जाति की खियाँ गाल, डोड़ी, कलाई तथा अन्य अंगों पर सुंदरता के लिये इस प्रकार के चिह्न बनवाती हैं । बिहार आदि प्रांतों की खियाँ तो अपने शरीर पर इस क्रिया से बेल वृत्तों तक के चिह्न बनवाती हैं ।

क्रि० प्र०—गोदना ।—गोदाना ।

(२) यह सूई जिसकी महापता से शीतला रोग से रक्षित रहने के लिये बालकों को टीका लगाते हैं ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(३) यह औजार जिससे खेत गोड़ते हैं ।

गोदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोदना] (१) यह सूई जिससे गोदना गोदा जाता है । (२) चुनाने, गड़ाने या गोदने की कोई चीज ।

गोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोदावरी नदी । उ०—पंचवटी गोदाहि प्रनाम करि कृती दाहिनी लाई ।—तुलसी । (२) नायडी स्वरूपा महादेवी ।

संज्ञा पुं० [दे०] कर्वासी बांस ।

संज्ञा पुं० [हिं० गोलः] वेतुं की गई शाखा । तामी छाल ।
संज्ञा पुं० [हिं० गौदः] बड़, पीपल या पाकर के पके फल,
गूलर, पिपरी इत्यादि ।

गोदान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ को विधिवत संकल्प करके
ब्राह्मण को दान करने की क्रिया । (इसका विधान साधारण
दान, पुण्य, देग, विवाह आदि संस्कार अथवा किसी
प्रकार के प्रायश्चित्त के अवसर के लिये है ।)

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—लेना ।

(२) एक संस्कार जो विवाह से पहले ब्राह्मण को १६ वर्ष, ब्रह्मिण को २२ वर्ष और वैश्य को २४ वर्ष करना आवश्यक है । इसे केदारत वा गोदान मंगल भी कहते हैं ।
३०—पुनि कथाय मुनि गोदाना । मंगल मंथित वेद विधाना ।—रघुराज ।

गोदाम-संज्ञा पुं० [सं० गोडामन] वह बड़ा सुरक्षित स्थान जहाँ बहुत सा भाग अन्नयाय रखा जाता है ।

विशेष—साधारणः बहुत बड़े बड़े व्यापारी अपना सारा माल दुकानों में न रख सकने के कारण एक और ऐसा बड़ा स्थान भी ले रखते हैं जिसमें उनका अधिकार थोक माल पड़ा रहता है ।

गोदारवा-संज्ञा पुं० [सं०] जमीन खोदने की कुदाल ।

गोदावरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दक्षिण भारत की एक नदी जो नासिक के पास से निकल कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है ।

(२) मद्रास का एक जिला ।

गोदी-संज्ञा स्त्री० [देग०] बड़ी नदी वा समुद्र में वह घेरा हुआ स्थान जहाँ जहाज मरम्मत के लिये वा तूफान आदि के उपद्रव से रक्षित रहने के लिये रखे जाते हैं । डाक । (लरा०)

संज्ञा स्त्री० दे० "गोद" ।

संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का बबूल जो बार, पंजाब और अजमेर में होता है । यह नहरों के किनारे के बाँधों पर प्रायः लगाया जाता है ।

गोदूनिका-संज्ञा स्त्री० [देग०] बौत की जाति का एक वृक्ष जो पूर्वी बंगाल और आसाम आदि प्रदेशों में बहुत होता है । इसकी चिकनी और चमकीली टहनियों से शीतलपाटी बनाई जाती है जो दूर दूर भेजी जाती है ।

गोघ-संज्ञा स्त्री० [सं० गेघः] गोद नामक जंगली जानवर ।

गोघन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गीघों का समूह । गीघों का कुंड ।
३०—कमलानयन घनरास मनोहर सव गोघन को भूप ।—सूर । (२) गौ स्त्री संरति । ३०—गोघन, गजघन, वाजिघन, और रत्नघन राज । जब ध्रावे संतोषधन, सव घन धरि समान ।—तुलसी । (३) एक प्रकार का स्तंभ जिसका फल बाँड़ा होता है ।

† संज्ञा पुं० [सं० गेघदंज] गोघदंज पर्वत । ३०—अलि

गोघन पूजन को उमहो वन मोहौ चड्डी तप सोगन तँ ।—वेनी ।
संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का पत्ती जो सारे पशुिया, युरेस और अफ्रीका में पाया जाता है । इसकी चोंच लाव, सिर मूरा और पैर हरे होते हैं । यह प्रायः जलारोगों के निकट रहता और ५ से ६ तक श्रेडे देता है ।

गोघर-संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत । पहाड़ ।

गोधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं की भाँति समागम करना । समागम में अपने पराए का कुछ विचार न रखना ।

गोघा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोद नामक जंतु ।

गोघापदी, गोघावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूलनी नाम की ओषधि । (२) हंसपदी नाम की लता ।

गोधिकात्मज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का जानवर जो नर साँप और मादा गोह के संयोग से उत्पन्न होता है । (२) गोह के आकार का एक प्रकार का छोटा जानवर जो पैरु के खोंडरे में रहता और जिसका शब्द बहुत कठोर होता है ।

गोधो-संज्ञा स्त्री० [सं० गोभू] एक प्रकार का गेहूँ जो दक्षिण में अधिकता से होता है और जिसकी भूमि जल्दी नहीं सूखती । इसमें विशेषता यह है कि यह खरीफ की फसल है और कहीं कहीं यह साल में दो बार भी बोया जाता है । यह बहुत ही साधारण भूमि में भी, जहाँ और गेहूँ नहीं हो सकता, उत्पन्न होता है । ऊपरी दिल्ली बहुत कड़ा होने के कारण इसकी फसल को पत्ती भी हानि नहीं पहुँचा सकता ।

गोधूम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गेहूँ । (२) नारंगी ।

गोधूमय-संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँघन वा गोधूमघन नाम का साँप ।

गोधूलि, गोधूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह समय जब कि जंगल से चर कर लौटती हुई गीघों के खुँरों से धूल चकने के कारण धूँपली छा जाय । संध्या का समय ।

विशेष—(क) ऋतु के अनुसार गोधूली के समय में कुछ श्रंतर भी माना जाता है । हेमंत और शिशिर ऋतु में सूर्य का तेज बहुत मंद हो जाने और श्रिति में अतिम फल जाने पर, वसंत और प्रीम ऋतु में जब सूर्य आधा छटा हो जाय और वर्षा तथा शरत् काल में सूर्य के दिल्कुल अम हो जाने पर गोधूली होती है । (ख) फलित ज्योतिष के अनुसार गोधूली का समय सव कार्यों के लिये बहुत शुभ होता है और उस पर नद्य, निधि, करण, सप्त, धार, योग और जाभिन्ना आदि के दोष का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता । इसके अतिरिक्त इस संबंध में अनेक विद्वानों के और भी कई मत हैं ।

गोघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ । पर्वत ।

गोनेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काति कंब के एक गण का नाम ।

(२) अनेक पुराणों के अनुसार एक देव ।

गोन-संज्ञा स्त्री० [सं० गोन्धि] (१) टाट, कंबल वा चमड़े आदि

की यन्त्री हुई यह खुरजी जिसमें दो और अनाज आदि भरने का स्थान होता है और जो भर कर धैलों की पीठ पर रखी जाती है। लदने पर इसका एक भाग बैल की एक तरफ और दूसरा दूसरी तरफ रहता है। (२) साधारण बोरा। खास। (३) टाट का कोई थैला। (लघो०)। (४) अनाज की एक सील जो १६ मान्नी (२२६ सेर) की होती है।

संज्ञा स्त्री० [सं० गुण] मूँज आदि की यन्त्री हुई रस्ती जिसे नाव खींचने के लिये मत्सूल में बांधते हैं।

संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की घास जो धुरी की तरह की होती है और जिसका साग बनता है।

गोनरखा—संज्ञा पुं० [हिं० गोन = रसी + रखना] नाव का वह मत्सूल जिसमें गोन बांध कर उसे खींचते हैं।

गोनरा—संज्ञा पुं० [सं० गुंरा] (१) उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार की लंबी घास जो पशुओं के चारे के काम में आती है। इससे चटाई भी बनती है जो बहुत सुलायम और गरम होती है। दे० “गोदरा”।

गोन्द—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नागरमोथा। (२) सारस पक्षी। (३) एक प्राचीन देश जहाँ महर्षि पतंजलि का जन्म हुआ था। (४) महादेव।

गोनस—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का सर्प। (२) वैक्रान्त मणिव।

गोना—क्रि० रा० [सं० गोपन] छिपाना। लुकाना। फोशीदा करना। उ०—(क) मुकुलित कच तन धनिक श्रेष्ठ हूँ शंसुवन चीर निचोवति। सुरदास प्रभु तमी गर्व ते भपु प्रेम गति गोवति।—सुर। (ख) ऐसिउ पीर विहंसि तेई गोई। चार नारि जिमि प्रसद न रोई।—तुलसी। (ग) सो गोवत द्विज कौख दवाई। मनहि विचारत अतिहि लजाई।

गोनिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कोण, हिं० कोना + इया (प्रत्य०)] यड़ई, लोहार और राज आदि का एक श्रोगर जिससे वे किसी दीवार या कोने आदि की सिपाई जाँचते हैं। यह समशेष होता है और बिलकुल लकड़ी या लोहे का अथवा आधा लकड़ी का और आधा लोहे का बनता है। सांघन।

संज्ञा पुं० [हिं० गोन = वेरा + इया (प्रत्य०)] स्वयं अपनी पीठ पर या धैलों पर लाद कर बोरे ढोनेवाला।

संज्ञा पुं० [हिं० गोन = रसी + इया (प्रत्य०)] रस्ती बांध कर नाव खींचनेवाला।

गोनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठी] (१) टाट का धैल। चोरा। (२) पटुआ। सन। पाट।

संज्ञा स्त्री० [दे०] पकाए हुए कस्ये का वह गोला जो राख की सहायता से उस का जल सुखा लेने के बाद बनाया जाना है। (तंबोली)

गोप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ की रक्षा करनेवाला। (२) ग्याला।

आभीर। शहीर। (३) गोशाखा का अर्थव्यय वा प्रबंध करनेवाला। (४) श्रुपति। राजा। (५) रक्षा या उपकार करनेवाला। (६) एक रांघर्व का नाम। (७) सुर या पोल नाम की श्रोपधि।

संज्ञा पुं० [सं० गुंफ] सिकरी या जंजीर के आकार का गले में पहनने का एक प्रकार का आभूषण जो पतले तारों के गुप कर फुलावदार बनाया जाता है।

गोपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) श्रीकृष्ण। (४) सूर्य। (५) राजा। पृथ्वीपति। (६) श्रुप। सङ्ग। बैल। (७) शपथ नाम की श्रोपधि। (८) नौ उपनंदों में से एक। (९) ग्याल। गोपाल। आभीर। (१०) बाचाल। सुखर।

गोपथ—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद का एक महाण्य।

गोपद—संज्ञा पुं० [सं० गोपद] (१) गौओं के रहने का स्थान। (२) पृथ्वी पर पड़ा हुआ गाय के खुर का चिह्न। उ०—(क) सादर सुमिरन जे न करहीं। भव वारिष गोपद ह्व तरहीं।—तुलसी। (ख) रघुवर की लीला ललित, मैं बंधीं सिर नाथ। जे गावत गोपद सरिस जन भवनिधि लँचि जाय।—रघुराज।

गोपदल—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़।

गोपदी—वि० [सं० गो + पद + ई (प्रत्य०)] गाय के खुर के समान अर्थात् छोटा। उ०—खैचत दुरासन वसन धाव्यो वे प्रमाय कीन्धे निज दासी को समुद्र दुख गोपदी।—रघुराज।

गोपन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छिपाना। डुराव। (२) छिपाना। लुकाना। (३) रक्षा। (४) व्याकुलता। (५) दीप्ति। (६) तेजपत्ता नाम का मसाला।

गोपना—क्रि० रा० [सं० गोपन] छिपाना। लुकाना। संयोग क्रि०—देना।—रखना।

गोपनीय—वि० [सं०] छिपाने योग्य। छिपाने के लायक। गोप्य।

गोपराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] ग्यालियर प्रांत का प्राचीन नाम।

गोपांगना—सं० स्त्री० [सं०] (१) गोप जाति की स्त्री। (२) अर्थात् मूल नाम की श्रोपधि।

गोपा—वि० [सं०] लुप्त करनेवाला। छिपानेवाला। नाशक।

गो—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाय पालनेवाली, अर्थात् गिर। ग्यालिन। (२) श्यामा नाम की लता। (३) महात्मा बुद्ध की स्त्री का नाम। इस का दूसरा नाम यरोधारा भी है।

गोपाचल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्यालियर का प्राचीन नाम। (२) ग्यालियर के निकट का एक पहाड़।

गोपाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ का पालन पोषण करनेवाला। (२) अर्थात् ग्याला।

विदोष—पराशर के मत से ‘गोपाल’ एक संकर जाति है जिस की उत्पत्ति चन्द्रिय पिता और शूद्रा माता से है। महाद्वेषों के लिये इस का अर्थ बोधय कदा गया है।

(३) श्री कृष्ण । (४) राजा । (५) इंद्रियों का पालनेवाला, मन । (६) एक छंद विशेष जिस का प्रत्येक चरण्य १२ मात्राओं का होता है, ८ और ७ पर यति होती है । उ०—
दयावेलि की ललित गिरुंज । गुंजत सुख पछिन के पुंज ।
गुरु की हानि मिटाई माँह । पाररचित भोजन की चाह । इस
को 'गुंजगिरी' भी कहते हैं ।

गोपालक—संज्ञा पु० [सं०] (१) खाला । गोपाल । अहीर । (२) शिव । (३) राजा ।

गोपालकक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार परिचम भारत का एक प्राचीन प्रदेश ।

गोपालतापन, गोपालतापनीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् जिस की टीका संकराचार्य तथा और कई विद्वानों ने की है ।

गोपालदारक—संज्ञा पुं० [सं०] जिनियों के एक आचार्य का नाम ।
गोपालि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार । (२) शंकर ।

गोपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) म्वालिन । अहीरिन । (२) सारिवा नामक श्रेणधि । (३) म्वालिन नाम का कीड़ा ।
निंजाई । चिनौरी ।

गोपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गौ पालनेवाली । (२) कार्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

गोपाटमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुद्ध अष्टमी । इसी दिन श्री कृष्ण ने गोचारण धारंभ किया था । इस दिन गोपूजन, गोप्रास, गोमदविद्या, गौत्रों के पीछे चलना इत्यादि कर्म करने का बड़ा माहात्म्य कहा गया है । इस दिन गाणों के खिलाने और सजाने की भी रीति है ।

गोपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोपी । गोप की स्त्री । (२) अहीरिन । म्वालिन । (३) छिपानेवाली ।

गोपित—वि० [सं०] छिपा हुआ । गुप्त ।

गोपिनी—वि० स्त्री० [सं०] छिपानेवाली । उ०—गोपिनि भक्ति
विलोपिनि ज्ञान की मणि विशग पी कोपिनि माई ।—रघुराज ।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्यामजता । (२) नाशिकों की एक नायिका ।

गोपिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपनी । छिपानेवाली ।

गोपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) म्वालिन । गोपनी । (२) व्रज की गोप जातीय वे कियारुँ या कन्यारुँ जो श्री कृष्ण के साथ प्रेम रखती थीं, और जिन्होंने वे उनके साथ बालक्रीड़ा तथा अन्य कीलाएँ की थीं । (३) शारिवा नाम की जता । (४) छिपानेवाली ।

गोपीकामादौं—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो कामोद और केदारी के योग से बनती है ।

गोपीचंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] गोपी + चंद्र । रंगपुर (बंगाल) के एक प्राचीन राजा जो भक्तहरि की बहिन मैनवती के पुत्र कहे जाते हैं । इन्होंने अपनी माता से उपदेश पा कर अपना

राज्य छोड़ा और वैराग्य लिया था । कहा जाता है कि वे जलधरनाथ के विषय हुए थे और स्वामी होने पर इन्होंने अपनी पत्नी पाचमदेवी से, महल में जा कर भिचा मांगी थी । इन के जीवन की घटनाओं के गीत बना कर आज फल के जोगी सारंगी पर गाया करते हैं ।

गोपीचंदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की पीली मिट्टी जिसका वैष्णव लोग तिलक लगाते हैं और जो द्वारका के एक सरोवर से निकलती है ।

विदोष—(क) कहते हैं कि श्रीकृष्ण के स्वर्गवासी होने पर उनके विरह में अनेक गोपियों ने उसी सरोवर के किनारे अपने प्राण तने थे । इमीलिये उसकी मिट्टी का बहुत माहात्म्य कहा गया है । (ख) आज फल बाजारों में गोपीचंदन के नाम से एक प्रकार की कलाई हुई पीली मिट्टी मिलती है जिसका व्यवहार प्रायः वैरागी करते हैं ।

गोपीत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का श्वेतन पत्ती जिसका देखना अशुभ समझा जाता है ।

गोपीध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह सरोवर जहाँ गौएँ जल पीनीं हो । (२) एक प्राचीन तीर्थ । (३) रण्य । रवा । (४) राजा ।

गोपीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] गोपियों के स्वामी, श्रीकृष्ण । उ०—
इहि न देश गिरि को धरियो हो सुबहु कुँवर गोपीनाथ ।
प्रायुन को तुम बड़े कहावत काँपन लागे है दोउ हाथ ।—सूर ।

गोपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ की पोंछ । गौ की दुम । (२) एक प्रकार के बंदर जिन की दुम गाय की दुम की तरह होती है । (३) एक प्रकार का गावदुमा हार । (४) एक प्रकार का बाजा जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था ।

गोपुटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी हुलायची ।

गोपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्त्य के पुत्र, कर्ण ।

गोपुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नगर का द्वार । शहर का फाटक ।

उ०—(क) ऐसे कहत गपु अपने पुर सवहि विलक्षण देख्यो ।
मणियम महल फाटक गोपुर लखि कनक भूमि अवरव्यो ।—
सूर । (ख) तोरि फेरि घर धरनि कैंगरे । गोपुर चूर करहिँ गह
मरे ।—गोपाल । (ग) किला कोटि दिग पुनि द्विज गयक । गोपुर
ऊँच लखत तहँ भयक ।—रघुराज । (२) किले का फाटक ।

(३) फाटक दरवाजा । (४) स्वर्ग । गोलोक । (५) सुशुत के अनुसार वैद्यकशास्त्र के प्रयोग एक प्राचीन ऋषि ।

गोपेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण । (२) गोपों में श्रेष्ठ नंद ।

गोसा—वि० [सं०] रबक । रवा करनेवाला ।

संज्ञा पुं० विष्णु ।

संज्ञा स्त्री० गंगा ।

गोमवेश—संज्ञा पुं० [सं०] गौओं के चर कर लौटने का समय ।
संध्या । गोपूली ।

गोफ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दास । सेवक । (२) दार्मिण्य । (३)

गोपियों का समूह। (४) रेहन या गिरवी का यह प्रकार जिसमें रेहन रखती हुई चीज़ के अग्र-व्यय पर उससे स्वामी का ही अधिकार रहे और जिसके पास चीज़ रेहन रखती जाय वह केवल सूद लेने का अधिकारी हो। दृष्टव्यक। वि० (१) गुप्त रखने योग्य। छिपाने लायक। (२) रखा करने योग्य। (३) छिपाया हुआ। गुप्त।

गोफण-संज्ञा पुं० दे० "गोफण"।

गोफणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुशुभ के अनुसार फेड़े और ज्वर आदि बाधने का एक प्रकार का वधन जिसका व्यवहार ठोड़ी, नाक, ग्रेठ और कंधे आदि दो बाधने के लिये होता है।

गोफण, गोफना-संज्ञा पुं० [सं० गोफण] खेत के आस पास के पशियों आदि को उड़ाने या मारने के लिये रखी के एक सिरे पर बुना हुआ छीके के आकार का एक जाल जिसमें डेले, पत्थर, कंकड़ आदि भार कर रखी की सहायता से सिर के ऊपर चारों ओर घुमाते हैं और जिसमें से बड़े वेग से निकले हुए डेले, कंकड़ आदि की बहुत तेज़ चोट लगती है। पहले कभी कभी छोटी मोटी लड़ाइयों में भी इसका व्यवहार शत्रुओं पर मिट्टी आदि के गोले चलाने के लिये होता था। डेलवांस। फ़री।

गोफा-संज्ञा पुं० [सं० गुफ] (१) नया निकला हुआ सुँदर्यथा पत्ता, जैसे केले, शरई, सूरन आदि का गाभा। † (२) एक हाथ की उँगलियों का दूसरे हाथ की उँगलियों के अंतर में जा कर गठना।

क्रि० प्र०—जोड़ना।

गोवर-संज्ञा पुं० [सं० गोमय] गाय की विष्टा। गौ का मल।

मुहा०—गोवर करना = (१) गौ वैत्र आदि का विष्टा त्याग करना। (२) गौ वैत्र आदि के नीचे का गोवर छुड़ाना। (३) गोवर आदि से कड़े पाचना अथवा इसी प्रकार का और कोई मैला काम करना। गोवर खाना = गोवस्थित करना। गोवर का बोध = (१) मद्दा और वैशाल। (२) जड़ और मूत्र। गोवर पाचना = दूध से गोवर के फंडे बनाना; अथवा इसी प्रकार का और कोई मैला काम करना। गोवर धीनना = ईंधन के लिये सूखा हुआ गोवर इकट्ठा करना।

गोवरगणेश, गोवरगणेश-वि० [हिं० गोवर + गणेश] (१) मद्दा। बदसूरत। जो देखने में भला न मालूम हो। (२) मूत्र। भेवकफ़ू। जो कुछ न कर सके।

गोवरहारा-संज्ञा पुं० [हिं० गोवर + हारा (प्रत्य०)] गोवर उठाने या पापनेवाला नौकर।

गोवराना-क्रि० सं० [हिं० गोवर + ना (प्रत्य०)] गोवरी करना।

गोवरिया-संज्ञा पुं० [हिं० गोवर] बटुनाग की जाति का एक पौधा जो हिमालय पर गढ़वाल से लेकर नेपाल तक होता है। इसकी जड़ विप है।

गोवरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गोवर + ई (प्रत्य०)] (१) केश। उपला। गोहरा। गोहरी। (२) गोवर का लेपन। गोवर की लिपाई।

क्रि० प्र०—करना।—फेरना।

मुहा०—गोवरी फेरना = अत्र की राशि के चारों ओर गोवर का चिह्न डालना।

संज्ञा स्त्री० [देग०] जहान के पेंदे का छेद। (लश०)

मुहा०—गोवरी निकालना = जहान के पेंदे में छेद करना।

गोवरैला-संज्ञा पुं० [हिं० गोवर + रैला या रैला (प्रत्य०)] एक प्रकार का छोटा काला कीड़ा जो गोवर या इसी प्रकार की किसी दूसरी गंदी चीज़ में उत्पन्न होता और रहता है।

गोवरैला, गोवरैला-संज्ञा पुं० दे० "गोवरैला"।

गोविया-संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का छोटा दाँस जो शासम की पहाड़ियों में अधिकता से होता है। यह देखने में सुंदर होता है और इसकी दूधा सवन होती है। इसकी पत्तियाँ पशुओं के चारे के काम आती हैं और लकड़ी से जंगली लोग तीर, कमान और टोकर बनाते हैं। अकाल के समय गरीब लोग इसके बीजों का भात भी बना कर खाते हैं।

गोवी-संज्ञा स्त्री० दे० "गोभी"।

गोम-संज्ञा पुं० [सं० गुफ वा हिं० गोका] पाँधों का एक रोग जिसमें उनकी जड़ों में नए कड़े निकल आते हैं और जिससे पाँध दुबल हो जाते हैं। कोई कोई इसे गोभी भी कहते हैं।

गोमिल-संज्ञा पुं० [सं०] सामवेदीय गृह्यसूत्र के रचयिता एक प्रसिद्ध ऋषि।

गोभी-संज्ञा स्त्री० [सं० गोबिहा = बनगोभी वा गुफ = गुच्छा] (१) एक प्रकार की घास जिसके पत्ते, कंधे, खरखरे, फटाबदार और फूलगोभी के पत्तों के रंग के होते हैं। इसमें पीले रंग के चक्राकार फूल लगते हैं और पत्तों के बीच में एक बाल निकलती है। इसे पशु बड़े चाव से खाते हैं। वैयक में यह शीतल, कटुई, हल्की, वातकारक और कफ, पित्त, लाली, रधिष विकार, अरुचि, फोड़ा, ज्वर और सत्र प्रकार के विष का दाय दूर करनेवाली मानी गई है। गोभिया। यनगोभी। (२) एक प्रकार का शाक जिसकी खेती इधर कुछ दिनों से भारत में अधिकता से होने लगी है। वनस्पति-शास्त्र के ज्ञाता इसके चुप को राई या सरसों की जाति का मानते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—फूलगोभी, गाँठगोभी (दे० "गाँठगोभी") और पातगोभी या करमकड़ा (दे० "करमकड़ा")। फूलगोभी को साधारणतः लाली गोभी भी कहते हैं। इसका डंठल, जो जमीन में गड़ा होता है, साधारण गन्ने के घरावर मोटा और एक यातिरत या इससे कुछ अधिक लंबा होता है। इसके ऊपर चारों ओर चौड़े, मोटे और बड़े पत्ते होते हैं जिनके बीच में बहुत से छोटे छोटे सुँदर्यथा फूलों का गुग्गु हुआं समूह होता है। खिन्ने हुए फूलोंवाली गोभी खराब

समकी जाती है। यह कालिक के श्रेत तक लैपार हो जाती और जाड़े भर रहती है। इसके फूल की तरकारी बनती है और मुलायम पत्तों का साग बनाया जाता है। गोभी मुला कर भी रचली जाती है और दूसरी शब्दों में काम धाती है। (३) पौधों का गोभ नामक रोग।

गोभुज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

गोभृत—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

गोमंत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सद्यद्रि के श्रेतगत एक पहाड़ी जहाँ गोमती देवी का स्थान है। यह तिहरीड माना जाता है।

(२) कुत्ते पालने या बेचनेवाला।

गोम—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) घोड़ों की एक भैंसी जो नाभी से ऊपर छाती की ओर होती है। इसे सब लोग बहुत धरा समझते हैं। (२) घृषिणी। (हिं०)

गोमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी जो शाहजहानपुर की एक कील से निकल कर सैदपुर के पास गंगा में मिली है। काशी (२) दिपरा (बंगाल) की एक छोटी नदी। (३) एक देवी जिनका प्रधान स्थान गोमंत पर्वत पर है। (४) एक वैदिक मंत्र। (५) ग्यारह मानवों का एक छंद। ३०—पुत्रयंशु-पुत्र जे। राम ब्याहिक है तिते। केरि धाम धाव्ये। विचमोद दाह्ये।

गोमतीशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय की वह चट्टान जिस पर पड़ोच कर शत्रुन का शरीर गल गया था।

गोमस्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की महुली।

गोमय—संज्ञा पुं० [सं०] गौ का मू। गोबर।

गोमर—संज्ञा पुं० [हिं० गौ + मर (मरण) = मारेगवका] बृष। कसाई। गोमरिसक। ३०—हा बल मिं पु लपन मुलदाई। परी तात गोमर कर गाई।—विश्राम।

गोमर—संज्ञा पुं० [सं०] गोबर।

गोमा—संज्ञा स्त्री० [दे०] गोमती नदी।

गोमाय—संज्ञा पुं० दे० "गोमायु"।

गोमायु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिपार। गीदड़। श्याम। ३०—(क) चक्षो भाजि गोमायु अंशु ज्यो लै केहरि का भग। इतने रामचंद्र तहँ चाये परमपुत्रयदु भाग।—सूर। (घ) कोप सेहि फलिकाज कापर मुपदि पाबत घाय। सेत केहरि को बयर अनु भेक हति गोमाय।—तुलसी। (२) एक गोपर्व का नाम।

गोमी—संज्ञा पुं० [सं० गोमिन] (१) श्याम। सिपार। गीदड़। (२) श्वयी। (हिं०)

गोमुल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ का मुँह।

मुहा.—गोमुल नाहर का ब्याप = वह मनुष्य जो देखने में बहुत ही सीधा पर बाधाव में पड़ा है और कथाकरी हो।

३०—देखिहँ हनुमान गोमुल नाहरनि के ब्याप।—तुलसी।

(२) बजाने का एक शब्द जिसका आकार गौ के मुँह के समान होता है। (३) नरसिंहा नाम का बाजा। ३०—एक पदह एक गोमुल एक श्याम एक माली। एक श्रमृत कुंडली रचाव भाति सों दुराच।—सूर। (४) गौ के मुख के आकार की वह शैली जिसमें माला रख कर जप करते हैं। गोमुली। (५) नाक नामक जत्र-शंतु। (६) योग का एक शासन। (७) एक प्रकार की संघ जो गौ के मुँह के आकार की होती है। (८) देड़ा मंत्र पर। (९) ऐपन। (१०) एक यक्ष का नाम। (११) इंद्र के पुत्र जयंत के सारथी का नाम।

गोमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ऊन आदि की बनी हुई एक प्रकार की शैली जिसमें हाथ डाल कर जप करते समय माला फेरते हैं। इसका आकार गाय के मुँह का सा होता है। इसे जप-माली या जप-गुपली भी कहते हैं।

विशेष—जप करते समय माला को सघ की दृष्टि की श्रेत में रखने का विधान है, इसीलिये गोमुखी का व्यवहार होता है। (२) गौ के मुँह के आकार का गंगोत्तरी का वह स्थान जहाँ से गंगा निकलती है। (३) राष्ट्र देश की एक नदी जिसे आज फल गोमुद्र कहते हैं। (४) घोड़ों की एक भैंसी जो उनसे ऊपरी श्रेतों पर होती है और जो श्रद्धी समकी जाती है।

गोमुद्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक पात्र जिस पर चमड़ा मड़ा रहता था।

गोमुद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके श्लोकों को पढ़ने में हल कम से चलते हैं जिस कम से शैली के मूले से बनी हुई रेखा जमीन पर गाई रहती है। यह चित्रकाव्य जिसके पढ़ने का यह कम है कि पहली पंक्ति का एक अक्षर पढ़ कर फिर दूसरी पंक्ति का दूसरा, फिर पहली का तीसरा, फिर दूसरी का चौथा, फिर पहली का पाँचवाँ और दूसरी का छठा और फिर आगे बराबर इसी प्रकार का पढ़ने चलते हैं। ऐसी कविता के पद बनाने में यह आवश्यक होता है कि उसके पहले और दूसरे (आरंभ आवश्यकता पढ़ने पर तीसरे, चौथे और पाँचवें छंद आदि) श्लोकों के दूसरे, चौथे, छंद, आठवें, दसवें, बारहवें, चौदहवें, और सोलहवें (और यदि अक्षर अधिक लंबा हो तो सप्त मंथ्या पर पढ़नेवाले सभी) अक्षर एक हों। इसे बर्णामृत भी कहते हैं। (२) एक प्रकार की घास जिसके बीज सुगंधित होते हैं और जो औषध के काम में धाती है। पैयक में इसे मधुर, धीर्यवर्द्धक और गोमैत्रे का दूध बढ़ानेवाली कहा है।

पठ्या—रक्तुया। श्रेत्रजा। कृष्णभूमिजा।

गोमेद—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेदक मयि। शनिजघनी। कथाव चीनी।

गोमेदक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रविद मयि जिसकी गणना

नौ रत्नों में होती है। इसका रंग सुर्खी लिए हुए पीला होता है और यह हिमालय पर्वत तथा सिंधु नदी में पाई जाती है। जो दोष हरी में होते हैं वेही इसमें भी होते हैं। सुश्रुत के मत से इस मणि से गंदा जल बहुत साफ़ हो जाता है। यह राहु ग्रह की मणि मानी जाती है, इसीलिए इसे राहुग्रह या राहुरान भी कहते हैं।

पर्याय—राहुमणि । तमोमणि । स्वर्भानव । लिंगस्फटिक ।

(२) काकोल नामक विप जो काला होता है (३) पत्रक नाम का साग ।

गोमेष—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध के ढंग का एक यज्ञ जिसमें गौ से हवन किया जाता था और जिसका अनुष्ठान कलियुग में बर्जित है। मनु के अनुसार ब्राह्मण्य के प्रायश्चित्त के लिये और गोमिल गृह्यसूत्र के अनुसार पुष्टि धामना से इस यज्ञ का अनुष्ठान होता है। इसे गोसव यज्ञ भी कहते हैं।

गोयँडू—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष वा हिं० गंय + मंय] गाँव के आस पास की भूमि । दे० “गोइँडू” ।

गोय—संज्ञा पुं० [फा० वा हिं० गेल] गेंद । उ०—“चड्डू” दिस थाय अलोपत भान् । थय यह गोय यही मैदान् ।—जायसी ।

गोया—कि० वि० [फा०] माने । जैसे । जैसे, थाप ता ऐसी याते करते हैं गोया थाप यहाँ थे घी नहीं ।

विद्योप—फ़ारसी में यह “शब्द बोलनेवाले” या “कहनेवाले” के अर्थ में भी आता है, पर हिंदी में इस अर्थ में इसका प्रयोग शायद ही कहीं होता हो ।

गोर—संज्ञा स्त्री० [फा०] यह गहटा जिसमें सूतगारी गाढ़ा जाय । कृम ।

संज्ञा पुं० [अ० गेर] [वि० गेरी] फ़ारस देश के एक प्रांत का नाम ।

† वि० [सं० गौर] (१) गौरा । (२) उज्वल यहाँ का । सफ़ेद ।

गोरका—संज्ञा पुं० [देग०] थरयल नाम का वृक्ष जो दक्षिणी भारत में होता है ।

गोरखममली, **गोरखमली**—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोरख + ममली] एक प्रकार का बहुत बड़ा पेड़ जो मध्य तथा दक्षिण भारत में अधिकता से होता है। इसका तना बहुत मोटा होता है और इसकी छालियाँ दूर दूर तक फैलती हैं। यह वृक्ष बहुत दिनों तक जीवित भी रहता है। इसकी लकड़ी कमजोर होती है और उसमें जल्दी कीड़े लग जाते हैं। इसकी छाल बहुत मुलायम होती है और उसके रंग से चटाईयाँ, रस्ते और कहीं कहीं कपड़े भी बनाए जाते हैं। सायन भादों में यह पेड़ फूलता है और इसमें कमल के आकार के पड़े फूल लगते हैं। इसके फूलों में से पके हुए सेतरे की सी सुगंध आती है। उसके एक सीके में सेमल की तरह के पाँच पाँच पत्ते होते

हैं। अफ्रीका के निवासी इसके पत्तों का चूर्ण बना कर भोजन के साथ खाते हैं। वनके कयनासुरार 'इसके धाने से पर्वना नहीं होता और गरमी कम मालूम होती है। इसमें छोटी लौकी के आकार के फल लगते हैं जिनके बीज दवा के काम आते हैं। ये बीज कई प्रकार के ज्वरों के लिये बहुत उपयोगी होते हैं और इनका बहुत बड़ा व्यापार होता है। दैत्यक के अनुसार यह भयूर, शीतल, और दाह, वमन, पित्त, श्रितिसार और ज्वर को दूर करनेवाली है। इसे कल्पवृक्ष भी कहते हैं। दे० “कल्पवृक्ष (२)” ।

गोरख-ककड़ो—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोरख + ककड़ी] यह ककड़ी जिसमें पूट होता है। गोरखी ।

गोरख-डिठो—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोरख + डिठ्ठी] गरम या खनिज जल का कुछ था खोत ।

गोरखबंधा—संज्ञा पुं० [हिं० गोरख + बंधा] (१) कई तारों, कड़ियों या लकड़ी के टुकड़ों इत्यादि का समूह जिनको विशेष सुक्ति से परस्पर जोड़ या अलग कर लेते हैं। इनके जोड़ने या अलग करने की क्रिया पेचीली होती है। गोरखबंधे कई प्रकार के होते हैं। एक प्रकार का गोरखबंधा गोरखबंधी साधु लिए रहते हैं जिसमें एक ढंटे में बहुत सी कड़ियाँ जड़ी होनी हैं। (२) कोई पैसी चीज या वाम जिसमें बहुत मगड़ा या उलफन हो। (३) मगड़ा । उलफन । पंच ।

गोरखनाथ—संज्ञा पुं० [गोरखनाथ] एक प्रसिद्ध धक्कत जो पंद्रहवीं शताब्दी में हुए थे। ये बहुत सिद्ध माने जाते हैं और इनका चलाया हुआ संप्रदाय थप तक जारी है। गोरखपुर इनका प्रधान निवासस्थान था और वहाँ इन्होंने निधि प्राप्त की थी ।

गोरखपंथी—वि० [हिं० गोरखनाथ + पंथी] गोरखनाथ का अनुयायी । गोरखनाथ के चलाये हुए संप्रदायवाला ।

गोरखमुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुखंड] प्रसर जाति की एक प्रकार की घास जिसमें उँगली के समान लंबे लंबे पत्ते होते हैं और छुंडी के समान गोल और गुलाबी रंग के फूल बगते हैं जो रक्तरोधन के लिये बहुत ही गुणकारी होते हैं। वैदिक के अनुसार यह परपरी, कसैली, हलकी, थलकाक तथा रक्त-विहार के रोगों के लिये बहुत ही लाभदायक है। इसे खाली मुंडी भी कहते हैं ।

गोरखर—संज्ञा पुं० [फा०] गंधे की जाति का एक जंगली पशु जो गंधे से बड़ा और छोटे से छोटा होता है। यह पश्चिमी भारत तथा मध्य और पश्चिमी एशिया में पाया जाता है। इसकी जैचवाई प्रायः तीन हाथ और लंबाई पाँच छः हाथ तक होती है। इसका पेट सफ़ेद और धाकी शरीर हिरन के रंग का होता है। इसके कान बड़े और हुम पर रोपे होते हैं। ये सदा चौकन्ने रहते और बहुत तेज़ दौड़ते हैं। ये मैदानों में

२२-२० का झुंड बना कर रहते हैं और इसके झुंड का एक सरदार भी होता है। ये प्रायः हरी घास और पतियाँ खाते हैं।

गोरका-संज्ञा पुं० [हि० गोरक] (१) नेपाल के अंतर्गत एक प्रदेश। (२) इस देश का निवासी।

गोरखाली-संज्ञा पुं० [हि० गोरख] नेपाल के अंतर्गत गोरखा नामक प्रदेश।

गोरखी-संज्ञा स्त्री० दे० "गोरख ककड़ी"।

गोरचकारा-संज्ञा पुं० [दे०] सन की जाति का एक जंगली पौधा जिसके पत्ते धीकड़ा की तरह चिकने और लंबे होते हैं। श्वेत यह पौधा बगीचों में शोभा के लिये भी लगाया जाने लगा है। इसका रेशा बहुत अच्छा होता है और प्राचीन काल में उससे धनुष की डोरी बनाई जाती थी। इसमें छोटे मोटे फल लगते हैं। इसका व्यवहार दवा में भी होता है। वैद्यक के अनुसार यह कड़ुआ, गरम, भारी, दस्तकार और प्रमेह, केशू, शिदोष, श्पिरिकार तथा विषमज्वर को दूर करनेवाला है। इसे मुर्वा, मोर्वा या धनुषीय भी कहते हैं।

गोरज-संज्ञा पुं० [सं०] गौ के मुँह से बड़ी हुई गई या भूल।

गोरटा-वि० पुं० [हि० गोर] [स्त्री० गोरटी] गौरे रंगवाला। गौरा। ३०-—द्वय कुडगति ही ठाक चित्तै धनी निहारि। लिये जाति चित चोरटी वही गोरटी नारि।—चिहारी।

गोरन-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी लाल रंग की और बहुत मजबूत होती है। इसकी लकड़ी किरित्या बनाने और इमारत के काम में आती है और छाल से चमड़ा सिन्काया जाता है। यह पूर सिंध तथा बंगाल में नदियों और समुद्र के किनारे की मज जमीन में अधिकता से होता है।

गोरया-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का घान जो अगहन के महीने में तैयार होता है और जिम्मा चावल बहुत दिनों तक रख सकते हैं।

गोरछ-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का जंगली बकरा।

गोरवा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बस जिसकी छोटी छोटी टहनियों से हुके के नंचे बनाये जाते हैं।

गोरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध। (२) दधि। दही। (३) एक। मग्न। छात्र। (४) इंदियों का सुख। ३०-—गोरस चाहत किरत हो गोरस चाहत नाहिं।—चिहारी।

गोरसर-संज्ञा पुं० [दे०] वह पतली कमाची जिसे बस के पंखों की छँदी के धार पास देकर बंधन से जकड़ देते हैं।

गोरसा-संज्ञा पुं० [सं० गोरस] वह पधा जो गाय के दूध से पसा हो।

गोरसी-संज्ञा स्त्री० [सं० गोरस + ई (प्रत्य०)] दूध गरम करने की थोड़ी।

गोरा-वि० [सं० गौर] सफ़ेद और स्वच्छ वर्णवाला (मनुष्य)।

जिसके शरीर का चमड़ा सफ़ेद और साफ हो।

घा०—गोरा भूकृत् = लताई लिए गोरा। गंग चिह्न।

संज्ञा पुं० गौर वर्णवाला व्यक्ति विशेषतः युरोप, अमेरिका आदि देशों का निवासी। फिरेगी।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार की कल जो नील के कारखानों में यद्यो काटने के लिये रखा करती है। (२) एक प्रकार का नीवू जो लंबातरा होता है।

गोराई-संज्ञा स्त्री० [सं० गौर + आई] (१) गोरापन। (२) सुंदरता। सौंदर्य।

गोराडू-संज्ञा पुं० [दे०] वह बालू मिली मिट्टी जिसमें कोढ़े बहुत उपजता है। यह गुनरात में बहुत होती है।

गोरागू-संज्ञा पुं० [हि० गोरा + गू] एक प्रकार की जंगली मूँग जिसे दक्षिण में लोग अकाल के समय खाते हैं।

गोरिह्ला-संज्ञा पुं० [अफ्रीका] चिपैजी की जाति का बहुत बड़े आकार का एक प्रकार का वनमानुस जिसके झुंड अफ्रीका में पाये जाते हैं। इसके शरीर का चमड़ा काला, कान छोटे और हाथ बहुत लंबे होते हैं। इसकी ऊँचाई प्रायः साढ़े पाँच फुट होती है और इसके शरीर में बहुत बल होता है। यह फल खादि खाता और पेड़ों पर बड़े बड़े कोपड़े बना कर रहता है। इसकी आवाज साधारण भूँकने की सी होती है, पर इसे छोड़ा या टिक किया जाय तो यह बहुत जोर से चिल्लाने लगता है। इसके शरीर की बनावट मनुष्य से बहुत कुछ मिलती जुलती होती है।

गौरी-संज्ञा स्त्री० [सं० गौरी] सुंदर और गौर वर्ण की स्त्री। रूप-वती स्त्री।

गौरीसर-संज्ञा पुं० [सं०] सालसा। उद्याय।

गौरु-संज्ञा पुं० [सं० गौ] (१) सींगवाला पशु, गाय, बैल, भैंस इत्यादि। सीपाया। मवेशी। (२) दो केस का मान। (३०)

गौरूप-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

गौराच-संज्ञा पुं० [सं०] हस्तला।

गौराचन-संज्ञा पुं० [सं०] पीले रंग का एक प्रकार का सुगंधि द्रव्य जो गौ के हृदय के पास पित्त में से निकलता है। यह अष्टांग के अंतर्गत है और बहुत पवित्र माना जाता है। कभी कभी यह लकड़ों की पोटों में भी पड़ता है और इसका तिलक लगाया जाता है। तांशिक इसे मंगलजनक, फांतिदा-यक, दरिद्रतानाशक और वशीकरण करनेवाला मानते हैं। वैद्यक में इसे शीतल, कड़ुआ और विष, उन्माद, गर्भताप, नेत्ररोग, रुमि, कुट और रक्तविकार को दूर करनेवाला, भीषण बर्द्धक तथा पथ्य माना है। कुछ लोगों का विश्वास है कि

यह गौ के मस्तक का पित्र है अथवा गौ में इसे उत्पन्न करने के लिये उसका यद्दुत दिनों तक केवल आम की परियाँ खिला कर रखते हैं जिससे उसको यद्दुत कष्ट होता है, पर ये बातें ठीक नहीं हैं। ३०—(क) तिलक भाल पर परम मनोहर गोरोचन को देना।—सूर। (ख) सुपरि उचटि अद्भवाद् के नयन आंजने रचि रचि तिलक गोरोचन को कियो है।—तुलसी।

गोरोचना—संज्ञा स्त्री [सं०] गोरोचन नामक सुगंधि द्रव्य।

गोखी—संज्ञा पुं० दे० “गोरला”।

गोर्खाली—वि० दे० “गोरखाली”।

गोलंदाज—संज्ञा पुं० [फा०] तोप में गोला रख कर चलानेवाला। तोप में घसी देनेवाला।

गोलंदाजी—संज्ञा स्त्री [फा०] गोला चलाने का काम या विद्या।

गोलंघर—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + श्वर] (१) गुंबद। (२) गुंबद के आकार का कोई गोल जैचा उठा हुआ पदार्थ। (३) गोलाई। (४) कलवून जिस पर रख कर टोपी सीते हैं। कालिख। (५) बगीचे में बना हुआ गोल चबूतरा या रक्षिख।

गोल—वि० [सं०] (१) जिसका घेरा या परिधि वृत्ताकार हो। चक्र के आकार का। वृत्ताकार। जैसे, बरिद्या, श्रृंगरी, सिंका इत्यादि। (२) ऐसे घनात्मक आकार का जिसके पृष्ठ का प्रत्येक बिंदु उसके भीतर के मध्य-बिंदु के समान श्रृंखर पर हो। सर्ववृत्तल। शंकाकार। गेंद, नीचू, बेल आदि के आकार का।

गुहा—गोल गोल = (१) स्थूल रूप से। मोटे दृष्टान से। (२) अस्थूल रूप से। साफ़ साफ़ नहीं। ३०—ये ही गोल गोल रामका फर बह चला गया, साफ़ खुला नहीं। गोल घात = अस्थूल घात। ऐसी बात जिससे अर्थ का कुछ आभाव मिले पर वह स्पष्ट न हो। गोल मटोल = (१) दे० “गंगल गोल”। (२) मोटा और टेंगना। नाटा और मोटा। गुमगुपना। (३) ऊँचाई के दृष्टान से जिसकी चौड़ाई या मोटाई बहुत अधिक हो। गोल दोना = चुप हो रहना। मौन हो जाना।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृत्त। मंडलाकार क्षेत्र। (२) गोलाकार पिंड। गोला। सर्ववृत्तल पिंड। घटक। (३) गोलपत्र। (४) विषया का जारज पुत्र। (५) सुर नाम की शोपधि। (६) मदन वृष। मदनफल का पेड़। (७) एक देश का नाम जिसके अंतर्गत योरप का बहुत सा भाग विशेषतः उत्तरीय इटली और फ्रांस, बेलजियम आदि थे। यह शब्द रोमन भाषा या लैटिन से हैमचंद्र परिशिष्ट पर्वण्य में आया है। (८) मिट्टी का गोल झड़ा।

संज्ञा पुं० [फा०] गोल। सं० गोल = मंडल। मंडली। मुंड। समूह।

मुहा०—गोल बांधना = मंडली या झुंड बनाना।

संज्ञा पुं० [सं०] गोल (योग) गडबड़। गोलमाल। ब्यवृत्त। चलबली। हलचल।

धौ०—गोलमाल।

मुहा०—गोल पारना या डालना = गडबड़ मचाना। हलचल मचाना। ३०—ऊधो सुनत तिहारे घोल। ह्यायो हरि कुल लात धन्य तुम घर घर पारयो गोल।—सूर।

गोलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोलोक। (२) गोलपिंड। (३) विषया का जारज पुत्र। (४) मिट्टी का बड़ा कुंडा। (५) क्लौ का निकाला हुआ सार। इत्र। (६) शरीर का डेला। ३०—(क) अति उनींद अलसात फर्मेगति गोलक चपल तिथिल कछु थारे।—सूर। (ख) जोगबहिं प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक विलोचन गोलक जैसे।—तुलसी। (७) अलि की पुतली। ३०—उनके हित उगहीं बने कोऊ कौ श्रेयक। फितर काक गोलक भयो दुहुँ देह ज्यों एक।—विहारी। (८) गुंबद। ३०—विसुकरमा मनु मति शंभ वै दहाण को गोलक धरयो।—गोपाल। (९) वह संदूक या पैली आदि जिसमें किसी विशेष कार्य के लिये थोड़ा थोड़ा धन संग्रह किया जा। (१०) वह धन जो किसी विशेष कार्य के लिये संग्रह करके रखा जाय। फंड। (११) वह संदूक या पैली जिसमें विप्री द्वारा या और किसी प्रकार आई हुई रोजना ग्रामदनी रखी जाती है। गहा। गुलक।

गोलकलम—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + कलम] एक प्रकार की छेनी जो चांदी के पत्तर पर की नकशी ठीक करने या पीतल के दर्तनों की नकशी में पत्ती उभारने के काम में आती है।

गोलकली—संज्ञा स्त्री [हिं० गोल + कली] एक प्रकार का शंशूर जो वृषिय और मध्यभारत में होता है।

गोलगप्या—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + गप्यु गप] एक प्रकार की महीन और करारी धी में तली फुलकी जिसे लटाई के रस में हवा कर खाते हैं।

गोलपंजा—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + पंजा] गिना मुद्दी नाक का जूता। सुंदा जूता।

गोलपत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + पत्ता] गुल्ला नामक ताड़ का पत्ता जो सुंदर पत्र में होता है। दे० “गुलगा”।

गोलफल—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + फल] गुल्ला नामक ताड़ का फल जो सुंदर पत्र में होता है। दे० “गुलगा”।

गोलमाल—संज्ञा पुं० [सं० गोल (योग)] गडबड़। अग्यवस्था।

फि० प्र०—कतना।—डालना।—मचाना।

गोलमिर्च—संज्ञा स्त्री [हिं० गोल + सं० मरिच] काली मिर्च।

गोलमुँहा—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + मुँहा] कसेरों की एक प्रकार की हथोड़ी जिसका अगला भाग बिलकुल गोल होता है और जिससे बर्तन गहरा किया जाता है।

गोलमेधी—संज्ञा स्त्री [हिं० गोल + मेधा] मेधे की जाति का एक

वेड़ जो वस्त्री भारत में बमार्क से चामा तक तथा अफ्रीका और अमेरिका में होता है। इसके डंठलों से घटाया बनती है। इसे वेदुआ भी कहते हैं।

गोलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] यह यंत्र जिससे सूर्य, चंद्र, पृथिवी आदि की स्थिति, नक्षत्रों की गति और अथन परिवर्तन आदि जाने जाते हैं। प्राचीन काल में यह यंत्र प्रायः बांस की तखियों आदि से बनाया जाता था।

गोलयोग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष में एक योग जो एक राशि में किसी के मन में छः और किसी के मन से सात ग्रहों के एकत्र हो जाने से होता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इसका फल दुर्भिक्ष और राष्ट्र तथा राजाओं का नारा है। (२) गढ़बढ़ गोलमाल।

गोलर—संज्ञा पुं० [देव०] कसेरू।

गोलर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बहुत लंबा और सुंदर पेड़ जो हिमालय पर्वत पर तीन हजार फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी छाल चिकनी और सफेद और हीर की लकड़ी चमकीली और बहुत कड़ी होती है। इसके पत्तों से चमड़ा सिखाया जाता है और लकड़ी से नारें जहान और धेती के बीजार बनाए जाते हैं।

गोलरट्ट—संज्ञा पुं० [हिं० गेठ + रट्ट] जहान के मसूल के निरे पर की एक गोल लकड़ी जिस पर से पाल की रस्सियाँ खींची जाती हैं। (सं०)

गोलरिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या का वह रंग जिससे पृथ्वी की गोलाई, आकार, विस्तार, पाल, अतु-परिवर्तन आदि बानें जानी जाय। आकार के गोलपिंडों का हाल पाल जानना भी इसी के अंतर्गत है।

गोलाईगूल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यंत्र जिसकी पूँछ गी की पूँछ के समान होती है।

गोला—संज्ञा पुं० [सं० । हिं० गेठ] (१) किसी पदार्थ का कुछ बड़ा गोल पिंड। जैसे, छोटे का गोला, रस्ती का गोला, भांग का गोला।

मुद्रा—गोला उठाना—एक प्राचीन प्रथा जिसमें लोग अपनी सभ्यता प्रमाणित करने के लिये जड़ता हुआ लेखे का गोल हाथ में उठा लिया करते थे और यदि उनका हाथ न जड़ता था वे निर्दोष समझे जाते थे।

(२) छोटे का यह गोल पिंड जिसमें बहुत सी छोटी छोटी गोलीयाँ, मेरु आदि भर कर बुद्ध में लोगों की सहायता से शत्रुओं पर फेंकते हैं। इ०—अने महोपर शिल्प कोटिष्ठ विधिप विधि गोला चत्रे।—तुलसी।

फि० प्र०—पञ्जना।—पौपना।—फेंकना।—धरसाना।

विदोष—सोमों के प्रायुजिक गोले कंपक गोभ ही मदीं बलिंक लंघे भी बनते हैं।

(३) एक प्रकार का रोग जिसमें थोड़ी थोड़ी देर पर पेट के अंदर नामि से गले तक वायु का एक गोला आता जाता जान पड़ता है और जिसमें रोगी को बहुत अधिक कष्ट होता है। वायुगोला। (४) रंगे के मित्रों पर का कुछ धाया गढ़ा हुआ भाग। (५) दीवार के ऊपर की लकीर जो सोमा के लिये बनाई जाती है। (६) भीतर से लोखला किया हुआ खेल का फल या उसी आकार का काठ आदि का बना हुआ और कोई पदार्थ जो सुँघनी, भभूत या इसी प्रकार की और कोई बुरकी रखने के काम में आता है। (७) मिठी काठ आदि का बना हुआ यह गोलाकार पिंड जिसके ऊपर रख कर पगड़ी बांधते हैं। (८) जंगली कबूतर। (९) नारि-फल का वह भाग जो उसके ऊपर की जटा पृथक्ने के बाद बच रहता है। गरी का गोला। (१०) वह याजार या मंडी जहाँ अनाज वा किराने की बहुत बड़ी बड़ी दुकानें हैं। (११) घास का गट्टर। (१२) लकड़ी का गोल पेटे का सीधा लंबा लट्टा जो छानने में लगाने तथा दूसरे कामों में आता है। फाँड़ी। बहा। (१३) रस्ती, सूत आदि की गोल लपेटी हुई पिंडी। (१४) एक प्रकार का जंगली बांस जो पोला नहीं होता और छड़ी या लाठी बनाने के काम में आता है।

मुद्रा—गोला लाम्री करना—लड़कों का हाथ पैर बांध कर दोनों मुट्टों के बीच में दंडा डालना। (यह दंड मैतली मन्त्रियों में लड़कों को दिया करते हैं।)

(१५) एक प्रकार का बँत जो बंगाल और आसाम में होता है। यह बहुत लंबा और सुलायम होता है तथा दोकरे आदि बनाने के काम में आता है।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोदावरी नदी। (२) सहली। सती। (३) मंडल। (४) किसी चीज की छोटी गोली। (५) दुर्गा।

गोलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेठ + लाई (प्रय०)] गोल का भाव। गोलायन।

गोलाकार, गोलाकृति—वि० [सं०] जिसका आकार गोल हो। गोल शब्दवाला।

गोलाघार—वि० [हिं० गेठ + घार] मूलाघार।

गोलाघाय—संज्ञा पुं० [सं०] भास्कराचार्य का एक ग्रंथ जिसमें भूगोल और खगोल का वर्णन है।

गोलाई—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी का प्राया भाग जो एक भूय से दूसरे भूय तक उसे बीचोबीच काटने से बनता है।

गोलियाना—कि० सं० [हिं० गेठ] (१) किसी चीज को गोल आकार का करना या बनाना। (२) गोल बाँधना। धमराप के खोंगों का एकदिन होता।

गोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेठ का स्त्री० और बन०] (१) किसी

वह गौ के मलक का पित्त है अथवा गौ में इसे उत्पन्न करने के लिये उसको बहुत दिनों तक केवल धाम की पत्तियाँ खिला कर रखते हैं जिससे उसको बहुत कष्ट होता है, पर ये बातें ठीक नहीं हैं। उ०—(क) तिलक भाल पर परम मनोहर गोरोचन को दीना।—सूर। (ख) चुपरि उवटि अहवाह के नयन आंजे रचि रचि तिलक गोरोचन को कियो है।—तुलसी।

गोरोचना—संज्ञा शी० [सं०] गोरोचन नामक सुगंधि द्रव्य।

गोर्खा—संज्ञा पु० दे० “गोरखा”।

गोर्खाली—वि० दे० “गोर्खाली”।

गोलंदाज—संज्ञा पु० [फा०] तोप में गोला रख कर चलानेवाला तोप में पत्ती देनेवाला।

गोलंदाजी—संज्ञा शी० [फा०] गोला चलाने का काम या विद्या।

गोलंबर—संज्ञा पु० [हि० गोल + बर] (१) गुंबद। (२) ईश्वर का कोई गोल ऊँचा उठा हुआ पदार्थ। (३) गोल कलवृत्त जिस पर रख कर टोपी सीते हैं। (४) बगीचे में बना हुआ गोल चपूतरा या रविया।

गोल—वि० [सं०] (१) जिसका घेरा वा परिधि वृत्त चक्र के आकार का। वृत्ताकार। जैसे, पहिया, चंद्र इत्यादि। (२) ऐसे घनात्मक आकार का जिसमें प्रत्येक बिंदु उसके भीतर के मध्य-बिंदु के समान हो। सर्ववस्तु। अंडाकार। गेंद, नीप, आकार का।

गोला—गोल गोल = (१) स्थूल रूप से। मोटे अक्षर रूप से। साफ साफ नहीं। उ०—समझा कर वह चला गया, साफ खुला अक्षर बात। ऐसी बात जिससे अर्थ का कुछ स्पष्ट न हो। गोल मडोल = (१) (२) मोटा और टेंगा। नाटा और कैंचाई के हिसाब से जिसकी चौड़ाई है। गोल होना = चुप हो रहना।

संज्ञा पु० [सं०] (१) वृत्त। मंदार फल। गोला। सर्ववस्तु। (२) विषया का ज्ञान पुत्र। (३) मदन वृष। मैनफल जिसके अंतर्गत गोरप का इटली और फ्रांस, वेल्स भाषा वा लैटिन से हेमि मिट्टी का गोल घड़ा। संज्ञा पु० [फा०] गोला समूह।

मुहरा—गोल घोंघ

गोशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौशो के रहने का स्थान । गोष्ठ ।
 गादीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पर्वत का नाम । (२) उक्त पर्वत पर होनेवाला चंदन । (३) एक प्रकार का अन्न ।
 गोशृंग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पर्वत जिसका बर्षान रामायण और महाभारत में थाया है । (२) एक ऋषि का नाम । (३) पशु का पेड़ ।
 गोस्त—संज्ञा पुं० [फ्रा०] मांस । छानिया ।
 गोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौशो के रहने का स्थान । गोशाला । (२) किसी जाति के पशुओं के रहने का स्थान । जैसे, मदिपगोष्ठ, अश्वगोष्ठ । (३) मनु के अनुसार एक प्रकार का श्राद्ध जो कई थादनी मिल कर करते हैं । (४) परामर्श । सलाह । (५) दल । मंडली ।
 गोष्ठशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई सभा हो । सभाभवन ।
 गोष्ठो—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पशु से लोगों का समूह । सभा । मंडली । (२) चात्तारण । वातचीत । (३) परामर्श । सलाह । (४) एक ही श्रेणक का वह रूपक या नाटक जिसमें ५ या ७ चिर्या और ६ या १० पुरुष हों ।
 गोशपद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौशो के रहने का स्थान । गोष्ठ । (२) गौ के चुर के इतना बड़ा गड्ढा । (३) प्रभात क्षेत्र के श्रंतगत एक तीर्थ ।
 गोस—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का झाड़ू जिसमें से गोंद निकलता है । (२) प्रातःकाल से दो घड़ी पहले का समय । प्रभात । तड़का ।
 संज्ञा पुं० [फ्रा० गेभा ?] हवा लगने के लिये चलते हुए जहाज का एक कुछ तिरछा करना । माँच । (लश०)
 गोसार्—संज्ञा स्त्री० [देग०] कपास के पैधो का एक रोग जिसमें उनका फूलना थँद हो जाता है ।
 गोसमावल—संज्ञा पुं० दे० “गोसमावल” । उ०—पाग ऊपर गोसमावल रंग रंग रधि बनाय ।—सूर ।
 गोसय—संज्ञा पुं० [सं०] गोशेष अन्न ।
 गोसा—संज्ञा पुं० [सं० गे] गोहँटा । उपला । कंडा ।
 गोसार्—संज्ञा पुं० [सं० गोशामी] (१) गौशो का स्वामी या अधिकाारी । (२) स्वर्ण का मालिक, ईश्वर । (३) सैन्यातिथी का एक संप्रदाय जिसमें दश भेद होते हैं और जिसे दशनाम भी कहते हैं । गिरि, पुरी, भारती, सरस्वती चादि हसी के श्रंतगत हैं । (४) विरक्त सायु । अतीत । (५) वह जिसने इन्द्रियो के जीत लिया हो । जितेंद्रिय । (६) मालिक । प्रभु । स्वामी । उ०—कधु न परीक्षा सीन्ह गुसाई । कीन्ह प्रनाम गुहारिदि माई ।—गुजरी ।
 वि० अर्थ । बड़ा ।
 गोसाती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गेभा] वह हवा जो पाल उतार लेने पर भी जहाज के चलने में बाधा डाले । (लश०)

गोसी—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार की समुद्र में चलनेवाली नाव जिसमें २ से लेकर ७ तक मत्स्य होते हैं ।
 गोसी परवान—संज्ञा पुं० [देग०] धातु की एक लंबी छड़ जो जहाज के मत्स्य में पाल के ऊपरी छोर को हटाने यज्ञाने के लिये लगी होती है ।
 गोसुत—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ड़ा । गौ का बच्चा उ०—(क) गो गोसुतनि सों सृगी सृगसुतनि सों और तन नेकु न जोगनी ।—हरिदास । (ख) गोसुत पहुँचे जाइ गए बालक अपने घर । गोसुत अर नर नारि मिली अति हेत खाइ गर ।—सूर ।
 गोसुत—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद का वह शंखा जिसमें बह्रांड की रचना का गौ के रूप में बर्णन किया गया है । गोदान के समय इसका पाठ किया जाता है ।
 गोसैर्याँ—संज्ञा पुं० [सं० गे.स्वामी, हिं० गेसाई] प्रभु । नाथ । मालिक ।
 गोस्तना, गोस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्राघा । दास । मुनका ।
 गोस्वामी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिस ने इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया हो । जितेंद्रिय । (२) वैष्णव संप्रदाय में आचार्यों के वंशधर या उनकी गद्दी के अधिकारी ।
 गोह—संज्ञा स्त्री० [सं० गेभा] छिपकली की जाति का एक जंगली जंतु जो आकार में नेबले से कुछ बड़ा होता है । इसकी फुफकार में बहुत विष होता है । इसके काटने पर पहले मांस गलने लगता है और तब चारे शरीर में विष फैलने के कारण मनुष्य मर जाता है । इसका चमड़ा बहुत मोटा और मजबूत होता है जिससे प्राचीन काल में लड़ाई के समय डैंगलियों की रक्षा करने के लिये दस्ताने बनते थे । कभी कभी इसके चमड़े से खैंजरी भी मढ़ी जाती है । इसका मांस बहुत पुष्ट होता है और प्राचीन काल में खाया जाता था । श्व भी जंगली जातियों गोह का मांस खाती हैं । यह हीवार में चिपक जाती और उसे बहुत कठिनता से छोड़ती है । ऐसा प्रसिद्ध है कि पहले चोर इसकी कमर से रस्सी बांध कर इसे मकान के ऊपर फेंक देते थे और जब यह वहाँ पहुँच कर चिपक जाती तो वे उस रस्सी की सहायता से ऊपर चढ़ जाते थे । गोह दो प्रकार की होती है, एक चंदन गोह जो छोटी होती है और दूसरी पट्टा गोह जो बड़ी और चिपटी होती है ।
 संज्ञा पुं० बड़पुर राजवंश के एक पूर्व पुरुष का नाम जो चाप्पा रायब से पहले हुआ था ।
 गोहान—संज्ञा पुं० [सं० गेभन = गौशो का समूह] (१) संग रहनेवाला । साथी । उ०—सूरदास प्रभु मोहन मोहन की धुवि बाड़ी मेटति हुए निरखि नैन मैन के दरद को ।—सूर । (२) संग । साथ । उ०—(क) औरताता सेने रथ साजा । भई बरात मोहन सय राजा ।—अपरी । (ख) माने कहीं

चलोगे मोहन । पाछे छाड़ गईं तुव गोहन ।—सूर । (ग)
 देव नू गोहन लागे किरैं गदि के गहिरें रँग में गहिराऊ ।—देव ।
 गोहनियाँ—संज्ञा पुं० [हिं० गेहन + इया (प्रत्य०)] संगी । साथी ।
 गोहर—संज्ञा स्त्री० [सं० गेया] विसलेपरा नामक जंतु ।
 गोहरा—संज्ञा पुं० [सं० गो + ईल या गेहल] [श्री० श्लव० गोहरा]
 सुलाया हुआ गोबर जो खालने के काम आता है । फटा ।
 उपला ।
 गोहराना—क्रि० प्त० [हिं० गोहरा] पुकारना । बुलाना ।
 आवाज़ देना ।
 गोहरार—संज्ञा पुं० [हिं० गोहरा + रार (प्रत्य०)] पधे हुए कंधों
 का वेर ।
 गोहलोट—संज्ञा पुं० [गेह (नम)] छत्रियों की एक जाति विशेष ।
 दे० “गहलोट” । उ०—सोमर बस पनवार सवाई । श्री
 गोहलोट घाय सिर नाई ।—जायसी ।
 गोहसम—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का वृष ।
 गोहानी—संज्ञा पुं० दे० “गोहड़” ।
 गोहार—संज्ञा स्त्री० [सं० गो + हार (हरण)] (१) पुकार । दुहाई ।
 रफा या सहायता के लिये चिहाना । उ०—भाई धारि फिरी
 के गोहार हितकारी होत भाई मीच मिटत जयन राम नाम
 को ।—तुलसी ।
 विशेष—प्राचीन काल में जय किसी की गाय कोई छीन लिए
 जाता था तब वह उसकी रफा के लिये पुकार मचाता था ।
 फि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचाना ।—लगाना ।—
 लगाना ।
 मुहा०—गोहार मारना = उदात्तता के लिये पुकार मचना ।
 गोहार लड़ना = (१) राय को ललकार कर दाटना । (२) गँवारों
 का लाठियों से लड़ना । (३) एक आदमी का फर्द आदमियों
 से लड़ना ।
 (२) हछा गुहा । शोर चिछाहट ।
 फि० प्र०—मचना ।—मचाना ।—लगाना ।—लगाना ।
 (३) वह भीड़ जो रफा के लिये किसी की पुकार सुन कर
 इकट्ठी हो गई हो ।
 गोहारि—संज्ञा स्त्री० दे० “गोहार” ।
 गोहाटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोहार] (१) गोहार । (२) वह धन
 जो कोई हानि पूरी करने के लिये हो । (लया०) (३) वह
 धन जो बंदरगाह में जहाज़ के आवश्यकता से अधिक रहने
 के कारण हरजाने के तौर पर दिया या लिया जाय । (लया०)
 गोही—संज्ञा स्त्री० [सं० गोपन] (१) दुहाय । विभाव । (२)
 छिपी हुई बात । गुप्त बातों । उ०—अपने दनिज हुरावत
 हो कत नाईं लिये हतगोही । कहा हुरावति हो मो आगे
 सब जानत तुव गोही ।—सूर । (३) महुषे का बीज । (४)
 फलों का बीज । गुडली ।

गोहुवन—संज्ञा पुं० [हिं० गेहूँ] एक प्रकार का विषय संज्ञा ।
 गोहूँ—संज्ञा स्त्री० [सं० गोभूम] गेहूँ ।
 गोहरा—संज्ञा पुं० [सं० गेया] विसलेपरा नामक विषाल जंतु ।
 गी—संज्ञा स्त्री० [सं० गम, प्रा० गैव] (१) प्रयोजन सिद्ध होने का
 स्थान वा व्यवहार । सुयोग । मौका । घात । दांव । उ०—
 मनहुँ ईदु विंघ मध्य, कंज मीन खंजन लखि, मधुप, मकर,
 कीर थाप तकि तकि निज गौं हूँ ।—तुलसी ।
 फि० प्र०—ताकना ।—देखना ।
 धौ०—गौं घात = उपयुक्त अवसर वा स्थिति । मौका ।
 (२) प्रयोजन । मतलब । गुरज । धर्म । उ०—यह सवि मैं
 पहिले यहि राखी आसित न अरुने होई । सूर काटि जो
 मायो दीजे चलत आरणी गौं ही ।—सूर ।
 मुहा०—गौं का = (१) मतलब का । काम का । प्रयोजनीय
 (यत्न) । उ०—गुजार जाते हो, कोई गौं की चीज मिले तो
 लेते आना । (२) स्वार्थी । मतलबी । खुदमरज (व्यक्ति) ।
 गौं का थार = केवल अरना मतलब गंठने के लिये साथ में
 रहनेवाला । मतलबी । स्वार्थी । गौं गाठना = अपना मतलब निका-
 दना । स्वार्थसाधन करना । काम निकालना । गौं निकालना =
 काम निकालना । प्रयोजन सिद्ध होना । स्वार्थसाधन होना ।
 उ०—अब तो गौं निकल गई, वे हमसे क्यों बोलेंगे ? गौं
 निकालना = काम निकालना । प्रयोजन सिद्ध करना । स्वार्थ
 साधन करना । मतलब पूरा करना । गौं पड़ना = काम पड़ना ।
 गुजना होना । दरकार होना । आवश्यकता होना । उ०—हमें
 ऐसी क्या गौं पड़ी है जो हम उनके यहाँ जाय ।
 विशेष—दे० “गवै” ।
 गौच—संज्ञा पुं० दे० “कौच” ।
 गौट—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा वृष जो उच्च
 और पश्चिम भारत में अधिकता से होता है और जिसकी
 लकड़ी पीलावण लिए बहुत कड़ी होती है ।
 गौंटा—संज्ञा पुं० [हिं० गौं + टा (प्रत्य०)] (१) वह खूब जो
 किसी गाँव में प्रजा के विशेष लाभ के लिये या परोपकार
 धर्म आदि के विचार से जमींदार की ओर से किया जाय ।
 विशेष—प्रायः गुमारतों को जमींदारों की ओर से इस प्रकार
 के खर्च करने का अधिकार होता है और कभी कभी खर्च
 होने के बाद उसका कुछ अंश प्रजा से भी वसूल किया
 जाता है ।
 (२) छोटा गाँव ।
 गौही—संज्ञा [हिं० गौं + ही (प्रत्य०)] गाँव सेवकी । गाँव का ।
 देवाती ।
 गौ—संज्ञा [गाय । गौं] गाय । गौं ।
 वि०—

गीच्छा १—संज्ञा स्त्री० [सं० गच्छा] (१) वह छोटी विट्की जो दीवार या छत में हवा और रोशनी घाने के लिये बनाई जाती है। झरोखा। (२) वह दाखान या बरामदा जो प्रायः देहाती मकानों के दरवाजे पर बैठने खादि के लिये बना रहता है। चौपाल। उ०—यनी गीच्छा देखोस की मीस सोई। पताकतु केडी पिकी ही धरौई।—सूदन।

गीच्छा १—संज्ञा पु० [सं० गच्छा] झरोखा। गीस।
संज्ञा पु० [हि० गी = गाय + शाल] गाय का चमड़ा।

गीच्छी १—संज्ञा स्त्री० [हि० गीच्छा] जूत।

गीगा—संज्ञा पु० [ष०] (१) शेर। गुल गगाड़ा। हटा। (२) शकृपाह। जनधति।

गीचरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गी + चरना] गाय चराने का कर जो जिम्मेदार धपनी प्रजा से लेता है और जिसके बदले में वह गावों के चराने के लिये कुछ भूमि छोड़ देता है।

गीड़—संज्ञा पु० [सं०] (१) बंग देश का एक प्राचीन विभाग जो किम्बो के मत से मध्य बंगाल से उड़ीसा की उत्तरी सीमा तक और किम्बो के मत से वर्तमान बर्दान के पास पास था।

विशेष—धूमपुराण और लिंगपुराण से जाना जाता है कि वर्तमान गोंडों के पास पास का प्रदेश जिसकी राजधानी श्रवण्टी थी गीड़ देश कहलाता था। हितोदेश में कैलाषी की भी इसी गीड़ प्रदेश के अंतर्गत लिखा है। दूसरों और ग्यारहवीं शताब्दी के खेदि राजाओं के साधर्यों और शिलालेखों से पता लगता है कि वर्तमान गोंडयाना के पास का देश भी गीड़ ही कहलाता था। राजतरंगिणी में "पंचगौड़" शब्द आया है जिसमें जान पड़ता है कि किसी समय पांच गौड़ देश थे। स्कंदपुराण के सहायि संख में जिन जिन स्थानों के ब्राह्मणों को पंचगौड़ के अंतर्गत लिया है वे ऊपर बताये हुए स्थानों से निराह हैं।

(२) स्कंदपुराण के संज्ञादि संख के अनुसार ब्राह्मणों की एक कौटि जिसमें सारस्वत, कान्यकुब्ज, उक्कल, मैथिल और गौड़ सम्मिलित हैं। (३) ब्राह्मणों की एक जाति जो दिल्ली के पास पास तथा राजपूताने में पाई जाती है। (४) गौड़ देश का निवासी। (५) एक प्रकार के राजपूतों में से एक जो उत्तर-पश्चिम भारत में अधिकता से पाये जाते हैं।

विशेष—शाह साहब का मत है कि बंगालीयों के गराजा इसी कौटि के राजपूत थे।

(६) बापसों का एक भेद। (७) संस्कृत जाति का एक राग जिसमें सप्त शृङ्ग स्वर लगते हैं। यह श्रीराग का पुत्र माना जाता है और इसके गाने का समय तीसरा पहर और संध्या है। इसके कान्ठका गौड़, बेदार गौड़, नारायण गौड़, रीति गौड़ खादि धनक भेद हैं।

गोडनट—संज्ञा पु० गौड़ और नट के योग से बना हुआ एक संकर राग। (संगीत)

गोडपाद—संज्ञा पु० [सं०] स्वामी शंकराचार्य के गुरु के गुरु जिन्होंने मद्रिकयोपनिषद् पर कारिका लिखी थी और सायण-कारिका का भाष्य किया था।

गोडमहार—संज्ञा पु० गौड़ और महार के योग से बना हुआ एक संकर राग जो प्रायः वर्षा ऋतु में रात के दूसरे पहर में गाया जाता है। कुछ लोग इसे महार राग की रागिनी मानते हैं।

गोडसारंग—संज्ञा पु० गौड़ और सारंग के योग से बना हुआ एक संकर राग जो ग्रीष्म ऋतु में देवपहर से पहले गाया जाता है। इसमें ऋषभ वादी और मध्यम सेवादी होता है और यह वीर और मातरम के वर्णन के लिये अधिक उपयुक्त समझा जाता है।

गोडिया १—वि० [सं० गौड़ + द्या (भव०)] गौड़ देश का। गौड़-देशसंबंधी।

गोडिया—गौड़िया संप्रदाय = वैष्णव महाप्रभु का चतुर्था दृष्टा वैष्णव संप्रदाय।

गोडो—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की मंदिरा जो गुड़ से बनती है। वैद्यक में इसे घात और पित्तनाशक, बल और कति-पदक, दीपन, पथ्य और रुचिकर कहा है। (२) फल्य में एक प्रकार की रीति या श्रुति जिसे पर्याय भी कहते हैं। यह श्रौत-गुण प्रकारक मानी जाती है और इसमें टवर्ग, संयुक्त अथवा श्रवणा समाय अधिक ध्याते हैं। जैसे, (क) कटकटहि मईट विकटभट बहुकोटिकोटिह धावर्ही। (ख) वक्र यक करि पुच्छ करि, खट षच्छ कपि गुच्छ। सुभट उट घन घट मम, मईहि रच्छ न गुच्छ। (ग) बंदी रघुकुल कमल-दिवाकर। (३) संस्कृत जाति की एक रागिनी जो रात के पहले पहर में गाई जाती है। कुछ लोग इसे कल्याण राग का एक भेद मानते हैं। यह वीर और गंगार रस के वर्णन के लिये बहुत उपयुक्त होती है।

गोडेश्वर—संज्ञा पु० [सं०] कृष्णधर्मय ग्यामी जिन्हें गौतम महाप्रभु भी कहते हैं।

गोख—वि० [सं०] (१) जो प्रधान या मुख्य न हो। (२) सहायक। संचारी।

गोखवाद्—संज्ञा पु० [सं०] दो प्रकार के चांद्र मासों में से एक जो किसी मास की कृष्ण प्रतिपदा से उस मास की पूर्णिमा तक होता है। इसका मान प्रायः उत्तर भारत में ही अधिक है।

गोखिक—वि० [सं०] (१) गुणधोक्त। जिससे वायु का गुण प्रकाशित हो। (२) सत, रज, तम खादि गुणों में सर्वथ रखनेवाला। (३) गुणी।

गौरी-वि० छी० [सं०] अग्रपान । साधारण । जो सुलभ न मानी जाय ।

संज्ञा छी० अस्ती प्रकार की लक्षणार्थों में से एक जिसमें केवल किसी एक वस्तु का गुण लेकर दूसरे में आरोपित किया जाता है । जैसे, कल्पवृक्ष हैं अव्ययपति जगन्नाहर परावर्त । इस पद में कल्पवृक्ष के सुलभ गुण उदारता को अव्ययपति में आरोपित करके उनी के द्वारा उनका जगत में परास्वी होना प्रकट किया गया है । यहाँ "कल्पवृक्ष" शब्द में गौरी लक्षण है ।

गौतम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौतम ऋषि के वंशज । (२) न्याय शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य्य और प्रयेता एक ऋषि जो ईसा से प्रायः ६०० वर्ष पहले हुए थे । (३) रामायण, महाभारत और पुराणों आदि के अनुसार एक ऋषि जिन्होंने अपनी स्त्री ब्रह्म्या को हृद्द के साथ अनुचित संबंध करने के कारण शाप देकर पथर की बना दिया था और जिसका उद्धार भगवान रामचंद्र ने किया था । (४) बुद्ध देश का एक नाम । (५) सप्तविं मंडल के ताराओं में से एक । (६) एक पर्वत का नाम जो नासिक के पास है और जहाँ से गोदावरी नदी निकलती है । (७) ऋषियों का एक भेद । (८) भूमिहारों का एक भेद । (९) एक ऋषि जिन्होंने एक स्मृति बनाई है ।

गौतमी-संज्ञा छी० [सं०] (१) गौतम ऋषि की स्त्री, ब्रह्मल्या । (२) कृपाचार्य्य की स्त्री जो प्रसिद्ध तपस्विनी थी । (३) गोदावरी नदी जो गौतम नामक पर्वत से निकलती है । (४) गौतम ऋषि की बनाई हुई स्मृति । (५) दुर्गा का एक नाम ।

गौद, गौदा-संज्ञा पुं० दे० "गौद" ।

गौदान-संज्ञा पुं० दे० "गौदान" ।

गौदुमा-वि० [हिं० गो + दुम + आ (प्रत्य०)] गाय की पूँछ के आकार का । जो एक और अधिक मोटा हो और दूसरी ओर क्रमशः कम होता जाय । उतार चड़ाव । गायदुम ।

गौना-संज्ञा पुं० (१) दे० "गमन" । (२) दे० "गाउन" ।

गौनही-संज्ञा छी० [सं० गजन] गान । संगीत ।

गौनहारी-वि० [हिं० गौना + हार (प्रत्य०)] जिसका गौना हाल में हुआ हो । जो गौना होने के बाद समुद्राल में पहले पहल आई हो । उ०—एती चतुराई धैर कहीं ते पाई रघुनाथ हैं तो देखि रीम्नि रही गौनहारी तिय को ।—रघुनाथ ।

गौनहार-संज्ञा छी० [हिं० गौना + हार (प्रत्य०)] वह स्त्री जो दुलहिन के साथ उसके समुद्राल जाय ।

गौना-संज्ञा पुं० [सं० गमन] विवाह के बाद की एक रसम जिसमें घर अपने समुद्राल में जाता और कुछ रीति रसम पूरी कर के वधु को अपने साथ घर ले आता है । द्विरामान । सुकलाया । उ०—तुलसी-जिनकी पूरी परसि ब्रह्म्या तरी गौतम निघारे गृह गौना लियाइ के ।

गुहा-गौना देना = वधु को घर के साथ पहले पहल, समुद्राल भेजना । गौना लाना = घर का अपनी समुद्राल जाकर वधु को अपने साथ ले आना ।

गि० प्र०—लेना ।—मांगना ।

विशेष-पूरय में "गौने जाना" और "गौने छाना" आदि भी बोलते हैं ।

गोमुख-संज्ञा पुं० दे० "गोमुख" ।

गोमुखी-संज्ञा छी० [हिं० गो + मुख + ई० (प्रत्य०)] गौ के मुँह के आकार की यनी हुई यैली जिसमें माला रख कर जप करते हैं । विशेष-दे० "गोमुखी" ।

गोमेद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न जो गोमुख के रंग का होता है ।

गौर-वि० [सं०] (१) गौरे चमड़ेवाला । गौरा । (२) स्वेत । उज्वल । सफ़ेद ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल रंग । (२) पीला रंग । (३) चंद्रमा । (४) धव नाम का पेड़ । (५) सोना । (६) वाज-यवक्य के अनुसार एक प्रकार का बहुत छोटा मान जो तैलने के काम आता और प्रायः तीन सरसों के बराबर होता है । (७) केसर । (८) एक प्रकार का मृग जिसके खुर बीच से फटे नहीं होते । (९) सफ़ेद सरसों । (१०) चैतन्य महा-प्रभु का एक नाम । (११) एक पर्वत जो प्रसांडपुराय के अनुसार कैलास के उत्तर में है ।

संज्ञा पुं० दे० "गौड़" ।

गौर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोच विचार । चिंतन । (२) खयाल । ध्यान । उ०—सै दीसै सब ठौर न्याप रहो मन माहि" जो । सजान करि के गौर बाही को निज जानिपे ।—रसनिधि ।

गौरता-संज्ञा छी० [सं०] (१) गौराई । गौरावन । (२) सफेदी ।

गौरमीय-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक देश जो दुर्नम विमान के मध्य में है ।

गौरय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पद्मपन । मत्तव । (२) गुलता । भारीपन । (३) सम्मान । आदर । इज्जत । (४) उकर्ष । (५) अश्रुत्पान ।

गौरया-संज्ञा पुं० [?] चटक पत्ती । चिड़ा ।

गौरदाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मद्दुध्रा ।

गौरशालि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शालिधान्य ।

गौरसुखी-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जो चित्रकूट के तर स्थानों में अधिकता से होता है । इसने पत्ते छोटे और सुनहले होते हैं और हाथ में लेकर मलने से उसके बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो जाते हैं जिनमें से बहुत अच्छी गंध निकलती है । वैद्यक में यह शीतल और विदोष, ज्वर तथा थकापट दूर करनेवाला माना गया है ।

गीरान्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) श्रीकृष्ण । (३) ब्रह्मण्य महाप्रभु ।

गीरा-संज्ञा स्त्री० [सं० गीर] (१) गोरे रंग की स्त्री । (२) पार्वती । गिरिमा । (३) हृदयी । (४) एक रागिनी जिसे कुछ लोग श्रीराग की स्त्री मानते हैं ।

गीराद्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] अफ्रीम, संतिया, कनेर आदि स्थावर विष ।

गीरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीगिरिस शक्ति । संज्ञा स्त्री० दे० "गीती" ।

गीरिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काले रंग का एक प्रकार का जलपथी जिसका स्तिर भूरा और गर्दन सफेद होनी है । श्वेतुभेदानुसार इसकी बाँध का रंग बदला करता है । (२) मिट्टी का बना हुआ छोटा टुकड़ा । (३) एक प्रकार का मोटा कपड़ा ।

गीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोरे रंग की स्त्री । (२) पार्वती । गिरिजा ।

विशेष—इस शब्द में गौरी शब्द के बाद पतिवाची शब्द लगाने से "शिव" और पुत्रवाची शब्द लगाने से "गणेश" या कालिकेश्य शब्द होता है ।

(३) आठ वर्ष की कन्या । (४) हृदयी । (५) दाखहृदयी । (६) तुलसी । (७) गोरोचन । (८) सफेद रंग की गाय । (९) मनील । (१०) सफेद दूध । (११) गंगा नदी । (१२) धमेती । (१३) सोन कदली । (१४) त्रियंबु नाम का वृक्ष । (१५) पृथिवी । (१६) बुद्ध की एक शक्ति का नाम । (१७) शरीर की एक नाड़ी । (१८) एक बहुत प्राचीन नदी जो पूर्व काल में भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर थी और जिसका वर्णन वेदों और महाभारत में आया है । (१९) गुप्त से बनी हुई शराप । गौड़ी ।

गीरीचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन ।

गीरीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अन्नक । (२) कार्तिकेय । (३) गणेश ।

गीरीपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] त्रियंबु नाम का वृक्ष ।

गीरीचिंत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न जिसे पक्का रत्न भी कहते हैं ।

गीरीललित-संज्ञा पुं० [सं०] हृदताल ।

गीरीचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव । शिव । (२) हिमालय पर्वत की राय से कैंपो शब्द का नाम ।

गीरीसर-संज्ञा पुं० [सं०] हंसराज नाम की बूटी । सैमलपत्ती ।

गीरिया-संज्ञा स्त्री० दे० "गीरिया" ।

गीला-संज्ञा स्त्री० [सं०] गौरी । पार्वती । गिरिजा ।

गीलाला-संज्ञा पुं० दे० "गीलाला" ।

गीष्टन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सामगान ।

गौसम-संज्ञा पुं० [सं०] कौसम नाम का पेड़ ।

गीहर-संज्ञा पुं० [सं०] मोती । मुक्ता ।

ग्याबिर-संज्ञा पुं० [सं०] कीकर की जाति का एक पेड़ जिसके पत्तों और लकड़ियों से पपड़िया बर बनाया जाता है ।

ग्याना-संज्ञा पुं० दे० "ज्ञान" ।

ग्यारस-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्यारह । एकादशी तिथि ।

ग्यारह-वि० [सं०] एकदश, आठ घण्टा] दस और एक ।

संज्ञा पुं० दस और एक की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—३१ ।

ग्रंथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुस्तक । किताब ।

धी०—अंधकार । अंधकर्ता । अंधसाहब । अंधसंधि आदि ।

(२) अंधन । गाँठ देना या लगाना । (३) धन ।

अंधकर्ता, अंधकार-संज्ञा पुं० [सं०] पुस्तक बनाने या लिखने वाला । अंध की रचना करनेवाला ।

अंधचुंबक-संज्ञा पुं० [सं०] अंध + चुंबक = धूम्रवेला] जो किसी विषय का पूर्ण विद्वान न हो । जो अंधों का केवल पाठ मात्र कर गया हो, उसके विषय को समझ न हो । अल्पज्ञ । ३०—साधारण योग्यतावाले अंधचुंबकों की उसके सामने मुँह खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी ।—सा प्रज्ञान एक सुज्ञान ।

अंधचुंबन-संज्ञा पुं० [सं०] अंध + चुंबन] पुस्तक का पाठ मात्र । किताब को सरसरी तौर पर पढ़ना ।

अंधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवीजों को इस प्रकार जोड़ना कि उनके बीच में गाँठ पड़ जाय । (२) जोड़ना । (३) बँधना ।

अंधसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंध का विभागा । जैसे, सर्व, परिच्छेद, अप्याय, अंक, पर्व आदि ।

अंधसाहब-संज्ञा पुं० [सं०] अंध + साहब] सिरों की धर्म-पुस्तक जिसमें सप सुपों के उपदेश एकत्रित किए हुए हैं ।

अंधाल-संज्ञा पुं० [सं०] पुनःकालय ।

अंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाँठ । (२) घन (३) मायाजाल ।

(४) अंधिपर्व नाम का वृक्ष । (५) एक प्रकार का रोग जो खून बिगड़ जाने के कारण होता है और जिसमें गोल गाँठों की तरह सूजन हो जाती है । ये गाँठें प्रायः पक जाती हैं और निचलानी पड़ती हैं । (६) आन् । (७) भद्रगोपा । (८) कुटिलता ।

अंधिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरगमूल । (२) गठियन या अंधिपर्व नामक वृक्ष । (३) गुग्गुलु । (४) कीर ।

अंधित-वि० [सं०] अंधन] (१) बँधना हुआ । (२) गाँठ दिया हुआ । जिसमें गाँठ बनी हो । ३०—(क) जैसे कियो सुन्दर प्रभु भवि तैसा भयो तनुकास । अंधित गृह परत सेदि प्रीथा जहाँ धरत बनमास ।—सूर । (ख) मंगलमय देव श्रंग मनोहर अंधित चूतरी पीत पिपुड़ीरी ।—तुलसी ।

अंधिदृष्टी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गान्ध दृष्ट ।

गौणी-वि० स्त्री० [सं०] अग्रप्रधान। साधारण। जो मुख्य न मानी जाय।

संज्ञा स्त्री० अस्त्री प्रकार की लक्षणाओं में से एक जिसमें केवल किसी एक वस्तु का गुण लेकर दूसरे में आरोपित किया जाता है। जैसे, कल्पवृक्ष हैं श्रवणपति जगज्जाह्नव परवन्त। इस पद में कल्पवृक्ष के मुख्य गुण उदारता को श्रवणपति में आरोपित करके उसी के द्वारा उनका जगत में यशस्वी होना प्रकट किया गया है। यहाँ "कल्पवृक्ष" शब्द में गौणी लक्षण है।

गौतम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौतम ऋषि के वंशज। (२) न्याय शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य्य और प्रयोक्त एक ऋषि जो ईसा से प्रायः ६०० वर्ष पहले हुए थे। (३) रामायण, महाभारत और पुराणों आदि के अनुसार एक ऋषि जिन्होंने अपनी स्त्री अहल्या से इंद्र के साथ अनुचित संबंध करने के कारण शपथ देकर पथर की बना दिया था और जिसका उद्धार भगवान रामचंद्र ने किया था। (४) बुद्ध देव का एक नाम। (५) सप्तविं मंडल के ताराओं में से एक। (६) एक पर्वत का नाम जो मासिक के पास है और जहाँ से गोदावरी नदी निकलती है। (७) ऋषियों का एक भेद। (८) भूमिहारों का एक भेद। (९) एक ऋषि जिन्होंने एक स्तुति बनाई है।

गौतमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गौतम ऋषि की स्त्री, अहल्या। (२) कृष्णाचार्य की स्त्री जो प्रसिद्ध तपस्विनी थी। (३) गोदावरी नदी जो गौतम नामक पर्वत से निकलती है। (४) गौतम ऋषि की बनाई हुई स्तुति। (५) दुर्गा का एक नाम।

गौद, गौदा-संज्ञा पुं० दे० "गौद"।

गौदान-संज्ञा पुं० दे० "गौदान"।

गौदुमा-वि० [हिं० गौ + दुम + आ (प्रत्य०)] गाय की पूँछ के आकार का। जो एक ओर अधिक मोटा हो और दूसरी ओर क्रमशः कम होता जाय। उतार चढ़ाव। गावदुम।

गौना-संज्ञा पुं० (१) दे० "गमन"। (२) दे० "गाउन"।

गौनई-संज्ञा स्त्री० [सं० गान + ई (प्रत्य०)] गान। संगीत।

गौनहाई-वि० [हिं० गौना + हाई (प्रत्य०)] जिसका गौना हाल में हुआ हो। जो गौना होने के बाद ससुराल में पहले पहल आई हो। उ०—पूती चतुराई घों कहाँ से पाई रघुनाथ हैं। तो देखि रीक रही गौनहाई तिय को।—रघुनाथ।

गौनहार-संज्ञा स्त्री० [हिं० गौना + हार (प्रत्य०)] वह स्त्री जो दुल्हन के साथ उसके ससुराल जाय।

गौना-संज्ञा पुं० [सं० गमन] विवाह के बाद की एक रसम जिसमें वर अपने ससुराल में जाता और कुछ रीति रसम पूरी कर के वधू को अपने साथ घर ले आता है। द्विरागमन। मुकलावा। उ०—तुलसी-जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी गौतम सिधारे गृह गौना सिवाइ कै।—तुलसी।

गुहा०—गौना देना = वधू को घर के साथ पहने पहन ससुराल भेजना। गौना लाना = घर का थरनी समुराल जाकर वधू को अपने साथ ले आना।

क्रि० प्र०—लेना।—मार्गना।

विशेष—पूरव में "गौने जाना" और "गौने थाना" आदि भी बोलते हैं।

गौमुख-संज्ञा पुं० दे० "गोमुख"।

गौमुखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गो + मुख + ई० (प्रत्य०)] गौ के मुँह के आकार की बनी हुई थैली जिसमें माला रख कर जप करते हैं। विशेष-दे० "गोमुखी"।

गौमेद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न जो गोमूत्र के रंग का होता है।

गौर-वि० [सं०] (१) गौरे धनदेवाला। गौरा। (२) श्वेत। उज्ज्वल। सफ़ेद।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल रंग। (२) पीला रंग। (३) चंद्रमा। (४) धव नाम का पेड़। (५) सोना। (६) याद-वल्क्य के अनुसार एक प्रकार का बहुत छोटा मान जो लौलने के काम आता और प्रायः तीन सरसों के बराबर होता है। (७) फेसल। (८) एक प्रकार का मृग जिसके सूर बीच से फटे नहीं होते। (९) सफ़ेद सरसों। (१०) चैतन्य महा-प्रभु का एक नाम। (११) एक पर्वत जो ब्रह्मांडपुराण के अनुसार कंबलास के उत्तर में है। संज्ञा पुं० दे० "गौड़"।

गौर-संज्ञा पुं० [च०] (१) सोच विचार। चिंतन। (२) खयाल। ध्यान। उ०—सो दीसै सष ठौर व्याप रहो मन माहिं जो। समन करि कै गौर वाही को निज जानिये।—रसनिधि।

गौरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गौराई। गौरापन। (२) सफेदी।

गौरप्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक देव जो कूर्म विभाग के मध्य में है।

गौरव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यदुष्पन। महत्त्व। (२) गुस्ता। भारीपन। (३) सम्मान। आदर। इज्जत। (४) उत्कर्ष। (५) श्रमसुवर्ण।

गौरवा-संज्ञा पुं० [?] चटक पर्ची। चिड़ा।

गौरशाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महुआ।

गौरशालि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शालिपात्र।

गौरसुवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जो चित्ररट के तर स्थानों में अधिकता से होता है। इसके पत्ते छोटे और सुनहले होते हैं और हाथ में लेकर मलने से उसके बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो जाते हैं जिनमें से बहुत अच्छी गंध निकलती है। वैधक में यह शीतल और विदोप, ज्वर तथा थकावट दूर करनेवाला माना गया है।

गौरांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्ट। (२) श्रीकृष्ण । (३) चैतन्य महाप्रभु ।

गौरा-संज्ञा स्त्री० [सं० गौर] (१) गोरे रंग की स्त्री । (२) पार्वती । गिरिजा । (३) हृदयी । (४) एक रागिनी जिसे कुछ लोग श्रीराग की स्त्री मानते हैं ।

गौराद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] अफीम, सखिया, कनेर आदि स्थावर विष ।

गौरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] आगिरस आदि । संज्ञा स्त्री० दे० "गौरी" ।

गौरिया-संज्ञा स्त्री० [?] (१) काले रंग का एक प्रकार का जलपची जिसका स्त्रि मूरा और गंदन सफेद होती है । आदिभेदनुसार इसकी चोंच का रंग बदला करता है । (२) मिट्टी का बना हुआ छोटा हुका । (३) एक प्रकार का मोटा कपड़ा ।

गौरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोरे रंग की स्त्री । (२) पार्वती । गिरिजा ।

विशेष—इस अर्थ में गौरी शब्द के बाद पतिवाची शब्द लगाने से 'गिव' और पुत्रवाची शब्द लगाने से 'गयोरा' या कान्तिकेय अर्थ होता है ।

- (३) आठ वर्ष की कन्या । (४) हृदयी । (५) दाहिहृदयी । (६) तुलसी । (७) गोरोचन । (८) सफेद रंग की गाय । (९) मरीचि । (१०) सफेद दूध । (११) गंगा नदी । (१२) पार्वती । (१३) सोन कदली । (१४) प्रियंयु नाम का वृक्ष । (१५) सुधिया । (१६) बुद्ध की एक शक्ति का नाम । (१७) शरीर की एक नाड़ी । (१८) एक बहुत प्राचीन नदी जो पूर्व काल में भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर थी और जिसका वर्णन वेदों और महाभारत में आया है । (१९) पुत्र से बनी हुई शराव । गौरी ।

गौरीचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] जाल चंदन ।

गौरीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्रु । (२) कान्तिकेय । (३) गयोरा ।

गौरीपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] प्रियंयु नाम का वृक्ष ।

गौरीचंद-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का मंत्र जिसे पढा वेंत भी कहते हैं ।

गौरीललित-संज्ञा पुं० [?] हनुनाक ।

गौरीदाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव । शिव । (२) दिमा-लय पर्यंत की सव से ऊँची चोटी का नाम ।

गौरीसर-संज्ञा पुं० [?] हंसराज नाम की वृद्धी । सैमजपती ।

गौरिया-संज्ञा स्त्री० दे० "गौरिया" ।

गौला-संज्ञा स्त्री० [सं०] गौरी । पार्वती । गिरिजा ।

गोपाला-संज्ञा पुं० दे० "गोपाला" ।

गोष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का समगान ।

गोसम-संज्ञा पुं० [हिं० कोसम] कोसम नाम का पेड़ ।

गौहर-संज्ञा पुं० [फा०] मोती । मुक्ता ।

ग्याधिर-संज्ञा पुं० [दे०] कीकर की जाति का एक पेड़ जिसके पत्तों और लकड़ियों से पपड़िया खर बनाया जाता है ।

ग्याना-संज्ञा पुं० दे० "ज्ञान" ।

ग्यारस-संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्यारह] एकदश तिथि ।

ग्यारह-वि० [सं० एकदश, प्रा० प्यास] दस और एक ।

संज्ञा पुं० दस और एक की गृहक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—११ ।

ग्रंथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुस्तक । किताब ।

श्री०—ग्रंथकार । ग्रंथकर्ता । ग्रंथसाहय । ग्रंथसंधि आदि ।

(२) ग्रंथन । गीत देना या लगाना । (३) पत्र ।

ग्रंथकर्ता, ग्रंथकार-संज्ञा पुं० [सं०] पुस्तक बनाने या लिखने-वाला । ग्रंथ की रचना करनेवाला ।

ग्रंथचुंबक-संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथ + चुंबक = चुम्बक] जो किसी विषय का पूर्ण विद्वान न हो । जो ग्रंथों का केवल पाठ मात्र कर गया हो, उसके विषय का समझ न हो । अल्पज्ञ । उ०—साधुभाष्य योग्यतावाले ग्रंथचुंबकों की उसके सामने सुँह-खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी ।—सा ध्यान एक सुजान ।

ग्रंथचुंबन-संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथ + चुंबन] पुस्तक का पाठ मात्र । किताब को सरसरी तौर पर पढ़ना ।

ग्रंथन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो चीजों को हल प्रकार जोड़ना कि इनके बीच में गाँठ पड़ जाय । (२) जोड़ना । (३) गुँथना ।

ग्रंथसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रंथ का विभाग । जैसे, सर्ग, परिच्येद, अध्याय, श्लोक, पर्व आदि ।

ग्रंथसाहय-संज्ञा पुं० [हिं० ग्रंथ + साहय] सिकलियों की धम्म-पुस्तक जिसमें सब गुरुओं के उपदेश एकत्रित किए हुए हैं ।

ग्रंथालय-संज्ञा पुं० [सं०] पुस्तकालय ।

ग्रंथि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाँठ । (२) ग्रंथन (३) मायाजाल ।

- (४) ग्रंथिपर्यं नाम का वृक्ष । (५) एक प्रकार का रोग जो खून बिगड़ जाने के कारण होता है और जिसमें गोल गाँठों की तरह सुजन हो जाती है । ये गाँठें प्रायः एक जाती हैं और चिरपानी पड़ती हैं । (६) घालू । (७) भ्रमसाध । (८) कुटिलता ।

ग्रंथिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विपारमूल । (२) गठियन या ग्रंथिपर्यं नामक वृक्ष । (३) गुग्गुलु । (४) करीर ।

ग्रंथित-वि० [सं० ग्रंथन] (१) गुँथा हुआ । (२) गाँठ दिया हुआ । जिसमें गाँठ लगी हो । उ०—(क) जैसा किशो मुग्धारे प्रसु भलि तैसा भयो तत्काल । ग्रंथित सृत परत सेहि प्रीया जहाँ धरत धनमाज ।—सूर । (ख) मंगलमय दोह श्रेण मनो-हर ग्रंथित पतनी पीत पिडैरी ।—जुलाली ।

ग्रंथिद्वयां-संज्ञा स्त्री० [सं०] गाबर दूब ।

प्रथिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] चौरक नाम का ग्रंथग्रन्थ ।
 प्रथिपर्या-संज्ञा पुं० [सं०] गठिन का वेद ।
 प्रथिपर्या-संज्ञा धी० [सं०] गाढर दूध ।
 प्रथिफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रंग का वेद । (२) मंगलज का वेद ।
 प्रथिवंधन-संज्ञा पुं० [सं०] विपत्त के समय पर चौर कन्या के कपड़ों के केनें को परम्पर गठि देकर धंधने की क्रिया । गठिवंधन ।
 प्रथिमेट-संज्ञा पुं० [सं०] गिरहकर । गैठकर ।
 प्रथिमूल-संज्ञा पुं० [सं०] सत्रगम, गाढर, भूजी घादि मूल जो गठि के रूप में जमान में धरते होते हैं ।
 प्रथिमूला-संज्ञा धी० [सं०] मात्रा दूध ।
 प्रथिल-वि० [सं०] गाढर । गैठर ।
 संज्ञा पुं० (१) करीक वृक्ष । (२) विरामूल । (३) अदरक । भारी । (४) केशव नाम का कैंटीला वृष जिनकी लकड़ी के प्राचीन काल में यज्ञाय यज्ञने से । इसकी पत्तियाँ पोटी चौर फल बर के बराबर गोज होते हैं जो दूध के काम आते हैं । (५) पौराट्ट का नाम । (६) चालू । (७) चौरक नाम का ग्रंथ-ग्रन्थ ।
 प्रथिला-संज्ञा धी० [सं०] (१) गाढर दूध । (२) मात्रा दूध । (३) भद्रमोषा ।
 प्रथीक-संज्ञा पुं० [सं०] विरामूल ।
 प्रस-संज्ञा पुं० [सं०] प्रस-वृद्धि] कुटिलता । पुल बपट ।
 ३०—सर्गरी मधुरा में है प्रस । ये सवुर ए कथा मजनी जानन सीके प्रस ।—सुर
 प्रसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भद्रप । निगचना । (२) पकड़ । प्रहण । (३) खाने के लिये पकड़ना । सुरी तरह पकड़ना । इस प्रकार चंगुल में कसना कि जिसमें छूटने न पावे । (४) मात्रा । (५) एक अमुर का नाम । (६) प्रहण । (७) दस प्रकार के प्रहणों में से एक जिसमें चंद्र या सूर्यमंडल एक पाद, चन्द्र या त्रिसद प्रस हो । कलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे प्रहण का फल धर्मही रामार्थ का धननाश चौर धर्मही देहों का पीड़ित होना है ।
 प्रसना-वि० न० [सं०] प्रसन । (१) सुरी तरह पकड़ना । इस प्रकार पकड़ना कि छूटने न पावे । ३०—देह आनि रंका मप काह । एक चंद्रमा प्रसी न राहू ।—गुणरती । (२) सतता ।
 प्रसपति-संज्ञा पुं० [सं०] एक मतिपी पंक्ति में पत्थरों पर लोदी हुई मनुष्य-सुर की छाहतिर्था । इस का व्यवहार प्राचीन काल में देवमंदिरों में शोभा के लिये होता था ।
 प्रसित-वि० दे० "प्रस" ।
 प्रस्ता-वि० [सं०] (१) पकड़ा हुआ । (२) पीड़ित । (३) रगाया हुआ ।

प्रस्तास्त-संज्ञा पुं० [सं०] प्रहण खगने पर चंद्रमा या सूर्य का बिना भोग हुए अस्त होना ।
 प्रस्तादय-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा या सूर्य का अस्त भवत्या में उदय होना जब कि उन पर प्रहण लगा हो ।
 प्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ये तारे जिनकी गति, उदय चौर अस्त-काल चादि का पता प्राचीन ज्योतिषियों ने लगा लिया था ।
 विदोष—(क) प्राचीन काल के ज्योतिषियों में इन ग्रहों की संख्या के संबंध में कुछ मतभेद था । भारद्वाज ने केवल सात ग्रह माने हैं, यथा—सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक और शनि । कलित ज्योतिष में इन सात ग्रहों के अतिरिक्त राहु और केतु मानकर दो और ग्रह माने जाते हैं और अनेक मांगलिक अवसरों पर इन नौ ग्रहों का विधिपूर्वक पूजन होता है । एक विद्वान् के मत से ग्रहों की संख्या दस है पर यह कहीं मान्य नहीं है । अधिकांश लोग कलित ज्योतिष के अनुसार ग्रहों की संख्या नौ ही मानते हैं और इर्भाविये "प्रह" शब्द १ की संख्या का बोधक भी है । कलित ज्योतिष में प्रत्येक ग्रह को कुछ विभिन्न देहों, जातियों, जीवों और पशुओं का स्वामी माना है और इनका चण-विभाग किया गया है । उनमें शुक और शुक को मासक, मंगल और श्वि को पत्रि, बुध और चंद्रमा को वैश्य और शनि, राहु तथा केतु को शूद्र कहा गया है । मंगल और सूर्य का रंग लाल, चंद्रमा और शुक का रंग सफेद, शुक और बुध का रंग पीला और शनि, राहु तथा केतु का रंग काला बनावटा गया है । इनके अतिरिक्त कलित ज्योतिष में जो कुंडली बनाई जाती है उनमें प्रत्येक ग्रह की दूसरे ग्रहों पर एक विशेष रूप से "रहि" भी होती है । शुक ग्रह की रहि का फल शुभ और अशुभ ग्रह की रहि का फल अशुभ होता है । यह रहि चार प्रकार की होती है—पूर्व, त्रिसद, चन्द्र और एक पाद । पूर्व रहि का फल पूर्व, त्रिसद का तीन चतुर्था, चन्द्र का आधा और एक पाद का एक चतुर्था होता है । इन रहि के संबंध में कलित ज्योतिष के ग्रंथों में कहा गया है कि प्रत्येक ग्रह अपने स्थान से तीसरे और दूसरे ग्रहों के ग्रहों को एक पाद, पाँचवें और नवें ग्रहों के ग्रहों को चन्द्र, चौथे और आठवें ग्रहों के ग्रहों को त्रिसद और सातवें ग्रह के ग्रहों को पूर्व रहि से देखा है । (ग) "प्रह" शब्द में पति या पतिवाची कोई दूसरा शब्द जोड़ देने से इनका अर्थ "सूर्य" हो जाता है ।
 (२) भाकायामंडल में यह तारा जो अपने हीर जगत् में सूर्य की परिक्रमा करे । एक निश्चित कथा पर किसी सूर्य की परिक्रमा करनेवाला तारा ।
 विदोष—दूसरे हीर जगत् में सूर्य से क्रमानुसार और पर बुध, शुक, बुध, मंगल, बृहस्पति, शनि, सुरेयस और नेपच्यून ये आठ ग्रह या प्रधान ग्रह हैं । इनके अतिरिक्त, मंगल

श्रीर वृहस्पति के मध्य में बहुत से छोटे छोटे ग्रह हैं जिनमें से श्य सप्त ४६० से अधिक ग्रहों का होना प्रमाणित हो चुका है। ये सब ग्रह प्रायः एक ही समतल पर हैं और युरेनस और नेपच्यून के अतिरिक्त शेष सब ग्रह अपनी अपनी कक्षा पर सूर्य की परिक्रमा करते हैं। नेपच्यून और युरेनस का मार्ग कुछ भिन्न है। इन ग्रहों की गति भी अलग अलग है। किसी किसी बड़े ग्रह के साथ उपग्रह भी हैं जो उसी समतल पर अपनी कक्षा में अपने ग्रह की परिक्रमा करते हैं जैसे, हमारी इस पृथिवी के साथ चंद्रमा। इसी प्रकार नेपच्यून के साथ एक, मंगल के साथ दो, युरेनस और वृहस्पति के साथ चार चार और शनि के साथ आठ उपग्रह या चंद्रमा हैं। इनमें से कुछ उपग्रहों का मार्ग और उनकी गति भी साधारण से भिन्न है। प्रत्येक ग्रह सूर्य से कुछ निश्चित अंतर पर है। साधारणतः स्थूल रूप से, सूर्य से ग्रहों का आपेक्षिक अंतर जानने का एक बहुत सरल उपाय यह है— ० ३ ६ १२ २४ ४८ ६६ १२२ इनमें से प्रत्येक संख्या में ४ जोड़ दो तो वही संख्या आपेक्षिक अंतर सूचित करनेवाली होगी— ४ ७ १० १६ २८ २२ १०० १६६ बुध शुक्र पृथ्वी मंगल ० वृहस्पति शनि युरेनस अर्थात् यदि सूर्य और बुध का अंतर ४ मान लिया जाय तो सूर्य से शुक्र का अंतर लगभग ७, पृथिवी का १०, मंगल का १६ और शेष ग्रहों का भी इसी प्रकार होगा। प्रत्येक ग्रह का सूर्य से ठीक अंतर, व्यास और परिक्रमा-काल नीचे लिखे कोष्ठक से विदित होगा।

ग्रह	सूर्य-परिक्रमा-काल (दिन)	सूर्य से अंतर (मील)	व्यास (मील)
बुध	८८	३६००००००	३०००
शुक्र	२२२	६७००००००	७०००
पृथिवी	३६५	६३००००००	८०००
मंगल	६८७	१४१००००००	४०००
वृहस्पति	४३३३	४८२०००००००	८८०००
शनि	१०७२६	८८३०००००००	७२०००
युरेनस	३०६८०	१७७००००००००	३००००
नेपच्यून	६०१२७	२७८२०००००००	३७०००

- (३) ना की संख्या। (४) ग्रहण करना। लेना।
 (५) अनुग्रह। दृष्ट। (६) चंद्रमा या सूर्य का ग्रहण।
 (७) ग्रह पात्र जिससे यज्ञ में देवताओं को सोम रस का हविष्य दिया जाता है। (८) राहु। (९) स्कंद, शकुनी आदि रोग

जो बहुत ही छोटे धातकों को हो जाते हैं और जिन्हें लोग भूत-प्रेत आदि का उपद्रव समझते हैं। शाल-ग्रह।
 [वि०] बुरी तरह पकड़ने या तंग करनेवाला। दिक् करनेवाला।
 ग्रहक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राहक। ग्रहण करनेवाला।
 ग्रहकस्रोत-संज्ञा पुं० [सं०] राहु नामक ग्रह।
 ग्रहकुपांड-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार की देवयोनि।
 ग्रहगोचर-संज्ञा पुं० वे० 'गोचर'।
 ग्रहचिंतक-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी।
 ग्रहण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य, चंद्र या किसी दूसरे आकाशचारी पिंड की ज्योति का आवरण जो दृष्ट और उस पिंड के मध्य में किसी दूसरे आकाशचारी पिंड के आ जाने के कारण उसकी छाया पड़ने से अथवा उस पिंड और उसे ज्योति पहुँचानेवाले पिंड के मध्य में आ पड़नेवाले किसी अन्य पिंड की छाया पड़ने से होता है। जैसे, चंद्र और (उसे ज्योति पहुँचानेवाले) सूर्य के मध्य में पृथिवी के आ जाने के कारण चंद्रग्रहण और सूर्य तथा पृथिवी के मध्य में चंद्रमा के आ जाने के कारण सूर्यग्रहण का होना।
 विरोध—भारतीयानुसार सूर्य या चंद्र ग्रहण का मुख्य कारण राहु नामक राक्षस का उक्त पिंडों को प्रसने या खाने के लिये दौड़ना है। (देखो "राहु") इसी लिये इस देश में ग्रहण लगने के समय, सूर्य या चंद्रमा को इस विपत्ति से मुक्त कराने के अभिप्राय से लोग दान, श्रद्धा, ईश्वर-भार्यना तथा अन्य अनेक प्रकार के उपाय करते हैं। ग्रहण लगने और छूटने के समय खान करने की प्रथा भी यहाँ है। पर प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों ने ग्रहण का मुख्य कारण उक्त छाया को ही माना है और किसी न किसी रूप में आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों के सिद्धांत के समान ही उसके कारण का निरूपण किया है। सूर्यग्रहण केवल पृथ्वीमा की रात को लगता है। सूर्य और चंद्र ग्रहण एक वर्ष में कम से कम दो बार और अधिक से अधिक सात बार लगते हैं। पर साधारणतः एक वर्ष में तीन या चार ही ग्रहण लगते हैं और सात ग्रहण बहुत ही कम होते हैं। प्रायः एक समय में ग्रहण पृथिवी के किसी विशिष्ट भाग में ही दिखाई पड़ता है, समस्त भूमंडल पर नहीं। ग्रहण में कभी तो सूर्य या चंद्र आदि का कुछ अंश ही आवृत होता है और कभी पूरा मंडल। जिस ग्रहण में पूरा मंडल आवृत हो जाय उसे सर्वप्रसव या खपास कहते हैं। फलित ज्योतिष में भिन्न भिन्न अवस्थाओं में ग्रहण लगने के भिन्न भिन्न फल आदि भी माने जाते हैं। अथव्या या स्थिति-भेद से ग्रहण दस प्रकार के माने गए हैं—सत्य, अपसव्य, दोह, प्रसन, निरोध, भ्रमसई, आरोह, आगत्य,

मध्यम और तमोन्मत्त । इसी प्रकार ग्रहण का मोक्ष भी दस प्रकार का माना गया है—ह्युभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), कुण्डिभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), पायुभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), संच्छन्द, जरायु, मन्व्यविदारण्य और श्रुतिविदारण्य । हिंदू ग्रहण लगने से कुछ पहर पूर्व और कुछ पहर उपरान्त उसकी छाया मानते हैं और छाया-काल में श्रम जल ग्रहण नहीं करते । सूर्य और चंद्रमा के प्रतिरिक्त दूसरे ग्रहों का भी ग्रहण लगता है पर उसका हस्त पृथिवी के निवासियों से कोई संबंध नहीं है ।

क्रि० प्र०—लगना ।—वृटना ।

(२) एकड़ने, खेने या हस्तगत करने की क्रिया ।

(३) स्वीकार । मंजूरी । (४) अर्थ । सापर्य्य । मतलब ।

ग्रहण, ग्रहणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुश्रुत के अनुसार उदर में पक्षराय और ग्रामाराय के बीच की एक नाड़ी जो अग्नि या पित्त का प्रधान आधार है । (२) इस नाड़ी के दूयित होने से उप्लक्ष एक प्रकार का रोग जिसमें खाया हुआ पदार्थ पचता नहीं और उसे का लोई दस्त की राह से निकल जाता है ।

विशेष—दे० “संग्रहणी” ।

श्री०—ग्रहणीहर = लौग ।

ग्रहणीय—वि० [सं०] ग्रहण करने योग्य । जो ग्रहण किया जा सके ।

ग्रहदशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोचर ग्रहों की स्थिति ।

(२) ग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी मनुष्य की भली वा बुरी अवस्था । (३) अधभाग्य । कमबखली ।

क्रि० प्र०—घाना ।—घाना ।—घीतना ।

ग्रहदाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म समय के ग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी जातक की छाया । उग्र ।

ग्रहदृष्टि—संज्ञा स्त्री० दे० “ग्रह” (१) का विशेष (क)” ।

ग्रहदुष्म—संज्ञा पुं० [सं०] काफ़रा संगी ।

ग्रहनाश—संज्ञा पुं० [सं०] सतिवत नाम का पेड़ ।

ग्रहनेम—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहनेमि श्राकार । (हिं०)

ग्रहनेमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा के मार्ग का वह भाग जो मूल और मृगशिरा नक्षत्रों के बीच में पड़ता है । (२) चंद्रमा । (३) श्राकार । (हिं०)

ग्रहपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) शनि । (३) शक्र का पेड़ ।

ग्रहपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

ग्रहमीतिजित्—संज्ञा पुं० [सं०] चीड़ नाम का गंधद्रव्य ।

ग्रहमैत्र—संज्ञा पुं० [सं०] घर और कन्या के ग्रहों के स्वामियों की मित्रता या अनुकूलता जिसका विचार विवाह के समय होता है ।

ग्रहमैत्री—संज्ञा स्त्री० दे० “ग्रहमैत्र” ।

ग्रहयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष और पुराणों के अनुसार ग्रहों की उग्रता या क्रौर संबंधी दोषों को दूर करने के लिये एक प्रकार का पूजन या यज्ञ ।

ग्रहयुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राशि के एकही श्रेय पर दो ग्रहों का एकत्र होना ।

ग्रहयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यसिंहात के अनुसार बुध, बृहस्पति, शुक, शनि या मंगल में से किसी एक ग्रह का चंद्रमा के साथ, अथवा एक ग्रहों में से किसी दो ग्रहों का एक साथ एक राशि के एक श्रेय पर इस प्रकार एकत्र होना कि वह ग्रह पर ग्रहण लगा हुआ जान पड़े । फलित ज्योतिष के अनुसार इसका फल भयंकर होता है ।

ग्रहयुद्धम—संज्ञा पुं० [सं०] यह नक्षत्र जिम पर कोई दो ग्रह एक साथ एकत्र हों ।

ग्रहयोग—संज्ञा पुं० दे० “ग्रहयुति” ।

ग्रहराज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) चंद्रमा । (३) बृहस्पति ।

ग्रहविप्र—संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल और दक्षिण में होनेवाले एक प्रकार के माहाण जो कुछ विशिष्ट क्रियाओं से ग्रहों के शुभ-शुभ फल पलाते हैं ।

ग्रहवेध—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह की स्थिति श्रादि का जानना ।

ग्रहश्टांगटक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार ग्रहों का एक प्रकार का योग जिसके अवस्थानुसार शुभ और अशुभ फल होते हैं ।

ग्रहसमागम—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के साथ मंगल, बुध श्रादि ग्रहों का योग ।

ग्रहस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] किसी राग में वह स्वर जिससे वह राग शरंभ होता है । (संगीत)

ग्रहाचार्य—संज्ञा पुं० दे० “ग्रहविम” ।

ग्रहाधार—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रुव नक्षत्र । भ्रूज ।

ग्रहाधर्मन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राहु । (२) मरुतुद ।

ग्रहाध्रय—संज्ञा पुं० दे० “ग्रहाधार” ।

ग्रहाद्वय—संज्ञा पुं० [सं०] भूतानुश नामक वृक्ष ।

ग्रहीत—वि० दे० “ग्रहीत” ।

ग्रहीता—वि० पुं० [सं०] ग्रहण करनेवाला । ग्रहण करनेवाला । उ०—
दाता और ग्रहीता दोऊ । दोहनु सम दिगते नहिं फेऊ ।
—सुराज ।

ग्रहीतत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण करने के योग्य । ग्रहण ।

ग्रहोपराग—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों का ग्रहण ।

ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञपात्र ।

ग्रहील—वि० [सं०] श्रेष्ठ । जैसे कद का । बहुत धन या ऊँचा ।
जैसे, ग्रहील हाथी, ग्रहील जवान ।

ग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटी बस्ती । गाँव । (२) मत्स्यों के

रहने का स्थान। बस्ती। श्रावणी। जनपद। (३) समूह।
 डेर। ३०—मिगरे राजसमाज के कहे गेय गुणग्राम। देव

सुभाव प्रभाव धर कुल पत्र विक्रम नाम।—केशव।
 विश्वप—हम अर्थ में यह शब्द केवल योगिक शब्दों के अर्थ
 में आता है। जैसे, गुणग्राम।

(५) शिव। (६) क्रम से सात स्वरों का समूह। सप्तक।
 (संगीत)

विशेष—संगीत में सुभीते के लिये पढ़न, मध्यम, और पंचम
 और किसी किसी के मत से पढ़न, मध्यम और गांधार
 नामक तीन ग्राम निश्चित कर लिए गए हैं जिन्हें क्रमशः
 नंदावत, सुभद्र और जीमूत भी कहते हैं और निम्नके देवता
 क्रम से ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। प्रत्येक ग्राम में सात सात
 मूर्च्छनाएँ होती हैं। सा (पढ़न) से श्रारंभ करके (सा रे
 ग म प ध नि) जो सात स्वर हैं उनके समूह को पढ़न
 ग्राम, म (मध्यम) से श्रारंभ करके (म प ध नि सा रे ग)
 जो सात स्वर हैं उनके समूह को मध्यम ग्राम और हृषी
 प्रकार गा (गांधार) या प (पंचम) से श्रारंभ करके जो
 स्वर हैं उनके समूह को गांधार अथवा पचम (जैसी अवस्था
 हो) ग्राम मानते हैं। इनमें से पहले दो ग्रामों का व्यवहार
 दो हृषी लोक में मनुष्यों द्वारा होता है पर तीसरे ग्राम का
 व्यवहार स्वर्ग लोक में नारद करते हैं। वास्तव में तीसरा
 ग्राम होता भी बहुत ऊँचा है और उसके स्वर केवल मितार,
 सारंगी, हारमोनियम आदि वाजों में ही निकल सकते हैं, मनुष्यों
 के गले से नहीं।

श्रीमद्वेद-संग्रह—संग्रह पुं० [सं०] पालन, सुरगा।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] श्रद्धा।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] एक प्रकार का ग्राम।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] (१) गाँव का मालिक। (२) प्रधान।

अनुधा। (३) विष्णु। (४) पशु। (५) नाक। हजाम।

संग्रह धं० (१) वेश्या। (२) नील का पेड़।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] एक प्रकार का धाम जो एक दिन में
 होता है।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] (१) किसी एक गाँव में पूजा जाने-
 वाला देवता। (२) गाँव की रक्षा करनेवाला देवता।

विशेष—भारत के प्रायः प्रत्येक गाँव में एक न एक ग्रामदेवता
 होता है।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] (१) गाँव का मालिक या स्वामी।

(२) गाँव की रक्षा करनेवाला सैनिक या सेना।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] वह जो गाँव के सब लोगों की सेवा
 करता हो। मनु के अनुसार ऐसे मनुष्य को यज्ञ और धार्मिक
 आदि कर्मों में सम्मिलित कर देना चाहिए।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] बहुत से लोगों की सेवा करनेवाला

मनुष्य। ऐसा मनुष्य यदि ब्राह्मण भी हो तो अमात्य हो
 जाता है।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] यात्रार। हाट।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] कुत्ता।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो ऊँच नीच सभी
 जाति के लोगों का पुरोहित हो। शतात्पर के अनुसार ऐसा
 ब्राह्मण अपने चर्मों और वर्ण से पतित होता है और महा-
 भारत के अनुसार ऐसे ब्राह्मण को दान देने का कोई फल
 नहीं होता।

श्रीमद्वेद-संग्रह धं० [सं०] (१) वेरया। कसयी। रंटी।

(२) पालकी का साग।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] कुत्ता। ३०—चित्ररुग अमर गवै गय
 चिलोकि वन, डील चटकीले ग्रामसिंह चले पाय कैं।—
 रघुनाथ।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] शालेय। मृगया। शिकार।

श्रीमद्वेद-संग्रह [सं०] गाँव संरक्षी। गाँव का।

संग्रह पुं० वह मनुष्य जिसे गाँववाले अपनी रक्षा के लिये
 अपना सुविधा चुनें।

श्रीमद्वेद-संग्रह [सं०] देहाती। गँवार।

संग्रह पुं० (१) सुरगा। (२) कौवा। (३) सूअर। (४) कुत्ता।

श्रीमद्वेद-संग्रह धं० [सं०] (१) नील का पेड़। (२) पालकी
 का साग।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] एक प्रकार का वाजा जिसमें गीत
 भारि और श्रद्धा अनुसार समय समय पर धुने जा सकते हैं।

विशेष—इस वाजे में कुछ विशिष्ट ढ़णों से बने एक प्रकार के
 गोल तबे पर, जिसे चूड़ी कहते हैं, सूई लगे हुए एक यंत्र की
 सहायता से सप्तप्रकार के बोलें हुए वाक्य या गायत्रे हुए गीत आदि
 एक विशेष रूप से संकित हो जाते हैं और उन संकित वाक्यों
 या गीतों को जब हल्का हो, विद्युत् लक्ष्य करनेवाले एक
 दूसरे यंत्र की सहायता से सुन सकते हैं।

श्रीमद्वेद-संग्रह [सं०] (१) गाँव में संरक्षक रहनेवाला। ग्रामीण।

(२) वेबहूक। मृद। (३) प्राकृत। असली।

संग्रह पुं० (१) एक प्रकार का रतिबंध। (२) काव्य का एक
 दोष। वह काव्य जिसमें गँवार शब्दों की अधिकता हो
 अथवा जिसमें गँवार विषयों का वर्णन हो, इस दोष से
 दूषित समझा जाता है। (३) शरहील शब्द या वाक्य। (४)
 मैथुन। खी-प्रसंग। (५) मिथुन राशि। (६) राधा, पोद्दार,
 लखर, बैज आदि पशु जो पाके जाते और गाँवों में रहते हैं।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] कुम्भ।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] दे० "ग्रामदेवता"।

श्रीमद्वेद-संग्रह पुं० [सं०] मैथुन। खी-प्रसंग।

श्रीमद्वेद-संग्रह धं० [सं०] (१) नील का पेड़। (२) हलसी।

प्राय-संज्ञा पुं० [सं० प्रायन] (१) पत्थर । (२) थोला । विनोरी ।
(३) पर्वत । पहाड़ ।

प्रायस्तुतु-संज्ञा पुं० [सं०] सोलह ऋषिजनों में से तेरहवां ऋषियज्ञ
जिसे ऋच्छायाक भी कहते हैं ।

प्रावहस्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में एक ऋषिक जिसके हाथ में
अभिषेक का पत्थर रहता है ।

प्रावापय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रवर का नाम ।

प्रास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उतना भोजन जितना एक पार सुँह
में डाला जाय । गरसा । कौर । निवाला । (२) परकूने की
क्रिया । पकड़ । गिरफ्त । (३) सूर्य या चंद्रमा में ग्रहण
लगना । जैसे, लगनास, सर्वप्रास ।

प्रासक-वि० [सं०] (१) पकड़नेवाला । (२) निगलनेवाला ।
(३) छिपाने वा दबानेवाला ।

प्रासकट-संज्ञा पुं० [सं०] घास काटनेवाला । घसियारा ।

प्रासना-क्रि० सं० [सं० प्रास] (१) पकड़ना । धरना । निगलना ।
उ०—प्रासत चित्त गयंद को विरह प्राह जय प्राप । हरि
प्यारे मन कमल लै नही देत बुझाय ।—रसनिधि । (२) कट
देना । सताना ।

प्राह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मगर । घड़ियाल । (२) ग्रहण । उग्र-
राग । (३) पकड़ना । लेना । ग्रहण करना । (४) ज्ञान ।
(५) ग्रहण करनेवाला । ग्राहक ।

प्राहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्रहण करनेवाला । (२) मोल लेने-
वाला । खरीदनेवाला । पसीददार । (३) लेने वा पाने की
इच्छा रखनेवाला । चाहनेवाला । (४) वह श्रेयपथ जिसमें
सेवन से पतला दस्त श्राना बंद हो जाय और धैरा पैखाना
होने लगे । (५) यात्र पथी । (६) एक प्रकार का साग जिसे
चौपतिया कहते हैं । (७) शरीर में प्रविष्ट विष को चिकित्सा
द्वारा दूर करनेवाला वैद्य । विष घंघ ।

प्राहिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिपली का तीसरा पल ।

प्राही-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो ग्रहण करे । स्वीकार करने-
वाला । जैसे, दानप्राही । (२) मल को रोकनेवाला पदार्थ ।
कब्ज करनेवाली चीज़ । (३) कैय । फरिष्य ।

प्राहा-वि० [सं०] (१) लेने योग्य । (२) स्वीकार करने योग्य ।
मानने लायक । (३) जानने योग्य ।

प्राक-वि० [सं०] यूनान देश का । यूनान देश संबंधी ।

संज्ञा स्त्री० प्रास या यूनान देश की भाषा ।

संज्ञा पुं० प्रास का यूनान देश का निवासी ।

प्राखमर्ष-संज्ञा स्त्री० दे० "प्रीम" ।

प्राचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रि और धड़ को जोड़नेवाला श्रंग ।
गर्दन ।

विशेष—समस्त होने पर इस शब्द का रूप "प्रीय" हो जाता है ।
जैसे, हयप्रीय, सुप्रीय ।

प्रीची-संज्ञा पुं० [सं० प्रीचि] (१) वह जिसकी गर्दन खंकी हो ।
(२) जैट ।

प्रीपम-संज्ञा स्त्री० दे० "प्रीम" ।

प्रीपम-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गरमी की श्रुत ।

विशेष—कुछ लोग पैसाख और जेट और कुछ लोग जेट और
घापाड़ मास को प्रीपम श्रुत मानते हैं । संक्रांति के हिसाब से
वृष और मिथुन की संक्रांति भर प्रीपम श्रुत मानी जाती है ।

प्रीया-उप्यक । निदाय । तप । धम्म । तापन धादि ।

(२) जल्प । गरम ।

प्रीपममथा, प्रीमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नेवारी का फूल ।

प्रीस-संज्ञा पुं० [सं०] यूनान नामक देश जो योरप के दक्षिण
में है ।

प्रीप-संज्ञा पुं० [सं०] कुंड । समूह । गरोह ।

प्रीट प्राडमर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छापे का अक्षर जिसका
आकार और प्रकार पैसा होता है—“प्रीटप्राडमर” ।

प्रीट प्रिटन-संज्ञा पुं० [सं०] इंग्लैंड और स्कटलैंड देश ।

प्रीन-संज्ञा पुं० [सं०] एक शंगरेजी तौल जो प्रायः एक जव के
परावर होती है ।

प्रीनाइट-संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह का शाम्येय पत्थर जो बहुत
कड़ा होता है । यह हलके भूरे अथवा पीले रंग का और कड़े
प्रकार का होता है । कोई कोई प्रीनाइट संगमरमर की भांति
सफ़ेद भी होता है । इसे काटने में बहुत अधिक परबे पड़ता
है और साधारण हमारतों में बहुत कम इसका व्यवहार होता
है । पुल की कोठियाँ बनाने अथवा ऐसे स्थानों में जहाँ बहुत
अधिक मजबूती की आवश्यकता हो इसका उपयोग किया
जाता है । गरमी पाकर यह और परबों की अपेक्षा जल्दी
घटक जाता है । इस पर पालिश बहुत अच्छी होती है, पर
अधिक कड़े और खुरदरे होने के कारण न तो इसकी मूर्तियाँ
बन सकती हैं और न इस पर सुनई का महीन काम हो
सकता है । इसमें अयस्क का भी बहुत कुछ अंश मिला रहता
है । इसे संगलारा कहते हैं ।

प्रीह-संज्ञा पुं० दे० "गोह" वा "गृह" ।

प्रीवेयक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गले में पहनने का गहना । जैसे,
हार, माला, हैकल, हमेल धादि । (२) हाथी की हैकल ।
(३) जैनियों के एक प्रकार के देवता जो लोकरूप की गर्दन
पर स्थित माने गए हैं । इन की संख्या नौ है ।

प्रीजुपट-संज्ञा पुं० [सं०] कोई अराधि परीचा पास किया हुआ
विद्वान् ।

प्रीम-संज्ञा पुं० [सं०] एक शंगरेजी तौल जो १२ प्रेन से कुछ
अधिक होती है ।

ग्लान-वि० [सं०] (१) ज्वर धादि रोगों से पीड़ित । बीमार ।
रोगी । (२) घका हुआ । (३) कमजोर ।

संज्ञा स्त्री० दीनता ।

श्लानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० श्लेय] (१) शारीरिक वा मानसिक शिथिलता । श्रुत्वाह । खेद । अश्रमता । (२) मन की एक वृत्ति जिसमें किसी अपने कार्य की बुराई या दोष श्रादि को देख कर श्रुत्वाह, अदृष्टि और श्लिखता उत्पन्न होती है । (३) साहित्य में यौगन्म्य रस का एक स्थायी भाव । साहित्यदर्पण के अनुसार यह स्वभिक्षारी भाव के श्रेतर्गत है । रति, परिभ्रम, मनस्त्राप और भूल व्यास श्रादि से उत्पन्न दुर्बलता ही श्लानि है । इसमें शरीर कांपने लगता है, शक्ति घट जाती है और किसी कार्य के करने का असाह नर्हो होता ।

श्रवोद्धा—संज्ञा पुं० [सं० श्रवण] (१) वेदा । वृत्त । (२) किसी मकान के चारों ओर का बाड़ा । (३) चहार दीवारी के अंदर पिरा हुआ स्थान ।

श्रवार—संज्ञा स्त्री० [सं० शोरणा] एक वाणिक पौधा जिसकी फलियों की तरकारी और बीजों की दाल होती है । इसकी कई जातियाँ होती हैं । इसकी पत्तियों की गन्ध बहुत अच्छी होती है और उन्हें चीपाए भी बहुत चाब से खाते हैं । कहीं कहीं इसे अदरक के पौधों पर छाया करने के लिये भी लगाते हैं । यह मध्य के भारतमें से बोई जाती है और जाड़े के मध्य में सँवार हो जाती है । इसमें पीले रंग के एक प्रकार के लंबे फूल भी लगते हैं । वैद्यक में इसकी ज्ञाती को बादी, मधुर, भारी, दस्तावर, पित्तनाशक, दीपक और कफघ्नकर माना है और पत्तों को श्लेष्मी दूर करनेवाला और पित्तनाशक कहा है । कौरी । सुरभी ।

श्रवारनट, **श्रवारनेट**—संज्ञा स्त्री० [सं० शारनेट] एक प्रकार का बड़िया रंगीन रेशमी कपड़ा ।

श्रवारपाठा—संज्ञा पुं० [सं० श्रुमरी + पाठा] धीकृष्णर ।

श्रवारी, **श्रवारिन**—संज्ञा स्त्री० दे० "श्रवार" ।

श्रवारी—संज्ञा स्त्री० दे० "श्रवार" । उ०—केनी फूल निमोना छिँडसा रूप रत्नाल श्रवारीकी ।—रघुनाथ ।

इसके अर्थक चरण में २ अक्षर होते हैं, जिनमें से पहला गुण और दूसरा लघु होता है । उ०—श्रवाल । धार । कृष्ण । दार ।

श्रवाल ककड़ी, **श्रवाल ककरी**—संज्ञा स्त्री० [हिं० श्रवाल + ककड़ी] जंगली चिचड़ा जिसके बीज, जड़ और पत्तियाँ श्रादि औषधि के काम में आती हैं । इसमें छोटे छोटे फल भी लगते हैं जो पकने पर गहरे लाल रंग के हो जाते हैं ।

श्रवाल दाडिम—संज्ञा पुं० [हिं० श्रवाल + दाडिम] मालकंगनी की जाति का एक छोटा पेड़ या बुध, जो अफ़ग़ानिस्तान, पंजाब और उत्तर भारत में चार हजार फुट की ऊँचाई तक होता है ।

श्रवाल, **श्रवाला**—संज्ञा पुं० [सं० श्रवा + पाल, प्रा० गोवाक] (१) शहीर । (२) एक छंद का नाम जिसे सार और शानु भी कहते हैं । इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी और लाल या भूरे रंग की होती हैं । इसकी लकड़ी मुलायम होती है और उस पर (छापेखाने में) छापने के लिये चित्र श्रादि खोदे जाते हैं ।

श्रवालिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० श्रवाल] (१) श्रवाला की स्त्री । श्रवाल जाति की स्त्री । (२) श्रवार । सुरभी । कौरी । संज्ञा स्त्री० [सं० गोपालिका] तीन चार अंगुल लंबा एक बरसाती कीड़ा जिसे गिंजाई या चिनाँरी भी कहते हैं ।

श्रवैठना—संज्ञा पुं० [सं० श्रवैठ, हिं० श्रुमेठना] मरोहना । पेंठना । घुमाना या देढ़ना करना । उ०—सौँदे हू चाहयौ न तै केनी चाँदे सौँह । पड़ो क्योँ बैठी किये पेंठी श्रवैठी भौँह ।—विहारी ।

श्रवैठा—संज्ञा पुं० दे० "गोहूठा" ।

श्रवैठ्याँ—संज्ञा पुं० [हिं० श्रव + इँडा] गाँव के पास पास की मृत्ति । उ०—(क) घर पर ते पकवान चलाये । निकनि गाँव के श्रवैठे चाये ।—सूर । (ख) यदपि तेत रौहाल बर लागी न पबकी चार । तज श्रवैठ्याँ घर दे । अये पेंठो कोस हजार ।—विहारी ।

श्रवैठ्यो—संज्ञा पुं० [हिं० श्रवैठ] निकट । पास । करीब । **श्रवैठ्याँ**—संज्ञा स्त्री० दे० "गोहूठा" ।

—०—

घ

घ—हिंदी वर्णमाला के व्यंजनों में से कर्णों का चौथा व्यंजन जिसका व्याकरण सिद्धामूल या कंड से होता है । यह स्पर्श वर्ण है । इसमें घोष, नाद, सेवार और महाप्राण प्रकृत होने हैं ।

घँगोलाई—संज्ञा पुं० [देग०] कुसुद ।

घँघरा—संज्ञा पुं० "घघरा" ।

घँघराघँघरा—संज्ञा पुं० [हिं० घँघरा + घँघर] अष्टाक्षर । लुगलुग के विचार का अभाव ।

घँघरी—संज्ञा स्त्री० दे० "घघरी" ।

घँघराना—संज्ञा पुं० दे० "घँघोलना" ।

घँघोलना—संज्ञा पुं० [हिं० घन + घँघोलना] (१) हिला कर घोलना । पानी को हिला कर इसमें कुछ मिलावना ।

संघो—संज्ञा पुं० देना ।

(२) पानी को हिला कर मिला करना ।

संघो—संज्ञा पुं०—डालना ।

घंठ—संज्ञा पुं० [सं० घट] (१) घड़ा । (२) घटक की क्रिया में यह जलपात्र को पीपल में बाँधा जाता है ।

संज्ञा पुं० दे० "घंटा" ।

घंटा-संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० अ० घंटा] (१) घातु का एक यात्रा जो बचल ध्वनि उत्पन्न करने के लिये होता है, राग ध्वनि के लिये नहीं। यह दो प्रकार का होता है—एक तो बाँधे बरतन के आकार का होता है जिसमें एक लॉन्ग लटकता रहता है और जो लॉन्ग के हिलने से बजता है; दूसरा जिसे घड़ियाल कहते हैं। यह घाली की तरह गोल गोल होता है और मुँगरी से ठेक कर बजाया जाता है।

क्रि० प्र०—बजाना ।

मुहा०—घंटे मोरकल से उठाना = अरुत वृद्ध के राव का जाने गावे के साथ रमरान पर ले जाना ।

(२) वह घड़ियाल जो समय की सूचना देने के लिये बजाया जाता है। (३) घंटा बजने का शब्द। घंटे की ध्वनि ।

उ०—घंटा सुनते ही सब लोग चल पड़े ।

क्रि० प्र०—होना ।

(४) दिन रात का चौबीसवाँ भाग। साठ मिनट या दार्डे घड़ी का समय। (५) लिंगे द्विय। (वादाक) (६) ठेंगा। (७) ठेंगा नहीं। जैसे—अब तुम्हें घंटा मिलेगा ।

मुहा०—घंटा दिखाना = किसी भांगने या चाहनेवाले को कोई वस्तु न देना। किसी मांगी या चाही हुई वस्तु का अभाव बताना। उ०—रुनया मांगने जायोगे तो वह घंटा दिखा देगा। घंटा हिलाना = व्यर्थ का काम करना। मरुत मारना। सिर पटकना। ह्राष मज्जना। उ०—तुम समय पर तो यहाँ पहुँचे नहीं अब घंटा हिलाओ ।

घंटाकरन-संज्ञा पुं० [सं० घंटाकर्ण] एक घास वा पौधा जिसके पत्ते घीप वा अरुई की तरह के होते हैं ।

घंटाकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक उपासक का नाम जो कान में हसलिये घंटा बाँधे रहता था कि जब कहीं राम या विष्णु का नाम लिया जाय तब वह अपना सिर हिला दे और घंटे के शब्द के कारण नाम न सुने ।

घंटाघर-संज्ञा पुं० [हिं० घंटा + घर] वह ऊँचा भीरहर जिस पर एक ऐसी बड़ी धर्मघड़ी लगी हो जो चारों ओर से दूर तक दिखाई देती हो और जिसका घंटा दूर तक सुनाई देता हो ।

घंटाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत छोटा घंटा। (२) घुँघरू ।

घा०—घुट्टघंटिका ।

संज्ञा स्त्री [सं० घंटिका] गरिया। छोटे छोटे लंबे घड़े जो रहँट में लगे रहते हैं। उ०—अवण कूप की रहँट घंटिका राजत सुभग समाज ।—सूर ।

घंटियार-संज्ञा पुं० [हिं० घंठी] पशुघों के गले का एक रोग जिसमें उनके गले में काँडे से पड़ जाते हैं और वे चारा नहीं निगल सकते ।

घंटी-संज्ञा स्त्री० [सं० घंटिका] पीतल वा फूल की छोटी सी लोठिया ।

संज्ञा स्त्री० [सं० घंटी] (१) बहुत छोटा घंटा जो बाँधे बरतन के आकार का होता है और जिसके भीतर लॉन्ग बाँधा रहता है। घंटी कई कामों के लिये बनाई जाती है। लॉन्ग पूजा के समय घंटी बजते हैं। अब नौकरों को सूचाने तथा लोगों को सावधान करने के लिये भी घंटी बनाई जाती है ।

(२) घंटी बजने का शब्द ।

क्रि० प्र०—होना ।

(३) घुँघरू। चौरासी। (४) गले की नाल का वह भाग जो अधिक उमड़ा रहता है। गले की हड्डी की वह धनिया जो अधिक निकली रहती है। (५) गले के भीतर मांस की वह छोटी पिंड़ी जो जीभ की जड़ के पास लटकती रहती है। कौधा ।

मुहा०—घंटी उठाना या बँटाना = गले की घंटी की सूजन को दूर कर मिटाना ।

घंटील-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक घास जो चारे के काम में आती है और ज़मीन पर दूर तक फैलती है। गधे इसे बहुत खाते हैं। यह पंजाब के मुक्तसरगढ़, भंग शादि स्थानों में बहुत होती है ।

घर-संज्ञा स्त्री० [सं० गभीर] (१) गभीर भँवर। पानी का चकर। उ०—आपे सदा सुधारि गोसुद्धं जन ते विगिरि गई है । भके बचन पैरत सनेह सरि परे माने घोर घई है ।—तुलसी । (२) धूनी। टंक । (३) वह दूर जो जलाहरी के दूर में १३ श्रंगल गहरी और इतनी ही चौड़ी और गज भर लंबी खुदी होती है ।

वि० [सं० गभीर] बहुत गहरा। अथाह। जिसकी खाद न लग सके। अत्यंत गभीर। उ०—प्रति प्रतीत रीति शोभा सरि छाते जहँ तहँ घई ।—तुलसी ।

घउरी-संज्ञा स्त्री० दे० "घवरी" ।

घघरवेल्-संज्ञा स्त्री० [हिं० घघरवा + वेल्] बँदाल ।

घघरा-संज्ञा पुं० [हिं० घन + घरा] [स्त्री० घघरी] रियो का एक सुनदार पहनावा जो कट से लेकर पैर तक का शरीर ढांकने के लिये होता है। लहंगा ।

घघरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० घघरा] छोटा लहंगा ।

घघाघघ-संज्ञा पुं० [अनु०] नरम चीज़ में किसी धारदार या सुकीली वस्तु के चुभने या पँसने का शब्द ।

घट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घड़ा। जलपात्र। कलसा। (२) पिंड। शरीर। उ०—या घट के सा दूक के दोनै नदी बहाय । नेह अरेहू पै निल्हँ दौरि खलाई जाय ।—रसनिधि । (३) मन। हृदय। उ०—अंतपानी घटघट धामी ।

मुहा०—घट में बसना वा बँटना = (१) हृदय में रचापित होना । मन में बसना। ध्यान पर चढ़ा रहना। उ०—जिसके घट में राम बसते हैं वही कुछ देता है। (२) किसी बात का मन में बँटना । हृदयगत होना ।

(४) कुमराणि ।

वि० [हि० घटना] घटा हुआ । कम । थोड़ा । छोटा ।
नयना । ३०—“घट यद् इक्ष्म वनाद् कै म्भित्ता करी तगरी ।”
रसनिधि ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'घट्ट' के साथ ही अधिकतर होता है । अकेले इसका क्रियावत् प्रयोग 'घट्टकर' ही होता है, जैसे, वह कपड़ा इससे कुछ घट्टकर है ।

घटकंचुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक रीति । इसमें अंगीचक्र में सम्मिलित खियों की कंचुकियाँ लेकर एक घड़े में भर दी जाती हैं । फिर एक एक पुरुष यारी यारी से एक एक कंचुकी निकालता है । जिस पुरुष के हाथ में जिस की कंचुकी (चोली) आती है उसी के साथ वह संभोग कर सकता है ।

घटक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मध्यम्य । बीच में पड़नेवाला । (२) बोरिया । विवाह संबंध बना देनेवाला । (३) दवाला । (४) काम पूर्ण करनेवाला । चतुर व्यक्ति । (५) संस्पर्शयत्न करनेवाला । चारण्य । (६) धड़ा । (७) दो पक्षों में बातचीत करनेवाला । मध्यस्थ ।

घटककौट—संज्ञा पुं० [सं०] (संगीत में) एक प्रकार का ताल ।
घटकपरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक कवि त्रिनका नाम कालिदास के साथ विक्रमादित्य की समा के नवखों में आता है । इनका बनाया नीतिमार नामक एक प्रथम मिलता है ।

घटका—संज्ञा पुं० [सं० घट्टक = गहर । अथवा अनु० भरं घरं गम्]
मने के पहले की यह अवस्था जिसमें साँस रुक रुक कर धाराइत के साथ निकलता है । कफ छूँकने की अवस्था । घर्ष ।

मुहा०—घटका लगना = मने समय कफ छूँकना ।

घटकार—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार ।

घटज—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि ।

घटती—संज्ञा स्त्री० [हि० घटना] (१) कमी । कसर । न्यूनता ।
अवगति । 'बढ़ती' का उल्टा ।

मुहा०—घटती का पहरा = अवगति के दिन । खुा उमना ।

(२) हीनता । अप्रतिष्ठा । ३०—घटती होइ जाहि से अपनी ताके कीजे त्याग ।—सूर ।

घटदासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मायक नायका का सम्मिलन करा देनेवाली दाम्नी । (२) बुटनी ।

घटन—संज्ञा पुं० [सं०] [हि० घटनेव, घटेत] (१) गढ़ा जाना । (२) होना । उपस्थित होना ।

घटना—वि० अ० [सं० घटन] (१) होना । उपस्थित होना । बाढ़ होना । ३०—वहाँ ऐसी घटना घटी कि सब लोग आश्चर्य में आ गये । (२) खाना । सटीक खाना । आरोग्य होना । मेल में होना । मेल मिल जाना । ३०—(क) शय

जो ताल बुरावों तोहों । दाख्य दोष घट्ट अति मोहों ।—
तुलसी । (ख) यह कहावत उन पर ठीक घटती है ।

क्रि० प्र० [हि० कटना] कम होना । छोटा होना । पीया होना । ३०—(क) श्रवण घट्टहु पुनि रग घट्टहु, पट्टै सकल बल देह । इतै घटे घट्टिहै कहा, जो न पट्टै हरि नेह ।—
तुलसी । (ख) कुट्टे का पानी घट रहा है ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई बात जो हो जाय । बाक्या । हादसा । चारदात । ३०—(क) अघट घटना सुघट, सुघट विघटन विकट भूमि पाताल जल गगन मंता ।—तुलसी । (ख) यहाँ ऐसी बड़ी घटना कभी नहीं हुई थी ।

घटपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु विद्या (इमारत) में वह संज्ञा जिसका वित्त घड़े और पल्लव के आकार का बना हो ।

घटबद्ध—संज्ञा स्त्री० [हि० घटना + बद्धा] (१) कमी बेगी । न्यून-
चिकता । (२) नृप की एक क्रिया ।
वि० कमबेरा । अपेक्षित से अधिक ।

घटयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि ।

घटराशि—संज्ञा पुं० [सं०] एक द्रोण जो लगभग सोलह सेर का होता है ।

घटघाना—वि० सं० [हि० घटनः का प्रे०] घटाने का काम कराना । कम कराना ।

घटचार्ई—संज्ञा पुं० [हि० घाट + चार्ई] (१) घाटवाला । घाट का कर लेनेवाला । (२) रोकनेवाला । पिना कर लिए वा तलवारों लिए न जाने देनेवाला । ३०—घावन जान न पावत कोऊ तुम मग में घटचार्ई । धूरपाम हमको विरमावत लीकत बहिनी माई ।—सूर ।

[हि० घटना] कम करावाई ।

घटवार—संज्ञा पुं० [हि० घाट + वार या वाण] (१) घाट का मड़-
सूत लेनेवाला । (२) महाद्व । फेवट । (३) घाट पर बैठ कर दान लेनेवाला माहुर । घाटिया । (४) घाट का देवता ।

घटवारिया—संज्ञा पुं० दे० “घटवारिया” ।

घटचाटिया—संज्ञा पुं० [हि० घाट + चाटा] तीर्थ स्थानों में नदी वा नरोवर के घाट पर बैठ कर दान लेनेवाला पंडा । तीर्थ-
पंडा । घाटिया ।

घटसंभय—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि ।

घटहो—संज्ञा पुं० [हि० घाट + हो (अव्य०)] (१) घाट का टेकेंदार । (२) वह नाव जो इस पार से इस पार आती हो ।

घटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेंघों का घना समूह । बमड़े हुए वाद्यों का ढेर । मेघमाला । कादंबिनी ।

क्रि० अ०—घटना ।—अनवना ।—समदना ।—घिना ।—
घाना ।—कूमना ।

(२) समूह । कुंड । ३०—रजनीचर मत गयंद घटा विघट्टे मुगारात के साज भरै । अघट्टे अघट्टे की मदी पट्टे गरीजे खुबीर की सोई करै ।—तुलसी ।

घटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० घटना + ई (प्रत्य०)] हीनता । अग्रतिष्ठा ।
वेहजूती । उ०—भूप मन आई यह निपट घटाई होति भक्ति
सरसाई नहीं जाई घटी प्रीति हैं ।—प्रिया ।

घटाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का उतना भाग जितना
एक घड़े के भीतर आ जाय । घड़े के भीतर की खाली जगह ।

घटाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुतंत्र का अष्टम भाग । वास्तु विद्या
में खंभे के नीचे विभागों में से आठवाँ भाग ।

घटाटोप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादलों की घटा जो चारों ओर से
घेरे हो । (२) गाड़ी या पहली को ढक लेनेवाला थोहर ।
पालकी या पीनस का भोहर । किसी वस्तु को पूर्णतः ढक
लेनेवाला कपड़ा । (३) बादलों की भाँति चारों ओर से
घेर लेनेवाला दल या समूह । उ०—(क) घटाटोप
गजपूष तहँ चलत भयो मुनिराह । (ख) घटाटोप करि चहुँ
द्विसि घेरी । सुखहिँ निसान यजावहिँ भेरी ।—मुलली ।

घटाना—क्रि० सं० [हि० घटना] (१) कम करना । खींच करना ।
(२) धाड़ी निकालना । काटना । उ०—दी रा रुपये में से
पचास घटा दो । (३) अग्रतिष्ठा करना । कम कटरी करना ।
उ०—मुम ने श्राप अपने को घटाया है ।

घटाच—संज्ञा पुं० [हि० घटना] (१) कम होने का भाव ।
न्यूनता । कमी । (२) अवनति । तनजुली ।

घा०—घटाव यज्ञाय = कमी बेरी । न्यूनता और वृद्धि ।
(३) नदी की बाढ़ की कमी । 'घटाव' का उलटा ।

मुहा०—घटाव पर होना = बाढ़ का कम होना ।

घटावनाइँ—क्रि० प्र० दे० "घटाना" ।

घटि—वि० दे० "घट" ।

घटिक—संज्ञा पुं० [सं०] घंटा पुर होने पर घड़ियाल यजानेवाला
व्यक्ति । घड़ियाली । घंटा यजानेवाला सिपाही ।

घटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घड़ी । घटी यंत्र । टाइमपीस ।
(२) एक घड़ी का समय । २४ मिनट का समय ।

घा०—घटिकावधान = (१) एक घड़ी में कई काम करनेवाला ।
घटिकारातक = एक घड़ी के भीतर सौ काम एक साथ करने-
वाला । (बहुत से लोग ऐसी साधना करते हैं कि वे एक साथ
शतरंज खेलते जाते, पत्र बनाते जाते तथा गणित करते जाते
हैं और इस प्रकार एक घंटे के भीतर सय काम पूरा उतरा
देते हैं ।) (२) एक घड़ी में सौ श्लोक बघानेवाला कवि ।
(३) छोटा घड़ा । गली ।

घटित—वि० [सं०] बना हुआ । रचा हुआ । रचित । निर्मित ।

घटिया—वि० [हि० घट + इया (प्रत्य०)] (१) जो अच्छे मोल का न हो ।
खराब । कम मोल का । सस्ता । 'घड़िया' का उलटा । (२)
अधम । तुच्छ । नीच । उ०—वह बड़ा घटिया आदमी है ।

घटियारी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की घास जिसे खरी भी
कहते हैं । यह पंजाब में होती है और हलमें अदरक की सी
महक होती है ।

घटिहा—वि० [हि० घात + हा (प्रत्य०)] (१) घात लगानेवाला । घात
पाकर धपाना स्वार्थ साधनेवाला । (२) चालाक । मकार । (३)
धोखेवाला । बेहैमान । (४) व्यभिचारी । खंभ । (५) दुष्ट ।
दुःखदायी । खल । उ०—कह गिरघर कविराय सुना हो
निर्दय पपिहा । नेक रहन दे मोहि' बोंच भूँदे रहु घटिहा ।
—गिरघर ।

घटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घड़ी । मूहूर्त्त । २४ मिनट का
समय । (२) समयसूचक यंत्र । टाइमपीस । ह्याक । (३)
गली । छोटा घड़ा । कलसी । (४) रहँट की घरिया ।
संज्ञा स्त्री० [हि० घटना] (१) कमी । न्यूनता । (२) हानि ।
घति । नुकसान । घाटा ।

मुहा०—घटी आना या पड़ना = व्यवसाय में हानि होना ।

घटीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घड़ी । समयसूचक यंत्र । (२)
संभवशील रोग का एक मेद जो घसाध्य माना जाता है । (३)
रहँट जिससे कुर्थों से पानी निकाला जाता है ।

घट्टका—संज्ञा पुं० [सं० घट्टकच] भीमसेन का घट्टकच नामक
पुत्र जो हिड़िं या राघवसे से पैदा हुआ था । उ०—कहत नाह
सिर यवन घट्टका । मुनिने नाय दमा करि बूका ।—सख ।
घट्टोत्कच—संज्ञा पुं० [सं०] हिड़िं या से उत्पन्न भीमसेन का पुत्र ।
महाभारत युद्ध में इसे कर्ण ने मारा था ।

घट्टोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि ।

घट्टार—संज्ञा पुं० [सं० घट्टोर] मेंड़ा । भेंड़ा । मेप । (हिं०)

घट्टा—संज्ञा पुं० [हि० घटना] (१) घाटा । घटी । कमी । देटा ।
(२) दरार । छेद । उ०—सिर पर ऐसी लाठी पड़ी कि पट्टा
खुल गया । (३) दे० "घट्टा" ।

मुहा०—घट्टा सुलना = दरार हो जाना । फट जाना ।

घट्टित—संज्ञा पुं० [सं०] मूल में पैर चलाने का एक प्रकार
जिसमें पड़ी को जमीन पर दबा कर पंजा नीचे ऊपर
हिलाते हैं ।

घट्टा—संज्ञा पुं० [सं० घट्ट] शरीर पर वह उभड़ा हुआ चिह्न जो
किसी यस्तु की रगड़ लगते लगते पड़ जाता है । उ०—
तलवार की मूठ पकड़ते पकड़ते उसकी डीगलियों में घट्टे पड़
गए हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—घट्टा पड़ना = अश्र्वात् होना । मरक होना ।

घड्डघड्डा—संज्ञा पुं० [अनु०] बादल गरजने, गाड़ी चलने आदि
का शब्द ।

घड्डघड्डाना—क्रि० प्र० [अनु०] गड्गड वा घड्डघड्ड शब्द
करना । गड्गडाना । बादल गरजने या गाड़ी यादि चलने
का शब्द होना । उ०—बादल घड्डघड्ड रहे हैं ।
क्रि० सं० [अनु०] किसी वस्तु को चलाना या खींचना
जिससे घड्डघड्ड शब्द हो । उ०—वह गाड़ी घड्डघड्डा
आ पड्डे था ।

घड़घड़ाहट-संज्ञा स्त्री० [अन्तु घड़घड़] (१) घड़घड़ शब्द होने का भाव । (२) बादल गरजने वा गाड़ी चलने का शब्द ।

घड़त-संज्ञा स्त्री० दे० "गड़त" ।

घड़ना-क्रि० रा० दे० "गड़ना" ।

घड़नैल-संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा + नैया (नाव)] घांस में घड़े बांध कर बनाया हुआ डाँचा जिससे छोटी छोटी नदियाँ पार करते हैं ।

घड़ना-संज्ञा पुं० [सं० घट] मिट्टी का बना हुआ गगरा । जलपात्र । घड़ी गपरी । कलसा । बैला । कुंभ । टिळा ।

मुहा०—घड़ों पानी पड़ जाना = अत्यंत लजित होना । लजा के मोरे गड़ जाना । उ०—जय मीने मुँह पर यह बात कहीं तो उल पर घड़ों पानी पड़ गया ।

घड़ाई-संज्ञा स्त्री० दे० "गड़ाई" ।

घड़ाना-क्रि० रा० दे० "गड़ाना" ।

घड़ामोड़-वि० [हिं० गढ़ + मोड़ना] खर पीर । (हिं०)

घड़िया-संज्ञा स्त्री० [सं० घटिका] (१) मिट्टी का बरतन जिसमें रख कर सोनार लोग सोना चाँदी गलाते हैं । (२) मिट्टी का घोड़ा प्याला । (३) शहद का छूत्ता । (४) बचा दान । गोभायण । (५) मिट्टी की नाद जिसमें लोहार लोहा गलाते हैं । (६) रूँद में लगी हुई छोटी छोटी टिलियाँ जिनमें पानी भर कर खाता है ।

घड़ियाल-संज्ञा पुं० [सं० घटिकाणि, प्रा० घटिकाणि = घड़े का समूह] वह घंटा जो पूजा में धा समय की सूचना के लिये बजाया जाता है ।

घिशोप-दिष्टी में इस शब्द का स्त्रीलिंग बोलते हैं ।

संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा + शल = बला] एक बड़ा और हिंसक जल-जंतु । प्राह ।

घिशोप-घड़ियाल आठ दल शाय खंवा और गोह वा छिपकली के आकार का होता है । इसकी पीठ पर का चमड़ा काला और कड़ा होता है । इसकी ठोर का ऊपरी भाग छोटे के आकार का होता है जिसे लूँधी वा मटुक कहते हैं ।

घड़ियाली-संज्ञा पुं० [हिं० घड़ियाल] समय की सूचना के लिये घंटा बजानेवाला । घंटा बजानेवाला ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ियाल] एक प्रकार का घंटा जो पूजन के समय देवालय आदि में बजाया जाता है । विजयघंटा ।

घड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० घटी] (१) काल का एक मान । दिन रात का ३२ घं भाग । २४ मिनट का समय ।

मुहा०—घड़ी घड़ी = बार बार । घोड़ी घोड़ी देर पर । उ०—साँचि गुलाब घरी घरी घरी घरीहि न बार ।—बिहारी । घड़ी तोला, घड़ी माला = कमी कुचक, कमी कुद । एक क्षण में एक बात दूसरे क्षण में दूसरी बात । अस्तिर बात वा व्यसहार । घं०—उनकी बात का क्या ठिकाना, घड़ी

तोला, घड़ी माला । घड़ी गिनना = (१) किसी बात का यड़ी उल्लेखता के साथ आसप देखना । अन्यत्र उल्लेखित हो पर प्रतीक्षा करना । (२) मृत्यु का आसप देखना । मरने के निकट होना । उ०—मानहु मीपु घरी गनि लेई ।—मुलसी । घड़ी में घड़ियाल है = (१) जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं । न जाने कब काल आवे । (२) बुरा मर में न जाने क्या से क्या हो जाता है । दशा पतझो देर नहीं लतझो देर । (बहुत बुढ़े आदमी के मरने पर उसे लोग घंटा बजाते शमयान पर ले जाते हैं इसी से यह मुहावला बना है ।) घड़ी देना = मुहूर्त बतलाना । सायत बतलाना । उ०—भरो गो धले गंग गति लेई । तेहि दिन कहां घड़ो को देई ।—जायसी । घड़ी भर = घोड़ी देर । घोड़ा समय । उ०—घड़ी भर उठरो, हम बाए । घड़ी सायत पर होना = मरने के निकट होना ।

(२) समय । काल । उ०—जिस घड़ी जो होना होता है, यह हो ही जाता है । (३) शयसर । उपयुक्त समय । उ०—जब घड़ी आवेगी तब काम दोते देर न लगेगी । (४) समय-सूचक यंत्र । जैसे, ह्याक, टाइमपीस, बाघ घादि ।

घो०—घड़ीसाज । घर्मघड़ी । धूपघड़ी ।

मुहा०—घड़ी बूकना = घड़ों की ताली ऐंठना जिससे कमानी कत जाय और मूकके वे पुरजे चलने लगें । घड़ों में चाभी देना ।

घिशोप—प्राचीनकाल में समय के विभाग जानने के लिये विचमित्र युक्तियाँ काम में लाते थे । कहीं किसी पत्थल पर दने दूत की परिधि के विभाग करके और उसके केंद्र पर एक शंखु वा खूई खड़ी करके उसकी (धूप में पड़ी हुई) छाया के द्वारा समय का पता लगाते थे । कहीं नदी में पानी भर कर उस पर एक तैरता हुआ कटोरा रखते थे । कटोरे की पेंदी में महान छेद होता था जिससे क्रम क्रम से पानी आकर कटोरा भरता था । जब नियत चिह्न पर पानी झा जाता था तब कटोरा दूध जाता था । इस नाँद को घर्मघड़ी कहते थे । घटी वा घड़ी नाम धनी नाँद का सूचक है । भारतवर्ष में इसका व्यवहार अधिक होता था ।

घड़ोदिआ-संज्ञा पुं० [हिं० घड़ी + दीआ = दीपक] यह घड़ा जो किसी घर के प्राणी के मरने पर घर में रखला जाता है और १०—१२ दिनों तक रहता है । घड़े के पेंदे में बहुत छोटा छेद कर दिया जाता है जिसमें से होकर बूँद बूँद पानी टपकता है और खुँद पर एक दीपक जला कर रत दिया जाता है ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

घड़ीसाज-संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा + साज] घड़ी की मरम्मत करनेवाला ।

घड़ीसाजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ा + साज] घड़ी की मरम्मत का कार्य वा व्यवसाय ।

घड़ेरा-संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा + रोडा (शय०)] छोटा घड़ा । कँकर ।

घड़ीची-संज्ञा स्त्री० [हि० घड़ा + ची (प्रत्य०)] पानी से भरा घड़ा रखने की तिपाई या ऊँची जगह । लटकन । पलईड़ा ।

घण०-संज्ञा पुं० दे० "घन" ।

घतरा-संज्ञा पुं० [देश०] प्रभात काल । तड़का ।

घतिया-संज्ञा पुं० [हि० घात + ड्या (प्रत्य०)] घात करनेवाला । धोखा देनेवाला ।

घतियाना-क्रि० सं० [हि० घात] (१) अपनी घात या दाँव में लाना । मतलब पर चढ़ाना । (२) चुराना । छिपाना ।

घन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ । बादल । (२) लोहारों का बड़ा हथौड़ा जिससे वे गरम लोहा पीटते हैं ।

क्रि० प्र०-चलाना ।

घा०-घन की चोट = बड़ा भारी आघात ।

(३) लोहा । (टि०) (४) गुल । (डि०) (५) समूह ।

कुंड । (६) कपूर । उ०-न जक धरत धरि हिय धरे नाजुक

कमलायाल । भजत भार भयमीत हूँ घन चंदन बन माल ।

-विहारी । (७) घंटा । घड़ियाल । (८) वह गुण्यफल जो

किसी थोक को उली थोक से दो बार गुण करने से लब्ध हो ।

जैसे- $३ \times ३ \times ३ = २७$ अर्थात् २७ तीन का घन है ।

(गणित) (९) लंबाई, चौड़ाई और मोटाई (ऊँचाई या

गहराई) तीनों का विस्तार । उ०-घन दृढ़ घन विस्तार

पुनि घन जेहि गढ़त लोहार । घड़ श्रुतुद घन सघन घन घन-

रुचि ननुकुमार ।-नंददास । (१०) एक सुगंधित घास ।

(११) अन्नक । अन्नक । (१२) कफ । खैलार । (१३) नृत्य

का एक भेद । (१४) धातु का, ढाल कर बनाया हुआ भाजा

जो प्रायः ताल देने के काम आता है । जैसे, भाँक, मँजीरा,

करताल इत्यादि ।

वि० (१) घना । गमिन ।

मुहा०-घन का = बहुत घना । जैसे, घन के बाल, घन का

जंगल ।

(२) जिसके श्रेण परस्पर खूब मिले हों । गडा हुआ । ठोस ।

(३) दृढ़ । मजबूत । भारी । (४) बहुत अधिक । प्रचुर ।

ज्यादा ।

घनकोर्द-संज्ञा पुं० [सं०] इंदुधनुष । मदाइन । उ०-कुटिल

कच भूष तिलक रेखा शीशा शिला शिखंड । मदन धनु मना

शर संधाने देखि घनकोर्द ।-सूर ।

विशेष-मेघ और धनुष बाँधी शब्दों के संयोग से जो शब्द

धर्मों उनका यही अर्थ होगा ।

घनगरज-संज्ञा स्त्री० [हि० घन + गर्जन] (१) बादल के गरजने की

ध्वनि । (२) एक प्रकार की घुमी जो असाठ या वर्षारंभ में

उपज होती है । लोग ऐसा मानते हैं कि जब बादल गर-

जते हैं तब इसके धीज (जो भूमि के भीतर रहते हैं)

भूमि फोड़ कर गाँठ के रूप में निकल पड़ते हैं । इसकी तर-

कारी घनाई जाती है । घटप में इसे मुई फोड़ और पंजाब

में दिँगी कहते हैं । (३) एक प्रकार की तोप ।

घनघनाना-क्रि० प्र० [घन०] घन घन शब्द होना । घंटे की

पेसी ध्वनि निकलना । उ०-घनघनता घंटा चहुँ शोरा ।-

जायसी ।

क्रि० सं० [घन०] घन घन शब्द करना ।

घनघनादट-संज्ञा स्त्री० [घन०] घन घन शब्द निकलने का भाव

या ध्वनि ।

घनघोर-संज्ञा पुं० [सं० घन + घोर] (१) घनघनादट । भीषण

ध्वनि । उ०-संख शब्द घोर, घनघोर घने घंठन को, भाँवर

की कुमुद, भाँकन की कनकार ।-गोपाल । (२) बादल

की गरज ।

वि० (१) बहुत घना । गहरा । (२) जिसे देख और सुन कर

जी दहल जाय । जिसका दर्शन और श्रवण भयानक हो ।

भीषण । भयावह । जैसे, घनघोर शब्द, घनघोर युद्ध ।

घा०-घनघोर घटा = बड़ा गहरी काली घटा । बादलो का घना

समूह ।

घनचक्र-संज्ञा पुं० [सं० घन + चक्र] (१) वह व्यक्ति जिसकी बुद्धि

सदैव चंचल रहे । चंचल बुद्धि का आदमी । (२) मूल ।

बेबद्दुह । मुड़ । (३) वह जो ब्यर्थ इधर उधर फिरा करे ।

मिथ्या । आचारागद । (४) एक प्रकार की आतशबाजी ।

चक्री । चरली । (५) सूर्यमुखी का फूल । (६) गदिश ।

चकर । (७) फेरफार । जंजाल ।

मुहा०-घनचक्र में थाना वा पड़ना = फेर में फँसना । रुकट

में पड़ना ।

घनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] घना होने का भाव । घनापन । ठोसपन ।

घनताल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चातक पक्षी । पपीहा । (२)

करताल ।

घनताल-संज्ञा पुं० [सं०] चातक । पपीहा ।

घनत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घनापन । घना होने का भाव ।

सघनता । (२) लंबाई, चौड़ाई और मोटाई तीनों का भाव ।

(३) अणुओं का परस्पर मिलान । गाँव । ठोसपन ।

घननादा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादलों की गरज । (२) रावण

का पुत्र, मेघनाद ।

घनपति-संज्ञा पुं० [सं०] इंदु, जो मेघों के अधिपति कहे

जाते हैं ।

घनप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर । मयूर । (२) एक घास जिसकी

पत्तियाँ टैल की घोर पतली और ऊपर की घोर चौड़ी होती

हैं । यह पहाड़ों पर मिलती है और शीपच के काम में

आती है । मोरशिखा ।

घनफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लंबाई, चौड़ाई और मोटाई

(गहराई या ऊँचाई) तीनों का गुण्यफल । (२) यह गुण्य-

फल जो किसी संख्या को उन्नी संख्या से दो बार गुण करने से प्राप्त हो। दे० "घन"।

घनवर्द्धि—संज्ञा पुं० [हिं० घन + वर्द्धि] अमलतास।

घनघान—संज्ञा पुं० [हिं० घन + घन] एक प्रकार का घास।

उ०—घले चंदवान, घनवान और कुहुकवान चलत फनान धूस आसमान छुवै रहै।—भूपय।

घनघेल—वि० [हिं० घन + घेल] घेलघुटेदार। जिसमें घेलघुटे घने हों। उ०—कहुँ कहुँ कुचन पर दरकी घंगिया घन-घेलि।—सूर।

घनमूल—संज्ञा पुं० [सं०] गणित में किसी घन (राशि) का मूल श्रंक। जैसे—२७ का घनमूल ३ होगा, क्योंकि ३ का घन २७ है।

घनरस—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) कषार। (३) हाथियों का एक रोग, जिसमें हाथी का पूरन बिगड़ जाता है, घरे के नाचन गलने लगते हैं और हाथी लँगड़ाने लगता है। इस रोग को हाथियों का कौड़ समझना चाहिए।

घनवाह—संज्ञा पुं० [सं०] बाघ।

घनवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र, जिसका वाहन मेघ है।

घनवाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० घन + वाही (प्रत्य०)] (१) लोहे को घन से कूटने का काम। (२) वह गड्ढा वा स्थान जहाँ घन चलातेवाला खड़ा होता है।

घनदयाम—वि० [सं०] बाहुलों के समान काला।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला बादल। (२) शीतलपत्र।

घनसागर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) कषार।

घनहरा—संज्ञा पुं० [हिं० घन + हरा (प्रत्य०)] घनवाला। एक घन अथ भुनातेवाला। दाना भुनाने के लिये भड़भूँजे के पास जानेवाला।

घनहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा या मोटा पिंड वा छेद। (२) धार आदि नाचने का एक मान जो एक हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा, और एक हाथ गहरा होता है। खारी। तारिका।

घना—वि० [सं० घन] [स्त्री० घनी] (१) सघन। जिसके अथयव वा अंतर पास पास मटे हों। पास पास स्थित। गफिन। गुंजन। जैसे घना जंगल, घने बाख, घनी बुनावट। (२) घनिष्ट। नज़दीकी। निकट का। जैसे, हमारा उनका बहुत घना संबंध है। (३) बहुत अधिक। ज्यादा। उ०—उर्त लखाई है घनी, रोपे सुल सं नेह।—पसतनिय।

विशेष—संख्या की अधिकता सूचित करने के लिये इस शब्द के बहुवचन रूप 'घने' का प्रयोग होता है। दे० "घने"।

घनासूरी—संज्ञा पुं० [सं०] दंडक वा मनहर छंद, जिसे साधारण लोग कवित कहते हैं। यह छंद भूपद राग में गाया जा सकता है। १६—१३ के विधाम से प्रत्येक पद्य में ३१ अक्षर

होते हैं। अंत में प्रायः गुरु वर्ण होता है। शेष के लिये सगु गुरु का कोई नियम नहीं।

घनाघन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) सप्त हाथी। (३) धरसनेवाला बादल।

घनात्मक—वि० [सं०] (१) जिसकी लंबाई, चौड़ाई, और मोटाई (उंचाई वा गहराई) बराबर हो। (२) जो लंबाई, चौड़ाई और मोटाई को गुणा करने से निकला हो (घन-फल के लिये)।

घनानंद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गद्य काव्य का एक भेद। (२) हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम जिसको आनंदघन भी कहते हैं।

घनिष्ट—वि० [सं०] (१) गूढ़। घना। बहुत अधिक। (२) पास का। निकटस्थ। नज़दीकी। जैसे, घनिष्ट संबंध।

घने—वि० [सं० घन] बहुत। अनेक (संख्या में)। उ०—घाघुरे विभीषण पुकारि थार थार कइयो थानर यड़ी यलाइ घने घर धाकिहै।—तुलसी।

घनेरा—वि० [हिं० घना + परा (प्रत्य०)] [स्त्री० घनेरी] बहुत अधिक। अतिशय। उ०—कोपि कपिन दुरधट गड़ घेरा। नगर कोलाहल भये घनेरा।—तुलसी।

विशेष—संस्था की अधिकता सूचित करने के लिये इस शब्द के बहुवचन रूप 'घनेरे' का प्रयोग होता है। दे० "घनेरे"।

घनेरे—वि० [हिं० घने] बहुत। अधिक। अगणित (संख्या में)। उ०—(क) वन प्रदेश सुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाँई मन कोरे।—तुलसी। (ख) निपट घनेरे अथ श्रीगुण घनेरे नर नारिक घनेरे जगदंब घेरी घेरे हैं।—तुलसी।

घनेरी—वि० दे० "घना"। उ०—हाट थाट हाटक पिचलि बखवी नीं सो घने, कनक कराडी खंक तलफत ताप सो।—तुलसी।

घनेपल—संज्ञा पुं० [सं०] शीला। बरका। पत्थर। घिनैरी।

घनर्षी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घन + र्षी] मिट्टी के घट्टों और लकड़ी के लट्टों को जोड़ कर घनाया हुआ बंधा जिससे छोटी छोटी नदियाँ पार करते हैं।

घपन्नि घाना—कि० अ० [हिं० घपची] घनघाना। चकर में आना।

घपची—संज्ञा स्त्री० [हिं० घन + घची] किसी वस्तु को पकड़ कर घेर रखने के लिये दोनों हाथों के पंजों की गठान। दोनों हाथों की मजबूत पकड़। उ०—कितना ही बसने सुक को बुझाया किड़क किड़क। पर मैं तो घपची बांध के बसके चिमट गया।—नज़ीर।

क्रि० प्र०—बधिना।

मुहा०—घपची बांध कर पानी में कूटना = दोनों घुटनों का छतरी से सटा कर और उन्हें दोनों हाथों के धरे में कस कर पानी में कूटना।

घपला-संज्ञा पुं० [ऋ०] दो परस्पर भिन्न वस्तुओं की ऐसी मिलावट जिसमें एक से दूसरे को छलगत करना कठिन हो। गड़बड़। गोलमाल।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—पड़ना।

घपुष्पा-वि० [हिं० मरुष्पा] मूख। जड़। नासमर्थ। उरलू। भक्रुष्पा।

घपुष्य-संज्ञा पुं० [हिं० घपुष्पा] गूख। जड़। नाममर्थ।

घपोकानन्दन-संज्ञा पुं० [हिं० घपुष्पा] मूख। जड़। नासमर्थ।

घप्पू-वि० दे० "घपुष्पा"।

घब्रडाना-क्रि० अ० दे० "घबराना"।

घब्रडाहट-संज्ञा स्त्री० दे० "घबरहाट"।

घबराना-क्रि० अ० [सं० गहर वा हिं० गडबडाना] (१) व्याकुल होना। अधीर वा अशांत होना। चंचल होना। भय वा आशंका से आतुर होना। उद्धिन्न होना। उ०—(क) उसकी बीमारी का हाल सुन सब घबरा गए। (ख) सेना को आते देख नगरवाले घबरा कर भागने लगे। (२) सकपकाना। भौचका होना। किंकरत्न्य विमूढ़ होना। ऐसी अवस्था में होना जिसमें यह न सूझ पड़े कि क्या करें वा क्या करे। सिटपिटाना। हड्डा बका होना। उ०—चकील की जिरह से गवाड़ घबरा गया। (३) हड़बड़ाना। उतावली में होना। जश्दी मचाना। आतुर होना। उ०—घबरायो मत, थोड़ी देर में चलते हैं। (४) ऊपना। जी न लगना। उचाट होना। उ०—यहां अफले बैठे बैठे जी घबराता है।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

क्रि० सं० (१) व्याकुल करना। अधीर करना। शांति-भंग करना। उ०—तुमने तो आकार मुझे घबरा दिया। (२) भौचका करना। ऐसी अवस्था में डालना जिसमें कर्त्तव्य न सूझ पड़े। (३) जश्दी में डालना। हड़बड़ी डालना। उ०—उसकी घबरायो मत, धीरे धीरे काम करने दो। (४) हारान करना। नाकीं हार करना। उचाट करना।

घबराहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० घबराना] (१) व्याकुलता। अधीरता। उद्धिन्नता। अशांति। (२) किंकरत्न्यविमूढ़ता। ऐसी अवस्था जिसमें क्या कहना या करना चाहिए यह न सूझ पड़े। (३) हड़बड़ी। उतावली।

घमका-संज्ञा पुं० [ऋ०] (१) घूँसा। सुष्टिकामदार।

क्रि० प्र०—देना।—पड़ना।—उड़ना।

(२) यह प्रहार या चोट जिसके पड़ने से "घम" शब्द हो।

घमंड-संज्ञा पुं० [सं० मण्डे ?] (१) अभिमान। गरुड। शैली। आहंकार। शूरी। उ०—घन घमंड नम गरजत घोरा। त्रियाहीन डरपत मन मोरा।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रखना।

मुहा०—घमंड पर आना या होना = अभिमान करना। इतपना।

घमंड निरुलना = घमंड दूर होना। 'गर्भ चूर्ण' होना। घमंड-दूटना = मन धूल होना। गर्भ चूर्ण होना।

(२) यत्न। धीरता। जूरे। भरोसा। सहारा। आसत। जैसे, तुम किसके घमंड पर इतना कूदते हो ? उ०—जासु घमंड बधति नदिं काहुहि कहा दुरायति मोगें।—सूर।

घमंडिन-वि० स्त्री० दे० "घमंडी"।

घमंडी-वि० [हिं० घमंड] [स्त्री० घमंडिन] आहंकारी। अभिमानी। मगार। शे.खीयाज।

घम-संज्ञा पुं० [ऋ०] यह शब्द जो कोमल तल पर कहा आघात लगने से होता है। जैसे, पीठ पर मुका घम से लगा।

घमकना-क्रि० अ० [ऋ० घम] 'घम घम' वा और किसी प्रकार का गंभीर शब्द करना। घहराना। गरजना। उ०—सुकवि सुमङ्गि घमघटा थांधि घमकत पावस घन।—ध्वास।

क्रि० सं० घम से घूँसा मारना। सुष्टिक प्रहार करना।

घमका-संज्ञा पुं० [ऋ०] प्रहार का शब्द। चोट की ध्वाजा। गदा वा घूँसा पड़ने का शब्द। आघात की ध्वनि। उ०—(क) घाहन के घमके उठें, दिथो उमरु हर डार। मचे जटा फटकारि कै, भुज पसारि ततकार।—बाल। (ख) घाहन घमके मचे घनेरे। बलतरपोस गिरे धडुतेरे।—सूदन।

संज्ञा पुं० [हिं० घाम] उमस। घमसा।

घमखोर-वि० [हिं० घाम + खोर (खानेवाला)] घाम खानेवाला। जो भूप में रह सके।

घमघमाना-क्रि० अ० [ऋ०] घम घम शब्द करना। गंभीर शब्द करना।

क्रि० सं० (१) प्रहार करना। भारी आघात लगाना। (२) घूँसा मारना।

घमर-संज्ञा पुं० [ऋ०] नगाड़े, ढोल आदि का भारी शब्द। गंभीर ध्वनि। उ०—माखन खात पराप घर के। नित प्रति सहस्र मथानी मथिपु मेधं शब्द दधि माट घमर के।—सूर।

घमरा-संज्ञा पुं० [सं० रंगराज] भंगरा। भंगरवा। शृंगराज नाम की वृद्धि।

घमरील-संज्ञा स्त्री० [ऋ० घम घम] (१) हड्डा गुला। ऊपस। (२) गड़बड़। घोटाला।

घमसा-संज्ञा पुं० [हिं० घाम] (१) धूप की गरमी। उमस। यह गरमी जो अधिक धूप पड़ने और हवा रुकने के कारण होती है। (२) घनापन। सघनता। आधिक्य।

घमसान-संज्ञा पुं० [ऋ० घम + घान (ध्वं०)] अयंकर बुद्धि। घोर रण। गहरी लड़ाई। उ०—(क) हरि के आघुष अयसि धरेंहैं। ठानि घोर घमसान।—रघुराज। (ख) सात धरे करसान लिये घमसान करे।—सूदन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

शै०—घमसान का = घोर भयंकर। जैसे, घमसान की लड़ाई।

घमाका-संज्ञा पुं० [श्रु० घम] 'घम' का शब्द । भारी आवन का शब्द ।

घमाघम-संज्ञा स्त्री० [श्रु० घम] (१) घम घम की घन। (२) धूम-धाम । चहल पहल । (३) भारी आवात का शब्द ।

घि० वि० घम घम शब्द के साथ । भारी आवात के शब्द के साथ । उ०-उसने घमाघम धार धूँ से जमा दिए ।

घमाघमी-संज्ञा स्त्री० (१) दे० 'घमाघम' । (२) मारपीट ।

घमाना-क्रि० श्० [हि० घाम] (१) घाम लेना । सख्ती इतने के लिये धूप में बैठना । (२) धूप खाना । धूप ऊपर पड़ने देना ।

घमावल-वि० [हि० घमना] घाम की गरमी से पका हुआ । घाम के प्रभाव से युक्त (घायः पल के लिये) ।

घमासान-संज्ञा पुं० दे० 'घमसान' ।

घमाहा-संज्ञा पुं० [घान] यह बँल जो धूप में काम करने से जर्दरी हाँपने लगे । यह बँल जो धूप न सह सके ।

घमूह-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की घास जो प्रायः करील आदि की भाँड़ियों के नीचे चहुत होती है । इस का स्वाद कड़ु कड़ुआपन लिए नमकीन होता है । इस के नरम फल्लों की को चौपाए खाते हैं । यह घास मधुरा, आगरा, फीरोजपुर, मंग खादि स्थानों में होती है ।

घमोई-संज्ञा स्त्री० [देग०] कटनी बॉस का एक प्रकार का रोग जिस के पीदा होने से उस बॉस में नये कठे नहीं निकलने पाते । इस बॉस की जड़ों में बहुत से पतले धीरे धने शंकर निकलते हैं जो बॉस की बाड़ धीरे नए कल्लों की उत्पत्ति रोक देते हैं । उ०-घाय ही ते मन सँपस होई । येनु बँस ते भयेमि घमोई ।-तुलसी ।

घमोय-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक छोटा पीया जो गोभी की तरह का होता है । इसके पत्ते कटावदार तथा कठिं से भरे होते हैं । पत्तों के पीछे तथा फटाघ की गोमैं पर कटि होने हैं । इस में केवल एक डंठल ऊपर की धोर जाता है, दूसर उघर द्यनियर् नहीं फैलती । कूल पीले धोर प्याले के आकार के होते हैं । कूलों के फट्ट जाने पर कँटीले बॉसकरोर रह जाते हैं । इस के डंठल धोर पत्तों से एक प्रकार का पीला रस निकलता है जो धोर के रोगों में, उपकारी माना जाता है । यह पीया उजाड़ स्थानों में धार से धार बहुत मा उगता है ।

घमोय-संज्ञा स्त्री० [देग०] सत्यानारी । भँडनाँड ।

घर-संज्ञा पुं० [सं० घर] [नि० घरक, घर, घरध] (१) मनुष्यों के रहने का स्थान जो दीवार आदि से घेर कर घनाया जाता है । निवासस्थान । धारास । मठान ।

घा०-घरकती । घरपावन । घरपुनना । घरमाई । धरजेत । घरदाही । घरदार । घरचोरी । घरयस । घरयनी । घरघार । घरयसी ।

मुहा०-घरना घर समझना = धारम की जगह समझना । सहेज का स्थान से समझना । ऐसा स्थान समझना उहाँ घर के

ऐसा व्यवहार है । उ०-इसे धार धरना घर समझिए, जो कुस्त है माँग लीजिए । घर उठना = घर चलना । घर उठना = (१) परिवार की दशा विधाना । कुन की समृद्धि नष्ट होना । घर पर तवाही खाना । घर की संति नष्ट होना । (२) परिवार पर विपत्ति खाना । घर के प्राणियों का तितर विचर होना या मर जाना । घर करना = (१) चलना । रहना । निवास करना । घर बनाना । उ०-उन्होंने न शय जंगल में धरना घर किया है । (२) किसी वस्तु का जमने वा ठहरने के लिये जगह बनाना । समने वा थँटने के लिये स्थान निकालना । उ०-पैर ने जूते में धरनी घर नहीं किया है हली से जूता कसा मालूम होता है । (३) किसी वस्तु का जमने वा ठहरने के लिये गड्ढा करना । (४) घुसना । घँटना । घिज बनाना । छेद करना । उ०- (क) फोड़े पर जो पट्टी रखी है वह चार दिन में घर करके सब मवाद निकाल देगी । (ख) फोड़े काठ में घर करते हैं । (घ) घर का प्रबंध करना । घर संभालना । विकृतय से चलना । उ०-धय सुम बड़े हुए, घर करना सीखो । (छी का) घर करना = पत्नी भाव से किसी के घर में रहना । लुसम करना । धोख में घर करना = (१) इतना फंद खाना कि उसका ध्यान सदा बना रहे । जँचना । (२) धिज होना । प्रेमपाठ होना । चित्त, मन वा हृदय में घर करना = इतना पतेद खाना कि उसका ध्यान सदा बना रहे । जँचना । अत्यंत धिज होना । प्रेमवान होना । दीघा घर करना = दीर्घ बुझाना । घर का = (१) निज का । धनना । जैसे, घर का मकान, घर का पैसा, घर का धनीया । (२) आस का । पराए का नहीं । संरंधिधे वा आश्रीय जनों के बीच का । जैसे घर का मामला, घर की बात, घर का वास्तु । उ०-उनका हमारा तो घर का मामला है । (३) अपने परिवार वा कुटुंब का प्राणी । संरंधी । भाई बंधु । मुहद । उ०-तीन सुताए तेरह ध्राए नए गाँव की रीत । धारवाले ला गए घर के गावें गीत । (४) पति । स्वामी । भर्तार । उ०-घर के हमारे परदेस को सिरपारे याते दया करि घूसी हम रीति राहपारे की ।-कविंद । घर का बास्ता = समृद्ध कुन का । अशुद्ध खानदान का । पाने पीने से सुवा । घर का शादमी = अपने कुटुंब का प्राणी । भाई बंधु । हृद मित्र । उ०-धारा तो घर के शादमी हैं, आप से छिगाना क्या ? घर का आगन हो जाना = (१) घर थँटहूँ हो जाना । घर उजड़ जाना । घर पर तवाही खाना । (२) छे वे घना होना । घर में मंगान उतरन होना । घर का उजाड़ा = (१) खुलदीयक । कुन की समृद्धि करनेवाला । कुन की कौसि बढ़ानेवाला । भायवान । (२) यह जिते देल घर घर के सब प्राणी प्रकृति हैं । अत्यंत धिज । साहजा । बहुत प्याए । (३) बहुत मुँदर । स्वामन । कँपेरे घर का उजाड़ा = (१) भायवान । तैमली । कुनदीयक । (२) अत्यंत मुँदर । अत्यंत स्वामन । घर का

घरवा या धराना करना = घर उजाड़ना । घर सत्यानाश करना । घर का बोक = गृहस्थी का कारवार । घर का बोक उठाना या सँभालना = गृहस्थी का काम काज देखना । घर का प्रबंध करना । घर का भेदी = घर का सब भेद जानेवाला । ऐसा निकटस्थ मनुष्य जो सब रहस्य जानता हो । ३०— घर का भेदिया लंका दाह । घर का भोला = अपने परिवार में सब से मूर्ख । बिलकुल सीधा सादा । ३०— यह ऐसा ही तो घर का भोला है जो इतने में ही तुम्हें देवेगा । घर का काट खाना वा काटने दौड़ना = घर में रहना अच्छा न लगना । घर में जी न लगना । घर उजाड़ और मयानक लगना । घर में उदासी लाना । (जब घर का कोई प्राणी कहीं चला जाता है या मर जाता है तब ऐसा बोलते हैं ।) घर का न घाट का = (१) जिसके रहने का कोई निश्चित स्थान न हो । (२) निकम्मा । बेकाम । घर का हिसाब = (१) अपने लेन देन का खेला । निज का खेला । (२) अपने इच्छानुसार किना हुआ हिसाब । मनमाना खेला । घर का रास्ता = सीधा वा सहज काम । ३०— इस काम को घर का रास्ता न समझना । घर का मर्द, शेर, वीर वा बहादुर = अपने ही घर में बल दिखाने वा बड़ बड़ कर बोलनेवाला । पीछ में शैली बपारनेवाला और मुकाबिले के लिये सामने न आनेवाला । घर के बाड़े = घर ही में बड़ बड़ कर बात करनेवाला । बाहर कुछ पुत्रपार्थ न दिखानेवाला । पीठ पीछे शैली बपारनेवाला । सामने न आनेवाला । ३०— (क) मिले न कबहुँ सुभट रन गादे । द्विज देवता घरहिँ के बाड़े ।— तुलसी । (ख) स्वास्तिन घर ही की बाड़ी । जिस दिन देखत अपनेही धामन ठाढ़े ।— मूर । घर का नाम उखालना वा बुचोना = कुछ भी फलंकिता करना । अपने इष्ट और निकृष्ट आचरण से अपने परिवार की प्रतिष्ठा खाना । घर की = घरवाली । यहिणी । धी । घर की बात = (१) कुल से संबंध रखनेवाली बात । (२) आपस की बात । आत्मीय जनों के बीच की बात । घर की रूँजी = अपने पास की संपत्ति । निज का धन । घर की तरह बैठना = ब्याप्त से बैठना । ब्याप्त कैत कर बैठना । बैठने में किसी प्रकार का संकोच न करना । घर की तरह बैठे = सिमट कर बैठे । ऐसा बैठे कि औपि के लिये भी बैठने की जगह रहे । घर की तरह रहना = आराम से रहना । अपना घर समझ कर रहना । घर की खेती = अपनी ही बात । अपने बड़ा होने वा मिलनेवाली चीज । ३०— इसके लिये क्या बात है यह तो घर की खेती है, जितनी कष्टि उतनी भेज दें । घर के पर = (१) भीतर ही भीतर । गुप्त चीति से । बिना और लोगों का सूचना दिए । ३०— तुमने तो घर के घर सौदा कर लिया, हमें बतलाया तक नहीं । (२) बहुत से घर । ३०— हैजू में घर के घर साफ होगाए । घर के घर रहना = किसी व्यवस्था में न हानि उठाना न साम, बरा-

वर रहना । ३०— इस सौदे में हम घर के घर रहे । घर के घर बंद होना = बहुत से घरों का उजड़ जाना । बहुत से घरों के रहनेवालों का मर जाना वा कहीं चला जाना । घर खोज गिया = जिसके घर का चिड़ तक न रहे जाय । जिसका कुल क्षय हो जाय । नष्ट । निगाड़ा । (खी०) । घर खोज मिटे = घर बरबाद हो । सत्यानाश हो । (खियों का अभिशाप वा गाली) । घर खोना = घर सत्यानाश करना । घर उजाड़ना । घर की संपत्ति नष्ट करना । घर गई = घर उजड़ी । निगाड़ी । (खियों का अभिशाप वा गाली) । घर घर = हर एक घर में । सब के यहाँ । ३०— घर घर बंदी हाल है । घर घर के हो जाना = तितर बितर हो जाना । इधर उधर हो जाना । मारे मारे फिरना । बेठिकाने हो जाना । ३०— तरे मारे बातुपान भये घर घर के ।— तुलसी । घर चलना = (१) घर विगड़ना । घर उजड़ना । परिवार की बुरी दशा होना । (२) कुल में कलंक लगना । ३०— कोई ही बिना घर केते घलेजू ।— देव । घर घाट = (१) रंग दंग । चाल दाल । गति और अवस्था । ३०— पहले उनका घर घाट देख लो तब कुछ करो । (२) दंग । दब । प्रकृति । ३०— वह और ही घर घाट का आदमी है । (३) ठौर । ठिकाना । घर द्वार । स्थिति । ३०— घर घाट देख कर संयंच किया जाता है । घर घाट मालूम होना = रंग दंग मालूम होना । सारी अवस्था विदित होना । दशा का पूर्ण परिचय होना । सब भेद मालूम होना । कोई बात छिपी न रहना । घर घालना = (१) घर विगड़ना । परिवार में अगाति वा दुःख फैलाना । परिवार को हानि पहुँचाना । ३०— इस जगु ने न जाने कितने घर घाले हैं । (२) कुल को दूषित करना । कुल की मर्यादा भंग करना । कुल में कलंक लगाना । ३०— इस कुटनी ने न जाने कितने घर घाले हैं । (३) लोगों को मेहित करके परा में करना । भेद से व्यपित करना । ३०— अभी इसे सयानी तो होने दो, न जाने कितने घर घालेगी । (बाजारू) । घर सुलना = घर में सुला रहनेवाला । घर बंदी अठपुर् में पड़ा रहनेवाला । उदा खियों के बीच में बैठा रहनेवाला । बाहर निकल कर काम काज न करनेवाला । घर चूड़ कर लड़ने खाना = लड़ाई करने के लिये किसी के घर पर जाना । घर चलना = गृहस्थी का निर्वाह होना । घर का लूच बच चलना । घर चलाना = गृहस्थी का निर्वाह करना । घर बुचोना = (१) घर की संपत्ति नष्ट करना । घर तबाह करना । (२) कुल में कलंक लगाना । घर डूबना = (१) घर तबाह होना । (२) कुल में कलंक लगना । घर मंजना = गृहस्थी ठीक होना । घर का सामान इकट्ठा होना । घर जाना = घर का विगड़ना । कुल का नारा होना । घर जुगल = गृहस्थी का प्रबंध । घर-कैकनी = एक घर से दूसरे घर भूमनेवाली । अपने घर न बैठनेवाली । घर सक् पहुँचना = माँ बहिन की गाली देना । बाप दादे तक चढ़ जाना । बाप दादे

खानाना। घर, तक पहुँचाना = (१) सम्राप्ति तक पहुँचाना। संभ्रमण करना। टिकाने तक ले जाना। पूरा उतारना। ३०—
 जिस काम को उद्योग से घर तक पहुँचाये। (२) मुक्ति
 टिकाने ले आना। बात को ठीक ठीक समझा देना। फायदा
 करना। ३०—फूटो को घर तक पहुँचा दिया। घर दान-द
 लेना = दानाद को अपने घर रखना। घर देखना = किसी के घर
 कुछ मानने जाना। ३०—पहँचा कुछ न मिलेगा, दूसरा घर
 देखो। घर देखना, देख लेना या पाना = रास्ता देख लेना। परच
 जाना। दरत निकाल लेना। ३०—(क) तुम और किसी से तो
 कुछ मांगते नहीं, सीधा हमारा घर देख पाया है। (ख) बुढ़िया
 के मरने का सोच नहीं, धम के घर देख लेने का सोच है।
 किसी के घर पढ़ना = किसी के घर में पढ़ी भाव से
 जाना। (किसी वस्तु का) घर पढ़ना = घर में आना।
 प्राप्त होना। मित्रता। माल मित्रता। ३०—यह चौक क्या
 भाव घर पढ़ी ? घर पढ़े = एक एक घर में। एक एक घर
 से। ३०—घर पीछे एक रुपया बसूल करे। घर पढ़ना =
 (१) मरान की दीवार आदि में दरार पड़ना। (२) घर में
 क्या उत्पन्न होना। (३) दुर्घटी पढ़ना। बुला लगना। अशुभ
 होना। न भाना। ३०—लेने को तो रुपया लिया घर देते
 हुए क्यों घर पढ़ता है ? (४) घर में विगाड़ होना।
 घर फूँक समारा वा मामला = घर का सन्धान
 करनेवाली बात। ऐसी बात जिससे घर की संघति नष्ट हो। घर
 पढ़ाही खानेपाने का नष्ट ढाल। घर फूँक समारा देखना = घर
 की संघति नष्ट करके अपना मनोरंजन करना। अपने हानि
 करके माल उड़ाना। घर फोड़ना = घर में निग्रह उत्पन्न करना।
 परिवार में झगडा लगाना। परिवार में उपद्रव खड़ा करना।
 घर बँध होना = (१) घर में तल्ला लगना। (२) घर में प्राणी
 न रह जाना। घर का कोई मालिक न रहना। घर के प्राणियों
 का निवृत्त होना। (३) किसी घर से कोई संबंध न रह
 जाना। घर विगाड़ना = (१) घर उखाड़ना। घर की
 समुक्ति नष्ट करना। घर तबाह करना। परिवार की
 हानि करना। (२) घर में घूट फैलाना। घर में झगडा खड़ा
 करना। घर के प्राणियों में परस्पर लड़ाई करना। (३) कुल-
 वती को बहकाना। घर की बहु बेटों को बुरे मार्ग पर ले आना।
 घर बनना = (१) मरान तैयार होना। (२) घर की आर्थिक
 स्थिति अच्छी होना। घर संभल होना। घर मरना पूरा होना।
 घर बनना = (१) मरान तैयार करना। (२) निवासस्थान
 ठहरना। बनना। जम कर रहना। (३) घर बनना। घर को
 धन धान्य से पूर्ण करना। घर की आर्थिक दशा सुधारना।
 अपना लाभ करना। ३०—नौकरों पर कोई ब्राह्म स्वनेवाला
 नहीं है, वे अपना घर बना रहे हैं। घर बरबाद होना = घर
 विगाड़ना। घर की समुक्ति नष्ट होना। परिवार की दशा विगाड़ना।
 घर बसना = (१) घर आबाद होना। घर में प्राणियों का

होना। (२) घर की दशा सुधरना। घर में धन धान्य होना।
 (३) घर में स्त्री वा बहु आना। व्याह होना। (४) कुल-हल-
 दिन का समागम होना। घर बसाना = (१) घर आबाद करना।
 घर में नए प्राणी लाना। (२) घर की दशा सुधारना। घर को
 धन धान्य से पूरित करना। (३) घर में स्त्री वा बहु लाना।
 विवाह करना। घर बँटना = (१) घर में वैठना। एकांत सेवन
 करना। (२) काम पर न जाना। काम छोड़ना। नौकरी
 छोड़ना। ३०—(क) वह चार दिन कोई काम करता है,
 फिर घर बैठ रहता है। (ख) तुमसे काम नहीं होता, तुम घर
 बँटो। (३) कोई काम न मित्रता। बेकार रहना। बेपंजगार
 रहना। जीविका न रहना। ३०—ब्राह्म कल वह घर बैठे है,
 उसे कोई काम दिलाये। घर बैठे राटो = विना मिहन्त
 की राटो। विना परिश्रम की जीविका। घर बँटे = (१)
 विना कुछ काम किए। विना हाथ पैर जुलाए। विना परिश्रम।
 ३०—घर बँटे १००, महीना मिलता है, कम है ? (२)
 विना कहीं गए आए। विना कुछ देले माले। विना बाहर
 जाकर सब बातों का पता लगाए। विना देश काज की शक्यता
 जाने। ३०—घर बँटे बातें करते हो, बाहर जाकर देखो तो
 जान पड़े। (३) विना कहीं गए आए। एक ही स्थान पर
 रहते हुए। विना यात्रा आदि का कष्ट उठाए। ३०—दूस
 पुस्तक को पढ़ो और घर बँटे देरा देखांतो का वृत्तत जानो।
 घर बँटे की नौकरी = विना परिश्रम की नौकरी। घर बँटे बेर
 दौड़ाना = मंत्र के यत्न से अपने पात किसी वस्तु वा व्यक्ति को
 बुला लेना। मोहन करना। मूठ चनाना। घर बँटना = अधिक
 वर्षों से मरान का विराना। ३०—जगातार बाह घंटे पानी
 बरसने से कई घर बँट गए। (किसी स्त्री का किसी पुरुष के)
 घर बँटना = किसी के घर पत्नी भाव से जाना। किसी को कुम
 बनाना। घर भर = घर के सब प्राणी। सारा परिवार।
 ३०—घर भर यहाँ आया है। घर भरना = (१) घर को धन
 धान्य से पूर्ण करना। घर में धन इकट्ठा करना। अपना लाभ
 करना। मात्र अपने घर में रखना। (२) (अकर्मक) घाटा
 पूरा होना। हानि की पूर्ति होना। (३) घर का प्राणियों से
 भरना। घर में मेहुमानों और कुटुंबवालों का इकट्ठा
 होना। घर में = स्त्री। जेतक। घरवासी। ३०—उनके घर में
 भीमार है। (बोलचाल)। कुछ घर में धाना = अपना लाभ
 होना। प्राप्ति होना। ३०—उनकी नौकरी जाने से घर में क्या
 भा जायगा। (किसी स्त्री को) घर में डालना = रख लेना।
 रखली बनाना। जेत बनाना। (किसी स्त्री का) घर में
 पढ़ना = किसी के घर पत्नी भाव से जाना। किसी की घरवासी
 होना। घर से = (१) पास से। पज़े से। ३०—सुन्दारे घर से क्या
 गया। (२) पति। स्वामी। (३) स्त्री। पत्नी। (बोल-
 चाल)। घर से पाँच निकालना = इधर उधर बहुत घूमना।
 शोधन में न रहना। खेच्छाचार करना। मर्यादा के बाहर

घरया वा धरमा करना = घर उजाड़ना। घर उल्याना करना। घर का योम = गृहस्थी का कारवार। घर का योम उठाना या सँभालना = गृहस्थी का काम काज देखना। घर का प्रबंध करना। घर का भेदी = घर का सब भेद जाननेवाला। ऐसा निकटस्थ मनुष्य जो सब रहस्य जानता हो। ३०— घर का भेदिया लंका दाह। घर का भोखा = अपने परिवार में सब से मूर्ख। विलकुल सीधा सादा। ३०— यह ऐसा ही तो घर का भोखा है जो इतने में ही तुम्हें बेदेगा। घर का काट खाना वा काटने दाड़ना = घर में रहना अच्छा न लगना। घर में जी न लगना। घर उजाड़ और भयानक लगना। घर में उदासी उठना। (जब घर का कोई प्राणी कहीं चला जाता है या मर जाता है तब ऐसा बोलते हैं।) घर का न घाट का = (१) जिसके रहने का कोई निश्चित स्थान न हो। (२) निकम्मा। बेकाम। घर का हिसाब = (१) अपने लेन देन का लेखा। निज का लेखा। (२) अपने इच्छानुसार किया हुआ हिसाब। मनामान लेखा। घर का रास्ता = सीधा वा सहूल काम। ३०— इतने काम को घर का रास्ता न समझना। घर का मरु, मोर, चीर वा बहादुर = अपने ही घर में बल दिखाने वा बट बट कर बोलनेवाला। परेष में शंली बघारनेवाला और मुझविषे के लिये सामने न आनेवाला। घर के बाड़े = घर ही में बट बट कर बात करनेवाला। बाहर कुछ पुष्टार्थ न दिखानेवाला। पीठ पीछे शेली बघारनेवाला। सामने न आनेवाला। ३०— (क) मिले न कबहुँ सुभट रन गाड़े। द्विज देवता घरहिँ के बाड़े।— तुलसी। (ख) आबिन घर ही की बाड़ी। निस दिन देखत अपनेही धांगन ठाड़ी।—सूर। घर का नाम बघालना वा डुबोना = कुल का कलंकित करना। अपने धर्म और निकट आचरण से अपने परिवार की प्रतिष्ठा खोना। घर की = घरवाली। गृहिणी। श्री। घर की बात = (१) कुल से संबंध रखनेवाली बात। (२) आपस की बात। आरभीय जने के बीच की बात। घर की पूँजी = अपने पाव की संगति। निज का धन। घर की तरह बँटना = आराम से बैठना। लज फैल कर बैठना। बैठने में किसी प्रकार का संकोच न करना। घर की तरह बैठो = लिमट कर बैठो। ऐसा बैठो कि औरों के लिये भी बैठने की जगह रहे। घर की तरह रहना = आराम से रहना। अपना घर समक कर रहना। घर की खेती = अपनी ही वापु। अपने यहाँ होने वा मिलनेवाली चीज। ३०— इसके लिये क्या बात है यह तो घर की खेती है, जितनी कहिय उतनी भोज है। घर के घर = (२) भीतर ही भीतर। गुप्त रीति से। बिना और लोगों के सूचना दिए। ३०— तुमने तो घर के घर सौदा कर लिया, हमें बतलाया तक नहीं। (२) बहुत से घर। ३०— हैजे में घर के घर साफ होगए। घर के घर रहना = किसी व्यवसाय में न छानि उठाना न काम, बघ-

वर रहना। ३०— इस सँदे में हम घर के घर रहे। घर के घर बंद होना = बहुत से घरों का उजड़ जाना। बहुत से घरों के रहनेवालों का मर जाना वा कहीं चला जाना। घर खोज मिटा = जिसके घर का चिह्न तक न रह जाय। जिसका कुल क्षय हो जाय। नष्ट। निर्गोड़। (खी०)। घर खोज मिटे = घर बरबाद हो। उल्याना हो। (खियों का अभिग्राह वा गाली)। घर खोना = घर उल्याना करना। घर उजाड़ना। घर की संगति नष्ट करना। घर गई = घर उजड़। निर्गोड़। (खियों का अभिग्राह वा गाली)। घर घर = हर एक घर में। सब के यहाँ। ३०— घर घर यही हाल है। घर घर के हो जाना = तितर बितर हो जाना। इधर उधर हो जाना। मारे मारे फिरना। बैठकने हो जाना। ३०— तैरे मारे यातुपान भये घर घर के।—तुलसी। घर चलना = (१) घर विगड़ना। घर उजड़ना। परिवार की बुरी दशा होना। (२) कुल में कलंक लगना। ३०— कहे ही बिना घर फेले घलेजु।—देव। घर घाट = (१) रंग ढंग। चाल ढाल। गति और अवस्था। ३०— पहले उनका घर घाट देख लो तब कुछ करो। (२) ढंग। ढब। प्रकृति। ३०— यह और ही घर घाट का भावमी है। (३) ठौर। ठिकाना। घर हार। स्थिति। ३०— घर घाट देख कर संबंध किया जाता है। घर घाट मालूम होना = रंग ढंग मालूम होना। सारी अवस्था विदित होना। दशा का पूर्ण परिचय होना। सब भेद मालूम होना। कोई बात छिपी न रहना। घर घालना = (१) घर विगाड़ना। परिवार में अराति वा दुख फैलाना। परिवार का छानि पहुँचाना। ३०— इस जप ने न जाने कितने घर घाले हैं। (२) कुल का दूषित करना। कुल की मर्यादा भंग करना। कुल में कलंक लगना। ३०— इस कुटनी ने न जाने कितने घर घाले हैं। (३) लोगों के मोहिष्ट करके यश में करना। प्रेम से व्यक्त करना। ३०— शभी हसे सगानी तो होतें दे, न जाने कितने घर घालेगी। (बाजारू)। घर-घुसना = घर में घुसा रहनेवाला। हर घड़ी अंतःपुर में पड़ा रहनेवाला। सदा खियों के बीच में बैठा रहनेवाला। बाहर निकल कर काम काज न करनेवाला। घर चढ़ कर लड़ने आना = लड़ाई करने के लिये किसी के घर पर जाना। घर चलना = गृहस्थी का निर्वाह होना। घर का खर्च बच बनना। घर चलाना = गृहस्थी का निर्वाह करना। घर डुबोना = (१) घर की संगति नष्ट करना। घर तबाह करना। (२) कुल में कलंक लगना। घर डूबना = (१) घर तबाह होना। (२) कुल में कलंक लगना। घर अमंगल = गृहस्थी ठीक होना। घर का सामान इकट्ठा होना। घर जाना = घर का विगड़ना। कुल का नाश होना। घर सुगुप्त = गृहस्थी का प्रबंध। घर-मँकनी = एक घर से दूसरे घर भूगनेवाली। अपने घर न बैठनेवाली। घर तक पहुँचना = माँ बहिन की माली देना। बाप दादों तक चढ़ जाना। बाप दादों

व्यसनना । घर तक पहुँचना = (१) समीप तक पहुँचना ।
 संपूर्ण करना । ठिकाने तक ले जाना । पूरा उतारना । ३०—
 निय काम के बजाये उसे घर तक पहुँचाओ । (२) ठिक
 ठिकाने ले आना । बात के ठीक ठीक सम्मत् देना । फायल
 करना । ३०—भूटे को घर तक पहुँचा दिया । घर दाना-द
 लेना = दामाद को अपने घर रखना । घर देलना = किसी के घर
 कुछ मारने जाना । ३०—यहाँ कुछ न मिलेगा, दूसरा घर
 देखो । घर देलना, देल लेना या पाना = राहना देल लेना । परच
 जाना । दर्रा निकाल लेना । ३०—(क) तुम और किसी से तो
 कुछ मारने नहीं, स्त्रीया हमारा घर देख पाया है । (ख) सुत्रिया
 के मरने का सोच नहीं, यम के घर देख लेने का सोच है ।
 किसी के घर पढ़ना = किसी के घर में पत्नी भाव से
 जाना । (किसी बच्चे का) घर पढ़ना = घर में आना ।
 प्राप्त होना । मिलना । मेल मिलना । ३०—यह चीज क्या
 भाव घर पढ़ी ? घर पीछे = एक एक घर में । एक एक घर
 से । ३०—घर पीछे एक रूपया वसूल करो । घर फटना =
 (१) मकान की दीवार आदि में दरार पड़ना । (२) घर में
 बचा उत्पन्न होना । (३) छाती फटना । बुरा लगना । असह्य
 होना । न माना । ३०—लेने को तो रहस्य बिलिष्य दते
 हुए क्यों घर फटना है ? (४) घर में विगाड़ होना ।
 घर फूँक समाया या मामला = घर का सत्यानास
 करनेवाली बात । ऐसी बात जिससे घर की संपत्ति नष्ट हो । घर
 पर तबाही डालनेवाली आल दाल । घर फूँक समाया देलना = घर
 की संपत्ति नष्ट करके अपना समेतजन करना । अपनी हानि
 करके मौज उड़ाना । घर फोड़ना = घर में विमूढ़ उत्पन्न करना ।
 परिवार में भगड़ना लगाना । परिवार में उपद्रव खड़ा करना ।
 घर बंद होना = (१) घर में ताना लगना । (२) घर में प्राणी
 न रह जाना । घर का कोई मासिक न रहना । घर के प्राणियों
 का स्थिर स्थित होना । (३) किसी घर से कोई संबंध न रह
 जाना । घर विगाड़ना = (१) घर उजाड़ना । घर की
 समृद्धि नष्ट करना । घर बहाद करना । परिवार की
 हानि करना । (२) घर में घूट फैलाना । घर में भगड़ना खड़ा
 करना । घर के प्राणियों में परस्पर लड़ाई करना । (३) दुल-
 वती को बहकाना । घर की बहू बेटी को बुरे मार्ग पर ले जाना ।
 घर बनना = (१) मकान तैयार होना । (२) घर की आर्थिक
 स्थिति अच्छी होना । घर संवल होना । घर भरा पूरा होना ।
 घर धपाना = (१) मकान तैयार करना । (२) निवाणस्थान
 ठहराना । बलना । जम कर रहना । (३) घर भजना । घर के
 घन धान्य से पूर्ण करना । घर की आर्थिक दशा सुधारना ।
 अपना काम बनना । ३०—नौकरों पर कोई धाँस रखनेवाला
 नहीं है, वे अपना घर बना रहे हैं । घर बसाद होना = घर
 विगाड़ना । घर की समृद्धि नष्ट होना । परिवार की बुरा विगाड़ना ।
 घर बनना = (१) घर आवाद होना । घर में प्राणियों का

होना । (२) घर की दशा सुधारना । घर में घन धान्य होना ।
 (३) घर में छो वा बहु पाना । आह होना । (४) दुलहा दुल-
 हिन का समागम होना । घर बसाना = (१) घर आवाद करना ।
 घर में नए प्राणी लाना । (२) घर की दशा सुधारना । घर को
 घन धान्य से पूरित करना । (३) घर में छो वा बहु लाना ।
 विगाड़ करना । घर बैटना = (१) घर में बैटना । एकोन सेवन
 करना । (२) काम पर न जाना । काम छोड़ना । नौकरी
 छोड़ना । ३०—(क) यह चार दिन कोई काम करता है,
 फिर घर बैठ रहता है । (ख) हमसे काम नहीं होता, तुम घर
 बैठो । ३०—कोई काम न करने हो, बेकार रहना । बेरोजगार
 रहना । जीविका न रहना । ३०—घान कल यह घर बैठा है,
 उसे कोई काम दिखाओ । घर बैठी रोटी = विना मिहन्त
 की रोटी । विना परिश्रम की जीविका । घर बैठे = (१)
 विना कुछ काम किए । विना हूप पैरे हुलाए । विना परिश्रम ।
 ३०—घर बैठे १०० महीना मिलता है, कम है ? (२)
 विना कहीं गए आए । विना कुछ देले माले । विना बाहर
 जाकर सब बातों का पता लगाए । विना देश कल का अकस्य
 जाने । ३०—घर बैठे बातें करते हो, बाहर जाकर देखो तो
 जान पड़े । (३) विना कहीं गए आए । एक ही स्थान पर
 रहते हुए । विना यात्रा आदि का कष्ट उठाए । ३०—इस
 पुस्तक को पढ़ो और घर बैठे देशांतर का वृत्तंत जानो ।
 घर बैठे की नौकरी = विना परिश्रम की नौकरी । घर बैठे वेर
 दीहाना = मंत्र के बल से अपने पाव किसी वस्तु वा व्यक्ति के
 गुला लेना । माहल करना । मूठ बनाना । घर बैटना = अधिक
 बरों से भजान का गिरना । ३०—बग़ातार बारह घंटे पानी
 भरसने से कई घर बैठ गए । (किसी स्त्री का किसी पुरुष के)
 घर बैटना = किसी के घर पत्नी भाव से जाना । किसी का लड़म
 बनाना । घर भर = घर के सब प्राणी । तारा परिवार ।
 ३०—घर भर यहाँ थाया है । घर भरना = (१) घर को घन
 धान्य से पूर्ण करना । घर में घन इकट्ठा करना । अपना काम
 करना । मान अपने घर में रखना । (२) (अकर्मक) घाटा
 पूरा होना । हानि की पूर्ति होना । (३) घर का प्राणियों से
 भरना । घर में मेहमानों और कुछ बचकों का इकट्ठा
 होना । घर में = ची । जोक । घरवाली । ३०—उनके घर में
 बीमार हैं । (बोलचाल) । कुछ घर में आना = अपना काम
 होना । प्राप्ति होना । ३०—उनकी नौकरी जाने से घर में क्या
 ब्रा जायगा । (किसी स्त्री को) घर में टाकरना = रख लेना ।
 रखेगी बनाना । जोक बनाना । (किसी स्त्री का) घर में
 पढ़ना = किसी के घर पत्नी भाव से जाना । किसी की धरवती
 होना । घर से = (१) पास से । पल्ले से । ३०—सुन्दारे घर से बच
 गया । (२) पति । स्वामी । (३) स्त्री । पत्नी । (बोल-
 चाल) । घर से पाँव निकलना = इधर उधर घूटने घूमना ।
 शयन में न रहना । शैच्छाचार करना । मर्यादा के बाहर

चतना । ३०—तुम ने बहुत घर से पाँव निकाले हैं मैं अभी जानकर कहता हूँ । घर से बाहर पाँव निकालना = वित्त से बाहर काम करना । समार्य से अधिक खर्च करना । घर से देना = (१) अपने पास से देना । अपनी गाँठ से देना । ३०—जब वह तुम्हारा रुपया देता ही नहीं है तब क्या मैं तुम्हें अपने घर से दूँगा ? (२) अपनी रुपया लेना । खर्च खानि उठाना । ३०—तुम इनकी ज़मानत न करो, नहीं तो घर से देना होगा । घर सेना = (१) घर में पड़े रहना । बाहर न निकलना । (२) बेकार बैठे रहना । इधर उधर काम धंधे के लिये न जाना । घर होना = (१) गृहस्थी चलना । निवाह होना । घर का काम चलना । ३०—ऐसे करतबों से कहीं घर होता है ? (२) घर के प्राणियों में मेल जोल होना । घर में सुख शांति होना । औ पुत्र में बनना ।

(२) जन्मस्थान । जन्मभूमि । स्वदेश । (३) घराना । कुल । वंश । खानदान । जैसे, किसी अच्छे वा बड़े घर लड़की क्याहोंगे, वह अच्छे घर का लड़का है । ३०—जो घर घर कुल होय भ्रनूपा । करिय विवाह सुता अनुस्था ।—तुलसी । (४) कार्यालय । कारखाना । आफिस । दफ्तर । जैसे, डाकघर, तारघर, पुतलीघर, रेलघर, बंकघर इत्यादि । (५) कोठरी । कमरा । ३०—ऊपर के खंड में केवल चार घर हैं । (६) श्राद्धी खड़ी लिवीची हुई रेलगाँवों से चिरा स्थान । कोठा । खाना । जैसे, कुंडली वा चंद्र का घर । (७) शतरंज थादि का चौकोर खाना । कोठा ।

मुहा०—घर बंद होना = गाँठी चतने का रास्ता न रहना । (८) कोई वस्तु रखने का दिव्या वा चोंगा । कोश । खाना । केस । जैसे, चयमे का घर, सजवार का घर (९) पट्टी थादि से चिरा हुआ स्थान । खाना । कोठा । जैसे, अलमारी के घर, सन्दूक के घर । (१०) ग्रहों की राशि । (११) छोटा गड़ढा । किसी वस्तु के छँदने वा समाने का स्थान । जैसे, पानी ने स्थान स्थान पर घर कर लिया है ।

क्रि० प्र०—करना । (१२) किसी वस्तु (नगीना थादि) को जमाने वा यैदाने का स्थान । जैसे, नगीने का घर । (१३) छेद । बिल । सुराह । जैसे, छलनी के घर, पटन के घर ।

मुहा०—घर भरना = छेद भूँदना । (१४) राग का स्थान । मुकाम । स्वर । जैसे, यह चिड़िया कहाँ घर बोलती है ।

मुहा०—घर में कहना = ठीक ठीक स्वर आम के साथ गाना । घर कहना = (१) ठीक स्वर के साथ गाना । (२) चिड़ियों का अच्छी शैली बोलना । फाँसिल थादि का मधुर स्वर से बोलना । (१५) अवधि स्थान । मूल कारण । उत्पन्न करनेवाला । जैसे, रोग का घर लाली, लीला रोग का घर है । (१६)

गृहस्थी । घरदार । ३०—घर देख कर चलो । (१७) घर का अस्तव्यव । गृहस्थी का सामान । ३०—वह अपना इधर उधर घूमता है, मैं घर लिये बैठी रहती हूँ । (खियों०) । (१८) भग वा गुद्विद्य । (बाहाक) ।

क्रि० प्र०—चिना = फटना । (१९) घोट मारने का स्थान । धार करने का स्थान वा श्रवसर । मुहा०—घर खाली छोड़ना वा देना = धार न करना । धार चूक जाना । (२०) आँस का गोलक वा गड़ढा । (२१) चौखटा । फ्रेम । जैसे, तलबोर का घर । (२२) वह स्थान जहाँ कोई वस्तु बहुतायत से हो । भाँडार । खजाना । जैसे, कारमरी मंगों का घर है । (२३) दाँव । पेंच । युक्ति । ३०—यह कुरती के सव घर जानता है । (२४) केलान, मूँज धौर घाँस का जो एकत्र धने होकर जगते हैं । धौ०—घर घाट = दाँव पेंच ।

घरऊँ—वि० दे० “घराऊ” वा “घरू” । घरघराना—क्रि० अ० [अतु०] घरं घरं शब्द करना । कफ के कारण गले से साँस लेते समय शब्द निकलना । संज्ञा पु० [हि० घर + घराना] कुल । परिवार । वंश । ३०—श्रीधा यंदि शीरनी घर घराने साथ ।

घरघराहट—संज्ञा पु० [अतु० घरं घरं] (१) घरं घरं शब्द निकलने का भाव । (२) कफ के कारण गले से साँस लेते समय निकला हुआ शब्द ।

घरघाल—वि [हि० घर + घालना] घर बिगाड़नेवाला । कुल की समृद्धि नष्ट करनेवाला । परिवार की बुरी दशा करनेवाला । कुल में कलंक लगानेवाला । ३०—घरवाल चालक कलह-मित्र कहियत परम परमारथी ।—तुलसी ।

घरंघालन—वि० [हि० घर + घालन] [श्री० घरघालनी] घर बिगाड़नेवाला । परिवार में दुःख वा श्रांति फैलानेवाला । परिवार की दशा बिगाड़नेवाला । कुल में कलंक लगानेवाला । ३०—ये बड़े नैन दिलाय दे नेक दू घरघालनी घूँघटवाली ।

घरचिचा—संज्ञा पु० [हि० घर + चिचर] एक प्रकार का साँप जो प्रायः मनुष्यों के घर में ही रहा करता है ।

घरणी—संज्ञा श्री० दे० “घरनी” ।

घरदासी—संज्ञा श्री० [हि० घर + दासी] गृहिणी । भार्या । पत्नी ।

घरदार—संज्ञा पु० [हि० घर + दा०] (१) रहने का स्थान । ठौर । ठिकाना । ३०—बिना इनका घर द्वार जाने हम इनके विषय में क्या कह सकते हैं । (२) गृहस्थी । घर का आयोजन । ३०—जब वह बाहर जाता है तब उसे घर द्वार की कुछ भी सुर्ष नहीं रहती । (३) निज की सारी

संपत्ति । उ०—हम अपना घर हार बेंच कर तुम्हारा रुपया चुका देंगे ।

धरहारी—संज्ञा स्त्री० [हि० धरहार] एक प्रकार का कर जो पहले घर पीछे लिया जाता था ।

धरन—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की पहाड़ी भेड़ जिसे ऊँ पत्नी भी कहते हैं ।

धरनई—संज्ञा स्त्री० दे० "घनई" ।

धरनाल—संज्ञा स्त्री० [हि० नेला + नाली] एक प्रकार की पुरानी सोप । रहकला ।

धरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहिणी, प्रा० धरणी] धरवाली । भार्या । गृहिणी । उ०—(क) गौतम की धरनी ज्यों तनी तरंगी मेरी प्रभु से निपाद छे की बाद न गड़ाइहीं ।—तुलसी । (ख) तरनिहु सुनि धरनी होइ जाई ।—तुलसी । (ग) विन धरनी घर भूत का डेरा । (कहा०) ।

धरपत्नी—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + पत्नी = भाग] चंदा जो घर पीछे लगाया जाय । वेहरी ।

धरपरना—संज्ञा पुं० [सं० धर + परना = बनना] कच्ची मिट्टी का गोल पिंडा जिस पर उठें धरिया धनाते हैं ।

धरफाड़नी—वि० [हि० धर + फाड़ना] धर में फगड़ा लगानेवाली । धर के प्राणियों में विगाड़ करानेवाली ।

धरफोती—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + फोड़ना] परिवार में कलह फैलानेवाली । धर के प्राणियों में विगाड़ करानेवाली । उ०—धरयो मोर धरफोती नाऊँ ।—तुलसी ।

धरघसा—संज्ञा पुं० [हि० धर + बसना] उपपत्ति । यार । उ०—ए हो धरघसे ! आनु कौन धर घसे ही ।—घनानंद ।

धरघसी—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + बसना] रलेली स्त्री । उपपत्नी । सुरेतिम ।

वि० स्त्री० (१) धर घसानेवाली । धर की ससृष्टि करनेवाली । भाग्यवती । (२) धर उगाड़नेवाली । सत्यानास करनेवाली । (ध्वंय) उ०—छलित खाल निहारि महनि मन विचारि बारि दे धरघसी लकुट बेगि करतै ।—तुलसी ।

धरघार—संज्ञा पुं० [हि० धर + वार = हार] [वि० धरघारी] (१) रहने का स्थान । ठौर ठिकाना । (२) गृहस्थी । धर का नजाल । उ०—बह धर धार घोड़ कर साधु हो गया । (३) निज की सारी संपत्ति । उ०—धर धार बेंच कर हमारा रुपया दे ।

धरघारी—संज्ञा पुं० [हि० धर + धार] गृहस्थ । घाल बघौवाजा । कुट्टी भी । उ०—अथ तो श्याम भये धरघारी ।—सूर ।

धरघैसी—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + घैसा] धरघसी ।

धरमकर—संज्ञा पुं० [सं० धर्मकर] सूर्य्य ।

धरधर—संज्ञा पुं० [अनु०] यह शब्द जो किसी कच्ची बस्तु को दूसरी कच्ची बस्तु पर रगड़ने से होता है । बिसने का शब्द ।

धरधरन—क्रि० अ० [अनु० धरर धरर] रगड़ना । बिसना ।

धरघा, धरघाहा—संज्ञा पुं० [हि० धर + घा या वाहा (अव्य०)] (१) छोटा मोटा धर । कुटी । (२) धरौदा ।

धरघात—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + घात (अव्य०)] धर की सम्पत्ति । धर का सामान । गृहस्थी । उ०—धरघात लखत जो रोदिन को धरघात धरै खुरपी खरिया ।—तुलसी ।

धरघाली—संज्ञा पुं० [हि० धर + घाला (अव्य०)] [स्त्री० धरघाली] (१) धर का मालिक । (२) पत्नी । स्वामी ।

धरघाली—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + बली (अव्य०)] गृहणी । भार्या । पत्नी ।

धरसा—संज्ञा पुं० [सं० धर] रगड़ा । उ०—जोग न लोग लुगाइन के सँग, भोग न रोगन के धरसा में ।—मतिराम ।

धरहई—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + स० घाली, हि० घई] धर घालनेवाली । धर में विरोध करानेवाली स्त्री । इधर का उधर लगानेवाली । सुगुलाखोर स्त्री । (२) वह स्त्री जो किसी के घर की सुराई सबसे कहती फिरे । धरनीनी फैलानेवाली । नि'दा फैलानेवाली । लांचन लगानेवाली । चषय करनेवाली । उ०—(क) धरहई चषय न जो कारती तो भलो कौ धुरो पढ़िपायती में ।—दसुमान कवि । (ख) पहाड़न की घँह हू खान न सकी बचाय । अरी हरी चिन लै गयो लोचन चारु नचाय ।—शू० सत० । (ग) धरहइन धरचै चले चतुर चाइन सैन । तदपि सनह सने लगीं लखकि दुहूँ के नैन ।—शू० सत० ।

वि० धरनामी फैलानेवाली । कलंक की बात धारों धोर कहनेवाली । चमाइन । सुगुलाखोर । उ०—ये धरहईं खोगाईं सबै निस कीस 'बेवान' हईं दहती हैं । प्राण पियारे तिहारे लिये सिंगरे धन को हँसियो सहती हैं ।—नेवाज ।

धरारऊ—वि० [हि० धर + आऊ (अव्य०)] (१) धर का । धर से संबंध रखनेवाला । गृहस्थी संबंधी । जैसे, धरारऊ भगड़ा । (२) धारस का । निज का । धर के प्राणियों या इष्ट मित्रों के बीच का ।

धरारती—संज्ञा पुं० [हि० धर + रती (अव्य०)] विवाह में कन्या की धोर के लोग । कन्यापक्ष के लोग । उ०—एक धोर सब बंड धरारती । एक धोर सब छुनै धरारती ।—सुराजन ।

धरारना—संज्ञा पुं० [हि० धर + रना (अव्य०)] खानदान । वंश । कुल । उ०—बह अचछे धरारने का धादमी है ।

धरिआर—संज्ञा पुं० दे० "धरियाल" ।

धरिया—संज्ञा स्त्री० दे० "धरिया" ।

धरियारी—क्रि० म० [हि० धरि] धरी लगाना । कपड़े को तह लगा कर लपेटना ।

धरियारी—संज्ञा पुं० दे० "धरियाल" ।

धरियारी—संज्ञा पुं० दे० "धरियाल" ।

घर्षी-संज्ञा शब्० (१) दे० "घर्षी" ।

संज्ञा स्त्री० [हि० घर् = कैंडा, खना] तह । परत । लपेट ।
उ०—राखीं घरी बनाय, हँ आखीं नृपद्वार लौं । तय लीजो
पट प्राय, जो चाहे सो कीजियो ।

घर्षिका*—किं० वि० [हि० घर्षी + एक] एक घर्षी भर । थोड़ी
देर । उ०—दिरह दहन लागी दहन घर न घर्षिक थिराति ।
रहन घरी नी ती भई बुझति थै उतराति ।—श्र० सत० ।

घर्षा—संज्ञा पुं० [हि० घर् + वा (प्रत्य०)] घर का अच्छा
प्रबंध । गृहस्थी का ठीक ठीक निर्वाह । गृहस्थी का बँधा
खर्च बर्च ।

घर्षादा—संज्ञा पुं० [हि० घर् + दा० दा०] [मं० घर्षादारिण]
घर वा गृहस्थी का उत्तम प्रबंध करनेवाला । यह मनुष्य जो
समक पूक कर गृहस्थी का खर्च चलावे ।

घर्षादारी—संज्ञा स्त्री० [हि० घर् + दारी] घर का उत्तम प्रबंध
करने का भाव । गृहस्थी का निर्वाह ।

घर्ष्या—संज्ञा पुं० दे० "वर्ष्या" ।

घर्षु—वि० [हि० घर् + ऊ (प्रत्य०)] घर का । जिसका संबंध घर
गृहस्थी से हो । घराऊ ।

घरेला—वि० दे० "घरेलू" ।

घरेलू—वि० [हि० घर् + लू (प्रत्य०)] (१) पालतू । पालू । जो
घर में आधुमियों के पास रहे । (पशुओं के लिये) जैसे—
घरेलू कुत्ता । (२) घर का । निज का । घरू । खानगी । (३)
घर का बना हुआ ।

घरैया—वि० [हि० घर् + य्या (प्रत्य०)] घर का । घरने कुटुंब
का । शब्दंत घनिष्ठ संबंधी ।

संज्ञा पुं० घर का आधारी । घर का प्राणी । निकटस्थ संबंधी ।
उ०—द्रोपदी बिचार रेघुराज आज्ञा जाति लाज, सब हैं चर्य
पै न टेर के सुनैया हैं ।—रघुराज ।

घरोा*—संज्ञा पुं० दे० "वर्षा" । उ०—विगारत मन संन्यास लेत
जल नावत आम चगे सो ।—तुलसी ।

घरोदा, घरोधा—संज्ञा पुं० [हि० घर् + धा० (प्रत्य०)] (१)
कागज, मिट्टी, धूल आदि का बना हुआ छोटा घर जिसे छोटे
बच्चे खेलने के लिये बनाते हैं । उ०—(क) पवि को पहार
कियो ख्याल ही कृपाल राम बापुरो विभीषण घरोधा हुतो
याल को ।—तुलसी । (ख) अथ हम दोनों जरा जरा से
बच्चे खेलने के कि कागज का घरोधा बनावे ।—शिवप्रसाद ।
(२) छोटा मोटा घर ।

घरोना—संज्ञा पुं० [हि० घर् + ना० (प्रत्य०)] (१) घर । मकान ।
निवास स्थान । उ०—तजि के घोना काहू खलन की छाया
तरो, सोये हैहैं छौना है छौना करि पात के ।—हनुमान ।
(२) मिट्टी, धूल आदि का बना हुआ छोटा घर जिसे बच्चे
खेलने के लिये बनाते हैं । घरोदा ।

घर्षरि—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक धागा जिससे तात
दिया जाता था ।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) गाड़ी आदि के चलने का गंभीर
शब्द । घड़बड़ाहट । (२) घर घर शब्द ।

घर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धाम । पृथ । सूर्योत्तर ।
धा०—घर्म विं दु० । घर्मोशु ।

(२) एक प्रकार का पशुपात्र ।

घर्मविं दु—संज्ञा पुं० [सं०] पत्नीना ।

घर्मोशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । उ०—जयति घर्मोशु-संदग्ध संपाति
मय पशु लोचन, दिव्य देह दाता ।—तुलसी ।

घर्षी—संज्ञा पुं० [अ०] घर घर = चिस्ते वा खाने का शब्द] (१)
एक प्रकार का ध्रंजन जो अक्रोम, फिटफिरी, धी, कपूर, इन्द्र,
जली यथो, हलायची, नीम की पत्ती इत्यादि को एक में घिस
कर बनाया जाता है । यह ध्रंजन आँसु आने पर लगाया
जाता है । (२) गले की घर्षाराहट को कफु के कारण होती है ।

मुदा—घर्षी चलना = मसले समय कफु हँकने के कारण यदि
का घर्षणहट के साथ रुक कर निकलना । सुं गुरु वेत्तना ।
घटना लगना । घर्षी लगना = दे० "घर्षी चलना" ।

घर्षीटा—संज्ञा पुं० [अ०] घर्षी + आटा (प्रत्य०)] घर्षी घर्षी का शब्द ।
यह शब्द जो गहरी नींद में साँस लेते समय नाक से निक-
लता है ।

मुदा—घर्षीटा मारना = (१) गहरी नींद में नाक से घर्षी
शब्द निकलना । उ०—वह घर्षीटा मार कर सो रहा है ।
(२) गहरी नींद में सेना । घर्षीटा लेना = दे० "घर्षीटा
मारना" ।

घर्षीमी—संज्ञा पुं० [हि० घर् + मी (प्रत्य०)] छुपर छाने का काम
करनेवाला । छुपरयंद ।

घर्षीण—संज्ञा पुं० [सं०] रगड़ । घिस्ता ।

घर्षीणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिद्रा । हलदी ।

घरलना—किं० अ० [हि० घरलना] (१) छूट कर फिर पड़ना । फँका
जाना । (२) हथियार का चला जाना । चड़े हुए तीर वा
भरी हुई गोली का छूट पड़ना । उ०—तीर चल गया । (३)
मारपीट हो जाना । जैसे—आज वाद्वार में उन दोनों से
चल गई ।

संयो० किं०—जाना ।—पड़ना ।

घरलाघल, घरलाघली—संज्ञा स्त्री० [हि० घरलना] मार पीट । आघात
प्रतिघात । उ०—नैनन ही की घरलाघली के घने घायन को
कसु लेल नहीं फिर ।—पद्माकर ।

घरुलप्रा—संज्ञा पुं० [हि० घरल] यह अधिक बस्तु जो खरीदार को
बिचल लौक के अतिरिक्त भी जाय । घेला। घाज ।

घवद*—संज्ञा स्त्री० दे० "गौद", "गौद" ।

घवरी*—संज्ञा स्त्री० [सं०] गहर । फलों वा पत्तियों का गुच्छा ।

घारा। उ०—(क) विरचे कनकमय रंभ रंभ अर्धंभ अर्ध
मखियात जू । तिमि घरीर घनि पयि पोदि लोहित सुमन
मंजु लापात जू ।—विश्राम । (ख) हेम घार मरुत घरीर
लसन पाटमय झोरि ।—तुलसी ।

घसकना—कि० अ० दे० 'विसकना' ।

घसखुदा—संज्ञा पु० [हि० घस + खेदना] (१) घाय खेदनेवाला ।

(२) घनाड़ी । मूर्ख ।

घसत—संज्ञा पु० [?] बकरा । (हि०)

घसना—*—कि० अ० [सं० घर्षण] रगड़ना । घिसना । उ०—मुँह

धोबित पैँडू घसति हूँसति अन्नैगवति तीर । घसति म इंदी-
वर-नयनि काशिंदी के नीर ।—विहारी ।

कि० सं० [सं० घसन] खाना । भक्षण करना । (हि०)

घसितना—कि० अ० [सं० घसित + ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु का
हस प्रकार खिंचना कि बड़ भूमि से रगड़ खाती हुई एक
स्थान से दूसरे स्थान पर जाय ।

घसियारा—संज्ञा पु० [हि० घस + आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० घसियारी
या घसियारिन] घास बेचनेवाला । घास छील कर लानेवाला ।

घसियारिन—संज्ञा स्त्री० [हि० घसियारा] घास बेचनेवाली स्त्री ।

घसियासी—संज्ञा स्त्री० [हि० घसियारा] घास बेचनेवाली स्त्री ।

घंसीट—संज्ञा स्त्री० [हि० घंसीटना] (१) जन्दी जरदी लिखने का
भाव । (२) जन्दी का लिखा हुआ लेख । (३) घंसीटने का
भाव । (४) बड़ मोटा फीता या हुसी प्रकार की धार कोई
पट्टी जिसकी सहायता से हवा में उड़ते हुए पालों को मसृज
श्रादि से धारिते हैं । (सश०)

घंसीटना—कि० सं० [सं० मुह, प्रा० घिहट + ना (प्रत्य०)] (१)
किसी वस्तु को हस प्रकार खिंचना कि बड़ भूमि से रगड़
खाती हुई एक स्थान से दूसरे स्थान को जाय । कड़ाना ।
उ०—मुनि विबुहन लखि नस गिय लोदी । लगे घंसीटन
धरि धरि भोटी ।—तुलसी ।

धा०—घमीटा घमीटी = धींचा खींचा । धींच तान ।
(२) जन्दी जन्दी खिंचना । जन्दी जन्दी लिख कर चलता करना ।
उ०—चार अक्षर घमीट दो । (३) किसी मामले में डालना ।
किसी काम में जखरदस्ती शामिल करना । उ०—मुहारे
जो भी मैं धारं करी, शरने साप धारं करे कथं घमीटते हे ।

घसता—संज्ञा पु० दे० 'घिसता' ।
घहनाना—*—कि० अ० [अनु०] धातुबंध पर धाघात लगने से
शब्द होना । धंटे श्रादि की ध्वनि निकलना । घहराना ।
उ०—मेखन की कनकार मधी तदै पल घंटा घहनाने ।
नरुत गाग माले मग जले दिगदू सी सकुचाने ।—रघुराज ।

घहरना—कि० अ० [अनु०] गरजने के ऐसा शब्द करना । गंभीर
ध्वनि निकालना । घोर शब्द करना । उ०—जहँ के तहँ
समाप रहे धम वेद नगाग धरत दे ।—द्वेषस्वामी ।

घहराना—कि० अ० [अनु०] गरजने के ऐसा शब्द करना । गंभीर
शब्द करना । गरजना । चिख्याइना । उ०—(क) धीसा लगे
घहरान शंख लगे हहरान, छत्र लगे घहरान, केतु लगे
पहरान ।—गोपाल । (ख) चारिहू धोर ते पैग ककरे-
ककरेन चोर घटा घहरानी ।—पद्माकर । (ग) हय दिनहिनात
भागे जात घहरात गज भारी भारी डीखि पेलि रंदि दीदि
शरदी ।—तुलसी ।

घहराना—संज्ञा स्त्री० [हि० घहराना] गरज । गंभीर ध्वनि ।
तुलुख शब्द ।

घहरारा—*—संज्ञा पु० [हि० घहराना] घोर शब्द । गंभीर ध्वनि ।
गरज । उ०—एक धोर जलद के माचे घहरारे मंजु एक धोर
नाकन के मदत नगारे हैं ।—रघुराज ।
वि० गरजनेवाला । घोर शब्द कनेवाला ।

घहरारी—*—संज्ञा स्त्री० [हि० घहराना] गंभीर ध्वनि । घोर शब्द ।
गरज । उ०—पुर ते ध्वि भारी कड़ी सवारी भै घहरारी
चाकन की ।—रघुराज ।

घांभ—संज्ञा स्त्री० [सं० ख । या घट = धोर ।] (१) दिया । दिक् ।
(२) धोर । तरफ । उ०—सूर तपहिँ हम सें जो कइती
तेरी धाँ है खरती ।—सूर ।

घांघरा—संज्ञा पु० [सं० घर्षण = खुरधरिका] [स्त्री० अण्य० घांघरी]
(१) बड़ खुननदार धोर घेरदार पहराया जिसे खिर्पा कमर
में पहनती हैं और जो पैर तक लटकता है । जहंगा । (२)
लोपिया । बोझा । बजरबट्ट ।

घांघरी—संज्ञा स्त्री० दे० "घांघरा" ।

घांघरी—*—संज्ञा पु० दे० "घांघरा" ।

घांघी—*—संज्ञा पु० [हि० घात + घी] तैली । (हि०)

घांघी—संज्ञा स्त्री० [सं० घंटिका] (१) गले के भीतर की
घंटी । कौंधा ।

मुहा०—घांघी घांघा = गले की घंटी की खजन को दबा कर
मिथाना । (यह रोग बच्चों को बहुत होता है ।)

विशेष—दे० "कौंधा" ।

(२) गला । उ०—उनरा घांघी हुषा माटी ।

घांघी—संज्ञा पु० [?] एक राग जो रैत के महीने में
गाया जाता है ।

घांघी—संज्ञा पु० [हि० घां] तरफ । धोर । उ०—सुकी बहूद
उड़ाह मत तनक तयी यहि घाँहें । दै धुनिया धुद धोम हद
गई सुबावन घाँहें ।—अ० म० ।

घांघी—संज्ञा पु० दे० "घाँह" ।

घांघी—संज्ञा स्त्री० [सं० घ अण्यता घट = धोर] धोर । तरफ । जैसे—
घाँघी ।

घाह—संज्ञा पु० दे० "घाय" ।

घाहया—कि० अ० दे० "घाना" ।

घाइल]—वि० दे० “घायल” ।

घाई*—संज्ञा स्त्री० [हि० घाँ या घाँ] (१) शोर । तरफ । श्रलग ।
उ०—(फ) प्यारी लजाय रही मुल फेरि दियो हैंसि हेरि
सखीन की घाईं ।—सु० दरीसवस्य । (ख) हैंसैं कुंद ऐ मुकुंद
सहैं वन वागन में करं चहुँ घाईं कीर कोकिला चवाईं
हैं ।—दीनदयालु । (२) दो वस्तुओं के बीच का स्थान । संधि ।
उ०—सुरियानहु में चरि चूर भयो दधि बंद पड़ेवन
घाईं कहुँ ।—हरिसेवक । (३) धार । दफा । (४) पानी में
पड़ता हुआ भँवर । गिरदाय ।

घाई—संज्ञा स्त्री० [सं० गभस्ति = उँगली] (१) दो उँगलियों के बीच
की संधि । छंटी । श्रेण्टे धार उँगली के मध्य का कोण ।
(२) पेड़ों धार डाल के बीच का कोना ।
संज्ञा स्त्री० [हि० वाय] (१) चोट । घ्राघात । मार । प्रहार ।
घार । उ०—जदपि गदा की घर्षा घड़ाई । पै कसु धार चक
की घाई ।—लाल । (२) पटेबाजी की विशेष चोट । जैसे—
दो की घाईं, चार की घाईं । (३) धोखा । चालबाजी ।
उ०—दई घोर श्रेष्यार में घोर घाईं । कभू सामुहें दाहिने वाम
घाईं ।—सूदन ।

मुहा०—घाईया यताना = कांता देना । टाल टूल करना ।

संज्ञा स्त्री० [हि० गार्हा] पाँच वस्तुओं का समूह । पंचकरी ।
गाही ।

घाउ—संज्ञा पुं० दे० “घाव” ।

घाऊचप—वि० [हि० खाऊ + चप वा चप] (१) चुपचाप माल
हनुम करनेवाला । गुप्त रूप से दूसरे का धन खानेवाला ।
(२) चुपचाप अपना मतलब निकालनेवाला । जिसकी चाल
जबदी न खुले । जिसका भेद कोई न पावे । चुपचा ।

घाग—संज्ञा पुं० दे० “घाघ” ।

घागही—संज्ञा स्त्री० [देग०] सवई । पटसन ।

घाघ—संज्ञा पुं० (१) गोंडे के रहनेवाले एक बड़े चतुर और
अनुभवयी व्यक्ति का नाम जिसकी कही हुई बहुत सी
कहावतें उत्तरीय भारत में प्रसिद्ध हैं । खेती बारी, ऋतु
काल तथा लग्न सुहृत्त आदि के संबंध में इनकी विलक्षण
उक्तियाँ किस्तान तथा और सर्वसाधारण लोग बहुत कहा
करते हैं । जैसे, घुम चाम से चाम कडाये, सुई
सकरी में सोवै । कहे घाघ ये तीनों भकूचा, बकुरि जाप और
रोवै । (२) अत्यंत चतुर मनुष्य । अनुभवी आदमी । गहरा
चालाक । सुर्रंत । सयाना । (३) इंद्रजाती । जादूगर ।
बाजीगर । उ०—जैसे तुम कहत उठाये एक गिरिवर ऐसे
कोटि कपिन के यालक उठावहीं । काटे जो कहत सीस, काटत
घनेरे घाघ, भाग के खेले कहा भट पद पावहीं ।—भेष्य ।
संज्ञा पुं० [हि० घृष्] उल्लू की जाति का एक पक्षी जो
चित के बराबर होता है

घाघरा—संज्ञा पुं० [सं० घर्पर = बुद्धयधिका] [स्त्री० अरप = तामरी]
यह चुननवार और घेरदार पहनावा जिसे गियां कमर में
पहनती हैं और जिससे कमर से लेकर पैरों तक श्रंग ढका
रहता है । लहंगा ।

घाँ—घाघरा पलटन = रकार्लैंड देश के पहाड़ी गोपों की सेना
जिनका पहनावा कमर से घुटने तक दाढ़ियों की तरह का
होता है ।

संज्ञा पुं० [सं० घर्पर = उरु] एक प्रकार का कचुर ।

संज्ञा पुं० [देग०] एक पौधे का नाम ।

संज्ञा स्त्री० [सं० घर्पर] तरजू नदी का एक नाम ।

घाघस—संज्ञा पुं० दे० “घाघ” पत्ती ।

घाघी—संज्ञा स्त्री० [सं० घर्पर] मधुली फँसाने का बड़ा जाल ।

घाट—संज्ञा पुं० [सं० घट] (१) नदी, सरोवर या और किसी
जलाशय का वह स्थान जहाँ लोग पानी भरते वा महाते
घोते हैं । नदी मील आदि का वह किनारा जिस पर पानी
तक उतरने के लिये सीढ़ियाँ आदि बनीं हों ।

मुहा०—घाट घाट का पानी पीना = (१) चांगे और देरा देशोंतर
में घूम कर अनुभव प्राप्त करना । अनेक स्थानों में अनेक प्रकार के
व्यापारों में रह कर जानकार होना । (२) इधर उधर मारे मारे फिस्तान ।
(३) नदी वा जलाशय के किनारे का वह स्थान जहाँ घोषी
कपड़े घोते हैं । जैसे—घोषी का कुत्ता न घर का न घाट का ।
(३) नदी वा जलाशय के किनारे का वह स्थान जहाँ नाव पर
चढ़कर या पानी में हलकर लोग पार उतरते हैं ।

मुहा०—घाट धरना = राह छूटना । जबरदस्ती के लिये रास्ते
में खड़े होना । उ०—घाट धरयो तुम यहै जानि कै कस्त
अनन के छुँद ।—सूर । घाट मारना = नदी की उतराई न
देना । नाव या पुत का महपूल बिना दिए चले जाना ।
घाट लगाना = नदी के किनारे बहुत से आदमियों का पार उतारने
के लिये इकट्ठा होना । नाव का पूरा खेवा इकट्ठा होना । नाव
का घाट लगाना = नाव का किनारे पर पहुँचना । (किसी का)
किसी घाट लगाना = कहीं ठिकाना पाना । कहीं आश्रय पाना ।
घाट नहाना = किसी के मरने पर उदक किया करना ।

(४) तंग पहाड़ी रास्ता । चढ़ाव उतार का पहाड़ी मार्ग ।

उ०—(क) घाट छोड़ि कत औघटि रंगहु कैसे लगिहटु पाता
हो ।—कबीर । (ख) है आगे परधत की घाट । विपण पहार
भ्रमण सुटि घाट ।—जायसी । (४) पहाड़ । (६) शोर ।
तरफ । दिशा । (७) रंग हंग । डाल । चाल डाल । डप । तीर
तरीका । भेद । मर्म । उ०—जो करनी श्रंतरं कसे, निकसे
सुँह की घाट । बोलत ही पछिचानिपु, चोर साहु को घाट
।—कबीर । (८) तलवार की धार जिसमें उतार चढ़ाव होता
है । तलवार की धाड़ का ऊपरी भाग । (९) योगिया का
गला । (१०) जो की गिरी । (११) दुलहिन का लहंगा ।
+ संज्ञा स्त्री० [सं० घाट वा हि० घट = कम] (१) धोखा ।
झल । कपट । (२) बुराई । कुर्म ।

† वि० [हि० घट] कम । घोड़ा ।

संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० घाटी, घाटिका] गरदन का विडुला भाग ।

घाट-कतान—संज्ञा पुं० [हि० घाट + कत० कैवलेन] बंदरगाह का प्रधान अण्ड्यक्ष ।

घाटवेदी—संज्ञा स्त्री० [हि० घाट + वी] (१) नाव या जहाज़ खोलने की मनदाई । किसी खोलने या चलाने की सुगमियत । (२) घाट बँधने का भाव या क्रिया ।

घाटा—संज्ञा पुं० [हि० घटना] घटी । हानि । नुकसान । उ०—
हस व्यवसाय में बन्दे बड़ा घाटा थाया ।

क्रि० प्र०—घाना ।—पड़ना ।—होना ।—उठाना ।—देना ।—
सहना ।—बैठना ।—खाना ।

मुहा०—घाटा उठाना = हानि सहना । नुकसान में पड़ना । घाटा
भरना = (१) नुकसान भरना । अपने पड़े का रक्का देना । (२)
नुकसान पूरा करना । हानि की कसर निकालना । कमी पूरी
करना ।

घाटारोहः—संज्ञा पुं० [हि० घाट + सं० रोह] घाट का रोक्का ।
घाट से किसी को उतरने व देना । उ०—इयवासहु घोरहु
तरनि कीजे घाटारोहः ।—तुलसी ।

घाटवाट—संज्ञा पुं० [हि० घाट + वाट (अल०)] घाट पर बैठनेवाला
प्राण्य जो स्नान करनेवालों से दान लेता है । घाटिया ।
गंगधुत्र ।

घाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गरदन का विडुला भाग । ऋषींदी और
रीढ़ का संधि भाग ।

घाटि—वि० [हि० घटना] कम । न्यून । घट कर ।

संज्ञा स्त्री० [सं० घाट, हि० घट = कम] पाप । नीच कर्म ।
बुराई । उ०—रावन घाटि रघी जग माहीं ।—तुलसी ।

घाटिया—संज्ञा पुं० [हि० घाट + इय (अल०)] तीर्थ स्थानों के घाटों
पर बैठ कर स्नान करनेवालों से दत्तया लेनेवाला प्राण्य ।
गंगधुत्र ।

घाटी—संज्ञा स्त्री० [हि० घट] (१) पर्वतों के बीच की भूमि ।
पहाड़ों के बीच का मैदान । पर्वतों के बीच का सकरा मार्ग ।
दर्रा । (२) पहाड़ की ढाल । चढ़ाव उतार का पहाड़ी मार्ग ।
उ०—चलूँ चलूँ सब कोई कहै पहुँचै थिरला कोय । एक
कनक एक कामिनी, दुर्गम घाटी दोय ।—कबीर । (३) मह-
सूली वस्तुओं को ले जाने का आजापत्र । रास्ते का कर वा
महसूल चुकाने का स्वीकारपत्र ।

संज्ञा स्त्री० [हि० घटना] गले का विडुला भाग ।

घाटो—संज्ञा पुं० [हि० घटना] (१) दे० “घाटा” ।

संज्ञा पुं० [हि० घट] एक प्रकार का गीत । घाटो ।

वि० [हि० घटना] दरिद्र । (हि०)

घाट—संज्ञा पुं० [सं०] [हि० घाटी] (१) पहाड़ । घाट । मार ।

घहा । जरप । उ०—(क) सुकै न घाट मार मुठ भेरी ।—
तुलसी । (ख) कपीय क्यूँ यात घाट यातिथि हिलोरी कै
।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—करना ।—चलाना ।—होना ।

मुहा०—घाट चलाना = मारन मोहन आदि प्रयोग करना । मूढ़
चलाना । जादू देना करना ।

(२) बध । हत्या ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

घा०—गोघात । नरघात । विधासघात ।

(३) अहित । बुराई । उ०—हित की कहौ न, कहौ अंत
समय घात की ।—प्रताप । (४) (गणित में) गुणन फल ।

(२) (व्येतिष में) प्रवेश । संक्रांति ।

घा०—घाततिथि । घातवार ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अभिप्राय सिद्ध करने का उपयुक्त
स्थान और अवसर । कोई कार्य करने के लिये अनुकूल
स्थिति । दायें । सुयोग । उ०—अप घपनी घात निरखत
तेज जम्घो बनाइ ।—मूर ।

क्रि० प्र०—तरुना ।

मुहा०—घात पर चढ़ना = किसी की ऐसी स्थिति होना जिससे
दूरे का मतलब सिद्ध हो । अभिप्राय साधन के अनुकूल
होना । दाँव पर चढ़ना । बरा में आना । हृष्ये चढ़ना ।
घात में घाना = दे० “घात पर चढ़ना ।” घात में
पाना = किसी को ऐसी स्थिति में पाना जिससे कोई अर्थ
सिद्ध हो । बरा में पाना । घात लगना = मुयोग मिलना ।
किसी कार्य के लिये अनुकूल स्थिति होना । उ०—हमरिउ
लागी घात तव हमहूँ देव कलंक ।—विश्राम । घात
लगाना = अथवर ह्राप में लेना । युक्ति भिड़ाना । तर्दीर करना ।
काम निकालने का दर्रा निकालना । उ०—कैलि के राति
अघाने नहीं दिन ही में खला पुनि घात लगाई ।—मानिराम ।

(२) किसी पर आक्रमण करने या किसी के विरुद्ध और
कोई कार्य करने के लिये अनुकूल अवसर की मोल । किसी
कार्य-सिद्धि के लिये उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा । ताक ।
जैसे—शेर या बिल्ली का शिकार की घात में रहना । डाकुओं
का लूटने की घात में रहना ।

मुहा०—घात में गिरना = ठाक में धूमना । अनिष्ट घाघने के लिये
अनुकूल अवसर देते हैं घात । उ०—बससे बचे रहना, बध
बहुत दिनों से तुम्हारी घात में फिर रहा है । घात में बैठना =
आक्रमण करने वा मारने के लिये तैयार कर बैठना । किसी के
विरुद्ध कोई कार्य करने के लिये गुन रूप से तैयार रहना ।
उ०—चिरघट्ट अचरु अरोही बँडा घात मानो पातक के मान
घोर साधन सँघारिहँ ।—तुलसी । घात में रहना = किसी के
विरुद्ध कोई कार्य करने के लिये अनुकूल अवसर देते हैं रहना ।

ताक में रहना। घात में होना = किसी के विरुद्ध कार्य करने की ताक में होना। घात लगाना = किसी कार्य के लिये अनुकूल अवसर ढूँढ़ना। भौका ताकना। उ०—वह बहुत देर से घात लगाए बैठा है।

(३) दाँवें पंच। घाल। घालवाजी। कपट सुक्ति। उ०—मोती कहति श्याम हैं कैसे ऐसी मिलई घातें।—सूर।

मुहा०—घातें बताना = (१) चाल सिलाना। (२) बालवाजी करना। रास्ता बताना। बहलाना।

(४) रंग ढंग। उय। धज। तीर तरीका।

घातक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हथारा। मार डालनेवाला। (२) हिंसक। पथिक। अज्ञात। (३) फलित ज्योतिष में वह योग जिसका फल किसी की मृत्यु हो। (४) शत्रु। दुरमन।

घातकी-संज्ञा पुं० दे० "घातक"।

घातवर्त्तना-संज्ञा स्त्री० [सं०] फोहल सुनि के मत से नृप में एक प्रकार की घर्त्तना।

घातिक-संज्ञा पुं० दे० "घातक"।

घातिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मारनेवाली। घष करनेवाली। (२) नाश करनेवाली। उ०—यज्ञी विकराल बाल घातिनी न जात कहि, घातु बल घालक छुपीले छोटे छुरीगी।—तुलसी।

घातिघा-संज्ञा पुं० दे० "घाती"।

घाती-संज्ञा पुं० [सं० घातिन्] [स्त्री० घातिनी] (१) घातक। घष करनेवाला। मारनेवाला। संहारक। उ०—हम जड़ जीव जीवगण घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती।—तुलसी।

(२) नाश करनेवाला।

घातुक-वि० [सं०] हिंसक। नाशकारी। (२) क्रूर। निन्दुर।

घान-संज्ञा पुं० [सं० घन = समूह] (१) बतनी वस्तु जितनी एक बार डाल कर कोल्हू में पेरी जाय। उ०—पहले घान का तेल अर्च्छा नहीं होता। (२) उतनी वस्तु जितनी एक बार चक्की में डाल कर पीसी जाय। (३) उतनी वस्तु जितनी एक बार में पकाई वा भूनी जाय। उ०—दो घान पुरियाँ निकाल कर अलग रल दे।

मुहा०—घान उतरना = (१) कोल्हू में एक बार डाली हुई वस्तु से तेल वा रस आदि निकलना। (२) कढ़ाई में से पकवान का निकलना। घान उतरना = कोल्हू में से तेल, रस आदि तथा कढ़ाई में से पकवान निकलना। घान डालना = (१) कोल्हू में घेरने वा कढ़ाई में एक बार में तलने के लिये वस्तु डालना। (२) किसी काम में हाथ लगाना। घान पड़ना = कोल्हू में घेरने वा कढ़ाई में पकवान के लिये वस्तु का डाला जाना। घान पड़ जाना = किसी काम में हाथ लगे जाना। किसी कार्य का आरंभ हो जाना। घान लगना = घान का कार्य आरंभ होना।

संज्ञा पुं० [हिं घन = बहु द्रव्योऽ] प्रहार। घोट। घाघात। उ०—मंद मंद उर पै अनंद ही के आँसुन की, यतैं सुखें सुकतान ही के दाने सी। कहै पदुसाकर प्रपंची पंचवानन न, फानन की भान पै परी खों घोर घाने सी।—पदुसाकर।

घाना^१-कि० सं० [सं० घात, प्रा० घाय + ना (प्रत्य०)] मारना। संहार करना। नाश करना। (इस शब्द का प्रयोग मजभाषा में घायये, घंघे आदि रूपों में ही मिलता है।) उ०—बाग तोरि रगड़, बल आपनो जनाइ ताको एक पूत घाइ तय सिं धु पर जाइहौं।—हनुमान।

कि० सं० [हिं० गदना = पकड़ना] पकड़ना।

घानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गान] (१) उतनी वस्तु जितनी एक बार में चक्की में डाल कर पीसी या कोल्हू में डाल कर पेरी जा सके। दे० "घान"। उ०—(क) समर तैलिक यंत्र, तिल तमीचर निकर, पेरि डारे सुभट घालि घानी।—तुलसी। (ख) सुकृत सुमन तिल मोद बास विधि जतन यंत्र भरि घानी।—तुलसी।

कि० प्र०—उतरना।—उतारना।—डालना।—पड़ना।

मुहा०—घानी करना = पेलना।

(२) समूह। ढेर।

घानी की सवारी-संज्ञा स्त्री० मालखंभ की एक कसरत जिसमें एक हाथ में मोंगरा पकड़ कर मलखंभ के चारों ओर घानी वा कोल्हू के बेल के समान चकर देते हैं।

घामा^१-संज्ञा पुं० [सं० घर्म, प्रा० घम्म] धूप। सूर्यांतर। उ०—घाम घरीक निवारिये कलित ललित अलिपुंज। जमुना तीर तमाल तरु मिलति मालती कुंज।—विहारी।

कि० प्र०—लगाना।—देना।—चढ़ना।—निकलना।

मुहा०—घाम खाना = (१) गरमी के लिये धूप में रहना। (२) ऐसे स्थान पर रहना जहाँ धूप वा सूर्य की गरमी का प्रभाव पड़े। घाम लगना = रू लगना। घर घाम में खाना = आफत में डालना। विपत्ति में डालना। घर में घाम खाना = बड़ी कठिनाई का सामना होना। बड़ी मुसीबत होना। जैसे—इस काम को करना सहज नहीं है, घर में घाम आयेगा।

घामड़-वि० [हिं० घाम] (१) घाम वा धूप से व्याकुल (घोपाया)। धूप लग जाने के कारण हर समय हाँफनेवाला (घोपाया)। (२) जिसके होमा ठिकाने न हों। नासमझ। मूर्ख। जड़। गावदी। बोधा। (३) बालसी अहदी।

घायी^१-संज्ञा पुं० [सं० घात] [वि० घायक] घाय। क्षय।

घायक-वि० [हिं० घातक] (१) विनाशक। मारनेवाला। उ०—हुजुंन दल घायक थी रघुनायक सुखदायक त्रिभुवन शासन।—केशव। (२) घायल करनेवाला। जिससे घाय हो जाय।

घायल-वि० [हिं० घाय] जिसके घाय लगा हो। घोट खाय। घुषा। सुदेल। जल्मी। आहत।

संज्ञा पुं० कनकौष्ट के एक रंग का नाम ।

घारा—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त] पानी के बहाव से कट कर बना हुआ मार्ग या गड्ढा ।

घारि—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरिफ] घास फूस से छाया हुआ वह मकान अर्थाँ चौपाये धोये जाने हैं । खरका ।

घाल, घालना—संज्ञा पुं० [हिं० मालना] सौदे की उतनी वस्तु कितनी माहक को लाल वा गिनती के ऊपर दी जाय । धलुआ ।

मुहा०—घाल न गिनना = पैसे वरावर भी न समझना । तुच्छ समझना । हेच समझना । उ०—(क) रघुवीर बल गर्वित विभीषण घाल नहिं' ता कहैं गनै ।—तुलसी । (ख) धीर करि केसरी कुटारपानि मानी हार तेरी कहा चली विद तो को गनै घाल को ।—तुलसी । (ग) चढ़हिं कुँवर मन फरै बड़ाह । धारो घाल गनै नहिं' काह ।—जायसी ।

घालक—संज्ञा पुं० [हिं० घालना] [सं० मालिका] (१) मारनेवाला । (२) नाथ करनेवाला ।

घालकता—संज्ञा स्त्री० [सं० घालक + ता (प्रत्यय)] मारने का काम । विनाश करने की क्रिया । उ०—घानि कोमल कै सय बालकता । यह दुक्कर राखस प्रालकता ।—देशव ।

घालना—किं० घ० [सं० घटन, प्र० घटन वा घसन] (१) धालना । रसना । किसी वस्तु के भीतर वा ऊपर रखना । उ०—(क) को अस हाप सिंहा मुख घालै । को यह घात पिता सौं चालै ।—जायसी । (ख) सो मुखल राख्यो उर घाली । जीवहु सहसबाहु बलि बाली ।—तुलसी । (ग) स्वदन घालि तुरत गृह भ्राना ।—तुलसी । (२) फेंकना । चलायना । छोड़ना । उ०—(क) जिन निवन में बसत हैं रसनधि मोहनलाल । तिन में कबो घालत धरि तैं भरि मूढ मुखाल ।—रसनधि । (ख) पहिल घाव घालौ तुम धावै । दिये दौर रहि जैहै पावै ।—लाल । (३) कर धालना । उ०—कहि के बल घालेसि वन खीसा ।—तुलसी ।

विशेष—पृथी हिंदी (भाषिक) में 'घालना' क्रिया का प्रयोग 'घालना' के समान संयोग किं० के रूप में भी होत है जैसे 'कह घालेसि' ।
(४) बिगाड़ना । नारा करना । जैसे—घर घालना । उ०—चित्रनेतु कर घर दून घाला ।—तुलसी । (५) मार डालना । धध करना ।

घालमेल—संज्ञा पुं० [हिं० घालना + मेलना] (१) कई मिला प्रकार की पस्तुओं की एक साथ मिलावट । गड़ गड़ । (२) मेल जोल । घनिष्टता ।

किं० प्र०—करना ।—रखना ।—बढ़ाना ।

घालिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० घालक] नष्ट करनेवाली । विनाश करनेवाली ।

घालिनो—संज्ञा स्त्री० [हिं० मालना] मारा करनेवाली । मार डालनेवाली ।

घाव—संज्ञा पुं० [सं० घात, प्र० घाव] शरीर पर का वह स्थान जो कट या चिर गया हो । घुत । जूथम ।

मुहा०—घाव खाना = जूथमी होना । पायल होना । घाव पर नमक या खोन डिट्टकना = दुःख के समय और दुःख देना । शोक पर और शोक उत्पन्न करना । घाव देना = दुःख पहुँचाना । शोक में डालना । घाव पतना वा भरना = घाव का श्थिर होना ।

घाघरा—संज्ञा पुं० [देग०] एक बड़ा पेड़ जो बहुत ऊँचा और सुंदर होता है । इस की छाल चिकनी और सफेद होती है और हीर की लकड़ी बहुत चमकीली तथा रङ्ग होती है । यह पेड़ हिमालय पर ३००० फुट की ऊँचाई पर होता है । लकड़ी इसकी नाव जहान तथा खेती के सामान बनाने के काम में धाती है । इसकी पत्तियों से चमड़ा सिक्काया और कनाया जाता है ।

घाघरिया—संज्ञा पुं० [हिं० घाघ + रिया (वाक्य)] घाघों की जिक्रिखा करनेवाला । सतिया । जर्हि । उ०—तव चाखे लै लाठी कर में । पहुँच्यो घाघरिया के घर में । ताहि कहयो फोहा अस दीवै । घाघ 'पर्व को तुरत भरीवै ।—निश्चल ।

घास—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी पर उगनेवाले छोटे छोटे उद्भिद जिन्हें चौपाए चरते हैं । नूथ । चारा ।

किं० प्र०—काटना ।—घरना ।—दिलना ।

घास पात = (१) नूथ और बनसति । (२) खर पतवार । कूड़ा करकट । घास फूस = (१) कूड़ा करकट । खर पतवार । (२) वेकाम चीज ।

मुहा०—घास काटना या सोदना = (१) तुच्छ काम करना । छोटा और रहस काम करना । (२) व्यर्थ काम करना । निरर्थक प्रयत्न करना । उ०—तुम सौं प्रेम फया को कहियो मने काटियो घास ।—सूर । (२) किसी काम को देखवाही से जल्दी जल्दी करना । घास खाना = पशु बनना । पशु के समान हो जाना । घास खीलना = (१) लुपे से घास को जड़ के पास से काटना । (२) दे० "घास काटना" ।

(२) एक प्रकार का रोसामी कपड़ा । (३) कानून पत्री आदि के महीन कटे हुए टुकड़े जो ताजिज् तथा और किसी वस्तु पर सजावट के लिये चिपकाए जाते हैं ।

घासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घास] घास । चारा । नूथ । उ०—घारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी ।—तुलसी ।

घाह—संज्ञा पुं० [सं० गार्भति = उँगली] डँगलियों के बीच की संधि । गावा । घाई । उ०—घारै घान, हल धनु, भूपथ जलघर, भँवर सुमग सय घाई ।—तुलसी ।

धिर्मा-संज्ञा पुं० दे० "धी" ।

धिर्माडा-संज्ञा पुं० [हिं० धी + डा] धी रखने का मिट्टी का बरतन । घृतपात्र । अमृतवान ।

धिन्ना-संज्ञा पुं० दे० "धिया" ।

धिर्डा-संज्ञा पुं० दे० "धी" ।

धिग्धी-संज्ञा स्त्री० [अन्०] (१) सांस लेने में वह रुकावट जो रते रते पड़ने लगती है । हिचकी । सुचकी । (२) डर के मारे मुँह से स्पष्ट शब्द न निकलना । धोबने में यह रुकावट जो मय के मारे पड़ती है ।

मुहा०—धिग्धी बँधना = (१) रते रते सांस का रुक रुक कर निकलना और स्पष्ट शब्द मुँह से बाहर न होना । हिचकी बँधना । (२) डर के मारे मुँह से साफ़ थोली न निकलना ।

धिधियाना-क्रि० अ० [हिं० धिग्धी] (१) रो रो कर धिनती करना । गिड़गिड़ाना । करुण स्वर से प्रार्थना करना । (२) चिहाना ।

धिचपिच-संज्ञा स्त्री० [सं० घृष्ट पिच] (१) स्थान की संकीर्णता । जगह की तंगी । सँकरापन । (२) थोड़े स्थान में घटुत से व्यक्तियों वा वस्तुओं का समूह ।

वि० अस्पष्ट । जो साफ़ न हो । गिचपिच । जैसे—यड़ी धिचपिच लिखावट है, साफ़ पढ़ी नहीं जाती ।

धिन्-संज्ञा स्त्री० [सं० धृष्ण] [क्रि० धिनाना । वि० धिनाना] (१) चित्त की वह खिन्नता जो किसी छुरी या कुरिस्त वस्तु को देख या सुन कर उत्पन्न होती है । अरुचि । नफ़रत । घृणा । (२) किसी गंदी चीज़ को देख सुन कर जी मचलाने की सी अवस्था । जी बिगड़ना ।

क्रि० प्र०—धिन् खाना ।—बगाना ।

मुहा०—धिन् खाना = घृणा करना । नफ़रत करना ।

धिनाना-क्रि० अ० [हिं० धिन] घृणा करना । नफ़रत करना । उ०—ज्ञान गहरीन सो रचि माने । गहरीन सेते धनव्याम धिनाने ।—रसकुसुमाकर

धिनाधना-वि० [हिं० धिन + धनना (प्रय०)] [सं० धिनाने] जिसे देख कर धिन लागे । घृणित । घुरा । गंदा ।

धिनाधी-संज्ञा स्त्री० दे० "धिर्धीची" ।

धिनाना-वि० दे० "धिनाधना" ।

धिनारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धिन] ग्वालिन नाम का कीड़ा ।

धिग्धी-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "धिन्नी" । (२) दे० "धिन्नी" ।

धिया-संज्ञा पुं० दे० "धी" ।

धिया-संज्ञा पुं० [हिं० धी] (१) एक प्रकार की बेल जिसके फलों की तरकारी होती है । इसके पत्ते गोल गोल कुम्हड़े की तरह के और फूल सफ़ेद रंग के होते हैं । धिया दो प्रकार का होता है—एक लंबे फल का और एक फल की जिसे कद्दू कहते हैं । इसकी एक

जिसे तिलौकी कहते हैं । धिया बहुत मुलायम होता है तथा गुण में शीतल और रोगी के लिये पथ्य माना जाता है । इसके बीज का तेल (कद्दू का तेल) सिर का दर्द दूर करने के लिये लगाया जाता है । इसे लौकी या लौभा भी कहते हैं । †(२) नेनुधा । धिया तोरी ।

धियाकश-संज्ञा पुं० [हिं० धिया + का० का] चौकी के आकार की एक वस्तु जिसमें बमड़े हुए छेद धिया, कद्दू, पेठे आदि को थारीक छीलने के लिये बने रहते हैं । कद्दूकश ।

धियातोरई-संज्ञा स्त्री० दे० "धियातोरी" ।

धियातोरई-संज्ञा स्त्री० दे० "धियातोरी" ।

धियातोरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धिया + तोरी] एक प्रकार की बेल जिसके लंबे लंबे फलों की तरकारी होती है । इसके पत्ते गोल और फूल पीले रंग के होते हैं । फल लंबाई में ८-१० अंगुल और मोटाई में दो आडे अंगुल होते हैं । मूस में इसे नेनुधा कहते हैं । इसके दो भेद होते हैं । एक साधारण जिसके फल लंबे और बड़े होते हैं और दूसरा सतपुतिया जो घाँद में फलती और छोटे फलोंवाली होती है ।

धिरता-संज्ञा पुं० दे० "धृत्" ।

धिरना-क्रि० अ० [सं० प्रवृष्ण] (१) किसी चारों ओर फैली हुई वस्तु के बीच में पड़ना । किसी वस्तु से चारों ओर घाट होना । सब ओर से टेंका जाना । आवृत होना । आवेशित होना । घेरे में आना । उ०—वह चारों ओर शयुओं से घिर गया । (२) चारों ओर छाना । चारों ओर इकट्ठा होना । जैसे—घटा धिरना । (इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग घटा और बादल के ही साथ होता है ।)

धिरनी-संज्ञा स्त्री० [सं० धूर्ण] (१) गाराड़ी । चरही । (२) चकर । फेरा ।

मुहा०—धिरनी खाना = चकर खाना । चारों ओर फिरना ।

(३) रस्ती बटने की चरखी । (४) दे० "गिन्नी" । (५) एक जल-पत्ती जो जल के ऊपर फड़फड़ाता रहता है और मछली देखते ही चट से हट पड़ता है । कौड़ियाला । किलकिला । (६) लोटन कपूर ।

धिराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] (१) घेरने की क्रिया या भाव । (२) पशुओं को चराने का काम । (३) पशुओं को चराने की मजूदरी ।

धिराई-संज्ञा पुं० [सं० धार, हिं० धार, सारथी] मूच की दुर्गंध । धिराव-संज्ञा पुं० [हिं० धरना] (१) घेरने की क्रिया या भाव । (२) घेरा ।

धिरिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० धिरना] मनुष्यों का घेरा जो शिकार को घेरने के लिये बनाया जाय ।

धिरिया में धिरना = अग्रमंतव या कठिनता में पड़ना । अवस्था में पड़ना जिससे निवार कठिन हो ।

चिरौची—संज्ञा स्त्री० दे० "चिरौची" ।
 चिरौरा—संज्ञा पुं० [दे०] धूम का बिल । उ०—माझी कहे
 अपने घर माझूक सुता कहे अपने घर ऐसे। कोने सुसी
 कहे धूम चिरौरा, बिलारि औ व्याज बिले सुह वैसे।—
 बंशव ।

चिरना—कि० सं० [चनु० वर] रगड़ना । घिसना ।
 चिरौना—कि० सं० [चनु० विरि] (१) घसीटना । (२) हिं
 (२) घिसिथाना । गिद्धगिद्धना । (पुं० सं०)
 चिरौ—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) एक प्रकार की घास । (२) दे०
 "चिरौली" । (३) "चिरौली" ।

चिर्या—संज्ञा पुं० दे० "धी" ।
 चिसकना—कि० अ० दे० "क्षसकना" ।
 चिसचिस—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिसना] (१) अनुचित विलंब । वह
 देर जो सुनी के कारण हो । कार्य में शिथिलता । अतपरता
 उ०—हसी तुम्हारी चिसचिस में बाह्य वज गए । (२) कोई
 बात स्थिर करने में व्यर्थ का विलंब । अनिश्चय । गड़बड़ी ।
 चिसटना—कि० अ० दे० "पविटना" ।
 चिसना—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिसना] रगड़ ।

चिसना—कि० ग० [सं० चर्षण, प्रा० चसण] (१) एक धनु को दूसरी
 वस्तु पर रख कर खूब दबाते हुए दब र उधर फिराना । रग-
 डना । उ०—इसमें मथर पर चिस दो से चिकना हो
 जायगा ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।
 मुहा०—चिस घिस कर चलना = बहुत दिने तक खूब काम में
 लाया जाना और चसना ।
 (२) किसी वस्तु को दूसरी वस्तु पर दब प्रकार रगड़ना कि
 उसका कुछ अथ एट कर अलग हो जाय । जैसे, चंदन
 चिसना ।

मुहा०—चिस लगाने को नहीं = चिस कर नित्रक वा अंजन
 लगाने भर को भी नहीं । जेश मात्र नहीं ।
 (३) सोमो करना । (बाजारू)
 कि० अ० रगड़ खाकर कम होना वा धीमना । उ०—जूते
 की धुँकी अतते चलते चिस गई ।
 संयो० क्रि०—जाना ।—उठना ।

चिसरिसा—संज्ञा स्त्री० [चनु०] (१) चिस चिस । (२) सटावटा ।
 मेल जोल ।
 चिसयाना—कि० सं० [हिं० चिसना का प्रे०] चिसने का काम
 करना । रगड़वाना ।
 चिसार—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिसना] (१) चिसने की क्रिया । (२)
 चिसने की मजूदरी । (३) चिसने का भाग ।
 चिसाना—कि० सं० [हिं० चिसना का प्रे०] रगड़ाना ।
 चिसाव—संज्ञा पुं० [हिं० चिसना] रगड़ ।

चिसावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिसना] रगड़ । चिसव ।
 चिसिआना—कि० सं० [सं० चर्षण] घसीटना ।
 चिसिर चिसिर—संज्ञा स्त्री० दे० "चिसपिल" ।
 चिस्ट चिस्ट—संज्ञा पुं० [सं० चूट विट] (१) गहरा मेल जोल ।
 प्रगाढ़ मित्रता । गहरी घनिष्टता । (२) अनुचित संबंध ।
 अथविम संबंध ।

चिस्समचिस्सा—संज्ञा पुं० [हिं० चिसना] (१) गहरा धका । खूब
 मीठ मीठ । (२) लड्डों का एक खेल जिसमें एक अपनी
 डोरी या नख को दूसरे की नख या डोरी में रँवा कर भटका
 देता या रगड़ता है जिसमें हसी की डोरी कट जाय ।

चिस्सा—संज्ञा पुं० [हिं० चिसना] (१) रगड़ा । उ०—चिस्सा
 लगते ही कनक्रीया कट गया ।
 क्रि० प्र०—पड़ना ।—बैठना ।—लगना ।

(२) धका । टोक । (३) वह आघात जो पहलवान अपनी
 कुदनी और कलाई के बीच की हड्डी की रगड़ से देते हैं ।
 कुंदा । रदा । (४) लड्डों का एक खेल जिसमें एक अपनी
 नख या डोरी की रगड़ से दूसरे की नख या डोरी को काटने
 का यत्न करता है ।

धीचा—संज्ञा स्त्री० [हिं० धीचना वा सं० धीव] गरदन । प्रीवा ।
 धीचना—कि० सं० [सं० कर्षण, हिं० खीचना] खीचना । धुँचना ।
 धी—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुव, प्रा० धीच] दूध का चिकना सार जिसमें से
 जल का अंश तपा कर निकाल दिया गया हो । तपाया
 हुआ मखन । घृत ।

मुहा०—धी कड़कड़ाना = साफ और बोधा करने के लिये धी को
 तपाना । धी का कुप्पा लुठाना = किसी बहुत बड़े धनी का मर
 जाना । किसी बड़े आदमी की मृत्यु होना । (१) मारी हानि होना ।
 बहुत नुकसान होना । धी के कुप्पे से जा लगना = किसी ऐसे
 स्थान तक पहुँच जाना जहाँ खूब प्रति हो । किसी धीरे धनी
 तक पहुँच होना जहाँ खूब मात्र मिले । धी का देरा =
 धी की धार जो दाह आदि में झलते समय बँध जाती है ।
 धी का डोग देना = किसी मोहन में तपाया हुआ धी डालना ।
 धी के जलना = दे० "धी के दीए जलना" । धी के दीए
 जलना = (१) कामना पूरी होना । मनोरथ एकत होना । (२)
 आनंद मंगल होना । उत्सव होना । (३) सुख सौभाग्य की
 दशा होना । धन धन्य की पूर्णता होना । समृद्धि होना ।
 ऐश्वर्य होना । धी के दीए जलना = (१) आनंद मंगल
 मनाना । उत्सव मनाना । (२) सुख संतति का भोग करना ।
 बड़े सुख चीन से रहना । धी के दीए भरना = (१) आनंद
 मंगल मनाना । उत्सव मनाना । उ०—धूप गई अग्निमान के
 पाव कइयो अथ दीए भरो तप धी के।—हनुमान । (२)
 सुख संतति का भोग करना । बड़े सुख चीन से रहना । धी

खिचड़ी = खूब मिला गुंजा। घी खिचड़ी होना = खूब मिला गुंज जाना। अमिन्न टटप होना। (किसी की) पंचि डैंगली घी में होना = खूब आराम चैन का मौका मिलना। मुल भोग का अक्सर मित्रना। खूब खाम होना।

घीउ, घीऊ—संज्ञा पुं० दे० "घी"।

घीकुवाँर—संज्ञा पुं० [सं० घृण्णुमरी] ग्वारपात्र। गोडपट्टा।

घुईयाँ—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक तरकारी। धरवी।

घुगची—संज्ञा स्त्री० दे० "घुघची"।

घुघची—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंजा, प्रा० गुंवा] (१) एक प्रकार की मोटी बेल जो प्रायः जंगलों में बड़ी बड़ी झाड़ियों के ऊपर फैली हुई पाई जाती है। इसकी पत्तियाँ हमली की पत्तियों की ही थीर खाने में कुछ मोटी होती हैं और फूल सेम के फूलों के समान होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर मटर की तरह की फलियाँ गुच्छों में लगती हैं जो जाड़े में सूख कर फट जाती हैं और उनके भीतर के जाल लाल बीज दिखाई पड़ते हैं। ये ही बीज घुघची वा गुंजा के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका सारा श्रेय खाने होता है केवल मुल पर घोट्टा सा काजा दूँटा रहता है जो बहुत सुंदर लगता है। सफेद रंग की घुघची भी होती है जिसके सुँह पर काजा दाग नहीं होता। मुलेठी या लेठी मनु इसी घुघची की जड़ है। वैद्यक में घुघची कड़ुई, बलकारक, केरा और खवा को हितकारी, तथा मय, कुष्ठ, गंज इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है। जड़ और पत्ते विषमत्वाक कहे जाते हैं। सफेद घुघची धरौकरंय की सामग्री मानी जाती है। (२) इस लता का बीज।

पय्यां—रक्तिका। गुजिका। कृष्णला। काकिनी। कषा। कान्ठी। काकशिंघी। कांची। सौम्या। शिल्पेटी। धरणा। कांशेजी। काकशिंघी। चटकी।

घुघनी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] मिगो का घी या तेल में तला हुआ चना, मटर या और कोई सब। घुघरी।

मुहा०—घुघनियाँ सुँह में रख कर बँडना = चुपचाप बँडना। मौन होकर बँडना।

घुघरारे—वि० [हिं० घुमरना + वरे] घुघराले। घुघरवाले। व०—मुगमद मलय अलक घुघरारे। उन मोहन मन हरे हमारे।—सूर।

घुघराळे—वि० [हिं० घुमरना + वले] [स्त्री० घुघराली] घूमे हुए (वाल)। टेढ़े और बज खाए हुए (वाल)। धरलेदार। (वाल)। घुघरवाले। कुचित।

घुघरू—संज्ञा पुं० [अनु० घुन घुन, + सं०-रव वा रू] (१) किसी घातु की घनी हुई गोल और पोखी गुरिया जिसके भीतर 'घन घन' घजन के लिये कंकड़ भर देते हैं। बीरासी। मंजीर।

मुहा०—घुघरू सा बदन = शरीर में बहुत अधिक कुंवियाँ, चेचक या छाले आदि निकलना।

(२) ऐसी गुरियों का बना हुआ पैर का एक गहना जो बच्चे या नाचनेवाले पहनते हैं।

मुहा०—घुघरू बाँधना = (१) नाचने में चेला करना। (२) नाचने के लिये तैयार होना।

(३) गले का यह घुर घुर शब्द जो मरते समय कफ छूँकने के कारण निकलता है। घुटका। घटका।

मुहा०—घुघरू खोलना = धरौ लगना। घटका लगना। मरते समय कफ छूँकना।

(४) यह कोश जिसके भीतर चने का दाना रहता है। घट के ऊपर की खोल। (५) सर्दई का फल जिसके भीतर बीज रहते हैं। (सूखने पर ये फल बगले हैं जिसके कारण लड़के उन्हें खेल के लिये पाँव में बांधते हैं)।

घुघरूदार—वि० [हिं० घुघरू + दार] जिसमें घुघरू लगे हैं।

घुघरूबंद—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुघरू + सं० बंध, फा० बंद] वह बरैया जो नाचने के काम का काम करती हो।

घुघरूमेतिधा—संज्ञा पुं० [हिं० घुघरू + मेतिधा] एक प्रकार का मेतिधा बेल।

घुघुवारे—वि० दे० "घुघुवालें"। व०—घुघुवारी लट्टें लट्टें मुल ऊपर।—गुनसी।

घुँट—संज्ञा पुं० [दे०] एक जंगली पेड़ जिसे घोंट भी कहते हैं। इसकी छाल और फलियों से चमड़ा सिमाया जाता है।

घुँटना—क्रि० प्र० दे० "घुटना"।

घुँडो—संज्ञा स्त्री० [सं० घुँप] (१) कपड़े की सिंजी हुई मटर के झाकार की छोटी गोली जिसे और खेवा वा कुते घादि का पला बंद करने के लिये टाँकते हैं। कपड़े का गोल बदन। गोपक।

मुहा०—घुँडी लगाना = (१) घुँडी टाँकना। (२) घुँडी में नुकामे से और खेवा आदि का पला अटकाना। जी की घुँडी खोलना = हृदय की गंठ खोलना। चित से दुर्भाव वा द्वेष निकालना।

(२) हाथ या पैर में पहनने के कड़े के दोनों छोरों पर की गाँठ जो कड़े झाकार की बनाई जाती है। (३) बाजू, जोहन, आदि गहनों में लगी हुई धातु की गोल गाँठ जिसे सूत के धर में डाल कर गहनों के कसते हैं। यह घुँडी प्रायः लटकती रहती है। (४) एक प्रकार की घास। (५) घास का थंडा जो खेत कटने पर आड़ से फूट कर निकलता है। देहवा।

घुँडीदार—वि० [हिं० घुँडी + फा० दार] जिसमें घुँडी लगी हो। संज्ञा पुं० एक प्रकार की सिंजाई जिसमें एक टाँके के बाद दूसरा टाँका फंदा डाल कर लगाते जाते हैं।

पुंसा-संज्ञा पुं० [देश०] एक लकड़ी जिसके सहारे से जाठ उड़ा कर कोलह में ढालते हैं।

घुघ्रा-संज्ञा पुं० दे० "घुघ्रा"।

घुहरना-कि० घ० दे० "घुहरना"।

घुहरसा-संज्ञा घ० दे० "घुहर"।

घुकुघ्रा, घुकुघ्रा-संज्ञा पुं० दे० "घुका"।

घुग्गी-संज्ञा घ० [देश०] (१) निकोना लपेटा हुआ कंबल आदि जिसे किसान वा गन्दीरूप धूप, पानी, और शीत से बचने के लिये सिर पर ढालते हैं। घोंघी। छुटुघ्रा। (२) कपोत जाति की एक चिड़िया जिसका रंग लाल पकी हुई ट की तरह का होता है। इसकी बोली कबूतर से भिन्न होती है। टुटक। पेंडकी। घेंडक। फुधरा।

घुग्गू-संज्ञा पुं० [सं० घुक्] (१) उरलू नाम की चिड़िया। (२) मिट्टी का एक खिलौना जो बच्चों से बजता है।

घुघुघ्रा-संज्ञा पुं० दे० "घुग्गू"।

घुघुघ्राना-कि० घ० [हि० घुग्गू] (१) उरलू पक्षी का घोलना।

- (२) बिल्ली का गुर्गना। (३) उरलू की तरह घोलना।
- (४) बिल्ली की तरह गुर्गना।

घुघुरी-संज्ञा घ० (१) दे० "घुँघुरी"। (२) दे० "घुँघुरी"।

घुघुघ्राना-कि० घ० दे० "घुघुघ्राना"।

घुटकना-कि० घ० [हि० घूँट + करना] (१) घूँट घूँट करके पी जाना। पी जाना। पान करना। उ०—नृपति घुर सिंघुरसे घुटके।—गोपाल। (२) निगल जाना।

घुटकी-संज्ञा घ० [हि० घुटकना] घुटकने की नली। गले की यह नली जिसके द्वारा खाना पानी आदि पेट में जाते हैं।

घुटना-संज्ञा पुं० [सं० घुट्क] पाँव के मध्य भाग का जोड़। जाँघ के नीचे और टाँग के ऊपर का जोड़। टाँग और जाँघ के बीच की गाँठ। उ०—माटे घुटना कूटे बाँव। (कदावत)

मुहा०—घुटना टेकना = घुटनों के चर घैटना। घुटनों चलना = देरी देना चलना। घुटनों के दन चलना = दे० "घुटने चलना"। घुटनों में सिर देना = (१) सिर नीचा किए चिँटित वा उदास होना। (२) क्षति होना। सिर नीचा करना। घुटनों से लग कर घैटना = दूर घड़ी पास रहना। घुटनों से लग कर घैटना = पास घेराप रहना। (इसका प्रयोग प्रायः माता-पिता बच्चों के लिये करते हैं।)

कि० प्र० [हि० घुटना वा घेटना] (१) सूरस का भीतर ही दब जाना, बाहर न निकलना। रुकना। फँसना। उ०—यहाँ तो इतना घुँघ्रा है कि दम घुटता है।

मुहा०—घुट कर मरना = दम टोड़ने हुए मरने से मरना। (२) फँसना। उलक कर कड़ा पड़ जाना। उ०—हड न हडली कर लूके, बहि पायस म्हुनु पाह। घाम गाँठ घुटि जाय सौं, मान गाँठ घुटि जाय।—बिहारी।

कि० प्र० [हि० घोटना] (१) घोटा जाना। पीसा जाना। उ०—रोज़ भाँग घुटा करती है।

मुहा०—घुटा हुआ = छेंटा हुआ। चात्राकी में मैना हुआ। भारी चालाक।

- (२) रगड़ सा कर चिकना होना। रगड़ से चिकना और चमकीला होना। उ०—सुम्हारी पट्टी घुट गई कि अभी नहीं। (३) घटित होना। मेल जोल होना। उ०—दोनों में शान कल खूब घुटती है। (४) मिल-जुल कर बात होना। (५) किसी कार्य का विरोध; पड़ने लिये के कार्य का इसलिये बार बार होना जिसमें उसका खूब श्रम्यार हो जाय।

घुटना-संज्ञा पुं० [हि० घुटना] (१) घुटने तक का पायजामा। (२) पतली मोहरी का पायजामा। (पंजाबी)

घुटका-संज्ञा पुं० [सं० घुट] पाँव के मध्य भाग का जोड़। घुटना।

घुटवाना-कि० घ० [हि० घेटना का प्र०] (१) घोटने का काम करना। (२) बाल मुँडाना।

घुटार-संज्ञा घ० [हि० घुटना] (१) घोटने वा रगड़ने का भाव वा क्रिया। (२) रगड़ कर चिकना और चमकीला बनाने का भाव वा क्रिया। उ०—इस कपड़े पर खूब घुटारै हुई है। (३) रगड़ कर चिकना और चमकीला करने की मजूरी।

घुटाना-कि० घ० [घेटना का प्र०] घोटने का काम करना।

घुटका-संज्ञा पुं० दे० "घुटना"।

घुटवार-संज्ञा पुं० दे० "घुटना"। (संज्ञा)।

घुट्टा-संज्ञा पुं० दे० "घोट्टा"।

घुट्टी-संज्ञा घ० [हि० घूँट] वह दवा जो छोटे बच्चों को पायन के लिये पिलाई जाती है।

कि० प्र०—देना।—पिलाना।

मुहा०—घुट्टी में पड़ना = स्वभाव के अंतर्गत होना। उ०—मूठ घोलना तो इनकी घुट्टी में पड़ा है।

घुडकना-कि० घ० [सं० डुर] किसी पर क्रुद्ध हो कर उसे डराने के लिये जोर से कोई बात कहना। कड़क कर बोलना। डटना। उ०—जो लड़के घुडकने से नहीं मानते वे मार को भी कुछ नहीं समझते।

घुडकी-संज्ञा घ० [हि० घुडकना] (१) वह बात जो क्रोध में आकर डराने के लिये जोर से कही जाय। डट। दपट। पटवार। (२) घुडकने की क्रिया।

घा०—धंदरघुडकी = झूठ मूठ डर दिखाना।

घुडचढ़ा-संज्ञा पुं० [हि० घेप + चढ़ना] (१) सवार। अश्वारोही।

- (२) एक प्रकार का स्वर्ण जिसमें एक मनुष्य धरने पेट के सामने घोड़े के मुँह का और पीछे दुम आदि का आकार बना कर जोड़ता है जिससे वह देखने में घोड़े पर सवार जान पड़ता है। गांधी मिर्चा की सवारी की नकल दिला कर भीष मर्मणों के लिये प्रायः बचाली ऐसा स्वर्ण बनाते हैं। इसे लिही घोड़ी भी कहते हैं।

घुड़चढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + चढ़ना] (१) विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा घोड़े पर चढ़ कर बुलढिन के घर जाता है। (२) विहाती रंडी या तवायफ़ जो प्रायः घोड़ों पर चढ़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है। निरुद्ध श्रेणी की गानेवाली बेरवा। (३) एक प्रकार की छोटी तोप जो घोड़े पर रख कर चलाई जाती है। (४) दे० "घोड़ा चोली"।

घुड़दौड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + दौड़] (१) घोड़ों की दौड़। (२) एक प्रकार का जुए का खेल जिसमें कई एक मनुष्य एक स्थान से अपने अपने घोड़े दौड़ाते हैं। जिसका घोड़ा सब से आगे निकल कर निश्चित स्थान पर पहले पहुँच जाय उसकी जीत समझी जाती है। (३) घोड़े दौड़ाने का स्थान या सड़क। (४) एक प्रकार की माय जिसका अंगड़ा भाग घोड़े के मुँह के आकार का घना होता है। घैठने के लिये इसके बीच में बँगला रहता है। (५) अश्वारोही सेना की परेड या क़यापद। कि० वि० [हिं० घोड़ा + दौड़] यड़ी तेज़ी से। अति शीघ्रता से। उ०—(क) आज घुड़दौड़ कहाँ चले जा रहे हो। (ख) घुड़दौड़ मत चलो, नहीं तो ठोकर खगेगी।

घुड़दौरी—संज्ञा स्त्री० दे० "घुड़दौड़"।

कि० वि० दे० "घुड़दौड़"।

घुड़नाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + नाल] एक प्रकार की तोप जो घोड़ों पर चलती है।

घुड़बहल—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा + बहल] वह रथ जिसमें घोड़े जुतते हैं।

घुड़मक्खी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + मक्खी] एक प्रकार की भूरे रंग की मक्खी जो घोड़ों को तंग किया करती है।

घुड़मुर्दा—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा + मुर्दा] (१) एक कल्पित मनुष्य-जाति जिसका सारा धड़ मनुष्य का सा और मुँह घोड़े का सा माना जाता है। (२) बड़ मनुष्य जिसका मुँह लंबा और घेठंगा हो। लंबे मुँहवाला मनुष्य।

घुड़ला—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा + ला (प्रस०)] (१) मिट्टी वा किसी धातु वा मिट्टाई का घना हुआ घोड़े के आकार का लिलौना। (२) छोटा घोड़ा। (३) कोई छोटी रस्ती या पनली जंजीर जिससे जहाज़वाले अनेक काम लेते हैं और जिसे धंगरेजी में लैन-वार्ड कहते हैं।

घुड़सार—संज्ञा स्त्री० दे० "घुड़साल"।

घुड़साल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + साल] घोड़ों के बाँधने का स्थान। अस्थल। पैँडा।

घुड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा का अल्प०] (१) छोटी घोड़ी। (२) दे० "घोड़िया"।

घुड़कना—कि० सं० दे० "घुड़कना"।

घुण—संज्ञा पुं० दे० "घुन"।

घुणाक्षरन्याय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी कृति वा रचना जो अनाज में इत्ती प्रकार हो जाय जिस प्रकार घुणों के खाते खाते लकड़ों में अक्षर की तरह के बहुत से चिह्न वा लकीरें बन जाती हैं। (इस न्याय वा शक्ति का प्रयोग ऐसे स्थलों पर करते हैं जहाँ किसी के द्वारा ऐमा आकस्मिक कार्य हो जाता है जो उसे ज्ञात वा अभीष्ट न रहा हो) उ०—होय घुनाक्षर न्याय उणें पुनि प्रयूह अनेक।—तुलसी।

घुन—संज्ञा पुं० [सं० घुण] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो अनाज, पाँधे और लकड़ी आदि में लगता है। जिस लकड़ों वा अनाज में यह लगता है उसे भीतर ही भीतर खाते खाते खोखला कर डालता है। इस कीड़े का भी रेशम के कीड़े के समान कई रूपांतर होता है। यह भी पहले गंदेदार लंबे ढोले के रूप में रहता है।

मुहा०—घुन लगना = (१) घुन का अनाज वा लकड़ी को खाना। (२) भीतर ही भीतर किसी वस्तु का फँस देना। धीरे धीरे अप्रयत्न रूप में किसी वस्तु का हास होना। भीतर ही भीतर छींजना वा नष्ट होना। जैसे, शरीर में घुन लगना, रोगवार में घुन लगना, जवानी में घुन लगना। उ०—कीट मगेरध दारु शरीरा। जेहि न लाग घुन को अस घीरा ?।—तुलसी। घुन झड़ना = घुन की खाई हुई लकड़ों का चूर गिरना।

विशेष—इस कीड़े की कई जातियाँ होती हैं। लकड़ी का घुन अनाज के घुन से भिन्न होता है।

घुनघुना—संज्ञा पुं० [घुनु०] लकड़ों, पीतल इत्यादि का घना हुआ एक छोटा सा पिलौना, जिसे लकड़े हाथ में लेकर रगया करते हैं। इसका रूप गोल वा लंबेतरा गोल होता है। इसमें एक छोर एक दन्त लगा होता है जिसे हाथ में पकड़ते हैं। कुन्कुना।

घुनना—कि० सं० [सं० घुण] (१) घुन के द्वारा लकड़ी आदि का खाया जाना। घुन के खाने से खोखला और कमजोर हो जाना। जैसे, लकड़ी घुनना, अनाज घुनना। (२) किसी दोष के कारण किसी चीज का भीतर ही भीतर छींजना। जैसे, शरीर घुनना।

संयोग० कि०—जाना।

घुनाक्षरन्याय—संज्ञा पुं० दे० "घुणाक्षरन्याय"।

घुसा—वि० [अनु० घुनघुनना] [खी० घुन्नी] जो अपने कोष, हँप आदि भावों को मन ही में रक्खे और लुप्तवाय उनके अनुसार कार्य करे। मन ही मन घुसा माननेवाला। घुप्पा।

घुन्नी—वि० स्त्री० [हिं० घुना] अपने मन का भाव गुप्त रखनेवाली (स्त्री)। घुप्पी (स्त्री)।

संज्ञा स्त्री० घुप्पी।

कि० प्र०—साधना।

धुप-वि० [सं० धूप ना धुपु०] गहरा (भ्रंशेरा) । निविड़ (अंध-कार) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'भ्रंशेरा' शब्द ही के साथ होता है, जैसे 'भ्रंशेराधुप' ।

धुमंडना-क्रि० अ० दे० "धुमंडना" ।

धुमकड़-वि० [हि० धूमना + कड़ (अव०)] बहुत धूमनेवाला ।

धुमसी-संज्ञा स्त्री० दे० "धुपची" ।

धुमटा-संज्ञा पुं० [हि० धूमना + टा (अव०)] सिर का चकर नियमें धरति के सामने कंधेरा सा जान पड़ता है और भादमी पड़ना नहीं रह सकता ।

क्रि० प्र०—धाना ।

धुमड़-संज्ञा स्त्री० [हि० धुमडना] परसनेवाले धारलों का घेरपार ।

धुमडना-क्रि० प्र० [हि० धुम + ङना] (१) धारलों का धूम धूम कर हड़टा देना । धने सेवों का छाना । धादलों का इधर उधर धने होकर जमना । उ०—(क) धुमडि धुमडि पटा धन की धनेरी अर्थ गरज गड़े ती फेर गरजन जागी री ।—पद्मा कर । (ख) इमडि धुमडि धन बरसन लागे ।—गीत । (२) हड़टा देना । धाजाना । उ०—देव लला गये सोवत ते सुप माहि महा सुखमा धुमडि सी ।—देव ।

धुमडाना-क्रि० अ० दे० "धुमडना" । उ०—फहॉ भभूदे आगि दे पूर्वा धुमडया ।—सूदन ।

धुमड़ी-सं० स्त्री० [हि० धुमना] (१) किमी के द पर स्थिर रह कर चारों ओर फिरने की क्रिया । कुम्हार के चाक की तरह धूमने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—खेना ।—जगाना ।

(२) यह चकर जो इस प्रकार धूमने से खेतों के सिर में धाता है ।

क्रि० प्र०—धाना ।

(३) सिर में चकर आने का रोग जिसमें धारल के सामने भ्रंशेरा सा जान पड़ता है । (४) किसी बस्तु के चारों ओर फेरा लगाने की क्रिया । परिक्मा ।

धुमना-वि० [हि० धुमना] [स्त्री० धुमनी] धूमनेवाला । इधर उधर बहुत फिरनेवाला । धुमकड़ ।

धुमनी-सं० स्त्री० [हि० धुमना] जो इधर उधर घूमती फिरे ।

धुमनी-संज्ञा स्त्री० [हि० धुमनी] (१) पशुधर्मों का एक रोग जिसमें बन्धके पेट में पीड़ा होती है और वे इधर उधर चकर लगा कर गिर जाते हैं । इसे 'धुमड़ी' भी कहते हैं । (२) दे० "धुमड़ी" ।

धुमरना-क्रि० अ० [अ० धुम घन घन] (१) घोर शब्द करना । जैसे शब्द से यजना । दे० "धुमरना" । उ०—(क) बीस सहस्र धुमरहि निसाना गुलकंचन फहरें धलमाना ।—जायसी । (ख) निदरि धनहि धुमरहि निसाना । निज पराह

कहु सुनिय न काना ।—तुलसी । (२) दे० "धुमडना" । † (३) धूमना ।

धुमराना-क्रि० अ० दे० "धुमराना" । उ०—गारति धुमरान मद मार सोझनि श्रवत पवन ते वेग तेहि समय चीन्हों ।—सूर ।

धुमरी-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "धुमड़ी" । (२) भँवर । (पानी का) (३) धुमनी नाम का रोग जो चौराघों को होता है ।

धुमा-संज्ञा पुं० [हि० धुमना] पंचाय में जमीन की एक नार जो दो धीपों के बराबर होती है ।

धुमाना-क्रि० सं० [हि० धुमना] (१) चक्र देना । चारों ओर फिराना । (२) इधर उधर दहलाना । सैर कराना । (३) किमी ओर प्रवृत्त करना । किसी विषय की ओर लगाना । उ०—उन्हें क्या, निघर धुमाघो उधर धूम जायगे । (४) घुटना । मोड़ना । जैसे, कल धुमाना ।

धुमाव-संज्ञा पुं० [हि० धुमना] (१) धूमने वा धुमाने का भाव । (२) फेर । चकर ।

धौ-धुमावदार ।

मुहा०—धुमाव फिरोव की धात = पेचाली बल । हेर फेर की धात ।

(३) बनी भूमि जितनी एक जोड़ी बैल से एक दिन में जाती जाय । (४) रास्ते का मोड़ । (५) दे० "धुमरा" ।

धुमावदार-वि० [हि० धुमव + दार] चक्रदार । जिसमें कुछ धुमाव फिरोव हो ।

धुमरना-क्रि० अ० दे० "धुमरना" । उ०—निदरि धनहि धुमरहि निसाना । निज पराह कहु सुनिय न काना ।—तुलसी ।

धुरफाना-क्रि० अ० दे० "धुड़कना" ।

धुरका-संज्ञा पुं० [हि सुखराना] चौराघों की एक धीमारी ।

धुरधुर-संज्ञा पुं० [अ० धुपु] धुरधुर शब्द जो विही, सुधर धादि के गले से तथा कफ छूटने के कारण मनुष्य के गले से भी साँस लेते समय निकलता है ।

धुरधुराना-क्रि० अ० [अ० धुरधुर] गले से धुर धुर शब्द निकालना ।

धुरधुरादट-संज्ञा स्त्री० [हि० धुरधुराना] धुरधुर शब्द निकालने का भाव ।

धुरचा-संज्ञा पुं० [दे०] कपास भोटने की चरती । (अलमोड़ा) ।

धुरना-क्रि० अ० दे० "धुलना" ।

क्रि० अ० [सं० धुर] शब्द करना । यजना । उ०—(क) अबधुर आये दुरधर राह । राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न शोभित चारो भाइ । धुरत निमान शृंग शंख धुनि भोरि कांक सहनाह ।—सूर । (ख) दंकरन के शोर चहुँ ओर महा धोर धुरे, माना धनधोर धोरि उडे भुव शोर ते ।—सूदन ।

धुरविनिया—संज्ञा स्त्री० [हि० घुर + वीनना] (१) घुरे पर से दाना इत्यादि चीन चीन कर एकत्र करने का काम । (२) गली कूचों में से टूटी कूटी चीजों के टुकड़े चुन चुन कर एकत्र करने का काम । उ०—राम गरीबनिवाज हैं राज देत जन जानि । तुलसी मन परिहरत नहिं धुरविनिया की यानि ।—तुलसी ।

घुहरी—संज्ञा स्त्री० दे० "घुहरी" ।

घुहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० घुर + हर (अव०)] (१) जंगल में पशुओं के चलने से बना हुआ तंग रास्ते का सा निशान । (२) वह तंग रास्ता जिस पर केवल एक ही मनुष्य चल सके । पगडंडी ।

धुर्मित—क्रि० वि० [सं० धूर्मितः] धूमता हुआ । चकर खाता हुआ । उ०—धुनि उठि तेहि मारेहु हनुमंत । धुर्मित भूलत परयो सुरता ।—तुलसी ।

धुरीनां—क्रि० अ० दे० "धुरीनां" ।

धुरंधरा—संज्ञा पुं० [दे०] जानवरों का एक रोग । यह रोग एक पशु से उड़ कर दूसरे में जा व्यापता है और करिनाई से दूर होता है । इसकी उत्पत्ति एक प्रकार के जहर से होती है जो पशुओं के रक्षि में पैदा हो जाता है । इसमें गला सूज उठता है और उबर बड़े जोर से चढ़ता है ।

धुलना—क्रि० अ० [सं० धूलन, अ० धुलन] (१) पानी, दूध आदि पतली चीजों में खूब हिल मिल जाना । किसी द्रव पदार्थ में मिश्रित हो जाना । हल होना । उ०—चीनी को ध्रभी हिलाओ जिसमें पानी में घुल जाय ।

संयो० क्रि०—जाना ।

यो०—घुलना मिलना ।

मुहा०—घुल घुल कर बातें करना = खूब मिल जुन कर बातें करना । अभिन्न हृदय होकर बातें करना । बड़ों घनिष्ठता के साथ बातें करना । घुल मिल कर = खूब मेल जोल के साथ । नज़र वा धाँसे घुलना = आँसु से आँसु प्रेमपूर्वक मिलना । उ०—छत्रोले दग धुरि धुरि हैंसि मुरि जात ।—नागरी । कलम का घुल जाना = कलम का स्याही में रहते रहते नरम हो जाना जिससे वह खूब चले ।

(२) गलना । जल आदि के संयोग से किसी पदार्थ के अणुओं का अलग अलग होना । द्रवित होना । (३) पक कर पिलपिला होना । नरम होना । उ०—खूब घुले घुले धाम लाना । (४) रोग आदि से शरीर का क्षीय होना । दुर्बल होना ।

मुहा०—घुलता हुआ = सुझा । घुल । घुल घुल कर काँटा होना = बहुत दुखला हो जाना । इतना दुखला हो जाना कि शरीर की हड्डियाँ दिखाई दें । घुल घुल कर मरना = बहुत दिनों तक कष्ट भोग कर मरना ।

(५) जाता रहना । दाँव का हाँव से निकल जाना । (अधारी)

(६) (समय) थीतना । व्यतीत होना । गुज़रना । उ०—जरा से काम में महीनों घुल गए ।

घुलवाना—क्रि० स० [हि० घुलना का प्रे०] (१) गलवाना । द्रवित कराना । (२) धाँस में सुरमा लगावाना ।

क्रि० स० [हि० 'घुलना' का प्रे०] किसी द्रव पदार्थ में मिश्रित कराना । हल कराना ।

घुलाना—क्रि० स० [हि० घुलना] (१) गलाना । द्रवित करना । (२) शरीर दुर्बल करना । शरीर क्षीय करना । (३) मुँह में रस कर धीरे धीरे रस चूमना । मुँह में रस कर धीरे धीरे गलाना । चुमलाना । (४) पका कर पिलपिला करना । नरमी वा दाय पहुँचा कर नरम करना । (५) (सुरमा वा काजल) लगाना । सारना । (६) (समय) विताना । व्यतीत करना । गुज़रना । उ०—इस सुनार को मत दो, यह धरतों घुला देगा ।

घुलावट—संज्ञा स्त्री० [हि० घुलना] घुलने का भाव वा क्रिया ।

घुवा—संज्ञा पुं० दे० "घूथा" ।

घुसड़ना—क्रि० अ० दे० "घुसना" ।

घुसना—क्रि० अ० [सं० घुस = आसिँगन करना, घेरना । अथवा धर्षण] (१) कुछ वेगपूर्वक अथवा दूसरे की इच्छा का विरोध करते हुए भीतर जाना । भीतर पैठना । प्रवेश करना ।

संयो० क्रि०—आना ।—जाना ।—पड़ना ।—बैठना ।

यो०—घुस पैठ ।

मुहा०—घुस कर बैठना = (१) छिप रहना । सामने न आना । (२) पास पास बैठना । सट कर बैठना ।

पैसना । चुभना । गुड़ना । (३) किसी काम में दखल देना । अनधिकार चर्चा वा कार्य करना । उ०—तुम क्यों हर एक काम में घुस पड़ते हो । (४) मनोनिवेश करना । किसी विषय की ओर खूब ध्यान लगाना । (५) दूर हो जाना । जाता रहना । उ०—एक धक्का लगावेंगे, सारी वदमायी घुस जायगी ।

घुसपैठ—संज्ञा स्त्री० [हि० घुसना + पैठना] पहुँच । गति । प्रवेश । रसाई ।

घुसवाना—क्रि० स० [हि० घुसना का प्रे०] घुसाने वा काम कराना ।

घुसाना—क्रि० स० [हि० घुसना] (१) भीतर घुसेड़ना । पैठना । (२) चुभाना । धँसाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

घुसेड़ना—क्रि० स० [हि० घुसना] घुसाना । पैठना । धँसाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

घूँघची—संज्ञा स्त्री० दे० "घूँघची" ।

घूँघट—संज्ञा पुं० [सं० घट] (१) स्त्रियों की साड़ी वा चादर के किनारे का वह भाग जिसे वे लज्जावश वा परदे के लिये

विर पर से नीचे बना कर मुँह पर डाले रहती हैं । यन्त्र का यह भाग जिससे कुत्रवपु का मुँह ढँका रहता है ।

क्रि० प्र०—खोलना ।—झलना ।—झलना ।

मुहा०—धूँधट उठाना = (१) धूँधट का ऊपर की ओर खन-खाना जिससे मुँह खुल जाय । (२) पहाड़ दूर करना । नई आँई बपु का सवरे सामने मुँह खोलना । धूँधट उलटना = दे० धूँधट उठाना । धूँधट करना = (१) धूँधट डालना । (२) जज्ञा करना । शर्म करना । (३) भाँड़े का पीछे की ओर गारदन झट्टना । (सवार) । धूँधट काटना = धूँधट डालना । मुँह का धूँधट से टकना । धूँधट खाना = जज्ञाई के मैदान से मुँह मोड़ना । सेना का युद्धस्थल से पीछे की ओर भागना । छाटाई में सेना का पीछे दिवाना । धूँधट निकालना = "दे० धूँधट काटना" । धूँधट मारना = दे० "धूँधट काटना" ।

(२) परदे की वह दीवार जो बाहरी दरवाजे के सामने इसलिये रहती है जिसमें शोक वा श्रमंगन आहर से दिखाई न पड़े । गुलाम गदिश । श्रेय ।

धूँधर—संज्ञा पु० [हिं० धुमरा] बालों में पड़े हुए धरले या मोड़ ।

धौ०—धूँधरवाले ।

धूँधरवाले, धूँधरवाले—वि० [हिं० धूधर] कुँचित । देड़े धुल्ले-दार । कबरीले (वाल) ।

धूँधरा—संज्ञा पु० [देग०] एक प्रकार का बाजा ।

धूँधरी—संज्ञा स्त्री० [ऋ० ध्रु + पर] नूपुर । नेत्र । धुँधुरु । ३०—(क) पद पत्र की ध्रुम धूँधरी, मण्डि नील हाटक सों जरी ।—वेणव । (ख) विधिवा अनौट बाँके धूँधरी जराय जरी, जेहरि लकीली सुद घंटिका की जालिका ।—वेणव ।

धूँधरी—संज्ञा पु० दे० "धुँधुर" ।

धूँधरा—संज्ञा पु० दे० "धूँधरा" ।

धूँट—संज्ञा पु० [ऋ० धृ + ट] गले के नीचे वाली भादि उतारने का यन्त्र । (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ का बतना और निलना एक बार में गले के नीचे उतारा जाय । धुसकी । ३०—ऊपर से दो धूँट पानी पी लो ।

मुहा०—धूँट कँठना = किसी पीने की वस्तु का बहुत थोड़ा सा थरा पीने के पुरुझे ठूँकी पर गिराना जिसमें नम्र न लगे या किसी देवी देवता का थरा निकल जाय । धूँट लेना = धूँट धूँट कर के पीना । बहुत थोड़ा थोड़ा करके पीना । ३०—धूँट मत लो, एक सॉस में सब दवा पी जाओ । धूँट धूँट कर मारना = तंग करके मारना । हुज्ज पड़ना पड़ना कर मारना । संज्ञा पु० [सं० धृट] पहाड़ी टट्टियों की एक जाति जिसे धूँट या ठुंठा भी कहते हैं ।

संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार का पेड़ या झाड़ू जो बंगाल को छोड़ भारतवर्ष के बहुत से स्थानों में होता है । पत्तियाँ चार पांच शंगुल लंबी, गहरे हरे रंग की और नीचे की ओर कुछ रोपंडार होती हैं । यह बैसाख जेठ में फूलती है और जाड़े में फलती है । फल खाए नहीं जाते पर उनकी गुडनिर्था स्थान के काम में आती हैं । पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं । छात और सूखे फल चमड़ा रँगने के काम में आते हैं ।

धूँटना—क्रि० सं० [हिं० धूँट] पानी या और किसी द्रव पदार्थ को गले के नीचे उतारना । पीना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।

धूँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूँट] एक श्रापण जो स्वास्थ्यकर और पाचक होने के कारण बच्चों को नित्य पिलाई जाती है ।

मुहा०—जन्म धूँटी = वह धूँटी जो बच्चे को उसका पेट साफ करने के लिये जन्म के दूसरे ही दिन दी जाती है । जब तक यह धूँटी पिना कर बच्चे का पेट साफ नहीं कर लिया जाता तब तक उसे माता का दूध नहीं पिनाया जाता ।

धूँस—संज्ञा स्त्री० दे० "धूस" ।

धूँसा—संज्ञा पु० [हिं० धिरसा] (१) बँधी हुई सुट्टी जो मारने के लिये उठाई जाय । मुका । झुक । धमाका । जैसे, धूँसा तानना । (२) बँधी हुई सुट्टी का प्रहार ।

क्रि० प्र०—खाना ।—खलाना ।—जड़ना ।—तानना ।—मारना ।—लगाना ।

धौ०—धूँसेवाड़ी = धूँसों की जगड़ी ।

मुहा०—धूँसों का क्या उबार ? = मार का बदला मार से लेने में क्या देर ? मार पीट का बदला तुरंत ले ।

धूप—संज्ञा पु० [देग०] (१) काँच, सूँज वा सरकंदे आदि का रुई की तरह का फूल जो खंवे सीकें में लगता है । (२) पानी के किनारे मिट्टी में रखनेवाला एक कीड़ा जिसे बुलबुल आदि पक्षी खाते हैं । रेवा । (३) दरवाजे में ऊपर या नीचे का वह खेद जिसमें किनारे की चूल अटक जाती है ।

धूप—संज्ञा पु० [हिं० धूपी] धूप । ज्वलू, पड़ी । रहवा ।

धूपा—संज्ञा पु० [हिं० धुषा] धाँव, धँस, रहटे का सूँज इत्यादि का धना हुआ सँकरे मुँह का बर्तन या डबिया । धुकवा ।

धूपसा—संज्ञा पु० [देग०] ऊँचा बुज्ज । गरगज ।

धूप—संज्ञा स्त्री० [हिं० धोपी] लोहे या पीतल की बनी टेपरी जो लड़ाई में सिर को घोट से बचाने के लिये पहनी जाती है । है । ३०—धरल रंग ध्यान धुवि लीने । मापे धूप लोह की दीने ।—हाजिर कवि ।

धूपी—संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) धैली । (२) जैत । (३) धुषी । धँडक । धँडकी । धुपना ।

धूप—संज्ञा पु० दे० "धुष" ।

घूटना—कि० सं० [हि० घुटना कि०] दयाना । सांस रोकना । जैसे, गला घूटना ।

घूना—वि० [रंग०] (१) चटुर । अनुभवी । खुराट । (२) दे० 'घुसा' ।

घूम—संज्ञा स्त्री० [हि० घूमना] (१) घुमाव । फेर । चकर । घूमने का भाव । (२) मोड़ । वह स्थान जहाँ से किसी और मुड़ना पड़े ।

घूमना—कि० अ० [सं० घूर्णेन] (१) चारों ओर फिरना । चकर खाना । एक ही धुरी पर चारों ओर भ्रमण करना । (२) रौर करना । टढ़लना । (३) देशांतर में भ्रमण करना । सफर करना । (४) मँड़राना । एक वृत्त की परिधि में गमन करना । काना काटना । (५) किमी ओर को मुड़ना । उ०—वहाँ से वह राहल पश्चिम को घूम गया है । (६) लौटना । वापस आना व जाना ।

संयो० कि०—जाना ।—पड़ना ।

मुहा०—घूम पड़ना = लहसा कूद देना । विगड़ उठना । उ०—मैं तो उन्हें समझाने गया था वे मेरे ही जरूर घूम पड़े ।

†* (७) उमत्त होना । मतवाला होना । उ०—विहँसि मुलायक विलोकि वत प्रीड़ु तिया रस घूमि । पुलकि पसीजति प्त को पिय चूमो मुख चूमि ।—विहारी ।

घूमनी—संज्ञा स्त्री० [हि० घूमना] सिर का चकर । घुमटा ।

घूमघुमारा—वि० [हि० घूमना] घेरादार । घड़े घेरे का । जैसे, घूमघुमारा लहँगा ।

घूर—संज्ञा पुं० [सं० कृद, हि० कूर] (१) वह जगह जहाँ झुड़ा करकट फँका जाय । खाद, झुड़ा, करकट कतवार आदि फँकने वा एकत्र करने का स्थान । (२) झुड़े का ढेर । (३) किसी पोखी चीज़ में उसको भारी करने के लिये भरा हुआ बालू और मुद्दामा आदि (सेनानी)

घूरना—कि० अ० [सं० घूर्णेन = इधर उधर फिरना] (१) धार धार आँसु गड़ा कर घुरे भाव से देखना । घुरी नीयत से एक टक देखना । जैसे, स्त्री घूरना । (२) क्रोधपूर्वक एकटक देखना । कुपित दृष्टि से ताकना । आँसु निकालना । (३) † घूमना । टढ़लना (विहार) ।

घूरा—संज्ञा पुं० [सं० कृद, हि० कूर] (१) झुड़े करकट का ढेर । (२) वह स्थान जहाँ झुड़ा करकट फँका जाता है । कतवार-स्थान ।

घूरा घाटी—संज्ञा स्त्री० [हि० घूरना + घारना (अनु०)] घुरने की क्रिया ।

घूस—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहणय = चूस] चूड़े के वर्ग का एक बड़ा जंतु जो प्रायः पृथ्वी के भीतर बड़े लंबे बिल खोद कर रहता है । एक प्रकार का बड़ा चूहा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गृहणय = घुम अभिप्रय से दिया हुआ धन] वह द्रव्य जो किसी को अपने अनुकूल कोई कार्य कराने के लिये अनुचित रूप से दिया जाय । रिश्वत । उद्वेगचालाक । उ०—वह घूस देकर अपना काम निकालता है ।

फि० प्र०—खाना ।—देना ।—लेना ।

घौ—घूसखोर = घूस खानेवाला । घूस पचड़ = रिश्वत ।

घृणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० गृणित] (१) घिन । नफरत । (२) वीर्यरस रस का स्वार्थी भाव ।

घृणित—वि० [सं०] (१) घृणा करने योग्य । (२) जिसे देख या सुन कर घृणा पैदा हो ।

घृत—संज्ञा पुं० [सं०] घी ।

घृतकुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़वार । गुथारपाठा । गोंडपट्टा ।

घृतघारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घी की घारा । (२) पश्चिम देश की एक नदी । पुराणानुसार कृष्ण द्वीप की एक नदी ।

घृतपूर—संज्ञा पुं० [सं०] घेवर नामक फकवान । दे० "घेवर" ।

घृतप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] प्रमेह रोग का एक प्रकार जिसमें घृत घी के समान गाढ़ा और चिकना होता है ।

घृनाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ग की एक अप्सरा । (२) वह करतुली जिससे यज्ञों में घी अग्नि में डाला जाता है । ध्रुवा । (३) मुरनाभ नामक एक प्राचीन राजा की रानी का नाम ।

घेंघ—संज्ञा पुं० [देग०] (१) एक प्रकार का भोजन जो चने की बहुरी को चावलों में मिला कर पकाने से बनता है । (२) घेवा ।

घेंघा—संज्ञा पुं० दे० "घेवा" ।

घेंटी—संज्ञा पुं० [हि० घेंटी] गलत । गरदन ।

घेंटा—संज्ञा पुं० [अनु० घे घे] सूधार का दबा ।

घेंटी—संज्ञा स्त्री० [?] (१) चने की फली । चने की फली जिसके भीतर बीज रूप से चना होता है । (२) चने की फली के अकार की कोई वस्तु ।

घेंटुला—संज्ञा पुं० [हि० घेंघ] [की० घेंडलिया] सूधार का छोटा दबा ।

घेघा—संज्ञा पुं० [देग०] (१) गला । गले की नली जिससे भोजन वा पानी पेट में जाता है । (२) गले का एक रोग जिसमें गले में सूजन होकर बत्तौड़ा वा निकल आता है । यह रोग मोरलपुंग, बस्ती आदि जिलों के निवासियों को बहुत ही घेघा करता है ।

घेड़ोंची—संज्ञा स्त्री० दे० "घड़ोंची" ।

घेतल, **घेनला**—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का महा जूता जिसका पंजा चपटा और मुड़ा हुआ होता है । इसे महाराष्ट्र वा दक्षिणी अधिक पहनते हैं ।

घेनौची—संज्ञा स्त्री० दे० "घेनौची" ।

घेपना—कि० सं० [देग०] (१) हाथ पैर से रौंद कर मिलाना ।

एक में लयपथ करना । (२) सुखचना । धूलिना । (३) खी-मसेग करना । (बाजारू)

घेर-संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] घेर । परिधि । चारों ओर का फैलाव । धी०—घेरदार । जैसे, घेरदार पायजामा ।

घेरघार-संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] (१) चारों ओर से घेरने वा द्वा जाने की क्रिया । उ०—बाइलों का घेरघार देखने से जान पड़ता है कि पानी बरसेगा । (२) चारों ओर का फैलाव । विस्तार । (३) किसी कार्य के लिये किसी के पास बार बार उपस्थित होने का कार्य । किसी के पास जाकर बार बार अनुरोध वा विनय करने का कार्य । सुशामद । विनती । उ०—बिना घेरघार किए श्राव कल जगद नहीं मिलती ।

घेरना-कि० सं० [सं० ग्रहण] (१) चारों ओर देा जाना । चारों ओर से घेँ करना । सब ओर से आग्रह हो कर संबल वा सीमा के भीतर लाना । बंधना । उ०—(क) इस स्थान को दृष्टियों से घेर दो । (ख) दुर्ग को खाईं चारों ओर से घेरे है । (ग) इनका शेर लकीर से घेर दो । (२) चारों ओर से रोकना । घेँ करना । प्रलना । श्राकत कराना । उ०—(क) धर्म सनेह उभय मति घेरी । सद् गति सति छूट् दर केरी ।—हुसैनी । (ख) गैयन घेरी सखा सब लाए ।—सूर । (ग) बाब विद्वाल विषेय की घेरी ।—पदमाकर । (३) गाय आदि चौपायों की चराई करना । चराना । चराने का काम धरने ऊपर लेना । (४) किसी स्थान को धरने अधिकार में रखना । स्थान घेँ करना वा फँसाए रखना । (५) संज्ञा का शयु को किसी नगर वा दुर्ग के चारों ओर आक्रमण के लिये स्थित होना । चारों ओर से अधिकार करने के लिये देा करना । (६) किसी कार्य के लिये किसी के पास बार बार जाना । किसी बात के लिये किसी के पास बार बार जाकर अनुरोध वा विनय करना । सुशामद करना । उ०—हमसे ब्यों घेरते हो, हम इस मामले में कुछ भी नहीं कर सकते ।

धी०—घेरना धराना । घेरा-संज्ञा पुं० [हिं० धरना] (१) चारों ओर की सीमा । किसी एत के सब ओर के बाहरी किनारे । परिधि । लंबाई चौड़ाई आदि का मार विस्तार वा फैलाव । उ०—(क) यह बगीचा बंग मीस के घेरे में है । (ख) उस घेरे के भीतर मन जाये । (ग) इस श्रंगारखे का घेरा बहुत कम है । (२) चारों ओर की सीमा की माप का जोड़ । परिधि का मान । उ०—इस धारीके का घेरा दो मीस है । (३) यह वस्तु जो किसी स्थान के चारों ओर है (जैसे दीवार आदि) । यह जो किसी जगह को चारों ओर से घेरे हो । (४) घेरा हुआ स्थान । इतना । संबल । उ०—उग घेरे के भीतर मन जाना । (५) किसी लंबे और पत पदार्थ की चौड़ाई और मोटाई का विस्तार ।

वेदा । उ०—इस धरन का घेरा २० हूच है । (६) सेना का किसी दुर्ग वा गढ़ को चारों ओर से घेँ करने का काम । चारों ओर से आक्रमण । सुराहता ।

कि० प्र०—झलना ।—झना । घेराई-संज्ञा धी० दे० "घिराई" । घेराव-संज्ञा पुं० दे० "घिराव" । घेलीना-संज्ञा पुं० [हिं० घाव] घोड़े भूल्य की वस्तुओं की चिकी में उतनी वस्तु जितनी सीढ़े के ऊपर दी जाती है । वह अधिक वस्तु जो प्राइक को उचित तौल के आविधिक दी जाय । घाल । धनुवा ।

घेचर-संज्ञा पुं० [हिं० घी + चर] एक प्रकार की मिठाई जो पतले धुले हुए मँदे, घी और चीनी से बनाई जाती है और पकी टिकिया वा मूजले के आकार की और सुरालदार होती है ।

घंटा-संज्ञा पुं० दे० "घंड़ला" । घँसाहर-संज्ञा धी० [?] पूँज । सेना । लरकर । (हिं०)

घेया-संज्ञा पुं० [हिं० घी वा स + घय] (१) ताम्र और बिना मधे हुए दूध के ऊपर उतरते हुए मक्खन को काढ़ कर इकट्ठा करने की क्रिया । उ०—(क) कजरी घुमरी सँदूरी घेरी मेरी गेया । दुहि ल्यायीं मैं हुरत ही तु करि दे धेना ।—सूर । (ख) दूध सोइनी ले ही मँबा । दाऊ उरत मुनि मैं धाऊँ तब लीं करि पूँ धेया ।—सूर । (२) किसी वेद या लकड़ी आदि को काटने श्रयका उसमें से रस आदि निकालने के लिये शत्र से पडुँ चाया हुआ भावत । सड़ा धी० [हिं० घाई वा घा] श्रे । तरफ । दिशा । उ०—सोहर शेर मनेहर नेहर माधि रह्यो चडुँ धेया ।—रघुराज । घेर, घैर, घैरी, क-संज्ञा पुं० [दे०] (१) निंदामय चर्चा । बदनामी । धपपरा । (गुल) उग्रहास । उ०—चलत घैर घर घर तऊ घरी न घर बहराइ ।—विहारी । (२) जुगुनी । श्लि शिकायत । उ०—तोहि न रुसने योग मलाय क्यो घैर किये मत काहू के हागहि ।—घुगुनाय ।

घैला-संज्ञा पुं० [सं० घट] [की श्य० घैरी] पद्म । कबला । राता ।

घैहल-वि० [हिं० धाव, धवल वा स० धाव] जिसके धाव हागा हो । जल्दमी । पायज ।

घैहा-वि० [हिं० धाव] धायल । जल्दमी । घेघ-संज्ञा धी० [दे०] एक प्रकार का पत्ती ।

घेघा-संज्ञा पुं० [दे०] [धी० घेघी] (१) संज्ञा की तरह का एक कीड़ा जो प्रायः नदियों, तालाबों तथा झील जवलयों में पाया जाता है । इसकी धनायट, घुमावदार होती है, पर इसका मुँह मोल होता है, जो कुछ सफ़ा चीर बंद हो सकता है । इसके ऊपर का बलि-कोर शंय से बहुत पनाज होता है । पैचक में घेघे का मांस मजूर और पिपनासक माना जाता है । घेघे का बुरा भी बनता है ।

पर्याय—शंखुक ।

(२) गेहूँ की बाल में वह कोश या कोषली जिसमें दाना रहता है ।

वि० (१) जिसमें कुछ सार न हो । (२) मूर्ख । जड़ । बेवकूफ । गावदी ।

घोचवा—संज्ञा पुं० दे० "घोचवा (२)" ।

घोचवा—संज्ञा पुं० [हिं० युञ्ज्] (१) गौड़ । गुच्छा । घौद । स्वयंक । (२) वह गैल जिसके सींग मुड़ कर कान से जा लगे हों ।

घोची—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोचा] वह गाय जिसके सींग कानों की श्रार मुड़े हों ।

घोचुआ—संज्ञा पुं० दे० "घोचुआ" ।

घोट—संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक जंगली वृक्ष जो बहुत बड़ा होता है । इसकी लकड़ी मजबूत होती है और किसानों के औजार बनाने के काम में आती है । (२) घूँट नामक वृक्ष ।

घोटना—क्रि० सं० [हिं० घूँट, पू० हिं० घाँट] (१) घूँट घूँट करके पीना । पानी या श्रार किसी द्रव पदार्थ को थोड़ा थोड़ा करके गले के नीचे उतारना । पीना । (२) किसी दूसरे की वस्तु को लेकर न लौटाना । हजम करना । पचाना ।

क्रि० सं० [सं० घुट्] (१) (गला) इस प्रकार दवाना कि दम रुक जाय । (गला) मरोड़ना । उ०—चेर न लड़के का गला घोट दिया । (२) दे० "घोटना" ।

घोषला—क्रि० सं० [अनु० 'घष'] (१) घँसना । चुभाना । गड़ाना । (२) बुरी तरह सीना । गोंटना ।

घोसला—संज्ञा पुं० [सं० कुगलथ, अथवा हिं० घुसना] वृक्ष, पुरानी दीवार आदि पर खर, पत्ते, घास, फूस और तिनके आदि से बना हुआ स्थान जिसमें पक्षी रहते हैं । चिड़ियों के रहने और श्रंठे देने का स्थान । मीड़ । खोता ।

क्रि० प्र०—घनाना ।—रखना ।—लगाना ।

घोसुआ—संज्ञा पुं० [हिं० घोसला] घोसला । पोता । उ०—वधै न घड़ी सधीलहू चील घोसुआ मंसि ।—निहारी ।

घोसना—क्रि० सं० [सं० घुष] धारणा के लिये बार बार पढ़ना । स्मरण रखने के लिये बार बार उच्चारण करना । पाठ की धार धार आशुचि करना । रटना । घोटना ।

घोसवाना—क्रि० सं० [हिं० घोसना का प्रे०] रटवाना । धार धार कहलाना । याद कराना ।

घोगर—संज्ञा पुं० [दे०] एक पेड़ । दे० "लरपत" ।

घोघ—संज्ञा पुं० [दे०] बटेर कँसाने का जाल ।

घोघा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो चने की फूसल को हानि पहुँचाता है । यह कीड़ा सरदी से पैदा होता और चने की घँटियों के भीतर घुस कर दाने खा जाता है, जिससे खाली घँटी ही घँटी रह जाती है ।

घोधी—संज्ञा स्त्री० दे० "घुमी" ।

घोचिल—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की चिड़िया ।

घोट, घोटक—संज्ञा पुं० [सं० घोटक] घोड़ा । शरव ।

घोटना—क्रि० सं० [सं० घुट्=आवर्चन वा प्रतेवत काना] (१)

किसी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इस लिये बार बार रगड़ना कि वह दूसरी वस्तु चिकनी और चमकीली हो जाय । जैसे, कपड़ा घोटना, तख्ती घोटना, दीवार घोटना, कागज़ घोटना । (२) किसी वस्तु को बट्टे या श्रार दूसरी वस्तु से इस लिये बार बार रगड़ना कि वह बहुत चारीक पिस जाय । रगड़ना । जैसे, भाँग घोटना, सुरमा घोटना ।

विशेष—घिसने और घोटने में यह अंतर है कि घिसने का प्रभाव जो वस्तु ऊपर रख कर फिरोई जाती है उस पर धाँड़ित होता है, जैसे, चंदन घिसना, पर घोटने का प्रभाव आधार (जैसे, कपड़ा, कागज़ आदि) या उस पर रखी हुई किसी वस्तु (जैसे सिख पर रखी हुई भाँग) पर धाँड़ित होता है, जैसे, कपड़ा घोटना, भाँग घोटना । घिसने का प्रभाव केवल आधार पर रखी हुई वस्तु ही पर धाँड़ित होता है, जैसे, भाँग घिसना, आटा घिसना । रगड़ने और घोटने में भी वही अंतर है जो घिसने और घोटने में है ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

(३) किसी पात्र में रख कर कई वस्तुओं को बट्टे आदि से रगड़ कर परस्पर मिलावना । हल करना । (४) कोई कार्य विशेषतः लिखने पढ़ने का कार्य इसलिये बार बार करना कि उसका अभ्यास हो जाय । अभ्यास करना । मस्क करना । जैसे, सवक घोटना, पढ़ी या तख्ती घोटना । (५) डोंटना । फटकारना । बहुत धिगाड़ना । उ०—आफमर ने बुला कर उरें खूमे घोट । (६) घुरा या उल्हरा फेर कर शरीर के बाल दूर करना । खूँटना । (७) (गला) इस प्रकार दवाना कि साँस रुक जाय । (गला) मरोड़ना ।

मुद्दा—गला घोटना = दे० "गला" ।

संज्ञा पुं० (१) घोटने का औज़ार । वह वस्तु जिससे कुछ घोटया जाय । जैसे, भाँगघोटना । (२) रँगरेजों का लकड़ी का वह कुंदा जो जमीन में कुछ गड़ा रहता है और जिस पर रंग कर रँग कपड़े घोटे जाते हैं ।

घोटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोटना] वह छोटी बन्तु जिससे कोई वस्तु घोटी जाय ।

घोटवाना—क्रि० सं० [हिं० घोटना का प्रे०] (१) रगड़वाना । घोट कर चिकना कराना । (२) पालिसा कराना । (३) कुंदा कराना । (४) सिर या दाढ़ी आदि के बाल धवला डालना ।

घोटा—संज्ञा पुं० [हिं० घोटना] (१) वह वस्तु जिससे घोटने का काम किया जाय । (२) रँगरेजों का एक औज़ार जिसे वे रँग हुए कपड़ों पर चमक लाने के लिये रगड़ते हैं । दुबाली । मोहरा । (३) घुटा हुआ चमकीला कपड़ा । (४) भाँग घोटने

का मोटा या सड़ा । (४) घोट का वह घोंगा जिसमें घोड़े, बैलों आदि पशुओं को मगर, लेज या चीर बँदे श्रीरूप विनाई जाती है । (५) मगलद्विपों का एक श्रीलोक जिससे ये डाँक को चमकीला बनाते हैं । (घाँस की नन्वी में खाय देकर गोरा पत्थर का एक टुकड़ा चिरकाया रहता है, इसी से डाँक को मगद कर चमकदार करते हैं) । (७) रगड़ा । घोटाई । घोटने का काम । (८) चीर । हजामत ।

क्रि० प्र०—फिरवाना ।

घोटाई—भंगा छं० [दि० घेटना + घई (मच०)] (१) घोटने का भाव । (२) घोटने की क्रिया । (३) घोटने की मजदूरी ।

घोटाघोटा—भंगा पु० [देग०] रँवद चीनी की जाति का एक पेड़ जो राखिया की पहाड़ियों, पहाड़ी बंगाल तथा खंडा खादि में होता है । इसमें से एक प्रकार की राख निकलती है जो रँगाई तथा दूधा के काम में आती है । कनकटकी । रेवा चीनी । सीरा ।

घोटाहा—भंगा पु० [देग०] परवा । गड़बड़ ।

धा०—गड़बड़ घोटाहा ।

गि० प्र०—करना ।—हालना ।—पड़ना ।

मुहा०—घोटाने में पड़ना = गड़बड़ में पड़ना । निरिक्त या ठीक न होना । अस्थिर रहना ।

घोट्टा—भंगा पु० [दि० घेटना] (१) घोटनेवाला । (२) घोटने का कामार । घोटा ।

भंगा पु० [दि० मुट्ठा] घुटना । पैर की गाँठ ।

घोड़—भंगा पु० [सं० घेटक] घोड़ा ।

धा०—घोड़घड़ा । घोड़दंड आदि ।

घोड़घड़ा—भंगा पु० दे० "घुड़घड़ा" ।

घोड़दंड—भंगा छी० दे० "घुड़दंड" ।

घोड़घर—भंगा छी० [दि० घेड़ + घर] घर नाम की घोषधि की एक किस्म जो घोड़ों को हीरी जाती है ।

घोड़मुर्दा—भंगा पु० दे० "घुड़मुर्दा" ।

घोड़रई—भंगा छी० [दि० घेड़ + रई] यह रई जिसके दाँते कुछ चूड़े चूड़े होते हैं । यह मसाले के साथ घोड़ों को खिलाई जाती है ।

घोड़रसान—भंगा पु० [दि० घेड़ + रसान] एक प्रकार का रासन का रासन । दे० "रासन" ।

घोड़रैज—भंगा पु० [दि० घेड़ + रैज] एक प्रकार का रोज या नीलगण जो घोड़ों की आँखें बहुत तेज़ भांगती है । कोई कोई इसे फासू बना गाड़ियों में भी जानते हैं ।

घोड़रसन—भंगा पु० [दि० घेड़ + रसन] एक प्रकार का रस ।

घोड़रसार, घोड़रसाली—भंगा छी० [दि० घेड़ + रसार] घोड़ा बचने का रसाव । अमरबख । पिंदा ।

घोड़ा—भंगा पु० [सं० घेटक, म० घेडा] [सं० घेडा] (१) चार

पैरोंवाला एक चड़ा पशु जिसके पैरों में पंजे नहीं होते, गोत्राकार सुप (दाग) होते हैं । यह उनी जाति का पशु है जिस जाति का गदर है पर गदरे में यह मनुष्य, बड़ा और तेज़ होता है । इसके कान भी गदरे के कानों से छोटे और लड़े होते हैं । इसकी गदरन पर लंबे लंबे बाल होते हैं और पूँछ नीचे से ऊपर तक बहुत लंबे लंबे बालों से ढकी होती है । उधों के ऊपर और घुटनों से नीचे एक प्रकार के पट्टे या गठिं होती हैं । घोड़े बहुत रंगों के होते हैं जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—लाल, सुरंग, कुर्मित, सग्ना, सुरकी, तुपुना, गरी, चादानी, चीनी, गुलदर, धरलक इत्यादि । बहुत प्राचीन काल से मनुष्य घोड़े से सवारी का काम लेते आ रहे हैं जिसका कारण उसकी मनुष्यी और तेज़ चाल है । घोड़ा, तुलकी, सारप, कदम, रहवाल, लंगूरी आदि इनकी कई चालें प्रसिद्ध हैं । घोड़े की घोड़ी को दिनदिनाता कहते हैं । जिसमें घोड़ों की पहचान, आज, लक्षण आदि का बर्णन होता है उस विद्या को शास्त्रिदोत्र कहते हैं । शास्त्रिदोत्र प्रयोग में घोड़ों के कई प्रकार से कई भेद किए गए हैं, जैसे देश-भेद से उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और नीच; जाति-भेद से माश्रण, पशिय, धरप और शुद्ध तथा गुण-भेद से तासिक राजगी और तामसी । इनकी बचप्या का अनुमान इनके दाँतों से किया जाता है । इससे दाँतों की गिनती और रंग आदि के अनुसार भी घोड़ों के आठ भेद माने गए हैं—कालिका, हरियरी, शुक, काया, मषिका, गंग, सुरालक और चरता । प्राचीन भारतवासियों को तिन तिन देशों के घोड़ों का ज्ञान था उनके अनुसार उदोत्तम, उत्तम, मध्यम आदि भेद किए हैं । जैसे, तासिक, सुवार और सुरासान के घोड़ों का उत्तम, गान्धिकाय, केशवा और मीनाहार के घोड़ों का मध्यम, गांधार, माष्यमान और सिंधुहार के घोड़ों का कनिष्ठ कहा है । भारतक धरप, स्वेन, कनिष्ठम, नारदक आदि के घोड़े बहुत अच्छी जाति के गिने जाते हैं । ईराल और बरमा के दोगन प्रसिद्ध हैं । भारतवर्ष में कदम, काठियावाड़ और सिंध के घोड़े उत्तम गिने जाते हैं । शास्त्रिदोत्र में घोड़े रंग, नार और भँवरी आदि के अनुसार स्वामियों के लिये शुभ या अशुभ फल देनेवाले समझे जाते हैं । जैसे, जिसके आँतों पर और दोनों बाँतों सजे हों, कान पूँछ छोटी हो बने घट्टाक कहते हैं । यह बहुत प्रशुभक और संगतराफक समझा जाता है । इसी प्रकार तलिक, कयापापंपच, मर-दंन, रदुलत आदि बहुत से भेद किए गए हैं । गदरन पर बचलके लंबे या पीठ पर भी अँरी (सुमे हुए रोपे) होती है इसे गानिन कहते हैं । शरदा मुँह करि कुछ के मुँह की ओर हो तो यह बहुत अशुभ मानी जाती है । अँरिने के भी कई नाम हैं, जैसे, भुजबज (जो सगले पैरों के ऊपर होती है), द्यमन (जो पीठ या रीढ़ के पास होती है) और बहुत

अशुभ मानी जाती है), गंगापाट (तंग के नीचे) आदि । घोड़ों के शुभाशुभ लक्षण फारसवाले भी मानते हैं, इससे हिन्दुस्थान में उनसे संबंध रखनेवाले जो सन्ध प्रचलित हैं उनमें से बहुत से फारसी शब्द भी हैं जैसे, स्वाहतालु, गावक्रेहान आदि ।

पर्याय—घोटक । सुरग । अश्व । वाजी । वाह । तुरंगम । गंधर्व । हय । सैंधव । हरि । घींती । जवन । शालिहोत्र । प्रकीर्णव । धातयन । घामरी । मद्दय । राजकंध । विमानक । वह्नि । दधिका । उच्चैःश्रवा । आशु । अरुप । पतंग । नर । सुरयंस ।

मुहा०—घोड़ा उठाना = घोड़े को तेज़ दौड़ाना । घोड़ा उलटाना = किसी नए घोड़े पर पहले पहल सवार होना । घोड़ा कतना = घोड़े पर सवारी के लिये जीन या चारजामा कतना । घोड़ा खेलना = (१) घोड़े का साज व चारजामा उतारना । (२) घोड़े का बंधनमुक्त करना । (३) घोड़ा चुगाना या छीनना । उ०—चेर घोड़ा खेल ले गए । घोड़ा छोड़ना—(१) किसी और घोड़ा दौड़ाना । किसी के पीछे घोड़ा दौड़ाना । (२) घोड़े को घोड़ी से जोड़ा खाने के लिये छोड़ना । घोड़े का घोड़ी से सम्भोग करना [(३) घोड़े को उसके इच्छानुसार चतने देना । (४) दिग्विजय के लिये अरुपमेघ का घोड़ा छोड़ना कि वह जहाँ चाहे वहाँ जाय । (५) घोड़े का साज वा चारजामा उतारना । द० “घोड़ा खोलना” । घोड़ा डालना = किसी और वेग से घोड़ा बढ़ाना । उ०—उसने हिरन के पीछे घोड़ा डाला । घोड़ा देना = घोड़े को घोड़ी से जोड़ा खिलाना । घोड़ा निका-लना = (१) घोड़े को सिलखार कर सवारी के योग्य बनाना । (२) घोड़े का आंग बढ़ा ले जाना । घोड़े पर चढ़े आना = किसी स्थान पर पहुँच कर वहाँ से लौटने के लिये जल्दी मचाना । घोड़ा पलाना = घोड़े पर काठी या जीन कतना । घोड़ा फेंकना = वेग से घोड़ा दौड़ाना । घोड़ा फेरना = (१) घोड़े को सिलखा कर सवारी के योग्य बनाना । (२) घोड़े को दौड़ाने का अभ्यास करने के लिये एक छल में धुमाना । काया देना । घोड़ा घेच कर होना = धृष्ट निर्भित होकर होना । गहरी नींद में सोना । घोड़ा भर जाना = चतने चतने घोड़े का दम भर जाना । घोड़े का चक जाना । घोड़ा मारना = घोड़े को तेज़ दौड़ाने के लिये मारना । घोड़े को मार मार कर खूब तेज़ बढ़ाना । (३) घोड़े के मुख के आकार का यह पेंच वा सटका जिसके दबाने से बंदूक में रंजक लगती है और गोली चलती है ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—दबाना ।

(१) घोड़े के मुख के आकार का टोटा जो मार सँभालने के लिये छुजे के नीचे दीवार में लगाया जाता है । (यह काठ का भी होता है और पत्थर का भी) । (४) सतरंज का एक मोहरा जो दाईं घर चलता है । (५) कसरत के लिये लकड़ी का एक मोटा कुंदा जो चार पायों पर उठरा होता है और

जिसे लड़के दौड़ कर लांधते हैं । (६) कपड़े आदि टांगने की खूँटी ।

घोड़ाकरंज—रंजा पु० [सं० घृतकरंज] एक प्रकार का करंज जो चर्म रोग और बवासीर तथा विष को दूर करनेवाला माना जाता है ।

घोड़ागाड़ी—रंजा स्त्री० [हिं० घोड़ा + गाड़ी] (१) वह गाड़ी जो घोड़े द्वारा चलाई जाती है । (२) डाकगाड़ी । मेल कार्ट । वह गाड़ी जो डाक के थैले ऐसी जगह पहुँचाती है जहाँ रेल इत्यादि नहीं गई रहती । (वहूपा इस गाड़ी में घोड़े जोते जाते हैं ।

घोड़ाघोली—रंजा स्त्री० [हिं० घोड़ा + घोला = गरीर] वैद्यक की एक प्रसिद्ध औषधि जो अनुपानभेद से बहुत से रोगों पर दी जाती है ।

घोड़ानीम—रंजा स्त्री० [हिं० घोड़ + नीम] बकाइन वृक्ष । **घोड़ापलास**—रंजा पु० [दे०] मालखम की एक कसरत जिसमें एक हाथ मालखम पर उलटा पँट कर सामने रखने और दूसरे से मोगरे को पकड़ते हैं । जिघर का हाथ मोगरे पर होता है उसी और का पाँच मलखम पर फँक, सवारी बंधने हैं और दोनों हाथ निकाले हुए ताल ठोकते हैं । इसमें मुँह फूटने का डर रहता है ।

घोड़ाबच—रंजा स्त्री० [हिं० घोड़ा + बच] खुरासानी बच जो सफ़ेद होती है और जिसमें थड़ी उम्र गंध होती है ।

घोड़ाघांस—रंजा पु० [हिं० घोड़ा + घांस] एक प्रकार का घांस जो पूर्वी बंगाल और आसाम में बहुत होता है ।

घोड़ाबेल—रंजा स्त्री० [हिं० घोड़ा + बेल] एक लिपटनेवाली लता जिसकी जड़ें मैथिली होती हैं । इसकी पत्तियाँ एक बालितर के सीकें में लगती हैं और पतझड़ में झड़ जाती हैं । चैत, बिसाल में यह बेल घनी मंजरी के रूप में फूलती है । यह बेल बुंदेलखंड तथा उत्तरीय भारत के कई भागों में मिलती है । बिलाई कंद इसी की जड़ है । इसे सुराल और सरवाला भी कहते हैं ।

घोड़िया—रंजा स्त्री० [हिं० घोड़ा + या (प्रय०)] (१) छोटी घोड़ी । (२) दीवार में गड़ी हुई खूँटी जिससे कपड़े लटकाए जाते हैं । (३) छोटा टोड़ा । (४) बेलखोहों का एक बीजार । द० “घोड़ी” ।

घोड़ी—रंजा स्त्री० [हिं० घोड़ा] (१) घोड़े की मादा । (२) पायों पर खड़ी काठ की लंबी पट्टी जो पानी के घड़े रखने, गोटे पट्टे की बुगई में तार कसने, सैंधई पुरने, सेव बनाने आदि बहुत से कामों में आती है । पाटा । (३) दूर दूर रखे हुए दो जोड़े घांसों के बीच में बँधी हुई देरी वा अलगनी जिस पर घोसी कपड़े सुखाते हैं । (४) विबाह की वह रीति जिसमें दुल्हा घोड़ी पर चढ़ कर दुल्हनिके घर जाता है ।

मुहा०—घोड़ी चढ़ना = दूहे का बरत के साथ बुनदिन के घर जाना ।

(४) दे गीत जो विवाह में घर पर की ओर से गाए जाते हैं । (६) खेल में वह लड़का जिसकी पीठ पर दूसरे लड़के सवार होते हैं । (७) जुलाहे का एक यौगार जिसमें दोहरे पारों के बीच में एक रंडा लगा रहता है । (कपड़ा बुनने बुनते जब बहुत घोड़ा रह जाता है तब वह सुकने लगना है उसी को ऊँचा करने के लिये यह काम में छाया जाता है) ।

घोष-संज्ञा पुं० [दे०] बहुत प्राचीन काल का एक पात्र जिसमें सार लगे रहते थे । इन्हीं तारों को छेड़ने से वह बजता था ।

*संज्ञा स्त्री० [सं० शब्द] नाक । (डि०)

घोमसा—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की घास ।

घोर-वि० [सं०] (१) भयंकर । भयानक । डरावना । विकराल । (२) मचल । घना । दुर्गम । जैसे, घोर वन । (३) कठिन । कड़ा । जैसे, घोर नज़र, घोर शब्द । (४) गहरा । गाढ़ा । जैसे, घोर निद्रा । (५) घुरा । शक्ति घुरा । जैसे, घोर कर्म, घोर पाप । (६) बहुत अधिक । बहुत ज्यादा । बहुत भारी । ३०—जैसे घोर संदूर के रंजर रहलवारी जैसे घोर मंदर के रंजर रहाती हैं ।—भूषण ।

संज्ञा स्त्री० [सं० घुर] शब्द । गहन । ध्वनि । श्यावान् । ३०—कहि काको मन रहत श्रवण सुनि सरस मधुर सुरली की घोर ।—सूर ।

संज्ञा पुं० दे० “घोड़ा” । ३०—घोर मोर घोर । पानी पिपें चढ़े मोर ।

क्रि० वि० अत्यंत । बहुत । जैसे, घोर निर्दय ।

घोरना*—क्रि० ४० दे० “घोलना” ।

क्रि० ४० भारी शब्द करना । गरजना ।

घोरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में बुध की गति घोर कहलाती है ।

*संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा] (१) घोड़ा । (२) खँटा । (३) देड़ा ।

घोराघरा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का गवा ।

घोरिया*—संज्ञा स्त्री० दे० “घोरिणा” ।

घोरिला*—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा] (१) मिट्टी का बना हुआ लड़कों के खेलने का घोड़ा । ३०—जो प्रभु समर सुगुण घायत क्षणति पीठ सवार । सेहि घोरिल चढ़ाए नृप रानी करवावं सभार ।—रघुनाथ । (२) वह खँटा जिसका मुँह घोड़े के आकार का होता है । ३०—दूनन के विविध हार घोरिलनि परमत हदार विच विच मथि श्यामहार उपमा शुक्र भापी ।—केशव ।

घोटी*—संज्ञा स्त्री० (१) दे० “अघोरी” । (२) दे० “घोड़ी” । (३) “दे० शरीरता” ।

घोलदही—संज्ञा पुं० [हिं० घोलना + दही] चट्टा ।

घोलना—क्रि० सं० [हिं० घुलना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ में किसी वस्तु को हिला कर मिलाना । किसी वस्तु को इस प्रकार पानी आदि में डाल कर हिलाना कि उससे कण पृथक् पृथक् होकर पानी में फैल जाय । हल करना । जैसे, चीनी घोलना, गरवत घोलना ।

संज्ञा० क्रि०—डालना ।—देना ।

मुहा०—घोल पीना = (१) शरभ की तरह पी जाना । (२)

महज में मार डालना । सट्टन में नष्ट कर देना । (३) कुछ न समझना । नृष्य समझना । घोल कर पी जाना = (१) सट्टन में मार डालना । देखते देखते नाश कर डालना । (२) कुछ न गिनना ।

घोला—संज्ञा पुं० [हिं० घलना] (१) वह जो घोल कर बना हो । जैसे, घोली हुई अफ़ीम ।

मुहा०—घोले में डालना = (१) लड़ाई में डालना । शेक रखना । फैला रखना । उन्नतन में डाल रखना । किसी काम में बहुत देर लगाना । (२) किसी काम में डानमट्टन करना । घोले में पड़ना = संखड़े में पड़ना । उन्नतन में फँसना । ऐसे काम में फँसना जो जरूरी न निरुद्धे ।

(३) नाली जिसके द्वारा खेत सींचने के लिये पानी ले जाते हैं । बरहा ।

घोलवा—वि० [हिं० घोलना + उवा (मत्व०)] घोला हुआ । जो घोल कर बना हुआ हो ।

संज्ञा पुं० (१) घोली हुई पतली दवा । अफ़ । (२) रस । रोहरस । (३) पानी में घोली हुई अफ़ीम ।

मुहा०—घोलुव पीना = क. हुई वस्तु (दवा आदि) पीना । घोलुवा घोलना = किसी काम में बहुत देर करना ।

घोष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आभीरगही । अहीरों की वस्ती । (२) अहीर । (३) बंगाली कायस्थों का एक भेद । (४) गोशाला ।

३०—(क) ब्राह्मण कर्णैया बहुत बल्यो री । खेलत रहयो घोष के बाहर कोट भायेम शिशु रूप रच्यो री ।—सूर । (ख) वकी जो गई घोष में सुल करि यशुदा की गति दीनी ।—सूर । (४) तट । किनारा । (६) ईशान कोष्ण में एक देश । (७) शब्द । धावान् । नाद । (८) गरजने का शब्द । (९) ताल के ६० सुव्य भेदों में से एक । (१०) शब्दों के उच्चारण में ११ बाह्य प्रयत्नों में से एक । इस प्रयत्न से ये ये वर्ण बोले जाते हैं—ग, घ, ङ, क, द, ड, द, ध, प, म, ङ, ल, ख, न, म, य, र, ल, व, धीर ह ।

घोषया—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उष स्वर से कितनी बात की सूचना । (२) राजाका आदि का प्रचार । गुनादी । दुग्गी ।

घो०—घोषणापत्र = यह पत्र जिसमें सर्वसाधारण के सूचनापत्र राजाज्ञा आदि लिखी हो। सूचनापत्र। विशति।

(३) गर्जन। ध्वनि। शब्द। आवाज।

घोषलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कछुई तोरई।

घोषवत्—वि० [सं०] यह शब्द जिसमें घोष प्रयत्नवाले अक्षर अधिक हों।

घोषवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] धीया।

घोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईर्ष्या।

घोषाल—संज्ञा पुं० [सं० घोष] बंगाली ब्राह्मणों की एक जाति।

घोसी—संज्ञा पुं० [सं० घोष] अहीर। ग्वाला। दूध बेचनेवाला।

विशेष—श्याम कल जो अहीर मुसलमान होते हैं वे घोसी कहलाते हैं।

घौर, घौरा—संज्ञा पुं० दे० “घौद”।

घौद—संज्ञा पुं० [दे०] फलों का गुच्छा। गौद। जैसे, केले का घौद।

घौर, घौरा—संज्ञा पुं० दे० “घौर”।

घौरा—संज्ञा स्त्री० दे० “घौरा”।

घोहा—संज्ञा पुं० [हिं० घाव] लुटेला श्याम वा कोई फल। वह फल जिसको कुछ घोट लग चुकी हो।

वि० लुटीला, जिसे घाव लगा हो।

घ्राण—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० भ्रय] (१) नाक।

घ्राण—घ्राणद्वय।

(२) सूँघने की शक्ति। (३) गंध। सुगंध।



६

६—व्यंजन वर्णों का पाँचवाँ और कवर्ग का अंतिम अक्षर। यह स्वर है और इसका उच्चारण स्थान कंठ और नासिका है। इसमें सवार, नाद, घोष और अल्पमात्र नामक प्रयत्न लगते हैं।

६—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विषय। (२) विषय की इच्छा।

(३) भ्रय।



च

च-संस्कृत वा हिंदी वर्णमाला का २२ वाँ अक्षर और छठा व्यंजन जिसका उच्चारण-स्थान तालु है। यह स्पर्श वर्ण है और इसके उच्चारण में श्वास, विचार, शोष और अल्पमात्र प्रयत्न लागते हैं।

चंक-वि० [सं० चक] (१) पूरा पूरा। समूचा। सारा। समस्त।

उ०-चक्रवर्ती चक्रता चतुरंगिनि चारिउ चापि लई दिमि चंक-।
भूयष। (२) एक उसव जो उत्तर भारत, तथा मध्य प्रदेश आदि में फूल करने पर होता है।

चंकुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ। यान। (२) घुड़। पैड़।

चंक्रामय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टहलना। धीरे धीरे हृष से उधर घूमना। (२) धार धार घूमना। बहुत घूमना।

चंक्राय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रवर का नाम।

चंग-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दफ के आकार का एक छोटा बाजा जिसे लावनीवाले बजाया करते हैं। लावनी-बाजों का बाजा।

(२) सितार का चड़ा हुआ सुर। (सितारियों की परि०)

चंगल-संज्ञा स्त्री० [?] गजीके के आठ रंगों में से एक रंग।

चंगली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तिब्बती जौ। (२) एक प्रकार के जौ की शराय जो भूटान में बनती है।

चंगली-संज्ञा स्त्री० [सं० च=चरना] पतंग। गुड़ी। उ०-रहे शक्ति सेवा पर भाऊ। चड़ी चंग जनु खैति खेलाऊ।—
तुलसी।

मुहा०-चंग चढ़ना वा उमहना = बढ़ा चढ़ी बात होना। लल जोर होना। उ०-सौ पद्माकर दीनी मिलाय क्यों चंग चवाइन की उमदी है।—पद्माकर। चंग पर चढ़ाना = (१) इधर उधर की बातें कह कर किसी को अपने अनुकूल करना। किसी के अग्रिमपक्ष साधन के अनुकूल करना। (२) आसमान पर चढ़ा देना। मित्रान युद्ध देना।

वि० [सं०] (१) दृष्ट। इच्छल। (२) स्वस्थ। तंदुरुस्त।

(३) सुंदर। शोभायुक्त।

चंगना-संज्ञा स्त्री० [हि० चंगा वा फा० चंग] तंग करना। कसना।

चंगना। उ०-राम रंग ही सों रंगरेजवा मेरी रीणिया रँग देरे।.....त्रिगुण कसम ज्ञान से बीनी, रोम रोम भांकरि अति मीनी, चढ़े मुकृत रत्नन से बीनी, स्वस्त होह ही रँगि दे रे।—देव स्वामी।

चंगला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रंगिनी जो मेघ राग की पुत्रवधु कही जाती है।

चंगपारि-संज्ञा स्त्री० [हि० चंग+पारि] एक प्रकार का वात रोग जिसमें हाथ पैर जकड़ जाते हैं।

चंगा-वि० [सं० चंग] [स्त्री० चंगा] (१) स्वस्थ। तंदुरुस्त।
मौतोग। उ०-इस दवा से हम दो दिन में चंगे हो जायेंगे।

क्रि० प्र०-करना।—होना।

(२) चपड़ा। मला। सुंदर। उ०-भले जू भले नेदलाल, पेऊ भली चरन जावक पाग निन्हि रंगी। सुर प्रभु देखि शंग शंग यानिक कुशल में रही रीमि बह गारि चंगी।—
सूर। (३) निमैल। शुद्ध। उ०-मान चंगा तो कठैती में गंगा।

चंगु-संज्ञा पुं० [हि० चो = चार + चंगुल] (१) चंगुल। पंजा। उ०-
चरन चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर। तुलसी पावस हाइ पर परिहै पुहुमी नीर।—तुलसी। (२) पकड़। बधा।
अधिकार।

चंगुल-संज्ञा पुं० [हि० चो = चार + चंगुल वा फा० चंगल] (१)

चिह्नियों वा पशुओं का देड़ा पंजा जिससे वे कोई वस्तु पकड़ते वा अधिकार करते हैं। उ०-(क) फिरत न वारहिँ धार प्रचारयो।

चंपरि चोच चंगुल ह्य हति रथ संड संड करि दारयो।—
तुलसी। (ख) चीते के चंगुल में कैसिक करसायल धायल

है निवहै।—देव र (२) हाथ के पंजों की वह स्थिति जो

रंगलियों को बिना हथेली से छगाए किसी वस्तु को पकड़ने,

उठाने वा लेने के समय होती है। बकैटा। उ०-चंगुल

भर आठ साँईं को।

मुहा०-चंगुल में फँसना = पंजे में फँसना। बधा वा पकड़ में
अना। फाजू में होना।

चंगेर, चंगेरी-संज्ञा स्त्री० [सं० चंगेरिक] (१) बाँस की पट्टियों की

बनी हुई छिद्रवली बलिया। धाली के आकार की बाँस की

चौड़ी टेकरी। (२) फूल रत्नने की बलिया। रगरी। उ०-

रघुनाथ कारिह भेजे मेवा भाँति भाँतिन के फूलन के हार सों

चंगेर सेने की भरी।—रघुनाथ। (३) चमड़े का जलपाय।

मशक। परवाल (४) रस्सी में बाँध कर लटकई हुई टेकरी

जिसमें बच्चों को सुला कर पालना सुलाते हैं। बहुत छूटे

बच्चों का मूला। (बच्चा जन्मने पर फूफी आदि संबंधी

स्त्रियाँ बच्चे की माँ को हस्ते में ट करती हैं।) उ०-रघुनाथ

की सय सुभगा सुवाभिमि गीसन लिपु चंगेरी। विविध भाँति

की जटित जवाहिर दीपावती घनेरी।—स्युराज। (२)

जालीदार चाँदी का एक पाय जो प्रायः प्याले के

आकार का होता है। यह भी फूल रत्नने के काम में

आता है।

चौगल-संज्ञा स्त्री० [हि०] एक घास जो पुराने छेड़े वा गिरे

हुए मकानों के छंदहर में उत्पन्न होती है। इसकी पत्तियाँ

गोल गोल होती हैं और रंगने में कुछ कनकनाती हैं। इसमें

कुछ काजपान लिपु लाल रंग के घंटी के आकार के फूल

लगते हैं। चीज गोल गोल होते हैं और हथेली चिक्रिसा

में ये खुन्नामी के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह घास फ़ारस के शीराज़, मज़दुरान आदि प्रदेशों में बहुत होती है।

चौंली—संज्ञा स्त्री० दे० “चौंर” वा “चौंरी”।

चंच—संज्ञा पुं० [सं०] पंच धंगुल की एक नाप।

* संज्ञा पुं० दे० “चंचु”।

चंचत्पुट—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक ताल जिसमें पहले दो गुरु, तब एक लघु, फिर एक प्रुत मात्रा होती है। द्विकल के अतिरिक्त यह चतुष्कल और अष्टकल भी होता है।

चंचनाना—क्रि० अ० दे० “चुनचुनाना”।

चंचरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) पथर के ऊपर से होकर बहने वाला पानी (माफियों की भाषा)। (२) एक चिड़िया जो भारत में स्थिर रूप से रहती है। यह छोटा घोंसला बनाती है जो जमीन पर घास आदि के नीचे छिपा रहता है। यह प्रायः ३ श्रेष्ठे दती है। (३) यह अन्न जो दाना पीटने पर भी थाल में लगा रहे। (ज्वार, मूँग आदि के लिये)। गूरी। कोसी। कराही। मूडरी।

चंचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भ्रमरी। भौंवी (२) चाँचरि। होली में गाने का एक गीत। (३) हरिमिया छंद। इसी को भिखारीदास अपने पिं'गल में 'चंचरी' कहते हैं। इसके प्रत्येक पद में १२+१२+१२+१० के विराम से ४६ मात्राएँ होती हैं। श्रंत में एक गुरु होता है। उ०—सूरज गुन दिसि सजाय, श्रंतै गुरु चरण प्याय, चिच दे हरि प्रियहि', कृष्ण कृष्ण गाथो। (४) एक वर्षोद्भूत का नाम जिसके प्रत्येक चरण में (र स ज ज भ र) ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ होते हैं। इसे 'चचरा', 'चंचरी', और 'चिचुधमिया' भी कहते हैं। उ०—री सनै। सु भरी हरी नित वाखि तू। सी सदा लहमान संत सभाज में जग माहि नू। भूलि के तु विसारि रामहिँ आन को गुण गाइहँ। चंपक सम ना हरी जन चंचरी मन भाइहँ। (५) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक पद में २६ मात्राएँ होती हैं। उ०—सेतु सीतहि शोभना दरसाइ पंचवटी गये। पंच वागि श्रगस्य के पुनि अत्रि पी ते विदा भये। चित्रदृष्ट विलोकि कँ सवही प्रयाग विलोकियो। मरहाज बसै जहाँ जितते न पावन है विशेष।

चंचरीक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चंचरीक] भ्रमर। भौंवा। उ०—तेहि पुर बसत भरत चिनु रागा। चंचरीक निमि चंपक धामा।—मुहलसी।

चंचरीकावली—संज्ञा पुं० [सं०] (१) औरी की पंक्ति। (२) तेरह अक्षरों के एक वर्षोद्भूत का नाम जिसके प्रत्येक चरण में यथाय, मंगया, दो गण्य और एक गुरु होता है। (ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ) उ०—यमी रे। रामँ छाँड़ी यहँ ईरुं भाये। न भूले मायो को विश्व ही जो चक्रायँ। लखँ या पृथ्वी को याटिका चंपकी ज्योँ। वसँ रामँ स्वामे चंचरीकावली ज्योँ।

चंचल—वि० [सं०] [स्त्री० चंचला] (१) चलानेमान। अस्थिर। हिलता डोलता। एक स्थिति में न रहनेवाला। (२) भ्रमरी। अल्पस्थित। एकाम न रहनेवाला। अस्थिर प्रश। जैसे, चंचलबुद्धि, चंचलचित्त। (३) उद्विग्न। प्रवृत्ता हुआ। (४) नटखट। चुलचुला। जैसे, चंचल याक। उ०—देखी यनवारी चंचल भारी तदपि सपोधन मानी।—केशव। संज्ञा पुं० (१) हवा। वायु। (२) रसिक। कामुक।

चंचलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अस्थिरता। चपलता। (२) नटखटी। शरारत।

चंचलताई—संज्ञा स्त्री० दे० “चंचलता”।

चंचला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) विजयी। (३) पिप्पली। (४) एक वर्षोद्भूत त्रिके प्रत्येक चरण में १६ अक्षर होते हैं। (र र र र ल) ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ, इसका दूसरा नाम चित्र भी है। उ०—री जरा जुरो कल्ले कर्हा गये हमें विहाय। कुंज बीच मोहिँ तीय ग्वाल बाँसुरी बजाय। देखि गोपिका कहँ परी तु दृष्टि पुष्य माल। चंचला सखी गई विलाय आजु नंदलाल।

चंचलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० चंचल + आई (प्रत्य०)] चपलता। चंचलता। अस्थिरता। चुलचुलाहट।

चंचलास्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंध द्रव्य।

चंचलाहट—संज्ञा स्त्री० [सं० चंचल + आहट (प्रत्य०)] चंचलता।

चचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास फूस का पुतला जिसे खेतों में पक्षियों आदि को डराने के लिये गाड़ते हैं।

चंचु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का शाक जो घरसात में उत्पन्न होता है और जिसमें पीले पीले फूल और छोटी छोटी फलियाँ लगती हैं। यह कई तरह का होता है। वैद्यक में यह शीतल, सारक, पिच्छिल और लैलाकारक माना जाता है। चंच। (२) रेंडू का पेड़। (३) शूना। हिरन। संज्ञा स्त्री० चिड़ियों की चंच।

चंचुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोंच

चंचुपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] चोंच का साग।

चंचुपुट—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोंच। ठौर।

चंचुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पत्ती।

चंचुमान्—संज्ञा पुं० [सं०] पत्ती।

चंचुर—वि० [सं०] दल। निपुण।

संज्ञा पुं० चोंच का साग।

चंचुल—संज्ञा पुं० [सं०] हरिस्य के अनुसार विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

चंचूसूत्री—संज्ञा पुं० [सं०] कारकव पत्ती। हल की जाति की एक चिड़िया। एक प्रकार का बतल।

चौंरना—क्रि० सं० [चउ०] दाँतों से दबा दबा कर चूसना। जैसे, हड़ी चौंरना। दे० “चचोड़ना”। उ०—या भाया के

कारने, हरि सेाँ यैरा मोरि । माया करक करीम है, केना गया
बैचोरि।—कबीर ।

चंटे-वि० [सं० चं] (१) थालाक । होसियार । सपाना । (२) धूँ ।
धुआ हुआ ।

चंड-वि० [सं० चं] (१) तेड़ा । तीसरा । दम । १-खर ।
प्रबल । घोर । (२) यलवान् । दुर्दमनीय । (३) कठोर ।
कठिन । विकट । (४) भरोधी । उग्र स्वभाव का । उदत ।
गुप्ताचार ।

संज्ञा पु० [सं० चं] (१) तार । गरमी । (२) एक यम
द्वय । (३) एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था । (४) कालिंदेय ।
(५) एक शिवगण्य । (६) एक शैव । (७) हमनी का पेड़ ।
(८) विष्णु का एक पारिपद । (९) राम की सेना का एक बंदर ।
(१०) सम्राट् पृथ्वीराज का एक सामंत जिसे मायाचार्य लोग
“चौड़ा” कहते थे । (११) पुराणों के अनुसार कुबेर के षाट
पुत्रों में से एक जो शिव-पूजन के लिये सूँघ कर दूब लाया
था, और इसी पर पिता के राग से जन्मंतर में कंस का
भार्य हुआ था और हृष्य के हाथ से मारा गया था ।

चंडकर-संज्ञा पु० [सं०] (तीसरा किरवावाला) सूयं । ३०—
अपति बालकृपि केलि कैतुक ददित चंडकर मंडल प्रास-
कर्त्ता ।—मुलसी ।

चंडकौशिक-संज्ञा पु० [सं०] (१) एक मुनि का नाम । (२)
एक नाटक जिसमें विद्यामित्र और हरिचंद्र की कथा है ।
(३) जैन पुराणानुसार एक विषयपर साँघ जिसेने महावीर
स्वामी का दर्शन कर इसना भादि होइ दिना था और जो बिल
में मुहँ डाले पड़ा रहता था, यहाँ तक कि जब उसे चींटियों
ने घेरा तब भी उसने उनके दबने के डर से करवट तक न
बदली ।

चंडता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उग्रता । प्रव्रतता । घोरता । (२)
दल । प्रताप । ३०—तुलसी कपन राम राजन विबुष विधि
चक्राग्नि चंडीपति चंडता सिहात है ।—मुलसी ।

चंडतुंडक-संज्ञा पु० [सं०] गण्ड के एक पुत्र का नाम ।

चंडतर-संज्ञा पु० [सं०] उग्रता । प्रव्रतता ।

चंडदोषिपति-संज्ञा पु० [सं०] सूयं ।

चंडनायिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा । (२) तांत्रियों की षट
नायिकाओं में से एक जो दुर्गा की सखी मानी जाती है ।

चंडमार्ग-प-संज्ञा पु० [सं०] च्यवन वंशी एक ऋषि जो महाराज
जमोत्रप के संपुत्र के होता थे ।

चंडमुंड-संज्ञा पु० [सं०] दो शक्यों के प्रायः जो देवी के हाथों
से मारे गए ।

चंडमुंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रु का देवी ।

चंडमुंडो-संज्ञा स्त्री० [सं०] मज्जमान, रिपु तांत्रियों की
एक देवी ।

चंडरसा-संज्ञा पु० [सं०] एक वर्ष-वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक
वर्ष में एक नगण्य और एक गण्य होता है । हमी को
वीरसा, शशिवदना और पारंगुलक भी कहते हैं । ३०—
नय धरु एका, न भनु अनेका । गह्वरन साये, शशिवदना से ।

चंडरुद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मिट्टि जो षट
नायिकाओं के पूजन से प्राप्त होती है । (तांत्रिक)

चंडरती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा । (२) षट् नायिकाओं
में से एक ।

चंडगुह्यप्रात-संज्ञा पु० [सं०] एक दंडक वृत्त, जिसके प्रत्येक
वर्ष में दो नगण्य (III) और सात गण्य (५३) होते हैं ।
३०—न न गिरि धरे तत्रै मूलि के शल जो चंडवृष्टि प्रगाता-
कुलै गोकुलै ।

चंडाशु-संज्ञा पु० [सं०] (तीसरा किरवावाला) सूयं । ३०—
भरे अतर के प्रमल विरागत राजन कनक पराना । चारु चंद्र
चंडाशु अकारहि धार विविध भवदाता ।—रघुराज ।

चंडा-वि० स्त्री० [सं०] उग्र स्वभाव की । कर्कोटा । दे० “चंड” ।
संज्ञा स्त्री० (१) षट् नायिकाओं में से एक । (२) घोर नामक
संघ-वृत्त । (३) कौर्वक । कौंड्य । (४) लकड़ दूध । (५) शीक ।
(६) सोबा । (७) एक प्राचीन नदी का नाम ।

चंडारि-संज्ञा स्त्री० [सं० चंड = तेज] (१) शीघ्रता । जल्दी ।
फुरती । चटती । उतावली । ३०—(क) देवहु जाइ कहा
जेवन कियो जसुमति रोहिनि तुरत पडाई । मैं अन्धबाप देति
दुहुन कौं तुम भीतर घनि कैं चंडाई ।—सूर । (ख) पुरा-
वली अतारति कटि ते संति धरति मनहौं मन चारनि ।
रोहिनि भोजन करहु चंडाई वार वार कदि कहि करि आरति ।
—सूर । (ग) अननी मयति दधि गो दुहत कन्हाई । सवा
परसर कहत स्याम सौं हमहँ ते तुम करत चंडाई । दुहन
देहु कडु दिन चर मोरौं सय करिहौं मैं मम सरिधाई ।
जरीं एक दुहौंगे तप हीं पारि दुहौं ती भेद दोहाई ।
मृदधिं बहत दुहाईं प्रार्थिं देखहिं गे तुमरी अघिधाई ।
सूर स्याम कद्यो कालि दुहौंगे हमहँ तुम मिलि होइ सगाई ।
—सूर । (घ) कदा भयो जो हम पै चारहँ बुज की रीति
गमाई । हमहँ में विधि के डर मारी अगहँ जाहु चंडाई ।—
सूर । (२) अग्रजना । जरादग्ने । अपम भ्रष्टाचार । ३०—
करत चंडाई फितत हौ नामर नंदकिशोर ।

चंडात-संज्ञा पु० [सं०] एक सुगंधित धूप वा औषध ।

चंडानक-संज्ञा पु० [सं०] चिपों की पोखी वा कुरी ।

चंडाल-संज्ञा पु० [सं०] (को० अ-अन, अ-अने) चाँदाब ।
अराव । डोम ।

चंडाल-दे० “चाँदाल”

चंडालकंद-संज्ञा पु० [सं०] एक कंद जो कक-पित्त-जलक, रज-

शोधक और विपन्न माना जाता है । पत्तियों की संख्या के हिसाब से इसके पाँच भेद माने गए हैं ।

चंडालता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंडाल होने का भाव । (२) नीचता । अघमता ।

चंडालरज-संज्ञा पुं० दे० "चंडालता" ।

चंडालपक्षी-संज्ञा पुं० [सं०] काक । कौया । उ०—सड खगच्छ तव हृदय बिसाला । सपदि होहु पच्छी चंडाला ।—तुलसी ।

चंडाल बाल-संज्ञा पुं० [हिं० चंगल + बाल] यह कड़ा और मोटा बाल जो किसी के माथे पर निकल आता है और बहुत अशुभ माना जाता है ।

चंडाल चट्टकी-संज्ञा स्त्री० दे० "चंडालवीणा" ।

चंडाल घोषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तेंबूरा वा चिकारा ।

चंडालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा (२) चंडालवीणा । (३) एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ आदि द्रव्य के काम में आती हैं ।

चंडालिनी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंडाल वर्षा की स्त्री । (२) दुष्टा स्त्री । पापिनी स्त्री । (३) एक प्रकार का दोहा जो वृषित माना जाता है । जिस दोहे के आदि में जगण पड़े उसने चंडालिनी दोहा कहते हैं । उ०—जहाँ विषम चरनति परै, कहीं जागण जो ध्यान । धरानना चंडालिनी, दोहा दुष्ट की खान ।

चिद्रोप-प्रथम और तृतीय चरण के आदि के एक ही शब्द में जगण पड़े तो वृषित है ; यदि आदि के शब्द में जगण पूरा न हो और दूसरे शब्द से अक्षर लेना पड़े तो उसमें दोष नहीं है । पर यदि यह भी बचाया जा सके तो और भी बचम है ।

चंडावल-संज्ञा पुं० [सं० चंड + बालि] (१) सेना के पीछे का भाग । पीछे रहनेवाले सिपाही । 'दरावल' का उलटा । (२) वीर बोद्धा । बहादुर सिपाही । (३) संतरी । पहरेदार । चौकीदार ।

चंडाह-संज्ञा पुं० [दे०] गाढ़े की सरह का एक मोटा कपड़ा ।

चंडिमा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का देसी लोहा ।

चंडिकघंट-संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

चंडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा । (२) लड़ाकी स्त्री । कर्करा स्त्री । (३) गायत्री देवी । वि० लड़ाकी । कर्करा ।

चंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा का वह रूप जो उन्होंने महिषासुर के वध के लिये धारण किया था और जिसकी कथा मार्कंडेय पुराण में लिखी है । दुर्गा । (२) कर्करा और उग्र स्त्री । (३) सेरह अचरों की एक बर्णवृत्ति जिसमें दो जगण, दो सगण और एक गुरु होता है । उ०—न नखु सितरि नर । आधु तु अरुपा । निसि दिन भजत विज्ञासिनि

तवपा । कुबुध कुजन अघ धोघन खंडी । भजहु भजहु जन-पालिनि चंडी ।

चंडीकुसुम-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कनेर ।

चंडीपति-संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

चंडीदा-संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

चंडीसुर-संज्ञा पुं० [सं०] चंडमर । एक तीर्थ का नाम ।

चंडु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूहा । (२) एक प्रकार का छोटा बंदर ।

चंडू-संज्ञा पुं० [सं० चंड = तं दण ?] अफ्रीम का किंवाम जिसका धुआँ नरो के लिये एक नली के द्वारा पीते हैं ।

किं० प्र०—पीना ।

चिद्रोप—चीनी लोग चंडू बहुत पीते हैं । अफ़गानिस्तान से चंडू बन कर हिंदुस्तान में आता है । वहाँ चंडू बनाने के लिये अफ़्रीम को ताल करके कई बार ताव दे दे कर द्यतते हैं ।

चंडूखाना-संज्ञा पुं० [हिं० चंडू + खाना] वह घर वा स्थान जहाँ लोग झूठे होकर चंडू पीते हैं ।

मुहा०—चंडूखाने की गप = मतवालों की झूठी बकवाद । विघ्न-कुल झूठी बात ।

चंडूबाज-संज्ञा पुं० [हिं० चंडू + बा० बज्ज (प्रत्य०)] चंडू पीने-वाला । चंडू पीने का म्यसनी ।

चंडूल-संज्ञा पुं० [दे०] एक खाकी रंग की छोटी चिड़िया जो पेड़ों और झाड़ियों में बहुत सुंदर घोंसला बनाती है और बहुत अच्छा गोलती है ।

मुहा०—पुराना चंडूल = बेडील, मदा या बेवकूफ आदमी । (पाठारु) ।

चंडेद्वर-संज्ञा पुं० [सं०] रक्तवर्ण शरीरधारी शिव का एक रूप ।

चंडोदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता के समझाने के लिये नियत किया था ।

चंडोल-संज्ञा पुं० [सं० चंड + रोल] (१) एक प्रकार की पालकी जो हाथी के हाँदे वा घोसरी के आकार की होती है और जिसे चार आदमी बठाते हैं । (२) मिट्टी का एक किलौना जिसे चौपड़ा भी कहते हैं ।

चंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "चंद्र" । (२) हिंदी के एक अर्थवत् वा सत्य से प्राचीन कवि जो दिष्टी के अंतिम हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की समा में थे । इनका बनाया हुआ पृथ्वीराज रासो बहुत बड़ा काव्य है । ये लाहौर के रहने-वाले थे ।

वि० [फा०] (१) योड़े से । कुब्ज । उ०—अभी चंद रोड़ कहे आप हुए । (२) कई एक । कुल उ०—चंद आदमी यहाँ बैठे हैं ।

चंद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) चंद्रनी। (३) एक प्रकार की छोटी चमकीली मछली। चंद्र मछली (७) साथे पर पहनने का एक शब्दचंद्रकार रहना जिसके बीच में नाग और किनारे पर मोती जड़े रहते हैं। सिर में यह तीन जगह से बँधा रहता है। (४) नभ में गान के आकार की वनावट जिसमें बनी आकार का नाग वा हीरा बँटाया रहता है और किनारे पर छोटे छोटे मोती जड़े रहते हैं।

चंद्रकपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौंग। (२) दे० "चंद्रकला"।

चंद्रन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ जिसके हीर की लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और जो दक्षिण भारत के मैसूर, कुर्ग, हैदराबाद, करनाटक, नीलगिरि, पश्चिमी घाट आदि स्थानों में बहुत होता है। वचर भारत में भी कहीं कहीं यह पेड़ लगाया जाता है। चंद्रन की लकड़ी औषध तथा द्रव तेल आदि बनाने के काम में आती है। हिंदू लोग इसे पित्त कर हुआका तिलक लगाते हैं और देव पूजन आदि में इसका व्यवहार करते हैं।

विशेष—चंद्रन की कई जातियाँ होती हैं जिसमें मलयगिरि वा श्रीलंका (सफेद चंद्रन) ही असली चंद्रन समझा जाता है और शेष सब सुगंधित होता है। इसका पेड़ २०, ३० फुट ऊँचा और सदाबहार होता है। पत्तियाँ इसकी देड़ इंच लंबी और बेल की पत्तियों के आकार की होती हैं। फूल, पत्तियों से अलग निकली हुई टहनियों में तीन तीन चार चार के गुच्छों में लगते हैं। यह पेड़ प्रायः सूखे स्थानों में ही होता है। इसके हीर की लकड़ी कुछ मटमैलापन लिए सफेद होती है जिसमें से यज्ञो हुंदा महक निकलती है। यह महक एक प्रकार के तेल की होती है जो लकड़ी के भीतर होता है। जड़ में यह तेल सब से अधिक होता है इससे तेल वा द्रव छींचने के लिये इसकी जड़ की बड़ी भाग रहती है। चंद्रन की लकड़ी के औरते, महादीवार संद्रक आदि बहुत से सामान बनते हैं जिनमें सुगंध के कारण घुन नहीं लगते। हिंदू लोग इसकी लकड़ी का पत्थर पर पानी के साथ पिस कर तिलक लगाते हैं। इसका सुरादा पूष के समान सुगंध के लिये जलगाया जाता है। चीन, बरमा आदि देशों के मंदिरों में चंद्रन के सुरादे की पूर बहुत जतनी है। चंद्रन का पेड़ वास्तव में उस जाति के पेड़ों में है जो दूसरे धारों के रस से अपना पोषण करते हैं (जैसे, चंदरा, कुडमुना आदि)। इसी से यह पास, पीपों और छोटी छोटी आदियों के बीच में अधिक उगता है। कौन कौन पीपे इसके आहार के लिये अधिक उपयुक्त होते हैं इसका हीर कीर पता न चलने से इसे लगाने में कभी कभी उतनी सफलता नहीं होती। यों ही अर्थात् यज्ञात्क जमीन में लगा देने से पेड़ बढ़ता तो खल है पर इसकी लकड़ी में उतनी सुगंध नहीं होती। सरकारी

जंगल-विभाग के एक अनुभवी कर्मचारी की राय है कि चंद्रन के पेड़ के नीचे खूब घासपात उगने देना चाहिए, उसे काटना न चाहिए। घास पात के जंगल के बीच में बीच पड़ने से जो पीपया उगोया और पड़ेगा उसकी लकड़ी में अच्छी सुगंध होगी। श्रीलंका वा असली चंद्रन के सिवाय और बहुत से पेड़ हैं जिनकी लकड़ी चंद्रन कहलाती है। जंजिबार (अम्रिका) से भी एक प्रकार का श्वेत चंद्रन आता है जो मलयगिरि के समान व्यवहृत होता है। हमारे यहाँ रंग के अनुसार चंद्रन के कुछ भेद किए गए हैं। जैसे, श्वेत चंद्रन, पीत चंद्रन, रक्त चंद्रन इत्यादि। श्वेत चंद्रन और पीत चंद्रन एक ही पेड़ से निकलते हैं। रक्त चंद्रन का पेड़ भिन्न होता है। उसकी लकड़ी फड़ी होती है और उसमें गहूँ भी बँसी नहीं होती। निचंदुराकार आदि वैद्यक के ग्रंथों में चंद्रन के दो भेद किए गए हैं एक वेद, दूसरा खुदचि। मलयगिरि के श्रेतगत कुछ पर्वत हैं जो वेद कहलाते हैं। अतः उन पर्वतों पर होनेवाले चंद्रन को वेद कहते हैं। राजनिबंठु में एक शंवर नामक चंद्रन का भी खल्लेस है जिसे कैरालक भी कहते हैं। संभर है कि यह किनात देवा (आसाम और भूटान) से आता रहा हो। चंद्रन के विषय में अनेक प्रकार के प्रवाद लोगों में प्रचलित हैं। ऐसा कहा जाता है कि चंद्रन के पेड़ में बड़े बड़े ताप लिए रहते हैं। चंद्रन अपनी सुगंध के लिये बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। अरबवाले पहले भारतवर्ष, लंका आदि से चंद्रन पश्चिम के देशों में ले जाते थे। भारतवर्ष में यद्यपि दक्षिण की ओर चंद्रन विरूप होता है पर उसके द्रव और तेल के कारणने कबीज ही में हैं। पहले खानऊ और जैनपुर में भी कारणने थे। तेल निकालने के लिये चंद्रन को खूब महीन बूटते हैं, फिर इस चुकनी को दो दिन तक पानी में भिनी कर उसे भभके पर चढ़ाते हैं। आप होकर जो पानी टपकता है उसके ऊपर तेल तैरने लगता है। इसी तेल को काँच कर रख लेते हैं। एक मन चंद्रन में से २ से ३ सेर तक तेल निकलता है। अच्छे चंद्रन का तेल मलयगिरि कहलाता है और घटिया तेल का कटिया वा जहरी। चंद्रन औषध के काम में भी बहुत आता है। एत वा पाय हमसे बहुत जल्दी सूखते हैं। वैद्यक में चंद्रन शीतल और कष्टुभा तथा दाह, पित्त, ज्वर, छर्दि, मोह, रुपा आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्व्यों—श्रीलंका। चंद्रकॉत। गोरीपर्व। ओगिवल्लन। भद्रसार। भद्रवर्ष। गोपसार। अन्नर्षी। एकगा। पटी। यथोक्त। भद्राश्रय। लेख्य। रौद्रिण। प्रायश्च। मरंपेट। पीतलका। महाहै। अन्नपौद्भव, गंधराज। सुगंध। सगंधास। शीतल। शीतगण। तैलपरिष्क। चंद्रपुति। सिनहिम, इत्यादि।

(२) चंद्रन की लकड़ी। चंद्रन की लकड़ी वा टुकड़ा।

क्रि० प्र०—विसना।—रगड़ना।

मुहा०—चंद्रन उतारना = पानी के साथ चंद्रन की लकड़ी को विसना जिसमें उसका थंरा पानी में घुल जाय।

(३) यह लेप जो पानी के साथ चंद्रन को घिसने से बने। यिसे हुए चंद्रन का लेप।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—चंद्रन चढ़ाना = यिसे हुए चंद्रन को शरीर में लगाना।

(४) गंधपत्तार। पत्तारन। (२) राम की सेना का एक बंदर।

(६) छुप्य छुंद के तेरहवें भेद का नाम। (७) एक प्रकार का बड़ा तोता जो उत्तरीय भारत, मध्य भारत, हिमालय की तराई, काँगड़ा आदि में पाया जाता है।

चंद्रनगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] मलयचल पर्वत।

चंद्रनगोह—संज्ञा पुं० [हिं० चंद्रन + गोह] एक प्रकार की गोड़ जो बहुत छोटी होती है।

चंद्रनधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो पुत्र द्वारा सौभाग्यवती भृत माता के उदरेश से चंद्रन से श्रंक्ति करके दी जाती है। यह दान धुपोःसर्ग के स्थान में होता है क्योंकि पिता की उपस्थिति में पुत्र को धुपोःसर्ग का अधिकार नहीं है।

चंद्रनपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रन का फूल। (२) लौंग। लवंग।

चंद्रनयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रमणवृत्तीय। वैशाख सुदी तीज।

चंद्रनवती—वि० स्त्री० [सं०] चंद्रन से युक्त।

संज्ञा स्त्री० केरल देश की भूमि।

चंद्रनशारिचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की शारिया जिसमें चंद्रन की सी सुगंध होती है।

चंद्रनसार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्रधार। नौसादर। (२) विसा हुआ चंद्रन।

चंद्रनहार—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र + हिं० हार] एक प्रकार की गले में पहनने की माला जो कई प्रकार की होती है। दे० “चंद्रहार”।

चंद्रना—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रनशारिचा।

चंद्रनादि तैल—संज्ञा पुं० [सं०] ताल चंद्रन के योग से बननेवाला आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध तैल जो शरीर के अनेक रोगों पर चलता है और शरीर में नई कर्ति लानेवाला माना जाता है।

विशेष—एक चंद्रन, धगर, देवदार, पत्रकाठ, हलायची, केसर, कपूर, कस्तूरी, जायफल, शीतलचीनी, दालचीनी, नागकेसर हत्यादि को पानी के साथ पीस कर तेल में पकाते हैं और पानी के जल जाने पर तेल छान लेते हैं।

चंद्रनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख रामायण में है।

† संज्ञा स्त्री० दे० “चंद्रनी”।

चंद्रनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरौचन।

चंद्रनौता—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का लहंगा। उ०—चंद्रनौता जो खर दुख भारी। योसपूर मिलमिल की सारी।—जायसी।

चंद्रवान—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रवाण] एक प्रकार का वाण। इस वाण के सिरे पर धर्दूचंद्राकार लोहे की गांसी वा फल लगा रहता है। इस वाण को उम समय काम में लाते हैं जब किसी का सिर काटना होता है। उ०—चले चंद्रवान, धनवान और कुहकवान।—भूषण।

चंद्रनाना—क्रि० सं० [देग०] (१) सुखलाना। मूढ़ बनाना। बहलाना। (२) जान यूक कर कोई बात पढ़ना। जान यूक कर श्रनजान बनाना।

चंद्रला—वि० [हिं० चंद्र = खोपड़ी] जिसकी चांद के बाल कड़ गए हों। गंजा। खलवाट।

चंद्रवा—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र वा चंद्रोप्य] एक प्रकार का छोटा मंडप जो राजाओं के सिंहासन वा गद्दी के ऊपर चांदी वा सोने की चार धोरों के सहारे ताना जाता है। चंद्रवा। चंद्ररुत। वितान। उ०—ऊपर राता चंद्रवा छाया। श्री सुई सुई विद्याव विद्यावा।—जायसी।

विशेष—इसकी लखाई चौड़ाई दो ढाई गज से अधिक नहीं होती और यह प्रायः मन्मल रेशम आदि का होता है जिस पर कारचोव का काम बना रहता है। इसके बीच में प्रायः गोल काम रहता है।

संज्ञा पुं० [सं० चंद्रक] (१) गोल आकार की चकती। गोल थिंगली वा पैचंद। जैसे, टोपी का चंद्रवा। (२) [स्त्री० चंद्रिया] तालाब के भीतर वा गहरा गड्ढा जिसमें मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। (३) मोर की पूँछ पर का धर्दूचंद्राकार चिह्न जो सुनहले मंडल के बीच में होता है। मोर पंज की चंद्रिका। उ०—(क) मोरन के चंद्रवा माधे बने राजन खिर सुदेसरी। बदन कमल ऊपर अलिनग मानो पूँछबारे केसरी।—सूर। (ख) सोहत हैं चंद्रवा सिर मोर के जैसिय सुंदर पाग कसी है।—रसखान। (घ) एक प्रकार की मछली।

चंद्रा—संज्ञा पुं० [सं० चंद्र वा चंद्र] चंद्रमा। उ०—ज्यों चंद्रो चंद्रा को निरलै इत उन दृष्टि न जाहि। सूर हयाम यिन छिन छिन युग सम क्यों करि रैन विहाहि।—सूर।

मुहा०—चंद्रा मामा = लड़के को बहनाने का एक वाक्य। जैसे ‘चंद्रा मामा दौरी आ। दूध भरी कटोरिया’ हत्यादि।

संज्ञा पुं० [प्रा० चंद्र = कई एक] (१) बूढ़ घोड़ा घोड़ा घन जो कई आशुमियों से बनके इच्छातुसार किसी कार्य के लिये लिया जाय। बेहरी। उगाही। बरार। (२) किसी सामयिक पत्र वा पत्रक आदि का वार्षिक वा मासिक मूल्य। (३) बह

चन जो किसी सभा सोसायटी आदि को उसके सदस्यों वा सहायकों द्वारा नियत समय पर दिया जाय ।

चंदायत-संज्ञा पुं० [चं० चंद्र] चंद्रियों की एक जाति वा शाला ।

चंदायती-संज्ञा स्त्री० [चं०] श्री राम की सहचरी एक रागिनी ।

चंद्रिका-संज्ञा स्त्री० दे० "चंद्रिका" ।

चंद्रिनि, चंद्रिनी-संज्ञा स्त्री० [चं० चंद्र] चंद्रिनी । चंद्रिका ।

उ०—चैत्र चतुर्दशी चंद्रिनि भ्रमल उदित निमिराहु ।
उद्गमन भवति सती दम दिसि उमगन आर्षदं आहु ।—
तुलसी ।

चं० चंद्रिनी । उजेली । उ०—तिन्हहिं सुहाइ न भवथ
पथाया । वोहहिं चंद्रिनि राव न भावा ।—तुलसी ।

चंद्रिया-संज्ञा स्त्री० [हि० चंद्र] (१) खोपड़ी । सिर का मध्य भाग ।

मुहा०—चंद्रिया पर बाल न छोड़ना = (१) सिर के बाल तक न छोड़ना । सय कुल ले लेना । सर्वत्र हरया कर लेना । (२)

सिर पर जूते लगाने लगाने बाह्य उड़ा देना । लूच चले उठाना ।

चंद्रिया से परे सरक = सिर के ऊपर से धनग जाकर खड़ा

हो । पास से हट जा । चंद्रिया मूढ़ना = (१) सिर मूढ़ना । हजामत

बनाना । (२) लूट कर खाना । पोखरा देख करिनी का धन

आदि ले लेना । (३) सिर पर लूच उठी लगाना । चंद्रिया

खाना = (१) बकवाद से तंग करना । सिर खाना । सिर में दर्द

पैदा करना । (२) सय कुल हरया करके दरिद्र बना देना ।

चंद्रिया खुजाना = (१) सिर खुजाना । (२) मार वा कुत्ते

खाने की चीज चानना । मार खाने का काम करना ।

(२) छोटी सी रोटी । सचे हुए छाटे की टिकिया । पिछली

रोटी । (३) किसी ताल में यह स्थान जहाँ तब से अधिक

गहराई हो । उ०—इस साल तो मेरु की कम बर्षा हुई कि

तालों की चंद्रिया भी सूख गई । (४) चाँदी की टिकिया ।

चंद्रिर-संज्ञा पुं० [चं०] (१) चंद्रमा । उ०—(क) रथो विषयकमां

सो मंदिर । परम प्रकाशिन मानहु चंद्रिर ।—रघुराज । (ख)

हेम कलश कल कोट कंगरे कहु मंदिर चंद्रिर सम स्त्रे ।—

रघुराज । (२) हाथी ।

चंद्रैरी-संज्ञा स्त्री० [चं० चंद्र वा हि० चंद्र] एक प्राचीन नगर

जो ग्वालियर राज्य के नरवार जिले में है । आज कल की

बस्ती से ४,५ कोस पर पुरानी इमारतों के खंडहर हैं । पहले

यह नगर बहुत समृद्ध देग में था पर अथ कुल्लु उजड़ गया

है । यहाँ की पगड़ी प्रसिद्ध है । चंद्रैरी में कपड़े (सूती और

देसी) अब भी बहुत अच्छे बुने जाते हैं । यहाँ एक पुराना

ढिंवा है जो सुमीन से १३० फुट की ऊँचाई पर है । इसका

फाटक 'सूनी दरवाजा' के नाम से प्रसिद्ध है क्यों कि पहले

यहाँ अरारपी किले की दीवार पर से टकेले जाते थे ।

रमापुत्र महाभारत और धीमद्यों के देवने से पता लगना है

कि प्राचीन काल में इसके आसपास का प्रदेश चंद्रि, कलचुरि

वा हैय चंद्र के अधिकार में था । और चंद्रि देव कहलाता

था । चंद्रैरों का जय प्रताप चमका तब उनके राजा यशोवर्मा

(संवत् ३८२ से १०१२ तक) ने कलचुरि लोगों के हाथ से

कालिंजर का किला तथा आस पास का प्रदेश ले लिया ।

हूरी से कोई कोई चंद्रैरी शब्द की व्युत्पत्ति 'चंद्रल' से बतलाने

हैं । अलवरुनी ने चंद्रैरी का उल्लेख किया है । सन् १२२१

ईसवी में गयामुद्दीन यल्तून ने चंद्रैरी पर अधिकार किया ।

सन् १४३८ में यह नगर मालवा के बादशाह महमूद खिलजी

के अधिकार में गया । सन् १६२० में चितौर के राव्या सांगा

ने इसे जीत कर मेदिनी राव को दे दिया । मेदिनीराव से इस

नगर को धाबर ने लिया । सन् १६५६ के उपरान्त बहुत दिनों

तक यह नगर मुंदेलों के अधिकार में रहा और फिर अंग में

सन् १८११ में यह ग्वालियर राज्य के अधिकार में आया ।

उ०—राव चंद्रैरी को भूपाल । जाको संवत सय भूपाल ।

सूर ।

चंद्रैरीपति-संज्ञा पुं० [चं०] चंद्रैरी का राजा, शिशुगाल ।

चंद्रैल-संज्ञा पुं० [चं०] चंद्रियों की एक शाला जो किसी समय

कालिंजर और मधुवे में राज्य करती थी । परमहिंदेव वा राजा

परमाल हूरी बंध के थे, जिनके सामंत चालुहा और उदल

प्रसिद्ध हैं । संस्कृत लेखों में यह वरा चंद्रायण के नाम से

प्रसिद्ध है ।

चिरीय-चंद्रैरों की उत्पत्ति के विषय में यह कथा प्रसिद्ध है कि

काशी के राजा इंद्रजित् के पुरोहित हेमराज की कन्या हेमवती

बड़ी सुंदरी थी । यह एक कुंड में स्नान कर रही थी । हूरी

बीच में चंद्र देव ने उस पर धासक हो कर उसे आलिंगन

किया । हेमवती ने जब बहुत कोर प्रकट किया तब चंद्रदेव ने

कहा "सुकुंते तुम्हें जो पुत्र होगा वह बड़ा प्रतापी राजा होगा

और उसका राजवंश चलेगा ।" जब उसे कुमारी श्वशुरा ही में

गर्भ रह गया तब चंद्रमा के आदेशानुसार उसने अपने पुत्र

को ले जाकर खजुराहो के राजा कर दिया । राजा ने उसका

नाम चंद्रवर्मा रखा । कहते हैं कि चंद्रमा ने राजा के लिये

एक पास भण्य दिया था । पुत्र बड़ा प्रतापी हुआ । उसने

महोबा नगर बसाया और कालिंजर का किला बनवाया ।

खजुराहों के शिलालेखों में लिखा है कि मरीचिक के पुत्र अग्रि

क के एक चंद्रायण नाम का पुत्र था । उनी के नाम पर यह

चंद्रायण नाम का बंध चलना । ईसवी सन् ३०० से ले कर

१४३६ तक इस बंध का मयल राज्य कुद्वेलखंड और मध्य

भारत में रहा । परमहिंदेव के समय से इस बंध का प्रताप

घटने लगा ।

चंद्रैया-संज्ञा पुं० दे० "चंद्रैया" ।

चंद्रैवा-संज्ञा पुं० दे० "चंद्रैया" ।

चंद्र-संज्ञा पुं० [चं०] (१) चंद्रमा ।

विशेष—समाप्त में इस शब्द का प्रयोग बहुत अधिक होता है, जैसे मुलचंद्र, चंद्रमुली। कहीं कहीं यह श्रेष्ठ का श्रय भी देता है, जैसे, पुरुषचंद्र । दे० "चंद्रमा" ।

(२) संस्था सूचित करने की काव्य शैली में एक की संस्था । (३) मोर की पूँछ की चंद्रिका । उ०—मदन मोर के चंद्र की झलकनि निदरति तन जोति ।—मुलसी । (४) कपूर । (५) जल । (६) सोना । स्वर्ण । (७) रोचनी नाम का पौधा । (८) वैरागिक भूगोल के १८ उपद्वीपों में से एक । (९) वह विं दी जो सानुनासिक चर्च के ऊपर लगाई जाती है । (१०) खाल रंग का मोती । (११) पिंगल में टाण का दुसर्वा भेद (॥३॥) । उ०—मुरलीधर । (१२) हीरा । (१३) मृगशिरा नक्षत्र । (१४) कोई आनंददायक वस्तु । (१५) नैपाल में एक पर्वत । (१६) चंद्रभागा में गिरनेवाली एक नदी ।

वि० (१) शास्त्रद्वयनक । आनंददायक । (२) सुंदर । रमणीय ।

चंद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) चंद्रमा के ऐसा मंडल या घेरा । (३) चंद्रिका । चांदनी । (४) मोर की पूँछ की चंद्रिका । (५) नह । नाखून । (६) एक प्रकार की मछली । (७) कपूर । उ०—परि उपचार यकी चहो छलि उताल नैदनेद । चंद्रक चंदन चंद तें उवाल जगी वैचंद्र ।—श्रु० सत । (८) मालवेरा राग का पुत्र । (संगीत) । (९) सफ़ेद मिर्च । (१०) सहज ।

चंद्रकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमंडल का सोलहवाँ श्रेरा । दे० "कला" । (२) चंद्रमा की किरण या ज्योति । उ०—धनि द्वैज की चंद्रकला श्रयला सो लला की सजीवन मूरि भई है ।—सैयक । (३) एक वर्षवृत्त जो श्राठ सगण और एक गुरु का होता है । इसका दूसरा नाम सुंदरी भी है । यह एक प्रकार का सवैया है । उ०—सच सेों गदि पाणि मिले श्नुनेदन भेंटि कियो सच को बद्ध भागी । (४) माये पर पहनने का एक गहना । (५) छोटा ढोल । (६) एक प्रकार की मछली जिसे बचा भी कहते । (७) एक प्रकार की बैंगला मिठाई । (८) एक प्रकार का सात-सात तास जिसमें तीन गुरु और तीन प्लुत के बाद एक लघु होता है । इसका बोल यह है,—तकटि कटि तकटि कटि चिक तां तां तां धिम चिक तां तां तां धिम चिक तां तां तां धिम था ।

चंद्रकलाधर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव ।

चंद्रकांत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन ग्रंथों के अनुसार एक ऋषि या रत्न जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह चंद्रमा के सामने करने से पत्तीजता है और उससे बूँद बूँद पानी टपकता है । (२) एक राग जो हिंदोल राग का पुत्र माना जाता है । (३) चंदन । (४) कुमुद । (५) लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु की राजधानी का नाम ।

चंद्रकांता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की स्त्री । (२) रात्रि रात । (३) महभूमि की एक नगरी जहाँ लक्ष्मण के चंद्रकेतु राज्य करते थे । (४) पंद्रह अक्षरों की एक वर्षवृत्त । चंद्रकांति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चांदी ।

चंद्रकाम—संज्ञा पुं० [सं०] वह पीड़ा जो किसी पुरुष को वृत्त समय होती है जब कोई स्त्री उसे बशीभूत करने के लिये मंत्र मंत्र आदि का प्रयोग करती है ।

चंद्रकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्रकि] यह जिसे चंद्रक हो । मोर । मयूर ।

चंद्रकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का पुत्र, शुभ । (२) यौद्धा के एक पातक का नाम ।

चंद्रकुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] काश्मीर की एक नदी का प्राचीन नाम ।

चंद्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] कामरूप प्रदेश का एक पर्वत जिसका बहुत कुछ माहात्म्य कालिका पुराण में लिखा है ।

चंद्रकूप—संज्ञा पुं० [सं०] काशी का एक प्रसिद्ध कुआँ जो तीर्थ-स्थान माना जाता है ।

चंद्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम जिन्हें भारत के कहने से राम ने उत्तर का चंद्रकांत प्रदेश दिया था ।

चंद्रक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] अमावास्या ।

चंद्रगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] नैपाल का एक पर्वत जो काठमांडू के पास है । इसकी ऊँचाई ८२०० फुट है ।

चंद्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्रगुप्त जो यम की सभा में रहते हैं । (२) मगध देश का प्रथम मौर्यवंशी राजा जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी और जिसने बल्लव के यूनानी (यवन) राजा सीरियकस पर विजय प्राप्त करके उसकी कन्या ब्याही थी । कैटिव्य चाणक्य की सहायता से महानंद तथा और नंदवंशियों को मार इसने मगध का राजसिंहासन प्राप्त किया था, जिसकी कथा विष्णु, ब्रह्म, स्कंद, भागवत आदि पुराणों में मिलती है । इसी कथा को लेकर बरकृत का प्रसिद्ध नाटक मुद्राराक्षस बना है । चंद्रगुप्त वंश प्रतापी राजा था । इसने पंजाब आदि स्थानों से यवनों (यूनानियों) को निकाल दिया था । यह ईसा से ३२१ वर्ष पूर्व मगध के राजसिंहासन पर बैठा और २४ वर्ष तक रहा । (३) गुप्त वंश का एक बड़ा प्रतापी राजा जिसे विक्रम वा विक्रमादित्य भी कहते थे । इसका विवाह लिच्छवीराज की कन्या कुमारी देवी से हुआ था । शिलालेखों से जाना जाता है कि इस राजा ने सन् ३१८ के लगभग समस्त उत्तरीय भारत पर साम्राज्य स्थापित किया था । लोगों का अनुमान है कि इसी प्रथम चंद्रगुप्त ने गुप्त संवत् चलाया था । (४) गुप्त वंश का एक दूसरा राजा जो प्रथम चंद्रगुप्त के पुत्र समुद्रगुप्त का पुत्र था । इसकी मता का नाम दत्तदेवी था । इसे विक्रमांक और

देवान भी कहते थे। इसने अथवा विवाह नैनाक के राजा की कन्या प्रयत्ने की साथ किया था। इसने दिग्विजय करके बहुत से देशों में अपनी कीर्ति स्थापित की थी। शिला-लेखों से पता लगता है कि इसने ईसवी सन् ४०० से ४१३ तक इसने राज्य किया।

चंद्रगृह—संज्ञा पुं० [सं०] कर्कराशि।

विशेष—चंद्र वा उसके किसी पर्यायवाची शब्द में गृह वा उसके किसी पर्यायवाची शब्द के लगने से 'कर्कराशि' अर्थ होता है।

चंद्रगोद—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमंडल।

चंद्रगोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रिका। चांदनी।

चंद्रग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का ग्रहण। दे० 'ग्रहण'।

चंद्रचंचल—संज्ञा पुं० [सं०] खरमा मछली।

चंद्रचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम जिसका उल्लेख बाल्मीकि रामायण में है।

चंद्रचूड़—संज्ञा पुं० [सं०] (मत्स्य पर चंद्रमा के धारण करने-वाले) शिव। महादेव।

चंद्रचूडामणि—संज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष में ग्रहों का एक योग। जब नवम स्थान का स्वामी केन्द्रस्थ हो तब यह योग होता है। ३०—केंद्री है नवमे कर स्वामी योग चंद्र चूडामणि। पुष्ट दिन भक्त सकल गुण सागर दाता यूर शिरोमणि।

चंद्रज—संज्ञा पुं० [सं०] बुध (जो चंद्रमा के पुत्र माने जाते हैं)।

चंद्रजात—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्र + जन्म (१) चंद्रमा का प्रकार।

(२) महत्वाची नाम की आत्मावाणी।

चंद्रताल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वारहताला ताल जिसे परम भी कहते हैं।

चंद्रद्वारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] २७ नक्षत्र जो पुराणानुसार बुध की कन्याएँ हैं और चंद्रमा को व्याही हैं।

चंद्रयुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकार वा किरण। (२) चंद्र।

चंद्रधनु—संज्ञा पुं० [सं०] यह इंद्रधनुष जो रात को चंद्रमा के प्रकार के पड़ने के कारण दिखाई पड़ता है।

चंद्रघर—संज्ञा पुं० [सं०] (चंद्रमा को धारण करनेवाले) महादेव। शिव।

चंद्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी लता।

चंद्रपुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्र + पूर। एक बंगला मिठाई जो गरी से बनाई जाती है।

चंद्रपुरपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चांदनी। (२) बकुची। (३) सफ़ेद मकड़िया।

चंद्रप्रभ—वि० [सं०] चंद्रमा के समान ज्योतिरात्मा। कांतिसाल। संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैनों के आठवें तीर्थंकर। इनके पिता का नाम महासेन और माता का नाम लक्ष्मणा था। (२) तपस्विला के राजा एक योधिसत्त्व जो बड़े दानी थे। एक

घार एक ब्राह्मण ने था कर इनसे इनका मत्स्य मार्गा। इन्होंने बहुत धन देकर उसे संतुष्ट करना चाहा पर जब उसने न माना तब इन्होंने अपने मत्स्य पर से राजकुंठ उतार उसके आगे रखा। तब ब्राह्मण इन्हें एकान्त में ले गया और वहाँ जाकर बसने इनका सिर काट लिया।

चंद्रप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की ज्योति। चांदनी। चंद्रिका। (२) बकुची नाम की शोषधि। (३) कचूर। (४) वैद्यक की एक प्रसिद्ध शुटिका जो थरई भगदर आदि रोगों पर दी जाती है।

चंद्रवंधु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का भाई, संख (क्योंकि चंद्रमा के साथ यह भी समुद्र में से निकला था)। (२) कुमुद।

चंद्रवधुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रवधु = चंद्रवधु। वीरवधुटी। ३०—नाथ लहू भए लालन जू लखि भागिनि माल की चंद्रन यूटी। चोप सों, चार सुधारस लोभ विधी विधु में सने चंद्रवधुटी।—नाथ।

चंद्रव्याघ्र—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रव्याघ्र अर्द्धचंद्रव्याघ्र जो सिर काटने के लिये छोड़ा जाता था। (इसका फल अर्द्धचंद्राकार बनता था जिसमें गले में पूरा पूरा बंड जाय)। ३०—चले चंद्रवान, चनवान और डुककान।—गुण्य।

चंद्रवाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की स्त्री। (२) चंद्रमा की किरण। (३) यज्ञी हलायची।

चंद्रवाहु—संज्ञा पुं० [सं०] एक धनुष का नाम।

चंद्रबिंदु—संज्ञा पुं० [सं०] अर्द्ध धनुस्वार की बिंदी। अर्द्ध चंद्राकार चिह्न युक्त बिंदु जो सागुनासिक वर्षों के ऊपर लगता है। जैसे 'गाँव' में 'गा' के ऊपर।

चंद्रचिंभ—संज्ञा पुं० [सं०] सैष्य जति का एक राग जो दिन के पहले पहरे में गाया और हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है।

चंद्रघोड़ा—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्र + घेड़ा। एक प्रकार का अजगर।

चंद्रमधन—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम।

चंद्रमरुम—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

चंद्रमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकार। (२) सफ़ेद मकड़िया।

चंद्रभाग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा की कला। (२) सोलह की संख्या। (३) हिमालय के श्रंतगत एक पर्वत वा शिखर का नाम जिससे चंद्रभागा वा चोनाय निकली है। ऐसी कथा है कि किसी समय मद्रा ने इसी पर्वत पर बैठ कर देवताओं और पितरों के निमित्त चंद्रमा के भाग किए थे।

चंद्रभागा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंजाब की चोनाय नाम की नदी जो हिमालय के चंद्रभाग नामक श्रेष्ठ से निकल कर सिंधु नदी में मिलती है। दे० 'चोनाय'।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि मद्रा के आदेश से

चंद्रभाग पर्वत से शीता नाम की नदी उत्पन्न हुई। यह नदी चंद्रमा के डुबाती हुई एक सरोवर में गिरी। चंद्रमा के प्रभाव से इसका जल अत्यंतमय हो गया। इसी जल से चंद्रभागा नाम की कन्या उत्पन्न हुई जिसे समुद्र ने प्यादा। चंद्रमा ने अग्नी गदा की भोक से पहाड़ में दारार कर दिया जिससे होकर चंद्रभागा नदी यह निकली। ३०—शुभ कुत्स्येत, अयोध्या, मिथिला, प्राग, त्रिवेनी नहाए। पुनि शतनु श्रीरह चंद्रभागा, गंग व्यास श्रुद्वाए।—सूर।

चंद्रमाट—संज्ञा पुं० सं० च० + हिं० भट्] एक प्रकार के मिष्ठुक साधु जो शिव और काली के उपासक होते हैं। वे अपने साथ, गाय, बैल, यकरी और बंदर आदि लेकर घूमते हैं। वे प्रायः गृहस्थ होते हैं और खेती बारी करते हैं।

चंद्रमानु—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण की पटरानी तस्यभामा के १० पुत्रों में से सातवें पुत्र का नाम। ३०—मानु स्वभाव तथा अतिमानु। पृथुमानु स्वर्भानु प्रभानु। चंद्रमानु श्रीरवि प्रतिभानु। भानुमानु सह दस मतिमानु।—गोपाल।

चंद्रमाल—संज्ञा पुं० [सं०] (मल्ल पर चंद्रमा को धारण करनेवाले) शिव। महादेव।

चंद्रभूति—संज्ञा श्री० [सं०] चाँदी।

चंद्रभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। ३०—मित पाल यादृति चंद्रिका जनु चंद्रभूषण भालहाँ।—तुलसी।

चंद्रमणि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रकांत मणि। ३०—(क) चौकी हेम चंद्रमणि लागी हीरा रतन उराय खची। भुवन चतुर्दश की सुंदरता राधे के मुख मनहि रची।—सूर। (ख) केंती सोमकला करो, करो सुधा को दान। नहीं चंद्रमणि जो द्रवै, यह तेलिया पखान।—दीनदयाल। (२) उल्लाहा छंद का एक नाम।

चंद्रमस्—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

चंद्रमा—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रमस्] आकाश में घमकनेवाला एक उपग्रह जो महीने में एक बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है और सूर्य से प्रकाश या कर चमकता है।

विशेष—यह उपग्रह पृथ्वी के लगभग से निकट है अर्थात् यह पृथ्वी के २३८००० मील की दूरी पर है। इसका व्यास २१६२ मील है और इसका परिमाण पृथ्वी का $\frac{1}{4}$ है। इसका गुरुत्व पृथ्वी के गुरुत्व का $\frac{1}{8}$ वां भाग है। इसे पृथ्वी के चारों ओर घूमने में २७ दिन, ७ घंटे, ४३ मिनट और ११.३ सेकंड लगते हैं, पर व्यवहार में जो महीना आता है वह २९ दिन, १२ घंटा, ४४ मिनट और २७ सेकंड का होता है। चंद्रमा के परिक्रमण की गति में सूर्य की क्रिया से बहुत कुछ अंतर पड़ता रहता है। चंद्रमा अपने अक्ष पर महीने में एक बार के हिसाब से घूमता है इससे प्रायः उसका एकही पारवै पृथ्वी की ओर सदा रहता है।

हसी विलक्षणता को देख कुछ लोगों को यह भ्रम हुआ था कि यह अक्ष पर घूमता ही नहीं है। चंद्रमंडल में बहुत से ध्वजे दिखाई देते हैं जिन्हें पुराणानुसार जन साधारण बलक आदि कहते हैं। पर एक अच्छी दूरबीन के द्वारा देखने से ये ध्वजे गायब हो जाते हैं और इनके स्थान पर पर्वत, घाटी, गर्ग, ज्वालामुखी पर्वतों के विवर आदि अनेक पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। चंद्रमा का अधिकांश तल पृथ्वी के ज्वालामुखी पर्वतों से पूर्ण किसी प्रदेश का सा है। चंद्रमा में वायुमंडल नहीं जान पड़ता और न बारूक या जल ही के कोई चिह्न दिखाई पड़ते हैं। चंद्रमा में गरमी बहुत थोड़ी दिखाई पड़ती है। प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों के मत से भी चंद्रमा एक ग्रह है जो सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। भास्कराचार्य के मत से चंद्रमा जलमय है, इसमें निज का कोई तेज नहीं है। उसका जितना भाग सूर्य के सामने पड़ता है उतना दिखाई पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार धूप में धड़ा रचने से उसका एक पार्श्व चमकता है और दूसरा पारवै उसी की छाया से अप्रकाशित रहता है। जिस दिन चंद्रमा के नीचे के भाग पर अर्धान् उल भाग पर जो हम लोगों की ओर रहता है, सूर्य का प्रकाश विलकुल नहीं पड़ता उस दिन अमावास्या होती है। ऐसा तभी होता है जब सूर्य और चंद्र एक राशिस्थ अर्धान् सम स्यू में होते हैं। चंद्रमा बहुत शीघ्र सूर्य की तीक्ष्ण से पूर्व की ओर हट जाता है और उसकी एक एक कला क्रमशः प्रकाशित होने लगती है। चंद्रमा सूर्य की सीध (सम स्यू-पत) से जितना ही अधिक हटता जायगा उसका अंकगत ही अधिक भाग प्रकाशित होता जायगा। द्वितीया के दिन चंद्रमा के पश्चिमांश पर सूर्य का जितना प्रकाश पड़ता है, उतना भाग प्रकाशित दिखाई पड़ता है। सूर्यसिद्धांत के मतानुसार जब चंद्रमा सूर्य की सीध से ६ राशि पर चला जाता है तब उसका सप्तम भाग प्रकाशित हो जाता है और हमें पूर्णिमा का पूरा चंद्रमा दिखाई पड़ता है। पूर्णिमा के अनेक ज्यों ज्यों चंद्रमा बढ़ता जाता है त्यों त्यों सूर्य की सीध से उसका अंतर कम होता जाता है अर्थात् यह सूर्य की सीध की ओर आ जाता है और प्रकाशित भाग क्रमशः श्रेष्ठकर में पड़ता जाता है। अनुगत के मतानुसार प्रकाशित और अप्रकाशित भागों की इस ह्रास और वृद्धि का हिसाब जाना जा सकता है। यही मत आर्यभट्ट, श्रीपति, ज्ञानराज, लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि सभी पुराने ज्योतिषियों का है। चंद्रमा में जो ध्वजे दिखाई पड़ते हैं उनके विषय में सूर्यसिद्धांत, सिद्धांतशिरोमणि, बृहत्संहिता इत्यादि में कुछ नहीं लिखा है। हरिवंश में लिखा है कि ये ध्वजे पृथ्वी की छाया हैं। कवि लोगों ने चक्रेर और कुण्ड को चंद्रमा पर अनुक्त चर्चन किया है। पुराणानुसार

चंद्रमा समुद्र-मग्न के समय निकले हुए चौदह रत्नों में से हैं और देवताओं के बीच गिने जाते हैं। जब एक धसुर देवताओं की पंक्ति में सुपचाय बैठ कर धूमत् पी गया तब चंद्रमा ने बंध वृत्तों विण्णु से कह दिया। विण्णु ने उस धसुर के दो खंड कर दिये जो राहु और केतु हुए। वही पुराना वैर लेकर राहु ग्रहण के समय चंद्रमा को मरता करता है। चंद्रमा के घटने के विषय में भी भिन्न भिन्न कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कुछ लोग कहते हैं कि दशमजापति के शाप से चंद्रमा की राजमन्त्रा रोग हुआ, उसी की शांति के लिये वे अपनी गोद में एक हिरन लिए रहते हैं। किसी किसी के मत से चंद्रमा ने अपनी सुन्दरपत्नी के साथ गगन किया था इसी कारण शापवश उनके शरीर पर काला दाग पड़ गया है। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि जन शूद्र ने अहल्या का सतीत्य भंग किया था तब चंद्रमा ने शूद्र को सदापता दी थी। गौतम ऋषि ने क्रोध वश उन्हें अपने कर्मदल और शृगधर्म से मारा जिसका दाग उनके शरीर पर पड़ गया।

एष्यां—दिमांशु। इंद्रु। कुमुदवांधव। विपु। सुधाशु। श्रांशु। शोपधीश। निशापति। अज। जैवायु। सोम। म्हा। मृगाक। कलानिधि। द्विजराज। शशपर। नभप्राज। एषाकर। दोषाकर। निशानाय। शर्वरीश। एष्यांक। शीत-रश्मि। सारस। श्वेतवाहन। नक्षत्रनेमि। उधु। सुधासुति। तिमिरगर्भ। अमति। चंद्रि। चित्राचीर। पृथ्वी। रोहि-णीत। अग्निनेत्र। पन्न। सिंघुजन्म। दशस्य। तारा-पीठ। निशामणि। मृगलांछन। दाशायणीपति। जपनी-सहज। सुधाकर। सुधाधार। शीतमानु। तमोहर। सुधा-क्रिय। हरि। हिमसुति। द्विजपति। विश्वस्था। चमृत-दीपति। हरिणांक। रोहिणीपति। सिंघुन्दन। तमोनुद्। एयातिलक। सुसुदेस। श्रीशेदचन्दन। कांत। कलागम्। यामिनीपति। सिय। सुधानिधि। सुगो। पृथजन्मा। समुद्रनवनीत। पीयूषमहा। शीतमरीचि। त्रिनेत्रचूडामणि। सुधांग। परिश। सुगीपति। पर्वधि + क्कुं। जयंत। तपस। लखमस। विकस। दशावानी। श्वेतवाजी। धूमत्स्य। कैमुदीपति। कुमुदुनीपति। दृशजापति। कलास्यत। शश-ध्व। एष्यपू। क्षीयाभूद। निशापत्। निशाकर। रजनीकर। एषाकर। अमृत। श्वेतपुति। शशि। शश लांछन। मृगलांछन।

चंद्रमाषा—रक्षा पुं० [सं०] संगीत में तारों के १४ भेदों में से एक।

चंद्रमाललाट—रक्षा पुं० [सं० चंद्रमा + ललाट] (बह जित के भाग पर चंद्रमा हो) शिव। महादेव।

चंद्रमाललासा रक्षा पुं० [सं० चंद्रमा + ललासा = शिक, मरकट पर का शिव] महादेव। शंकर। शिव। ३०—सर्वाँ दुसध के सम्बन्ध नाप शुक्ल के चरि चन्द्राय पाप चंद्रमाललासा को। —मुदसी।

चंद्रमाला—रक्षा पुं० [सं०] (१) २८ मात्राओं का एक छंद। ३०—सुदि महाभर सुधि अति रिस करि अगणित सायक मारयो। (२) चंद्रहार। एक प्रकार का हार।

चंद्रमास—रक्षा पुं० दे० “चांद्रमास”।

चंद्रमौलि—रक्षा पुं० [सं०] (मल्लक पर चंद्रमा को धारण करने-वाले) शिव। महादेव। ३०—तविहउं तुरत देह तेहि हेतु। उर धरि चंद्रमौलि धूपनेतु।—गुजराती।

चंद्ररेखा। चंद्रलेखा—रक्षा धी० [सं०] (१) चंद्रमा की कला। (२) चंद्रमा की चित्र। (३) द्वितीया का चंद्रमा। (४) धकुची। (५) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में म र म य य (S S S S S S S S S S S S) होता है। ३०—मैं सी मैया यही लैहो चंद्रलेखा पिलौना।

चंद्रलोक—रक्षा पुं० [सं०] चंद्रमा का लोक। ३०—चंद्रलोक दीन्दे शशि को तत्र पयुया में हरि थाप। सव नचत्र को राजा कीन्दे शशि मंदल में छाप।—सूर।

चंद्रचंद्र—रक्षा पुं० [सं०] अग्नि के दो आदि और प्रधान कुलों में से एक जो पुत्रत्वा से शारंग हुआ था।

चंद्रचंद्री—वि० [सं० चंद्रशिखर] चंद्रचंद्र का। जो अग्नि के चंद्रचंद्रा में उत्पन्न हुआ है।

चंद्रचधू—रक्षा धी० [सं० इन्द्रधू] धीरबहूटी।

विशेष—जान पड़ता है कि इन्द्रधू को किसी कवि ने ‘इंद्रधू’ सम्म कर ही इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग किया है।

चंद्रचर्म—रक्षा पुं० [सं०] एक वर्षावृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में राण्य, नगय, भगय, और सगय (S S S S S S S S S S S S) होते हैं। ३०—रे नभा सिय ललाट शशि सभा। जानि स्वागहु भूतर हिय तभा।

चंद्रचहुरी—रक्षा धी० [सं०] सोमलता।

चंद्रचहुरी—रक्षा धी० [सं०] (१) सोमलता। (२) मावधी लता। (३) प्रसाथिनी। पत्तन।

चंद्रचार—रक्षा पुं० [सं०] सोमवार।

चंद्रचाला—रक्षा धी० [सं०] चंद्रि इलापथी।

चंद्रवेप—रक्षा पुं० [सं०] शिव। महादेव। ३०—जहँ चंद्रवेप करि कै वनिता को हँ रहे।—बाहलू।

चंद्रमत—रक्षा पुं० दे० “चांद्रमास”।

चंद्रशाला—रक्षा धी० [सं०] (१) चांदनी। चंद्रिका। (२) बदारी। धुर ऊपर की कोठी। सबसे ऊपर का चैंगला। ३०—(क) चंद्रशाला, कैलिशाला, पानशाला, पाकशाला, गन्तशाला हेम की जड़ी मनी।—रघुराज। (ख) चौक चंद्रशाला छवि-माला। रजत कनक की घनी दिवाला।—रघुराज। (ग) चंद्रि उतंग चंद्रशाला मँ लगी ब्रयोध्या नगरी।—रघुराज। चंद्रशर—रक्षा पुं० [सं०] चंभुर। हाथों या हाथिन नाम का पाषाण।

चंद्रभाग पर्वत से शीता नाम की नदी उग्न हुई। यह नदी चंद्रमा की हुवाती हुई एक सरोवर में गिरी। चंद्रमा के प्रभाव से इसका जल अमृतमय हो गया। इसी जल से चंद्रभागा नाम की कन्या उत्पन्न हुई जिसे समुद्र में व्याहा। चंद्रमा ने अपनी गदा की गोक से पहाड़ में दार कर दिया जिससे होकर चंद्रभागा नदी बह निकली। ३०—शुभ कुरुक्षेत्र, अयोध्या, मिथिला, प्राग, त्रिवेनी न्हाए। पुनि शतद्रु औरह चंद्रभागा, गंग व्यास, अन्हवाए।—सूर।

चंद्रभाट—संज्ञा पुं० सं० चंद्र + हिं० भाट] एक प्रकार के मिथुक साधु जो शिव और काली के उपासक होते हैं। ये अपने साथ, गाय, बैल, बकरी और बंदर आदि लेकर चलते हैं। ये प्रायः गृहस्थ होते हैं और खेती बारी करते हैं।

चंद्रभानु—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा के १० पुत्रों में से सातवें पुत्र का नाम। ३०—भानु स्वभाव तथा अतिभानू। बृहद्भानु स्वरभानु प्रभानू। चंद्रभानु श्रीवि प्रतिभानू। भानुमान सह दस प्रतिभानू।—गोपाल।

चंद्रभाट—संज्ञा पुं० [सं०] (मल्लक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले) शिव। महादेव।

चंद्रभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंदी।

चंद्रभूपण—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। ३०—सित पाल यादृति चंद्रिका जनु चंद्रभूपण भालही।—तुलसी।

चंद्रमणि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रकांत मणि। ३०—(क) बौकी हेम चंद्रमणि लागी हीरा स्तन नराय खची। भुवन चतुर्दश की सुंदरता राधे के मुख मनहि रची।—सूर। (ख) केशी सोमकला करो, करो सुधा को दान। नहीं चंद्रमणि जो द्रव्य, यह तेलिया पखान।—दीनदयाल। (२) उल्लाहा चंद्र का एक नाम।

चंद्रमसू—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

चंद्रमा—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रमसू] आकाश में चमकनेवाला एक उपग्रह जो महीने में एक बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है और सूर्य से प्रकारा पा कर चमकता है।

विशेष—यह उपग्रह पृथ्वी के साथ से निकट है अर्थात् यह पृथ्वी से २३८०० मील की दूरी पर है। इसका व्यास २१६२ मील है और इसका परिमाण पृथ्वी का १/४ है। इसका गुरुत्व पृथ्वी के गुरुत्व का १/६ वां भाग है। इसे पृथ्वी के चारों ओर घूमने में २७ दिन, ७ घंटे, ४३ मिनट और ११३ सेकंड लगते हैं; पर व्यवहार में जो महीना आता है वह २९ दिन, १२ घंटा, ४४ मिनट और २७ सेकंड का होता है। चंद्रमा के परिक्रमण की गति में सूर्य की क्रिया से बहुत कुछ अंतर पड़ता रहता है। चंद्रमा अपने अक्ष पर महीने में एक बार के हिसाब से घूमता है इससे प्रायः उसका एकही पार्वर्ष पृथ्वी की ओर सदा रहता है।

इसी विलक्षणता को देख कुछ लोगों को यह भ्रम हुआ था कि यह अक्ष पर घूमता ही नहीं है। चंद्रमंडल में बहुत से धब्बे दिखाई देते हैं जिन्हें पुराणानुसार जन साधारण बलक आदि कहते हैं। पर एक अच्छी दूरबीन के द्वारा देखने से ये धब्बे गायब हो जाते हैं और इनके स्थान पर पर्वत, घाटी, गत्त, ज्वालामुखी पर्वतों के विवर आदि अनेक पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। चंद्रमा का अक्षिकांश तल पृथ्वी के ज्वालामुखी पर्वतों से पूर्ण किसी प्रदेश का सा है। चंद्रमा में वायुमंडल नहीं जान पड़ता और न बादल या जल ही के कोई चिह्न दिखाई पड़ते हैं। चंद्रमा में गर्मी बहुत थोड़ी दिखाई पड़ती है। प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों के मत से भी चंद्रमा एक ग्रह है जो सूर्य के प्रकारा से प्रकाशित होता है। भास्कराचार्य के मत से चंद्रमा जलमय है, इसमें नित का कोई तेज नहीं है। उसका जितना भाग सूर्य के सामने पड़ता है उतना दिखाई पड़ता है, शीक उनी प्रकार जिस प्रकार चंद्र में घड़ा रखने से उसका एक पार्श्व चमकता है और दूसरा पार्वर्ष उसी की छाया से अमकाशित रहता है। जिस दिन चंद्रमा के नीचे के भाग पर अर्थात् उस भाग पर जो हम लोगों की ओर रहता है, सूर्य का प्रकाश विलकुल नहीं पड़ता उस दिन अमावास्या होती है। ऐसा तभी होता है जब सूर्य और चंद्र एक राशिस्थ अर्थात् सम सूत्र में होते हैं। चंद्रमा बहुत शीघ्र सूर्य की सीध से पूर्व की ओर हट जाता है और उसकी एक एक कला क्रमशः प्रकाशित होने लगती है। चंद्रमा सूर्य की सीध (सम सूत्र-पथ) से सितना ही अधिक हटना जायगा उसका उतका नही अधिक भाग प्रकाशित होता जायगा। द्वितीया के दिन चंद्रमा के पश्चिमांश पर सूर्य का जितना प्रकाश पड़ता है, उतना भाग प्रकाशित दिखाई पड़ता है। सूर्यसिद्धत के मतानुसार जब चंद्रमा सूर्य की सीध से ९ राशि पर चला जाता है तब उसका समग्र आधा भाग प्रकाशित हो जाता है और हमें पूर्णिमा का पूरा चंद्रमा दिखाई पड़ता है। पूर्णिमा के अन्तर ज्यों ज्यों चंद्रमा घड़ता जाता है त्यों त्यों सूर्य की सीध से उसका अंतर कम होता जाता है अर्थात् वह सूर्य की सीध की ओर था जाता है और प्रकाशित भाग क्रमशः अधिकार में पड़ता जाता है। अनुगत के मतानुसार प्रकाशित और अमकाशित भागों की इस हानि और वृद्धि का हिसाब जाना जा सकता है। यही मत आर्यभट्ट, श्रीपति, ज्ञानराज, लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि सभी पुराने ज्योतिषियों का है। चंद्रमा में जो धब्बे दिखाई पड़ते हैं उनके विषय में सूर्यसिद्धत, सिद्धांतशिरोमणि, बृहत्संहिता इत्यादि में कुछ नहीं लिखा है। हरिवंश में लिखा है कि ये धब्बे पृथ्वी की छाया हैं। कवि लोगों ने चक्रेर और कुमुद को चंद्रमा पर अनुक्त वर्णन किया है। पुराणानुसार

चंद्रमा समुद्र-मयन के समय निकले हुए चौदह शलों में से हैं और देवताओं के बीच गिने जाते हैं। जय एक असुर देवताओं की पंक्ति में चुपचाप बैठ कर अमृत पी गया तब चंद्रमा ने यह वृत्त विलुप्त से कह दिया। विलुप्त ने उस असुर के दो खंभ कर दिये जो राहु और केतु हुए। यही पुराना बैर लेकर राहु प्रह्लाद के समय चंद्रमा को प्रसा करता है। चंद्रमा के धर्ये के विषय में भी मिश्र भिन्न कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कुण्डलोग कहते हैं कि दशप्रजापति के शाप से चंद्रमा का राजपत्नी रोग हुआ, यही की शांति के लिये वे अपनी गोद में एक हिरन लिए रहते हैं। किसी किसी के मन से चंद्रमा ने अपनी गुरु-पत्नी के साथ गान किया था इसी कारण शापवत उनके शरीर पर काला दाग पड़ गया है। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि जम इंद्र ने अहल्या का सतीय भंग किया था तब चंद्रमा ने इंद्र को सहायता दी थी। गौतम ऋषि ने क्षोभ बरा उन्हें अपने कमंडलु और मृगचर्म से माता जिनका दाग उनके शरीर पर पड़ गया।

पर्व्यां०—हिमांशु । इंद्रु । कुमुदबंधय । विपु । सुधांशु । धृष्टांशु । भोगधीर । निरापति । अज । जैवाकृ । सोम । रवी । मृगांक । कलातिथि । द्विजराज । शशापर । नक्षत्रराज । षपाकर । दोगाकर । निशानाथ । शर्वरीश । पृथक । शीत-रिचम । सारस । स्नेतवाहन । नक्षत्रनेमि । उद्धव । छुपायुति । तिथिप्रदो । अमति । चंद्रि । चिन्ताधरि । पृषधर । रोहि-यांशु । अग्निप्रभज । पन्नज । सिंभुजन्मा । दशास्य । तारा-पीड । निशामण्डि । मृगलांघुन । दाघायलीपति । लक्ष्मी-सहज । सुधाकर । सुधाधार । शीतभाजु । तमोहर । उपार-किरण । हरि । हिमयुति । द्विजपति । विशारदा । अमृत-दीपति । हरिणांक । रोहिणीपति । सिंभुनंदन । तमोमुद्र । पृथालिक । कुमुदय । श्रीरौदनंदन । कांत । कलावान् । यामिनीपति । सिम । सुधातिथि । तुंगी । पञ्चजन्मा । समुद्रनवनीत । वीरूपमहा । शीतमरीचि । त्रिनेत्रचंद्रामण्डि । सुधांग । परिश्रा । तुंगीपति । पर्वधि + हेतु । जयंत । तपस । लयमस । विकस । दशावाजी । स्वेतभानी । अमृततृ । कैमुदीपति । कुमुदुनीपति । दशनापति । कलायुत । शशा-पर । पृषधर । द्वयधमृत् । निशास्य । निशाकर । रजनीकर । षपाकर । अमृत । स्वेतयुति । शशि । शश बांघुन । मृगलांघुन ।

चंद्रमात्रा—संज्ञा पु० [सं०] संगीत में तालों के १४ भेदों में से एक ।

चंद्रमाललाट—संज्ञा पु० [सं० चंद्रमा + ललाट] (वह जिस के माथे पर चंद्रमा हो) शिव । महादेव ।

चंद्रमाललाम संज्ञा पु० [सं० चंद्रमा + ललाम = लिङ्गक, मसक पर का लिङ्ग] महादेव । शंकर । शिव । ४०—तर्का दुसरथ के समय माघ शुक्लसी के चपरि चतुर्थी चाप चंद्रमाललाम को । —गुजराती ।

चंद्रमाला—संज्ञा पु० [सं०] (१) २८ मात्राओं का एक छंद । ३०—पृथ्वि महाभट युधि शति रिस करि भगणित सायक मारयो । (२) चंद्रहार । एक प्रकार का हार ।

चंद्रमास—संज्ञा पु० दे० "चंद्रमास" ।

चंद्रमालि—संज्ञा पु० [सं०] (मस्तक पर चंद्रमा को धारण करने-वाले) शिव । महादेव । ३०—तजिहउं तुरत देह तेहि हेतु । उर परि चंद्रमालि वृषकेतु ।—गुजराती ।

चंद्ररेखा. चंद्रलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की कला ।

(२) चंद्रमा की किरन । (३) द्वितीया का चंद्रमा । (४) बकुची । (५) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में म र म य व (S S S S S S S S S S S S) होता है । ३०—मैं री मैया यही लेंवें चंद्रलेखा खिलौना ।

चंद्रलोक—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा का लोक । ४०—चंद्रलोक दीर्घी शशि को तव जगुया में हरि श्राप । सब नक्षत्र की राजा कीर्धो शशि मंडल में छाप ।—सुर ।

चंद्रवंशा—संज्ञा पु० [सं०] ऋषियों के दो श्रादि श्रार प्रधान कुलों में से एक जो पुत्रत्व से श्रारंभ हुआ था ।

चंद्रवंशी—वि० [सं० चंद्रवंशिय] चंद्रवंश का । जो ऋषियों के चंद्रवंश में उत्पन्न हुआ हो ।

चंद्रवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] वीरवहूटी ।

विदोष—जान पड़ता है कि इंद्रवधू को किसी कवि ने 'इंद्रवधू' समझ कर ही इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग किया है ।

चंद्रवर्म—संज्ञा पु० [सं०] एक वर्षावृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में रगण्य, नगण्य, भगण्य, और सगण्य (S S S S S S S S S S) होते हैं । ४०—दे नभा सिव ललाट शशि समा । आनि व्यागृह पत्तुर हिय तमा ।

चंद्रवह्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमलता ।

चंद्रवह्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोमलता । (२) माधवी लता ।

(३) मसारिणी । पसरन ।

चंद्रवार—संज्ञा पु० [सं०] सोमवार ।

चंद्रवाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी हलायची ।

चंद्रवेध—संज्ञा पु० [सं०] शिव । महादेव । ३०—जहं चंद्रवेध करि कै बनिता को हूँ रहे ।—जयल ।

चंद्रमत—संज्ञा पु० दे० "चांद्रमथ" ।

चंद्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंदनी । चंद्रिका । (२) भटारी । सुर ऊपर की कोठरी । तस्ये ऊपर का पैगला । ३०—(क) चंद्रशाला, कैलिशाबा, पानरावा, पाकरावा, गजरावा हेम की जड़ी मनी ।—रघुराज । (ख) वीक चंद्रशाला धवि-माला । रजत फनक की यनी दिवाला ।—रघुराज । (ग) चंदी बतंग चंद्रशाला म लखी श्रयोप्या नगरी ।—रघुराज । चंद्रशर—संज्ञा पु० [सं०] चंसुर । दखी मा दाखिम नाम का वीषा ।

चंद्रशेखर-संज्ञा पु० [सं०] द्वितीया के चंद्रमा के दोनों सुकीले धार ।

चंद्रशेखर-संज्ञा पु० [सं०] (१) यह जिसका शिरोभूषण चंद्रमा है । शिव । महादेव । (२) एक पर्वत का नाम । (बरानस में इस नाम का एक पर्वत है) । (३) एक पुराण-प्रसिद्ध नगर का नाम । (४) संगीत में षष्ठ्यादी में से एक । एक प्रकार का सात ताला ताल जिसका षोडश इस प्रकार है—
.....सैं सैं । एक धी तरक... s...दिधि तक दिगिदां ३ धोंगा । गिदि धों ।

चंद्रसप्त-संज्ञा पु० [दे०] गंधारिवेला ।

चंद्रसरोवर-संज्ञा पु० [सं०] ब्रज का एक तीर्थस्थान जो गोवर्द्धन गिरि के समीप है ।

चंद्रहार-संज्ञा पु० [सं०] गले में पहनने का एक गहना या माला जिसमें चंद्रचंद्राकार कणराः छोटे चंद्र चनेक मनके होते हैं । बीच में पूर्ण चंद्र के आकार का गोल पनथा होता है । यह हार सोने का बनता है और प्रायः जड़ाऊ होता है । मौलखा हार ।

चंद्रहास-संज्ञा पु० [सं०] (१) खर । तलवार । (२) रावण की तलवार का नाम । ३०—चंद्रहास हर मन परितारपं । रघुपति विहा धनल संजातं ।—गुलसी । (३) चाँदी ।

चंद्रहासा-संज्ञा धी० [सं०] संपलता ।

चंद्राकित-संज्ञा पु० [सं०] महादेव । शिव ।

चंद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी इलायची । (२) वितान । चंद्रा । चँदना । (३) गुड़ुची । गुर्षे ।

संज्ञा धी० [सं०] चंद्र] मरने के समय की यह अवस्था जब टकटकी बँध जाती है, गज्जा कफ से रुँध जाता है और थोला नहीं जाता । ३०—उपर धार के चंद्रा खग रही धी हृपर बरे के ध्याह हो रहा धा ।

क्रि० प्र०—खगना ।

चंद्रागति-धातु-संज्ञा धी० [सं०] चंद्रमा की एक धार । ३०—
ताल परे बनिसा चंद्रागतिधातु परे मोरी मोरी ।

चंद्रातप-संज्ञा पु० [सं०] (१) चाँदनी । चंद्रिका । (२) चँदया । वितान ।

चंद्रापीड-संज्ञा पु० [सं०] (१) शिव । महादेव । (२) कारमीर का एक राजा जिसका दूसरा नाम चंद्रादिल था । यह प्रतापदिल का ज्येष्ठ पुत्र था और उसकी सखु के वपारत ६०४ शकान्न में सिंहासन पर बैठा था । यह अत्यंत उदार और धार्मिक राजा हुआ ।

चंद्रायण-संज्ञा पु० दे० "चंद्रायण" ।

चंद्रायतन-संज्ञा पु० [सं०] चंद्रशाला ।

चंद्रार्चनूत्तमणि-संज्ञा पु० [सं०] महादेव । शिव ।

चंद्रालोक-संज्ञा पु० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकार । (२) जय-

देव गामक कवि रचित शलंकार का एक संस्कृत ग्रंथ । (अथिचंद्रा लोको का मत है कि चंद्रालोककार जयदेव, गीतगोविंदकार जयदेव से भिन्न हैं ।)

चंद्रावर्षा-संज्ञा पु० [सं०] एक वर्षा षष्ठ का नाम जिसके प्रत्येक पद में ४ नगण पर १ नगण होता है और ८-७ पर विराम । विराम न होने से 'शरिक्ला' (अथि गुण शरम) वृत्त होता है । इसका दूसरा नाम 'मथि-गुण-विचक्र' है । ३०—नचद्र सुपर चयमति सुत सदिता । जहद्र जनम इह सगि सुपर अमिता ।

चंद्रापल्ली-संज्ञा धी० [सं०] कृष्ण में अनुपम एक गोपी का नाम जो चंद्रभानु की कन्या थी ।

चंद्रिका-संज्ञा धी० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकार । चाँदनी । अनेका । कीमुदी । (२) मोर की पूँछ के पर का गोल चिह्न या शील । मोर की पूँछ पर का यह अर्द्ध चंद्राकार चिह्न जो मुगहले मंडक से घिरा होता है । ३०—सोमित सुमन मयूर चंद्रिका नील नलिन तनु स्याम ।—सू० । (३) चंद्र इलायची । (४) चंद्रा नाम की मयूरी । (५) चंद्रभाग नदी । (६) छोटी इलायची । (७) कर्पूरकोटा । कनकोटा धाम । (८) अर्द्ध या चमेरी । (९) सज्जु कृत की भटकैया । (१०) मेरी । (११) चंद्रभूर । चनसुर । (१२) एक देवी । (१३) एक वर्षा षष्ठ का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नन तन ग (॥ ॥ ५५ ५५ ५) और ७ + ६ पर गति होती है । ३०—नित तगि कहू धान को धार रे । नमद्रु हर घरी राम को धाररे । (१४) वासुपत्नी । (१५) संस्कृत ध्याकरण का एक ग्रंथ । (१६) माघ पर का एक भूषण । चँदनी । चँदा । ३०—
यहि भांति नाचत गोपिका सय धकित हूँ मुकि मुकि रही ।
कहि माल पायल चंद्रिका खनि परी नकबैसत कहीं ।—
विद्याम । (१७) द्विषों का एक प्रकार का मुकुट या शिरोभूषण जिसे प्राचीन काल की रानियाँ धारण करती थीं । चंद्रकला ।

चंद्रिकाभिसारिका-संज्ञा धी० [सं०] शुक्राभिसारिका नायिका ।

चंद्रिकोत्सव-संज्ञा पु० [सं०] शरदोत्सव । शरत् पुनो का उत्सव ।

चंद्रिल-संज्ञा पु० [सं०] शिव । महादेव ।

चंद्रोदय-संज्ञा पु० [सं०] (१) चंद्रमा का उदय । (२) पैतृक में एक रस जो गंधक, पारे और सोने को भस्म कर के बनाया जाता है । यह रस बहुत बलवत्क होता है । मरणात्मक मनुष्य को देने से उसकी बेहोशी धोरी देर के लिये दूर हो जाती है । इसे छुट्टे की तरह भी लोग दारते हैं । (३) चँदना । चँदना । वितान ।

चंद्रोपराग-संज्ञा पु० [सं०] चंद्रग्रहण ।

चंद्रोपल-संज्ञा पु० [सं०] चंद्रकान्तमणि ।

चंद्रील-संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्र] राजहूँ की एक जाति वा शाला ।
चंप-संज्ञा पुं० [सं० चंपक] (१) चंपा । (२) कचनार । कोविदार
वृक्ष ।

चंपई-वि० [हिं० चंपा] चंपा के फूल के रंग का । पीले रंग का ।
चंपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपा । (२) चंपा केला । (३)
सांख्य में एक सिद्धि जिसे रम्यक भी कहते हैं । दे०
“रम्यक” । (४) संपूर्ण जाति का एक राग जिसके गाने
का समय तीसरा बहर है । यह दीपक राग का पुत्र माना
जाता है ।

चंपकमाला-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपा के फूलों की माला । (२)
एक वर्षावृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पाद में भण्य मगय
सगय और एक गुरु (५ ५ ५ ५ ५ ५) होता है ।
३०—भूमि सगी काहूँ कर नार्हीं । कृष्ण सगा सौचा जग
मार्हीं ।

चंपकाल-संज्ञा पुं० [सं०] जाक वा रोटीफल का पेड़ ।

चंपत-वि० [दे०] चलता । गायब । श्रंतवन् ।

फि० प्र०—यचना ।—होना ।

चंपाना-क्रि० अ० [सं० चम्प] (१) दयना । बोम से दयना । (२)
लज्जा से दयना । लजिज होना । (३) उपकार से दयना ।
पहसान से दयना ।

चंपा-संज्ञा पुं० [सं० चंपक] (१) एक ममोले कूट का पेड़ जिसमें
हलके पीले रंग के फूल लगते हैं । इन फूलों में यड़ी तीव्र
सुगंध होती है । चंपा दो प्रकार का होता है । एक साधारण
चंपा, दूसरा कटहलिया चंपा । कटहलिया चंपा के फूल
की महक पके कटहल से मिलती हुई होती है । ऐसा प्रसिद्ध
है कि चंपा के फूल पर औरि नहीं बैठते । जंगलों में चंपे के जो
पेड़ होते हैं वे बहुत बड़े और ऊँचे होते हैं । इसकी लकड़ी
पीली, चमकीली और सुखापम, पर बहुत मजबूत होती है
और नाथ, टेबुल, कुरसी आदि बनाने और इमारत के काम में
आती है । हिमालय की तराई, नेपाल, बंगाल, आसाम तथा
दक्षिण भारत के जंगलों में यह अधिकता से पाया जाता है ।
चित्रद्वय में इसकी लकड़ी की मालाएँ बनती हैं । (२) एक
पुरी जो प्राचीन काल में चंगदेग की राजधानी थी । यह
परां मान भागलपुर के पास पास कहीं रही होगी । कर्ण यहीं
का राजा था । (३) एक जाति का मीठा केला जो
बंगाल में होता है । (४) चोड़े की एक जाति । (५) एक
प्रकार का कुमिपार या रेशम का कीड़ा जिसके रेशम का
व्यवहार पहले धामाम में बहुत होता था । (६) एक प्रकार
का बहुत बढ़ा मदावहार पेड़ जो दक्षिण-भारत में अधिकता
से पाया जाता है । इसकी लकड़ी कुछ पीलापन लिए बहुत
मजबूत होती है और इमारत के काम के अतिरिक्त गाड़ी,
पालकी, नाव आदि के बनाने के काम में भी आती है । इसे
“सुखताना चंपा” भी कहते हैं ।

चंपाकली-संज्ञा स्त्री० [हिं० चंपा + कली] गले में पहनने का
खियों का एक राहना जिसमें चंपा की कली के धाकार के
सेने के दाने रेशम के तागे में सुँपे रहते हैं ।

चंपानेर-संज्ञा पुं० [हिं० चंपा + नगर] एक पुराना नगर जिसके
खंडहर अथ तक बंबई के पंचमहाल ज़िले के अंतर्गत हैं ।
ईसा की १२ वीं शताब्दी के अंतिम भाग तक यह एक राज-
पूत सरदार के अधिकार में था । पर सन् १४८२ में अहमदा-
बाद के बादशाह महमूद ने रावपूतों के आक्रमण से तंग
आकर इसे ले लिया और इसके पास ही महम्मदाबाद चंपा-
नेर बसाया । इस नगर को हुमायूँ ने सन् १२३३ में उगाड़
दिया । सन् १८०३ तक इसमें ४००-५०० आदिमियों की
बस्ती थी । पर अथ दो चार पर रह गए हैं ।

चंपारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक जंगल जो कदा-
चित् उस स्थान पर रहा हो जिसे आज कल चंपारन कहते हैं ।

चंपारन-संज्ञा पुं० [सं० चंपारण्य] विहार प्रांत का एक प्रदेश
वा जिला ।

चंपू-संज्ञा पुं० [सं०] गद्यप्रथम काव्य । यह काव्यग्रंथ जिसमें
गद्य के बीच बीच में पद्य भी हों ।

चंपौनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चंपौना] जुलाहों के करवे की भैंजनी में
एक पतली लकड़ी जो दूसरी अंति को दयाने के लिये लगी
रहती है ।

चंबल-संज्ञा स्त्री० [सं० चम्बली] (१) एक नदी जो विन्ध्य
पर्वत से निकल कर इटावे से १२ कोस पर जमुना में जा
मिली है । (२) नहरों वा नालों के किनारे पर लगी हुई
लकड़ी जिससे सिँचाई के लिये पानी ऊपर चढ़ाने हैं ।
संज्ञा पुं० पानी की बाढ़ ।

मुहा०—चंबल लगना = लूट पानी बढना । जलमय होना ।

संज्ञा पुं० [फा० चुबल] (१) भीख मांगने का कटेरा या
खपर । (२) खिलम का सरोवर ।

चंबली-संज्ञा स्त्री० [फा० चुबल] एक प्रकार का छोटा प्याला ।

चंबी-संज्ञा स्त्री० [दे०] कापड़ वा मोमनामे का एक तिकोना
टुकड़ा जो कपड़ों पर रंग छापते समय उन स्थानों पर रक्ता
जाता है जहाँ रंग चढ़ाना मजबूत नहीं होता । पट्टी । कतली ।

चंबू-संज्ञा पुं० [?] (१) एक प्रकार का धान जो
पहाड़ों में विना सींची जमीन पर चैत में होता है । (२)
ताँबे, पीतल वा और किसी धातु का छोटे बुँद का सुराही-
नुमा धरतन जिससे हिंदू देवमूर्तियों पर अन्न चढ़ाते हैं ।
(३) एक प्रकार का छोटा जो विशेष कर शोड्डा में बनता
है । इसका फूल बहुत बचम होता है ।

चंबेलियाँ-वि० दे० “चम्बेलिया” ।

चंबेली-संज्ञा स्त्री० दे० “चम्बेली” ।

चँवर-संज्ञा पुं० [सं० चानर] [स्त्री० चनर] (१) सुरा

गाय की पूँछ के बालों का गुच्छा जो काठ, सोने, चाँदी
 धादि की डाँड़ी में लगा रहता है। यह रामाओं या देव-
 मूर्तियों के स्त्र पर, पीछे या गणल से ढुलगाया जाता है
 जिसमें मन्त्रियाँ धादि न बँटने पावें। कभी कभी यह खुस
 का भी बनता है। मोर की पूँछ का जो बनता है उसे मोर-
 छल कहते हैं। चँवर प्रायः तिथ्यती और भोटिया ले खाते हैं।
 (२) घोड़े और हाथियों के स्त्र पर लगाने की कलगी।
 उ०—सैसे चँवर बनाए श्री घाले गल कंभ। सँघे सेत गज-
 गाह सहै जो देव्ये सो कंभ।—जायसी।
चँघरहार—संज्ञा पु० [हि० चँवर + हारना] चँवर डोलानेवाला
 सेवक। उ०—चँघरहार दुहूँ चँवर डोलावहिँ।—जायसी।
चँघरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चँवर] लकड़ी के बँट या डाँड़ी में लगा
 हुआ घोड़े की पूँछ के बालों का गुच्छा जिससे घोड़े के
 ऊपर की मन्त्रियाँ उड़ाई जाती हैं।
चंसुर—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रपद] हाकों या हलियम नाम का पौधा जो
 लगभग २ फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते पतले और फटावदार
 गुलदायरी के पत्तों के से होते हैं। पत्तों का लोग सारा खाते
 हैं। पौधे के बीज को भी चंसुर कहते हैं।
च—संज्ञा पु० [सं०] (१) कच्छप। कछुआ। (२) चंद्रमा। (३)
 चौर। (४) दुर्जन।
चर्—[अनु०] महापत्तों की चोली का एक शब्द जिसका ध्यवहार
 हाथी को घुमाने के लिये किया जाता है।
चर्हता—संज्ञा पु० दे० "चैत"।
चर्हना—संज्ञा पु० दे० "चैन"।
चर्ह—संज्ञा स्त्री० [सं० नव्य] पिपराभूल की जाती का और लता की
 तरह का एक प्रकार का पेड़ जो दक्षिण भारत तथा अन्य
 स्थानों में नदियों और जलाशयों के किनारे होता है। इसकी
 जड़ जल्दी नष्ट नहीं होती और यदि कुछ काट भी लिया जाय
 तो उसमें फिर पत्ते निकल आते हैं। इसने पत्तों का आकार पान
 का सा होता है। इसकी रस लक्ष्मी दवा के काम में
 आती है। दे० "चाव"।
चउँहान—संज्ञा पु० दे० "चौहान"।
चउका—संज्ञा पु० दे० "चौक"।
चउकी—संज्ञा स्त्री० दे० "चौकी"।
चउतरा—संज्ञा पु० दे० "चवूतरा"।
चँउथा—वि० दे० "चौथा"।
चउदस्ता—संज्ञा स्त्री० दे० "चौदस्त"।
चउदह्वी—वि० दे० "चौदह"।
चउपारी—संज्ञा स्त्री० दे० "चौपारी"।
चउपारि—संज्ञा स्त्री० दे० "चौपाल"।
चउर—संज्ञा पु० [हि० चँवर] चँवर। मोरछल। उ०—धरि
 धरि सुदर वेप चले हरपित हिये। चउर चौर उपहार हार
 भनिगल लिये।—तुलसी।

चउरा—संज्ञा पु० दे० "चौरा"।
चउरहट—संज्ञा पु० [हि०] चौहट। चौराहा।
चउतरा—संज्ञा पु० दे० "चवूतरा"।
चक—[सं० चक्र] (१) चकई नाम का गिलोना। उ०—हुत श्रावण
 दे जातदिपार्येज्यो भँवरा चक डोर। उततेँ सून न टारत कतहूँ
 मोती मानत कोर।—सूर। (२) चक्रवाक पक्षी। चक्रवा।
 उ०—संगति चकई भतत चक, मुनि-श्रायमु खेववार। तेदि
 निसि धाश्रम पीजरा, राखे भा भिनसार।—तुलसी। (३)
 चक्र नामक अस्त्र। (४) चक्रा। पहिया। (५) जमीन का बड़ा
 टुकड़ा। भूमि का एक भाग। पट्टी।
चौ—चक्रवर्दी।
सुहा—चक्र काटना = भूमि का विभाग करना। जमीन की
 हद बँधना।
 (६) घोटा गाँव। खेड़ा। पट्टी। पुरवा। (७) करवे की
 बँस के फुलवाँसे से कटकती हुई रस्सियों से बँधा हुआ
 डंडा जिसके दोनों छोरों पर से चक्रबोर नीचे की संार जाती
 है। (तुलारं)। (८) किसी यात की निरंतर अधिकता।
 तार।
सुहा—चक्र बँधना = बराबर बँटता जाना। एक पर एक अधिक
 होता जाना। तार बँधना। उ०—यहाँ श्राकर काम करो,
 देवो रूपयों का चक्र बँध जाना है।
 (९) अधिकार। दखल।
सुहा—चक्र जमाना = रंग जमाना। अधिकार होना।
 (१०) सोने का एक गहना जिसका आकार गोल और उभार-
 दार होता है। इसका चलन पंजाब में है। चौक।
 वि० भरपूर। अधिक। ज्यादा। उ०—(क) उन्हींसे चक्र माल
 मारा है। (ख) उनकी चक्र लुनी है। (भंगड़)।
 वि० [सं०] अंत। चक्रवाकया हुआ। औचक। उ०—चक्र
 चकित चित चरपीनसुभि चकचकई चंठी रहत।—पद्मार्कर।
 संज्ञा पु० [सं०] (१) साधु। (२) खल।
चकई—संज्ञा स्त्री० [हि० चक्रवा] मादा चक्रवा। मादा सुरलाव।
 दे० "चक्रवा"। उ०—(क) सीतै लिय दादक भइ कैसे।
 चकहहि सरद चंद गिसि जैसे।—तुलसी।
 संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] धरनी या गड्ढरी के आकार का एक
 छोटा गोल खिलौना जिसके घेरे में बोरी लपेटी रहती है।
 इसी बोरी के सहारे लड़के इसे फिराते या नचाते हैं। उ०—
 (क) और चकई लाल पाट को लेंडुआ माँगु खेलेना।—
 सूर। (ख) इततेँ उत बततेँ इतै धिन न कहुँ ठहराति।
 जक न परति चकई भई, फिरि श्रावति फिरि जाति।—
 मिहारी।
 वि० गोल चनापट का। जैसे, चकई धाड़।

चकचकाना—क्रि० प्र० [दे०] (१) पानी, लू, रस या और किसी द्रव पदार्थ का सूक्ष्म कणों के रूप में किसी वस्तु के भीतर से निकलना । रस रस कर ऊपर आना । उ०—जहाँ जहाँ वेत लगा है, लू चकचका आया है । (२) मींग जाना । उ०—चक चकित्/चित चरथीन सुमि चकचकाइ चंडी रहत ।—पद्मकर ।

चकचकी—संज्ञा स्त्री० [च०] कतराल नाम का थाजा ।
चकचकाना—क्रि० [दे०] चौंधियाना । चकाचौंध लगना ।
उ०—तो पद चमक चकचाने चंद्रचूड़ चप चितवत प्रकटक अंक वैध गई है ।—चरण ।

चकचाला—संज्ञा पुं० [सं० चक + हिं० चाल] चकर । भ्रमण । फेर । उ०—माया मत चकचाल करि चंचल कीये जीव । माया माले मद पिपा दादू विस्तरा पीव ।—दादू ।

चकचाया—संज्ञा पुं० [दे०] चकाचौंध । उ०—गोकुल के चप से चकचाव गो चोर लो चौकि अयान विसारी ।
चकचून—वि० [सं० चक + चूर्ण] चूर किया हुआ । पिसा हुआ । चकनाचूर । उ०—पान, सुपारी और कहीं मिले करे चकचून । तप लगी रंग म राखे अब कगि होय न चून ।—जायसी ।

चकचौंध—संज्ञा स्त्री० दे० "चकाचौंध" ।
चकचौंधना—क्रि० प्र० [सं० चमृत् + श्रृंष] श्राल का अर्थात् अधिक प्रकाश के सामने टहर न सकना । अर्थात् प्रखर प्रकाश के सामने दृष्टि स्थिर न रहना । श्राल तिलमिलाना । चकाचौंध होना ।

क्रि० सं० श्राल में चमक लपक करना । श्रालों में तिलमिला-हट देना करना । चकाचौंध उगल करना । उ०—(क) श्रंध धुंध शंध ते गिरि पर माना परत वज्र के सीर । चमकि चमकि चपला चकचौंधति श्याम कइत मन धीर ।—सूर ।
(ख) चकचौंधति सी चितवै चिन में चित सोवत हूँ मई जागत है ।—देवदा ।

चकचौंधी—संज्ञा स्त्री० दे० "चकाचौंध" ।
चकचौंध—संज्ञा स्त्री० [दे०] चकाचौंध ।
चकचौंधना—क्रि० सं० [दे०] चाह से देखना । धारणा लगाए टक बांध कर देखना । उ०—जनु चातक मुल बूँद सेवारी । राजा चकचौंधत सेहि आँदी ।—जायसी ।

चकडुवा—संज्ञा पुं० दे० "चकरवा" ।
चकडोर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) चकई की डोरी । चकई नामक खिलौने में लपेटा हुआ सूत । उ०—(क) खेलत धवध खोरि गोली भैरवा चकडोरि मुरति मयुर वसै । तुलसी के हिय रे ।—सुधामी । (ख) दे मैया भैरवा चकडोरी । जाइ लोहु आरे पर राखे काखि मोल ली राखे कोरी ।—सूर । (२) गुलाहों के करपे में चक डोरी ओ चक वा सधनी में खगि हुई नीचे लटकती है और जिसमें भैरव वैधी रहती है ।

चकताई—संज्ञा पुं० दे० "चकता" ।
चकत—संज्ञा पुं० [हिं० चकत्] चकोटा । दाँत की पकड़ ।
मुहा०—चकत मारना = दाँत से माँत आदि नोच लेना । वफ़ोटा मारना । दाँतों से काट लेना ।

चकती—संज्ञा स्त्री० [सं० चकत्] (१) किसी चहर के रूप की वस्तु का छोटा गोला टुकड़ा । चमड़े, कपड़े आदि में से काटा हुआ गोला या चोकर लुटा टुकड़ा । पट्टी । गोला वा चौंधोर धज्जी । उ०—इस पुराने कपड़े में से एक चकती निकाल लो (२) किमी कपड़े, चमड़े, वस्त्रन हत्यादि के पटे वा फूटे हुए स्थान पर दूसरे कपड़े, चमड़े वा धातु (चहर) इत्यादि का टँका वा लगा हुआ टुकड़ा । किसी वस्तु के पटे फूटे स्थान को बंद करने वा मूँदने के लिये लगी हुई पट्टी वा धज्जी । थिगली ।
क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—चादल में चकती लगाना = आदोनी बात करने का प्रयत्न करना । अतंभन कार्य करने का प्रयोजन करना । बहुत बड़ी बड़ी बात कहना ।
(३) हुंघे भेड़ों की गोला और चौड़ी टुम ।

चकत्ता—संज्ञा पुं० [सं० चक + वत्] (१) शरीर के ऊपर बड़ा गोला दाग । चमड़े पर पड़ा हुआ धब्बा वा दाग । (२) रक्त-विकार के कारण चमड़े के ऊपर लाल, नीले वा काले चकत्ते पड़ जाते हैं । (३) सुखजाने आदि के कारण चमड़े के ऊपर थोड़े से घेरे के बीच पड़ी हुई चिपटी और बराबर चुजन जो उभड़ी हुई चकती की तरह दिखाई देती है वदेरा । (३) दाँतों से काटने का चिह्न । दाँत लुभने का निशान ।

क्रि० प्र०—ढालना ।
मुहा०—चकत्ता भरना = दाँतों से काटना । दाँतों से माँत निकाल लेना । चकत्ता मारना = दाँतों से काटना ।

संज्ञा पुं० [सं० चकृत्] (१) मोगल वा तालार धरमर चगु-ताई हार जिसके वंश में यावर चकपट आदि भारतवर्ष के मोगल बादशाह थे । उ०—भोटी भई चंडी विनु चोटी के चवाप सीस, भोटी भई संपति चकत्ता के धराने की ।—भूपण । (२) चगुताई वंश का पुरुष । उ०—मिलतहि कुखल चकत्ता को निरति कीरो सरजा सुरेन यों दुचित मजराज को ।—भूपण ।

चकदार—संज्ञा पुं० [हिं० चक + दार (प्रत्य०)] वह जो दूसरे की ज़मीन पर कुआँ बनवावे और उस ज़मीन का लगाना दे ।
चकना—क्रि० प्र० [सं० चक + श्रुति] (१) चकित होना । मोचका होना । चकपकना । विस्मित होना । उ०—(क) चित्त चितवै रही चकिसी अकि एक ते हूँ गई हूँ तबवीर सी ।—बेनी प्रवीन । (ख) चदुधंसी धनि धनि सुख कइही हरि की रीति देखि चकि रहही ।—सुधराम । (२) वैकना

आशांकायुक्त होना । ३०—(क) चित्र लिपे नल को कर में । भवन अकेली हूँ भरमें । संग सखीनहुँ सों चकि कै । यों समता मिलयै तकि कै ।—गुमान । ३०—(ख) फूलत फूल गुलाबन के चटकाहटि चैकि चकी चपला सी ।—पद्मकार । (ग) उचकी लची चैकि चकी मुख फेरि तरंगि द्यौं शैलियाँ चितई ।—मेनी ।

चक्रनाचूर-वि० [हिं० चक्र = भरपूर + चूर] (१) जिसके दूट फूट कर बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो गए हों । चूर चूर । संघ संघट । चूर्णित । ३०—साहय का घर दूर है जैसी लंबी खजूर । चट्ट तो चाले प्रेम रस गिरे तो चक्रगाचूर ।—कथीर । (२) बहुत धका हुआ । धम से शिथिल । अत्यंत श्रंत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चक्रपक-वि० [सं० चक्र = भात] भौंचक्रा । चकित । हफायका । स्तमित ।

चक्रपकाना-क्रि० अ० [सं० चक्र = भात] (१) आश्चर्य से हृदय उधर ताकना । विभ्रित होकर चारों ओर देखना । भौंचक्रा होना । (२) आशांका से हृदय उधर ताकना । चैकना ।

चक्रफेरी-संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र, हिं० चक्र + हिं० फेरी] किसी वृत्त वा मंडल के चारों ओर फिरने की क्रिया । परिक्रमा । भँवरी । क्रि० प्र०—करना ।—फिरना ।—होना ।

चक्रवंदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चक्र + फा० वंदी] भूमि को कई भागों में विभक्त करने की क्रिया । जमीन की हदवंदी ।

चक्रवस्त-संज्ञा पुं० [फा०] जमीन की हदवंदी । फिरतवार । संज्ञा पुं० कारमीरी माहायणों का एक भेद ।

चक्रमक्र-संज्ञा पुं० [हु०] एक प्रकार का कड़ा पत्थर जिस पर चोट पड़ने से बहुत जल्दी आग निकलती है ।

विशेष—पहले यह बंदूकों पर लगाया जाता था और इसी के द्वारा आग निकाल कर बंदूक छोड़ी जाती थी । दिवासलाई निकलने के पहले इसी पर सूत रख कर और एक छोटे से चोट देकर आग झाड़ते थे ।

चक्रमा-संज्ञा पुं० [सं० चक्र = भात] (१) भुलावा । धोखा । ३०—कल तो मुझे उसको गहरा चक्रमा दिया ।

मुहा०—चक्रमा खाना = धोखा खाना । भुलावे में आना । चक्रमा देना = धोखा देना । भुलवाना । भ्रंत करना ।

(२) हानि । नुकसान ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—देना ।

(३) लड़कों के एक खेल का नाम ।

संज्ञा पुं० [देग०] बच्चू नामक बंदर की एक जाति ।

चक्रमाक-संज्ञा पुं० दे० "चक्रमक" ।

चक्रमाक्री-वि० [हु० चक्रमक] चक्रमक का । जिसमें चक्रमक लगा हो ।

संज्ञा स्त्री० बंदूक । (लरा०)

चक्ररा*—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] (१) चक्रवाक पक्षी । चक्रवा । (२) दे० "चक्र" ।

धौ०—चक्र मकर = धोखा । भुलावा । भ्रंसा । (लरा०)

चक्रवा-संज्ञा पुं० [सं० चक्रभूर] (१) चक्र । फेर । कठिन स्थिति । ऐसी शयस्था जिसमें यह न सुझे कि क्या करना चाहिए । असमंजस । (२) कगड़ा । बल्लेड़ा । टंटा ।

क्रि० प्र०—में पड़ना ।

चक्ररसी-संज्ञा पुं० [देग०] एक बहुत घटा पेड़ जो पूरबी बंगाल आसाम और चटगाँव में होता है । इसके हीर की चमकीली और मजबूत लकड़ी, मेजू, कुरसी आदि सामान बनाने के काम में आती हैं । इसकी छाल से चमड़ा सिखाया जाता है ।

चक्ररा*—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पानी का भँवर ।

वि० [छी० चौड़ी] चौड़ा । विस्तृत । ३०—सी योजना विस्तार कनकपुरि चकरी योजना थीस ।—सूर ।

चक्रराना-क्रि० अ० [सं० चक्र] (१) (सिर का) चक्र खाना । (सिर) घूमना । ३०—देखते ही मेरा सिर चक्रराने लगा । (२) भ्रंत होना । चकित होना । भूलना । ३०—वहाँ जाते ही तुम्हारी बुद्धि चक्ररा जायगी । (३) आश्चर्य से हृदय उधर ताकना । चक्रपकाना । चकित होना । हैरान होना । घबड़ाना । क्रि० सं० आश्चर्य में डालना । चकित करना । हैरान करना ।

चक्ररानी-संज्ञा स्त्री० [फा० चाकर] दासी । सेविकिनी । दबलुई ।

चक्ररिया*—संज्ञा पुं० [फा० चाकरी + रा (प्रत्य०)] चाकरी करनेवाला । नौकर । सेवक । दहलुवा ।

चक्ररिहा*—संज्ञा पुं० दे० "चक्ररिया" ।

चक्ररी-संज्ञा स्त्री० [सं० चक्री] (१) चक्री । (२) चक्री का पाट । ३०—जैतइ के धन हेरिनि ललइच कोइइत के मन दौरा हो । हुइ चकरी जिन दरम पसराहु तप पैही ठिक दौरा हो ।—कथीर । (३) चकई नाम का लड़कों का खिलौना । ३०—बोली लिपे सय सखा संग के खेलत स्वाम नंद की पैरी । तैसइ हरि तैसइ सय बालक कर भौरा चकरीन की जोरी ।—सूर ।

वि० चक्री के समान हृदय उधर घूमनेवाला । भ्रमित । शस्थिर । चंचल । ३०—हमारे हरि हारिल की लकरी । मन क्रम बचन नंद नंदन उर यह हड़ करि पकरी । जागत सोवत स्वम दिवस निसि 'कान्ह कान्ह' जकरी । सुनत दिव्ये लागत हमें ऐसी ज्यों कइ कैकरी । सु तो व्यापि हमकों लै धाप देखी सुनी न करी । यह तो सूर तिरई लै सैपौ जिनके मन चकरी ।—सूर ।

वि० छी० चौड़ी । दे० "चक्रा" ।

चक्ररीगिरह-संज्ञा स्त्री० [जशरी] बँवड़े में लगी हुई रस्ती की गाँठ जो उसे रोक रखती है । (लरा०)

चकल-संज्ञा पुं० [हिं० चकल] (१) किसी पौधे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाने के लिये मिट्टी समेत दखाड़ने की क्रिया ।

(२) यह मिट्टी की पीढ़ी जो पीचे को दूसरी जगह लगाने के लिये उखाड़ने समय जड़ के आस पास लगी रहती है ।

क्रि० प्र०—उठाना ।

चकलई—संज्ञा स्त्री० [हि० चकला] चौड़ाई ।

चकला—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, हि० चक्र + का (शब्द०)] (१) पत्थर या काठ का गोल पाटा जिस पर रोटी घेली जाती है । चौका ।

(२) चक्री । (३) देश का एक विभाग जिसमें कई गाँव या नगर होते हैं । इलाका । जिला ।

धा०—चकलेदार । चकलार्यंदी ।

(४) व्यभिचारिणी स्त्रियों का शब्द । कसयीखाना । रंडियों के रहने का घर या महला ।

वि० [स्त्री० चकली] चौड़ा ।

चकलाना—क्रि० सं० [हि० चकल] किसी पीचे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाने के लिये मिट्टी समेत उखाड़ना । चकल उठाना ।

क्रि० सं० [हि० चकला] चौड़ा करना ।

चकली—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र, हि० चक्र] (१) चरनी । गड़ारी ।

(२) छोटा चकला या चौका जिस पर चंदन घिसते हैं । होरसा ।

वि० स्त्री० चौड़ी ।

चकलेदार—संज्ञा पुं० [देव०] किसी प्रदेश का शासक या कर संग्रह करनेवाला । किसी सूचे का हाकिम या मालगुजारी बसूल करनेवाला ।

विशेष—अवध में मवाब की शरार से जो कर्मचारी मालगुजारी बसूल करने के लिये नियुक्त होते थे वे चकलेदार कहलाते थे ।

चकलई—संज्ञा पुं० [सं० चक्रमर्द] एक हाथ से देड़ दो हाथ तक ऊँचा एक पोधा जिसकी पश्चिमी डंडल की शरार तुकीली और सिरे की शरार मोझाई लिए हुए धीड़ी होती है । पीले रंग के छोटे छोटे फूलों के झुड़ जाने पर इसमें पतली लंबी फलियाँ लगती हैं । फलियों के भीतर बड़ के दाने के ऐसे बीज होते हैं जो पाने में बहुत कड़ुपे होते हैं । इसकी पत्ती, जड़, छाल, बीज सब औषध के काम में आते हैं । वैद्यक में यह पित्त-वात-नाशक, हृदय को हितकारी तथा आस, कुष्ठ, दाद, सुग्गी आदि को दूर करनेवाला माना जाता है । पमार । पवाड़ ।

संज्ञा पुं० [सं० चक्र = चक्र + भांड] कुम्हारों का वह यंत्रन जो पानी से भरा हुआ चाक के पास रखा रहता है । पानी हाथ में लगा कर चाक पर चढ़े हुए यंत्रन के लोड़े को चिकना करते हैं ।

चकवा—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक] [स्त्री० चकई] एक पक्षी जो जाड़े में नदियों और बड़े जलाशयों के किनारे दिखाई देता है और वैसाव तक रहता है । अधिक गरमी पड़ते ही यह भार-

तवर्ष से चला जाता है । यह दक्षिण को छोड़ और सारे भारतवर्ष में पाया जाता है । यह पक्षी प्रायः कुंड में रहता है । यह हंस की जाति का पक्षी है । इसकी लंबाई हाथ भर तक होती है । इसके शरीर पर कई भिन्न भिन्न रंगों का मेल दिखाई पड़ता है । पीठ और छाती का रंग पीला तथा पीछे की शरार का लंबा होता है । किसी किसी के बीच बीच में काजी और लाल चरित्र भी होती हैं । पूँछ का रंग कुछ हरापन लिए होता है । कहीं कहीं इन रंगों में भेद भी होता है । डैनों पर कई रंगों का गहरा मेल दिखाई पड़ता है । यह अपने जोड़े से बहुत प्रेम रखता है । बहुत काल से इस देश में ऐसा प्रसिद्ध है कि रात्रि के समय यह अपने जोड़े से अलग रहता है । कवियों ने इसके रात्रिकाल के इस वियोग पर अनेक उक्तियाँ बांधी हैं । इस पक्षी को सुरखार भी कहते हैं । उ०—चकवा चकई दो जने, दूग मत मारो कोप । मे भारे फतरत फे, रैन विछोहा होय ।

संज्ञा पुं० [सं० चक्र] (१) हाथ से कुछ बढ़ाई हुई श्रादे की लोई । (२) जुलाहों की चरली तथा नटाई में लगी हुई बाँस की छड़ी ।

संज्ञा पुं० [देव०] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो मध्यप्रदेश, दक्षिण भारत तथा चटगाँव की शरार बहुत मिलता है । इसके हीरे की लकड़ी बहुत मजबूत और घाल कुछ रखाई लिए सफेद या भूरी होती है । इसके पत्ते चमड़ा मिगाने के काम में आते हैं ।

चकवाना—क्रि० क्रि० [देव०] चकपवाना । हँसाना । चकित होना । उ०—मुखचंद की देवि प्रभा दिन में चकवा चकई चकवाने रहें ।—देव ।

चकवाह*—संज्ञा पुं० दे० “चकवा” ।

चकवी—संज्ञा स्त्री० दे० “चकई”, “चकवा” ।

चकलेनी—संज्ञा स्त्री० [देव०] काकजया ।

चकहा*—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पहिया । चक्र । उ०—महा उलग मनि जोतिन के संग आनि कैंया रंग चकहा गहन रवि रथ के ।—भूपय ।

चकाई—संज्ञा पुं० [हि०] चकैया शब्द । चिपटा शब्द ।

चका*—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पहिया । चक्र । चाक । उ०—यदन यहल कुंडल चक्रा भौंड लुवा ह्य नैन । फेरत चित मंदान मैं यहलवान यह मन ।—रसनिधि ।

चकाकेवल—संज्ञा स्त्री० [हि० चक्र वा चक्रा] काले रंग की मिट्टी जो सूखने पर चिटक जाती और पानी पड़ने से लसदार होती है । यह कठिनता से जोती जाती है ।

चकाचक—संज्ञा स्त्री० [अट्ट०] तलवार आदि के छगातार शरीर पर पड़ने का शब्द ।

मयैव है । ३०—भासत स्वाश सर्वांगन में हरि राजत तारन
में त्रिभि बंद ।

चक्रोत्तरी—संज्ञा श्लो० [सं०] माहा चर्या ।

चक्रोत्तरी—संज्ञा पुं० [सं० चर्या] प्रवाह में घूमता हुआ पानी ।
अंतर ।

चक्रोत्तरी—संज्ञा पुं० दे० "चक्रवर्तु" ।

चक्रोत्तरी—संज्ञा श्लो० दे० "चक्रवर्तु" । ३०—संय स्यम मनि
पामक चर्वांचन तनिकहु महिं सत्प्राहां ।—हरिभद्र ।

चक्रोत्तरी—संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का लगान जो बीघे
के हिसाब से नहीं होता । (२) यह पशु जो थाय के बदल में
दिया जाय । इसे 'मुसपन' कहते हैं ।

चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] पीड़ा । दर्द ।

चक्रा पुं० [सं० चक्र] (१) चक्राकार । चक्रवा । (२)
कुम्हार का वाक । (३) दिशा । प्रांत । ३०—(६) पंच
प्रतिपाल भूमिभार को इमाल चक्रुं चक्र को समाल भयो
दंडक गदान को ।—भूषण । (७) भूयन भनत वह चक्रुं
चक्र चादि कियो पातग्राहि चक्र ताकि दाती माहिं पेंवा
है ।—भूषण ।

चक्र—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] (१) पहिये के चक्रार की बोहरे
(विशेषतः घूमनेवाली) बड़ी गोल वस्तु । मंडलाकार पटल ।
चक्र । ३०—उस मरालि में एक बड़ा चक्र है जो बराबर
घूमता रहता है । (२) गोल वा मंडलाकार जेता । शूलाकार
परिधि । मंडल । (३) मंडलाकार मार्ग । गोल सड़क वा
रास्ता । घुमाव का रास्ता । ३०—उस बगीचे में जो चक्र
है उसके किनारे किनारे बड़ी सुंदर फाय लगी हैं । (४)
मंडलाकार गति । परिक्रमण । फेर । (५) पहिये के जेसा
भ्रमण । घूब पर घूमना ।

मुहा०—चक्र कराना = घुमाकार परिधि में घूमना । परिक्रम
करना । मंडलना । चक्र चाना = (१) पहिये की तरह घूमना ।
घूम पर घूमना । (२) घुमाव फेरण के साथ चलना । गीधे न
चाकर डेरे में घूमना । ३०—(क) जतना चक्र चलन साथ,
इती बगीचे से निकल चलते । (ख) यह रास्ता बहुत चक्र
सा कर गया है । (१) भटकना । भ्रम होना । होमना होना ।
३०—घंटों से चक्र हवा रहे हैं, यह तबाल नहीं चलता है ।
चक्र देना = (१) मंडल बंध कर घूमना । परिक्रम करना ।
हंडलना । (२) दे० "चक्र राता (२)" । चक्र चरना =
जाने के जिन्हे भीख न चरना । घुमन वा फेर चरना । ३०—
उपर से क्यों जलने हो, बड़ा चक्र चरना । चक्र चरना =
मंडलाकार मार्ग चलना । घूमने को घूमना । चक्र चरना
= (१) पहिये की तरह चक्र पर घूमना । (२) घुमाव
परिधि में घूमना । परिक्रम करना । (३) पहिये को घूमना ।
इस उभर चरना । ३०—दिन भर तो चक्र चरते ही

रहते हो, घोड़ा बंद जामे । चक्र में चाना = चक्रित होना ।
भ्रम होना । होमना होना । दंग रह जाना । ३०—सब लोग
उनकी चक्रुत चरिता देण चक्र में था गये । चक्र में
हालना = (१) चक्रित करना । होमना चरना । (२) कटिना
वा अलम्बन में हातना । फेर में हातना । ऐसी स्थिति में करना
जिसमें वह न एक पड़े कि क्या करना चाहिए । होमना करना ।
चक्र में चरना = (१) अलम्बन में चरना । कुपों में चरना ।
कटिना स्थिति में चरना । (२) होमना होना । मया चरना ।
चक्र चरना = (१) परिक्रम करना । मंडलना । (२) चरों
थोर घूमना । इधर उधर चरना । फेर लगाना । चाना जाना ।
घूमना चरना । ३०—(क) हम बड़ी दूर का चक्र चरना
कर था रहे हैं । (ख) घुम इनके चरों नित्य एक चक्र लगा
गाया करो ।

(१) घुमाव । पेंच । जटिलता । दुरुद्धता । फेरकार । ३०—
यह चक्र चक्र का सवाल है ।
मुहा०—किन्ही के चक्र में चाना वा चरना = किन्ही के घेरो
में चाना वा चरना । घुमाने में चाना ।
(७) सिर घूमना । घुमती । घुमता । चेंदोगी । घुमां ।

क्रि० प्र०—चाना ।
(८) पानी का भंडार । जंजाल । (१) चक्र नामक चक्र ।
मुहा०—चक्र चरना = चरना होना । चरित करना । (कौ०) ।
(१०) बुरती का एक पेंच जिसमें चरने दोनो हाथ पेट में घुमे
हुए विपरीत को दोनो मोटो पर एक कर उसकी पीठ चरने सामने
बर सेने हैं और फिर दंग मार कर जमे चित कर देने हैं ।
चक्रचर = वि० [सं० चक्रार्थ] चक्रवर्ती (राजा) । सारभौम
(राजा) । ३०—सुरुर चक्रचर वैभवत शम् । भुवन परिरम
प्रगत प्रमात्र ।—मुसली ।

चक्रवर्तु—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्तु] चक्रवर्ती राजा ।
चक्रवर्ती—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्तु] चक्रवा । चक्रवाक । ३०—
सुरुर कीर्ति सखननि नीतत्र गजनि मु तानि । ज्यों चरौ
चक्र चक्रनि सुखनी चंद्रिनि राते ।—मुसली ।
चक्रवर्ती—वि० [सं० चक्रवर्ती, प्र० चक्रवर्ती, चक्रवर्ती] चक्रवर्ती
(राजा) । राममुद्रनि शृण्यो का राजा ।
चक्रवर्ती—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्ती] बुद्धबुद्ध, बागु चर्ये पहिये के
दंडे का चक्र ।
चक्रा—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, प्र० चक्र] (१) पहिया । चाक्र । (२)
पहिये के चाक्रार की बोहरे गोल वस्तु । (३) बड़ा चरित
दुक्का । बड़ा कला । जैसे, मिट्टे का चक्रा, चरों का चक्रा ।
(४) जना हुआ चलना । चेंदरी । छीपी । चरना । जैसे, चक्रा
दरती । (५) दंडों वा चक्रों का हो जो मार वा गिनती के
बिन्धे क्रम से लगाया गया हो ।

क्रि० प्र०—याचना ।

चक्रों—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रा, प्र० चक्रा] (१) नीचे ऊपर रखी हुई पत्थर के दो गोल और भारी पहियों का घना हुआ घंटा जिसमें आधा पीसा जाता है या दाना दबा जाता है । आधा पीसने या दाल दबाने का यंत्र । जति ।

धा०—पनचढी ।

क्रि० प्र०—चतना ।—चताना ।

मुह०—चड़ी का पाट = चर्डी का एक पत्थर । चर्डी की मानी = (१) चर्डी के नीचे के पाट के बीच में गड़ी हुई वह सूँटी जिस पर ऊपर का पाट भुगता है । (२) भुव । भुव तारा । चर्डी दूना = (१) चर्डी में हाथ लगाना । चर्डी चताना आरंभ करना । चर्डी चताना । (२) अपना चरना शुरू करना । अपना चूना आरंभ करना । अपना कषा छेदना । धौली सुनाना । चर्डी पीसना = (१) चर्डी में दाल पर गेहूँ आदि पीसना । चर्डी चताना । (२) कड़ा परिश्रम करना । बड़ा कष्ट उठाना । चर्डी रहाना = चर्डी का टाँकी से खेद खेद कर पुराना करना जिसमें दाना अच्छी तरह फिरे । चर्डी कूटना ।

(२) [सं० चक्रिका] पैर के छुटने की गोल हड्डी । (३) ऊँटों के शरीर पर का गोल पड़ा [चक्र] चाकी । विजली । बर ।

चक्रवीरहा—संज्ञा पुं० [हिं० चक्र + रहा] चर्डी का टाँकी से कूट कर सुरक्षित करनेवाला ।

चक्की—संज्ञा पुं० दे० “चाकू” ।

चक्की—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाट । स्वाद के लिये चरपी खाने की चीज । (२) चट्टी की जुगाही ।

चाक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहिया । चाका । (२) कुम्हार का चाक । (३) चक्की । जति । (४) तेल घेरने का कोल्हू । (५) पहिये के आकार की कोई गोल वस्तु । (६) लोहे के एक अक्ष का नाम जो पहिये के आकार का होता है ।

विशेष—दूमकी परिधि की धार चर्डी तीव्र होती है । शुक्ल-नीति के अनुसार चक्र तीन प्रकार का होता है, उत्तम, मध्यम और अधम । जिसमें आठ धार (धारे) हों वह उत्तम, जिसमें छः हों वह मध्यम, जिसमें चार हों वह अधम है । इसके अतिरिक्त तौल का भी हिसाब है । विलास भेद से १६ अंगुल का चक्र उत्तम माना गया है । प्राचीन काल में यह बुद्ध के अवसर पर नचा कर फेंका जाता था । यह विष्णु भगवान् का विशेष अस्त्र माना जाता है । आज कल भी गुरु गोविन्द-सिंह के अनुयायी सिख अपने तिर के बाजों में एक प्रकार का चक्र लपेटे रहते हैं ।

मुहा०—चक्र गिरना या पड़ना = वज्रपात होना । विपत्ति आना । (०) पानी का भँवर । (१) घातचक्र । पर्वचक्र । (२) समूह । समुदाय । मंडली । (३) बल । कुँड़ । सेना । (४)

एक प्रकार का व्यूह या सेना की स्थिति । दे० “चक्रव्यूह” । (५) ग्रामों या नगरों का समूह । मंडल । प्रदेश । राज्य । (६) एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैला हुआ प्रदेश । आसमुद्रांत भूमि ।

धा०—चक्रवर्ती ।

(१७) चक्रवाक पक्षी । चक्रवा । (१८) तगर का फूल । गुलचंदनी । (१९) योग के अनुसार मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर आदि शरीरस्थ ६ पद्म । (२०) मंडलाकार घेरा । घृत । जैसे, राशिचक्र । (२१) रेखाओं से घिरे हुए गोल या चौगूटे रंगाने जिनमें शंकर, अक्षर, राज्य आदि लिखे हों । जैसे, कुंडली चक्र ।

विशेष—संभ्र में मंत्रों के उद्धार तथा शुभाशुभ विचार के लिये अनेक प्रकार के चक्रों का व्यवहार होता है जैसे, अक्षरम चक्र, अक्षय चक्र, कुलाल चक्र । हृदयामल आदि संभ्र-मंत्रों में महाचक्र, राजचक्र, दिव्यचक्र आदि अनेक चक्रों का उल्लेख है । मंत्र के उद्धार के लिये जो चक्र बनाए जाते हैं उन्हें यंत्र कहते हैं ।

(२२) हाथ की हथेली या पैर के तलवों में घूमती हुई महीन महीन रेखाओं का चिह्न जिनमें सामुद्रिक में अनेक प्रकार के शुभाशुभ फल निकाले जाते हैं । (२३) फेरा । ध्रमण । घुमाव । चक्र । उ०—काश्चक्र के प्रभाव से सय बातें बदला करती हैं । (२४) दिशा । प्रांत । उ०—कहै पद्माकर चर्डी तो चहलूँ चक्रन को खीरि धारों पल में पलैया पैग पनहीं।—पताकर । (२५) एक चर्चोत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक भगवत्, तीन नगण्य और फिर लघु, गुरु होते हैं । उ०—अननि लगत न कहतुँ टिकनवाँ । राम विमुच रहि मुख मिल कहवाँ । (२६) घोरा । मुलावा । जाल । फुरब ।

धा०—चक्रधर = चार्जीगर ।

चक्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नव्य न्याय में एक तर्क । (२) एक प्रकार का सर्प ।

चक्रकारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नली नामक गणद्वय । (२) हाथ का नाल ।

चक्रकुट्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रपर्णी वृक्ष । पित्रन ।

चक्रगज—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवैह ।

चक्रमुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] धरोक वृष ।

चक्रगोसा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेनापति । (२) राज्यरक्षक । (३) वह कर्मचारी या योद्धा जो रथ, चक्र आदि की रक्षा करे ।

चक्रचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेली । (२) कुम्हार ।

चक्रजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार ।

चक्रताल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बाताला, ताल

जिसमें तीन लघु, लघु की एक मात्रा, एक गुरु और गुरु की दो मात्राएँ होती हैं। इसका बोल यह है—ताहं । धिमि धिमि । तथितां । चिधियान धों । (२) एक प्रकार का चौदह-ताला ताल जिसमें क्रम से चार हुत, हुत की श्रापी मात्रा, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक हुत, हुत की श्रापी मात्रा, एक लघु और लघु की श्रापी मात्रा होती है। इसका बोल यह है—जग० जग० नक० थै० ताप्यं । धरि० कुकु० धिमि० धथि० द्वां० द्वां० धिधिकिट । धिधि० गनथा ।

चक्रतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दृषिय में यह तीर्थ स्थान जहाँ ऋष्यमूक पर्वतों के बीच तुंगभद्रा नदी घूम कर बहती है । ३०—चक्रतीर्थ महँ परम प्रकासी । वसँ सुदर्शन प्रभु छवि रासी ।—धुराज । (२) वैशिवारण्य का एक कुंड ।

विशेष—महाभारत तथा पुराणों में अनेक चक्रतीर्थों का उल्लेख है। कापरि, कामरूप, नर्मदा, श्रीचेद्र, सेतुबंध, रामेश्वर आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थों में एक एक चक्रतीर्थ का वर्णन है। स्कंदपुराण में प्रभास क्षेत्र के शंतपंत चक्रतीर्थ का बड़ा माहात्म्य लिखा है। उसमें लिखा है कि एक बार विष्णु ने बहुत से अयुधों का संहार किया जिससे उनका चक्र रक्त से रंग उठा। उसे धोने के लिये विष्णु ने तीर्थों का आह्वान किया। इस पर कई कोटि तीर्थें वहाँ आ उपस्थित हुए और विष्णु की आज्ञा से वहाँ स्थित हो गए।

चक्रतुंड—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसका मुँह गोल होता है ।

चक्रदंड—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की कसरत जिसमें जमीन पर दंड करने भट दोनों पर समेट लेते हैं और फिर दहने पैर को दहनी और और पाँवों को बाहें और चकर देते हुए पेट के पास लाते हैं ।

चक्रदंती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दंती वृक्ष । (२) जमालगोटा ।

चक्रदंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर ।

चक्रधर—वि० [सं०] जो चक्र धारण करे ।

संज्ञा पुं० (१) वह जो चक्र को धारण करे । (२) विष्णु भगवान । (३) श्रीकृष्ण । (४) शालीगर । इंद्रजाल करने-वाला । (५) कई भ्रामों या नगरों का अधिपति । (६) सर्प । सांप । (७) गांव का सुरोहित । (८) नट राग से मिलता जुलता पाठ्य जाति का एक प्रकार का राग जो पड़ज स्वर से शरंभ होता है और जिसमें पंचम स्वर नहीं लगता । यह संस्था सम्य गाय्या जाता है ।

चक्रधात्री—संज्ञा पुं० दे० “चक्रधर” ।

चक्रानध—संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रनख नामक श्लोपधि । चक्रान्ध ।

चक्रानदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडकी नदी ।

चक्रानाम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) माणिक धातु । सोनामरुपी । (२) चुकवा पत्ती ।

चक्रनायक—संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रनख नाम की श्लोपधि ।

चक्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिटवन ।

चक्रपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] (हाथ में चक्र धारण करनेवाले) विष्णु ।

चक्रपाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी । रथ । (२) हापी ।

चक्रपाणि—संज्ञा पुं० दे० “चक्रपाणि” ।

चक्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी प्रदेश का शासक । सुवेदार । चकलेदार । (२) वह जो चक्र धारण करे । (३) वृत्त । गोलाई । (४) शुद्ध राग का एक भेद ।

चक्रपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक विधि ।

चक्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक अन्न जिसमें गोल फल लगा रहता है ।

चक्रबंध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्र काव्य जिसमें एक चक्र वा पहिये के चित्र के भीतर परा के अक्षर बैठाने जाते हैं ।

चक्रबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

चक्रबंधव—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । (सूर्य को प्रकाश में चकवा चकई एक साथ रहते हैं ।)

चक्रभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चक्र धारण करे । (२) विष्णु ।

चक्रभेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात । रात्रि । (रात में चकवा चकई का जोड़ा अलग हो जाता है ।)

चक्रभोर—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में ग्रह की वह गति जिसके अनुसार वह एक स्थान से चल कर फिर उन्ही स्थान पर प्राप्त होता है । इसे परिवर्त भी कहते हैं ।

चक्रभ्रमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य ।

चक्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य जिसमें नाचने-वाला चक्र की तरह घूमता है । इस प्रकार के नृत्य में गरीर के प्रायः सब शरीरों का संचालन होता है ।

चक्रमंडली—संज्ञा पुं० [सं०] अग्रगर साप ।

चक्रमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवैद्य ।

चक्रमीमांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैश्वदेवों की चक्रमुद्रा धारण करने की विधि । (२) विजयद्वं स्वामी रचित एक ग्रंथ जिसमें चक्रमुद्रा धारण की विधि आदि लिखी है ।

चक्रमुख—संज्ञा पुं० [सं०] मूषर ।

चक्रमुद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चक्र आदि विष्णु के आलुषों के चित्र जो वैश्वदेव अपने बाहु तथा और शरीरों पर छपाने हैं ।

मुद्रा—चटकारे का = चरण। मन्दा। तीक्ष्ण शब्द वा। जैसे, चटकारे का मतलब। चटकारे का सुरमा। चटकारे मरना = मृत होना से चट चट कर खद खद। चेंडे चटन।

चटकाली—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक + कालि] (१) गीतों की रीति। गौरैया वगैरे की चिट्ठियों का कुंदा। (२) चिट्ठियों की रीति वा समूह।

चटकादारा—संज्ञा पुं० [सं०] निगमूल।

चटकाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटकाहट] (१) चटकने वा घूमने का शब्द। (२) चटकने वा लड़कने का भाव। (३) कठिनों के खिलने का अस्फुट शब्द। कठिनों के प्रस्तुति होने का भाव।

चटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चटकी] बुद्धबुद्ध की तरह की एक चिट्ठिया जो न वा १० अंगुल लंबी होती है और पंजाब और राजस्थानों के छोड़ सारे भारतवर्ष में होती है। यह गरमी के दिनों में हिमाचल की ओर चली जाती है और वहाँ चटानों के नीचे वा पेड़ों पर अंशे देती है।

चटकीला—वि० [हिं० चटका + इला (भ्य०)] [स्त्री० चटकीली] (१) जिसका रंग पीला न हो। सुलला। शोण्य। मड़कीला। जैसे, चटकीला रंग। उ०—चटकीले पट चटपटा कटि बंसीबट अमुना के तट, नागर नट।—सूर। (२) चमकीला। चमकदार। आभायुक्त। उ०—चटकी घोड़ी घोवती, चटकीली मुख जेलि। फिरति रसेई के बगर जगर मगर बुति हेतति।—विहारी। (३) जिसका स्वाद पीका न हो। जिसका स्वाद नमक, छटाई, मिर्च आदि के द्वारा तीक्ष्ण हो। चरपा। चटपटा। मन्वेदार।

चटकीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० चटकीला + पन (भ्य०)] (१) चमक दमक। आभा। शोभा। (२) चरपापन।

चटखना—क्रि० सं० दे० “चटकना”।

संज्ञा पुं० दे० “चटकना”।

चटखनी—संज्ञा स्त्री० दे० “चटकनी”।

चटछाता—संज्ञा पुं० [हिं० चरखा] भासुओं का चरखा कातने का खेल। (कलंदर)।

क्रि० प्र०—कातना।

चट चट—संज्ञा स्त्री० [अतु०] (१) चटकने का शब्द। टूटने का शब्द। (२) जलती लकड़ियों का चटचट शब्द। (३) वह शब्द जो उँगलियों से खींचने वा मोड़ कर दधाने से निकलता है। डँगली फूटने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुद्रा—चट चट बलैया लेना = किसी मिय व्यक्ति (विशेषतः शब्दे) की विषयि भाषा दूर करने वा मंगल के लिये उँगलियाँ चटका कर प्रार्थना करना। (जिसे किसी शब्द का नाश

मराना हुई हारों की दैनिकी चटकती है। जब कबों को मरुत करती है तब प्रथम देखा करती है विषयि भाषा प्रत्यय देना है कि मरुत बालदेवने का मरुत हो जन।)

चटचटाना—क्रि० सं० [सं० चट + चट] (१) चटपट करते हुए टूटना वा फूटना। उ०—मन्वे बदन प्रभु सुनत सुनत ही तबु विन्दतये। इत्य इत्य करि उगग काही कर पुकरये। राज उरत अब मलत ही मैं कहीं उरये तैरै। चटपट बँस हूँबी रख रख प्रभु मोहै।—सूर। (२) गीतों लकड़ी, केपड़े आदि का चटपट शब्द करते हुए जहना।

चटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटनी] (१) चटने की चीज। वह गीतों वस्तु जिसे एक टैंगली से छोड़ा छोड़ा उठा कर जीन पर रख सकें। प्रबहेद। (२) वह गीतों चरती वस्तु जो पुरीना, हरी घमियाँ, मिर्च, खाई आदि का एक साथ पीसने से बनती है और भोजन का स्वाद तीक्ष्ण करने के लिये छोड़ी छोड़ी खाई जाती है।

मुद्रा—चटनी करना = (१) बहूत महीन पीचना। (२) पीत डालना। चूर चूर कर देना। मार डालना। छाटना। चटनी होना = (१) लूट पीस जाना। (२) चट हो जाना। चट पट खा लिया जाना। खाने मर के न होना। (३) लूक जाना। खाम हो जाना। उड़ जाना।

(३) काठ का चार पाँच अंगुल का एक तिलौना जिसे छोटे पच्चे सुँह में डाल कर चाटते वा चुलते हैं।

चटपट—क्रि० वि० [अतु०] शीघ्र। जलदी। तुरंत। चटपट। सचय। तफाक। फौरन।

मुद्रा—चटपट की गिरह = वह फंदा जिसे खींच लेने से चट से गंठ पड़ जाय। सकरदुद्धी। (लश०)। चटपट होना = चटपट मर जाना। घोड़ी ही देर में समाप्त हो जाना। बात की बात में मर जाना।

चटपटा—वि० [हिं० चट] [स्त्री० चटपटी] चरपा। तीक्ष्ण स्वाद का। मन्वेदार।

चटपटाना—क्रि० अ० [हिं० चटपट] जल्दी करना। हड़बड़ी मचाना।

चटपटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपट] [वि० चटपटिया] (१) आसुरता। हड़बड़ी। उतावली। रीघूना।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचाना।—होना।

(२) धरारहट। व्यपता। आकुलता। (३) अस्तुता। आकुलता। वह येवैनी जो किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये हो। छटपटी। उ०—(क) देखे बिना चटपटी लागति कहु मूँड पड़ि पर (ख) देले बिना चटपटी लागति से खगी रहति कहु (ग) नैनन को घन।

संज्ञा स्त्री० [हिं०, चीज।

चटर-संज्ञा पुं० [चतु०] चटवट शब्द । किसी चीमड़ वस्तु के किसी कड़ी वस्तु पर धार धार पड़ने का शब्द ।

मुहा०—चटर करना = मसल आदि का घुमाना वा फेरना ।
चकर देना । (जरा०) ।

चटरनी—संज्ञा पुं० [च०] बंगदेश के प्राणियों की एक शाखा । चट्टेयाभ्याय ।

चटरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] खेसारी नाम का कुधान्य । लवरी । चिपदेश ।

चटवाना—क्रि० सं० [हिं० चटना का प्रे०] (१) चाटने का काम करना । चाटने में प्रयुक्त करना । चटाना । (२) छुरी, तलवार आदि पर सान धरवाना । सान पर चटवाना ।

चटशाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० चट + शाला] बच्चों के पढ़ने का स्थान । छोट्टी पाठशाला । मकतब ।

चटसार—संज्ञा स्त्री० [हिं० चट्टा = चेशा + सार = शाला] बच्चों के पढ़ने का स्थान । पाठशाला । मकतब । उ०—अथ समझी हम बात तुम्हारी पढ़े एक चटसार ।—सूर ।

चटसाल—संज्ञा स्त्री० दे० "चटशाला" । उ०—तिनके सँग चटसाल पडाये । राम नाम सें तिन चित लाये ।—सूर ।

चटारह—संज्ञा स्त्री० [सं० चट = चटई ?] वह विद्यापन जो घास फूस, सोंक, ताड़ के पत्तों, बांस की पतली फट्टियों आदि का बनता है । सापरी । मृग का दासन ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चटना] चाटने की क्रिया ।

चटाक—संज्ञा [चतु०] लकड़ी आदि के टूटने, डँगली के चटकने वा चार के पड़ने आदि का शब्द । जैसे, चटाक से छड़ों टूटना, डँगली फूटना, चपत लगाना इत्यादि । उ०—महा भुजदंठ है अदकटाह चपेट के चोट चटाक दे करों ।—तुलसी ।

विशेष—चट, खट आदि अन्य अनुकारण शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी 'सं' विभक्ति के साथ ही किं० वि० पद के समान होता है, अतः इसके लिंग का विचार र्थ्य है ।

घी०—चटाक पटाक = चटाक वा चट चट शब्द के साथ ।
संज्ञा पुं० [हिं० चट्टा] चकत्ता । दाग । धन्ना । (विशेषतः शरीर पर का, जैसे, कुष्ठ आदि का) ।

चटाकर—संज्ञा पुं० [हिं०] एक पेड़ जिसका फल खटा होता है । यह मध्य भारत के सागर आदि स्थानों में विशेष होता है ।

चटाका—संज्ञा पुं० [चतु०] लकड़ी या और किसी कड़ी वस्तु के जोर से टूटने का शब्द ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—चटाके का = बहुत तेज । उग्र । प्रबल । जैसे, चटाके की धूप । चटाके की प्यास । (इसका प्रयोग गरमी

तथा उसके कारण लगी हुई प्यास आदि की अधिकता ही के लिये प्रायः करते हैं ।)

चटाख—संज्ञा पुं० दे० "चटाक" ।

चटाचट—संज्ञा स्त्री० [चतु०] किसी वस्तु के टूटने में चट चट शब्द ।

चटाना—क्रि० सं० [हिं० चटना का प्रे०] (१) चाटने वा काम करना । जीम लगा कर किसी वस्तु का थोड़ा थोड़ा धरा मुँह में डालने देना । (२) थोड़ा थोड़ा किसी दूसरे के मुँह में डालना । खिलाना । जैसे, अन्न चटाना । (३) कुछ धूस देना । रियाजत देना । उ०—उन्होंने कुछ चटायो होगा, तब मोहरी मिली है । (४) छुरी, तलवार आदि पर सान धरवाना । सान पर चटवाना ।

चटापटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपट] (१) ग्रीष्मता । जल्दी । छुरती । (२) किसी संकामक रोग के कारण बहुत से मनुष्यों की जल्दी जल्दी मृत्यु ।

क्रि० प्र०—होना ।

चटाचन—संज्ञा पुं० [हिं० चटना] बच्चे को पहले पहल अन्न चटाने का संस्कार । अन्नप्राशन ।

चटिकर—क्रि० वि० [हिं० चट] चट पट । उसी समय । तत्क्षण । तत्पक्ष । उ०—मुनस भूप भाषित चतुरानन । चले चटिक प्रिवृत् जेहि कानन ।—रघुराज ।

चटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिपरागूल ।

चटियल—वि० [दे०] अनावृत । खुला हुआ (मैदान) । जिसमें पेड़ पौधे न हों । निचाट ।

चटिहाट—वि० [दे०] जड़ । मूर्ख । उजड़ ।

चट्टी—संज्ञा स्त्री० [दे०] चटसा । पाठशाळा उ०—मुनिवृंद जहाँ जिहि वेदपथी शुक सारस हंस चबेरे चट्टी । संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपटा] एक प्रकार की जूती, जो पैरों की ओर खुली होती है ।

चट्टीचरि—संज्ञा पुं० [दे०] पेष विशेष ।

चटु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाट । म्रिय वाक्य । सुशामद । चापलूसी । (२) वृत्तियों का एक आसन । (३) उदर । पेट ।

चटुल—वि० [सं०] (१) चंचल । चपल । चालाक । (२) सुंदर । म्रियदरीन । मनोहर । उ०—(क) छुट्टि छुः राग रस शगिनी हरि होरी है । ताल तान बंधान अहो हरि होरी है । चटुल चार रतिनाथ के हरि होरी है । ललित होइ श्रौधान अहो हरि होरी है ।—सूर । (ख) मंजुल महरि मयूर चटुल चातक चकोर गन ।—भूपन । (ग) मांसी लटकन बँ । मवल नट नाचँ नयन निरत थट आनि की चटुल चटसार मैं ।—देव ।

चटुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] विजली ।

मुहा०—चटकारे का = चरपरा। मजेदार। तीव्रता स्वाद का। जैसे, चटकारे का सालन। चटकारे का भुरता। चटकारे भरना = खूब जीम से चाट चाट कर स्वाद लेना। थोड़ा चटना।

चटकाली—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक + कालि] (१) गौरों की पंक्ति। गौरिया नाम की चिट्ठियों का मुँड। (२) चिट्ठियों की पंक्ति या समूह।

चटकादार—संज्ञा पुं० [सं०] पिपरामूल।

चटकाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० चटकना] (१) चटकने या फूटने का शब्द। (२) चटकने वा तड़कने का भाव। (३) कलियों के खिलने का शस्फुट शब्द। कलियों के प्रस्फुटित होने का भाव।

चटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक] गुलगुल की तरह की एक चिट्ठिया जो न या १० श्रंगुल लंबी होती है और पंजाब और राजस्थान के छोड़ सारे भारतवर्ष में होती है। यह गरमी के दिनों में हिमालय की और चली जाती है और वहाँ चटकों के नीचे वा पेड़ों पर श्रंटे देती है।

चटकीला—वि० [हि० चटक + काल (श्रवण०)] [स्त्री० चटकीला] (१) जिसका रंग फीका न हो। सुलता। शोण। भटकीला। जैसे, चटकीला रंग। उ०—चटकीला पट लपटाना कटि बंसीपट जमुना के तट, नागर नट।—सूर। (२) चमकीला। चमकदार। आभायुक्त। उ०—चटकी धौड़े पोपती, चटकीली मुख जेति। फिरति रसेई के बगर अगर मगर हुति हेति।—विहारी। (३) जिसका स्वाद फीका न हो। जिसका स्वाद नमक, खटाई, मिर्च आदि के द्वारा तीव्र हो। चरपरा। चटपटा। मजेदार।

चटकीलापन—संज्ञा पुं० [हि० चटकीला + पन (श्रवण०)] (१) चमक दमक। आभा। शोण। (२) चरपरापन।

चटखना—क्रि० सं० दे० "चटकना"।

संज्ञा पुं० दे० "चटकना"।

चटखनी—संज्ञा स्त्री० दे० "चटकनी"।

चटखौता—संज्ञा पुं० [हि० चरखा] भाषुओं का चरवा कालने का खेल। (कलंदर)।

क्रि० प्र०—कालना।

चट चट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) चटकने का शब्द। टूटने का शब्द। (२) जलती लकड़ियों का चटचट शब्द। (३) वह शब्द जो डँगलियों में खींचने वा मोड़ कर दबाने से निकलता है। डँगली फूटने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—चट चट मलैया लेना = किसी प्रिय व्यक्ति (विशेषतः बच्चे) की विपत्ति याथा दूर करने वा मंगल के लिये डँगलियाँ चटका कर प्रार्थना करना। (जिसे किसी शत्रु का नाश

मनाती हुई हाथों की डँगलियाँ चटकाती हैं। जब बच्चों को नज़र लाती है तब प्रायः ऐसा करती हैं जिसका प्रायः प्राय यह होता है कि नज़र लगानेवाले को नाश हो जाय।)

चटचटाना—क्रि० प्र० [सं० चट = पैल] (१) चटचट करते हुए टूटना वा फूटना। उ०—गर्भ घचन प्रभु सुगत तत ही तबु विस्तारयो। हाय हाय करि उग वारही वार पुकारयो। शत शरन श्रय मरते हों मैं नहिं जान्यों तोहिं। चटचटत श्रंग फूट्यो राखु राखु प्रभु मोहिं।—सूर। (२) मँडली लकड़ी, केयले आदि का चटचट शब्द करते हुए जजना।

चटनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चटना] (१) चटने की चीज। बड़ गीली वस्तु जिसे एक डँगली से थोड़ा थोड़ा उठा कर जीम पर रख सकें। श्वलेह। (२) वह गीली चरपरी वस्तु जो पुदीना, हरी धनियाँ, मिर्च, खटाई आदि को एक साथ पीसने से बनती है और भोजन का स्वाद तीव्र करने के लिये थोड़ी थोड़ी खाई जाती है।

मुहा०—चटनी करना = (१) बहुत महीन पीसना। (२) पीस डालना। चूर चूर कर देना। मार डालना। खा जाना। चटनी होना = (१) खूब पीत जाना। (२) चट हो जाना। चट पट खा लिया जाना। खाने भर को न होना। (३) चुक जाना। खतम हो जाना। उड़ जाना।

(३) काठ का चार पाँच श्रंगुल का एक खिलौना जिसे छोटे बच्चे मुँह में डाल कर चाटते वा चूमते हैं।

चटपट—क्रि० वि० [अनु०] शीघ्र। जल्दी। तुरंत। कटपट। तटपट। तत्काल। फौरन।

मुहा०—चटपट की गिरह = यह फंदा जिसे लोच लेने से बट वे गंठ पड़ जाय। खतरमुझी। (लश०)। चटपट होना = चटपट भर जाना। थोड़ी ही देर में समाप्त हो जाना। बात की बात में भर जाना।

चटपटा—वि० [हि० चाट] [स्त्री० चटपटी] चरपरा। तीव्र स्वाद का। मजेदार।

चटपटाना—क्रि० प्र० [हि० चटपट] जल्दी करना। छुड़पड़ी मचाना।

चटपटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चटपट] [वि० चटपटिया] (१) आठुरता। हड़बड़ी। उतावली। शीघ्रता।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—मचाना।—होना।

(२) चरपराहट। व्यग्रता। आक्रुलता। (३) उग्रमुक्ता। आक्रुलता। वह बच्चेनी जो किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये हो। छुटपटी। उ०—(क) देखे बिना चटपटी लागति कछु मुँह पट्टि पर ड्यों।—सूर। (ख) नैनन चटपटी में तब से लगि रहति कहां प्राय प्यारे निजेन को धन।—सूर।

क्रि० स्त्री० दे० "चटपटा"। संज्ञा स्त्री० [हि० चटपटा] चटपटी चीज। जैसे, कचाल आदि।

चटर-संज्ञा पुं० [ऋजु०] चटचट शब्द । किसी चीमड़ वस्तु के किसी कड़ी वस्तु पर धार धार पड़ने का शब्द ।

मुहा०—चटर करना = मस्ल खादि, का गुमाना या फेला ।
चकर देना । (लरा०) ।

चटरजी—संज्ञा पुं० [वं०] दंगदेश के ब्राह्मणों की एक शाखा ।
चट्टोपाध्याय ।

चटरी—संज्ञा स्त्री० [दे००] खेसारी नाम का कुषाय । खतरी ।
चिपटैया ।

चटघाना—क्रि० सं० [हिं० चटना का प्रे०] (१) चटने का काम करना । चटने में प्रवृत्त करना । चटाना । (२) छुरी, तलवार आदि पर सान धरवाना । सान पर चढ़वाना ।

चटशाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० चट + शाला] बरचों के पड़ने का स्थान । छोटी पाठशाला । मकतब ।

चटसार—संज्ञा स्त्री० [हिं० चट्टा = चेशा + सार = शाला] बरचों के पड़ने का स्थान । पाठशाला । मकतब । उ०—अब समझी हम धात तुम्हारी पड़े एक चटसार ।—सूर ।

चटसाल—संज्ञा स्त्री० दे० “चटशाला” । उ०—तिनके सँग चटसाल पडाये । राम नाम से तिन चित लाये ।—सूर ।

चटई—संज्ञा स्त्री० [सं० चट = चटई ?] यह विज्ञान जो घास फूस, लौक, ताड़ के पत्तों, बांस की पतली फट्टियों आदि का बनता है । सापटी । गृष का वासन ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चटाना] चटने की क्रिया ।

चटका—संज्ञा [ऋजु०] लकड़ी आदि के टूटने, डँगली के चटकने या चगत के पड़ने आदि का शब्द । जैसे, चटका से छुईं टरना, डँगली फूटना, चपत लगाना इत्यादि । उ०—महा शुभदंड द्वै शंबकटाह चपेट के घोट चटका दे फोरीं ।—तुलसी ।

विशेष—चट, छट आदि अन्य ऋजुकरण शब्दों के समान हल शब्द का प्रयोग भी ‘से’ विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० पद के समान होता है, अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है ।

धा०—चटका पटाक = चटका वा चट चट शब्द के साथ ।

पञ्जा पुं० [हिं० चट्टा] चकत्ता । दाग । धब्बा । (विशेषतः शरीर पर का, जैसे, बुद्ध आदि का) ।

चटाकर—संज्ञा पुं० [हिं०] एक पेड़ जिसका फल खटा होता है । यह मध्य भारत के सागर आदि स्थानों में विशेष होता है ।

चटाका—संज्ञा पुं० [ऋजु०] लकड़ी या कीर किसी कड़ी वस्तु के जोर से टूटने का शब्द ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—चटके का = बहुत तेज । उग्र । प्रबुद्ध । जैसे, चटके की धूप । चटके की प्यास । [हसरा प्रयोग गरमी

तथा उसके कारण लगी हुई प्यास आदि की अधिकता ही के लिये प्रायः करते हैं ।)

चटाख—संज्ञा पुं० दे० “चटाक” ।
चटाचट—संज्ञा स्त्री० [ऋजु०] किसी वस्तु के टूटने में चट चट शब्द ।

चटाना—क्रि० सं० [हिं० चटना का प्रे०] (१) चटने का काम करना । जीम लगा कर किसी धातु का थोड़ा थोड़ा थरा मुँह में डालने देना । (२) थोड़ा थोड़ा किसी दूधरे के मुँह में डालना । खिलाना । जैसे, अन्न चटाना । (३) कुञ्ज घृत देना । रियाज देना । उ०—उन्होंने कुञ्ज चटायो होगा, तप नौकरी मिली है । (३) छुरी, तलवार आदि पर सान धरवाना । सान पर चढ़वाना ।

चटापटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटरट] (१) शीघ्रता । जल्दी । फुरती । (२) किसी संक्रामक रोग के कारण बहुत से मनुष्यों की जल्दी जल्दी मृत्यु ।

क्रि० प्र०—होना ।

चटावन—संज्ञा पुं० [हिं० चटना] बरचों को पहले पढ़ल अन्न चटाने का सेत्कार । अन्नप्राशन ।

चटिक—क्रि० वि० [हिं० चट] चट पट । उसी समय । तत्क्षण । तत्काल । उ०—सुनत भूय भाषित चटुरानन । चले चटिक प्रिवभूत जेहि फानन ।—रघुपान ।

चटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विपरायल ।

चटिघल—वि० [दे००] अनायत । खुला हुआ (सैदान) । जिसमें पेड़ पाँधे न हों । निचाट ।

चटिहाट—वि० [दे००] जड़ । मूल । उजड़ ।

चटी—संज्ञा स्त्री० [दे००] चटसार । पाठशाळा उ०—मुनिवृंद जर्जर जिहि वेदपत्री शुक्र सारस हल चकेर चटी ।
संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] एक प्रकार की जूती, जो पैड़ी की थोर छुटी होती है ।

चटीचटि—संज्ञा पुं० [दे००] पेच विशेष ।

चट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाट्ट । मित्र वाक्य । सुशामद । चापलूसी । (२) सूतियों का एक आसन । (३) उरर । पेट ।

चट्टल—वि० [सं०] (१) खंचल । चपल । चालाक । (२) सुंदर । मिथदर्शन । मनेाहर । उ०—(क) छुट्टि छः राग रस रागिनी हरि होरी है । ताल तान धंधान अहो हरि होरी है । चट्टल चार रत्ननाथ के हरि होरी है । खिलत होइ धौधान अहो हरि होरी है ।—सूर । (ख) मंजुल महरि मयूर चट्टल चातक चट्टेरा मन ।—धूपन । (ग) मोती लटकन के नथल नट नाथे । बपन निरत बट वानि की चट्टल चटसार में ।—देव ।

चटुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली ।

मुहा०—चटकारे का = चरपा। मजेदार। तीक्ष्ण स्वाद का। जैसे, चटकारे का सालन। चटकारे का सुरता। चटकारे भरना = खूब जीभ से चाट चाट कर स्वाद लेना। थोड़ा चाटना।

चटकाटी—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक + अलि] (१) गौरों की पंक्ति। गौरैया नाम की चिड़ियों का झुंड। (२) चिड़ियों की पंक्ति वा समूह।

चटकाशिरा—संज्ञा पुं० [सं०] विपरासूल।

चटकाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटकना] (१) चटकने वा फूटने का शब्द। (२) चटकने वा तड़कने का भाव। (३) कलियों के खिलने का थस्फुट शब्द। कलियों के प्रस्फुटित होने का भाव।

चटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक] सुलबुल की तरह की एक चिड़िया जो म वा श० श्रृंगुल लंबी होती है और पंजाब और राजपूताने को छोड़ सारे भारतवर्ष में होती है। यह गरमी के दिनों में हिमालय की ओर चली जाती है और वहाँ चटानों के नीचे वा पेड़ों पर छंदे देती है।

चटकीला—वि० [हिं० चटक + लाल (मय०)] [स्त्री० चटकीली] (१) जिसका रंग फीका न हो। खुलता। शोख। भड़कीला। जैसे, चटकीला रंग। उ०—चटकीला पट लपटाना कटि बँसीपट जमुना के तट, नागर नट।—सूर। (२) चमकीला। चमकदार। धामायुक। उ०—चटकी घोई धोवती, चटकीली मुख जोति। फिरति रसोई के बगर जगर मगर हुति होती।—विद्यारी। (३) जिसका स्वाद फीका न हो। जिसका स्वाद नमक, खटाई, मिर्च आदि के द्वारा तीक्ष्ण हो। चरपा। चटपटा। मजेदार।

चटकीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० चटकीला + पन (मय०)] (१) चमक दमक। धामा। शोखी। (२) चरपापान।

चटखना—क्रि० सं० दे० “चटकना”।

संज्ञा पुं० दे० “चटकना”।

चटखनी—संज्ञा स्त्री० दे० “चटकनी”।

चटछौता—संज्ञा पुं० [हिं० चरख] भागुओं का चरखा कातने का खेल। (कलंदर)।

क्रि० प्र०—कातना।

चट चट—संज्ञा स्त्री० [श्रु०] (१) चटकने का शब्द। टूटने का शब्द। (२) जलती लकड़ियों का चटचट शब्द। (३) वह शब्द जो डँगलियों को खींचने वा मोड़ कर दपाने से निकलता है। डँगली फूटने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—चट चट बलैया लेना = किसी मित्र व्यक्ति (विशेषतः बच्चे) का विपत्ति बाधा दूर करने वा गंज के लिये डँगलियाँ चटका कर प्रार्थना करना। (जियाँ किसी शत्रु का नाश

मनाती हुई हाथों की डँगलियाँ चटकाती हैं। जब बच्चों को नज़र लगती है तब प्रायः ऐसा करती हैं जिसका अभिप्राय यह होता है कि नज़र लगानेवाले का नाश हो जाय।)

चटचटाना—क्रि० श्रु० [सं० चट + अर्न] (१) चटचट करते हुए टूटना वा फूटना। उ०—नाथ वचन प्रभु सुनत तुरत ही वतु विस्तारयो। हाथ हाथ करि उरग बारही बार पुकारयो। शरन शरन श्रव मरत हँ में नहिं जाय्यों तोहिं। चटचटत श्रंग फूटही शत्रु राखु प्रभु मोहिं।—सूर (२) गँधीली लकड़ी, कोयले आदि का चटचट शब्द करते हुए जलना।

चटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटना] (१) चाटने की चीज़। बड़ गीली वस्तु जिसे एक डँगली से थोड़ा थोड़ा उठा कर जीभ पर रख सके। शक्लेह। (२) यह गीली धरपरी वस्तु जो पुदीना, हरी धनियाँ, मिर्च, खटाई आदि को एक साथ पीसने से बनती है और भोजन का स्वाद तीक्ष्ण करने के लिये थोड़ी थोड़ी खाई जाती है।

मुहा०—चटनी करना = (१) बहुत महीन पीसना। (२) पीस डालना। चूर चूर कर देना। मार डालना। सा ज्ञान। चटनी होना = (१) खूब पिस जाना। (२) चट हो जाना। चट पट खा लिया जाना। खाने भर को न देना। (३) चुक जाना। खतम हो जाना। उड़ जाना।

(३) काठ का चार पांच श्रृंगुल का एक खिलौना जिसे छोटे बच्चे सुँह में डाल कर चाटते वा चूसते हैं।

चटपट—क्रि० वि० [श्रु०] शीघ्र। जल्दी। तुरंत। ऋपट। तच्छण। तत्काल। फौरन।

मुह०—चटपट की गिरह = वह फंदा जिसे खींच लेने से चट वे गंठ पड़ जाय। सकरमुक्की। (लश०)। चटपट होना = चटपट मर जाना। थोड़ी ही देर में समाप्त हो जाना। बात की बात में मर जाना।

चटपटा—वि० [हिं० चट] [स्त्री० चटपटी] चरपा। तीक्ष्ण स्वाद का। मजेदार।

चटपटाना—क्रि० श्रु० [हिं० चटपट] जदी करना। हड़बड़ी मचाना।

चटपटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपट] [वि० चटपटिया] (१) आतुरता। हड़बड़ी। उतावली। शीघ्रता।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—मचाना।—होना।

(२) धरताहट। व्यग्रता। आकुलता। (३) उस्तुकता। आकुलता। वह बेचैनी जो किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये हो। छुटपटी। उ०—(क) देखे बिना चटपटी लागति कट्टू नूँद पण्डि पर उगे।—सूर। (ख) जीवन चटपटी मेरे उष से कगी रहति कहां प्राण प्यारे निर्धन के धन।—सूर।

वि० स्त्री० दे० “चटपटा”।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपट] चटपटी चीज़। जैसे, कवाच, आदि।

चटर-संज्ञा पुं० [ऋ०] चटचट शब्द । किसी चीमड़ वस्तु के किसी कड़ी वस्तु पर बार बार पड़ने का शब्द ।

मुहा०—चटर करना = मस्जुद आदि के दुमाना या फेरना । चकर देना । (लरा०) ।

चटरजी—संज्ञा पुं० [ऋ०] बंगदेश के ब्राह्मणों की एक शाखा । चट्टोपाध्याय ।

चटरी—संज्ञा स्त्री० [रे०] छेत्तारी नाम का कुपाय । लतारी । चिपटैया ।

चटवाना—क्रि० सं० [हिं० चटना का प्रे०] (१) चाटने का काम करना । चाटने में प्रवृत्त करना । चटाना । (२) छुरी, तलवार आदि पर सान धरवाना । सान पर चढ़वाना ।

चटशाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० चट + शाला] बरछों के पड़ने का स्थान । छोट्टी पाटशाला । मकतब ।

चटसार—संज्ञा स्त्री० [हिं० चट्टा = चेशा + सार = पास] बरछों के पड़ने का स्थान । पाटशाला । मकतब । उ०—अप्य समकी हम बात मुम्हारी पड़े एक चटसार ।—सूर ।

चटसाल—संज्ञा स्त्री० दे० “चटराला” । उ०—तिनके सँग चटसाल पदाये । राम नाम सौं तिन चित लागे ।—सूर ।

चटई—संज्ञा स्त्री० [सं० चट = चटई ?] यह विद्यावत जो घास फूस, लीक, ताड़ के पत्तों, बांस की पतली फट्टियों आदि का बनता है । सापरी । गृण का दासन ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चटना] चाटने की क्रिया ।

चटाक—संज्ञा [ऋ०] लकड़ी आदि के टूटने, उँगली के चटकने या चपत के पड़ने आदि का शब्द । जैसे, चटाक से छुईं टूटना, उँगली टूटना, चपत लगाना इत्यादि । उ०—महा भुमदंड है श्रंखकटाह चपेट के चोट चटाक है फौराँ ।—तुलसी ।

चिरोप—चट, छट आदि धन्य अनुकरण शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० पद के समान होता है, अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है ।

धौ०—चटाक पटाक = चट्टाक या चट चट शब्द के साथ ।

संज्ञा पुं० [हिं० चट्टा] चकसा । दाग । धब्बा । (विशेषतः शरीर पर का, जैसे, कुष्ठ आदि का) ।

चटाकर—संज्ञा पुं० [हिं०] एक पेड़ जिसका फल खटा होता है । यह मध्य भारत के सागर आदि स्थानों में विशेष होता है ।

चटाका—संज्ञा पुं० [ऋ०] लकड़ी या और किसी कड़ी वस्तु के जोर से टूटने का शब्द ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—चटाके का = बहुत तेज । उग्र । प्रचंड । जैसे, चटाके की धूप । चटाके की प्यास । (हसका प्रयोग गरमी

तथा उसके कारण लगी हुई प्यास आदि की अधिकता ही के लिये प्रायः करते हैं ।)

चटाख—संज्ञा पुं० दे० “चटाक” ।

चटाचट—संज्ञा स्त्री० [ऋ०] किसी वस्तु के टूटने में चट चट शब्द ।

चटाना—क्रि० सं० [हिं० चटना का प्रे०] (१) चाटने का काम करना । जीभ लगा कर किसी वस्तु का थोड़ा थोड़ा अंग मुँह में डालने देना । (२) थोड़ा थोड़ा किसी दूसरे के मुँह में डालना । खिलाना । जैसे, अन्न चटाना । (३) कुछ घूस देना । रियाज देना । उ०—उम्होंने कुछ चटया होगा, तय मौकरी मिली है । (३) छुरी, तलवार आदि पर सान धरवाना । सान पर चढ़वाना ।

चटापट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपट] (१) शीघ्रता । जल्दी । फुरती । (२) किसी संक्रामक रोग के कारण बहुत से मनुष्यों की जल्दी मर्दी शुरु ।

क्रि० प्र०—होना ।

चटावन—संज्ञा पुं० [हिं० चटना] बरछे के पहले पहल अन्न चटाने का संस्कार । अन्नप्राशन ।

चटिक—क्रि० वि० [हिं० चट] चट पट । उसी समय । तत्क्षण । तत्काल । उ०—सुनत शूर भाषित चटुपानन । चले चटिक निबधूत जेहि कानन ।—रघुपति ।

चटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विपरायल ।

चटियल—वि० [रे०] अनायुत । खुला हुआ (मैदान) । जिसमें पेड़ पाँधे न हों । निचाट ।

चटिहाट—वि० [रे०] जड़ । सूँड़ । उजड़ ।

चट्टी—संज्ञा स्त्री० [रे०] चटसार । पाटशाला उ०—सुनिवृद्ध नरदाँ जिहि वेदपट्टी शुक्र सासत हस चकेर चट्टी ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपट्टी] एक प्रकार की जूती, जो पेंड़ी की धार खुली होती है ।

चट्टीचरि—संज्ञा पुं० [रे०] वेच विशेष ।

चट्टु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाट्टु । मित्र वाक्य । सुरामद । चापलूसी । (२) वृत्तियों का एक शासन । (३) उदर । पेट ।

चट्टुल—वि० [सं०] (१) चंचल । चपल । चालाक । (२) सुंदर । मिथदर्शन । मनोहर । उ०—(क) छुटि छुः राग रस रागिनी हरि होरी है । ताल तान बंधान चट्टो हरि होरी है । चट्टुल चार रतिनाथ के हरि होरी है । लीलत हाँड़ औंधान अहो हरि होरी है ।—सूर । (घ) मंजुल महरि मयूर चट्टुल चातक चकोर गन ।—भूपन । (ग) मोली लटकन कौं नवल नट नाचै । मयन निरस बट मानि की चट्टुल चटसार में ।—देव ।

चट्टुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिगली ।

चटोरा-वि० [हि० चट + ओरा (प्रत्य०)] (१) जिसे अच्छी अच्छा चीजें खाने का व्यसन हो। जिसे स्वाद का व्यसन हो। स्वादिष्ट वस्तु खाने का लालची। स्वादलोलुप। जैसे, चटोरा थादमी, चटोरी ज़यान। (२) लोलुप। लोभी। उ०—अधर जोर पैसी मुनिल छवि जल वसुधा थाल। रूप चटोरा मीन रग ग्राह फँसत ततकाल।—सुधारक।

चटोरापन-संज्ञा पुं० [हि० चटोरा + पन (प्रत्य०)] अच्छी अच्छी चीजें खाने का व्यसन। स्वादलोलुपता।

चट्ट-वि० [हि० चाटना] (१) चाट पीछ कर खाया हुआ। (२) समाप्त। नष्ट। गायब। उ०—दया चट हो गई धर्म धँसि गयो धरम्यि मैं।

चट्टा-संज्ञा पुं० [सं० चेटक = दास] चेला। शिष्य।
संज्ञा पुं० [सं० कट = चट्टाई ?] बाँस की चट्टाई।
संज्ञा पुं० [?] चट्टियल मैदान। खुला मैदान।
ऐसा मैदान जिसमें पेड़ खादि न हों।
संज्ञा पुं० [हि० चकत्ता] शरीर पर कुष्ठ आदि के कारण निकला हुआ चकत्ता। दाग।

क्रि० प्र०—निकलना।—पड़ना।

चट्टान-संज्ञा स्त्री० [हि०] पहाड़ी भूमि के श्रेतर्गत पत्थर का चिपटा बड़ा टुकड़ा। विस्तृत शिलापटल। शिलाखंड।

चट्टाबद्धा-संज्ञा पुं० [हि० चट्ट = चाटने का विलोना + बद्धा = गोश] (१) छोटे बच्चों के खेलने के लिये फाट के खिलोने का समूह जिसमें चट्टू, मुनछुने और गोले इत्यादि रहते हैं। (२) गोले और गोलियाँ जिन्हें धार्मीगर एक धैली में से निकाल कर लोगों को समाया दिखाते हैं।

मुहा०—एक ही धैली के चट्टे बट्टे = एक ही गुट के मनुष्य।
एक ही स्वभाव और रुचि के लोग। एक ही भेल के आदमी।
एक ही विचार के लोग। चट्टे बट्टे लड़ाना = इधर की उपर लग कर लड़ाई करना। सुटकुला छोड़ना। ऐसी बात कहना जिसमें कुछ लोग आपस में लड़ जायें। उ०—तुम्हें बहुत चट्टे बट्टे लड़ाना आता है।

चट्टी-संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) टिकान। पड़ाव। मंजिल। उ०—सो कहूँ आगे द्वेष लखाई। तहाँ एक चट्टी परम सुहाई।—रघुराज। (२) फरुख़ाबाद के झिले में रैर में पहनने का एक गहना।

संज्ञा स्त्री० [हि० चपटी वा चट्टु० चट चट] पँड़ी की ओर खुला हुआ जूता। स्निपर।

संज्ञा स्त्री० [हि० चोटा = चपत] (१) हानि। घाटा। टोटा।
नुकसान। तावान।

मुहा०—चट्टी भरना = हानि पूरी करना।
(२) दंड। जुरमाना।

मुहा०—चट्टी धरना = दंड लगाना।

चट्टू-वि० [हि० चट] स्वादलोलुप। चटोरा।
संज्ञा पुं० [हि० चट्टान वा चट्टु० चट] पत्थर का बड़ा खरल।
संज्ञा पुं० [हि० चाटना] फाट का एक खिलोना जिसे खंडने मुहँ में डाल कर चाटते हैं।

चट्ट-संज्ञा [चट्टु०] सूखी लकड़ी आदि के फटने का शब्द।
विरोध—चट, पट आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् होता है, यतः इसके लिये का विचार व्यर्थ है।

चट्टकपूजा-संज्ञा स्त्री० दे० "चरखपूजा"।

चट्टचट्ट-संज्ञा पुं० [चट्टु०] सूखी लकड़ी को टूटने वा जतने का शब्द।

चट्टबट्ट-संज्ञा स्त्री० [चट्टु०] टें टें। बक बक। निरर्थक प्रकाश।

मुहा०—चट्टबट्ट चट्टबट्ट करना = बकवाद करना।

चट्टसी-संज्ञा पुं० [देग०] घरस पीनेवाले लोग। घरसवाज।
घरस का नशा करनेवाले लोग।

चट्टी-संज्ञा स्त्री० [म० वरण] वह लात जो बड़क पर मारी जाय।

क्रि० प्रि०—जमाना।—मारना।—लगाना।

चट्टा-संज्ञा पुं० [देग०] जीव की जड़। जंवे का उपरी भाग।
वि० गावदी। मूवै।

चट्टी-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार का लँगेट।

चट्टी-संज्ञा स्त्री० [हि० चट्टना] लड़कों का वह खेल जिसमें एक लड़का दूसरे की पीठ पर चट्ट कर चलता है। (जो लड़का हारता है उसी की पीठ पर सवारी की जाती है।)

क्रि० प्र०—चट्टना।

मुहा०—चट्टी देना = (१) हार कर पीठ पर चट्टना। (२) गुदामैयुन करना।

चट्टत-संज्ञा स्त्री० [हि० चट्टना] किसी देवता को चढ़ाई हुई वस्तु। देवता की भेंट।

चट्टता-वि० [हि० चट्टना] (१) निकलता और ऊपर आता हुआ।
घराबर ऊपर की ओर जाता हुआ। जैसे, चट्टता चाँद। (२) आरंभ होता और बढ़ता हुआ। अग्रसर होता हुआ। जैसे, चट्टती जवान्नी, चट्टती दैस।

चट्टन०—संज्ञा स्त्री० [हि०] चट्टने की क्रिया वा भाव। चढ़ाई।

चट्टनदार-संज्ञा पुं० [हि० चट्टना + दा० (प्रत्य०)] वह मनुष्य जिसे व्यापारी गाड़ी नाव आदि पर माल के साथ रफ़ा के लिये भेजते हैं। (लय०)

चट्टना-क्रि० प्र० [सं० उचलन, प्र० उचलन, चट्टन] (१) नीचे से ऊपर को जाना। ऊँचाई पर जाना। ऊँचे स्थान पर जाना।
'उतरना' का उलटा। जैसे, सीढ़ी पर चट्टना, पहाड़ पर चट्टना, पेड़ पर चट्टना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—सूरज वा चाँद का चढ़ना = सूर्य वा चंद्रमा का उदय हो कर क्षितिज के ऊपर आना। दिन चढ़ना = (१) दिन का प्रकाश फैलना। (२) दिन वा काल अतीत होना। जैसे, चार घड़ी दिन चढ़ा। दे० "दिन"।

(२) ऊपर उठना। उड़ना। उ०—गगन चढ़े रज पवन प्रसंगा।—दुलसी। (३) किसी नीचे तक लटकती हुई वस्तु का सिकुड़ या लिप्तक कर ऊपर की ओर हो जाना। ऊपर की ओर सिमटना। जैसे, ब्राह्मीन चढ़ना, बाहों चढ़ना, पायजामा चढ़ना, पायवा चढ़ना, मोहरी चढ़ना। (४) एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु का सटना। मढ़ा जाना। आवरण के रूप में लगाना। ऊपर से ढँकना। जैसे, किताब पर लिखद या कागज़ चढ़ना, छाते पर कपड़ा चढ़ना, सकिने पर खोल वा गिलाफ चढ़ना, गोंद चढ़ना। (५) बढ़ना। बढ़ति करना।

मुहा०—चढ़ चढ़ कर या बढ़ चढ़ कर होना = भेड़ होना। अधिक महत्त्व का होना। चढ़ा बढ़ा या बढ़ा चढ़ा = भेड़। अधिक बढ़ा वा श्रेष्ठ। अधिक। विशेष। चढ़ बनना = मनोरथ सफल होना। सुयोग मिलना। काम का अचरत ह्रास आना। उ०—उनकी आज कल खूब चढ़ यनी है। चढ़ बनना = बात बनना। पै याहू होना। खूब चरती होना। उ०—अधर रस मुखली लूटि करावति। झागुन बार बार लै कैचवति जहाँ तहाँ बरकामति। आगु महा चढ़ि बाजी धाकी जोइ कोइ करे विरामे। करि सिंहासन पीठि अधर सिर छुत्र धरे यह गाँवै।—सूर।

(६) (नदी या पानी का) बाढ़ पर आना। बढ़ना। उ०—(क) परसात के कारण नदी खूब चढ़ी थी। (ख) आज तीन हाथ पानी चढ़ा है। (ग) आक्रमण करना। भाव करना। चढ़ाई करना। किसी शत्रु से लड़ने के लिये दल बल सहित जाना।

कि० प्र०—भाना।—जाना।—श्रीवृत्ता।

(८) बहुत से लोगों का दल बाँध कर किसी काम के लिये जाना। काम प्राप्त के साथ चलना। गाँवें जाने के साथ कहीं जाना। उ०—भायके साथ मैं सारे हँदरलोक के समेत कुँवर उदयमान को ध्याएने चढ़ूँगा।—हंशाखला। (९) मँदगा होना। भाव का बढ़ना। उ०—आज कल धी बहुत चढ़ गया है। (१०) स्पर् का तीव्र होना। मुत ऊँचा होना। भाषा का तीव्र होना। (११) नदी का प्रवाह में बल और की चढ़ना जिधर से प्रवाह आता हो। धारा वा बहाव के विपद चलना। (१२) बोल, सितार आदि की बारी या तार का बस जाना। तनना। जैसे, ढोल चढ़ना, तासा चढ़ना।

मुहा०—जम चढ़ना = नव अथ अपने स्थान से हट जाने के कारण उन जमना।

(१३) किसी देवता, महात्मा आदि को मँद दिया जाना। देवामित होना। जैसे, माता पूल चढ़ना, बलि चढ़ना, बकरा चढ़ना। (१४) सवारी पर बैठना। सवारी करना। नवार होना। जैसे, घोड़े पर चढ़ना, गाड़ी पर चढ़ना।

संयोग—कि०—जाना।—बैठना।

(१५) किसी निरिद काल-विभाग जैसे, वर्ष, मास, नक्षत्र आदि का आरंभ होना। जैसे, भ्रसाङ्ग चढ़ना, महीना चढ़ना, दशा चढ़ना। उ०—(क) चढ़ा आसाङ्ग हुँद घन गाजा। (ख) चढ़ति दसा यह उतरत जाति निदान। कहँ न कयहुँ करसक भौं ह कमान।—दुलसी।

विशेष—बार तिथि वा उससे छोटे काल-विभाग के लिये 'चढ़ना' का प्रयोग नहीं होता।

(१६) किसी के ऊपर श्रेष्ठ होना। ऊँचा होना। पायना होना। जैसे, ध्यान चढ़ना। उ०—इधर कई महीनों के बीच मैं उस पर लैकड़ी रुपये महागनी के चढ़ गए। (१७) किसी पुस्तक बही वा कागज आदि पर लिखा जाना। ढँकना। दर्ज होना। (ख) प्रयोग ऐसी एकम, वस्तु वा नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है। जैसे, (क) ५ भाज आए हँ, ये बही पर चढ़े कि नहीं? (ख) रजिस्टर पर लड़के का नाम चढ़ गया। (१८) किसी वस्तु का घुसा और बढ़ागजनक प्रभाव होना। घुसा घासर होना। धावना होना। जैसे, मद्ये चढ़ना, मरा चढ़ना, भूत चढ़ना, ज्वर चढ़ना।

मुहा०—पाप चढ़ना = पाप के प्रभाव से बुद्धि का ठिकाने न रहना।

(१९) पकने वा घाँच खाने के लिये बूँद पर रखा जाना। जैसे, दाल चढ़ना, भात चढ़ना, हॉमी चढ़ना, कढ़ाई चढ़ना। (२०) लेप होना। लगाया जाना। पोता जाना। जैसे, (अंग पर) दवा चढ़ना, धारनिरा चढ़ना, रोगन चढ़ना, रंग चढ़ना। दे० "रंग"।

मुहा०—रंग चढ़ना = रंग का किसी वस्तु पर आना। रंग का रिलाना। दे० "रंग"। उ०—सूरदास खल कारी कामरि चरत न वृजे रंग।—सूर।

(२१) किसी मामले को लेकर अशांतक तक जाना। कचहरी तक मामला ले जाना। उ०—चार आदमी जो कह दें, मान खो, कचहरी चढ़ने क्यों जाते हो?

चढ़याना—कि० उ० [कि० चढ़ना का प्रे०] चढ़ाने का काम करना।

चढ़ाई—संशु छो० [कि० चढ़ना] (१) चढ़ने की क्रिया वा भाव।

(२) ऊँचाई की ओर ले जानेवासी स्तुमि। यह स्थान जो धामों की ओर बराबर ऊँचा होता गया हो और जिस पर चलने में बड़े कष्ट उठा कर रहने के कारण अधिक परिभ्रम

पड़े। उ०—आगे दें बोल की चढ़ाई पड़ती है। (३) धावा। आक्रमण। शत्रु से लड़ने के लिये दल बल के सहित प्रस्थान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(४) किसी देवता की पूजा का आभोजन। (५) किसी देवता को पूजा या भेंट चढ़ाने की क्रिया। चढ़ाया। कड़ाही। उ०—सूर सँद से कदत अशोदा दिन आयु श्रव करहु चढ़ाई।—सूर।

चढ़ाउ—संज्ञा पु० दे० "चढ़ाव"।

चढ़ा उतरनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चढ़ना + उतरना] धार या चढ़ने उतरने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—चढ़ा उतरी लगाना = वार वार चढ़ना उतरना।

चढ़ा उपरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चढ़ना + ऊपर] एक दूसरे से आगे होने वा चढ़ने का प्रयत्न। लाग डाल। होड़।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—चढ़ा उपरी लगाना = एक दूसरे से आगे होने वा चढ़ने का प्रयत्न करना। होड़। होड़ी करना।

चढ़ा चढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चढ़ना] एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न। होड़ा होड़ी। लाग दट। खीच तान। उ०—(क) ज्यों कुछ त्यों ही नित्य चढ़े, कष्ट वरी ही नित्य त्यों चातुराई सी। जानी न ऐसी चढ़ा चढ़ी में किहिपौ कटि वीचिहँ लुटि खई सी।—पद्माकर। (ख) देखतै वनी हँ दूहँ दल की चढ़ा चढ़ी में राम टग हँ पै नेकु लाली जो चढ़ै लगी।—पद्माकर।

चढ़ाना—क्रि० सं० [हि० चढ़ना का प्रे०] (१) नीचे से ऊपर ले जाना। ऊँचाई पर पहुँचाना। उ०—यह चारपाई ऊपर चढ़ा दो।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

(२) चढ़ने का काम करना। चढ़ने में प्रवृत्त करना। उ०—वही स्वयं वरों पेड़ पर चढ़ाते हो, गिर पड़ेगा।

क्रि० प्र०—देना।

(३) किसी नीचे तक लटकती हुई वस्तु को सिकोड़ वा खिसका कर ऊपर की ओर ले जाना। ऊपर की ओर समेटना। जैसे, आलीन चढ़ना, मोहरी चढ़ाना, पोती चढ़ाना।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

(४) आक्रमण करना। धावा करना। चढ़ाई करना। दूसरे को आक्रमण में प्रवृत्त करना।

मुहा०—चढ़ा लाना = आनमया वा चढ़ाई के लिये किसी को दल शल सहित साथ खाना। उ०—यह नादिरशाह को दिल्ली पर चढ़ा लाया।

(५) महँगा करना। भाव बढ़ाना। (६) स्वर तीव्र करना। सुर ऊँचा करना। धावाज तेज़ करना। (७) बोल, सितार आदि की डोरी को कसना वा तानना। (८) किसी देवता वा महात्मा आदि को भेंट देना। देवापि स करना। नगूर रखना। जैसे, फूल चढ़ाना, मिठाई चढ़ाना। (९) सवारी पर बैठाना। सवार करना। जैसे घोड़े पर चढ़ाना, गाड़ी पर चढ़ाना। (१०) चटपट पी जाना। गले से उतार जाना। उ०—यह आज एक जोटा भांग चढ़ा गया।

विशेष—शिट्टा के व्यवहार में इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग नहीं होता। इसमें पीनेवाले पर अधिक पी जाने आदि का व्यंग्य रहता है। इससे इसका प्रयोग व्यंग्य वा विनोद के अन्वय पर ही होता है।

(११) किसी के माथे आद्य निकालना। किसी को देनदार ठहराना। उ०—उसके ऊपर क्यों इतना कर्जा चढ़ाते जाते हो ? (१२) किसी मुल्क, बही, कामजु आदि पर सिलका। टांकना। दर्ज करना। (यह प्रयोग किसी ऐसी रकम, वस्तु, वा नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है)

उ०—हून हारों को भी बही पर चढ़ा लो। (१३) पकने वा आँच खाने के लिये बूढ़े पर रखना। जैसे, दाज चढ़ाना, हाँड़ी चढ़ाना। (१४) लेप करना। लगाना। पोतना। जैसे, माथे पर चंदन चढ़ाना, दवा चढ़ाना, कपड़े पर रंग चढ़ाना। (१५) एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु संताना। मड़ना। ऊपर से लगाना। आवरण रूप से लगाना। ऊपर से टांकना। जैसे, जिक्र चढ़ाना, किताब पर कामजु चढ़ाना, छाते पर कपड़ा चढ़ाना, खोल वा गिलाफ़ चढ़ाना, गोंट चढ़ाना। (१६) सितार, सारंगी, धनुष आदि में तार वा डोरी कस कर बाँधना। जैसे, रोदा चढ़ाना।

मुहा०—धनुष चढ़ाना = धनुष की कोटि पर पञ्चिका चढ़ाना। धनुष की डोरी को तान कर छोर पर बाँधना वा अटकाना। दे० "धनुष"।

चढ़ानी—संज्ञा स्त्री० [सं० चढ़ना] ऊँचाई की ओर लेजानेवाली सतह। यह स्थान जो आगे की ओर बराबर ऊँचा होता गया हो, और जिस पर चलने में अधिक परिश्रम पड़े। उ०—आगे बल पहाड़ की बड़ी कड़ी चढ़ानी है।

चढ़ाव—संज्ञा पु० [हि० चढ़ना] (१) चढ़ने का भाव।

धौ०—चढ़ाव उतार = ऊँचा नचा स्थान। ऐंथा स्थान जहाँ बार बार चढ़ना और फिर उतरना पड़ता हो।

(२) बढ़ने का भाव। उत्तरोत्तर अधिक होने का भाव। बुद्धि। बाढ़। जैसे, पानी का चढ़ाव, नदी का चढ़ाव।

धौ०—चढ़ाव उतार = एक सिरे पर मोटा और दूसरे सिरे की ओर कमरा; पतला होने का भाव। गावहुम आकृति। उ०—इस छड़ी का चढ़ाव उतार देखो।

(३) वह गढ़ना जो दूढ़ा के घर की ओर से दुलहिन को विवाह के दिन पहनाया जाता है। (४) विवाह के दिन दुलहिन को दूढ़ा के यहाँ से आये हुए गढ़ने पहनाने की रीति। ३०—अथ मैं गवयज जहाँ कुमारी। करिहों चढ़न चढ़ाय तयारी।—रघुनाज। (५) दूरी के करघे का यह बाल जो सुननेवाले के पास रहता है। (६) वह दिशा जिधर से नदी या पानी की धारा आई हो। 'बढ़ाव' का बड़का। ३०—चढ़ाय पर नाच ले जाने में पड़ी मिहनत पड़ती है।

चढ़ाया—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना] (१) वह गढ़ना जो दूढ़े की ओर से दुलहिन को विवाह के दिन पहनाया जाता है। (२) यह सामग्री जो किसी देवता को बढ़ाई जाय। युगना। (३) टोटके की वह सामग्री जो बीमारी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये किसी बीरहो या गाँव के किनारे रख दी जाती है। (४) बढ़ावा। दम। उखाह।

मुहा०—चढ़ाया बढ़ाया देना = जी बढ़ाना। उखाह बढ़ाना। उकसाना। उचोमित करना।

चढ़ैत—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना + ऐत (प्रथ०)] चढ़नेवाला। सवार होनेवाला।

चढ़ैना—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना + ऐत (प्रथ०)] दूसरों का घोड़ा फेरनेवाला। सवार।

चढ़ीयाँ—वि० [हिं० चढ़ना] उठी हुई पैरों का जूना। खड़ी पैरों का जूना।

चणक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घना। (२) एक गोत्रकार श्रष्टि।

चणकारभञ्ज—संज्ञा पुं० [सं०] चाणक्य।

चणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग का नाम।

चणपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] रवती नाम का पौधा जिसकी पत्तियाँ घने की पत्तियों जैसी होती हैं।

चणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास जिसके खाने से गाय को दूध अधिक होता है। यह घास औषध के काम में भी जाती है और घुष्य तथा बलकारक समझी जाती है।

चतरंग—संज्ञा पुं० दे० "चतुरंग"।

चतरमंग—संज्ञा पुं० [सं०] चतुरमंग] बैलों का एक दौघ, जिसमें बनेके चिह्नके का मांस एक और लटक जाता है। जिस खेल में यह दौघ हो, उसका रखना या पालना इतिहासक और प्रथम समझा जाता है।

चतरमंगि—वि० [हिं० चतरमंग] (यह खेल) जिसे चतरमंग का रोग हो।

चतुरंग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह गाना जिनमें चार प्रकार (जैसे, साधारण गाना, सरगम, तराना, और तबले, सूरन, मितार आदि) के वाद्य बजते हैं। ३०—(क) म सा रे रे म म प प नि नि स स नि स रे स नि ध प प म म म नि ध प प प म म रे। (ख) तनन तनन म्म दिर दिर म्म

दिर तारे दानी। (ग) सोरठ चतुरंग सहस्रानु से। (घ) धा तिरकिट धुम किट धा तिर किट धुम किट धा तिर किट धुम किट धा। (२) एक प्रकार का रंगीन या चतता गाना। (३) चतुरंगिणी सेना का प्रधान अधिकारी।

चतुरंगिणी [सं०] (१) सेना के चार शंका, हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल। (२) चतुरंगिणी (सेना)। ३०—प्रात चली चतुरंग चतुर वरनी सेना न वैशय वैसहुँ जाई।—वैशय। (३) चार शंकावाला।

संज्ञा पुं० [सं०] शतरंज का खेल।

विशेष—हस्त खेल के अतिरिक्तान के विषय में लोगों के भिन्न भिन्न मत हैं। कोई इसे चीन देस से निकला हुआ प्रकलते हैं, कोई मिसल से और कोई यूनान से। पर अफिरांग लोगों का मत है, और ठीक भी है कि यह खेल भारतवर्ष से निकला है। यहाँ से यह खेल फारस में गया, फारस से अरब में और अरब से युरोपीय देशों में पहुँचा। फारसी में इसे चतरंग ही कहते हैं पर अरबवाले इसे शतरंज, शतरंज आदि कहने लगे। फारस में ऐसा प्रवाद है कि यह खेल नैरोरवाँ के समय में हिंदुस्तान से फारस में गया और इसका निकालनेवाला दाहिर का बेटा कोई सत्स नामक था। ये दोनों नाम किसी भारतीय नाम के अपभ्रंश हैं। इसके निकाले जाने का कारण फारसी पुस्तकों में यह लिखा है कि भारत का कोई युद्धिय राजा जो नैरोरवाँ का समकालीन था, किसी रोग से अशक्त हो गया। उसी के जी बढाने के लिये सत्सा नामक एक व्यक्ति ने चतुरंग का खेल निराला। यह प्रवाद भारतीय प्रवाद से मिलता जुलता है कि यह खेल मंदीरवी ने अपने पति ने बहुत युद्धात्मक खेल कर निराला था। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि भारतवर्ष में इस खेल का प्रचार नैरोरवाँ से बहुत पहले था। चतुरंग पर संस्कृत में अनेक ग्रंथ हैं, जिनमें से चतुरंगवेरली, चतुरंगक्रीडन, चतुरंगप्रकाश और चतुरंगविनोद नामक चार ग्रंथ मिलते हैं। प्रायः सात सौ वर्ष हुए कि दिग्मंगलाय्ये नामक एक दक्षिणी विद्वान् इस विद्या में बहुत गिणुष्य थे। उनके अनेक उपदेश इस क्रीडा के संबंध में हैं। इस खेल में चार रंगों का व्यवहार होता था—दाही, घोड़ा, नाका और दहे (पैदल)। छठीं शताब्दी में जब यह खेल फारस में पहुँचा और वहाँ से अरब गया तब इसमें अँट और बहोर आदि बड़ाव गए और खेलने की क्रिया में भी फेरफार हुआ। त्रियितच नामक ग्रंथ में वेदव्यासजी ने युधिष्ठिर को इस खेल का जो विचार्य बताया है वह इस प्रकार है।—चार आदमी मिल कर यह खेल खेलते थे। हमका चित्रपट (विसाल) भी ६४ धरों का होता था जिसके चारों ओर खिलनेवाले पैदल थे। पूरे और परिचम बैठनेवाले एक एक में और उत्तर दक्षिण बैठनेवाले दूसरे एक में होते थे। प्रत्येक खेलाड़ी

के पास एक राजा, एक हाथी, एक घोड़ा, एक नाव और चार बट्टे वा पैदल होते थे। एवं की और की मोटियां लाल, पश्चिम की पीली, दक्षिण की हरी और उत्तर की काली होती थीं। चलने की रीति प्रायः आज ही कल के ऐसी थी। राजा चारों ओर एक घर चल सकता था, बट्टे वा पैदल यों तो केवल एक घर लीधे जा सकते थे पर दूसरी मोटी मारने के समय एक घर आगे तिरछे भी जा सकते थे। हाथी चारों ओर (तिरछे नहीं) चल सकता था। घोड़ा तीन घर तिरछे जाता था। नौका दो घर तिरछे जा सकती थी। मोहरे आदि यन्त्र का क्रम प्रायः वैसा ही था जैसा आज कल है। द्वार जीत भी कई प्रकार की होती थी, जैसे, सिंहहासन, चतुराजी, नृपाकृष्ट, पदपद, काककाष्ठ, वृहस्रोका इत्यादि।

चतुरंगिणी-वि० स्त्री० [सं०] चार धर्मोंवाली (विशेषतः सेना) । संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जिसमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदल वे चारों भ्रम हों।

चतुरंगिणी-संज्ञा स्त्री० दे० "चतुरंगिणी"।

चतुरंगुल-संज्ञा पु० [सं०] भ्रमलतास ।

चतुरंगुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] शीतली लता ।

चतुरंत-संज्ञा पु० स्त्री० [सं०] वृथिवी ।

चतुर-वि० पु० [सं०] [स्त्री० चतुरा] (१) ठेकी चाल चलनेवाला। चक्रगामी। (२) फुरतीला। तेज। जिसे आलस्य न हो। (३) प्रवीण। होशियार। निपुण। (४) धूर्त। चालाक।

संज्ञा पु० (१) शृंगार रस में नायक का एक भेद। वह नायक जो अपनी चातुरी से प्रेमिका के संयोग का साधन करे। इसके दो भेद हैं; कियाचतुर, और वचनचतुर। (२) हाथीखाना। वह स्थान जहाँ हाथी रहते हों। (३) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा।

चतुरई १-संज्ञा स्त्री० [हिं० चतुरई] चतुरता। चतुराई।

क्रि० प्र०-करना।-दिखाना।-खिलाना।

मुहा०-चतुरई खिलाना=चालाकी करना। धोखा देना।

उ०-जाहू चले गुन प्रगट सूर प्रभु कहा चतुरई खोजत है।

-सूर। चतुरई खिलाना=चालाकी करना। उ०-पहुना-थकी आज मैं जानी कहा चतुरई खिलत है।-सूर।

चतुरक-संज्ञा पु० [सं०] चतुर।

चतुरक्रम-संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का ताल जिसमें दो गुरु, दो छुत्त और इनके बाद एक गुरु होता है। यह ३२ अक्षरों का होता है और इसका व्यवहार शृंगार-रस में होता है।

चतुरजाति-संज्ञा स्त्री० दे० "चतुर्जातिक"।

चतुरता-संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर+ता (प्रत्यय०)] चतुर का भाव। चतुराई। प्रवीणता। होशियारी।

चतुरनीक-संज्ञा पु० [सं०] चतुरानन। ब्रह्मा।

चतुरपना-संज्ञा पु० [हिं० चतुर+पन] चतुराई। चतुरता।

चतुरधीज-संज्ञा पु० दे० "चतुर्धीज"।

चतुरभुज-संज्ञा पु० दे० "चतुर्भुज"।

चतुरमास-संज्ञा पु० दे० "चतुर्मास"।

चतुरमुख-संज्ञा पु० दे० "चतुर्मुख"।

चतुरम्ह-संज्ञा पु० [सं०] भ्रमलपेत, झमजी, जंबीरी और कागड़ी तीक्ष्ण, इन चार खटाइयों का समूह। (सैद्यक)

चतुरधीति-वि० [सं०] चौरसी।

चतुरध-संज्ञा पु० [सं०] (१) ब्रह्मलतान नामक केश। (२) ज्योतिष में चौथी वा आठवीं राशि।

वि० जिसके चार कोने हों। चौकोर।

चतुरसर्मा-संज्ञा पु० दे० "चतुस्सर्मा"। उ०-संगलमय गिज गिज भवन लोगन रचे बनाय। बीधी सींची चतुरसर्मा चौकें चार पुराय।-तुलसी।

चतुरस्र-संज्ञा पु० [सं०] (१) एक प्रकार का तिताला ताल जिसमें क्रम से एक गुरु, गुरु की दो मात्राएँ, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक झुत्त और झुत्त की तीन मात्राएँ होती हैं। इसका बोल यह है-परिक्रुक्रु यां धांधिगदां। धिमि धिमि धिधियन धों मों डे। (२) नृत्य में एक प्रकार का हस्तक।

चतुरह-संज्ञा पु० [सं०] वह याग जो चार दिनों में हो।

चतुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य में धीरे धीरे मोहें कंपाने की क्रिया।

संज्ञा पु० [हिं० चतुर] [स्त्री० चतुरी] (१) चतुर। प्रवीण। (२) धूर्त। चालाक।

चतुराई-संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर+आई (प्रत्यय०)] होशियारी। निपुणता। दक्षता। (२) धूर्तता। चालाकी।

चतुरात्मा-संज्ञा पु० [सं०] (१) ईश्वर। (२) विष्णु।

चतुरानन-संज्ञा पु० [सं०] चार मुखवाला, ब्रह्मा।

चतुरापना-संज्ञा पु० [हिं० चतुर+पन (प्रत्यय०)] चतुराई। होशियारी। उ०-फिर बात चले चतुरापन की चित चाव चब्यौ सुधि धारि दई।-रघुनाथ।

चतुरासु-संज्ञा पु० दे० "चतुर्सु"।

चतुरिन्द्रिय-संज्ञा पु० [सं०] चार इंद्रियोंवाले जीव।

विशेष-प्राचीन काल के भारतवासी मन्थी, मौर, साँप आदि की श्रवणेंद्रिय नहीं मानते थे इसी से उन्हें चतुरिन्द्रिय कहते थे। (सैद्यक)

चतुरी-संज्ञा स्त्री० [देग०] पुराने ढंग की एक प्रकार की पतली नाव जो प्रायः एक ही लकड़ी में खोद कर या और किसी प्रकार बनाई जाती है।

चतुर्कथय—संज्ञा पुं० [सं०] सोठ, मिथै, पीपर और पिपरामूल, इन चार गरम पदार्थों का समूह । (वैद्यक)

चतुर्-वि० [सं०] चार ।

संज्ञा पुं० चार की संख्या ।

विशेष—हिंदी में इसका प्रयोग केवल समस्तपदों ही में होता है । जैसे, चतुर्गिणी, चतुरानन ।

चतुर्गति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कलुषा । (२) विप्लु । (३) ईश्वर ।

चतुर्गुण-वि० [सं०] (१) चौगुना । (२) चार गुणोंवाला ।

चतुर्जातक—संज्ञा पुं० [सं०] इलायची (फल), दारचीनी (छाल), तेमपत्ता (पत्ता), नागकैसर (फूल), इन चार पदार्थों का समूह । (वैद्यक)

चतुर्गोवत्-वि० [सं०] चौरानपेजी ।

चतुर्गोपति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौरानपे की संख्या ।
वि० चौरानपे ।

चतुर्धे-वि० [सं०] चार की संख्या पर का । चौथा । जैसे, चतुर्थ परिस्थेद ।

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तिताला ताल ।

चतुर्थक—संज्ञा पुं० [सं०] चौथिया खुलार । वह खुलार जो दर चौथे दिन आये ।

चतुर्थकाल—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्र के अनुसार वह काल जिस में भोजन करने का विधान है । भोजन का समय । दोपहर या उसके बराबर का समय ।

चतुर्थमासक—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्थकाल ।

चतुर्थमास-वि० [सं०] प्रजा के उत्पन्न किए हुए अन्न आदि में से कर स्वरूप एक चौथाई अंश लेनेवाला (राजा) ।

विशेष—मनु के मत से कोई विशेष आवश्यकता या अशान्ति या पढ़ने के समय, केवल प्रजा के हितकर कामों में ही लगाने के लिये, राजा को अपनी प्रजा से उसकी उपज का एक चौथाई तक अंश लेने का अधिकार है ।

चतुर्थोदर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी चीज के चार भागों में से एक । चौथाई । (२) चार अंशों में से एक अंश का अधिकारी । एक चौथाई का मालिक ।

चतुर्थोदरम—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यास ।

चतुर्थिकर्म—संज्ञा पुं० दे० "चतुर्थी (२)" ।

चतुर्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक का एक परिमाण जो ४ कर्ष के बराबर होता है । पल ।

चतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पक्ष की चौथी तिथि । चौथी ।

विशेष—(क) इस तिथि की रात, और किसी किसी के मत

से रात के पहले पहर में श्रद्धय करना शास्त्रों में निषिद्ध बताया गया है । (ख) मार्दों शुक्ल चतुर्थी को चंद्रमा के दर्शन करने का निषेध है । कहते हैं, उस दिन चंद्रमा के दर्शन करने से किसी प्रकार का मिथ्या कलंक या शपवाद आदि लगता है ।

(२) वह विशिष्ट कर्म जो विवाह के चौथे दिन होता है और जिससे पहले वर-वधु का संगोग नहीं हो सकता । गंगा प्रभृति नदियों और प्राम देवता आदि का पूजन इसी के अंतर्गत है (३) एक रसम जिसमें किसी प्रेत-कर्म करने-वाले के यहाँ मृत्यु से चौथे दिन विराद्री के लोग एकत्र होते हैं । चौथा । (४) तथिक मुद्रा ।

चतुर्दश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर । (२) कार्तिकेय की सेना । (३) एक रास का नाम ।

चतुर्दत्त—संज्ञा पुं० [सं०] परावत हाथी, जिसके चार दांत हैं ।

चतुर्दश—संज्ञा पुं० [सं०] चौदह ।

चतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की चौदहवीं तिथि । चौदस ।

चतुर्दिक—संज्ञा पुं० [सं०] चारों दिशाएँ ।

कि० वि० चारों ओर ।

चतुर्दिश—संज्ञा पुं० [सं०] चारों दिशाएँ ।

कि० वि० चारों ओर ।

चतुर्दोल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार डंडों का हिंडोला या पालना । (२) वह सवारी जिसे चार आरामी कर्णों पर उठावें । जैसे—पालकी, नाककी आदि । (३) चंडोल नाम की सवारी ।

चतुर्धाम—संज्ञा पुं० [सं०] चारों धाम । चार मुख्य तीर्थ । दे० "धाम" ।

चतुर्बोद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । महादेव । (२) विप्लु ।

चतुर्भद्र—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों का समुच्चय ।

वि० अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष-युक्त ।

चतुर्मुञ्ज-वि० [सं०] स्त्री० चतुर्मुञ्ज चार भुजाओंवाला । जिसमें चार भुजाएँ हैं ।

संज्ञा पुं० (१) विप्लु । (२) वह क्षेत्र जिसमें चार भुजाएँ और चार कोण हैं । जैसे,

धौ०—सम चतुर्मुञ्ज = चार भुजाओंवाला वह क्षेत्र जिसमें चार समकोण हैं । और जिसकी चारों भुजाएँ समान हैं । जैसे,



के पास एक राजा, एक हाथी, एक घोड़ा, एक नाव और चार बड़े वा पैदल होते थे। पूर्व की ओर की गोदरियां खाल, पश्चिम की पीली, दक्षिण की हरी और उत्तर की काली होती थीं। चलने की रीति प्रायः श्राज ही कल के ऐसी थी। राजा चारों ओर एक घर चल सकता था, बड़े वा पैदल यों तो केवल एक घर लीये जा सकते थे पर दूसरी गोदी मारने के समय एक घर छोड़ें तिरछे भी जा सकते थे। हाथी चारों ओर (तिरछे नहीं) चल सकता था। घोड़ा तीन घर तिरछे जाता था। नाका दो घर तिरछे जा सकती थी। मोहरे खादि बनने का क्रम प्रायः वैसा ही था जैसा श्राज कल है। हार जीत भी कई प्रकार की होती थी, जैसे, सिंहासन, चतुरांगी, नृपाकृष्ट, पदपद, काककाष्ट, पृथ्वीका इत्यादि।

चतुरंगिणी-वि० छं० [सं०] चार श्रंगोंवाली (विशेषतः सेना)। संज्ञा छी० [सं०] वह सेना जिसमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदल वे चारों श्रंग हों।

चतुरंगिणी-संज्ञा छं० दे० "चतुरंगिणी"।

चतुरंगुल-संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

चतुरंगुला-संज्ञा छी० [सं०] शीतली खता।

चतुरंत-संज्ञा पुं० छं० [सं०] वृथिवी।

चतुर-वि० पुं० [सं०] [छं० चतुरा] (१) टेढ़ी चाल चलने-वाला। चक्रगामी। (२) फुरतीला। तेज। जिसे भ्रालस्य न हो। (३) प्रवीण। होशियार। निपुण। (४) भूत। चाक्राक।

संज्ञा पुं० (१) श्ट गार रस में नायक का एक भेद। वह नायक जो अपनी चातुरी से प्रेमिका के संयोग का साधन करे। इसके दो भेद हैं; क्रियाचतुर, और वचनचतुर। (२) हाथीखाना। वह स्थान जहाँ हाथी रहते हों। (३) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा।

चतुराई-संज्ञा छी० [हिं० चतुराई] चतुरता। चतुराई।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।—सीखना।

मुहा०—चतुराई खेलना=खालाकी करना। धोखा देना।

उ०—जाहु चले गुन प्रगट सूर प्रभु कहा चतुराई छेकत है।

—सूर। चतुराई लौखना=चालाकी करना। उ०—यहुना-यकी श्राजु में जानी कहा चतुराई लौखत है।—सूर।

चतुरक-संज्ञा पुं० [सं०] चतुर।

चतुरकम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताल जिसमें दो गुरु, दो ध्रुत और इनके बाद एक गुरु होता है। यह ३२ अक्षरों का होता है और इसका व्यवहार श्ट गार-रस में होता है।

चतुरजाति-संज्ञा छी० दे० "चतुरजाति"।

चतुरता-संज्ञा छी० [सं० चतुर + त (प्रत्य०)] चतुर का भाव। चतुराई। प्रवीणता। होशियारी।

चतुरनोक-संज्ञा पुं० [सं०] चतुरानन। प्रज्ञा।

चतुरपना-संज्ञा पुं० [हिं० चतुर + पन] चतुराई। चतुरता।

चतुरधीज-संज्ञा पुं० दे० "चतुरधीज"।

चतुरभुज-संज्ञा पुं० दे० "चतुरभुज"।

चतुरमास-संज्ञा पुं० दे० "चतुरमास"।

चतुरमुख-संज्ञा पुं० दे० "चतुरमुख"।

चतुरप्स-संज्ञा पुं० [सं०] अमलपत्र, इमली, जंजीरी और कागड़ी नींबू, इन चार लटाइयों का समूह। (वैद्यक)

चतुरप्सीति-वि० [सं०] चौरासी।

चतुरश्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मसैतान नामक केंद्र। (२) ज्योतिष में चौथी या श्रावणी राशि।

वि० जिसके चार कोने हों। चौकोर।

चतुरसमा-संज्ञा पुं० दे० "चतुरसमा"। उ०—मंगलमय निज निज भवन लोगन रचे बनाय। यीथी सींची चतुरसमा चौके चारु पुराय।—तुलसी।

चतुरश्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का तिताला ताल जिसमें क्रम से एक गुरु, गुरु की दो मात्राएँ, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक द्रुत और द्रुत की तीन मात्राएँ होती हैं। इसका धोल यह है—**पारिकुडु** पां धांशधिगदां। धिमि धिमि धिधिगन यों यों डे। (२) नृत्य में एक प्रकार का हलक।

चतुरह-संज्ञा पुं० [सं०] वह याग जो चार दिनों में हो।

चतुरा-संज्ञा छी० [सं०] नृत्य में धीरे धीरे मोहें केंपाने की क्रिया।

संज्ञा पुं० [हिं० चतुर] [छं० चतुरी] (१) चतुर। प्रवीण। (२) भूत। चालाक।

चतुराई-संज्ञा छी० [सं० चतुर + आई (प्रत्य०)] (१) होशियारी। निपुणता। दक्षता। (२) भूतता। चालाकी।

चतुरात्मा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) विष्णु।

चतुरानन-संज्ञा पुं० [सं०] चार मुखवाला, प्रज्ञा।

चतुरापना-संज्ञा पुं० [हिं० चतुरा + पन (प्रत्य०)] चतुराई। होशियारी। उ०—फिर बात चले चतुरापन की चित्त चाव चरौ सुधि वारि दई।—रघुनाथ।

चतुराप्स-संज्ञा पुं० दे० "चतुराप्स"।

चतुरिन्द्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] चार इंद्रियोंवाले जीव।

विशेष—प्राचीन काल के भारतवासी मरुवी, औरे, साँप आदि की अषण्डिन्द्रिय चर्हों मानते थे इन्हीं से उन्हें चतुरिन्द्रिय कहते थे। (वैद्यक)

चतुरी-संज्ञा छी० [देग०] पुराने ढंग की एक प्रकार की पतली नाव जो प्रायः एक ही लकड़ी में खोद कर या और किसी प्रकार बनाई जाती है।

चतुर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] सौंद, मित्रं, पीपर और पिपरामूल, इन चार गरम पदार्थों का समूह। (वैद्यक)

चतुर-वि० [सं०] चार।

संज्ञा पुं० चार की संख्या।

विशेष—हिंदी में इसका प्रयोग केवल समन्वयों ही में होता है। जैसे, चतुरंगिणी, चतुरानन।

चतुरंगति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कछुवा। (२) विष्णु। (३) इंद्रवर।

चतुर्युग-वि० [सं०] (१) चैतुग। (२) चार गुणोंवाला।

चतुर्मातृक-संज्ञा पुं० [सं०] इलायची (फल), दारचीनी (छाल), तेजपत्ता (पत्ता), नागकेसर (फूल), इन चार पदार्थों का समूह। (वैद्यक)

चतुर्भ्यस्तु-वि० [सं०] चैतानभ्ये।

चतुर्भ्यवति-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैतानभ्ये की संख्या।
वि० चैतानभ्ये।

चतुर्थ-वि० [सं०] चार की संख्या पर का। चौथा। जैसे, चतुर्थ परिच्छेद।

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तिताला ताल।

चतुर्थक-संज्ञा पुं० [सं०] चौथिया खुलार। यह खुलार जो हर चौथे दिन आवे।

चतुर्थकाल-संज्ञा पुं० [सं०] रात्र के अठारस यह काल जिस में भोजन करने का विधान है। भोजन का समय। दोपहर वा उसके लगभग का समय।

चतुर्थमक-संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्थकाल।

चतुर्थमाज-वि० [सं०] मजा के स्वरूप किं हुप अन्न आदि में से कर स्वरूप एक चौथाई अंश लेनेवाला (राज)।

विशेष—मनु के मत से कोई विशेष थावस्तकता या धारण क्षा पढ़ने के समय, केवल मजा के हितकर कार्यों में ही लगाने के लिये, राजा की अपनी मजा से उसकी उपज का एक चौथाई तक अंश लेने का अधिकार है।

चतुर्थोऽश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी चीज के चार भागों में से एक। चौथाई। (२) चार अंशों में से एक अंश का अधिकारी। एक चौथाई का मालिक।

चतुर्थोऽशम-संज्ञा पुं० [सं०] संन्यास।

चतुर्थिकर्म-संज्ञा पुं० दे० "चतुर्थी (२)"।

चतुर्थिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक का एक परिमाण जो ४ कर्ष के बराबर होता है। एक।

चतुर्थी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पक्ष की चौथी तिथि। चौथे।

विशेष—(क) इस तिथि की रात, और किसी किसी के मत

से रात के पहले पहर में अर्घ्य करना शाश्वत में निषिद्ध था तथा गया है। (ख) भादों शुक्ल चतुर्थी को चंद्रमा के पूर्ण करने का निषेध है। कहते हैं, उस दिन चंद्रमा के दर्शन करने से किसी प्रकार का मिथ्या कर्त्तव्य या अशुभ आदि लगता है।

(२) वह विविध कर्म जो विषाह के चौथे दिन होता है और जिससे पहले वर-वध का संयोग नहीं हो सकता। गंगा प्रशंति नदियों और ग्राम देवता आदि का पूजन हस्ती के धतवर्ग है (३) एक रसम जिसमें किसी प्रेत-कर्म करने-वाले के यहाँ श्राद्ध से चौथे दिन विराद्री के लोग एकत्र होते हैं। चौथा। (४) तांत्रिक मुद्रा।

चतुर्दश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) काश्चिकेय की सेना। (३) एक राक्षस का नाम।

चतुर्दश-संज्ञा पुं० [सं०] पुरावत हाथी, जिसके चार दांत हैं।

चतुर्दश-संज्ञा पुं० [सं०] चोदह।

चतुर्दशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की चौदहवीं तिथि। चौदस।

चतुर्दिक-संज्ञा पुं० [सं०] चारों दिशाएँ।

क्रि० वि० चारों ओर।

चतुर्दिश-संज्ञा पुं० [सं०] चारों दिशाएँ।

क्रि० वि० चारों ओर।

चतुर्दल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार दंडों का हिंडोला या पालना। (२) वह सवारी जिसे चार आदमी कंधों पर उठावें। जैसे—पालकी, नालकी आदि। (३) चंडोल नाम की सवारी।

चतुर्धाम-संज्ञा पुं० [सं०] चारों धाम। चार मुख्य तीर्थ। दे० "धाम"।

चतुर्बाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) विष्णु।

चतुर्भद्र-संज्ञा पुं० [सं०] अग्ने, धर्म, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों का समुच्चय।

वि० अग्ने-धर्म-काम-मोक्ष-सुख।

चतुर्षुज-वि० [सं०] [क्रि० चतुर्षुज] चार भुजाओंवाला। जिसमें चार भुजाएँ हों।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) वह क्षेत्र जिसमें चार भुजाएँ और चार कोण हों। जैसे,

धौ०—सम चतुर्षुज = चार भुजाओंवाला वह क्षेत्र जिसमें चार समकोण हों और जिसकी चारों भुजाएँ समान हों। जैसे,

चतुर्मुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक विशिष्ट देवी । (२) गायत्री रूपधारिणी महादेविका ।

चतुर्मुजी—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मुज + ई (प्रत्यय०)] (१) एक वैष्णव सनंदाय जिसके आचार व्यवहार आदि रामानन्दियों से मिलते जुलते होते हैं ।

विशेष—लोग कहते हैं कि इस सनंदाय के प्रवर्तक किसी साधु ने एक बार चार शुभाष्ट धारण की थीं, इसी से उसके सनंदाय का नाम चतुर्मुजी पड़ा ।

(२) इस सनंदाय का अनुयायी ।

वि० चार शुभाष्टोंवाला, जैसे, चतुर्मुजी मूर्ति ।

चतुर्मास—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मास] वरसात के चार महीनों (आषाढ़, सावन, भाद्र, कुआर) का चौमासा ।

चतुर्मुख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें क्रम से एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक गुरु, गुरु की दो मात्राएँ, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक प्लुत और प्लुत की तीन मात्राएँ होती हैं । इसका बोल यह है—ताह । तकि तकि ताह ऽ थकि थरि । तकि तकि दिधि गन थों डे ।

(२) त्रय में एक प्रकार की चेष्टा । (३) विष्णु ।

वि० [स्त्री० चतुर्मुखी] जिसके चार मुख हैं । चार मुख वाला ।

क्रि० वि० चारों ओर ।

चतुर्मुखि—संज्ञा पुं० [सं०] विराट, सूत्रात्मा, अग्न्याहुत और तुरीय इन चारों अवस्थाओं में रहनेवाला, ईश्वर ।

चतुर्गुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चारों गुणों का समय । उतना समय जितने में चारों युग एक बार बीत जाय, अर्थात्, ४३२००० वर्ष का समय । चौगुणी । चौकड़ी ।

चतुर्वक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] चार मुखवाले, महा ।

चतुर्वर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ।

चतुर्वर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ।

चतुर्वर्ही—संज्ञा पुं० [सं०] चार घोड़ों की गाड़ी । चौकड़ी ।

चतुर्विंश—संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का याग ।

वि० चौबीसवर्ष ।

चतुर्विंशति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौबीस ।

चतुर्विंशती—संज्ञा स्त्री० [सं०] चारों वेदों की विद्या ।

वि० चारों वेद जाननेवाला ।

चतुर्विज—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्विज + वीज] काला जीरा, शत्रवाहन, मोषी और हालिम इन चार प्रकार के दानों या बीजों का समूह । (वैद्यक)

चतुर्वीर—संज्ञा पुं० [सं०] चार दिनों में होनेवाला एक प्रकार का सामयाग ।

चतुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर । ईश्वर । (२) चारों वेद । वि० चारों वेद जाननेवाला ।

चतुर्वेदी—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदिन] (१) चारों वेदों का जाननेवाला पुरुष । (२) माद्यों की एक जाति ।

चतुर्व्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार मनुष्यों अथवा पदार्थों का समूह । जैसे, (क) राम, भात, लक्ष्मण और शत्रुघ्न । (ख) कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न और अर्जुन । (ग) संसार, संसार का हेतु, मोक्ष और मोक्ष का उपाय । (२) विष्णु ।

विशेष—विष्णुसहस्रनाम के भाष्यकार के अनुसार विष्णु के शरीर-पुरण, छंद-पुरण, वेदपुरण और महापुरण ये चार रूप हैं ; और पुराणों के अनुसार महा ने सृष्टि के कार्यों के लिये वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अर्जुन इन चार स्वरों में अवतार लिया था, इसलिये उन्हें चतुर्व्यूह कहते हैं ।

(३) योगशास्त्र । (४) चिकित्साशास्त्र ।

चतुर्विंश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर । (२) विष्णु ।

चतुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] स्थापन करनेवाला । स्थापक ।

चतुर्भ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र जिसके अनुसार तांत्रिक लोग मंत्रों के शुभ या अशुभ होने का विचार करते हैं ।

चतुष्टवारिंदा—वि० [सं०] चौथारिंदा ।

चतुष्टवारिंदात्—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौथारिंदा की संख्या ।

चतुर्वाष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके चार सौग हों ।

(२) पुराणों के अनुसार कुशाद्वीप के एक वर्ष के पर्यंत का नाम ।

चतुष्क—वि० [सं०] जिसके चार भ्रंग वा पार्श्व हों । चौपटल ।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का घाघ । (२) एक प्रकार की छड़ी वा टंडा ।

चतुष्कर, **चतुष्करी**—संज्ञा पुं० [सं०] यह जंतु जिसके चारों पैरों के धानों के भाग हाथ के समान हों । पंखवाले जानवर ।

चतुष्कर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कातिकेय की शत्रुचरी एक मातृका का नाम ।

चतुष्कल—वि० [सं०] चार कलाओंवाला । जिसमें चार मात्राएँ हों । जैसे, छंदशास्त्र में चतुष्कल गण, संगीत में चतुष्कलताल ।

चतुष्करी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुष्करिणी का एक भेद । (२) मसहरी । (३) चौकी ।

चतुष्कोण—वि० [सं०] चार कोणवाला । चौकोर । चौकोना ।

संज्ञा पुं० वह जिसमें चार कोण हों ।

चतुष्टय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार की संख्या । (२) चार चीजों का समूह । जैसे, शत-करणचतुष्टय । (३) जन्मकुंडली में केंद्र, लग्न और लग्न से सातवें तथा दसवें स्थान ।

चतुष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार स्तोत्रवाला एक यज्ञ । (२) अथर्ववेद यज्ञ का एक भ्रंग । (३) बाणु ।

चतुर्पंचाश-वि० [सं०] चौबनवाँ ।
 चतुर्पंचाशत्-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौबन की संख्या ।
 चतुर्पञ्चो-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुसना नाम का साग । दे०
 "चतुर्पञ्ची" ।

चतुर्पथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धाराहा । चौमुहानी । (२) माहाय ।
 चतुर्पथरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका
 का नाम ।

चतुर्पद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार पैरोंवाला जीव या पशु ।
 चौपाया ।

धौ०—चतुर्पदवैदृत ।
 (२) ज्योतिष में एक प्रकार का करण । फलित ज्योतिष के
 अनुसार इस करण में जन्म लेनेवाला दुराचारी, दुष्टजैल और
 निर्धन होता है । (३) वैद्य, रोगी, श्रापथ और परिचारक
 इन चारों का समूह ।

वि० चार पदोंवाला । जिनमें अथवा जिसके चार पद हों ।

चतुर्पदवैदृत-संज्ञा पुं० [सं०] एक जाति के चौपायों का दूसरी
 जाति के चौपायों से गमन करना, उनके स्नानपान कराना
 अथवा इसी प्रकार का और कोई नियम-विरुद्ध कार्य करना ।
 विदोष—फलित-ज्योतिष में इस प्रकार की क्रिया को अशुभ
 और अशर्मण्य-रूचक माना है और ऐसा करनेवाले पशुधर्मों
 के त्याग का विधान किया गया है ।

चतुर्पदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपाया छंद, जिसका प्रत्येक चरण
 ३० मात्राओं का होता है । जैसे, भे'प्रयट् कृपाला, दीन
 दयाला, कैरायला हिलकारी । हर्षित महतारी, मुनि मन हारी,
 अद्भुत रूप निहारी ।—तुलसी ।

चतुर्पदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चौपाई छंद जिसके प्रत्येक चरण में
 १४ मात्राएँ और श्लोक में गुरु लघु होते हैं । जैसे, राम रामपति
 तुम मम देव । मम दिशि देखो यद यदा खंय । (२) चार
 पाद का गीत ।

चतुर्पणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी अमलोनी । (२) सुसना
 नामक साग जो पानी के किनारे होता है और जिसमें चार
 चार पत्तियाँ होती हैं ।

चतुर्पाटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।

चतुर्पाठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विचारधर्मों के पढ़ने का म्यान ।
 पाठशाला ।

चतुर्पाणि-वि० [सं०] जिसके चार हाथ हों । चार हाथोंवाला ।
 संज्ञा पुं० विष्णु ।

चतुर्फल-वि० [सं०] जिनमें चार फल हों । चौबहला ।

चतुर्फला-संज्ञा स्त्री० [सं०] नायकशा नामक कोपविध ।

चतुस्सन-संज्ञा स्त्री० [सं०] चार स्तनोंवाली, माय ।

चतुस्नाल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चैताला ताल जिसमें

तीन द्रुत और एक लघु (० ० ० १) होता है । इसका बोल
 यह है, (१) धा० धरि० धिमि० धिरिधा । अथवा (२) धा०
 पधि० गण० गों है ।

चतुस्त्रिंश-वि० [सं०] चौतीसवाँ ।

चतुस्त्रिंशत्-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौतीस की संख्या ।

चतुस्सन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सनक, सनकूमर, सनेदन
 और सनातन ये चार ऋषि । (२) विष्णु ।

चतुस्सम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक श्रापथ जिसमें लौंग, ज़ीरा,
 अजवाइन और हड़ धाराय सम भाग होते हैं । यह पाचक,
 भेदक और श्वासशूल-नाशक होती है । (२) एक गण द्रव्य
 जिसमें २ भाग कस्तूरी, ४ भाग चंदन, ३ भाग कुंकुम और
 ३ भाग कपूर का रहता है ।

चतुस्सूत्रो-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यासदेव कृत वेदांत के पहले चार
 सूत्र जो बहुत कठिन हैं और जिन पर भाष्यकारों का बहुत
 कुछ मत-भेद है । ये चारों सूत्र पढ़ने के लिये लोग प्रायः
 बहुत श्रमिक परिश्रम करते हैं ।

चतुःपंचाश-वि० [सं०] चौबनवाँ ।

चतुःपंचाशत्-संज्ञा पुं० [सं०] चौबन की संख्या ।

चतुःपट्ट-वि० [सं०] चौसठवाँ ।

चतुःपट्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौसठ की संख्या वा श्रंक ।

चतुःसंप्रदाय-संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों के चार प्रधान संप्रदाय—
 श्री, माध्व, रुद्र और सनक संप्रदाय ।

चतुःसप्तत्-वि० [सं०] चौदहवाँ ।

चतुःसप्तति-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौदह की संख्या वा श्रंक ।

चतूराश्र-संज्ञा पुं० [सं०] चार राशियों में होनेवाला एक प्रकार
 का यज्ञ ।

चत्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौमुहानी । चौरस्ता । (२) वह
 स्थान जहाँ भिन्न भिन्न देशों से लोग आकर रहें । (३) होम
 के लिये साफ़ किया हुआ स्थान ।

चत्वरवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका
 का नाम ।

चत्वारिंश-वि० [सं०] चौबीसवाँ ।

चत्वारिंशत्-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौबीस की संख्या ।

चत्वाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) होम-कुंड । (२) कुण्ड नाम की
 चास । (३) गर्भ । (४) वेदी । चत्वार ।

चदुरा-संज्ञा पुं० दे० "चदुर" ।

चद्विर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कण । (२) चंद्रमा । (३) हामी ।
 (४) सोप ।

चदर-संज्ञा स्त्री० [सं०] चदर । (१) चदर । (२) किमी धातु का
 बना यौगा चौकोर पदर ।

क्रि० प्र०—काटना ।—जड़ना ।

(३) नदी धादि के तेड़ बहाव में पानी का वह बहता हुआ थंरा जिसका ऊपरी भाग कुछ विशेष अयस्थायी में घिलकुल समतल हो जाता है ।

विशेष—इस प्रकार की चदर में ज़रा भी लहर नहीं उठती और यह चदर बहुत अगानक समझी जाती है । यदि गाव या मनुष्य किसी प्रकार इस चदर में पड़ जाय तो उसका निकलना बहुत कठिन हो जाता है ।

मुहा०—चदर पड़ना = नदी के बहते हुए पानी के कुछ थंरा का एकदम समतल हो जाना ।

विशेष—दे० 'चादर' ।

चनक—संज्ञा पुं० [सं० चणक] चना । उ०—जानत हौं चातो फल चार ही चनक को ।—तुलसी ।

चनकना—संज्ञा पुं० [दे०] शलमग ।

चनकना—क्रि० अ० दे० "चटकना" । उ०—विरह श्रीच नहिं सहि सकी सखी भई बेताय । चनकि गई सीती गये छिरकत छनकि गुलाब ।—शू० सत० ।

चनकामल—संज्ञा पुं० दे० "चणकामल" ।

चनखना—क्रि० अ० [?] चिढ़ना । खफा होना । चिटकना । उ०—श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुंज विहारी सों प्यारी जय तुँ योलत चनख चनख ।—हरिदास ।

चनचना—संज्ञा पुं० [अ०] एक कड़ी जो तमाखू की फसल को हानि पहुँचाता है । यह तमाखू के पत्तों की नसों में छेद कर देता है जिससे पत्ते सूख जाते हैं । इसे भनकना भी कहते हैं ।

चनन—संज्ञा पुं० [सं० चन्दन] १। संदल । उ०—श्रीठ की चनन कंबेरिया जो हाँबाट । उड़िगे सोन चिरैया पिंजर हाथ ।—रहीम ।

चनसित—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ । महान् ।

विशेष—वैदिक काल में सम्मान के लिये नाम के पहले इस शब्द को लगा कर मन्त्रियों को संबोधन करते थे ।

चना—संज्ञा पुं० [सं० चणक] चंती फसल का एक प्रधान अन्न जिसका सौधा हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है । इसकी छोटी कोमल पत्तियाँ कुछ लटाई और खार लिए होती हैं और खाने में बहुत स्वादिष्ट होती हैं । इस अन्न के दाने प्रायः गोल होते हैं और उसके ऊपर का छिलका उतार देने पर शंकर से दो दाँतें निकलती हैं जो और दाँतों की तरह उगल कर खाई जाती हैं । यह अनेक प्रकार से खाने के काम में आता है । ताजा चना लोग कच्चा भी खाते हैं और सूखा चना भाड़ में मून कर खाया जाता है । इससे कड़े तरह की मिठाईयाँ और खाने की नमकीन चीजें बनाती हैं । यह बहुत बलवर्द्धक और पुष्टिदायक समझा जाता है, पर कुछ गुरुत्व होता है । भारत में यह छोड़ों और दूसरे सौपायों को बलिष्ठ करने के लिये

दिया जाता है । वैद्यक में इसे मधुर, सूखा, और मेढ़, हृमि और रक्तपित्त-नाशक, दीपन, और रुचि तथा बलकारक माना गया है । इसे घूट, छोला और पहिला भी कहते हैं ।

पर्या०—हरिमंथ । चण । सुगंफ । कृष्णचंचुक । पालभोज्य । राजभक्ष्य । कंचुकी ।

मुहा०—चने का मारा मरना = इतना दुर्बल होना कि बहुत ज़रा सी चोट से मर जाय । नाकें चने चयाना = बहुत तंग करना । बहुत दिक् या हैरान करना । नाकें चने चयाना = बहुत हैरान होना । लोहे का चना = अर्थ कठिन काम । दुपार कार्य । विकट कार्य । लोहे का चना चयाना = अर्थ कठिन कार्य करना ।

चनासार—संज्ञा पुं० [हिं० चना + सार] चने के छंडलों और पत्तियों आदि को जला कर निकाला हुआ सार ।

चनाब—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रभागा] पंजाब की पाँच नदियों में से एक जो लद्दाख़ के पर्वतों से निकल कर सिंध में जा गिरी है । यह प्रायः ६०० मील लंबी है ।

चनार—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जो उत्तर-भारत, विशेषतः काश्मीर में बहुत अधिकता से होता है । इसके पत्ते पंजे के आकार के होते हैं और जाड़े में बिलकुल झड़ जाते हैं । इसकी लकड़ी पीलापन लिए सुफेद रंग की और बहुत मज़बूत होती है, बहुत देर में जलती है और मेज़ कुर्सियाँ आदि बनाने के काम में आती हैं ।

चनियारी—संज्ञा स्त्री० [?] एक जल-पपी जो सांभर कील के निकट और बरमा में अधिकता से पाया जाता है । इसके पर बहुत सुंदर होते हैं और मेमों की टोपियों में लगाने और गुब्बंद बनाने के काम में आते हैं । इसे 'हरगोला' भी कहते हैं ।

चनुअरी—संज्ञा स्त्री० दे० "चनोरी" ।

चनेठ—संज्ञा पुं० [हिं० चना] (१) एक प्रकार की घास जिसकी पत्ती चने की पत्ती से मिलती जुलती होती है । यह पशुधा पशुओं की शोषण में काम आता है । (२) इस घास से बनाई हुई शोषण को प्रायः पशुओं को दी जाती है ।

चनोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चंद] वह मेड़ जिसके सारे शरीर के रोपें सफेद हों । (मड़ेरिया)

चन्द्रारिण—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की जगली चिड़िया ।

चप—संज्ञा स्त्री० [दे०] घोल्टी हुई वस्तु । जैसे, चूने का चप ।

चपकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपकना] (१) एक प्रकार का क्रीड़ा । औरखा । (२) लोहे वा पीतल का एक साज जिसे किवाड़, संदूक आदि में इसलिये लगाते हैं जिसमें बंद संदूक वा किवाड़ के पल्ले थेंदके रहें और भटके आदि से खुल न सकें । हरी के कोड़े में तावा लगाया जाता है । (३) एक छोटी कील जो हल की हरिस में आगे की ओर खगी होती है ।

चपकना-कि० अ० दे० "चिपकना" ।

चपका-संज्ञा पुं० [हिं० चपकना] एक प्रकार का कीड़ा ।

चपकाना-कि० स० दे० "चिपकाना" ।

चपकुरिस-संज्ञा स्त्री० [उ०] (१) अड़चन । फेर । कठिनाई ।
कंकट । कठिन स्थिति । अँदस ।

कि० प्र०—सं पढ़ना ।

(२) कसामसी । बहुत भीड़भाड़ । अँदस ।

चपट-संज्ञा पुं० [सं०] चपत । तमाचा ।

चपटना-कि० अ० दे० "चिपकना", "चिमटना" ।

चपटा-वि० दे० "चिपटा" ।

चपटा-गाँजा-संज्ञा पुं० [हिं० चपटा + गाँजा] दबाया हुआ गाँजा ।
बालुचर गाँजा ।

चपटाना-कि० स० दे० "चिपकाना", "चिमटाना" ।

चपटी-वि० स्त्री० दे० "चिपटी" ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] (१) एक प्रकार की किलनी जो
चौपायों को लगती है । (२) तानी । पपोड़ी । (३) योनि ।
भग ।

मुहा०—चपटी खेलना = दो दिलों का परस्पर योनि मिला कर
रागना । चपटी लड़ाना = दे० "चपटी खेलना" ।

चपड़गट्ट-वि० [दे०] आफन का मारा ।

वि० गुयमगुया ।

चपड़-संज्ञा स्त्री० [अ०] यह शब्द जो कुत्तों के मुँह से
खाते वा पानी पीते समय निकलता है ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

चपड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० चपटा] (१) साफ़ की हुई लाल का
पत्तर । साफ़ की हुई काम में खाने योग्य लाल । (२) लाल
रंग का एक कीड़ा वा फलिया जो प्रायः पाखानों तथा सीढ़
लिप हुए गंदे स्थानों में होता है । (३) कोई पिटी हुई या
विपटी बलु । पत्तर ।

चपड़ा लेना-कि० अ० [हिं० चपड़ा] मल्लू को जोड़ पर रस्मी
लपेटना । (लरा०)

चपड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] (१) तल्लती । पटिया । (२)
दे० "चिपड़ी" ।

चपट-संज्ञा पुं० [सं० चपट] (१) तमाचा । धप्पट । (जो फिर वा
याल पर मारा जाय) ।

विशेष—कुल लोग चपट केवल बर्ती धप्पट को कहते हैं जो
सिर पर छनो ।

कि० प्र०—अमाना ।—अमाना ।—बैठना ।—मानना ।—
लगाना ।

मुहा०—चपट भाड़ना वा धरना = चपट मारना ।

धा०—चपटगाह = लोपड़ा । गुड़ी ।

(२) धका । हानि । मुकमान । उ०—यँडे वैठाने चार रूपये
का चपट बँट गया ।

कि० प्र०—पढ़ना ।—बैठना ।

चपटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपटा] काठ की वह चिपटी छड़ जिससे
लड़के सीधी लकड़ी को ढींचते हैं ।

चपटस्त-संज्ञा पुं० [फा०] वह घोड़ा जिसका अगला दहिना पैर
सफ़ेद हो ।

चपना-कि० अ० [सं० चपन = चटना, कुचलना] (१)

दचना । दाब में पड़ना । कुचल जाना । (२) लग्ना से गड़
जाना । लजित होना । शरमाना । भंगना । सिर नीचा
करना । झिप जाना । † (३) चौपट होना । नष्ट होना ।

चपनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना] (१) सिद्धका कटोरा । कटोरी ।

मुहा०—चपनी चर पानी में डूब मरना = छात्रा कें मारे किसी
को मुँह न दिखाना ।

(२) एक प्रकार का कर्मदल जो दरियाई नारियल का होता
है । (३) यह लकड़ी जिसमें गड़रिपे ताना बांध कर कंबल
की पटियाँ बुनते हैं । (४) हाँडी का टुकड़ा ।

मुहा०—चपनी चटना = बहुत बोझ थंरा पाकर रह जाना ।

(४) घुटने की हड्डी । चली ।

चपरउनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] लोहारों का एक औजार
जिससे बालटू पीट कर फैलाया जाता है ।

चपरगट्ट-वि० [हिं० चौपट + गट्ट] (१) सव्यापारी । चौ-
पटा । आफन का मारा । अमागा । (२) गुयमगुया ।
एक में उलका हुआ ।

चपरना-कि० स० [अ० चपचप] (१) किसी गीली वा
चिपचिपी बलु को दूसरी बलु पर फैला कर लगाना । दे०

"चुपड़ना" । उ०—ऊधो जाके। माये भागु । शयलन योग
सिवायन भापु चेरिदि चपरि सोहागु ।—मूर । (२) परस्पर
मिलाना । सानना । झोत प्रोत करना । उ०—विषय धिंता
दोख है माया । दोख चपरि जैँ तखर दाया ।—मूर ।

‡ (३) भाग जाना । खिसक जाना ।

चपरनी-संज्ञा स्त्री० [दे०] मुनरा । गाना । (वेरयाधों की
बोली) ।

चपरा-संज्ञा पुं० दे० "चपड़ा" ।

वि० कोई बात कह कर वा कोई काम करके जगसे इनकार
करनेवाला । मुकर जानेवाला । मूटा ।

अर्थ० [हिं० चपरना] इडात् । मान न मान । श्वाहमस्वाह ।
जैसे हो तैसे । उ०—देखल भाइल तोपची चपरा सैयद होय ।

चपरना-कि० स० [दे०] मूटा बनाना । मुटबाना ।

चपरास-संज्ञा स्त्री० [हिं० चपरनी] (१) पीतल । चादि धातुओं
की एक छोटी पटी जिसे पेटी वा परतवे में लगा कर

सिपाही, चौकीदार, भरदली आदि पहनते हैं और जिस पर उनके मालिक, कार्यालय आदि के नाम सुड़े रहते हैं। बस्ता। पैज। (२) मुलम्मा करने की कलम। (३) माल-संबंध की एक कसरत जो बुगली के समान होती है। बुगली में पीठ पर से बँत छाता है और इसमें छाती पर से आता है। (४) दड़ियों के धारे के दाँतों का दहिने और बाएँ झुकाव। (बड़ई धारे के ऊपु दाँतों को दहिनी धार ऊपु को बाईँ धार धोड़ा मोड़ देते हैं जिसमें धारे के पत्ते की मोटाई से चिराव के दरज की मोटाई ऊपु अधिक हो और लकड़ी धारे को पकड़ने न पावे।) (५) झुरतों के मोड़े पर की चौड़ी धज्जी।

चपरासी—संज्ञा पुं० [फ० चप = बाँध + रास्त = राहना] सिपाही। व्यादा। मिरदवा। भरदली। बड़ नैकर जो चपरास पहने हो और मालिक के साथ रहे।

चपरि*—कि० वि० [सं० चपर] फुरती से। चपलता से। तेजी से। जोर से। सहसा। एक धारणी। उ०—(क) जीवन ते जागी आगि चपरि चौगुनी आगि तुलसी विबोकि मेघ चले सुँह मोरि कं।—तुलसी। (ख) तर्वाँ दूसरप के समर्थ नाथ तुलसी को चपरि चढ़ाये चार चंद्रमा ललाम को।—तुलसी (ग) राम चहत सिव चापहि चपरि पढ़ायन।—तुलसी। (घ) चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप ही कि न होइ निवाहु।—तुलसी। (च) किषो छुड़ायन विविध उपार्इ। चपरि गधो तुलसी भरियाई।—सुभान

चपरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चपटा] खेसारी। चिपटीया। एक कदर या घास जिसमें चिपटी चिपटी फलियाँ लगती हैं।

चपरैला—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार की घास जिसे बूरी भी कहते हैं।

चपल—वि० [सं०] (१) चंचल। तेज। फुरतीला। तुलतुला। कुछ काल तक एक स्थिति में न रहनेवाला। बहुत हिलने झेलनेवाला। उ०—(क) भोगन करत चपल चित इत उन धयसर पाय।—तुलसी। (ख) जल अपजस देवति नदीँ, देवति साँवल गाल। कदा करौं खालच मरे, चपल नैन ललपात।—विहारी। (२) छपिक। बहुत काल तक न रहनेवाला। (३) उतावला। हृदयही मचानेवाला। जल्दयाज। (४) अधिप्राय साधन में उचल। ब्रवसर न पूकनेवाला। चालाक। छट। उ०—मधुप मुन काण्ड ही की कही कथीं न कही है ? यह पतकही चपल चेरी की निपट चरेरी और ही है।—तुलसी।

संज्ञा पुं० (१) पारा। पारद। (२) मज्जली। मल्प। (३) चातक। पर्पीहा। (४) एक प्रकार का पत्थर। (५) चौर नामक सुगंधि द्रव्य। (६) राई। (७) एक प्रकार का चूरा।

चपलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंचलता। तेजी। जल्दी। (२) उतावली। छटता। टिटाई। उ०—चूक चपलता मेरियेँ हूँ बड़ी बड़ाई। शिदि छोर पिरदावली निगमामा गाई।—तुलसी।

चपलच्य—संज्ञा पुं० [सं०] चपलता। चंचलता।

चपलफाँटा—संज्ञा पुं० [सं० चपल + हि० फटा = धरना] जहान्न के फरों के तलों के बीच की टाली जगह में खड़े बैठेप तखे या पद्य जिनसे मसल हवादि फँसे रहते हैं।

चपलस—संज्ञा पुं० [दिग०] एक ऊँचा पेड़। इसके भीतर की लकड़ी पीलापन लिए भूरी और बहुत ही मजबूत होती है। इससे सजावट के सामान, चाय के सड़क, नाच, तखे आदि बनते हैं। यह ज्यों ज्यों पुरानी होती है त्यों त्यों कड़ी और मजबूत होती जाती है।

चपला—वि० स्त्री० [सं०] चंचल। फुरतीली। तेज।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लपनी। (२) बिजली। चंचला।

(३) शायरी छंद का एक भेद। जिस शायरीदल के प्रथम गण के श्रंत में गुरु हो, दूसरा गण जगग हो, तीसरा गण दो गुरु का हो, चौथा गण जगग हो, पाँचवाँ गण का आदि गुरु हो, छठा गण जगग हो, सातवाँ जगग न हो, श्रंत में गुरु हो, उसे चपला कहते हैं। परंतु केदारभट्ट और गंगादास का मत है कि जिस शायरी में दूसरा और चौथा गण जगग हो वही चपला है। जैसे, 'शामा भजी सप्रेमा, सुभक्ति पैही सुमुकित् पैही। इसके तीन भेद हैं—

(क) मुख-चपला। (ख) जपन-चपला। (ग) महा-चपला। (४) पुश्तनी स्त्री। (५) पिपल्ली। पीपल। (६) जीम। जिहा। (७) बिजया। माँग। (८) मंदिरा। (९) प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो ४८ हाथ लंबी, २४ हाथ चौड़ी और २४ हाथ ऊँची होती थी और केवल मदिरीयों में चलती थी।

संज्ञा स्त्री० [हि० चपल] जहान्न में लोहे या लकड़ी की पट्टी जो पत्तार के दोनों ओर उसकी शोक के लिये लगी रहती है। (बरा०)

चपलाई*—संज्ञा स्त्री० [सं० चपल] चपलता। उ०—रही विबोकि विचारि चार छुवि परिमिति पार न पाई री। मंडुल तारन की चपलाई चितु चतुरानन करपै री।—सूर।

चपलान—संज्ञा पुं० [हि० चपल] जहान्न की गलदी के आल बगल के कुंदे जो धके सँभलने के लिये लगाए जाते हैं।

(बरा०)

चपलाना*—कि० प्र० [सं० चपल] चलना। हिलना। झेलना।

* कि० सं० चलाना। हिलाना। झेलाना।

चपली-संज्ञा स्त्री० [हि० चपटा] बूली । बही ।

चपाट-संज्ञा पुं० [हि० चपटा] वह जूता जिसकी ढँड़ी उठी न हो ।

चपौर जूता ।

चपाती-संज्ञा स्त्री० [सं० चपटा] वह पनली रोटी जो हाथ से पढ़ाई जाती है ।

मुद्रा-चपाती सा पेट = बहू पेट जो बहुत निकला हुआ न हो । क्रोशदर ।

चपातीसुमा-वि० [उ०] रोटी के ऐसे सुमवाला (घोड़ा) ।

चपाना-क्रि० स० [हि० चपना] (१) एक रस्सी के सूत को दूसरी रस्सी के सूत के साथ बुन कर जोड़ना या फँसाना । रस्सी जोड़ना । (२) दबवाना । दबाने का काम करना ।

(३) लज्जा में दवाना । कर्मगत करना । मिथाना । शरमिंदा करना ।

चपेकनारी-क्रि० स० दे० "चिपकाना" ।

चपेट-संज्ञा स्त्री० [हि० चपना = दबना] (१) झोंका । रगड़ा ।

धका । आघात । हिंसा । रगड़ के साथ वह दबाव जो किसी भारी वस्तु के वेगपूर्वक चलने से पड़े । उ०-चारिहु चरन की चपेट चपेट चापे चिपटिगो इचकि चारि आंगुल अचलुगो ।

—तुलसी । (२) आपड़ । धपड़ । समाचा । उ०-याके फल पाबहुगो आगे । यानर भासु चपेटन्हि लागे ।—तुलसी ।

(३) दबाव । संकट ।

चपेटना-क्रि० स० [सं० चपेट] (१) दबाना । दबोचना । दबाव में डालना । रगड़ा देना । (२) बलपूर्वक भगाना । आघात पहुँचाते हुए हटाना । उ०-सित जोग शमुषों की संना के चारों ओर से चपेटने लगे । (३) बटाना । फटकार बताना ।

उ०-आने दो, उसको हम ऐसा चपेटेंगे कि वह भी क्या समझेगा ।

चपेटा-संज्ञा पुं० (१) दे० "चपेट" । (२) दोगला । वर्षासंकर ।

चपेटो-संज्ञा स्त्री० [सं० भादो] खुदी छूट । भाद्रपद की शुक्ल पक्षी ।

स्कंदपुराण में संतान के हितार्थ पूजन के लिये गिनाई हुई द्वादश पक्षियों में एक ।

चपेरना-संज्ञा पुं० [हि० चपना = दबना] चापना । दवाना ।

उ०-हुमैत केर दोहागिनि मेटे दोंदे चापि चपेरे । कह कबीर सोई जन मेरा पर की सारि तियेरे ।—कबीर ।

चपेहर-संज्ञा पुं० [देग०] एक फूल का नाम ।

चपाटसिरिस-संज्ञा स्त्री० [देग०] सिरिस वा सीसम की जाति का एक पेड़ जो शिबिर में अपनी पत्तियाँ झाड़ देता है और

जमुना के पूरे हिमालय की तराई में होता है । यह मध्य भारत, दक्षिण तथा पश्चिम भारत में भी होता है । इसके बीजों में से तेल निकलता है और इसकी पत्ती तथा छाल दवा के काम में आती है । इस पेड़ में से बहुत मनुष्य और खंभी धरन निकलती है जो इमारत धादि के काम में आती है ।

चपौटी-संज्ञा स्त्री० [हि० चपना वा चिपटा] छोटी टोपी । सिर में लमी हुई टोपी ।

चपौर-संज्ञा पुं० [देग०] (१) एक जल पछी जो शरद ऋतु में दोगल तथा आसाम में दिखाई पड़ता है । इसकी चोंच और पैर पीले तथा सिर गंदे और दाँती हलकी भूरी होती है । (२) [हि० चपटा] वह जूता जिसकी एड़ी उठी न हो । चपाट जूता ।

चपड़-संज्ञा पुं० दे० "चिपड़" ।

चप्यत-संज्ञा पुं० [हि० चपना = दबना] सिद्धला कटेरा । दबी हुई वा नीची यारी का कटेरा ।

चप्यल-संज्ञा पुं० [हि० चपटा] (१) एक प्रकार का जूता जिसकी एड़ी चिपटी होती है । यह जूता जिसकी एड़ी पर दीवार न हो । (२) वह लकड़ी जिसे पर जहाज़ की पतवार या और कोई संभवा जड़ा होता है । (लश०)

चप्यल-सेहुँडू-संज्ञा पुं० [हि० चपटा + सेहुँडू] नामाफनी ।

चप्या-संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पद, प्रा० चतुष्पव] (१) चतुर्धाश । चौथाई भाग । चौथाई हिस्सा । (२) योड़ा भाग । न्यून संज्ञा । (३) चार अंगुल वा चार बालित्त अंगुल । (४) योड़ी जगह । उ०-वस राज तक अथर में दूत सी बधि दे, चप्या चप्या कहीं न रहे, जहाँ भूष भद्रका भीड़ भद्रका न हो ।—दशरथदा ।

चप्यो-संज्ञा स्त्री० [हि० चपना = दबना] धीरे धीरे हाथ पैर दबाने की क्रिया । चप्योसबा ।

क्रि० प्र०-करना ।—होना ।

चप्यू-संज्ञा पुं० [हि० चपना] कलचारी । एक प्रकार का बाँड़ जो पतवार का काम भी देता है ।

क्रि० प्र०-मारना ।

चफाला-संज्ञा पुं० [हि० चो + फाल] वह भूमि जिसके चारों ओर कीचड़ या दलदल हो ।

चमक-संज्ञा स्त्री० [देग०] रह रह कर उठनेवाला दूँद । चिबक । टीस । हल । पीड़ा ।

वि० [हि० चपना] दबू । सरपोक ।

चमकना-क्रि० अ० [देग०] रह रह कर दूँद करना । टीसना । चमकना । चिबकना । हल मारना । पीड़ा बटाना ।

चमकी-संज्ञा स्त्री० [देग०] सूत वा ऊन की वह गुथी हुई रस्नी जिससे धियाँ बेश बाँधनी हैं । परांदा । मुड़पैचना । चैवरी ।

चमकी-हड्डी-संज्ञा स्त्री० [हि० चमकी + हड्डी] वह हड्डी जो सुर-सुरी और पाली हो ।

चमला-संज्ञा पुं० [देग०] परगियों को सुँह का एक भाग । लाल रोग ।

चवयाना—क्रि० सं० [हि० चयना का प्रे०] चयने का काम करना ।
चयाना—क्रि० सं० [सं० चयण] (१) दाँतों से कुचयना ।
जुगलना ।

मुहा०—चया चया कर यातों करना = खर बना बना कर एक एक शब्द धीरे धीरे शैलना । मठार मठार कर यातों करना ।
चये को चयाना = एक ही काम को बार बार करना ।
किय हूए काम को फिर फिर करना । पिथपेपया करना । उ०—वरस पचासक हीं विपय ही में वास क्रिया तऊ ना उदास भये चये को चयाइए ।—मिया० ।

† (२) दाँत से काटना । दरदरना ।

चयारा—संज्ञा पुं० [हि० चयारा] चौयारा । घर के ऊपर का बँगला । उ०—इज्जवल अलंड खंड सातएँ महल महामंडल चयारो चंद मंडल की चोट ही ।—देव ।

चयाव—संज्ञा पुं० दे० “चयाव” ।

चयूतरा—संज्ञा पुं० [सं० चयुता हि० चोतरा] (१) चोतरा । बैठने के लिये चौरस थनाई हुई ऊँची जगह । † (२) कोयवाली । बड़ा थाना ।

चयेना—संज्ञा पुं० [हि० चयना] चया कर खाने के लिये सूखा भुना हुआ अनाज का दाना । चयंय । सूँधा ।

चयेनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चयना] (१) तली दाल मिठाई आदि जो धरातियों को जल-पान के लिये दी जाती है । (२) जलपान का सामान । (३) जलपान का मुख्य ।

चय्याँ—संज्ञा पुं० दे० “चौला” ।

चय्यूँ—वि० [हि० चयना] बहुत चयानेवाला । बहुत खाने-पाला ।

चय्यूँ—वि० दे० “चय्यूँ” ।

चय्योँ—संज्ञा पुं० [हि० चययना] दूसरे का दिया हुआ गोता । हुड्डो । हुबकी ।

क्रि० प्र०—देना ।

चमक—संज्ञा [अठ०] पानी में किसी वस्तु के डूबने का शब्द ।
विशेष—‘से’ विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वन् आता है ।

† संज्ञा स्त्री० [देग०] फाटने वा डंक मारने की क्रिया ।

चमडू—संज्ञा स्त्री० [अठ०] (१) वह शब्द जो किसी वस्तु को खाने समय सुँह के हिलने आदि से होता है । (२) कुत्ते, बिछी आदि के जीन से पानी पीने का शब्द ।

चमाना—क्रि० सं० [हि० चयना] का प्रे०] खिलाना । भोजन करना ।

चमोकी—संज्ञा पुं० [देग०] घेवरूफ । मूखें । गावदी ।

चमोकरना—क्रि० सं० [हि० चुमकी] (१) डुबाना । गोता देना । (२) भिगोना । तर करना ।

चमोरना—क्रि० [हि० चुमकी] (१) डुबोना । गोता देना । (२) धागुयित करना । तर करना । भिगोना । उ०—(क)

वेवर अति चिरत चमोरे । लै खांड वपर तर योरे ।—सूर ।
(ख) मीठे अति कोमल हैं नीके । साते सुरात चमोरे की के ।
—सूर ।

चमक—संज्ञा पुं० दे० “चमक” ।

चमक—संज्ञा स्त्री० [सं० चमकण] (१) प्रकाश । ज्योति । रोशनी । जैसे, आग या सूर्य की चमक, बिजली की चमक । (२) कति । दीप्ति । आभा । झलक । दमक । जैसे, सोने की चमक, कपड़े की चमक ।

धो०—चमक दमक । चमक चाँदनी ।

मुहा०—चमक देना वा मारना = चमकना । झलकना । चमक लाना = चमक उदय करना । झलकाना ।

(३) कमर आदि का वह दर्द जो घोट लगने वा एक दायी अधिक बल पड़ने के कारण होता है । लचक । चिक । झटका । जैसे, उसकी कमर में चमक आ गई है ।

क्रि० प्र०—घाना ।—पड़ना ।

चमक—चाँदनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चमक + चाँदनी] धनी ठनी रहने-वाली दुश्चरित्रा स्त्री ।

चमक दमक—संज्ञा स्त्री० (१) दीप्ति । आभा । झलक । तड़क भड़क । (२) टाट पाट । लक दक । उ०—दरवार की चमक दमक देख कर लोग दंग हो गए ।

चमकदार—वि० [हि० चमक + दार] जिसमें चमक हो । चमकीला । भड़कीला ।

चमकना—क्रि० थ० [हि० चमक] (१) प्रकाश वा ज्योति से युक्त दिखाई देना । प्रकाशित होना । देदीप्यमान होना । प्रभास्य होना । जगमगाना । जैसे, सूर्य का चमकना, आग का चमकना ।

संशो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

(२) कति वा आभा युक्त होना । झलकना । भड़कीला होना । दमकना । जैसे, सोने चाँदी का चमकना, कपड़े का चमकना ।

(३) कीर्त्ति लाभ करना । प्रसिद्ध होना । समृद्धि लाभ करना । धीरसम्पन्न होना । उन्नति करना । उ०—दुबो, वहाँ जाते ही वे कैसे चमक गए । (४) वृद्धि प्राप्त करना । बढ़ना । यद्धी पर होना । समृद्ध होना । तरकी पर होना । जोर पर होना । उ०—आज कल उनकी पकालत खूब चमकी है ।

मुहा०—किसी की चमकना = किसी की ओदृष्टि होना । किसी की बढ़ती और कीर्त्ति होना ।

(५) चमकना । झलकना । चंचल होना । (घोड़े आदि के लिये) उ०—चमक तमक हौंसी सिसक मसक भयट लपटानि । जेहि रति सेँ राते सुकत और सुकति अति हानि ।—विहारी । (६) फुरती से खूब जाना । फट से निकल जाना । उ०—सवा साथ के चमक गए सय गद्यो स्याम कर धाई ।

आँर न जानि जान में दीना सुम कहँ जाहु पराई ।—सूर ।

(७) एक वारंगी दूई हो उठना । हिलने ढोलने में किसी श्रंग की स्थिति में विपथ्येय वा गड्ढे होने से उस श्रंग में सहसा तनाव लिए हुए पीड़ा उत्पन्न होता । उ०—योग्य उठाने में उसकी कमर चमक गई है । (८) मटकना । डँगलियाँ धादि हिला कर भाव यत्ना (जैसे कि. खियाँ प्रायः काती हैं) । (९) मटक कर कोय प्रकट करना (१०) लड़ाई उठना । भगवाड़ा होना । उ०—श्राज कल उन दोनों के बीच खूब चमक रही है । (११) कमर में चिक आना । अधिक बल पड़ने वा चोट पहुँचने के कारण कमर में दर्द उठना । मटकना लगना । लचक आना । उ०—योग्य इतना भारी था कि उसे उठाने में कमर चमक गई ।

कि० प्र०—जाना ।

चमकनी—वि० स्त्री० [हि० चमकना] (१) चमक जानेवाली । जल्दी चिड़ वा भड़क जानेवाली । (२) हावभाव करनेवाली । चमकवाना—कि० सं० ['चमकना' का प्रे०] चमकाने का काम कराना ।

चमकाना—कि० सं० [हि० चमकना] (१) चमकौला करना । चमक लाना । दीक्षिमान् करना । कर्ता लाना । शोषना । मलकाना । (२) उज्वल करना । निर्मल करना । साफ़ करना । मक करना । (३) भड़काना । चौंकाना । (४) चिड़ाना । लिम्पाना । (५) छोड़े का चंचलता के साथ बढ़ाना । (६) भाव यत्नाने के लिये डँगाती धादि हिलाना । मटकाना । जैसे, डँगती चमकाना ।

चमकारा—संज्ञा पुं० [सं० चमत्कार] चमक । प्रकाश । चकाचाँप उत्पन्न करनेवाला प्रकाश ।

चमकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चमत्कार] चमक । प्रकाश । उ०—अप्रविष्ट दसनन की मोभा दुति दामिनि चमकारी—सुर । वि० चमकीनी ।

चमकी—संज्ञा स्त्री० [हि० चमक] कारचोर्षी में रहले सुवहले तारों के छोटे छोटे गोल वा चौकोर चिपटे टुकड़े जो ज़मीन भरने के काम में आते हैं । सितारे । तारे ।

चमकीला—वि० [हि० चमक + ईल (अल०)] (१) जिसमें चमक हो । चमकनेवाला । चमकदार । शोषदार । (२) भड़कदार । भड़कौला । शानदार ।

चमकौलट—संज्ञा पुं० [हि० चमक + औलट (अल०)] (१) चमकाने की क्रिया । (२) मटकाने की क्रिया ।

चमकौ—संज्ञा स्त्री० [हि० चमकना] (१) चमकने मटकनेवाली स्त्री । चंचल और निर्लज्ज स्त्री । (२) कुलटा स्त्री । स्पृधि-पारिणी स्त्री । (३) जलरी चिड़ जानेवाली स्त्री । मलहानेवाली स्त्री । भगवाड़ा स्त्री ।

चमगादड़—संज्ञा पुं० [सं० चमत्करा, प० चमचिचट्टी, हि०

चमकीनी] एक उड़नेवाला बड़ा जंतु जिसके चारों पैर परदार होते हैं । यह ज़मीन पर अपने पैरों से चल फिर नहीं सकता, या तो हवा में उड़ता रहता है या किसी पेड़ की डाल में चिपटा रहता है । दिन के प्रकाश में यह बाहर नहीं निकलता, किसी छँपेरे स्थान में पैर ऊपर और सिर नीचे करके शीया लटका रहता है । इनके कुछ के कुछ पुराने खंडरों धादि में लटक के पाए जाते हैं । इस जंतु के कान बड़े बड़े होते हैं और उनमें धाहट पाने की बड़ी शक्ति होती है । यद्यपि यह जंतु हवा में बहुत ऊपर तक उड़ता है पर उनमें चिड़ियों के लक्षण नहीं हैं । इसकी वनावट चूँट की सी होती है, इसे कान होते हैं और यह श्रेष्ठा नहीं देता, बच्चा देता है । अगले पर बहुत लगे होते हैं और उनके छोरों के पाम से पतली हड्डियों की तीलियाँ निकली होती हैं, जिनके बीच में किन्हीं मड़ी होती हैं । यही किन्हीं पर का काम देती है । तीलियों के सहारे में यह जंतु किन्हीं को छूने की तरह फैलता और बंद करता है । चमगादड़ प्रायः कीड़े मकोड़े और फल खाता है । चमगादड़ अनेक प्रकार के होते हैं कुछ तो छोटे छोटे होते हैं और कुछ इतने बड़े होते हैं कि परो को दोनों और फैला कर मापने से वे गज़ डेढ़ गम् उरते हैं ।

चमचम—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की बँगला मिठाई जो दूध फाड़ कर उसके छेने से बनती है । कि० वि० दे० "चमाचम" ।

चमचमाना—कि० प्र० [हि० चमक] चमकना । प्रकाशमान होना । दीक्षिमान होना । मलकना । दमकना । उ०—बादर घुमड़ि घुमड़ि आए प्रज पर भरपत काहे भूम घटा अति ही जल । चपला अति चमचमाति प्रज-जन सव उर इरात डेरत गिण्ट पिता मात प्रज गलबल ।—सुर ।

कि० सं० चमकाना । मलकाना । चमक लाना । दमक लाना ।

चमचा—संज्ञा पुं० [का० । सं० चमत्] [स्त्री० अण्य० चमनी] (१) ढाँड़ी लगी हुई एक प्रकार की छोटी कटेरी का पात्र जिससे दूध, चाय आदि उठा उठा कर पीते हैं । एक प्रकार की छोटी कलछी । चमच । रोई । कफूचा । (२) चिनटा । (३) नाव में ढाँड़ का चौड़ा अग्रभाग । हाथा । हलेश । पैंगई । बीडा । (४) कोयला निकालने का एक प्रकार का पावड़ा । हूँगा । (५) जहाज के दरवाँ में अलकतरा ढालने की चोचदार कलछी । (संज्ञ०)

चमचिचट्ट—वि० [हि० चम + चिचट्ट] चिचट्टी वा किलनी की तरह चिपटनेवाला । वि० या पीढ़ा न छोड़ने-वाला ।

चमची—संज्ञा स्त्री० [हि० चमच] (१) छोटा चमच । (२) आचमनी । (३) छोटा चिमटा । (४) घुला हुआ चूना और कच्चा निकालने और पान पर फैलाने की चिपटे और चाँड़े मुँह की सलाह ।

चमजूई—संज्ञा स्त्री० [सं० चमजू] (१) एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो पशुओं और कभी कभी मनुष्यों के शरीर पर उत्पन्न हो जाता है । एक प्रकार की बहुत छोटी किलनी । चिचड़ी । (२) चिचड़ी की तरह चिमटनेवाली वस्तु । पीछा न छोड़नेवाली वस्तु । जल्दी न जानेवाली वस्तु या व्यक्ति । उ०—जगमगी जेन्हें ज्वाल जालन सैं जारती न चमजोई जामिनि जुगत सम दै जाती क्यों ?—देव ।

चमजोई—संज्ञा स्त्री० दे० “चमजूई” ।

चमटनी—कि० सं० दे० “चिमटना” ।

चमटा—संज्ञा पुं० दे० “चिमटा” ।

चमड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चर्म] (१) प्राणियों के सारे शरीर का वह ऊपरी आवरण जिसके कारण मांस नसें आदि दिखाई नहीं देतीं । चर्म । त्वचा । जिल्द ।

विशेष—चमड़े के दो विभाग होते हैं, एक भीतरी दूसरा ऊपरी । भीतरी ऐसे संतु पाय के रूप में होता है जिसके अन्दर रक्त, मांस आदि रहते और संचरित होते हैं । इसमें छोटी छोटी गुलधियाँ होती हैं । स्वेदधारक गुलधियाँ एक नली के रूप में होती हैं जिसका ऊपरी मुँह बाहरी चमड़े के ऊपर तक गया रहता है और निचला भाग कई जेरीं में घूमती हुई गुलफटी के रूप में होता है । इसका थंरा न पिघल कर श्लेष्मा होता है और न छिन्नके के रूप में छूटता है । बाहरी चमड़ा या तो समय समय पर झिल्ली के रूप में छूटता या पिघल कर श्लेष्मा होता है । यह पाल्प में चिपटे कोरों से बनी हुई मूली कड़ी फिलोई हो जो झड़ती है और जिसके नाखून, पंजे, छुर, थाल आदि बनते हैं ।

मुहा०—चमड़ा उधेड़ना या खँचना = (१) चमड़े का शरीर से श्लेष्मा करना । (२) बहुत मार मारना ।

विशेष—दे० “खाल” ।

(२) प्राणियों के मृत शरीर पर से उतारा हुआ चर्म जिससे जूते, बैग आदि बहुत सी चीजें बनती हैं । खाल । चरसा ।

विशेष—काम में खान के पहले चमड़ा सिक्का कर नरम किया जाता है । सिक्काने की क्रिया एक प्रकार की रासायनिक क्रिया है जिसमें टनीन, फिटिकरी, कर्सीस आदि द्रव्यों के संयोग से चर्मस्थित द्रव्यों में परिवर्तन होता है । भारतवर्ष में चमड़े को सिक्काने के लिये उसे बबूल, शबड़े, कपड़े, बलूत आदि की छाल के काड़े में डुबाते हैं । पशु भेद से चमड़े के भिन्न भिन्न नाम होते हैं । जैसे, बरदी (बेल का), भैंसारी (भैंस का), गोखं (गाय का),

किरकिल, कीमुस्त (गदहे या घोड़े का दागेदार), गुरदारी (मरी लादा का), सावर, हुलानी इत्यादि ।

मुहा०—चमड़ा सिक्काना = चमड़े को बबूल की छाल, शबड़, नमक आदि के पानी में डाल कर मुलायम करना ।

(३) छाल । दिसका ।

चमड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चमड़ा] चर्म । त्वचा । खाल ।

मुहा०—दे० “खाल” ।

चमत्करण—संज्ञा पुं० [सं०] चमत्कार करने या होने की क्रिया ।

चमत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चमत्कारी, चमत्कृत] (१) आश्चर्य । विस्मय । (२) आश्चर्य का विषय । वह जिसे देख कर चित्त में विस्मययुक्त आह्लाद उत्पन्न हो । अद्भुत व्यापार । विचित्र घटना । असाधारण और अलौकिक बात । करामत । (३) अद्भुतपन । विचित्रता । विलक्षणता । उ०—इस कविता में कोई चमत्कार नहीं है । (४) उमरू । (५) अप्रामाण्य । विचित्र ।

चमत्कारक—वि० [सं०] चमत्कार उत्पन्न करनेवाला । आश्चर्यजनक । विलक्षण । अद्भुत ।

चमत्कारी—वि० [सं०] [स्त्री० चमत्कारिका] (१) जिसमें चमत्कार हो । जिसमें कुछ विलक्षणता हो । अद्भुत । (२) चमत्कार दिखानेवाला । अद्भुत दृश्य उपस्थित करनेवाला । विलक्षण बातें करनेवाला । करामती ।

चमत्कृत—वि० [सं०] आश्चर्यित । विस्मित ।

चमत्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्चर्य । विस्मय ।

चमन—संज्ञा पुं० [फा०] (१) हरी क्यारी । (२) फुलवारी । घर के भीतर का छोटा बगीचा । (३) गुलजार बस्ती । रौनकदार शहर ।

चमर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चमरी] (१) सुरागाय । (२) सुरागाय की पूँछ का बना चेंबर । चामर । (३) एक दैत्य का नाम ।

चमरख—संज्ञा स्त्री० [हि० चमर + ख] सूँझ वा चमड़े की बनी हुई चकती जो चरखे के आगे की ओर छोटी पिड़ई के आस पास की खूँटियों में लगी रहती है और जिसमें से होकर तकला वा टेकुवा घूमता है । चरखे की गुड़ियों में लगाने की चकती । उ०—(क) एक टका के चरखा बनावल देवुबहिँ टेकुवा चमरख लावल ।—कवीर । (ख) और कुवड़ी चमर हो गई सिर हो गया बराला । मुँह खूँट के चमरख हुया तन हो गया तकला ।—नजीर ।

वि० स्त्री० दुबली पतली (स्त्री०) । उ०—वह तो सूँझ कर चमरख हो गई है ।

चमरखा—संज्ञा पुं० [सं० चर्मकण] एक सुगंधित जड़ जो उबटन आदि में पड़ती है ।

चमर-जुलाहा—संज्ञा पुं० [हि० चमर + जुलाहा] हिंदू कपड़ा बुननेवाला । हिंदू जुलाहा । कोरी ।

चमर-बकुलिया—संज्ञा स्त्री० दे० “चमरबगली” ।

चमरवगली—संज्ञा स्त्री० [हि० चमर + वगली] बगले की जाति की एक काले रंग की चिड़िया ।

चमरशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं० चामर + शिखा] घोड़ों की कलगी ।
 व०—जबदि रास डीली मैं कीनी । तानि देइ अगली इन
 लीनी । धलत कनौती लई दवाइ । चमरशिखा हूँ हजन न
 पाइ ।—लक्ष्मणसिंह ।

चमरस—संज्ञा पुं० [हि० चाम] यह घाव जो चमड़े वा जूते की
 रगड़ से हो जाय ।

चमराखारी—संज्ञा पुं० [हि० चमर + खारी] खारी नमक ।

चमराघत—संज्ञा स्त्री० [हि० चमर] चमड़ा वा मोटा आदि बनाने
 की मजूरी जो निर्मादा या कारतकार की घोर से चमारों
 को मिलती है ।

चमरिक—संज्ञा पुं० [सं०] कचनार का पेड़ ।

चमरिया सेम—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की सेम । सेम का एक भेद ।

चमरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुरगाय । (२) चैवी । (३)
 मंजी ।

चमरू—संज्ञा पुं० [दे०] चमड़ा । खाल । चरसा । (ल०)

चमरोर—संज्ञा पुं० [दे०] एक यज्ञ पेड़ जिसकी छाया बहुत
 घनी होती है ।

चमरोट—संज्ञा पुं० [हि० चमार + चोट (प्रत्य०)] सेत, फसल आदि
 का वह भाग जो गाँव में चमारों को उनके काम के बदले में
 मिलता है ।

चमरोधा—संज्ञा पुं० दे० "चमोधा" ।

चमरुा—संज्ञा पुं० [दे०] [स्त्री० चमरुा] मील मांगने का
 ठीकरा । बिचापात्र ।

चमस—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चमस] (१) मोमपान करने
 का चम्मच के आकार का एक यज्ञपात्र जो पत्ता आदि की
 लकड़ी का बनाया था । (२) कलड़ा । चम्मच । (३) पाण्डु ।
 (४) लड्डू । (५) उर्द का आटा । पुष्पात् । (६) एक अर्थ
 का नाम । (७) नौ योगीश्वरों में से एक ।

चमसा—संज्ञा पुं० [सं० चमस] चमचा । चम्मच । यज्ञपात्र ।
 " संज्ञा पुं० दे० "चौमासा" ।

चमसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चम्मच के आकार का लकड़ी का
 एक यज्ञपात्र । (२) उर्द, बूँग, मधुर आदि की पीठी ।

चमसोत्रेद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रमासत्रेद के पास का एक तीर्थ ।
 चिदोय—महाभारत में लिखा है कि सरस्वती नदी यहीं बहकर
 हुई है । यहाँ पर स्नान करने का बड़ा फल लिखा है ।

चमारु—संज्ञा पुं० [सं० चामर] चमर । चामर । चँवर । व०—
 हाड़ा, रायवोर, कडुवादे, गौर और रवे अथल चक्रता को
 चमारु धरि बरि कै ।—भूपय ।
 संज्ञा पुं० दे० "चमोधा" ।

चमाचम—वि० [हि० चमकना का चमू] उज्यवळ कांति के सहित ।
 फलक के साथ । व०—देखो यरतन कैसे चमाचम चमक
 रहे हैं ।

चमार—संज्ञा पुं० [सं० चमकार] [स्त्री० चमारिन, चमारी] चमड़े का
 काम करनेवाला । एक नीच जाति जो चमड़े का काम
 बनाती है ।

चौ०—चमार चौदस = (१) चमारों का उत्सव । (२) वह धूम-
 धाम जो छोटे और दूरि लोग इत्यादि कर करते हैं । चार दिन
 का चलता ।

चमारती—संज्ञा स्त्री० दे० "चमारी" ।

चमारिन—संज्ञा स्त्री० दे० "चमारी" ।

चमारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार] (१) चमार जाति की स्त्री ।
 चमार की स्त्री । (२) चमार का काम । (३) कमल का बंद
 फूल जिसमें कमलशब्द के जोरे खराब हो जाते हैं ।

चमियारी—संज्ञा स्त्री० [दे०] पत्रकाठ ।

चमीकर—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक खान जिससे
 सोना निकलता था । (इसी से सोने को चामीकर कहते हैं) ।

चमू—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेना । फौज । (२) नियत संख्या की
 सेना जिसमें ७२६ हाथी, ७२६ रथ, २१०० सवार और
 ३६४६ पैदल होते थे ।

चमूकन—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की किलनी जो चौपायों
 के शरीर में चिमरी रहती है ।

चमूचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिपाही । (२) सेनापति ।

चमूद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग ।

चमूहर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

चमेठी—संज्ञा स्त्री० [दे०] पालकी के कहारों की एक बोली ।

चिदोय—सगरी लेकर जब कहार खेतों में चलता है और राते
 में अरहर, गेहूँ, तीसी आदि की खूँटियाँ पड़ती हैं तो उनसे
 बचने के लिये आत्मा कहार, 'चमेठी' 'चमेठी' कह कर
 पिडुले कहारों को सावधान करता है ।

चमेलिया—वि० [हि०] चमेली के रंग का । सोनजुद ।

चमेली—संज्ञा स्त्री० [सं० चमेली] यद्यपि वैयक के निधंठ में चमेली
 मृदु भाव दे पर वह संस्कृत नहीं प्रकृत होता । (१) एक भाड़ी
 या लता जो अपने सुगंधित फूलों के लिये प्रसिद्ध है । इसमें
 लंबी पतली टहनियाँ निकलती हैं—जिसके दोनों ओर पतली
 सोंकों में लगी हुई छोटी छोटी पत्तियाँ होती हैं । चमेली दो
 प्रकार की होती है । एक साधारण चमेली जिसमें सफ़ेद रंग
 के फूल लगते हैं और दूसरी जहाँ चमेली जिसमें पीले रंग
 के फूल लगते हैं । फूलों की महक बड़ी मीठी होती है ।
 चमेली के फूलों से तेल बनाया जाता है जो चमेली का तेल
 कहलाता है । (२) मक्काहों की बोली में पानी की वह धपड़

जो ऊँची लहर उठने के कारण दोनों ओर लगती है और जिसके कारण प्रायः नावें हूच जाती हैं।

चमोई—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक पेड़ जिसकी छाल से नौवाली कागज बनाया जाता है। इसे धनक्रोटा, सतपूरा, सतबरसा इत्यादि भी कहते हैं। यह पेड़ तिमिस से भूदान तक होता है।

चमोटा—संज्ञा पुं० [दि० चम + शीटा (प्रत्य०)] पाँच छः अंगुल मोटे चमड़े का डुकड़ा जिस पर नाई छुरे को उसकी पार तोड़ करने के लिये बार बार रगड़ते हैं।

चमोटी—संज्ञा स्त्री० [दि० चम + शीटा (प्रत्य०)] (१) चायुक। फोड़ा। उ०—(क) मारन चोर री में पापों। मैं जू कहीं सपनी होतु फहा है भाजन लगत भुम्मायो। जौ चाहेँ तो जान क्यों पैदे बहुत दिननु है खायो। बार बार हाँ हूँ का लागी मेरी घात न आयो। नोई नेत की करौं चमोटी धूँघट में डरवायो। विहँसत निकसि रही देा दृष्टियाँ तब जै फँड लगायो। मेरे लाल को मारि सकै का रोहिनि गहि हलारायो। सूरदास प्रभु बालक लीला विमल विमल यश गयो।—सूर। (ख) खोटी परे वचटै सिर खोटी चमोटी लगै मनो काम गुरु की। (२) पतली छुड़ी। कमची। संत। उ०—चमोटी लगै छुमाछुम विद्या आर्यै कृमाकूम।—पाठशाला के लड़के। (३) वह चमड़ा जिसे कँदियों की गैड़ियों में लोहे की रगड़ से बचने के लिये लगाते हैं। (४) चमड़े का वह डुकड़ा जिस पर नाई छुरे की धार चिसते हैं। (५) चमड़े का चार पाँच हाथ लंबा तस्मा जो खराद या सान में लपेटा रहता है और जिसे खोचने से खराद या सान का चकर घूमता है।

चमीचा—संज्ञा पुं० [दि० चाम] वह भडा जूता जिसका तला चमड़े से निधा गया हो। चमरीधा।

चम्मच—संज्ञा पुं० [फा० । सं० चमत्] एक प्रकार की हलकी फलछी जिससे दूध, चाय तथा और भी खाने पीने की चीजें चलाते और निकालते हैं।

चम्मल—संज्ञा पुं० दे० "चमल"।

चम्मोरानी—संज्ञा पुं० [?] लड़कों का एक खेल जिसे 'सात समुंदर' भी कहते हैं।

चाम्रिच—संज्ञा स्त्री० [सं०] चम्मच में रक्खा हुआ अन्न या खाने की वस्तु।

चम्रीच—वि० [सं०] चम्मच में रक्खा हुआ।

चय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। षेर। राशि। (२) धुसम। टीला। झूह। (३) गड़। किला। (४) किसी किले या शहर के चारों ओर रक्षा के लिये बनाई हुई दीवार। धुस। कोट। चहार-दीवारी। प्रकार। (५) बुनियाद जिसके ऊपर दीवार बनाई जाती है। नींव। (६) चयूतर। (७) चौकी। ऊँचा

शासन। (८) कफ, वात या पित्त की विशेष प्रकृति। (९) यज्ञ के लिये अग्नि आदि का एक विशेष संस्कार। चयन।

चयन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एकट्ठा करने का कार्य। संगम। संघय। (२) चुनने का कार्य। चुनाई। (३) यज्ञ के लिये अग्नि का संस्कार। (४) क्रम से लगने की क्रिया। चुनने की क्रिया।

* संज्ञा पुं० दे० "चैन"।

चर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा की ओर से नियुक्त किया हुआ वह मनुष्य जिसका काम प्रकाश या गुप्त रूप से आपने श्रवण पराये राज्यों की भीतरी दूरा का पता लगाना हो। गुड़ पुरुष। उ०—पठये श्रवण चतुर चर चारी।—तुलसी। (२) किसी विशेष कार्य के लिये कहीं भेजा हुआ आदमी। दूत। फासिद। (३) वह जो चले। जैसे—भनुचर, खेचर, निशिचर। (४) ज्योतिष में देशांतर जिसकी सहायता दिग्मान निकालने में ली जाती है (५) खनन पत्नी। (६) कौड़ी। कपड़िका। (७) मंगल। भौम। (८) पासे से खेला जानेवाला एक प्रकार का जूधा। (९) नदियों के किनारे या क्षेमस्थान पर की यह गीली भूमि जो नदी के साथ यह कर आई हुई मिट्टी के जमने से बनती है। (१०) दलदल। कीचड़। (११) नदियों के बीच में बालू का बना हुआ टापू। (१२) छिछला पानी। (१३) नदी का तट। (१४) (१५) नाव या नहर में एक गूदे (आड़ी लगी हुई लकड़ी का बाहर की ओर निकला हुआ भाग) से दूसरे गूदे के बीच का स्थान। (१६) (१७) (१८) (१९) (२०) (२१) (२२) (२३) (२४) (२५) (२६) (२७) (२८) (२९) (३०) (३१) (३२) (३३) (३४) (३५) (३६) (३७) (३८) (३९) (४०) (४१) (४२) (४३) (४४) (४५) (४६) (४७) (४८) (४९) (५०) (५१) (५२) (५३) (५४) (५५) (५६) (५७) (५८) (५९) (६०) (६१) (६२) (६३) (६४) (६५) (६६) (६७) (६८) (६९) (७०) (७१) (७२) (७३) (७४) (७५) (७६) (७७) (७८) (७९) (८०) (८१) (८२) (८३) (८४) (८५) (८६) (८७) (८८) (८९) (९०) (९१) (९२) (९३) (९४) (९५) (९६) (९७) (९८) (९९) (१००)

वि० [सं०] (१) आप से आप चलनेवाला। जंगम। जैसे—चर जीव, चराचर। (२) एक स्थान पर न ठहरनेवाला। अस्थिर। जैसे, चर राशि। चर नक्षत्र। (३) खानेवाला। आहार करनेवाला।

संज्ञा [अनु०] कागज कपड़े आदि के फटने का शब्द।

विशेष—छट, पट, चट आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् होता है, अतः इसका लिंगविचार व्यर्थ है।

चरई—संज्ञा स्त्री० [दि० चार] पर्यर पर डूँट आदि का बना हुआ यह गहरा गड्ढा जिसमें जानवरों को चारा या पानी दिया जाता है।

चरक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूत। फासिद। चर। (२) गुप्त-चर। भेदिया। जासूस। (३) वैद्यक के एक प्रधान आचार्य जो शेषनाग के श्रवतार माने जाते हैं, और जिनका रचो हुआ 'चरकसंहिता' वैद्यक का सर्वमान्य ग्रंथ है। (४) मुसलमान। बटोही। पथिक। (५) दे० "चटक"। (६)

चरकसंहिता नाम का ग्रंथ । (१) बौद्धों का एक संप्रदाय ।

(८) निरामंगा । मिथुन ।

संज्ञा श्री० एक प्रकार की मजूती । उ०—भारे चरक चाण्ड पर हारी । जल तनि कदरं जय जलवासी ।—जायसी ।

संज्ञा पु० [सं० चकं] कुट्ट का दाग । सफ़ेद दाग । पूल ।

चरकटा—संज्ञा पु० [हि० चरा + कटना] (१) ऊँट या हाथी के लिये चारा काट कर लायेवाला आदमी । (२) तुच्छ मनुष्य । घेरे वित्त का आदमी ।

चरकसंहिता—संज्ञा श्री० [सं०] चरक मुनि का बनाया हुआ वैद्यक सर्व्वीय एक प्रसिद्ध और सर्व्वमान्य ग्रंथ ।

चरका—संज्ञा पु० [का० चक] (१) हलका घाव । ज्वलन ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

(२) गरम धानु से दागने का विधि । (३) हाति । मुकमान । धरा ।

क्रि० प्र०—देना ।

संज्ञा पु० [दे०] मजूदा नामक अन्न का एक भेद ।

चरकाल—संज्ञा श्री० [सं०] (१) उपोषित के अनुसार समय का कुछ विशेष अंश जिसका काम दिग्मान शिर करने में पड़ता है । (२) वह समय जो कि ग्रह को एक घंटा से दूसरे घंटा पर जाने में लगता है ।

चरक—संज्ञा पु० [का० चक] (१) पट्टि के आकार का धधवा हल्की प्रकार का और कोई धूमनेवाला गोल चकर । चक ।

विशेष—इस प्रकार के चकर की सहायता से कूर्प से पानी धोका जाता है, आतिशबाजी छोड़ी जाती है और हल्की प्रकार के और बहुत से काम होते हैं ।

(२) पराद ।

श्री०—चरकटा ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।

(१) लकड़ों का एक ढाँचा जिस में चार अंगुल की दूरी पर दो छोटी चारियाँ लगी रहती हैं और जिनके बीच में रोम का कलाबू लपेटा जाता है । (२) सूत कालने का चरला ।

(३) कुम्हार का चक । (४) गोपल । देसवास । (५) वह गाड़ी जिस पर तोप चढ़ी रहती है । उ०—चरखिनु धाकरयें सज्ज बरयें परदल धरयें भजे भजे ।—सूदन । (६) नेदुप की जाति का लकड़वाला नाम का जानवर । (७) बाज की जाति की एक गिकारी चिड़िया ।

चरलकटा—संज्ञा श्री० [का० चरकटा] (१) सराद की डोरी या पटा मीचनेवाला । (२) सराद चलायेवाला ।

चरकल—संज्ञा श्री० [का० चरक + ल] एक प्रकार की पूजा जो शैत की संकीर्ति को होती है । इसका आराधन ७ या ८ दिन पहले से होता है । वह पूजा शिव को प्रसन्न करने के लिये की जाती है । इस में भक्त शोग गाने बजाने और

भाचने हुए भक्ति में उन्मत्त से हो जाते हैं, यहाँ तक कि कोई कोई अपनी जीभ छेदते हैं, कोई लोहे के काटे पर कूदते हैं और कोई अपनी पीठ को बरखे से नाथ कर चारों ओर घूमते हैं । जिस खंभे पर इस बरखे को लगा पर चारों ओर घूमने हैं उसे चारल कहते हैं । ये सब क्रियाएँ एक प्रकार के संन्यासी करते हैं । बहारी कानून के कारण अब ये क्रियाएँ बहुत सीमित होती हैं । बृहत्सम्पुत्राण नामक ग्रंथ में इस पूजा का विधान और क्रम लिखा हुआ है । ऐसी कथा है कि चैत्र की संकीर्ति को वायु नामक एक राव राजा ने भक्ति के आशेष में अपने शरीर का रक्त चढ़ा कर शिव को प्रसन्न किया था ।

चरखा—संज्ञा पु० [का० चर] (१) पहिए के आकार का धधवा

हल्की प्रकार का कोई और धूमनेवाला गोल चकर । चरख ।

(२) लकड़ों का बना हुआ एक प्रकार का यंत्र जिसकी सहायता से ऊन, कपास या रोम आदि को कात कर सूत बनाते हैं । इसमें एक और बड़ा गोल चकर होता है जिसे चरखी कहते हैं और जिसमें एक और एक दम्य लगा रहता है । दूसरी ओर लोहे का एक बड़ा मुखड़ा होता है जिसे तकिया या तकला कहते हैं । जब चरखी घुमाई जाती है सब एक पलनी रहती की सहायता से जिसे मांझा कहते हैं, तकिया घुमने लगता है । उसी तकूप के घुमने से उबके फिरे पर लगे हुए ऊन या कपास आदि का कात कर सूत बनाता जाता है । रहट ।

क्रि० प्र०—कातना ।—चराना ।

(३) कूर्प से पानी निकालने का रहट । (४) कँल का रस

निकालने के लिये बनी हुई छोड़े की कल । (५) एक

प्रकार का खेल जिससे पौटिपु तार खींचे हैं । (६) सूत

कपेटने की गाड़ी । चरखी । रील । (७) गाड़ी । गिरनी ।

(८) बड़ा या बड़ेका पहिया । (९) रोम लोखने का 'बड़ा' नाम का धौनूर । (१०) गाड़ी का वह ढाँचा जिसमें जोत कर नया घोड़ा निकालते हैं । पड़कड़िया । (११) वह धी या पुल जिसके सब अंग बहुत लुढ़कने के कारण गिरिख हो गए हैं । (१२) भगाड़े बने हुए का फँकट का काम ।

क्रि० प्र०—निकाळना ।

(१३) कुलीन का एक पंच जो उस समय किया जाता है जब जोड़ू (विपरी) गीचे होता है । इसमें जोड़ू की दाहिनी ओर पैठ कर और अपनी बाईं हाँग जोड़ू की दाहिनी हाँग में भीतर से डाल कर निकालने हैं और अपनी दाहिनी हाँग जोड़ू की दाढ़न में डाल कर दोनों पैर मिला कर बँध करते हैं जिसमें जोड़ू खिल हो जाता है ।

चरखी—संज्ञा श्री० [हि० चरख का की धर] (१) पहिए की तरह धूमनेवाली कोई वस्तु । (२) पोटा चरमा ।

(३) कपास थोठने की चरखी। बेलनी। थोठनी। (४) सूत लपेटने की फिरकी। (५) धनुष के आकार का लकड़ी का एक यंत्र जिसमें एक खूँटी लगी रहती है और जिस की सहायता से मोटी रस्सियाँ बनाई जाती हैं। (६) मुँह से पानी खींचने आदि की गाराड़ी। फिरनी। (७) पतली कमानियों से बना हुआ जोलाहों का एक शीशार जिस की सहायता से कई सूत एक में लपेटे जाते हैं। (८) कुम्हार का चाक। (९) एक प्रकार की आतिशयाजी जो छूटने के समय खूब धूमती है।

चरखे का गलखोड़ा—संज्ञा पुं० [दे०] कुरली का एक पेंच।

विशेष—जय विपक्षी उलटे उखाड़े से फेंकना चाहता है तब उसकी पीठ पर से चरखे के समान कपड़ ले कर थपनी टंगा उसकी गर्दन पर चढ़ाते हैं और उसका एक हाथ और एक पाँव गलखोड़े से बांध कर उसे गिरा देते हैं। इसी को चरखे का गलखोड़ा कहते हैं।

चरगा—संज्ञा पुं० [फा० चरग] याज्ञ की जाति की एक शिकारी चिड़िया। चरख। उ०—चरग चंगुलत चात-कहि नेम प्रेम की पीर। तुलसी परबस छाड़ पर परिहैं पडुमी नीर।—तुलसी। (२) लकड़बग्घा नामक जंतु जो कुत्ते का शिकार करता है।

चरगुह, चरगोह—संज्ञा पुं० दे० “चर राशि”।

चरचना—क्रि० सं० [सं० चर्चन] (१) देह में चंदन आदि लगाना। उ०—चरचित चंदन श्रम हारन अति ताप पीर के।—भ्यास। (२) लेटना। पोतना। (३) भाँपना। अनुमान करना। समक लेना। उ०—चरचहिँ चेष्टा पर-खहिँ नारी। निपट नाहिँ श्रौपध तहँ वारी।

क्रि० सं० [सं० चर्चन] पूजन करना। उ०—तयहिँ संद जू कही श्याम सेाँ हमरे सुरपति पूजा। गोधन गिरि पै वाहि चरचिहँ यह है मुखपूजा।—सूदन।

चरचरो—संज्ञा पुं० [भृ०] खाकी रंग की एक चिड़िया जिसकी छाती सफेद होती है और जिसके शरीर के ऊपरी भाग पर चारखानेदार धारियाँ होती हैं। यह प्रायः ६ से १० श्रंगुल तक लंबा होता और समस्त भारत में पाया जाता है। इसके श्रंदा देने का कोई निश्चित समय नहीं है। इसके मुनिया (बाल, हार, तेलिया आदि) और सिंघाड़ा आदि अनेक भेद हैं।

[वि० दे० “चिड़चिड़ा”।

चरचराना—क्रि० अ० [भृ० चरचर]—(१) चर चर शब्द के साथ छूटना या जलना। उ०—गगड़ गड़ गड़ान्यो खंभ फाल्यो चरचराय की निकसी नर नाहर को रूप अति भयानो है। (२) पत्र आदि का सुरकी से तनना और रुद करना। चराना।

क्रि० सं० चर चर शब्द के साथ (लकड़ी आदि) तोड़ना। चरचराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरचराना + हट (प्रत्य०)] (१) चर-चराना का भाव। (२) चर चर शब्द के साथ किसी चीज के छूटने या फटने का शब्द।

चरचा—संज्ञा स्त्री० दे० “चुचा”। उ०—(क) हरिजन हरिचरचा जो करे। दासी सुनो सो हिरदै धरे।—सूर। (ख) निज लोक बिसरे लोकपति घर की न चरचा बालहोँ।—तुलसी। (ग) पुरवासिपों के प्यारे राम के अभिषेक की उस चरचा ने प्रत्येक पुरवासी को हर्षित किया।—लक्ष्मणसिंह।

चरचारी—संज्ञा पुं० [हिं० चरचा] (१) चरचा खलनेवाला। (२) निंदक। शिकायत करनेवाला। उ०—हैं हारी समकुह के चरचारीहि उरै न। जगैँ लगीहैं नैन ने निज चित करत अचैन।—शू० सत०।

चरचित—वि० दे० “चर्चित”।

चरज—संज्ञा पुं० [फा० चरग] चरख नाम का पथी। उ०—हारिल चरज आय बंद परे। बनकुकरी जलकुकरी धरे।—जायसी।

चरजना—क्रि० अ० [सं० चर्चन] (१) बहकाना। मुलावा देना। बहाली देना। उ०—चंचला चमकैँ चहुँ धोरन ते वाय भरी चरजि गहँ सी फेर चरजन लागी री।—पद्माकर। (२) अनुमान करना। श्रंदाज से लगाना। उ०—शरज गरज सुनि चरजि चित महँ हराज मरज बरकाहँ।—चुराज

चरट—संज्ञा पुं० [सं०] खंजन पथी।

चरख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पग। पैर। पाँव। कदम।

शे०—चरखपादुका। चरखपीठ। चरखसेवा।

मुहा०—चरख छूना = दंडवत या प्रणाम आदि करना। बड़े का अभिवादन करना। चरख देना = पैर रखना। उ०—जैहि गिरि चरख देह हनुमंता।—तुलसी। चरख पड़ना = आगमन होना। फ़रम जाना। जैसे, जहँ जहँ चरख पड़ै सतन के तहँ तहँ बंदाधार। चरख लेना = पैर पड़ना। पैर छूकर प्रणाम करना। चरख सेवा = (बड़ों की) सेवा शुभ्रपा।

(२) बड़ों का साक्षिष्य। बड़ों की समीपता। बड़ों का संग उ०—गवाल सखा कर जोरि कहत हैं हमहिँ श्याम तुम जनि विसरागुह। जहाँ जहाँ तुम देह चरख ही तहाँ तहाँ जनि चरख छुड़ागुह।—सूर।

क्रि० प्र०—में भाना।—में रखना।—में रहना।—छेड़ना।—छूटना।

(३) किसी छंद, श्लोक या पद्य आदि का एक पद। दख। शै०—चरखगुप्त।

(४) किसी पदार्थ का चतुर्थांश। किसी चीज चौथाई का भाग। जैसे, नपथ का चरख, युग का चरख आदि। (५)

मूल । अङ्ग । (६) गेय । (७) क्रम । (८) आचार ।
(९) विषय करने का स्थान । घूमने की जगह । (१०)
सूर्य आदि की किरण । (११) अनुष्ठान । (१२) गमन ।
जाना । (१३) भवण । चलने का काम ।

चर्याकरणाद्योग—संज्ञा पुं० [सं०] जैन साहित्य में वह ग्रंथ
आदि जिसमें किसी के चरित्र पर बहुत ही मूर्ख रूप से
विचार या व्याख्या की गई हो ।

चर्यागुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्रकाम्य जिसके
कई भेद होते हैं । इसमें कोटक बना कर अक्षर भरे आते
हैं जिनके पढ़ने के क्रम भिन्न भिन्न होते हैं । ३०—

इ	जी	सं	त	कि	रा	र	की
इ	त	गी	लै	ये	म	स	न
खु	गी	सं	त	म	का	य	दी

(दो—) इंदुजीत संगीत लै क्रिये राम रस लीन ।
इंद्र गीत संगीत लै येन काम यस दीन ।)

रा	का	रा	ज
मा	स	मा	स
रा	मी	त	
सा	ल	सी	शु

(दो—) तकाराज अकारा मासमास समासमा ।

राधा सीत लमी धारा साल सखीसु सुगील मा ।)

चर्याचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीरों के तलपुत्र की रेखा । पीर
की लकीरें । (२) कीचड़ । पूल या बालू आदि पर पड़ा
हुआ पैर का निशान । (३) पत्थर आदि पर बनाया हुआ
परख के आकार का चिह्न जिसका पूजन होता है ।

चर्याखलत—संज्ञा पुं० [सं०] पैर का तलुवा ।

चर्यादास—संज्ञा पुं० दिल्ली के रहनेवाले एक महारामा साधु का
नाम जो ज्ञान के दूसरे बलिये थे । इनका जन्म १०१० सं०
वि० में बीर शरीरांत सं० १८३३ में हुआ था । इनके
बनाए हुए कई एक ग्रंथ हैं जिनमें से 'स्वतोद्य' बहुत प्रसिद्ध
है । इनके धरना एक प्रयत्न संन्यास बखशा था । इस
संन्यास के साधु धर्म तप आदि करते हैं और चर्यादासी माधु
ब्रह्मचारी हैं ।

चर्यादासी—वि० [चर्यादास] महारामा चर्यादास के संन्यास का ।
चर्यादास का अनुयायी ।
संज्ञा स्त्री० [सं० चर्या + दासी] (१) स्त्री । (२)
जूता । यतही ।

चर्यापर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] गुल्फ । पर्वी ।

चर्यापाण्डुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खड़ाऊँ । पावड़ी । (२)
पत्थर आदि पर बना हुआ परख के आकार का चिह्न
जिसका प्रायः पूजन होता है । चर्याचिह्न ।

चर्यापीठ—संज्ञा पुं० [सं०] चर्यापाण्डुका । पाँवड़ी । खड़ाऊँ ।
३०—(क) तुलसी प्रभु निज चरनपीठ मिस भरत प्रान
रख्यारो ।—तुलसी । (ख) सिंहासन सुभग शम चरनपीठ परत
बालत सब राज काज धामसु अनुसत ।—तुलसी ।

चर्यासेवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्या + सेवा] पैर धरना
बड़े की सेवा ।

चर्या—संज्ञा पुं० [हिं० चर्या] काड़ा ।
विशेष—दे० "चर्या" ।

क्रि० प्र०—कायना ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रिया की मानि का एक रोग । इस रोग
में मनुष्य के शरीर खी का रज बहुत अकृती स्थिति हो
जाता है ।

चर्याश—संज्ञा पुं० [सं०] अक्षपाद । गौतम ।

चर्याधि—संज्ञा पुं० [सं०] बुनार नामक स्थान जो काशी और
मिर्जापुर के बीच में है । यहाँ एक छोटा सा पहाड़ है
जिसकी एक शिखर पर बुद्धदेव का चर्या-चिह्न है । प्रायः कछ
यह शिखा एक मस्तक में रखी हुई है और सुसज्जमान
अस पर के चिह्न को "बुद्धमेखला" बतलाते हैं ।

चर्यानुग—वि० [सं०] (१) अनुयायी । किसी बड़े के साथ या
इसकी शिष्या पर चलनेवाला । (२) शरणागत ।

चर्यामृत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह पानी जिसमें किसी
महारामा या बड़े के चर्या घोड़े गारे हों । पाशेयक ।

मुहा०—चर्यामृत लेना = किसी महारामा या बड़े के चर्या को
कर लेना ।

(२) एक में मिला हुआ कूच, दही, घी, शकर और शहद
जिसमें किसी देवमूर्ति के स्थान बरापा गया हो ।

विशेष—हिंदू लोग बड़े पत्यु माय से चर्यामृत पीते हैं ।
चर्यामृत बहुत ही योगी मार्या में पीने का विधान
है ।

क्रि० प्र०—लेना ।

मुहा०—चर्यामृत लेना = बहुत ही योगी मार्या में योगी तप
पढ़ाये लेना ।

चर्यायुध—संज्ञा पुं० [सं०] सुरग । अस्त्रशिपा ।

चरणार्थ—वि० [सं०] (१) चरण या चतुर्थांश का अर्थ। किसी चीज का आठवाँ भाग। (२) किसी रत्नक या छंद के पद का आधा भाग।

चरणि—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य।

चरणोदक—संज्ञा पुं० [सं०] चरणामृत।

चरत—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बड़ा पक्षी जिसका शिकार किया जाता है।

विशेष—दे० “चीनी मोर”।

चरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चलने का भाव। (२) शृष्ठी।

चरतिरिया—संज्ञा स्त्री० [दे०] मिरजापुर के जिले में पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास जो मामूली होती है।

चरती—संज्ञा पुं० [हिं० चरना = खाना] वह जो मत न हो। मत के दिन उपवास न करनेवाला।

चौ—भरती चरती।

चरतव—संज्ञा पुं० [सं०] चलने का भाव।

चरथ—वि० [सं०] चलनेवाला। जंगम।

चरदास—संज्ञा स्त्री० [?] मथुरा जिले में होनेवाली एक प्रकार की कपास जो कुछ घटिया होती है।

चरन—संज्ञा पुं० दे० “चरण”।

विशेष—“चरन” के दैविक आदि के लिये देखो “चरण” के दैविक।

चर-नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] रवाली, पुनर्वसु, अश्वि और धनिष्ठा आदि कई नक्षत्र जिनकी संख्या भिन्न भिन्न आचार्यों के मत से अलग अलग है।

चरनचर—संज्ञा पुं० [सं० चरणचर] पैदल सिपाही।

चरनदासी—संज्ञा स्त्री० [सं० चरण + दासी] जूता। पनही। (साधु)

चरनघरदार—संज्ञा पुं० [सं० चरण + फा० बरदार] बड़े आदमियों का जूता उठाने और रखनेवाला नौकर।

चरना—क्रि० सं० [सं० चर = चलना। मि० फा० चरदन] पशुओं का खेतों या मैदानों में घूम घूम कर घास चारा आदि खाना।

मुहा०—अर्ध का चरने जाना = दे० “अर्ध” के मुहा०।

क्रि० अ० [सं० चर = चलना] घूमना फिरना। विचरना। उ०—जोहिं तें विपरीत किया करिये। दुख से सुख मानि सुखी चरिये।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० चरण = पैर] काड़ा। उ०—हस पात के सुनते ही रामा ने चरना काड़ा कर उस देव को ललकारा।—लवण्।

संज्ञा पुं० [दे०] सुनारों का एक औज़ार जिससे नकाराई करने में सीधी लकीर या लंबा चिह्न बनाया जाता है।

चरनायुध—संज्ञा पुं० दे० “दे० चरणायुध”। उ०—परे न पहर

चरनायुध करं न सोर पररं न प्राची शोर कर-दिनकर को।—रघुनाथ।

चरनि—संज्ञा स्त्री० [सं० चर = गमन] चाल। गति। उ०—लसत कर प्रतिविंय मनि आंगन सुदृष्यनि चरनि।—तुलसी।

चरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना] (१) पशुओं के चरने का स्थान। चरी। चरागाह। (२) वह नौद जिसमें पशुओं को खाने के लिये चारा दिया जाता है। (३) चितरे के साकार का बना हुआ वह लंबा स्थान जिस पर पशुओं को चारा दिया जाता है। (४) पशुओं का आहार, घास चारा आदि। उ०—कमल यदन कुम्हिलात सनन के गोवन छाड़ी नृत की चरनी।—सूर।

विशेष—कहीं कहीं चरही शब्द भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

चरत्रो—संज्ञा स्त्री० दे० “चवत्रो”।

चरपट—संज्ञा पुं० [सं० चपट] (१) चपत। तमाचा। धपड़। (२) किसी की वस्तु बड़ा कर भाग जानेवाला। चाहे। उचकना। उ०—(क) और लौं जीवै ताँ लौं हरि भजि रे मन और प्रात सय वादि। घास चारि के हला भला नूँ कहा लहगो खादि। धनमद जोवनमद राजमद भूख्यो नगर निवादि। कहि हरिदास लोभ चरपट योँ काहे की लगी फिरादि।—स्वामी हरिदास। (ख) चरपट वोर गौदिछेरा मिले रहहि तेदि नाँव। जो तेहि हाट सजग रहइ गौडि ताकरि गढ़ बाँच।—नायसी। (३) एक प्रकार का छंद। चपट। उ०—तोमर उनहस चरपट साता। हरिक थ्राड भुजंगप्रवाता।—विश्राम।

चरपनी—संज्ञा स्त्री० [दे०] वेश्या का माना। मुजरा। (वेश्याओं और सपदाइयों की परिभाषा)

चरण—वि० दे० “चरणा”।

चरण—वि० [अनु०] भाखदार। तीता। स्वाद में तीक्ष्ण। (नमक, मिर्च, खट्टाई आदि के संयोग से यह स्वाद उत्पन्न होता है। उ०—(क) खंडहि कीन्ह आँव चरण। लौग हुलाची सो रँडयरा।—जायसी। (ख) मीठे चरणे उज्ज्वल करार। हाँस होइ तो क्याँकेँ और।—सूर।

वि० [सं० चरण] चुस्त। तेज। फुरतीला।

चरणराना—क्रि० अ० [हिं० चरण] घाव का चराना। घाव में सुखी के कारण तनाव लिए हुए पीड़ा होना।

चरणरहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरण] (१) स्वाद की तीक्ष्णता। झल। (२) घाव आदि की जलन। (३) हँपे। दाह। ईर्ष्या।

चरणराना—वि० दे० “चरण”।

चरणराना—क्रि० अ० [अनु०] तड़कड़ाना। तड़पना। उ०—चरणरानिं मग चलहि न घोरै। वनमृग मनुहु आनि स्य जोरै।—तुलसी।

चरघ-वि० [फा० चवं] सेज । तीला । उ०—तमर सरघ से चरघ गच्छ सत परघ सरित घरि ।—गोपाल ।

घी०—चरघ जघानी = (१) बहुत अधिक और जल्दी जल्दी बोलना । (२) चिकनी चुपड़ी बनें करना । कुशाग्रद कलना ।

चरघवर्ना—संज्ञा पुं० [सं० चरघ] भूना हुआ शय । धर्यना । दाना ।

चरघर्षक, चरघर्षाक-वि० [फा० चवं = सेज] (१) घुसुर । चालाक । होशियार । (२) शोख । निभंय । निडर । चंचल । उ०—राखे हे सुग सदन ये मुले ही चरघर्षक । पंती भौंहन की दरी छय नैननि कौं बांक ।—रसनिधि ।

मुहा०—चरघर्षक दीदा = (१) जिसकी दृष्टि चंचल है । चंचल नेत्रवाला । (२) शीठ । निडर । शोख ।

चरघा—संज्ञा पुं० [फा० चरघ] प्रतिमूर्ति । नकल । छाका ।

मुहा०—चरघा उतारना = (१) छाका खींचना । नकशा उतारना । चित्र खींचना । (२) किसी की नकल करना ।

चरघाना—कि० सं० [सं० चर्म] बोल पर चमड़ा मड़ाना ।

चरघी—संज्ञा स्त्री० [फा०] मकूद या कुछ पीले रंग का एक चिकना गाढ़ा पदार्थ जो प्रायियों के शरीर में और बहुत से पौधों और पशुओं में भी पाया जाता है । वैद्यक के अनुसार यह शरीर की सात धातुओं में से एक है और सत्व से घनता है । अस्थि हनी का परिवर्तित और परिवर्धित रूप है । पाश्चिमात्य रामायणिकों के अनुसार सत्व प्रकार की चरघियाँ गंध और स्वाद-रहित होती हैं और पानी में घुल नहीं सकतीं । बहुत से पशुओं और वनस्पतियों की चरघियाँ प्रायः दो वा अधिक प्रकार की चरघियों के मेल से बनी होती हैं । इसका व्यवहार चौरघ के रूप में खाने, माहम खादि बनाने, साजुन और मोमवस्तियों तैयार करने, इन्जिरेट या क्लेशों में तेल की जगह देने और इसी प्रकार के दूधरे कामों में होता है । शरीर से बाहर निकाली हुई चरघी गरमी में पिघल और सखी में जम जाती है ।—मेघ । घषा । पीह ।

मुहा०—चरघी चढ़ना = भेडा होना । चरघी धाना = (१) (किसी मनुष्य या पशु खादि का) बहुत भेडा देना जाना । शरीर में भेद बढ़ जाना । (२) ऐसी शवस्या में केवल शरीर की मोटाई बढ़नी है, उसमें बल नहीं पड़ता ।) (२) मदीघ होना । गर्भ के फारण किसी को कुछ न समझना । बर्षियों में चरघी धाना = दे० “खोल” के मुहावरे ।

चरघर—संज्ञा पुं० [म०] चर राति । चर गूद ।

चरघमघन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में चर राति ।

चरघम—वि० [सं०] अतिम । हद दारने का । सयने बढ़ा हुआ । पोटी का । परकाण्ड का ।

संज्ञा पुं० (१) प्रथम । (२) अंत ।

संज्ञा पुं० दे० “चर्म” ।

चरघकाल—संज्ञा पुं० [सं०] अंतकाल । मृत्यु का समय ।

चरघमदृष्टि—संज्ञा स्त्री० दे० चर्मदृष्टि ।

चरघमर—संज्ञा पुं० [अ०] किसी से तनी हुई या चीमड़ बस्तु (जैसे, जूता, चारपाई) के दबने या मुड़ने का शब्द । उ०—उनका जूता दूध चरार बोलता है ।

चरघमरा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की घास जिसे तकड़ी भी कहते हैं ।

विशेष—दे० “तकड़ी” ।

वि० [हिं० चरघमरा अ०] चरघ शब्द करनेवाला । जिससे चरघ शब्द निकले । जैसे, चरघमरा जूता ।

चरघमराना—कि० अ० [अ०] चरघ शब्द होना । जैसे जूते का चरघमराना ।

दि० सं० [अ०] किसी चीज में से चरघ शब्द उलघ करना ।

चरघमती—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मत्वरी] चंचल मरी ।

चर राशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघ, कर्क, तुला और मकर राशि ।

चरलीता—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की काष्ठौषध । उ०—चव चिरादा चित्रक पीता । चोक चोच चीनी चरलीता ।—सूदन ।

चरघाक—वि० दे० “चरघाक” ।

चरघा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का वट्टिया और मुलायम चारा जो खेत या खेत की जमीन में बरहो मास अधिकता से उलघ होता है । बँल और घोट्टे हूमे यदुँ चोच से रसते हैं । कहीं कहीं यह गोमय और मँसे को उनका दूध बढ़ाने के लिये भी दिया जाता है । धम्मन ।

चरघाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरघा] (१) चरघने का काम (२) चरघने की मजदूरी ।

चरघाना—कि० सं० [हिं० चरघा का प्रे०] चरघने का काम कराना ।

चरघाहा—संज्ञा पुं० [हिं० चरघा + बाहा = बाहक] गाय मँस खादि चरघनेवाला । पशुओं को चरघाई पर लोडानेवाला । यह जो पशु चरघावे । चौरघों का रपक ।

चरघाही—संज्ञा स्त्री० [सं० चर + बाहा] (१) वधु चरघने का काम । (२) वह धन या वेतन जो वधु चरघने के बदले में दिया जाय । चरघने की मजदूरी ।

चरघी—संज्ञा स्त्री० [दे०] कहरों का एक सांकेतिक शब्द । इससे चागेवाला कदार पीठेवाले कदार को हल घात की सूचना देता है कि रातले में गाड़ी रुका खादि है ।

चरघैयाई—संज्ञा पुं० [हिं० चरघा] (१) धरनेवाला । (२) चरघनेवाला ।

चरघ्य—वि० [सं०] चरघ बनाने योग्य ।

चरोतर—संज्ञा पुं० [सं० चिरोतर] वह भूमि जो किसी मनुष्य को उसके जीवन भर के लिये दी गई हो ।

चरोवा—संज्ञा पुं० [हि० चरना] (१) पशुओं के चरने का स्थान । चरी ।

चर्क—संज्ञा पुं० [दे०] जहान का भाग । रूस । (सदा०) ।

चर्क—संज्ञा पुं० दे० "चरक" ।

चर्ककश—संज्ञा पुं० [फा०] (१) धराद की ढोरी या पटा खींचने-वाला । (२) धराद चलानेवाला ।

चर्का—संज्ञा पुं० दे० "चरका" ।

चर्की—संज्ञा स्त्री० दे० "चरकी" ।

चर्च—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मंदिर जिसमें ईसाई प्रार्थना करते हैं । गिरजा । (२) ईसाई धर्म का कोई संप्रदाय ।

विशेष—ईसाई धर्म में अनेक संप्रदाय हैं और प्रत्येक संप्रदाय के चर्च या प्रार्थना-मंदिर भिन्न भिन्न होते हैं । जो ईसाई जिस संप्रदाय का होता है वह उसी संप्रदाय के चर्च में जाता और फलतः उसी चर्च का धनुषायी कहलाता है ।

चर्चक—संज्ञा पुं० [सं०] चर्चा करनेवाला ।

चर्चन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चर्चा । (२) लेपन ।

चर्चर—वि० [सं०] गमनशील । चलनेवाला ।

चर्चरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में वह गान जो किसी एक विषय की समाप्ति और जवनिका-पात होने पर और किसी दूसरे विषय के आरंभ होने और जवनिका उठने से पहले होता रहता है । इस बीच में पात्र तैयार होते हैं और दर्शकों के मनोरंजन के लिये यह गान होता है ।

विशेष—(क) कालिदास के विक्रमोर्वशी नाटक में अनेक चर्चरिकाएँ हैं । (ख) आधुनिक नाटकों में केवल किसी अंक की समाप्ति पर ही पात्रों को तैयार होने का समय मिलता है, गर्भक या छरप की समाप्ति पर दूसरा अंक आरंभ होने से पहले जो गान होता है वह भी चर्चरिका ही है ।

चर्चरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का गाना जो बसंत में गाया जाता है । फाग । चंचर । (२) होली की धूस धाम । होली का बसव । होली का हुल्लड़ । (३) एक वर्षकृत जिसमें रण, सगण, दो जगण और तप फिर रण (र, स, ज, ज, भ, र) होता है । ३०—येन वे मुनि के चली मिथिलेशाज हरपाय के । हाकि के पहुँचे र्ये सुरभापगा दिग जाय के । (४) कर्तव्य-ध्वनि । ताली बजाने का शब्द । (५) ताल के मुख्य ६० भेदों में से एक । (६) चर्चरिका । (७) प्राचीन काल का एक प्रकार का टोळ या बाजा जो चमड़े से मड़ा हुआ होता था । प्रणेद । क्रीड़ा । (८) गाना बजाना । प्रणेद की धूस ।

चर्चरीक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाकाल शैव । (२) साग । भाजी । (३) केशविन्यास । बाल सँवारने की क्रिया ।

चर्चस्—संज्ञा पुं० [सं०] कुयेर की नौ निधियों में से एक ।

चर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जिज्ञा । वार्त्ता । ध्यान । ३०—(क) हरिजन हरिचरचा जो करे । दासी सुत से हिरदै धरे ।—सूर । (ख) निज लोक बिसरे लोक-पति धर की न चरचा चालही ।—तुलसी । (२) वार्त्तालाप । बातचीत । (३) किंवदंती । प्रफुल्ल । ३०—पुरवासियों के प्यारे राम के अभिषेक की उस चर्चा ने प्रत्येक पुरवासी को हर्षित किया ।—लक्ष्मणसिंह ।

क्रि० प्र०—करना ।—चलना ।—दिङ्गना ।—उठना ।—होना ।

(४) लेपन । पोतना । (५) गायत्री रूपा मंदावेवी । (६) दुर्गा ।

चर्चिक—वि० [सं०] वेद आदि जाननेवाला ।

चर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चर्चा । जिज्ञा । (२) दुर्गा । (३) एक प्रकार का सेम ।

चर्चित—वि० [सं०] (१) लेफित । लगा या लगाया हुआ । पोता हुआ । जैसे, चंदनचर्चित नीलकलेवर पीतवसन वनमाली । (२) जिसकी चर्चा हो ।

संज्ञा पुं० लेपन ।

चर्नार—संज्ञा पुं० दे० "चरणारि" या "जुनार" ।

चर्पट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चपत । चपपड़ । (२) हाथ की चुली हुई हथेली ।

वि० विपुल । अधिक ।

चर्पटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादों सुरी छुट ।

चर्पटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रोटी या चपाती ।

चर्परा—वि० दे० "चरपरा" ।

चर्षण—संज्ञा पुं० दे० "चर्षण" ।

चर्षित—वि० दे० "चर्षित" ।

चर्षी—संज्ञा स्त्री० दे० "चर्षी" ।

चर्भट—संज्ञा पुं० [सं०] फकड़ी ।

चर्मटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चर्चरी गीत । (२) चर्चा । (३) धानेद । क्रीड़ा । (४) धानेद ध्वनि ।

चर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमड़ा ।

धा०—चर्मकार ।

(२) ढाल । लिपार ।

—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक सुगंधिद्रव्य । (२) मीस-बता । रोहिनी ।

—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का

सुगंधि-द्रव्य । चमत्सा । (२) मालेरोहिणी नाम की लता ।

(३) एक प्रकार का पौधे जिसे सातवा कहते हैं ।

चर्मकार-संज्ञा पुं० [सं०] [लो०चर्मकारी] चमार । चमड़े का काम करनेवाली जाति ।

विशेष—मनु के अनुसार निपाद पुरुष और वैदेही स्त्री के गर्भ से इस जाति की उत्पत्ति है । पारार ने तीव्र और चांडाली से चर्मकार की उत्पत्ति मानी है ।

पठ्यां०—चमार । कातावर । पादुकात् । चर्महत । चर्मक । कुपट । पादुकाकार ।

चर्मकार्य-संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार का काम । चमड़े के जूते, जिन आदि की सिलाई का काम ।

चर्मकील-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घवासीर । (२) एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर में एक प्रकार का जुकीला मसा निकल जाता है और जिसमें कभी कभी बहुत पीड़ा होती है ।

न्यच्छ ।

चर्मप्रोच-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम ।

चर्मचक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] साधारण चक्षु । ज्ञान-चक्षु का उलटा ।

चर्मचटका, चर्मचट्टी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़ ।

चर्मचिक-संज्ञा पुं० [सं०] रथेत् कुट्ट । कोड़ा का रोग ।

चर्मज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोमां । रोम । (२) लहू । लून ।

चर्मपवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंचल मन्त्री जो दिव्याचल पर्वत से निकल कर इन्द्रपे के पास यमुना से मिलती है ।

इसका दूसरा नाम शिवनद भी है । (२) फेले का पेड़ ।

चर्मनरंग-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े पर पड़ी हुई शिकन । कुर्सी ।

चर्मदंड-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का बना हुआ कोड़ा या चातुक ।

चर्मदल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोड़ा जिसमें पहले किसी स्थान पर बहुत सी कुंसियां हो जाती हैं और तब चर्मा का चमड़ा फट जाता है । इसमें बहुत पीड़ा होती है और दूषित स्थान किसी प्रकार छूसा नहीं जा सकता ।

चर्मदूषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाद का रोग ।

चर्मदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] साधारण दृष्टि । ज्ञान-दृष्टि का उलटा ।

शाल ।

चर्मदेहा-संज्ञा पुं० [सं०] मरक के रंग का एक प्रकार का बाजा जो प्राचीन काल में सुँह से सूँक कर बनाया जाता था ।

चर्मद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़ ।

चर्मनालिका, चर्मनास्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का बना हुआ कोड़ा या चातुक ।

चर्मपत्रा, चर्मपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़ ।

चर्मपादुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जूता ।

चर्मपीडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की गीतला (रोग) जिसमें रोगी का गला बंद हो जाता है ।

चर्मपुट, चर्मपुटक-संज्ञा पुं० [सं०] तेल की आदि रखने का चमड़े का बना हुआ क्लृपा ।

चर्मप्रमेदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा काटने का औजार । सुतारी ।

चर्मवेध-संज्ञा पुं० [सं०] चातुक ।

चर्ममंडल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है ।

चर्ममस्त्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मस्त्रिका रोग का एक भेद जिसमें रोगी के शरीर में छोटी छोटी कुंसियां या छाले निकल आते हैं, कंठ रुक जाता है और अरुचि, संज्ञा, प्रलाप तथा विकृता होती है ।

चर्ममुद्गा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुग्धां ।

चर्ममुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] संघ में एक प्रकार की मुद्रा जिसमें बायां हाथ फैला कर उँगलियों सिंकोड़ खोते हैं ।

चर्मपट्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का कोड़ा या चातुक ।

चर्मरंग-संज्ञा पुं० [सं०] पौराणिक भूगोल के अनुसार एक देश जो कृमिसंघ के पश्चिम-उत्तर में है ।

चर्मरंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे श्रावचंकी और भगवद्वहली भी कहते हैं ।

चर्मरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसका फल बहुत विषैला होता है । इसकी गंधना स्थावर विषों में की गई है ।

चर्मश-संज्ञा पुं० [सं०] चमार ।

चर्मवंदा-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक पत्ता जो सुँह से सूँक कर बनाया जाता था ।

चर्मवसन-संज्ञा पुं० [सं०] मज्जादेव । शिव ।

चर्मवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़ ।

चर्मसंमया-संज्ञा स्त्री० [सं०] हलायची ।

चर्मसार-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में शरीर के अंतर्गत चमड़े के भीतर रहनेवाला यह रस जो साप हृत्प पदार्थों से बनता है ।

चर्मोत-संज्ञा पुं० [सं०] सुषुप्त के अनुसार एक प्रकार का व्यंजन जिसका व्यवहार प्राचीन काल में चीर फाड़ आदि में होता था ।

चर्मोमद-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े में का रस । चमड़े के अंदर होनेवाला रस जो साप हृत्प पदार्थों से बनता है । चर्म-सार ।

चर्मोल्प-संज्ञा पुं० [सं०] कोड़ा का एक भेद ।

चर्मोनला-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक नदी का नाम ।

चर्मोर-संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार । चमार ।

चर्मिक, चर्मो-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो ढाल हाथ में लेकर लड़े । हाथ में ढाल लेकर लड़नेवाला योद्धा ।

चर्म्य-वि० [सं०] (१) जो काने योग्य हो । (२) जिसका करना आवश्यक हो । कर्तव्य ।

चर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह जो किया जाय। आचरण। जैसे, प्रतचर्या, दिनचर्या आदि। (२) आचार। बाल चलन। (३) काम काज। (४) वृत्ति। जीविका। (५) सेवा। (६) विहित कार्य का अनुष्ठान और निपट्ट का स्थाय। (७) भक्षण। पाने की क्रिया या भाव। (८) गमन। चलने की क्रिया या भाव।

चर्यापीरपत—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थान पर न रहना, बल्कि निरन्तरतापूर्वक चारों ओर विचरना। (जैन धर्म)।

चराना—क्रि० प्र० [श्रु०] (१) लकड़ी खादि का टूटने या टूटने के समय चर चर शब्द करना। (२) शरीर के थोड़ा थिल जाने या घाव पर जमी हुई पपड़ी खादि के उतरड़ जाने के कारण खुजली या सुरसरी मिली हुई हलकी पीड़ा होना। (३) सुरकी और रुखाई के कारण (जैसा कि प्रायः जाड़े में होता है) किसी श्रेण में तनाव और हलकी पीड़ा होना। उ०—बहुत दिनों से सेल नहीं लगाया इससे यदन चरता है। (४) किसी यात की वेगपूर्ण हृद्यता होना। किसी यात की आवश्यकता से अधिक और बेमैकी बढ़ी चाह होगा। जैसे, शौक चराना, सुदुष्ट चराना।

चर्रा—संज्ञा स्त्री० [हिं० चराना] लगती हुई व्यंग्यपूर्ण यात। लुटीली यात।

क्रि० प्र०—छेड़ना।—सुनाना।

चर्या—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चर्या] (१) किसी चीज को मुँह में रख कर कर दाँतों से बराबर तोड़ने की क्रिया। चबाना। (२) वह वस्तु जो चबाई जाय। (३) भूना हुआ दाना आदि जो चबा कर खाया जाता है। चबैना। यदुरी। दाना।

चरित—वि० [सं०] चयाया हुआ। दाँतों से कुचला हुआ।

चरितचर्या—संज्ञा पुं० [सं०] जो हो चुका हो उसे फिर से करना। किसी किए हुए काम या कही हुई बात को फिर से करना या कहना। पिपपेपप।

चरितल—संज्ञा पुं० [सं०] गाजर की तरह की एक श्रंगरी तीरकारी जो कुथार कातिक में ब्यारियों में बोई जाती है।

चर्य—वि० [सं०] (१) चवाने योग्य। (२) जो चबा कर खाया जाय।

चर्या—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य। आदमी।

चर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनुष्य जाति। मानव जाति।

चरस—संज्ञा पुं० दे० "चरस"।

चलता—वि० [हिं० चलना] (१) चलता हुआ। (२) चलनेवाला।

धा०—चलदल।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारा। (२) दोहा छंद का एक भेद जिसमें ११ गुरु और २६ लघु मात्राएँ होती हैं। जैसे, जम सिंधु पुनि वंधु विप दिन मलीन तकलंक। सिय सुत समता पाव किमि चंद्र वापुरो रंक—तुलसी। (३) शिव। महादेव। (४) विष्णु। (५) कंयन। कौपना। (६) दोप। ऐय। नुसत। (७) भूल। चूक। (८) धोला। छल। कपट। (९) नृत्य में एक प्रकार की छेडा जिसमें हाथ के द्वारा से किसी को बुलाया जाता है। (१०) नृत्य में शोक, चिंता, परिश्रम या उल्का दिखलाने के लिये कुछ गहरी सांस लेना।

चलकना—क्रि० [श्रु०] (१) चमकना। उ०—तर नारिन के मुख कमलन की शोभा दूती चलकि उठी।—देव स्वामी। (२) दे० "चिलकना"।

चलकण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथिवी से प्रदेशों का स्वाभाविक श्रंतर। (२) वह जिसके कान सदा हिलते रहें। (३) हाथी।

चलका—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार की साधारण नाव।

चलकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष केतु वा पुच्छल तारा जो परिचम दिशा में उदय होता है। इसमें दक्षिण की ओर उठी हुई एक चोटी भी होती है। उदय होने के उपरान्त यह क्रमशः उत्तर की ओर बढ़ता और पीछे आकाश में किसी स्थान में रुकता हो जाता है। कभी कभी यह उत्तरी भ्रुव, सर्पिण्डल या अभिजित नक्षत्र तक भी पहुँच जाता है। फलित के अनुसार किसी के मत से इतके उदय होने के दस महीने और किसी के मत से शरदरह महीने दाद देश में दुर्भिक्ष और कई प्रकार का अनिष्ट होता है।

चलचंचु—संज्ञा पुं० [सं०] चकौर।

चलचाल—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] (१) प्रस्थान। यात्रा। चलाचली। (२) महाप्रस्थान। मृत्यु। मौत।

चलचाल—क्रि० वि० [सं०] चत्र विचल। चंचल। अस्थिर। उ०—होन न देहुँ कहुँ चलचाल सुरावीं हिये पै मिजाय के मालहि।

चलचूक—संज्ञा [सं०] चल = चरह। धोला। छल। कपट। उ०—जो चलचूक गने कहु या महुँ सौ यह न्याउ अन्न के आगे।—गुमान।

चलता—वि० [हिं० चलना] [स्त्री० चलती] (१) चलता हुआ। गमन करता हुआ। गतिवाद्। जैसे, चलती गाड़ी।

मुहा०—चलता करना = (१) छुटाना। भगाना। भेजना। उ०—(क) अत्र हन्नें क्याँ बैठाये हो ? चलता करो। (ख) इस कागज़ को ध्यान चलता करो। (२) किसी प्रकार निपटाना। कगडा दूर करना। उ०—किसी प्रकार इस मामले को चलता करो। चलती गाड़ी में रोड़ा छटकाना = हेतु हुए कार्य में बाधा डालना। चलता सुरंग = व्यर्थहारकरण।

चलाक । चुन्त । व्यवहारतर । चलता बनना = चल देना । प्रस्थान करना । उ०—चुम तो वहाँ से चलते बने, पकड़े गए हम । चलता होना = चल देना । प्रस्थान करना ।

(२) जिसका क्रमसंग न हुआ हो । जो मरावर जारी हो ।

मुहा०—चलता खेला वा दाता = वह हिमात्र जिसके संबंध का खेन देन बधवर होता रहे और जिसकी शक्ति न गिराई गई हो ।

(३) जिसका चलन अधिक हो । जिसका रवाज बहुत हो । प्रचलित । उ०—यह चलती चीज है, दूकान पर रख लो ।

मुहा०—चलता माना = वह माना जो शुद्ध राम रामियों के श्रद्धांति न हो पर जिसका प्रचार एवं साधारण में हो । जैसे दादरा, ख्याल, लावनी इत्यादि ।

(४) काम करने योग्य । जो श्रमक न हुआ हो । जैसे चलता बैल । (५) व्यवहार में तत्पर । व्यवहारपटु । चालाक । चुन्त ।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का बहुत बड़ा सुदावहार पेड़ जिसकी लकड़ी चिकनी, बहुत मजबूत और श्रंघर से जाल होती है । यह बंगाल, मद्रास और मध्यभारत में बहुत अधिकता से वसत्र होता है । इसकी लकड़ी प्रायः हुमारत के काम में आती है और पानी में जट्टे नहीं सड़ती । इसके पुराने पत्तों से हाथीदांत साफ़ किया जाता है । इसमें बैल के श्राकर का घड़ा फल लगता है जो कदा भी खाया जाता है और जिसकी तरकारी भी बनती है । फल में रसा बहुत अधिक होता है इतलिये उमे कच्चा या तरकारी बनने पर चूस चूस कर खाते हैं । (२) रास्ते में वह स्थान जहाँ फिसलन और कीचड़ बहुत अधिक हो । (कहाराँ की परि०) (३) कवच । मिलाव ।

संज्ञा धी० [सं०] चलने का भाव । चंचलता । अस्थिरता ।

चलती—संज्ञा धी० [हिं० चलना] मान मर्यादा । प्रभाव । अधिकार । उ०—आज कल उस दरवार में उनकी बड़ी चलती है ।

चलतू—वि० [हिं० चलना] (१) दे० "चलता" । (२) (भूमि) जो जोती घेरै जाती हो । धारावद ।

चलदंग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मद्धनी जिसे भीँगा कहते हैं ।

चलदल—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष । उ०—चलदल-प्रपत्ताक-पट दामिनि कच्छप माध । भूत दीप दीपक सिखा लोँ मन-वृत्ति धनाय ।

चलन—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] (१) गति । चाल । चलने का भाव ।

धो०—चलनहार ।

(२) रियाज । रस । व्यवहार । रीति ।

मुहा०—चलन से चलना = अपने पद और मर्यादा आदि के अनुकूल काम करना । उचित रीति से व्यवहार करना ।

(३) किसी चीज का व्यवहार, उपयोग या प्रचार । जैसे, (क) आज कल ऐसी टोपी का बहुत चलन है । (ख) धाद-शाही जमाने के रूपयों का चलन अब उठ गया ।

क्रि० प्र०—उठना ।—चलना ।—होना ।

धो०—चलनसार ।

संज्ञा धी० [सं०] ज्योतिष में एक क्रांतिपाल गति अथवा विद्युत् की उस समय की गति जब दिन और रात दोनों मरावर होते हैं ।

धो०—चलन कलन ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) गति । भ्रमण । (२) कौपना । कंपन ।

(३) हिरन । (४) चरय । पैर । (५) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा ।

चलन कलन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का गणित जिसके द्वारा पृथ्वी की गति के अनुसार दिन रात के घटने बढ़ने का हिसाब लगाया जाता है ।

चलनदरी—संज्ञा धी० [हिं० चलन + दर] वह स्थान जहाँ रास्ते चलनेवालों को पुण्याय अल पिनाया जाता हो । पैमरा ।

चलन समीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया । दे० "समीकरण" ।

चलनसार—वि० [हिं० चलन + सार (प्रब०)] (१) जिसका उपयोग या व्यवहार प्रचलित हो । जैसे, चलनसार सिद्धा ।

(२) जो अधिक दिनों तक काम में लाया जा सके । जो बहुत दिनों तक चले । जैसे, चलनसार कपड़ा ।

चलना—क्रि० प्र० [सं० चलन] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना । गमन करना । प्रस्थान करना ।

विरोध—व्यक्ति 'जाना' और 'चलना' दोनों क्रियाएँ कभी कभी समान अर्थ में प्रयुक्त होती हैं पर दोनों के भावों में कुछ अंतर है । 'जाना' क्रिया में स्थान की ओर विरोध लक्ष्य रहता है पर 'चलना' में गति की ओर विरोध लक्ष्य रहता है । जैसे, 'चलती गाड़ी पर सवार होना ठीक नहीं है' । 'चलना' क्रिया से भूतकाल में भी क्रिया की समाप्ति अर्थात् किसी स्थान पर पहुँचने का बोध नहीं होगा, जैसे, 'वह दिव्यती चला' । पर 'जाना' से भूतकाल में पहुँचने का बोध हो सकता है, जैसे 'वह गाँव में गया' । वक्ता अपने साथ प्रस्थान करने के संबंध में जब किसी से प्रारंभ वा अनुरोध करेगा तब वह 'चलना' क्रिया का प्रयोग करेगा, 'जाना' का नहीं ; जैसे, 'तुम मेरे साथ चलोगे ?', 'अब यहाँ से चलो' ।

(२) गति में होना । हिलना डोलना । हलकत करना । जैसे, नाड़ी चलना, कल चलना, पुराजा चलना, घड़ी चलना ।

संयोग क्रि०—जाना।—पढ़ना।

मुहा०—किसी का चलना = किसी का काम चलना। गुजर होना। निर्वाह होना। उ०—इतने में हमारा नहीं चल सकता। पेट चलना = (१) दस्त आना। (२) निर्वाह होना। गुजर होना। उ०—इतने में पेट कैसे चलेगा ? मन चलना या दिल चलना = इच्छा होना। लायना होना। किसी वस्तु के लिये चिंत चंचल होना। प्राप्ति की इच्छा होना। उ०—(क) जिस किसी की वस्तु हुई उसी पर तुम्हारा मन चल जाता है। (ख) उसका मन पराई स्त्री पर कभी नहीं चलता। मुँह चलना = (१) खाते समय मुँह का हिंमना। लाया जाना। भ्रमण होना। उ०—जब देखो तब उसका मुँह चलता रहता है। (२) मुँह से बकवाद वा अशुचित शब्द निकलना। उ०—तुम्हारा मुँह बहुत चलता है, तुमसे छुप नहीं रहा जाता। मुँह पेट चलना = कै दस्त होना। हाथ चलना = मारने के लिये हाथ उठाना। चल बसना = मर जाना। अपने चलते = भरलक। यथाशक्ति। उ०—(क) अपने चलते न आनु लगी, धनभल काहु क कीन्ह।—तुलसी। (ख) अपने चलते तो हम ऐसा कभी न होने देंगे।

(३) निमना। कार्य-निर्वाह में समर्थ होना। उ०—यह सड़का इस दर्जे में चल जायगा।

मुहा०—चल निकलना = किसी कार्य में उन्नति करना। किसी विषय में क्रमशः आगे बढ़ना। उ०—उन्हें काम सीखते थोड़े ही दिन हुए पर वे चल निकले।

(४) प्रवाहित होना। बहना। जैसे, मोरी चलना, हवा चलना। (५) वृद्धि पर होना। बाढ़ पर होना। जैसे, श्रय यह पीछा भी चला। (६) किसी कार्य में अग्रसर होना। किसी कार्य का आगे बढ़ना। किसी युक्ति का काम में आना। उ०—सय उपाय करके तो तुम हार गए, श्रय चलो। (७) आरंभ होना। झिड़ना। जैसे, बात चलना, जिक्र चलना, चेचा चलना। (८) बराबर बसा रहना। जारी रहना। क्रम वा परंपरा का निर्वाह होना। जैसे, धंरा चलना, नाम चलना। उ०—जब तक रामचरित-मानस रहना, तब तक तुलसीदास जी का नाम चला जायगा। (९) खाने पीने की वस्तु का परसा जाना। खाने के लिये रक्सा जाना। उ०—इसके बाद श्रय मिठाई चलेगी। (१०) बराबर काम देना। टिकना। ठहरना। खटना। उ०—यह जूता कुछ भी न चला। (११) व्यवहार में आना। लेन देन के काम में आना। उ०—यह रुपया यहाँ नहीं चलेगा। (१२) प्रचलित होना। प्रचार पाना। जारी होना। रवाज पाना। जैसे, रीति चलना, चाल चलना। उ०—(क) रघु-कुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाइ बस्यचनन न जाई।—तुलसी। (ख) कुछ दिनों तक गोल टोपी खूब चली श्रय उसकी चाल उठती जाती है। (१३) प्रयुक्त होना। व्यवहृत

होना। काम में लाया जाना। जैसे, तलवार चलना, घूँसा चलना, लाठी चलना, कुलम चलना, पावड़ा चलना। (१४) श्रद्धा तरह काम देना। उपयोग वा व्यवहार के अनुष्ठान होना। उ०—कुलम चलती नहीं। (१५) तीर, मोली आदि का छटना। (१६) लड़ाई समाप्त होना। विरोध होना। शत्रुता होना। उ०—आज्ञ कल उन दोनों में खूब चल रही है। (१७) किसी व्यवसाय की वृद्धि होना। किसी व्यापार का बढ़ना। काम चमकना। उ०—(क) यह दूकान खूब चली। (ख) कुछ दिनों तक लाख का काम च चला था।

मुहा०—चल निकलना = किसी काम का देर पर आना। किसी कार्य का निर्वाह होने लगना। किसी कार्य में सफलता होना। उ०—श्रय तो तुम्हारा रोजगार चल निकला।

(१८) पढ़ा जाना। याँचा जाना। उचरना। उ०—यह लिखा-पठ तो हमसे नहीं चलती। (१९) कृतकार्य होना। सफल होना। प्रभाव करना। कारगर होना। उपाय लागना। ब्य चलना। उ०—(क) यहाँ तुम्हारी एक भी न चलेगी। (ख) उस पर जादू टोना कुछ भी नहीं चल सकता।

मुहा०—किन्नी की चलना = (किसी का) उपाय लगना। बरा चरण। प्रयत्न सफल होना। उ०—श्रय निरखि शनैग लज्जित सके नहिं ठहराय। एक की कहा चले शत शत कोटि, रहत लजाय।—पूर।

(२०) आचरण करना। व्यवहार करना। उ०—बढ़ों के धात्राजुसलर चलने से कभी भोखा नहीं होता। (२१) गले के नीचे डहरना। निगलना जाना। खाया जाना। उ०—श्रय बिना धी के एक कौर नहीं चलता है ? (२२) धान पर से कपड़ा उतारते समय कपड़े का बीच में मोटा सूत आदि पड़ जाने के कारण सीधा न फटना, कुछ हुए उधर हो जाना। (बजाज) (२३) † बानी होना। सड़ना। जैसे, सालन चल गया, दाल चल गई।

क्रि० सं० शतरंज या चौसर आदि खेलों में किसी मोहरे या गोटी आदि को अपने स्थान से बढ़ाना या हटाना वा धपवा सारा वा गंभीर आदि खेलों में किसी पत्ते को खेल के कामों के लिये सय खेलनेवालों के सामने फेंकना। जैसे, हाथी चलना, कज़ीर चलना, दुहला चलना, एका चलना आदि। गंठा पुं० [हिं० चलनी] (१) बड़ी चलनी वा छलनी। (२) चलनी की तरह का लोहे का एक बड़ा कलछुला या डोई जिससे खँडसार में उथलते हुए रस के ऊपर का फेन, मैल आदि साफ़ करते हैं। (३) हलवाहूयों का एक औजार जो छेददार डोई के समान होता है और जिससे शीरा वा चासनी हलवाई साफ़ की जाती है। छत्रा।

चलनि—गंठा श्री० दे० "खन"।

चलनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिपों के पहनने का धातरा ।
 (२) रोमी भाजर ।
 चलनी—संज्ञा स्त्री० दे० "धुलनी" ।
 संज्ञा स्त्री० दे० "चलनिका" ।
 चलनीसा—संज्ञा पुं० [हिं० चलना + सा (सं०)] वह पदार्थ जो
 चालने से धुलनी में रह जाय। चोकर । चालन ।
 चलनीसन—संज्ञा पुं० दे० "चलनैत" ।
 चलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का पत्र ।
 चलघाँक-वि० (१) दे० "चघाँक" । (२) "चरघाँक" ।
 वि० [हिं० चलना + घाँका] तेज चलनेवाला । शीघ्रगामी ।
 चलविचल-वि० दे० "चलविचल" ।
 चलघंता—संज्ञा पुं० [सं० चय + घंता] पैदल सिपाही । प्यादा ।
 चलघाना—क्रि० सं० [हिं० चलना का प्रे०] चलाने का कार्य
 दूसरे से कराना ।
 चलविचल-वि० [सं० चल + विचल] (१) जो अपने स्थान से
 हट गया हो । जो ठीक जगह से हजर उधर हो गया हो ।
 उच्छा पुलझ । शेरदंड । घेरिकाने । व०—(क) उतने ऊपर
 से हटते हो, कोई हड्डी चलविचल हो जायगी तो रह
 जायगी । (ख) उसका सब काम चलविचल हो गया ।
 (२) जिसके क्रम या नियम का उल्लंघन हुआ हो ।
 अच्यवस्थित ।
 संज्ञा स्त्री० किसी नियम या क्रम का उल्लंघन । व्यतिक्रम ।
 नियमालन में त्रुटि । व०—जहाँ जरा सी चलविचल हुई,
 कि सब काम बिगड़ जायगा ।
 विशेष—इस शब्द को कहीं कहीं पुं० भी बोलते हैं ।
 चलविघाँ—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] चलनेवाला ।
 चला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विजली । दामिनी । (२) पृथ्वी ।
 भूमि । (३) लक्ष्मी । (४) सिपली । पीपल । (५) रिखा-
 रस नाम का गन्धद्रव्य ।
 † संज्ञा पुं० [हिं० चाल या चरना] (१) ध्वजहार । प्रचार ।
 रिवाज । चाल । रीति रस्म । दल्लर । (२) अधिकार । प्रभुत्व ।
 स्वामित्व । व०—अभी वे। देसा नहीं हो सकता, जब
 हमारा चला हो तब तुम जो चाहें सो करना ।
 चलाऊ-वि० [हिं० चलना] (१) चिरस्थायी । जो बहुत दिनों
 तक चले । मजबूत । टिकाऊ । (२) बहुत चलने फिरे या
 घूमनेवाला ।
 चलाकाँ-वि० दे० "चालाक" ।
 चलाकी—संज्ञा स्त्री० दे० "चालाकी" ।
 चलाकाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० चला = विजली] विजली । विद्युत् ।
 तड़ित् । व०—मुँदर कसौटी बीच ललित लकीर जमि
 नेच मैं चलाकाँ जैसे रोमाना प्रेम नाल की ।

चलाचल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] (१) चलाचली । (२)
 गति । चाल । व०—उपदेव विराट भिरे चल सैं । पुराई
 युनि चाप चलाचल सैं ।—गोपाल ।
 वि० [सं०] चंचल । चपल । व०—वैनिन की गति गूढ़
 चलाचल केशवदास अकाल चढ़नी ।—देवराय ।
 चलाचली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] (१) चलने के समय की
 घबराहट, धम धम तैयारी । चलने की हड़कड़ी । रबारी ।
 (२) बहुत से लोगों का प्रस्थान । बहुत से लोगों का किसी
 एक स्थान से चलना । व०—हय चले, हाथी चले, संग
 खाँदि साथी चले, पेसी चलाचली में अचल हाड़ा है
 रघो ।—भूपण । (३) चलने की तैयारी या समय ।
 वि० जो चलने के लिये तैयार हो । चलनेवाला । व०—
 विरह विपति दिन परत ही तजे सुखन संय शंग । रदि अर्बली
 ज्य हुतो भपु चलाचली त्रिप संग ।—विहारी ।
 चलातंक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वातरोग, जिसमें
 हृदय पाँव आदि श्रेण कान्पने लगते हैं । कंपण्यई । राशा ।
 चलान—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] (१) भेजे जाने या चलने की
 क्रिया । (२) भेजने या चलाने की क्रिया । (३) किसी
 अपराधी का पकड़ा जा कर न्याय के लिये न्यायालय में भेजा
 जाना । जैसे, कल संस्था को वह पकड़ा गया और आज
 उसकी चलान हो गई । (४) माल अस्तथाय आदि का एक
 स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाना । जैसे, आज यहाँ से
 दस बोरों की चलान हो गई है, आठ दिन में माल थापको
 यहाँ मिल जायगा । (५) एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना
 या आया हुआ माल । जैसे, हाल में एक नई चलान आई
 है, उसमें थाप के काम की बहुत सी चीजें हैं ।
 क्रि० प्र०—आना ।—भेजना ।—भेगाना ।
 (६) वह कागज जिसमें किसी की सूचना के लिये भेजी हुई
 चीजों की सूची या विवरण आदि हो । रक्ता ।
 विशेष—(क) इस प्रकार की चलान प्रायः सरकारी हाजनों
 या तहसीलों आदि से दूसरे दफ्तारों में भेजे जानेवाले
 रूपके साथ भेजी जाती है । (ख) यह चलान चूंकि
 आदि के संबंध में माल के लिये राहदारी के परवाने का
 भी काम देती है ।
 क्रि० प्र०—देना ।—भेजना ।—लिखना, आदि ।
 विशेष—(क) बड़े बालों ने इस शब्द को "चालान" बना
 लिया है । (ख) पश्चिम में यह शब्द प्रायः पुंलिंग माना
 जाता है ।
 चलानदार—संज्ञा पुं० [हिं० चलान + दार] वह मनुष्य जो
 माल की चलान के साथ उसकी रखा के लिये जाता है ।
 चलाना—क्रि० सं० [हिं० चलना] (१) किसी को चलने में लगाना ।
 चलने के लिये प्रेरित करना । जैसे, गाड़ी, घोड़ा, नाव आ

रेल आदि चलाना । (२) गति देना । हिलाना हुलाना । हरकत देना । जैसे, चरखा चलाना, (कलछी आदि से) दाल भात चलाना, घड़ी चलाना ।

मुहा०—(किसी) की चलाना = प्रसंग वश किसी का जिक्र करना । किसी के बारे में कुछ कहना । जैसे, हम और किसी की नहीं चलाते, अपने बारे में ही कह सकते हैं । पेट चलाना = (१) दस्त खाना । जैसे, यह बड़ा एक दस्त पेट चला देती । (२) निर्वाह करना । गुजर करना । मन या दिल चलाना = इच्छा करना । लालछा करना । जैसे, यह चीज़ तुम्हें मिलने की नहीं, क्यों व्यर्थ मन चलाते हो । मुहँ चलाना = खाना । भक्षण करना । जैसे, तुम खाली क्यों बैठे हो, धीरे धीरे मुहँ चलाते चलो । मुँह पेट चलाना = कै दस्त खाना । हाथ चलाना = मारने के निम्ने हाथ उठाना । मारना । पीटना ।

(३) कार्य-निर्वाह में समर्थ करना । निभाना । जैसे, हम इन्हें भी जैसे तैसे अपने साथ चला ले जायेंगे । (७) प्रवाहित करना । बहाना । जैसे, मोती चलाना, हवा चलाना । (४) श्रद्धि करना । उन्नति करना । (६) किसी कार्य को अग्रसर करना । किसी काम में जारी वा पूरा करना । जैसे, (क) हमने इस काम को चला दिया है, (ख) काम चलाने भर को इतना बहुत है । (७) आरंभ करना । छेड़ना । जैसे, बात चलाना, जिक्र चलाना । (८) बराबर बनाए रखना । जारी रखना । जैसे, वंश चलाना, नाम चलाना । कारवाना चलाना । (९) खाने पीने की वस्तु परीक्षण । खाने की चीज़ श्राने रखना । (१०) बराबर काम में खाना । टिकाना । जैसे, यह कोट अभी आप तीन बरस और चलायेंगे । (११) व्यवहार में खाना । लेन देन के काम में खाना । जैसे, इन्होंने वह खोटा रुपया भी चला दिया । (१२) प्रचलित करना । प्रचार करना । जैसे, रीति चलाना, धर्म चलाना । उ०—(क) आप तो यह एक नई रीति चलाते हैं । (ख) मुहम्मद साहब ने मुसलमानी धर्म चलाया था । (१३) व्यवहृत करना । प्रयुक्त करना । जैसे, तलवार चलाना, लाठी चलाना, कलम चलाना, हाथ पैर चलाना । (१४) तीर गोली आदि छेड़ना । किसी वस्तु को किसी धार लपट करके वेग के साथ फेंकना । जैसे, डेला या गुलजा चलाना, किसी वस्तु से प्रहार करना । किसी चीज़ से मारना । जैसे, हाथ चलाना, डंडा चलाना । (१६) किसी व्यवसाय वा व्यापार की श्रद्धि करना । काम चमकाना । जैसे, जब सब लोग हारें गए तो उन्होंने कारखाना चला कर दिखला दिया । (१७) आचरण करना । व्यवहार करना । (१८) धान में से कपड़ा उतारते समय उसे सीया न फाड़ कर असावधानी आदि के कारण टेढ़ा या सिरछा फाड़ना । (बनाज)

चलायमान-वि० [सं०] (१) चलनेवाला । जो चरता हो । (२) चंचल । (३) विचलित ।

चलावा-संज्ञा पुं० [हिं० चलना] (१) चलने का भाव । यात्रा । प्रयाण । पयान । रवानगी । उ०—तपस्वित धृता बिल दीन्या । वेग चलाव चहँ दिशि कीन्या ।—जायसी । (२) दे० “चलावा” ।

चलाचला-कि० सं० दे० “चलाना” ।

चलाया-संज्ञा पुं० [हिं० चलाना] (१) रीति । रस्म । रिवाज ।

क्रि० प्र०—चलना ।

(२) विरागमन । गौना । मुकलाया । (३) एक प्रकार का उतारा जो प्रायः गावों में अयंकर धीमारी पड़ने के समय किया जाता है । इसे लोग बाजा बजाते हुए अपने गाँव की सीमा के बाहर ले जाकर किन्हीं दूसरे गाँव की सीमा पर रख धाते हैं और ममकते हैं कि धीमारी इस गाँव से निकल कर उस गाँव में चली गई ।

चलासन-संज्ञा पुं० [सं०] यौद्धिक के मत से एक प्रकार का दोष जो सामयिक युद्ध में आसन बदलने के कारण होता है ।

चलित-वि० [सं०] (१) अस्थिर । चलामान । (२) चलता हुआ ।

यो०—चलित प्रह ।

संज्ञा पुं० नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा जिसमें टोड़ी की गति से क्रोध वा चीभ प्रकट होता है ।

चलित प्रह-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रह जिसके फल का कुछ और भोगा जा सका हो और कुछ भोगने को याकी रह गया हो । (ज्यो०) ।

चलैया-संज्ञा पुं० [हिं० चलना] चलनेवाला ।

चलौना-संज्ञा पुं० [हिं० चलाना] (१) वह कलछा वा लकड़ी का डंडा जिससे दूध, पानी या और कोई द्रव पदार्थ हिलाया जाता है । (२) वह लकड़ी का टुकड़ा जिससे चरखा चलाना जाता है ।

चलीवा-संज्ञा पुं० दे० “चलावा” (१) ।

चलौ-संज्ञा स्त्री० [दे०] तकले पर लपेटा हुआ सूत या ऊन आदि । कुकड़ी ।

चवकी-संज्ञा स्त्री० दे० “चैकी” ।

चवत्री-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौचारा का अर्थ० + त्रा + ई (प्रत्य०)] चार आने मूल्य का चाँदी का सिक्का ।

चवपैया-संज्ञा स्त्री० दे० “चौपैया” ।

चवर-संज्ञा पुं० दे० “चवर” ।

चवरा-संज्ञा पुं० [सं० चवज] लोविया ।

चवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] [हिं० चवर्ग] च से अ तक के अक्षरों का समूह । इन अक्षरों का उच्चारण तालु से होता है ।

चवल-संज्ञा पुं० [सं०] लोविया ।

धवा—संज्ञा स्त्री० [हि० धोवा] चारों ओर में चलनेवाली धवा । एक साथ सब दिशाओं से बहनेवाली वायु उ०—आगि धवायि पहार टहरी टहकी कपि लंक मया खरमीकी । चारु धवा चहुँ ओर चली भरटी लखेटेँ सो समीचर ताकी ।— तुलसी ।

धवाई—संज्ञा पुं० [हि० धवाय] [स्त्री० धवाय] (१) धवनामी की धवा फँसानेवाला । कलकम्पक प्रवाद फँसानेवाला । दूसरों की बुराई करनेवाला । निंदक । उ०—(क) मैं सहनी तुम तरन तन सुगल धवाई गाँव । सुरभी लै न बजाइयो कबहुँ हमारे गाँव ।—पद्मकर । (ख) चौचंद चार धवाइन के चहुँ ओर मचँ विरथेँ करि हाँसी । (ग) चार धवाहँ लै दुःखीनन धायो न आज तमायो लखत हैं ।—हरिश्चंद्र । (२) फूटी बात कहनेवाला । ध्वयेँ ह्वाय की उधर लगानेवाला । सुगलखोर । उ०—सुबहु काह यलभय धवाई जगमत ही को भूत । सुरयाम मोहिँ गोधन की सीँ हैंँ माता त् पूत ।—सूर ।

धवाउ—संज्ञा पुं० दे० "धवाव" ।

धवालीस—संज्ञा पुं० दे० "धोवालीस" ।

धवाव—संज्ञा पुं० [हि० धोवा] (१) चारों ओर फँसनेवाली धवा । प्रवाद । धक्का । (२) चारों ओर फैली हुई बदनामी । निंदा की धवा । किसी की बुराई की धवा । उ०—(क) नैनन तें यह भई धवाई । धर धर यहँ धवाव चलवत हम सों भेंट न भाई ।—सूर । (ख) ये धवाई लोहाई सवै निसि धोस निवाज हमें बहती हैं । धावें धवाव भरी सुनि कै निस लागति पै सुप हँ रहती हैं ।—निवाज । (ग) ज्यों ज्यों धवाव चलै चहुँ ओर धरेँ चित धाव पे लोहिँ खों पीले ।

क्रि० प्र०—करना ।—चलना ।—चलाना ।

(३) पीठ पीछे की निंदा । सुगलखोरी ।

धवि, **धविका**—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव्य नाम की धोपधि ।

विशेष—दे० "धव" ।

धवैया—संज्ञा पुं० [हि० धोवाय] दे० "धवाई" ।

धव्य, **धव्यका**—संज्ञा पुं० [सं०] एक धोपधि । दे० "धव" ।

धव्यज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गमगीपल ।

धव्या—संज्ञा स्त्री० दे० "धव्य" ।

धवाक—संज्ञा स्त्री० [हि० धक्का] यह भोजन जो साद्यों के यहाँ से किमी विशेष धक्कर पर धावधियों को मिलता है ।

धवाम—संज्ञा स्त्री० दे० "धव्य" ।

विशेष—धवाम के धौ० आदि के लिये दे० "धव्य" ।

धवामा—संज्ञा पुं० दे० "धव्य" ।

धवम—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० धवमा] नेत्र । आँस । लोचन । नयन ।

धौ०—धरमदीद । धरमनुमाई, धादि ।

मुहा०—धरम बंद दूर = डुरी नजर दूर है । डुरी नजर न कगे ।

विशेष—इस धक्क का व्यवहार किसी चीज की इच्छा करते समय उसे नजर लगाने से धवाने के अभिप्राय से किया जाता है ।

धदमक—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० धम] (१) मनमोटाव । वैमनस्य । ईर्ष्या । द्वेष । (२) धरमा । ऐनक । (३) आँस का इतरा ।

धदमदीद—वि० [फ्रा०] जो आँसों से देना हुआ है ।

धौ०—धरमदीद गवाह = वह साक्षी जो धननी आँसों से देखी घटना कहे । वह गवाह जो धमदीद मात्रय बयान करे ।

धदमनुमाई—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] धूर कर किसी के मन में भय उत्पन्न करना । धमकी या धुक्की । आँस दिखाना ।

धश्मपोशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] आँस बुराना । सामने न होना । कतराना ।

धदमा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) कमानी में जड़ा हुआ शरीरो या पारदर्शी पत्थर के तालों का जोड़ा जो आँसों पर बनका देय दूर करने, दृष्टि बढ़ाने अथवा भूषण, धमक या गर्द आदि से उनकी रक्षा करने और उन्हें ठंडा रखने के अभिप्राय से लगाया जाता है । ऐनक ।

विशेष—धरमे के ताल हरे, लाल, नीले, सफेद और कहे रंगों के होते हैं । दूर की चीजों देखने के लिये बतोर और पास की चीजों देखने के लिये उबतोदर तालों का धरमा लगाया जाता है ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—लगाना ।—खगाना ।

मुहा०—धरमा लगना = आँसों में धरमा लगानेकी आवश्यकता होना । जैसे, धव तो उनकी आँस कमजोर हो गई है, धरमा लगता है ।

(२) पानी का सोता । जेत । (३) नदी । घेरटा दरिया ।

(४) कोई जहाज ।

धप—संज्ञा पुं० [सं० धप] मेघ । आँस ।

धौ०—धपचोल ।

धपक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मघ पीने का पात्र । वह वरतन जिसमें शराव पीते हैं । उ०—प्राय मे मन रसिक खलित धी लोचन धपक पियति भकरंद मुख रासि श्रंत सधी ।—सूर । (२) मघ । शहद । (३) एक विशेष प्रकार की मदिरा ।

धपचोल—संज्ञा पुं० [हि० धप+चोल = बल] आँस की पलक । आँस का परदा । उ०—चलितो लुंकुम गत तें दलि गो नयो निचोल । डुरे डुरायो बयें सुरत सुरत लुत धपचोल ।—शं० सत० ।

धपध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजन । भरण । (२) धव करना । (३) धव करना ।

धपाल—संज्ञा पुं० [सं०] धव के धूप में लगी हुई पट्ट धाँचने की गाराई ।

रेल आदि चलाना । (२) गति देना । हिलाना हुलाना । हलकत देना । जैसे, चारवां चलाना, (कलकड़ी आदि से) दाब भात चलाना, घड़ी चलाना ।

मुहा०—(किसी) की चलाना = प्रसंग वया किसी का जिक्र करना । किसी के बारे में कुछ कहना । जैसे, हम और किसी की नहीं चलाने, अपने बारे में ही कह सकते हैं । पेट चलाना = (१) दस्त लाना । जैसे, यह दवा एक दम पेट चला देगी । (२) निर्वाह करना । गुजर करना । मन वा दिल चलाना = इच्छा करना । छालसा करना । जैसे, यह चीज़ तुम्हें मिलने की नहीं, क्यों व्यर्थ मन चलाने हो । मुहँ चलाना = खाना । महशुष करना । जैसे, तुम खाली क्यों बैठे हो, धीरे धीरे मुहँ चलाने चलो । मुँह पेट चलाना = कै दस्त लाना । हाथ चलाना = मारने के लिये हाथ उठाना । मारना । पीटना ।

(३) कार्य-निर्वाह में समर्थ करना । निभाना । जैसे, हम इन्हें भी जैसे तैसे अपने साथ चला ले जायेंगे । (४) प्रवाहित करना । बहाना । जैसे, मोरी चलाना, हवा चलाना । (५) वृद्धि करना । उन्नति करना । (६) किसी कार्य को अग्रसर करना । किसी काम को जारी वा पूरा करना । जैसे, (क) हमने इस काम को चला दिया है, (ख) काम चलाने भर को इतना बहुत है । (७) आरंभ करना । छेड़ना । जैसे, बात चलाना, जिक्र चलाना । (८) बराबर बनाए रखना । जारी रखना । जैसे, बंध चलाना, नाम चलाना । कारखाना चलाना । (९) खाने पीने की वस्तु परोखना । खाने की चीज आगे रखना । (१०) धाराधर काम में लाना । टिकाना । जैसे, यह कोट अभी आध तीन बरस और चलानेगे । (११) व्यवहार में लाना । लेन देन के काम में लाना । जैसे, इन्होंने वह पोटो रूपया भी चला दिया । (१२) प्रचलित करना । प्रचार करना । जैसे, रीति चलाना, धर्म चलाना । उ०—(क) आप तो यह एक नई रीति चलाने हैं । (ख) मुहम्मद साहब ने मुसलमानों भी चलाया था । (१३) व्यवहृत करना । प्रयुक्त करना । जैसे, तलवार चलाना, लाठी चलाना, कलम चलाना, हाथ पैर चलाना । (१४) तीर गोली आदि छोड़ना । किसी वस्तु को किसी धोर लक्ष्य करके वेग के साथ फेंकना । जैसे, देला वा गुलेला चलाना, किसी वस्तु से प्रहार करना । किसी चीज़ से मारना । जैसे, हाथ चलाना, हँडा चलाना । (१६) किसी व्यवसाय वा व्यापार की वृद्धि करना । काम चमकाना । जैसे, जब सब लोग हार गए तो उन्होंने कारखाना चला कर दिखला दिया । (१७) धाचरण करना । व्यवहार कराना । (१८) धान में से कण्डा उतारते समय उसे सीधा न काड़ कर असावधानी आदि के कारण देटा वा तिरछा फाड़ना । (यजाज)

चलायमान-वि० [सं०] (१) चलनेवाला । जो चलता हो । (२) चंचल । (३) विचलित ।

चलावा-संज्ञा पुं० [हिं० चरना] (१) चलने का भाव । यात्रा । प्रयाण । पयान । रवानगी । उ०—तपस्यत द्यावा जित दीन्हा । वेग चलाव चहुँ दिसि कीन्हा ।—जायसी । (२) दे० “चलावा” ।

चलावना-क्रि० सं० दे० “चलाना” ।
चलावा-संज्ञा पुं० [हिं० चरना] (१) रीति । रूम । रिवाज ।

क्रि० प्र०—चलाना ।
(२) द्विगमन । गौना । मुकलावा । (३) एक प्रकार का उतारा जो प्रायः गावों में भयंकर बीमारी पड़ने के समय किया जाता है । इसे लोग बाजा बनाते हुए अपने गाँव की सीमा के बाहर ले जाकर किसी दूसरे गाँव की सीमा पर रख आते हैं और समझते हैं कि बीमारी इस गाँव से निकल कर उस गाँव में चली गई ।

चलासन-संज्ञा पुं० [सं०] यौद्धों के मत से एक प्रकार का दोष जो सामयिक वृत्त में शासन बदलने के कारण होता है ।

चलित-वि० [सं०] (१) अस्थिर । चलायमान । (२) चलता हुआ ।

यौ०—चलित प्रह ।
संज्ञा पुं० नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा जिसमें डेढ़ी की गति से क्रोध वा खोभ प्रकट होता है ।

चलित प्रह-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रह जिसके फल का कुछ और भोगा जा चुका हो और कुछ भोगने को बाकी रह गया हो । (ज्यो०) ।

चलैया-संज्ञा पुं० [हिं० चरना] चञ्चनेवाला ।

चलाना-संज्ञा पुं० [हिं० चरना] (१) वह कलपा वा लकड़ी का हंडा जिससे दूध, पानी वा और कोई द्रव पदार्थ हिलाया जाता है । (२) वह लकड़ी का टुकड़ा जिससे चरला चलाया जाता है ।

चलौवा-संज्ञा पुं० दे० “चलावा” (१) ।

चलौ-संज्ञा स्त्री० [दे०] तकले पर लपेटा हुआ सूत वा ऊन धादि । कुकड़ी ।

चवकी-संज्ञा स्त्री० दे० “चौकी” ।

चवन्नी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौर(चार का अर्थ) + नाना + ई (प्रत्य०)] चार आने मूल्य का चाँदी का सिक्का ।

चवपैया-संज्ञा स्त्री० दे० “चौपैया” ।

चवर-संज्ञा पुं० दे० “चौर” ।

चवरा-संज्ञा पुं० [सं० चरण] लोथिया ।

चवग-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चवर्ग] च से ज तक के अक्षरों का समूह । इन अक्षरों का उच्चारण तालु से होता है ।

चवल-संज्ञा पुं० [सं०] लोथिया ।

चवाव-संज्ञा स्त्री० [हि० चैवर्ष] चारों ओर से चलनेवाली हवा । एक साथ सब दिशाओं से बहनेवाली वायु उ०—झांगि दवारि पहार उहाँ टहकी कपि लंक यथा खरखीकी । चार धवा चहुँ ओर चली कपटी लपटें सो तमीचर लौकी ।— तुलसी ।

चवाई-संज्ञा पुं० [हि० चवाव] [स्त्री० चवाइन] (१) बड़नामी की चर्चा फैलानेवाला । कलंकमुचक प्रवाद फैलानेवाला । दूसरों की बुराई करनेवाला । निंदक । उ०—(क) मैं तदनी तुम तरुन तन पुगल चवाई गांव । मुखी लैं न यमाइये कबहुँ हमारे गांव ।—पद्माकर । (ख) चौचंद चार चवाइन के चहुँ ओर मचै विरचै करि दाँसी । (ग) चार चवाइनै लै दुरधीन धात्रे न धान तमारो लखात हैं ।—हरिचंद्र । (२) मूठी घात कहनेवाला । व्यर्थ इधर की उधर लगानेवाला । चुगलखोर । उ०—सुगहु कान्ह बलभद्रचवाई जनमत की को भूत । सूरथाम मोहिई गोवन की सीं हैं । माता तू पल ।—सूर ।

चवाउ-संज्ञा पुं० दे० “चवाव” ।

चवालीस-संज्ञा पुं० दे० “चौचासीस” ।

चवाव-संज्ञा पुं० [हि० चैवर्ष] (१) चारों ओर फैलनेवाली चर्चा । प्रवाद । झूठबात । (२) चारों ओर फैली हुई बदनामी । निंदा की चर्चा । किसी की बुराई की चर्चा । उ०—(क) नैनन तें यह भई यड़ाई । घर घर यहै चवाव चलावत हम सेाँ भेंट न माई ।—सूर । (ख) ये प्रह्लाई लोगाईं सरी निलि घोस निधान हमें दहती हैं । बातें चवाव भरी सुनि कै रिस लागति पै चुप हूँ रहती हैं ।—निवाय । (ग) ज्यों ज्यों चवाव चली चहुँ ओर धरे चित चाव ये लोहि ल्यों कोले ।

क्रि० प्र०—करना ।—चलना ।—चलाना ।

(३) पीठ पीछे की निंदा । चुगलखोरी ।

चावि, चाविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चव्य नाम की घोषधि ।

विशेष—दे० “चव” ।

चवैया-संज्ञा पुं० [हि० चैवयु] दे० “चवाई” ।

चव्य, चव्यका-संज्ञा पुं० [सं०] एक घोषधि । दे० “चाव” ।

चव्यजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गमरीपल ।

चवयाँ-संज्ञा स्त्री० दे० “चव्य” ।

चशक-संज्ञा स्त्री० [हि० चशका] वह भोजन जो साहयों के चर्हों से किसी विशेष अक्सर घर चावचिंदों को मिलता है ।

चशाम-संज्ञा स्त्री० दे० “चरम” ।

विशेष—चशाम के यौ० चादि के लिये देखें “चरम” ।

चशामा-संज्ञा पुं० दे० “चरमा” ।

चदम-संज्ञा स्त्री० [फा० चाम] नेत्र । आँसु । लोचन । नयन ।

धौ०—चरमदीद । चरमनुमाई, चादि ।

मुदा०—चरम बंद दूर = सुदी नगर दूर हो । सुदी नगर न दगे ।

विशेष—हस वाक्य का व्यवहार किसी चीज की प्रशंसा करते समय इसे मजूर लगने से बचाने के अभिप्राय से किया जाता है ।

चदमक-संज्ञा स्त्री० [फा० चम] (१) मनमोटाव । वैमनस्य । झुंझाँ । हूँप । (२) चरमा । ऐनक । (३) आँसु का इशारा ।

चदमदीद-वि० [फा०] जो आँसुओं से देखा हुआ हो ।

धौ०—चरमदीद गवाह = वह साक्षी जो अपनी आँसुओं से देखी घटना कहे । यह गवाह जो चरमदीद मानना बचान करे ।

चदमनुमाई-संज्ञा स्त्री० [फा०] घूर कर किसी के मन में भय उत्पन्न करना । घमकी या घुड़की । आँसु दिखाना ।

चरमपोशी-संज्ञा स्त्री० [फा०] आँसु सुराना । सामने न होना । फतराना ।

चरमा-संज्ञा पुं० [फा] (१) कमानी में जड़ा हुआ शीशे या पारदर्शी पत्थर के तालों का जोड़ा जो आँसुओं पर उनका दोष दूर करने, दृष्टि बढ़ाने शयवा धूप, चमक या गर्ई चादि से उनकी रक्षा करने और उन्हें टंटा रखने के अभिप्राय से लगाया जाता है । ऐनक ।

विशेष—चरमे के ताल हरे, लाल, नीले, सफेद और कई रंगों के होते हैं । दूर की चीजें देखने के लिये नतोदर और पास की चीजें देखने के लिये उन्नतोदर तालों का चरमा छाया जाता है ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—लगाना ।—लगाना ।

मुहा०—चरमा लगाना = आँसुओं में चरमा लगाने की आवश्यकता होना । जैसे, अथ तो उनकी आँसु कमजोर हो गई हैं, चरमा लगाता है ।

(२) पानी का सेता । खोत । (३) नदी । छोटा दरिया ।

(४) कोई जन्मदाय ।

चप-संज्ञा पुं० [सं० चयु] नेत्र । आँसु ।

धौ०—चपचाव ।

चपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य पीने का पात्र । वह बरतन जिसमें शराव पीते हैं । उ०—प्राय ये मन रसिक कलित धी लोचन चपक पिबति मकरंद सुख रासि अंतर सची ।—सूर । (२) मद्य । शहद । (३) एक विशेष प्रकार की मद्यिका ।

चपचोल-संज्ञा पुं० [हि० चप + चोल = चल] आँसु की पलक ।

आँसु का परदा । उ०—बलियो कुंडुम गात तें दलि मो नवो निचोल । हुरै दुरायो धरौं सुखत सुखत जुरत चपचोल ।

—ष्ट० सत० ।

चपच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजन । भक्षण । (२) बच करना ।

(३) छप करना ।

चपाल-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के यूप में लगी हुई पशु बाँधने की गाड़ी ।

चस-संज्ञा स्त्री० [दे०] किसी किनारदार कण्डे में किनारे के ऊपर वा नीचे की ओर धनी हुई कलाभयून वा किसी दूसरे रंग के रेशम या सूत की पतली लकीर या धारी ।

चसक-संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) हलका दर्द । कसक । (२) गोटे या शतलस आदि की पतली गोटे या संजाफ या मगजी के धागे लगाई जाती है ।

* संज्ञा पुं० दे० "चपक" ।

चसकाना-कि० अ० [हि० चसक] हलकी पीड़ा होना । मीठा दर्द होना । टीसना ।

चसका-संज्ञा पुं० [सं० चपय] (१) किसी वस्तु (विशेषतः खाने पीने की वस्तु) या किसी काम में एक या अनेक बार मिला हुआ धानद जो प्रायः उस चीज़ के पुनः पाने या उस काम के पुनः करने की इच्छा उत्पन्न करता है । शोक । घाट । (२) इस प्रकार पड़ी हुई धात । खत । उ०—उत्ते शराय पीने का चसका लग गया है ।

क्रि० प्र०—हालना ।—पढ़ना ।—लगना ।

चसना-कि० अ० [सं० चपय] (१) मरना । प्राण त्यागना ।

(२) फंदे में फँस कर किसी मनुष्य का कुछ देना, विशेषतः किसी गाहक का माल खरीदना । (दलाबाँ की परि०)

क्रि० अ० [हि० चागने] दो चीज़ों का एक में सटना । लगना । चपकना । उ०—ज्यों नामी सर एक नाल नय कनक कमल विवि रहे बसी री ।—सूर ।

चसमा-संज्ञा पुं० दे० "चरम" ।

संज्ञा पुं० [दे०] रेशम का सूम्का । रेशम के तानों में निकला हुआ निकम्मा शंश ।

चसमा-संज्ञा पुं० दे० "चरमा" ।

चसका-संज्ञा पुं० दे० "चसका" ।

चसर्पा-वि० [फा०] चिपकाया हुआ । सटया हुआ । खेई आदि से लगाया हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चस्ती-संज्ञा पुं० [दे०] हथेली और तलवों की खुजली ।

चह-संज्ञा पुं० [सं० चय] नदी के किनारे कच्चे घाटों पर लकड़ियों गाड़ कर और घास फूस और बाल आदि से पाट कर बनाया हुआ चबूतरा जिस पर से होकर मनुष्य और पशु आदि नावों पर चढ़ते हैं । पाट ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

* संज्ञा स्त्री० [फा० चाह] गड्ढा । गर्त ।

धौ०—चहबधा ।

चहक-संज्ञा स्त्री० [हि० चहकना] "चहकना" का भाव । लगातार होनेवाला परिचों का मधुर शब्द । चिड़ियों का चह-चह शब्द ।

† संज्ञा पुं० दे० "बहला" ।

चहकना-कि० अ० [अनु०] (१) परिचों का ध्वनिदित होकर मधुर शब्द करना । चहबहाना । (२) उमंग वा प्रसन्नता से अधिक खोजना । (बाग्यत्) ।

चहका-संज्ञा पुं० [सं० चय] हँट या पथर का फूस ।

संज्ञा पुं० [दे०] जलती हुई लकड़ी । लुथायी । लूका ।

मुहा०—चहका देना वा लगाना = रुका लगाना । अग लगाना । जलाना । (खियों की गाली) ।

(३) घनेरी ।

संज्ञा पुं० [हि० चहला] (१) कीचड़ । चहला ।

चहकार-संज्ञा स्त्री० दे० "चहक" ।

चहकारना-कि० अ० दे० "चहकना" ।

चहचहा-संज्ञा पुं० [हि० चहचहाना] (१) 'चहचहाना' का भाव । चहक । (२) हँसी दिल्लीगी । छट्टा । खुलवाना ।

क्रि० प्र०—मचाना ।—मचाना ।

वि० (१) जिसमें चहचह शब्द हो । उल्लास शब्द युक्त ।

उ०—चहचही खुशिल चहूँकित थलीन की ।—रसखान ।

(२) धानद और उमंग उत्पन्न करनेवाला । बहुत मनोहर ।

उ०—चहचही चहल चहूँधा चार चंदन की चंद्रक चुनीन चौक चौकत चढ़ी है आद ।—पद्माकर । (३) ताजा । हाल का ।

चहचहाना-कि० अ० [अनु०] परिचों का चह चह शब्द करना । चहकना । चहकाना ।

चहटा-संज्ञा पुं० [अनु०] कीचड़ । पंक ।

चहता-संज्ञा पुं० [श्री० चहती] दे० "चहेता" ।

चहनना-कि० अ० [हि० चहकना] चहलाना । पचाना । रौंदना ।

मुहा०—चहन कर खाना = बहुत अच्छों तरह खाना । घस कर खाना । उ०—सुचई' पोह पोह धी भई । पाड़े चहन खंड से जेई ।—जायसी ।

चहना-कि० अ० दे० "चाहना" ।

चहनि-संज्ञा स्त्री० दे० "चाह" ।

चहबधा-संज्ञा पुं० [फा० चाह = कुशो + बधा] (१) पानी (विशेषतः गंधा या मल आदि का) भर रखने का छोटा गड्ढा या होना । (२) घन गाड़ने वा दिपा रखने का छोटा सहलाना ।

विशेष—कुछ लोग इसे "चौबधा" भी कहते हैं ।

चहर-संज्ञा स्त्री० [हि० चहर] (१) धानद की भूस । धानदो-त्सव । रौनक । उ०—हरर भए नैंद करत पथाई दान देत कहा कहीं महर की । पंच शब्द ध्वनि धागत नापत । गायत मंगलचार चहर की ।—सूर ।

(२) जोर का शब्द । शोरगुल । हल्ला । उ०—मयति धधि जसुमति मयानी धुनि रदी पर गहरि । धवन सुमति न महरि

घाते जहाँ तराई गई चहरि।—सूर। (३) उपत्रय। उपात।
 ३०—सुत को धरति शकै। महरि।.....जमुन
 तंत हरि देख ठाड़े इरति आवे। चहरि। सूर स्वामिहँ। नेक
 धरति करत है अति चहरि।—सूर।

वि० (१) चक्रिया। उत्तम। (२) चुल्लुका। तेज। ३०—
 गुरु गिरि गिरी गुलगुल से, गुलाब रंग चहर धार चटकीले
 हैं बलक के।—सूदन।

चहरना।—कि० अ० [हि० चहर] आनंदित होना।
 प्रसन्न होना। ३०—आनंद भरी जसोदा उमगि श्रंग न
 समाति, आनंदित भई गोपी शकति चहरि के।—सूर।

चहरना।—कि० अ० (१) दे० “चहरना”। (२) “धरना”।
 कि० अ० [दे०] धरकना। पटना। तड़कना। चटकना।
 चहर्दैन—वि० दे० “चहारन”।

चहल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) कीचड़। कीच। कदम। ३०—
 चहलचहल चहल चहूँया चारु चंदन की चंदक चुनीन चौर
 चौकन चड़ी है आव।—पद्मकर। (२) कीचड़ मिली हुई
 कड़ी चिकनी मिट्टी की ज़मीन जिसमें बिना हल चलाए
 जोताई होती है।

संज्ञा स्त्री० [हि० चहलचहल] आनंद की धूस। आनंदोत्सव।
 रौनक।

या०—चहल पदल।

चहलकदमी—संज्ञा स्त्री० [हि० चहल + का० कदम] धीरे धीरे
 टहलना, धूमना या चलना।

चहलपहल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) किसी स्थान पर बहुत से
 लोगों के आने जाने की धूम। धयादागी। (२) बहुत से
 लोगों के आने जाने के कारण किसी स्थान पर होनेवाली
 रौनक। आनंदोत्सव। आनंद की धूम।

कि० प्र०—मचना।—होना।

चहला।—संज्ञा पुं० [सं० चिकित्सा] कीचड़। पंक। ३०—चंदन के
 चहला में परी परी पंकज की पैसुरी नरमी में।

चहली।—संज्ञा स्त्री० [दे०] कुएँ से पानी खींचने की चरली।
 गाराड़ी। गिरनी।

चहलुम—संज्ञा पुं० दे० “बेहलुम”।

चहारदीवारी—संज्ञा स्त्री० [का०] किसी स्थान के चारों ओर की
 दीवार। प्राचीर। कोट। परिसर।

चहाहाम—वि० [का०] किसी वस्तु के चार भागों में से एक भाग।
 चतुर्थांश। चौथाई।

चहूँ—वि० [हि० चर] चार। चारों।

चिरोप—वह शब्द यौगिक के पहले आता है। जैसे, चहूँया,
 चहूँक (चारों ओर) आदि।

चहूँक—संज्ञा स्त्री० दे० “चिहूँक”।

चहुरा।—वि० पुं० (१) दे० “चौधरा”। (२) “चौधरा”।

चहुरी।—संज्ञा स्त्री० [हि० चहुर] एक पात्र या मान।

चहुधान—संज्ञा पुं० दे० “चौहान”।

चहुँ—वि० दे० “चहुँ”।

चहूँटना।—कि० अ० [हि० चिमटना] सटना। छगना। मिलना।

३०—दोरी लागी भय मिटा, मन पाया विश्राम। चित्त
 चहूँया राम सो, यहाँ के बल धाम।—कवीर।

चहेटना—कि० सं० [?] (१) किसी चीज को दबाकर
 उसका रस या सार भाग निकालना। सारना। निचोड़ना।
 ३०—चंद चहेदि समेदि सुधारस कीन्हों तयै तिय के सच-
 रान के। (२) दे० “चपेटना”।

चहेना—वि० [हि० चहना + एता (प्रत्य०)] [जी० चहेत] जिसके
 साथ प्रेम किया जाय। जिसे चाहा जाय। प्यारा।

चहेती—वि० स्त्री० [हि० चहना] प्यारी। जिसे चाहा जाय।
 जैसे, चहेती स्त्री।

चहेल।—संज्ञा स्त्री० [हि० चहला] (१) चहला। कीचड़। (२)
 वह भूमि जहाँ कीचड़ बहुत हो। दलदली भूमि।

चहेरना।—कि० अ० [दे०] (१) धान वा अन्य किसी वृष्ट के
 पीपे को एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाना।
 रोपना। बँटाना। (२) सहेरना। सँभालना। देख भाव कर
 मुरजित करना। ३०—काटी फूटी माछुरी धुँके घरी चहेरि।
 कोह एक श्रीगुन मन बसा दह में परी बहोरि।—कवीर।
 हि० सं० दे० “चहेरना”।

चहेरा—संज्ञा पुं० [हि० चहेरना] अड़हन धान, जिसे रोपुवा धान
 भी कहते हैं।

चहिं—वि० [सं० चंचुर = दया वा दे०] चहिं = नैपाल की एक जंगली
 जाति जो टक्का बलती है। (१) टग। वचक्र। (२) शक्ति-
 धार। छली। चालाक।

सहा स्त्री० [?] सिर में होनेवाली एक प्रकार
 की फुसियाँ जिनसे बाल रुद्ध जाते हैं।

वि० जिसके बाल रुद्ध होयें। गंसा।

चहिं चूई—संज्ञा स्त्री० [?] सिर में होनेवाली एक
 प्रकार की फुसियाँ जिनके कारण बाल गिर जाते हैं।

चाँक—संज्ञा पुं० [हि० ची = चर + षंक = चिद्र] (१) काठ की बह
 यापी जिस पर शरध वा चिद्र खुदे होते हैं और जिससे
 खलियान में शरध की राशि पर ठण्डा हुआ चिद्र। (२) खलि-
 यान में शरध की राशि पर ठण्डा हुआ चिद्र। (३) डेटके
 के लिये शरीर के किसी पीड़ित स्थान के चारों ओर खींचा
 हुआ घेरा। गोट।

चाँकना—कि० सं० [हि० चँक] (१) खलियान में शरध की
 राशि पर मिट्टी, राख वा टप्रे से ढाया लगाकर कितने बदि
 अनाज निकाला जाय तो सालूम हो जाय। ३०—जुबलै

चल-संज्ञा स्त्री० [दे०] किसी किनारदार कण्डे में किनारे के ऊपर वा नीचे की ओर बनी हुई कलापत्तन वा किसी दूसरे रंग के रेशम वा मूत की पतली लकीर या धारी ।

चलक-संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) हलका दर्द । कसक । (२) गोटे या अतलस छादि की पतली गोटे या संज्ञाफ या मगजी के आगे लगाई जाती है ।

* संज्ञा पुं० दे० "चपक" ।

चलकाना-क्रि० अ० [हिं० चलक] हलकी पीड़ा होना । मीठा दर्द होना । टीसना ।

चलका-संज्ञा पुं० [सं० चपय] (१) किसी वस्तु (विशेषतः खाने पीने की वस्तु) या किसी काम में एक या अनेक बार मिला हुआ आनंद जो प्रायः उस चीज़ के पुनः पाने या उस काम के पुनः करने की इच्छा उत्पन्न करता है । शोक । घाट । (२) इस प्रकार पड़ी हुई आदत । लत । उ०—उसे शराब पीने का चलका लग गया है ।

क्रि० प्र०—बालना ।—पढ़ना ।—लगना ।

चलना-क्रि० अ० [सं० चपय] (१) मरना । प्राण त्यागना ।

(२) फंदे में फँस कर किसी मनुष्य का कुछ देना, विशेषतः किसी गाहक का माल खरीदना । (दुआलों की परि०) क्रि० अ० [हिं० चाननी] दो चीज़ों का एक में सटना ।

चलना । चपकना । उ०—ज्यों नाभी सर एक नाल नव कनक लगना । चिपि रहे चस्ती री ।—सूर ।

चलमा-संज्ञा पुं० दे० "चरम" ।

संज्ञा पुं० [दे०] रेशम का सुम्फा । रेशम के तापों में निकला हुआ निकम्मा शंश ।

चलमा-संज्ञा पुं० दे० "चरमा" ।

चलका-संज्ञा पुं० दे० "चलका" ।

चलपा-वि० [फा०] चिपकाया हुआ । सटाया हुआ । जेड़े आदि से लगाया हुआ ।

क्रि० प्र०—फरना ।—होना ।

चलसी-संज्ञा पुं० [दे०] दबेली और तलवों की खुजली ।

चह-संज्ञा पुं० [सं० चय] नदी के किनारे कच्चे घाटों पर लकड़ियों गाड़ कर और घास फूस और बाल आदि से पाट कर बनाया हुआ चवूतरा जिस पर से होकर मनुष्य और पशु आदि नावों पर चढ़ते हैं । पाट ।

क्रि० प्र०—बाँचना ।

* संज्ञा स्त्री० [फा० चाह] गड्डा । गर्त ।

धौ०—चहबचा ।

चहक-संज्ञा स्त्री० [हिं० चहकना] "चहकना" का भाव । लगातार होनेवाला पचियों का मधुर शब्द । चिड़ियों का चह-चह शब्द ।

† संज्ञा पुं० दे० "बहला" ।

चहकना-क्रि० अ० [भनु०] (१) पचियों का आनंदित होकर मधुर शब्द करना । चहबहाना । (२) उमंग वा प्रसन्नता से अधिक बोलना । (बाजारू) ।

चहका-संज्ञा पुं० [सं० चय] हूँट या पथर का फुर्श ।

संज्ञा पुं० [दे०] जलती हुई लकड़ी । लुआठी । लूका ।

मुहा०—चहका देना वा लगाना = लूका झगाना । आग लगाना । जलाना । (खिणों की गाळी) ।

(३) येनेडी ।

संज्ञा पुं० [हिं० चहका] (१) कीचड़ । चहला ।

चहकार-संज्ञा स्त्री० दे० "चहक" ।

चहकारना-क्रि० अ० दे० "चहकना" ।

चहचहाना-संज्ञा पुं० [हिं० चहचहाना] (१) "चहचहाना" का भाव । चहक । (२) हँसी दिखाना । हँसना । चुहलवाणी ।

क्रि० प्र०—मचाना ।—मचाना ।

वि० (१) जिसमें चहचह शब्द हो । उल्लास शब्द युक्त ।

उ०—चहचही खुदिल चहूँ कित अलीन की ।—स्खान ।

(२) आनंद और उमंग उत्पन्न करनेवाला । बहुत मनेहर ।

उ०—चहचही चहल चहूँ धा चार बंदन की चंद्रक चुनीन चौक चौकत चड़ी है आय ।—पद्माकर । (३) ताजा । हाल का ।

चहचहाना-क्रि० अ० [भनु०] पचियों का चह चह शब्द करना । चहकना । चहकारना ।

चहटा-संज्ञा पुं० [भनु०] कीचड़ । पंक ।

चहता-संज्ञा पुं० [श्री० चहती] दे० "चहती" ।

चहनना-क्रि० अ० [हिं० चहकना] चहलना । दयाना । रौंदना ।

मुहा०—चहन कर खाना = बहुत अच्छे तरह खाना । कस कर खाना । उ०—लुच्छे पोह पोह धी भेई । पाछे चहन खाँड से जेई ।—जायसी ।

चहना-क्रि० अ० दे० "चाहना" ।

चहनि-संज्ञा स्त्री० दे० "चाह" ।

चहबचा-संज्ञा पुं० [फा० चाह = कुश + बचा] (१) पानी (विशेषतः गंदा या नल आदि का) भर रखने का छोटा गड्डा या हाँस । (२) घन गाड़ने वा छिपा रखने का छोटा तहखाना ।

विशेष—कुछ लोग इसे "चौबचा" भी कहते हैं ।

चहर-संज्ञा स्त्री० [हिं० चहर] (१) आनंद की धूस । आनंदोत्सव । रौनक । उ०—दरल मप नैद करत घाई दान देत कहा कहीं महर की । पंच शब्द ध्वनि बाजत नाचत रावत मंगलधार चहर की ।—सूर ।

(२) जोर का शब्द । जोर धरल । हहा । उ०—मषति दधि जसुमति मषानी धुनि रशी घर गहरि । श्रवन सुनति न महरि ।

बाले जहाँ तहाँ गई बहुरि।—सूर। (३) उपद्रव। उपात।
 उ०—सुत को धरनि शरीर। बहुरि।.....जमुन
 तट हरि देख ठाढ़े धरनि आवे। बहुरि। सूर स्वामिहि नेक
 धरनि करत है श्रति बहुरि।—सूर।
 वि० (१) बहुरि। उपात। (२) पुलबुजा। तेज। उ०—
 गुरु गिरि गिरी गुलगुल से, गुलाब रंग बहुर धगर चटकीले
 हैं बलक के।—सुन्दर।

बहुरना।—क्रि० अ० [हि० बहुर] आनंदित होना।
 प्रसन्न होना। उ०—आनंद भरी जसोदा उमगी श्रंग न
 समाति, आनंदित भई गोपी गावति बहुरि के।—सूर।
 बहुराना।—क्रि० अ० (१) दे० “बहुराना”। (२) “बहुराना”।
 क्रि० अ० [दे०] दरकना। फटना। तड़कना। चटकना।
 बहुरेप-वि० दे० “बहुरास”।

बहुरल-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कीचड़। कीच। कदम। उ०—
 बहुरल बहुरल बहुरे पा चार चंदन की चंदक चुनीन चौक
 चौकन चड़ी है आष।—पद्माकर। (२) कीचड़ मिली हुई
 कड़ी चिकनी मिट्टी की जमीन जिसमें विना हल चलाए
 जेतनाई होती है।
 संज्ञा स्त्री० [हि० बहुरबहुराना] आनंद की भूम। आनंदोत्सव।
 रौनक।

बा०—बहुरल बहुरल।
 बहुरलकदमी-संज्ञा स्त्री० [हि० बहुरल + का० कदम] धीरे धीरे
 टहलना, धूमना या खलना।
 बहुरल पडल-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) किसी स्थान पर बहुत से
 लोगों के धागे जाने की भूम। धवादागी। (२) बहुत से
 लोगों के धाने जाने के कारण किसी स्थान पर होनेवाली
 रौनक। आनंदोत्सव। आनंद की भूम।
 क्रि० प्र०—मचलना।—होना।

बहुरल।—संज्ञा पुं० [सं० विक्रम] कीचड़। पंक। उ०—चंदन के
 बहुरल में परी परी पंकज की पैसुरी मरमी में।
 बहुरली।—संज्ञा स्त्री० [दे०] हुए से पानी लींचने की थरती।
 गाराड़ी। चिरनी।
 बहुरलुम-संज्ञा पुं० दे० “बहुरलुम”।
 बहुरादीयारी-संज्ञा स्त्री० [का०] किसी स्थान के चारों ओर की
 दीवार। प्राचीर। कोट। परिया।
 बहुरास-वि० [का०] किसी वस्तु के चार भागों में से एक भाग।
 चतुर्थांश। चौथाई।

बहुरे।—वि० [हि० चर] चार। चारों।
 विशेष—बहुर शब्द यौगिक के पहले आता है। जैसे, बहुरे पा,
 बहुरे चक (चारों ओर) ब्रादि।
 बहुरेक-संज्ञा स्त्री० दे० “बहुरेक”।
 बहुरेरी-वि० पुं० (१) दे० “बौधरा”। (२) “बौधरा”।

बहुरी।—संज्ञा स्त्री० [हि० बहुर] एक पात्र या मान।
 बहुरयान-संज्ञा पुं० दे० “बौधरा”।
 बहुरे-वि० दे० “बहुरे”।
 बहुरेना।—क्रि० अ० [हि० चिमरना] सटना। लगना। मिलना।
 उ०—देरी लागी भय मिटा, मन पाया विघ्नान। चित्त
 बहुरे टा राम से, धारी के बल धाम।—कधीर।

बहुरेना-क्रि० स० [?] (१) किसी चीज को पृथक्कर
 उसका रस वा सार भाग निकालना। गारना। निचोड़ना।
 उ०—चंद बहुरे ट समेटि सुधारस कीन्हें तबै तिय के अघ-
 रान को। (२) दे० “चपेटना”।
 बहुरेना-वि० [हि० बहुरना + घा (प्रत्य०)] [स्त्री० बहुरेना] जिसके
 साथ प्रेम किया जाय। जिसे चाहा जाय। प्यारा।

बहुरेती-वि० स्त्री० [हि० बहुरना] प्यारी। जिसे चाहा जाय।
 जैसे, बहुरेती स्त्री।
 बहुरेला-संज्ञा स्त्री० [हि० बहुरला] (१) बहुरा। कीचड़। (२)
 वह भूमि जहाँ कीचड़ बहुत हो। दलदली भूमि।

बहुरेना।—क्रि० अ० [दे०] (१) धान वा अन्य किसी वृष्ट के
 पीपे को एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाना।
 रोपना। बँधाना। (२) सहोचना। संभालना। देख भाव कर
 सुरक्षित करना। उ०—काटी कूटी माधुरी धुँके घरी बहुरे।
 कोह एक धाँगुन मन बसा दह में परी बहुरे।—कधीर।
 क्रि० स० दे० “बहुरेना”।

बहुरेरा-संज्ञा पुं० [हि० बहुरेरा] जड़हन धान, जिसे रोपुवा धान
 भी कहते हैं।

बहुरे-वि० [सं० बहुरे = दण वा दे० बहुरे = नैराज की एक जंगली
 जाति जो हफ्ता बहुरे दे] (१) ठग। बचका। (२) होसि-
 पार। छली। चालाक।
 बहुरे स्त्री० [?] सिर में होनेवाली एक प्रकार
 की फुसियाँ जिनसे बाल कट जाने हैं।
 वि० जिसके बाल कट गये हों। गला।

बहुरे-संज्ञा स्त्री० [?] सिर में होनेवाली एक
 प्रकार की फुसियाँ जिनके कारण बाल गिर जाते हैं।

बहुरे-संज्ञा पुं० [हि० ची = चर + बंक = चिब] (१) काठ की बड़
 धारी जिस पर अक्षर वा चिह्न खुदे होने हैं धार जिससे
 सखियान में अक्षर की राशि पर ठप्या लगाते हैं। (२) सखि-
 यान में धन की राशि पर ठप्या हुआ चिह्न। (३) टोटके
 के छिपे शरीर के किसी पीड़ित स्थान के चारों ओर खींचा
 हुआ घेरा। गोट।

बहुरेना-क्रि० स० [हि० बहुरे] (१) सखियान में धनाज की
 राशि पर मिट्टी, रत्न वा ठप्ये से छापना जिनमें यदि
 धनाज निकलता जाय तो सान्त्वना हो जाय। उ०—गुबली

चल-संज्ञा स्त्री० [दे०] किसी किनारेदार कपड़े में किनारे के ऊपर या नीचे की ओर बनी हुई कलापट्टन या किसी दूसरे रंग के रेसम या सूत की पतली लकीर या धारी ।

चलक-संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) हलका दूद । कसक । (२) गोटे या अतलस आदि की पतली गोटे जो संज्ञाफ या मगजी के आगे लगाई जाती है ।

✽ संज्ञा पुं० दे० "चपक" ।

चलकाना-क्रि० अ० [हि० चलक] हलकी पीड़ा होना । मीठा दर्द होना । टीसना ।

चलका-संज्ञा पुं० [सं० चपय] (१) किसी वस्तु (विशेषतः खाने पीने की वस्तु) या किसी काम में एक या अनेक बार मिला हुआ आनंद जो प्रायः उस चीज के पुनः पाने या उस काम के पुनः करने की इच्छा उत्पन्न करता है । शौक । चाट । (२) इस प्रकार पढ़ी हुई आदत । लत । उ०—उसे शराब पीने का चलका लग गया है ।

क्रि० प्र०—हालना ।—पढ़ना ।—लगना ।

चलना-क्रि० अ० [सं० चपय] (१) मरना । प्रायः त्यागना । (२) फंदे में फँस कर किसी मनुष्य का कुछ देना, विशेषतः किसी ग्राहक का माल लरीदना । (दलालों की परि०) क्रि० अ० [हि० चालनी] दो चीजों का एक में सटना । लगना । चपकना । उ०—ज्यों नारी सर एक नाल नय फनक कमल विधि रहे चली री ।—सूर ।

चलमा-संज्ञा पुं० दे० "चरम" ।

संज्ञा पुं० [दे०] रेसम का सुजफा । रेसम के सागों में निकला हुआ निकमा अंश ।

चलमा-संज्ञा पुं० दे० "चरमा" ।

चलका-संज्ञा पुं० दे० "चलका" ।

चलर्पा-वि० [फा०] चिपकाया हुआ । सटया हुआ । खेड़े आदि से लगाया हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चल्ली-संज्ञा पुं० [दे०] हथेली और तलवों की चुन्नी ।

चल-संज्ञा पुं० [सं० चय] नदी के किनारे कच्चे घाटों पर लकड़ियों गाड़ कर और घास फूस और बाल आदि से पाट कर बनाया हुआ चयूहा जिस पर से होकर मनुष्य और पशु आदि नारों पर चक्करे हैं । पाट ।

क्रि० प्र०—चलना ।

✽ संज्ञा स्त्री० [फा० चह] गड्ढा । गर्त ।

धो०—चहवा ।

चहवा-संज्ञा स्त्री० [हि० चहकना] "चहकना" का भाव । लगातार होनेवाला पक्षियों का मधुर शब्द । चिड़ियों का चह-चह शब्द ।

† संज्ञा पुं० दे० "चहला" ।

चहकना-क्रि० अ० [अ०] (१) पक्षियों का आनंदित होकर मधुर शब्द करना । चहचहाना । (२) उमंग वा प्रसन्नता से अधिक बोलना । (बाजारू) ।

चहका-संज्ञा पुं० [सं० चय] हँट या पथर का पुरा ।

संज्ञा पुं० [दे०] जलती हुई लकड़ी । लुआरी । लूका ।

मुहा०—चहका देना वा लगाना = दूक लगाना । आग लगाना । जलाना । (छियों की गाली) ।

(३) बनेदी ।

संज्ञा पुं० [हि० चरहा] (१) कीचड़ । चहला ।

चहकार-संज्ञा स्त्री० दे० "चहक" ।

चहकारना-क्रि० अ० दे० "चहकना" ।

चहचहा-संज्ञा पुं० [हि० चहचहाना] (१) 'चहचहाना' का भाव । चहक । (२) हँसी दिखली । टट्टा । चुहलवाजी ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।

वि० (१) जिसमें चहचह शब्द हो । उल्लास शब्द युक्त ।

उ०—चहचही खुदिल चहूँ कित अलीन की ।—रसखान ।

(२) आनंद और उमंग उत्पन्न करनेवाला । बहुत मनोहर ।

उ०—चहचही चहल चहूँ धा पारु चंदन की चंद्रक चुनीन चौक चौकत चढ़ी है शाय ।—पद्माकर । (३) ताना । हाल का ।

चहचहाना-क्रि० अ० [अ०] पक्षियों का चह चह शब्द करना । चहकना । चहकारना ।

चहटा-संज्ञा पुं० [अ०] कीचड़ । पंक ।

चहता-संज्ञा पुं० [फा० चहकी] दे० "चहेता" ।

चहनना-क्रि० अ० [हि० चहकना] चहलना । दवाना । रौंदना ।

मुहा०—चहन कर खाना = बहुत अच्छी तरह खाना । कस कर खाना । उ०—लुचई पोह पोह धी भेई । पाछे चहन खाई से जेई ।—जायसी ।

चहना-क्रि० अ० दे० "चाहना" ।

चहनि-संज्ञा स्त्री० दे० "चाह" ।

चहवथा-संज्ञा पुं० [फा० चाद = कुण्ड + तथा] (१) पानी (विशेषतः गंधा या मज आदि का) भर रखने का छोटा गड्ढा या होत । (२) घन गाड़ने या छिद्रा रखने का छोटा तहखाना ।

विशेष—कुण्ड लोग इसे "चौवथा" भी कहते हैं ।

चहर-संज्ञा स्त्री० [हि० चहर] (१) आनंद की भूस । आनंदोत्सव । रौनक । उ०—हरस भए नैंद करंत यथाई दान देत कहा कहैं महर की । पंच शब्द ध्वनि बाजत नाचत गावत मंगलचार चहर की ।—सूर ।

(२) जोर का शब्द । शोरशुल । हहा । उ०—मथति दधि असुमति मथानी सुनि रही घर गहरि । श्रवण सुनति न महरि

घाते" जहाँ तहाँ गई चहरि।—सूर। (३) उपद्रव। बयात।
 उ०—सूत को पजनि रामी महरि।.....जमुन
 तट हरि देख टाढ़े करनि आवै" चहुरि। सूर स्वामहि" नेक
 परनी करत है प्रति चहरि।—सूर।
 वि० (१) बड़िया। उचम। (२) चुलडुला। तेज। उ०—
 गूढ़ गिरि गिरी शुभ्रगुन से, गुलाब रंग चहर धगर चटकीले
 हैं बरक के।—सुदन।
 चहरना। *—कि० अ० [हि० चहर] आनंदित होना।
 मस्त होना। उ०—आनंद भरी जलोदा उमगि श्रंग न
 समाति, आनंदित भाई गोपी गावति चहरि के।—सूर।
 चहरना। *—कि० अ० (१) दे० "चहरना"। (२) "चराना"।
 कि० अ० [दे०] दरकना। फटना। तड़कना। चटकना।
 चहर्षम—वि० दे० "चहारम"।
 चहल—संज्ञा स्त्री० [धनु०] (१) कीचड़। कीच। कदम। उ०—
 चहचही चहल चहूया चार चंदन की चंदक सुनीन चौक
 चौकन चरी है आष।—पद्माकर। (२) कीचड़ मिली हुई
 कड़ी चिकनी मिट्टी की ज़मीन जिसमें बिना दल चलाए
 जानाई होती है।
 संज्ञा स्त्री० [हि० चहचहाना] आनंद की धूम। आनंदोत्सव।
 रोसक।
 घा०—चहल पहर।
 चहलक्रदमी—संज्ञा स्त्री० [हि० चहल + क्र० कदम] धीरे धीरे
 टहलना, धूमना या चलना।
 चहल पहर—संज्ञा स्त्री० [धनु०] (१) किसी स्थान पर बहुत से
 लोगों के आगे जाने की धूम। अचादनी। (२) बहुत से
 लोगों के आने जाने के कारण किसी स्थान पर होनेवाली
 रौनक। आनंदोत्सव। आनंद की धूम।
 कि० प्र०—मचना।—होना।
 चहला। *—संज्ञा पुं० [सं० चिह्न] कीचड़। पंक। उ०—चंदन के
 चहला में परी परी पंकज की पैसुरी नरमी में।
 चहली। *—संज्ञा स्त्री० [दे०] कुई से पानी खींचने की चरकी।
 गराड़ी। विरती।
 चहलुम—संज्ञा पुं० दे० "बेहलुम"।
 चहारदीवारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] किसी स्थान के चारों ओर की
 दीवार। आधीर। कोट। परिसर।
 चहाकम—वि० [फा०] किसी वस्तु के चार भागों में से एक भाग।
 चतुर्थांश। चौथाई।
 चहूँ—वि० [हि० चार] चार। चारों।
 चिहोप—यह शब्द यौगिक के पहले आता है। जैसे, चहूँ धा,
 चहूँ चक (चारों ओर) आदि।
 चहूँक—संज्ञा स्त्री० दे० "चिहुँक"।
 चहुरा। *—वि० पुं० (१) दे० "चौरा"। (२) "चौरा"।

चहुरी। *—संज्ञा स्त्री० [हि० चहुर] एक पात्र या मान।
 चहूचान—संज्ञा पुं० दे० "चौहान"।
 चहूँ—वि० दे० "चहूँ"।
 चहूँटना। *—कि० अ० [हि० चिमटना] सटना। खगना। मिलना।
 उ०—दोरी लागी भय मिटा, मन पाया विश्राम। चिच
 चहूँटा राम से, गारी के बल घाम।—कवीर।
 चहेटना—कि० स० [?] (१) किसी चीज को दबाकर
 उसका रस या सार भाग निकालना। गारना। निचोड़ना।
 उ०—चंद चहेटि समेटि सुधारस कीन्हें तवै तिय के अघ-
 रान को। (२) दे० "चपेटना"।
 चहेना—वि० [हि० चहना + फल (प्रय०)] [स्त्री० चहेत] जिसके
 साथ प्रेम किया जाय। जिसे चाहा जाय। प्यारा।
 चहेती—वि० स्त्री० [हि० चहना] प्यारी। जिसे चाहा जाय।
 जैसे, चहेती स्त्री।
 चहेल। *—संज्ञा स्त्री० [हि० चहल] (१) चहला। कीचड़। (२)
 वह भूमि जहाँ कीचड़ बहुत हो। दलदली भूमि।
 चहारना। *—कि० अ० [दे०] (१) धान या अन्य किसी वृष के
 पीधे को एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाना।
 रोपना। बैधाना। (२) सहेजना। सँभालना। देख भाव कर
 सुरक्षित करना। उ०—फाटी चूटी मासुरी धोँके घरी चहोरी।
 केह एक शँगुन मर बसा दूह में परी बहोति।—कवीर।
 कि० स० दे० "चोराना"।
 चहारा—संज्ञा पुं० [हि० चहोना] अड़हन धान, जिसे रोपना धान
 भी कहते हैं।
 चहई—वि० [सं० चंजुर = दान वा दे० चहई = नैपाल की एक जंगली
 नाति जो दूका डालती है] (१) ठग। उचका। (२) होशियार।
 झुली। चालाक।
 संज्ञा स्त्री० [?] स्त्रि में होनेवाली एक प्रकार
 की कुंसियाँ जिनसे बाल झड़ जाते हैं।
 वि० जिसके बाल झड़ गये हों। गंवा।
 चहई चूई—संज्ञा स्त्री० [?] स्त्रि में होनेवाली एक
 प्रकार की कुंसियाँ जिनके कारण बाल गिर जाते हैं।
 चाँक—संज्ञा पुं० [हि० चौ = चर + चक = चिद] (१) काठ की बड़
 धारी जिस पर अक्षर या चिह्न खुदे होते हैं और जिससे
 एसियान में अक्षर की राशि पर ठप्पा लगाते हैं। (२) खलि-
 यान में अन्न की राशि पर डाला हुआ चिह्न। (३) टोटके
 के खिमे शरीर के किसी पीढ़िन स्थान के चारों ओर खींचा
 हुआ धरा। गोट।
 चाँकना—कि० स० [हि० चँक] (१) खलियान में अन्न की
 राशि पर मिट्टी, राख या ठप्पे से ढाया क्षयाना जिसमें यदि
 अन्न निकाला जाय तो सत्व्य हो जाय। उ०—मुचसु

तिलोका की समृद्धि सौत्र संपदा समकेलि चाँकि राखी राखि जाँगद सहान गो।—तुलसी। (२) सीमा चाँपने के लिये किसी वस्तु को रेखा या चिह्न खींच कर चारों ओर से घेरना। हृद खींचना। हृद बाँचना। उ०—सकल भुवन शोभा अनु चाँकी।—तुलसी। (३) पहचान के लिये किसी वस्तु पर चिह्न डालना।

चाँका—संज्ञा पुं० दे० “चाँक”।

चाँगाड़ा—संज्ञा पुं० [देग०] तिस्रुत देग का एक प्रकार का धररा।

चाँगाळा—वि० [सं० चग, हिं० चंगा] (१) स्वस्थ। संतुष्ट। हृष्ट। पुष्ट। (२) चतुर। चालाक।

संज्ञा पुं० घोड़ों का एक रंग।

चाँगिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टी जैनी। धमलोनी जिसका साग होता है।

चाँचर, चाँचरि—संज्ञा स्त्री० [सं० चचरी] वसंत ऋतु में गाया जानेवाला एक राग। चचरी राग जिसके श्रतगत, होली, फाग, लेद हत्यादि माने जाते हैं। उ०—तुलसिदाम चाँचरि मिसु, कहे राम गुण प्राम।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) यह जमीन जो एक वर्ष तक वा कई वर्षों तक बिना जोती बोरें छोड़ दी जाय। परती छोड़ी हुई जमीन। (२) एक प्रकार की मटियार भूमि।

संज्ञा पुं० [देग०] टट्टी वा परदा जो किवाड़ के बदले काम में लाया जाय।

चाँचल्य—संज्ञा पुं० [सं०] चंचलता। चालता।

चाँचिया मलयत, चाँचिया जहाज—संज्ञा पुं० [हिं० चई] हाकुरों का जहाज जो समुद्र में सौदागरी के जहाजों को लुटता है।

चाँचु—संज्ञा पुं० [सं० चंचु] चाँच। उ०—प्रकासुर रचि रूप माया रखी छल करि श्राद। चाँचु पकरि पुहुमी लागई इक शकास समाद।—सूर।

चाँट—संज्ञा पुं० [हिं० लीटा] (१) हवा में उड़ता हुआ जत्र कण का प्रवाह जो तूफान आने पर समुद्र में उड़ता है। (लंश०)

मुहा०—चाँट मारना = जहाज के वाहरी किनारे के तरतों पर या पान पर पानी छिड़कना। (यह पानी इस लिये छिड़का जाता है जिसमें तरतों पर जी गरमी से न चिटनें या पाल कुछ भारी हो जाय।

चाँटा—संज्ञा पुं० [हिं० चिमतना] [सं० चैटी] चाँटा। चिँटा। उ०—(क) मेरे दूर फूल जस काँटा। दूर जो मेरे जस गुर चाँटा।—जायसी। (ख) श्रद्धल कहीं प्रपमें जस दोई। चाँटा चलेत न दुखवै कोई।—जायसी।

संज्ञा पुं० [अनु० चट वा सं० चट = तोड़ना] धपड़। समाचा। धपत।

क्रि० प्र०—तड़ना।—देना।—मारना।—खगाना।

चाँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँटा] (१) चाँटी। उ०—कीन्देसि जावा,

इंदुर, चाँटी।—जायसी। (२) यह कर जो पहले कारीगरों पर लगाया जाता था। (३) तबले की संज्ञापदार मंगनी जिस पर तबला बजाते समय तर्जनी डंगली पड़ती है। (४) तबले का यह शब्द जो इस स्थान पर तर्जनी डंगली का आघात पड़ने से होता है।

चाँड़—वि० [सं० चंड] (१) प्रयत्न। यत्नवान। उ०—दान कृपान बुद्धिबल चाँड़े।—लाल। (२) धर्म। उद्धत। शोच्य। उ०—घोर धरतु फल पावहुगे। अपने ही पिय के सुख चाँड़े कयहु तो बस श्रावहुगे।—सूर। (३) बढ़ा चढ़ा। श्रेष्ठ। (४) गैस। संतुष्ट। आघाया हुआ। अफरा हुआ। उ०—ऊयो सुहरी रात इमि निमि रोमगी हित मीढ़। जो जेवत है सोरें सरें सो किमि होवै चाँड़।—विश्राम।

संज्ञा स्त्री० [सं० चड = मरु] (१) टेक। धूनी। मार सँभालने का खंभा।
क्रि० प्र०—देना।—लगाना।
(२) भारी जबरत। किसी पैसी बात की आवश्यकता जिसके बिना कोई काम तुरंत विगड़ता हो। तात्कालिक आवश्यकता। किसी अभावपूर्ति के निमित्त आकुलता। गहरी चाँड़। भारी खालसा। उ०—सुहँ जय रूप की चाँड़ लागती है तब हमारे पास श्राते हो।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—चाँड़ सरना = इच्छा पूरी होना। काम पूरा होना। आगतता पूरी होना। उ०—तोरे धनुष चाँड़ नहिँ सरई। जीवत हमहिँ कुँवरि को वरई।—तुलसी। चाँड़ सराना = इच्छा पूरी करना। आगतता मिटाना। उ०—उरुष भँवर दिन चारि धापने अयना चाँड़ सराये।—सूर।
(३) दबाव। संकट। उ०—सुम जब गहरी चाँड़, लगायो तमी रुपया निकलेगा। (४) प्रबल इच्छा। गहरी चाँड़। छुटपटी। दे० “चाँड़”। (५) प्रवृत्ता। अधिकता। बढ़ती। उ०—भोजन बलीरतनेम भप मतिराम सदा यरा चाँड़न हीमें।—मतिराम।

क्रि० प्र०—लगाना।

चाँड़ना—क्रि० सं० [?] (१) खोदना। खोदकर गिराना। खोद कर गहरा करना। (२) उखाड़ना। उखाड़ना। उ०—प्रविशि वाटिका चाँड़न लागे। धुरधुरात रखवारे मागे।—विश्राम।

चाँडाल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री चाँडाली, चाँडालिन] (१) अत्यंत नीच जाति। डोम। क्षत्रिय।
विशेष—मानु के अनुसार चाँडाल यज्ञ पिता और माइकी माता से उत्पन्न हैं और अत्यंत नीच माने गए हैं। इनकी बस्ती ग्राम के बाहर होनी चाहिये, भीतर नहीं। इनके लिये सोने चाँदी आदि के बरतनों का व्यवहार निषिद्ध है। वे जुड़े बरतनों में भोजन कर सकते हैं। चाँदी सोने के बरतनों को छोड़ और किसी बरतन में यदि चाँडाल भोजन कर ले तो

वह किसी प्रकार शूद्र नहीं हो सकता। कुचे गढ़दे आदि पालना, सुरदे का कफन आदि लेना, तथा इधर उधर फिरना इनका व्यवसाय छहराया गया है। यज्ञ या श्रीर किसी धर्मा-नुष्ठान के समय इनके दर्शन का निषेध है। इन्हें अपने हाथ से भिक्षा तक न देनी चाहिए, सेवकों के हाथ से दिलवाणी चाहिए। रात्रि के समय इन्हें यक्षी में न निकलना चाहिए। प्राचीन काल में अथराधियों का वध इन्हें के द्वारा कराया जाता था। लावारियों की दाह आदि क्रिया भी ये ही करते थे।

पर्याय—अपच । ख्वब । मातंग । दिवाकीर्ति । जगनगम ।

निपाद । अपाक । अंतवासी । पुकस । निष्क ।

(२) पतित मनुष्य । कुकर्मों, दूष्ट, दुरात्मा, छूर या निष्ठुर मनुष्य ।

चाँहाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँहाल जाति की स्त्री । वह भी जो चाँहाल जाति की हो ।

चाँहिला—संज्ञा स्त्री० [सं० चर] [स्त्री० चाँहिली] (१) प्रचंड । प्रबल । उग्र । बृहत् । नरसत् । शौर्य । उ०—नंद सुत लाङ्गले प्रेम के चाँहिले सौहृद् दे कहत है नारि आगे।—सूर । (२) बहुत अधिक । बहुत ज्यादा । उ०—मोती वग हीरन गहौरन यनत हार चीरन सुनत चित्तै चोप चित चाँहिली।—देव ।

चाँहूँ—संज्ञा पुं० दे० “चंहु” ।

चाँहा—संज्ञा पुं० [हिं० सधि] जहान की वनावट में वह स्थान अहाँ दो सस्ते आकर मिलते हैं ।

चाँद—संज्ञा पुं० [सं० चर] (१) चंद्रमा ।

क्रि० प्र०—निकलना ।

मुहा०—चाँद का ऊँचल या मंडल चैतना = बहुत हलकी बर्तनी पर प्रकाश पड़ने के कारण चंद्रमा के चाँय और एक छुर वा घंग सा बन जाना । चाँद का खेत करना = चंद्रोदय का प्रकाश क्षितिज पर दिखाई पड़ना । चंद्रमा के निकलने के पहले उसकी आभा का फैलना । चाँद का टुकड़ा = अलत सुंदर मनुष्य । चाँद चढ़ना = चंद्रमा का ऊपर आना । चाँद शीले = शुद्ध द्वितीया के पीछे । जैसे, चाँद शीले आना तुम्हारा हिसाब शुक्ता हो जायगा । चाँद पर चूकना = किसी महात्मा पर कमेंक लगाना जिसके कारण स्वर्ग अस्मानिष्ठ होना पड़े । (ऊपर की ओर चूकने से अपने ही मुँह पर धूक पड़ना है इसी से यह मुहा० बना है ।) चाँद पर धूल डालना = किसी निर्देर पर कर्तेक लगाना । किसी साधु वा महात्मा पर देवादेव्य करना । चाँद सा सुपड़ा = अत्यंत सुंदर मुख । कियर चाँद निकला है ? = आन कैसे दिखाई पड़े ? क्या अन्होंने भाव हूँ ओ भाव दिखाई पड़े ? (जब कोई मनुष्य बहुत दिनों पर दिखाई पड़ता है तब उसके प्रति इस मुहा० का प्रयोग किया जाता है ।)

(२) चाँदनास । महीना । उ०—एक चाँद के अंदर तुम्हें आना

रास । यह खिलि सुतुर सवार को भेज्यो दस्तिनिन पास ।—सूदन ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।

(२) द्वितीया के चंद्रमा के आकार का एक चाभूषण । (३) बाल के ऊपर की गोत्र फुलिया । बाल के ऊपर जड़ा हुआ गोल कूढ़दार कटा । (४) चाँदमारी का वह काला दाग जिस पर निशाना लगाया जाता है । (५) टीन आदि चमकीली धातुओं का वह गोल टुकड़ा जो लंप की चिमनी के पीछे प्रकारा बढ़ाने के लिये लगा रहता है । कमरली । (६) पोड़े के सिर की एक औरी का नाम । (= एक प्रकार का गोदना जो खियों की कलाई के ऊपर गोदा जाता है ।) भाजू की गरदन में नीचे की ओर सफेद बालों का एक घेरा । (कलंदर) । संज्ञा स्त्री० (१) खोपड़ी का मध्य भाग । खोपड़ी का सबसे ऊँचा भाग । (२) खोपड़ी ।

मुहा०—चाँद पर धाल न छोड़ना = (१) सिर पर इतने जने लगाना कि बाल भड़ जाय । सिर पर खूब जूते लगाना । (२) खूब घूँटना । सर्व स्व दृष्ट्य करना । सब कुछ लेनेना ।

चाँदतार—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) एक प्रकार की शरीक मसलम जिस पर चाँद और सारों के आकार की नूदियाँ बनी हैं । (२) एक प्रकार की पतंग या कनकैया जिसमें रंगीन कागज के चाँद और तारे बना कर बिचका देते हैं ।

चाँदना—संज्ञा पुं० [हिं० चाँद] (१) प्रकाश । उजाला । (२) चाँदनी ।

चाँदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद] (१) चंद्रमा का प्रकाश । चंद्रमा का उजाला । चाँदिका । ज्योत्सना । कौमुदी ।

घौंठ—चाँदनी रात = वह रात जिसमें चंद्रमा का प्रकाश हो । उजाली रात । शुद्ध पक्ष की राति ।

मुहा०—चाँदनी खिलना वा छिड़कना = चंद्रमा के स्वच्छ प्रकाश का मूल फैलना । शुद्ध ज्योत्सना का फैलना । चाँदनी का खेत = चंद्रमा का चाँय और कैता हुआ प्रकाश । चाँदनी मारना = (१) चाँदनी का कुछ प्रभाव पड़ने के कारण घाव वा जलम का अगुन न होना । (कुछ लोगों में यह प्रवाद प्रचलित है कि घाव पर चाँदनी पड़ने से वह जल्दी अच्छा नहीं होता ।) (२) चाँदनी पड़ने के कारण पोड़ों का एक प्रकार का आरकमिकोम हो जाना, जिसमें उनका शरीर टूटने लगना है और वे तटक टटक कर मर जाते हैं । कहते हैं कि यह रोग किसी पुराने चोट के कारण होता है । चार दिन की चाँदनी = पोड़े दिन रहनेवाला सुव वा आनंद । चाँयिक सयुद्ध ।

(२) बिछाने की बड़ी सफेद चदर । सफेद फर्र । (३) ऊपर तानने का सफेद कपड़ा । छतगीर । (४) गुल-चाँदनी । तगर ।

चाँदवाला—संज्ञा पुं० [हिं० चाँद + बाला] कान में पहनने का एक प्रकार का बाला जो भद्र चंद्राकार होता है ।

चाँदमारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद + मारना] संस्कृत के गिनाना लगाने का श्रम्यत्स। दीवार या कपड़े पर धने हुए चिह्नों को सज्य करके गोली चलाने का श्रम्यत्स।

चाँदला—वि० [हिं० चाँद] (१) (दूज के चंद्रमा के समान) देड़ा। यक। कुटिल। (२) दे० "चाँदला"।

चाँद सूरज—संज्ञा पुं० [हिं० चाँद + सूरज] एक प्रकार का गहना जिससे छियाँ चोटी में गूँथ कर पहनती हैं।

चाँदा—संज्ञा पुं० [हिं० चाँद] (१) वह लस्य स्थान जहाँ दूरवीन लगाई जाती है। (२) पैमाइश वा भूमि की नाप में यह विशेष स्थान जिसकी दूरी को लेकर हदबंदी की जाती है। (३) छप्पर का पाख।

चाँदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद] (१) एक सफ़ेद चमकीली धातु जो बहुत नरम होती है। इसके सिक्के, आभूषण और वरतन ब्रह्मादि बनते हैं। यह खानों में कभी शुद्ध रूप में, कभी बूसरे खनिज पदार्थों में गंधक, संधिया, सुरमा आदि के साथ मिली हुई पाई जाती है। इसका गुरुत्व सोने के गुरुत्व का आधा होता है। इसका अम्लधार बढ़ी कठिनाता से बनता है। चाँदी के अम्लधार को नौसादर के पानी में घोल कर सुखाने से ऐसा रासायनिक पदार्थ तैयार होता है जो हजकी रागड़ से भी बहुत जोर से भड़कता है। वैद्य लोग इसे भस्म करके रसौपाय बनाते हैं। हकीम लोग भी इसका चरक रोगियों को देते हैं। चाँदी का तार बहुत अच्छा खिँचता है जिससे कारचोपी के अनेक प्रकार के काम बनते हैं। चाँदी से कई एक ऐसे चार बनाए जाते हैं जिन पर प्रकाश का प्रभाव बढ़ा विलक्षण पड़ता है। इसी से उनका प्रयोग फोटोग्राफी में होता है।

पय्यां०—रौप्य। रजत। धानीकर।

मुहा०—चाँदी कर ढालना या देना = जला कर राल कर ढालना। उ०—मुम तो समाहू के चाँदी कर ढालते हो तय दूसरे को देते हो। चाँदी का जूता = वह धन जो किसी को अपने अनुकूल वा वश में करने का दिया जाता है। जैसे, धूस, इनाम आदि। चाँदी काटना = (१) वृत्त बाया पैदा करना। खल मंत्र मारना। (२) छो़े से प्रथम समागम करना। चाँदी का पहरा = सुख समृद्धि का समय। लौमाय्य की दशा। धन-धान्य की पूर्णता की अवस्था।

(२) धन की आय। आर्थिक लाभ। उ०—आम कल तो उनकी चाँदी है। (३) खोपड़ी का मध्य भाग। चाँद। चाँदिया।

मुहा०—चाँदी सोलवाना = चाँद के ऊपर के बाल मुहाना।

(४) एक प्रकार की मछली जो दो या तीन इंच लंबी होती है।

चाँद्र—वि० [सं०] चंद्रमा संबंधी। जैसे, चाँद्रमास। चाँद्रवस्तर। संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाँद्रायण व्रत। (२) चंद्रकांत मखि। (३) अदरल। (४) सुगरिया नक्षत्र। (५) विंगमुखाण के अनुसार छुष्टदीप का एक पर्वत।

चाँद्रफ—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ।

चाँद्रपुर—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक नगर जिसमें एक प्रसिद्ध शिवमूर्ति के होने का उल्लेख है।

चाँद्रमस—वि० [सं०] चंद्रमा संबंधी।

संज्ञा पुं० सुगरिया नक्षत्र।

चाँद्रमसायन—संज्ञा पुं० [सं०] शुच प्रह।

चाँद्रमाख—संज्ञा पुं० [सं०] काल का वह परिमाण जो चंद्रमा की गति के अनुसार निर्धारित किया गया हो।

चाँद्रमास—संज्ञा पुं० [सं०] वह मास जो चंद्रमा की गति के अनुसार हो। इतना काल जितना चंद्रमा को पृथ्वी की परिक्रमा करने में लगता है।

विशेष—चाँद्रमास दो प्रकार का होता है। एक गीय, दूसरा मुख्य। कृष्य प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक का काल गीय या पूर्णिमांत और शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावास्या तक का काल मुख्य वा अमांत चाँद्रमास कहलाता है।

चाँद्रवत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्ष जो चंद्रमा की गति के अनुसार हो।

चाँद्रयतिक—वि० [सं०] जो चाँद्रायण व्रत करे।

संज्ञा पुं० राजा।

चाँद्रायण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चाँद्रायणिक] (१) मर्दाने भर का एक कठिन व्रत जिसमें चंद्रमा को घटने बढ़ने के अनुसार आहार घटाना बढ़ाना पड़ता है।

विशेष—मिताचरा के अनुसार इस व्रत का करनेवाला शुक्ल प्रतिपदा के दिन त्रिकाल स्नान करके केवल एक मास मोर के श्रेडे के बराबर का खा कर रहे। द्वितीया को दो मास खाए। इसी प्रकार क्रमशः एक एक मास नित्य बढ़ता हुआ पूर्णिमा के दिन पंद्रह मास खाए। फिर कृष्य प्रतिपदा को चौदह मास खाए। द्वितीया को तेरह, इसी प्रकार क्रमशः एक एक मास नित्य घटता हुआ कृष्य चतुर्विंशती के दिन एक मास खाए और अमावस्या के दिन कुछ न खाए, उपवास करे। इस व्रत में मारों की संख्या आरंभ और अंत में कम तथा बीच में अधिक होती है, इसी से इसे यवमय्य चाँद्रायण कहते हैं। इसी व्रत को यदि कृष्य प्रतिपदा से पूर्वोक्त क्रम से (अर्थात् प्रतिपदा को चौदह मास, द्वितीया को तेरह हत्यादि) आरंभ करे और पूर्णिमा को पूरे पंद्रह मास खा कर समाप्त करे तो यह पिपितिका-समुत्पन्न चाँद्रायण होगा। कल्पवृक्ष के मत से एक यति चाँद्रायण होता है, जिसमें एक महानि तक नित्य तीन तीन मास खा कर रहना पड़ता है। सुनीते

के लिये चंद्रायण वृत्त का एक और विधान भी है। इसमें महीने भर के सब प्रासों को जोड़ कर तीस से भाग देने से मिलने वाला भाग चतुर्थ है। उतने भाग मिले खा कर महीने भर रहना पड़ता है। महीने भर के प्रासों की संख्या २२४ होती है जिसमें ३० का भाग देने से ७३ भाग होते हैं। पल प्रमाण का एक भाग लेने से पाच भर के लगभग अक्ष होता है। अतः इतना ही हविष्याद्य नित्य खा कर रहना पड़ता है। मधु, पाराशर, वैद्यमान इत्यादि सब स्मृतियों में इस वृत्त का उल्लेख है। गीतम के मत से इस वृत्त के करनेवाले को चंद्रकोक की प्राप्ति होती है। स्मृतियों में पाषां और क्षपराओं के प्रायश्चित्त के लिये भी इस वृत्त का विधान है।

(२) एक माशिक वृंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ और १० के विराम से २१ मात्राएँ होती हैं। पहले विराम पर जगय और दूसरे पर रागय होना चाहिए। ३०—हरि हर कृपा-निधान, पाम पद दीजिए। प्रभु जू दया निकेत, शरण रख लीजिए।

चांद्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की छी। (२) चांदनी। ज्योत्स्ना। (३) सफेद भटकटैया।

वि० चंद्रमा संबंधी।

चाँप—संज्ञा पुं० दे० “चाप”।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चैपना] (१) चप या दूब जाने का भाव। दया।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) बंदूक का वह पुरजा जिसके द्वारा बुंदे से नली जुड़ी रहती है। (३) पैर की आड़ट। पैर जमीन पर पड़ने का शब्द। दे० “चाप”।

संज्ञा स्त्री० [देग०] सोने की वे किलें जिन्हें लोग अगलें दतीं पर जड़वाते हैं।

† संज्ञा पुं० [हिं० चैप] चैप का फूल। ३०—कोई परा भैरव होय धास कीन जनु चाँप। कोई पतंग भा दीपक कोई अघजर तन काँप।—जायसी।

चापना—क्रि० सं० [सं० चपन = सोना] (१) दवाना। मीड़ना।

३०—यह भागी संगद हनुमान। चापन चरणकमल विधि माना।—मुहम्मदी। (२) अज्ञात का पानी निकालने के लिये पंप का पंच चलाना।—(अज्ञ०)।

चाँप चाँप—संज्ञा स्त्री० [भु०] स्थप की बड़बाद। बड़बक।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

चाँप चाँप—संज्ञा स्त्री० दे० “चाँप चाँप”।

चांसलर—संज्ञा पुं० [सं०] विरयविद्यालय का प्रधान अधिकारी जो बी० ए०, एम० ए० आदि की उपाधि देता है।

चा—संज्ञा स्त्री० दे० “चाप”।

चाउ [च—संज्ञा पुं० दे० “चाप”।

चाउर—संज्ञा पुं० दे० “चावल”।

चाऊ—संज्ञा पुं० [देग०] ऊँट या बकरे का बाल। (पहाड़ी बोली)।

चाक—संज्ञा पुं० [स चक, प्रा० चक] (१) पहिये की तरह का वह गोल (मंडलाकार) पथर जो एक कील पर घूमता है और जिस पर मिट्टी का लोटा रख कर कुम्हार वरतन बनाते हैं। कुलासचक्र।

विशेष—इसके किनारे पर एक जगह रुपये के बराबर एक छेदा सा गड्ढा होता है जिसे कुम्हार ‘चित्ती’ कहते हैं। इसी चित्ती में डंडा छेदका कर चाक घुमाते हैं।

(२) गाड़ी वा रथ का पहिया। ३०—विधिचित्ता के लगे पताके चुबै जे रथिच चाके।—रघुराज। (३) गारा।

चिरली। चरली जिस पर कुपू से पानी खींचने की रस्ती रहती है। (४) मिट्टी की वह गोल परिघा जिसमें मिली जमाती है। (५) थापा जिससे खलियान की राशि पर छापा लगाते हैं। दे० “चाकना” (६) सान जिस पर चुरी, कटार आदि की धार तैज की जाती है। (७) डकली के पिघले तैज पर बेमक के लिये रखी हुई मिट्टी की पिंठी। (८) मिट्टी का वह धरतन जिससे ऊख का रस कढ़ाह में पकने के लिये ढाला जाता है। (९) मंडलाकार चिह्न की रेखा। गोंडका।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) दार। चीड़।

मुहा०—चाक करना वा खेना = पीटना। फाटना। चाक होना = चीरा जना। फाड़ा जना। (२) आखीन का बुझा हुआ मोहरा।

वि० [तु० चक] (१) बड़। मजबूत। पुष्ट। (२) हट पुष्ट। संदुहस्त। सुस्त।

चौ०—चाक चौबंद = हट पुष्ट। तगड़ा। (२) सुस्त। चात्रक। फुरतीना। तलर।

संज्ञा पुं० [सं०] हुस्ती। खरिया मिट्टी।

चौ०—चाक मिंटिंग = एक प्रकार की सजेद रंग की छुपाई जो प्रायः पुस्तकों के टाइटिन पेज (आवरपान) आदि पर होती है। इसकी स्याही खरिया के योग से बनती है।

चाकचक—वि० [तु० चाक + सं० चक] चारों ओर से सुरक्षित। बड़। मजबूत। ३०—चाकचक चमू के अचाकचक चहूँ ओर चाक सी फिरत पाक चंपति के बाव की।—भूपय।

चाकचपय—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमक दमक। चमकनाहट। उज्वलता। (२) शोभा। सुंदरता।

चाकट—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का कड़ा जो हाथ में पहना जाता है।

चाकदिल—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का बुजबुल।

चाकना—क्रि० सं० [हि० चाक] (१) सीमा भाषने के लिये किसी वस्तु को रेखा वा चिह्न खींच कर चारों ओर से घेरना । हृद खींचना । ३०—सकल भुवन योगा जनु चाकी ।—तुलसी । (२) खलिधान में अनाज की राशि पर मिट्टी वा राख से ढापा जगाना जिसमें यदि अनाज निकाला जाय तो मालूम हो जाय । ३०—तुलसी तिलोक, की मृदुधि सौज संपदा सकेलि चाकि राखी राशि जांगह अहान भो ।—तुलसी । (३) पद-चान के लिये किसी वस्तु पर चिह्न डालना ।

चाकर—संज्ञा पुं० [फा०] [खी० चाकरानी] दास । भूय । सेवक । नौकर ।

चाकरनी—संज्ञा स्त्री० दे० “चाकरानी” ।

चाकरानी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाकर का स्त्री०] नौकरानी । दासी । लौड़ी ।

चाकरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] सेवा । नौकरी । टटल । विद्यमत । क्रि० प्र०—करना ।

मुदा—चाकरी बजाना = सेवा करना । शिदमत करना ।

चाकल वि० दे० “चकला” ।

चाकस—संज्ञा पुं० [सं० चक्षुष्पा] (१) वनकुलधी का पौधा । (२) वनकुलधी का बीज ।

विशेष—ये बीज बहुत छोट्टे और काले काले होते हैं । औषध के रूप में ये पीस कर शरि में डाले जाते हैं ।

चाका—संज्ञा पुं० दे० “चाक (२)” ।

चाकी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाक] चक्की । घ्राटा पीसने का यंत्र ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] (१) चित्रशी । यज्ञ ।

क्रि० प्र०—गिरना ।—पड़ना ।

(२) परे की एक घोट जो सिर पर की जाती है ।

चाकू—संज्ञा पुं० [तु०] कलम, फल तथा और छोटी मोटी चीजों को काटने छीलने आदि का औजार । हुरी ।

चाक्रायण—संज्ञा पुं० [सं०] चक्र नामक ऋषि के चंशचर जिनका उल्लेख षांडोग्य उपनिषद् में है ।

चाक्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूरतों की स्तुति मानेवाला । चारण । भाट ।

विशेष—माश्वदक्य स्मृति में चाक्रिक के शत्रुभोजन का निषेध है ।

(२) तेली । (३) गाड़ीवान । (४) कुम्हार । (५) अनुचर । सहचर ।

वि० (१) चक्राकार । (२) चक्र संबंधी । (३) किसी चक्र वा मंडली से संबंध रखनेवाला ।

चाक्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक फूल का नाम ।

चाक्षुष—वि० [सं०] (१) चक्षु संबंधी । (२) श्राद्ध से देनेवाला । जिसका योध नेत्रों से हो । चक्षुप्रसिद्ध ।

संज्ञा पुं० (१) न्याय में प्रत्यक्ष प्रमाण का एक भेद । ऐसा

प्रत्यक्ष जिसका योध नेत्रों द्वारा हो । (२) छूट मनु का नाम ।

विशेष—भागवत के मत से ये विश्वकर्मा के पुत्र थे । इनकी माता का नाम आकृति और खो का नाम नदला था ।

पुत्र, कृत्स्न, चमृत, गुमान्, सत्यवान्, घृत, अग्निघोम, अतिराय, प्रपुत्र, शिपि और उल्लूक इनके पुत्र थे ।

जित मन्वंतर के थे स्वामी थे उसके इन्द्र का नाम मंत्रधनुष था । मत्स्यपुराण में पुत्रों के नामों में क्षुद्र भेद है । मार्क-

डेय पुराण में चाक्षुष मनु की बड़ी लंबी पीढ़ी कथा आई है । उस में लिखा है कि अनमित्र नामक राजा को उनकी रानी भद्रा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ । एक दिन रानी उस पुत्र को लेकर बहुत प्यार कर रही थी इतने में पुत्र पंक्तवासी

हूँस पड़ा । जब रानी ने कारण पूछा तब पुत्र ने कहा—

“मुझे खाने के लिये एक बिल्ली ताक में कैदी है । मैं तुम्हारी गोद में ८—६ दिन से अधिक नहीं रहने पाऊँगा, इसीसे तुम्हारा मिथ्या स्नेह देख कर मुझे हँसी आई” । रानी यह

सुनकर बड़ी दुखी हुई । उसी दिन विक्रांत नामक राजा की रानी को भी एक पुत्र हुआ । भद्रा कौराल से अपने पुत्र को विक्रांत की रानी की चादपाई पर रख आई और उसका पुत्र लाकर आप पालने लगी । विक्रांत राजा ने उस

पुत्र का नाम आनंद रखा । जब आनंद का उपनयन होने लगा तब आचार्य ने इसे उपदेश दिया कि “पहले अपनी माता की पूजा करो” । आनंद ने कहा “मेरी माता तो यहाँ

है नहीं व्रतः जिसने मेरा पालन किया है, उसीकी पूजा करता हूँ” । आनंद ने सब व्यवस्था कह सुनाई । पीछे राजा रानी को डाइस यँधा कर ये स्वयं तपस्या करने लगे । आनंद

की तपस्या से संतुष्ट होकर महा ने उसे मनु बना दिया और उसका नाम चाक्षुष रक्खा ।

(३) स्वर्भुज मनु के पुत्र का नाम । चौदहवें मन्वंतर के एक देवगण का नाम ।

चाख—संज्ञा पुं० दे० “चाप” ।

चाखना—क्रि० सं० दे० “चखना” ।

चाचपुट—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक । इसमें एक गुरु, एक लघु और एक प्लुत स्वर होते हैं ।

चाचर, चाचरि—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] (१) होली में गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत । चर्चरी राग जिसके अंतर्गत होली, फाग, जेद आदि माने जाते हैं । ३०—तुलसीदास चाचरि मिस कहै राम गुन प्राम ।—तुलसी । (२) होली में होनेवाले खेल तमासे । होली का खांग और हुडङ । होली की धमार । हर्षकीड़ा । ३०—(क) धुति, पुराण, शुष समत चाचरि चरित मुरारि ।—तुलसी । (ख) लौरी ये पसंत पावै चाप सौ चाचरि माँधी, रंग राचै कीच माँची

चाचरि—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] (१) होली में गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत । चर्चरी राग जिसके अंतर्गत होली, फाग, जेद आदि माने जाते हैं । ३०—तुलसीदास चाचरि मिस कहै राम गुन प्राम ।—तुलसी । (२) होली में होनेवाले खेल तमासे । होली का खांग और हुडङ । होली की धमार । हर्षकीड़ा । ३०—(क) धुति, पुराण, शुष समत चाचरि चरित मुरारि ।—तुलसी । (ख) लौरी ये पसंत पावै चाप सौ चाचरि माँची, रंग राचै कीच माँची

चाचरि—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] (१) होली में गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत । चर्चरी राग जिसके अंतर्गत होली, फाग, जेद आदि माने जाते हैं । ३०—तुलसीदास चाचरि मिस कहै राम गुन प्राम ।—तुलसी । (२) होली में होनेवाले खेल तमासे । होली का खांग और हुडङ । होली की धमार । हर्षकीड़ा । ३०—(क) धुति, पुराण, शुष समत चाचरि चरित मुरारि ।—तुलसी । (ख) लौरी ये पसंत पावै चाप सौ चाचरि माँची, रंग राचै कीच माँची

चाचरि—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] (१) होली में गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत । चर्चरी राग जिसके अंतर्गत होली, फाग, जेद आदि माने जाते हैं । ३०—तुलसीदास चाचरि मिस कहै राम गुन प्राम ।—तुलसी । (२) होली में होनेवाले खेल तमासे । होली का खांग और हुडङ । होली की धमार । हर्षकीड़ा । ३०—(क) धुति, पुराण, शुष समत चाचरि चरित मुरारि ।—तुलसी । (ख) लौरी ये पसंत पावै चाप सौ चाचरि माँची, रंग राचै कीच माँची

चाचरि—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] (१) होली में गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत । चर्चरी राग जिसके अंतर्गत होली, फाग, जेद आदि माने जाते हैं । ३०—तुलसीदास चाचरि मिस कहै राम गुन प्राम ।—तुलसी । (२) होली में होनेवाले खेल तमासे । होली का खांग और हुडङ । होली की धमार । हर्षकीड़ा । ३०—(क) धुति, पुराण, शुष समत चाचरि चरित मुरारि ।—तुलसी । (ख) लौरी ये पसंत पावै चाप सौ चाचरि माँची, रंग राचै कीच माँची

चाचरि—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] (१) होली में गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत । चर्चरी राग जिसके अंतर्गत होली, फाग, जेद आदि माने जाते हैं । ३०—तुलसीदास चाचरि मिस कहै राम गुन प्राम ।—तुलसी । (२) होली में होनेवाले खेल तमासे । होली का खांग और हुडङ । होली की धमार । हर्षकीड़ा । ३०—(क) धुति, पुराण, शुष समत चाचरि चरित मुरारि ।—तुलसी । (ख) लौरी ये पसंत पावै चाप सौ चाचरि माँची, रंग राचै कीच माँची

चाचरि—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] (१) होली में गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत । चर्चरी राग जिसके अंतर्गत होली, फाग, जेद आदि माने जाते हैं । ३०—तुलसीदास चाचरि मिस कहै राम गुन प्राम ।—तुलसी । (२) होली में होनेवाले खेल तमासे । होली का खांग और हुडङ । होली की धमार । हर्षकीड़ा । ३०—(क) धुति, पुराण, शुष समत चाचरि चरित मुरारि ।—तुलसी । (ख) लौरी ये पसंत पावै चाप सौ चाचरि माँची, रंग राचै कीच माँची

केसर के नीर की ।—देव । (३) उपदय । रंगा । हल-
चल । हहा मुहा ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।

चाचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] योग की एक मुद्रा । उ०—
मददाकारा चाचरी मुद्रा शक्ती जाना ।—कवीर ।

चाचा—संज्ञा पुं० [सं० तत] [स्त्री० चाचा] काका । पितृव्य । बाप
का भाई ।

त्रिशोप—दे० “चचा” ।

चाची—संज्ञा स्त्री० [हि० चाना] चाचा की स्त्री । काकी ।

चाट—संज्ञा स्त्री० [हि० चाटना] (१) चटपटी चीनीं के खाने वा
चाटने की प्रयत्न ह्मचा । स्वाद लेने की ह्मचा । मजे की
चाह । (२) एक थार किसी वस्तु का आनंद लेकर
फिर वसी का आनंद लेने की चाह । चसका । रोक ।
छालसा ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(३) प्रयत्न ह्मचा । कड़ी चाह । सोलुपता । उ०—तुम्हें तो
यस रूपये की चाट लगी है ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—होना ।

(४) खत । आदत । थान । टेव । घत । (५) मिचं, पदाई,
गमक आदि ढाल कर बनाई हुई थरपरे स्वाद की वस्तु ।
थरपरी थीर ममकीन खाने की चीजें । जैसे, सेव, दही-बड़ा,
दालसा ह्मचादि । गमक । (पेसी चीजें शराय पीने के
पीछे ऊपर से प्रायः खाई जाती हैं) उ०—चाट की दूकान ।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधासवाती चार । यह जो किसी
का विधासयाम धन कर उसका धन हराय करे । रा ।
(२) स्थितियों में ऐसे ध्यक का दंडविधान है । (३)
बचका । चाई उ०—चाट, उचाट मी चेटक सी सुटकी
धुट्टीन जग्हाति अमेठी ।—देव ।

चाट की टैंगली—संज्ञा स्त्री० कुरती का एक पेंच जो उस समय काम
में लाया जाता है जब प्रतिपची (जोड़) पहलवान के पेट
के बीच घुस आता है और धरना धार्या हाय उसकी कमर पर
फाता है । इसमें पहलवान अपने चाई हाय से प्रतिपची
का धार्या हाय (जो पहलवान की कमर पर होता है)
दबाने हुए बलकी दाहनी कबाई को पकड़ता है और धरना
दाहना हाय और वीर बड़ा कर चाई जीप और पिंडली पर
पकड़ा मार कर उसे गिराता है ।

चाटना—क्रि० सं० [चनु० चट चट = जीम चरने का शब्द] (१)
खाने वा स्वाद लेने के लिये किसी वस्तु को जीम से छानना ।
किसी पत्थरी वा गाढ़ी चीज को जीम से पोंद पोंद कर मुँह
में लेना । जीम लगा कर खाना । जैसे, शहद चाटना,
धापलेह चाटना ।

संयोग क्रि०—जाना ।—लेना ।—ढालना ।

(२) पोंद कर खा लेना । चट कर जाना । उ०—इतना
हलुआ था सब चाट गए ।

मुहा०—चाट पोंदकर खाना = सब खा जाना । कुछ भी न छोड़ना ।

(३) (प्यार आदि से) किसी वस्तु पर जीम फैरना ।
उ०—भाय अपने बकड़े को चाट रही है ।

धै०—चसना चाटना = प्यार करना ।

(४) कीड़ों का किसी वस्तु को खा जाना । उ०—जितना
कागज था सब दीमक चाट गए ।

चाटपुट—संज्ञा पुं० [सं०] तबले का एक ताल । दे० “चाचपुट” ।

चाटा—संज्ञा पुं० [देव०] [स्त्री० चण० चाठी] बह भरतन जिसमें
कोकहू का पेश हुआ रस इकट्ठा होता है । पॉद ।

चाटी—संज्ञा स्त्री० [देव०] मिट्टी की मटकी जिसका दल खूब
मोटा हो ।

चाटु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मीठी बात । प्रिय बात । (२) सूत्री
प्रशंसा वा वित्त से भरी हुई ऐसी बात जो केवल दूसरे को
प्रसन्न वा अनुत्थल करने के लिये कही जाय । सुशामद ।
चापलूसी ।

चाटुकार—संज्ञा पुं० [सं०] सुशामद करनेवाला । सुशामदी ।
सूत्री प्रशंसा करनेवाला । चापलूस ।

चाटुकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चाटुकार + ई (प्रत्य०)] सूत्री प्रशंसा
वा सुशामद करने का काम । चापलूसी ।

चाटुपटु—संज्ञा पुं० [सं०] मंड । भाँड़ ।

चाडु—संज्ञा स्त्री० [हि० चिट्ठ सं० चंड = प्रवृत्ति ?] गहरी चाह ।
चाव । प्रेम । उ०—(क) हित पुनीत सब स्वारथहि अरि
अशुद्ध विन चाडु । निज मुख मानिक सम दसन मूमि परे
ते हाडु ।—तुलसी । (ख) कुच गिरि चट्टि अति यकित
है चली दीडि मुख चाडु । फिरि न तरी परिये रही परी
चिबुक के गाडु ।—विहारी । (ग) फाडे को काहु को कीनै
उवाडोने आवै इहाँ हम आपनी चाडु ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

त्रिशोप—दे० “चाडु” ।

चाड़िला—वि० दे० “चाड़िला” ।

चाडो—संज्ञा स्त्री० [सं० चाड] पीठ पीछे की निंदा । सुगुली ।

क्रि० प्र०—खाना ।

चाहा—संज्ञा पुं० [हि० चाड] [स्त्री० चाडी] (१) प्रेमपाय ।
प्यार । प्रिय । उ०—धन्य धन्य भक्तन के चाडे ।—चूर ।

(२) चाहनेवाला । प्रेमी । आशिक । आसक । उ०—(क)
हम हम पर रिल करति हो हम हँ हुब चाडे । मिट्टर भई
हो चाड़िली क्य के हम आडे ।—चूर । (ख) दिग धोती
भोती अति कौरी देखत ही तु खाम मये चाडे ।—
चूर ।

चाणक्य-संज्ञा पुं० [सं०] चणक. शपि के बंस में उत्पन्न एक मुनि जिनके रचे हुए अनेक नीति ग्रंथ प्रचलित हैं। ये पाटलिपुत्र के सम्राट् चंद्रगुप्त के मंत्री थे और कीदृश्य नाम से भी प्रसिद्ध हैं। सुदाराचल के अनुसार इनका थसली नाम विष्णुगुप्त था।

विशेष—विष्णुपुराण, भागवत आदि पुराणों तथा कथा परित्तारण आदि संस्कृत ग्रंथों में तो चाणक्य का नाम आया ही है, चौद-ग्रंथों में भी इनकी कथा बराबर मिलती है। युद्धोप-की बन्नाई हुई विनयापटक की टीका तथा महानाम स्वविर रचित महावंश की टीका में चाणक्य का बृहत्त दिया हुआ है। चाणक्य तक्षशिला (एक नगर जो रावलपिंडी के पास था) के निवासी थे। इनके जीवन की घटनाओं का विशेष संबंध मौर्य चंद्रगुप्त की राज्यप्राप्ति से है। ये उस समय के एक प्रसिद्ध विद्वान् थे, इसमें कोई संदेह नहीं। चंद्रगुप्त के साथ इनकी मैत्री की कथा इस प्रकार है। पाटलिपुत्र के राजा नंद या मगहनंद के यहाँ कोई यज्ञ था। उसमें ये भी गए और भोजन के-समय एक प्रधान आसन पर जा बैठे। महाराज नंद ने इनका काला रंग देख इन्हें आसन पर से उठवा दिया। इस पर क्रुद्ध हो कर इन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं नंदों का नाश न कर लूँगा तब तक अपनी शिला न बाँधूँगा। उन्हीं दिनों राजकुमार चंद्रगुप्त राज्य से निकाले गये थे। चंद्रगुप्त ने चाणक्य से मेल किया और दोनों आश्रयियों ने मिलकर म्लेच्छ राजा पर्यंतक की सेना लेकर पटने पर चढ़ाई की और नंदों को युद्ध में परास्त कर के मार डाला। नंदों के नाश के संबंध में कई प्रकार की कथाएँ हैं। कहीं लिखा है कि चाणक्य ने शकटार के यहाँ निर्मात्य भेजा जिसे छूते ही महानंद और उनके पुत्र मर गए। कहीं विपकथा भेजने की कथा लिखी है। सुदाराचल नाटक के देखने से जाना जाता है कि नंदों का नाश करने पर भी महानंद के मंत्री राघव के कौशल और नीति के कारण चंद्रगुप्त को मगध का सिंहासन प्राप्त करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ पड़ीं। अंत में चाणक्य ने अपने नीतिबल से राघव को प्रसन्न किया और उसे चंद्रगुप्त का मंत्री बनाया। चौद-ग्रंथों में भी इसी प्रकार की कथा है, केवल महानंद के स्थान पर धननंद है। दे० "चंद्रगुप्त"। चाणक्य के शिष्य कामंदक ने अपने "नीतिसार" नामक ग्रंथ में लिखा है कि विष्णुगुप्त चाणक्य ने अपने बुद्धिबल से अर्थशास्त्र रूप महादधि को मध्य कर नीति शास्त्र रूपी धर्मूत निकाला। चाणक्य का "अर्थशास्त्र" संस्कृत में राजनीति विषय पर एक विद्वत्ग्रंथ है। इनके नीति के श्लोक तो घर घर प्रचलित हैं। पीछे से लोगों ने इनके नीति ग्रंथों से घटा बड़ा पर बुद्धचाणक्य, लघुचाणक्य, बोधिचाणक्य आदि कई नीति ग्रंथ संकलित कर लिए।

चाणक्य सय विषयों के पूर्ण पंडित थे। "विष्णुगुप्त सिद्धंत" नामक इनका एक उद्योग का ग्रंथ भी मिलता है। कहे हैं कि आरुवेद पर भी इनका लिखा वैद्यजीवन नाम का एक ग्रंथ है। न्याय भाष्यकार वात्स्यायन और चाणक्य को कोई कोई एक ही मानते हैं पर यह ग्रंथ है जिसका मूल हेमचंद्र का यह श्लोक है—वात्स्यायनेन, महानामः, कीदृश्य-श्रयणकामिनः। द्वाभिलः पञ्चलस्वामी विष्णुगुप्तोऽभुवत्सचः।

चाणूर-संज्ञा पुं० [सं०] कंस का एक महजिते धनुष बल के समय श्रीकृष्ण ने मारा था।

चातक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चातकी] एक पत्ती जो वर्षाकाल में बहुत पालता है। पपीहा। दे० "पपीहा"।

विशेष—इस पत्ती के विषय में प्रसिद्ध है कि यह नदी तटग आदि का संचित जल नहीं पीता, केवल बरसात हुआ पानी पीता है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहे हैं कि यह केवल स्वामी नक्षत्र की बूँदों ही से अपनी प्यास बुझाता है। इसी से यह मेघ की शोर देखता रहता है और इससे जल की याचना करता है। इस प्रवाद को कवि लोग अपनी कविता में बहुत लाए हैं। तुलसीदासजी ने तो अपनी सतसई में इसी चातक को लेकर न जाने कितनी सुंदर सुंदर उक्तियाँ कही हैं।

पर्याय—सूकेक। सारंग। मेघजीवन। तोकक।

यौ०—चातकानंदवर्द्धन = (१) मेघ। बादल। (२) वर्षाकाल।

चातकानंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्षाकाल। (२) मेघ।

चातर-संज्ञा पुं० [हिं० चतर] (१) मजली पकड़ने का बड़ा जाल। (२) पदग्रंथ। साजिर।

वि० दे० "चातर" या "चतुर"।

चातुर-वि० [सं०] (१) नेत्रगोचर। (२) चतुर। (३) खुरामदी। चापलस।

संज्ञा पुं० (१) गोल तकिया या मसनद। (२) चार पहियों की गाड़ी।

चातुरही-संज्ञा स्त्री० दे० "चतुरही"।

चातुरता-संज्ञा स्त्री० दे० "चतुरता"।

चातुराश्रम्य-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास नामक चार आश्रम।

चातुरिक-संज्ञा पुं० [सं०] सारपी। रथवान।

चातुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चतुरता। चतुराई। व्यवहार-दक्षता। (२) चालाकी। धूर्तता।

चातुर्ज्ञान, चातुर्ज्ञातक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भावप्रकार के अनुसार चार सुगंध द्रव्य—नागकेसर, इलायची, त्रेपता और दालचीनी। (२) गुजरात के प्राचीन राजाओं के प्रधान कर्मचारी की उपाधि। प्रधान शासक।

चातुर्थक, चातुर्थिक—संज्ञा पु० [सं०] चौथे दिन होनेवाला ज्वर । चौथिया सुषार ।

वि० चौथे दिन होनेवाला ।

चातुर्दश—संज्ञा पु० [सं०] (१) रास । (२) वह जो चतुर्दशी को अत्यन्त हो ।

चातुर्भद्र, चातुर्भद्रक—संज्ञा पु० [सं०] (१) चार पदार्थ—अर्घ, धर्म, काम और मोक्ष । (२) वैद्यक के अनुसार ये चार चोप-धिर्षा—नागरमोघा, पीपल (पिप्पली), अतीस और काकड़ा-सिंगी । कोई कोई चक्रदत्त के अनुसार इन चार चीजों को लेते हैं—जायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी और पीपल ।

चातुर्भद्रावलेह—संज्ञा पु० [सं०] वैद्यक का एक प्रसिद्ध अवलेह जो जायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी और पीपल को एक साथ पीस कर शहद मिलाते से बनता है । चौहरी ।

विशेष—यह अवलेह श्वास, काल, अतीसार और ज्वर में उप-कारी है और गर्बों को बहुत दिया जाता है ।

चातुर्भद्राजिक—संज्ञा पु० [सं०] (१) विष्णुभगवान् । (२) बुद्ध का एक नाम ।

चातुर्मास—वि० [सं०] चार महीनों में होनेवाला । चार महीने का ।

चातुर्मासिक—वि० [सं०] चार महीने में होनेवाला (यज्ञ, कर्म प्रादि) ।

चातुर्मासी—संज्ञा स्त्री [सं०] पौर्णमासी ।

चातुर्मास्य—संज्ञा पु० [सं०] (१) चार महीने में होनेवाला एक वैदिक यज्ञ ।

विशेष—कात्यायन धौतसूत्र अध्याय ८ में इस यज्ञ का पूरा विधान लिखा है । सूत्र के अनुसार फाल्गुनी पौर्णमासी से इस यज्ञ का आरंभ होना चाहिए, पर भाष्य और पद्धति में लिखा है कि इसका आरंभ फाल्गुनी, चैत्र वा वैशाख की पूर्णिमा से हो सकता है । इस यज्ञ को चार पर्व हैं—वैशदेव, वषट्पास, शाकमेघ और सुनासीरीय ।

(२) चार महीने का एक वैरागिक मत जो वर्षा काल में होता है ।

विशेष—ब्राह्म के मत से आपाङ्ग शुक द्वादशी वा पूर्णिमा से इस पूजा का आरंभ करके कार्तिक शुक्ल द्वादशी वा पूर्णिमा को इसका उत्थापन करना चाहिए । मन्व्यपुराण में इस यज्ञ के अनेक विधान और फल लिखे हैं, जैसे, पुत्र-त्याग करने से स्वर मधुर होता है, मद्य मांस त्याग करने से योग सिद्धि होती है, यज्ञोद्देश में पका भोजन त्यागने से संतान की वृद्धि होती है, इत्यादि इत्यादि । यह विष्णुसामान्त का मत है अतः 'वामो मातापण्याय' मंत्र के जप का भी विधान है । सनत्कुमार के मत से इस पूजा का आरंभ आपाङ्ग शुक पञ्चदशी, पूर्णिमा वा कर्क की संक्रांति से होना चाहिए । इन चार महीनों में फाटक गृहसूत्र के मत से यतिवर्षों का एक ही स्थान पर जन्म

कर रहना चाहिए । इस नियम का पालन बौद्ध भिक्षु (यति) भी करते हैं ।

चातुर्थ्य—संज्ञा पु० [सं०] चतुर्था । निपुण्यता । दक्षता ।

चातुर्थ्यर्ष—संज्ञा पु० [सं०] (१) चारों वर्षों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और यज्ञ । (२) चारों वर्षों का अनुष्ठेय धर्म, जैसे, ब्राह्मण का धर्म यजन, याजन, दान, अध्यापन, अध्यायन और प्रतिग्रह, क्षत्रिय का धर्म बाहुबल से प्रजापालन इत्यादि ।

चातुर्दोष—संज्ञा पु० [सं०] [वि० चातुर्दोष] यह यज्ञ जो चार दोषियों द्वारा संपन्न हो ।

चात्र—संज्ञा पु० [सं०] अग्निमंथन यंत्र का एक अवयव । यह बरह श्रेणुल की लैर की लकड़ी होती है जिसके थगले छेद में लोहे की एक कौल खमी होती है और पीड़े की चोर एक छेद होता है ।

चात्रिका—संज्ञा पु० दे० "चातक" ।

चात्वाल्—संज्ञा पु० [सं०] (१) हचनकुंड । (२) उत्तर चेदी । (३) दर्भ । दाम वा कुन । (४) गडदा ।

चादर—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) कपड़े का लंबा चौड़ा टुकड़ा जो ओढ़ने के काम में आता है । हलका ओढ़ना । चौड़ा दुपटा । पिंजैरी ।

मुद्रा—चादर उतारना = वेपद करना । इच्छा उतारना । अय-मानित करना । मर्यादा विगड़ना । (क्षिणों के संबंध में हुसे उली अर्थ में बोलते हैं तिम अर्थ में पुरुषों के लिये 'परमो उदारतः' बोलते हैं) । चादर ओढ़ना या ढालना = किसी विषया का रख लेना । चादर छिपौचल = लड़कों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के के ऊपर चादर डाल देते हैं और दूसरी गोल के लपके से उसका नाम पूछते हैं । जो ठीक नाम बता देता है वह चादर से टके लड़के को छी वना कर ले जाता है । चादर रहना या लान की चादर रहना = इच्छत रहना । कुत की मर्यादा रहना । रंदिश का बना रहना । उ०—जाल विनु कंठे लाज चादर रहेगी आत कादर करत आय चादर नये नये ।—धीरति । चादर से बाहर पैर फैलाना = (१) अनादी हृद से बाहर जाना । (२) अनेक वित्त से अधिक खर्च आदि करना । चादर हिलाना = युद्ध में शत्रुओं से घिरे हुए सिपाही का युद्ध रोकने वा अन्तम समर्पण करने के लिये काड़ा हिलाना । युद्ध रोकने का कौंडा हिलाना ।

(३) किसी धातु का यज्ञ चौखंड या पत्तर । चर । (४) पानी की चाड़ो धार जो कुछ ऊपर से गिरती हो । (५) यज्ञी हुदे नदी या और किसी वेग से बहते हुए प्रवाह में स्थान स्थान पर पानी का यह फैलाना जो विच्छन्न बराबर होता है अर्थात् जिसमें मैत्र या हिलोरा नहीं होता । (६) जूनों की राशि जो किसी देवता या पूज्य स्थान पर चढ़ाई जाती है । जैसे, मजरा पर चादर-चढ़ाना ।

चादरा—संज्ञा पुं० [हि० चादर] मरदानी चादर । यही चादर ।
 चानक*—क्रि० वि० [हि० अचानक] अचानक । सदसा । भक-
 र्मात् । उ०—हरिनी जनु चागक जाल परी । जनु सोन
 चिरी अथहीं पकरी ।—गुमान ।

चानस—संज्ञा पुं० [अ० चांस] तार का एक खेल ।
 चाप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष । कमान । (२) गणित में
 थापा दृत्तवेध ।

विशेष—सूर्यसिद्धांत में ग्रहादि के चाप निकालने की क्रिया
 दी हुई है ।

(३) दृत्त की परिधि का कोई भाग । (४) धनु राशि ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चाप = धनुष] (१) दशाव ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

(२) पैर की आहट । पैर ज़मीन पर पड़ने का शब्द । उ०—
 हतने में किसी के पाँव की चाप सुनाई दी ।

चापजरीब—संज्ञा पुं० [हि० चाप + ज० जरीब] किसी ज़मीन की
 सीधी नाप । लंबाई की नाप ।

चापट—संज्ञा स्त्री० [हि० चिपटना] दाने की घब भूसी जो छाटा
 पीसने पर निकलती है । चोकर ।

वि० दे० “चापट” ।

चापडू—वि० [सं० विषिट, हि० चिपटा, चपटा] (१) जो दब कर
 चिपटा हो गया हो । जो कुचले जाने के कारण ज़मीन के
 बराबर हो गया हो (२) बराबर । समतल । हमवार ।
 (३) मरियामेट । चौपट । उजाड़ । उ०—ऐसी याड़ झाई कि
 कई गाँव चापडू हो गए ।

संज्ञा स्त्री० चोकर । भूसी ।

चापदंड—संज्ञा पुं० [सं०] वह डंडा जिससे कोई वस्तु थामे की
 श्रेय डेली जाय ।

चापना—क्रि० सं० [सं० चाप = धनुष] देवाना । मीड़ना । उ०—
 चापत चरण लखन उर धारि । सभय सपेम परम सजुपाये ।
 —गुलसी ।

चापर—वि० दे० “चापडू” ।

चापल—संज्ञा पुं० [सं०] चंचलता । अस्थिरता ।

*वि० [हि० चपल] चंचल ।

चापलता*—संज्ञा स्त्री० [हि० चापल + ता (प्रत्य०)] चंचलता ।
 दिटाई । उ०—सद्युमनि चापलता कवि छुमहू ।—गुलसी ।

चापलूस—वि० [फ्रा०] [संज्ञा चापलूस] सुशामदी । लहो चप्पो
 करनेवाला । चाटुकार ।

चापलूसी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] सुशामदी । वह भूठी प्रशंसा जो
 केवल दूसरे को प्रसन्न और अनुकूल करने के लिये की
 जाय । चाटुकारी ।

चापी—संज्ञा पुं० [सं० चापिद] (१) धनुष । वह जो धनुष
 धार्य करे । (२) सिव । (३) धनु राशि ।

चापू—संज्ञा पुं० [दे०] हिमालय के आस पास के प्रदेशों की
 एक प्रकार की छोटी पकरी जिसके पाल बहुत लंबे और
 सुखायम होते हैं । इसके बालों के कंबल आदि बनते हैं ।

चाफंद—संज्ञा पुं० [हि० ची = चार + फंद] मड़ली पकड़ने का
 एक प्रकार का जाल ।

चाव—संज्ञा स्त्री० [सं० चव्य] (१) गन्तपिप्ली की जाति का
 एक पौधा जिसकी लकड़ी और जड़ शोषण के काम में आती
 है । एशिया के दक्षिण और विशेषतः भारत में यह पौधा
 या तो नदियों के किनारे आपसे थाप उगता है या लकड़ी
 और जड़ के लिए बोधा जाता है । इसकी जड़ में बहुत दिनों
 तक पचने की शक्ति रहती है और पौधे को काट लेने पर
 उसमें से फिर नया पौधा निकलता है । इसमें काली मिर्च
 के समान छोटे फल लगते हैं जो पहले हरे रहते और पकने
 पर लाल हो जाते हैं । यदि फल तोड़ कर मुसा लिए
 जाय तो उनका रंग काला हो जाता है । ये फल भी
 शोषण के काम में आते और “चव” कहलाते हैं । कुछ
 लोग मूल से इसीके फल को “गन्तपिप्ली” कहते हैं ।
 पर “गन्तपिप्ली” इससे भिन्न है । बंगाल में इसकी
 लकड़ी और जड़ से कपड़े आदि रँगने के लिये एक प्रकार
 का पीला रंग निकाला जाता है । टापरों के मत से “चव”
 फल के गुण बहुत से थर्मों में काली मिर्च के समान ही
 हैं । वैद्यक में चाव को गरम, चरपरी, हलकी, रोचक, ज्वरघ्नि-
 प्रदीपक और कुमि, आस, शूल और चय आदि को दूर करने-
 वाली और विशेषतः गुदा के रोगों को दूर करनेवाली माना है ।

चर्या—चविका । चव्य । चवी । रसावली । सेनोपती । केला ।
 नाकुली । कोखवही । कुदिल । ससक । कृकर ।

(२) इस पौधे का फल । (३) चार की संख्या (हि०) ।

(४) कपड़ा (हि०) ।

संज्ञा पुं० [सं० चाप = एक प्रकार का बौस] एक प्रकार
 का बौस ।

संज्ञा स्त्री० [हि० चाववा] (१) डाढ़ । चीमड़ । ये चीखूटे
 दाँत जिनसे भोजन कुचब कर खाया जाता है । (२) धर्ये
 के जग्मोसव की एक रीति जिसमें संबंध की स्त्रियाँ माती
 बसाती और खिलौने कपड़े आदि लेकर आती हैं ।

चाबना—क्रि० सं० [सं० चव्य, प्रा० चव्य] (१) दाँतों से कुचल
 कुचल कर खाना । चवाना । सैते, चने चवाना । उ०—
 चावत पान चली क्मकि पूतनिका मरमान ।—सुकवि ।

संयो० क्रि०—जाना ।—हालना ।—खेना ।

(२) खाना । खप भोजन करना ।

चाची—संज्ञा स्त्री० [हि० चाप = देवाना वा पुँ० चव] (१) कुंजी ।
 ताली ।

क्रि० प्र०—खगाना ।

मुहा०—चायी देना = (१) कुंजी दे'ठ कर लाना बंद करना ।

(२) कुंजी के द्वारा किसी फल की कमाली को दे'ठ कर फलना जिसमें मूटके के फारप्य उसके सब फुले फिर ज्यों के त्यों चलने लगे। जैसे, बघी में चायी देना । चायी भरना = दे० "चायी देना" ।

(३) कोई ऐसा पचड़ जिसे दो जुड़ी हुई धलुमी की संधि में ठोक देने से जोड़ पड़ हो जाय ।

क्रि० प्र०—भरना ।

चावुक—संज्ञा पुं० [फा०] (१) कोड़ा । इस्टर । सांझ ।

क्रि० प्र०—जड़ना ।—देना ।—फटकारना ।—भारना ।—लगाना ।

घा०—चावुकसवार ।

(२) कोई ऐसी धात जिससे किसी कार्य के करने की उत्तेजना उत्पन्न हो । उ०—मुग्धारी स्वयं भरी धात ही उसके लिये चावुक हो गई ।

चावुकसवार—संज्ञा पुं० [फा०] [संज्ञा चावुकसवारी] घोड़े को विविध प्रकार की चालें सिखानेवाला । घोड़े की चाल दुरुस्त करनेवाला । घोड़े को तिकातनेवाला ।

चावुकसवारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] चावुक सवार का काम या पेशा ।

चाभ—संज्ञा स्त्री० दे० "चाव" ।

चामना—क्रि० सं० [हि० चानना] खाना । भक्षण करना ।

मुहा०—साल चानना = अनेक प्रकार के स्वादिष्ट और पौष्टिक पदार्थ खाना । बढ़िया बढ़िया चीजें खाना ।

चामना—संज्ञा पुं० [हि० चानना] बँलों का एक रोग जिसमें उनकी जीभ पर कटि से उभड़ धाते हैं और उनसे कुछ खाने नहीं धनता ।

चाभी—संज्ञा स्त्री० दे० "चायी" ।

चाम—संज्ञा पुं० [सं० चर्म] चमड़ा । हाल । चमड़ी ।

मुहा०—चाम के दाम = चमड़े के लियेके । (देस प्रसिद्ध है कि निग्राम नामक एक भरती ने हुमायूँ को दूबने में बचाया था और इसके बदले में आधे दिन की चादराही पाई थी । उभी आधे दिन की चादराहत में बदले चमड़े के सिक्के चलाए थे ।) चाम के दाम चलाना = अपनी जबरदस्ती के भोगे कोई काम करना । अत्याच करना । अंधेर करना । उ०—(क) ऊपे अब कलु कहत न धावै । तिर पै सौति हमारे कुचन चाम के दाम चलावै ।—सूर ।

(ख) बलिवान सुगाव के सौतिन की छुतिवान में साल सलाय ले री । सपनेह न कीजिय मान छये अपने जोबना की चलाय ले री । परमेश ज रूप तरंगन सौँ सौँ ध्यान रूप रजाय ले री । दिन चारिक तू पिय प्यारे के प्यार सौँ चाम के दाम चलाय ले री ।—परमेश ।

चामचोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाम + चोरी] गुप्त रूप से पर-छिन्नगन ।

चामडो—संज्ञा स्त्री० दे० "चमड़ी" ।

चामर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौर । चैवर । चोरी । (२) मोर-छल । (३) एक धर्मोद्धृत जिसके प्रत्येक चरण में राण्य, जगण्य, राण्य, जगण्य और राण्य होते हैं । उ०—रोज रोज राधिका सखीन संग झाड़ के । खेल रास कान्हू संग चित हर्ष बाड़ के । यशुवी समान बोल सत ग्याव गाय के । कृष्य ही रिभावहीं सु चामरें हलाइ के ।

चामरपुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कांस । (२) सुपारी का पेड़

(३) केतकी । (४) श्याम ।

चामरिक—संज्ञा पुं० [सं०] चैवर हुआनेवाला ।

चामरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरागाय ।

चामिल—संज्ञा स्त्री० दे० "चंबल" उ०—चामिल लेरे वाली धावे ।—हाल ।

चामीकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना । स्वयं । (२) धनुरा ।

वि० स्वयंभय । सुनहरी ।

चामुंडराज—संज्ञा पुं० [सं०] गुजरात का एक राजा जो चापोल्टट बेरीय सामंतजन का भोजा था । इसकी मृत्यु १०२५ ईसवी में हुई ।

चामुंडराय—संज्ञा पुं० [सं०] महाराज पृथ्वीराज के एक सामंत राजा जिनका वर्णन पृथ्वीराज रासो में ध्राया है ।

चामुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम जिन्होंने चंद्रमुंड नामक शुभ निष्ठुभ के दो सेनापति देसों का पथ किया था ।

पय्यो०—चविका । चर्ममुंडा । माजरकणिका । कर्णमोटी । महाराणा । भैरवी । कापालिनी ।

चार्य—संज्ञा स्त्री० [चीनी भा] एक बीधा या भाड़ जो प्रायः दो से चार हाथ तक ऊँचा होता है । इसकी पत्तियाँ १०-१२ शंखल लंबी, ३-४ शंखल चौड़ी और दोनों सिरों पर जुकीली होती हैं । इसमें सफेद रंग के चार पांच दलों के फूल लगते हैं जिनके मऊ जाने पर एक, दो, या तीन बीजों से भरे फूल लगते हैं । यह बीधा कई प्रकार का होता है । इसकी सुगंधित और सुखाई हुई पत्तियों को उबाल कर पीने की चाल अथ संसार भर में फैल गई है ।

विशेष—चार्य पीने का प्रचार सब से पहले चीन देश में हुआ । वहाँ से क्रमशः जापान, यमना, श्याम आदि देशों में हुआ । चीन देश में कहीं कहीं यह कदाही प्रचलित है कि धर्म नामक कोई ब्राह्मण चीन देश में धर्मोपदेश करने गया । वहाँ वह एक दिन चलते चलते थक कर एक स्थान पर सो गया । जागने पर उसे बड़ी सुप्ती मालूम हुई । इस पर क्रुद्ध होकर, वह अपनी भी के बाल गोच गोच कर के कने

लगा। जहाँ जहाँ उसने बाल फेंके वहाँ वहाँ कुछ पीपे उग आए, जिनकी पत्तियों को खाने से यह आध्यात्मिक ध्यान में मन हो गया। वे ही पीपे चाय के नाम से प्रसिद्ध हुए। चीन में पहले शीपथ के रूप में इसका व्यवहार चाहे बहुत प्राचीन काल में रहा हो पर इस प्रकार उबाल कर पीने की चाल वहाँ ईसा की सातवीं या आठवीं शताब्दी के पहले नहीं थी। भारतवर्ष में आसाम तथा मनीपुर आदि प्रदेशों में यह पीप्या जंगली होता है। नामा की पहाड़ियों पर भी इसके जंगल पाए गए हैं, पर इसके पीने की प्रथा का प्रचार भारतवर्ष में नहीं था। चीन से चाय मँगा सँगा कर जब से ईस्ट इंडिया कंपनी यूरोप को भेजने लगी तभी से इसकी श्रेय ध्यान आकर्षित हुआ और भारत में उसके लगाने का भी उद्योग आरंभ हुआ। पहले पहल यहाँ मला-बार के किनारे पर चीन से चीन मँगा कर चाय तय्यार करने की चेष्टा बंगालों द्वारा की गई, क्योंकि तब तक यह नहीं ज्ञात था कि यह पीप्या भारतवर्ष में भी जंगली होता है। पर यह चाय उस चाय से भिन्न थी जो आसाम में होती है। लुहाई चाय की पत्तियाँ सय से बढ़ी होती हैं। नामा चाय की पत्तियाँ पतली और छोटी होती हैं। चाय की पत्तियाँ यों ही सुखा कर नहीं पी जाती हैं। वे अनेक प्रक्रियाओं से सुगंधित और प्रस्तुत की जाती हैं। चाय के अनेक प्रकार के जो नाम आज कल प्रचलित हैं उनमें से अधिकतर झुप-भेद-भुचक नहीं हैं, केवल प्रक्रिया के भेद से या पत्तियों की अवस्था के भेद से रखे गए हैं। साधारणतः चाय के दो भेद प्रसिद्ध हैं, काली चाय और हरी चाय। यद्यपि चीन में कहीं कहीं पत्तियों में यह भेद देखा जाता है जैसे, कियान्चु पर्वत की हरी चाय जिसे सुंगलो कहते हैं और कानटन की घटिया काली चाय, पर अधिकतर यह भेद भी शय प्रक्रिया पर निर्भर है। काली चायों में पीको, बोहिया कांगो, सूचंग, बहुत प्रसिद्ध हैं और हरी चायों में से ट्यांके, हैसन, वारुद आदि प्रसिद्ध हैं। काली चायों में से पीको सब से स्वादिष्ट और उत्तम होती है और हरी चायों में से वारुद चाय सय से बढ़िया मानी जाती है। नारंगी पीको में बहुत अच्छी सुगंध होती है। ये दोनों प्रकार की चायें पहली चुनाव की होती हैं, जब कि पत्तियाँ विलकुल नए कल्लों के रूप में रहती हैं। चाय बीजों से उत्पन्न की जाती है।

संज्ञा टी० चाय उवांला हुआ पानी। चाय का काड़ा।

क्रि० प्र०—पीना।—भगाना।—खाना।

धो०—चाय पानी = जल पान।

संज्ञा पुं० दे० "खाय"

चायक—संज्ञा पुं० [हिं० चाय] चाहनेवाला। प्रेमी। उ०—जय यदुकुल उडु इंदु सत चकोर चायक चतुर।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [सं०] चुननेवाला। चयन करनेवाला।

चार-वि० [सं० चतुर्] (१) जो गिनती में दो और दो हो। तीन से एक अधिक। जैसे, चार आदमी।

मुहा०—चार शालें करना = शालें मिलाना। देखा देखी करना। सामने आना। साक्षात्कार करना। मिलना। उ०—शय यह हमारे सामने चार शालें नहीं करता। चार शालें होना = नज़र से नज़र मिलना। देखा देखी होना। साक्षात्कार होना। चार चाँद लगना = (१) चौगुनी प्रतिष्ठा होना। (२) चौगुनी सोभा होना। सौंदर्य बढ़ना। (सि०)। चार के कंधे पर चढ़ना या चलना = मर जाना। श्मशान को जाना। चार ताल = चौताला। तयले वा मृदंग के एक ताल का नाम। चार पगड़ी करना = जहाज़ का लंगर डालना। जहाज़ को ठहराना। (लश०)। चार पाँच = (१) श्मश उधर की बात। धीला-धुआला। (२) हुआ। तकरार। चार पाँच करना = हीना हुआ। श्मश उधर करना। यों बढ़ाना। हुआ करना। तकरार करना। चार पाँच खाना = दे० "चार पाँच करना"। चारों फूटना = चारों शालें फूटना (दो हिंदे की, दो ऊपर की)। श्रेया होना। उ०—आद्यो गात शक्याप गारयो। करी न प्रीति कमल लोचन से जन्म युवा उभौ हारयो। निसि दिन विषय विलासनि विलसन फूटि गई तय चारयो।—सूर। चार मगज़ = हकीमी में चार वस्तुओं के शीशों की गिरी—लंका, ककड़, कद्दू और खरबूज। चारों खाने बिच गिरना वा पढ़ना = (१) ऐसा विषय गिराने-जिससे हृद्य पाँच फँस जाय। हृद्य पाँच के साथ पीठ के वन गिरना। (२) किसी दास्य संवाद को पाकर संभित होना। अकरमात् कोई प्रतिकूल बात सुन कर ठक रह जाना। वेतुष होना। सकपका उठना।

(२) कद्दू एक। बहुत से। उ०—चार आदमी जो कहे उसे माना। (३) कुछ। थोड़ा बहुत। जैसे, चार थामू गिराना।

मुहा०—चार तार = चार पान फाड़े या गहने। कुछ कपड़ा लता और जूवर। चार दिन = थोड़े दिन। कुछ दिन। उ०—चार दिन की चाँदनी, फिर अंधेरा पाल। चार पैसे = कुछ धन। कुछ खपत पीता। उ०—जब चार पैसे पाल रहेंगे तब सब 'हानी हानो' करेंगे।

संज्ञा पुं० चार की संख्या। चार का एक जो इस प्रकार लिखा जाता है।—४।

संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चारित, चारी] (१) गति। चाल। गमन। (२) बंधन। कारागार। (३) गुप्त दूत। चर। जासूस। (४) दास। सेवक। उ०—लोभी यथा चह चार गुमानी। नम बुद्धि दूध चहत ये प्राणी।—मुसली। (२) चिरंजीवी का पेड़। पियार। अचार। (६) क्रिमि विष जैसे;

मवृत्ति फैलाने की कैंटिया में लगा चार, चिह्नों को वेदोप
करने की गोली खादि । (०) आचार । रीति । रस । जैते,
व्याहचार, द्वाचार । ४०—(क) फेरे पान फिटा सय कोई ।
लाम्या ब्याहचार सय होई ।—जायसी । (र) भइ भंवि
बोद्धावरि राज चार सय कीन्ह ।—जायसी । (ग) श्रीरहु
चार करावहु मुनिवर शक्ति गुरज सुत देखी ।—रघुराज ।
(घ) भद्रे रात्रि लीं सकल चार करि धार जाहु जनवासे ।
—रघुराज ।

चार आइना—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का कवच या कवर
जिसमें लोहे की चार पटरियां होती हैं; एक छाती पर, एक
पीठ पर और दो दोनों गलकों में (सूजा के नीचे) ।

चारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाव में से चरानेवाला । चरवाहा ।
(२) चरानेवाला । संघारक । (३) गति । चाल । (४)
चिरांजी का पेड़ । पियाल । (५) कागजर । (६) गुप्त चर ।
जासूस । (७) सहचर । साथी । (८) धंधोरीही । सवार ।
(९) धूमनेवाला महाद्य पन्न या महाचारी । (१०) मनुष्य ।
(११) अकनिमित्त प्रिय या सिद्धांत ।

चारकाने—संज्ञा पुं० [हि० चार + काना = म.का] चौसर या पासे
का एक दीप ।

विशेष—यह उस समय होता है जब नई पत्नी के तीनों पासे
हल प्रकार पड़ते हैं कि एक पासे में तो दो चित्ती और बाकी
दोनों पासों में एक एक चित्ती ऊपर की ओर दिखाई
पड़ती है ।

चारखाना—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का कपड़ा जिसमें रंगीन
धारियों के द्वारा खोदते पर बने रहते हैं ।

चारचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० चारचक्षु] यह जो दूतों ही के द्वारा
सब बातों की जानकारी प्राप्त करे । राजा ।

चारज—संज्ञा पुं० [सं० चारज] (१) कार्यभार । काम की
जिम्मेदारी ।

मुहा०—चारज देना = किसी काम को छोड़ने समय उनका भार
अन्य स्थान पर आप सुए, मनुष्य को छोड़ कर देना । चारज
लेना = किसी कार्य के भार को उठाने अथवा देनेवाले मनुष्य
से छोड़ कर लेना ।

(२) सुपुत्री । निगाहनी । संरक्षा का भार ।

चारजामा—संज्ञा पुं० [फा०] चमड़े का कपड़े का बना हुआ यह
आसन जिसे घोड़े की पीठ पर बस कर सवारी करते हैं ।
गोश । पलान । काठी ।

चारटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मली नामक गंध-द्रव्य ।

चारटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मधारिणी वृक्ष । भूम्यामलकी ।

चारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाट । बंस की कीर्चि गानेवाला ।
परीमन । (२) राजपूताने की एक जाति ।

विशेष—सदादिलेख में लिखा है कि जिस प्रकार वैतालिकें

की अर्पित वैश्य और शूद्रा से हैं उसी प्रकार चारकों की
भी है, पर चारकों का वृषभत्व कम है । इनका व्यवसाय
राजायें और महाशयों का गुण वर्णन करना तथा गाना
बजाना है । चारक लोग अपनी अर्पित के संबंध में अनेक
अलौकिक कथाएँ कहते हैं ।

(३) भ्रमणकारी ।

चारणविद्य, चारणवैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद का एक
श्रेण ।

चारदा—संज्ञा पुं० [हि० चार + दा (प्रत्य०)] (१) चौपाया । (२)
(कुम्हारों की बोली में) गद्दा ।

चारदीवारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) वह दीवार जो किसी स्थान
की रक्षा के लिये उमके चारों ओर बनाई जाय । घेरा ।
ढाता । (२) शहरपनाह । प्राचीर । कोट ।

चारन—संज्ञा पुं० दे० “चारण” ।

चारनाह—कि० सं० [सं० चारण] चराना । उ०—(क) गो चारत
सुरली धुनि कीन्ह । गोपी जन के मन हरि लीन्ह ।—
गोपाल । (ख) जई गोचरत नित गोपाला । संग लिये
ग्यालन की माला ।

चार ना चार—कि० वि० [फा०] विचार होकर । साधारण होकर ।
मनबुरन ।

चारपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चार + पाई] सट । छोटा पलंग ।
पटिया । मंजी । माचा ।

मुहा०—चारपाई पर पड़ना = (१) चारपाई पर लेटना । (२)
वीरता होना । अत्यन्त होना । शैलप्रसा होना । चारपाई
भरना, पकड़ना वा लेना = (१) इतना वीरता होना कि
चारपाई से उठ न सके । अत्यंत कृपा होना । (२) चारपाई पर
लेटना । सेना । उ०—तुम मारते ही चारपाई पकड़ते हो ।
चारपाई में कान निरुजना = चारपाई का टेंटा होना । चार-
पाई में फाट पड़ना । चारपाई से (किसी की) पीठ खगना =
वीर्य की कारण चारपाई से उठ न करना । (किसी का)
चारपाई से खगना = दे० “चारपाई से पीठ खगना” ।

चारपाया—संज्ञा पुं० [फा०] चौपाया । चार पांववाला पशु ।
जानवर ।

चारवाग—संज्ञा पुं० [फा०] (१) चौपाई यागीचा । (२) वह
चौपाई शाल वा स्माल जो भिन्न भिन्न रंगों के द्वारा चार
भगवत पासों में बंधा होता है ।



चारवालिश—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का गोल तकिया ।
 चारयात्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० चार + फा० यात्र] (१) चार मित्रों की
 मंडली । (२) मुसलमानों में सुन्नी संप्रदाय की एक मंडली
 जो अशुभक, उमर, वसमान और अली इन्हीं चारों को
 खलीफा मानती है । (३) चांदी का एक थोकरे सिक्का जिस
 पर मुहम्मद साहब के चार मित्रों या खलीफों के नाम
 अथवा कलमा लिखा रहता है । यह सिक्का अकबर और
 जहांगिर के समय में बना था । इस सिक्के वा रुपये
 के धरावर चावल तैल कर उन लोगों को सिखाते हैं
 जिन पर कोई वस्तु बुराने का संदेह होता है और कह
 देते हैं कि जो चोर होगा उसके मुहँ से खून निकलने
 लगेगा । इस धमकी में आकर कभी कभी बुरानेवाले चीजों
 को फेंक वा रख जाते हैं । उ०—चारयात्री का रूप्य ।

चारवां—संज्ञा पुं० [हिं० चार + वाँ] चौपाया । पशु । जानवर ।
 चारवाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीष्म की गरम हवा । लू ।
 चारा—संज्ञा पुं० [हिं० चरना] (१) पशुओं के खाने की घास, पत्तो,
 डंठल आदि । (२) चिड़ियों, मछलियों वा और जीवों के खाने
 की वस्तु । (३) घाटा या और कोई वस्तु जिसे कटिया में
 लगा कर मछली फँसाते हैं ।
 संज्ञा पुं० [फा०] उपाय । इलाज । तद्दीर ।
 चाराजोई—संज्ञा स्त्री० [फा०] दूसरे से पहुँची हुई वा पहुँचने-
 वाली हानि के प्रतिकार वा उपाय का उपाय । नालिश ।
 फुरियाद । जैसे, अदालत से चाराजोई करना ।

चारायण—संज्ञा पुं० [सं०] काम-शास्त्र के एक आचार्य्य जिनके मत
 का उल्लेख वात्स्यायन ने किया है ।
 चारिङ्ग—वि० दे० “चार” ।
 चारिणी—वि० स्त्री० [सं०] आचरण करनेवाली । चलनेवाली ।
 संज्ञा स्त्री० [सं०] कल्प्यी वृष्ट ।
 चारित—वि० [सं०] (१) जो चलाया गया हो । चलाया हुआ ।
 (२) भयके द्वारा खींचा हुआ । उतारा हुआ । (अक)
 चारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुल-कामगत आचार । (२) चाल
 चलन । व्यवहार । स्वभाव । (३) संन्यास (जैन) ।
 यौ०—चारित्र धर्म = संन्यास धर्म ।
 (४) मरुत्पायों में से एक ।

चारित्रविनय—संज्ञा पुं० [सं०] चरित्र द्वारा नम्र वा विनीत भाव
 प्रदर्शन । शिष्टाचार । नम्रता ।
 चारित्रमार्गशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चारित्र की खोज । चारित्र का
 अनुसरण (जैन) । चारित्र २ प्रकार का है—(क) सामयिक,
 (ख) हेतुोपस्थापनीय, (ग) परिहारविशुद्धि, (घ) सूयम-अपर्या,
 (च) आध्यात्मन्यास । इनके विपची संयम और अरस्यम हैं ।
 चारित्र्यवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की समाधि ।
 चारित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्मली ।

चारित्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] चरित्र ।

चारिवाच—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकड़ासिंगी ।

चारी—वि० [सं० चारिण] [स्त्री० चारिणी] (१) चलनेवाला ।
 जैसे, आकाशचारी । (२) आचरण करनेवाला । व्यवहार
 करनेवाला । जैसे, स्वेच्छाचारी ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग हिंदी में प्रायः समास ही में
 होता है ।

संज्ञा पुं० (१) पदाति सैन्य । पैदल सिपाही । (२)
 संचारी भाव ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य का एक ऋग ।

विशेष—यूगार आदि रतों का उदीपन करनेवाली मधुर गति को
 चारी कहते हैं । किसी किसी के मत से एक वा दो पैरों से
 नाचने का ही नाम चारी है । चारी के दो भेद हैं—एक
 भूचारी, दूसरी आकाशचारी । भूचारी २६ प्रकार की होती है,
 यथा—समनला, नूपुरविद्धा, तिर्य्यङ्मुखी, सरला, कातरा,
 कुवीरा, त्रिदिलघा, रथचक्रिका, पांचिरेचितका, तलदण्डीनी,
 गजदक्षिका, परावृत्ततला, चास्ताडिता, अद्भुतभंडारा, रत्न-
 मीडनका, हरिणश्रासिका, मदाथिका, तलोद्भूता, संचारिता,
 स्फुरिका, लंघितजंघा, संघटिता, मदालसा, उड्कुचिता, अति-
 तिर्य्यङ्कुचिता, और अण्डकुचिता । मतांतर से भूचारी १६
 प्रकार की होती हैं—समपादस्थिता, विद्धा, शकटादिका,
 विव्याधा, ताडिता, श्रावद्धा, पड्डका, श्रीडिता, उरुवृत्ता,
 दुंदिता, जनिता, स्पंदिता, स्पंदितावती, समतन्वी, समोपा-
 रितवर्तिता और उड्कुचिता । आकाशचारी १६ प्रकार की होती
 है—विप्रेषा, शपरी, शंघ्रिताडिता, अमरी, पुष्पेपा, सूचिका,
 अपवेपा, जंघावर्सा, विद्धा, हरिणमुत्ता, उरुजंघादोलिता, जंघा,
 जंघनिका, विदुल्काता, अमरिका, और दंडपार्श्व । मतांतर
 से—विभ्रंता, अतिक्रंता, चापक्रंता, पाशक्रांतिका, उद्-
 जानु, दोलोदृत्ता, पादोदृत्ता, नूपुरपादिका, मुंजंगासिका,
 चिसा, आविद्धा, ताला, सूचिका, विदुल्काता, अमरिका और
 दंडपाश ।

चार-वि० [सं०] सुंदर । मनोहर ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूद्रस्वति । (२) रुक्मिणी से उत्पन्न
 कृष्ण के एक पुत्र । (३) कुंडम । केसर ।

चारक—संज्ञा पुं० [सं०] सरपत के बीज को हवा के काम में आते
 हैं । वैद्यक में ये धीज मधुर, रुचे, रक-पित्त-नाशक, शीतल,
 घृण्य, कसैले और घात उत्पन्न करनेवाले माने जाते हैं ।

चारकेशरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागरतोया । (२) तरहणी
 पुष्प । सेवती का फूल ।

चाणर्म—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

चारगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

चारचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] छतरा के एक पुत्र का नाम ।

चारुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरता । मनोहरता । सोहाबपापन

चाहदेव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र जिन्होंने विद्वेह आदि देशों के साथ युद्ध किया था।

(हरिवंश) (२) गड्वप के एक पुत्र का नाम।

चाहधारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की पत्नी शची।
 चाहधिया-संज्ञा पुं० [सं०] व्याहृते मन्वन्तर के सप्तपिंशो में से एक।

चाहनालक-संज्ञा पुं० [सं०] कौकनद। एक कमल।

चाहनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] हरिय।

वि० सुंदर नेत्रवाला।

चाहपद-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार पुरुवंशी राजा मनुष्य का एक पुत्र।

चाहपणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसाहणी। पम्पन। पंचपसा।

चाहपुट-संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० सुष्ठु भेदों में से एक।

चाहफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंभू वा दास की एक बेल। द्राक्षा लता।

चाहवाह-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चाहमद्र-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चाहमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण की एक पुत्री। (हरिवंश)

चाहयदा-संज्ञा पुं० [सं० चरययसु] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (महाभारत अनुशासन पर्व)

चाहरावा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्राणी। शची।

चाहविंद-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र। (हरिवंश)

चाहवेदा-संज्ञा पुं० [सं०] रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र। (हरिवंश)

चाहधवा-संज्ञा पुं० [सं० चरधवसु] रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र।

वि० सुंदर कानवाला।

चाहहासिनी-वि० [सं०] चरहासिनी। सुंदर हँसनेवाला।

चाहहासिनी-वि० स्त्री० [सं०] सुंदर हँसनेवाली। मनोहर मुसकानवाली।

संज्ञा स्त्री० (१) मनोहर मुसकानवाली स्त्री। (२) बैताजी छंद का एक भेद।

चाहोली-संज्ञा पुं० [देव०] गुडली।

चाह्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णरथ द्वारा सवयी स्त्री से उत्पन्न एक वर्षासंकर जाति। (मनु)

चाहवीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक अनीधरवादी और नास्तिक तांत्रिक।

पर्याय—बाहस्पय। नास्तिक। लोकायतिक।

विशेष—ये नास्तिक मत प्रचरक घृष्टरूपति के गिण्ये माने जाते हैं। घृष्टरूपति और चाहवीक कब हुए इसका कुछ भी पता

नहीं है। घृष्टरूपति को 'चाहव्य' ने अपने 'अर्थशास्त्र' में अर्थशास्त्र का एक प्रधान आचार्य माना है। सर्वद्वारन-संग्रह में इनका मत दिया हुआ मिलता है। पद्मपुराण में लिखा है कि असुरों का बहकाने के लिये बृहस्पति ने वेद-विह्वल मत प्रकट किया था। नास्तिक मत के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि जब भूमिबल से वैश्य बहुत प्रबल हुए तब देवताओं ने विष्णु के यहाँ पुकार की। विष्णु ने अपने शरीर से मायामोह नामक एक पुरुष उत्पन्न किया जिसने नर्मदा तट पर दिगंबर रूप में जा कर तप करते हुए असुरों को यहका कर धर्म मार्ग से भ्रष्ट किया। मायामोह ने असुरों को जो उपदेश दिया वह सर्वद्वारन-संग्रह में दिए हुए चाहवीक मत के श्लोकों से मिलकुल मिलता है। जैसे मायामोह ने कहा—“यदि यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग जाता है तो यज्ञमान अपने पिता को क्यों नहीं मार डालता ?” ह्यादि। लिंगपुराण में त्रिपुरविनाश के प्रसंग में भी शिव प्रेरित एक दिगंबर मुनि द्वारा असुरों के इसी प्रकार यहकाप जाने की कथा लिखी है जिसका लक्ष्य जैनों पर जान पड़ता है। रामायण (अयोध्या) में महर्षि जाबलि ने रामचंद्र को बनवास छोड़ अयोध्या लौट जाने के लिये जो उपदेश दिया है वह भी चाहवीक के मत से मिलकुल मिलता है। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि नास्तिक मत बहुत प्राचीन है। इसका आधिभाव उसी समय से समझना चाहिए जब वैदिक कर्मकांडों की अंधकृता लोगों को कुछ लटकने लगी थी। चाहवीक ईश्वर और परलोक नहीं मानते। परलोक न मानने के कारण ही इनके द्रव्य को लोकायत भी कहते हैं। चाहवीक के मत से सुख ही इस जीवन का प्रधान लक्ष्य है। सेतार में दुःख भी है, यह समझ कर जो सुख नहीं भोगना चाहते वे मुर्खे हैं। मछली में कटि होते हैं, तो क्या हमसे कोई मछली ही न खाए ? चाहवीक स्वतः पर जाँचने इस डर से क्या कोई खेत ही न बोवे ? ह्यादि। (सर्वद्वारनसंग्रह)। चाहवीक आत्मा को शुद्ध कोई पदार्थ नहीं मानते। उनके मत से जिस प्रकार गुण, तंतुल आदि के संयोग से मद्य में मादकता उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार भूतों के संयोग-विशेष से चेतनता उत्पन्न हो जाती है। इनके विरोध का विनाश से 'मै' अर्थात् चेतनता का भी नाश हो जाता है। इस चेतन शरीर के नाश के पीछे फिर पुनरागमन आदि नहीं होता। ईश्वर, परलोक आदि विषय अनुमान के आधार पर हैं। पर चाहवीक प्रत्यक्ष के षोडश अनुमान के प्रभाव में नहीं लेते। उनका तर्क है कि अनुमान व्याप्तिकान का आश्रित है। जो ज्ञान हमें बाहरी इंद्रियों के द्वारा होता है उसे मूल और भावित्य तक बढ़ा कर जो जाने का नाम व्याप्तिकान है, जो असंभव है। मन में यह ज्ञान प्रत्यक्ष होता है,

यह कोई प्रमाण नहीं श्रेयिक मन अपने अनुभव के लिये इंद्रियों ही का आश्रित है। यदि कहे कि अनुमान के द्वारा व्याख्यान होता है तो इतरेताश्रय दोष आता है। क्योंकि व्याख्यान को ले कर ही तो अनुमान को सिद्ध किया चाहते हैं। चार्वाक का मत सर्वदर्शन-संग्रह, सर्वदर्शन-शिरामणि और मुद्रापतिसूत्र में देवता आदिपु। नैपथ्य के १० वें सर्ग में भी इस मत का विस्तृत उल्लेख है।

(२) एक राज्य जो कौरवों के मारे जाने पर ब्राह्मण वेश में युधिष्ठिर की राजसभा में जा कर उनको राज्य के लोभ से भाई वंशुओं को मारने के लिये पिछारने लगा। इस पर समास्थित ब्राह्मण लोग हुंकार छोड़ कर दौड़े और उन्होंने उस दुर्यवेशपात्री राज्य को मार डाला।

चार्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धि। (२) चांदनी। उदात्तना।
(३) दीप्ति। आभा। (४) सुंदर स्त्री। (५) कुबेर-पत्नी।
(६) दारु हलदी।

चाल—संज्ञा स्त्री० [हि० चलन, सं० चर] (१) गति। गमन। चलने की क्रिया। उ०—इस गाड़ी की चाल बहुत धीमी है। (२) चलने का ढंग। चलने का ढब। गमन प्रकार। जैसे, यह घोड़ा बहुत शरछी चाल चलता है। उ०—रहिमन सूधी चाल से प्यादा होत बजीर। फरजी मीर न हूँ सर्क, देदे की तासीर।—रहीम। (३) आचरण। चलन। यत्ताव। व्यवहार। जैसे, अपनी इत्ती वृत्ति चाल से तुम कहीं नहीं टिकने पाते। उ०—अपने मुत की चाल न देखत उजटी रू हम पै रिस रानति।—सूर।

धा०—चाल चलन। चाल ढाल।

मुहा०—चाल सुधारना = आचरण ठीक करना।

(४) आराम प्रकार। ढब। यथापट। आकृति। गढ़न। जैसे, इस चाल का खेता हमारे यहाँ नहीं बनता। (५) चलन। रीति। रवाज। रस्म। प्रथा। परिपाटी। जैसे, हमारे यहाँ इसकी चाल नहीं है। (६) गमन-मुहूर्त्त। चलने की समय। चाला। उ०—पोथी काफ़ि गवन दिन देखै कौन दिवस है चाल।—जायसी। (७) फार्म्य करने की युक्ति। कृतकार्य होने का उपाय। ढंग। तद्बीर। ढब। जैसे, किसी चाल से यहाँ से निकल चले। (८) धोला देने की युक्ति। चालाकी। सपट। छल। धूर्तता। उ०—जोग कथा पढ़ै पून को सप सो सट चेरी की चाल चलाकी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।

धा०—चालबाजी।

मुहा०—चाल चलना = धोखा देने की युक्ति का कृतकार्य होना। धूर्तता से फार्म्य सिद्ध होना। जैसे, यहाँ तुम्हारी चाल नहीं चलगी। चाल चलना (सकर्मक) = धोखा देने का आयोजन

करना। चालाकी करना। धूर्तता करना। जैसे, हमने चाल चलते हो, यथा। चाल में धाना = धोखे में पड़ना। धोखा खाना। प्रतारित होना।

(९) ढंग। प्रकार। विधि। तरह। जैसे, मैंने उसे कई चाल से समझाया पर उसकी समझ में न थाया। (१०) शस्त्रंज, चैतर, तारा आदि के खेल में गोटी को एक घर से दूसरे घर में ले जाने शयथा पत्ते वा पासे को दाँव पर डलने की क्रिया। जैसे, देखते रहो, मैं एक ही चाल में मात करता हूँ।

क्रि० प्र०—चलना।

(११) हलचल। घूम। यादोलन। उ०—सातहू पताक काल सयद कराल राम भेदे सात ताल चाल परी सात सात में।—तुलसी। (१२) आइट। हिलने डोलने का शब्द। घटक। उ०—देखो सय बृष निदचल हो गप, मृग आँ पक्षियों की कुछ भी चाल नहीं मिलती।

मुहा०—चाल मिलना = हिलने डोलने का शब्द सुनाई देना। आइट मिलना।

(१३) वह मकान जिसमें बहुत से किरायेदार टिकते हैं। किराए का बड़ा मकान। (बंघड़े)

संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का छप्पर वा छत। छामन।
(२) स्वयंचूड़ पत्ती।

चालक—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] (१) चलानेवाला। सेनालक। (२) वह हाथी जो शंखरा न माने। नखट हाथी। (३) नृत्य में भाव यताने वा सुंदरता लाने के लिये हाथ चलाने की क्रिया।

संज्ञा पुं० [हिं० चल = धूर्तता] चाल चलनेवाला। धूर्त। छली। उ०—घरघाल, चालक, कलहमिय कहियत परम परमारथी।—तुलसी।

चालकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] चिलका नाम की फूल जो उड़ीसा में है।

चाल चलन—संज्ञा पुं० [हिं० चल + चलन] आचरण। व्यवहार। चरित्र। शील। जैसे, उसका चाल चलन शरछा नहीं है।

चाल ढाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चल + ढाल] (१) आचरण। व्यवहार। (२) ढंग। तौर तरीका।

चालन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चलाने की क्रिया। परिचालन। (२) चलने की क्रिया। गति। गमन। (३) चलनी। छलनी।

संज्ञा पुं० [हिं० चलना] भूमी या चोकर जो छाटा चालने के पीछे रह जाता है। चलनौस।

चालनहार—संज्ञा पुं० [हिं० चलन + हार (रूप०)] चलानेवाला। जो जानेवाला।

सत्रा पुं० [हि० चटना] चत्रनेवाला । उ०—तौ दिसि उत्तर चालनहार के मारग में तोह केर परे किन । या उजयनि के छाप्पे थटा परसे विन कू चलिमो किनेह जिन ।—
काशमणिसिंह ।

चालना—क्रि० सं० [सं० चालन] (१) चलाना । परिचालित करना । (२) एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना । (३) विदा करा के ले आना । (बहू) । (४) हिलाना । खेलना । इधर उधर फेरना । उ०—चालति न भुज बछी विलोकनि विरह बस भई जानकी ।—तुलसी । (५) कार्य निर्वह करना । भुगताना । उ०—चालत सब राज प्रायसु अनुसरत ।—
तुलसी । (६) बात उठाना । प्रसंग छेड़ना । उ०—बन-
माजी दिसि सैन कै ग्याजी चात्री दात । (७) आटे को छलनी में रख कर इधर उधर हिलाना जिसमें महीन धाटा नीचे गिर जाय और भूमी या चोकर छलनी में रह जाय । धानना ।

क्रि० अ० [सं० चलन] (१) चलना । गति में होना । एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना ।

धी०—चालनहार = चननेवाला ।

(२) विदा हो कर आना । चला होना । (नववधू) उ०—पारहू न यीसो चालि आए हमें पीहर ते नौके के न जानी सामु ननद जेठानी है ।—तिरवाण ।

चालनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चलनी । छलनी ।

चालवाज—वि० [हि० चल + जा० वज्] धूर्त । छुली ।

चालवाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० चलवान] चालाकी । छल । धोखे-
बाजी । धूर्तता ।

चाला—संज्ञा पुं० [हि० चाल] (१) प्रस्थान । कूच । रवानगी । (२) नई बहू का पहले पदल मायके से समुदाय वा समुदाय से मायके जाना । (३) यात्रा का मुहूर्त । प्रस्थान के लिये शुभ दिन । चलने की साधन । जैसे, आज पूव का चाला नहीं है ।

मुदा०—चाला देलना = यात्रा वा मुहूर्त विचारना । चाला निकालना = मुहूर्त निश्चित करना ।

चालाक—वि० [फ०] (१) चतुर । व्यवहारकुशल । दृढ़ । (२) धूर्त । चालवाज ।

चालाकी—संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) चतुराई । व्यवहारकुशलता । दृढ़ता । पटुता । (२) धूर्तता । चालवाजी ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुदा०—चालाकी खेतना = चालाकी करना ।

(३) बुक्ति । कौशल ।

चालान—संज्ञा पुं० [हि० चलना] (१) भेजे हुए माल की फिद-
रिस्त । बीजर । हुनवापस । (व्यापारी) । (२) भेजा हुआ माल वा द्रव्य द्रव्यत बरकाट धोरेवार दिसाय ।

धी०—चालानदार । चालान पट्टी ।

(३) रक्बा । चले जाते या मात आदि ले जाने का दाम-
पत्र (४) मुजरिमां का विचार के लिये न्यायालय में भेजा जाता । अपराधियों का सिपाहियों के पदरे में धाने या व्याया-
लय की ओर प्रस्थान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चालानदार—संज्ञा पुं० [हि० चलन + दा०] (१) वह व्यक्ति जो भेजे हुए माल के साथ जाता है और जिसकी जिम्मेदारी पर माल भेजा जाता है । चक्रदार । जमादार ।

(२) जिसके जिम्मे या जिसके पास चालान का कामूह हो ।
चालान घड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चलन + घड़ी] यह घड़ी जिसमें बाहर से आनेवाले या बाहर जानेवाले माल का धोरा लिखा जाता है ।

चालिया—[हि० चाल = दवा (अप०)] चालवाज । धूर्त । छुली । धोखेबाज ।

चालिसी—वि० दे० “चालीस” ।

चाली—वि० [हि० चाल] (१) चालिया । धूर्त । चालवाज ।

(२) चंचल । नटपट । शरीर । उ०—जनम बौ चाली ए री
बहुत है खाली आठु काली की फनाली पै नचत बनमाजी
है ।—पद्मकर ।

चालीस—वि० [सं० चत्वारिंशत्, प्र० चत्वारस] जो गिनती में तीस और तीस हो । तीस से दस अधिक । जैसे, चालीस दिन ।

संज्ञा पुं० तीस और तीस की संख्या । तीस और तीस का संक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४० ।

चालीसवाँ—वि० [हि० चालीस] जिसका स्थान उनतालीसवें के आगे हो । जिसके पीछे उनतालीस आते हों । जो क्रम में उनतालीस वस्तुओं के आगे पड़ता हो । जैसे, चालीसवाँ प्रकरण ।

संज्ञा पुं० [हि० चालीस] मुक्तक काम करने में चालीसवें दिन का कल्प । चतुष्टय । (मुसलमान) ।

चालीसा—संज्ञा पुं० [हि० चालीस] [श्री० चालीस] (१) चालीस यानुओं का समूह । जैसे, चालीसा घूना (जिसमें चालीस चीजें पड़ती हैं) । (२) चालीस दिन का समय । चिछा (३) चालीस वर्ष का समय । (४) चालीस पर्वों का ग्रंथ वा काव्य । जैसे, हनुमानचालीसा ।

चालुष्य—संज्ञा पुं० दुर्घिय का एक अत्यंत प्रबल और प्रतापी राजवंश जिसने शक ४११ से ले कर ईसा की १२वीं शताब्दी तक राज्य किया ।

विशेष—गिह्लण के विक्रमांकचरित में लिखा है कि चालुष्य वंश का आदि-पुरुष मद्रा के सुतुक (सुवर्ण) से उत्पन्न हुआ था । पर चालुष्य नाम का यह काव्य केवल

कवि-कल्पित ही है। कई साम्राज्यों में लिखा पाया गया है कि चालुक्य चंद्रवंशी थे और पहले अयोध्या में राज्य करते थे। विजयादित्य नाम के एक राजा ने दक्षिण पर चढ़ाई की और वह वहीं त्रिलोचन पल्लव के हाथ से मारा गया। उसकी गर्भवती स्त्री ने अपने झुल-पुरोधित विष्णु भट्ट सोमनाथी के साथ मूड्रिचैमु नामक स्थान में धाम्रय प्रदण किया। वहीं उसे विष्णुवर्द्धन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने गंग और कादंब राजाओं को परास्त करके दक्षिण में अपनी राज्य जमाया। विष्णुवर्द्धन का पुत्र पुलिकैरी (प्रथम) हुआ जिसने पहलवों से यातापी नगरी (आज कल की यादामी) को जीत कर उसे अपनी राजधानी बनाया। पुलिकैरी (प्रथम) शक ४११ में सिंहासन पर बैठा। पुलिकैरी (प्रथम) का पुत्र कीर्तिवर्मा हुआ। कीर्तिवर्मा के पुत्र छोट्टे थे इससे कीर्तिवर्मा की सृष्ट्य के उपरांत उसके छोटे भाई मंगलीरा गद्दी पर बैठे। पर जब कीर्तिवर्मा का जेठा लड़का सत्याश्रय यद्दा हुआ तब मंगलीरा ने राज्य उसके हवाले कर दिया। वह पुलिकैरी द्वितीय के नाम से शक २३१ में सिंहासन पर बैठा और उसने माळवा, गुजरात, महाराष्ट्र, कोंकण, कांची आदि को अपने राज्य में मिलाया। यह यद्दा प्रतापी राजा हुआ। समस्त उत्तरीय भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करनेवाले कबीर को महाराज हर्षवर्द्धन तक ने दक्षिण पर चढ़ाई करके इस राजा से हार खाई। चीनी यात्री हुएनसांग ने इस राजा का वर्णन किया है। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि फारस के बादशाह सुवरो (बुसरा) से इसका प्यवहार था, तरह तरह की भेंट लेकर दूत भाते जाते थे। पुलिकैरी के उपरांत चंद्रादित्य, आदित्यवर्मा, विक्रमादित्य क्रम से राजा हुए। शक ६०१ में विनयादित्य गद्दी पर बैठा। यह भी प्रतापी राजा हुआ और शक ६१२ तक सिंहासन पर रहा। शक ६०८ में इस वंश का प्रताप मंद पड़ गया, बहुत से प्रदेश राज्य से निकल गए। अंत में विक्रमादित्य (चतुर्थ) के पुत्र लैल (द्वितीय) ने फिर राज्य का उद्धार किया और चालुक्य वंश का प्रताप चमकाया। इस राजा ने प्रबल राष्ट्रदूत राज को दमन किया। शक ८३१ में महाप्रतापी त्रिभुवनमहल विक्रमादित्य (छठां) के नाम से राजसिंहासन पर बैठा और इसने चालुक्य विक्रमवर्ष नाम का संवत् चलाया। इस राजा के समय के अनेक साम्राज्य मिलते हैं। विद्वान् कवि ने इसी राजा को लक्ष्य करके विक्रमांकदेवचरित नामक काव्य लिखा है। इस राजा के उपरांत थोड़े दिनों तक तो चालुक्य वंश का प्रताप झंझ रहा पर पीछे घटने लगा। शक ११११ तक वीर सोमेश्वर ने किसी प्रकार राज्य बचाया, पर अंत में सैरुर के हयराज वंश के प्रबल होने पर वह धीरे धीरे हाथ से निकलने लगा। इस वंश की एक शाखा गुजरात में थीर

एक शाख्य दक्षिण के पूर्वीय प्रांत में भी राज्य करती थी।

चाह्ल—वंशां शी० [देग०] जेहवा मधुली। उ०—बात कहत महु देस गुहारी। कंबटहि चाल्ह समुद महुँ मारी।—जायसी।

चाह्ली—वंशां शी० [?] माघ में वह ख्यान जो मरिया के पास ही बसि की फट्टियों से पटा रहता है और जहाँ खेनाको महादह बैठते हैं।

चावें चावें—वंशां पु० दे० “चावें चावें”।

चाव—वंशां पु० [हिं० चाह] (१) प्रथम हृदय। अमिलजाया। खालसा। भरमान। उ०—(क) चित्रकेतु पृथ्वीपति राव। सुनहित भयो तासु हिय चाव।—मुर। (ख) वहाँ दीप यह देखा, सुनत उठा तस चाव।—जायसी।

क्रि० प्र०—उटना।—करना।—होना।

मुहा०—चाव निकालना = दासता पूरी करना।

(२) प्रेम। चतुराग। चाह। उ०—ज्यों ज्यों चवाव चर्चें चहुँ धोर धरें चित चाव ये ल्यों ही ल्यों चोखे। (३) शोक। उर्कटा। उ०—चोप छटी कि मिटो। चित चाव, कि भावत नौद, कि बेपरवाही ? (४) लाड़ प्यार। दुलार। नवरा।

धी०—चाव चोचला।

(५) उमंग। उसाह। आनंद। उ०—यहि विधि जासु प्रभाव, श्री दूसरय मदिनाल मेणि। और सवै चित चाव, सुन विन सापित रस्त हिय।—चुराज।

चावड्डी—वंशां शी० [देग०] पणिकों के उतरने का स्थान। चट्टी। पड़ाव।

चावण—वंशां पु० [देग०] गुजरात का एक प्रसिद्ध और प्राचीन राजपूत वंश जिसने कई शताब्दियों तक गुजरात में राज्य किया। इस वंश की राजधानी अमहलवाड़ा थी। जिस समय महुदूद गुजनीवी ने सोमनाथ पर आक्रमण किया था उस समय सोमनाथ चावण राजा के अधिकार में था। इस वंश की उत्पत्ति का ठीक पता नहीं है। कोई कोई चावडों को विदेश से आया मतलाते हैं पर अधिकारी लोग इन्हें विस्तृत प्रमार वंश की शाखा मानते हैं। इनके सब से प्राचीन पूर्वज का नाम यदुराज मिलाता है। यदुराज दीव या वीज नामक स्थान में राज्य करते थे। यदुराज के पुत्र येणीराज के समय में जब दीज टापू का अधिकारी समुद्र-भग हो गया तब उनकी रानी यहाँ से चंद्रू नामक स्थान में आनी लड़ी उनके गर्भ से धनराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र यद्दा प्रतापी हुआ और टाकुणों का यद्दा भारी दल इकट्ठा करके हथेर उपर लूट मार करने लगा। अंत में अनहिल नामक चरवाहे ने पट्टन नगर के खंडहरों में प्रमारों का बहुत सा संचित धन उसे दिखा दिया। इसी धन के बल से उसने उसी स्थान पर संवत् ८०२ में अनहलवाड़ा नामक नगर बसाया।

चावरी—संज्ञा पुं० दे० “चावत्र” ।

चावल—संज्ञा पुं० [सं० चंडुव] (१) एक मसिह अन्न। धान के बीज की गुठली। संडुल ।

मुहा०—चावल चयवाना = जिन चिन पर किमी वस्तु के खुराने का खेह देा उन्हें चरवारी खया भर चावन यह कह कर चयवाना कि जा चौर शेषा उनके मुँह से धूखने पर वस्तु निकालना । यह बाल्य में एक प्रकार की बमकी है जिसके डर कर कमी कमी चौर चीजे फँक देते हैं ।

(२) रीखा चावल। भात। (३) छोटे छोटे बीज के दाने जो किसी प्रकार खाने के काम में आये। जैसे, लटजीरा के चावल, जवाइन के चावल, इत्यादि। (४) एक रस्ती का धातवा भाग या उसके बराबर की लंबाई ।

मुहा०—चावत्र भर = रत्नी के आठवें भाग के बराबर ।

चाशनी—संज्ञा स्त्री० [फ्रां०] (१) चीनी, मिर्ची या गुड़ का रस जो घाँच पर चड़ा कर गाढ़ा और मधु के समान लसीजा किया गया हो। चायनी में चुपा कर बहुत सी मिठाइयाँ बनती हैं ।

मुहा०—चाशनी में पागना = भीडा करने के लिये चाशनी में डुबाना ।

(२) किसी वस्तु में थोड़े से मीठे आदि की मिलावट। जैसे, तमाहू में खमीरे की चाशनी ।

क्रि० प्र०—देना ।

(३) चतका। मज़ा। जैसे, धव अमे इसकी चाशनी मिल गई है। (४) नमूने का सोना जो सुनार को गहने बनाने के लिये सोना देनेवाला ग्राहक अपने पास रखता है और जिसने यह धने हुए गहनों के सोने का मिलान करता है ।

विशेष—अप किसी सुनार को बहुत सा सोना जेवर बनाने के लिये दिया जाता है तब धनानेवाला उसमें का थोड़ा सा (लगभग १ माशा) सोना निकाल कर अपने पास रखा लेता है और जब सुनार जेवर बना कर लाता है तब वह उस जेवर के सोने को कसौटी पर कसकर अपने पास के नमूने से मिलता है। यदि जेवर का सोना नमूने से न मिला तो समझ जाता है कि सुनार ने सोना बदल लिया या उसमें कुछ मिला दिया ।

चाप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीलकण्ठ पक्षी। उ०—घारा चाप धाम दिसि लोहे । मनो सकल मंगल कहि देहे ।—तुलसी ।

(२) चाहर पक्षी ।

संज्ञा पुं० [सं० चक्र] शाल । नेत्र । उ०—अचरन हेरिप चाप लाग्य न निमेष बहू ।—मेघ ।

चास १—संज्ञा स्त्री० [देग० चास] जल । बाह ।

चासना १—क्रि० प्र० [हिं० चस] जोतना ।

चासनी—संज्ञा स्त्री० दे० “चाशनी” ।

चासा—संज्ञा पुं० [देग०] (१) बर्षा की एक जाति जो किसानों

पर निर्वाह करती है। (२) हलवादा । हल जोतनेवाला ।

(३) किसान । खेतिहर ।

चाह—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा । (भाष्य विषय) च्छाद, हिं० चाहि ।

बयना सं० उत्साह, प्रा० उच्छाद] (१) इच्छा । अभिलाषा ।

(२) प्रेम । अनुगत । प्रीति । (३) पूछ । आदर । कदर ।

उ०—धक्के आदमी की सब जगह चाह है । (४) माँग ।

अस्त । आवरकला ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चह = चाहट] खुर । समाचार । गुप्त

भेद । धर्म । उ०—(क) राव रंक जहाँ लग सब जाती । सब

की चाह लेइ दिन राती ।—जायसी । (ख) पुर धर धर भाँसे

महा सुनि चाह सोडाई ।—तुलसी ।

संज्ञा स्त्री० दे० “चाय”, “चाव” ।

चाहक—संज्ञा पुं० [हिं० च हन] चाहनेवाला । प्रेम करनेवाला ।

चाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चह] चाह । प्रेम ।

चाहना—क्रि० स० [हिं० चाह] (१) इच्छा करना । अभिलाषा

करना । (२) प्रेम करना । स्नेह करना । प्यार करना । (३)

खेने या पाने की इच्छा प्रकट करना । माँगना । उ०—हम

तुमसे खया पैसा कुछ नहीं चाहते । (४) प्रयत्न करना । जोर

करना । कोशिश करना । उ०—उतने बहुत चाहा कि हाथ

चुड़ा कर निकल जाय पर एक न चली । (५) चाह से

देवना, ताकना, निहाना । उ०—पुनि स्वावंत मलाने

काहा । जात जगत सबै मुप चाहा ।—जायसी । (६)

हूँ डुना । सोत्रना । तलाश करना ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० च.रना] चाह । अस्त । उ०—जाकी यहाँ

चाहना है ताकी बड़ा चाहना है, जाकी यहाँ चाह ना है ताकी

बड़ा चाह ना ।

चाहा—संज्ञा पुं० [चाप] जब के निकट रहनेवाला बाले की तरह

का एक पक्षी जिसका सारा शरीर गुलदार और पीठ सुनहरी

होती है। यह जल शयन का कीचड़ के कीड़े मकोड़े खाता है।

इसका शोभ मानस के लिये शिकार करते हैं। यह पक्षी कई

प्रकार का होता है, जैसे, चाहा करमाठी = गर्दन लफेदा, रोप

सब काजा । चाहा चुका = चोंच और पैर लाल, रोप सब खाकी।

चाहा बगौठी = पैर लाल, रोप सब शरीर चितकनरा । चाहा

लामोड़ा = चितकनरा, चोंच और पैर कुछ अधिक धवे ।

चाहि—अर्थ० [सं० चैव = चीर भी] अपेवाहृत (अधिक) ।

धनित्यत । से (यह कर) । उ०—(क) ससि चौरज जो

देई संपार । ताहू चाहि रूप उजियारा ।—जायसी । (ख)

मेवाहिँ चाहि अधिक वे कारे । भयो असुक देखि भँधियारे ।

—जायसी । (ग) जीव चाहि सो अधिक पियारी । नागँ जीव

देई यजिहारी ।—जायसी । (घ) कुलिसहू चाहि कठोर अति

कामस कुसुमहि चाहि ।—तुलसी ।

चाहिप—अर्थ० [हिं० चाहना] उचित है । उपयुक्त है । मुनासिब

है। उ०—लड़कों को चाहिए कि अपने मर्न-याप का कहना मानें।

विशेष—यह शब्द 'विधि' सूचित करने के लिये संयो० कि० की भांति क्रियाओं में भी लगता है, जैसे, करना चाहिए, खाना चाहिए, इत्यादि। उ०—तुम्हें ऐसा कभी नहीं करना चाहिए।

चाही-वि धी० [हि० चाह] चाही हुई। जो चाही जाय। चाहेती। प्यारी।

वि० [फा० चाह = हूँ] कुँवा संश्लेषी। (वह भूमि) जो कुँव से सींची जाय।

चाहे—अर्थ० [हि० चाहना] (१) जी चाहे। इच्छा हो। मन में आवे। उ०—(क) तुम जहाँ चाहे वहाँ जाओ, मुझ से मतलब ? (ख) इनमें से चाहे जिसको लो। (२) यदि जी चाहे तो। जैसा जी चाहे। या तो। उ०—चाहे यह लो चाहे वह। (३) होना चाहता हो। होनेवाला हो। उ०—चाहे जो हो, हम वहाँ अवश्य जायेंगे।

चिँचाँ—संज्ञा पु० [सं० चिंचा = इमली] इमली का बीज। उ०—तेरी महिमा ते चले चिंचिनी चिंचाँ रे।—तुलसी।

मुहा०—चिँचाँ सी = छोटी। बहुत छोटी। जैसे, चिँचाँ सी आँसू।

चिँडटा—संज्ञा पु० [हि० चिमटा] एक कीड़ा जो मीठे के पास बहुत जाता है और जिस चीज को चिमटता है उसे जख्मी नहीं छोड़ता। चोंटा।

मुहा०—गुड़ चिँडटा होना = एक दूसरे से गुप जाना। परस्पर चिन्त जाना। गुपमगुपना होना। चिँडटे के पर निकलना = ऐसा काम करना जिससे मृग्य हो। मरने पर होना। (चिँडटे के जब पर निकलते हैं तब वे हवा में उड़ते हैं और गिर पड़ कर मर जाते हैं।)

चिँडटिया रंगान—संज्ञा स्त्री० [हि० चिँडटा + रंगान] (१) बहुत धीमी चाल। बहुत सुस्त चाल। श्रवण मंद गमन। ढाले ढाले चलना। (२) सिर के थालों की यड़ी बारीक कटाई जिसमें चिँडटी रंगती हुई देल पड़े। (माई)

चिँडटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिमटना] एक बहुत छोटा कीड़ा जो मीठे के पास बहुत जाता है और अपने चुकीले मुँह से काटता और चिमटता है। चोंटी। पिपिलिका।

विशेष—चिँडटियों के मुँह के दोनों किनारों पर दो निकली हुई नाके होती हैं, जिनसे वे काटती या चिमटती हैं। इनकी जीभ एक नली के रूप में होती है जिससे वे रसीली चीजें चूसती हैं। चिँडटी की अनेक जातियाँ होती हैं। मधुमक्खियों के समान चिँडटियों में भी नर, मादा के अतिरिक्त फलीय होते हैं जो केवल कार्य करते हैं, संतानोत्पत्ति नहीं करते। चिँडटियाँ मुँह में रहती हैं। इनके मुँह में व्यवस्था और नियम

का अद्भुत पालन होता है। समुदाय के लिये भोजन संचित करके रखना, स्थान को रचित धनाना आदि कार्य यही कररता के साथ किए जाते हैं। इनका धर्म और अल्पवयस्य प्रसिद्ध है।

मुहा०—चिँडटी की चाल = बहुत सुस्त चाल। मंद गति। चिँगाट—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अण० चिंघटे] एक प्रकार की मछली। किंगवा। किंगो।

विशेष—यह मछली फेरुड़े की जाति के अंतर्गत है। दे० "किंगो"।

चिंंगडा—संज्ञा पु० [हि० किंग] किंगो मछली।

चिंंगना—संज्ञा पु० [दे०] (१) किमी पत्ती, विशेषतः मुगगी का छोटा बच्चा। (२) छोटा बालक। बच्चा।

चिंंगारी—संज्ञा स्त्री० दे० "चिनगारी"।

चिँगुरना—कि० अण० [हि० चंग] बहुत देर तक एक स्थिति में रहने के कारण किसी अंग का जख्मी न फैलना। नसें का इस प्रकार संकुचित होना कि हाथ पैर जख्मी फैलते न बने।

चिँगुरा—संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का वृक्ष।

संज्ञा पु० [हि० चिंगुरना] बहुत देर तक स्थिति में रहने के कारण किसी अंग का ऐसा संकोच कि वह फैलाने से जख्मी न फैले।

कि० प्र०—लगना।

चिँगुला—संज्ञा पु० [दे०] (१) बच्चा। बालक। (२) किसी पत्ती का छोटा बच्चा।

चिंघाडु—संज्ञा स्त्री० [सं० चिंकार] (१) चीख मारने का शब्द। किसी जंतु का घोर शब्द। चिंघाहट। (२) हाथी की बोली।

कि० प्र०—मारना।

चिंघाडुना—कि० अण० [सं० चिंकार] (१) चीखना। चिंघाना। (२) हाथी का चिंघाना।

चिंघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हमली। (२) हमली का चिँचाँ।

चिंघाटक—संज्ञा पु० [सं०] चंच साग।

चिंचामु—संज्ञा पु० [सं०] चूका नाम का साग।

चिंचिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिचिं] (१) हमली का पेड़। (२) हमली का फल। उ०—तेरी महिमा ते चले चिंचिनी चिंचाँ रे।—तुलसी।

चिंची—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुँघुची।

चिंचोटक—संज्ञा पु० [सं०] चंच साग।

चिंचो—संज्ञा पु० [सं० चिंचो] [स्त्री० चिंचो] लड़का। पुत्र। बेटा। उ०—गिरत गम्भ कोहै गम्भ चिंचो चिंचा हर।—भूपन।

चिंजी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिंजा] लड़की। कन्या।

चिंड—संज्ञा पु० [सं०] मुख्य का एक भेद। नाच का एक ढंग। उ०—उलया टँकी ब्रालम सदिंड। पद पलटि हुमयो निशंक चिंड।—केशव।

चित्त-संज्ञा छं० [सं० चिन्ता] चिंतना । चिंता । ध्यान । याद । सोच । चिन्तक । उ०—सो करउ अग्रारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा ।—तुलसी ।

चित्तक-वि० [सं०] (१) चिंतन करनेवाला । ध्यान करनेवाला । उ०—(क) जे रघुवीर धरन चिंतक तिन्ह की प्रति प्रगट देख्योई । अचिरल अमल अल्प भगति छुट तुलसिदास तप पाई ।—तुलसी । (ख) सिय पद चिंतक जे जग माहीं । साधु सिद्धि पावहिँ सक नाहीं ।—रामाश्रमेष । (२) सोचनेवाला । विचार करनेवाला । ध्यान करनेवाला ।

यै०—द्विचिंतक = ऐरएवाह ।

विशेष—हस शब्द का प्रयोग समास में अचिंतक होता है ।

चिंतन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चिंतनम्, चिंता, चिंत्य] (१) ध्यान । बार बार स्मरण । किसी बात को बार बार मन में खाने की क्रिया । उ०—श्री रघुवीर धरन चिंतन तविवि नाहीं डार कह्यो ।—तुलसी । (२) विचार । विवेचना । गौर ।

चिंतना-वि०-सं० [सं०] (१) चिंतन करना । ध्यान करना । स्मरण करना । उ०—सनक शंकर ध्यान ध्यायत निगम अथन वरन । शेष शारद अरुपि सुनारद संत चिंतन धरन ।—सूर । (२) सोचना । समझना । गौर करना । विचारना । संज्ञा छं० [सं० चिंतन] (१) ध्यान । स्मरण । भावना । (२) चिंता । सोच ।

चिंतनीय-वि० [सं०] (१) चिंतन करने योग्य । ध्यान करने योग्य । भावनीय । (२) चिंता करने योग्य । निमकी फ़िक्र करना उचित हो । (३) विचार करने योग्य । सोचने समझने योग्य ।

चिंतवन*—संज्ञा पुं० दे० "चिंतन" ।

चिंता-संज्ञा छं० [सं०] (१) ध्यान । भावना । (२) वह भावना जो किसी प्राप्त दुःख या दुःख की आशंका आदि से हो । हीच । फ़िक्र । खटका । उ०—चिंता अवाल शरीर बन, दावा जगि लगी जाय । प्रगट पुर्वा नहिँ देखिय, वर अंतर पुँडु-आय ।—तिरघर ।

फ़ि० प्र०—करना ।—होना ।

मुद्दा—चिंता जगना—चिंता का बराबर बना रहना । जैसे, सुधे दिन रात इसी की चिंता लगी रहती है । कुछ चिंता नहीं—कुछ परवाह नहीं । फेड़ें लटकें की बात नहीं ।

विशेष—साहित्य में चिंता करुण रस का अभिचारी भाव माना जाता है, अतः विशेष की दस दशाओं में से चिंता दूसरी दशा मानी गई है ।

चिंताकुल-वि० [सं०] चिंता से मग्न ।

चिंतामुर-वि० [सं०] चिंता से घबराया हुआ ।

चिंतामणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक कविपत्र रत्न जितके विषय

में प्रसिद्ध है कि उससे जो अग्रिमलापा की जाय वह पूर्ण कर देता है । उ०—राम चरित चिंतामणि चारु । संत-सुमत तिय सुभग मियँ गारु ।—तुलसी । (२) प्रदा । (३) परमेश्वर । (४) एक बुद्ध का नाम । (५) घोड़े के गले की एक छत्र भीरी । (६) वह घोड़ा जिसके कंठ में उक्त भीरी हो । (७) स्कंद-पुराण (गणपतिहस्त) के अनुसार एक गणेश जिन्होंने कथिव के यहां जन्म लेकर महाबाहु नामक दैत्य से उस चिंतामणि का बद्धार किया था जिसे उसने कथिव से छीन लिया था । (८) यात्रा का एक योग । (९) वैद्यक में एक रस जो पारा, गवक, अन्नक और जयपाल के योग से बनता है । (१०) सरस्वती देवी का मंत्र जिसे लोहा बालक की जीभ पर विद्या धाने के लिये लिपते हैं ।

चिंतावेद्म-संज्ञा पुं० [सं० चिंतावेद्मन्] सहाह करने का घर या स्थान । मंत्रपागृह । गोष्ठीगृह ।

चिंति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश । (२) उस देश का निवासी ।

चिंतीड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली ।

चिंतित-वि० [सं०] जिसे चिंता हो । चिंतायुक्त । फ़िक्रमंद ।

चिंत्य-वि० [सं०] भावनीय । विचारणीय । विचार करने योग्य ।

चिंदी-संज्ञा छं० [दे०] टुकड़ा ।

मुद्दा—चिंदी चिंदी करना—किसी वस्तु को ऐसा तोड़ना कि उसके छोटे छोटे टुकड़े हो जाय । हिंदी की चिंदी निकालना—अपने सुच्छ भूल निकालना । कुतर्क करना ।

चिंपा-संज्ञा पुं० [दे०] एक गहरे काले रंग का कीड़ा जो उबार, यानरे, पारर और तमायू को खा डालता है ।

चिंपाजी-संज्ञा पुं० [सं० चिंपाजी] अम्लीका का एक बनमानुस जिसकी आकृति मनुष्य से बहुत मिलती जुलती होती है । इसका सिर ऊपर से चिपटा, माथा दबा हुआ, मुँह बहुत चौड़ा, कान बड़े और उमड़े हुए, नाक चिपटी तथा शरीर के बाल काले और मोटे होते हैं । इसके सिर, कंधे और पीठ पर बाल घने और पैर और छाती पर कम होते हैं । इसका सुख दिना रोएँ का और रंग गहरा ऊदा होता है । दोनों ओर के गलमुच्छे काले होते हैं । इसका कूद भी मनुष्य के बराबर ही होता है । चिंपाजी कुँब में रहते हैं ।

चित्रा-संज्ञा पुं० [सं० चित्रेत्, प्र० चित्रेत्] एक प्रकार का बरतण जो हरे, भिंगोर या उमाले हुए पान को कूटने से बनता है । चिद्व्या । चूत ।

चित्रा-संज्ञा पुं० (१) दे० "चित्रा" । उ०—ही चित्रा निधि हरे सुदामि जघपि बाल मितार्इ ।—तुलसी । (२) चिद्वली ।

है। उ०—लड़कों को चाहिए कि अपने मां-बाप का कहना मानें।

विशेष—यह शब्द 'विधि' सूचित करने के लिये संयो० क्रि० की भांति क्रियाओं में भी लगता है, जैसे, करना चाहिए, खाना चाहिए, इत्यादि। उ०—तुम्हें ऐसा कभी नहीं करना चाहिए।

चाही-वि छी० [हि० चाह] चाही हुई। जो चाही जाय। चाहेती। प्यारी।

वि० [फा० चाह = डैवी] कुंवा संबंधी। (वह भूमि) जो कुंवा से सौंची जाय।

चाहे-अर्थ० [हि० चाहना] (१) जी चाहे। इच्छा हो। मन में श्रावे। उ०—(क) तुम जहाँ चाहे वहाँ जाओ, मुझ से मतलब ? (ख) इनमें से चाहे जिसको लो। (२) यदि जी चाहे तो। जैसा जी चाहे। या तो। उ०—चाहे यह लो चाहे यह। (३) होना चाहता हो। होनेवाला हो। उ०—चाहे जो हो, हम वहाँ श्रवण जायेंगे।

चिँचिँ—संज्ञा पुं० [सं० चिंचा = इमली] इमली का बीज। उ०—तेरी महिमा ते चलिँ चिंचिनी चिचिँ रे।—तुलसी।

मुहा०—चिँचा सी = छोटी। बहुत छोटी। जैसे, चिँचा सी श्राँल।

चिँडैटा—संज्ञा पुं० [हि० चिमटा] एक कीड़ा जो मूँठे के पास बहुत जाता है और जिस चीज को चिमटता है उसे जल्दी नहीं छोड़ता। चींटा।

मुहा०—गुड़ चिँडैटा होना = एक दूसरे से गुप्त जाना। परस्पर चिपट जाना। गुप्तमगुप्ता होना। चिँडैटे के पर निकलना = ऐसा काम करना जिससे म्युष्ट हो। मरने पर होना। (चिँडैटे के जय पर निकलते हैं तब ये हवा में उड़ते हैं और गिर पड़ कर मर जाते हैं।)

चिँडैटिया रँगान—संज्ञा स्त्री० [हि० चिँडैटा + रँगान] (१) बहुत धोमी चाल। बहुत सुल्ल चाल। श्रद्धत मंद गमन। ढाले ढाले चलना। (२) सिर के बालों की बढ़ी बारीक कटाई जिसमें चिँडैटी रँगती हुई रेल पड़े। (नाई)

चिँडैटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिमटना] एक बहुत छोटा कीड़ा जो मूँठे के पास बहुत जाता है और अपने चुकीले मुँह से काटता और चिमटता है। चींटी। पिंपीलिका।

विशेष—चिँडैटियों के मुँह के दोनों किनारों पर दो निकली हुई नाके होती हैं, जिनसे वे काटती या चिमटती हैं। इनकी जीभ एक नली के रूप में होती है जिससे वे रस्तीची चीजें चुसती हैं। चिँडैटी की अनेक जातियाँ होती हैं। मनुष्यविलों के समान चिँडैटियों में भी नर, मादा के अतिरिक्त बर्जीय होते हैं जो केवल कार्य करते हैं, संतानोत्पत्ति नहीं करते। चिँडैटियाँ कुँड में रहती हैं। इनके कुँड में व्यवस्था और नियम

का अद्भुत पालन होता है। समुदाय के लिये भोजन संचित करके रखना, स्थान को रचित बनाना आदि कार्यें बढ़ी तरतूत के साथ किए जाते हैं। इनका श्रम और श्रद्धवसाय प्रसिद्ध है।

मुहा०—चिँडैटी की चाल = बहुत सुल्ल चाल। मंद गति।

चिँगाट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्न० चिंथे] एक प्रकार की मछली। किंगवा। किंगा।

विशेष—यह मछली केड़े की जाति के अंतर्गत है। दे० "किंगा"।

चिँगाड़ा—संज्ञा पुं० [हि० भँगा] भँगा मछली।

चिँगना—संज्ञा पुं० [दे०] (१) किसी पत्नी, विशेषतः सुरगी का छोटा बच्चा। (२) छोटा बालक। बच्चा।

चिँगरी—संज्ञा स्त्री० दे० "पिनगरी"।

चिँगुरना—क्रि० अ० [हि० चंग] बहुत देर तक एक स्थिति में रहने के कारण किसी श्रंग का जल्दी न फैलना। नसें का इस प्रकार संकुचित होना कि हाथ पैर जल्दी फैलाने न बने।

चिँगुरा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बगुला।

संज्ञा पुं० [हि० चिगुरना] बहुत देर तक स्थिति में रहने के कारण किसी श्रंग का ऐसा संकोच कि यह फैलाने में जल्दी न फैले।

क्रि० प्र०—लगना।

चिँगुला—संज्ञा पुं० [दे०] (१) बच्चा। बालक। (२) किसी पत्नी का छोटा बच्चा।

चिँगाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० चिंकार] (१) चीख मारने का शब्द। किसी जंतु का घोर शब्द। चिंहाइट। (२) हाथी की घोड़ी।

क्रि० प्र०—मारना।

चिँगाड़ना—क्रि० अ० [सं० चिंकार] (१) चीखना। चिंखाना। (२) हाथी का चिंखाना।

चिँचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इमली। (२) इमली का चिँचा।

चिँचाटक—संज्ञा पुं० [सं०] चंच साग।

चिँचामु—संज्ञा पुं० [सं०] चूका नाम का साग।

चिँचिमी—संज्ञा स्त्री० [सं० चिंचि] (१) इमली का पेड़। (२) इमली का फल। उ०—तेरी महिमा ते चलि चिंचिनी चिँचा रे।—तुलसी।

चिँची—संज्ञा स्त्री० [सं०] चुँजा। चुँचुची।

चिँचाटक—संज्ञा पुं० [सं०] चंच साग।

चिँजा—संज्ञा पुं० [सं० चिंजेव] [स्त्री० चिंजेव] लहका। पुत्र। बेटा। उ०—गिरत गधम कोई गधम चिंजी चिंजा डर।—भूपन।

चिंजी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिंजा] लहकी। कन्या।

चिँड—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य का एक भेद। नाच का एक ढंग। उ०—उलगा टँकी शालम सदिँड। पद पलटि हुमयो निरंकर चिँड।—केशव।

चिंत-संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्ता] चिंतना । चिंता । ध्यान । याद । संवांच । फिक्र । उ०—सो कार अघारी चिंत हमारी जाविय भगति न पूजा ।—तुलसी ।

चिंतक-वि० [सं०] (१) चिंतन करनेवाला । ध्यान करनेवाला । उ०—(क) जे रघुवीर चरन चिंतक तिन्ह की गति प्रगट देखाई । शविरल कमल धनूप भगति दृढ़ तुलसिदास तप पाई ।—तुलसी । (ख) सिय पद चिंतक जे जग माहीं । साधु सिद्धि पावहिँ सक गाहीं ।—रामानुज । (२) संवेदनेवाला । विचार करनेवाला । ध्यान करनेवाला ।

ध्या०—हितचिंतक = लैरद्वारा ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में अधिक होता है ।

चिंतन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चिन्तनीय, चिंतन, चिंत] (१) ध्यान । बार बार स्मरण । किसी बात को बार बार मन में लाने की क्रिया । उ०—श्री रघुवीर चरन चिंतन तजि गाहीं ठौर कहुँ ।—तुलसी । (२) विचार । विवेचना । गौर ।

चिंतना-क्रि० सं० [सं०] (१) चिंतन करना । ध्यान करना । स्मरण करना । उ०—सनक शंकर ध्यान ध्यावत निगम श्रवण धरन । शेष शशरद श्रुति सुनारद संत चिंतत धरन ।—सूर । (२) सोचना । समझना । गौर करना । विचारना । संज्ञा स्त्री० [सं० चिंतन] (१) ध्यान । स्मरण । भावना । (२) चिंता । सोच ।

चिंतनीय-वि० [सं०] (१) चिंतन करने योग्य । ध्यान करने योग्य । भावनीय । (२) चिंता करने योग्य । जिसकी फिक्र करना उचित हो । (३) विचार करने योग्य । सोचने समझने योग्य ।

चिंतवन-संज्ञा पुं० दे० "चिंतन" ।

चिंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ध्यान । भावना । (२) वह भावना जो किसी प्रास दुःख वा दुःख की आशंका आदि से हो । सोच । फिक्र । परतका । उ०—चिंता ज्वाल शरीर बन, दाया लजि कमि जाय । प्रगट पुर्वा नहिँ देखिपु, उर अंतर पुँ सु-चाय ।—मिश्र ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—चिंता लगना = चिंता का बरतार बना रहना । जैसे, मुझे दिन रात इसी की चिंता लगनी रहती है । कुछ चिंता नहीं = कुछ परवाह नहीं । कोई खटके की बात नहीं ।

विशेष—साहित्य में चिंता कथय रस का व्यभिचारी भाव माना जाता है, अतः विराम की दस दरारों में से चिंता दूसरी दशा मानी गई है ।

चिंताकुल-वि० [सं०] चिंता से व्यथित ।

चिंतामुर-वि० [सं०] चिंता से घबराया हुआ ।

चिंतामणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक कल्पित रत्न जिसके विषय

में प्रतिष्ठ है कि उससे जो अभिलाषा की जाय वह पूर्ण कर देता है । उ०—राम चरित चिंतामणि चारु । संत-सुमन तिय सुभग सिँ गारु ।—तुलसी । (२) प्रह्ला । (३) परमेश्वर । (४) एक युद्ध का नाम । (५) घोड़े के गले की एक झुम भौंरी । (६) वह घोड़ा जिसके कंठ में उक्त भौंरी हो । (७) स्कंद-पुराण (गणपतिकल्प) के अनुसार एक राधेय जिन्होंने कथित के यहाँ जन्म लेकर महाबाहु नामक देव से उस चिंतामणि का उद्धार किया था जिसे उसने कथिल से छीन लिया था । (८) यात्रा का एक योग । (९) वैद्यक में एक रस जो पारा, गवक, अन्नक और जयपाल के योग से बनता है । (१०) सरस्वती देवी का मंत्र जिसे लोग बालक की जीम पर विद्या आने के लिये लिखते हैं ।

चिंतावेशम-संज्ञा पुं० [सं० चिंतावेशम्] सलाह करने का घर वा स्थान । मंत्रपाण्ड । गोष्टीगृह ।

चिंति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश । (२) उस देश का निवासी ।

चिंतीड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूधली ।

चिंतित-वि० [सं०] जिसे चिंता हो । चिंतायुक्त । फिक्रमंद ।

चिंत्य-वि० [सं०] भावनीय । विचारणीय । विचार करने योग्य ।

चिंदी-संज्ञा स्त्री० [दे०] डुकड़ा ।

मुहा०—चिंदी चिंदी करना = किसी वस्तु को ऐसा तोड़ना कि उसके छोटे छोटे टुकड़े हो जाय । हिंदी की चिंदी निकालना = अर्थसे मुच्छ भूल निकालना । छुटकें करना ।

चिंपा-संज्ञा पुं० [दे०] एक गहरे काले रंग का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, अरहर और तमाखू को खा डालता है ।

चिंपाजी-संज्ञा पुं० [च० चिंपेजी] अमरुका का एक वनमानुस जिसकी आकृति मनुष्य से बहुत मिलती जुलती होती है । इसका स्त्रि ऊपर से चिपटा, माथा दबा हुआ, मुँह बहुत चौड़ा, कान बड़े और उमड़े हुए, नाक चिपटी तथा शरीर के बाल काले और मोटे होते हैं । इसके स्त्रि, कंठे और पीठ पर बाल घने और पेठ और छाती पर कम होते हैं । इसका मुख विना रोदों का और रंग गहरा कड़ा होता है । दोनों ओर के गलमुच्छे काले होते हैं । इसका कद भी मनुष्य के बराबर ही होता है । चिंपाजी कुंड में रहते हैं ।

चिउड़ा-संज्ञा पुं० [सं० चिउट्ट, प्र० चिउट्ट] एक प्रकार का चरणीय जो हरे, गिरीण्य या बजाले हुए धातु का कूटने से बनता है । चिउड़ा । चूरा ।

चिउरा-संज्ञा पुं० (१) दे० "चिउड़ा" । उ०—ही चिउरा सिधि दई मुरामहि जघपि बाल मिताई ।—तुलसी । (२) चिउली ।

चिउली—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) महुए की जाति का एक जंगली पेड़ जो हिमालय के आस पास भूटान तक होता है। इसका पतझड़ होता है। इसमें से एक प्रकार का तेल निकलता है जो मखन की तरह जम जाता है। इस तेल के जमे हुए कतरों को चिउरा या चिउली का पीना या फुलवा भी कहते हैं। वैताल आदि में इसे धी में मिलाने हैं। (२) एक प्रकार का रंगीन रेवामी कपड़ा।

पर्याय—चिउरा। कुलवारा। चार चूरी।

(२) [स० विहित, प्रा० विविध, चिबिठ] चिकनी सुपारी।

चिक—संज्ञा स्त्री० [वृ० विकृ] (१) घास या सरकंडे की तीलियों का बना हुआ भैंसरीदार परदा। चिलमन। (२) पशुओं को मार कर उनका मांस बेचनेवाला। चूपर। चकर कसाई (चूचरो की टुक न पर चिक टंगी रहती है इसी से यह शब्द बना है)। उ०—जाट जुलाह सुरे दरजी मरजी पै चड़े चिक चोर चमारै।

संज्ञा स्त्री० [दे०] कमार का वह दूद जो एक बारगी अधिक यत्न करने के कारण होता है। धमक। चिलक। कटका। लचक।

संज्ञा स्त्री० [सं०] चक। हुंड़ी। किसी बंध या महाजन के नाम वह कागज जिसमें रुपया देने का आदेश रहता है।

चिकट—वि० [स० विहित] (१) चिकना और मूल से गंदा। जिसपर मूल जमा हो। मूला कुचैला। (२) जखीला चिपचिपा।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का रेवामी या टसर का कपड़ा। (२) वे कपड़े जिन्हें भाई अपनी पहिन को उस समय देता है जब वहिन की संतान का विवाह होता है।

चिकटना—कि० शब्द [हि० चिकट ना चिकट] जमी हुई मूल के कारण चिपचिपा होना।

चिकटा—वि० दे० “चिकट”।

चिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक छोटा पेड़ जो हिमालय पर २००० फुट की ऊँचाई तक मिलता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और कुछ पीलापन लिए होती है। अत्युत्तर में इसकी कंधियां बहुत अच्छी बनती हैं। कठोत आदि बनाने के काम में भी यह लकड़ी आती है। पत्तों की खाद बनती है। फूलों में मीठी सुगंध होती है।

चिकन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक प्रकार का महीन सूती कपड़ा जिसपर उभड़े हुए फूल या घटे बने रहते हैं। फरसीदा काड़ा हुआ कपड़ा। सूज़ानकारी का कपड़ा।

धौ०—चिकनकारी। चिकनगर।

चिकनकारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] चिकन बनाने का काम।

चिकनगर, चिकनदेोज—संज्ञा पुं० [फ्रा०] चिकन काढ़नेवाला।

चिकन का काम करनेवाला।

चिकना—वि० [सं० विकृ] [श्री० चिकना] (१) जो

दूध में खुरदुरा न हो। जो ज्वड़ खावड़ न हो। जिस पर उँगली फेरने से कहीं उभाड़ आदि न मालूम हो। जो साफ और चराचर हो। जैसे चिकनी चीनी, चिकनी मेड़। (२) जिस पर पैर आदि फिसले। जिस पर सरकने में कुछ रुकावट न जान पड़े। जैसे, यहाँ की मिट्टी बड़ी चिकनी है, पैर फिसल जायगा।

मुहा०—चिकना देल किमल पढ़ना = केवल सौदर्य या फन देल कर शीम जाना। फन वा रूप पर लुभा जाना।

(३) जिसमें रुखाई न हो। जिसमें तेल आदि का गीलारन हो। जिसमें तेल हो या लगा हो। स्निग्ध। तेलिया। तेलीस।

मुहा०—चिकना घड़ा = (१) वह जिस पर अच्छी बातों का कुछ अक्षर न पड़े। ओछा। निर्लज्ज। बेधुआ। (२) वह जिसके पैर में कोई बात न पचे। सूद स्वभाव का। चिकने घड़े पर पानी पढ़ना = किसी पर किसी अच्छी बात या उपदेश का प्रभाव न पढ़ना।

(३) साफ सुपरा। सँवारा हुआ। जैसे, तुम्हारा चिकना मुँह देल कर कोई रुपया नहीं दिए देता।

मुहा०—चिकना सुपड़ा = बना ठना। छैन चिकनियाँ। सँवार सि गार किए हुए। चिकनी सुपड़ी = दे० “चिकनी सुपड़ी बातें”। “चिकनी सुपड़ी बातें = मीठी बातें” का किसी को प्रसन्न करने, बहकाने वा। धोखा देने के लिये कही जंय। धनावडी स्नेह दे भरी बातें। कृमि मधुर भाषण। उ०—उसकी चिकनी सुपड़ी बातों में मत धाना। चिकना मुँह = सुंदर और सँवारा हुआ चेहरा। चिकने मुँह का टग = ऐसा धूर्त का देखने में और बात नीव ते भलाभातुस जान पड़ता है। वंचक।

(४) चिकनी सुपड़ी बातें कहनेवाला। केवल दूसरों को प्रसन्न करने के लिये मीठी बातें कहनेवाला। लफ्फे चपने करनेवाला। चाटकार। खुरामदी। (५) स्नेही। अनुसारी। प्रेमी। उ०—जे नर स्नेह विषय रस चिकने राम सेनेह। तुलसी ते प्रिय राम के कानन बसहि कि गोह।—तुलसी। संज्ञा पुं० तेल, घी, चरबी आदि चिकने पदार्थ। जैसे, इसमें चिकना बहुत कम देना।

चिकनाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चिकना + ई (प्रत्य०)] (१) चिकना होने का भाव। चिकनापन। चिकनाहट। (२) स्निग्धता। सरसता। (३) घी, तेल, चरबी इत्यादि चिकने पदार्थ।

चिकनाना—कि० शब्द [हि० चिकना + ना (प्रत्य०)] (१) चिकना करना। खुरदुरा न रहने देना। चराचर कटके साफ करना। (२) स्नेहा न रहने देना। तेलीस करना। स्निग्ध करना। (३) मूल आदि साफ करके निलारना। साफ सुपरा करना। सँवारना।

संयोग क्रि०-देना ।-लेना ।

कि० थ० (१) चिकना होना । (२) श्रियत होना । (३) चरवी से युक्त होना । हट्ट पुष्ट होना । मोठाना । जैसे, देलो वे जय से यहाँ रहने लगे हैं, कसे चिकना थाए हैं । (४) स्वेद्युक्त होना । प्रेमपूर्ण होना । अनुक्त होना । उ०— नहिं नचाइ चितपति रगनि नहिं बोलति सुमुकाय । ज्यों ज्यों स्व स्वला करति स्त्री स्त्री चित चिकनाय ।—विहारी ।

चिकनापन-संज्ञा पु० [हि० चिकना + पन (प्रत्य०)] चिकना होने का भाव । चिकनाई । चिकनाहट ।

चिकनाघट-संज्ञा स्त्री० दे० "चिकनाहट" ।

चिकनाहट-संज्ञा स्त्री० [हि० चिकना + हट (प्रत्य०)] चिकना होने का भाव । चिकनापन । चिकनापन ।

चिकनिया-वि० [हि० चिकना] दुस्ता । शौकीन । धाँका । धनाढ्या । उ०—(क) सचही ब्रज के लोग चिकनिया भेरे भाएँ पास । अथ तो हई बली री माई नहिं मानंगी पास ।—सूर । (ख) सूरदास प्रसु बाके वस परि अथ हरि भए चिकनिया ।—सूर । (ग) या माया रघुनाथ की बेटी खेलेन चली अहारा हो । चतुर चिकनियां धुनि सुनि भार काहु न राखे नरा हो ।—कबीर ।

चिकनी-वि० स्त्री० दे० "चिकना" ।

छंदा स्त्री० चिकनी सुपारी ।

चिकनी मिट्टी-संज्ञा स्त्री० [हि० चिकनी + मिट्टी] (१) काले रंग की लवण मिट्टी जो सिर प्रकने आदि के काम में आती है । फरती मिट्टी । काली मिट्टी ।

विशेष—चना प्रलसी, जौ आदि इस मिट्टी में बहुत अच्छे होते हैं ।

(२) पीले वा सफ़ेद रंग की साफ़ लसीली मिट्टी जो बड़ी नदियों के ऊँचे करारों में होती है और खाने पोतने के काम में आती है ।

चिकनी सुपारी-संज्ञा स्त्री० [सं० चिकनी] एक प्रकार की उमाली हुई सुपारी जो पिपटी होती है । चिकनी बडी ।

विशेष—दक्षिण के कनाता नामक प्रदेश में यह सुगरी उगाव कर बनाई जाती है, इसी से इसे दक्षिणी सुपारी भी कहते हैं ।

चिकरना-कि० थ० [सं० चिकार, प्र० चकार, चिकार] चीत्कार करना । चिंघाड़ना । चीत्तना । जोर से चिंघाना ।

चिकवा-संज्ञा पु० [सं० चिक + वा] मकर बसना । मांस बेचने-बाज । मूड । चिक ।

चिकार-संज्ञा पु० [सं० चिकार, प्र० चिकार] चीत्कार । चिंघाड़ना । चिंघाड़ । उ०—(क) परपो भूमि करि पोर चिकारा ।—शुभरी । (ख) मरत अमर चिकार पायो मारयो नैद-भुमार ।—सूर ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचाना ।—होना ।

चिकारना-कि० थ० [हि० चिकार] चीत्कार करना । चिंघाड़ना । चिकारा-संज्ञा पु० [हि० चिकार] [स्त्री० चिकारी] (१)

सारंगी की तरह का एक बाजा जिसमें नीचे की पोर चमड़े से मड़ा कटोरा रहता है और ऊपर बाँड़ी निकली रहती है । चमड़े के ऊपर से गूँप हुए तारों या घोड़े के बालों को कमानों से रेतने से शब्द निकलता है । (२) हिरन की जाति का एक जंगली जानवर जो बहुत फुरतीला होता है । इसे चिकरा भी कहते हैं ।

चिकारी-संज्ञा स्त्री० [हि० चिकारा] (१) छोटा चिकारा । (२) मधुइ की तरह का एक प्रकार का बहुत छोटा कीड़ा ।

चिकित-संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

चिकितान-संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

चिकितायन-संज्ञा पु० [सं०] चिकित ऋषि के वंशज ।

चिकित्सक-संज्ञा पु० [सं०] रोग दूर करने का उपाय करने-वाला । वैद्य ।

चिकित्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० चिकित्सित, चिकित्स्य] (१) रोग दूर करने की युक्ति वा क्रिया । शरीर स्वस्थ वा नीरोग करने का उपाय । रोग शक्ति का विधान । रोगप्रतीकार । इलाज ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

विशेष—आयुर्वेद के दो विभाग हैं, एक तो निदान जिसमें प्रधान के लिये रोगों के लक्षण आदि का वर्णन रहता है और दूसरा चिकित्सा जिसमें भिन्न भिन्न रोगों के लिये भिन्न भिन्न औषधों की व्यवस्था रहती है । चिकित्सा तीन प्रकार की मानी गई है, दैवी, आसुरी और मानुषी । जिसमें पारे की प्रधानता हो वह दैवी, जो छः रसों के द्वारा की जाय वह मानवी और जो अथ प्रयोग वा चौर फण्ड के द्वारा हो वह आसुरी कहलाती है ।

(२) वैद्य का व्यवसाय वा काम ।

चिकित्सालय-संज्ञा पु० [सं०] वह स्थान जहाँ रोगियों की आरोग्यता का प्रयत्न किया जाय । शफ़रुखाना । अस्पताल ।

चिकित्सित-वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा की गई हो । जिसकी दवा हुई हो ।

संज्ञा पु० एक ऋषि का नाम ।

चिकित्सु-संज्ञा पु० [सं०] चिकित्सक ।

चिकित्स्य-वि० [सं०] जो चिकित्सा के योग्य हो । साध्य ।

चिकित्स्व-संज्ञा पु० [सं०] कीचड़ । पंक ।

चिकीपी-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० चिकीपित, चिकीप्य] करने की दृष्टा । जैसे, मारा-बमै-चिकीपी ।

चिकुट्टी-संज्ञा स्त्री० दे० "चिकोटी", "चुटकी" । उ०—भूट्टी नचाइ भाज जिहुटी उचाइ कर चिकुट्टी रचाइ चित थादन सुनति फिर ।—देव ।

चिकुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) केरा। सिर के बाल। (२) पर्वत।
(३) शरीर। साँप आदि रेंगनेवाले जंतु। (४) एक पेड़ का नाम। (५) एक पत्थी का नाम। (६) एक सर्प का नाम।
(७) छुट्टे दर। (८) गिलहरी। चिचुरा।
वि० चंचल। चपल।

चिकुला-संज्ञा पुं० [सं० चिकुर ?] चिड़िया का घना।

चिकुर-संज्ञा पुं० दे० "चिकुर"।

चिकोटी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुटकी", "चिमटी"

चिक्क-वि० [सं०] चिपटी नाकवाला।

संज्ञा पुं० छुट्टे दर।

चिक्कट-संज्ञा पुं० [हिं० चिकना + कीट वा काट] गद, तेल आदि का मेल जो कहीं जम गया हो। कीट।

वि० जिस पर मेल जमा हो। मैला कुचैला। गंदा।

चिक्कण-वि० [सं०] चिकना।

संज्ञा पुं० (१) सुपारी का पेड़ वा फल। (२) हड़। हूँ।
(३) आयुर्वेद में पाक वा श्रांच की तीन अवस्थाओं में से एक। कुछ तेज श्रांच।

चिक्कणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी।

चिक्कणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुपारी। (२) हड़।

चिक्कदेव-संज्ञा पुं० [सं०] मैसूर के एक यादववंशी राजा का नाम जिसने ई० १६०२ से लेकर १७०४ तक राज्य किया था।

चिक्कना-वि० दे० "चिकना", "चिक्कण"।

चिक्करना-क्रि० प्र० [सं० चक्कर] चक्कर करना। चिंचाड़ना। चीखना। जैसे चिछाना। ड०—चिक्करहिँ दिगज, डोल महि, अहि, कोल, दूरम फलमले।—तुलसी।

चिक्कस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जौ का आटा। (२) हल्दी और तेल मिला हुआ जौ का आटा जो जेजु या ब्याह में उबटन की तरह मला जाता है।

संज्ञा पुं० [दे०] लोहे पीतल आदि के छड़ का घना हुआ घट अथवा जिस पर बुलबुल, ताते आदि बैठाए जाते हैं।

चिक्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी।

संज्ञा पुं० † दे० "चक्का"।

संज्ञा पुं० † [सं०] चूहा। मूसा।

चिक्कार-संज्ञा पुं० दे० "चिकार"।

चिक्कारा-संज्ञा पुं० दे० "चिकारा (२)"।

चिक्किर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चूहा जिसके काटने से सूजन और सिर में पीड़ा आदि होती है। (२) चिचुरा। गिलहरी।

चिक्कर-संज्ञा पुं० [दे०] चने का छिलका। चने की भूसी। चने की कराई।

चिचुरन-संज्ञा स्त्री० [दे०] यह घास जो खेत को निरा कर निकाली जाती है।

चिचुरना-क्रि० सं० [दे०] जोते हुए खेत में से घास निकाल कर बाहर करना।

चिचुरा-संज्ञा पुं० [सं० चिकुर वा चिकुर] [स्त्री० चिचुरी] गिलहरी।

चिचुराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिचुरना] (१) चिचुरने का काम या भाव। (२) चिचुरने की मजदूरी।

चिचुरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिचुरा] गिलहरी।

चिचौनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चंचलता] (१) चीखने वा चलने की क्रिया। स्वाद लेने वा देखने की क्रिया। (२) चलने की वस्तु। स्वाद लेने की वस्तु। चटपटे स्वाद की थोड़ी सी वस्तु।

चिचड़-संज्ञा पुं० [दे०] (१) डेढ़, दो हाथ ऊँचा एक पौधा जिसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं। गाँठों के दोनों ओर पतली टहनियाँ या पत्तियाँ लगी होती हैं। पत्तियाँ दो तीन शंयुल लंबी, नसदार और गोल होती हैं। फूल और बीज लंबी लंबी सींके में गुड़े होते हैं। बीज जूरे के आकार के होते हैं और कुछ नुकीले और रोपुंदा होने के कारण कपड़ों में कभी कभी लिपट जाते हैं। इस पौधे की जड़, मूला होती है। इसकी जड़, पत्ती आदि सब दवा के काम में आती है। श्रमि-पंचमी का वृत्त रहनेवाले इसकी दस्तान करते हैं। कर्मकांडी इसे बहुत पवित्र मानते हैं। यह पौधा बरसात में और घासों के साथ उगता है और बहुत दिनों तक रहता है।

पय्यां—अपामार्ग। शौंगा। श्रंफामार। लटजीरा।

(२) किलनी या किछी नाम का कीड़ा जो पशुओं के शरीर में चिमट कर उनका रक्त पीता है।

चिचड़ो-संज्ञा स्त्री० [?] एक कीड़ा जो चोपारों तथा कुत्तों चिल्लियों के शरीर में चिमटा रहता है और उनका खून पीया करता है। किलनी। किछी।

मुहा०—चिचड़ो सा चिमटना = पीछा न छोड़ना। साथ में चना रहना। पीड़ न छोड़ना।

चिचान-संज्ञा पुं० [सं० सचान] चानू पत्ती। ड०—आज कालि पल छिनक में मारा मेला हित। काल चिचाना तर चिड़ा श्रांज श्री श्रांचित—कधीर।

चिचिंगा-संज्ञा पुं० दे० "चर्चोड़ा"।

चिचिंडा-संज्ञा पुं० [सं०] चर्चोड़ा। चिचिंदा।

चिचिंडा-संज्ञा पुं० दे० "चर्चोड़ा"।

चिचियाना-क्रि० प्र० [अ० चो चो] चिछाना। चीखना। हड्डा करना।

चिचियाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिचियाना] चिछाहट।

चिचुकना-क्रि० प्र० दे० "सुचुकना"।

चिचोड़ा-संज्ञा पुं० दे० "चर्चोड़ा"।

चिचोड़ना-क्रि० सं० दे० "चचोड़ना"।

चिचोड़वाना-क्रि० सं० दे० "चचोड़वाना"।

चिच्छल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक देव का नाम (२) इस देव का निवासी।

चिजारा-संज्ञा पुं० [?] कारीगर। मेमार। ३०—
(क) कविता देवल कहि पार, भई हँट संहार। कोई चिजारा
चूनिया, मिला न दूजी पार।—कबीर। (ख) क्वी चिजारा
प्रीतड़ी ज्यों कहै न दूजी पार।

चिट-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिट्ठा] (१) कागज का टुकड़ा। (२)
पुस्तक। खूबा। छोटा पत्र। (३) कपड़े आदि का छोटा
टुकड़ा।

क्रि० प्र०—निकलना।—पटना।

चिटकना-क्रि० प्र० [अनु०] (१) खुल कर जगह जगह पर
फटना। खरा हो कर दरकना। खलाई के कारण ऊपरी सतह
में दरान पड़ना। जैसे, चौकी पत्र में मत रखो, चिटक
जायगी। (२) गरीबी लकड़ी आदि का जलते समय 'चिट
चिट' शब्द करना। (३) चिट्ठा। चिट्ठिचिट्ठाना। विगड़ना।
जैसे, तुम्हें तो मैं कुछ कहता नहीं, तुम क्यों
चिट्ठिचिट्ठते हो।

चिटका-संज्ञा पुं० [हिं० चिग] चिगा।

चिटकाना-क्रि० प्र० [अनु०] (१) किसी स्त्री हुई चीज को
तोड़ना या सड़काना। (२) गरीबी लकड़ी आदि को जला
कर उसमें से 'चट पट' शब्द उत्पन्न करना। (३) लिखना।
पेसी बात कहना जिससे कोई चिड़े।

चिटनधीस-संज्ञा पुं० [हिं० चिट + धीस] चिट्ठी पत्री,
हिसाब किताब लिखनेवाला। लेखक। मुहरिर। कारिदा।

चिट्टी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रसार के अनुसार चांदाल वेपधारिणी
योगिनी जिसकी उपासना चरीकरण के लिये की
जाती है।

चिट्ठीकी-संज्ञा स्त्री० दे० "चुटकी"।

चिट्ठा-संज्ञा स्त्री० दे० "चिट"।

चिट्ठा-वि० [सं० चित्त, प्र० चित्र] [स्त्री० चिट्ठी] सफ़ेद।
धवला। श्वेत।

संज्ञा पुं० कुछ विशेष प्रकार की मछलियों के ऊपर का
सीर के आकार का बहुत सफ़ेद दिखका या पपड़ी। यह
हुकमी से खे कर खप तक के परापर होता है और इससे
रेगम के लिये मीठों तैयार की जाती है।

संज्ञा पुं० खपा। (दवाख)

संज्ञा पुं० [?] भूटा भड़ाना। यह बत्तेजना
जो किसी को कोई ऐसा काम करने के लिये दी जाय जिसमें
उसकी हानि या हँसी हो।

क्रि० प्र०—दना।

मुहा०—चिट्ठा लड़ाना = झुटा बटाना देना।

चिट्ठा-संज्ञा पुं० [हिं० चिट] (१) हिसाब की पट्टी। खाता।
लेखा। जमा खर्चे या लेन देन की किताब।

मुहा०—चिट्ठा बांधना = लेखा तैयार करना।

(२) वह कागज जिस पर वर्ष भर का हिसाब जांच कर
नए नुकसान दिखाया जाता है। फूदे। (३) किसी रकम की
सिलसिलेवार फिहरिस्त। सूची। टिको। जैसे, चंदे का
चिट्ठा। ४०—चिट्ठा सकल नरेसन करे। धाराहँ चले
दुरासन नरे।—सयल। (४) वह हफ्ता जो प्रति दिन,
प्रति सप्ताह वा प्रति मास मजदूरी वा तनखाह के रूप में
बाँटा जाय। ४०—दिय चिट्ठा चाकरी खुकाई। वसे सर्वे सेवा
मन लाई।—कधीर।

क्रि० प्र०—चुकाना।—बँटना।—बाँटना।

(५) खर्च की फिहरिस्त। इन वस्तुओं की मूल्य सहित सूची
जो किसी कार्य के लिये आवश्यक हों। लगनेवाले खर्च का
ब्योरा। जैसे, इस मकान में तुम्हारा अधिक नहीं लगेगा, वस
२०० का चिट्ठा है। (६) ब्योरा। विवरण।

मुहा०—कच्चा चिट्ठा = पूरा और ठीक ठीक गुण वृत्तात्। ऐसा
सखितर वृत्तात् जिसमें कोई बात छिपाई न गई हो। कच्चा
चिट्ठा खोजना = गुण बतों का पूरे ब्योरे के साथ प्रस्तुत करना।
गुण वृत्तात् कहना। रहस्य उद्घाटित करना।

(७) रसद। सीधा जो बाँटा जाय।

क्रि० प्र०—दना।—पाना।—बँटना।—बाँटना।—
सिलाना।

चिष्टी-संज्ञा स्त्री० [सं० चिट] (१) वह कागज जिस पर, एक
स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये, किसी प्रकार का
समाचार आदि लिखा हो। पत्र। पृत्त।

क्रि० प्र०—दना।—भेजना।—मँगाना।—पढ़ना, आदि।

धो०—निहरीरसी।

(२) वह छोटा पुराना जो किसी माल विशेषतः कपड़े आदि
के साथ रहता है और जिस पर उस माल का नाम लिखा
रहता है। (३) कोई छोटा पुराना या कागज जिस पर कुछ
लिखा हो। (४) एक क्रिया जिसके द्वारा यह निश्चय किया
जाता है कि कोई माल पाने या कोई काम करने का अधिकारी
कौन बनाया जाय।

विशेष—जितने आदमी अधिकारी बनाने के योग्य होते हैं वन
सब के नाम या संकेत अलग अलग कागज के छोटे टुकड़ों
पर लिख कर उनकी मोलियों एक में मिला कर उनमें से कोई
गोली छटा ली जाती है। जिसके नाम की गोली टोती है
वही उस माल के पाने या उस काम के करने का अधिकारी
समझा जाता है। इस क्रिया से लोग प्रायः यह भी निश्चय
किया करते हैं कि कोई काम (जैसे, विवाह आदि) करना
चाहिए या नहीं।

क्रि० प्र०—उठाना ।—ढालना ।—पड़ना ।

(२) किसी बात का आजा-पत्र ।

मुहा०—चिट्ठी करना = किसी के नाम की हुई करना । किसी का रूप दे देने की लिखित आगा देना ।

(६) किसी प्रकार का निमंत्रण-पत्र ।

क्रि० प्र०—बैठना ।

चिट्ठीपत्री-संज्ञा स्त्री० [हि० चिट्ठी + पत्री] (१) पत्र । खत । जैसे, वहाँ से कोई चिट्ठीपत्री आती है ? (२) पत्र व्यवहार । खत किताबत । जैसे, आप से उनसे चिट्ठीपत्री है ।

क्रि० प्र०—देना ।

चिट्ठीरस—संज्ञा पुं० [हि० चिट्ठी + फा० रस] चिट्ठी बढनेवाला । शक्रिया । हरकरा । पोसमैन ।

चिड़चिड़ा-संज्ञा पुं० दे० "चिड़चिड़ा" ।

संज्ञा पुं० [अनु०] एक छोटा पक्षी जिसका रंग भूरा होता है ।

वि० [हि० चिड़चिड़ाना] शीघ्र चिड़नेवाला । थोड़ी सी बात पर अप्रसन्न हो जानेवाला । तुनक मिड़ाज । जैसे, चिड़चिड़ा आदमी, चिड़चिड़ा स्वभाव ।

चिड़चिड़ाना-क्रि० अ० [अनु०] (१) गरीबी लकड़ी, पानी मिले हुए तेल आदि के जलने में चिड़चिड़ शब्द होना । (२) सूख कर जगह जगह से फटना । धरा होकर दूरकना । रुखाई के कारण ऊपरी सतह का पपड़ो की तरह हो जाना । जैसे, जाड़े की हवा से शीत चिड़चिड़ाना, खुराई से पदम चिड़चिड़ाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) चिड़ना । विगड़ना । क्रोध लिए हुए धोलना । कुँ मलाना ।

संयो० क्रि०—उठना ।

चिड़चिड़ाहट-संज्ञा स्त्री० [हि० चिड़चिड़ाना + हट (प्रत्य०)] (१) चिड़चिड़ाने का भाव । (२) चिड़ने का भाव ।

चिड़चा-संज्ञा पुं० [सं० चिचित्] हरे, भिगोप, या कुछ उबाले हुए धान को भाड़ में भून कर और फिर बूट कर बनाया हुआ चिपटा दाना । चिड़ड़ा । (बहु० में "चिड़चिड़े" अधिक बोलते हैं ।)

विशेष—इसे लोग सूखा तथा दूध, दही में भिगो कर भी खाते हैं ।

चिड़चा-संज्ञा पुं० [सं० चट्टक] गौरा पक्षी । गौरिया का नर ।

चिड़चारा-संज्ञा पुं० [दे०] नीची जमीन का खेत जिसमें जड़हन बोया जाता है । डबरी ।

चिड़िया-संज्ञा स्त्री० [सं० चट्टक, हि० चिड़ा] (१) आकाश में उड़नेवाला जीव । वह प्राणी जिसे ऊपर उड़ने के लिये पर हैं । पक्षी । पलेरु । पंखी ।

धो०—चिड़ियाखाना ।

मुहा०—चिड़िया का दूध = अल्पाय यस्तु । अल्पय यस्तु । ऐसी यस्तु जिसका देना अशुभ है । चिड़िया के दिवाने से पकड़ा जाना = व्यर्थ की आपत्ति में फँसना । नष्टक मंभट में पड़ना । चिड़िया-नेचन = चोरो और का तफ़ाज । चोरो और की मंग । बहुत से लोगों का किसी बात के लिये अतुंगेध वा दखल । जैसे—घर से रुग्ना आ जाता तो हम इस चिड़िया-नेचन से छुट्टी पाते । चिड़िया फँसाना = (१) किसी छोटी बहका, कर सहवाम के लिये राजी करना । (अशुष्ट) । (२) किसी देनेवाले धनी आदमी को अपने अनुकूल करना । किसी माजदार को दंव पर चढ़ाना । सोने की चिड़िया = (१) खूब धन देनेवाला श्रमार्थी । (२) अत्यंत सुंदर वा प्रिय व्यक्ति ।

(२) श्रेणिया की वह सीवन जिससे कठोरियाँ मिली रहती हैं ।

(३) चिड़िया के आकार का गढ़ा हुआ काठ का टुकड़ा जो टेक देने के लिये कहारों की लकड़ी, लँगड़ों की बैसासी, मकानों के खम्भों आदि पर लगा रहता है । आड़ा लगा हुआ काठ का टेंटा टुकड़ा जिसका एक सिरा ऊपर की ओर चिड़िया की गारदन की तरह उठा हो । (४) पायजामे वा लहंगे का वह नली की तरह का पीला भाग जिसमें इंग्रारबंद वा नाज़ा पड़ा रहता है । (५) तारा का एक रंग जिसमें तीन गोल पलङ्कियों की बूटी बनी होती है । चिड़ो । (६) लोहे का टेंटा श्रेङ्कु जो तारा की बाँड़ी में लगा रहता है । (७) गाड़ी में लगा हुआ लोहा का टेंटा बँडिया वा श्रेङ्कु जिसमें रस्सी लगा कर पंजनी बांधते हैं । (८) एक प्रकार की सिलाई जिसमें पहले कपड़े आदि के दोनों पहलों को सीकर सब सिलाई की ओरवाले उनके दोनों सिरों को अलग अलग उन्हीं पहलों पर उलट कर इस प्रकार बलिया कर देते हैं कि उसमें एक प्रकार की बेल सी बन जाती है ।

चिड़ियाखाना-संज्ञा पुं० [हि० चिड़िया + फा० खाना] वह स्थान वा घर जिसमें अनेक प्रकार के पक्षी और पशु आदि देखने के लिये रखे जाते हैं । पशियाखाना ।

चिड़ियावाला-संज्ञा पुं० [हि० चिड़िया + बाला] उल्लू । गावदी । मूखं । जड़ । (बाजारू)

चिड़िहारी-संज्ञा पुं० [हि० चिड़िया + हार (प्रत्य०)] चिड़िमार । बहेलिया । चिड़िया पकड़नेवाला । व्याध ।

चिड़ो-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "चिड़िया" । (२) तारा का एक रंग जिसमें तीन गोल पलङ्कियों की काली बूटी बनी रहती है ।

चिड़ोमार-संज्ञा पुं० [हि० चिड़ो + मारना] बहेलिया । चिड़िया पकड़नेवाला । व्याध ।

चिड़-संज्ञा स्त्री० [हि० चिड़चिड़ाना] चिड़ने का भाव । क्रोध लिए हुए घृणा । विरक्ति । अप्रसन्नता । कुंडन । सिलखाहट । नफ़रत । उ०—मुझे ऐसी बातों से बड़ी चिड़ है ।

मुहा०—चिड़ निकालना = हँस कर ऐसी बात कहना जिले कोई चिड़े । विद्वाने की मुक्ति निकालना । छेड़ने का दंग

निकलना । कुटना । विमाना । उ०—यदि इस बात से हतना चिद्रोगे तो लड़के चिद्र निकल जाँगे ।

चिद्रकना—कि० अ० दे० "चिद्रना" ।

चिद्रकाना—कि० स० दे० "चिद्राना" ।

चिद्रना—कि० अ० [हि० चिद्रचिद्रना] (१) धमसब होना ।

विकल होना । खिन्न होना । नाराज होना । विगड़ना ।

कुटना । खीनना । झुलाना । उ०—(क) तुम थोड़ी सी बात

पर भी क्यों चिद्र जाते हो ।

संयोग० कि०—उठना ।—जाना ।

(२) हूय रवना । घुरा मानना । उ०—न जाने क्यों मुझसे यह बहुत चिद्रता है ।

चिद्रवाना—कि० उ० [चिद्राना का प्रे०] दूसरे से चिद्राने का काम करना ।

चिद्राना—कि० उ० [हि० चिद्राना] (१) धमसब करना । नाराज

करना । खिमाना । कुटना । कुपित और खिद्र करना ।

उ०—पैसी बात कह कर मुझे बार बार क्यों चिद्राते हो ?

संयोग० कि०—देना ।

(२) किसी को कुड़ाने के लिये मुझे बनाना, हाय चमकाना या हठी प्रकार की और कोई बेटा करना । रिश्काने के लिये किसी की आकृति, चेष्टा, वा डंग की नकल करना ।

मुहा०—मुझे चिद्राना = किसी को छेड़ने वा खिद्राने के लिये विद्रास्य आकृति बनाना । विमाना ।

(३) कोई ऐसा प्रसंग छेड़ना जिसे सुन कर कोई खिन्नत हो । कोई ऐसी बात कहना वा ऐसा काम करना जिससे किसी को अपनी असफलता, अपमान आदि का स्मरण हो । उपहास करना । टट्टा करना ।

चिद्र—संज्ञा श्री० [सं०] (१) चैतन्य । चेतना । ज्ञान ।

श्री०—चिद्राकार । चिद्रानेद । विन्यय ।

(२) चित्तवृत्ति ।

संज्ञा पुं० (१) चुननेवाला । चीननेवाला । इकट्ठा करनेवाला । (२) अग्नि ।

अय० [सं०] संस्कृत का एक अतिशयवाचक प्रत्यय जो कः किञ्च आदि सर्वनाम शब्दों में लगता है । जैसे, कश्चित्, किञ्चित् ।

चित्त—वि० [सं०] (१) चुन कर इकट्ठा किया हुआ । धेर कर के लगाया हुआ । (२) ठका हुआ । आश्रयदित ।

संज्ञा पुं० [सं० चित्त] चित्त । मन । दे० "चित्त" ।

संज्ञा पुं० [हि० चित्तन] चित्तवन । दृष्टि । नज़र ।

उ०—चित्त जानकी श्राप कों कियो । हरि तीन हैं अवलो-कियो ।—शेखर ।

वि० [सं० चित्त = धेर किया हुआ] इस प्रकार पड़ा हुआ कि मुँह, पेट आदि शरीर का अगला भाग ऊपर की ओर हो

और पीठ, चूड़ आदि पीछे का भाग नीचे की ओर किसी आधार से लगा हो । पीठ के बल पड़ा हुआ । 'पट' वा 'झोंपा' का उलटा । जैसे, चित्त कौड़ी ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

श्री०—चितपट ।

मुहा०—चित्त करना = कुर्तनी में पड़ाउना । कुर्तनी में पटकना ।

चारों खाने (या शाने) चित्त = (१) श्राप पर फैलाए विनकुनपीठ

के बल पड़ा हुआ । (२) हक्का बक्का । स्तम्भित । ठक । जड़ो-भूत ।

चित्त होना = वेमुष होकर पठ जाना । वेहेरा होना ।

उ०—इतनी भांग में तो तुम चित्त हो जाओगे ।

कि० वि० पीठ के बल । जैसे, चित्त गिरना, चित्त पड़ना, चित्त लेटना ।

चित्तउर *—संज्ञा पुं० दे० "चित्तोर" ।

चित्तकवरा—वि० [सं० चित्त + कवुर] [श्री० चित्तकवरी] सफ़ेद

रंग पर काले, लाल वा पीले दाग़वाला । काले, पीले वा

और किसी रंग पर सफ़ेद दाग़वाला । रंग विरंगा । कवरा ।

चित्तवा । शयल ।

विशेष—दे० "कवरा" ।

संज्ञा पुं० चित्तकवरा रंग ।

चिन्नकूट *—संज्ञा पुं० दे० "चिन्नकूट" ।

चित्तगुपित *—संज्ञा पुं० दे० "चित्रगुप्त" ।

चित्तचोर—संज्ञा पुं० [हि० चित्त + चोर] चित्त को चुरानेवाला ।

जी को छुभानेवाला । मनेाहर । मनभावना । मन को आक-

पित्त करनेवाला । प्यारा । प्रिय ।

चित्तपट—संज्ञा पुं० [हि० चित्त + पट] (१) एक प्रकार का खेल वा

बाजी जिवमें किसी फेंकी हुई वस्तु के चित्त वा पट पड़ने पर

हार जीत का निश्चय होता है । (लोग प्रायः कौड़ी, पैसा,

जुला आदि फेंकते हैं ।) (२) कुर्तनी । मल्लयुद्ध ।

चित्तचाहु—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक ।

उ०—आविद्ध निर्मर्याद कुल चित्तचाहु निस्सुत्त रिपु दुलै ।—रघुरान ।

चित्तभंग—संज्ञा पुं० [सं० चित्त + भंग] (१) ध्यान न लगना ।

उचाट । उदासी । उ०—(क) मेरो मन हरि चित्तवन अर-

कानो । यह वस-मगन रहति निम्नि धासर द्वार जीत रहि

जाने । सुरदास चित्तभंग होत क्यों जो जेहि रूप समानो ।—

सूर । (ख) कमल, संजवन, मीन मधुकर होत है चित्तभंग ।—

सूर । (ग) देव मान मन भंग चित्तभंग मद क्रोध बोभादि

पर्वत दुर्ग सुवन भर्ता ।—गुलसी । (२) बुद्धि का लोप ।

होना का ठिकाने न रहना । मति-भ्रम । भौषङ्गापन ।

चक्रपकाहट ।

चिततरना *—कि० उ० [सं० चित्र] चित्रित करना । चित्र बनाना ।

नक्काशी करना । खेल बूटे बनाना ।

चित्ररवा—संज्ञा पुं० [सं० चित्रक] एक चित्रिया जिसका रंग ईंट का सा खाल होता है। इसके डैनों पर काली काली चित्रिया पड़ी होती है और अखिले अगारदाने के समान सफेद और लाल होती हैं।

चित्ररोख—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक चित्रिया का नाम। चित्ररवा।
उ०—घोरी पंहुक कहि पिय ठाऊँ। जो चित्ररोखन दूसर नाऊँ।—जायसी।

चित्तला—वि० [सं० चित्रल] कपरा। चित्तकपरा। रंग चिरंगा।
संज्ञा पुं० (१) लक्षनक का एक प्रकार का खुरचूना जिस पर चित्रिया पड़ी होती है। (२) एक प्रकार की घड़ी मड़ली जो लंबाई में तीन चार हाथ और तौल में डेढ़ दो मन होती है। इसकी पीठ बहुत उठी हुई होती है और उस पर पूँछ के पास पर होते हैं। इसमें कठि बहुत होते हैं। गले से लेकर पेट के नीचे तक २१ कठि की पंक्ति होती है। इस मड़ली की पीठ का रंग कुछ मटमैला और तामड़ा और पगल का चादी की तरह सफेद होता है। यह मड़ली बंगाल, उड़ीसा, आसाम और सिंध में होती है। इसमें से तेल बहुत अधिक निकलता है जो खाने और जलाने के काम में आता है।

चित्तवन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेतना] ताकने का भाव या दंग। अयलोकन। दृष्टि। कटाए। नज़र। निगाह। उ०—(क) चितवनि चार भूकटि धर थाकी। तिलक रेल रोभा जनु चाकी।—गुलसी। (ख) तुलसिदास पुनि भरेह देखियत राम कृपा चितवनि चितवे।—गुलसी। (ग) अनियारे दीरघ दगनि कित्ती न तरुनि समान। यह चितवनि औरै कछु जिहि बस होत सुजान।—बिहारी।

मुहा०—चितवन चढ़ाना = त्वोरी चढ़ाना। भौं चढ़ाना। कुफित दृष्टि करना। कोष की दृष्टि से देखना।

चित्तचना †*—क्रि० सं० [हिं० चेतना] देखना। ताकना। निगाह करना। अयलोकन करना। दृष्टि डालना। उ०—(क) चित्तवति चकित चहुँ दिसि सीता।—गुलसी। (ख) सरद सखिहि जनु चितव चकोरी।—गुलसी।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

चित्तवनि †*—संज्ञा स्त्री० दे० "चित्तवन"।

चित्तवानी †*—क्रि० सं० [हिं० चित्तवना का प्र०] दिखाना। तक्राना। उ०—चित्तवो चित्तवाए हँसाए हँसे आ बोलाए से बोला रेई मलि माने।—फेरवा।

चित्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चुन कर रखी हुई लकड़ियों का ढेर जिस पर रत्न कर मुरदा जलाया जाता है। मृतक के शवदाह के लिये बिछाई हुई लकड़ियों की राशि।

क्रि० प्र०—धनाना।—लगाना।

पर्या०—चिसा। चिति। चैल। काष्टमठी।

धौ०—चित्तापिंड = यह पिंडदान जो शवदाह के उपरंत होता है।

मुहा०—चित्ता चुनना = शवदाह के लिये लकड़ियों को नीचे ऊपर क्रम से रखना। चित्ता साजना। चित्ता तैयार करना। चित्ता पर चढ़ना = मरना। चित्ता में बैठना = छठी होने के लिये विधवा का मृत पति की चित्ता में बैठना। मृत पति के शरीर के साथ जलना। सती होना। चित्ता सामना = दे० = "चित्ता चुनना"।

(२) श्मशान। मरघट। उ०—भील मांगि भव खाहि चित्ता नित सोवहि। नाचहि मगन पिशाच, पिशाचिन जोवहि।—गुलसी।

चित्ताना—क्रि० सं० [हिं० चेतना] (१) सचेत करना। सावधान करना। होशियार करना। खबरदार करना। किसी आवश्यक विषय की ओर ध्यान दिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) स्मरण करना। याद दिलाना। सुध दिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

(३) श्रमयोग्य करना। जगनेपदेश करना। (४) (श्राम) जगाना। (श्राम) सुलगाना। जलाना। (साधु)।

चित्ताभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्मशान।

चित्तारी †—संज्ञा पुं० दे० "चित्तेरा"।

चित्तावनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्ताना] चित्ताने की क्रिया। सतर्क वा सावधान करने की क्रिया। यह सूचना जो किसी को किसी आवश्यक विषय की ओर ध्यान देने के लिये दी जाय। सावधान रहने की पूर्व-सूचना।

क्रि० प्र०—देना।

चित्तासाधन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्रसार के अनुसार चित्ता वा श्मशान के ऊपर बैठ कर इष्ट मंत्र का अनुष्ठान जो चतुर्दशी या अष्टमी को डेढ़ पहर रात गए किया जाता है।

चित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चित्ता। (२) समूह। ढेर। (३) चुनने वा इकट्ठा करने की क्रिया। चुनाई। (४) शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ऋषि का एक संस्कार। (५) यज्ञ में ईंटों का एक संस्कार। इष्टक संस्कार। (६) दीवार में ईंटों की चुनाई। ईंटों की जोड़ाई। (७) चैतन्य। (८) दुर्गा। (९) दे० "चित्ती"।

चित्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करपनी। मेलला। (२) दे० "चित्ति"।

चित्तिया गुड—संज्ञा पुं० [दे०] खरू की चीनी की जूरी से जमाया हुआ गुड़।

चित्तिव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की यह क्रिया जिसके द्वारा किसी दीवार या मकान में लगनेवाली ईंटों या पट्टियों की संख्या और नाप आदि का निरचय होता है।

विशेष—धीजायती के अनुसार दीवार का फेरफर निकाल

कर वसमें ईंट के पैयकल का भाग देने से जो फल होगा वही ईंटों की संख्या होगी। इसी प्रकार की और और क्रियाएँ स्वर आदि निकालने के लिये हैं।

विचु ०—संज्ञा पुं० दे० “चित्त”

चित्तेर—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकार] [छी० चित्तेरिन] चित्रकार।

चित्र बगानेवाला। तसवीर खींचनेवाला। सुतीर। कमंगर।

३०—चकित भईं देहें दिंग ठाड़ी। मंगो चित्तेरे लिखि लिखि काड़ी।—सूर।

चित्तेरिन, चित्तेरी—संज्ञा छी० [हिं० चित्तेरा] (१) चित्र बनानेवाली छी। (२) चित्रकार की छी।

चित्तेला १—संज्ञा पुं० दे० “चित्तेरा”।

चित्तान—संज्ञा छी० दे० “चित्तवन”।

चित्ताना—कि० सं० “दे० चित्तवना”।

चित्तानि—संज्ञा छी० दे० “चित्तवन”।

चित्तानी—संज्ञा छी० दे० “चित्तवनी”।

चिाकार—संज्ञा पुं० दे० “चिाकार”।

चित्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतःकरण का एक भेद। अंतःकरण की एक वृत्ति।

विद्योप—वेदातीसार के अनुसार अंतःकरण की चार वृत्तियाँ हैं—मन, बुद्धि, चित और अहंकार। संकल्प विकल्पसक वृत्ति को मन, निश्चयात्मक वृत्ति को बुद्धि और इन्द्रियों के अंतर्गत अनुसंधानात्मक वृत्ति को चित और अधिमात्रात्मक वृत्ति को अहंकार कहते हैं। पंचदशी में इन्द्रियों के निर्यात मन ही को अंतःकरण माना है। आंतरिक व्यापार में मन स्वतंत्र है पर याह व्यापार में इन्द्रियाँ परतंत्र हैं। पंचभूतों की गुण-समष्टि से अंतःकरण उत्पन्न होता है जिसकी दो वृत्तियाँ हैं, मन और बुद्धि। मन संशयात्मक और बुद्धि निश्चयात्मक है। वेदांत में प्राण को मन का कारण कहा है। श्लुषु होने पर मन इसी प्राण में लय हो जाता है। इस पर शंकराचार्य कहते हैं कि प्राण में मन की वृत्ति लय हो जाती है, उसका अस्तित्व नहीं। पथिकवारी बौद्ध चित्त ही को धारणा मानते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार अग्नि अपने को प्रकाशित करने दूसरी वस्तु को भी प्रकाशित करती है उसी प्रकार चित्त भी करता है। बौद्ध लोग चित्त के चार भेद करते हैं—कामा-वचर, रूपावचर, अरूपावचर और लोकेश्वर। चावक के मत से भी मन ही धारणा है। योग के आचार्य पतंजलि चित्त को स्वप्रकाश नहीं स्वीकार करते। वे चित्त को इन्द्र और जड़ पदार्थ मान कर उमका एक अलग प्रकाराक मानते हैं जिसे धारणा कहते हैं। उनके विचार में प्रकाश्य और प्रकाशक के संयोग से प्रकाश होता है, अतः कोई वस्तु अपने ही साथ संयोग नहीं कर सकती। योगसूत्र के अनुसार चित्तवृत्ति पाँच प्रकार की है—माया, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और

स्मृति। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—प्रमाणा, एक में दूसरे का अग्र—विपर्यय, स्वल्प ज्ञान के विना कल्पना—विकल्प, सय विषयों के अभाव का बोध—निद्रा और कालांतर में पूर्व अनुभव की आरोप—स्मृति कहलाता है। पंचदशी तथा और दार्शनिक ग्रंथों में मन वा चित्त का स्थान हृदय वा हृदय गोलक लिखा है। पर आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान अंतःकरण के सारे व्यापारों का स्थान मस्तिष्क में मानता है जो कि सय ज्ञानतंतुओं का केंद्रस्थान है। खोपड़ी के भीतर जो टेढ़ी मेंट्रो गुदियाँ की सी बनावट होती हैं वही अंतःकरण हैं। उसी के सूक्ष्म मज्जा-तंतुमाल और कोशों की क्रिया द्वारा सारे मान-सिक व्यापार होते हैं। भूतवादी वैज्ञानिकों के मत से चित्त, मन वा आत्मा कोई पृथक् वस्तु नहीं है, केवल व्यापार-विशेष का नाम है, जो छोटे जीवों में बहुत ही अल्प परिमाण में होता है और बड़े जीवों में क्रमशः बढ़ता जाता है। इस व्यापार का प्राणरस (प्रोटेप्लाज़म) के ऊँच विकारों के साथ नित्य संबंध है। प्राण-रस के ये विकार अत्यंत निम्नश्रेणी के जीवों में प्रायः शरीर भर में होते हैं पर उच्च प्राणियों में क्रमशः इन विकारों के लिये विशेष स्थान नियत होते जाते हैं और वनसे इन्द्रियों और मस्तिष्क की सृष्टि होती है।

(२) अंतःकरण। जी। मन। दिल। वह मानसिक शक्ति जिससे चारण, भावना आदि की जाती है।

मुहा०—चित्त उचटना = जी न लगना। निरक्ति होना। चित्त करना = इच्छा होना। जी चाहना। ३०—ऐसा चित्त करता है कि यहाँ से चला दे। चित्त चटना = दे० “चित्त पर चटना।” ३०—तब चित्त चकुरो जो शंकर फड़ेज।—तुलसी। चित्त सुराना = मन मोहना। मोहित करना। चित्त आकर्षित करना। ३०—नैन सैन दै चितहि सुरावति यहै मंत्र टोना स्तिर डारि।—सूर। चित देना = ध्यान देना। मन लगाना। गौर करना। ३०—चित्त दै सुने हमारी मात।—सूर। चित्त धरना = (१) ध्यान देना। मन लगाना। ३०—कहाँ से कथा सुनी चित्त धार। कई सुनै से कई सुख सार।—सूर। (२) मन में लाना। ३०—हमारे प्रभु धरवतु चित्त न धरी।—सूर। चित्त पर चटना = (१) ध्यान पर चटना। मन में यतना। बार बार ध्यान में आना। ३०—तुम्हारे से बड़ो चित्त पर चढ़ा हुआ है। (२) ध्यान में आना। स्तरण होना। याद पड़ना। चित्त बँटना = चित्त प्रकाश न रहना। ध्यान दो धोर हो जाना। एक त्रिपय की ओर ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान इधर उधर होना। चित्त बँटना = ध्यान इधर उधर करना। ध्यान एक ओर न रहने देना। चित्त में धँसना वा जमना = दे० “चित्त में बैठना”। चित्त में बैठना = जी मे जमना। हृदय में डूब होना। मन में धँसना। हृदयगम होना। ३०—यब हमारे चित्त बैठो यह पद होनी होर सो होय।—

सूर। चित्त में होना, वा चित्त होना = इच्छा होना। जी चाहना। उ०—यह चित्त होत जाउँ में अयहीं यहाँ नहीं मन लागत।—सूर। चित्त लगना = मन लगना। जी न धवड़ाना। जी न ऊबना। मन की प्रवृत्ति स्थिर रहना। उ० = (क) काम में तुम्हारा चित्त नहीं लगता। (ख) श्रम यहाँ हमारा चित्त नहीं लगता है। चित्त लेना = इच्छा होना। जी चाहना। उ०—अपना चित्त ले चले जाये। चित्त से उतरना = (१) ध्यान में न रहना। भूल जाना। उ०—सूर स्वाम चित्त ते' नहिं उतरत यह यन कुंज धली।—सूर। (२) दृष्टि से गिरना। म्रिय वा आदरणीय न रह जाना। विरक्ति भाजन होना। चित्त से न टलना = ध्यान में बराबर बना रहना। न भूटना। उ०—सूर चित्त ते' टरति नाहीं राधिका की प्रीति।—सूर। (३) मूल में एक प्रकार की दृष्टि जिसका व्यवहार श्रृंगार में प्रसन्नता प्रकट करने के लिये होता है।

विशेष—दे० "चित्त।"

चित्तसर्ग—वि० [सं०] मगोहर। सुंदर।

चित्तज—संज्ञा पुं० [सं०] (चित्त से उत्पन्न) कामदेव।

चित्तप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त का संस्कार जो मैत्री, करुणा, हर्ष, उपेक्षा आदि के उपयुक्त व्यवहार द्वारा होता है। जैसे, किसी को सुखी देख उससे मित्रभाव रखना, दुखी के प्रति करुणा दिखाना, पुण्यवान को देख प्रसन्न होना, पापी के प्रति उपेक्षा रखना। इस प्रकार के साधन से चित्त में राजस और तामस की निवृत्ति हो कर केवल सात्विक धर्म का प्रादुर्भाव होता है।

चित्तभूमि—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

चित्तभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग में चित्त की अवस्थाएँ। व्यास के अनुसार ये पांच हैं—विष, मूढ़, विधित, एकाम और निरुद। विष अवस्था यह है जिसमें चित्त रजोगुण के द्वारा सदा अस्थिर रहे, मूढ़ यह है जिसमें चित्त तमोगुण के कारण निद्रायुक्त वा स्मृत्य हो, विधित यह है जिसमें चित्त अस्थिर रहे पर कभी कभी स्थिर भी हो जाय, एकाम यह है जिसमें चित्त किसी एक विषय की ओर लगा हो। निरुद यह है जिसमें सब वृत्तियों का निरोध हो जाय, केवल संस्कार मात्र रह जाय। इनमें से पहली तीन अवस्थाएँ योग के अनुकूल नहीं हैं। चित्तुली दो योग वा समाधि के उपयुक्त हैं। समाधि की भी चार भूमियाँ हैं—मधुमती, मधुमतीका, विरोका और श्चंद्रमा। जिनके लिये दे० "समाधि"।

चित्तदान—वि० [सं०] [स्त्री० चित्तवती] उदार चित्त का।

चित्तविक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] चित्त की चंचलता वा अस्थिरता जो योग में बाधक है। इसके निःशून्य होना—जैसे, व्याधि, स्वान (अकर्मण्यता), संशय, प्रमाद (भ्रुति), अज्ञान, अचिरित (वैराग्य का अभाव), आतिदर्शन (मिथ्या अनु-

भव), अलक्ष्य भूमिकत्व (समाधि की अभावि), अनवस्थितत्व (चित्त का न टिकना)।

चित्तविद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चित्त की धात जाने। (२) बौद्ध दर्शन के अनुसार चित्त के भेदों और रहस्यों को जाननेवाला पुरुष।

चित्तविग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] उन्माद।

चित्तविग्रम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रांति। भ्रम। भौचकापन। (२) उन्माद।

चित्तवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्त की गति। चित्त की अवस्था।

विदीप—योग में चित्तवृत्ति पांच प्रकार की मानी गई है—प्रमाण, विषय्य, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इन सब के भी द्विष्ट और अद्विष्ट दो दो भेद हैं। अविद्या आदि क्लेश-हेतुक वृत्ति द्विष्ट और तससे मिश्र अद्विष्ट है।

चित्तल—संज्ञा पुं० [सं०], वा सं० चित्तल] एक प्रकार का मृग। चीतल।

चित्तापहारक—वि० [सं०] मगोहर। सुंदर।

चित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुनर्वृत्ति। (२) व्याप्ति। (३) कर्म। (४) अयत्न आदि की पत्नी का नाम।

चित्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्त, प्रा० चित्त] (१) छोटा दाग वा चिह्न। छोटा धनु। बुँदकी।

धौ०—चित्तौदार = जित पर दाग वा धवले हो।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुदा०—चित्तौ पड़ना = बहुत लरी सँकने के कारण रोटी में स्थान स्थान पर जलने का काला दाग पड़ना।

(२) कुम्हार के चाक के किनारे पर का वह गड्ढा जिसमें चँदा डाल कर चाक घुमाया जाता है। (३) भाद्रा लाल। मुनिया। (४) अजगर की जाति का एक मोटा साँप जिसके शरीर पर चित्तियाँ होती हैं। चीतल।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्त = बँध के बंध पड़ा हुआ] वह कौड़ी जिसकी पीठ चिपटी और छुरदरी होती है। टर्की।

विशेष—यह फँकने पर चित्त अधिक पड़ती है, इसी से इसे चित्तौ कहते हैं। जुबारी इसके जूए के दाँव फँकते हैं। उ०—श्रंतयामी यही न जानत जो मो उरहि बित्ती। उजो जुबारि रस कीधि हारि गय सोचत पटक बित्ती।

चित्तौर—संज्ञा पुं० [सं०] [चित्तूर, प्रा० चित्तूर, चित्तूर] एक इतिहास प्रसिद्ध प्राचीन नगर जो बदायुन के महाराष्ट्रों में प्राचीन राजधानी था। अलाउद्दीन के समय में प्रसिद्ध महाराष्ट्र पद्मावती वा पद्मिनी यहाँ कई सहस्र खंभारियों के साथ चिता में भस्म हुई थीं। ऐसा प्रसिद्ध है कि राणाओं के पूर्व-पुरुष बाप्पा रावल ने ही इसी सन ७२८ में चित्तौर का गढ़ बनवाया और नगर

बसाया था। सन् १५६८ तक तो मेवाड़ के राजाओं की राजधानी चित्तौर ही रही, उसके पीछे जब अकबर ने चित्तौर का क़िला ले लिया तब मझराणा उदयपतिह ने उदयपुर नामक नगर बसाया। चित्तौर का-गढ़ एक ऊँची पहाड़ी पर है जिसके नीचे चौर प्राचीन नगर के खंडहर दिखाई पड़ते हैं। हिंदूकाल के बहुत से भवन अभी यहाँ टूटे फूटे खड़े हैं। क़िले के भीतर भी बहुत से देवमंदिर, कीर्तिस्तंभ, प्रासाद आदि हैं जिनमें राणा कुंभ का कीर्तिस्तंभ, खवासिन-स्तंभ, विंभारबारी आदि प्रसिद्ध हैं। राणा कुंभ ने संवत् १५०५ में गुजरात और मालवा के मुलतान को परास्त करके यह कीर्तिस्तंभ स्मारक स्वरूप बनवाया था। यह १२२ फुट ऊँचा और नौ सड़ों का है।

चित्त-वि० [सं०] (१) चुनने या इकट्ठा करने योग्य । (२) चिन्ता संबंधी ।

संज्ञा पुं० (१) चिन्ता । (२) धर्म ।

चित्र-संज्ञा पुं० [सं०] [चित्र विद्येत] (१) चित्रकला। चंद्रन आदि से सारे पर बनाया हुआ चित्र । (२) विविध रंगों के मेल से बनी हुई नाना वस्तुओं की आकृति । क़िसी वस्तु का स्वरूप वा आकार जो कागज़, कपड़े, लकड़ी, शीशे आदि पर क़लम और रंग आदि के द्वारा बनाया गया हो । तस्वीर । ३०—(क) चित्र लिखित कवि देखि बराली—गुलसी । (घ) राम बिलोके लोग सच, चित्र लिखे से ब्रह्मि ।—गुलसी ।

शो०—चित्रकला । चित्रविद्या ।

कि० प्र०—ओढ़ना* ।—छाँवना ।—बनाना ।—लिखना ।

मुद्रा०—चित्र बनाना = (१) चित्र बनाना । तस्वीर छाँवना ।

(२) धर्मोपदेश आदि के द्वारा ठीक ठीक दृश्य सामने उपस्थित कर देना ।

(३) काव्य के तीन अंगों में से एक जिनमें व्यंग्य की प्रधानता नहीं रहती। अलंकार । (४) काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिनमें पद्यों के अक्षर इस क्रम से लिखे जाते हैं कि दाही, घेड़े, प्यार, रघु, कर्मज आदि के आकार बन जाते हैं । (५) एक प्रकार का वर्णवृत्त जो सामानिक वृत्ति के दो चारों को मिलाकर से बना है । (६) आकाश । (७) एक प्रकार का वेद जिसमें शरीर में सफ़ेद चितियाँ या दाग पड़ जाते हैं । (८) एक यम का नाम । (९) चित्रगुप्त । (१०) रेंडू का पेड़ । (११) अशोक का पेड़ । (१२) चीते का पेड़ । चित्रक । (१३) एनाइस के सौ पुत्रों में से एक ।

वि० (१) अद्भुत । विचित्र । आश्चर्यजनक । विमरुचारी ।

(२) चित्रकथा । कथा । (३) रंग बिरंगा । कई रंगों का ।

(४) अनेक प्रकार का । कई तरह का ।

चित्रकंड-संज्ञा पुं० [सं०] कंधार । कपिल । परेवा ।

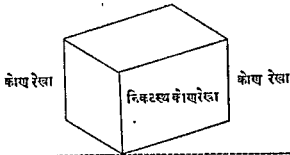
चित्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्रक । (२) चीते का पेड़ ।

चित्त । (३) चीना । धातु । (४) शूर । बलवान् । (५) रेंडू का पेड़ । (६) चित्रायता । (७) मुचकुंद का पेड़ । (८) चित्रकार । चित्रकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्र बनानेवाला । चित्रकार । (२) प्रत्येक वर्णों द्वारा ही अक्षरों पर एक संकेत जाति जिसकी अक्षर विभक्तियाँ अक्षर और यथा स्त्री से हैं । (३) तिनिय का पेड़ ।

चित्रकर्मी-संज्ञा पुं० [सं० चित्रकर्म्मिन्] (१) चित्रकार । तस्वीर । कर्मगर् । (२) विचित्र कार्य करनेवाला । (३) तिनिय वृक्ष । चित्रकला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की विद्या । तस्वीर बनाने का हुनर ।

विशेष—चित्रकला का प्रचार चीन, मिस्र, भारत, आदि देशों में अत्यंत प्राचीन काल से है। मिस्र से ही चित्रकला यूनान में गई, जहाँ उसने बहुत उन्नति की। ईसा से १४०० वर्ष पहले मिस्र देश में चित्रों का अद्भुत प्रचार था। लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम में ३००० वर्ष तक के पुराने मिस्री चित्र हैं। भारतवर्ष में भी अत्यंत प्राचीन काल से यह विद्या प्रचलित थी। इससे अनेक प्रमाण मिलते हैं। रामायण में चित्रों, चित्रकारों और चित्रशालाओं का वर्णन बराबर आया है। विश्वकर्माय गिलपराशर में लिखा है कि स्वयंभू, तक्षक शिल्पी आदि में से शिल्पी ही वे चित्र बनाना चाहिए। प्राकृतिक दृश्यों को अंकित करने में प्राचीन भारतीय चित्रकार कितने निपुण होते थे इसका कुछ आभान मञ्जुवृत्ति के उत्तरारामचरित के देखने से मिलता है, जिसमें अपने सामने लोह दृष्ट बनवाकर चित्रों को देख सौता चकित हो जाती है। यद्यपि आज कल कोई ग्रंथ चित्रकला पर नहीं मिलता है पर प्राचीन काल में अत्यन्त थे। फारमौर के राजा जयादित्य की समा के कवि दामोदर गुप्त ने आज से ११०० वर्ष पहले अपने 'कुट्टनीमंत्र' नामक ग्रंथ में 'चित्रपुत्र' नामक चित्र विद्या के एक ग्रंथ का उल्लेख किया है। अथवा गुप्त के चित्रों में प्राचीन भारतवासियों की चित्र निपुणता देव चकित रह जाना पड़ता है। बड़े बड़े विद्वान् यूरोपीयों ने इन चित्रों की प्रशंसा की है। इन गुप्तियों का बनना ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व से आरंभ हुआ था और आर्यों यत्नादर्नी तक कुछ न कुछ गुप्तों नई खुदनी रहें। अतः वेद देा हनार वर्ष के प्रत्यक्ष प्रमाण से ये चित्र अत्यन्त हैं। चित्र विद्या सीखने के लिये पहले प्रायः प्रकार की स्त्री, देवी, यक्ष आदि रेखाएँ खींचने का अभ्यास करना चाहिये, इसके उपरांत रेखाओं ही के द्वारा वस्तुओं के स्थूल भागों बनाए चाहिये। इस विद्या में दूरी आदि के निदर्शनों का पूरा अनुशीलन किए बिना निपुणता नहीं प्राप्त हो सकती। दृष्टि के सामानंतर या उपर नीचे के विस्तार का ध्यान तो सदा है पर आर्यों के ठीक सामने दूर तक गया हुआ विस्तार अंकित करना

कठिन विषय है। इस प्रकार की दूरी के विस्तार को प्रदर्शन करने की क्रिया को (Perspective) पर्सपेक्टिव कहते हैं। किसी नगर की दूर तक सामने गई हुई सड़क, सामने को बही हुई नदी आदि के दृश्य बिना इसके सिद्धांतों को जाने नहीं दिखाए जा सकते। किस प्रकार निकट के पदार्थ बड़े और साफ दिखाई पड़ते हैं, और दूर के पदार्थ क्रमशः छोटे और धुंधले होते जाते हैं यह सब यात धीकित करना पड़ता है। उदाहरण के लिये एक दूर पर खला हुआ चौखूँटा संदूक लीजिए। मान लीजिए कि आप उसे एक गुसे किनारे से देख रहे हैं जहाँ से उसके दो पार्वं या तीन कोण दिखाई पड़ते हैं। अथ चित्र बनाने के निमित्त यदि हम एक पेंसिल आँसों के समानांतर लेकर एक आँसू दबा कर देखेंगे तो संदूक की सब से निकटस्थ खड़ी कोण रेखा (ऊँचाई) सबसे बड़ी दिखाई देगी, जो पार्वं अधिक सामने रहेगी। उसके दूसरे और तीसरे कोण रेखा उससे छोटी और जो पार्वं कम दिखाई देगा उसके दूसरे और तीसरे कोण रेखा सबसे छोटी दिखाई पड़ेगी। अर्थात् निकटस्थ कोण रेखा से लगा हुआ उस पार्वं का कोण जो कम दिखाई देता है अधिक दिखाई पड़नेवाले पार्वं के कोण से छोटा होगा।



दृष्टि के समानांतर रेखा

दूसरा सिद्धांत आलोक और छाया का है जिसके बिना सजीवता नहीं आ सकती। पदार्थ का जो अंश निकट और सामने रहेगा वह (आलोकित) खुलता और स्पष्ट होगा और जो दूर वा दायल में पड़ेगा वह अस्पष्ट और कालिमा लिए होगा। पदार्थों का उभाड़ और गहराई आदि भी इसी आलोक और छाया के नियमानुसार दिखाई जाती है। जो अंश उठा वा उभड़ा होगा वह अधिक खुलता होगा, और जो धँसा वा गहरा होगा वह कुछ स्याही लिए होगा। इन्हीं सिद्धांतों को न जानने के कारण याज्ञात्क चित्रकार शीशे आदि पर जो चित्र बनाते हैं वे खेलवाड़ से जान पड़ते हैं। चित्रों में रंग एक प्रकार की कूँची से भरा जाता है जिसे चित्रकार कुलम कहते हैं। पहले यहाँ गिलहरी

पूँछ के बालों की यह कुलम बनती थी। अथ विलायती भूश काम में आते हैं।

चित्रकाय—संज्ञा पुं० [सं०] चीता।

चित्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] चित्र बनानेवाला। चित्रेरा।

चित्रकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्रकार + ई] (१) चित्रविद्या।

चित्र बनाने की कला। (२) चित्रकार का काम। चित्र बनाने का व्यवसाय।

चित्रकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का काव्य जिसके अर्थों को विशेष क्रम से लिखने से कोई विशेष चित्र बन जाता है। ऐसा काव्य अधम समका जाता है।

चित्रकुंडल—संज्ञा पुं० [सं०] छत्राष्टक के एक पुत्र का नाम।

चित्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध रमणीय पर्वत जहाँ बनबास के समय राम और सीता ने बहुत दिनों तक निवास किया था। यह तीर्थस्थान बाँदा जिले में है और प्रयाग से २० कोस दक्षिण पड़ता है। इस पहाड़ के नीचे पयोप्सी नदी बहती है जिसमें मंदाकिनी नाम की एक और छोटी नदी मिलती है। रामनवमी और दिवाली के अवसर पर यहाँ बहुत दूर दूर से तीर्थयात्री आते हैं। वाल्मीकि ने रामायण में इस स्थान को भारद्वाज के आश्रम से साढ़े तीन योजन दक्षिण की ओर लिखा है। (२) चितौर। (शिलासैलें में चितौर का यही नाम आता है)। (३) हिमवत् शंख के अनुसार हिमालय के एक शृंग का नाम।

चित्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश का पेड़।

चित्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके पास चित्रित पताका हो। (२) भागवत के अनुसार लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम। (३) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (४) वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम। (५) कंसा के गर्भ से उत्पन्न देवभाग यादव का एक पुत्र। (६) भागवत के अनुसार शूरसेन देश का एक राजा जिसे पुत्रशोक से संतप्त देख नारद ने मंत्रोपदेश दिया था।

चित्रकोण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुटकी। (२) काली कपास।

चित्रगंध—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

चित्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] चौदह यमराजों में से एक जो प्राणियों के पाप और पुण्य का लेखा रखते हैं।

विशेष—चित्रगुप्त के संबंध में पद्मपुराण, गरुडपुराण, भविष्य-पुराण आदि पुराणों में कथाएँ मिलती हैं। स्कंदपुराण के प्रभासखंड में लिखा है कि चित्र नाम के कोई राजा थे, जो हिसाब-किताब रखने में बड़े दक्ष थे। यमराज ने चाहा कि इन्हें अपने यहाँ लेखा रखने के लिये ले जाय। अतः एक दिन जब राजा नदी में स्नान करने गए तब यमराज ने उन्हें उठा और बनावया। इस पर राजा की एक चित्रपया नाम की नदी होकर

चित्र को ईं डूने समुद्र की ओर गईं । भविष्यपुराण में लिखा है कि जब ब्रह्मा सृष्टि बनाकर प्यान में मग्न हुए तब उनके शरीर से एक विचित्र-वर्ण उपर कलम दवात हाथ में लिए उभर हुए। जब ब्रह्मा का प्यान भंग हुआ तब उस उपरुप ने हाथ जोड़ कर कहा "महाराज ! मेरा नाम और काम बताइए" । ब्रह्माजी ने संतुष्ट होकर कहा कि "तुम हमारे शरीर ने उभर हुए हो। इसलिये तुम कायस्थ हुए और तुम्हारा नाम चित्रगुप्त हुआ । तुम प्राणियों के पाप-पुण्य का लेखा रखने के लिये यमराज के यहाँ रहो" । भद्र, नागर, सेनक, गौड़, धीवास्य, माधुर, आदिष्ठान, शीकलेन और श्रंपर ये चित्रगुप्त के पुत्र हुए । यह कथा पीछे की गढ़ी हुई जान पड़ती है क्योंकि कि ऊपर जो नाम दिए हैं वे प्रायः देश-भेद-मूचक हैं । गरुडपुराण के चित्रकवर में तो जितना है कि यमपुर के पास ही एक चित्रगुप्तुर है जहाँ चित्रगुप्त के अधीनस्थ कायस्थ लोग यथावर काम किया करते हैं । पिशा, संयुक्त और मय्य प्रदेश आदि के सब कायस्थ अपने को चित्रगुप्त के वंशज धतलाते हैं । यमाद्वितीया के दिन कायस्थ लोग चित्रगुप्त और कलम दवात की पूजा करते हैं ।

चित्रघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी जो नौ-दुर्गाओं में मानी जाती है ।

चित्रवाप—संज्ञा पुं० [सं०] एतारा के एक पुत्र का नाम ।

चित्रजल्प—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में रम के श्रंतर्गत एक वाक्य-भेद । यह भावपूर्ण और अभिप्राय-भरित वाक्य जो नायक और नायिका श्लोक कर एक दूसरे के प्रति कहते हैं । चित्रजल्प के दस भेद किए गए हैं, यथा—प्रत्यक्ष, परित्यक्त, विवक्ष्य, उन्नत, संनक्ष्य, धवक्ष्य, श्रमिजल्प, आजार, प्रतिजल्प और सुजल्प ।

चित्रज्ञान—संज्ञा पुं० दे० "चित्रयोग" ।

चित्रतंडुल—संज्ञा पुं० [सं०] वायविकुंड ।

चित्रताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें दो हुत, एक लृजे, फिर एक हुत और तब हुत की भावी मात्रा होती है । इसका बोल यह है,—डुगु-डुगु-धुमि धिमि परिषा तम् तम् ओ धें ।

चित्रतैल—संज्ञा पुं० [सं०] रेंडी का धंधी का तेल ।

चित्रत्वक्, चित्रत्वच—संज्ञा पुं० [सं०] मोजपत्र ।

चित्रदंडक—संज्ञा पुं० [सं०] स्तन ।

चित्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] पंचदशी नामक चंद्रोत्तम्र के अनुसार एक दीप । पट के ऊपर बने हुए चित्र के समान चैतन्य में जगत के विविध रूपों का आभास जिसे मायामय और मिथ्या समझना चाहिए ।

चित्रदेश—संज्ञा पुं० [सं०] कालीकंय का अनुचर ।

चित्रदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महेंद्रवारणी लता । (२) शक्ति या देवी का एक भेद ।

चित्रधर्मा—संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

चित्रधाम—संज्ञा पुं० [सं०] यदादि में पृथ्वी पर बनाया हुआ एक पीतल चक्र जो चारखाने की तरह होता था और जिसके खानों को भिन्न भिन्न रंगों से भरते थे । सर्वतो-भद्र मंडल ।

चित्रनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका । मैना ।

चित्रपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तित्तिर पक्षी । तीतर ।

चित्रपट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कपड़ा, कागज़ वा पट्टी जिस पर चित्र बनाया जाय या बना हो । चित्राधार । (२) वह वस्त्र जिस पर चित्र बने हैं । छोट ।

चित्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बाल की पुतली के पीछे का भाग जिस पर किरण पड़ने से पदार्थों के रूप दिखाई पड़ते हैं । वि० विचित्र पत्र युक्त । रंग विरंगे परबाल (पत्ती) ।

चित्रपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपियुपर्णी वृक्ष । (२) द्रोणपुष्पी । गूमा ।

चित्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली ।

चित्रपया—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभास तीर्थ के श्रंतर्गत ब्रह्मकुंड के पास की एक छोटी नदी जो घब सूख गई है, केवल बरसात में कुछ बहती है । दे० "चित्रगुप्त" ।

चित्रपदा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में २ अक्षर और २ शब्द होते हैं । उ०—रूपहि देवत मोहैं ईश कहौ नर को हैं । संप्रम चित्त अरुमैं । रामहिं धें सय वूमैं ।—केशव । (२) मैना चित्रिया । सारिका । (३) छुंदसुई । लजापुर । लजावू नाम की लता ।

चित्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मैना । (२) कर्पूरफोट लता । कनफोड़ा । (३) जलपिप्पली । (४) द्रोणपुष्पी । गूमा ।

चित्रपादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका । मैना ।

चित्रपिच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर । मोर ।

चित्रपुंज—संज्ञा पुं० [सं०] वाण । तीर ।

चित्रपुट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छः ताला ताल जिसमें दो लघु, दो हुत, एक लघु, और एक प्लुत होता है इसका बोल यह है—दिगिदा । धिमितक । दां० दां० तक धें । किट परि धिधियान धें ।

चित्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] रामसर नाम की शर जाति की घास ।

चित्रपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रामदा ।

चित्रपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] गौरा पक्षी । गौरैया ।

चित्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धितना मजूली । (२) लक्ष्म ।

चित्रफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कर्करी । (२) पैतल । (३)

केशरि। भद्रकटैया। (४) विमिनी लता। (५) महेंद्रवा-
कथी। (६) फलुहे मडली।

चित्रमहेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। (२) गहड़ के एक
पुत्र का नाम।

चित्रबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रभानु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक्ति। (२) सूर्य। (३)
चित्रक। चित्ते का पेड़। (४) शकं। मदार। (५) भैरव।
(६) अश्विनीकुमार। (७) साठ सवसरो के जो बारह युग
होते हैं उनमें से चौथे युग के पहले वर्ष का नाम। (८)
मणिपुर के राजा जो अर्जुन की पत्नी चित्रांगदा के पिता थे।

चित्रभेजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] कटगूलर। कटूमर।

चित्रमद-संज्ञा पुं० [सं०] नाटक आदि में किसी स्त्री का अपने
पति या प्रेमी का चित्र देख कर विरह-सूचक भाव दिखलाना।

चित्रभृङ्ग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दिन जिसकी पीठ
पर सफेद सफेद चितियाँ होती हैं। चितल।

चित्रमेघल-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

चित्रयोग-संज्ञा पुं० [सं०] खाँस कलाओं में से एक, अर्थात्
बुद्ध के जवान और जवान वी बुद्ध वा नपुंसक बना
देने की विद्या। दे० "कला"।

चित्रयोधो-वि० [सं०] विचित्र बुद्ध करनेवाला। भारी योगदा।

संज्ञा पुं० (१) अर्जुन। (२) अर्जुन का पेड़।

चित्ररथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) एक गंधर्व का नाम
जो बरधरा और दक्षकन्या मुनि के पुत्र थे। ये कुंभर के
सखा माने जाते हैं। वे गंधर्वराज, श्रंगारपर्यं, दग्धरा और
कुबेरसल भी कहलाते हैं। (३) श्रीकृष्ण के पुत्र गद के
एक पुत्र का नाम। (४) महाभारत के अनुसार शंग देव के
एक राजा का नाम। (५) एक यदुवंशी राजा जो विष्णुपुराण
के अनुसार रुद्र और भागवत के अनुसार विशद्वर के पुत्र
थे। (६) महाभारत के अनुसार शपद्गुरु नामक राजा
के एक पुत्र।

वि० विचित्र रथवाला।

चित्ररथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत (भीष्म) में बर्णित एक नदी।

चित्ररदिम-संज्ञा पुं० [सं०] सदर्भ में से एक।

चित्ररेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] थायासुर की कन्या जया की
एक सहेली। दे० "चित्रलेखा"।

चित्ररेफ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागवत के अनुसार शाकटीय के
राजा प्रियवत के पुत्र मेघातिथि के सात पुत्रों में से एक।
(मेघातिथि ने अपने सात पुत्रों को सात वर्ष बाँट
दिए थे जिनके नामों के अनुसार ही उन वर्षों के नाम
पड़े।) (२) एक वर्ष या संविभाग का नाम।

चित्रल-वि० [सं०] चित्रकरा। रंग बिरंगा। चितला।

चित्रलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैत्री।

चित्रला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मोरल इमली।

चित्रलिखन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुंदर लिखावट। सुसाली।
(मनु)। (२) चित्र बनाने का कार्य।

चित्रलेखनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तसवीर बनाने की कलम। कूँची।

चित्रलेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्षयुक्त जिसके प्रायिक चार
में १ भाग, १ भाग, १ भाग, और तीन भाग होते
हैं। ३०—में भीनी वें गुणनि सुनु यया पामरी पाह
यारी। योशो ना थालि। कहत तुमसों दीन हूँ यारि
यारी। (२) थायासुर की कन्या जया की एक सती जो
कुर्मांड की लड़की थी। यह चित्रकला में बड़ी निपुण
थी। (३) एक अष्टरा का नाम। (४) चित्र बनाने की
कलम। तसवीर बनाने की कूँची।

चित्रलोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रमद-संज्ञा पुं० [सं०] पाठीन मत्स्य। पहिना मडली।

चित्रवन-संज्ञा पुं० [सं०] गंडकी के विनारे का पुराण-प्रसिद्ध
एक वन।

चित्रवर्मा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।
(२) मुद्राराक्षस के अनुसार कुल्लूत देव के एक राजा का नाम।

चित्रवह्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचित्र लता। (२) महेंद्र-
वारणी।

चित्रवहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी।

चित्रवाह-संज्ञा पुं० [सं०] छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] मणिपुर का एक नाम राजा।
(महाभारत)

चित्रविचित्र-वि० [सं०] (१) रंग बिरंगा। कई रंगों का। (२)
बेल वृद्धार। नकारादीनार।

चित्रविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की विद्या। दे०
"चित्रकला"।

चित्रवीथी-वि० [सं०] विचित्र चली।

संज्ञा पुं० लाल रेंड। रक्त परंड।

चित्रवैगिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक नाम का नाम।

चित्रशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह घर जहाँ चित्र बनते हैं
या विक्रयार्थे रखे जाते हैं। (२) वह घर जहाँ चित्र रखे
हैं। वह घर जिसमें बहुत सी तसवीरें टँगी हों। (३) वह
स्थान जहाँ चित्रकारी सिखाई जाती हो।

चित्रशिखंडिज-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

चित्रशिखंडी-संज्ञा पुं० [सं०] चित्रशिखंडि] सप्त ऋषि।
मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, मनु, वसिष्ठ—ये सात
ऋषि।

चित्रशिर-संज्ञा पुं० [सं० चित्रशिर] (१) एक गंधर्व का नाम।
(२) सुभ्रत के अनुसार मल मूत्र से उत्पन्न एक विष। गंदगी
का पुहर।

चित्रसंग—संज्ञा पुं० [सं०] १६ अक्षरों का एक वर्णरूप ।
 चित्रसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] चीतल सर्प ।
 चित्रसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्र + गण] (१) यह घर जहाँ चित्र
 देने हो वा दीवार पर बने हों । (२) रंगमहल । सजा हुआ
 सोना का कमरा । विज्ञानमयन ।
 चित्रसेन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
 (२) एक गणर्व का नाम । (३) एक पुरुरंगी राजा जो परी-
 क्त के पुत्रों में से थे । (४) शंकराच्युत के एक पुत्र का नाम ।
 (इतिवर्त)
 चित्रहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] धार का एक हाथ । हथियार चलाने
 का एक हाथ (महाभारत) ।
 चित्रांग—वि० [सं०] [स्त्री० चित्रांगी] जिसका अंग विचित्र हो ।
 जिसके अंग पर चित्तियाँ, धारियाँ आदि हों ।
 संज्ञा पुं० (१) चित्रक । चीता । (२) एक प्रकार का सर्प ।
 चीतल । (३) ईशु । (४) हरताल ।
 चित्रांगद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न राजा
 शत्रुघ्न के एक पुत्र । ये चित्रिप्रचीर्य के छोटे भाई थे । (२)
 देवी भागवत के अनुसार एक गणर्व का नाम । (३) दशार्ण
 देश के एक प्राचीन राजा । (महाभारत, अध०)
 चित्रांगद—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मणिपुर के राजा चित्रवाहन
 की कन्या जो अश्विन को इगारी थी । (२) रावण की एक स्त्री
 जो वीरबाहु की माता थी ।
 चित्रांगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मनीठ । (२) कनकलाल नाम का
 कीटा । कनकलाल ।
 चित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सलाईस नक्षत्रों में से चौदहवाँ
 नक्षत्र । इसकी तारा-संख्या एक सार्नी गई है पर यह योग-तारा
 भी दिखाई देता है । इसकी कला ४० और विषेण दो कला
 है । इसका कलांग १३ है अर्थात् यह सूर्य कला के तेरहवें
 अंश के बीच अस्त और तेरहवें अंश पर उदय होता है । यह
 पूर्व दिशा में उदय होता है और पश्चिम दिशा में अस्त होता
 है । (सूर्य सिद्धांत) । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सुंदर
 और चित्र विचित्र देने के कारण ही इसे चित्रा कहते हैं ।
 फलित में यह पाषाण युग नक्षत्र माना गया है । हममें गृहारंभ,
 गृहप्रवेश, हाथी, रथ, नौका, घोड़े आदि का व्यवहार शुभ
 है । इस नक्षत्र में जिसका जन्म होता है वह राजस गण्य में
 माना जाता है, विवाह की गणना में उसका मेल मनुष्य गण्य के
 साथ नहीं देता । सतिमान को १२ भागों में बाँट देने से
 एक एक सुहृत् निकल जाता है । हममें से १४ वे सुहृत्
 चित्रा का सुहृत् मान लेना चाहिए, चाहे और कोई
 दूसरा नक्षत्र भी हो । जो जो कार्य चित्रा नक्षत्र में हो सकते
 हैं वे सब चित्रा सुहृत् से भी हो सकते हैं । (२) सुषिकर्षणी ।
 (३) ककड़ी या पीर । (४) दूँती वृक्ष । (५) गंध दूर्वा । (६)

मनीठ । (७) वायविर्हंग । (८) मूसाकानी । शामुष्णी । (९)
 अमवाहन । (१०) सुमद्रा । (११) एक सर्प का नाम । (१२)
 एक नदी का नाम । (१३) एक शय्या का नाम ।
 (१४) एक रागिनी जो भैरव राग की पाँच स्त्रियों में मानी
 जाती है । (१५) संगीत में एक भ्रुङ्गा का नाम । (१६)
 पंद्रह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसमें पहले तीन नगण,
 फिर दो गण्य होते हैं । उ०—मो मो माया याही जाये
 यदि छोड़े बिना ना, पायै कोऊ प्यारे भौ सिंघु कर्वाँ पार
 जाता । (१७) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सोलह
 मात्राएँ होती हैं और अंत में एक गुरु होता है । इसकी
 पाँचवीं, आठवीं और नवीं मात्रा लघु होती है । यह चौपाई
 का एक छंद है । उ०—इतपदि कदि निग सदन आई ।
 (१८) प्राचीन काल का एक वाग्य जिसमें तार लगे होते थे ।
 (१९) चित्ररथी गाय ।

चित्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
 वि० [स्त्री० चित्राक्षी] विचित्र या सुंदर नेत्रवाला ।
 चित्राक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका । मीना ।
 चित्राक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) शिव का अनुचर
 चंद्राक्षरी ।
 चित्रादिस्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभास क्षेत्र में चित्रगुप्त की स्थापित
 सूर्य मूर्ति । (स्कंदपुराण प्रभा०)
 चित्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बकरी के दूध में पकाया और बकरी के
 कान के रक्त में रंगा हुआ जैा और चावल ।
 चित्रायस—संज्ञा पुं० [सं०] इत्यात । लोहा ।
 चित्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलक्षण अस्त्र । (२) छतराष्ट्र
 के एक पुत्र का नाम ।
 वि० विलक्षण अस्त्रयुक्त ।
 चित्राल—संज्ञा पुं० [सं० चित्राल] कारमीर के पश्चिम एक
 पहाड़ी प्रदेश ।
 चित्रायसु—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों से मंडित रात्रि ।
 चित्रादय—संज्ञा पुं० [सं०] सत्यवान का एक नाम ।
 चित्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] चैत का महीना ।
 चित्रिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पविनी आदि स्त्रियों के चार भेदों में
 से एक ।
 विशेष—शील दौलत न बहुत भारी न बहुत छोटा, नाक तिल
 के दूल की सी, नेत्र कमलदूल के समान, मुँह तिल,
 पिँदी आदि से सँवारा हुआ, सही सज इसके लक्षण हैं ।
 यह विविध कलाओं तथा ग्यार-चेष्टा में निपुण होती है ।
 इस जाति की जो के साथ मृग जाति के पुरुष का जोड़
 बपुक्त होता है ।
 चित्रित—वि० [सं०] (१) चित्र में लींचा हुआ । चित्र द्वारा
 दिखाया हुआ । जिसका रंग-रूप चित्र में दिखाया गया हो ।

कंठकारि। भटकटैया। (४) खिंगिनी लता। (५) महेंद्रवा-
रूपी। (६) फलुई मङ्गली।

चित्रवर्ह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। (२) गहड़ के एक
पुत्र का नाम।

चित्रवाहू—संज्ञा पुं० [सं०] छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रभानु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शशि। (२) सूर्य। (३)
चित्रक। चिते का पेड़। (४) शक। मदार। (५) शेरव।
(६) श्विनीकुमार। (७) साठ संवसरे के जो बारह युग
होते हैं उनमें से चौथे युग के पहले वर्ष का नाम। (८)
मण्डिपुर के राजा जो अर्जुन की पत्नी चित्वांगदा के पिता थे।

चित्रमेघजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटपूलर। वटमर।

चित्रमद—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक आदि में किसी स्त्री का अपने
पति या प्रेमी का चित्र देख कर विरह-सूचक भाव दिखलाना।

चित्रभृगु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हिरन जिसकी पीठ
पर सफ़ेद सफ़ेद चित्रियाँ होती हैं। चितल।

चित्रमेघल—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

चित्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] चौंसठ कलाओं में से एक, अर्थात्
बुद्धों को जपान और जपान को बुद्धों वा नपुंसक बना
देने की विद्या। दे० “कला”।

चित्रघोषी—वि० [सं०] विचित्र युद्ध करनेवाला। भारी योद्धा।

संज्ञा पुं० (१) अर्जुन। (२) अर्जुन का पेड़।

चित्रध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) एक गंधर्व का नाम
जो वश्यर और दक्षकन्या मुनि के पुत्र थे। ये कुबेर के
सखा माने जाते हैं। ये गणेश्वरान, श्रंगारपर्ण, दग्धध और
कुबेरसख भी कहलाते हैं। (३) श्रीकृष्ण के पुत्र गद के
एक पुत्र का नाम। (४) महाभारत के अनुसार शंग देव के
एक राजा का नाम। (५) एक यदुवंशी राजा जो विष्णुपुराण
के अनुसार रघु और भागवत के अनुसार विशद्वर के पुत्र
थे। (६) महाभारत के अनुसार शपद्गुण नामक राजा
के एक पुत्र।

वि० विचित्र रथवाला।

चित्ररथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत (भीष्म) में बर्णित एक नदी।

चित्ररश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लों में से एक।

चित्ररेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाष्पासुर की कन्या ऊषा की
एक सहेली। दे० “चित्रलेखा”।

चित्ररंक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागवत के अनुसार शाकद्वीप के
राजा प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि के सात पुत्रों में से एक।
(मेधातिथि ने अपने सात पुत्रों को सात वर्ष धरि
दिए थे जिनके नामों के अनुसार ही उन वर्षों के नाम
पड़े।) (२) एक वर्ष वा भूविभाग का नाम।

चित्रल—वि० [सं०] चित्रकेश। रंग बिरंगा। चितला।

चित्रलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मँजीठ।

चित्रला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरल इमली।

चित्रलिखन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुंदर लिखावट। सुजायती।
(मनु०)। (२) चित्र बनाने का कार्य।

चित्रलेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तसवीर बनाने की कुलम। कूँची।

चित्रलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्षवृत्त जिसके प्रत्येक चरण
में १ मणव, १ भगव, १ नगव, और तीन दणव होते
हैं। उ०—में भीनी यों गुणनि सुनु यथा कामरी पाइ
वारी। योजो ना थालि। कहत तुमसों दीन है वारी
वारी। (२) वाष्पासुर की कन्या ऊषा की एक सहेली जो
कुष्माण्ड की लड़की थी। यह चितकला में बड़ी निपुण
थी। (३) एक अस्त्र का नाम। (४) चित्र बनाने की
कुलम। तसवीर बनाने की कूँची।

चित्रलेखना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रवदल—संज्ञा पुं० [सं०] पाठीन मत्स्य। पहिना मङ्गली।

चित्रधन—संज्ञा पुं० [सं०] गंधकी के दिनारे का पुराण-प्रसिद्ध
एक वन।

चित्रधर्मा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

(२) मुद्राराक्षस के अनुसार कुल्लुत देश के एक राजा का नाम।

चित्रवह्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) त्रिचित्र लता। (२) महेंद्र-
वारूपी।

चित्रवहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी।

चित्रवाण—संज्ञा पुं० [सं०] छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] मण्डिपुर वा एक नाम राजा।
(महाभारत)

चित्रविचित्र—वि० [सं०] (१) रंग बिरंगा। कई रंगों का। (२)
पेल बूटेदार। नक्षारीदार।

चित्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की विद्या। दे०
“चित्रकला”।

चित्रवीथी—वि० [सं०] विचित्र बली।

संज्ञा पुं० लाल रेंदु। रक परेंदु।

चित्रवेगिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाम का नाम।

चित्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह घर जहाँ चित्र बनते हैं
वा विक्रयार्थ रखे जाते हैं। (२) वह घर जहाँ चित्र रखे
हैं। वह घर जिसमें बहुत सी तसवीरें टँगी हैं। (३) वह
स्थान जहाँ चित्रकारी सिखाई जाती हो।

चित्रशिखंडिज—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

चित्रशिखंडिज—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रशिखंडिज। सप्त ऋषि।
मरीचि, शनिरा, अग्नि, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, वसिष्ठ—ये सात
ऋषि।

चित्रशिर—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रशिर। (१) एक गंधर्व का नाम।

(२) सुभुत के अनुसार मल भूय से उत्पन्न एक विप। गंदगी
का जहर।

चित्रसंग—संज्ञा पु० [सं०] १६ अक्षरों का एक वर्णवृत्त ।
 चित्रसर्प—संज्ञा पु० [सं०] चित्तल साँप ।
 चित्रसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्र + सार] (१) यह घर जहाँ चित्र
 देने हों वा दीवार पर बने हों । (२) रंगमहल । सजा हुआ
 सोने वा कमरा । विद्यासभवन ।
 चित्रसेन—संज्ञा पु० [सं०] (१) एताप्ट के एक पुत्र का नाम ।
 (२) एक गंधर्व का नाम । (३) एक पुरुवंशी राजा जो परी-
 पित के पुत्रों में से थे । (४) शरवासुर के एक पुत्र का नाम ।
 (हरिवंश)
 चित्रहस्त—संज्ञा पु० [सं०] धार का एक हाथ । हथियार चलाने
 का एक हाथ (महाभारत) ।
 चित्रांग—वि० [सं०] [स्त्री० चित्रांगी] जिसका श्रेण चित्रित हो ।
 जिसके श्रेण पर चित्तियाँ, धारियाँ आदि हों ।
 संज्ञा पु० (१) चित्रक । चीता । (२) एक प्रकार का सर्प ।
 चीतल । (३) ईश्वर । (४) इतलाल ।
 चित्रांगद—संज्ञा पु० [सं०] (१) सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न राजा
 मातस्य के एक पुत्र । वे विचित्रवीर्य के छोटे भाई थे । (२)
 देवी भागवत के अनुसार एक गंधर्व का नाम । (३) दशार्ण
 देश के एक प्राचीन राजा । (महाभारत, अश्व०)
 चित्रांगदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मथियुर के राजा चित्रवाहन
 की कन्या जो अर्जुन की स्त्री थी । (२) रावण की एक स्त्री
 जो वीरबाहु की माता थी ।
 चित्रांगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मनीट । (२) कनसलाई नाम का
 कीड़ा । कनसवृत्ता ।
 चित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्साईस नक्षत्रों में से चौदहवाँ
 नक्षत्र । इसकी तारा-संख्या एक मानी गई है पर यह योग-तारा
 भी दिखाई देता है । इसकी कला ४० और विक्षेप दो कला
 है । इसका कलासा १३ है अर्थात् यह सूर्य कला के तेरहवें
 शंश के बीच अन्न और तेरहवें शंश पर उदय होता है । यह
 पूर्व दिशा में उदय होता है और पश्चिम दिशा में अस्त होता
 है । (सूर्य सिद्धान्त) । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सुंदर
 और चित्र चित्रित होने के कारण ही इसे चित्रा कहते हैं ।
 कलित में यह पाम्बुल नक्षत्र माना गया है । इसमें गृहार्थ, गृहभय, हाथी, रथ, नाका, घोड़े आदि का व्यवहार शुभ
 है । इस नक्षत्र में जिसका जन्म होता है वह राक्षस गण में
 माना जाता है, विवाह की गणना में उसका मेल मत्तुष्यगण के
 साथ नहीं होता । रात्रिमान को १२ भागों में बाँट देने से
 एक एक सुहृत् निकल आता है । इनमें से १४ वे सुहृत्
 को चित्रा का सुहृत् मान लेना चाहिए, चाहे और और कोई
 दूसरा नक्षत्र भी हो । जो जो कार्य चित्रा नक्षत्र में हो सकते
 हैं वे सब चित्रा सुहृत् में भी हो सकते हैं । (२) भूचक्रपथी ।
 (३) कर्करी वा लीरा । (४) दंती घृष । (५) गंध दूर्वा । (६)

मनीट । (७) वायविडंग । (८) मुसाकानी । आसुकर्या । (९)
 अत्रवाहन । (१०) सुभद्रा । (११) एक सर्प का नाम । (१२)
 एक नदी का नाम । (१३) एक शम्भरा का नाम ।
 (१४) एक रागिनी जो मौर्य राग की पांच स्त्रियों में मानी
 जाती है । (१५) संगीत में एक मूर्च्छना का नाम । (१६)
 पंद्रह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसमें पहले तीन नगण्य,
 फिर दो यण्य होते हैं । उ०—मो मो माया याही जानो
 यहि छाने विना ना, पाये कोऊ धारो भी सिंभू कर्षां पार
 जाना । (१७) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सोलह
 मात्राएँ होती हैं और छंद में एक गुरु होता है । इसकी
 पाँचवीं, आठवीं और नववीं मात्रा लघु होती है । यह चैपाई
 का एक भेद है । उ०—इतनहि कदि मित्र सदनै आई ।
 (१८) प्राचीन काल का एक वाजा जिसमें तार लगे होते थे ।
 (१९) चित्तकरी गाय ।

चित्राक्ष—संज्ञा पु० [सं०] एताप्ट के एक पुत्र का नाम ।
 वि० [स्त्री० चित्राक्षी] चित्रित या सुंदर नेत्रवाला ।
 चित्राक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका । मैना ।
 चित्राक्षीर—संज्ञा पु० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) शिव का अनुचर
 चंडाकर्षी ।
 चित्रादित्य—संज्ञा पु० [सं०] प्रभास क्षेत्र में चित्रगुप्त की स्थापित
 सूर्य मूर्ति । (स्कंदपुराण प्रभा०)
 चित्राक्ष—संज्ञा पु० [सं०] बकरी के दूध में पकाया और बकरी के
 कान के रक्त में रंगा हुआ या और चावल ।
 चित्रायस—संज्ञा पु० [सं०] हस्पात । लोहा ।
 चित्रायुध—संज्ञा पु० [सं०] (१) विलक्षण धनुष । (२) एताप्ट
 के एक पुत्र का नाम ।
 वि० विलक्षण धनुषयुक्त ।
 चित्राल—संज्ञा पु० [सं० चित्राल्य ?] कारमीर के पश्चिम एक
 पहाड़ी प्रदेश ।
 चित्राघसु—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों से मंडित रात्रि ।
 चित्राद्व—संज्ञा पु० [सं०] सत्यवाज का एक नाम ।
 चित्रिक—संज्ञा पु० [सं०] रथ का महीना ।
 चित्रिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थनी आदि स्त्रियों के चार भेदों में
 से एक ।
 चित्रोप—स्त्रील दौलत न बहुत भारी न बहुत छोटा, नाक तिल
 के फूल की सी, नेत्र बमबदल के समान, सुंदर तिल,
 बिंदी आदि से सँवारा हुआ, येही सब इसके लक्षण हैं ।
 यह विविध कलाओं तथा यंत्र-गान-वेष्टा में निपुण होती है ।
 इस जाति की स्त्री के साथ मृग जाति के पुरुष का जोड़
 वरयुक्त होता है ।
 चित्रित—वि० [सं०] (१) चित्र में लींचा हुआ । चित्र द्वारा
 दिखाया हुआ । जिसका रंग-रूप चित्र में दिखाया गया हो ।

जैसे, उसमें एक व्याघ्र चित्रित है। (२) जिस पर चित्र बने हैं। जिस पर बेल बूटे आदि बने हैं। जिस पर नक्काशी है। (३) जिस पर चित्रों वा रंग की धारियाँ आदि हैं।

चित्रेश-संज्ञा पुं० [सं०] (चित्रा नक्षत्र के पति) चंद्रमा ।

चित्रोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश। (२) अलंकृत भाषा में कथन ।

चित्रोत्तर-संज्ञा पुं० [सं०] यह काव्यालंकार जिसमें प्रश्न ही के शब्दों में उत्तर हो या कई प्रश्नों का एक ही उत्तर हो। व०—

(क) कोकहिये जल से सुखी कारुहिये पररयाम। फाकहिये जे रस बिना कोकहिये सुख याम। इसमें 'कोक', 'काक', 'वाम' आदि उत्तर दोहरे के शब्दों ही में निकल आते हैं।

(ख) गाउ पीठ पर लेहु अंग राग अरु हार कर। गृध्र प्रकारा कर देहु कान्ह कह्यो "सारेग नहीं"। यद्यै "सारेग नहीं" से सब प्रश्नों का उत्तर हो गया। (ग) को शुभ अक्षर ? कौन युवति जो धन वरा कौनी ? विजय सिद्धि संग्राम राम कह्यै कौने दीनी ? कंसराज यदुवंश बसत कैसे कोरावपुर ? घट सों कहिये कहा ? नाम जानहु अपने उर । कहि कौन युवति जाज जनन किय कमल नयन सूचम बरथि ? सुन वेद पुरायन मैं कही समकादिक शंकरतर्थाय । इसे "प्रश्नोत्तर" भी कहते हैं।

चित्रोत्पला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उड़ीसा की एक नदी जिसे आज कल 'चितरतला' कहते हैं। (२) मत्स्य, मार्कण्डेय और वामन पुराण के अनुसार एक नदी जो ऋष्यपाद पर्वत से निकली है।

चित्रोपला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका उल्लेख महाभारत में है।

चिद्य-वि० [सं०] (१) पूज्य। (२) चुनने वा इकट्ठा करने योग्य।

चिद्युता-संज्ञा पुं० [सं०] चिद्य = फटा हुआ। वा चौर । फटा पुराना कपड़ा। कपड़े की धज्जी। लता। झुगरा।

धौ०—चिद्युता गुदुङ्गा = फटे पुराने कपड़े।

मुहा०—चिद्युता लपेटना = फटे पुराने कपड़े पहनना।

चिद्याङ्गना-कि० सं० चोर्षे। (१) चौरना। फाड़ना। कपड़े, चमड़े, कागज आदि चर के रूप की वस्तुओं को फाड़ कर टुकड़े टुकड़े करना। धज्जी धज्जी करना। (२) धज्जियाँ उड़ाना। अपमानित करना। लज्जित करना। नीचा दिखाना। ज़लीक करना।

चिदाकाश-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश के समान निर्लिप्त और सब का आधारभूत ब्रह्म। परमाल।

चिदात्मा-संज्ञा पुं० [सं०] चैतन्य स्वरूप परमाल।

चिदानंद-संज्ञा पुं० [सं०] चैतन्य और आनंदमय परमाल।

चिदाभास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चैतन्य स्वरूप परमाल का

आभास जो प्रतीति'य' जो महत्त्व वा अंतःकरण पर पड़ता है। (२) जीवात्मा।

चिद्योप—यद्यै तवादिनों के मत से अंतःकरण में ब्रह्म का आभास पड़ने से ही ज्ञान होता है। भाषा के संयोग से यह ज्ञान अनेक रूप विशिष्ट दिखाई पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार स्फटिक पर जिस रंग की आभा पड़ती है वह उसी रंग का दिखाई पड़ता है।

चिद्रूप-संज्ञा पुं० [सं०] चैतन्य स्वरूप ब्रह्म। ज्ञानमय परमात्मा।

चिद्विलास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चैतन्य स्वरूप ईश्वर की भाषा। व०—गुलसिदास कह चिद्विलास जग यूकत यूकन यूकै।—तुलसी। (२) शंकराचार्य के एक गीत्य। बहुतेरा का विश्वास है कि शंकरविजय नामक ग्रन्थ इहाँ का लिखा है, जिसमें चिद्विलास वक्ता और विज्ञानकंद श्रोता हैं।

चिन-संज्ञा पुं० [रेण०] (१) एक बहुत बड़ा सदाग्रहार पेड़ जो हिमालय पर शिमले के आस पास बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारतों में लगती है। (२) एक घास जिसे चौपाए यही रचि से खाते हैं। यह घास खेतों के किनारे होती है। इसे सुला कर भी रल सकते हैं।

चिनक-संज्ञा पुं० [दि० चिनी] (१) जलन लिप हुए पीड़ा। चुनचुनाहट। (२) मूत्रनाली की जलन वा पीड़ा जो सूजाक में होती है।

क्रि० प्र०—उटना।—होना।

चिनगर्ग-संज्ञा पुं० दे० "चिनक"।

चिनगारी-संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण, दि० चुन + गार] (१) जलती हुई आग का छोटा कण वा टुकड़ा। जैसे, एक चिनगारी आग इस पर रख दो। (२) दहकती हुई आग में से फूट फूट कर उड़नेवाले कण। अग्निकण। स्फुलिंग।

क्रि० प्र०—उड़ना।—छूटना।

मुहा०—आँसों से चिनगारी छूटना = मोघ से आँसू लात लात होना। चिनगारी छेड़ना = धीरे से ऐसी बात कर बैठना जिससे किसी प्रकार का उपद्रव लड़ा हो जाय। कोई ऐसी बात कह देना जिससे लोगों में लड़ाई भगड़ना हो जाय। ऐसी चाल चलना जिससे एक नई बात खड़ी हो जाय। चिनगारी दानना = (१) आग लगाना। (२) दे० "चिनगारी छेड़ना"।

चिनगी-संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण, दि० चुन + गी, प्रा० अंग] (१) अग्निकण। दे० "चिनगारी"। (२) चुन और चालाक लड़का। (३) वह लड़का जो नरों के साथ रहता है। (नट)।

चिनसौत-संज्ञा स्त्री० [दि० चना] चना की रोटी। चिनारि दौड़-संज्ञा स्त्री० [दि० लानना + रीड़] जहान् की चुनव फिरोव की चाल। जहान् का चकर। (लरा०)

चिनाना†—कि० सं० [सं० चवन] (१) चुनवाना। विनयाना। (२) हँट आदि की जोड़ाई करना। दीवार वा पर उठवाना।

३०—कंचन महल खुनाइया सुधन कली दुलाप । ते मंदिर
खाकी परे रहे मसाना जाप ।—कवीर ।

चिन्ता-संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमण] पंजाब की एक नदी । चंद्र-
भाग ।

चिन्तिया-वि० [हिं० चिन्ती] (१) चीनी के रंग का । सफ़ेद । (२)
चीन देश का । चीनी ।

चिनिया केला-संज्ञा पुं० [हिं० चिनिया + केला] छोटी जाति का
एक केला जो बंगाल में होता है । यह खाने में बहुत मीठा
होता है ।

चिनिया घोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० चीन वा चीनी] वह घोड़ा जिसके
घोंरे पर सफ़ेद हों और सारे बदन में खाल और कुछ सफ़ेद
खिचड़े बाल हों ।

चिनिया-बल-संज्ञा पुं० [हिं० चिनिया + बल] बलक की तरह की
एक चिट्ठी ।

चिनिया घदाम-संज्ञा पुं० [हिं० चिन + घदाम] मूर्गाफली ।

चिनियारी-संज्ञा स्त्री० [सं० नुतु ?] सुसना का साग ।

चिध-संज्ञा पुं० [सं०] चना ।

चिन्मय-वि० [सं०] ज्ञानमय ।

संज्ञा पुं० परमेश्वर ।

चिन्ह-संज्ञा पुं० दे० "चिह्न" ।

चिन्हबाना ङ-क्रि० सं० [हिं० "चिन्हना" का प्रे०] पहचनबाना ।
परिचित कराना । ठीक लक्षण यथा देना । पहचान करा
देना ।

चिन्हबाना ङ-क्रि० सं० [हिं० "चिन्हना" का प्रे०] पहचनबाना ।
परिचित कराना ।

चिन्हानी ङ-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिन्ह] (१) चिन्हनेकी धरतु । पहचान ।
लक्षण । (२) स्मारक । यादगार । ऐसी धरतु जिससे किसी
बात वा गानुष्य का स्मरण हो । (३) चिह्न । रेखा । धारी ।
लकीर ।

चिन्हारी ङ-वि० [हिं० चिन्ह] जान पहचान का परिचित । जिससे
जान पहचान हो ।

क्रि० प्र०—खींचना ।

चिन्हारी ङ-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिन्ह] जान पहचान । मेट मुलाकात ।
परिचय । उ०—इसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी ।—गुलसी ।

चिन्हित ३-वि० दे० "चिह्नित" ।

चिपकाना-क्रि० अ० [सं० चिपेट = चिपटा । वा अनु० चिपचिप]
(१) बीच में किसी बसोली बस्तु के काय्य देा बस्तुओं का
परस्पर इस प्रकार जुड़ना कि जल्दी अलग न हो सके ।
सटना । चिमटना । रिलेट होना । जैसे, हम मुल्क के पत्ते
चिपट गए हैं ।

क्रि० प्र०—जाना ।

(२) लिपटना । प्रगाढ़ रूप से संयुक्त होना । (३) खी पुरुष
का संयोग होना । खी पुरुष का परस्पर प्रेम में फैलना ।

(४) रोजगार से लगना । किसी काम में लगना ।

चिपकाना-क्रि० सं० [हिं० चिपकना] (१) किसी लम्बी वस्तु
को बीच में देकर दो बस्तुओं को परस्पर इस प्रकार जोड़ना
कि वे जल्दी अलग न हो सकें । चिमटना । रिलेट करना ।
बस्ता करना । जैसे, इस कागज़ पर टिकट चिपका दो ।

संयोग क्रि०—देना ।

(२) लिपटना । प्रगाढ़ आशिंगन करना ।

संयोग क्रि०—लेना ।

(३) लकरी लगाना । किसी काम धंधे में लगाना ।

चिपचिप-संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द वा धनुभव जो किसी
बसदार वस्तु को छूने से होता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

चिपचिपा-वि० [अनु० चिपचिप । वा हिं० चिपकना] जिसे छूने से
हाथ चिपकता हुआ जान पड़े । बसदार । लम्बी । जैसे,
चोटा, शहद, चाखनी आदि वस्तु ।

चिपचिपाना-क्रि० अ० [हिं० चिपचिप] छूने में चिपचिपा जान
पड़ना । बसदार मालूम होना । जैसे, स्थारी में गोंद
अधिक है, हमीसे चिपचिपाती है ।

चिपचिपाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपचिपा] चिपचिपाने का भाव ।
बसोलापन । बस । लसी ।

चिपटना-क्रि० अ० [सं० चिपेट = चिपटा] चिपकना । सटना ।
चिमटना । इस प्रकार जुड़ना कि जल्दी अलग न
हो सके ।

चिपटा-वि० [सं० चिपेट] [स्त्री० चिपटी] जो बर्तों से उठा वा
उभड़ा हुआ न हो । जिसकी सतह दबी और बायब फौजी
हुई हो । जिसके छूट पर कहीं उभाड़ न हो । बँटा वा बँसा
हुआ । जैसे, चिपटी नाक, चिपटा दाना, चिपटी बीज ।
उ०—पेड़ पर से गिर कर फल चिपटा हो गया ।

चिपटाना-क्रि० सं० [हिं० चिपटना] (१) चिपकाना । सटना ।
(२) लिपटना । आशिंगन करना ।

चिपटी-वि० स्त्री० दे० "चिपटी" ।

संज्ञा स्त्री० (१) कान में पड़नेकी की एक प्रकार की बाकी
जिसे मैंगोली चिर्पा पहनती हैं । (२) भग । योनि ।

मुहा०—चिपटी खेतना = दो चिपों का कामभरा परस्पर योनि
से योनि मिलना । उ०—प्राचीं पड़ोसिन चिपटी खोलें, दँडे से
पेगार भली । चिपटी बड़ाना = दे० "चिपटी खेतना" ।

चिपड़ा ङ-वि० [हिं० चिपट] जिसकी आँसू में अधिक चीरड़
रहता हो । जिसकी आँसू से अधिक चीरड़ निकलता हो ।

चिपड़ी, चिपटी १—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपड़] गोबर के पाये हुए चिपटे टुकड़े। उपली। गोहँटी।

क्रि० प्र०—पाचना।

चिपिट-वि० [सं०] चिरञ्च।

संज्ञा पुं० (१) चिपड़ा। चिपड़ा। (२) चिपटी नाकवाला मनुष्य। (इसका दर्शन शत्रुभयमाना जाता है)। (३) हृष्ट की चकपकाहट जो आँखों को डंगली आदि से दधाने से हो। (इस प्रकार की चकपकाहट से कभी एक के दो तीन पदार्थ दिखाई देते हैं, कभी पदार्थ नीचे या ऊपर हटे हुए दिखाई पड़ते हैं)।

चिपटनासिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गृहसंहिता के अनुसार एक देश जो कैलास पर्वत के उपर पड़ता है। तातार वा मंगोल देश जहाँ के निवासियों की नाक चिपटी होती है। (२) उस देश के निवासी, तातार वा मंगोल।

वि० चिपटी नाकवाला।

चिपीटक—संज्ञा पुं० [सं०] चिपड़ा। चिपड़ा।

चिपुआ १—संज्ञा पुं० [देश०] चेरहया मनुष्य।

चिप्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक वन रोग जिसमें नाखून के नीचे मांस में जलन और पीड़ा होती है। कभी कभी नाखून एक भी जाता है।

चिप्युङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० चिपिट] (१) छोटा चिपटा टुकड़ा। उ०—इन्के ऊपर कामु का एक चिप्युङ्ग लगा दो। (२) सूखी लकड़ी आदि के ऊपर की छूटी हुई छाल का टुकड़ा। पपड़ी। (३) किसी वस्तु के ऊपर से छील कर निकाला हुआ टुकड़ा।

चिप्यिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गृहसंहिता के अनुसार एक रात्रिचर जंतु। (२) एक चिड़िया का नाम। उ०—बाँसा, धरे, लक्ष्मी सिंघान। धूरी चिप्यिका चटक भान।—सूर।

चिप्यो—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपड़] (१) छोटा चिपड़। (२) उपली। गोहँटी। (३) यह बटला जिससे सीधा तौला जाता है। (४) सीधा। जिस। (साधु)

चिचिह्ला १—वि० दे० "चिलचिला"।

चिचुक—संज्ञा पुं० [सं०] डुब्डी। डोढ़ी।

चिमगादड़ १—संज्ञा पुं० दे० "चिमगादड़"।

चिमटना—क्रि० अ० [हिं० चिपटना] (१) चिपकना। सटना। लस जाना। (२) लिपटना। प्रगाढ़ आलिंगन करना। उ०—बहूँ अपने भाई को देखते ही उससे चिमट कर रोने लगा। (३) हाथ पैर आदि सब रंगों को लगा कर दृढ़ता से पकड़ना। कई स्थानों पर कम कर पकड़ना। गुथना। जैसे, चींटी का चिमटना। उ०—रोर दो देखते ही बहूँ एक पेड़ की ढाल से चिमट गया। (४) पीछे पड़ जाना। पीछा न छोड़ना। पिंद न छोड़ना।

चिमटवाना—क्रि० सं० [हिं० चिमटना का प्रे०] दूसरे से चिमटाने का काम कराना।

चिमटा—संज्ञा पुं० [हिं० चिमटना] [ग्री० अण० चिमटो] लोहे पीतल आदि की दो लंबी और लचीली फट्टियों का बना हुआ एक औजार जिससे उस स्थान पर की वस्तुओं को पकड़ कर उठाते हैं जहाँ हाथ नहीं ले जा सकते। दल्पनाह।

चिमटाना—क्रि० सं० [हिं० चिमटना] (१) चिपकाना। सटाना। लसना। (२) लिपटाना। आलिंगन करना।

चिमटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिमटा] (१) छोटा चिमटा। (२) सुनारों का एक औजार जिससे तार आदि मोड़ने और महीन रवे उठाने का काम किया जाता है। और भी कई पेशेवाले इस नाम के औजार का प्रयोग करते हैं। इसे चिमोटी वा चिकोटी भी कहते हैं।

चिमड़ा—वि० दे० "चिमड़"।

चिमनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ऊपर उठी हुई शीशे की वह नली जिससे लंप का धुआँ बाहर निकलता और प्रकाश फैलता है। (२) किसी मकान के ऊपर का वह छेद जिससे धुआँ बाहर निकलता है।

चिमनी—चिमनी कई प्रकार की बनाई जाती है। रहने के मकानों में जो चिमनी धनती है वह बहुत ऊपर उठी हुई नहीं होती। पर कल कारखानों (जैसे, पुतलीघर) में जो चिमनियाँ होती हैं वे बहुत ऊँची उड़ाई जाती हैं जिसमें धुआँ बहुत ऊपर जाकर आकाश में फैल जाय।

चिमोटा—संज्ञा पुं० दे० "चिमोटा"।

चिमोटी—संज्ञा स्त्री० दे० "चिमटी"।

चिरजीव—वि० [सं०] चिरजीवी।

चिमोटा—एक शब्द से दीर्घांतु होने का शारीरवादि दिया जाता है। यह शब्द पुत्र वाचक भी है। जैसे, आपके चिरजीव ने ऐसा कहा है।

चिरंजीवी—वि० दे० "चिरजीवी"।

चिरंटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सयानी लड़की जो पिता के घर रहे। (२) युवती।

चिरंतन—वि० [सं०] पुरातन। पुराना। बहुत दिनों का।

चिरंत, चिरंतन—संज्ञा पुं० [सं०] चील।

चिर—वि० [सं०] बहुत दिनों का। दीर्घकालवर्ती। जैसे, चिरकाल, चिरायु। उ०—हेपुण्डु सैतत पिणहि पिपारी। चिर अहियाव असीस हमारी।—तुलसी।

क्रि० वि० बहुत दिन। अधिक समय तक। दीर्घ काल तक। जैसे, चिरस्थायी। चिरजीवी। उ०—चिरजीवहु सुत वारि चक्रवर्ति दरस्थ के।—तुलसी।

धा—चिरायु । चिरकाल । चिरकारी । चिरक्रिय । चिरनाम । चिरजीवी ।

संज्ञा पुं० तीन माथाओं का गण जिसका प्रथम वर्षे लघु हो ।

चिरद्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० चदक] चिद्विषया । पत्नी ।

चिरकदाईस—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरकना + बीसना] (१) एक न एक रोग का निरन्तर बना रहना । कभी कुछ रोग कभी कुछ । सदा बनी रहनेवाली अवस्था । (२) निरन्तर का अणु । राग ।

चिरकना—क्रि० प्र० [चतु०] थोड़ा थोड़ा मस निकालना । थोड़ा थोड़ा हगना ।

चिरकारी—वि० [सं० चिरकारिण्] [श्री० चिरकारिकी] काम में देर लगानेवाला । दीर्घसूत्री ।

चिरकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घकाल । बहुत समय । जैसे, चिरकाल से यह प्रथा चली आई है ।

चिरकीन—वि० [का०] मैला । गंदा । (लघु०)

चिरकुट—संज्ञा पुं० [सं० चैर + कुट = कटना] फटा पुराना कपड़ा । चिपड़ा । गूदड़ । उ०—काबूकु कंधा चिरकुट लावा । परिहृरु राते दगल सुखावा ।—जायसी ।

चिरक्रिय—वि० [सं०] काम में देर लगानेवाला । दीर्घसूत्री ।

चिरक्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीर्घसूत्रता ।

चिरचिटा—संज्ञा पुं० [देव०] (१) चिपड़ा । अपामार्ग । (२) एक ऊँची घास जो भारे के पीछे के आकार की होती है । इसे चौपाएँ खाते हैं ।

चिरचिराग—वि० दे० "चिरचिड़ा" ।

संज्ञा पुं० दे० "चिपड़ा" ।

चिरजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] जीवक नाम का वृक्ष ।

चिरजीवी—वि० [सं०] (१) बहुत दिनों तक जीनेवाला । दीर्घजीवी । (२) सध दिन जीवित रहनेवाला । लमर । संज्ञा पुं० (१) विष्णु । (२) कौशा । (३) जीवक वृक्ष । (४) सेमर का पेड़ । (५) मार्कंडेय ऋषि । (६) ब्रह्मधामा, बलि, प्याय, हनुमान, विभीषण, हृष्याचार्य और परशुराम जो चिरजीवी माने गए हैं ।

चिरतिक—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता ।

चिरल—वि० [सं०] पुराना । पुराना ।

चिरना—क्रि० प्र० [सं० चैर, हिं० चैरना] (१) कटना । सीध में कटना । जैसे, कपड़ा चिरना, लकड़ी चिरना । (२) लकीर के रूप में घाँव होना । सीधा घट होना । उ०—फटो मत टूथो डैगली चिर जायसी ।

संज्ञा पुं० (१) चीरने का औज़ार । (२) सेनाओं का एक औज़ार जिससे वे चाँदी के तार चीरते हैं । (३) कुम्हारों का वह धारदार बोझा जिससे वे गतिवा चीरते हैं । (४) कसेरों

का एक औज़ार जिससे वे धाली के बीच में हम्पा या मोल लकीर बनाते हैं ।

चिरपाकी—संज्ञा पुं० [सं०] दैव । कथिय ।

चिरपुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत । मौलसिरी ।

चिरवत्ती—वि० [हिं० चिरना + वत्ती] चिपड़ा चिपड़ा । टुकड़ा टुकड़ा । पुरना पुरना ।

मुहा०—चिरवत्ती कर डालना = चिपड़े चिपड़े कर डालना ।

फाड़ कर टुकड़े टुकड़े करना (कागज़, कपड़ा आदि) ।

चिरविलम्ब—संज्ञा पुं० [सं०] बरंज वृक्ष । कंठा ।

चिरमिटो—संज्ञा स्त्री० [देव०] गुंजा । सुँघुची ।

चिरवल—संज्ञा पुं० [सं० चिरविलेन वा चिरवली ?] एक पौधा जो बंगाल और बड़ोसा से लेकर मद्रास और सिन्ध तक होता है । यह पौधा छः महीने तक रहता है । इसकी जड़ की छाल से एक प्रकार का सुँदर लाल रंग निकलता है जिससे मज्जलीपटन, नेलेर आदि स्थानों में कपड़े रंगे जाते हैं । इन स्थानों में इस पौधे की खेती होती है । शमाड़ में इसके बीज बोए जाते हैं । इस पौधे को सुरजुली भी कहते हैं ।

चिरवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरकना] (१) चिराने का भाव वा कार्य । (२) चिराने की मजूदरी । (३) पानी धरने पर खेतों की पहली जोताई ।

चिरघाना—क्रि० प्र० [हिं० चरना का प्रे०] चीरने का काम कराना । फड़याना ।

चिरवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंडू का वृक्ष ।

चिरव्यायो—वि० [सं० चिरवयिन्] बहुत दिनों तक रहनेवाला ।

चिरस्मरणीय—वि० [सं०] (१) बहुत दिनों तक स्मरण रखने योग्य । (२) पूजनीय । प्रशंसनीय ।

चिरहँटा—संज्ञा पुं० [हिं० चिरा + हटा] चिड़ीमार । धड़ेलिया । व्याघ । उ०—कतहुँ चिरहँटा परंती लावा । कतहुँ पलेपी काठ नचावा ।—जायसी ।

चिरादा—वि० [चतु० चिर चिर = एकदो आदि के प्रश्न का शब्द] विद्विच्छा । थोड़ी थोड़ी बात पर विगड़नेवाला ।

चिरादता—संज्ञा पुं० दे० "चिरायता" ।

चिरादना—संज्ञा स्त्री० दे० "चिरादय" ।

चिराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चैरना] (१) चीरने का भाव वा क्रिया । (२) चीरने की मजूदरी ।

चिराकी—संज्ञा पुं० दे० "चिराग" । उ०—सोहत चंद्र चिराक बीजना करत दर्शन दिमि ।—जयसिंद ।

चिराग—संज्ञा पुं० [का० चरग] दैवक । दीक्षा ।

क्रि० प्र०—गुल करना ।—जलना ।—जलाना ।—हुंमना ।—हुंमना ।

मुद्गा०—चिराग का हँसना = चिराग से फूल मड़ना । चिराग को हाथ देना = चिराग बुझाना । चिराग गुल पकड़ी गायब = मौका मिलते ही धन का उड़ा लिया जाना । चिराग गुल करना = (१) दीया बुझाना । (२) किसी के वंश का विनाश करना । (३) रैनक मिटना । चिराग गुल होना = (१) दीप का बुझ जाना । (२) रैनक मिटना । उदासी छाना । (३) किसी के वंश का विनाश होना । चिराग जले = थँधरा होने पर । संघा समथ । चिराग डंडा करना = चिराग बुझाना । चिराग तले थँधरा होना = (१) किसी ऐसे स्थान पर बुराई होना जहाँ उसके रोकने का प्रबंध हो । जैसे, हाकिम के सामने ब्रह्माचार होना, पुलिस के सामने चोरी होना, किसी बदार घनी के किसी संबंधी का भूखें मरना, इत्यादि, इत्यादि । (२) किसी ऐसे मनुष्य द्वारा कोई बुराई होना जिसे उसकी संभावना न हो । जैसे, किसी विद्वान् द्वारा कोई कुकर्म होना, इत्यादि । चिराग दिखाना = रोशनी दिखाना । सामने उजाला करना । चिराग बुझाना = चिराग बुझाना । चिराग बत्ती करना = दीया जलाना । दीया जलाने की तैयारी करना । चिराग बत्ती का बत्तक = संघा का समय । चिराग ले कर हँडना = बड़ी छान धीन के साथ ढूँढना । चारों ओर हँसाने से कर ढूँढना । चिराग से चिराग जलना = एक को दूसरे से लाभ पहुँचना । परस्पर लाभ पहुँचना । चिराग से फूल मड़ना = चिराग की जड़ती हुई बनी में गोख गोख कुचड़े निकलना वा गिरना । चिराग से गुन्न मड़ना ।

चिरागदान—संज्ञा पुं० [अ०] दीपक । फतीलसोान् । शमादान ।
चिरागी—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) चिराग जलाने का लुच्चा । किसी स्थान पर दीयापत्ती करते रहने का लुच्चा या मजदूरी । (२) उपचारियों के ऋद्धे पर चिराग जलानेवालों का मजदूरी जो बहुधा दृष्टि जीतनेवाला खिलाड़ी प्रत्येक दृष्टि जीतने पर देता है । (३) वह भेंट जो किसी मजदूर पर चढ़ाई जाती है ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—देना ।

चिराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद पुनर्नवा । (२) चिरायत ।

चिरातन—वि० [सं० विरतन] (१) पुरातन । पुराना । (२) जीर्ण ।
 उ०—हम तो सबही ते' जोग लियो । पहिरि मेखला चिर चिरातन पुनि पुनि फेरि सिप्राए ।—सूर ।

चिराद—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ ।

चिराद—संज्ञा पुं० [सं० चिराद] बत्तक की जाति की एक प्रकार की बड़ी बिड़िया जिसका मांस स्वादिष्ट होता है ।

चिराना—क्रि० सं० [हिं० चिराना] चीरने का काम करना । फड़वाना । जैसे, फोड़ा चिराना, लकड़ी चिराना ।

चि० [सं० चिरतन] (१) पुराना । पुरातन । उ०—भरेंड से मानस सुपल चिराना । सुखद मीठ रपि चाए चिराना ।—कुसुम । (२) जीर्ण ।

पौ०—पुराना चिराना ।

चिरायँध—संज्ञा पुं० [सं० चर्म + यँध] यह दुर्गंध जो चरबी, चमड़े, बाल, मांस आदि जीवों के शरीरों के शरीरों के जलने से फैलती है ।

क्रि० प्र०—उड़ना ।—उठना ।—फैलना ।—निकलना ।

मुद्गा—चिरायँध फैलाना = यदनामी फैलाना ।

चिरायता—संज्ञा पुं० [सं० चिरातिक वा चिरान्] दो ढाई हाथ लंबा एक पौधा जो हिमालय के किनारे कम ऊँचे स्थानों में काश्मीर से भूटान तक होता है । एशिया की पहाड़ियों पर भी यह पौधा मिलता है । इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और तुलसी की पत्तियों के बराबर होती हैं । जाड़े के दिनों में इसमें फूल लगते हैं । सूखा पौधा (जड़, डंडल, फूल सब) औषध के काम में आता है । फूल लगने के समय पौधा बड़ाया जाता है और दवा कर बाहर भेजा जाता है । नेपाल के मोरंग नामक स्थान से चिरायता बहुत आता है । चिरायते का सर्वोत्तम कटुघ्रा होता है, इसी से यह ज्वर में बहुत दिया जाता है । वैद्यक में यह दस्तावर, शितल तथा ज्वर, कफ, पित्त, सूजन, सन्निरात, जुकली, कोष्ठ आदि को दूर करनेवाला माना जाता है । रक्त-शोधक औषधियों में इसकी गणना है । डाकूरी में भी इसका व्यवहार होता है । चिरायते की बहुतसी जातियाँ होती हैं । एक प्रकार का छोटा चिरायता दक्षिण में बहुत होता है । एक चिरायता कलपनाय के नाम से प्रसिद्ध है जो सबसे अधिक कटुघ्रा होता है । गीमा नाम का एक पौधा भी चिरायते ही की जाति का है जो सारे भारत में जलवायवों के किनारे होता है । दक्षिण देश के वेप और हफूम हिमालय के चिरायते की अनेक शिला-रस वा शिलाजीत नाम का चिरायता अधिक काम में लाते हैं जो मद्रास प्रांत के कई स्थानों में होता है ।

पय्यां—भूनिच । अनापतिक । ईरात । कांडतितक । किरातक । किराततिक । चिरतिक । रामसेनक । सुतिकक । चिराटिका । कटुतिकक ।

चिरायु—वि० [सं० चिरायु] बड़े उम्रवाला । बहुत दिनों तक जीनेवाला । दीर्घायु ।
 संज्ञा पुं० देवता ।

चिरारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चार] चिरौंजी । उ०—पारिक दाख शरु गरी चिरारी । पीड़ बधाम खेत बनवारी ।—सूर ।

चिराय—संज्ञा पुं० [हिं० चिराना] (१) चीरने का भाव वा क्रिया । (२) घाव जो चीरने से हो ।

चिरि—टिका, चिरि'टी—संज्ञा स्त्री० दे० "चिरंटी" ।

चिरिया—संज्ञा स्त्री० दे० "चिड़िया" ।

चिरि—संज्ञा स्त्री० दे० "चिड़िया" ।

चित्र-संज्ञा पुं० [सं०] कंचे और बाँह का जोड़ । मोटा ।

चित्रिना-संज्ञा पुं० दे० "चित्रापता" ।

चित्रिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० विष्टिया] (१) दे० "चिष्टिया" । (२) पर्याय का पुण्य नक्षत्र । (३) परिवहक का सिरा जिससे जोतेवाला पकड़ता है ।

चित्रिजी-संज्ञा स्त्री० [सं० चार + जीव] विचार वा विचार्य वृत्त के चर्चों के बीज की गिरी । अथवा के बीज की गिरी जो खाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है और मेवों में सम्मकी जाती है । यह किशामिश, पादाम आदि के साथ पकवानों और मिठाइयों में भी पड़ती है ।

विशेष—दे० "विचार" ।

चिर्मटो-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी ।

चिर्री-संज्ञा स्त्री० [सं० चिरिका = एक शस्त्र का नाम] विजती । पत्र ।

क्रि० प्र०—गिरना ।—पड़ना ।

चिलक-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलकना] (१) धागा । कर्ति । धुति । चमक । झलक । उ०—(क) कड़े रघुनाथ वाके मूल की सुचाई धागे चिलक जुन्दाइन की चंद्र सरसोना है ।—रघुनाथ । (ख) जय वाके रद की चिलक चमचमाति चहुँ केंति । मंद होति धुति चंद्र की चपति चंचला जोति ।—शृंगार सत० । (ग) चिलक तिहारि चाडि के रूषो तिलक लगै न ।—शृंगार सत० । (२) रद रद कर उठेचाला दद । टिस । चमक । (३) एक धारणी बठ कर बंद हो जानेवाला दद । उ०—उठते पंडते कमर में चिलक होती है ।

क्रि० प्र०—उठना ।—होना ।

चिलकना-क्रि० प्र० [हिं० चिलक = चिलकी, या धनु०] (१) रद रद कर चमकना । चमचमाना । झलकना । (२) दद का रद रद कर उठना । (३) एक धारणी पीड़ा होकर बंद हो जाना । चमकना ।

क्रि० प्र०—उठना ।—होना ।

चिलका-संज्ञा पुं० [हिं० चिलक] चमकता हुआ चाँदी का सिका । रुपया ।

चिलकाना-क्रि० स० [हिं० चिलक] (१) चमकाना । झलकाना । (२) किसी वस्तु को इतना मारना कि वह चमकने लगे । उज्यल करना ।

चिलमोझा-संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक प्रकार का मेवा । चीन्हा या हनेपर का फल ।

विशेष—दे० "चीन्हा" ।

चिलचिल-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलकना] अथक । अथक । भौंड़ ।

चिलड़ा-संज्ञा पुं० [दे०] उलटा नाम का पकवान ।

चिलता-संज्ञा पुं० [फ्रा० चिलतः] एक प्रकार का गिरहबकर । एक प्रकार का कवच ।

चिलविल-संज्ञा पुं० [सं० चिलविल] (१) एक बड़ा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और खेती के शौगर बनाने के काम में आती है । इसकी पत्तियाँ जामुन की पत्तियों की सी होती हैं । (२) एक बड़ा पौधा जिसकी पत्तियाँ हमली की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और पेड़ी बाल आदि बहुत हलकी और हरे रंग की होती हैं । यह बरसात में उगता है और चार पाँच हाफ तक ऊँचा होता है । यह पौधा तालों में भी होता है जहाँ उसके पानी के भीत का भाग फूल कर खूब मोटा हो जाता है । इस भाग को खुबड़ी कहते हैं जिससे माली व्याह के मार, काबर, तोरख आदि बनाते हैं ।

चिलविला, चिलविल्ला-वि० [सं० चज + वल] [स्त्री० चिलवली] चंचल । चपल । शोष । नटवट । उ०—यह बड़ा चिलविला लड़का है ।

चिलम-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] कोरी के आकार का मिठी का एक बरतन जिसका निचला भाग चौड़ी नली के रूप में होता है । इस पर तमाहूँ और आग रख कर तमाहूँ पीते हैं । साधारणतः चिलम को हुक्के की नली के ऊपर चैत्र कर तमाहूँ पीते हैं । पर कभी कभी चिलम की नली को हाथ में लेकर भी पीते हैं । तमाहूँ के अतिरिक्त गाँजा, चरस आदि भी चिलम पर रख कर पीए जाते हैं ।

धौ०—चिलमचट । चिलम-बदर ।

मुहा०—चिलम पीना = चिलम पर रखे हुए तमाहूँ का धुआँ पीना । चिलम चढ़ाना = (१) चिलम पर तमाहूँ (गाँजा आदि) और आग रख कर उसे पीने के लिये तैयार करना । (२) गुत्तामी करना । चिलम भरना = दे० "चिलम चढ़ाना" ।

चिलमगर्दो-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] हुक्के में हाथ भर की या उसके अधिक लंबी बाँस की नली जो पूज और जामिन से मिलती होती है । इस पर चिलम रखी जाती है । (तैचापंद)

चिलमचट-वि० [फ्रा० चिलम + हिं० चटना] (१) बहुत अधिक चिलम पीनेवाला । वह जो चिलम पीने का बहुत व्यस्तनी हो । (२) इस प्रकार खींच कर चिलम पीनेवाला कि वह चिलम दूसरे के पीने योग्य न रहे ।

चिलमची-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] देग के आकार का एक बरतन जिसके किनारे चारों ओर पाजी की तरह दूर तक फैले होते हैं । इसमें लोग हाथ धोते और कुली आदि करते हैं ।

धौ०—चिलमची बदर = हाथ मुँह धुतनेवाले नौकर ।

चिलमन-संज्ञा पुं० [फ्रा०] बसि की पट्टियों का परदा । चिक । क्रि० प्र०—डाखना ।—धोना ।—कटकाना ।

मुहा०—चिराग का हँसना = चिराग से फूट झड़ना । चिराग को हाथ देना = चिराग बुझाना । चिराग गुल पानी गायब = मौका मिलते ही धन का उड़ा लिया जाना । चिराग गुल करना = (१) दीन्ना बुझाना । (२) किसी के वंश का विनाश करना । (३) रैनक मिटाना । चिराग गुल होना = (१) दीप का बुझ जाना । (२) रैनक मिटना । उदासी छाना । (३) किसी के वंश का विनाश होना । चिराग जले = श्रेयश होने पर । संघा समय । चिराग डंडा करना = चिराग बुझाना । चिराग तले छौंघेरा होना = (१) किसी ऐसे स्थान पर बुराई होना जहाँ उसके रोकने का प्रबंध है । जैसे, हाकिम के सामने शलाकाचार होना, पुलिस के सामने चोरी होना, किसी उदार धनी के किसी संपर्की का सूतों मरना, इत्यादि, इत्यादि । (२) किसी ऐसे मनुष्य द्वारा कोई बुराई होना जिससे उसकी संभावना न है । जैसे, किसी विद्वान् द्वारा कोई कुकर्म होना, इत्यादि । चिराग दिखाना = रोयती दिखाना । सामने बजल्ला करना । चिराग बड़ाना = चिराग बुझाना । चिराग बत्ती करना = दीन्ना जलाना । दीन्ना जलाने की तैयारी करना । चिराग घसी का यक्त = संघा का समय । चिराग खे कर हँडना = बड़ी छान घीन के साथ झूठना । चारों ओर हँडाना हो कर झूठना । चिराग से चिराग जलना = एक के द्वारे से लाभ पहुँचना । परस्पर लाभ पहुँचना । चिराग से फूल झड़ना = चिराग की जलती हुई वनी में गीत गोल फुवड़े निकलना या गिना । चिराग से गुप्त झड़ना ।

चिरागदान—संज्ञा पु० [च०] दीपद । फतीलसोज । रामादान ।
चिरागी—संज्ञा स्त्री० [च०] (१) चिराग जलाने का लुच । किसी स्थान पर दीश्रापत्ती करते रहने का लुच या मजदूरी । (२) बुवारियों के श्रद्धे पर चिराग जलानेवालों की मजदूरी जो बहुधा दाँव जीतनेवाला खिलाड़ी प्रत्येक दाँव जीतने पर देता है । (३) यह भेंट जो किसी मजूर पर चढ़ाई जाती है ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—देना ।

चिराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद पुर्नवा । (२) चिरायता ।

चिरातन—वि० [सं० चिरतन] (१) पुरातन । पुराना । (२) जीव्य ।
उ०—हम तो तयदी तें जोग लियो । पहिरि मेलला चीर चिरातन पुनि पुनि फेरि सिभाए ।—सूर ।

चिराद—संज्ञा पु० [सं०] गहड़ ।

चिराद—संज्ञा पु० [सं० चिराद] वक्त्र की जाति की एक प्रकार की बड़ी बिड़िया जिसका मांस स्वादिष्ट होता है ।

चिराना—क्रि० सं० [हिं० चराना] चोरने का काम करना । फड़-धाना । जैसे, फोड़ा चिराना, लकड़ी चिराना ।

वि० [सं० चिरतन] (१) पुराना । पुरातन । उ०—भरंत से मानस सुखल चिराना । मुखद सीत रुचि चाए चिराना ।—
दुखसी । (२) जीव्य ।

घौ०—पुराना चिराना ।

चिरायँध—संज्ञा पु० [सं० चयं + यंध] यह दुर्योध जो पत्नी, चमड़े, याल, मांस आदि जीवों के श्रंगों के श्रंगों के जतने से फैलती है ।

क्रि० प्र०—उड़ना ।—उठना ।—फैलना ।—निकलना ।

मुहा०—चिरायँध फैलना = बदनामी फैलना ।

चिरायता—संज्ञा पु० [सं० चिरायत वा चिराण] दो दाईं हाथ जैना एक पौधा जो हिमालय के किनारे कम ऊँचे स्थानों में कार्सीर से भूदान तक होता है । खसिया की पहाड़ियों पर भी यह पौधा मिलता है । इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और तुलसी की पत्तियों के बराबर होती हैं । जाड़े के दिनों में इसमें फूल लगते हैं । सूखा पौधा (जड़, डंडल, फूल सब) औषध के काम में आता है । फूल लगने के समय पौधा बड़ाजा जाता है और दवा कर धाढ़र भेजा जाता है । नेपाल के मोरंग नामक स्थान से चिरायता बहुत आता है । चिरायते का सर्वोत्तम कडुआ होता है, इसी से यह उषर में बहुत दिया जाता है । वैद्यक में यह दस्तावर, शीतल तथा उषर, कफ, पित्त, सूजन, सखियात, खुबुनी, कोष्ठ आदि को दूर करनेवाला माना जाता है । रक्त-शोधक औषधियों में इसकी गणना है । झाकुरी में भी इसका व्यवहार होता है । चिरायते की यहूतसी जातियाँ होती हैं । एक प्रकार का छोटा चिरायता दक्षिण में बहुत होता है । एक चिरायता कलपनाय के नाम से प्रसिद्ध है जो सबसे रुचिक कडुआ होता है । गीना नाम का एक पौधा भी चिरायते ही की जाति का है जो सारे भारत में जलवायवों के किनारे होता है । दक्षिण देश के वैद्य और इकीम हिमालय के चिरायते की शपेका शिला-रस वा शिलाजीत नाम का चिरायता शपिक काम में लाते हैं जो मदरास प्रांत के कई स्थानों में होता है ।

पंथा०—शुनिव । अनायतिक । कैरात । कांडतिकक । किरा-तक । किराततिक । चिरतिक । रामसेनक । सुतिकक । चिराटिका । फटुतिकक ।

चिरायु—वि० [सं० चिरायुस्] बड़ी उम्रवाला । बहुत दिनों तक जीनेवाला । दीर्घायु ।

संज्ञा पु० देवता ।

चिरारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चार] चिरौंजी । उ०—पारिक दाए श्रव गरी चिरारी । पीढ़ बढाम लेत बनवारी ।—सूर ।

चिराव—संज्ञा पु० [हिं० चिराना] (१) चीरने का भाव वा क्रिया । (२) घाव जो चीरने से हो ।

चिरिटिका, **चिरिटी**—संज्ञा स्त्री० दे० "चिरिटी" ।

चिरियाँ—संज्ञा स्त्री० दे० "चिड़िया" ।

चिरी—संज्ञा स्त्री० दे० "चिड़िया" ।

चिह्न-संज्ञा पुं० [सं०] कंचे और बाँह का जोड़। मोड़ा।

चिरंता-संज्ञा पुं० दे० "चिरामता"।

चिरिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिश्तिया] (१) दे० "चिश्तिया"। (२) वर्षा का मुख्य नक्षत्र। (३) परिहृत का सिरा जिसे जोतनेवाला पकड़ता है।

चिरौजी-संज्ञा स्त्री० [सं० चार + जीव] पियार वा पियाल वृक्ष के फलों के बीज की गिरी। अचार के बीज की गिरी जो खाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है और मेवों में समकी जाती है। यह क्रियासिद्ध, श्याम भादि के साथ पकवानों और मिठाइयों में भी पड़ती है।

चिरीय-दे० "पियार"।

चिर्भट्टी-संज्ञा स्त्री० [सं०] फकड़ी।

चिर्री-संज्ञा स्त्री० [सं० चिरिञ्जा = एक वृक्ष का नाम] दिवङ्गी। यम।

क्रि० प्र०-गिरना।-गना।

चिलक-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलकना] (१) धाभा। कति। पुति। चमक। मलक। उ०—(क) कदू, रघुनाथ धाके मुल की सुनाई आगे चिलक सुन्दाइन की चंद सरसना है।—रघुनाथ। (ख) जब धाके रद की चिलक चमचमती चहुँ केंति। मंद होति हुति चंद की चपति चंचला जोति।—४२ गार सत०। (ग) चिलक तिगारी चादि के सूषा निलक सरी न।—४२ गार सत०। (२) रद रद कर उठनेवाला दूँ। टीस। चमक। (३) एक चारगी उठ कर बंद हो जानेवाला दूँ। उ०—उठते बँदते कम में चिलक होती है।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिलकना-क्रि० थ० [हिं० चिलकी = दिवङ्गी, वा अनु०] (१) रद रद कर चमकना। चमचमाना। मलकना। (२) दूँ का रद रद कर उठना। (३) एक चारगी पीड़ा होकर बंद हो जाना। चमकना।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिलका-संज्ञा पुं० [हिं० चिलक] चमकता हुआ चाँदी का मिश्र। हथवा।

चिलकाना-क्रि० सं० [हिं० चिलक] (१) चमकाना। मलकना। (२) किमी वस्तु को इतना मॉजना कि वह चमकने लगे। उद्वलन करना।

चिलगोत्रा-संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक प्रकार का मेवा। चीड़ वा सनेपर का फल।

चिरीय-दे० "चीड़"।

चिलचिल-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलकना] अग्रक। अघरक। मोहक।

चिलह-संज्ञा पुं० [देग०] बलदा नाम का पकवान।

चिलता-संज्ञा पुं० [फ्रा० चिलक] एक प्रकार का निरहकतर। एक प्रकार का कवच।

चिलविल-संज्ञा पुं० [सं० चिलविव] (१) एक बड़ा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और खेती के बीमार बनाने के काम में आती है। इसकी पत्तियाँ आम्रुन की पत्तियों की सी होती हैं। (२) एक बड़ा पौधा जिसकी पत्तियाँ हमली की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और पेड़ी ढाल आदि बहुत हलकी और हरे रंग की होती हैं। यह परसत में बगता है और चार पाँच हाथ तक ऊँचा होता है। यह पौधा तालों में भी होता है जहाँ उसके पानी के भीतर का भाग फूल कर खूब मोटा हो जाता है। इस भाग को खुचड़ी कहते हैं जिससे मावी घ्याह के मौर, भाकर, तोरण आदि बनाते हैं।

चिलविला, चिलविल्ला-वि० [सं० चिल + विल] [स्त्री० चिलविल्ली] चंचल। चपल। रोला। नटखट। उ०—यह बड़ा चिलविला लड़का है।

चिलम-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] कठोरी के धाकार का मिट्टी का एक बरतन जिसका निचला भाग चौड़ी नली के रूप में होता है। इस पर तमाहूँ और आग रख कर तमाहूँ पीते हैं। साधारणतः चिलम को हुक्के की नली के ऊपर बैठा कर तमाहूँ पीते हैं। पर कभी कभी चिलम की नली को हाथ में लेकर भी पीते हैं। तमाहूँ के शक्तिरिक्त गाँजा, चरस आदि भी चिलम पर रख कर पीए जाते हैं।

धौ०—चिलमचट। चिलम-बरदार।

मुहा०—चिलम पीना = चिलम पर रखे हुए तमाहूँ का धुआँ पीना। चिलम चढ़ाना = (१) चिलम पर तमाहूँ (गाँजा आदि) और आग रख कर उठे पीने के लिये तैयार करना। (२) सुलामी करना। चिलम भरना = दे० "चिलम चढ़ाना"।

चिलमगर्दा-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] हुक्के में हाथ भर की या उससे अधिक लंबी बॉस की नली जो चूल और जामिन से मिली होती है। इस पर चिलम रखी जाती है। (मैचबंद)

चिलमचट-वि० [फ्रा० चिलम + हिं० चटना] (१) बहुत अधिक चिलम पीनेवाला। यह जो चिलम पीने का बहुत स्पसनी हो। (२) इस प्रकार खींच कर चिलम पीनेवाला कि वह चिलम दूसरे के पीने योग्य न रहे।

चिलमवी-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] देग के धाकार का एक बरतन जिसके किनारे चारों ओर थाकी की तरह दूर तक फैले होते हैं। इसमें लोग हाथ पीते और कुड़ी आदि करते हैं।

धौ०—चिलमची बरदार = हाथ में हूँ धुनानेवाले नौकर।

चिलमन-संज्ञा पुं० [फ्रा०] बॉस की कटियों का परदा। चिक।

क्रि० प्र०—डाहना।—धंधना।—बटकाना।

चिलमपोश—संज्ञा पुं० [फ्रा०] धातु का एक कर्मकारीदार इकल जिससे चिलम टक देने से चिनगारी नहीं उड़ती ।

चिलम-भरदार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] हुकवा पिलानेवाला विदमत-गार ।

चिलमीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उगनु । पद्योत । (२) विजजी । (३) एक प्रकार की कंठी ।

चिलघाँस—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पंदा जिससे चिड़ियाँ फँसाई जाती हैं ।

चिलसा—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का तमाहू जो काश्मीर में होता है । श्रीनगर के श्रासपास यह बहुत होता है । यह श्रमल में बोया जाता है ।

चिलहुल—संज्ञा पुं० [सं० चिल] एक प्रकार की छोटी मछली जो 'देव' वास्तित के लगभग होती है । यह सिंध, पंजाब, युफ प्रांत और बंगाल की नदियों में पाई जाती है ।

चिलिम १—संज्ञा स्त्री० दे० 'चिलम' ।

चिलमिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गले में पहनने की एक प्रकार की माला । (२) उगनु । (३) विजजी ।

चिलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल] चिलहुल मछली ।

चिलुग्रा—संज्ञा स्त्री० दे० 'बेहदहा' ।

चिलुङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० चिल = बल] जू की तरह का एक बहुत छोटा सफेद रंग का कीड़ा जो मले कपड़ों में पड़ जाता है । इस कीड़े के काटने से शरीर में बड़ी खुजली होती और छोटे छोटे दागे से पड़ जाते हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—धीनता ।

चिल पौं—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलना + भू० पौं] चिलाना । शोर गुल । पुकार । दोहाई ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचाना ।

चिलभक्ष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल या नली नाम का गंध-द्रव्य ।

चिलघाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलना] यद्यो क यह चिलाना जो जमुवा के रोग में होता है ।

चिलवाना—क्रि० सं० [हिं० चिलना का प्रे०] चिलाने का काम दूसरे से कराना । चिलाने में प्रवृत्त करना ।

चिल्ला—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) चालीस दिन का समय ।

मुहा०—चिल्ले का जाड़ा = बहुत कड़ा सरदी ।

विशेष—धन के पंद्रह, मकर पचीस । जाड़ा जाने दिन चालीस । इन्होंने चालीस दिनों के जाड़े को चिल्ले का जाड़ा कहते हैं ।

(२) चालीस दिन का व्रत । चालीस दिन का बंधेज वा किसी पुण्य कार्य का नियम । (मुसल०)

क्रि० प्र०—धीनता ।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक जंगली पेड़ । (२) उदें, भूँग

वा रौंछे के मंदे की पंछी वा घी खुपड़ कर सेंकी हुई रोटी । चीला । उलटा । (३) धनुष की डोरी । पतंगिका ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—उतारना ।

संज्ञा पुं० [?] पगड़ी का छेर जिसमें फलायतनु का काम रहता है । तिहा ।

चिल्लाना—क्रि० श्र० [सं० चरकार] किसी प्राणी का जोर से पोलना । मुँह से ऊँचा स्वर निकालना । शोर करना । हला करना ।

संज्ञा० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

चिल्लाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलना] (१) चिलाने का भाव । (२) हला । शोर । गुल ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।

चिल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दोनोँ भौंहों के बीच का स्थान । (२) एक प्रकार का बधुग्रा सग जिसकी पचियाँ छोटी होती हैं ।

चिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] किल्लो नाम का कीड़ा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्लेका = एक श्वल का नाम] विजजी ।

यजू । चिरौं ।—उ०—(क) चकहू से, चिल्लिन से, प्रले की चिल्लिन से जमजुय चिल्लिन से जगत उजरो है ।—पद्माकर । (ख) चिल्लिन को चाचा और चिल्लिन को चाप बड़े शंकरो यथा है यद्ववानल भ्रजय को ।—पद्माकर ।

क्रि० प्र०—गिरना ।—पड़ना ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लोच । (२) बधुया सग ।

चिलहवाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चिल] एक खेल जिसे लड़के पेड़ों पर चढ़ कर खेलते हैं । गिलहर । गिलहर ।

चिलही १—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल] चील नाम की चिड़िया । उ०—चिकारी चहूँ और ते चाई चिलहीं ।—वृन्द ।

चिचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिचुक । ठोड़ी ।

चिचिट—संज्ञा पुं० [सं०] चिचड़ा । चिचड़ा ।

चिचुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठोड़ी । ठोड़ी । (२) मुचकुंड वृष ।

चिहुँकना*—क्रि० श्र० [सं० चमक, प्रा० चरंकि] चौंकना ।

चिहुँटना*—क्रि० सं० [सं० चिपेट, हिं० चपटना] (१) लुटकी काटना । लुटकी से शरीर का भाँस इस प्रकार पकड़ना जिसमें कुछ पीड़ा हो ।

मुहा०—चित्त चिहुँटना = चित्त में खेदना उतरन करना । मर्म सपाँ करना । चित्त में जुमना । उ०—लौ सुभकी निकसे धँसे विहँसे श्रंग दिलाय । तकि तकि चित्त चिहुँटे छरी पंइ भँसे शँगिराय ।—श्रृंगार सत ।

(२) चिपटना । लिपटना । उ०—भाल को लाल लई चिहुँटी रिस के मिस लाल सों बाल चिहुँटी ।—देव ।

चिह्नटनी—संज्ञा स्त्री० [दि०] गुंजा। घुँघची। चिरमिट्टी।
चिह्नटनी—संज्ञा स्त्री० [?] खुटकी। चिह्नेटी। ३०—
पाल का लाल खट्टे चिह्नट्टी रिस के मिस लाल से पाल
चिह्नट्टी।—देव।

चिहुर—संज्ञा पुं० [सं० चिहुर] सिर के बाल। केरा। ३०—छूटे
चिहुर बदन कुम्हिलाने ज्यों नखिनो दिमकर की मारी।
—सूर।

चिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चिह्नित] (१) वह लक्षण जिससे किसी
चीज की पहचान हो। निशान। (२) पताका। मंडी।
(३) किसी प्रकार का दाग या घटना।

चिह्नधारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वामा नाम की लता।
कालीसर।

चिह्नित—वि० [सं०] चिह्न किया हुआ। जिस पर चिह्न हो।

चीं, चीं-चीं—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) पक्षियों अथवा छोटे
बच्चों का बहुत महीन शब्द। (२) पक्षियों अथवा बच्चों का
महीन स्वर में बहुत बोलना या शोर करना।

मुहा०—चीं बोलना = अथेयता, अकर्मयता, या अर्थागत
स्वीकार करना। दर्शन देना।

धी०—चीं चपड़।

चीं चपड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द या कार्य जो किसी बड़े
या सबल के सामने प्रतिकार या विशेष के लिये किया
जाय। जैसे, अंगर जरा भी चीं चपड़ करीगे तो हाथ पैर
तोड़ कर रख दूँगा।

चीं टवा—संज्ञा पुं० दे० “चींटा” या “च्यूँटा”। ३०—राम
मरे तो हम मरें नातर मरें बलाय। अघिनारी का चीं टवा,
मरे न मारा जाय।—कबीर।

चीं टा—संज्ञा पुं० दे० “चिहँटा”।

चीं टी—संज्ञा स्त्री० दे० “चिहँटी”।

चीं ता गोला—संज्ञा पुं० दे० “चीं टा गोला”।

चीं घना—क्रि० सं० दे० “चीघना”।

चीक—संज्ञा स्त्री० [सं० चरकार] पीड़ा या कष्ट आदि के कारण
बहुत जोर से चिहाने का शब्द। चिहाहट।

क्रि० प्र०—मारना।

चिंसा पुं० [हिं० चिक] मांस बेचनेवाला। कसाई। सूजर।
विशेष—प्रायः सूजों की दूकानों पर साड़ के लिये चिकें
देगी रहती हैं; इसी से उन्हें चीक कहते हैं।

चिंसा पुं० दे० “कीच” या “कीचड़”।

चीकट—संज्ञा पुं० दे० [हिं० कीपड] (१) लेख का मूल। तलदट।
(२) मरिचक। छसार मिट्टी।

चिंसा पुं० [दे०] (१) चिह्न नाम का रंरामी कपड़ा।
† (२) वह कपड़े या जेवर आदि जो कोई अनुप्य अपने
भाँजे या भाँजी के विवाह में अपनी बदन को देता है।
वि० बहुत मँला या गड़ा।

चीकड़ा—संज्ञा पुं० दे० “कीचड़”।

चीकना—वि० दे० “चिकना”।

चीकना—क्रि० प्र० [सं० चरकार] (१) पीड़ा या कष्ट आदि के
कारण जोर से चिहाना।

संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

(२) बहुत जोर जोर से बोलना। बहुत ऊँचे स्वर से बात
करना।

चीकरा—संज्ञा पुं० [दे०] कुएँ के ऊपर बना हुआ वह स्थान
जिसमें मोटा या चरस आदि से निकाला हुआ पानी गिराया
जाता है और जहाँ से पानी नालियों द्वारा होकर खेतों में
पहुँचता है।

चीछ—संज्ञा स्त्री० दे० “चीक”।

चीछना—क्रि० सं० [सं० चपथ] किसी चीज को उसका स्वाद
जानने के लिये, थोड़ी मात्रा में पाना या पीना।

चीछना—क्रि० प्र० दे० “चीकना”।

चीखर, चीखली—संज्ञा पुं० [हिं० चकड (कंचड)] (१) कीच।
कीचड़। ३०—जल दाम्या चीखल जगा, विरहा लागी
शागि। तिनका बसुरा ऊपरा, गल पूरा के हागि।—कबीर।
(२) गारा। (हिं०)।

चीखुर—संज्ञा पुं० [हिं० चिखुर] गिलहरी।

चीज—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) वह जिसकी वास्तविक, कार्यात्मिक
अथवा संभावित परंतु दूसरों से प्रयुक्त सत्ता हो। सत्तात्मक
वस्तु। पदार्थ। वस्तु। द्रव्य। जैसे, (क) बहुत भूल लगी
है, कोई चीज (साथ पदार्थ) हो तो लायो। (ख) मेरे
पास खोदने के लिये कोई चीज (रसाई, दोहर या कोई
कपड़ा) नहीं है। (ग) उनकी सब चीजें (खोटा, घाली,
कपड़ा, किताबें आदि) हमारे यहाँ रखनी हुई हैं।

धी०—चीज वस्तु = सामान। अथवाय।

(२) आभूषण। गहना। ३०—(क) वह चीज रख कर
रुप लाए हैं। (ख) छड़की के हाथ पैर नगे हैं, इसे कोई
चीज बनवा दो।

धी०—चीज वस्तु = जेवर आदि।

(३) गाने की चीज। राग। गीत। ३०—(क) कोई अच्छी
चीज सुनाओ। (ख) उसने दो चीजें बहुत अच्छी सुनाई
थीं। (४) विलक्षण वस्तु। विलक्षण जीव। ३०—(क)
क्या कहें, मेरी बंगड़ी गिर गई, वह एक चीज थी। (ख)
शाप भी तो एक चीज है। (४) महत्त्व की वस्तु। गिनती
करने योग्य वस्तु। ३०—(क) कारी के आगे मधुरा क्या
चीज है। (ख) उनके सामने बै क्या चीज है।

चीटा—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकड (कंचड)] मूल। ३०—कीड़े काट

जु खादया, खाया किनहूँ दीठ। छोट उपाई देखिया, भीतर जमिया चीट।—कवीर।

चीटा—संज्ञा पुं० दे० “चिट्ठा”। उ०—नाम की लाज राम-करनाकर, केहि म दिये कर चीटे।—तुलसी।

चीटी—संज्ञा स्त्री० दे० “चिट्ठी”।

चीड़—संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का देशी लोहा। (२) जूते के लिये चमड़ा साफ करने की क्रिया। (मोचियों की परिभाषा)। (३) दे० “चीड़”।

चीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीड़ नाम का पेड़।

चीड़—संज्ञा पुं० [सं० चीड़ा वा चौर = चोड़] (१) एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जो भूदान से कारमीर और थफ़ानिस्तान तक बहुत अधिकता से होता है। इसके पत्ते सुंदर होते हैं और लकड़ी अंदर से नरम और चिकनी होती है जो प्रायः इमारत और सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। पानी पड़ने से यह लकड़ी बहुत जल्दी खराब हो जाती है। इस लकड़ी में तेल अधिक होता है इसलिये पहाड़ों लोग इसके टुकड़ों को जला कर उनसे मराल का काम लेते हैं। इसकी लकड़ी औषध के काम में भी आती है। इसके गोंद को गंधा-विरोधा कहते हैं। ताड़पीन (तेल) भी इसी वृक्ष से निकलता है। कुछ लोग चिलगोत्रा को इसीका फल मतलबते हैं पर चिलगोत्रा इसी जाति के दूसरे पेड़ का फल है। प्राचीन भारतीयों ने इसकी गणना गंधर्व्य में की है और वैद्यक में इसे गरम, फासनाशक, चरपरा और कफनाशक कहा है। इसके अधिक सेवन से पित्त और कफ का दूर होना भी कहा गया है। इसे चील या सरल भी कहते हैं। (२) चीड़ नाम का देशी लोहा।

चीत—संज्ञा पुं० [सं० चित्त] चित्त। मन। दिल।

संज्ञा पुं० [सं० चित्त] चित्रा नक्षत्र। उ०—तुदि देले पिय बहुहे कया। उतरा चीत बहुरि करि मया।—जायसी।

सज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

चीतकार—संज्ञा पुं० (१) दे० “चीलकार”। (२) दे० “चित्रकार”।

चीतना—क्रि० सं० [सं० चेत] [वि० चीत] (१) सोचना। विचारना। भावना करना। (२) चैतन्य होना। होश में आना। (३) स्मरण करना। याद करना।

क्रि० सं० [सं० चित्त] चित्रित करना। तस्वीर या बेल बूट्टे बनाना। उ०—द्वार छुहारत फिरत छोट सिधि। कोरेन लथिया चीतल नव निधि।—सूर।

चीतरा—संज्ञा पुं० दे० “चीतल”।

चीतल—संज्ञा पुं० [हि० चित्ती = कंबी धारी या दाग] (१) एक प्रकार का हिरन जिसके शरीर पर सफ़ेद रंग की चित्तियों या

बुंदकियाँ होती हैं। यह मनेले कद का होता है और सारे भारत में प्रायः जल के किनारे झुंडों में पाया जाता है। इसके अंगुल नहीं होती। इसकी मादा गर्भ धारण के छः महीने बाद बच्चा देती है। (२) अमर का जाति का पर उससे छोटा एक प्रकार का तौप जिसके शरीर पर छोटी छोटी सफ़ेद चित्तियाँ होती हैं। इसके आगे का भाग पतला और मजबूत का बहुत भारी होता है। यह खुरगोरा, बिल्ली या बकरे के छोटे बच्चों को मगल जाना है। (३) एक प्रकार का सिक्का।

चीता—संज्ञा पुं० [सं० चित्त] (१) बिल्ली की जाति का एक प्रकार का बहुत बड़ा हिंसक पशु जो प्रायः दक्षिणी एशिया और विशेषतः भारत के जंगलों में पाया जाता है। यह आकार में बाघ से छोटा होता है और इसकी गर्दन पर अयाल नहीं होती। इसकी कमर बहुत पतली होती है और इसके शरीर पर लंबी, काली और पीली धारियाँ होती हैं जो देखने में सुंदर होती हैं। यह बहुत तेजी से दौड़ती भरता और इसी प्रकार प्रायः हिरनों को पकड़ लेता है। यह साधारणतः बहुत हिंसक होता है और प्रायः पेट भरे रहने पर भी शिकार करता है। संध्या समय वह जलारोषों के किनारे द्विपा रहता है और पानी पीनेवाले पशुओं को उठा ले जाता है। चीता मनुष्यों पर जल्दी आक्रमण नहीं करता, पर जब एक बार उसके मुँह में आदमी का खून लग जाता है, तो फिर वह प्रायः गाँवों में उसी के लिये घुस जाता और मनुष्यों के बालकों को उठा ले जाता है। यह पेड़ पर नहीं चढ़ सकता पर पानी में बहुत तेजी से तैर सकता है। मादा एक बार में ३—४ तक बच्चे देती है। भारत में इसका शिकार किया जाता है। कहीं कहीं बड़े आदमी इसे दूसरे जानवरों का शिकार करने के लिये भी पालते हैं। इसका बच्चा पकड़ कर पाला भी जा सकता है। (२) एक प्रकार का बड़ा छुप जिसकी पत्तियाँ जासुन की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। इसकी कई जातियाँ हैं जिनमें शलग शलग सफ़ेद, लाल, काले या पीले फूल लगते हैं। पर सफ़ेद फूलवाले चीते के सिवा और रंगों के फूलवाले चीते बहुत कम देखने में आते हैं। इसके फूल बहुत सुगंधित और जूँ की फूलों से मिलते जुलते होते हैं और गुर्रियों में लगते हैं। इसकी छाल और जड़ औषधि के काम में आती है। यह बहुत पाचक होता है। वैद्यक में इसे चरपरा, हल्का, अग्निदीपक, भूख बढ़ानेवाला, स्त्राल, गरम और संभ्रहृयी, कोष्ठ, सुजन, यवासीर, खाँसी और बहूत दोष भादि को दूर करनेवाला तथा त्रिदोषनाशक माना है। कहते हैं, लाल फूलवाले चीते की जड़ के सेवन से शरीर स्थूल हो जाता है और काले फूल के चीते की जड़ के सेवन से पाच काले हो जाते हैं।

पर्याय—चित्रक। अजल। बद्धि। विभाकर। शिखावान। शुष्मा। पावक। दारुण। शंवर। गिह्री। हुतभुक्। पाची। इसके अतिरिक्त अग्नि के प्रायः सभी पर्याय इसके लिये व्यवहृत होते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० चित्र] चित्र। हृदय। दिल। उ०—अग्नि अग्नेद गति ईद्री जीता। ज्ञाष्टो हरि विन कपहुँ न चीता।—सुनसी।

संज्ञा पुं० [सं० चेत] संज्ञा। होया हवास। उ०—तिन के कहर परेयो कीने कुवजा के सीता को। चडि चडि सेज सानहुँ सिंघु विस्ती जे चीता को।—सूर।

दि० [दि० चेतना] मोचा हुआ। विचारा हुआ। जैसे, अथ तेा तुम्हारा चीता हुआ।

चीनाघनी [सं० संज्ञा धी० [सं० चेत] यादगार। स्मारकचिह्न।

चीन्कार—संज्ञा पुं० [सं०] चिहाइट। इहा। गोर। गुल। चिहाने का शब्द।

चीघड़ा—संज्ञा पुं० [दि० चीघना] फटे पुराने कपड़े का छोटा रौं टुकड़ा।

मूहा०—चीघड़ा छपेटना = फटा पुराना और रद्दी कपड़ा पहनना। चीघड़ा लगना = बहुत दरिद्र होना। इतना दरिद्र होना कि पहनने को केवल चीघड़े ही मिलें।

चीघना—कि० सं० [सं० चर्च] टुकड़े टुकड़े करना। चीघना। धाड़ना। (विरोधतः कपड़े के लिये)।

चीघरा—संज्ञा पुं० दे० "चीघड़ा"।

चीदः—वि० [क०] चुना हुआ। छुटा हुआ। (क०)

चीन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेड़ी। पताका। (२) सीमा नामक धातु। नाम। (३) तागा। सूत। (४) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। (५) एक प्रकार का छिरन। (६) एक प्रकार की ईंध। (७) एक प्रकार का सर्वांग अन्न। दे० "चेना"। (८) एक मसिद्ध पहाड़ी देश जो एशिया के दक्षिण पूर्व में है। इसमें अजराह माल है और इसकी राजधानी पेकिंग है। इसका साम्राज्य बड़ा और मजबूत एशिया तक फैला हुआ है।

संस्कृत, मंगोलिया, तिबत, पूर्वी तुर्किस्तान आदि इसी के अधीन हैं। अभी हाल में यहाँ प्रजातंत्र राज्य हुआ है। यहाँ के आधिकार्य निवासी प्रायः बौद्ध हैं। चीन के निवासी अपनी भाषा में अपने देश को "चंगकू" कहते हैं। कदाचिन् इसी लिये भारत तथा फारस के प्राचीन निवासियों ने इस देश का नाम अपने यहाँ "चीन" रख लिया था। चीन देश का अजलेस महाभारत, मनुस्मृति, सखितयन्त्र आदि ग्रंथों में बारास मिलता है। यहाँ के रेशमी कपड़े भारत में चीनांशुक नाम से इतने प्रसिद्ध थे कि रेशमी कपड़े का नाम ही "चीनांशुक" पड़ गया है। चीन में बहुत प्राचीन काल का क्रमबद्ध इतिहास सुरक्षित है। ईसा से २२५० वर्ष पूर्व तक

के राजवंश का पता चलता है। चीन की सम्पत्ता बहुत प्राचीन है, यहाँ तक कि यूरोप की सम्पत्ता का बहुत कुछ धंरा—जैसे पदनावा, घँडने और खाने पीने आदि का ढंग, पुरूरु धापने की कला आदि—चीन से लिया गया है। यहाँ ईसा के २१० वर्ष पूर्व से बौद्ध धर्म का संचार हो गया था, पर ईसवी सन् ६१ में मिंगती राजा के शासनकाल में जब कि भारतवर्ष में ग्रंथ और मूर्त्तियाँ गईं, लोग बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित होने लगे। सन् ६० में कश्यप मत्तंग नामक एक बौद्ध पंडित चीन में गए और उन्होंने 'श्राक्यवार्' शब्द सूत्र का चीनी भाषा में अनुवाद किया। तब से भारतवर्ष चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार बढ़ता गया। चीन से मुद्द के मुद्द-यात्री विद्याध्ययन के लिये भारतवर्ष में आते थे। चीन में अथ तक कई स्वरूप पाए जाते हैं, जिनके विषय में चीनियों का कथन है कि ये सम्राट अशोक के यन्त्राएँ हैं।

धो०—चीन की दीवार = एक प्रसिद्ध दीवार जिसे ईसा से प्रायः दो सौ वर्ष एक चीनी सम्राट ने उत्तरीय जातियों के आक्रमण से अपने देश की रक्षा करने के लिये बनवाया था। यह दीवार प्रायः १२०० मील लंबी है और बहुत ऊँची, चौड़ी और दृढ़ बनो है। इसका कुछ धंरा मंगोलिया और चान देश की विभाजक सीमा है। इसकी गणना संसार के सात मज से अधिक आश्चर्यादायक पर्यायों (समाश्चर्य) में की जाती है।

मूहा०—चीन का, या चीनी का बरतन या खिलौना आदि = दे० "चीनी मिट्टी"।

(१) उक्त देश का निवासी।

संज्ञा पुं० (१) दे० "चिह्न"। (२) दे० "चुनन"।

चीनक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चेना नामक धन्न। (२) कँगनी नामक अन्न। (३) चीनी कपूर।

चीनकपूर—संज्ञा पुं० [सं०] चीनी कपूर।

चीनज—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का इस्पात लोहा जो चीन से आता है।

चीनना [दि० सं० दे० "चीनहा"] उ०—दास्य धनुष दादरी विष्का मनमोहन पट्टे चितुक चिह्न चित चीन।—सूर।

चीनपिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंदूर। सेंदुर। (२) इस्पात लोहा।

चीनधंग—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

चीनांशुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की खाल बनात जो पहले चीन से आती थी। (२) चीन से आनेवाला एक प्रकार का कपड़ा।

चीना—संज्ञा पुं० [दि० चीन] (१) चीन देशवासी। (२) एक तरह का सर्वांग।

विरोध—दे० "चेना"।

संज्ञा पुं० [सं० निद्र] एक प्रकार का सफेद कपूर जिसके शरीर पर लाल या काली चित्तियां होती हैं ।

वि० चीन देश संबंधी । चीन देश का । जैसे, चीना बादाम ।

चीनाफ-संज्ञा पुं० [सं०] चीनी कपूर ।

चीना ककड़ी-संज्ञा पुं० [सं० चीना + ककड़ी] एक प्रकार की छोटी ककड़ी । वैद्यक में इसे शीतल, मधुर, रुचिकारक, भारी, वातवर्द्धक, पित्तरोग-नाशक और दाहरोप आदि को हरने-पाला कहा है ।

चीनाचंदन-संज्ञा पुं० [हिं० चीना + चंदन] एक प्रकार का पत्ती जो दक्षिण-भारत में पाया जाता है । इसके पीले शरीर पर काली धारियां होती हैं और इसका स्वर मनेदर होता है । मधुर-भापी होने के कारण यह पाला जाता है ।

चीना वादाम-संज्ञा पुं० [हिं० चीन + फ़ा० कदम] सूँगफजी ।

चीनिया-वि० [दे०] चीन देश का । चीन देश संबंधी ।

चीनी-संज्ञा स्त्री० [सं० (दे०) + ई (प्राय०)] सफेद रंग का एक प्रसिद्ध मीठा पदार्थ जो चूख के रूप में होता है और ईख के रस, चुकंदर, खजूर आदि कई पदार्थों से बनाया जाता है । इसका व्यवहार प्रायः मिठाईयां बनाने और पीने के लिये दूध या पानी आदि को मीठा करने में होता है । तरल पदार्थ में यह बहुत सरलता से घुल जाती है ।

विशेष-भारतवर्ष में चीनी केवल ईख के रस से ही उत्पन्न था पर उषाल और साफ़ करके बनाई जाती है । पर संसार के अन्य भागों में यह और भी बहुत से पौधों के मीठे रस से और विशेषतः चुकंदर के रस से बनाई जाती है । जिस देशी चीनी में मूल अधिक हो उसे "कच्चा चीनी" और जिसमें मूल कम हो उसे "पकी चीनी" कहते हैं । इधर कुछ दिनों से भारत में विलायती चीनी भी आने लगी है, जिसका व्यवहार बहुत से हिंदू प्रामाणिक दृष्टि से अनुचित समझते हैं । चीनी की खपत भारतवर्ष में अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है । खांड, राय, गुड़ आदि इन्हीं के पूर्व और अपरिष्कृत रूप हैं । प्राचीन भारतियों ने इसकी गणना मंगल-द्रव्यों में की है । सुश्रुत के अनुसार ईख का रस उषाल कर बनाए हुए पदार्थ ज्यों ज्यों साफ़ होकर राय, गुड़, चीनी, मिसरी आदि बनते हैं व्यों व्यों वे उत्तरोत्तर शीतल, तिग्ध, भारी, मधुर और च्युष्या शक्त करनेवाले होते जाते हैं । वि० चीन देश संबंधी । चीन देश का । जैसे, चीनी मिट्टी, कपास चीनी, चीनी भाषा ।

चीनी कपूर-संज्ञा पुं० [हिं० चीन + सं० कर्पूर] एक प्रकार का कपूर ।

चीनी कषाय-संज्ञा स्त्री० दे० "कषायचीनी" ।

चीनी चंपा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बहुत हलका केला

जो आकार में घोंटा होता है । इसी को 'चिनिया केला' भी कहते हैं ।

चीनी मिट्टी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चीनी (वि०) + मिट्टी] एक प्रकार की मिट्टी जो पहले पहले चीन के किंग-वि-चिन्ग नामक पहाड़ से निकली थी और अब अन्य देशों में भी कहीं कहीं पाई जाती है । इसके ऊपर पालिश बहुत अच्छी होती है और इससे तरह तरह के खिलौने, गुलदान और छोटे-बड़े बरतन बनाए जाते हैं जो "चीन के" या "चीनी के" कहलाते हैं । धातु कल इस प्रकार की मिट्टी मध्य प्रदेश तथा बंगाल के कुछ जिलों में भी पाई जाती है ।

चीनी मोर-संज्ञा पुं० [हिं० चीनी + मोर] सोहन चिट्ठिया की जाति का एक पक्षी जो संयुक्त प्रांत, बंगाल और आसाम में अधिकता से होता है । इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है, इसलिए अंगरेज प्रायः इसका शिकार करते हैं ।

चीन्हा-संज्ञा पुं० दे० "चिह्न" ।

चीन्हना-वि०-हिं० सं० चिह्न] पहचानना ।

धी०-चीन्हा परिचय = जान पहचान ।

चीन्हा-संज्ञा पुं० दे० "चिह्न" ।

चीप-संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) चार अंगुल की एक लकड़ी जो जुते के कलवृत्त में सबसे पीछे भरी या चढ़ाई जाती है । (चमारों की परि०) । (२) जमीन में से निकली हुई मिट्टी का वह अंश जो एक बार फावड़ा चलाते से खुद कर निकल आवे । (३) दे० "चिप" ।

चीपड़-संज्ञा पुं० [हिं० कीचड़] वह सफेद लवदार पदार्थ जो आंस के केंद्रों से निकलता है । आंस का कीचड़ ।

चीफ-संज्ञा पुं० [फ्र०] बड़ा सरदार या राजा, विशेषतः किसी जाति या प्रांत का अधिकारप्राप्त प्रधान ।

धौ०-हलिंग चीफ (भारतवर्ष में) बृहदा राजा जिसे अरने राज्य के आतिथिक कार्यों के संबंध में पूर्ण अधिकार है ।

वि० प्रधान । श्रेष्ठ । बड़ा । जैसे, चीफ एडिटर ।

चीफ कमिश्नर-संज्ञा पुं० [फ्र०] (१) वह प्रधान अधिकारी जिसको किसी कार्य्य करने का अधिकार-पत्र मिला हो । (२) किसी सूबे या कई कमिश्नरियों का प्रधान अधिकारी ।

विशेष-चीफ कमिश्नर का पद सेप्टिमेंट गवर्नर (छोटे लाट) के पद से कुछ छोटा समझा जाता है और उसके अधिकार में स्वतंत्र प्रांत होता है । इसकी नियुक्ति स्वयं गवर्नर-जेनरल-इन-कौंसिल के द्वारा होती है और वह गवर्नर-जेनरल का विशिष्ट अधिकार-प्राप्त प्रतिनिधि होता है । सीमा-प्रांत तथा मध्य प्रदेश आदि प्रांत चीफ कमिश्नर के अधीन हैं ।

चीफ कोर्ट-संज्ञा पुं० [फ्र०] किसी प्रांत का प्रधान न्यायालय ।

विशेष-भारतवर्ष के पंजाब तथा दक्षिणी बरमा की सबसे बड़ी अदालत 'चीफ कोर्ट' कहलाती है । इसके चीफ जज

थौर जजों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल द्वारा होती है।

चीफ जज-संज्ञा पु० [च०] चीफ कोर्ट के जजों में प्रधान। चीफ-कोर्ट का प्रधान जज।

चीफ जस्टिस-संज्ञा पु० [च०] हाई कोर्ट का प्रधान जज।

चीमड़-वि० [हि० चमड़ा] जो खींचने, मोड़ने या मुकाने खादि से न फटे या टूटे। जैसे, चीमड़ कपड़ा, चीमड़ कागज, चीमड़ लकड़ी, खादि।

विशेष-यह विशेषण फेवल उर्ध्व पदार्थों के लिये व्यवहृत होता है जो खींचने से बढ़ या मोड़ने थपथा मुकाने से टूट सकते हैं।

संज्ञा पु० [फा० चमरु] धमलतास की जाति का पर बहुत छोट, एक प्रकार का पौधा जिसके खीज दस्तावर होते हैं और धाँस स्थान पर पीस कर अर्थात् में डाले जाते हैं। इने चाकसू या यनार भी कहते हैं।

चीमर-संज्ञा पु० और वि० दे० "चीमड़"।

चीर्या-संज्ञा पु० दे० "चियाँ"।

चीर-संज्ञा पु० [सं०] (१) बस। कपड़ा। ३०—(क) प्रातकाल अस्तान कर्म को धनुना गोपि मिथारी। लै के चीर कर्दय चद्रे हरि विनवत हैं मननारी।—मूर। (ख) कीके कागर जों नृप चीर विभूषन बरमा धंगन पाई।—तुलसी। (ग) चीर मध्ये उर्ध्व तंतु है तंतु मध्ये उर्ध्व चीर। उर्ध्व जग मध्ये प्रद्व है यक्ष मध जगत कवीर।—कवीर। (२) वृष्ट की क्षाप। (३) पुराने कपड़े का टुकड़ा। चिपड़ा। लता। (४) गी का धन। (५) घार लक्ष्मियोंवाली मोगतियों की माला। (६) मुनियों, विशेषतः बौद्ध भिक्षुओं के पहनने का कपड़ा।

(७) एक बड़ा पत्ती जो प्रायः तीन पुट लंबा होता है और जिसका शिकार किया जाता है। यह कमाऊँ, गड़वाहा तथा अन्य पहाड़ी जिलों में पाया जाता है। इसकी हुम लंबी और बहुत खूबसूरत होती है। यह 'चीर चीर' शब्द करता है, इसीसे इसे चीर कहते हैं। (८) पूर का पेड़।

विशेष-दे० "चीड़"।

(९) मर्याद। छप्पर का मँगरा। (१०) सीसा नामक धातु।

संज्ञा स्त्री० [हि० चीरना] (१) चीरने का भाव वा क्रिया।

धा०-चीर फाड़ = चीरने या फाड़ने का भाव वा क्रिया।

(२) चीर कर बनाया हुआ शिगाफू या स्तर।

क्रि० प्र०-झलना।-पड़ना।

(३) इतरती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब जोड़ (चिपकी) पीछे से कमर पकड़े होता है। इसमें दाहिने हाथ से जोड़ का दाहिना हाथ और बाएँ से बायाँ हाथ पकड़ कर पहलवान उसके दोनों हाथों को अलग करता हुआ निकल आता है।

चीरक-संज्ञा पु० [सं०] लिखित प्रमाण के दो भेदों में से एक। विकृत लेख।

चीर-चरम *—[सं० चीरचम] बाघंवर। मृगचर्म। मृगजाला।

चीरना-क्रि० सं० [म० चीर्य = चीरा हुआ] [संज्ञा चीरा] किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान तक एक सीध में खींचा, थपथा किसी धारदार या दूसरी चीज से धँसा या फाड़ कर खंड या फाँक करना। फाड़ना। विदीर्ण करना। जैसे, धारी से लकड़ों चीरना, नशरत से घाव चीरना, नाब का पानी चीरना, दोनों हाथों से भीड़ चीरना, खादि।

धा०-चीरना फाड़ना।

मुहा०-माल (या खया खादि) चीरना = किसी प्रकार विशेषतः कुछ अनुचित रूप से बहुत धन फमाना।

चीरनिवसन-संज्ञा पु० [सं०] (१) पुराणानुसार एक देस का नाम जो इमें विभाग के ईशान क्षेत्र में बतलाया जाना है। (२) उक्त देस का निवासी।

चीरहि-संज्ञा पु० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का पत्ती। **चीरपत्रिका-संज्ञा स्त्री०** [सं०] चँच नाम का साग।

चीरपर्क-संज्ञा पु० [सं०] साज का पेड़।

चीरफाड़-संज्ञा स्त्री० [हि० चीर + फाड़] (१) चीरने फाड़ने का काम। (२) चीरने फाड़ने का भाव।

चीरवास-संज्ञा पु० [सं० चीरवस] (१) शिव। महादेव। (२) वध।

चीरा-संज्ञा पु० [हि० चीरना] (१) एक प्रकार का लहरियेदार रंगीन कपड़ा जो पगड़ी बनाने के काम में आता है।

क्रि० प्र०-धीरना।-बनाना।

धा०-चीराबंद।

(२) गाँव की सीमा पर गाड़ा हुआ परधर या खंभा खादि।

(३) चीर कर बनाया हुआ धन वा धाव।

क्रि० प्र०-देना।-मिलना।-लगाना।

मुहा०-चीरा उतारना या तोड़ना = (किसी पुरुष का धी के साथ) प्रथम समागम करना। कुमारी का कौमार नष्ट करना।

धा०-चीराबंद।

चीराबंद-संज्ञा पु० [हि० चीरा = कपड़ा + फा० बंद] चीरा धीपने-वाला। जो लोगों के लिये धीरे धीरे कर तैयार करता हो।

वि० स्त्री० [हि० चीरा (शत) + फा० बंद] कुमारी। जिसने पुरुष के साथ समागम न किया हो। (बाजारू)।

चीराबंदी-संज्ञा स्त्री० [हि० चीरा = पगड़ी का कपड़ा + फा० बंद] एक प्रकार की हुनाबट जो पगड़ी बनाने के लिये सारा के कपड़े पर कारचोपी के साथ की जाती है। इस हुनाबट की पगड़ी कुछ जातियों में विवाह के समय पर को पहनाई जाती है।

चीरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मींगुर। मिल्की।

चौरिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यदनीनारायण के निकट की एक प्राचीन नदी का नाम जिसके पास वैद्यवत मनु ने तपस्या की थी । इसका नाम महाभारत में आया है ।

चौरितच्छया—संज्ञा स्त्री० [सं०] पालक का साग ।

चौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मींगुर । फिल्ली । (२) एक प्रकार की छोटी मछली ।

† संज्ञा स्त्री० [हि० चिडिया] चिड़िया । पक्षी । उ०—सासति सहत दास कीजे पेरि परिहास चौरी को मरन खेनु बालकनि को सोहै ।—तुलसी ।

‡ संज्ञा स्त्री० दे० “चीड़” ।

चौरीवाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा । मनु के मत से नमक चुरानेवाला मनुष्य दूसरे जन्म में इती भेति में जन्म लेता है ।

चीरा—संज्ञा पुं० दे० “चिर” ।

चीरक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फल जिसे वैद्यक में रचिकर, दाहजनक और कफ-पित्त-यद्गक माना है ।

चीरु—संज्ञा पुं० [सं० चौर] खाल रंग का सूत जो विदेश से आता है ।

चीरौ—वि० [सं०] फाड़ा या फटा हुआ । चीरा या चिरा हुआ ।

चीरौपण्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीम का पेड़ । (२) खजर का पेड़ ।

चील—संज्ञा स्त्री० [सं० चिञ्चल] गिद्ध और बाज आदि की जाति की पर उनसे कुछ दुर्बल एक प्रसिद्ध पक्षी चिड़िया जो संसार के प्रायः सभी गरम देशों में पाई जाती है और कई प्रकार और रंगों की होती है । यह बहुत तेज उड़ती है और भ्रात-मान में बहुत ऊँचाई पर प्रायः दिना पर हिलानु चकर लगाया करती है । यह कीड़े, मकड़े, चूहे, मछलियाँ, गिर-निट और छोटे छोटे पक्षी खाती है । यह अपने चिकारों को देख कर तिरछे उतरती है और बिना थड़े हुए कपड़ा मार कर उसे लेती हुई आकाश की ओर निकल जाती है । बाजारों में मछली और मांस की दुकानों के आस पास प्रायः बहुत सी चीले बैठी रहती हैं और रात्रा-चलते लोगों के हाथ से कपड़ा मार कर खाद्य पदार्थ ले जाती हैं । यह ऊँचे ऊँचे घुड़ों पर अपना घोंसला बनाती है और पूस मास में तीन चार श्रंभे देती है । अपने पक्षों को यह दूसरे पक्षियों के चन्चे बाहर खिलाने की । यह पड़त जौर से भी ची शब्द करती है, इन्हीं से इसका नाम चिल या चील पड़ा है । हिंदू लोग अपने मकानों पर इसका बैधान अष्टम समकते हैं और बैठते ही इसे मुरत उड़ा देते हैं ।

पथ्यां—आतापी । शकुनि । खभ्रांत । कंठनीडुक । चिल्लतन ।

थां—चील कपड़ा = (१) किसी चीज को चौचक में भरना मार

पर लेने की क्रिया । (२) शङ्खों का एक लेन जिनमें वे परस्पर एक दूसरे के फिर पर, उसकी टोपी उतार कर धैर्य लगाते हैं ।
मुहा०—चील का मूत = वह चीज जिनका मित्रता बहुत कठिन, प्रायः अतमभव है ।

चीलडू—संज्ञा पुं० दे० “चीलर” ।

चीलर—संज्ञा पुं० [देग०] जू की तरह का पर सफेद रंग का एक छोटा कीड़ा जो मूले कपड़ों में पड़ जाता है । दे० “चिलडू” ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

चीलचा—संज्ञा पुं० [देग०] चिलदा नाम का पकवान ।

विशेष—दे० “उलदा” ।

चीला—संज्ञा पुं० दे० “चिलड़ा” या “चिल्ला” ।

चीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फिल्ली । मींगुर ।

चीलू—संज्ञा पुं० [सं०] आड़ू की तरह का एक प्रकार का पहाड़ी मेवा ।

चीलुक—संज्ञा पुं० [सं०] फिल्ली । मींगुर ।

चीलू—संज्ञा स्त्री० दे० “चील” (पक्षी) ।

चीलडू, चीलर—संज्ञा पुं० दे० “चीलर” ।

चीलही—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार का तंत्रोपाचार जिसे बालकों के कल्याणार्थे छियाँ करती हैं । उ०—भनी रघुराज मुल चूमति चरण चापि चीलही करवाप राई लोन बतराये ही ।—रघुराज ।
चीचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) योगियों, संन्यासियों का गिड्डों का फटा पुराना कपड़ा । (२) बौद्ध संन्यासियों के पहनने के वस्त्र का ऊपरी भाग ।

विशेष—बौद्ध-संन्यासियों के पहनने का वस्त्र दो भागों में होता है, ऊपरी भाग को चीचर और नीचे के भाग को निवास कहते हैं ।

चीचरी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध भिक्षुक । (२) भिक्षुक । भिल्लमंग ।

चीस—संज्ञा स्त्री० दे० “टीस” ।

चीह—संज्ञा स्त्री० [फा० चीह] चिहाइट । चीकार ।

सुँगना—क्रि० सं० दे० “सुगना” ।

सुँगल—संज्ञा पुं० [हि० चू + ङुल] वा फा० चंगल] (१)

चिड़ियों वा जानवरों का पंजा जो कुछ टेंटा वा मुकुरा हुआ होता है । चंगुल । उ०—उपों सुधित बाज लखिगन कुलंग । सुँगल चेटे करि देत भंग ।—सुदन । (२) मनुष्य के पंजे की वह स्थिति जो उँगलियों को बिना हथेली से लगाए किसी वस्तु को लेने वा पकड़ने में होती है । बटोरा हुआ पंजा । बकोटा । चंगुल । उ०—सुँगल भर आटा साईं को दो ।

मुहा०—सुँगल में फँसना = यहाँ में आना । काजू में रैना । पकड़ में आना ।

सुँगली—संज्ञा स्त्री० [देग०] नाक में पहनने का एक आभूषण जिसे ‘समया’ भी कहते हैं । एक प्रकार की नंग ।

सुं गवाना-कि० सं० दे० "सुंगवाना" ।

सुं गाना-कि० सं० दे० "सुगाना" ।

सुंगी-संज्ञा स्त्री० [हि० सुंग] (१) सुंगल भर वस्तु । सुटकी भर चीज ।

धौ०-सुंगी पंड = वह पंड या चाजर जिसमें दूर एक दूकान-दार में जर्मनदार को सुंगन भर चीज मिलती है ।

(२) वह महपुल जो शहर के भीतर आनेवाले बाहरी माल पर लगता हो ।

सुं घाना-कि० सं० [हि०] सुसाना । सुसा कर पिलाना । उ०—
अथ न तो कुछ शीत उष्य में यथाव करना पड़ेगा और
न भूख व्यास के समय दूध ही सुं घाना पड़ेगा, ये
सिद्ध लोगों के दिष्ट हुए पाने और यंत्र थापही बालक की
रचा करेंगे—अद्वाराम ।

सुंचा-संज्ञा स्त्री० दे० "बोच" ।

सुंचु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृद्ध वर । (२) वैदिक स्त्री और
माहाय से उत्पन्न एक संकर जाति ।

संज्ञा स्त्री० एक वृद्धि वा रोग । चिन्तयारी ।

सुंचुक-संज्ञा पुं० [सं०] यहलमदिता के अनुसार मैकल बंशण पर
स्थित एक देश ।

सुंचुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] यह जूधा जो इमली के चिंओं से
बेला जाय ।

सुंचुल-संज्ञा पुं० [सं०] विद्याभित्र के एक पुत्र का नाम जो
समीत शाश्व का बड़ा भारी पंडित था ।

सुंचुली-संज्ञा स्त्री० दे० "सुंचुरी" ।

सुंचुली-संज्ञा स्त्री० [दे०] सुंचुची ।

सुंचुटा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुंचुटा" ।

सुंचुडा-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री०] कुर्पा । कृप ।

सुंचित-संज्ञा पुं० [हि० सुचि] सुचियावाला । सुं चीवाला । उ०—
योगी कई योग हैं नीके द्वितीया और न भाई । सुंचित
सुंचित मौन जटाघरि तिनहुं कहां सिधि पाई—कविय ।

सुंचो-संज्ञा स्त्री० दे० "सुंचो" ।

सुंचरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुंचरी" ।

सुंचरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटनी । दूती ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंचा शालों की पिशा जिसे हिंदू मिर पर
रखते हैं । सुंच्या ।

सुं घलाना-कि० अ० [हि०] घी = चर + घंथ = घंथा । घाली का
सदृश अधिक प्रकार के सामने पढ़ने के कारण स्तब्ध
होना । घीपना । चकारघीप होना । घाली का तिलमिलाना ।

सुं घा-वि० [हि०] घी = चर + घंथ [स्त्री०] सुंघी जिसे सुमाई
न पड़े । छोटी छोटी घालियावाला ।

सुं घियाना-कि० अ० दे० "सुं घलाना" ।

सुं घक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सुं घन करे । (२) कामुक ।

कामी । (३) भूक्त मनुष्य । (४) भ्रंशों के केवल इधर उधर
उलटनेवाला । विषय को अच्छी तरह न समझनेवाला । (५)
पानी भरते समय घड़े के मुँह पर दौधा हुआ फंदा । फंस ।
(६) एक प्रकार का पत्थर या धातु जिसमें लोहे को अपनी
घोर आकर्षित करने की शक्ति होती है । सुं बक दो प्रकार
का होता है—एक प्राकृतिक, दूसरा कृत्रिम । प्राकृतिक सुं बक
एक प्रकार का लोहा मिला हुआ पत्थर होता है जो बहुत
कम मिलता है । इससे कृत्रिम वा बनावटी सुं बक ही
अधिक देखने में आता है जो या तो घोड़े की नाक के
आकार का बनता है या सीधे छड़ के आकार का । यदि
सुं बक के छड़ को लोहे के चू के ढेर में डालें तो दिखाई
पड़ेगा कि लोहे का चूर उस छड़ में यदा तक धरावर
नहीं लिपटता बल्कि दोनों छोरों पर सबसे अधिक लिपटता
है । इन दोनों छोरों को आकर्षण-प्रांत कहते हैं । छड़ के
मध्य भाग को मध्य वा शून्य प्रांत कहते हैं । कभी कभी
किसी छड़ के आकर्षण प्रांत दो से अधिक होते हैं । यदि
किसी सुं बक-शलाका को उसके मध्य भाग (मध्यकर्षण
केंद्र) पर से ऐसा उधरावे कि वह चारों ओर घूम सके तो
यह घूम कर उत्तर-दक्खिन रहेगी अर्थात् उसका एक सिरा
उत्तर की ओर दूसरा दक्खिन की ओर रहेगा । भ्रुवदर्शक
यंत्र में इसी प्रकार की शलाका लगी रहती है । पर ध्यान
रखना चाहिये कि शलाका का यह उत्तर और दक्षिण हमारे
भौगोलिक उत्तर-दक्षिण से ठीक ठीक मेल नहीं खाता, कहीं
ठीक उत्तर से कई शंश भूत और कहीं पश्चिम की ओर होता
है । इस शंश को सुं बक-प्रवृत्ति कहते हैं और इसे निकालने
के लिये भी एक यंत्र होता है । यह सुं बक-प्रवृत्ति पृथ्वी के
भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न होती है जिसका हिसाब-किताब
जदानी रखते हैं । हमके अतिरिक्त किसी स्थान की यह सुं बक
प्रवृत्ति सब काल में एक ही नहीं रहती, शताब्दियों के हेर-
फेर के अनुसार कुछ भौतिक परिवर्तनों के कारण यह बदला
करती है । किसी सुं बक का एक प्रांत दूसरे सुं बक के उसी
प्रांत को आकर्षित न करेगा अर्थात् एक सुं बक-शलाका
का उत्तर प्रांत दूसरी सुं बक-शलाका के उत्तर प्रांत को
आकर्षित न करेगा, दक्षिण प्रांत को करेगा । जिस वस्तु को
सुं बक के दोनों प्रांत आकर्षित करें वह स्थायी सुं बक नहीं
है, केवल आकर्षित होने की शक्ति रखनेवाला है । जैसे,
साधारण लोहा आदि । स्थायी सुं बक के पास लोहे का
टुकड़ा लाने से उसमें भी सुं बक गुण आ जायगा अर्थात्
वह भी दूसरे लोहे को आकर्षित कर सकेगा । ऐसे सुं बक
को अस्थायी सुं बक कहते हैं । हवात में यद्यपि सुं बक-शक्ति
अधिक नहीं दिखाई देती पर एक बार यदि धरम में सुं बक-
शक्ति आ जाती है तो फिर वह जयही नहीं जाती । इसीसे
जिनके कृत्रिम स्थायी सुं बक मिलते हैं वे हवात ही के होते

चौरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बदरीनारायण के निकट की एक प्राचीन नदी का नाम जिसके पास वैभवत मनु ने तपस्या की थी। इसका नाम महाभारत में आया है।

चौरितच्छया—संज्ञा स्त्री० [सं०] पालक का साग।

चीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भौंगुर। फिल्ली। (२) एक प्रकार की छोटी मछली।

† संज्ञा स्त्री० [हि० चिहिया] चिहिया। पत्नी। उ०—सासति सहत दास कीजे पेलि परिहास चीरी को मरन खेहु बालकनि को सोहै।—तुलसी।

‡ संज्ञा स्त्री० दे० “चीड़”।

चीरीवाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा। मनु के मत से नमक चुरानेवाला मनुष्य दूसरे जन्म में इसी योनि में जन्म लेता है।

चीरा—संज्ञा पुं० दे० “चौर”।

चीरक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फल जिसे वैद्यक में रुचिकर, दाहजनक और कफ-पित्त-घट्टक माना है।

चीरुा—संज्ञा पुं० [सं० चीर] लाल रंग का सूत जो विदेश से आता है।

चीरुा—वि० [सं०] फाड़ा या फटा हुआ। चीरा या चिरा हुआ।

चीरुापर्या—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीम का पेड़। (२) खजर का पेड़।

चील—संज्ञा स्त्री० [सं० चिप्ल] गिद्ध और बाज आदि की जाति की पर उनसे कुछ दुर्बल एक प्रसिद्ध बड़ी चिड़िया जो संसार के प्रायः सभी ग्राम देगों में पाई जाती है और कई प्रकार और रंगों की होती है। यह बहुत तेज उड़ती है और आस-मान में बहुत ऊँचाई पर प्रायः बिना पर हिलाए चकर लगाया करती है। यह कीड़े, मकोड़े, चूहे, मछलियाँ, गिर-गिट और छोटे छोटे पक्षी खाती है। यह अपने शिकार को देख कर तिरछे उतरती है और बिना ठहरे हुए भपटा मार कर उसे लेती हुई आकाश की ओर निकल जाती है। गाजराँ में मछली और मांस की दुकानों के आस पास प्रायः बहुत सी चीलें बैठी रहती हैं और रास्ता-चलते लोगों के हाथ से भपटा मार कर खाए पदार्थ ले जाती हैं। यह ऊँचे ऊँचे चुर्चुरों पर अपने धौंसला पंजाती है और पूस नाथ में तीन चार श्रेडे देती है। अपने पंजों को यह दूसरे पक्षियों के बच्चे लाकर खिलाती है। यह बहुत जोर से ची ची शब्द करती है, इसी से इसका नाम चिल या चील पड़ा है। हिंदू लोग अपने मकानों पर इसका बैठना अशुभ समझते हैं और येज्जे ही इसे तुरंत उड़ा देते हैं।

च्यौरा—घातापी। शकुनि। खत्रांत। कंडनीडक। चिल्लतन।

धौ०—चील भपटा = (१) किरा। चीम का औचक में भपटा मार

कर लेने की क्रिया। (२) झड़कों का एक खेल जिसमें वे परस्पर एक दूसरे के सिर पर, उरुकी टोपी उतार कर धौंस लगाते हैं।
मुहा०—चील का मूत = यह चीन जिसका मिलना बहुत कठिन, प्रायः असम्भव है।

चीलड़—संज्ञा पुं० दे० “चीलर”।

चीलर—संज्ञा पुं० [देग०] बूँ की तरह का पर सफेद रंग का एक छोटा कीड़ा जो मले कपड़ों में पड़ जाता है। दे० “चिलड़”।

क्रि० प्र०—पड़ना।

चीलवा—संज्ञा पुं० [देग०] चिलड़ा नाम का पकवान।

विशेष—दे० “उलटा”।

चीला—संज्ञा पुं० दे० “चिलड़ा” या “चिल्ला”।

चिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फिल्ली। भौंगुर।

चीलू—संज्ञा पुं० [सं०] आड़ू की तरह का एक प्रकार का पहाड़ी मेवा।

चीलूक—संज्ञा पुं० [सं०] फिल्ली। भौंगुर।

चीलू—संज्ञा स्त्री० दे० “चील” (पक्षी)।

चीलूड़, **चीलूर**—संज्ञा पुं० दे० “चीलर”।

चीलूरी—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार का संशोपचार जिसे बालकों के कल्याणार्थे क्रियाँ करती हैं। उ०—भने रघुराज मुल चूगति चरय चापि चीलही करवाय राई लोखन उतरयो है।—रघुराज।

चीवर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) योगियों, संन्यासियों या भिक्षुओं का फटा पुराना कपड़ा। (२) बौद्ध संन्यासियों के पहनने के वस्त्र का ऊपरी भाग।

विशेष—बौद्ध-संन्यासियों के पहनने का वस्त्र दो भागों में होता है, ऊपरी भाग को चीवर और नीचे के भाग को निवास कहते हैं।

चीवरी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध भिक्षुक। (२) भिक्षुक। भिक्षुमंगा।

चीस—संज्ञा स्त्री० दे० “टीस”।

चीह—संज्ञा स्त्री० [फा० चीह] चिहाइट। चीकार।

चुंगना—क्रि० सं० दे० “चुगना”।

चुंगल—संज्ञा पुं० [हि० चौ + अंगुल] या फा० चंगल] (१) चिड़ियों वा जानवरों का पंजा जो कुछ देड़ा वा झुका हुआ होता है। चंगुल। उ०—ज्यों सुधित बाज लखियन कुलंग। चुंगल चपेट करि देत संग।—सुदन। (२) मनुष्य के पंजे की वह स्थिति जो कंगलियों को बिना हथेली से लगाए किसी वस्तु को लेने या पकड़ने में होती है। चयरा हुआ पंजा। चकोटा। चंगुल। उ०—चुंगल भर आटा सँहै को दो।

मुहा०—चुंगल में फँसना = बुरा में आना। कानू में हेलना। पकड़ में आना।

चुंगली—संज्ञा स्त्री० [देग०] नाक में पहनने का एक आभूषण जिसे ‘समधा’ भी कहते हैं। एक प्रकार की नथ।

सुँगवाना-कि० सं० दे० "सुगवाना" ।

सुँगाना-कि० सं० दे० "सुगाना" ।

सुँगी-संज्ञा स्त्री० [हि० सुंगम] (१) सुंगम भर भरतु । सुटकी भर चीन ।

धा०—सुँगी पेंड=वह पेंड या बाजार जिसमें हर एक दुकान-दार उ जर्मानदार को सुंगम भर चीन मिलती है ।

(२) यह महसूल जो शहर के भीतर आनेवाले बाहरी माल पर लगता हो ।

सुँघाना-कि० ग० [हि०] सुसाना । सुसा कर पिलाना । उ०—धन न तो कुछ शीत टण्य में धवाव करना पड़ेगा धार न भूय प्यास के समय दूध ही सुँघाना पड़ेगा, ये मिद्ध लोगों के दिष्ट हुए धारों धार यंत्र धापही वालक की रचा करेगे।—भद्रहराम ।

सुँचा-संज्ञा स्त्री० दे० "वेच" ।

सुँसु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छट्टेहर । (२) वैदिक स्त्री और माहाय से उपर्य एक संकर जाति ।

संज्ञा स्त्री० एक वृद्धि वा यौषा । चिनियारी ।

सुँसुक-संज्ञा पुं० [सं०] यूहर्षदिता के अनुसार नैकत्व कोण पर स्थित एक देव ।

सुँसुती-संज्ञा स्त्री० [सं०] यह जूधा जो हमली के विंशों से खेला जाय ।

सुँसुल-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम जो संगीत शास्त्र का बड़ा भारी पंडित था ।

सुँसुली-संज्ञा स्त्री० दे० "सुँसुती" ।

सुँटली-संज्ञा स्त्री० [दे०] सुँघची ।

सुँटा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुँडा" ।

सुँडा-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री०] कुर्घा । हूप ।

सुँडिन-संज्ञा स्त्री० [हि० सुँडा] सुँडिधावाला । सुँडीवाला । उ०—योगी कहे योग है नीके द्वितीया और न भाई । सुँडित सुँडित मीन जयधरि तिनहुँ कहाँ सिधि पाई ।—कबीर ।

सुँडी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुँडी" ।

सुँदरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुँदरी" ।

सुँदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुदरी । वृत्ती ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चूडा] बालों की शिखा जिसे हिंदू स्त्रि पर रखते हैं । सुँदीया ।

सुँघलाना-कि० अ० [हि० घी = चार + घंघ = घंघा] शाली का सदास शक्ति प्रकाश के सामने पड़ने के कारण स्तब्ध होना । घांपना । चकार्चिप होना । शाली का तिलमिलाना ।

सुँघा-वि० [हि० घी = चार + घंघ] [स्त्री० सुँघी] जिसे सुभाई न पड़े । छोटी छोटी शालीवाला ।

सुँघियाना-कि० अ० दे० "सुँघलाना" ।

सुँबक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सुँबन करे । (२) कामुक ।

कामी । (३) धूर्त मनुष्य । (४) प्रयोगों को केवल इधर उधर उलटनेवाला । विषय को शक्यी तरह न समझनेवाला । (५) पानी भरते समय घड़े के मुँह पर बंधा हुआ कंथा । फंस । (६) एक प्रकार का पथर वा धातु जिसमें लोहे को धरणी और आकर्षित करने की शक्ति होती है । सुँबक दो प्रकार का होता है—एक प्राकृतिक, दूसरा कृत्रिम । प्राकृतिक सुँबक एक प्रकार का लोहा मिला हुआ पथर होता है जो बहुत कम मिलता है । इससे कृत्रिम वा बनावटी सुँबक ही अधिक देखने में आता है जो वा तो वेड़े की नाल के आकार का बनता है या हथिये छड़ के आकार का । यदि सुँबक के छड़ को लोहे के चूरे के ढेर में डालें तो दिखाई पड़ेगा कि लोहे का चूर उस छड़ में यहाँ से वहाँ तक बराबर नहीं लिपटता बल्कि दोनों छोरों पर सबसे अधिक लिपटता है । इन दोनों छोरों को आकर्षण-प्रांत कहते हैं । छड़ के मध्य भाग को मध्य वा शून्य प्रांत कहते हैं । कभी कभी किसी छड़ के आकर्षण प्रांत दो से अधिक होते हैं । यदि किसी सुँबक-शालाका को उसके मध्य भाग (मध्याकर्षण केंद्र) पर से ऐसा ठहरावें कि वह चारों ओर घूम सके तो वह घूम कर उत्तर-दक्षिण रहेगी अर्थात् उसका एक सिरा उत्तर की ओर दूसरा दक्षिण की ओर रहेगा । भ्रुवद्वयक यंत्र में इसी प्रकार की शालाका लगी रहती है । पर ध्यान रखना चाहिए कि शालाका का यह उत्तर और दक्षिण हमारे भौगोलिक उत्तर-दक्षिण से ठीक ठीक मेल नहीं खाता, कहीं ठीक उत्तर से कहीं थंरा पूर्व और कहीं पश्चिम की ओर होता है । इस थंतर को सुँबक-भ्रुवृत्ति कहते हैं और इसे निकालने के लिये भी एक यंत्र होता है । यह सुँबक-भ्रुवृत्ति पृथ्वी के भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न होती है जिसका हिसाब-किताब जहाज़ी रखते हैं । इसमें अतिरिक्त किमी स्थान की यह सुँबक भ्रुवृत्ति सष काल में एक सी नहीं रहती, शताब्दियों के हेर-फेर के अनुसार कुछ भौतिक परिवर्तनों के कारण यह बदला करती है । किसी सुँबक का एक प्रांत दूसरे सुँबक के उसी प्रांत को आकर्षित न करेगा अर्थात् एक सुँबक-शालाका का उत्तर प्रांत दूसरी सुँबक-शालाका के उत्तर प्रांत को आकर्षित न करेगा, दक्षिण प्रांत को करेगा । जिस वस्तु को सुँबक के दोनों प्रांत आकर्षित करें वह स्वायी सुँबक नहीं है, केवल आकर्षित होने की शक्ति रखनेवाला है । जैसे, साधारण लोहा आदि । स्वायी सुँबक के पास लोहे का टुकड़ा लाने से उसमें भी सुँबक गुण धा जायगा अर्थात् यह भी दूसरे लोहे को आकर्षित कर सकेगा । ऐसे सुँबक को अस्वायी सुँबक कहते हैं । ह्वात में दक्षिण सुँबक-शक्ति अधिक नहीं दिखाई देती पर एक धार यदि उसमें सुँबक-शक्ति धा जाती है तो फिर वह जल्दी नहीं जाती । इसीसे जितने कृत्रिम स्वायी सुँबक मिलते हैं वे ह्वात ही के होते

हैं। इद्रिम सुवन या तो सुवन के संसर्ग द्वारा बनाए जाते हैं अथवा हस्तात् की छद्म में विद्युत्प्रवाह देवाने से। विद्युत्प्रवाह द्वारा यद्ये शक्तिशाली सुवन तैयार होते हैं।

सुवन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सुवनीय, सुंभित] प्रेम के आवेग में हेठिं से (किसी दूसरे के) गाल आदि अंगों को स्पर्श करने या दधाने की क्रिया। सुग्मा। बोसा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सुवनाइ-क्रि० सं० [सं० सुवन] (१) चूमना। बोसा लेना। उ०—कबहुँक माखन रोटी लै के खेल करत पुनि मांगत।

मुल सुवत जननी समन्यत्र आय कंड पुनि लागत।—सूर।

(२) स्पर्श करना। छूना। उ०—धवल घाम ऊपर नम सुवत। फलस मनहुँ रवि सति दुति निंदत।—तुलसी।

सुवा-संज्ञा पुं० दे० "सुवा"। (लश०)

सुवित-वि० [सं०] (१) चूमा हुआ। (२) प्यार किया हुआ।

(३) स्पर्श किया हुआ। बुझा हुआ।

सुवी-वि० [सं०] चूमनेवाला। जो चूमें।

विशेष—योगिक शब्द बनाने में इसका प्रयोग अधिक होता है जैसे, गनसुवी।

सुभनाइ-क्रि० अ० दे० "सुभना"।

सुभनाइ-क्रि० अ० दे० "चूना"।

सुभा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पहाड़ी गेहूँ।

सभा पुं० दे० "चोघ्रा"।

सुभारि-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुभाना] (१) सुधाने का काम। उपकाने की क्रिया। (२) सुधाने की मञ्जूरी।

सुभ्राक-संज्ञा पुं० [हिं० सुभाना = उपकना] वह छेद जिससे पानी आये। (लश०)

सुभ्रान-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूना] खाईं। नहर। गडढा। जल आने का स्थान। सेता। उ०—(क) सय देवताओं को पया कर नगर में चारों शेर जल की सुभ्रान चौड़ी करवाई थीर अग्नि पवन का फोट बनाय निर्भय हो वह सुल से राज्य करने लगा।—लखरू। (ख) सुभ्राने की मञ्जूरी है कि जिसके चहूँ शेर तापे का फोट शेर पकी सुभ्रान, चौड़ी खाईं, स्फटिक के चार फाटक हस्तादि हैं।—लखरू।

सुभ्राना-क्रि० सं० [हिं० चूना = उपकना] (१) उपकाना। बूँद बूँद गिराना। (२) सुपड़ना। चिकनाना। रसमय करना। रसीला बनाना। उ०—बेष सुभ्रानह सुचि पवन कहै सुधाह जाइ तौ न जगि धरनि घन घाम की।—तुलसी। (३) भवके से अक् उबारना। जैसे, शराय सुभ्राना।

सुभ्राव-संज्ञा स्त्री० [हिं० सुभ्राना] सुभ्राने की क्रिया या भाव।

सुकंदर-संज्ञा पुं० [फा०] गाजर, वा शलगम की तरह की एक जड़ जो सुर्खी लिप होती है और तरकारी के काम में आती है। इसका स्वाद कड़ मीठापन लिप होता है। कहीं कहीं इससे खाई भी निकाली जाती है। सुकंदर ऐसे स्थानों पर

बहुत उगता है जहाँ खारी मिट्टी या खारा पानी मिलता है। समुद्र के किनारे सुकंदर की पैदावार अच्छी होती है। इसके लिये शोरा और नमक मिला पानी प्याद का काम करता है।

सुक-संज्ञा पुं० दे० "चूक"।

सुकसुकाना-क्रि० अ० [हिं० चूना = उपकना] (१) किसी द्रव पदार्थ का बहुत घोरिक छेदों से हो कर मूम्म कणों के रूप में बाहर आना। रस कर बाहर फैलना। उ०—घमड़े पर रगड़ लगने से खून सुकसुका आया। (२) पसीजना। आर्द्र होना। सुचाना।

सुकसुहिया-संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) एक छोटी चिड़िया जो बहुत तापके बोलने लगती है। (२) कागज़ या चमड़े का बना हुआ एक किलौना जो हिलाने या दधाने से चूँ चूँ शब्द करता है।

सुकटा-संज्ञा पुं० [हिं० सुटका] चंगुल। सुटकी।

मुहा०—सुटका भर = चंगुल भर। उतना (थाया) आदि नितना चंगुल वा सुटकी में आवे।

सुकटी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुटकी"।

सुकता-वि० [हिं० सुकना] बेवाक। निःशेष। श्रदा। (श्रय या श्रये पैसे के हिसाब किनाय के संबंध में इसे बोलते हैं)

उ०—एक महीने में हम तुम्हारा सब रुपया सुकता कर देंगे।

सुकती-वि० दे० "सुकता"।

सुकना-क्रि० अ० [सं० सुक, प्रा० सुकि] (१) समाप्त होना। खतम होना। निःशेष होना। न रह जाना। बाकी न रहना।

उ०—(क) सारी किताब छपने को पड़ी है, कागज़ अभी से सुक गया। (ख) प्राण पिशाच की गुन गापा साधु कहां तक मैं गाऊँ। गाते गाते तुम्हें नहीं यह चाहे मैं ही सुक जाऊँ।

—श्रीधर पाठक। (२) बेवाक होना। श्रदा होना। सुकता होना।—उ०—उनका सब श्राय सुक गया। (३) तौ होना। निरुपना। जैसे, मनाड़ा सुकना। (४) सुकना। भूल करना। भुट करना। फसर करना। श्रवसर के अनुसार कार्य न करना। उ०—(क) काल सुभाउ करम बरियाई। भलेव प्रकृति बस सुकई भलाई।—तुलसी। (ख) तेउ न पाइ अरु समउ सुकहाँ। देखु विचारि मातु मन माहीं।—तुलसी। (३) खाली जाना। निरुपक होना। व्यर्थ होना। लथ पर न पहुँचना। उ०—चित्रहटु जनु श्रवक शरी। सुकइ न धात मार मुठमेरी।—तुलसी।

विशेष—यह क्रिया और क्रियाओं के साथ समाप्ति का अर्थ देने के लिये संयुक्त रूप में भी आती है। जैसे, तुम यह काम कर चुके ? , तुम कब तक खा चुकेगे ? , यह श्रय चल चुके हैंगे। व्यर्थ के रूप में भी इस क्रिया का प्रयोग बहुत होता है। जैसे, तुम श्रय था चुके, अर्थात् तुम श्रय नहीं आयोगे।

'वह दे चुका' अर्थात् वह श्रय न देगा।

सुकरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] खेद चीनी।

चुकरेंड-संज्ञा पुं० [दे०] देासुहा सांघ जिसे रूँसी भी कहते हैं । उ०—खेलनि हंक भुजंग की रसना धयननि जानि । गज रद मुख चुकरेंड के कषा गिरा बरानि ।—केशव ।

चुकवाना-कि० सं० [हिं० चुकाना का प्रे०] अदा करना । दिखाना । सेवाकृ करना ।

चुकाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चुकाण] चुकने वा चुकता होने का भाव । चुकाना-कि० सं० [हिं० चुकाना] (१) सेवाकृ करना । किमी प्रकार का देना साफ करना । अदा करना । परिशोध करना ।

जैने, दाम चुकाना, खया चुकाना, श्रय्य चुकाना । (२) निवृत्ताना । तै करना । टडराना । जैसे, सैदा चुकाना, भराड़ा चुकाना ।

चुकीया-संज्ञा स्त्री० [दे०] तेलियों की दानी में पानी देने का छोटा बरतन । कुविहथा ।

चुकीता-संज्ञा पुं० [हिं० चुकाना + पीला (मल०)] अणु का परिशोध । कजु की सफाई ।

मुहा०—चुकीता खिलना = भराई का कागज लिल कर देना । कजु चुकता पाने की रसीद देना । भराई करना ।

चुकाड़-संज्ञा पुं० [हिं० अदान ?] मिट्टी का गोल छोटा बरतन जिसमें पानी शराब आदि पीते हैं । घुरवा ।

चुकाई-संज्ञा पुं० दे० “चूक” ।

चुकाार-संज्ञा पुं० [सं०] सिंहाद । गर्जन । गरज ।

चुकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूक] घोखा । छल । कपट । कि० प्र०—राना ।—देना ।

चुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूक नाम की खाई । चुक महासु । चूकाम् । (२) एक प्रकार का लडा शाक । चूका का साग । (३) अमलवेद । (४) कान्नी । सऊया दुध्या अम्लरस । संघान ।

चुकीक-संज्ञा पुं० [सं०] चूका का साग ।

चुकासल-संज्ञा पुं० [सं०] इमली ।

चुकायास्तुक-संज्ञा पुं० [सं०] अमलौनी का साग ।

चुकावेषक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की कान्नी ।

चुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अमलौनी का साग । (२) इमली ।

चुकाम्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूक नाम की खाई । (२) चूका का साग ।

चुकाम्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] अमलौनी का साग ।

चुकिहा, चुकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नोनिया । अमलौनी का साग । (२) इमली ।

चुसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंसा ।

चुखाना-कि० सं० [सं० चुप] (१) दुदसे समय माय के धन से दूध उतारने के लिये पकड़े उसके बच्चे को पिखाना । उ०—भाई ही गाड़ चुखाये कों सुं चुवाह चजी न पछानि, को

घेरति । नैकु डेराय नहीं कय की यह माय रिसाय छटा चढ़ि डेरति ।—देव । (२) खाना ।—उ०—भरि अपने कर बनक कचेरा पीवति प्रियहिं चुखाप ।—सूर ।

चुगद-संज्ञा पुं० [फा०] (१) उल्लू पक्षी । (२) सूँ । मूड़ । घेवङ्क ।

चुगाना-कि० सं० [सं० नयन] चिड़ियों का चोंच से दाना उठा कर खाना । चोंच से दाना बिनना । उ०—उपलहिं रसि मेति उतराहीं । चुगहिं हंस थी केलि काराहीं ।—जायसी ।

चुगल-संज्ञा पुं० [फा०] (१) परोच में दूसरे की निंदा करनेवाला । पीठ पीछे शिकायत करनेवाला । इधर की उधर लगानेवाला । सुतरा । उ०—कदा करै रसखान को, कोऊ सुगल खबर । जो पै राखनहार है माखन चाखनहार ।—रसखान । (२) वह कंकड़ जिसे चिलम के छेद पर रख कर तयाकू भरते हैं । गिठो । गिड्डक ।

चुगलखोर-संज्ञा पुं० [फा०] परोच में निंदा करनेवाला । पीठ पीछे शिकायत करनेवाला । इधर की उधर लगानेवाला । सुतरा ।

चुगलखोरी-संज्ञा स्त्री० [फा०] चुगली खाने का काम । परोच में निंदा करने की क्रिया वा भाव ।

चुगलस-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक तरह की लकड़ी ।

चुगलाना-कि० सं० दे० “चुभन्नाना” ।

चुगली-संज्ञा स्त्री० [फा०] पीठ पीछे की शिकायत । दूसरे की निंदा जो उसकी अनुपस्थिति में किसी तीसरे से की जाय । उ०—अपने रूप को इहाँ सुनायो । बजनारी यथारिन हैं सब चुगली आर्पहिं जाय लगयो ।—सूर ।

कि० प्र०—करना ।—खाना ।—लगाना ।

चुगा-संज्ञा पुं० [हिं० चुगना] (१) वह अन्न, आदि जो चिड़ियों के आगे चुगने के लिये ढाला जाय । चिड़ियों का चारा । (२) दे० “बेगा” ।

चुगार-संज्ञा स्त्री० [हिं० चुगना + ई (मथ०)] चुगने का माव वा क्रिया ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चुगना + ई (मथ०)] (१) चुगाने की क्रिया वा भाव । (२) चुगाने की मजूदरी ।

चुगाना-कि० सं० [हिं० चुगना] चिड़ियों को दाना खिलाना । चिड़ियों को चारा ढालना । उ०—द्विदु मन हरि विमुचन को संग । मिनके संग कुपुषि वपजत है, परत भजन में भंग । कदा होत पय पान कराये, विप नहीं तजत भुजंग । कागहि कदा करू चुगाये खान रह्याप गंग ।—सूर ।

संघो० कि०—देना ।

चुगल *-संज्ञा पुं० दे० “चुगल” ।

चुगलखोर-संज्ञा पुं० दे० “चुगलखोरी” ।

चुगलखोरी-संज्ञा स्त्री० दे० “चुगलखोरी” ।

बुगुली †*—संज्ञा स्त्री० दे० "बुगुली" ।

बुग्गा—संज्ञा पुं० दे० "बुग्गा" ।

बुग्गी—संज्ञा स्त्री० [दे०] चखने की थोड़ी सी वस्तु । घाट । चसका ।

बुचकारना—कि० घ० [बु०] प्यार से बुचन के पेसा शब्द मुँह से निकाल कर बोलना । बुचकारना । पुचकारना । दुजारना । प्यार दिखाना । उ०—(क) मीठा बहुत बुरा बलदाऊ । कहन लगे धन धरुा तमासे, सब मोड़ मलि धाऊ । मोहूँ को बुचकारि गये लै, जहाँ सपन बन भाऊ । भागि चले कहि गये उहाँ ते, काटि खाइहै हाऊ ।—सूर । (ख) चाहि बुचकारि चूँचि लालत लावत बर तैसे फल पावत जैसे सुयीन येहे हैं ।—तुलसी ।

बुचकारी—संज्ञा स्त्री० [बु०] बुचकारने की क्रिया या भाव ।

बुचाना—कि० घ० [स० चवन] चूना । टपकना । रमना । निचुड़ना । गरना । कण कण या बूँद बूँद करके निकलना । ('पूना' या 'टपकना' क्रिया के समान टपका प्रयोग भी टपकनेवाली वस्तु (जैसे पानी) तथा जिसमें से टपके (जैसे घर) दोनों के लिये होता है ।) उ०—(क) झुकलित जे पुलकित गात । अनुराग नैन चुचात ।—सूर । (ख) बाल भाव जिय में सुष आइ अरुन चले चुचार्य ।—सूर । (ग) वैगुना रंग चढ़े चित में चुनरी के चुचात लला के निचोरत ।—देव । (घ) रहो गुही येनी लखे, गुहिबे के त्याहार । लागे नीर चुचावने, नीटि मुलाप यार ।—विहारी । (च) घोरि डारी केसरि सुयेसरि बिलोरि डारी बेरि डारी चुनरि चुचात रंग देनी अये ।—पद्मनाभ ।

बुचु—संज्ञा पुं० दे० "चरु" ।

बुचुआना—कि० घ० दे० "बुचाना" ।

बुचुक—संज्ञा पुं० [स०] (१) कुचाम भाग । स्तन के सिरे या नेक पर का भाग जो गोल बुकी के रूप में होता है । डिगनी ।

(२) दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश । (३) ऊक देश का निवासी ।

बुचुकना—कि० घ० [स० बुक + ना (प्रत्य०)] सूख कर सिक्कड़ जाना । पेसा सूखना जिसमें कुरियाँ पड़ जाँय । नीरस होकर संकुचित हो जाना । जैसे, फल का बुचुकना, चेहरे का बुचुकना ।

बुचु—संज्ञा पुं० [स०] पालक की तरह का एक प्रकार का साग जिसे चौरतिया भी कहते हैं ।

बुटका—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का गलीचा वा कालीन ।

† संज्ञा पुं० [हिं० बोट + क = करनेवाला] कोड़ा । चाहुक । संज्ञा स्त्री० [बु०] बुट बुट । बुटकी ।

बुटकना—कि० स० [हिं० बोट] कोड़ा मारना । चाहुक मारना । उ०—करे चाह सेँ बुटकि कै खरे उड़ैहै मैंन ।

लाज नवाप तरफत करत बूँद सी नैन ।—विहारी ।

कि० स० [हिं० बुटकी] (१) बुटकी से तोड़ना । जैसे, साग बुटकना, फूल बुटकना । (२) साँव काटना ।

बुटकला—संज्ञा पुं० दे० "बुटकुला" ।

बुटका—संज्ञा पुं० [हिं० बुटकी] (१) बड़ी बुटकी । (२) बुटकी भर धाटा या और कोई अन्न ।

कि० प्र०—देना ।—लेना ।

बुटकी—संज्ञा स्त्री० [बु० बुट बुट] (१) अँगूठे और बीच की उँगली (अथवा तर्जनी) की वह स्थिति जो दोनों को मिलाने या एक को अन्य पर रखने से होती है । किमी वस्तु को पकड़ने, दवाने या लेने आदि के लिये अँगूठे और बीच की (अथवा और किसी) उँगली का मेल । जैसे, बुटकी में लेना, बुटकी से उठाना ।

मुहा०—बुटकी देना = बुटकी बजाना । उ०—जो मूरति जल धल में व्यापक निगम न खोजत पाई । सो मूरति चू अपने अंगन बुटकी दै दै मचाई ।—सूर । बुटकी बजाना = अँगूठे को बीच की उँगली पर रख कर जोर से टटका कर शब्द निकालना । (बुटकी प्रायः संकेत करने, किसी का ध्यान आकर्षित करने, किसी को बुलाने, जगाने कथवा ताल देने आदि के लिये बजाई जाती है । हिं० दुओं में यह प्रथा है कि जब किसी को जैभाई आती है तब पास के लोग बुटकियाँ बजाते हैं ।) बुटकी बजाते में या बुटकी बजाते = उतनी देर में जितनी देर में बुटकी बजती है । चट पट । देखते देखते । बात की बात में । उ०—यह काम तो बुटकी बजाते होगा । बुटकी बजानेवाला = लुत्तामरी । चापटन । बुटकी भर = उतना जितना अँगूठे और मध्यमा के मिलाने पर दोनों के बीच में था जाय । बहुत थोड़ा । ज़रा सा । जैसे, बुटकी भर आटा, बुटकी भर नमक । बुटकी बैठना = किसी ऐसे काम का अंमल होना जो बुटकी से पकड़ कर किया जाय । जैसे, उखाड़ना, नाचना आदि । बुटकियों में = बहुत शीघ्र । चट पट । उ०—देखते रहे, अमी बुटकियों में यह काम होता है । बुटकियों में या पर उठाना = बात की बात में निघटाना । अत्यंत तुच्छ वा गहन समझना । कुछ न समझना । कुछ पराह न करना । उ०—(क) पेसे मामलों को तो मैं बुटकियों में बढ़ाता हूँ । (ख) वह मेरा क्या कर सकता है, ऐसी को तो मैं बुटकियों पर उड़ता हूँ । बुटकी लागाना = (१) किसी वस्तु को पकड़ने नोचने, खींचने, दवाने आदि के लिये अँगूठे और मध्यमा (अथवा और किसी उँगली) को मिला कर काम में लाना । (२) कपड़े के धान को उँगलियों से फाड़ना । धान पर से कपड़ा उतारना । (३) खपा पैसा चुनने के लिये उँगलियों से जेर फाड़ना । जेब धुटना । (४) दूध बुझने के लिये बुटकी से गाँव का घन पकड़ना । (५) बुटकी से पर्तों को मोड़ कर देना बनाना ।

(२) सुटकी भर चाटा। योड़ा चाटा । उ०—साउ को सुटकी दे दो ।

कि० प्र०—देना ।

मुद्दा०—सुटकी माँगना=मिन्ना माँगना ।

(३) सुटकी घनने का शब्द। बड़ शब्द जो थोड़े को बीच की डँगली पर रख कर जोर से घुटकाने से होना है। उ०—किन्नाकि किलकि नाचत सुटकी मुनि डरपति जननि पानि सुटकाएँ।—सुलसी। (४) थोड़े और तर्जनी के संयोग से किसी प्रांथी के चमड़े को दयाने वा पीड़ित करने की क्रिया ।

कि० प्र०—काटना ।

मुद्दा०—सुटकी भरना = (१) सुटकी काटना । (२) सुभती वा लगती हुई बात कहना । दे० "सुटकी लेना ।" सुटकी लेना = (१) हँसी उठाना । दिखनी उठाना । ठट्टा करना । उपहास करना । (२) व्यंग्य बचन बोलना । सुभती वा लगती बात कहना । (३) सुटकी से खाना । सुटकी से दयाना । सुटकी भरना । उ०—बार बार कर गहि गहि निरपसत पूँपत श्रोत करी किन न्यारी । कथहुँक कर परसत कपोल सुह सुटकि लेत हार्न हर्नहि निहारो ।—सुर ।

(२) थोड़े और डँगली से मोड़ कर बनाया हुआ गोखरू, गोटा या लचका । कभी कभी यह किरतीनुमा भी होना है, जिसे किरती की सुटकी कहते हैं । (६) बंदूक के प्याले का टकना । बंदूक का घोड़ा । (लखा०) । (७) कथारदार गुलबदन या मारसु । (८) पैर की डँगलियों में पहनने का चाँदी का एक गहना । एक प्रकार का चाँड़ा छल्ला । (९) कपड़ा छापने की एक रीति । (१०) काठ आदि की बनी हुई एक प्रकार की चिमटी जिसमें कागज या किली और हलकी बन्नुको पकड़ा देने से यह इधर उधर बढ़ने लगी जाती । (११) पैकश । (१२) दूरी के ताने का सूत ।

सुटकुला—संज्ञा पुं० [हि० चोट + कला] (१) विलक्षण बात । विनोदपूर्ण बात । चमत्कारपूर्ण वक्ति । थोड़े में कही हुई ऐसी बात जिससे लोगों को ऊबड़ल हो । मज़ेदार बात ।

मुद्दा०—सुटकुला झोड़ना = (१) विपक्षप यात कह बैठना । दिखनी की बात कहना । (२) कोई ऐसी बात कहना जिसमें एक मन्ना मामला उत्पन्न हो जाय । उ०—उसने एक ऐसा सुटकुला झोड़ दिया कि दोनों आपस ही में लड़ पड़े ।

(२) दवा का फोड़े जैसा नुसला जो बहुत गुण-कारक हो । लटका ।

सुटफुटा—संज्ञा स्त्री० [हि०] फुटकर वस्तु । फुटकर चीज़ ।

सुटला—वि० दे० "सुटीला" ।

संज्ञा पुं० [हि० चोटी] (१) एक गहना जो सिर पर चोटी

वा बेशी के ऊपर पहना जाता है । (२) शिबों की बँधी हुई बेशी । जूरा ।

सुटाना—कि० थ० [हि० चोट] चोट खाना । घायल होना ।

सुटिया—संज्ञा स्त्री० [हि० चोटी] (१) वह बालों की खट जो सिर के बीचो बीच खटती जाती है । शिखा । चुंदी । (हिंदू, चीनी आदि इस प्रकार की शिखा रखते हैं) ।

मुद्दा०—(किसी की) सुटिया हाग में होना = (किसी का) अपने अधीन होना । (किसी का) अपने नतबंद बनना ।

(२) चोरों या ठगों का सरदार ।

सुटियाना—कि० सं० [हि० चोट] चोट पहुँचाना । घायल करना । घायल करना । ज़बर्दस्ती करना । काटना । ठसना ।

सुटीलना—कि० ग० [हि० चोट] चोट करना या पहुँचाना ।

सुटीला—वि० [हि० चोट] चोट खाया हुआ । जिसे चोट लगी हो । जिसे घायल लगा हो ।

संज्ञा पुं० [हि० चोटी] छोटी चोटी । अगल बगल की पतली चोटी । मंडी । उ०—(क) चोटी सुटिल सीसकूल पर । ब्रैना बंदी बंदनी सुपर ।—सूदन । (घ) सखि, राधावर कैसा सजीला । देखो री गुदिया नजर नहिँ लागे शंभुरिन कर चट फाट सुटीला ।—हरिचंद्र ।

सुटैल—वि० [हि० चोट] (१) जो चोट खाए हो । जिसे चोट लगी हो । घायल । (२) चोट करनेवाला । आक्रमण करनेवाला ।

सुटा—संज्ञा पुं० दे० "सुटला" ।

सुड—संज्ञा स्त्री० दे० "सुड" ।

सुडना—कि० थ० दे० "सुटना" ।

सुड़ाव—संज्ञा पुं० [देग०] एक जंगली जाति ।

सुड़ियाँ—संज्ञा स्त्री० दे० "सुड़ी" ।

सुड़िहार—संज्ञा पुं० [हि० सूटी + हार (शयन०)] [स्त्री० सुड़ि-हारिन] सूटी बनाने वा बेचनेवाला ।

सुडुका—संज्ञा पुं० [हि०] लाल की तरह की एक छोटी सी चिड़िया । इसकी चोंच और पैर काले, पीठ मटमले रंग की तथा पूँछ कुछ खंबी होती है ।

सुडैलवाल—संज्ञा स्त्री० [देग०] बैर्यों की एक जाति ।

सुडैल—संज्ञा स्त्री० [सं० चुड = चोटी + ऐल (शयन०)] (१) भूत की स्त्री । भूतनी । दायन । प्रेतनी । पिराचिनी ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि सुडैलों के सिर में यड़ी भारी चोटी होती है जिसे फाट लेने से वे बरीभूत हो सकती हैं ।

(२) कुर्या और विकराल स्त्री । (३) दुष्टा । कू स्वभाव की स्त्री ।

सुडु—संज्ञा स्त्री० [सं० चुत = भरो] भग । योगिनी । (पंजाबी) ।

सुडी—संज्ञा स्त्री० [हि० सुड] एक प्रकार की गाली जो शिबों को दी जाती है । चिनाब ।

सुन-संज्ञा पुं० [सं०] सुद्वार ।
सुत्यल-वि० [हि० चुहस] ठट्टेवात्र । डटोल । विनादमिय ।
मसपरा ।

सुत्यलपना-संज्ञा पुं० [हि० चुत्यस + पन] डटोली । हँसी दिल्लीगी ।
ममपरापन ।

सुत्या-संज्ञा पुं० [हि० चोपना] वह घरेर जिसे लड़ाई में दूसरे
घरेर ने घायल किया हो ।

सुदका-वि० [हि० चोदना] बहुत अधिक चोदनेवाला । श्रयंत
कामी ।

सुदना-क्रि० प्र० [हि० चोदना] चोदा जाना । पुरुष से संयुक्त
होना ।

सुदवार्द-संज्ञा स्त्री० दे० "सुदार्द" ।

सुजा स्त्री० [हि० सुजाना] वह धन जो प्रसंग करने वा
कराने के बदले में दिया जाय ।

सुदवाना-क्रि० प्र०, क्रि० स० दे० "सुदाना" ।

सुदवास-संज्ञा स्त्री० [हि० सुदवाना + वास (प्रत्य०)] सुदवाने की
इच्छा । मैथुन कराने की कामना ।

क्रि० प्र०-लगाना ।

सुदवासी-संज्ञा स्त्री० [हि० सुदवाना] वह स्त्री जिसे मैथुन कराने
की कामना हो ।

सुदवैया-संज्ञा पुं० [हि० चोदना + वैया (प्रत्य०)] चोदनेवाला । स्त्री-
प्रसंग करनेवाला ।

सुदार्द-संज्ञा स्त्री० [हि० चोदना] (१) चोदने की किया वा भाव ।
स्त्री-प्रसंग । मैथुन । (२) दे० "सुवार्द" ।

संज्ञा स्त्री० [हि० सुदना] [भी० सुदामा] वह धन जो
सुवाने के बदले में मिले ।

सुदाना-क्रि० प्र० [हि० चोदना का प्र०] चोदने का काम कराना ।
(स्त्री का) पुरुष से प्रसंग कराना । मैथुन कराना ।

क्रि० स० किसी स्त्री को पुरुष-समागम कराना । किसी
स्त्री को पुरुष से संयुक्त कराना ।

सुदास-संज्ञा स्त्री० [हि० चोदना + वास (प्रत्य०)] चोदने की
इच्छा । स्त्री-प्रसंग करने की कामना ।

सुदासा-संज्ञा स्त्री० [हि० चोदना] यह पुरुष जिसे स्त्री-प्रसंग
करने की कामना हो ।

सुद्वैया-वि० दे० "सुवद्वैया" ।

सुद्वैथल-संज्ञा स्त्री० [हि० चोदना] चोदने का भाव वा क्रिया ।

सुन-संज्ञा पुं० [सं० सुन, हि० सुन] (१) आवा । पिसान । (२)
घर । गुर्वा । सुकनी । रेत ।

विशेष-इस शब्द में इय शब्द का प्रयोग समागम में प्रायः होता
है, जैसे, सोहसुन, ररसुन ।

सुनसुना-संज्ञा पुं० [दे०] कमरों का एक मोटे का बौझार ।
वि० [दे०] (१) जिसके टूने वा रगाने से सुनसुनाहट शब्द

हो । जिसके स्पर्श से कुछ जलन लिए हुए पीड़ा उत्पन्न हो ।
जिसकी झाल वा तीक्ष्णता टूने से जान पड़े । (२) बिड़ने-
वाला । रोनेवाला । बात बात पर दिनकरनेवाला (लड़का) ।
संज्ञा पुं० [हि० सुनसुना] घृत के ऐसे मरीन
सफेद कीड़े जो पेट में पड़ जाते हैं और मल को साथ गिराते
हैं । यकों को ये कीड़े बहुत कष्ट देते हैं ।

मुहा०-सुनसुना लगना = मतद्वार में कुर्मियों के काटने के
कारण जलन और खुजली होना ।

सुनसुनाना-क्रि० प्र० [दे०] (१) जीभ वा घमड़े पर तीक्ष्ण
लगना । कुछ जलन लिए हुए सुभने की सी पीड़ा करना ।

उ०-राई का खेप बदन पर सुनसुनाता है । (२) दिनकरना ।
रोना । चीं चीं करना । (लड़कों के लिये) ।

सुनसुनाहट-संज्ञा स्त्री० [दे०] शरीर पर कुछ जलन लिए
सुभने की सी पीड़ा । झाल वा तीक्ष्णता जिसका अनुभव
लवा को हो ।

सुनट-संज्ञा स्त्री० [हि०] वह मिट्टुन जो दाघ पड़ने के
कारण कपड़े, कानून आदि में पड़ जाती है । चुनन । सुना-
वट । बल । शिकन । सिलवट ।

क्रि० प्र०-हालना ।-पड़ना ।-लाना ।

विशेष-प्रायः लोग पोती, टोपी, कुरते आदि पर वैंगली वा
चियाँ आदि से दवा दवा कर शोमा के लिये सुनट
हालते हैं ।

सुनन-संज्ञा स्त्री० दे० "सुनट" ।

सुनन-संज्ञा पुं० [हि० सुनना] वह मिट्टुन जो दाघ पाकर कपड़े
कानून आदि पर पड़ती है । सिलवट । शिकन । चुनट ।

सुननदार-वि० [हि० सुनन + दार] जिसमें सुनन पड़ी हो ।
जो घुनी गई हो ।

सुनना-क्रि० प्र० [सं० सुनन] (१) दौरी धनुषों को हाथ चोंच
आदि से एक एक कर के उठाना । एक एक करके इकट्ठा
करना । चीनना । जैसे, दाना सुनना । (२) बहुतां में से
एक छुट कर प्रत्यक्ष करना । समूह में से एक एक वायु
गृह्य करके निकालना वा रगाना । जैसे, धनाग में से
कंपडियाँ चुन कर केंकना । (३) बहुतां में से कुछ को पसंद
करके रगाना वा लेना । समूह वा उेर में से यथार्थि एक
एक को छुटाना । इच्छानुसार संप्रह करना । जैसे, (क)
दुनमें जो पुस्तकें अच्छी हों उन्हें चुन लो । (ख) इस संप्रह
में अच्छी अच्छी कविताएँ चुन कर रखी गई हैं ।

मुहा०-सुना हुआ = बढ़िया । उगम । भंड ।

(४) सजाना । सजा कर रगाना । सरती से लगाना । प्रम मे
स्थापित करना । उ०-छालमारी में किताबें चुन दो । (५)
तद पर तद रगाना । चोड़ई करना । दौधार उठाना । उ०-
कंकड़ चुन चुन मदल उठाय लोग कई घर मेरे । ना
पर मेरा ना पर संता चिड़िया रैन बसेत ।

मूला—दीवार में चुनना = फिनी मनुष्य को लड़ा कर के उनके ऊपर हँडों की जोड़ाई करना। जैसे श्री फिनी को दीवार में गड़वा देना।

(१) चुटकी या धर्रे से दया दया कर कपड़े में चुनन या सिट्टन डालना। गिकन डालना। जैसे, पोती चुनना, फुरता चुनना, इत्यादि। (७) गायकृत या उँगलियों में खोँटना। चुटकी में बपटना। चुटकी से नाच कर खलम करना। जैसे, फूल चुनना। ३०—माकी आश्रय देखि कै, कतिथां करी पुकार। फूली फूली चुन लई, फालि हमरी बार।—कबीर।

सुनरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुनरा] (१) एक प्रकार का लाल रंग हुआ कपड़ा जिसके बीच में थोड़ी थोड़ी दूर पर सफेद बुँदकियां होती हैं। (२) शय चुनरी कड़े रंगों और कड़े प्रकार की वृष्टियों की बनती है।

विशेष—सुनरी रंगने समय कपड़े को स्थान स्थान पर चुन कर धाँप देते हैं जिससे रंग में योत्ने पर धँपे हुए स्थानों पर सफेद सफेद बुँदकियां छूट जाती हैं।

(२) चुशी। लान रंग के एक नग का ज्येथा दुकड़ा। याकत।

सुनरा—संज्ञा पुं० [हि० चुनरा] लड़का। श्यामिर्द। (सुनार)।

वि० चुना हुआ। सुनिंदा। बड़िया।

सुनराणा—क्रि० सं० [हि० चुनना का प्रे०] चुनने का काम कराना। दे० "सुनारा"।

सुनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) ऐसा धँसा। इस तरह उस तरह। (२) हथर वधर की बात। वह जो मतलब की बात न हो। ३०—अथ सुनी सुनी मत करो, हथथा लाओ। (३) घनावठी बात।

क्रि० प्र०—करना।

सुनार—संज्ञा स्त्री० [हि० चुनना] (१) चुनने की क्रिया या भाव। विनने की क्रिया या भाव। (२) दीवार की जोड़ाई। दीवार की जोड़ाई का रंग। (३) चुनने की मजूदरी।

सुनाखा—संज्ञा पुं० [हि० चुनी + खा] वृत्त बनाने का औजार। परकार। धँपाव।

सुनाना—क्रि० सं० [हि० चुनने का प्रे०] (१) विनवाना। इकट्ठा करवाना। (२) अलग करवाना। छँटवाना। (३) सजवाना। मर्म या रंग से सजवाना। (४) दीवार की जोड़ाई कराना। (५) दीवार में गड़वाना। (६) चुनन या गिकन डलवाना।

सुनाय—संज्ञा पुं० [हि० चुनना] (१) चुनने का काम। विनने का काम। (२) बहुतों में से कुछ को किसी कार्य के लिये पसंद या नियुक्त करने का काम। ३०—इस वर्षे कैसिख का सुनाव मरपाव हुआ है।

सुनाघट—संज्ञा स्त्री० [हि० चुनना] चुनन। चुनट।

सुनिंदा—वि० [हि० चुनना + दा (प्रत्य०)] (१) चुना हुआ।

छँटा हुआ। (२) बहुतों में से पसंद किया हुआ। अस्पृहा। बड़िया। (३) गण्य। प्रधान। सुगत सुगत।

सुनिया—संज्ञा स्त्री० [देग०] सुनारों की बोली में बड़की को कहते हैं।

सुनिघा गौर्द—संज्ञा पुं० [हि० चुनी + गौर्द] दाक का गौर्द। पलाश का गौर्द। कमरकस। (यह श्रापण के काम में जाता है।)

सुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चुनी] (१) चुनी। सुनी। मानिक या और किसी रंग का पट्टन छोटा दुकड़ा। ३०—चहचही चहल चहूँ धा चहद चंदन की चंदक सुनीन चौक चौकन चड़ी है श्राव।—पद्माकर। (२) मोटे श्रय या दाल श्रादि का पीसा हुआ चूने जिसे प्रायः ग्रीन कोय राने हैं।

पौ०—सुनी भूसी = मोटे अन्न का पीसा हुआ चूने या चोकर आदि।

सुनुया—संज्ञा पुं० दे० "सुनुवा"।

सुनीटी—संज्ञा स्त्री० दे० "सुनीटी"।

सुनीटिया (रंग)—संज्ञा पुं० [हि० सुनीटी] एक रंग जो कालापन लिए लाल होता है। एक प्रकार का खैरा या काकरेगी रंग जिसकी रंगाई लालजक में होती है। यह भाकिल च्यानी रंग से कुछ अधिक काला होता है। ३०—पचरंग रंग चेंदी बनी, खरी उठी मुख जेति। पहिरे चीर सुनीटिया, चटक चैगुनी हेति।—विहारी।

विशेष—यह रंग हल्दी, हारा, कलस और पतंग (बकम) की लकड़ी के संगम से बनता है।

सुनीटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुना + ठेठी (प्रत्य०)] यह धरतन जिसमें पान जगाने या तंबाकू में मिश्राने के लिये गीजा चुना रखा जाय।

सुनीती—संज्ञा स्त्री० [हि० चुनुनुना या चुना] (१) प्रयुक्त पड़ने-वाली बात। उच्चेजना। पढ़ावा। चिह्न। ३०—मदन धृति को देरा महामद बुधि बल बसि न सरत शर चैन। सुदास मधु दूत शिनिदि दिन पदवत चरित सुनीती देन।—गुर।

(२) युद्ध के लिये उच्चेजना या आह्वान। ललकार। प्रथा। ३०—(क) लक्ष्मिन शवि ज्ञाप्य सो, नाक कान विनु कीन्हि। ताके कर रावन फहँ मनहुँ सुनीती दीन्हि।—तुलसी।

(ख) चणुरंगिनी सैन रोग दीन्है। विचरत सखि सुनीती दीन्है।—तुलसी। (ग) छडे मास नहिँ करि सकै बरस दिना करि लेय। फहँ कपीर सो सैन जन यम सुनीती देय।—कबीर। (घ) दगा देत दून सुनीती विप्रगुसे देत यम को जय देत पापी लेत शिवजेक।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—देना।

संज्ञा स्त्री० दे० "सुनीटी"।

सुनुट—संज्ञा स्त्री० दे० "सुनुट"।

सुनुत—संज्ञा स्त्री० दे० "सुनुट"।

सुप्रन—संज्ञा स्त्री० दे० “सुनन” ।

सुप्रना—संज्ञा पुं० दे० “सुरना” ।

[क्रि० सं० दे० “सुनना” ।

† संज्ञा पुं० दे० “धूना” ।

सुप्रनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्ण] (१) मानिक, याज्ञत या और किसी रत्न का बहुत छोटा टुकड़ा। बहुत छोटा नग। (२) धनाज का चूर। भूसी मिले धातु के टुकड़े। (३) शीतनी। छिपे की चदर। (४) लकड़ी का थारीक चूर। जो थारी से रेतने पर निकलता है। कुनाई ।

सुप्र—वि० [सं० सुप्र (चोपन) = मैन] जिसके मुहँ से शब्द न निकले। अशब्क। मौन। स्वामोश। उ०—सुप्र रहो, बहुत मत बोलो ।

क्रि० प्र०—करना ।—रहना ।—साधना ।—होना ।

यौ०—सुप्रचाप=(१) मैन। स्वामोश। (२) शांत भाव से। विना चंचलता के। उ०—यह लड़का धड़ी भर भी सुप्रचाप नहीं बैठता। (३) विना कुद्व कहें मुने। विना प्रकट किए। गुप्त रीति से। धीरे से। छिपे छिपे। उ०—(क) यह सुप्रचाप रूपका बोक चलता हुआ। (ख) उसने सुप्रचाप उसके हाथ में रूप दे दिए। (घ) निर्योग। प्रयत्नहीन। अयत्नवान। निरल्ला। उ०—अब उठो, यह सुप्रचाप बैठने का समय नहीं है। सुप्र सुप्र = दे० “सुप्रचाप”। सुप्र दिनाल = (१) छिपे छिपे व्यभिचार करनेवाली स्त्री। (२) छिपे छिपे कोई काम करनेवाला। गुप्त गुंडा। छिपा रुस्तम।

मुद्रा०—सुप्र करना = (१) धोने न देना। † (२) सुप्र होना। मैन रहना। उ०—सुप्र करके बैठो। सुप्र नाधना, लगाना, साधना = मैनवाहनेन करना। स्वामोश रहना। † सुप्र मारना = मैन होना। सुप्रके से = दे० “सुप्रका” का मुद्रा०। उ०—मैन। स्वामोश। जैसे, मय से भली सुप्र। उ०—पेसी मीठी कुड़ नहीं जैसी मीठी सुप्र।—कपीर।

संज्ञा पुं० [दे०] पक्के सोहे की यह तलवार जिसमें हटने से सचने के लिये एक कषा लोहा लगा रहता है ।

सुप्रका—वि० [हि० सुप्रका] [स्त्री० सुप्रकी] (१) मौन। स्वामोश। क्रि० प्र०—होना ।

मुद्रा०—सुप्रके से = (१) विना किसी से कुद्व कहे मुने। शांत भाव से। (२) छिपाकर। गुप्त रूप से ।

(२) सुप्र्या। घुसा ।

सुप्रकानां—क्रि० सं० [हि० सुप्रका] मौन करना । न बोलने देना। स्वामोश कराना ।

सुप्रकी—संज्ञा स्त्री० [हि० सुप्र] मौन। स्वामोशी ।

क्रि० प्र०—साधना ।

मुद्रा०—सुप्रकी लगना = मुहँ से बात न निकालना। सत्रोटे में रहना ।

सुप्रचाप—क्रि० वि० दे० “सुप्र” के मुद्रा० ।

सुप्रङ्गना—क्रि० सं० [हि० चिपचिपा] (१) किसी गीली वस्तु को फैला कर लगाना। किसी चिपचिपी वस्तु का लेप करना। पोतना। जैसे, रोटी में घी सुप्रङ्गना। (२) दोष छिपाना। किसी दोष का आरोप दूर करने के लिये इधर उधर की बातें करना। उ०—उतने अपराध तो किया ही है, अब घाप के सुप्रङ्गने से क्या होता है ? (३) चिकनी सुप्रङ्गी कहना। चापलूसी करना। सुप्रामद करना ।

सुप्रङ्गा—संज्ञा पुं० [हि० चिपचिपा] वह जिमकी अर्धालों में बहुत कीचड़ हो। कीचड़ से भरी श्रौतोंवाला ।

सुप्ररी श्राद्ध—संज्ञा पुं० [दे०] पिंवाळ या रताळ जो मद्रास और मध्य भारत में अश्रिकता से होता है ।

सुप्रानां—क्रि० अ० [हि० सुप्र] सुप्र हो रहना। मौन रहना। स्वामोश रहना। न बोलना ।

सुप्र्या—वि० [हि० सुप्र] [स्त्री० सुप्र्या] जो बहुत कम बोले। जो अपनी बात को मन में छिप रहे। जो बात का उक्त जल्दी न दे। घुसा ।

सुप्र्यी—संज्ञा स्त्री० [हि० सुप्र] मौन। स्वामोशी ।

क्रि० प्र०—साधना ।

सुप्रलाना—क्रि० सं० [हि०] किसी वस्तु को जीभ पर रख कर स्वाद लेने के लिये मुहँ में इधर उधर डुलाना। मुहँ में ले कर धीरे धीरे श्वासदन करना ।

सुप्रकना—क्रि० अ० [अ०] पानी में सुम सुम शब्द करते हुए गोता खाना। बार बार डुबना उतराना ।

सुप्रकाना—क्रि० सं० [अ०] पानी में गोता देना। बार बार पकड़ कर डुबाना ।

सुप्रकी—संज्ञा स्त्री० [अ०] सुम सुम। डुबती। गोता। उ०—(क) लै सुप्रकी चलि जाति तित तित जलकेलि धधीर। कीजा केसर मीर से तित तित केसर मीर।—विहारी। (ख) जब विहार मिस मीर में लै सुप्रकी एक बार। दद भीतर मिलि परस्पर दोऊ करत विहार।—पद्माकर ।

सुभना—क्रि० सं० [हि०] (१) गड़ना। घँसना। किसी सुफीसी वस्तु का दबाव पा कर किसी नरम वस्तु के भीतर घुसना। जैसे, काँटा सुभना, सुई सुभना। (२) हृदय में रटकना। चित्त पर चोट पहुँचाना। मन में व्यथा उत्पन्न करना। उ०—उसकी सुभती हुई बातें कहां तक सुनें ? (३) मन में बैठना। हृदय पर प्रभाव करना। चित्त में बसा रहना। उ०—(क) उसकी बात मेरे मन में सुभ गई। (ख) दरति न टारे यह ध्रुवि मन में सुभी।—सूर। (घ) मग्न। लीन। तन्मय। उ०—जिसि

बालि चलेया लवि हुं हुमी तिमि सोहो मति रन चुमी ।—
गोपाल ।

चुमर चुमर—कि० वि० [अटु०] श्रॉट से चुस चुस कर पीने का
शब्द । बच्चों के दूध पीने का शब्द ।

चुमलाना—कि० सं० दे० “चुलाना” ।

चुमवाना—कि० सं० [हिं० चुमना का प्रे०] चुमाने का कार्य
दूसरे से कराना ।

चुमाना—कि० सं० [हिं० चुमना का प्रे०] धँलाना । गड़ाना ।

चुमोना—कि० सं० दे० “चुमाना” ।

चुमकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुमना + कार] चूमने का सा शब्द जो
प्यार दिखाने के लिये निकालते हैं । पुचकार ।

चुमकारना—कि० सं० [हिं० चुमकार] प्यार दिखाने के लिये
चूमने का सा शब्द निकालना । पुचकारना । दुलारना ।

३०—बह बच्चे से चुमकार कर सब बातें पूछने लगा ।

चुमकारी—संज्ञा स्त्री० दे० “चुमकार” ।

चुमवाना—कि० सं० [हिं० चुमना का प्रे०] चूमने का कार्य दूसरे
से कराना ।

चुमाना—कि० सं० [हिं० चुमना] किसी दूसरे के सामने चूमने के
लिये प्रस्तुत करना ।

चुम्मका—संज्ञा पुं० दे० “चुंवर” ।

चुम्मा—संज्ञा पुं० [हिं०] चुंवर । घोसा ।

कि० प्र०—देना ।—लेना ।

चुर—संज्ञा पुं० [देग०] (१) घाघ आदि के रहने का स्थान । माँद ।

(२) चार पाँच आदिमियों के बैठने का स्थान । बैठक । ३०—
घाट, घाट, चौपार, चुर, देवल, हाट, मसान ।—भगवतरमिक ।

संज्ञा पुं० [अटु०] कागज, मूले पत्ते आदि के सुड़ने या
टूटने का शब्द ।

३० वि० [सं० प्रचुर] बहुत । अधिक । ज्यादा । ३०—प्रेम
प्रशंसा विनय युक्त वेग वचन ये आदि ।—विधाम ।

चुरकरना—कि० अ० [अटु०] (१) चोखाना । चह-
कना । चीं चीं करना । चें चें करना । (ध्वंय वा
तिरस्कार से बोलते हैं) । † (२) चटकना । चूर होना ।

टूटना । पड़ना ।

चुरकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोटी] सुटिया । शिला ।

चुरकट—कि० वि० [हिं० चूर + टूटना] चकनाचूर । चूर चूर ।
चूरित । ३०—मुष्टिकी गद मरदि चार गू चुरकट करयो
कंस मनुष्य भयो नई रंगमूमि अजुराग रागी ।—चूर ।

चुरकुसा—संज्ञा पुं० [हिं०] चूर चूर । चूर मूर । चूर्ण । शुक्ली ।

३०—निलक पलीता गांधे दसन घन के पान । जेदि हेरहि
तेहि मारहि सुकुम परं विद्वान ।—जायसी ।

चुराना—कि० अ० दे० “चुरकना” ।

चुरचुरा—वि० [अटु०] जो खरा होने के कारण बरा से दवाने से
चुर चुर शब्द करके टूट जाय । जैसे, कुमकुमा, पापड़ आदि ।

चुरचुराना—कि० अ० [अटु०] (१) बहुत थोड़े आघात से चूर
चूर हो जाना । (२) चुर चुर शब्द करना ।

कि० सं० (१) किसी खरी चीज़ को चूर चूर करना । (२)
चुर चूर शब्द उच्यत्र करना ।

चुरट—संज्ञा पुं० दे० “चुरट” ।

चुरना—कि० अ० [सं० चूर = उतना, पकना] (१) घाघ पर
झोलते हुए पानी के साथ किसी वस्तु का पकना । सीकना ।

गीली वस्तु का गरम होना । जैसे, “दाल चुरना” । (२) घाघ
में गुप्त मंत्रणा या बातचीत होना ।

संज्ञा पुं० [हिं० चुनचुनना] सूत के ऐसे महीन सफेद कीड़े
जो पेट में पड़ जाते हैं और मल के साथ निकलते हैं । ये
कीड़े बच्चों को बहुत कष्ट देते हैं । चुनचुना ।

कि० प्र०—लगना ।

चुरमुर—संज्ञा पुं० [अटु०] खरी या डुरडुरी वस्तु के टूटने का
शब्द । करारी चीजों के टूटने की आवाज । जैसे, सूखी
पत्तियों का चुरमुर होना । ३०—चना चुरमुर बोलै । भाव
खाने को सुँह खोलै ।—हरिश्चंद्र ।

चुरमुरा—वि० [अटु०] जो धरेलन के कारण दवाने पर चुर चुर
शब्द करके टूट जाय । करारा । जैसे, पापड़, सूले पत्ते, आदि ।

चुरमुराना—कि० अ० [अटु०] चुरमुर शब्द करके टूटना ।
कि० सं० [अटु०] चुरमुर शब्द करके तोड़ना । जैसे चना,
पापड़ आदि चुरमुराना ।

चुरवाना—कि० सं० [हिं० चुराना = पकाना] पकाने का काम
कराना ।

कि० सं० दे० “चोरवाना” ।

चुरस—संज्ञा स्त्री० [देग०] कपड़े आदि की शिकन । सिलवट ।
सिकुड़न ।

चुरा—संज्ञा पुं० दे० “चूरा” । ३०—देखत चुरे कपूर ज्यों उरै जाय
जिन बाल । छिन छिन होत खरी खरी छीन छुरीली
बाल ।—विहारी ।

चुराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनना] चूरने की क्रिया वा भाव । पकाने
का काम ।

चुराना—कि० सं० [सं० चुर = चोटी करना] (१) किसी वस्तु को
उसके स्वामी के परोच वा अनजान में ले लेना । किसी
दूसरे की वस्तु को इस प्रकार ले लेना कि उसे पत्र न हो ।
गुप्त रूप से पराई वस्तु हरण करना । चोरी करना ।

मुहा०—चित्त चुराना = मन को आकर्षित करना । मन मोहित
करना ।

(२) छिपाना । परोच में करना । लोगों की दृष्टि से चपाना ।

३०—बह लड़का पैसा हाथ में चुराए है ।

दक्षिणी भाग में तथा पेंजाय के कुछ जिलों में अधिकता से होता है। इसके दूध में गटापारचा का अंश बहुत अधिक होता है। ताने दूध में बहुत सुगंधि होती है और वह आँख के लिये बहुत हानिकारक होता है। शाली दूध लगने से शरीर में छाले पड़ जाते हैं।

चूनर, चूनरी—संज्ञा० स्त्री० दे० “चुनरी”

चूना—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] एक प्रकार का तीक्ष्ण चारभरम जो पत्थर, कंकड़, मिट्टी, रीप, शंख या मोती आदि पदार्थों के भट्टियों में फूँक कर बनाया जाता है। तुरंत फूँक कर तैयार दिष्ट हुए चूने को कली या विना बुझा हुआ चूना कहते हैं। यह होने का उली स्वरूप में होता है जिसमें उसका मूल पदार्थ फूँक के जाने से पहले रहता है। कंकड़ का विना बुझा चूना “थरी” कहलाता है। विना बुझा चूना हवा लगने से थपनी शक्ति और गुण के अनुसार हुरत या कुछ समय में चूर्ण के रूप में हो जाता है और उसकी शक्ति और गुण में कमी होने लगती है। पर पानी के संगेय से विना बुझे चूने की यह दशा बहुत जल्दी हो जाती है। उस अवस्था में उसे “भरका” या बुझा हुआ चूना कहते हैं। विना बुझे चूने पर जब पानी डाला जाता है तो पहले तो यह पानी को खूब सोखता है, पर थोड़ी ही देर बाद उस में से बुलबुले छूटने लगते हैं और उस में से बहुत तेज़ गरमी निकलती है। तेज़ चूने के संगेय से शरीर चामिने लगता है और उस में कभी कभी छाले तक पड़ जाते हैं। पत्थर का चूना बहुत तेज़ होता है और मकान की दीवारों पर सफ़ेदी करने, खेत में खाद की तरह डालने, छौंटे आदि छानने, पान के साथ लगा कर खाने और दवाओं आदि के काम में आता है। कंकड़ का चूना भी प्रायः इन्हीं कामों में आता है, पर इसका सत्व से अधिक उपयोग इमारत के काम में, ईंट पत्थर आदि जोड़ने और दीवारों पर पलन्च करने के लिये होता है। संप, सीप और मोती आदि का चूना प्रायः खाने और औषध के काम में ही आता है।

मुरा०—चूना छूना या फेरना = चूने के पानी में धोना कर दीवारों पर उन्हें सफ़ेद करने के लिये पोतना। दीवारों पर चूने की सफ़ेद करना। चूना लगाना = खूब धोखा देना, छानि पूँचाना या दिक् करना। बहुत लजित करना।

घौ०—चूनादान। चुनौटी।

कि० अ० [सं० चवन] (१) पानी या किसी दूसरे द्रव पदार्थ का किसी छेद या छोट्टी दरज़ में से बूँद बूँद हो कर नीचे गिरना। टपकना। जैसे, छत में से पानी चूना, लोटे में से दूध चूना, आदि।

संघो० कि०—जाना।—पढ़ना।

↓ (२) किसी चीज़ का विशेषतः फल आदि का, अचानक ऊपर से नीचे गिरना। जैसे, आम चूना, सड़्या चूना।

(३) किसी चीज़ में ऐसा छेद या दरज़ हो जाना जिसमें से होकर कोई द्रव पदार्थ बूँद बूँद गिरे। जैसे, छत चूना, लोटा चूना, पीपा चूना, आदि।

↑ वि० [हि० चूना (कि० अ०)] जिसमें किसी चीज़ के चूने योग्य छेद या दरज़ हो। जैसे, चूना घड़ा, चूना बर।

चूनादानी—संज्ञा स्त्री० [हि० चूना + सं० आनन] वह छोटी दिविया या इसी प्रकार का और कोई पात्र जिसमें पान या सुरती के साथ खाने के लिये चूना रखा जाता है। चुनौटी।

चूनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्णिका] (१) धस का छोटा टुकड़ा। अक्षयक।

घौ०—चूनी भूरी = मोटे ऋत का पीला हुआ चूर्ण या चोकर आदि।

(२) रत्नकण। चुम्बी।

विशेष—दे० “चुम्बी”।

चूनेदानी—संज्ञा स्त्री० दे० “चूनादानी”।

चूमना—कि० सं० [सं० चुम्बन] प्रेम के आवेग में अथवा यों ही होंठों से (किसी दूसरे के) गाल आदि अंगों को अथवा किसी और पदार्थ को स्पर्श करना या दबाना। चुम्ना लेना। योसा लेना।

मुदा०—चूम कर छोड़ देना = किसी मारी कार्य के आरंभ करके, या किसी वस्तु के छू कर विना उसका पूरा उपयोग किए छोड़ देना। चूमना चाटना = चुम्ना। प्यार करना।

विशेष—किसी किसी देश में आदर या सम्मान के लिये भी घट्टों के हाथ आदि अंगों को चूमते हैं।

संज्ञा पुं० हिंदुओं में विवाह की एक रस्म जिसमें बर की अंतुली में चावल, जौ, गुड़ भर कर पाँच तोहागिनी खिया मंगल-गीत गानी हुई बर के माथे, कंधे और सुदने आदि पाँच अंगों का हरी दूध से छूटी और तब उस दूध को चूम कर फेंक देती हैं।

चूना—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बन, हि० चूमना] चूमने की क्रिया। चुम्बन। चुम्मा। मिट्टी।

कि० प्र०—देना।—लेना।

घौ०—चूना चाटी।

चूनाचाटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चूमना + चाटना] चूमने और चाटने का काम। चूम और चाट कर प्रेम प्रकट करने की क्रिया।

चूर—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] किसी पदार्थ के बहुत छोटे छोटे टुकड़े जो उस पदार्थ को खूब तोड़ने, छूटने आदि से बनते हैं।

मुदा०—चूर करना या चूर चूर करना = किसी पदार्थ को तोड़ फोड़ कर उसके बहुत छोटे छोटे टुकड़े करना।

(२) किसी पदार्थ के वे बहुत महीन कण जो इस पदार्थ को रेतों से रेतने अथवा थारी से चीरने आदि से निकलते हैं। उदादा। चूर।

वि० (१) किसी कार्ये कादि में समथ । निमथ । सहनीन । जैसे, काम में चूर, शोकी में चूर । (२) गिल पर नरो का बहुत अधिक प्रभाव हो । नरो में बहुत बदमस्त । जैसे, मांग में चूर, शराब में चूर, गाँजे में चूर ।
संग्रह ० दे० "चूल" ।

चूरण-संज्ञा पुं० दे० "चूर्ण" ।

चूरन-संज्ञा पुं० [स० चूर्ण] (१) दे० "चूर्ण" । (२) बहुत महीन पीसी हुई कई पाचक औषधों का चूर्ण ।

चूरनहार-संज्ञा पुं० [सं० चूर्णहार] एक प्रकार की जंगली बेल जिसके पत्ते बहुत खंबे, चिकने और कुछ मोटे होते हैं । इसमें मीठी गंधवाले छोटे छोटे फूल भी लगते हैं । इसकी जड़, पत्तियों और छाल आदि का व्यवहार औषधों में होता है । वैद्यक में इसे कर्दला, गरम, त्रिदोषनाशक, रधिर-विकार को दूर करनेवाला और कुमिमाशक माना है । कहते हैं, विषम ज्वर की यह बहुत अच्छी दवा है ।

चूरना।०-कि० सं० [सं० चूर्ण] (१) चूर करना । डकड़ें डकड़ें करना । (२) सोड़ना । सोड़ डालना । ३०—(क) प्रहारप्र फोर जीव में मिथ्या सुकोक जाह । गेह चूरि ज्यों चोरो चंद्रमं मिलै उद्गाय ।—बैशव । (ख) बांधि गा सुधा करत मुख बेली । चूरि पास मेलेति परि देली ।—जायसी ।

चूरमा-संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] रोटी या पूरी का चूर चूर करके धी में भूना हुआ और चीनी मिलाया हुआ एक लज्ज पदार्थ ।

चूरमूर-संज्ञा पुं० / देग०] वे खूँटियाँ जो जो या गेहूँ के कट जाने पर खेत में रह जाती हैं ।

चूरा-संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] किसी वस्तु का पिसा हुआ भाग । चूर्ण । सुगदा ।

विशेष—दे० "चूर" ।

संज्ञा पुं० दे० "चूरा" ।

संज्ञा पुं० दे० "चिरड़ा" ।

चूरामणि-संज्ञा स्त्री० दे० "चूडामणि" ।

चूरी-संज्ञा स्त्री० दे० "चूड़ी" ।

↑ संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण] (१) चूर । चूरा । (२) चूरमा ।

चूर-संज्ञा पुं० [हिं० चूर] एक प्रकार का घरत जो गाँजे के मादा पेंडों से निकलता और कुछ मिष्टरसमक जाता है ।

चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूला पिसा हुआ अथवा बहुत ही छोटे छोटे टुकड़ों में किया हुआ पदार्थ । सक्क । सुकनी । (२) कई पाचक औषधों का घासीक पीसा हुआ सक्क । (३) अवीर । (४) पूत । गर्द । (५) चूना । (६) कौड़ी । कपूरक ।

वि० जो किसी प्रकार सोड़ा सोड़ा या नष्ट भ्रष्ट किया गया हो । जैसे, गर्व चूर्ण करना ।

चूर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत् । सगुमा । (२) वन राय

जिसमें छोटे छोटे शब्द हों और लंबे समासवाले शब्द और कठोर या अतिरिक्त अक्षर न हों । (३) एक प्रकार का वृक्ष । (४) एक प्रकार का शालिघान्य ।

चूर्णकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूर्ण करनेवाला । (२) छाटा वेचनेवाला । (३) एक पर्य संकर जाति । पराशर के मत से यह नट जाति की थी और पुटुक जाति के पुरुष से उत्पन्न हुई थी ।

चूर्ण कुंतल-संज्ञा पुं० [सं०] थलक । लुहक । लट ।

चूर्णदीह-संज्ञा पुं० [सं०] कंकड़ ।

चूर्णपारद-संज्ञा पुं० [सं०] शिंगरफ ।

चूर्णधाम-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से सुगंधित पदार्थों का मिश्रण ।

चूर्णशाकिक-संज्ञा पुं० [सं०] गौर सुचर्ण नाम का साग जो चिपटूट में अधिकता से होता है ।

विशेष—दे० "गीर सुचर्ण" ।

चूर्णहार-संज्ञा पुं० [सं०] चूरनहार नाम की बेल ।

चूर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चार्पा चंद्र का दसवाँ भेद जिसमें १८ गुरु और २१ लघु होते हैं ।

चूर्ण-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौड़ी । कपूरक ।

चूर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत् । सगुमा । (२) राय का एक भेद ।

विशेष—दे० "चूर्णक" ।

चूर्णित-संज्ञा पुं० [सं०] महामान्यकार पर्वत्रलि मुनि ।

चूर्णित-वि० [सं०] चूर्ण किया हुआ ।

चूर्णो-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कार्पापय नामक पुराता सिद्धा या कौड़ी । (२) एक प्राचीन नदी का नाम । (३) पर्वत्रलि प्रणीत पाणिनि व्याकरण का भाष्य ।

चूर्मा-संज्ञा पुं० दे० "चूमा" ।

चूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोटी । शिखा । (२) रीख के बाख । (कर्दोरों की भाषा)

संज्ञा स्त्री० [देग०] किली लकड़ी का यह पतला सिरा जो किसी दूसरी लकड़ी के छेद में उसके साथ जोड़ने के लिये टोंका जाय ।

मुहा०—चूले कीली होता = अधिक परिश्रम के कारण बहुत थकावट होना ।

संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का धूह । दे० "चून" ।

चूलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी की कनपटी । (२) हाथी के कान की मूँद । (३) हंसों का ऊपरी भाग (४) किसी घटना या विषय की परोक्ष से सूचना ।

चूलदान-संज्ञा पुं० [सं० बुद्धि + ध्यान] (१) वाचस्पतिनाम । रसोई घर । वाचनाला । (लघ०) । (२) चैतने या चीतने आदि रूपने के लिये सीढ़ीनुमा बना हुआ स्थान । गैहरी । (अक्ष०)

चूलिका-संज्ञा पुं० [सं०] लुची नामक फल। मँदे की पत्नी स्त्री। लुचई।

चूलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चूलक। (२) नाटक का एक अंग जिसमें नेपथ्य से किसी घटना के हो जाने की सूचना दी जाती है।

- विशेष-संस्कृत-साहित्य के नियमानुसार रंगशाला पर बुद्ध या ग्युसु आदि का दृश्य दिखलाना निषिद्ध है। इसलिये उसकी सूचना नेपथ्य से हो जाया करती है। संस्कृत के वीरचरित नाटक में इस प्रकार की एक चूलिका है। उसमें नेपथ्य से कहा जाता है—“राम ने परशुराम पर विजय पा ली है; शतः हे विमान पर बैठनेवाले, आप लोग मंगल-गीत धारंभ करें।”

चूलिकोपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं० चूली] अथर्ववेदीय एक उपनिषद् का नाम।

चूल्हा-संज्ञा पुं० [सं०] श्रैंगी की तरह का मिट्टी या लोहे आदि का बना हुआ पात्र जिसका धाकार प्रायः घोंड़े की नात्र का सा या अर्द्धचंद्राकार होता है और जिस पर, नीचे आग जला कर, भोजन पकाया जाता है।

घौं - दोहरा चूल्हा = वह चूल्हा जिस पर एक साथ दो चीजें पकाई जा सकें।

मुहा०—चूल्हा जलना = भोजन बनना। जैसे, आज उनके घर चूल्हा नहीं जला। चूल्हा न्यैतना = घर के सब लोगों का निमित्तक देना। चूल्हा फूँकना = भोजन पकाना। चूल्हे में जाना = नष्ट भ्रष्ट होना। अस्तित्व मिटना। चूल्हे में डालना = (१) नष्ट भ्रष्ट करना। (२) दूर करना। चूल्हे में पड़ना = दे० “चूल्हे में जाना”। (इन मुहावरों का प्रयोग क्रोध में या आश्चर्यत निरादर प्रकट करने के समय होता है। जैसे, चूल्हे में जाय तुम्हारा तमाशा। चूल्हे में डालो अपनी सीमात।) चूल्हे से निकल कर भाड़ या भट्टी में पड़ना = छोटी विपत्ति में निकल कर बड़ी विपत्ति में फँसना।

चूपक-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चूपक, चूप्य] चूसने की क्रिया।

चूपणीय-वि० [सं०] चूसने योग्य। जो चूसता जाय।

चूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी की कमर में बांधी जानेवाली बड़ी पेटी या पहा।

चूप्य-वि० [सं०] चूसने के योग्य। जो चूसता जाय या चूसना सके।

चूसना-क्रि० सं० [सं० चूप्य] (१) जीम और हँडि के संयोग से किसी पदार्थ का रस खींच खींच कर पीना। जैसे, धाम चूसना, गँडरी चूसना। (२) किसी चीज का सार भाग ले लेना। जैसे, किसी स्त्री का पुरुष को चूस लेना। किसी बदमाश को भले धादमी को चूसना (उसका धन आदि अवदर्य करना)।

संयोग क्रि०—छालना।—लेना।

चूल्हा-संज्ञा पुं० दे० “चूल्हा”।

चूल्हा-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चूल्हा] बंगी या मेहत। चाँदल। श्वपच।

चूल्हा-संज्ञा पुं० दे० “चूल्हा”।

चूल्हा-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूर्णित्वानि का अपभ्रंश] चूही बेचने या पहनानेवाली स्त्री। चूर्णित्वानि।

संज्ञा स्त्री० “चूल्हा” का स्त्री०।

चूल्हा-संज्ञा पुं० [अनु० चू + हा (पल०)] [स्त्री० चूल्हा] चूर्ण आदि चार परोंवाला एक प्रसिद्ध छोटा जंतु जो प्रायः घोंटे या खेतों में बिल बना कर रहता है। यह समस्त पृथिवी, गुण और अफ्रिका में पाया जाता है और इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं। साधारणतः भारतीय चूल्हा का रंग कालापन लिए खाली होता है पर मीचे के भाग में कुछ सफेदी भी होती है। इसके दाँत बहुत तेज होते हैं और यह खाने पीने की चीजों के सिवा फपड़ों और दूसरी चीजों को काट कर भी बहुत हानि पहुँचाता है। कभी कभी यह मनुष्यों को भी काटता है। इसके काटने से एक प्रकार का हलका विष चढ़ता है। किसी किसी जाति के चूहे बहुत लड़ाके होते हैं और आपस में खूब झगड़ते हैं। इसकी मादा एक साथ कई बच्चे देती है। इस देश में विलायत से टारोरा से मिलने जुलने एक प्रकार के मफेद चूहे भी आते हैं जिन्हें विलायती चूहा कहते हैं। इनके एक जोड़े से बढ़ कर एक साल के अंदर कई सौ चूहे हो जाते हैं। इस जाति के चूहे प्रायः अपने बच्चों को जन्मते ही या कुछ दिनों के अंदर खा जाते हैं। साधारणतः चूहे प्रायः कुत्तों और विशेषतः बिल्लियों के शिकार हो जाते हैं। मूस।

चूहा-संज्ञा पुं० [हिं० चूहा + दाँत] क्रियों के पहनने की एक प्रकार की पहचूची जो चाँदी या सोने की बनती है। इसके दाँते चूहे के दाँत से लंबे और नुकीले होते हैं और रंगम या घृत में परोए रहते हैं।

वि० चूहे के दाँत के आकार का।

चूहादान-संज्ञा पुं० [हिं० चूहा + दा० दान] चूहों को फँसाने का एक प्रकार का पिंजड़ा।

चूहेदान-संज्ञा स्त्री० दे० “चूहादान”।

चूँ-संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों के बोलने का शब्द। चूँ चूँ।

मुहा०—चूँ बोलना = दे० “चूँ” के मुहा० में “चूँ” बोलना”।

चूँगड़ा-संज्ञा पुं० [अनु०] [स्त्री० चूँगड़ी] छोटा घवा। यालक।

चूँगा—संज्ञा पुं० दे० “चूँगड़ा”।

संज्ञा स्त्री० दे० “चूँगगा”।

चूँगी-संज्ञा स्त्री० [दे०] चमड़े की चकती या सन वां सुतली

का घेर। जिसे पैतनी और पहिये के बीच में हस्तलिपे पहना देते हैं कि जिसमें दोनों एक दूसरे से रगड़ न लाय।

बैंधी-संज्ञा स्त्री० दे० "बैंगी"।

बैंब-संज्ञा पुं० [सं० बन्धु] एक साग जो घरसात में बहुत उगता है। इसमें पीले फूल और फलियां लगती हैं। इसकी पत्तियां छुधावदार होती हैं।

बैंबर-संज्ञा पुं० [सं० बैंस बन्धु] बकवादी। बड़ी। बैं बैं करनेवाला।

बैंबुआ-संज्ञा पुं० [सं० बैंस बन्धु] चातक का बच्चा।

बैंबुला-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पकास। इसके बनाने में पहले सूँधे हुए चाटे या मैदे को पूरी की तरह पतला बेल कर गोटने और चौखटा बना कर कुल दवा देते हैं और तब ही धादि में तल लेते हैं।

बैंबो-संज्ञा स्त्री० [बन्धु] (१) विधियों के बोलने का शब्द। चौं बीं। (२) ध्ये की बकवादी। बकबक।

बैंडुआ-संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया] चिड़िया का बच्चा। व०—श्रद्ध कोरि. करयो चेटुआ तुप परपो नीर निहारि। गदि चंगुल चातिक चतुर डारयो धाहिर धारि।—तुलसी।

बैंटियारा-संज्ञा स्त्री० [दे०] भ्रमलक रंग का एक प्रकार का बहुत बड़ा जल-पत्ती जिसके पैर प्रायः हाथ भर लंबे और बीच एक धालियन की होती है। इसके तिर पर माल या पर नहीं होते। इसका मांस स्वादिष्ट होता है और इसीलिये इसका शिकार किया जाता है।

बैंटी-संज्ञा स्त्री० दे० "बैंडटी"।

बैंडा-संज्ञा पुं० दे० "बैंगडा"।

बैंधी-संज्ञा स्त्री० दे० "बैंगी"।

बैंबो-संज्ञा स्त्री० [बन्धु] (१) वह धीमा शब्द या कार्य जो किसी बड़े के सामने किसी प्रकार का विरोध प्रकट करने के लिये किया जाय। चौं चपड़। (२) ध्ये की बकवादी। बकबक।

बैंफ-संज्ञा पुं० [दे०] ऊँठ का झुलका।

बैंबर-संज्ञा पुं० [सं०] वह बड़ा कमाता जिसमें किसी विषय की मंत्रणा हो। सभा-गृह।

बैंबर आफ्र कामरौ-संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर के प्रधान व्यापारियों की वह सभा जिसका संगठन उन व्यापारियों के व्यापार-संबंधी स्वतंत्रों की दृष्टि के लिये हुआ हो।

बैंबर-संज्ञा स्त्री० [सं०] बँडने की झरती।

धा०—ईजी चैबर = थाराम झरती।

बैंबरमैन, चैबरमैन-संज्ञा पुं० [सं०] किसी सभा या बैठक का प्रधान। सभापति।

बैंडरी-संज्ञा पुं० [हिं० बैंडरी = रसम] कुम्हार का वह दौरा जिसके द्वारा चाक पर तैयार किया हुआ बरतान शेष मिट्टी से काट कर अलग किया और बतारा जाता है।

बैंक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह रखा या लिखा हुआ धाजापर जो किसी बँक धादि के नाम लिखा गया हो और जिसके देने पर वहाँ से उस पर लिखी हुई रकम मिल जाय।

बैंरोप-साधारणतः बैंकों का एक निश्चित स्वरूप हुआ करता है। किसी बँक के नाम लिखने का अधिकार उसी को होता है जिसका रुपया उस बँक में चलते खाने में अमा हो।

मुहा०—बैंक काटना = बैंक स्थित कर (वित्ताय में से काट कर) देना।

या०—बैंक चुक = बहुत से छोटे बैंकों को एक साथ सीकर बनाई हुई वित्ताय।

(२) बहुत ली सीधी रेखाओं पर ऐसी धाड़ी खींची हुई रेखाएँ जिससे बहुत से बैंकोर खाने बन जाय। चारपाता।

बैंकित-संज्ञा पुं० [सं०] एक ध्ये का नाम।

वि० बहुत बड़ा ज्ञानी।

बैंकितान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) केकप देश के राजा शटकेतु के पुत्र का नाम जिसने महाभारत के युद्ध में पांडवों की सहायता की थी।

वि० बहुत बड़ा ज्ञानी।

बैंकव-संज्ञा स्त्री० [सं०] शीतला या माता नामक रोग।

बैंकक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके मुँह पर शीतला के दाग हों।

बैंजा-संज्ञा पुं० [हिं० केद ?] सुरासु। देह। बिद्ध। व०—धालिद्रिभी रतनालिया चेजा करै पताल। मैं तोहि धूमै माधुली दूँ क्यों यंधी जाल।—कवीर।

बैंट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो चोरी या चेटिका] (१) दास। सेवक। नौकर। (२) पति। स्याचिंद। (३) नायक और नायिका को मिलानेवाला प्रवीण पुरुष। भँडुवा (४) एक प्रकार की मद्धली। (५) भंड।

बैंटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवक। दास। नौकर। (२) चटक मटक। (३) दूत। (४) जल्दी। सुस्ती। (५) चाट। चसका। मड़ा।

क्रि० प्र०—लगना।

(६) जादू या इंद्रजाल विद्या। नजरबंद का तमाशा। (७) मारि का तमाशा। कीचक। व०—(क) कटहूँ नाद शब्द हो भला। कटहूँ नाटक चेटक फला।—जायसी। (ख) गट क्यों तिन पेट हुपेट कुकोटिक चेटक कोटिक टाट टटयो।—तुलसी।

बैंटकनी-संज्ञा स्त्री० [सं० चेटक] "बैंटक" का स्त्री०।

बैंटका-संज्ञा स्त्री० [सं० चिता] (१) मुरदा जलाने की चिता। (२) इमरान। मरघट। व०—जोगू गरी चड़ी चित्रसारी, मजो चेटका में सती सहायरी।—केशव।

बैंटकनी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रजाली। जादूगर। व०—किसरी किसान कुल धनिक भिरसरी भाट धाकर चरल नट घोर

चार चेटकी।—तुलसी। (२) कौतुकी। अनेक प्रकार के कौतुक करनेवाला। उ०—परम गुरु रतिनाथ हाये शिर दियो प्रेम उपदेश। चतुर चेटकी मथुरानाथ सो कहियो जाय भादेश।—सूर।

चेटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवा करनेवाली स्त्री। दासी।

चेटिकी—संज्ञा स्त्री० दे० “चेटिका”।

चेटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। लौंडी।

चेटुवा—संज्ञा पुं० [हिं० चिट्ठ्या] चिट्ठिया का बच्चा। उ०—देव मनु विनोद विनोद मदनलाल रव रटत समोद चारु चेटुवा चट्ट के।—देव।

चेत्क—संज्ञा पुं० दे० “चेटक”।

चेत्-अव्य० [सं०] (१) यदि। अगर। (२) शययद। कदाचित्।

चेत—संज्ञा पुं० [सं० चेतन्] (१) चित्त की वृत्ति। चेतना। संज्ञा। होरा। (२) ज्ञान। बोध। उ०—मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं पिरवि सम।—तुलसी। (३) सावधानी। चौकसी। (४) खयाल। स्मरण। सुध।

क्रि० प्र०—कराना।—रतना।—पठना।—होना।—दिलाना।—धराना।

(२) चित्त।

चेतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हरीतकी। साधारण हड़। (२) सात प्रकार की हड़ों में से एक विशेष प्रकार की हड़ जिस पर तीन धारियाँ होती हैं। यह हड़ दो प्रकार की होती है। एक सफ़ेद और बड़ी जो प्रायः ५, ६ अंगुल लंबी होती है; और दूसरी काली और छोटी जो प्रायः एक अंगुल लंबी होती है। भागप्रकार के अनुसार पहले प्रकार की हड़ के पेट के नीचे जाने से भी पशुओं और पक्षियों तक को दन्त हो जाता है। आज कल के बहुत से देसी चिकित्सकों का विश्वास है कि इस प्रकार की हड़ को हाथ में लेने या चूँघने से दन्त हो जाता है, पर इस जाति की हड़ शय कहीं नहीं मिलती। (३) चमेली का पौधा। (४) एक रागिनी का नाम जिसे कुछ लोग श्री राग की प्रिया मानते हैं।

चेतन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आत्मा। जीव। (२) मनुष्य। आदमी (३) प्राणी। जीवधारी। (४) परमेस्वर।

चेतनकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हड़।

चेतनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैतन्य। चेतन का धर्म। सजानता।

चेतनत्व—संज्ञा पुं० दे० “चेतनता”।

चेतना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धि। (२) मनोवृत्ति। (३) ज्ञानात्मक मनोवृत्ति। (४) स्मृति। सुधि। याद। (५) चेतनता। चैतन्य। संज्ञा। होरा।

क्रि० प्र० (१) संज्ञा में होना। होरा में आना। (२) सावधान होना। चौकस होना। उ०—यह तब हरिहर चेत, तरुनी हरनी धर, गई। अथहूँ चेत अचेत, यह अथचरा अथाय लै।—तुलसी।

क्रि० सं० [सं० चिन्तन] विचारना। समझना। ध्यान देना। सोचना। जैसे, धर्म चेतना, आगम चेतना, मलां चेतना, घुरा चेतना।

चेतनीय—वि० [सं०] जो चेतन करने योग्य हो। जानने योग्य।

चेतनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्राद्ध नामक लता।

चेतन्य—वि० दे० “चैतन्य”।

चेतघनी*—संज्ञा स्त्री० (१) दे० “चेतावनी” (२) दे० “चितवन”।

चेतव्य—वि० [सं०] जो चयन (संग्रह) करने योग्य हो। इकट्ठा करने लायक।

चेतावनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेतना] वह बात जो किसी को होशियाया करने के लिये कही जाय। सतर्क होने की सूचना।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।

चेटिका*—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्ति] मुद्रा जलाने की चिता। सारा। उ०—चेटिका करुणा रची, सब धुड़ि और उपाई। क्यों जियो जननी विना, मरि हूँ मिलै जो धाई।—बैशाख।

चेतुरा—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार की चिट्ठिया जो संसार के सब भागों में पाई जाती है। इसके नर और मादा के रंग में भेद होता है। यह पेटों पर कटोरे के आकार का घोंसला बनाती है।

चेनैजन्मा—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

चेतानी*—संज्ञा स्त्री० दे० “चेतावनी”।

चेत्य—वि० [सं०] (१) जो जानने योग्य हो। ज्ञातव्य। (२) जो स्तुति करने योग्य हो।

चेदि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जो किसी समय शुक्रिनी नदी के पास था। महाभारत का शिशुपाल हसी देश का राजा था। वर्तमान बुंदेलखंड का चँदेरी नगर उसी प्राचीन देश की सीमा के अंतर्गत है। इस देश का नाम ग्रैपुर और चंच भी है। (२) इस देश का राजा। (३) इस देश का निवासी। (४) कौशिक मुनि के पुत्र का नाम।

चेदिक—संज्ञा पुं० दे० “चेदि”।

चेदिराज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिशुपाल नामक राजा जिसका वध धीरुष्ण ने किया था। (२) एक बभ्रु का नाम जिन्हें इंद्र से एक विमान मिला था और जो पृथ्वी पर नहीं चलते थे, ऊपर ही ऊपर आकाश में भ्रमण करते थे। इनका वृस्रा नाम उपरिचर भी था।

चेन—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत सी छोटी छोटी कहियों को एक में गूथ कर बनाई हुई चटखना। सिकरी। जँजीर। जैसे, रेल-गाड़ी के दो दिव्यों को जोड़ने की चेन, धड़ी में लगाने की चेन।

चेनत्रा—संज्ञा स्त्री० दे० “चेनवा”।

चेनगा—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की छोटी मछली जो उत्तर तथा पश्चिम भारत की नदियों और बड़े बड़े तालाबों, विरोपता

ऐसी मद्यियों और ताकियों में जिनमें घास अधिक हो, पाई जाती है। यह प्रायः एक बालित लंबी होती है और इसका सिर गिराई से कुछ बढ़ा होता है। इसे प्रायः नीच जाति के और-गरीब लोग खाते हैं। इसे चेंगा या चेनथा भी कहते हैं।

चेनवाँ-संज्ञा पु० दे० "चेना"।

चेना-संज्ञा पु० [सं० चयन] कंगनी या सर्वांगी की जाति का एक अन्न जो चैत, वैशाख में बोया और अस्तासु में काटा जाता है। इसके दाने छोटे, गोल और बहुत सुंदर होते हैं। इसे पानी की बहुत आवश्यकता होती है, यदा तक कि काटने से तीन चार दिन पहले तक इसमें पानी दिया जाता है। इसीलिये 'रोलियों में एक ससल है—'पाराह पानी चेन, यदा तो जेन का चेन।' कहते हैं कि यह चन्न मिल या श्राप से इस देश में आया है। यह हिमालय में १०००० फुट की ऊँचाई तक होता है। यह पानी या दूध में घायल की तरह पका कर खाया जाता है और बहुत पौष्टिक समझा जाता है। शिमले के आस पास के लोग इसकी रेडियों भी बना कर खाते हैं। पंजाब में इसकी खेती प्रायः चारों के लिये ही होती है। वैद्यक में इसे शीतल, कर्मला, माषित्वर्धक और भारी माना है।

संज्ञा पु० दे० चीनी कपूर।

चेप-संज्ञा पु० [निरुचिप से ऋ०] (१) कोई गाढ़ा चिपचिपा या लसदार रस। जैसे, आम का चेप, शीतला का चेप। (२) हासा जो चिड़ियों को फँसाने के लिये वन के पत्तों में लगाया जाता है। उ०—पनतन की निकसत लसत, हँसत हँसत उत थाय। टगरजन गहि लै चोरो, चितवनि चेप लगाय।—बिहारी।

संज्ञा पु० चाप । डराहा ।

चेपदार-वि० हि० [चेप + दार] जिसमें चेप या लस हो। चिपचिपा।

चेपना-क्रि० सं० [हि० चेप] चिपचिपाना। सताना।

चेपांग-संज्ञा पु० [दे०] नैपाल में रहनेवाली एक पहाड़ी जाति।

चेमुला-संज्ञा पु० [दे०] एक पेड़ जिसकी छाल चमड़ा तिकाने और रंगों में काम आती है। यह ऊँचाई में ८० वा १०० फुट तक होता है और समस्त भारत में पाया जाता है।

चेप-वि० [सं०] जो घनतन करने योग्य हो। जो संग्रह करने योग्य हो।

संज्ञा पु०, श्री० [सं०] वह अग्नि विमला विधान-पूर्वक सरकार हुआ हो।

चेपर-संज्ञा श्री० दे० "चेपरा"।

चेपरमैन-संज्ञा पु० दे० "चेपरमैन"।

चेरई-संज्ञा पु० [हि० चेश] दास। सेवक। गुलाम।

चेरना-संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार की छेनी जिससे नकाराई करनेवाले सीपी लकीर बनाते हैं।

चेराई-संज्ञा पु० [सं० चैरक, प्रा० चेट्टप, चेरा] [श्री० चैरा] (१) नीकर। दास। सेवक। गुलाम। (२) बेला। शिप्य। श्यामिंदे। विद्यार्थी।

संज्ञा पु० [दे०] मोटे जन का बना हुआ गलीचा।

चेराई-संज्ञा श्री० [हि०] दासपत्र। सेवा। नौकरी। गुलामी। उ०—देने करि मोहैं तुम पाये मने इनकी मैं बरों चाई। सुरश्याम वे दिन विसराये जब थाँचें तुम उजल लाई।—पूर।

चेरायताई-संज्ञा पु० दे० "चिरायता"।

चेरि, चेरी-संज्ञा श्री० "चेरा" का श्री०।

चेर-वि० [सं०] संग्रह करनेवाला। जिसे संग्रह करने का श्रम्यम हो।

चेरघाँ-संज्ञा पु० [दे०] एक खाद्य पदार्थ जो सतुष्या सान कर पिंडारा की तरद बना कर बर्दहन में पकाने से तैयार होता है।

चेर्याँ-संज्ञा श्री० [दे०] घड़े के आकार का पर इससे कुछ बढ़ा एक प्रकार का मिठी का यरतन।

चेरु-संज्ञा श्री० [?] एक प्रकार की जंगली जाति जिसकी बहुत सी रसमें आदि रुद्रियों से मिलती जुझती होती हैं। पाँच छः सौ वर्ष पहले भारत के अनेक स्थानों में इस जाति का बहुत ज़ोर था, और अनेक प्रदेशों में इसका राज्य था। कहते हैं, यह नाम जाति के शंभरतं है। बिहार के अनेक स्थानों में इस जाति के लोगों की बनवाई हुई बहुत नई पुरानी हमारतें हैं। आज फल इस जाति के लोग मिर-जापुर जिले तथा दक्षिण भारत में पाए जाते हैं।

बेल-संज्ञा पु० [सं०] वृष। कपड़ा।

बेलक-संज्ञा पु० [सं०] वैदिक काल के एक मुनि का नाम।

बेलकार्हाई-संज्ञा श्री० [हि०] चेलहाई। चेलों का समूह। शिप्य वर्ग। उ०—दैन दिवस मैं तहवाँ नारि पुरय समतराई हो। ना मैं बालक ना मैं बूढ़े ना मेरे चेलिकारुई हो।—कथीर।

बेलगंगा-संज्ञा श्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जो किसी समय गोकर्ण-देश (वर्तमान मालाबार) में बहती थी, और जिसका उल्लेख महाभारत में आया है।

बेलवाँ-संज्ञा श्री० दे० "बेल्दवा"।

बेलहार्हाई-संज्ञा श्री० [हि० बेलन + हार्द (प्रत्य०)] चेलों का समूह। शिप्यवर्ग।

मुहा०—बेलहार्हाई कराना = भेंट और पूजा आदि संग्रह करने के लिये चेलों में प्रेरणा।

बेला-संज्ञा पु० [सं० चैरक, प्रा० चेट्टप, चेरा] [श्री० चैरन, चैरा] (१) वह जिसने दीपा ली हो। वह जिसने कोई धार्मिक वरदेय लिया हो। शिप्य।

क्रि० प्र०—करना ।—पगना ।—होना ।—पगाना ।

मुहा०—चैला मूँ इना = चेना बनाना । शिष्य पतना ।

विशेष—संख्यामियों में दीक्षा के समय दीक्षित का स्मि रूँडा जाता है, उसी से यह मुहावरा पना ।

(२) वह जिसने सिखा ली हो। वह जिसने कोई विषय सीखा हो । श्यागिर्द । विद्यार्थी । छात्र ।

विशेष—दीक्षा या शिखा देनेवाले को गुरु श्रौर दीक्षा या शिखा लेनेवाले को दस (गुरु) का चैला कहते हैं ।

संज्ञा पुं० [रेग०] (१) एक प्रकार का सर्प जो बंगाल में अधिकता से पाया जाता है । (२) एक प्रकार की छोटी मछली ।

चेलान, चेलाल—संज्ञा पुं० [सं०] तरतृव की कता ।

चैलाशक—संज्ञा पुं० दे० “चलौशक” ।

चैलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ली नाम का रोसी कपड़ा ।

चैलिकाई—संज्ञा स्त्री० दे० “चेलहाई” या “चेलकाई” ।

चेलिन, चेली—संज्ञा स्त्री० चैला का स्त्री० ।

चेलुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बौद्ध भिक्षुक ।

चेलुघा—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल (मछली)] एक तरह की छोटी मछली जो चमकीली शौर पतली होती है ।

चैवारी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का धास जो दक्षिण और परियम भारत में होता है । इसकी चट्टियाँ शौर टोकरियाँ बनाई जाती हैं । इसकी परिशिर्षा चारे के काम में आती हैं ।

चैवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम ।

चैष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चैष्टा करे । चैष्टा करनेवाला ।

(२) एक प्रकार का रतिबंध ।

चैष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शरीर के श्रेणों की यह गति या शक्ल जिससे मन का भाव या विचार प्रकट हो । यह काविक व्यापार जो आंतरिक विचार या भाव का शोके हो । (२) नायिका या नायक का वह प्रयत्न या शक्य जो नायक या नायिका के प्रति प्रेम प्रकट करने के लिये हो (३) उद्योग । प्रयत्न । कोशिश । (४) कार्य । काम । (५) धर्म । परिधर्म । (६) इच्छा । कामना । स्वादिश ।

चैष्टानाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय । सृष्टि का शत ।

चैष्टावल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में ग्रहों का विशेष गति या स्थिति के अनुसार अधिक बलवान् हो जाना । जैसे उत्तरायण में सूर्य या चन्द्रगामी मंगल शक्य चंद्रमा के साथ संयुक्त कोई ग्रह । इससे ग्रह का शुभ या अशुभ फल पड़ जाता है ।

चैस—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का लोहे का चौकड़ा, जिस के बीच में कंगोय किये हुए टाहप रख कर प्रेस पर स्यापने के लिये कसे जाते हैं । जय टाहप इसमें रत कर कस दिए जाते हैं तब वे पित्त कहीं ह्वर उधर धक्यक नहीं सकते । (२) शतरंज का खेल ।

धौ०—चैस-बोर्ड = शतरंज की विसाव ।

चैहराई—वि० [हिं० चैहरा] हलका गुलाबी (रंग) ।

चैहरा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) शरीर का वह ऊपरी गोला और शगला भाग जिसमें मुँह, श्रोत्र, नास, नाक आदि समाहित हैं । मुखड़ा । यदन ।

धौ०—चैहरा मोहरा = हृत शकल । आकृति । चैहरा शारी = वह शक्य जिम पर किसी आदराह का चैहरा बना हो, तापत्यं प्रकृति रूप्य ।

मुहा०—चैहरा उतरना = जन्मा, शोक, चिंता या गेम आदि के कारण चैहरे पर संज्ञा जाता रहना । चैहरा समतमाना = बरमी या शोध आदि के कारण चैहरे का क्षाल हो जाना । चैहरा विगड़ना = मार खाने के कारण चैहरे की रंगत फीही पड़ जाना । चैहरा विगड़ना = दतना मारना कि गुरत पड़वानी न जाय । बहुत मारना । चैहरा होना = फौज में नाम जिला जाना ।

(२) किसी चीज का श्रगला भाग । समने का रूप । श्रामा । (३) फागन, मिट्टी या धातु आदि का बना हुआ किसी देवता, दानव या पशु आदि की आकृति का वह सांचा जो लीला या स्वांग आदि में स्वरूप बनने के लिये चैहरे के ऊपर पहना या बांधा जाता है । प्रायः बाजक भी मोविनाद शौर गंले के लिये ऐसा चैहरा खगाया करते हैं ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—बांधना ।—लगाना ।

मुहा०—चैहरा उठाना = निगम-पूर्वक पूजन आदि के उपरंत किसी देवी या देवता का चैहरा लगाना ।

विशेष—हिं दुर्गा का नियम है कि जिस दिन मृसिंह, हनुमान या कार्त्तिका आदि देवी देवताओं का चैहरा उठाना (लगाना) होता है उस दिन वे दिन भर उस देवी या देवता के नाम से त्रत या उपास्य करते हैं शौर तब संख्या समय विधि-पूर्वक उस देवी या देवता का पूजन करने के उपरंत चैहरा उठते हैं ।

चैहलुम—संज्ञा पुं० [फा०] बड़ रसम जो मुसलमानों में मुहर्रम के चालीसवें दिन होती है ।

चैष्टी—संज्ञा स्त्री० दे० “चिष्टी” ।

चैशर—संज्ञा पुं० दे० “चैशर” ।

चैसलर—संज्ञा पुं० दे० “चैसलर” ।

चैसैलर—संज्ञा पुं० [फा०] यूनीवर्सिटी का प्रधान । विधविद्यालय का मुखिया ।

विशेष—यूनिवर्सिटी में चैसैलर का वही काम है जो प्रायः सभा समितियों में सभापति का हुआ करता है । भारत में किसी प्रांत की युनिवर्सिटी का चैसैलर प्रायः उस प्रांत का प्रधान अधिकारी हुआ करता है । चैसैलर के साथ एक सहायक या वाइस-चैसैलर भी होता है । चैसैलर के अधिकारी कार्य प्रायः वाइस-चैसैलर को ही करने पड़ते हैं ।

चैस—संज्ञा पुं० [सं० चय] समूह । ढेर । उ०—उज्जो चट चैकि

चट्टुं धोर विचित्रम धर्मोपिचि चिंताजगी चैन चैचोरिगो।—
रुपुरान।

शैक-संज्ञा पुं० दे० "शैक"।

शैकित-संज्ञा पुं० [सं०] एक गौर-प्रवर्तक श्रापि का नाम।

शैकितान-वि० [सं०] जो शैकितान के पंश में जपत्र हुआ हो।

शैकित्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शैकित श्रापि के गौर का हो।

शैत-संज्ञा पुं० [सं० शैत] (१) वह चांद मास त्रिपथी पृथ्विमा
को चित्रा नक्षत्र पड़े। फागुन के बाद और बसन्त से पहले
का महीना। † (२) शैती फसल। रघु की फसल।

शैनन्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्तव्यवस्था। चेतन धाम्ना।
(२) ज्ञान।

विशेष—न्याय में तो ज्ञान और चैतन्य को एक ही माना है और
उसे धारणा का धर्म बतलाया है। पर सांख्य के मत से ज्ञान से
चैतन्य भिन्न है। यद्यपि इयमें रूप, रस, गंध आदि विशेष
गुण नहीं हैं तथापि संवेग, विभाग और परिमाण आदि
गुणों के कारण सांख्य में इसे अलग द्रव्य माना है और ज्ञान
को बुद्धि का धर्म बतलाया है।

(३) परमेश्वर (४) प्रकृति। (५) एक प्रसिद्ध बंगाली चैतन्य
धर्म-प्रचारक जिनका पूरा नाम श्रीकृष्ण चैतन्य चंद्र था।
इनका जन्म नवद्वीप में १४०७ शकान्त के फागुन की पृथ्विमा
को रात में चंद्रग्रहण के समय हुआ था। इनकी माता का
नाम शची और पिता का नाम जगदाय मिश्र था। कहते हैं
कि बाल्यावस्था से ही इन्होंने अनेक प्रकार की विलक्षण
लीलाएँ दिखलायी धारण कर दी थीं। पहले इनका विवाह
हुआ था पर पीछे वे संन्यासी हो गए थे। ये सदा भगवद्-
भजन में मग्न रहते थे। पहले इनके शिष्यों और तदुपरांत
अनुगामियों की भी संख्या बहुत बढ़ गई थी। अथ भी बंगाल
में इनके चत्वारं हुप संप्रदाय के बहुत से लोग हैं जो इन्हें
श्रीकृष्णचंद्र का पूर्ण अवतार मानते हैं। ४८ वर्ष की अवस्था
में इनका शरीरांत हो गया था। इनके चैतन्य महाप्रभु और
निर्माह आदि और भी कई नाम हैं।

वि० (१) चेतनायुक्त। सचेत। (२) होशियार। सावधान।

चैतन्यता-संज्ञा स्त्री० दे० "चैतन्यता"।

चैतन्यभरित्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक भैरवी का नाम।

शैता-संज्ञा पुं० [सं० शिथिल] एक पत्नी जिसका सिर काला, छाती
चितकपरी और पीठ काली होती है।

संज्ञा पुं० दे० "शैती"।

शैती-संज्ञा स्त्री० [हिं० शैत + ई (प्रत्यय)] (१) वह फसल जो शैत
में काटी जाय। रघु। (२) जमुना नाल जो शैत में बोया
जाता है। (३) एक प्रकार का चरता गाना जो शैत में
गाया जाता है।

वि० शैत संबंधी। शैत का। जैसे, शैती गुलाब।

शैत-वि० [सं०] शित संबंधी। शैत का।

संज्ञा पुं० शैतों के मत से विज्ञान-रूप के अनिश्चित शेष
सब रूपों।

शैरोप-शैत लोग रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार
वे पांच रूप मानते हैं। दे० "शैरोप" और "पञ्चो
संज्ञाएँ"।

शैतक-वि० दे० "शैत" (वि०)।

शैत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकान। घर। (२) मंदिर। देवा-
लय। (३) वह स्थान जहाँ यज्ञ हो। यज्ञशाला। (४) घुड़ों
का वह समूह जो गाँव की सीमा पर रहता है। (५) बुद्ध।
(६) बुद्ध की मूर्ति। (७) अश्वय का पेड़। (८) बेल का
पेड़। (९) शैत संन्यासी या भिक्षुक। (१०) शैत
संन्यासियों के रहने का मठ। पितार (११) यह मंदिर जो
आदि बुद्ध के उद्देश्य से बना हो। (१२) चित्रा।
वि० चिंता संबंधी। चिंता का।

शैत्यक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वय। पीपल। (२) वर्तमान
समय के पास के एक प्राचीन पर्वत का नाम। इस पर्वत
पर एक चर-विद्ध है जिसके दर्शने के लिये प्रायः जैनी
वहाँ जाते हैं।

शैत्यतरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वय। पीपल। (२) गाँव का
कोई प्रसिद्ध वृक्ष।

शैत्यद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वय। पीपल। (२) शरीरक
का पेड़।

शैत्यपाल-संज्ञा पुं० [सं०] शैत्य का रक्षक। शैत्यक। प्रधान
अधिकारी।

शैत्यमुख-संज्ञा पुं० [सं०] कमंडलु।

शैत्ययज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसका धर्म
आशुभलापन गृह्य सूत्र में आया है।

शैरोप-प्राचीन काल में इस यज्ञ का संकल्प किसी चीज के
सो जाने पर और उसका अनुष्ठान उप चीज के मिल जाने
पर होता था।

शैत्यवेदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैनियों या शैतों की मूर्ति।
(२) जैनियों या शैतों का मंदिर। (३) शैत्य या देवालय
संबंधी धर्म की रक्षा।

शैत्यविहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शैतों का मठ। (२)
जैनियों का मठ।

शैत्यवृक्ष-संज्ञा पुं० दे० "शैत्यतरु"।

शैत्यस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ बुद्ध देव की
मूर्ति स्थापित हो। (२) कोई पवित्र स्थान।

शैत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मास जिसकी पृथ्विमा को चित्रा
नक्षत्र पड़े। शैत। शैत्र का प्रथम मास। (२) सात वर्ष
पर्वतों में से एक। (३) शैत भिक्षुक। (४) यज्ञभूमि।

(२) देवालय । मंदिर । (६) चैत्य । (७) घुगणानुसार चित्रा नक्षत्र के राशों से उत्पन्न शुभ-ग्रह का एक पुत्र जो पुराणोक्त सतों द्वीपों का स्वामी माना जाता है ।

वि० चित्रा नक्षत्र संबंधी । चित्रा नक्षत्र का ।

चैत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] चैत्र मास । चैत्र ।

चैत्रगोड्डो-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रद्धेय जाति की एक रागिनी जो संध्या समय अथवा रात के पहले पड़र में गाई जाती है । बाईं कोई श्राचाय्य हसे श्री राग की पुत्रवधू मानते हैं ।

चैत्रमस-संज्ञा पुं० [सं०] चैत्र मास के उत्सव जो प्रायः मदन संबंधी होते हैं ।

चैत्ररथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर के वागु का नाम जो चित्ररथ का बनाया हुआ और हलाचरत्त संज्ञ के पुर्य में अवस्थित माना जाता है । (२) एक प्राचीन मुनि का नाम जिनका जिक्र महाभारत में आया है ।

चैत्ररथ-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का वागु । चैत्ररथ ।

चैत्रवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका नाम हरिवंश में आया है ।

चैत्रसखा-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव । मदन ।

चैत्रघली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चैत्र शुद्धा त्रयोदशी । (२) चैत्र की पूर्णिमा ।

पर्या०—मधुसूतासुवसेत । कामदेव । घासेती । कर्मि ।

चैत्रो-संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रा नक्षत्र-युक्त पूर्णिमा । चैत्र की पूर्णिमा ।

चैद्रिक-वि० [सं०] चेद्रि देश-संबंधी । चेद्रि देश का ।

चैद्य-संज्ञा पुं० [सं०] मिश्रपाल ।

चैन-संज्ञा पुं० [सं०] शयन । आराम । सुख । आनंद ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—देना ।—पड़ना ।—मिलना ।—होना ।

मुदा०—चैन उठाना = चैन करना । अन्द करना । चैन पड़ना = शांति मिलना । सुख मिलना । चैन से कटना = सुख पूर्वक समारंभित करना ।

संज्ञा पुं० [सं०] चैत्रक ?] एक नीच जाति ।

चैपला-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पक्षी । उ०—फहत पीपलैा पीपलैा, नितहि चैपला आद । मीत खूप यह धराध की समझ लेहु चित लाह ।—रसनिधि ।

चैपाँ-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैपाँ ?] बाँह । उ०—चैपाँ चैपाँ मारी चैपाँ चैपाँ ऐसे मोरवो ।—सूर

चैराहो-वि० दे० "चैरह" (रंग) ।

चैल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़ा । पद्य । (२) पेशाक पहनने के योग्य बना हुआ कपड़ा ।

चैलक-संज्ञा पुं० [सं०] शूद्रपिता और क्षत्रिया माता से उत्पन्न एक प्राचीन वर्ण-संकर जाति ।

चैला-संज्ञा पुं० [हिं० चैरना, लीहना] [स्त्री० अर्थ० चैली] कुल्हाड़ी से चीरी हुई लकड़ों का टुकड़ा जो जलाने के काम में आता है ।

चैलाशक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो कपड़े में लगनेवाले कीड़ों को खाता है ।

चैलिक-संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े का टुकड़ा ।

चैली-संज्ञा स्त्री० [हिं० चैला] (१) लकड़ी का छोटा टुकड़ा जो छीलने या काटने से निकलता है । (२) जमे हुए खून का टुकड़ा वा लच्छा जो गर्मी के कारण नाक से निकलता है ।

क्रि० प्र०—गिरना ।—पड़ना ।

चैलेंज-संज्ञा पुं० [अंग०] किसी प्रकार लड़ने, फाटने अथवा युकायला या चादविवाद आदि करने के लिये ली हुई ललकार ।

क्रि० प्र०—वरना ।—देना ।—मिलना ।

चोंक-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह चिद्र जो सुंयन में दाँत लग जाने के कारण गाल पर पड़ जाता है । उ०—चहचही सुमके सुभी हैं चोंक सुवंग की लहलहरी लट्टे लटकी सुलंक पर ।—पदमाकर ।

चोंकर-संज्ञा पुं० दे० "चोंकर" ।

चोंगा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस की वह खोखली नली या पोर जिसका एक सिरा गाँठ के कारण रुँध हो और दूसरा सिरा खुला हो । सोनार आदि इसमें प्रायः अपने धौजार रखते हैं । (२) इस आकार की कागज़ आदि की बनी हुई नली जो कोई चीज़ रखने के लिये बनाई जाय ।

चोंगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोंगा का स्त्री० अर्थ०] भाषी में की यह नली जिसके द्वारा हो कर हुआ निकरती है ।

चोंघना-वि०-क्रि० सं० दे० "चुगना" । उ०—कबिरा टुक टुक चोंघन, पल पल गई विहाय । जीव जंजालों पर रह, दिया दमाम आय ।—कबीर ।

चोंच-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पक्षियों के मुँह का अगला भाग जो हड्डी का होता है और जिसके द्वारा वे कोई चीज़ उठाते, तोड़ते और खाते हैं । पक्षियों के लिये यह सर्गमलित हाथ, हाँड और दाँत का काम देती है । टॉट । मुँह । (२) मुँह । (हास्यरस या व्यंग्य) । जैसे, यहूत हुआ, धन धरनी चोंच थंड करे ।

मुदा०—दाँ देा चोंच होना = फहा मुनी होना । कुद प्रशर मगड़ा होना ।

चोंचगा-संज्ञा पुं० दे० "चोंचला" ।

चोंटली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद धुँचवी ।

चोंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] खिचों के सिर के बाल । सोडा करना = सिर पर धारण करना ।

मुदा०—हारने ।

चोंडा-संज्ञा पुं० [सं०] यह खेप

कुर्रा जो त्वेत के श्राम पाप विंचाई के लिये चोद लिपा जाता है ।

† संघा पु० [सं० चूज] मिर । माथा ।

चोंग-संघा पु० [षु०] गाय भैंस आदि के तनये गोशर का ढेर जितना हगने समय एक चार गिरे ।

मुहा०—चोंग लगाना = हग कर शुह का ढेर लगाना ।

चोंघरा-वि० दे० [षु०] किमी चींग में से उमका बुद्ध शंरा पुती सट काडना या नौचना । धीयना ।

चोंधर-वि० [हि० चोंधियना] (१) जिमकी शारि बहुत छोटी हो । (२) मूर्ख । गावदी ।

चोंघरा-वि० दे० "चोंधर" ।

चोंपी-संघा पु० दे० "चोप" ।

गंजा छीं० दे० "चोप" ।

चोघा-संघा पु० [हि० चुपना = टपकना] (१) एक प्रकार का सुगंधित द्रव पदार्थ जो कई गंध द्रव्यों को एक साथ मिला कर गरम की सहायता से उबका रस टपकाने से तैयार होता है । इसके तैयार करने की कई रीतियां हैं । (क) बंदन का पुरादा, देवदार का पुरादा और सरसे के फूलों को एक में मिलाते और गरम करके उनमें से रस टपकाने हैं । (ख) केसर, कस्तूरी आदि को सरसे के फूलों के रस में मिलाते और गरम करके उनमें से रस टपकाने हैं । (ग) देवदार के निर्घोस को गरम करके टपकाने हैं । (२) बट कंठक, फधर या इसी प्रकार की और कोई चीज जो किसी धात की कमी को पूरा करने के लिये पकड़े पर रखी जाती है । (३) यह घोड़ी चीज जो किसी प्रकार की कमी पूरी करने के लिये उसी जाति की अधिक चीज के साथ रखी जाती है । (४) दे० "घोटा" ।

चोई-संघा छीं० [?] दाल का बट छिलका जो उसके सिंगे और मल कर अलग किया जाता है शकवा जो दाल चुलते समय थप से थप दाने में शकवा हो कर उपर उतरा आता है ।

चोई-संघा पु० [सं०] भद्रांदा या सखानासी नामक छुप की जड़ जिसका व्यवहार औषध में होता है ।

चोकर-संघा पु० [हि० चुन = आटा + काई = छिलका] आटे का बट शंरा जो उसे छानने के बाद चुलनी में चष जाता है । यह प्रायः पीने हुए अन्न (गेहूँ, जौ आदि) की भूसी या छिलका होता है ।

चोक्ष-वि० [सं०] शुद्ध । पवित्र । (२) दूध । होशियार । (३) तीक्ष्ण । तेज । (४) जिमकी प्रशंसा की गई हो ।

चोधा-संघा छीं० [हि० चोधा] तेजी । फुरती । वेग । उ०—
 एक जो सवने भर माछी जल खाने ली चढ़ाए धाम धाम फेंट
 शक्ति डाढ़े चोक्ष में ।—चतुमान ।

वि० दे० "चोला" ।

चोरना-वि० म० [हि० चूसना] चूसना या चूस कर पीना ।

चोखरा-संघा पु० [सं० चिंका] चूड़ा । मुस्ता ।

चोखा-वि० [सं० चोना] (१) जिममें किसी प्रकार की मूल, खेत या मिलावट आदि न हो । जो शुद्ध और उत्तम हो । जैसे, चोखा धी, चोखा माल । (२) जो मचा और ईमानदार हो । खरा । जैसे, चोखा प्रमाणां । (३) जिमकी धार मंत्र हो । धारदार । (४) मय में बनुर का अर्थ । जैसे, तुम्हीं चोखे निकले जो अपना मय काम करके छुट्टी पा गए ।

मशा पु० (१) उबाले या भूने हुए चैगन, शालू या अरुहे आदि को ममठ मिर्च आदि के साथ मल कर (और कमी कमी धी या तेल में छूंक कर) तैयार किया हुआ मालन । भरता । धुता । (२) चावल । (हि०)

चोधाई-संघा छीं० [हि० चोधा + ई (प्रत्यय)] "चोधा" भाव का चोखापन ।

मना छीं० [हि० चोखना] "चोखना" का भाव या काम । चुनाई । चूमने की क्रिया या भाव ।

चोगर-संघा पु० [सं० चुगर] यह घोड़ा जिसकी शरिमें उज्ज्व की मी हो । मेना घोड़ा मूरी समझा जाता है ।

चोगा-संघा पु० [सं०] परों तक लटखता हुआ और बहुत ठीका लाना एक प्रकार का पहनावा जिसका प्राणा बंद नहीं होता और जिसे प्रायः बड़े प्रादमी पहनते हैं । लचात्र ।

चोगा-संघा पु० दे० "चुगा" ।

चोच-संघा पु० [सं०] (१) झाल । पल्लव । (२) चवड़ा । (३) तेजपत्ता । (४) दालचीनी । (५) गारियल । (६) बेला ।

चोचलहारी-वि० सं० [हि० चोचल + हारी (प्रत्यय)] चोचल बरनेवाली, नखरेवाज ।

चोचला-संघा पु० [षु०] (१) शंरो की बट गति या चोटा जो मिय के मनोरंजनार्थ, या किसी को मोहित करने के लिये शकवा हृदय की किसी प्रकार की, विशेषतः जवानी की, बमंग में की जाती है । हाव भाव । (२) नखरत । नात्र ।

चोज-संघा पु० [?] (१) वह चमकार-पूर्ण उक्ति जिससे लोगों का मनोविनाद हो । दूसरों को हंसानेवाली बुक्ति-पूर्ण बात । सुभाषित । (२) हँसी टटटा, विशेषतः व्यंग्यपूर्ण उपहास । उ०—
 किहि के बल उत्तर दीवै उरुईं सो सुनै वनै चोज चयाहन के ।—प्रताप ।

चोट-संघा छीं० [सं० चुट = कटना] (१) एक वस्तु पर किसी दूसरी वस्तु का वेग के साथ पतन या टकर । भाषात । प्रहार । मार । जैसे, लोही की चोट, हथौड़े की चोट । उ०—
 पथर की चोट से यह शरीरा फूटा है ।

छि० प्र०—
 देना ।—पड़ना ।—पहुँचना ।—मारना ।
 लगना ।—लगाना ।—मदना ।

मुहा०—घोट खाना = आघात ऊपर लेना । प्रहार सहना ।

(२) आघात या प्रहार का प्रभाव । घाय । जल्म । उ०

—(क) घोट पर पड़ी चधि दे । (ख) उसे सिर में बड़ी घोट छाई ।

घो०—घोट चपेट = घाय जल्म ।

क्रि० प्र०—घाना ।—लगना ।—पहुँचना ।

मुहा०—घोट उभरना = घोट में फिर में पीछा होना । घोट खाए हुए रघान का फिर से दर्द करना ।

(३) किसी को मारने के लिए हथियार आदि चलाने की क्रिया । घार । आक्रमण ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—घोट खाली जाना = बार का निशाने पर न बैठना ।

आक्रमण व्यर्थ होना । घोट बचाना = घोट न लगने देना ।

(४) किसी हिंसक पशु का आक्रमण । किसी जानवर का काटने वा छाने के लिये झपटना । उ०—यह जानवर खाद-मियों पर बहुत कम घोट करता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

(५) हृदय पर का आघात । मानसिक व्यथा । मर्मभेदी दुःख । शोक । संताप । उ०—हूँस दुर्घटना से उन्हें बड़ी घोट पहुँची । (६) किसी के अनिष्ट के लिये चली हुई घोट । एक दूसरे को पराम करने की युक्ति । एक दूसरे की हानि के लिये दौब घेंच । चढाचकी । उ०—शाज कल दोनों में खूब घोटें चल रही हैं ।

क्रि० प्र०—चलना ।

(७) व्यंग्य-पूर्ण विवाद । आवाज़ । बौद्धार । ताना । उ०—इन दोनों कवियों में खूब घोटें चली हैं । (८) विश्रामघात । धोखा । दगा । उ०—यह आदमी ठीक यन्त्र पर घोट कर जाता है । (९) बार । दूध । मरतवा । उ०—(क) आधा एक घोट हमारी तुम्हारी हो जाय । (ख) कदा गह तुलतुल कई घोट लड़ा ।

क्रि० प्र०—चलना ।

(१०) व्यंग्य-पूर्ण विवाद । आवाज़ । बौद्धार । ताना । उ०—इन दोनों कवियों में खूब घोटें चली हैं । (८) विश्रामघात । धोखा । दगा । उ०—यह आदमी ठीक यन्त्र पर घोट कर जाता है । (९) बार । दूध । मरतवा । उ०—(क) आधा एक घोट हमारी तुम्हारी हो जाय । (ख) कदा गह तुलतुल कई घोट लड़ा ।

विशेष—हूँस अर्थ में हूँस शब्द का प्रयोग प्रायः ऐसे ही कार्यों के लिये होता है जिसमें विरोध की भावना होती है ।

घोटाइला—वि० दे० “चुटैल” ।

घोटाहा—वि० [हि० घोट + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० घोटही] जिस पर आघात का चिह्न हो । जिस पर घोट का निशान हो ।

घोटा—संज्ञा पुं० [हि० घोष] राग का वह प्रवेग जो उसे कपड़े में रच कर दधाने या छानने से निकलता है । इसका व्यवहार प्रायः संघात या देसी राग आदि में होता है । लपटा । घोसा । माड ।

घोटाना—क्रि० अ० [हि० घोट] घोट खाना । घायल हो जाना ।

घोटार—वि० [हि० घोट + आर (प्रत्य०)] (१) घोट करनेवाला । घोट पहुँचानेवाला । उ०—आयत्ति कपनेउ श्रोतवा सुगना

सार । परिगो दाग अथवा घोप घोटाहल ।—रहीम ।

(२) घोट खाना हुआ । चुटैल ।

घोटारना—क्रि० अ० [हि० घोट] घोट करना । उ०—पहले निहारि नैन घोटनि घोटारि फेरि हाय मोहिं मैथियो पाम प्यारी पंचसर के ।—रसकुसुमाकर ।

घोटिया—संज्ञा स्त्री० दे० “घोटी” ।

घोटियाना—क्रि० स० [हि० घोट] घोट लगाना या मरना ।

क्रि० स० [हि० घेटा] (१) घोटी पकड़ना । (२) वस्तु-प्रयोग करना ।

घोटी—संज्ञा स्त्री० [स० चूड़ा] (१) मिर के मध्य के वे घोड़े से और कुछ बड़े बाल जिन्हें प्रायः टिंठू नहीं मुड़ाने या कटाने । शिखा । चुंठी ।

मुहा०—घोटी दबना = दे० “घोटी हाथ में न होना” । घोटी रखना = घोटी के लिये सिर के बीच के बाल बटाना । (किसी की) घोटी (किसी के) हाथ में होना = किसी प्रकार के दबाव में होना । काबू में होना । जैसे, अब वे कहाँ जायेंगे, उनकी घोटी तो हमारे हाथ में है ।

घो०—घोटीबाला = भूत । प्रेत ।

(२) एक में गुँधे हुए खियों के सिर के बाल ।

मुहा०—घोटी करना = सिर-के बालों का एक में मिला कर गुथना । दे० “केशी घोटी करना” ।

क्रि० प्र०—गुँथना ।—बोधाना ।

(३) सूत या ऊन आदि का वह छोरा जिसका व्यवहार खियों की घोटी गुँधने और थल में बालों को बांधने में होता है ।

(४) पान के आकार का एक प्रकार का आभूषण जिसे खियाँ अपने जुड़े में खोसती या बाँधती हैं । (५) पत्थियों के मिर के वे पर जो आगे की ओर ऊपर उठे रहते हैं । कलमी । (६) शिखर । सब से ऊपर का उठा हुआ भाग । जैसे, पहाड़ की घोटी, मकान की घोटी ।

मुहा०—घोटी का = सब से बढ़िया या अछूता । सर्वोत्तम ।

घोटीदार—वि० [हि० घोटी + दार (प्रत्य०)] जिसके घोटी हो । घोटीबाला ।

घोटी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) चिकनी सुपड़ी (यात) । सुरामद से भरी हुई (यात) । (२) सूटी या बनावटी (यात) । इधर उधर की (यात) उ०—तुम जानति राधां है घोटी । चतुराई अंग अंग भरी है पूरत ज्ञान न बुद्धि की मोटी । हम सों सदा दुरावति मो बह यात कहत सुख घोटी पोटी ।—सूर ।

घोटीबाला—संज्ञा पुं० [हि० घोटी + बाला] भूत, प्रेत या पिशाच ।

घोटा—संज्ञा पुं० [हि० घोट + आ (प्रत्य०)] [स्त्री० घोटी] वह जो घोटी करना हो । घोर ।

मुहा०—घोटी का या घोटीबाला = एक प्रकार की रागी ।

घोड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तरीय वस्त्र । (२) चाल नामक प्राचीन देग ।

घोड़क-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पहनने का कपड़ा ।

घोड़ा-संज्ञा पुं० [सं०] यही गोरखमुंठी ।

घोड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जिनमें के पहनने की साड़ी ।

घोतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाहचिनी । (२) छाल । बलकल ।

घोध-संज्ञा पुं० दे० "घोष" ।

घोद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घातुक । (२) बड़-संघी लकड़ी जिसके सिरे पर कोई नुकीला शीर मेश जोड़ा लगा हो ।

घोदक-वि० [सं०] घोदना करनेवाला । प्रेरणा करनेवाला । कोई काम करने के लिये उत्साहनेवाला ।

घोदकड़-संज्ञा पुं० [हिं० चेंदना] बहुत अधिक ग्री-प्रसंग करने-वाला । अर्थात् कामी । (घातक)

घोदन-संज्ञा पुं० दे० "घोदना" संज्ञा ।

घोदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह वाक्य जिसमें कोई काम करने का विधान हो । विधि वाक्य । (२) प्रेरणा । (३) वेग आदि के संबंध का प्रयत्न ।

हिं० सं० स्त्री-प्रयोग करना । संभोग करना ।

संघे० क्रि०—घातना ।—देना ।

घोदाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चेंदना + ई (प्रत्य०)] (१) घोदने की क्रिया । संभोग । (२) घोदने का भाव ।

घोदास-संज्ञा स्त्री० [हिं० घोदना] स्त्री को पुरुष-प्रसंग की श्रधवा प्रत्यय की स्त्री-प्रयोग की प्रयत्न कामना । कामेच्छा ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

घोदासा-वि० पुं० [हिं० घोदास] [सं० घोदासा] जिस घोदास लगी हो । जिस संभोग की प्रयत्न इच्छा हो ।

घोदू-संज्ञा पुं० दे० "घोदकड़" ।

घोष-वि० [सं०] जो प्रेरणा करने योग्य हो ।

संज्ञा पुं० (१) प्रयत्न । सवाल । (२) वाद विवाद में पूर्व-नम ।

घोष-संज्ञा पुं० [हिं० घन] (१) घाह । इच्छा । स्फुटिया । (२) घाव । शोक । श्च ३०—दे उर जेव जवाहिर की सुनि घोष सो बूँदरी लै पहिरावत ।—मुंदरी सिंदूर । (३) असाह । उमंग । उ०—(क) अरुन नयन भ्रुकुटी कुटिल, चितवत नृपन मकौर । मनहु मत्त राजन निरवि सिंह-किमोराहि घोष ।—गुलामी । (ख) थीर के घोष चरंगन की मनो घोष नो चंद्र सुभावन घारे ।

क्रि० प्र०—चरना ।

(ख) धमना । उतेजना ।

क्रि० प्र०—देना ।

घटा पुं० [हिं० घटा = टपकना] कच्चे घाम की डेपनी का घट रंग जो हममें से मौकों से मोड़ने समय बहता है । इमका

असर जोग्य का सा होता है । शरीर में यह जहाँ लग जाता है वहाँ छात्ता पड़ जाता है ।

संज्ञा पुं० दे० "घोष" ।

घोषदा-संज्ञा पुं० दे० "घोषदा" ।

घोषना-वि० क्रि० अर्थ [हिं० घोष] किसी वस्तु पर मोहित हो जाना । मुग्ध होना ।

घोषी-वि० [हिं० घोष] (१) हल्का रमनेवाला । चाइ रमने-वाला । (२) बसाही । जिसके मन में असाह हो ।

घोच-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शामियाना पड़ा करने का पड़ा संभा । (२) नगाड़ा या तारा यंत्रों की लकड़ी । (३) सेने या चौड़ी से मड़ा हुआ बंडा ।

घो०—घोषदा ।

(ख) छड़ी । सेटा । डंडा ।

घोमकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जूरादोजी का काम ।

घोमचीनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक फाँटापथ । यह चीन और जापान में होनेवाली एक लता की जड़ है जिसने पत्ते बदरगंधा के पत्तों के समान होते हैं । इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफ़ेद होता है । यह रक्तरोधक होती है और गरमी तथा गरिजा आदि की दवाओं में पड़ती है । वैद्यक में इसे तिक्त, उष्णवीर्य, अग्निवृद्धि, मलमूत्र-बोधक, और शूल, वात, किरंग, अन्नाद तथा अयस्मार आदि रोगों को दूर करनेवाली कहा है ।

घोमदार-संज्ञा पुं० [सं०] यह नौकर जिसके पास घोष या असा रहता है । असा-अरदार ।

विशेष—ऐसे नौकर प्रायः राजों, महाराजों और बहुत पड़े रहस्यों की खोजियों पर समाचार आदि ले जाने और ले आने तथा इसी प्रकार के दूसरे कामों के लिये रहते हैं । सवारी या बरात आदि में वे आगे आगे भी चलते हैं ।

घोमा-संज्ञा पुं० दे० "घोष (१)" ।

घोमाना-क्रि० सं० दे० "घुमाना" ।

घोमा-संज्ञा पुं० [हिं० चेंदना] वह पेटली जिसमें कोई द्रव्य कँची होती है और जिसमें शरीर के किसी पीड़ित अंग विशेषतः शोष का सँकल है । लोभा ।

मुहा०—घोभा देना = शोष का पीड़नी में बांध कर उसने शरीर के किसी पीड़ित अंग का संकल ।

घोषा-संज्ञा पुं० दे० "घोष" ।

घोर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो धिप कर पराई वस्तु का अपहरण करे । स्वामी की अनुपस्थिति या अज्ञानता में धिप कर कोई चीज ले खेनेवाला मनुष्य । शुराने या धोरी करने-वाला । तम्बर ।

मुहा०—घोर पढ़ना = घोर का आ कर कुछ गुना जोड़ना । घोर पर मोर पढ़ना = धूप में धूपता देना । चानक के साथ

मुहा०—घोट खाना = आघात उपर लेना । प्रहार सहना ।
 (२) आघात वा प्रहार का प्रभाव । घाव । जलम । उ०
 —(क) घोट पर पटी बांध दे। (ख) उमे सिर में चड़ी घोट थाई ।
 यी०—घोट चपेट = घाव जखम ।
 कि० प्र०—घाना ।—लगना ।—पहुँचना ।
 मुहा०—घोट उभरना = घोट में फिर से पीड़ा होना । घोट खाए हुए स्थान का फिर में दर्द करना ।
 (३) किसी को मारने के लिए हथियार आदि चानों की क्रिया । वार । शाक्रमण ।
 कि० प्र०—करना ।
 मुहा०—घोट खाली जाना = वार का निशाने पर न धँटना । आक्रमण व्यर्थ होना । घोट बचाना = घोट न लगने देना ।
 (४) किसी हिंसक पशु का आक्रमण । किसी जानवर का काटने वा खाने के लिये कपटना । उ०—यह जानवर खाद-मियों पर बहुत कम घोट करता है ।
 कि० प्र०—बरना ।
 (२) हृदय पर का आघात । मानसिक व्यथा । मर्मभेदी दुःख । शोक । संताप । उ०—इस दुर्घटना से उन्हें चड़ी घोट पहुँची । (६) किसी के अनापि के लिये खली हुई चाल । एक दूसरे को पराम करने की युक्ति । एक दूसरे की हानि के लिये द्वाँव पेंच । चक्राचकी । उ०—शाज कल दोनों में खूब घोटें चल रही हैं ।
 कि० प्र०—चलना ।
 (७) व्यंग्य-युक्त विवाद । आवाज़ । बौद्धार । ताना । उ०—इन दोनों कवियों में खूब घोटें चली हैं । (८) विधासपात । धोखा । दगा । उ०—यह आदमी ठीक वक्त पर घोट कर जाता है । (९) वार । दृष्ट । मारतथा । उ०—(क) धायो एक घोट हमारी तुम्हारी हो जाय । (ख) कल गड़ उलबुल कई घोट लड़ा ।
 विशेष—इस अर्थ में इल शब्द का प्रयोग प्रायः ऐमे ही कारणों के लिये होता है जिसमें विरोध की भावना होती है ।
 घोटइलां-वि० दे० "खुटैला" ।
 घोटहा-वि० [हि० घोट + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० घोटही] जिस पर आघात का चिह्न हो । जिस पर घोट का निशान हो ।
 घोटा-संज्ञा पुं० [हि० घोष] राय का वह पक्ष जो उसे कपड़े में रख कर दधाने या छानने से निकलता है । इसका व्यपहार प्रायः संघात या देवी शराय आदि में होता है । लपटा । घोसा । माट ।
 घोटानां-कि० अ० [हि० घोट] घोट खाना । घायल होजाना ।
 घोटार-वि० [हि० घोट + र (प्रत्य०)] (१) घोट करनेवाला । घोट पहुँचानेवाला । उ०—आयनि कवनेउ श्रायथा सुगना

सार । परिगं दाग अथवा चोप घोटार ।—रहीम ।
 (२) घोट खाया हुआ । खुटैल ।
 घोटारनां-कि० अ० [हि० घोट] घोट करना । उ०—पहले निहारि नैन घोटनि घोटारि केरि हाय मोहिं सौव्यो पाम प्यारी पंचसर के ।—रसकुसुमाकर ।
 घोटियां-संज्ञा स्त्री० दे० "घोटी" ।
 घोटियानां-कि० ग० [हि० घोट] घोट लगाना या मारना ।
 कि० स० [हि० घोटा] (१) घोटी पकड़ना । (२) यथा-प्रयोग करना ।
 घोटी-संज्ञा स्त्री० [स० घुटा] (१) सिर के मध्य के वे थोड़े से थोर कुछ बड़े थाल जिन्हें प्रायः हिंदू नदीं मुड़ाने वा कटाते । शिला । बुँदी ।
 मुहा०—घोटी दबना = दे० "घोटी हाथ में होना" । घोटी रखना = घोटी के लिये सिर के बीच के थाल बटाना । (किसी की) घोटी (किसी के) हाथ में होना = किसी प्रकार के दबाव में होना । काबू में होना । जैसे, अब वे कहीं जायगे, उनकी घोटी तो हमारे हाथ में है ।
 धा०—घोटीवाला = भूत । प्रेत ।
 (२) एक में गुँचे हुए त्रिषों के सिर के थाल ।
 मुहा०—घोटी करना = सिर के थालों का एक में मिला कर गूथना । दे० "बैसी घोटी करना" ।
 कि० प्र०—गूथना ।—बांधना ।
 (३) गूथ वा उन आदि का वह ढोरा जिसका व्यवहार त्रिषों की घोटी गूथने श्राय श्रम में थालों को बांधने में होता है ।
 (४) पान के आकार का एक प्रकार का शाम्भूषण जिसे क्रियां शपने जूड़े में खोसनी या बांधती हैं । (२) पक्षियों के सिर के चे पर जो थाने की श्राय उपर उठे रहते हैं । कलगी । (६) शिवर । सभ में उपर का उठा हुआ भाग । जैसे, पहाड़ की घोटी, मकान की घोटी ।
 मुहा०—घोटी का = मय मे बुद्धि वा अशुद्ध । सर्वानम ।
 घोटीदार-वि० [हि० घोटी + दा (प्रत्य०)] जिसके घोटी हो । घोटीवाला ।
 घोटी घोटी-वि० स्त्री० [देग०] (१) चिकनी खुपड़ी (यात) । सुशामद से मरी हुई (यात) । (२) कूटी या चनाचटी (यात) । इधर उपर की (यात) उ०—युम जानति राधां है घोटी । चतुराईं खंग खंग भरी है परान ज्ञान न बुद्धि की मोटी । हम सो सदा दुरायनि मो यह बात कहत सुप घोटी पोटी ।—सूर ।
 घोटीवाला-संज्ञा पुं० [हि० घोटी + वाला] भूत, प्रेत या पिशाच ।
 घोहा-संज्ञा पुं० [हि० घोर + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० घोही] वह जो चोरी करता हो । चोर ।
 मुहा०—घोही का वा घोहीवाला = एक प्रकार की भर्त्सा ।

चोड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तरीय चक्र । (२) चोल नामक प्राचीन देश ।

चोड़क-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पहनने का कपड़ा ।

चोड़ा-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी गोरखमुंडी ।

चोड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों के पहनने की साड़ी ।

चोतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दालचीनी । (२) छाल । बन्कल ।

चोथ-संज्ञा पुं० दे० "चोच" ।

चोद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धातुक । (२) बड़-लंबी लकड़ी जिसके सिरे पर कोई मुकीला और तेज लोहा लगा हो ।

चोदक-वि० [सं०] चोदना करनेवाला । प्रेरणा करनेवाला । कोई काम करने के लिये उत्सुकानेवाला ।

चोदकड़-संज्ञा पुं० [हिं० चोदना] बहुत अधिक श्री-प्रसंग करनेवाला । अर्थात् कामी । (धाराः)

चोदन-संज्ञा पुं० दे० "चोदना" यंत्र ।

चोदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह वाक्य जिसमें कोई काम करने का विधान हो । विधि वाक्य । (२) प्रेरणा । (३) योग आदि के संबंध का प्रयत्न ।

हिं० सं० धी-प्रसंग करना । संभोग करना ।

संयो० क्रि०—खालना—देना ।

चोदाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना + ई (प्रत्यय)] (१) चोदने की क्रिया । संभोग । (२) चोदने का भाव ।

चोदास-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना] स्त्री को पुरुष-प्रसंग की अथवा पुरुष को स्त्री-प्रसंग की प्रवृत्त कामना । कामेच्छा ।

क्रि० प्र०—लगना ।

चोदासा-वि० पुं० [हिं० चोदास] [भी० चोदसा] जिसे चोदास लगी हो । जिसे संभोग की प्रवृत्त दृग्भा हो ।

चोदू-संज्ञा पुं० दे० "चोदकड़" ।

चोथ-वि० [सं०] जो प्रेरणा करने योग्य हो ।

संज्ञा पुं० (१) प्रश्न । सवाल । (२) बाद विवाद में पूर्व-पक्ष ।

चोप-संज्ञा पुं० [हिं० चोप] (१) काह । इच्छा । मूढिहा । (२) चाप । शोक । रुचि उ०—दे अ जेव जवाहिर की पुनि चोप सो चूँदरी लै पहिरावत ।—मुं दरी सिंदूर । (३) असाह । उर्मत् । उ०—(क) अरुन नवन भूचूटी कुटिल, चितवत नृपते मकेप । मनहु मत्त राजगन निरलि सिंह-किमोरहि चोप ।—मुलसी । (ख) चौर के चोच चन्देरेतन की गते चोप ने खंद सुगावत चारे ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।

(५) बढ़ाया । उत्तेजना ।

क्रि० प्र०—देना ।

संज्ञा पुं० [हिं० चोप] कच्चे धाम की देपनी का यह रस जो उसमें से सोडे से तोड़ते समय बहता है । इसका

धरर लेनाय का सा होता है । शरीर में यह जहाँ लग जाता है वहाँ छाता पड़ जाता है ।

संज्ञा पुं० दे० "चोच" ।

चोपदार-संज्ञा पुं० दे० "चोपदार" ।

चोपना-वि०-क्रि० प्र० [हिं० चोप] किसी वस्तु पर मोहित हो जाना । मुग्ध होना ।

चोपी-वि०-वि० [हिं० चोप] (१) इच्छा रखनेवाला । चाह रखनेवाला । (२) असाही । जिसके मन में असाह हो ।

चोव-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शामियाना खड़ा करने का यज्ञा संभा । (२) नगाड़ा वा तारा बजाने की लकड़ी । (३) सोने या चाँदी से मड़ा हुआ बंडा ।

संज्ञा—चोवदार ।

(५) छड़ी । सोडा । इंडा ।

चोशकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जूदोगी का काम ।

चोचपीनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक काष्ठोप । यह चीन और जापान में होनेवाली एक लता की जड़ है जिसके पत्ते अश्वगंधा के पत्तों के समान होते हैं । इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए मऊँट होता है । यह रक्तशोधक होती है और गरमी तथा गठिया आदि की बूझाओं में पड़ती है । वैद्यक में इसे तिक्त, उष्णवीर्य, अग्निपृक, मलमूत्र-शोधक, और शूल, वात, पित्त, अग्नाद तथा अपस्मार आदि रोगों को दूर करनेवाली कहा है ।

चोवदार-संज्ञा पुं० [सं०] वह नौकर जिसके पास चोच या असा रहता है । असा-धरदार ।

विशेष—ऐसे नौकर प्रायः राजों, महाराजों और बहुत बड़े रईसों की उमोड़ियों पर सत्ताचार आदि ले जाने और ले थाने तथा इसी प्रकार के दूसरे कामों के लिये रहते हैं । मगरी या बरत आदि में ये आगे आगे भी चलते हैं ।

चोधा-संज्ञा पुं० दे० "चोच (१)" ।

चोभाना-क्रि० सं० दे० "चुभाना" ।

चोभा-संज्ञा पुं० [हिं० चोभना] वह पोष्टी जिसमें कई दुवाएँ बँधी होती हैं और जिसमें शरीर के किसी पीड़ित अंग विशेषतः श्याम को सँकेते हैं । लोधा ।

मुहा०—चोभा देना = शौच का पोष्टी में बांध कर उसके शरीर के किसी पीड़ित अंग को सँकेना ।

चोया-संज्ञा पुं० दे० "चोधा" ।

चोर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो द्विप कर पराई वस्तु का अपहरण करे । स्वामी की अनुपस्थिति या अज्ञानता में द्विप कर कोई चीज ले लेनेवाला मनुष्य । चुराने या चोरी करनेवाला । तफ़र ।

मुहा०—चोर पड़ना = चौर का भ्रा कर कुछ वस्तु खेजाना । चोर पर मोरे पड़ना = भ्राँ से भ्राँता होना । चानाक के पाप

मुद्दा०—घोट खाना = आधात ऊपर लेना । प्रहार सहना ।

(२) आघात वा प्रहार का प्रभाव । घाय । जल्म । उ०

—(क) घोट पर पट्टी बांध दे। (ख) उसे सिर में बड़ी घोट बाई ।

घो०—घोट चपेट = घाय जन्म ।

कि० प्र०—खाना ।—खगना ।—पहुँचना ।

मुद्दा०—घोट उभरना = घोट में फिर से पीछा होना । घोट त्याग, छुट रवाना का फिर से दर्द करना ।

(३) किसी को मारने के लिए हथियार आदि चलाने की क्रिया । घार । आक्रमण ।

कि० प्र०—करना ।

मुद्दा०—घोट खाली जाना = घार का निशाने पर न धरना । आक्रमण व्यर्थ होना । घोट बचाना = घोट न लगने देना ।

(४) किसी हिंसक पशु का आक्रमण । किसी जानवर का काटने वा खाने के लिये झपटना । उ०—यह जानवर खाद-मियों पर बहुत कम घोट करता है ।

कि० प्र०—करना ।

(५) हृदय पर का आघात । मानसिक व्यथा । मर्मभेदी दुःख । शोक । संताप । उ०—दूस दुर्घटना से उन्हें बड़ी घोट पहुँची । (६) किसी के अनिष्ट के लिये चली हुई चाल । एक दूसरे को पराम करने की युक्ति । एक दूसरे की हानि के लिये दान पंच । चकाचकी । उ०—राज कल दोनों में खूब घोट खेल रही हैं ।

कि० प्र०—चलना ।

(७) व्यव-गुण विवाद । आवाज़ । बौद्धार । ताना । उ०—एन दोनों कवियों में एख घोट चली है । (क) विश्वासघात । धोखा । दगा । उ०—यह आदमी ठीक वक्त पर घोट कर जाता है । (ख) बर । दगा । मरतवा । उ०—(क) घायो एक घोट हमारी तुफ्तारी हो जाय । (ख) कल यह तुलतुल कई घोट लड़ा ।

विशेष—हम अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः ऐसे ही कार्यों के लिये होता है जिसमें विरोध की भावना होती है ।

घोटाहला—वि० दे० “सुटेक” ।

घोटाहा—वि० [हि० घोट + हा (भव०)] [स्त्री० घोटहा] जिस पर आघात का चिह्न हो । जिस पर घोट का निशान हो ।

घोटा—संज्ञा पुं० [हि० घोषा] राम का वह पसेव जो उसे कपड़े में रप कर दवाने या छानने से निकलता है । इसका व्यवहार प्रायः संवाह्य या देसी शराय आदि में होता है । लपटा । घोषा । साठ ।

घोटाखाना—कि० अ० [हि० घोट] घोट खाना । घायल हो जाना ।

घोटाखाना—वि० [हि० घोट + खान (भव०)] (१) घोट करनेवाला । घोट पहुँचानेवाला । उ०—आयस कबनेउ थोरवा सुगना

खार । परिगं दाग अथवा चोप चोटाखाना—रहीम । (२) घोट खाना हुआ । सुटेक ।

घोटाखाना—कि० अ० [हि० घोट] घोट करना । उ०—पहले निहार नैन चोटनि चोटाखि फेरि हाय मोहि मैव्यो राम प्यारी पंचसर के ।—रसकुसुमाकर ।

घोटिया—संज्ञा स्त्री० दे० “घोटी” ।

घोटियाना—वि० म० [हि० घोट] घोट लगाना या मारना । कि० म० [हि० घोट] (१) घोटी पकड़ना । (२) सव-प्रयोग करना ।

घोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० घृष्ट] (१) सिर के मध्य के वे थोड़े से थोर कुद बड़े थाल जिन्हें प्रायः हिन्दू नदीं मुड़ते या कटाते । शिला । चुर्दी ।

मुद्दा०—घोटी दबना = दे० “घोटी हाथ में होना” । घोटी रखना = घोटी के लिये सिर के बीच के थाल बढाना । (किसी की) घोटी (किसी के) हाथ में होना = किसी प्रकार के दबाव में होना । काबू में होना । जैसे, अब वे कर्दा जायेंगे, उनकी घोटी तो हमारे हाथ में है ।

घो०—घोटीवाला = भूत । प्रेत ।

(२) एक में गुँधे हुए त्रियों के सिर के थाल ।

मुद्दा०—घोटी करना = सिर के थालों को एक में मिला कर गुँधना । दे० “कभी घोटी करना” ।

कि० प्र०—गुँधना ।—बांधना ।

(३) सूत या ऊन आदि का वह थोरा जिसका व्यवहार त्रियों की घोटी गुँधने थोर प्रेत में थालों को बांधने में होता है ।

(४) पान के आकार का एक प्रकार का आभूषण जिसे त्रियाँ अपने जूड़े में खोसती या बांधती हैं । (५) पक्षियों के सिर के वे पर जो आगे की थोर ऊपर उठे रहते हैं । कलगी । (६) शिखर । सब में ऊपर का टडा हुआ भाग । जैसे, पहाड़ की घोटी, मकान की घोटी ।

मुद्दा०—घोटी का = मय मे रहिया या अच्छा । सर्वोनम ।

घोटीदार—वि० [हि० घोटी + दा (भव०)] जिसके घोटी हो । घोटीवाला ।

घोटी घोटी—वि० स्त्री० [देग०] (१) चिकनी खुपड़ी (यात) । सुयामद से भरी हुई (यात) । (२) भूरी या बनावटी (यात) । इधर उधर की (यात) उ०—तुम जानति राधां है छोटी । चतुराईं थंग थंग भरी है पुरन ज्ञान न सुदि की मोटी । हम सों सदा दुखावति मो यह बात कहत मुख घोटी पोटी ।—सूर ।

घोटीवाला—संज्ञा पुं० [हि० घोटी + वाला] भूत, प्रेत या पिशाच ।

घोहा—संज्ञा पुं० [हि० घोर + हा (भव०)] [स्त्री० घोही] वह जो घोटी करता हो । घोर ।

मुद्दा०—घोही का या घोहीवाला = एक प्रकार की गली ।

बोड़-संग्रा पुं० [सं०] (१) उत्तरीय चमड़ा । (२) चोल नामक प्राचीन देश ।

बोड़क-संग्रा पुं० [सं०] एक प्रकार का पहनने का कपड़ा ।

बोड़ा-संग्रा पुं० [सं०] यज्ञी गोरखमुंथी ।

बोड़ी-संग्रा धं० [सं०] ब्रिजों के पहनने की साड़ी ।

बोतक-संग्रा पुं० [सं०] (१) शालचीनी । (२) छाल । पत्कल ।

बोध-संग्रा पु० दे० "बोध" ।

बोद-संग्रा पुं० [सं०] (१) चातुक । (२) बह-लंबी लकड़ी जिसके तिरों पर कोई मुकीला थीर संज लोड़ा लगा हो ।

बोदक-वि० [सं०] बोदना करनेवाला । प्रेरणा करनेवाला । कोई काम करने के लिये उत्साहितवाला ।

बोदक-संग्रा पुं० [हिं० बो०] बहुत अधिक स्त्री-प्रसंग करनेवाला । अत्यंत कामी । (भासाङ्ग)

बोदना-संग्रा पु० दे० "बोदना" संग्रा ।

बोदना-संग्रा धं० [सं०] (१) वह वाक्य जिसमें कोई काम करने का विधान हो । विधि वाक्य । (२) प्रेरणा । (३) योग आदि के संबंध का प्रथम ।

क्रि० सं० स्त्री-प्रसंग करना । संभोग करना ।

संयोग क्रि०—डालना ।—देना ।

बोदाई-संग्रा धं० [हिं० बोदना + ई (अर०)] (१) बोदने की क्रिया । संभोग । (२) बोदने का भाव ।

बोदाइस-संग्रा धं० [हिं० बोदना] स्त्री को पुरुष-प्रसंग की शय्या पुरुष को स्त्री-प्रसंग की प्रथम कामना । कामच्छा ।

क्रि० प्र०—लगना ।

बोदासा-वि० पुं० [हिं० बोदना] (स्त्री-बोदासा) जिसमें बोदास लगी हो । जिसे संभोग की प्रथम इच्छा हो ।

बोदू-संग्रा पु० दे० "बोदक" ।

बोधा-वि० [सं०] जो प्रेरणा करने योग्य हो ।

संग्रा पुं० (१) प्रथम । प्रथम । (२) बाद विवाद में पूर्व-भाव ।

बोधा-संग्रा पुं० [हिं० बो०] (१) चाह । इच्छा । मूर्च्छित । (२) धाव । शोक । रुचि उ०—ई पर जब अवतिर की पुनि पोष मे चूँदरी ले पहिआवन ।—सुदरी सिंदूर । (३) उस्ताह । उमंग । उ०—(क) अरुन नपन भूडुडी उडिअल, चिनवत सुवन भकोप । मनहु मत्त पात्रगन निरखि सिंह-विमरोदि बोध ।—तुवली । (ख) भीर के पोच चडेरल की मनो पोष ते चंद सुगायन चारे ।

क्रि० प्र०—बढ़ना ।

(४) बढ़ावा । उत्तेजना ।

क्रि० प्र०—देना ।

संग्रा पुं० [हिं० बो० = उपनाम] कर्च के धाम की ट्रेपनी का बद रस जो हमसे से मोंके मे तोड़ने समय बहता है । इमडा

असर तेजाव का रस होता है । शरीर में यह जहाँ लग जाता है वहाँ छाया पड़ जाता है ।

संग्रा पुं० दे० "बोध" ।

बोपदार-संग्रा पुं० दे० "बोपदार" ।

बोपना-वि० क्रि० अर्थ [हिं० बो०] किसी वस्तु पर मोहित हो जाना । मुग्ध होना ।

बोपी-वि० [हिं० बो०] (१) इच्छा रखनेवाला । चाह रखनेवाला । (२) ठसारी । जिसके मन में उन्माद हो ।

बोच-संग्रा धं० [सं०] (१) शामियाना खड़ा करने का पड़ा संग्रा । (२) नगाड़ा वा तादा यज्ञाने की लकड़ी । (३) सोने या चाँदी में मड़ा हुआ बंडा ।

धो०—बोचवार ।

(४) छड़ी । सोटा । डंडा ।

बोचकरी-संग्रा धं० [सं०] एक प्रकार का जूरादोजी का काम ।

बोचचीनी-संग्रा धं० [सं०] एक वाहीपथ । यह चीन और जापान में होनेवाली एक लता की जड़ है जिसके पत्ते अरवगंध के पत्तों के समान होते हैं । इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफेद होता है । यह रक्तरोधक होती है और गमभी तथा गठिका आदि की बूझों में पड़ती है । दूधक में इसे निक, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, मलसूत्र-रोधक, शीत शूल, वात, पित्त, उन्माद तथा अपस्मार आदि रोगों को दूर करनेवाली कहा है ।

बोचदार-संग्रा पुं० [सं०] वह नीकर जिसके पास चौर या बसा रहता है । बसा-बसदार ।

बिदोष—ऐसे नीकर प्रायः राजों, महाराजों और बहुत बड़े रईमों की खोशियों पर समाचार आदि ले जाने और से चाने तथा हथी प्रकार के दूसरे कामों के लिये रहते हैं । सवारी या चरण आदि में वे आगे आगे भी चलते हैं ।

बोबा-संग्रा पुं० दे० "बोध (१)" ।

बोभाना-क्रि० ग० दे० "बुभाना" ।

बोभा-संग्रा पुं० [हिं० बो०] वह वेतली जिसमें कई दवाएं पैकी होती हैं और जिसमें शरीर के किसी वीरिण भंग विशेषतः शोथ को संकट है । लोभा ।

मुहा०—बोभा देना = शैशव को फोटनी में रंध कर उमंगे गरीब के विना पीड़ित अथ को संकटा ।

बोधा-संग्रा पुं० दे० "बोध" ।

बोहर-संग्रा पुं० [सं०] (१) जो द्विप कर पराई वस्तु का व्यवहार करे । स्वामी की अनुपस्थिति या अनुपस्थिति में द्विप कर कोई चीज़ ले लेनेवाला मनुष्य । सुराने या चोरी करनेवाला । तख्तर ।

मुहा०—बोहर पड़ना = चोर का अथ कर कुछ पुर होना । चोरी पर गौर पड़ना = पूना में पूजा होना । चोरक

दक्षिण रेशा निकल सकता है, पर इसी दोष के कारण कोई इसे छूना नहीं और इसी लिये इसका कोई उपयोग भी नहीं हो सकता। इसे सूत भी कहते हैं।

चार पहरा—संज्ञा पुं० [हि० चार = चार + पहरा] (१) वह पहरा जो शत्रु के जासूसों से रोना की रक्षा के लिये गुप्त रूप से बंधाया जाता है। (२) किसी प्रकार का गुप्त पहरा।

चारपुष्प—संज्ञा पुं० दे० "चारपुष्पी"।

चारपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० दे० "चारपुष्पी"।

चारपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छुपा जियदा इंटम कुड़ खाली लिये होता है। इसके पत्ते खंवे और सोपेदार होते हैं। इसमें चासमानी रंग का फूल लगता है जो नीचे की ओर लटक रहता है। दूधक में इसे नेत्रों के लिये हितकारी और गुठु गर्भ को आकर्षण करनेवाला माना है। इसे श्रेणाहुली या शंसाहुली भी कहते हैं।

पटथी—संज्ञिका; केंदरिनी। अथःपुष्पी। अमर-पुष्पी। राज्ञी। **चार पेट**—संज्ञा पुं० [हि० चार + पेट] (१) वह पेट जिसमें के गर्भ का जन्मी पता न लगे। (२) किसी चीज़ के मध्य में वह गुप्त स्थान जिसमें स्वर्ण लुहें कोई चीज़ लोगों पर प्रकट न हो। (३) वह चीज़ जिसके मध्य में कोई पेना गुप्त स्थान हो।

चार बदन—संज्ञा पुं० [हि० चार + बदन] वह मनुष्य जिसकी मोटाई प्रकट न हो। वह मनुष्य जो बालव्य में बलवान् हो पर देवते में दुबला जान पड़े।

चार बाल—संज्ञा पुं० [हि० चार + बाल] वह बाल या रेत जिनके नीचे दलदल हो।

चार महल—संज्ञा पुं० [हि० चार + महल] वह महल या घड़ा मरुत जहाँ राजा और स्वयं अपनी अतिवाहिता स्त्री या प्रेमिका रखते हैं।

विशेष—कभी कभी लोग "चार महल" से अतिवाहिता स्त्री या गुप्त प्रेमिका वा भी अर्थ लेते हैं।

चारमिहीचनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चार + मीचनी = नर कान्ता] अतिमिहीचनी नाम का खेल।

चार भूंग—संज्ञा पुं० [हि० चार + भूंग] भूंग का वह कड़ा दागा जो न नो शक्ती में पिपता है और न गजाने से गजता है।

चार रस्ता—संज्ञा पुं० दे० "चार गली"।

चार सीढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चार + सीढ़ी] गुप्त सीढ़ी। वह नीची लियका पता जल्दी न लगे।

चारस्त्रायु—संज्ञा पुं० [सं०] कीवादीनी।

चारहृदिया—संज्ञा पुं० [हि० चार + हृदिया] वह दूकानदार जो चोरों से लाभ खींचता हो।

चारहुली—संज्ञा स्त्री० दे० "चारपुष्पी"।

चोरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोरपुत्री।

चोरा चोरी*—क्रि० वि० [हि० चोर + चोरी] छिपे छिपे। चुपके चुपके।

चोराख्य—संज्ञा पुं० दे० "चोरपुष्पी"।

चोराना*—क्रि० सं० दे० "चुराना"।

चोरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोरी। चुराने का काम।

चोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चोर] (१) छिप कर किसी दूसरे की वस्तु के लेने का काम। चुराने की क्रिया। (२) चुराने का भाव।

घां—चोरी यारी या चोरी दिनाम्ना = श्रुति श्रौंग निद्रित कर्म।

मुहा०—चोरी चोरी = छिप कर। गुप्त रूप में। चोरी लगना = चोरी के वेग का अभिप्राय होना। चोरी लगाना = चोरी लगने का वेग आरंभित करना। चोरी का अभिप्राय लगाना।

चोरीठा*—संज्ञा पुं० दे० "चोरैठा"।

चोरीला—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का बड़िया चारा जिसके दाने कभी कभी गरीब लोग भी अनाज की तरह खाते हैं। पशुओं को यह चारा बीज पड़ने से पहले खिलाया जाता है।

चोल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जिसका विस्तार मद्रास प्रांत के वर्तमान कांयंबूर त्रिचनापली और तंजौर आदि से मैसूर के प्राये दक्षिणी भाग तक था। रामायण और महाभारत आदि में हम देश का जिक्र आया है। (२) उक्त देश का निवासी। (३) क्रिपों के पहनने की एक प्रकार की श्रमिषा। चोली। (४) कुरते के उंग का एक प्रकार का बहुत लंबा पहनावा जिसे चोला कहते हैं। (५) मनीष। (६) छाल। कण्ठ। (७) कवच। तिरल-कतर।

चोलक—संज्ञा पुं० दे० "चोला"।

चोलकी—संज्ञा पुं० [सं० चोलकि] (१) घांम का कला। (२) चारंगी का पेंड़। (३) हाथ की कलाई। (४) करील का पेंड़।

चोलमंड—संज्ञा पुं० [सं० चोल + मंड] कपड़े का वह टुकड़ा जो ऐसे हीमाथ से बुना जाता है कि उसमें से एक चोली बन कर संभव हो। इसके गने और बांधवाले श्रमों पर प्रायः कलावत् या जुरदानी आदि की बेलें बनी होती हैं।

चोलन—संज्ञा पुं० दे० "चोलकी"।

चोलना*—संज्ञा पुं० दे० "चोला"। उ०—भला बना संजोग प्रेम का चोचना। सन मन धर्यो मीन सादेव हँसि चोहना।—कवीर।

चोलरंग—संज्ञा पुं० [सं० चोल = मनीष + रंग] मनीष का रंग जो पका और खाल होता है।

चोलसुपारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चोल + सुपारी] बिकनी सुपारी जो प्रायः चोल देश में अचिकना से होती है।

चोला—संज्ञा पुं० [सं० चोल] (१) एक प्रकार का बहुत लंबा और चौड़ा कान्ता कुरता जो प्रायः मध्य प्रदेश और मुत्ता आदि

पहनते हैं। (२) एक रसम जिसमें नए जनमे हुए बालक को पहले पहल कपड़े पहनाए जाते हैं। यह रसम प्रायः ब्रह्मप्राशन आदि के समय होती है। (३) वह कपड़ा जो पहले पहल बच्चे को पहनाया जाता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(३) शरीर। बदन। जिसम। तन। जैसे, कुछ दिनों तक यह दवा खाओ, कंचन सा चोला हो जायगा।

मुहा०—चोला छोड़ना = मरना। प्राण त्यागना। चोला बदलना (१) एक शरीर परित्याग करके दूसरा शरीर धारण करना। (साधुओं की बोली)। (२) नया स्वरूप धारण करना।

चौली—संज्ञा स्त्री० [म०] (१) स्त्रियों का एक पहनावा जो श्रिंगिया से मिलता जुलता होता है। श्रिंगिया से इसमें भेद यह होता है कि इसमें पीछे की ओर बंध नहीं होता। पश्चिम दोनों बगलों में कपड़े का ही कुछ भाग बड़ा रहता है जिसे रींच कर श्रिंगिया पेट के ऊपर गांठ देकर बांध लेती हैं। (२) चोला नामक एक प्रकार का कुरता। (दे० “चोला”)। (३) उलिया जिसमें वान आदि रहते हैं। (४) शीमरवे आदि का वह ऊपरी थंरा जिसमें बंध लगे रहते हैं।

मुहा०—चौली-दानन का साथ = बहुत अधिक साथ या धनि-धन। ऐसा साथ जिसके जल्दी दूर होने की संभावना न हो।

चौली मार्ग—संज्ञा पुं० [म०] दाममार्ग का एक भेद।

विशेष—मेसा प्रसिद्ध है कि इस मार्ग के अनुयायी श्री-स्वरूप एक स्थान पर एकत्र होकर मांस, मद्य और मत्स्य आदि का सेवन करते हैं और तदुपरान्त मय उरस्थित स्त्रियों की चोलियाँ एक घड़े में रख दी जाती हैं। प्रत्येक मनुष्य यारी यारी से उम घड़े में हाथ डालता और एक चोली निकालता है। जिसके हाथ में जिस स्त्री की चोली था जाती है, वह उसी के साथ संभोग करता है।

चोहा—संज्ञा पुं० दे० “चोला”। उ०—चूहा धार्मिक भैंस पशुभि, मँथक ताल लगाये। चोहा पहिर के गदहा नाचे, ऊँट विसुनपद गाये।—कवीर।

चोवा—संज्ञा पुं० दे० “चोहा”।

चोष—संज्ञा पुं० [स०] भावप्रकाश के मन से एक प्रकार का रोग जिसमें रोगी को बगल में ऐसी जलन मालूम होती है कि मानों उसके श्याम पास श्याम जलनी है।

चोषक—वि० [सं०] चूसनेवाला।

चोषक—संज्ञा पुं० [सं०] चूसने की क्रिया। चूसना।

चोष्य—वि० [म०] चूसने के योग्य। जो चूसा जा सके। चूष्य।

चोसा—संज्ञा पुं० [दे०] लकड़ी रेतने की एक प्रकार की रीति जो प्रायः एक हाथ लंबी और दो अंगुल चौड़ी होती है।

चोस्क—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम जाति का घोड़ा। (२) सिंघु-घार नाम का पेड़।

चोहान—दे० “चोदान”।

चौबालिसा—वि० दे० “चौबालिस”।

चौक—संज्ञा स्त्री० [स० चमकन, प्रा चमकि, चक्कि] वह चंचलता जो भय, आश्चर्य और पीड़ा के सहसा उपस्थित होने पर हो जाती है। एकाएक डर जाने या आश्चर्य में पड़ जाने के कारण शरीर के अङ्गों के साथ कितना उठना और चित्त का उचट जाना। किम्बक। भड़क।

क्रि० प्र०—उठना।—पड़ना।—जाना।

चौकना—क्रि० ख० [हिं० चौक + ना (प्रय०)] (१) भय या पीड़ा के सहसा उपस्थित हो जाने से चंचल हो उठना। एकाएक डर जाने या पीड़ा आदि अनुभव करने पर अङ्ग से कंपन या हिल उठना। किम्बकना। उ०—(क) बंदूक छूटते ही वह चौक उठा। (ख) वह बचाने जाने क्यों सोते में चौक चौक उठता है। (ग) सुई चुभाते ही वह चौक कर उठ पड़ा।

संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

(२) चौकड़ा होना। स्वरदार होना। सतर्क होना। उ०—वे तो खया दिए देते थे, पर उसकी पिछली बातों में चौक गए।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) चकित होना। भीचका होना। हैरान होना। विस्मित होना। उ०—उसके मरने का हाल सुन कर वे चौक कर काने लगे, “हैं” अभी तो मैंने उसके कल देखा था”।

क्रि० प्र०—उठना।—पड़ना।

(४) भड़कना। किमी कार्य में प्रवृत्त होने से डरना। भय-या आशंका से हिचकना। उ०—चौंकते क्यों हो इसे हाथ में लेते क्यों नहीं।

चौंकाना—क्रि० म० [हिं० चौंकना का प्रे०] (१) एक धारणी भय उत्पन्न करके चंचल कर देना। जी धड़का देना। भड़काना। उ०—उसने याजा पजा कर घोड़े को चौंका दिया। (२) चौंकना करना। स्वरदार करना। सतर्क करना। किसी बात का खटका पड़ा कर देना। भड़काना। उ०—तुम यों ही हमारे पाहकों को चौंका दिया करते हो। (३) चकित करना। विस्मित करना। आश्चर्य में डालना।

चौंका—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + का० चद] सिंचाई के लिये पानी इकट्ठा करने का वह गड्ढा जहाँ नीचे से पानी बढ़ा कर छाया जाता है।

चौंटली—संज्ञा स्त्री० [स० चूडला वा शैतोभटा] मफूद सुँघसी। खेत चिरमिटी।

चौंढोला—संज्ञा पुं० दे० “चंढोला”।

चौंढा—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ खेत सींचनेवाले

दृष्ट से मोट निकाल कर गिराने हैं। पानी गिराने की कुएँ की दाल। द्विजलारा। लिलारा।

वैतरा-मंजा पु० दे० "वैतरा"।

वैतिस-वि० [सं० चतुर्विंशत्, प्रा० चतुर्विंश, प्रा० चतुर्विंश] जो गिनती में तीस और चार हो।

मजा पु० तीस और चार की संख्या जो श्रेणों में इस प्रकार लिखी जाती है—३४।

वैतिसवा-वि० [हि० चौविंश + वा (प्रत्य०)] जो क्रम में तैतिसवें के उपरांत पड़े। जिसका स्थान तैतिस और चतुस्रों के पीछे हो।

वैतीसा-वि० मंजा पु० दे० "वैतिस"।

वैच-मंजा छं० [सं० चक्र = चक्रवर्त वा चो = चार; और + च] चक्रवर्च। निलमिली। अत्यंत अधिक चक्रवत् प्रकार के सामने दृष्टि की शक्ति।

वैचिधाना-क्रि० श्र० [हि० वैच] (१) अत्यंत अधिक चक्रवत् वा प्रकटा के सामने दृष्टि का स्थिर न रह सकना। चक्रवर्च होना। जैसे, चाँद वैचिधाना, किमी मनुष्य का वैचिधाना। (२) दृष्टि मंद होना। चाँदों से सुझाई न पड़ना। (निरस्कार)।

वैची-वंशा छं० [हि०] चक्रवर्च। निलमिली। उ०—चक्रवर्त मोहिँ लगी वैची सी जाती न कौन कहाँ से रीं थाए। —सुकसी।

वैचक-वि० [सं०] (१) जिसमें सुबक शक्ति हो। शक्तिपूर्ण करनेवाला। (२) जिसमें सुबक मिला हो।

वैर-संज्ञा पु० [सं० चार] (१) वैर। सुरगाव की पूढ़ के पोलों का गुच्छा जो एक ढाँड़ी में लगा रहता है और पीछे या फाल में राजा महाराजार्थी या देवमूर्तियों के मिरों पर इनविषे हित्वा जाना है जिसमें मंत्रियों आदि न धरते पावें। विशेष दे० "वैर"।

क्रि० प्र०—करना।—डुलाना।—डोना।

वैरा-धर दलना = विर पर वैर हित्वा जाना। धर राजना = विर पर वैर हित्वा जाना। वैर दुरता = दे० "वैर दलना"। वैर दुरता = दे० "वैर राजना"।

(२) भद्रमोड़ की जड़। मल्यानाजी की जड़। वैक। (३) विषय में खराब के पहलने भूँ (S) की संज्ञा। जैसे, श्री..... (४) मालर। फूँटना। उ०—(क) नैसद और बनाए श्री धाने गन कंष। वैषे संत राजमाह तहँ जो देस मो कंष।—जायसी। (ख) बहु फूल की माल लपेटि कै खमन भूप सुगप सौं सादि धुराहए। तारिँ बहुत दिनि चंद धरा में सुमेभित धरि पने छटकहए।—हरिदचंद्र।

वैरगाव-मंजा छं० [हि० वैर + सं० गे] सुरगाव।

वैरा-मंजा पु० [सं० वैर + गश्] शनाम रखने का गहवा। गाढ़।

वैराना-क्रि० सं० [सं० चर] (१) वैर डुलाना। वैर करना। (२) हँवा फेरना। झाड़ू देना। बुझाना। उ०—वैरावत सच राजमग चंदनजल छिरकाइ। प्रकट पताका घर घरन बाँधत छिय हरपाइ।—पद्माकर।

वैरी-मंजा छं० [हि० वैर + डे (प्रत्य०)] (१) काठ की ढाड़ी में लगा हुआ घोड़े की पूँड़ के बालों का गुच्छा जो मरिचकों इत्यादि के काम में जाता है। घोड़े के सवार इसे प्रायः अपने पाम रखते हैं। (२) वह डोरी जिसमें सिर्वाँ स्तिर के बाल गुँथ कर बाँधती हैं। चाँदी वा वेणी बाँधने की डोरी। उ०—चौरी डोरी विगलित केश। कूमन लटकन सुकुट सुदेग।—सूर। (३) सफेद पूँछवाली गाय।

वैसट-वि० [सं० चतुष्टय, प्रा० चतुष्टय] जो गिनती में साठ और चार हो।

मजा पु० साठ और चार की संख्या जो श्रेणों में इस प्रकार लिखी जाती है—६४।

वैसटवा-वि० [हि० नैसठ + वा (प्रत्य०)] जो क्रम में निरसठवें के उपरांत पड़े। जिसका स्थान निरसठ और चतुस्रों के पीछे हो।

वैहा-मंजा पु० [देग०] गलकड़ा।

वैही-मंजा छं० [देग०] हल की एक लकड़ी जिसे परिहारी भी कहते हैं।

वै-वि० [सं० चतु, प्रा० चत] चार (संख्या)।

वै-चौ-चौपहल। चौबगला। चौमासा। चौघड़ा।

विशेष-इस अर्थ में हल शब्द का प्रयोग श्रम समास ही में होता है।

मंजा पु० मोती मालने का एक मान। जाहरियों की एक सौल।

वैभन-वि० मंजा पु० दे० "वैभन"।

वैभाना-मंजा पु० [सं० चतुर्विंशत्] चौपाया। गाय, बैल, भैंस आदि पशु। (विशेष कर गाय बैल के लिये)।

मंजा पु० [हि० वै = चार] (१) हाथ की चार डँगलियों का विस्तार। चार श्रेणुल की माप। (२) तारा का वह पना जिस पर चार दृष्टियाँ हों।

विशेष-दे० "चौवा"।

वैभारी-संज्ञा छं० दे० "चौवा"।

वैभाना-क्रि० सं० [हि०] (१) धक्काना। चकित होना। विस्मित होना। उ०—भोर भए जाये यतिराई। चहुँ दिगि लखत भए चौंछाई।—रघुराज। (२) चौकड़ा होना। घबरा जाना। उ०—साँच दाम जेनेना रह्यो, तेनेना लियेयो देलान। पीवा कत सु थावयो, बलिक चिस चौंछान।—रघुराज।

चौक-संज्ञा पु० [सं० चक्र, प्रा० चक्र] (१) चौकार मूमि। चौँदटी सुली जमीन। (२) आंगन। घर के बीच कोटरियों और बरामदों से घिरा हुआ वह चौँदटा स्थान जिसके

वीगड़ा-संज्ञा पुं० [हि० वी + गेड = पेर] (१) खरहा । खरगोरा ।
(२) दे० "वीघड़ा" ।

वीगड़ा-संज्ञा पुं० [हि० वी + गडू वड = भेज] (१) घड़ खान
जहाँ चार गाँवों की मीमा मिली हों । चौहड़ा । चौसिंहा ।
चौला । (२) चार चीजों का समूह ।

वीगड़ी-संज्ञा स्त्री० [हि० वी + गड़्या] वॉम की कृष्टियों का वह
दर्भा जिसमें जानवर फँसते हैं ।

वीगान-संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) एक खेल जिसमें लकड़ी के दल्ले
में गेंद मारते हैं । यह घोड़े पर चढ़ कर भी खेला जाता है ।
यह खेल हाकी या पोलो नामक अंगरेजी खेलों ही के समान
होता है । उ०—(क) ते तव मिर कंदुक इव नाना । खेलि-
हैं भालु कीस चौगाना ।—तुलसी । (ख) श्री मोहन
खेलत चौगान । द्वारावती कोट कंचन में रच्यो रचिर मैदान ।
यादव धीर बराह बटाई इक हलधर इक आपै गोर । निकसे
सयै कुँवर थसवारी उचैश्रवा के पोर । लीले सुरंग, कुमैन
श्याम तेहियर दे सव मन रंग ।—सूर । (२) चौगान
खेलने की लकड़ी जो आगे की ओर टेढ़ी वा मुकी होती है ।
उ०—(क) कर कमलनि विचित्र चौगाने खेलन लगे खेल
रिभट्ट ।—तुलसी । (ख) लै चौगान बटा करि आगे प्रभु
आपु जय धार । सूर श्याम पृष्ठत सव गजालन खेलैमें केहि
ठाहर ।—सूर । (३) चौगान खेलने का मैदान । उ०—श्रंत-
पुर चौगान लौं निकसत कसमम होइ । नरनारी धावत सुख
जायत लखत कोट नहिँ कोइ ।—रघुराज । (४) शगाड़ा बजाने
की लकड़ी ।

वीगानी-संज्ञा स्त्री० [फ्रा० चौगान ?] हुक के मीची नली जिससे
घुमाँ खींचते हैं । निगाली । सटक ।

वीगिर्द-क्रि० वि० [हि० वी + गिर्द = तरफ] चारों ओर । चारों
तरफ़ ।

वीगुमाँ-वि० दे० "बैगुना" ।

वीगुना-वि० [म० चतुर्गण, प्रा० चतुर्गुण] [हि० बैगुना] चार
थार ओर उतना ही । चतुर्गुण । चहारचंद ।

मुहा०—मन चौगुना होना = उमलाह बढ़ना । चित्त और प्रमत्त
होना । उ०—विंभ्यावनी तिया मी न देखी कहुँ तिया नैन
दीप्यो प्रभु दिया देखि कियो मन चौगुना ।—दिया ।

वीगुन-वि० दे० "बैगुना" ।

वीगानड़ा-वि० [हि० वी + गेड = पेर] (१) चार पैरवाला ।
(२) खरगोरा । खरहा ।

वीगोड़िया-संज्ञा स्त्री० [हि० वी = चार + गेड = पेर] (१) एक
प्रकार की रूँची चौकी जिसके पायों में चढ़ने के लिये सीढ़ी
की तरह उँडे लगे रहते हैं । टिकटी । [यह छूत दीवार आदि
ऊँचे स्थानों तक पहुँचने, झाड़ने पोंढ़ने, सफ़ाई या रंग

आदि करने के काम में आती है ।] (२) धंस की सीतियों
का बना हुआ एक डौंचा वा फंदा जिसके चारों पहलों में तेल
में पकामा हुआ पीपल का गेंद लगा रहता है । बहुसिप
इसमें चिट्टिया फँसते हैं ।

वीगोड़ा-संज्ञा पुं० [हि० वी + फा० गंगा] चौखूँटी तरती जिम्
में मेवे, मिठाईयाँ आदि रख कर कहीं भोजते हैं ।

वीगोशिया-वि० स्त्री० [फ्रा०] चार कोनेवाली ।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की टोपी जो फण्डे के चार निकोने टुकड़ों
की मी कर बनाई जाती है ।

संज्ञा पुं० तुकी घोड़ा ।

वीघड़-संज्ञा स्त्री० [हि० वी = चार + दह] दाढ़ का वह चौड़ा
और विचटा दाँत जो आहार चूचने वा चवाने के काम में
आता है ।

वीघड़ा-संज्ञा पुं० [हि० वी = चार + धर = स्थान] (१) चाँदी
सेने आदि का बना हुआ एक प्रकार का डिब्बा जिसमें
चारताने बने होने हैं ।

विशेष—यह कई आकार का बनता है । विशेषतः मोल होता
है और स्थाने फूल की पखुड़ों के आकार के बनाए जाते हैं ।
इन धानों में इलायची, लौंग, जावित्री, सुपारी इत्यादि भर
कर सुदृक्लियों में रखते हैं ।

(२) चार खानों का वरतन जिसमें मसाला आदि रखते हैं ।

(३) दिवाली के दिनों में विकनेवाला मिठी का एक खिलौना

जिसमें आपस में लुड़ी हुई चार छोटी छोटी कुलियाँ होती हैं ।

लड्डके इसमें मिठाई आदि रख कर खाते हैं । (४) पत्ते की

खोंगी जिसमें चार बीड़े पान हों । उ०—दो चौघड़े उधर दे

आओ । (५) बड़ी जाति की गुजरती इलायची ।

वीघड़ी-वि० स्त्री० [हि० वी + गेड] चार तह वा परत की ।

वीघरी-वि० [देग०] घोड़ों की एक जात । चौफाल । पोहवाँ ।

मरपट । उ०—अथलक अथरस लम्बी निगामी । चौघर धाज
समुँ दे सय ताजी ।—जायसी ।

वीघरा-संज्ञा पुं० [हि० वी + धर] (१) पीतल की दीपत जिसके
शीये में चार वस्तियाँ जलती हैं । (२) दे० "वीघड़ा" ।

वीघोड़ी-संज्ञा स्त्री० [हि० वी + घाड़ा] चौकड़ी गाड़ी । चार घोड़ों
की गाड़ी वा रथ । उ०—सौ तुपार तीस गज पावा । हुँहुमि
ओ चौघोड़े देवावा ।—जायसी ।

वीचंदकी-संज्ञा पुं० [हि० वीप + चंद वा चवच + चंद] कलंक-सूचक
अपवाद । बदनामी की चर्चा । निंदा । उ०—सखि ! हँ वा
रँगीने को रंग रँगीये चवाहन वीचंद कीयो करे ।—धूँ० सत० ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—वीचंद पारना = चवाच करना । बदनामी करना ।

वीचंदहाई-वि० स्त्री० [हि० वीचर + हाई (प्रत्य०)] चबाय

करनेवाली । बदनामी फैलानेवाली । दूसरों की बुराई करनेवाली । उ०—**चौबंदहाई जैरं** वज की जे परायो येनो सय भांति बिगारै ।—**ठाकुर** ।

चौत्र-संज्ञा पु० दे० "चौत्र" ।

चोहुगी-संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + सं० युग] चार युगों का काल ।

चोड़-संज्ञा पु० [म०] चूड़ाकरण संस्कार ।

वि० [हि० चौबट] चौबट । सत्यानारा ।

चौड़ा-वि० [हि० चौ = चार + पाठ = चौड़ाई वा सं० विविट = विषय] [२५० चौड़ा] लंबाई की ओर के दोनों किनारों के बीच विस्तृत । लंबाई से भिन्न दिशा की ओर फैला हुआ । चकला । लंबा का उलटा ।

चा०-चौड़ा चकला ।

रुहा पु० [सं० चूडा = चूड़ के पास का गड़दा] वह गड़दा जिसमें धमाज रखते हैं ।

चौड़ाई-संज्ञा स्त्री० [हि० चौड़ा + ई० (प्रत्य०)] लंबाई से भिन्न दिशा की ओर का विस्तर । लंबाई के दोनों किनारों के बीच का फैलाव ।

चौदान-संज्ञा स्त्री० [हि० चौदा] चौदाई ।

चौदानाई-संज्ञा स्त्री० [हि० चौदा] चौड़ा करना । फैलाना ।

चौदावा-संज्ञा पु० दे० "चौदावन" ।

चौड़ी-वि० स्त्री० दे० "चौड़ा" ।

चौडौली-संज्ञा पु० दे० "चौडौली" ।

चौतगी-वि० [हि० चौ + गी] वह छोरा जिसमें चार तारे बने हैं ।

चौतनिया-संज्ञा स्त्री० [हि० चौ = चार + तनी = तन] (१) चौतनी । उ०—(क) करत मिंगार चार भया मिलि गोभा बरनि न जाई ।—**चिर निचिर मुमग चौतनिया देद्र धनुष हृदि छाई ।**

(ख) भास तिलक मयि विंदु विराजत तोहति सीस

सात चौतनिया ।—**तुलसी** । (२) श्रेणिया । चैली ।

चौधरी । उ०—**नारंगी नीरु उरोतनि जाति ह्वे नख वानर**

चौतनिया में ।—**सैवक प्याम** ।

चौतनी-संज्ञा स्त्री० हि० चौ = चार + तनी = तन] बच्चों की टोपी जिसमें चार बंद लगे रहते हैं । उ०—(क) पीत चौतनी सिन सुहाई ।—**तुलसी** । (ख) हृदिर चौतनी मुमग सिर मेवक कुंठि केय । नर निगर सुहर कंडु दोउ मोभा सकल सुद्रेम ।—**तुलसी** ।

चौतरका-संज्ञा पु० [हि० चौ + तक = लकड़ी, परत] एक प्रकार का लोधा या लंप ।

चौतरा-संज्ञा पु० दे० "चौतरा" ।

चौतरी-संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + टी] खेल की विनोद (खट-रिपेदार) का एक कपड़ा जो हतना लंबा होता है कि चार घट, बाएँ किनारे पर भी एक मनुष्य के बैठने भर को होता है ।

चौतरा-संज्ञा पु० [हि० चौ + तर] एकतारे की तरह का एक प्रकार का वाजा जिसमें यंत्रने के लिये चार तार होते हैं ।

वि० चार तारोंवाला । जिसमें चार तार हों ।

चौताल-संज्ञा पु० [हि० चौ + ताल] (१) सुदंग का एक ताल ।

इसमें ६ दीर्घ श्रयवा १२ लघु मात्राएँ होती हैं जिसमें से ६ श्रावण और २ खाली होते हैं । इसका खेल यह है—

धा या धिनता कृता गंदिनता तेथेकना गंदिधिन । (२) एक प्रकार का गीत जो होली में गाया जाता है ।

चौताला-वि० [हि० चौ + ताल] चार तालवाला । जिसमें चार ताल हों ।

चौताली-संज्ञा स्त्री० [दे०] कपास की डँटो वा छोटा जिसमें से रुई निकलती है ।

चौतुका-वि० [हि० चौ + तुक] जिसमें चार तुक हों ।

रुहा पु० एक प्रकार का छंद जिसके चारों चरणों की तुक मिली हो ।

चौध-संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्थी, प्रा० चतुर्थ, हि० चतुर्थ] (१) प्रति पक्ष की चौथी तिथि । हर पक्षवारे का चौथा दिन । चतुर्थी ।

मुद्गा-संज्ञा स्त्री० चांद = भाद्र शुद्ध चतुर्थी का चंद्रमा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यदि कोई देल से तो उसे झुड़ा फर्तक नमना है । माघवत आदि पुराणों में लिखा है कि धीकृत्य ने चौध का चंद्रमा देखा था इसीसे उन्हें माघ की चोरी स्त्री थी । अथ एक हिंदू भाई सुदी चौध के चंद्रमा का दर्शन वचते हैं और यदि किसी का झुट मूठ फर्तक लगता है तो कहते हैं कि उसने चौध का चांद देखा है । उ०—**सगी न कहूँ व्रज गलिन में श्रावत जात कलंक । निरिष चौध को चंद्र यह सोचत मुमुक्षि संसक ।—पद्मकर** ।

(२) चतुर्थीस । चौपाई भाग । (३) मण्डल का लगाया हुआ एक प्रकार का कर जिसमें शामदनी वा तहसील का चतुर्थीस ले लिया जाता था ।

† वि० चौथा । उ०—**चंपक सता चौध दिन जान्यो सुगमद स्तिर लगायो ।—सूर** ।

चौधपन-संज्ञा पु० [हि० चौध + पन] मनुष्य के जीवन की चौथी अवस्था । बुढ़ाई । बुढ़ापा । उ०—**दोह न विषय विद्या, भयन दसन भा चौधपन । हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयत हरि भगवि विनु ।—तुलसी** ।

चौथा-वि० [सं० चतुर्थ, प्रा० चतुर्थ] [२५० चौथा] क्रम में चार के स्थान पर पड़नेवाला । तीसरे के उपरांत का । जिसने पहले तीन दौर हों ।

संज्ञा पु० सुतक के घर होनेवाली एक रीति जिसमें संपर्की तथा विरादरी के लोग झुकड़े होने हैं और दाह करनेवाले को दसपा, पगड़ी कापि देते हैं । यदि सुतक की विधवा खी जीवित हो तो उसे पौती घर श्रादि दी जाती है । उ०—**नर सुगहनके पीछे में मर मे** ।

शैषाई—संज्ञा पुं० [हिं० शैषा + ई (प्रत्य०)] शैषा भाग । चारसम भागों में से एक भाग । चतुर्विंश । चत्वार्यम् ।

शैषाई—संज्ञा स्त्री० दे० "शैष" ।

शैषाई—संज्ञा पुं० दे० "शैषाई" ।

शैषाया—संज्ञा पुं० [हिं० शैषा] (१) षड उबर जो प्रति चांधे दिन शाये ।

शैषा—प्र०—माना ।

(२) शैषाई का हकदार । चतुर्विंश का अधिकारी । *

शैषी—वि० ग्री० दे० "शैषा" ।

शैषा [हिं० शैषा] (१) विवाह की एक रीति जो विवाह हो जाने पर चांधे दिन होती है । इसमें वर कन्या के हाथ के फंगन खोले जाते हैं । उ०—(क) सकल चार शैषी कर कीन्हें श्रतःपुरसामिन सुख दीन्हें ।—रघुराज । (ख) चांधे दिवस रंगपति प्राप । विधि शैषी कर चार कराप ।—रघुराज ।

मुद्रा—शैषी का जोड़ा = वह जोड़ा वा लहंगा जो वर के घर से आता है और जिसे दुलहिन शैषी के दिन पहनती है । शैषी खेलना = शैषी के दिन दुलहा दुलहिन का एक दृग्गं के ऊपर भंगे फल आदि फेंकना । शैषी छटना = शैषी के दिन वर कन्या के हाथों के फंगन छुटना । शैषी का रीति होना । शैषी छुटना = शैषी की रीति करना ।

(२) फसल की बाट जिसमें जमींदार शैषाई लेता है और शरारती तीन शैषाई । शैषाई ।

शैषाया—संज्ञा पुं० [हिं० शैषाई] शैषाई । चतुर्विंश ।

शैषा स्त्री० छोटी नाव जिसमें बहुत थोड़ा धोम लड़ सके ।

शैषा—वि० [सं० चतुर्विंश] [श्री० शैषा] (१) चार दांतोंवाला । जिसके चार दांत हैं । जो पूरी चाड़ का न पहुँचा हो । बचपन और जवानी के बीच का । उभड़ती जवानी का । (इस शब्द का व्यवहार छोटे के बच्चों और बिलों आदि के लिये होता है ।) (२) शरद्वृद्ध । उम्र । उड़ट । (३) स्वाम देश के हाथी की एक जाति जिसे चार दांत होते हैं ।

शैषा—संज्ञा स्त्री० [हिं० शैषा] शरद्वृद्ध । उड़टता । छटता । टिटाई ।

वि० स्त्री० दे० "शैषा" ।

शैषा—संज्ञा स्त्री० दे० "शैष" ।

शैषा—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्विंश, प्र० चतुर्विंश] वह तिथि जो किसी पक्ष में चौदहवें दिन होती है । चतुर्विंश । उ०—फागुन वदि चौदस को शुभ दिन अथ रविवार सुधायो । नखन उत्तरा श्राप विचारयो काल कंस को श्रायो ।—रघु ।

शैषा—वि० [सं० चतुर्विंश, प्र० चतुर्विंश, प्र० चतुर्विंश] जो गिनती में दस और चार हैं । जो दस से चार अधिक हैं ।

शैषा पुं० दस और चार के जोड़ा की संख्या जो शंको में इस प्रकार लिखी जाती है—१४ ।

मुद्रा—शैषाई विधा शैषाई भुवन, शैषाई रत्न = दे० "शैषा" "भुवन" और "रत्न" ।

शैषा—वि० [हिं० शैषा + शै (प्रत्य०)] जिसका स्थान तेरहवें स्थान के उपरांत हो । जिसके पहले तेरह और हैं ।

शैषा—संज्ञा पुं० [हिं० शैषा + शै] दो हाथियों की लड़ाई । हाथियों की मुठभेड़ । उ०—पीलहि पील देखावा भयो देहूँ शैषात । राजा चहै सुंदे भां शाह चहै शह मात ।—जायसी ।

शैषा—वि० [हिं० शैषा + शै] वह खेल (विरोधः सारदा या इसी प्रकार का और कोई जूए का खेल) जिसमें चार दांव हों । वह खेल जिसमें चार दांव लग सकें ।

शैषा—संज्ञा पुं० दे० "शैषा" ।

शैषा—संज्ञा स्त्री० दे० "शैषा" ।

शैषा—संज्ञा स्त्री० [हिं० शैषा + शै (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार की बाली जिसमें चार पतियों की सोने की जड़ाक टिकड़ीं लगी होती है । (२) फान की वह बाली जिसमें मोती के चार दांने लगे हों ।

शैषा—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्तक श्रुति का नाम ।

शैषा—वि० दे० "शैषा" ।

शैषा—संज्ञा स्त्री० [हिं० शैषा] (१) शैषी का काम । (२) शैषी का पत्र ।

शैषा—संज्ञा स्त्री० [हिं० शैषा] शैषा ।

शैषा—संज्ञा पुं० [हिं० शैषा] (१) शैषी का काम । (२) शैषी का पत्र । (३) वह धन जो शैषी को उसके कामों के बदले मिले ।

शैषा—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्विंश, मसन + शै = शैषा] किसी जाति, समाज या मंडली का मुखिया जिसके निर्णय को उभ जाति, समाज या मंडली के लोग मानते हैं । प्रधान । उ०—भने रघुराज कारवण्य पण्य शैषी हैं जग के विकार जेने सर्व सरदार हैं ।

शैषा—संज्ञा पुं० कुकु लोग इस शब्द की व्युत्पत्ति "चतुर्विंश" शब्द से बतलाते हैं ।

शैषा—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्विंश] कृष्ण पर का वह दाल स्थान जहां खेत सींचनेवाले डेंकुली या चरस आदि से पानी निकाल कर गिराते हैं । चीकर । लिलारी ।

शैषा—संज्ञा पुं० दे० "शैषा" ।

शैषा—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्विंश] एक दूद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १२ मायाएँ होती हैं और श्रत में गुरु लघु होते हैं । जैसे, राम रमापति सुस राम देव । नहिं प्रभु होत तुम्हारी सेवा दीन द्यानिधि भेद श्रमेव । मम दिशि देवा यह बस लेव ।

शैषा—संज्ञा स्त्री० [हिं० शैषा + शै] पत्र, हिं० शैषा] पत्रिका । चहार दीवारी ।

चौपागा-संज्ञा पुं० [हि० चौ + पाग] चौपाया । चार पैरोंवाला पशु ।

चौपट-वि० [हि० चौ = चार + पट = कितना, क. हि० चपट] चारों ओर से घुला हुआ । धरपित ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

वि० [हि० चौ = चार + पट = सन्नह, तटपथ चार। तफ म वगनर] नष्ट भ्रष्ट । विखस । तबाह । बरबाद । सत्यानाश । उ०—जो दिन प्रति अज्ञा कर मोहै । विष बेगि सब चौपट होई । —गुलामी ।

श्रा०—चौपट चरण = जिसके फर्हा पट्टे चने तप कुच्छ नष्ट भष्ट हो जाय । सन्न कदम । चौपट ।

चौपटहा-वि० [हि० चौपट + हा (श्रव०)] चौपट करनेवाला । नष्ट करनेवाला । सर्वनाशी । सत्यानाशी ।

चौपटा-वि० [हि० चौपट] चौपट करनेवाला । नाश करनेवाला । काम बिगाड़नेवाला । सत्यानाशी ।

चौपट-संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पट, प्रा० चत्तपट] (१) चौंनर नामक खेल । नट्टबानी । (२) इस खेल की बिसान और गोटियां आदि । (३) पलंग आदि की वह युनावट जिसमें चौंनर के से खाने बने हैं ।

चौपत-संज्ञा स्त्री० [हि० चौ = चार + पत] कपड़े की तरह या धड़े जो लगाई जाती है ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

संज्ञा स्त्री० दे० "चौपतिया" ।

संज्ञा पुं० पथर का वह टुकड़ा जिसमें एक कील लगी रहती है और जिस पर कुम्हार का चक्र रहता है ।

चौपताना-क्रि० म० [हि० चौपत] कपड़े आदि की तह लगाना । धड़ा लगाना ।

चौपतिया-संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + पत] (१) एक प्रकार की घाम जो मोहें के खेत में उत्पन्न होकर फसल को बहुत हानि पहुँचाती है । (२) एक प्रकार का साग । उर्दंगन । (३) कशीदे आदि में यह बूटी जिन्में चार पत्तियां हैं ।

चौपथ-संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पथ] (१) चौंराहा । चौंरस्ता । चौंमु-हानी । (२) चौपत नाम का पथर जिस पर चक्र रहता है ।

चौपट*-संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पट] चार पैरोंवाला पशु । चौपाया ।

चौपाया-संज्ञा पुं० दे० "चौपाया" ।

चौपरा-संज्ञा स्त्री० दे० "चौपड" ।

चौपतना-क्रि० म० [हि० चौ = चार + पत + ना (श्रव०)] कपड़े आदि की तह लगाना । कपड़े आदि के चारों ओर ले कई केर मोड़ कर पत बँडाना ।

चौपाल-संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पलक] चौपन नाम का पथर जिसपर कुम्हार का चक्र रहता है ।

चौपहरा-वि० [हि० चौ = चार + पहर] चार पहर का । चार पहर संवधी । चार चार पहर के अंतर का ।

मुदा० - चौपहरा देना = चार चार पहर के अंतर पर घोंडे से काम लेना ।

चौपहल-वि० [हि० चौ + फ० पहल०. सं० फलक] जिसके चार पहल वा पार्श्व हैं । जिसमें लंबाई चौड़ाई और मोटाई हो । वर्गात्मक ।

चौपहला-वि० दे० "चौपहल" ।

श्रा० पुं० [हि० चौपहल + था (श्रव०)] एक प्रकार का डोला । दे० "चौपाल (२)" ।

चौपहल-वि० दे० "चौपहला" ।

चौपहिया-वि० [हि० चौ + पत्तिया] चार पहियों का । जिसमें चार पहिये हैं ।

श्रा० स्त्री० चार पहियों की गाड़ी ।

चौपहिल-वि० दे० "चौपहला" । उ०—हार्धिन चार चार चूरी पाहिन इक सार चूरा चौपहिल इक टक रहे हरि हरी ।—न्यामी हरिदास ।

चौपाई-संज्ञा पुं० दे० "चौपाया" ।

चौपाई-संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पाई] (१) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३६ मात्राएँ होती हैं । इसके यगने में केवल द्विकल और त्रिकल का ही प्रयोग होता है । इसमें किसी त्रिकल के बाद दो गुरु और सब से अंत में जगण या तगण न पड़ना चाहिए । इसे रूप चौपाई या पादाकुलक भी कहते हैं ।

विशेष—वाम्त्व में चौपाई (चतुष्पाई) वहाँ है जिसमें चार नरण्य हो और चारों चरणों का अनुपास मिला हो । जैसे, छुधन मिला मइ नारि सुहाई । बाहन ते नु काठ कठिनाई । तरनिउ मुनि-धरनी होइ जाई । थाट परइ मोरि नाव उदाई । पर आचारवतः खोग दो चरणों के हो (जिन्हें बाल्य में आदर्ली कहते हैं) चौपाई कहते और मानते हैं । मात्रिक के अतिरिक्त कुछ चौपाईयाँ ऐसी भी होती हैं जो वर्षे वृत्त के अंगगत आती हैं और जिनके अनेक भेद और भिन्न भिन्न नाम हैं । उनका वर्णन अलग अलग दिया गया है ।

(२) चारपाई । छाट ।

चौपाह-संज्ञा पुं० दे० "चौपाल" ।

चौपायनि-संज्ञा पुं० [सं०] सुर नामक ऋषि के वंशज ।

चौपाया-संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पद, प्रा० चत्तपाव] चार पैरोंवाला पशु । गाय, बैल, भैंस आदि पशु । (गायः गाय बैल आदि के लिये ही अधिक योजते हैं)

चौपाटा-संज्ञा स्त्री० दे० "चौपाल" ।

चौपाल-संज्ञा पुं० [हि० चौपाल] (१) सुली हुई घटक । लोगों के बने उठने का वह स्थान जो ऊपर से छाया हो पर चारों

थोर खुला हो। (गाँवों में ऐसे स्थान प्रायः रहते हैं जहाँ लोग बैठ कर पंचायत, यातचीत आदि करते हैं। (२) बैठक। ३० - सय चापारहिँ चंदन लैभा। बैठरा राजा भट्ट सय सभा।—जायसी। (३) दालान। (४) दरमदा। (५) घर के सामने का छायादार चतुरा। (६) एक प्रकार की खुली पालकी जिसमें परदे वा किव्दा नहीं होते। चाँपहला।

चाँपुरा—संज्ञा पुं० [हिं० ची = चार + पुर = चारस + पा (अण०)] वह कुर्चा जिस पर चारपुर या मोट एक साथ चल सकें। वह कुर्चा जिसपर चार चरसे एक साथ चलते हैं।

चाँपैया—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पदी] (१) चार चारोंवाले एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८ और १२ के विश्राम से ३० मात्राएँ होती हैं और अंत में एक गुरु होता है। इसके आरंभ में एक ट्रिकल के उपरंत सय चौकल होने चाहिये और प्रत्येक चौकल में सय के उपरंत सय और विषम के उपरंत विषम कल का प्रयोग होना चाहिये और चारों चरणों का अनुपास भी मिलना चाहिये। जैसे, भँ प्रगट छपाला, दीन दयाला, कौराख्या हितकारी। हर्षित महत्कारी, मुनि-मन-हारी अश्रुत रूप निहारी। लोचन अमि-रामा, तनु बनश्यामा, निज श्रावुच भुजचारी। भूपन वनमाला, नयन विशाला, शोभा सिंधु खसारी। (२) चारपाई। सहा।

चाँफला—वि० हिं० ची + फल] जिसमें चार फल या धारदार लोहे हों। (चाह)

चाँफेर—क्रि० वि० [हिं० ची + फेर] चारों ओर। चारों तरफ।

चाँफेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ची + फेर] चारों ओर घूमना। परिक्रमा।
। क्रि० वि० चारों ओर।

यशा छी० मुगदर का एक हाथ जिसमें बगली का हाथ कर के मुगदर को घँट काँ और मे सामने छाती के समानांतर लाकर हतना नामते हैं कि यह छाती की यगज में बहुत दूर तक निकल जाता है।

चाँवदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँ + वदी] (१) एक प्रकार का छोटा सुन्नत श्रेण का कुरती जिसमें जामे की तरह एक पट्टा नीचे और एक पट्टा ऊपर होता है और दोनों पगल चार-बंद लगते हैं। बगलबंदी। (२) रागल्य। कर। (३) घोड़े के चारों सुगों की नालबंदी।

चाँबंला—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक लघण और एक धगण होता है। जैसे, नय धरु एका। न भनु यनेका। इसे शशिवंदना, बंदरसा और पादोक्तक भी कहते हैं।

चाँबगला—संज्ञा पुं० [हिं०] मिरजई, फतुही, कुरती, श्रेयो हल्यादि में बगल के नीचे और कली के ऊपर का भाग।
वि० चारों ओर का। जो चारों ओर हो।

चाँबगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ची + बगल] बगलबंदी।

चाँबपा—संज्ञा पुं० [फा० बह = बँधा + हिं० बसा] (१) छुट्ट। होना। छोटा गडदा जिसमें पानी रहता है। (२) वह गडदा जिसमें से धन गड़ा हो। व०—किले के भीतर कई चाँबचे भरे पड़े हैं।

चाँबरदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ची = चार + बर् = बँध] चार सैलों की गाड़ी।

चाँबरसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ची + बरस] (१) वह उत्सव या क्रिया आदि जो किसी घटना के चाँये बरस हो। (२) वह श्राद्ध आदि जो किसी के निमित्त उसके मरने के चाँये बरस हो।

चाँबरा—संज्ञा पुं० [हिं० ची = चार + बररा] फसल की वह पटाई जिसमें से जमींदार चतुर्थांश लेता है।

चाँबा—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदी] [स्त्री० चंबाइन] (१) ब्राह्मणों की एक जाति वा शाखा। (२) मथुरा का पंडा। दे० “चाँबे”।

चाँबाइन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँबे] चाँबे की स्त्री।

चाँबाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ची + बाई = बँधा] (१) चारों ओर से बहनेवाली हवा। (२) शकबाह। किंवदंती। उड़ती खबर। (३) धूमधाम की चर्चा।

चाँबाछा—संज्ञा पुं० [हिं० ची = चार + बाछा = कर वा चंरा बध्न करना] एक प्रकार का कर जो दिही के बादाशहों के समय में लगाना था। यह कर चार वस्तुओं पर लगता था—पार्ण (प्रति मनुष्य), ताग (करपनी अर्थात् प्रति यात्रक), ह्री (अलाव वा कौड़ा, अर्थात् प्रति घर), और पूँड़ी (प्रति चौपाया)।

चाँबार—संज्ञा पुं० दे० “चाँपारा”।

चाँबारा—संज्ञा पुं० [हिं० ची = चार + बार = द्वार] (१) कोठे के ऊपर की यह कोठरी जिसके चारों ओर दरवाजे हैं। पंगला। बालाखाना। (२) खुली हुई बैठक। लोगों के बैठने उठने का एक ऐसा स्थान जो ऊपर से छाया हो पर चारों ओर खुला हो।

। क्रि० वि० [हिं० ची = चार + बरा = बँधा] चाँची दफा। चाँची बार।

चाँबिसा—वि० दे० “चाँबीस”।

चाँबीस—वि० [सं० चतुर्विंशत्, प्रा० चतुर्वीसा] जो गिनती में बीस और चार हो। बीस से चार अधिक।

उंठा पु० बीस से चार अधिक की संख्या जो शंके में इस प्रकार लिखी जाती है—२४।

चाँबीसर्वा—वि० [हिं० चाँबीसर्वा] क्रम में जिसका स्थान तेइसवें के आगे हो। जिसके पहले तेइस और हों।

चाँबे—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदी, प्रा० चतुर्वेदी, हिं० चतुर्वेदी] [स्त्री० चौबान] ब्राह्मणों की एक जाति वा शाखा।

चाँबेय—मथुरा के पंटे सय चाँबे फहलाते हैं।

शैबाला-संज्ञा पुं० [हि० ची + मेल] एक मायिक दृष्टि जिसके मयके चरण में ८ और ७ के विश्राम से १६ मात्राएँ होती हैं। श्रव में लघु गुरु होता है। ३०—एधुपर सुम से विनती करों। कीने सोहं आते तरों। भिवारीदास ने इसके दुगने को चौबाला मान कर १६ और १४ मात्राओं पर यति मानी है।
 मिडु-संज्ञा स्त्री० [हि० ची = चार + दृष्ट] दृष्ट का दृष्ट चौड़ा, चिपटा और गड्ढेदार दृष्ट जिससे आहार हूँचने या चबाने हैं।

मिजिला-वि० [हि० ची = चार + मिला] चार मरातिच या रतोंवाला (मकान आदि)।

मिसिया-वि० [हि० ची + मस] चार महीने का। वर्षों के चार महीनों में होनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) वह हलवाहा जो चार महीने के लिये नौकर रखा गया हो।

संज्ञा पुं० [हि० चार + माया] चार मायो का बाट। चार मायो तौल का घटवरा।

मोहला-वि० [हि० मो + महल] चार खंडों का। चार मरातिच का (मकान)।

मोमार्ग-संज्ञा पुं० [सं० चतुर्भुज] चौरमस। चौरमुहलती।

मोमसा-संज्ञा पुं० दे० "चौमसा"।

मोमसा-संज्ञा पुं० [सं० चतुर्भुज] (१) वर्षों काल के चार महीने चापाङ्क, भावपा, भाद्रपद और आश्विन। चातुर्मास। (२) वर्षाङ्गु के संबंध की कविता। वर्षों के चार महीनों के वर्णन की कविता। (३) रसीक की फल उगने का समय। (४) वह रंग जो वर्षों काल के चार महीनों (अमावस, सावन, भादों और कुवार) में जाता गया हो। (५) दे० "चौमसा"।

मोमसा-संज्ञा स्त्री० [हि० चौमसा + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंगीन या चबला गाना जो प्रायः घरमाल में गाया जाता है।

मोमुख-कि वि० [हि० मो = चार + मुख = चार] चारों ओर। चारों तरफ। ३०—धमचमान घामीकर मंदिर चौमुख चित्त निचारु।—एधुराज।

चौमुख-वि० [हि० ची = चार + मुख + चा = (प्रत्य०)] [ची० चौमुख] चार मुहोंवाला। जिसके मुँह चारों ओर हैं।

धा०—चौमुखा दीया = यह दीपक जिसमें चारों ओर चार यति/अवती हैं।

मुहा०—चौमुखा दीया जलाना = दिव्यता निराशाना।

विशेष—योग कहते हैं कि प्राचीन समय में जब किसी मदान्त को अपने दिवाने की सूचना देनी होती थी तो वह अपनी नूदान पर चौमुखा दीया जला देता था।

चौमुहानी-संज्ञा स्त्री० [हि० ची = चार + ना० मुहाना] चौराहा। चौरसा। चतुर्धर।

चौमंडा-संज्ञा पुं० [हि० चौ = चार + मंडु + ण (प्रत्य०)] यह स्थान जहाँ पर चार मंडु या सीमाएँ मिलती हैं।

चौमेखा-वि० [हि० ची = चार + मेल] चार मेलोंवाला।
 निममें चार मेलें या कीलें हैं।

मन्ना पुं० एक प्रकार का कठोर दृढ़ निममें शरपत्ती का जमीन पर पित्त या पट लेटा कर इसके हावों और पैरों में मेलें ठोक देते थे।

चौरंग-संज्ञा पुं० [हि० ची = चार + रंग = प्रकार, दब] तलवार का एक हाथ। तलवार चलाने का एक दब जिसमें चीजे कट कर चार टुकड़े हो जाती हैं। यह-प्रहार का एक दब।
 वि० तलवार की चार से कई टुकड़ों में कटा हुआ। सत्र के थापात से संद रंग। ३०—कहूँ तेग के घालिके, करहिं हक चौरंग। सुनि, लखि पित्त विमुनाथ नृप, होत मनहि मन दंग।

क्रि० प्र०—करना।—काटना।
 मुहा०—चौरंग बढ़ाना या काटना = (१) तनवार आदि में किसी चीजे को बहुत सफाई से काटना। (२) एक में चौंके हुए ऊँट के चारों पैरों को तलवार के एक छाप में काटना।

विशेष—देशी रियासतों तथा अन्य स्थानों में धरता की परीचा के लिये ऊँट के चारों पैर एक साथ बांध दिए जाने हैं। ऊँट के चारों पैरों की गलियाँ बहुत मजबूत होती हैं; इस लिये जो उन चारों पैरों को एक ही हाथ में काट देता है वह बहुत बীর समझा जाता है।

चौरंगा-वि० [हि० ची + रंग] [ची० चौरंगी] चार रंगों का। जिसमें चार रंग हों।
 चौरंगिया-संज्ञा पुं० [हि० ची + रंग] मालखम की एक कसरत जिसमें बँत को एक जंघे पर बाहर की ओर से लेकर पिँडरी को घुसाते हुए उगी पैर के श्रेण्डों में घेरकाने हैं और फिर दूसरे जंघे से उभे भीतर लेकर पिँडरी से बाहर करते हुए दूसरे श्रेण्डों में श्रेटकते हैं।

चौर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौर। दूसरों की वस्तु चुरानेवाला। (२) एक गंध-द्रव्य। (३) चौर पुष्पी।

संज्ञा पुं० [सं० चुरा] ताल जिसमें बरसती पानी बहुत दिन तक रुका रहे। सादर।

चौरस-वि० [हि० ची = चार + (एक) रस = मजान] (१) जो ऊँचा गीचा न हो। समथक। हमथार। अथार। जैसे, चौरस मैदान। (२) बौरहल। घणोमक।

संज्ञा पुं० (१) छोटों का एक बीजान जिसमें पे शुरुच कर बनाने चिकने करते हैं। (२) एक चणोद्वय जिसके मयके चरण में एक तगव और एक यगव होता है। इसको "तनुमपा" भी कहते हैं। ३०—नू यो किमि धाली। पूर्व मत्तली।

चौरसा-संज्ञा पुं० [हि० चौ + रस] (१) डाकुर जी की शय्या की चद्दर । (२) चार रूप भर का थपड़ । (सुनार)
वि० जिसमें चार रस हों । चार रसोंवाला ।

चौरसाई-संज्ञा स्त्री० [हि० चौरसाना] (१) चौरसाने की क्रिया ।
(२) चौरसाने का भाव । (३) चौरसाने की मजदूरी ।

चौरसाना-हि० ग० [हि० चौमान] चौहान करना । धरावर करना । हथवार करना ।

चौरसी-संज्ञा स्त्री० [हि० चौरस] (१) ब्राह्मण पर पहनने का एक चौपाई का गडना । सीतापुर आदि ज़िलों में हंसका प्रचार है ।
(२) चौरस करने का औजार । (३) अन्न रखने का कौड़ा वा बखार ।

चौरस्ता-संज्ञा पुं० [हि० चौ + फा० रास्ता] चौराहा ।

चौरहा-संज्ञा पुं० दे० "चौराहा" ।

चौरा-संज्ञा पुं० [सं० चौर, प्रा० चउरा] [सं० अन्व० चौरा] (१) चौरा । चवूतरा । बेदी । (२) किसी देवी, देवता, सनी, सत महात्मा, भूत प्रेत आदि का स्थान जहाँ बेदी या चवूतरा बना रहता है । जैसे, सती का चौरा । ३०-पेट को मारि मरें पुनि भूत है चौरा पुनावन देव मनावे ।-रघुराज । (३) चौपाल । चौवारा । (४) लोथिया । बोझ । धरवाँ । रवाँस । ३०-गौहें चाँवर चना उद्व जब मूँग मीठतिल । चौरा मटर मसूर तुवर सरसों मडुवा मिल ।-सूदन । (५) वह शैल जिसकी पूँछ सफेद हो ।
संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री का एक नाम ।

चौराई-संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + गई] (१) चौलाई नाम का साग । ३०-चौराई तो राई तोरई सुख सुख्य भारी जी ।-विश्राम । (२) अगववाले यनियों की एक रीति जिसमें किसी उसव पर किसी को निमंत्रण देते समय उसके द्वार पर हलदी में रेंगे पीले चावल रख आते हैं । (३) एक चिड़िया जिसकी गरदन मड़मली, ईंने चितकपड़े, दुम नीचे सफेद और ऊपर लाल और चोंच पीली होती है । पैर भी पीले ही होते हैं ।

चौरानवे-वि० [सं० चनुनवेते, प्रा० चउणवड] नट्ये से चार अधिक ।

संज्ञा पुं० नट्ये से चार अधिक की संख्या जो अठारह में इस प्रकार लिखी जाती है—१४ ।

चौरासी-वि० [सं० चउरासीति, प्रा० चउरासीड] अस्सी से चार अधिक । जो संख्या में अस्सी और चार हो ।
संज्ञा पुं० (१) अस्सी से चार अधिक की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८४ । (२) चौरासी लक्ष योगि । (पुराणों के अनुसार जीव चौरासी लक्ष प्रकार के माने गए हैं) ३०-आकर चारि लक्ष चौरासी । जीव चराचर जल पक्ष वासी ।-तुलसी ।

मुहा०-चौरासी में पड़ना वा भरमना = निरंतर चार चार कई

प्रकार के शरीर धारण करना । श्रावणमन के चक्र में पड़ना । ३०-चौरासी पर नाचत अस उरदेसत दुभियायी ।-देवस्वामी ।

(३) एक प्रकार का सुँघरू । पैर में पहनने का घुघुरेयों का गुच्छा (इन्हे नाचते समय पहनते हैं) ३०-मानिक जड़े सीम और कंधे । चंवर लाम चौरासी थांवे ।-जायसी ।
(४) पथर काटने की एक प्रकार की ढाँकी । (५) एक प्रकार की खानी ।

चौराष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] यादव जाति का एक सेकर राग जो प्रत्यन्तकाल गाया जाता है ।

चौराहा-संज्ञा पुं० [हि० चौ = चार + राह = रास्ता] यह स्थान गहरे चार रास्ते वा सड़कें मिलती हैं । यह स्थान जहाँ से चार तरफ़ को चार रास्ते गए हैं । चौरस्ता । चौमुहाना ।

चौरी-संज्ञा स्त्री० [हि० चौरा] छोटा चवूतरा । बेदी । ३०-रची चौरी प्राप ब्रह्म चरित खंभ लगाइ कै ।-सूर ।

संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) एक पेड़ जो हिमालय पर तथा रावी नदी के किनारे, के जंगलों में होता है । मद्रास और मध्य प्रदेश में भी यह पेड़ मिलता है । इसकी लकड़ी चिकनी और बूट मजबूत होती है और सेज, कुरसी, अलमारी, तबखीर के चौपट्टे आदि बनाने के काम में आती है । इसकी छान दवा के काम में आती है (२) एक पेड़ जिसकी छाल से रंग बनता और चमड़ा सिमाया जाता है ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चोरी । (२) गायत्री का एक नाम ।

चोरेठा-संज्ञा पुं० [हि० चाउर + ठाठा] पानी के साथ पीया हुआ धाबल ।

चौर्य-संज्ञा पुं० [सं०] चोरी । स्तेय ।

चौल-संज्ञा पुं० [सं०] चोल नामक देश विशेष । "दे० चोल" ।

चौलकर्म- [सं०] चलाकर्म । मुँटन ।

चौलड़ा-वि० [हि० चौ + लड़] जिसमें चार लड़ें हों । (भावा आदि)

चौला-संज्ञा पुं० [देग] लोथिया । बोझ ।

चौलाई-संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + रई = दाने] एक पौधा जिसका साग खाया जाता है । यह हाथ भर के करीब ऊँचा होता है । इसकी गोल पत्तियाँ सिरि पर चिपटी होती हैं और फँडला का रंग लाल होता है । यह पौधा बाह्य में छोटी जानि का मरला है । इस में भी मरसे के समान मंजरियाँ लगती हैं जिन में राई के इतने बड़े काले दाने पड़ते हैं । वैद्यक में चौलाई हलकी, शीतल, रूखी, पित्त-कफ-नासक, मल-मूत्र-निःसारक, विपनासक और दीपन मानी जाती है । ३०-चौलाई लायदा बरु पोई । मध्य मेलि निपुधान निचोई ।-सूर ।

पद्यां०-तंडुलीय । मेघनाद । कांडेर । तंडुलेरक । अंजरी । विपण । अरुणमरिच, इत्यादि ।

चोलावा—संज्ञा पुं० [हि० ची + लावा = कगना] ऐसा कुआँ जिसमें एक साथ चार मोट चल सकें ।

चोलि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

चोलुक्क—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुलुक ऋषि के वंशज । (२) चालुक्य ।

चोली—संज्ञा पुं० [देग०] चोड़ा ।

चौवन—वि० [सं० चतुर्वर्ग, पा० चतुर्भुजा, प्रा० चतुर्वक्] पचास से चार अधिक । जो गिनती में पचास से चार ऊपर हो ।

संज्ञा पुं० पचास से चार अधिक की संख्या जो श्रेणियों में इस प्रकार लिखी जाती है—१४ ।

चौवा—संज्ञा पुं० [हि० ची = चार] (१) हाथ की चार डँगलियों का समूह । (२) श्रेणियों को छोड़ हाथ की बाकी चार डँगलियों की पंक्ति में लपेटा हुआ तामा । जैसे, एक चौवा तामा ।

मूहा—चौवा करना = चार डँगलियों में तामा आदि लपेटना । (३) हाथ की चार डँगलियों का विस्तार । चार श्रेणुज की भाष । (४) तामा का वह पत्ता जिसमें चार वृत्तियाँ हों ।

† संज्ञा पुं० [सं० चतुर्पाद] चौपाया । माय बैल आदि पशु ।

चौवार्ह—संज्ञा स्त्री० दे० “चौवार्ह” ।

चौवालीस—वि० [सं० चतुर्विंशति, पा० चतुर्वत्सति, प्रा० चत्वारिंशद्] चालीस से चार अधिक । जो गिनती में चार ऊपर वालीस हो ।

संज्ञा पुं० चालीस से चार अधिक की संख्या जो श्रेणियों में इस प्रकार लिखी जाती है—४४ ।

चौस—संज्ञा पुं० [हि० ची = चार + स (सह०)] वह खेत जो चार बार जोता गया हो । चार बार जोता हुआ खेत ।

† संज्ञा पुं० [देग०] चुकनी । चुर । चुर्पी ।

चौसर—संज्ञा पुं० [हि० ची = चार + सर = बर्तन] अथवा सं० चतुस्रारि]

(१) एक प्रकार का खेल जो विज्ञान पर चार रंगों की चार चार गोदियों और तीन पासें से दो मनुष्यों में खेला जाता है । दोनों खेलनेवाले दो दो रंगों की छोट छोट गोदियाँ ले खेते हैं और बारी बारी से पासे फेंकते हैं । पासों के दाँव आने पर कुछ विशेष नियमों के अनुसार गोदियाँ चली जाती हैं । चौपड़ । नईवासी ।

विशेष—यह खेल जब पासों के बदले सात कौदियाँ फेंक कर खेला जाता है तब इसे पचीसी कहते हैं ।

क्रि० प्र०—खेलना ।

(२) इस खेल की विमान जो प्रायः कपड़े की पत्ती होती है । इसका मध्य भाग शैली का मा होता है जिसमें खेल की समाप्ति पर गोदियाँ भर कर रक्की जाती हैं । मध्य भाग के चारों तिरों की तरफ चार लंबे चौड़े टुकड़े मिले रहते हैं ।

जिनमें से हर एक पर लंबाई में छोट छोट चौकोर खानों की तीन तीन पंक्तियाँ होती हैं ।

क्रि० प्र०—चिह्नितना ।

चौस—चौसर का वाजार

= चौक वाजार । वह

स्थान जिनके चारों ओर

एक ही तरह के चार

वाजार हैं ।

संज्ञा पुं० [चतुस्ररत्]

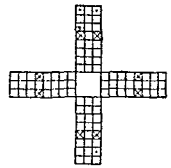
चौलड़ा । चार लड़ों का

हार । उ०—(क) चौसर

हार श्रमाल गुरे को देहु न मेरी मारुँ ।—सूर । (ख) और भाति

भये थप चौसर चंद्रन चंद्र । एनि भिन अति परत विपति

भारत मारत मंद ।—विहारी ।



चौसरी—संज्ञा स्त्री० दे० “चौसर” ।

चौसिंघा—वि० [हि० चिं = च + सिंघ] चार सौंगोवाला ।

जिसके चार सौंग हों । जैसे, चौसिंघा बकरा ।

संज्ञा पुं० दे० “चौसिंघा” ।

चौसिंहा—संज्ञा पुं० [हि० चौ = चार + सिंघ = मीमा] वह स्थान जहाँ चार गाँवों की सीमाएँ मिलती हैं ।

चौहटा—संज्ञा पुं० दे० “चौहटा” । उ०—चौहट हाट समान वेद चहुँ जानिये । विविध भांति की वस्तु विकत लहँ मानिये ।—विद्याम ।

चौहट्टा—संज्ञा पुं० दे० “चौहट्टा” । उ०—चौहट्ट हट सुवट वीधी चारु पुर बहु विधि बना ।—तुलसी ।

चौहट्टा—संज्ञा पुं० [हि० चौ = चार + हट्ट] (१) वह स्थान जिसके चारों ओर दूकानें हों । चौक । (२) चौमुहानी । चौरन्ना । चौराहा ।

चौहड्ड—संज्ञा पुं० दे० “चौभड्ड” ।

चौहट्टर—वि० [सं० चतुस्ररत्, प्रा० चतुस्ररि] सत्तर से जो चार अधिक हो । जो गिनती में सत्तर और चार हो ।

संज्ञा पुं० तिहत्तर के बाद की संख्या । सत्तर से चार अधिक की संख्या जो श्रेणियों में इस प्रकार लिखी जाती है—७४ ।

चौहट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुस्ररत्, प्रा० चतुस्ररि + ट्टी (सह०)] एक अथलेह जो जायफल, पिपली, काकड़ासौंगी और पुष्करमूल को पीस कर शहद में मिश्रण से बनाता है ।

संज्ञा स्त्री० [हि० ची + फा० हट्ट] चारों ओर की सीमा ।

चौहरा—वि० [हि० ची = चार + हर (सह०)] (१) जिसमें चार फेरे या तट हों । चार परतवाला । जैसे, चौहरा कपड़ा ।

(२) चौगुना । जो चार बार हो । उ०—दोहरे निहरे चौहरे श्रुषण जाने जात ।—विहारी ।

संज्ञा पुं० वह पत्ता जिसमें पान के बीड़े लपेटे हों । चौचड़ा ।

बौहलका-संज्ञा पु० [हि० बौ = चार + का = दलका ?] गलीचे की बुनाद का एक प्रकार ।

बौहान-संज्ञा पु० [हि० बौ = चार + अज्ञा] अग्निकुल के अंतर्गत चतुर्विधों की एक प्रसिद्ध शाखा जिसके मूल-पुरुष के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि इसके चार हाथ थे और उसकी उत्पत्ति राक्षसों का नाश करने के लिये ब्रह्मिष्ठयी के यज्ञकुंड से हुई थी। प्रायः एक हजार वर्ष पहले मालवे और राज-पूताने में इस जाति के राजाओं का राज्य था और यही इसका विन्मर दिहा तक हो गया था। भारत के प्रसिद्ध अंतर्गत सम्राट् पृथ्वीराज इसी बौहान जाति के थे। कुछ लोगों का यह भी अनुमान है कि इस जाति के मूल-पुरुष माण्डिय नामक एक राजा थे, जो लगभग ८०० सन् ईस्वी में अजमेर में राज्य करते थे। इस जाति के चतुर्विध प्रायः सारे उत्तरीय भारत में फैले हुए हैं ।

बौहै-कि० वि० [अंग०] चारों ओर। चारों तरफ़। उ०—राम फहै चकिन सुरलैं चहुँ छल्लैं एवां मधी सकरि भल्लैं जीहैं चकित नसान की।—राम कवि ।

च्यवन-संज्ञा पु० [सं०] (१) चूना । करना । टपकना । (२) एक ऋषि का नाम जिनके पिता भृगु और माता पुलोमा थीं। इसके विषय में कहा है कि जब ये गर्भ में थे तब एक राक्षस इनकी माता को शकली या हर ले जाना चाहता था। यह देख च्यवन गर्भ से निकल आए और उस राक्षस को उधेने के अपने तेज से भस्म कर डाला। ये आप से आप गर्भ से गिर पड़े थे इसी से इनका नाम च्यवन पड़ा। एक बार एक सरोवर के किनारे तपस्या करते करते इन्हें इतने दिन हो गए कि इनका सारा शरीर यस्मीक (बेमैद, दहीमक की मिट्टी) में ढक गया, केवल चमकती हुई आंखें खुली रह गईं। राजा शर्याति की कन्या सुकन्या ने इनकी आंखों को कोई अद्भुत वस्तु समझ उठाने की चेष्टा की। इस पर च्यवन ऋषि ने क्रुद्ध होकर राजा शर्याति की सारी सेना और अनुचर-वर्ग का मल-मूत्र शोक दिया। राजा ने घबरा कर च्यवन ऋषि से क्षमा मांगी और उनकी इच्छा देते क्षणीय कन्या सुकन्या का ऋषि के साथ व्याह कर दिया। सुकन्या ने भी उस वृद्ध ऋषि से विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं की। विवाह के पीछे एक दिन अधिनीकुमारों ने आकर सुकन्या से कहा, "बड़े पति को छोड़ दो, हम लोगों से विवाह कर लो"। सुकन्या जब किसी प्रकार सम्मत न हुई तब अधिनीकुमारों ने प्रसन्न होकर च्यवन ऋषि के बड़े से सुंदर पुत्रक कर दिया। इसके बदले में च्यवन ऋषि ने राज शर्याति के यज्ञ में अधिनीकुमारों को सोमरस प्रदान किया। इंद्र ने इस पर आपत्ति की। जब इन्होंने नहीं माना

तब इंद्र ने इन पर यज्ञ चलाया। च्यवन ऋषि ने इस पर क्रुद्ध होकर एक मत्त विकराल असुर उत्पन्न किया जिस पर इंद्र भयभीत होकर इनकी शरणागत थाया ।

च्यवनप्राज्ञा-संज्ञा पु० [सं०] शासुर्वेद में एक प्रसिद्ध ऋषि। इसके विषय में यह कहा है कि च्यवन ऋषि का वृद्धावस्था और बंधन नाश करने के लिये अधिनीकुमारों ने इसे बनाया था। इसका वर्णन इस प्रकार है—पके हुए चड़े ताजे १०० आंवले लेकर मिट्टी के पात्र में पका कर रस निकाले और इस रस में १०० टके भर मिली डाल कर चाराना बनाये। (यदि संभव हो तो इसे चांदी के परतन में घरे नहीं तो उली मिट्टी के पात्र में ही रहने दे।) फिर उसमें सुनका, अमर, चंद्रन, कमलगन्दा, हलायची, हृद्द का इलिक, काकोली, चौरकाकोली, ऋद्धि वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, शपथ, गुरुच, फाकड़ासिंगी, पुष्करमूल, कपूर, सहुना, विदारीकंद, वरियारा, जीवंती, मालपूर्या, पुष्पूर्या, देना, कटियाली, घेल की गिरी, अरलू, कुंभेर और पाठा—ये सब चीजें टके टके भर मिलावे और ऊपर से मधु ६ टके भर, पिप्पली २ टके भर, तज २ टके, तेजपात २ टके, नागकेसर २ टके, हलायची २ टके और बसलोचन २ टके इन सब का चूर्ण कर दाले। फिर सबको मिला कर रख ले। इससे स्वरभंग, यन्मा, शुकरोप आदि दूर होते हैं तथा रज्ज्वि, कौत्ति, इंद्रिय-सामर्थ्य, बल चौर्ये आदि का अत्यंत वृद्धि होती है।

च्युत-वि० [सं०] (१) टपका हुआ। गिरा हुआ। सुवा हुआ। झड़ा हुआ। (२) गिरा हुआ। पतित। (३) भ्रष्ट। (४) अपने स्थान से हटा हुआ। (५) विमुक्त। पराजुल। जैमि, कर्त्तव्य से च्युत ।

कि० प्र०—करना।—होना ।

च्युतमध्यम-संज्ञा पु० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो पीति नामक ध्रुति से थारंभ होता है। इसमें दो ध्रुतियाँ होती हैं।

च्युतपडङ्ग-संज्ञा पु० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो मंद नामक ध्रुति से थारंभ होता है। इसमें भी दो ध्रुतियाँ होती हैं।

च्युतसंस्कारना-संज्ञा स्त्री [सं०] साहित्यदर्पण के मत से काव्य का वह दोष जो व्याकरण-विहित पदविन्यास से होना है। काव्य का व्याकरण-संबंधी दोष। (यह दोष प्रधान दोषों में है)

च्युतसंस्कृति-संज्ञा स्त्री दे० "च्युत-संस्कारता" ।

च्युति-संज्ञा स्त्री [सं०] (१) पतन। स्वप्न। झड़ना। गिरना।

(२) गति। उपयुक्त स्थान से हटना। (३) चूक। कर्त्तव्य-विमुक्तता। (४) अभाव। कतर। (५) युद्धरत। (६) भग ।

च्युड़ा-संज्ञा पु० दे० "चिचुड़ा" ।

च्युत-संज्ञा पु० [सं०] आम का पेड़ या फल ।

वह यष्टिक वा वर्षष्टुत और जिसमें अक्षरों की गणना और लघु गुरु के क्रम का विचार नहीं, केवल मात्राओं की संख्या का विचार होता है वह मात्रिक छंद कहलाता है। रोला, रूपमाला, दोहा, चौपाई इत्यादि मात्रिक छंद हैं। वंराख्य, इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, मालिनी, गंदाकर्णता इत्यादि वर्षष्टुत हैं। पादों के विचार से वृत्तों के तीन भेद होते हैं, समवृत्ति, अर्द्धसमवृत्ति और विषमवृत्ति। जिस वृत्त में चारों पाद समान हों वह समवृत्ति, जिसमें वे असमान हों वह विषमवृत्ति और जिसके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण समान हों वह अर्द्धसमवृत्ति कहलाता है। इन भेदों के अनुसार संस्कृत और भाषा के छंदों के अनेक भेद होते हैं। (४) वह विद्या जिसमें छंदों के लक्षण आदि का विचार हो। यह छंद वेदों में मानी गई है। इसे पाद भी कहते हैं। (५) अभिलाषा। इच्छा। (६) स्वराधार। स्वच्छाचार। मनमाना व्यवहार। (७) बंधन। गोट। (८) जाल। संघाल। समूह। उ०—वीज के वृंद में है तम छंद फलित जा वृंद लयें दरसानी। (९) कपट। छल। मकर। उ०—(क) राजशर असुपरी न चाही जेहि दूना कर खोज। यही छंद ठग विद्या छला से राजा भोज।—जायसी। (ख) कहा कहति तू बात अयानी। वाके छंद भेद को जानै मीन कबहुँ घैं पीवत पानी।—सूर।

मुहा०—छल छंद = कपट। धोखेवाजी। चालबाजी। उ०—छोम छल छंदन को धाई पाप हृदन को फिकिर के फंदन को फारिहें पै फारिहें।—पद्माकर। (१०) चाल। युक्ति। कला। चालवाजी। उ०—(क) योगिहि बहुत छंद औराहीं। वृंद सुभारती जैसे पानी।—जायसी। (ख) योगी सयं छंद अस खेला। तू भिखार केहि माँँ अकेला।—जायसी। (ग) सुनि नंद नंद प्यारे तेरे सुख चंद सम चंद पे न भयो कोटि छंद करि हारयो है।—केशव। (११) रंग डंग। आकार। चेष्टा। उ०—गिरगिट छंद परे दुख तेता। खन खन पीत रात खन सेता।—जायसी। (१२) अभिप्राय। मतलब। (१३) प्रकृत। निर्जन। (१४) विष। जहर। (१५) ढकन। आवरण। (१६) पत्ती। संज्ञा पुं० [सं० उ०क] एक आभूषण जो हाथ में चूड़ियों के बीच में पहना जाता है।

छंदक-वि० [सं०] (१) रत्नक। (२) छली।

संज्ञा पुं० (१) कृष्णचंद्र का एक नाम। (२) बुद्धदेव के सारथी का नाम। (३) छल।

छंदज-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक देवता। ग्रेसे देवता जिनकी मृत्ति वेदों में है। वसु आदि देवता।

छंदना-किं० अ० [सं० उ० = बंधन] पैरों में रस्सी लगा कर बांधा जाना।

छंदपातन-संज्ञा पुं० [सं०] बनावटी साधु। साधु-वैपथारी टग। छली। धोखेवाज।

छंदबंद-संज्ञा पुं० [हिं० छंद + बंध] छल। कपट। धोखा।

छंदस्मृत-संज्ञा पुं० [सं०] [छं० छन्दकृता] (१) वेद जिसमें गाथी आदि छंद हैं। (२) वेद मंत्र।

छंदःस्तुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक देवता जिनकी स्तुति वेदों में की गई है। (२) ऋषि जो वैदिक छंदों द्वारा देवताओं की स्तुति करें। (३) सूर्य का सारथी। अरुण।

छंदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छंद = बंधन] एक आभूषण जिसे स्त्रियां हाथों में कलाई के पास पहनती हैं। यह गोल कंगन की तरह का होता है जिस पर रत्नों की जगह गोल विपटी डिकिया धंवाई रहती हैं। यह कंगन और पड़ोले के बीच में पहना जाता है।

वि० [हिं० छंद] कपटी। धोखेवाज। छली।

छंदेली-संज्ञा स्त्री० दे० "छंदी"।

छंदीग-संज्ञा पुं० [सं०] सामगान करनेवाला पुरुष। मामग। सामवेदी।

छंदीगपरिशिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के गोमिल सूत्र का परिशिष्ट। यह कात्यायन जी का बनाया हुआ है।

छंदीदेव-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार मंत्रग नामक चांडाल जिनकी उपति नापित पिता और द्राहणी माता से हुई थी। छंदों ने द्राहण्य लाभ करने के लिये जब बड़ी समस्या की तब छंद में इन्हें बर दिया कि तुम कामरूप विहंग होगे। तुम्हारा नाम छंदीदेव होगा और माहण्य, चुरिय आदि सब वस्तुओं की स्त्रियां तुम्हारी पूजा करेंगी।

छंदीधर-वि० [सं०] श्लोक-धर। जो पद्य के रूप में हो। जैसे, छंदीधर ग्रंथ।

छंदीभंग-संज्ञा पुं० [म०] छंद रचना का एक दोष जो मात्रा वर्ष आदि की गणना वा लघु गुरु आदि नियम का पालन न होने के कारण होता है।

छंदीम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वादशहाह याग के अर्नगत एक कृत्य का नाम। यह आर्यवे, नवों और दमवें दिन तीन दिन तक होता था और प्रति दिन उन तीन स्तोत्रों का गान होता था जो इत्थी नाम से विख्यात हैं। इस यज्ञ का फल कोई कोई राज्यप्राप्ति मानते हैं। (२) वे तीन स्तोम जिनका गान छंदीम में होता था।

छ-संज्ञा पुं० [म०] (१) काटना। (२) ढांकना। आच्छादन। (३) धर। (४) खंड। टुकड़ा।

वि० [सं०] (१) निर्मल। साफ। (२) तरल। चंचल।

नि० [सं० पद, प्रा० छ] गिनती में पांच से एक अधिक। जो संख्या में पांच और एक हो।

संज्ञा पुं० (१) वह संख्या जो पांच से एक अधिक हो। (२)

उम सेव्या का गूचक श्रेक जो इस प्रकार लिया जाता है—१।

छई—संज्ञा स्त्री० दे० “छपी”।

छकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० शकट, प्रा० सपट, ङगट] योम लादने की तुपदिया गाड़ी जिसे बेल ब्योचने हैं। बैलगाड़ी। समगड़ लड़ी।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

मुहा०—छकड़ा लादना = छकड़े में योम वा आमन भजना।

वि० जिसका टांचा वीला हो गया हो। जिसके श्रेजर पंजर टोले हो गए हों। टूटा फूटा।

क्रि० प्र०—होना।

छकड़िया—संज्ञा स्त्री० [हि० छ + कड़ा]। यद पालकी जिसे छ कहर उठाते हैं।

छकड़ा—संज्ञा स्त्री० [हि० छ + कड़ा] (१) छ का समूह। (२) वह पालकी जिसे छ कहार उठाते हैं। छकड़िया। (३) चारपाई बुनने का एक प्रकार जिसमें छ बाध डटाए धार व छैटाए जाते हैं।

वि० जिसमें छ शययव हो। छ से बना हुआ।

छहना—क्रि० अ० [सं० चकन = लुप्त होना] [मशा ठक]

(१) खा पीकर शयाना। रुत होना। शपरना। उ०—उसने सूय छक कर खाया।

सेव्या० क्रि०—जाना।

(२) लुप्त होकर उन्मत्त होना। मय आदि पीकर मग में चूर होना। उ०—(क) ते छकिक नय रम केनि करेही। जोग लाइ थपारन रस लेहीं।—जायसी। (ख) केशवदास पर पर नाचतफिरिई गोप एक रहं छुकि नं मरेई सुनियत है।—केशव।

क्रि० अ० [सं० चक = प्रोत] (१) चकराना। शयभे में शाना। (२) हसन होना। संग होना। दिक होना। उ०—वहा जाकर हम सूय छके, कहीं कोई भी नहीं था।

छकरी—संज्ञा स्त्री० दे० “छकड़ी”।

छकाछक—वि० [हि० ठकना] (१) लुप्त। शयया हुआ। मंगुष्ट। (२) परिपुल्ले। भरा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।

(३) उन्मत्त। मग में चूर। मदमन।

छकाना—क्रि० म० [हि० ठकना] (१) बिना पिला कर लुप्त करना। लुप्त बिनाला पिलाना।

संगो० क्रि०—देना।

(२) मय आदि से उन्मत्त करना।

क्रि० अ० [सं० चक = लान] शयभे में डालना। चर में डालना।

(३) हसन करना। दिक करना। संग करना। उ०—नुमाने से। कल हमें सूय छकाया।

सेव्या० क्रि०—डालना।

छकुर—संज्ञा पुं० [हि० छ + कुर] फुसल की वह डैटाई जिसमें उपन का छड़ा भाग जमादार जाता है।

छका—संज्ञा पुं० [सं० पट, प्रा० ठका] (१) छ का समूह या वह वस्तु जो छ शययवों से बना हो। (२) लुप्त का एक दाव जिसमें कौड़ी वा चित्ती फेंकने से छ कौड़ियां चित्त पड़ें। यही दावें दे, वा दस, वा बीसह कौड़ियों के चित्त पड़ने पर माना जाता है।

मुहा०—छका पंजा = दाव पेन। बालवाजी। छका पंजा भूलना = युक्त काम न करना। बाल न चलना। कर्ण व्य न सुभाई पड़ना। वृद्धि का काम न करना।

(३) पामे का एक दावें जिसमें पाया फेंकने से छ विंदिपों ऊपर पड़ें।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—फेंकना।

(४) जुया।

क्रि० प्र०—खेलना।—फेंकना।—डालना।

(२) वह तारा जिसमें छ वृद्धियां हैं। (६) पांच ज्ञानेंद्रियों और छठे मन का समूह। होशबहा। सुष। संज्ञा। श्रौताना।

मुहा०—छके छटना = (१) होनाहवान जाना रहना। होरा उठना। बुद्धि का काम न करना। न्यव्य होना। (२) हिंमत हारना। गहल छटना। धरना जाना। उ०—मरे मेना के श्राते ही शत्रुओं के छके छट गए। छक्के छुड़ाना = (२) चकित करना। विरिभन करना। हसन करना। (२) साहज छुड़ाना। शर्पण करना। धरना देना। पन करना। रर उन्नाइ देना। उ०—स्त्रियों ने काठुलियों के छक्के छुड़ा दिए।

छग—संज्ञा पुं० [सं०] छग। बकरा।

छगड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० छगन] [हि० छगरी] बकरा। उ०—एक छगरी एक छगड़ा लीलिति नी मत्र लीलिति कराव। बारह भैंसा सरमो लीलिति श्री चारामो गाय।—कबीर।

छगथ—संज्ञा पुं० [सं०] सूना गोबर। कंडा।

छगन—संज्ञा पुं० [सं० चैगट = एक छोटी मछली] छोटा बचा। प्रिय बालक।

वि० बच्चों के लिये एक प्यार का शब्द। उ०—कहत मरहाद लाइ उर छिन छिन छगन छुबीले छोटे छैया।—तुलसी।

छा०—छगन मगन = छोटे छोटे बच्चे। प्यार बच्चे। छींशे मनेने बच्चे। (प्यार का शब्द) उ०—(क) गाइ गाइ हलराइ बोलिहीं सुखे नौदरी मुहाई। वासुदे छमीले छौना छगन मगन मेरे कहनि भन्दाइ मन्दाइ। सानुन हिय हुलसनि सुबमी के प्रभु कि ललित लीकाने।—तुलसी। (ख) गिरि परत छुडरुनि टेकत पैलन है दोड छगन मगन।—सूर।

वह वयिक वा वर्णवृत्त और जिसमें श्रवणों की गणना और लघु गुरु के क्रम का विचार नहीं, केवल मात्राओं की संख्या का विचार होता है वह मात्रिक छंद कहलाता है। रोला, रूपमाला, दोहा, चौपाई इत्यादि मात्रिक छंद हैं। वंशस्थ, इंद्रव्यदा, उषेन्द्रवज्रा, मालिनी, मंदाक्रांता इत्यादि वर्णवृत्त हैं। पादों के विचार से वृत्तों के तीन भेद होते हैं, समवृत्ति, अर्द्धसमवृत्ति और विषमवृत्ति। जिस वृत्त में चारों पाद समान हों वह समवृत्ति, जिसमें वे श्रयमान हों वह विषमवृत्ति और जिसके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण समान हों वह अर्द्धसमवृत्ति कहलाता है। इन भेदों के अनुसार संस्कृत और भाषा के छंदों के अनेक भेद होते हैं। (४) वह विद्या जिसमें छंदों के लक्षण आदि का विचार हो। यह छंद वेदांगों में मानी गई है। इसे पाद भी कहते हैं। (२) अभिलाषा। इच्छा। (३) स्वराचार। स्वच्छाचार। मनमाना व्यवहार। (७) बंधन। गाँठ। (८) जाल। संघात। समूह। उ०—वीन के छंद में है तम छंद कलिंद जा बुंद लसे दरसानी। (१) कपट। छल। मकर। उ०—(क) राजवार श्रसणुणी न चाही जेहि दूना कर खोज। यही छंद टग विद्या छला सो राजा भोज।—जायसी। (ख) कटा कहति तु थात अयानी। बाके छंद भेद को जानै सीन कबहुँ धैं पीवत पानी।—सूर।

मुहा०—छल छंद—कपट। धोखेवाजी। चालबाजी। उ०—छोम छल छंदन को पादें पाप हँदन को किकिर के फंदन को फारिहैं पै फारिहैं।—पद्माकर।

(१०) चाल। युक्ति। कला। चालपाजी। उ०—(क) योगिहि बहुत छंद औराहीं। वृंद मुथाती जैसे पानी।—जायसी। (ख) योगी सयें छंद अस खेला। तु भिलार केहि माहँ अकेला।—जायसी। (ग) सुनि नंद नंद प्यारे तरे मुटा चंद गम चंद पै न भयो कोटि छंद करि हारगो है।—केशव। (११) रंग रंग। आकार। चेष्टा। उ०—गिरगिट छंद परं हुल तेता। रन खन पीत रात खन सेता।—जायसी। (१२) अभिप्राय। मतलब। (१३) पृकांत। निर्जन। (१४) विप। जहर। (१५) दहन। अपरण। (१६) पत्ती।

संज्ञा पु० [सं० छन्दः] एक आभूषण जो हाथ में चूड़ियों के बीच में पहना जाता है।

छंदक—वि० [सं०] (१) रक्षक। (२) छली।

संज्ञा पु० (१) कृष्णचंद्र का एक नाम। (२) बुद्धदेव के सारथी का नाम। (३) छल।

छंदज—संज्ञा पु० [सं०] वैदिक देवता। मेसे देवता जिनकी रतुति वेदों में है। वसु आदि देवता।

छंदना—वि० अ० [सं० छंदः = वचन] पैरों में रस्ती लगा कर धंधा जाना।

छंदपातन—संज्ञा पु० [सं०] यनावटी साधु। साधुचंपायी ढंग। छली। धोखेवाज।

छंदवन्द—संज्ञा पु० [हिं० छंद + वंद] छल। कपट। धोखा।

छंदस्कृत—संज्ञा पु० [सं०] [छं० छंदःकृता]। (१) वेद जिसमें गायत्री आदि छंद हैं। (२) वेद मंत्र।

छंदस्तुत—संज्ञा पु० [सं०] (१) वैदिक देवता जिनकी स्तुति वेदों में की गई है। (२) श्रमि जो वैदिक छंदों द्वारा देवताओं की स्तुति करें। (३) सूत्र्य का सारथी। अरुण।

छंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छंदः = वचन] एक आभूषण जिसे छिप्राँ हाथों में कलाई के पास पहनती है। यह गोल कंगन की तरह का होता है जिस पर रत्न की जाड़ गोल चिपटी टिकिया पैदाई रहती है। यह कंगन और पड़ेले के बीच में पहना जाता है।

वि० [हिं० छंदः] कपटी। धोखेवाज। छली।

छंदेली—संज्ञा स्त्री० दे० “छंदी”।

छंदेग—संज्ञा पु० [सं०] सामगान करनेवाला गुरुप। मामग। सामवेदी।

छंदेगपरिशिष्ट—संज्ञा पु० [सं०] सामवेद के गोमिल सूत्र का परिशिष्ट। यह काल्याण जी का बनाया हुआ है।

छंदेदेव—संज्ञा पु० [सं०] महाभारत के अनुसार मयंग नामक चांडाल जिनकी उपति नापित पिता और द्राक्षणी माता से हुई थी। इन्होंने नारायणच नाम करने के लिये जब बड़ी तपस्या की तब इंद्र ने इन्हें व सिद्धि कि तुम कामरूप विहंग होगे। तुम्हारा नाम छंदेदेव होगा और द्राक्षण, चत्रिय आदि सब वर्णों की शिष्या तुम्हारी पूजा करेंगी।

छंदेवस्तु—वि० [सं०] श्लोक-यद्। जो पर के रूप में हो। जैसे, छंदेवस्तु प्रथम।

छंदेभंग—संज्ञा पु० [सं०] छंद रचना का एक दोष जो मात्रा वर्ण आदि की गणना वा लघु गुरु आदि नियम का पालन न होने के कारण होता है।

छंदेम—संज्ञा पु० [सं०] (१) हाइशाह याग के अंतर्गत एक हत्य का नाम। यह आठवें, नवें और दसवें दिन तीन दिन तक होता था और प्रति दिन उन तीन स्तोत्रों का गान होता था जो इसी नाम से विख्यात हैं। इस यज्ञ का फल कोई कोई राज्यप्राप्ति मानते हैं। (२) वे तीन स्तोत्र जिनका गान छंदेम में होता था।

छ—संज्ञा पु० [सं०] (१) काटना। (२) ठीकना। आच्छादन। (३) धर। (४) बंद। टुकड़ा।

वि० [सं०] (१) निर्मल। सफ़। (२) तल। चंचल।

वि० [सं० पद० प्रा० छ] निगती में पांच से एक अधिक। जो संख्या में पांच और एक हो।

संज्ञा पु० (१) वह संख्या जो पांच से एक अधिक हो। (२)

उस संख्या का मूचक श्रंक जो द्वय प्रकार लिया जाता है—६।

संज्ञा शी० दे० “बुधो”।

छड़ो—संज्ञा पु० [सं० गच्छ, प्रा० सगहा, उगहा] बोक लादने की बुपहिया गाड़ी जिसे बेल खींचने हैं। बेलगाड़ी। समगड़। लड़ी।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

मुहा०—छुकड़ा लादना = छुकड़े में बोक वा सामान भरना।

वि०—जिसका लींचा हीला हा गया हो। जिसके अंजर पंजर डोले हो गए हों। टूटा फूटा।

क्रि० प्र०—धोना।

कड़िया—संज्ञा शी० [हि० क + कर्] बंद पालकी जिसे छ कहार उठाते हैं।

उड़ो—संज्ञा शी० [हि० उ + उड़] (१) छ का समूह। (२) यह पालकी जिसे छ कहार उठाते हैं। छुकड़िया। (३) चारपाई बुगने का एक प्रकार जिसमें छ बाध उठाए और छ बँटाए जाते हैं।

वि० जिसमें छ अशय हो। छ से बना हुआ।

उड़ना—क्रि० श्० [सं० चकन = चृत धेना] [संज्ञा कर्क]

(१) सा पीकर अवाणा। उड़ होना। अफरना। उ०—उमने मूच उड़ कर स्वया।

संज्ञा० क्रि०—जाना।

(२) गुप्त होकर उन्नत होना। मद्य यादि पीकर नशे में चूर होना। उ०—(क) ते छुकि नव रस केलि करेहों। जोग लाइ अघरन रस लेहों।—जायसी। (ख) केशवदास घर घर गाचनफिरहिं गोप एक रहे छुकि ने मरेई गुनियत है।—केशव।

क्रि० श्० [सं० चक = जान] (१) चकराना। अचंभे में जाना। (२) हँसान होना। तंग होना। दिक् होना। उ०—पडो जाकर हम गुच छुके, कहीं कोई भी नहीं था।

छकरी—संज्ञा शी० दे० “छुकड़ी”।

छकाछक—वि० [हि० छकना] (१) तुम। अथवा हुआ। संतुष्ट।

(२) परिपूर्ण। भरा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।

(३) उन्नत। नशे में चूर। महमत।

छकाना—क्रि० ग० [हि० छकना] (१) चिन्मा पिला कर तुम करना। गुच खिलाना पिलाना।

संज्ञा० क्रि०—देना।

(२) मद्य यादि से उन्नत करना।

क्रि० श्० [सं० चक = जान] अचंभे में जानना। चकर में डारना।

(३) हँसान करना। दिक् करना। तंग करना। उ०—तुमने गो कत श्रेयं तव लकाग।

संज्ञा० क्रि०—डालना।

छकुर—संज्ञा पु० [हि० छ + कुर] फसल की वह दैठाई जिसमें उपज का छड़ा भाग जमींदार पाता है।

छका—संज्ञा पु० [सं० पत्र, प्रा० छका] (१) छ का समूह वा वह वस्तु जो छ अशयों में यनी हो। (२) गुप्त का एक शब्द जिसमें कौड़ी वा चित्ती फेंकने से छ कौड़ियाँ चित पड़ें। यही दार्ण देना, वा द्वय, वा चंद्रा कौड़ियों के चित पड़ने पर माना जाता है।

मुहा०—छका पंजा = दाँव पैन। चानचानी। छका पंजा भूलना = युक्त काम न करना। चान न चलना। कच व्य न मुमाई पडना। बुद्धि का काम न करना।

(३) पामे का एक दार्ण जिसमें पासा फेंकने से छ विदियाँ अजर पड़ें।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—फेंकना।

(४) बुझा।

क्रि० प्र०—बेलना।—फेंकना।—डालना।

(५) वह ताम जिसमें छ वृटियाँ हों। (६) पांच ज्ञानेन्द्रियो और छठे मन का समूह। होशहवास। सुच। यंजा। धांसान।

मुहा०—छुके छटना = (१) होशहवास जत्ता रहना। होश उटना।

बुद्धि का काम न करना। लज्ज होना। (२) हिमन धारना। माह्य छटना। पवग जाना। उ०—नरै सेना के शाने ही शत्रुओं के छुके छट गए। छुके छुटाना = (१) खिन्न करना। विरहित करना। हँसान करना। (२) साह्य छुटाना। अर्थात् करना। घबरा देना। पन कराना। पर उगाड देना।

उ०—मिणों ने काउलियों के छुके छुड़ा दिए।

छग—संज्ञा पु० [सं०] छ्वाग। बकरा।

छगड़ा—संज्ञा शी० [सं० छगन] [सं० छगटा] बकरा। उ०—

एक छगड़ा एक छगड़ा लीलिति ती मन लीलिति कराव। बारह भैमा सरमों लीलिति चौ चारामी गाव।—कवीर।

छगण—संज्ञा पु० [सं०] मूषा गोबर। कंडा।

छगन—संज्ञा पु० [सं० चंगट = एक छोटा मछरी] छोटा बघा।

मिथ बालक।

वि० बघों के लिये एक प्यार का शब्द। उ०—कहत मगडाइ लाइ इर दिन दिन छगन छुवाले सुते छुवा।—तुलसी।

शो०—छगन मगन = छोटे छोटे बच्चे। प्यार बच्चे। हँसो मगने बच्चे। (प्यार का शब्द) उ०—(क) गाइ गाइ हजाराध

बोलिहों सुचे नींदरी मुहाई। वासुध छुपीले धौना छगन

मगन मेरे कहति मल्लाद मन्दाई। सागुन द्विय हुलसति तुलसी के प्रभु कि ललित नरिकाई।—तुलसी। (ग) गिगि

परत पुटुखनि देकत खेलत हैं दार छगन मगन।—गूरू।

(ग) कहा काम मेरे छगन मगन को मृग मधुपुरी बुलायो ।
सुफलक सुत मेरे प्राण हवन को काल रूप है आयो ।—
मूर ।

छगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छाल] छोट्टी बकरा ।

छगल—छग पु० [सं०] (१) छग । बकरा । (२) बृद्धदारक नामक पेड़ । विधारा । (३) एक श्रापि का नाम । (४) नीले रंग का कपड़ा । (५) यह देश जहाँ बहुत बकरे होते हैं ।
छगुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० छग + अणुत्त] हाथ के पंजे की सभ से छोट्टी डेगली । कनिष्ठिका । कार्ना डेगली ।

छछिया, छछिया—संज्ञा स्त्री० [हि० छछ] (१) छाड़ पाने वा नापने का छोटा पात्र । उ०—ताहि अहीर की छछरियां छछिया भर छाड़ पं नाच नचावै । (२) छाड़ । मट्टा । तम ।

छछुं दर्रा—संज्ञा स्त्री० दे० 'छछुं दर' ।

छछुं दर—संज्ञा पु० [सं० छछुं दर] (१) चूहे की जाति का एक जंतु । इसकी घनावट चूहे की मी होती है पर इसका धूपन अधिक निकला हुआ और सुकीला होता है । इसके शरीर के गेठों भी छोटे और कुछ आसमानी रंग लिए खाकी वा राख के रंग के होते हैं । यह जंतु दिन में बिलकुल नहीं देखता और रात में छु छु करता चरने के लिये निकलता है और कीड़े मकड़े खाता है । इसके शरीर से एक बड़ी तीव्र दुगंध आती है । लोगों का विश्वास है कि छछुं दर के टू जाने से तलवार का लोहा खराब हो जाता है और फिर वह शस्त्री काट नहीं करता । यह भी कहा जाता है कि जब सांघ छछुं दर को पकड़ लेता है तब उसे दोगेों प्रकार से हानि पहुँचती है ; यदि छोड़ दे तो अथा होजाय और यदि खा ले तो वह मर जाता है ; इसी से मुलसीदासजी ने कहा है—धर्म सनेह उभय मति धेरी । भइ गति सांघ छछुं दरि केरी । छछुं दर तंत्रों के प्रयोगों में भी काम आता है । (२) एक प्रकार का यंत्र या तार्वीज जिसे राजपूताने में उरोहित अग्ने यज्ञमंत्रों को पहनाता है । यह गुली के आकार का सोने चांदी आदि का बनाया जाता है । (३) एक आत-शायजी जिसके छेड़ने से छु छु का शब्द निकलता है ।

मुहा०—छछुं दर छोड़ना = ऐसी बात कहना जिस में लोगों में हलचल मच जाय । आग लगाना ।

छछेरू—संज्ञा पु० [हि० छछ] धी का यह फैन वा मूल जो खर करते समय उसके उपर आ जाता है ।

छजना—क्रि० प्र० [सं० सज्जन, हि० सजना] (१) शोभा देना । सजना । श्रद्धा । लगना । होहवा । उ०—(क) बालम के विदुरे प्रजवालक के हाल कहयोग न परं कछु छाहीं । चैं नी गढ़े दिन तीन ही में तब श्रापि लीं पयों छजिई छही छाहीं ।—वंशव । (ख) कृपर धनुष रूप सुतरी छजन

नैसी छजन से मोती बटकत छवि छावने ।—गिरधर ।

(२) उपयुक्त जान पड़ना । ठीक जँचना । उचित जान पड़ना ।

छज्जा—संज्ञा पु० [हि० सज्जना वा सजना] (१) छजन या दूत का वह भाग जो दीवार के बाहर निकला रहता है । श्रावती । उ०—कृपर धनुष रूप सुतरी छजन नैसी छजन में मोती बटकत छवि छावने ।—गिरधर । (२) कौटे वा पाटन का वह भाग जो कुछ दूर तक दीवार के बाहर निकला रहता है और जिस पर लोग हवा खाने वा बाहर का दृश्य देखने के लिये बैठते हैं । उ०—छजन में छुटति पिचकारी । रँगि गढ़े वारवरी मइल अडारी ।—मूर । (३) दीवार वा दरवाजे के ऊपर लगी हुई पथर की पट्टी जो दीवार से बाहर निकलती रहती है । (४) टोपी के किनारे का निकला हुआ भाग जिसमें धूप से बचाव होता है ।

मुहा०—छज्जेदार = जिम्मा किनारा आगे की ओर निकलना हुआ है । जिसमें छज्जा है । जैसे, छज्जेदार टोपी ।

छटकी—संज्ञा स्त्री० [हि० छटक] (१) छटांक का चटकम । यह वाट जिससे छटांक धनु दीवली जाय । (२) बहुत छेड़ा ।

छटक—संज्ञा पु० [सं०] रूढ़ताल के ग्यारह भेदों में से एक ।

छटकना—क्रि० प्र० [सं० वा हि० छटना] (१) किसी वस्तु का दाय वा पकड़ से वेग के साथ निकल जाना । वेग से अलग हो जाना । मटकना । जैसे, हाथ के नीचे से गोली छटक गई । मुट्टी में से मसूली छटक गई । (२) दूर दूर रहना । अलग अलग फिरना । जैसे, वह कई दिनों से छटकना फिस्ता है । (३) बरा में से निकल जाना । चटक जाना । दाय से निकल जाना । हथे न चड़ना । हाथ न आना । उ०—देखना, उसे दम दिलावा देने रहना, छटकने न पावे । (४) छूटना । उड़लना ।

छटका—संज्ञा पु० [हि० छटका] मछलियों के फँसाने का एक गड्ढा जो दो जलाशयों के बीच संग मेंड़ पर खोदा जाता है । यह गड्ढा चार छ हाथ लंबा और हाथ दो हाथ चौड़ा तथा दो तीन हाथ गहरा होता है । मछलियाँ एक जलाशय से दूसरे जलाशय में जाने के लिये चूटती हैं और इसी गड्ढे में गिर कर रह जाती हैं । यह ग ढा प्रायः धान के खेतों की मेंड़ पर पानी खूबने के समय खोदा जाता है ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

छटकाना—क्रि० प्र० [हि० छटकना] (१) छटक जाने देना ।

किसी वस्तु को दाय वा पकड़ से बलपूर्वक निकल जाने देना । (२) छुड़ाना । बलपूर्वक भटकना देकर पकड़ वा घेबन से छुड़ाना । जैसे, हाथ छटकाना । उ०—रिति करि वीकि छीमि बट भटकति रथाम सुजनि छटकामे दोन्हो ।—मूर । (३) पनड या दबाव से रखनेवाली वस्तु का बलपूर्वक अलग

करना । बंधन को जोर करके दूर करना । जैसे, रस्मी छटकाना ।

छटना-क्रि० प्र० दे० "छूटना" ।

छटपट-मंशा पुं० [षु०] छटपटने की क्रिया । बंधन वा पोंडा के कारण हाथ पर फटकाने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।

वि० बंचल । चपल । नटपट ।

छटपटाना-क्रि० प्र० [षु०] (१) बंधन वा पोंडा के कारण हाथ पर फटकाना । तड़कना । तड़कड़ाना । उ०—(क) देवो घड़ुके का गला फँस गया है, यह छटपटा रहा है । (ख) यह दर्द के मारे छटपटा रहा है । (२) घबिना होना, व्याकुल होना । विरल होना । शरीर होना । (३) किसी वस्तु के लिये आकुल होना । अर्थात्वापुत्रक अन्वेषित होना ।

छटपटी-मंशा स्त्री० [हि०] (१) वषाट । व्याकुलता । दर्दनी । शर्पिता । (२) किसी वस्तु के लिये आकुलता । गदरी शर्कटा ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

छटाक-मंशा स्त्री० [हि० क + टाक] एक नील जो मेर का मोतहवां भाग है । पाय भर का धापाट ।

मुहा०—छटाक भर = (१) नील में पाय का धापाट भाग । (२) बहुत धोड़ा । खरप । कम ।

छटा-मंशा स्त्री० [से०] (१) वीति । प्रकाश । प्रभा । फलक । (२) सोता । सौंदर्य । छवि । (३) विजुली । उ०—चमकति पत्र छटा सी सवे ।—गुनाथ ।

छटाफल-मंशा पुं० [मं०] ताड़ का पेड़ ।

छटामा-मंशा स्त्री० [से०] (१) विजली । विजली की चमक । (२) चोहरी की कानि ।

छटेल-वि० [हि० छटना] छँटा हुआ । चालार ।

छट्टी-मंशा स्त्री० दे० "छट्ट" ।

छट्टी-मंशा स्त्री० दे० "छट्टी" ।

छट्ट-मंशा स्त्री० [ग० पच्छी, प्र० छट्टी] पगवार का छट्टा दिन । प्रति पक्ष की छट्टी तिथि ।

छट्टई-वि० स्त्री० दे० "छट्टवा" ।

छट्टवा-वि० दे० "छट्टी" ।

छट्टी-वि० [से० षट्ट] [स्त्री० छट्टी] जो क्रम में पांच और वस्तुओं के उपरत हो । गिनती के क्रम में निगना स्थान छट्ट पर हो ।

मुहा०—[छट्टे छमासे = फकी कमी । बहुत दिना पर ।

छट्टी-मंशा स्त्री० [से० पच्छी, प्र० छट्टी] (१) छट्टी । जन्म से छट्टे दिन की पूजा । उ०—छट्टी यादही लोह वेद विधिकारी मुनिधा न विधानी । राम लगन रिपुद्वन भजन धरे नाम लजित सुनि जानी ।—गुनाथी ।

वि० प्र०—करना ।—पड़ना ।—पुजाना ।

मुहा०—छट्टी का दूध निकलना = फटिन श्रम पड़ना । बहुत हैरानी होना । भारी संकट पड़ना । छट्टी का दूध निकलना = बहुत हैरान करना । अधिक परिश्रम लेना । बहुत कष्ट देना । छट्टी का दूध थाने आना = भय मुच्य भय जाना । बचन की भारी विप्रादे विप्राद निरुक्त आना । धीर परिश्रम पड़ना । बहुत हैरानी होना । भारी संकट पड़ना । छट्टी का राना = पुत्रोत्तम शरीर । पुराना रूम । छट्टी में नहीं पड़ना = (१) भाग में न होना । (२) प्रकृति में न होना । प्रकृतिविन्द होना । अभाव के अर्थनक होना । जैसे, देना तो उनकी छट्टी में नहीं पड़ा है ।

(२) एक देवी जिसकी पूजा छट्टी के दिन होती है ।

छट्ट-मंशा स्त्री० [से० षट्ट] धातु वा लकड़ी आदि का लंबा पतला बड़ा टुकड़ा । धातु वा लकड़ी का टंडा । जैसे, लोहे की छट्ट, बाँस की छट्ट ।

विशेष—बहुत से स्थानों में यह शब्द पुं० भी पाला जाता है ।

छट्टना-क्रि० प्र० [हि० छटना] धनात् आदि को ओरखती में टूट कर साफ करना । धोखली में रख कर अनाज छटना जिसमें कने निकल जाय और धनात् साफ हो जाय । छट्टाना । जैसे, चावल छट्टना ।

छट्टवा-मंशा पुं० [हि० छट्ट + वा] अनाज पर की कंबड़ी । फरहा । (समा०)

छट्टवालौ-मंशा पुं० दे० "छट्टवाल" ।

छट्टा-मंशा पुं० [हि० छट्ट] (१) पैर में पड़ने का चूड़ी के आकार का एक गटना । यह चाँदी की पतली छट्ट वा पेंडे हुए गारों का बनाया जाता है और पंख से दस बीस तक एक एक पैर में पड़ना जाता है । (२) मोतियों की आड़ों का गुच्छा । सच्छा ।

वि० [हि० छट्टना] शकली । एककली ।

छट्टा—छट्टी सवारी । छट्टी छट्टक ।

छट्टिया-मंशा पुं० [हि० छट्टी] टेकड़ीदार । दरवान । द्वारपाल । उ०—परिया धांगन और को लट छट्ट छट्टिया काम । तिल जो चिबुट पर लखत है तो सिंगार रस धात ।—सुबलक ।

छट्टियाल-मंशा पुं० [हि० छट्टी] एक प्रकार का भाजा वा बरदा ।

छट्टी-मंशा स्त्री० [हि० छट्टी] (१) सीधी पतली लकड़ी । पतली नाडी । (२) लहंगे परामे आदि से गोखरू लुटकी आदि की सीधी टंडाए । (दरजू) । (३) कंबड़ी जिसे लोहा मुसलमान पीरों की मज़ार पर चढ़ते हैं । सहर । कंबड़ी । जैसे, मज़ार की छट्टी । (४) गुड़िया पीटने वा धांधी छट्टाने की पतली लकड़ी ।

वि० स्त्री० [हि० छट्टना] शकली । एककली ।

मुहा०—छट्टी छट्टक या छट्टी सवारी = (१) बिना किसी संगी

माथा के। अथर्वे। एकाकी । (२) विना कोई वेधक या अथवाप लिए। तन तनहा।

छड़ीदार—वि० [हि० छड़ी + दार (प्रत्य०)] (१) जो छड़ी लिए हो। छड़ीवाला। (२) जिसमें मीथी पतली लकीरें हों। लकीरदार। मीथी लकीरोंवाला (कपड़ा)। जैसे, छड़ीदार छूट, छड़ीदार गलता।

सजा पु० चोबदार। आसा-ब्रदार। झारपासक। रचक।

छड़ीवरदार—संज्ञा पु० [हि० छड़ी + वर + दार] चोबदार। बड़े आदिमियों की सवारी के माथ मोने चांदी की छड़ी लिए हुए चलनेवाला सेवक।

छड़ीला—संज्ञा पु० दे० "छुरीला"।

छण—संज्ञा पु० दे० "छण"।

छणादा—संज्ञा स्त्री० दे० "छणदा"।

छन—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र, प्रा० छत्र] (१) घर की दीवारों के ऊपर की पटिया, चूना, कंकड़ खादि ढान कर बनाई हुई फर्श। पाशन। उ०—छिति पर, छान पर, छानत छतान पर, ललित लतान पर, लाड़िली की लट पै।—पद्मकर ।

मुहा०—छत पटना वा पड़ना = दीवार के ऊपर वेतार हुई फटियों पर ककड़, मुरखी, नुना आदि पीठा जाना। छत बनना।

(२) घर के ऊपर की खुली हुई छत। ऊपर का खुला हुआ कोठा। उ०—गर्मी में लोग छत पर सोते हैं। (३) छतगीर। ऊपर तानने की चादर। चांदनी।

मुहा०—छत बँधना = वादों का फेर कर छाना।

*सजा पु० [सं० छत] घाव। ज़णम।

*क्रि० वि० [सं० छत] होते हुए। रहते हुए। आद्यत।

उ०—(क) शनती गनिवे तें रहे छतह अद्यत ममान। शलि श्य ये तिथि थाम लीं परे रहैं। नन प्राण।—विहारी। (ख) प्राण पिंड को तजि चले सुवा कहैं सब कोप। जीव छन जायें मरै मृछम लखैं न सोप। मरिप तो मरि जाहए दृष्टि परं जंजार। पेसा भरना को मरं दिन में सै सै बार।—कवीर।

छतना*—संज्ञा पु० [हि० छता, अथवा छतना] पत्तों का बना हुआ छता। उ०—मौहान सचाई घात करत रचाई दोऊ छवि में बचाई छुटै ओर छतना की।—रमकुसुमप्रकाश।

छनना*—वि० [हि० छता वा छतना] छाने की तरह फैला हुआ। दूर तक फैला हुआ। विस्तृत।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः वृषों के लिये होता है।

छतरिया विप—संज्ञा पु० [सं० छत्र] एक प्रकार की खुमी जो बहुत विपली होती है।

छतरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र] (१) छता। (२) पत्तों का बना हुआ छता। उ०—लै कर सुघर सुखिया पिय के साथ।

छतरी एक छतरिया बरगत पाथ।—रहाम। (३) मंडप। (४) राजाघों की चिता वा साधु महासामर्थों की समाधि के स्थान पर स्मारक रूप से बना हुआ छत्रेदार मंडप। (५) कवतों के बैठने के लिये बांस की फट्टियों का बना हुआ टट्टर जो एक ऊँचे बांस के सिरे पर बँधा रहता है। (६) कटारों की शेराली के ऊपर छाया के लिये रखा हुआ बांस की फट्टियों का टट्टर जिस पर कपड़ा डालते हैं। (७) बाल वा हथे शब्द के ऊपर की छाजन। (८) जदान के ऊपर का भाग। (९) खुमी। कुकुसुना।

छतलोट—संज्ञा स्त्री० [हि० छत + लोटना] एक प्रकार की कसरत जिसमें राध के ऊपर पैठ के बल पर लोट कर लोटते हैं। हमने तोड़ नहीं निकलती।

छता—संज्ञा पु० [सं० छत्र] छता। उ०—गीस भयो हर हर सुमेरु छना भयो थापु सुमेरु को वासी।—मतिराम।

छतिया*—संज्ञा स्त्री० [हि० छता] छता। वसुध। उ०—सुनहु श्याम तुम कों सवि डरपत है कहत प सन मुग्धारी। सूर श्याम विरुभाने मोए लिए लगाई छतिया महतारी।—सूर।

छतियाना—क्रि० सं० [हि० छतिया] (१) छतियों के पाम ले जाना। (२) बंदूक छोड़ने के समय छुट्टे को छतियों के पाम लगाना। धंदूक तानना।

छतियन—संज्ञा पु० [सं० सप्तमी प्रा० सप्तयना] एक पेड़ जो भारत के प्रायः सभी तर प्रदेशों में पौड़ा बहुत मिलता है। इसके एक एक पत्ते में सात सात छोटी छोटी पत्तियाँ होती हैं। इसका पेड़ बड़ा होता है और इसकी टहनियों को तोड़ने से दूध निकलता है। इसकी छाल दूध, कुमिनाशक, पुष्टिकारक, उबरा और सेकोचक होती है। इसका दूध फोड़े पर लगाया जाता है और तेल में मिखा कर बर्द दूर करने के लिये काम में डाला जाता है। इसकी लकड़ी संदूक, अलमारी आदि बनाने के काम में आती है। दशमूल नामक काढ़े में इसकी छाल पड़ती है।

छतीसा—वि० [हि० छतीस] [श्री० छतीस] (१) जिसे छतीस बुद्धि हो। चतुर। सयना। चालाक। उ०—पीसी है मनोज की मी छुट्टी छतीसी छुट्टी सुरत उड़ी मी भरी भाग की नदी सी।—सुभान। (२) मफार। पत। उ०—नाई की जाति बड़ी छुमी होती है।

छतीसापन—संज्ञा पु० [हि० छतीसा] मकारी। चालाकी। धूर्तता।

छताना—संज्ञा पु० [हि० छता] (१) छता। (२) छत्राक। खुमी।

छत्त—संज्ञा पु० दे० "छत"।

छत्तरा—संज्ञा पु० (१) दे० "छत्र"। (२) दे० "सत्र"।

छत्ता—संज्ञा पु० [सं० छत्र, प्रा० छत्र] (१) छता। छतरी। (२) पटाय वा छत जिसके नीचे से रास्ता चलता हो। (३)

मनुष्यजी, भिक्षु आदि के रहने का घर जो मंगम का होता है और जिसमें बहुत से रातने रहते हैं। (४) छाने की तरह दूर तक फैली हुई जगह। छानमार चीज। पकता। जैसे, दूध का छाना, दार का छाना। (५) काल का चीजरोज।

छत्तीस-वि० [सं० पचमिंशत्, प्रा० छत्तिस] जो गिनती में तीस और छह हो।

छाया पु० (१) तीस और छह के योग का संख्या। (२) इस संख्या का सूचित करनेवाला शंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३६।

छत्तीसवर्ष-वि० [हि० छत्तिस + वर्ष (प्रत्यय०)] जो क्रम में पैंतीस और बन्सुषों के बराबर हो। क्रम में जिसका स्थान छत्तीस पर हो।

छत्तीसा-संज्ञा पु० [हि० छत्तिस] (छत्तीसो जातिवर्ग) की सेवा करनेवाला या जिसे छत्तीस बुद्धि हो। नाई। हज्जाम।

वि० [भि० छत्तीसी] भूत। चालाक। चतुर।

छत्तीसी-वि० [हि० छत्तिस] (१) गहरे छल छंदवाली (छो)। (२) दिग्पाल।

छत्तुरी-संज्ञा पु० [सं० छत्र] (१) छता। (२) वह गोबर जो कंदों के डेर (कंडीर) की चोटी पर छोपा जाता है। (३) यह गोबर जो सुविधान में श्रमाज की राशि के निर पर चोरी या नजर से बचाने के लिये रख वा छोप दिया जाता है। (४) वह छपर जो भूमि की राशि के ऊपर छाया या रख जाता है। (५) दू० "छत्तरी"।

छत्र-संज्ञा पु० [सं०] (१) छता। छतरी। (२) राजाओं का छता जो राजविहों में से है। यह छता बहुमूल्य स्वर्णदंड आदि से युक्त रत्नजडित तथा मोती की झालरों आदि से श्रवण होता है। भोजराज कृत युक्तकल्पतरु नामक ग्रंथ में छत्रों के परिमाण वर्ष आदि का विस्तृत विवरण है। जिस कक्ष का कण्डू सफेद हो और जिसके निरे पर सोने का कलश हो उसका नाम कनकदंड है। जिसका दंडा, कमानी कील आदि विशुद्ध सोने की हों, कपड़ा और चोरी कृष्ण पर्ण हों, जिनमें बत्तीस बत्तीस मोतियों की बत्तीरा लहों की झालरें लटकती हों और जिसमें शनैक रख जड़े हों, वग छत्र का नाम नवदंड है। इसी नवदंड छत्र के ऊपर यदि धातु शंखुल की एक पताका लगा दी जाय तो यह द्विविजयी छत्र हो जाता है।

द्वै०—छत्रद्वंद्व = राजा। शरणा।

मुहूर्त—किसी की छत्रद्वंद्व में होना = किसी की शरणा में होना। किसी की शरणा में रहना।

(३) छत्री। भूभेड़। कुडूरसुता। (७) मय की तरह का एक पेड़। (४) छत्रवती विप। नर विप। अतिव्यग्र।

छत्रक-संज्ञा पु० [सं०] (१) छत्री। भूभेड़। कुडूरसुता। (२)

छता। (३) लालमयाने की जाति का एक पौधा जिसके पत्ते और फल लहारे लिए होते हैं। (४) कंठिका नाम की चिड़िया। मद्धरंग। (५) मंदिर। मंथप। देवमंदिर। (६) शब्द का छत्र। (७) मिस्री का कुमा।

छत्रकद्विती-संज्ञा पु० [सं० छत्रकद्विती] रावण चाकी नामक जल-जंतु जिसके शरीर के ऊपर एक गोला छाता ला रहता है। यह मसूदा में होता है।

छत्रचक्र-संज्ञा पु० [सं०] शुभाशुभ फल निकालने के लिये फलित ज्योतिष का एक चक्र। इसमें नौ नौ ध्रों की तीन पंक्तियाँ बनती हैं जिनमें क्रमशः श्रिचिनी से लेकर श्रवणा तक, मघा से ज्येष्ठा तक और मूल से रेवती तक नौ नौ नक्षत्रों के नाम रखते हैं। फिर तक्षर के नाम के अनुसार शुभाशुभ की गणना करते हैं।

छत्रधर-संज्ञा पु० [सं०] (१) छत्र धारण करनेवाला मनुष्य। (२) राजा। (३) वह सेवक जो राजा के ऊपर छाता लगावे।

छत्रधारी-संज्ञा पु० [सं० छत्रधर] जो छत्र धारण करे। जैसे, छत्रधारी राजा।

संज्ञा पु० [सं०] (१) (छत्र धारण करनेवाला) राजा। (२) वह सेवक जो राजाओं के ऊपर छाता लगावे।

छत्रपति-संज्ञा पु० [सं०] छत्र का अधिपति। राजा।

छत्रपर्त-संज्ञा पु० [सं०] (१) ग्धजपट्ट। (२) भोजराज का दूध। पदूम। (३) मानपता। मानकचू। मान। (४) छुतिवन।

छत्रपुष्प-संज्ञा पु० [सं०] तिनकपुष्प।

छत्रबंधु-संज्ञा पु० [सं०] नीच कुल का पुत्रिय। श्रिविवाधम। उ०—छत्रबंधु तैं विप्र भोलाहैं। धौलें लिये रहित सपुद्गहैं।—हुलसी।

छत्रभंग-संज्ञा पु० [सं०] (१) राजा का नाश। (२) उपोत्थिष का एक योग जिसे राजा का नाशक माना है। (३) वैषम्य। (४) स्वतंत्रता। श्रारतकता। (५) हाथी का एक देण्य जो उसके दोनों दाँतों के कुछ नीचे ऊपर होने के कारण माना जाता है।

छत्रमदाराज-संज्ञा पु० [सं०] वीरों के अनुसार आकाशस्थ चार दिक्पाल जिनके नाम ये हैं—प्रथम वीराराज जो पूरवे दिशा के अधिपति हैं और हाथ में वीणा लिए रहते हैं; दूसरे लक्ष्मण जो पश्चिम दिशा के अधिपति हैं और हाथ में स्रग लिए रहते हैं; तीसरे ध्वजराज जो उत्तर दिशा के अधिपति हैं और हाथ में ध्वजा लिए रहते हैं, चौथे चैत्यराज जो दक्षिण दिशा के अधिपति हैं और हाथ में चैत्य धारण करते हैं। यौद्ध मंदिरों में प्रायः इनकी मूर्तियाँ रहती हैं।

छत्रवती-संज्ञा श्री० [सं०] एक प्राचीन राज्य जो पांचाज के

उत्तर पड़ता था। हृद्ये अहिच्छत्र वा अहिच्छेत्र भी कहते थे। महाभारत, हरिवंश और विष्णु पुराण इत्यादि में इसका उल्लेख है।

छत्रवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] मुचकुन्द का पेड़।

छत्रांग-संज्ञा पुं० [सं०] गोवंदी हरताल।

छत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खुमी। (२) दिंगरी। (३) धनिया। (४) सोया। (५) मजीठ। (६) राखा। रासन। (६) सुश्रुत के अनुसार एक रसायन औषध।

छत्राक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खुमी। (२) कुडुरसुता। (३) जलचकूल।

छत्राकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राखना नाम की औषधि। (२) सर्पिणी।

छत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] खुमी। दिंगरी।

छत्री-वि० [सं० छत्रिन्] छत्रयुक्त। छत्र धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं० नापित। नाई।

संज्ञा पुं० दे० "छत्रिय"।

छत्रवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर। (२) कुंज।

छद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रावण। दकनेवाली वस्तु। दकन, छाल इत्यादि। जैसे, रदच्छद्र। उ०—चार विधु मंडल में विदुम विराजै, छद्र मोतिन के छाजै ते छुपाय छुपते नहीं। (२) पत्र। चिट्ठियों का पंख। (३) पत्ता। (४) प्रीतिपत्ती वृष। गँठिवन। (५) तमाल वृक्ष। (६) तेजपत्ता।

छद्रन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रावण। श्राच्छाद्रन। दकन। (२) पत्ता। (३) चिट्ठियों का पंख। (४) तमालपत्र। (५) तेजपत्ता।

छद्रपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेजपत्ता। (२) भोजपत्र।

छद्रम-संज्ञा पुं० दे० "छद्रम"।

छद्राम-संज्ञा पुं० [हि० छ + दाम] पैसे का चौगाई भाग।

छद्रा-संज्ञा पुं० [हि० छ + सं० रत् + हि० दात] (१) वह पत्थ जो छः दाँत तोड़ चुका हो। (२) नखटल लड़का। शरीर लड़का।

छद्र-संज्ञा पुं० [सं० छद्रम] (१) छिपाव। गोपन। (२) व्याज। सहाना। हीला। (३) छल। कपट। धोखा। जैसे, छद्रमवेश।

छद्रमवेश-संज्ञा पुं० [सं०] धड़ला हुआ वेश। कृत्रिम वेश। दूसरों को धोखा देने के लिये बनाया हुआ वेश।

छद्रमवेशी-वि० [सं० छद्रवेशिन] जो वेश बदले हो। जो अपना असली रूप छिपाये हो।

छद्रिमका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुप। गिलेय।

छद्रमी-वि० [सं० छद्रिन्] (स्त्री० छद्रिनी) (१) बनावटी वेश धारण करनेवाला। अपना असली रूप छिपानेवाला। छुपी। कपटी।

छन-संज्ञा पुं० दे० "छण"।

छनक-संज्ञा स्त्री० [अतु०] (१) भनकनाहट। भनकार। छन छन करने का शब्द। उ०—कवि मतिराम भूपतन की छनक सुनि चाँद भो खल चित रसिक रमाल की।—मतिराम। (२) जलनी या सपती हुई वस्तु पर पानी आदि पड़ने के कारण छन छन होने का शब्द।

संज्ञा स्त्री० [सं० गंका] किमी आशंका से चौक कर भागने की क्रिया। भड़क।

संज्ञा पुं० [सं० चण, हि० छन + क] एक संघ। उ०—अरि छोड़ो गनिष् नहीं, जात होत विगार। गुन समूह को छनक में, जास्त तनिक धैर्यार।—शुंद।

छनकना-क्रि० अ० [अतु० छन छन] (१) किसी सपती हुई धातु (जैसे गरम तथा) पर से पानी आदि के बूँद का छन छन शब्द करके बड़ जाना। उ०—मैं दे खोया सुकर छुबत छनकि गो नीर। लाल तुन्हारो अरगजा वर हूँ खयो यवोर।—विहारी। (२) * छन छन शब्द करना। भनकार करना। भनकनाना। उ०—छनकत मेल यत्नकर तोर। छनकत तेग जंजीरनु मोर।—सुंदन।

क्रि० अ० [सं० गंका] चौकड़ा होकर भागना। भड़कना। उ०—सह गाय, पास जाते ही छनकती है।

छनक मनक-संज्ञा स्त्री० [अतु०] (१) गहने के पजने का शब्द। धातुपत्तियों की भनकार। (२) साज बाज। ठसक। उ०—न्योने में छिया घड़ी छनक मनक मे जाती हैं। (३) दे० "छगन मागन"।

छनकाना-क्रि० सं० [हि० छनकना] (१) पानी को घाँच पर रग कर भाप बना कर बड़ाना जिससे इसका परिमाण कुछ कम हो जाय। (२) तपे हुए बरतन में पानी या और कोई द्रव पदार्थ डाल कर गरम करना। बलकाना।

क्रि० सं० [हि० छनकना] चौकाना। चौकड़ा करना। भड़काना।

छनछनाना-क्रि० अ० [अतु०] (१) किसी तपी हुई धातु (जैसे गरम तथा) पर पानी आदि पड़ने के कारण छन छन शब्द होना। (२) खैलते हुए धी, तेल आदि में किमी गीली वस्तु (जैसे, आटे की लोई, तरकारी आदि) के पड़ने के कारण छन छन शब्द होना। छन छन का शब्द होना। (३) भनकनाना। भनकार होना।

क्रि० सं० (१) छन छन का शब्द उत्पन्न करना। (२) भनकार करना।

छनछवि-संज्ञा स्त्री० [सं० चणकवि] चण्यप्रभा। त्रिजली। छनदा-संज्ञा स्त्री० [सं० चणक] रात। रात्रि। उ०—तजि संक सकुचति न चित्त, योजति धाक कुयाक। दिन छनदा छाकी रहत, सुटत न दिन छवि छाक।—विहारी।

छनन-मनन-समा पुं० [भृ०] कड़ाह के खोलते धी या तेल में किसी सखी आनेवाली गीली वस्तु के पड़ने का शब्द ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—छनन मनन होना = कड़ाह में पूरी कर्मादि आदि निकलना । पूरी, परवाना आदि धनना ।

छनना—क्रि० प्र० [सं० चरण] (१) किसी चूर्ण (जैसे आटा) वा द्रव पदार्थ (जैसे, दूध, पानी) का किसी कपड़े या जाली के महीन छेदों में से होकर इस प्रकार नीचे गिरना कि मूल, सूद, सीढ़ी आदि अलग होकर ऊपर रह जाय । छननी से साफ होना । (२) छोटे छोटे छेदों में होकर थाना ।

उ०—वेद की पत्तियों के बीच से पूव छन छन कर आ रही थी । (३) किसी नरो का पिया जाना । जैसे, भांग छनना, शराब छनना ।

मुहा०—गहरी छनना = (२) सूद मंत्र जाल होना । गहरी भन्धी होना । परस्पर रहल की चर्चा होना । सूव घुट घुट कर चलने होना । (२) आपस में चर्चना । विवाद होना । लड़ाई होना । एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न होना । उ०—उन दोनों में आज कल गहरी छन रही है ।

(३) बहुत से छेदों से युक्त होना । स्थान स्थान पर छिद जाना । छलनी हो जाना । जैसे, इस कपड़े में थप क्या रह गया है, बिलकुल छन गया है । (२) बिध जाना । अनेक स्थानों पर खोट खाना । जैसे, दरवाजा सादा शरीर धीरे-धीरे से छन गया है । † (६) छान धीव होना । निर्णय होना । सधी और झूठी बातों का पता चलना । जैसे, मामला छनना । (७) कड़ाह में से सूड़ी पकवाना आदि तलकर निकलना । जैसे, पूरी छनना ।

वजा पुं० छानने की वस्तु । जैसे, महीन छनना (कपड़ा) ।

छनवाना—क्रि० प्र० दे० “छनाना” ।

छनाना—क्रि० प्र० [भृ०] (१) रनाका । टनाका । भनकार । (२) शरभों के वजने का शब्द ।

छनाना—क्रि० प्र० [हि० छनना] (१) किसी दूसरे से छानने का काम करना । (२) मश्रा आदि पिखाना । जैसे, भांग छनाना । (३) कड़ाह में पकवाना तलवाना ।

छनकर—वि० दे० “छनिक” ।

छना पुं० [हिं० छन + फल] एक क्षण । अल्प काल ।

छन-वि० [सं०] (१) आहत । आच्छादित । ढका हुआ । (२) गुप्त । गायब ।

छंश पुं० (१) एकांत स्थान । निजन स्थान । (२) गुप्त स्थान ।

छंश पुं० [सं० छंश] छंश्री नाम का गहना ।

छंश पुं० [भृ०] (१) किसी तपी हुई चीज पर पानी आदि पड़ने से उलपन शब्द । (२) कड़ाह में तेल वा धी में तलने की वस्तु पड़ने का शब्द ।

मुहा०—छन होना = छल जाना । उड़ जाना ।

(३) धातुओं के पत्तों के परस्पर टकर से उत्पन्न शब्द । धनकार । धनकार । † (४) छोटी छोटी कंकड़ियाँ । बजरी ।

छत्रमति—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि पर परदा पड़ा हो । जड़ । मूर्ख ।

छत्रा—संज्ञा पुं० दे० “छनना” ।

छप—संज्ञा स्त्री० [भृ०] (१) पानी में किसी वस्तु के एक वारगी जोर से गिरने का शब्द । (२) पानी के एक वारगी पड़ने का शब्द । पानी का झोंटा के जोर से पड़ने का शब्द ।

यौ०—छपछप = भरपूर ।

छपकना—क्रि० प्र० [छप से भृ०] (१) पतली कमची से किसी को मारना । पतली लथीली छड़ी से पीटना । (२) कटारी या तलवार के आघात से किसी वस्तु को काट डालना । काट डालना । छिन्न करना ।

छपका—संज्ञा पुं० [हिं० चपकना] मिर से पड़ने का एक गहना जिसे लालनऊ में मुसलमान छियाँ पहनती हैं ।

मिंश पुं० [हिं० छपकना] पतली कमची । साँटा ।

छंश पुं० [हिं० चार + पका] खुरवाले पशुओं का एक रोग जिसमें पशुओं के खुर पक जाते हैं । खुरपका ।

छंश पुं० [भृ०] (१) पानी का भरपूर झोंटा । झोंटा ।

(२) एक प्रकार का जाल जिसमें कचूर कैसाट जाते हैं ।

(३) लकड़ी के सूदक में वह ऊपर का पतरा जिसमें कुँहों की जंजीर लगी रहती है । (४) पानी में हाथ पैर मारने की क्रिया वा भाव ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लेना ।

छपछपाना—क्रि० प्र० [भृ०] (१) पानी पर कोई वस्तु जोर से पटक कर छपछप शब्द उत्पन्न करना । पानी पर हाथ पाँव मारना । पानी पर हाथ पाँव पटकना । (२) कुछ तैर लेना । जैसे, वे सैरते क्या हैं, यों ही पानी पर छपछपाते हैं ।

क्रि० प्र० [भृ०] पानी को छड़ी या हाथ आदि पटक कर हम प्रकार हिलाना जिस में छप छप शब्द उत्पन्न हो ।

छपटना—क्रि० प्र० [सं० चिपट, हिं० चिपटना] (१) चिपकना ।

किसी वस्तु से लगना वा सटना । (२) आसिगित होना ।

छपटाना—क्रि० प्र० [हिं० छपटना] (१) चिपकाना । चिमटाना ।

(२) छाननी से लगाना । आसिगित करना ।

छपटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छपटना] चिल्ली । लकड़ी का टुकड़ा जो धीलने से निकले ।

वि० पतला । दुबला । फूटा ।

छपड़ी—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार का भुंताया पर्व ।

छपद—संज्ञा पुं० [सं० पदपर] अमर । भौंटा । उ०—(क)

उलटि तहाँ पग पारिये जालीं मन मान्यो । छपद कंज तजि बेलि सौं सटि प्रेम न जान्यो ।—सूर । (र) छपद सुनदि

वर बचन हमारे। विन ब्रजनाथ ताप नैनन की कौन हरे हरि श्रेतर कारे।—तुलसी।

छपना—वि० [हि० छिपना] गुप्त । मायव । छुप्त । (पंजाबी) उ०—न जाने कहां छपना हो गई।—अद्दारास।

संज्ञा पु० [सं० ऋषण] विनाश । नाश । संहार । उ०—छोनी में न छाड़्यो छुप्यो, छोनिप को छौना छेदो छोनिप छपन बांको विरुद बहत है।—तुलसी।

छपना—क्रि० अ० [हि० चपना = दबना] (१) छुपा जाना । चिह्न या दाब पड़ना । (२) चिह्नित होना । श्रंक्ति होना । जैसे, छौं ट छपना, मुहर छपना । (३) बंत्रालय में किसी लेख आदि का मुद्रित होना । छापेखाने में शपरो आदि का श्रंक्ति होना । जैसे, पुस्तक छपना । (४) शीतला का टीका लगाना ।

क्रि० अ० दे० "छिपना" ।

छपरखाट, छपरखाट—संज्ञा स्त्री [हि० छप्पर + खाट] मसहरीदार पलंग । वह पलंग जिसके ऊपर डंडों के सहारे कपड़ा तना हो ।

छपरबंद—वि० [हि० छपर + बंध] [संज्ञा छपरबंदी] (१) जिनका घर बना हो । आबाद । बसे हुए । पाही का उलटा । जैसे, छपरबंद असामी, छपरबंद बाशिंदा । (२) छप्पर छाने का काम करनेवाला । छपर छानेवाला । (३) पना के शास पास बसनेवाली एक जाति जो अपने को राजपूत कुल से उत्पन्न बतलाती है ।

छपरबंदी—संज्ञा स्त्री [हि० छपरबंद] (१) छुवाई । छप्पर छाने का काम । (२) छाने की मजूरी । छुवाई ।

छपरा—संज्ञा स्त्री [हि० छपर] (१) घांस का दोकस जो पत्तों से मड़ा होता है और जिसमें तमोली पान रखते हैं । (२) दे० "छपर" ।

छपरिया—संज्ञा स्त्री (१) दे० "छपरी" । (२) छोटा छप्पर ।

छपरी—संज्ञा स्त्री [हि० छपर] भोषड़ी । मड़ी । उ०—चंदन की लुटकी भली, कड़ा चमूल बनारस । साधुन की छपरी भली, सुते अयाधु को गाँव ।—कवीर ।

छपवाई—संज्ञा स्त्री दे० "छुवाई" ।

छपवाना—क्रि० उ० दे० "छुपाना" ।

छपवैया—संज्ञा पु० [हि० छापना] (१) छापनेवाला । (२) छपानेवाला । (३) मुद्रित करनेवाला । उ०—संगल सदाही करै राम हँ प्रसन्न सदा राम रतिरत्नवली या प्रंग छपवैया वे।—जुगलेश ।

छपही—संज्ञा स्त्री [देग०] सोने वा चाँदी का एक गहना जिसे चित्रा हाथ की उँगलियों में पहनती है ।

छपा—संज्ञा स्त्री [सं० ऋषण] (१) रात्रि । रात उ०—छपन छपा के । रवि ह्व भा के । दंड उतंग उड़ाके । विविध कथा

के बंधे पताके । छुपै जे रवि रथ चांके।—रघुराज । (२) हलदी ।

छपाई—संज्ञा स्त्री [हि० छापना] (१) छापने का काम । मुद्रण । शंकन । (२) छापने का ढंग । (३) छापने की मजूरी ।

छपाकर—संज्ञा पु० [सं० ऋषणकर] (१) चंद्रमा । चांद । (२) कर्पूर । कपूर ।

छपाका—संज्ञा पु० [अ०] (१) पानी पर किसी वस्तु के जोर से पड़ने का शब्द । (२) छौंटा । जोर से उड़ला या फेंका हुआ पानी ।

क्रि० प्र०—मारना ।

छपाना—क्रि० उ० [हि० छापना का प्र०] (१) छापने का काम कराना । (२) चिह्नित कराना । श्रंक्ति कराना । (३) छापेखाने में पुस्तक आदि श्रंक्ति कराना । मुद्रित कराना । (४) शीतला का टीका लगवाना ।

क्रि० सं० दे० "छिपाना" ।

क्रि० सं० [अ० छप छप वा हि० छेपना] जोतमें के लिये खेत को साँचना ।

छपानाभ—संज्ञा पु० दे० "छपानाभ" ।

छपाना—संज्ञा पु० दे० "छिपाना" ।

छपन—वि० [सं० पृथक्पृथक्, प्रा० छपणन, छपण] जो गिनती में पचास और छू है । पचास से छू अधिक ।

संज्ञा पु० (१) पचास और छू की संख्या । (२) इस संख्या का सूचक श्रेक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२६ ।

छुप्य—संज्ञा स्त्री [सं० पृथक्] एक मासिक छुंद जिसमें ६ चरण होते हैं । इस छुंद में पहले रीला के चार पद, फिर उठाना के दो पद होते हैं । लघु गुरु के क्रम से इस छुंद के ७१ भेद होते हैं । उ०—अत्रय विजय नक्षत्र्य धीर बंताल धिंकर । मरुट हरि हर महा हंद् चंदन छु छुंकर । श्वान सिंह मरुट कच्छ केकिल खर कुंजर । मदन मरुट ताटक रोप सारंग पयोधर । शुभकाल कंद वाखण गलभ, भवन अजंगम सर सरस । गणि ममर सु सारस मेरु कहि, भकर अली सिदिहि सरस ।

छुपर—संज्ञा पु० [हि० छेपना] (१) बाँस या लकड़ी की फट्टियों और फूस आदि की धर्या हुई छाजन जो मकान के ऊपर छाई जाती है । छाजन । छान ।

क्रि० प्र०—छाना ।—डालना ।—पड़ना ।—रखना ।

यौ०—छुपरबंद ।

मुहा०—छुपर पर रखना = दूर रखना । अलग रखना । रहने देना । छोड़ देना । चर्चा न करना । जिक्र न करना । उ०—तुम शपथो धड़ी सड़ी छुपर पर रखो, लोयो हमारा खया दो । छुपर पर हूस न होना = अर्थात् निर्भर होना । कंगाल होना । अकिंचन होना । छुपर फाड़कर देना = अना-

थाम देना । विना परिश्रम प्रदान करना । चैंटे देनाएँ अश्रमान देना । घर चैंटे पहुँचना । उ०—जय देना होता है नो ईश्वर छप्पर फाड़ कर देता है । छप्पर रखना = (१) एह-गान रखना । योग्य रखना । निवेशन जगाना । उग्रहृत करना । (२) दोषप्रतिपाद्य करना । दोष जगाना । कर्त्तक जगाना । (३) छेड़ा ताक या गडडा जिसमें धरसाती पानी इकट्ठा रहता है । डायर । पोखर । तलैया ।

छप्परबंद—गंगा पु० [हि० छपर + बन् + क्त०] (१) छप्पर छानेवाला (२) पत्ता के शास पाय बसनेवाला मृक जाति जो अग्रण के राजपूत कुल से उद्भव यतलाती है ।

वि० जिसने घर बना लिया हो । जो बस गया हो । जवा हुआ । आबाद । जैसे, छप्परबंद श्यामी ।

छषा—गंगा धी० दे० "सुवि" ।

छषा—गंगा पु० [दे०] [हि० छष + क्त०] (१) ठोकरा । बला । भाषा । क्षिप्तता । (२) खाँचा ।

छषतपती—गंगा धी० [हि० छष + तप + क्त०] शरीर की मुद्र बनाकर । सुंदरता । सज धज ।

छषरा—गंगा पु० दे० "सुव्या" ।

छषि—गंगा धी० दे० "सुवि" ।

छषीटा—वि० [हि० छष + ईला (श्रवण०)] [हि० छष + ईला] शोभायुक्त । सुहावना । सुंदर । सज धज वा । धाँडा । उ०—छषा छषीले छैल कौ, नवल नेह छळि मारि । पुमति वादति खाह वर, पक्षिरति धरति वतारि ।—विहारी ।

छषु—दक्षिण—गंगा पु० दे० "सुवुदा" ।

छषुदा—गंगा पु० [हि० छष + दुदा] गुबरेले की तरह का एक कीड़ा जिसकी पीठ पर छष काशी छुँदकियाँ होती हैं । यह बहुत विषाल होता है । पहले हैं कि इसका काटा नहीं जाता ।

छषी—गंगा धी० [दे०] पैसा । (दूखल)

छषीस—वि० [हि० छषीस, अन्तःश्रवण] जो गिनती में चौथ और छष है ।

गंगा पु० (१) शीघ्र से छष अधिक की संख्या । (२) इस संख्या का सूचक क्रम जो छष प्रकार लिखा जाता है—२६ ।

छषीसधो—वि० [हि० छषीस + धो (श्रवण०)] जो क्रम में पचीस और छषधो के उपरांत हो । जिसका स्थान दुइवीस पर हो ।

छषीसी—गंगा धी० [हि० छषीस] (१) दुइवीस वस्तुओं का समूह । (२) फलों की बिनी का गैबड़वा जो सुइरीय मार्त वा १३० का होता है ।

छषड—गंगा पु० [हि०] विभूविहोम बालक । यह बालक जियका पिता मर गया हो ।

छष—गंगा धी० [हि०] (१) धुँधुसु आदि के बजने का शब्द । (२) पानी बरसने का शब्द ।

धा०—गंगापुम । गंगा पु० दे० "पमा" ।

छषक—गंगा धी० [हि० छष + क्त०] चाल टाल की बनाकर । टपक । टाटपाट । (कियों के लिये)

छषकना—कि० अ० [हि० छष + क्त०] (१) धुँधुसु आदि ढिला कर छष छष करना । (२) गहन आदि बजाना । गहनों की फनकार करना । ठसक दिखाना । (कियों के लिये) । (३) दे० "छषकना" ।

छषछष—गंगा धी० [अ०] (१) वह शब्द जो चलने में पैर में पहले हुए गहनों के बजने से होता है । तुरुर, पापन, धुँधुसु आदि के बजने का शब्द । उ०—छषछष करि झिनि चलनि झरी पायल दोउ झनी ।—सुकवि । (२) मोह बरसने का शब्द ।

कि० वि० छष छष शब्द के साथ ।

छषछषाना—कि० अ० [अ०] (१) छष छष शब्द करना । (२) छष छष शब्द करके चलना ।

छषनारी—कि० ग० [सं० चामन, अ० छषन] चप्पा करना । उ०—छषिहँदि सज्जन मोरि छिटाई । सुनिहँदि बाल बचन मन लाई ।—तुलसी ।

छषा—गंगा धी० दे० "पमा" ।

छषाछष—गंगा धी० [अ०] (१) गहनों के बजने का शब्द । (२) पानी बरसने का शब्द ।

कि० वि० लगातार छष छष शब्द के साथ, जैसे छषाछष पानी बरसना ।

छषापन—गंगा पु० दे० "चमापन" ।

छषापान—वि० दे० "चमापान" ।

छषाशी—गंगा धी० [हि० छष + शी] छष गाने का वाद ।

छषासी—गंगा धी० [हि० छष + सी] वह धाद जो किमी की उरु से छष गीतों पर उसके संवेची करते हैं ।

छषीच्छा—गंगा धी० [सं० सम्य्या] (१) सम्य्या । (२) ह्यारा । संकेत ।

छषुस—गंगा धी० [हि० छष + सु] पशुन । कर्त्तिस्येय ।

छष—गंगा पु० [सं० छष] नाय । विनाय ।

छषीष—दे० "छष" । उ०—जेहि रिपु छष मोह रवेनि छषाक । भावी यम न जान कहु साक ।—तुलसी ।

छष—गंगा पु० दे० "दुल" ।

छषीष—दे० "छष" ।

छषी धी० [अ०] धरौ या कणों के वेग में निकलन वा गिरने का शब्द । उ०—छष छष कंकड़ियों गिर रही हैं ।

धा०—छष छष ।

छषई—गंगा धी० [दे०] मृक तरह का उग्र ।

छषरकना—कि० अ० [अ०] (१) छष छष करके छिड़कना वा छिपाना । (२) किमी चढ़ाई का कभी तल को चपल करने और कभी उन्नत हुए वेग से किमी मोह जाना । कि० अ० दे० "दुलकना" ।

छरछंदी—संज्ञा पुं० दे० "छलछंद" ।

छरछंदी—वि० दे० "छलछंदी" ।

छरछर—संज्ञा पुं० [हि० छर] (१) कयों वा छरों के वेग से निकलने और दूसरी वस्तुओं पर गिरने का शब्द । उ०—
तिहि फिर मंडल बीच परी गोली भर भर भर । तहें
फुटिय कर गौर श्रोन छुटिय छत छर छर ।—सूदन ।
(२) पतली लचीली छड़ी के लगने का शब्द । रत सट ।
उ०—काहे को हरि हतना आश्यों । सुन री मैया मेरो भैया
कितना गोस्त नारणो । जय रत नों कर गाड़ो बांधे छर छर
मारी सांटी ।—सूर ।

छरछराना—क्रि० अ० [सं० नार, हि० छर] (१) नमक या चार
थादि लगने से शरीर के घाव या छिले हुए स्थान में पीड़ा
होना । जैसे, हाथ छरछरा रहा है । (२) चार, नमक थादि
का शरीर के घाव या कटे हुए स्थान पर लगा कर पीटा
ज्यास करना । उ०—नमक घाव पर छरछराराता है ।
क्रि० अ० [अ० छर छर] कयों को वेग से फिरी वस्तु पर
गिराना वा बिलराना ।

छरछराहट—संज्ञा स्त्री० [हि० छरछराना] (१) छरों वा कयों
के वेगपूर्वक एक साथ निकलने और गिरने का भाव ।
(२) घाव में नमक थादि लगाने से श्लथस पीड़ा ।

छरना—क्रि० अ० [सं० नरण, प्रा० छरय] (१) चूना । वहना ।
टपकना । भलना । उ०—ऊँची थटा घटा ह्व राजहि छरति
छटा छिति छेरि ।—रघुराज ।

संशो० क्रि०—जाना ।

(२) चकचकाना । चुचुपाना । उ०—विधुरी अलक,
मिथिल कटि डोरी नटाछत दरिद्र मालगामिनी ।—सूर ।

(३) छूटना । दूर होना । न रह जाना । उ०—अथ हरि
मुरली अथर धरत । खग मोहरे, मृगयूष भुलाने, निरवि
मदन छवि छरत ।—सूर ।

क्रि० अ० [हि० छरना] भूत प्रेत थादि द्वारा मोहित
होना ।

संशो० क्रि०—जाना ।

† क्रि० सं० [हि० छरना] छलना । धोखा देना । ठगना ।
मोहित करना । मुलाना । उ०—तू काँवरु परावस टोना ।
भूला धोग छर तोहि सेना ।—जायसी ।

क्रि० सं० दे० "छड़ना" ।

छरपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ऐर + पूर] (१) छरीला । (२) एक
पुष्टिया जिसमें छरपुरी थादि सुगंधित द्रव्य होने हैं और जो
विवाहों में चढ़ाए जाते हैं ।

छरभार—संज्ञा पुं० [सं० सार + भार] (१) प्रबंध वा कार्य
का बोझ । कार्यभार । उ०—(क) देस फोल परिजन
परिवारु गुरु पद रगहि लाग छर भारु ।—गुलसी । (ख)

लखि अथने निर सय छर भारु । कहि न सकहि कछु करहि
विचारु ।—गुलसी । (२) संकट । यत्न ।

छरहरा—वि० [हि० छर + हरा (प्रय०)] [सं० हरहरि,
संज्ञा छरहरापन] (१) धीपांग । सुडक । हलका । जो
मोटा वा भटा न हो । जैसे, छरहरा यदन । उ०—राधिछा
मंग मिलि गोप नासी । चलीं हिलि मिलि सवै रहसि विहै ।
मनि नहनि परस्पर कौतुहल करत भारी ।.....
युवति थानेद भरी भईं जुनि कै खरी नईं छरहरि उदि
बैग घेरी ।—सूर । (२) शुभ । चालाक । तेज । फुरतीला ।
† वि० [हि० छर + हरा (प्रय०)] बहुरूपिया ।

छरहरापन—संज्ञा पुं० [हि० छरहरा + पन] (१) खोपांगला ।
सुडकपन । (२) चुली । फुरती ।

छरा—संज्ञा पुं० [सं० छर, हि० छर] (१) छड़ा । (२) लर ।
लड़ी । उ०—गुंजहरा के छरा वर में पट पीत पितंबर की
छवि न्यारी । (३) रस्ती । उ०—दूटे छरा बहरादिक गोचन
जो धन है सो सय धन दुँहा ।—रसपान । (४) नारा ।
हजारबंद । नीची । उ०—(क) कहे पदमाकर नवीन अघनीची
सुली अथ सुले छहरि छरा के छोर छलकै ।—पद्माकर ।
(ख) तहें प्रीतम दौट भए रस के यस हाथ चलावत जोरी
करें । गिरि जच्छ-वपून के वज्र कछु खिंचि, छोर छराने की
ढोरी परें ।—लक्ष्मणसिंह ।

छरिदा—वि० दे० "छरीदा" ।

छरिया—संज्ञा पुं० [हि० छरि] छड़िया । छड़ी बरदार । चोखदार ।

छरिला—संज्ञा पुं० दे० "छरीला" ।

छरी—संज्ञा स्त्री० दे० "छड़ी" ।

वि० (१) दे० "छड़ी" । (२) दे० "छली" ।

छरीदा—वि० [अ० जरीः] (१) धाकेला । तने तनहा । बिना किसी
संगी सारी का । (२) बिना कोई बोझ वा असवाव लिए ।
(यात्रा के संबंध में इस शब्द का प्रयोग अधिक होता है) ।

छरीदार—वि० संज्ञा पुं० दे० "छड़ीदार" ।

छरीला—संज्ञा पुं० [सं० श्रेय] काँड़ी की तरह का एक पौधा जिसमें
केसर वा फूल नहीं लगते । यह वास्तव में सूमी के समान
परागभङ्गी (Parasite) पौधा है जो भिन्न भिन्न प्रकार
का कार्य पर जम कर जन्हीं के साथ मिल कर अपनी वृद्धि
करता है । यह स्त्रीध्वारों जमीन तथा कड़ी से कड़ी पत्तियों
पर उमड़े हुए चकत्तों वा पाल के लच्छों के रूप में फैलता
है और कुछ भूरापन लिए होता है । यह पौधा अधिक से
अधिक गरमी या सखी सह सकता है, यहाँ तक कि जहाँ
और कोई पनस्पति नहीं हो सकती यहाँ भी यह पाया जाता
है । सूखने पर इसमें से एक प्रकार की मीठी सुगंध आती
है जिसके कारण यह मसालों में पड़ता है । औषध में भी
इसका प्रयोग होता है । पैयक में यह चरपरा, कड़ुआ, कफ

और बात-नाशक और गुण्य वा शत्रु को दूर करनेवाला माना जाता है तथा खात्र, कोड़, पथरी आदि रोगों में दिया जाता है। इसे पथरकूल और बुद्धना भी कहते हैं। हिमालय पर यह चट्टानें, पेड़ों आदि पर बहुत दिखाई देता है।

पर्या०—सौलेय । सौलाह्य । बुद्ध । शिलापुष्प । गिरिपुष्पक । शिलासन । सौजन । शिलेय । कालानुसार्य । गृह । पलिन । जीर्थे । शिलाद्वन्द्व ।

छरोरा—संज्ञा पुं० [सं० छुर, पुं० हिं० छिरोरा = छलकना] खरोच । खरीर में फटि वा और किसी सुकीली वस्तु के चुभ कर कुछ दूर तक खिँच जाने के कारण पड़ी हुई खरीर । उ०—पैड़ों छरोर जो पातन को फटिदे पटकें हूँ तो हीन न रहैं ।

छर्दन—भग्य पुं० [सं०] घनन । कैं करना ।

छर्दि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घनन । कैं । उलटी । (२) एक रोग जिसमें रोगी के मुँह से पानी छूटता है और उसे ममली धाती है और घनन होता है। वैद्यक में इस रोग के दो भेद माने गये हैं—एक साधारण जो कड़ुहै, नमकीन, पानीवा या तेल की चीजें, अधिक खाने तथा अधिक और अकाल भोजन करने से हो जाता है। अन्य रोगों के समान इसके भी चार भेद हैं—वातज, पित्तज, श्लेष्मज और तिद्योज । दूसरा धातुज जो अर्थात् धम, भय, उद्वेग, अजीर्ण आदि के कारण से उत्पन्न होता है। वैद्यक में यह पांच प्रकार का माना गया है—धीमत्स्य, दौर्द्धज, श्यामज, असाभ्यज और कृमिज । इस रोग से कास, श्वास, ज्वर आदि भी हो जाते हैं ।

पर्या०—प्रच्छर्दि का । छुर्दं । घनन । घमि । छुर्दि का । घति । उदार । छुर्दन । उष्कामिका । संज्ञा स्त्री० [सं० छर्दि] (१) घर । (२) सेज । (३) उदार । घनन ।

छर्दिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घनन । (२) विष्णुकाता ।

छर्दिकारिजु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी श्लायकी ।

छर्दिप्र—संज्ञा पुं० [सं०] महाविष । पकाइन ।

छरी—संज्ञा पुं० [हिं० छरना, करना वा वस्तु उखरना] (१) छोटी कंकड़ । कंकड़ आदि का छोटा टुकड़ा । (२) लोहे वा सीसे के छोटे छोटे टुकड़ों का समूह जो यंत्रकर्म में भर कर चलाया जाता है । (३) वेग से फेंके हुए पानी के छोटे छोटे छोटों वा कणों का समूह ।

छलक, छल्लोगी—संज्ञा स्त्री० दे० "दुल्लोग" ।

छलक—भग्य पुं० [सं०] (१) धार्मिक रूप के छिपाने का कार्य जिससे कोई वस्तु वा कोई बात और की और देख पड़े। यह स्पष्टार जो दूसरे को धोखा देने वा धलाने के लिये किया जाता है । (२) व्याज । मिस । यदाना । (३) धूर्तता । बंचना । दगपना ।

यो०—छल कपट । छल छिद्र ।

(४) कपट । दंभ । (५) बुद्ध के नियम के विरुद्ध शत्रु पर शत्रु-प्रहार । (६) न्याय शास्त्र के सोलह पदार्थों में से चौदहवां पदार्थ जिसके द्वारा प्रतिवादी वक्ता की बात का वाक्य के श्रय-विकल्प द्वारा विघात वा खंडन करता है। यह तीन प्रकार का माना गया है—वाक्यद्वल, सामान्यद्वल और उपचारद्वल—।

जिसमें साधारणतः कहे हुए किसी वाक्य का वक्ता के अभि-प्राय में भिन्न श्रय कल्पित किया जाता है वह वाक्यद्वल कहलाता है, जैसे किसी ने कहा कि "यह बालक नव कंचल लिए है"। इस पर प्रतिवादी वा श्लेषवादी नव शब्द का वक्ता के अभिमत श्रय से भिन्न श्रय कल्पित करके खंडन करता है और कहता है कि "बालक नव कंचल कहाँ लिए है, उसके पास तो एक ही है ।" जिसमें संभावित श्रय का अति सामान्य के वेग से अस्मभूत श्रय कल्पित किया जाय वह सामान्य द्वल है, जैसे किसी ने कहा कि "ब्राह्मण विद्या-चरय संपन्न होता है। इस पर श्लेषवादी कहना है "हां विद्याचरय संपन्न होना तो ब्राह्मण का गुण ही है पर यदि यह गुण ब्राह्मण का है तो ब्राह्मण ही विद्याचरयसंपन्न होगा क्योंकि वह भी ब्राह्मण ही है ।" धर्मविकल्प (सुहा-विर, अलंकार, लक्षण, अ्यजना आदि) द्वारा सूचित अभि-प्रेत श्रय का जहाँ शब्दों के मूल श्रय आदि को लेकर तिपेय किया जाय वहाँ उपचारद्वल होता है, जैसे, किसी ने कहा—'सारा घर गया है', इस पर प्रतिवादी कहता है कि "पा कैंसे जायगा ? घर तो बड़ है ।"

संज्ञा पुं० [सं०] जल के छोटों के गिरने का शब्द । पानी की धार जो पथिकों के ऊपर से पानी पिलाने में बँध जाती है ।

मुहा०—द्वल पिधाना = फटोरे यथा वज्र कर गद्द चलने पाँषकों के पानों पिधाना ।

छलक—भग्य स्त्री० [हिं० छलकना] छलकने का भाव वा क्रिया । संज्ञा पुं० [सं०] छल करनेवाला ।

छलकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० छलकना] (१) छलकने का भाव । पानी आदि की उद्वृज । पानी या और किसी पतले पदार्थ के हिलने होजने के कारण उद्वल कर बरतन से बाहर आने का भाव । (२) उदार । स्फुरण । उ०—छुवि छलकन भरी पीक पलकन लौंहीं श्रम जलकन अघिकाने च्यै ।—पद्मकार ।

छलकना—किं० थ० [सं०] (१) पानी वा और किसी पतली चीज का हिलने होजने आदि के कारण बरतन से उद्वल कर बाहर गिरना । आघात के कारण पानी आदि का बरतन से ऊपर उठ कर बाहर आना । (इयं शब्द का प्रयोग पात्र और पात्र में भरे हुए जल आदि दोनों के लिये होता है, जैसे, धपजल गगी छलकत जाय ।) (२) उमड़ना । बाहर प्रकट होना ।

उद्धारित होना । उ०—(क) मनुज उमनि थैग थैग छवि
छलकं ।—तुलसी ।—(ख) मोक्षल में गोपिन गोविंद संग
संजी फाग राति भरि, प्रात समय गैसी छवि छलकं ।—
पदमाकर ।

छलकाना—कि० सं० [हि० छलकना] किसी पात्र में गये जल
आदि को हिला हुआ कर बाहर उछालना ।

छलछंद—संज्ञा पु० [हि० छल + छंद] [वि० छलछंद] कपट का
जाल । कपट का व्यवहार । चालबाजी । धूर्तता ।

छलछंदी—वि० [हि० छलछंद] कपटी । धूर्त । चालबाज ।
धोखेबाज ।

छलछलाना—कि० अ० [यत्तु०] छल छल शब्द करना । पानी
आदि थोड़ा थोड़ा बरके गिराना निमित्त छल छल शब्द
उपन्य हो ।

छलछिद्र—संज्ञा पु० [सं०] कपट व्यवहार । धूर्तता । धोखेबाजी ।
उ०—मेहिं सपनेहु छलछिद्र न भाया ।—तुलसी ।

छलछिद्रो—संज्ञा पु० [हि० छलछिद्र] धोखेबाज । छली । कपटी ।

छलन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० छलन] छल करने का कार्य ।

छलना—कि० म० [सं० छल] किसी को धोखा देना । भुलावे
में डालना । दगा देना । प्रतारित करना ।

छला छी० [सं०] धोखा । छल । प्रतारणा ।

छलनी—संज्ञा स्त्री० [हि० छलना] १। म० चण्ड] महीन कपड़े या
छेददार चमड़े से मढ़ा हुआ एक मैदरेदार परतन निमित्त
घोकर, भूसी आदि झलक करने के लिये आटा छानने हैं ।
आटा छालने का यंत्रण । छलनी ।

मुहा०—किसी वस्तु को छलनी कर डालना वा देना = (१)

किसी वस्तु में बहुत से छेद कर डालना । (२) किसी वस्तु को

वस्तुसे स्थानो पर फाड़ कर बेकार कर डालना । (किसी वस्तु का)

छलनी हो जाना = (१) किसी वस्तु में बहुत से छेद होना ।

(२) किसी वस्तु का स्थान स्थान पर फट कर बेकार हो जाना ।

छलनी में डाल छात्र में उठाना = यात का बरतण करना ।

घोड़ी की जुगाई या दौग को बहुत बढ़ा कर कछना । घोड़ी की

बांध को ढेकर चारों ओर बढ़ा बढ़ा कर कहते किना । (गि०)

कलोजा छलनी होना = (१) दुःख वा संकष्ट सहने सहने

दृढ़ता जवरं हो जाना । निरंतर कष्ट में जी उब जाना । (२)

जी दुखानेवाली बात मुनते मुनते भयान्न जाना ।

छलछाईकी—वि० स्त्री० [सं० छल + छाई (अर्थ०)] छपटी । कपटी ।

चालबाज । धूर्त । उ०—ये छलछाई लुगाईं सयं निमि छौम

निवाज हमें दूहती हैं ।—निवाज ।

छला छौ० छल । कपट ।

छलांग—संज्ञा स्त्री० [हि० उल्लङ्घन + ङ] परों को एक बारगी दूर

तरु फेंक कर वेग के साथ धामो बड़ने का कार्य । सुदान ।

फलांग । चौकड़ी ।

कि० प्र०—भरना ।—मारना ।

छलांगना—कि० अ० [हि० उल्लङ्घन] चौकड़ी भरना ।
धामो घटाना । फलांग मारना ।

छला०—संज्ञा पु० [सं० छला = कला] छला । उ० गली में

गठना । उ०—छला परेविनि हाथ सें दूज कति

विद्यानि । पिपदिं द्वाययो लसि विनवि निपपुस

कानि ।—विद्यापी ।

छला स्त्री० [सं० छला] धामा । चमक ।

फलाक ।

छलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० छल + चोई (अर्थ०)] छल का

कपट । उ०—धंदु के पूत कपट सान सुनोपण

छेरी छलाई ।—तुलसी ।

छलाया—कि० अ० [हि० छलाया का प्रे०] धोखे में डक

धोखा दिखाना । प्रतारित करना । उ०—हुमुदि

वेरिनि नदिं धाईं । मोहि मयि वोकि छलायि वा

जाययि ।

छलाया—संज्ञा पु० [हि० छल] (१) भूत प्रेत आदि की

एक बार दिखाई पड़ कर फिर गट से भरवय हो जा

माणावस्थ ।

मुहा०—छलाया सा = बहुत चंचल । उ०—बर मैं

छलकि छलाया सी ।—हरिश्चंद्र ।

(२) शयिया पैनाल । उल्लास प्रेन । कठ प्रणय वा

द्वन्द्वनेत्रोंके किनारे वा जंगलों में रह रह कर

है थीर गायब हो जाता है ।

मुहा०—छलावा खेलना = शयिया खेलन वा शय उब

पडना । शर उभर छलकिना हुआ दिखई देना ।

(३) चपल । चंचल । शोष । (४) ईदगम । जद ।

छलिक—संज्ञा पु० [सं०] नाटक शास्त्र में रूपक वा एक

छलित—वि० [सं०] छला हुआ । जिसे धोना दिख

प्रतारित । चंचल ।

छलितक—संज्ञा पु० [सं०] नाटक का एक भेद ।

छलिया—वि० [सं० छल + हि० ह्या (अर्थ०)] छल

कपटी । धोखेबाज । उ०—(क) यह छलिया

सोनें । गये पराय कहीं सति सोसो ।—छला

छलिया ने सताय के गतास पडयो है यदि न

नों ।—हरिश्चंद्र ।

छली—वि० [सं० छलिन] छल करनेवाला । कपटी ।

छलीरौ—संज्ञा स्त्री० [हि० छला] एक रोग

नालून के भीतर छला पड़ जाना है औ

कभी कभी नागून पर भी जाता है ।

कि यह रोग उस मिट्टी के लगने से

का गद गिरा रहता है ।

छात्रा-संज्ञा पुं० [सं० छात्र = वत्स] (१) वह सादी शैली जो धनु के तार के टुकड़े को मोड़ कर बनाई जाती है। सुंदरी। (यह हाम पैर की डँगलियों में पहनी जाती है।)
(२) शैली की तरह की कोई मंडलाकार वस्तु। कढ़ा। कुंडली। (३) नौके की बंदिश में वे गोल चिह्न जो रेशम या तार खपेट कर बनाए जाते हैं। (४) वह पक्षी पतली दीवार जो ऊपर से दिखाने वा रक्षा के लिये पक्षी दीवार से लगा कर बनाई गई हो। (५) तेल की घुँद जो नीच आदि के अर्क की बोलक में ऊपर से छललिये डाल दिए जाते हैं जिसमें अर्क-विगड़ने न पावे। (६) एक प्रकार का पंजाबी गीत या सुकबंदी जिसे गा गा कर हिंजड़े नील मांगते हैं।

छात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छात्र। (२) छात्र। (३) संतति। (४) एक प्रकार का फूल।

छात्रेदार-वि० [हिं० छात्र + फा० दार] (१) जिसमें छात्रे लगे हों। (२) जिसमें मंडलाकार चिह्न वा घेरे लगे हों।

छात्रना-संज्ञा पुं० [सं० छात्र, शब्दक] [को० टवनी] (१) शब्दा। ३०—महर्षि प्रमाद अति दिव्य देह परि माने त्रिभुवन-धृति ध्रुवनी।—तुलसी। (२) सूत्र का बधा।

छात्रा-संज्ञा पुं० [सं० छात्रक] बहुधा। किसी पशु का शब्दा। ३०—(क) मैं रत्नचंहरि चंहरि के विद्वले अरि कुंजर छुंज धुवा से।—तुलसी। (ख) हय टंकि धर्मकि उगढ़ रनं। विमि सिंह धुवा कड़ि सेन वनं।—सूदन।

छात्रा पुं० [दे०] सुंदरी। ३०—(क) छात्रा की सुंदे न जाति शुभ साधु माधुरी।—वंशव। (ख) ऐसे सुराज दुहूँ नय के सथ ही को लगे अथ चौबैदू स्मृत। लूटन शगरी प्रभा कड़ि कै बड़ि केम दशान सो लागे शरुम्न।—रसकुसुमकर।

छात्रा-संज्ञा स्त्री० [हिं० छात्रा, छात्रा] (१) छात्रे का काम (२) छात्रे की मजदूरी।

छात्राना-वि० सं० [हिं० छात्रा का भं०] छात्रे का काम कराना।

छात्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० छात्रा] (१) शोभा। सौंदर्य। (२) कर्ति। प्रभा। धमक।

छात्रा स्त्री० [अ० शंबल] चित्र। फोटो। प्रतिरुति।

छात्राली-संज्ञा स्त्री० [हिं० छात्र + बला] छोटी जठवाली जो पथर आदि बठाने के काम में आती है।

छात्रेया-संज्ञा पुं० [हिं० छात्रा] छात्रेवाला। जो धूपर आदि छात्रे।

छात्री-वि० दे० “छात्री”।

छात्री-संज्ञा स्त्री० [दे०] वह चिकिया (मायः कस्तूर) जो अपने अर्ध से बड़ कर दूसरे के अर्ध पर लगे रहें और फिर कुछ दिनों में वहाँ की कुछ चिकियों को बहका कर अपने अर्ध पर ले आवे। कुटा। सुला।

छात्रना-वि० अ० [सं० छात्र, प्रा० छात्र, छात्र] (१) छितराना।

छात्रना-वि० अ० [सं० छात्र, प्रा० छात्र, छात्र] (१) छितराना।

छात्रना-वि० अ० [सं० छात्र, प्रा० छात्र, छात्र] (१) छितराना।

छात्रना-वि० अ० [सं० छात्र, प्रा० छात्र, छात्र] (१) छितराना।

छात्रना-वि० अ० [सं० छात्र, प्रा० छात्र, छात्र] (१) छितराना।

छात्रना-वि० अ० [सं० छात्र, प्रा० छात्र, छात्र] (१) छितराना।

छात्रना-वि० अ० [सं० छात्र, प्रा० छात्र, छात्र] (१) छितराना।

छात्रना-वि० अ० [सं० छात्र, प्रा० छात्र, छात्र] (१) छितराना।

छितराना। छितराना। फैलाना। ३०—(क) छुपि केसरि की छहरै तन से कड़ि बाहर से तन चोलिन पै।—सुंदरी सवेला। (ख) जनु हंडु उयो अवननी तल तें चहुँ ओर द्युता धुपि की छहरि।—सुंदरीसर्वल।

छहरा-वि० [हिं० छा + हरा (पल०)] (१) छ परत का। छ पल्लेवाला। (२) उपज का सुर्त (भाग)।

छहराना-वि० अ० [सं० छात्र] छितराना। छितराना। चारों ओर फैलाना। ३०—(क) कंबुकि चूर चूर भइ तानी। हूटे हार मोति छहरानी।—जायसी। (ख) नीरज तें कड़ि नीर नदी छुपि क्षीमत क्षीरधि पै छहरानी। (ग) जोहि परिरे छगुनी अरी, छिगुनी छुपि छहराहि।

छि० सं० छितराना। छितराना। फैलाना। ३०—सीध लै संग सखी सुसुखी छुपि फोटि छपाकर की छहरावति।—देव।

छि० सं० [सं० छात्र] छार करना। भस्म करना। ३०—न्योछावर कै तन छहरावहुँ। छार होहुँ संग बहुरि न प्रावहुँ।—जायसी।

छहरा-वि० [हिं० छहरा] [को० छरही] (१) छहरा। हलका। (२) जुरतीला। खुल।

छहरिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँड़ी] छाँड़। छाया। ३०—द्वारय काशव्या चागे खसत सुमग की छहरिया। माने चारि हंस सरवर से बंटे आहूँ सहरिया।—सूर।

छाँ-संज्ञा स्त्री० दे० “छाँड़”।

छाँक-संज्ञा पुं० [फा० चाक] संघ। टुकड़ा। जैसे, बदली का छाँक। (सं०)।

छाँगना-वि० सं० [सं० छाँग + कण] काटना। छूटना। विशेष—हंस क्रिया का प्रयोग माय कृष्णाक्षी आदि से पैर की बाल टहनी आदि काटने के अर्थ में होता है। प्यसी हिंदी में “छिनगाना” कहते हैं।

छाँगुर-संज्ञा पुं० [हिं० छा + भंगुर] छ डँगलीवाला। बंद मनसुब जिसके पंजे में छ डँगलियाँ हों।

छाँट-संज्ञा स्त्री० दे० “छाँड़”।

छाँट-संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] (१) छाँटने की क्रिया। छिन करने की क्रिया। काटने वा कतरने की क्रिया।

था०—काट छाँट।

(२) काटने वा कतरने का ढँग।

था०—काट छाँट।

(३) बेकाम टुकड़े जो किसी वस्तु के विशेष रूप से कटने पर निकलते हैं। कतरन। (४) भूसी वा कना जो कनाज छाँटने पर निकलता है। (५) कलाग की हुई निकम्मी वस्तु। संज्ञा स्त्री० [सं० छाँट, प्रा० छाँट] यवन। ऊँ।

छि० प्र०—करना।—होना।

छि० प्र०—करना।—होना।

छि० प्र०—करना।—होना।

छि० प्र०—करना।—होना।

छि० प्र०—करना।—होना।

छि० प्र०—करना।—होना।

छि० प्र०—करना।—होना।

छि० प्र०—करना।—होना।

छि० प्र०—करना।—होना।

छि० प्र०—करना।—होना।

छि० प्र०—करना।—होना।

छि० प्र०—करना।—होना।

छाटन-संज्ञा स्त्री० [हि० छटना] (१) वह वस्तु जो छांट दी जाय। कतरन। (२) अलग की हुई निकम्मी वस्तु।

छाटना-क्रि० सं० [सं० खनन] (१) किसी पदार्थ से उसके किसी अंश को काट कर अलग करना। छिन्न करना। काट कर अलग करना। जैसे, कलम छाटना, पेड़ छाटना, गिर के बाल छाटना।

संयोग क्रि०—खालना।—देना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग धना और अंगी दोनों के लिये होता है, जैसे, खाल छाटना, पेड़ छाटना।

(२) किसी वस्तु को किसी विशेष आकार में खाने के लिये काटना या कतरना। जैसे, कपड़ा छाटना। (दरजी)

संयोग क्रि०—देना।—लेना।

(३) अनाज में से कन या भूसी वृत् फटकार कर अलग करना। अनाज को साफ करने के लिये चूटना फटकना। जैसे चावल छाटना, तिल छाटना।

संयोग क्रि०—खालना।—देना।

(४) बहुत सी वस्तुओं में से कुछ को प्रयोगशील या निकम्मी समझ कर अलग करना। खाने के लिये चुनना या निकालने के लिये पृथक् करना।

संयोग क्रि०—देना।—लेना।

विशेष—चुनने के अर्थ में संयोग क्रि०—'लेना' का प्रयोग होता है और निकालने के अर्थ में संयोग क्रि०—'देना' का प्रयोग होता है। जैसे, (क) हम अच्छे अच्छे आम छांट लेंगे। (ख) हम सड़े आम छांट देंगे। पर जहाँ दूसरे के द्वारा छांटने का काम करना होता है वहाँ संयोग क्रि०—'देना' का प्रयोग चुनने वा प्रहण करने के अर्थ में भी होता है, जैसे, मेरे लिये अच्छे अच्छे आम छांट दे।

(२) गंदी या उरी वस्तु निकालना। दूर करना। हटाना।

उ०—(क) यह दवा खूब कफ छांटती है। (ख) यह साजुन खूब मूल छांटता है। (४) साफ करना। गंदी या निकम्मी वस्तुओं को निकाल कर शुद्ध करना। जैसे, कुर्छा छाटना।

उ०—उस दवा ने खूब पेट छांटा। (७) किसी वस्तु का कुछ अंश निकाल कर उसे छोटा या संक्षिप्त करना। (८) गड़ गड़ कर धाँसे करना। हिंदी की चिंड़ी निकालना। जैसे, कानून छाटना, धाँसे छाटना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता कुछ शब्दों के साथ ही होता है।

(९) अलग रखना। दूर रखना। समिलित न करना।

उ०—तुम समय पर हमें इसी तरह छांट दिया करते हो।

छाड़ चिह्नो—संज्ञा स्त्री० [हि० छटना + चिह्न] यह पत्र वा परवाना जिसके देल कर इसके रखनेवाले व्यक्ति को कोई रोक न सके। शवदा।

छाड़ना—क्रि० सं० [सं० छनन, प्रा० छनन] छोड़ना। श्यागना।

उ०—उस दीप भुज बग दस कीन्हें। लेह लेह सूँ छुँ छुँ सब दीन्हें।—तुलसी।

छाँद—संज्ञा स्त्री० [छद=बंधन] (१) एक छोटी रस्ती जिससे घोड़े गद्दे आदि के दो पैरों को एक दूसरे से सटा कर बांध देने हैं जिसमें वे दूर तक भाग न सकें बल्कि धूद धूद कर इधर उधर चरते हैं। (२) यह रस्ती जिससे शहीर गाय दुहते समय चढ़ते को गाय के पैर में बांध देते हैं। मोहर।

छाँदना—क्रि० सं० [सं० छनन] (१) रस्ती आदि से बांधना। जकड़ना। कसना।

धाँ०—बांधना छाँदना। उ०—असथाय बांध छाँद कर रख दो।

(२) घोड़े या गद्दे के पिछले पैरों को एक दूसरे से सटा कर बांध देना जिसमें वह दूर तक भाग न सके, धास ही पास चरता रहे। (३) किसी के पैरों को दोनों हाथों से जकड़ कर बैठ जाना और उसे जाने न देना। उ०—वह छी अपने स्वामी का पैर छाँद कर बैठ गई और रोने लगी।

मुहा०—पैर छाँदना = जाने से रोकना। रोकना।

छाँदना-वि० [सं०] (१) वेदज्ञ। वेदपाठी। (२) वेद संवेधी। (३) रूढ़। (४) मूर्ख।

छाँदा—संज्ञा पुं० [हि० छटना] हिस्सा। बखरा। साग।

संज्ञा पुं० [हि० छनना] उत्तम भोजन। पकवान।

क्रि० प्र०—उड़ाना।

छाँदोग्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद का एक ब्राह्मण जिसके प्रथम दो भागों में विवाह आदि संस्कारों का वर्णन है और अंतिम आठ प्रपाठों में उपनिषद् है। इस पर स्वामी शंकराचार्य का भाष्य है। (२) छाँदोग्य ब्राह्मण का उपनिषद्।

प्रथम प्रपाठ (ब्राह्मण के तृतीय) में १३ खंड हैं जिनमें प्रायः शोऽथ का ही वर्णन है। दूसरे में २४ खंड हैं जिनमें यज्ञों की विधि और अंगों के गायन की शिक्षा यज्ञ विस्तार से है। तीसरे प्रपाठक के १६ खंड हैं जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति आदि का वर्णन तथा ब्रह्म-विद्या का सूक्ष्म विचार है। त्रिकाल संध्या और सूर्य के जप आदि का भी विवरण है। चौथे प्रपाठक में १७ खंड हैं जिनमें सत्यकाम जाबालि के प्रति उपदेश है, यज्ञों की विधियाँ बताई गई हैं और शक्य यज्ञ साम के शूः भुवः स्वः यथाक्रम तीन देवता मान कर तप के विधान का प्रतिपादन है। पाँचवें प्रपाठक के २४ खंड हैं। इसी में प्राण और इंद्रियों का वर्णन है और गाथा द्वारा यह बतलाया गया है कि अभिहोत्र से सृष्टि की वृद्धि होती है, उसी से मेघ होता है, मेघ से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है, अन्न से रस होता है और रस से संतान आदि की वृद्धि होती है। छठे प्रपाठक में १६ खंड हैं जिनमें बालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को सृष्टि की

जपति आदि का वर्णन करके कहा है कि "हे स्वतन्त्रे तु । वृ ही मय्य है" । इस प्रपाठक में वेदांत का महावाक्य "तत्त्वमसि" कई बार आया है । सातवें प्रपाठक में, जिसमें २६ श्लोक हैं, सनत्कुमारों ने मारद जी का शरीर देख करके ब्रह्म विद्या का उपदेश किया है । मारद जी ने कहा है कि मैंने वेद, इतिहास, पुराण, शक्तिविद्या, वैश्वविद्या, तिथिविद्या धारोत्पास्य विद्या, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, अत्र विद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पवेदजन-विद्या, इत्यादि बहुत सी विद्याएँ सीसी हैं । इन विद्याओं से श्रान कल लोग निश्च निश्च धर्मिप्राय निकालते हैं । आठवें प्रपाठक में ब्रह्म-विद्या का स्पष्टता और विह्वार के साथ उपदेश देकर कहा गया है कि महाज्ञान के परधाय जन्म नहीं होता ।

छाँव-संज्ञा स्त्री० दे० "छाँव" ।

छाँवड़ा-संज्ञा पुं० [सं० घनक, हिं० लीना] [सं० लोन्दी लोदी]

(१) जानवर का बच्चा । किसी पशु का छोटा बच्चा । उ०— धरिये न पाँव चलि जनि राधे चंद्रमुखी वारीं गति मंद पै गयंदपति छाँवड़े ।—देव । (२) छोटा बच्चा । शालक ।

छाँस-संज्ञा स्त्री० [हिं० छानना] (१) धूसरी या कल जो धनज धरने से निकलता है । (२) धूँड़ा भरदस्त ।

छाँद-संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] (१) छाया । वह स्थान जहाँ आँद या रोक के कारण धूप या चाँदनी न पड़ती हो । जैसे, पेड़ की छाँद । उ०—हरखिल भवे नैदलाल पैठि तरु छाँद में ।—सूर ।

मुह्रा-संज्ञा सं० देना = छोट में देना । छिपना । उ०—पंच अति कठिन पचिक कोम संग माहि तेज भए तारागन छाँद भयो रवि है ।

(२) ऐसा स्थान जिसके ऊपर मोह आदि रोकने के लिये कोई पस्तु हो । ऊपर से आगृत या छाया हुआ स्थान । (३) शरण । संरक्षा । बचाव या निवृद्धि का स्थान । उ०—अब नो मुह्राही छाँद में था गएँ हो बाधे सो करो ।

धाँ-संज्ञा सं० देना ।

(१) पदार्थों का द्वाधारूप आकार जो वनके पिंडों पर प्रकाश करने के कारण धूप, चाँदनी या प्रकाश में दिखाई पड़ता है । परछाँद । उ०—धाँगल में आँद पलुताई टाडी देखली में, छाँद देखै आपनी और राह देखै पिय की ।

मुह्रा-संज्ञा सं० देना = पास न फटकने देना । निकट तक न आने देना । छाँद बचाना = दूर दूर रहना । पास न जाना । अत्रय रहना । छाँद छूना = पास जाना । पास फटकना । उ०—मुँह माही जगी अऊ नाही मुपारक, छाँदों छुए धरकें उड़लें ।—सुपारक ।

(२) प्रतिबिंब । पदार्थों का आकार जो पानी, शीशे आदि में दिखाई पड़ता है । उ०—बेदि मग प्रविसति आति कई

ज्यो दरपन मँह छाँद । तुलसी लों जगजीव गति करी जीव के नाँद ।—तुलसी । (६) भूत-नेत्र आदि का प्रभाव । धासेव । धाघा । उ०—आल की, कि काल की, कि रोप की, विदोप की है, वेदना विषम पाप तप छुल छाँद की ।—तुलसी ।

छाँदगीर-संज्ञा पुं० [हिं० छोड़ + गाँगीर] (१) छत्र । राजद्वार । उ०—अये सरद राधा सली क्वति बयों न चित चेत । मगें मदन छिनिपाल की छाँदगीर छुपि देत ।—विहारी । (२) दर्पण । धाड़ना । (३) छुड़ी के सिरे पर देया हुआ एक धाड़ना जिसके चारों ओर पाग के आकार की किरमें लगी रहती हैं और जो विवाह में दुल्हरे के साथ आता आदि की तरह चलता है ।

छाँदों-संज्ञा स्त्री० दे० "छाँद" ।

छाँदों-संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) राख । (२) पाल । खाद ।

छाक-संज्ञा स्त्री० [हिं० छकना] (१) रुसि । हृद्यारुसि । जैसे, छाक भर खाना, प्यास भर पीना । (२) वह भोजन जो काम करनेवाले दोपहर को करते हैं । दुपहरिया । उ०—(क) बलदाज देखियत दूर ते आघति छाक पठाई मेरी मँया ।—तुलसी । (ख) सुनो महाराज प्राप्त होतै ही एक दिन श्रीकृष्ण बइछे चरावने वन की चले जिनके साथ सव स्वाद-वाल भी श्रपने श्रपने घर से छाक ले जे हो लिए ।—लल्लू । (ग) आँद छाक छलाये स्वाम ।—सूर । (३) नया । मस्ती । मद । उ०—(क) उर न टरे नौदि न परै, हरे न काल-विपाक । दिन छाकें उड़कें न फिर छरी विषम छुवि छाक ।—विहारी । (ख) तजी संक सकुचित न चित चेलति बाक कुवाक । दिन छनदा छाकी रहति छुटति न दिन छुवि छाक ।—विहारी । (४) मँदे के बने हुए बड़े पड़े सदाल जो विवाहों में जाते हैं । माड ।

छाकना-संज्ञा-कि० अ० [हिं० छकना] (१) खा पी कर नृत होना । अधाना । अफरना । उ०—छट रस भोजन माना विधि के करत महल के माहीं । छाके खात प्याल मंडल में बैसो तो सुल नाहीं ।—सूर । (२) मस्त होना । शराय आदि पीकर मातना । उ०—सुल के निधान पाए हिय के पिधान लाए ठग के से लाऊँ खाए प्रेम मयु छाके हैं ।—सुलसी । कि० अ० [हिं० छकना = शरान होना] पकित होना । सी-चका रह जाना । हैरान होना । उ०—विचिधि कता के जिहँ ताके सुर चूँद छाके, पासव-धनुप उपना के तु गता के हैं ।—रघुराज ।

छाग-संज्ञा पुं० [सं०] [ग्री० छागी] बकरा ।

छागन-संज्ञा पुं० [सं०] कंदी या उपजी की आग ।

छागभोजी-संज्ञा पुं० [सं० छागभोजे] भेंदिया ।

छागमय-संज्ञा पुं० [सं०] काचिकेय का आठवाँ सुत ।

छागमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम ।

छाटन-संज्ञा स्त्री० [छिं० छटना] (१) वह वस्तु जो छाट दी जाय। फलन। (२) अलग की हुई निकम्मी वस्तु।

छाटना-क्रि० सं० [सं० खडन] (१) किसी पदार्थ से उसके किसी अंग को काट कर अलग करना। छिन्न करना। काट कर अलग करना। जैसे, कलम छाटना, पेड़ छाटना, मिर के बाल छाटना।

संयोग० क्रि०—डालना।—देना।

विशेष—हम शब्द का प्रयोग अंग और अंगी दोनों के लिये होता है, जैसे, डाल छाटना, पेड़ छाटना।

(२) किसी वस्तु को किसी विशेष प्रकार में खाने के लिये काटना या कतरना। जैसे, कपड़ा छाटना। (दस्ती)

संयोग० क्रि०—देना।—लेना।

(३) अनाज में से कन या भूसी घट फटकार कर अलग करना। अनाज को साफ करने के लिये घटना फटकना। जैसे चावल छाटना, तिल छाटना।

संयोग० क्रि०—डालना।—देना।

(४) बहुत सी वास्तुओं में से कुछ को प्रयोजनीय या निकम्मी समक कर अलग करना। लेने के लिये चुनना या निकालने के लिये पृथक् करना।

संयोग० क्रि०—देना।—लेना।

विशेष—चुनने के अर्थ में संयोग० क्रि०—'लेना' का प्रयोग होता है और निकालने के अर्थ में संयोग० क्रि०—'देना' का प्रयोग होता है। जैसे, (क) हम अच्छे अच्छे आम छाट लेंगे। (ख) हम सड़े आम छाट देंगे। पर जहाँ दूसरे के द्वारा छाटने का काम कराना होता है वहाँ संयोग० क्रि०—'देना' का प्रयोग चुनने का प्रहण करने के अर्थ में भी होता है, जैसे, मेरे लिये अच्छे अच्छे आम छाट दो।

(ख) गंदी या डुरी वस्तु निकालना। दूर करना। हटाना।

उ०—(क) यह दवा खूब कफु छाटती है। (ख) यह सायुज्य सँल छाटा है। (ख) साफ करना। गंदी या निकम्मी वस्तुओं को निकाल कर शुद्ध करना। जैसे, कुर्था छाटना। उ०—उस दवा ने खूब पेट छाटा। (ग) किसी वस्तु का कुछ अंग निकाल कर उसे छोटा या संक्षिप्त करना। (घ) गड़ गड़ कर धाँसे करना। हिंदी की चिंदी निकालना। जैसे, कानून छाटना, धाँसे छाटना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता कुछ शब्दों के साथ ही होता है।

(ङ) अलग रखना। दूर रखना। सम्मिलित न करना।

उ०—तुम समय पर हमें इसी तरह छाट दिया करते हो।

छाड़-चिद्र-संज्ञा स्त्री० [छिं० छटना + चिद्र] यह पत्र वा परवाना जिसे देना कर उसके रखनेवाले व्यक्ति को कोई रोक न सके। रक्खा।

छाड़ना*—क्रि० सं० [सं० छडन, प्रा० छडन] छोड़ना। त्यागना।

उ०—सस दीप भुज बल वस कीन्हें। लेह लेह खंड छाड़ि सव दीन्हें।—तुलसी।

छाँद-संज्ञा स्त्री० [छं० बंधन] (१) एक छोटी रस्ती जिससे घोड़े गद्दे आदि के दो पैरों को एक दूसरे से सटा कर बांध देने हैं जिसमें से दूर तक भाग न सके वरिक्त कूद कूद कर दूधर उभर चरते हैं। (२) यह रस्ती जिससे अहीर गाप दुहते समय बछड़े को गाव के पैर में बांध देते हैं। नोई।

छाँदना-क्रि० सं० [सं० छडन] (१) रस्ती आदि से बांधना। जकड़ना। बसना।

योग०—बांधना छाँदना। उ०—असपाय बांध छाँद कर रख दो।

(२) घोड़े या गद्दे के पिछले पैरों को एक दूसरे से सटा कर बांध देना जिसमें वह दूर तक भाग न सके, आस ही पास चरता रहे। (३) किसी के पैरों को दोनों हाथों से जकड़ कर बैठ जाना और उसे जाने न देना। उ०—यह छो अपने स्वामी का पैर छाँद कर बैठ गई और रोने लगी।

मुद्रा०—पैर छाँदना = जाने से रोकना। रोकना।

छाँदस-वि० [सं०] (१) वेदज्ञ। वेदपाठी। (२) वेद संबंधी। (३) रट्ट। (४) मूर्ख।

छाँदाई-संज्ञा पुं० [छिं० छटना] हिस्सा। बसरा। भाग।

संज्ञा पुं० [छिं० छटना] उत्तम भोजन। पकवान।

क्रि० प्र०—उड़ाना।

छाँदोग्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद का एक ब्राह्मण जिसके प्रथम दो भागों में विवाह आदि संस्कारों का वर्णन है और अंतिम आठ प्रपाठों में उपनिषद् है। इस पर स्वामी शंकराचार्य का भाष्य है। (२) छाँदोग्य ब्राह्मण का उपनिषद्। प्रथम प्रपाठक (ब्राह्मण के तृतीय) में १३ खंड हैं जिनमें प्रायः शोऽश् का ही वर्णन है। दूसरे में २४ खंड हैं जिनमें यज्ञों की विधि और मंत्रों के गायन की शिखा यज्ञे विस्तार से है। तीसरे प्रपाठक के १४ खंड हैं जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति आदि का वर्णन तथा महा-विषया का सूक्ष्म विचार है। प्रिकाल संख्या और सूर्य के जप आदि का भी विवरण है। चौथे प्रपाठक में १७ खंड हैं जिनमें सत्यकाम जाबालि के प्रति उपदेश है, यज्ञों की विधियाँ बताई गई हैं और शक यज्ञ साम के भूः भुवः स्वः यथाक्रम तीन देवता मान कर तप के विधान का प्रतिपादन है। पाँचवें प्रपाठक के २४ खंड हैं। इसी में प्रायः और इंद्रियों का वर्णन है और गाथा द्वारा यह बतलाया गया है कि अग्निहोत्र से सृष्टि की सृष्टि होती है, उसी से मेघ होता है, मेघ से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है, अन्न से रस होता है और रस से संतान आदि की सृष्टि होती है। छठे प्रपाठक में १६ खंड हैं जिनमें ब्रह्मण्य ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को सृष्टि की

उपति आदि का पर्वान करके कहा है कि "हे श्वेतकेतु ।
 तू ही प्रथम है" । इस प्रपाठक में वेदों का महावाक्य
 "सत्वमसि" कई बार आया है । सातवें प्रपाठक में, जिसमें
 २६ संज्ञा हैं, सप्तसुमारों ने नारद को आनुर देव उर्ध्वं प्रहा
 रिषा का उपदेश दिया है । नारद जी ने कहा है कि मैंने
 वेद, इतिहास, पुराण, राशिविद्या, दैवविद्या, निधिनिद्या
 वाग्देवाक्य विद्या, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, वज्र
 विद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवजन-विद्या, इत्यादि बहुत सी
 विद्याएँ सीसी हैं । इन विद्याओं से आज कल लोग निज
 मित्र शशिप्राय निजालते हैं । आठवें प्रपाठक में प्रहा-विद्या
 का स्पष्टता और विस्तार के साथ उपदेश देकर कहा गया है
 कि महाप्रान के परचाव, अम्य नहीं होता ।

छाँव—संज्ञा श्री० दे० "छाँव" ।

छाँवका०—संज्ञा पु० [सं० श्वेतक, हिं० केना] [सं० कविटी टौंही]
 (१) जातकर का बधा । किसी पशु का छोटा बधा । उ०—
 धरिये न पाँव थलि जाय राधे चंद्रमुखी वारों गति मंद पै
 गवदंपति छाँवने—देव । (२) छोटा बधा । बालक ।

छाँव—संज्ञा श्री० [हिं० छँटना] (१) भूमी वा कन जो धनाज
 छूटने से निकलता है । (२) दृष्टा करकट ।

छाँव—संज्ञा श्री० [सं० छया] (१) छाया । वह स्थान जहाँ छाड़
 वा रोके के कारण धूप वा चंद्रनी न पड़नी हो । जैसे, पेड़
 की छाँव । उ०—हरखित भये नैदलाख पैति तह छाँह में ।
 —सूर ।

मुहा०—छाँह में होना = भ्रष्ट में होना । छिपना । उ०—पंच
 अति कठिन पथिक कोट्य संग नाहिं तेज भद्र तारागन छाँह
 भये रथि है ।

(२) पैसा खान नियम के ऊपर मेह आदि रोकने के लिये कोई
 बन्धु हो । ऊपर से छाड़त या छोया हुआ स्थान । (३)
 शयल । संरक्षा । बचाव वा निर्वाह का स्थान । उ०—अथ
 तो तुम्हारी छाँह में घा गए हैं जो चाहे सो करे ।

श्री०—द्वयछाँह ।

(४) पदार्थों का द्वायाल्प शक्कर जो उनके पिछों
 पर प्रकाश रुकने के कारण धूप, चंद्रनी वा प्रकाश में
 दिखाई पड़ता है । परछाँहें । उ०—योगिन में छाई पड़ताई
 शरी देहली में, छाँह देवे आपनी श्री राह देवे पिथ की ।

मुहा०—छाँह न छूने देना = पास न फटकने देना । निकट तक
 न आने देना । छाँह बचाना = दूर दूर रहना । पास
 न जाना । अलग रहना । छाँह छूना = पास जाना । पास
 फटकना । उ०—मुँह माही लगी अक नाहीं सुचारक, छाँहों
 छुप छरके बड़लै ।—सुचारक ।

(५) प्रतिबिंब । पदार्थों का शकार जो पानी, शीते आदि
 में दिखाई पड़ता है । उ०—वेदि मग प्रविस्तति आति कहे

ज्यो दरपन मँह छाँह । तुलसी सों जगजीव गति करी जीव के
 गाई ।—तुलसी । (६) भूत-प्रेत आदि का प्रभाव । आशय ।
 याबा । उ०—आल की, कि काज की, कि रोप की, कि रोपे,
 कि है, वेदना विषम पाप ताप दूख छाँह की ।—तुलसी ।
 छाँहगीर—पञ्चा पुं० [हिं० छौंढ + का० गीर] (१) दूध । राजदूध ।
 उ०—उषे तरद राका सली करति क्यों न चित चेत । मनो
 मदन क्षितिपाल की छाँहगीर छुवि देत ।—विहारी । (२) दर्पण ।
 धाड़ना । (३) छद्मी के लिये पर बँधा हुआ एक आड़ना
 जिसके चारों ओर पान के आकार की किरमें लगी रस्ती हैं
 और जो विवाह में हुलहे के गाय आया आदि की तरह
 चलता है ।

छाँहों—संज्ञा श्री० दे० "छाँह" ।

छाँहों—संज्ञा श्री० [दे०] (१) राख । (२) पॉस । खाद ।

छाँक—संज्ञा श्री० [हिं० छरना] (१) गृष्टि । हृद्यगृष्टि । जैसे,
 छाँक भर खाना, प्यास भर पीना । (२) यह भोजन जो काम
 करनेवाले दोपहर को करते हैं । दुपहरिया । उ०—(क)
 पलदाक देरियत दूर ते आचित छाँक पडाई मेरी मैया ।—
 तुलसी । (ख) सुनो महाराज प्राप्त होते ही एक दिन श्रीकृष्ण
 बहुरे चरावने बन हो चले जिनके साथ सप्त ग्वाल-याल भी
 अपने अपने घर से से छाँक ले ले हो लिपु ।—बहुरे । (ग)
 छाँहें छाँक हुलायो रयाम ।—सूर । (३) नशा । मस्ती ।
 मद । उ०—(क) उर न टरै नौद न परे, हरे न काल-बिपाक ।
 छिन छाँकी उड़के न फिर खरी विषम छुवि छाँक ।—
 विहारी । (ख) तजी सैक सकुचित न चित पोखति वाक
 कृपाक । दिन धनदा छाँकी खति हुटति न छिन छुवि
 छाँक ।—विहारी । (४) मेरे के बने हुए बड़े बड़े सजाल जो
 विवाहों में जाते हैं । साठ ।

छाँकना—कि० प्र० [हिं० छरना] (१) ला पी कर तुष्ट होना ।
 शयाना । शकतना । उ०—खट रस भोजन जाना विधि के
 करत महल के माहीं । छाँके खात ग्वाल मंडल में मैता तो
 सुख नाहीं ।—सूर । (२) मस्त होना । शराय आदि पीकर
 मातना । उ०—सुख के पिधान पाए हिय के पिधान लाए
 टग के से लाए खाए प्रेम मधु छाँके हैं ।—तुलसी ।
 कि० प्र० [हिं० छरना = देवान होना] चकित होना । आँ-
 चका रह जाना । हैरान होना । उ०—विविधि कला के जिहँ
 ताके मुर हूँ द छाँके, वासव-बन्धुप अपना के तुं गता के हैं ।—
 रघुसाज ।

छाँग—संज्ञा पु० [सं०] [श्री० छगी] बकता ।

छाँगन—संज्ञा पु० [सं०] कंठी वा बपली की आग ।

छाँगभोजी—संज्ञा पु० [सं० छगभोजि] भेंड़िया ।

छाँगमय—संज्ञा पु० [सं०] कातिकेय का भाठवाँ सुख ।

छाँगमित्र—संज्ञा पु० [सं०] एक देव का नाम ।

छागमुख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काचित्कैय का छटा मुख जो बकरे का सा है । (२) काचित्कैय का एक धनुचर ।

छागर्—संज्ञा स्त्री० [सं० छगल] बकरी ।

छागरथ—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

छागल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बकरा । (२) बकरे की खाल की पनी हुई चीज ।

संज्ञा स्त्री० (१) चमड़े का ढोल या छोटी मशक जिसमें पानी भरा या रखा जाता है । यह प्रायः बकरे के चमड़े का बनता है । (२) मिट्टी का करवा ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सेंकल] एक गहना, जिसे धियाँ पैरों में पहनती हैं । यह चाँदी की पटरी का गोल कड़ा होता है जिसमें घुँघुरू लगे रहते हैं । भाँजन ।

छाछ—संज्ञा स्त्री० [सं० छच्छिका] (१) मया हुआ दही । यह पनीला दही या दूध जिसका घी वा मखन निकाल लिया गया हो । मट्ठा । मही । सारहीन तक्र । (२) वह मट्ठा जो घी वा मखन तपाने पर नीचे बैठ जाता है । उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छुड़िया भर छाछ पै नाच नचावै ।

छाछटा—वि० दे० “छासठ” ।

छाछि—संज्ञा० स्त्री० दे० “छाछ” ।

छाज—संज्ञा पुं० [सं० छज] (१) अनाज फटकने का सीक का बरतन । सूप ।

मुहा०—छाज सी दाड़ी = बड़ी और चौड़ी दाड़ी । छाजों में बरतना = बहुत पानी बरसना । मूलाधार पर पानी बरसना ।

(२) छाजन । छप्पर । (३) गाड़ी या यन्त्री के धारो छजने की तरह निकला हुआ यह भाग जिसपर कोषधान के पैर रहते हैं ।

छाजन—संज्ञा स्त्री० [सं० छजन] (१) आच्छादन । बल । कपड़ा । उ०—छाजन भोजन भीति से दीजे साधु सुलाय । जीवत जग हो जगत में श्रेष्ठ परमपद पाय ।—कबीर ।

धो०—भोजन छाजन = खाना कपड़ा ।

(२) छप्पर । छान । खपरैल । उ०—तपै हाति जव जेठ धसाड़ी । भइ मो कँह यह छाजन गाड़ी ।—जायसी । (३) छाने का काम वा ढंग । छुवाई । (४) कोढ़ की तरह का एक रोग जिस में वैगलियों के जोड़ के पास तलवा चिड़-चिड़ा कर फटता है और उसमें घाय हो जाता है । यह रोग हाथियों को भी होता है । अणरस ।

छाजना—क्रि० अ० [सं० छजन] (१) शोभा देना । अच्छा लगना । भला लगना । फयना । उपयुक्त जान पड़ना । उ०—(क) थोड़ी छाज छत्र और पाटा । सब राजन सुई धरा ललाट ।—जायसी । (ख) जो कबु कहइ तुमहि सब छाजा ।—तुलसी । (२) शोभा के सहित विद्यमान होना । विराजना । सुशोभित होना । उ०—सुकु मौर पर पुंज मंजु

सुर-धनुष विराजत । पीत बसन छिन छिन नवीन छिनछिन छुवि छाजत ।—मविराम ।

छाजा—संज्ञा पुं० [सं० छज] छज्जा । उ०—ऊँचे भवन मनोहर छाजा, मखि कंचन की भीति ।—सूर ।

छाजित—वि० [हिं० छाजना] शोभित ।

छाडना, छाडना—क्रि० अ० [सं० छडे] कैं करना । उलटी करना । धनन करना ।
क्रि० सं० दे० “छाडना”, “छोडना” ।

छात—संज्ञा पुं० [सं० छत, प्रा० छत] (१) छाता । छतरी । (२) राजद्वार । उ०—(क) थोड़ी छाज छात और पाटा । सब राजे सुइ धरा ललाटा ।—जायसी । (ख) रूपवंत मनि दिये ललाटा । माये छात पैठ सब पाटा ।—जायसी । (३) आश्रय । आधार । उ०—हम से थोड़ कें पावा छातू मूल गये सँग रहा न पातू ।—जायसी ।

वि० [सं०] (१) छिन्न । (२) दुर्बल । रुका ।

संज्ञा स्त्री० दे० “छत” ।

छाता—संज्ञा पुं० [सं० छत, प्रा० छत] (१) लोहे यांस आदि की तीलियों पर कपड़ा चड़ा कर बनाया हुआ आच्छादन जिसे मनुष्य धूप में छ आदि से बचने के लिये काम में लाते हैं । बड़ी छतरी ।

मुहा०—छाता देना वा लगाना = (१) छुले का व्यवहार करना ।

(२) छाता ऊपर तानना ।

(३) छत्ता । खुसी । (३) चौड़ी छाती । विशाल बरस्यल ।

(४) बरस्यल की चौड़ाई की नाप ।

छाती—संज्ञा स्त्री० [सं० छाति, कर्दी = आच्छादन करनेवाला] (१) इन्दी की टटरियों का पल्ला जो कशेरुके के ऊपर पेट तक फैला होता है । बरस्यल । सीना । पेट के ऊपर का भाग जो गरदन तक होता है ।

विशेष—छाती की पसलियों पीछे की ओर रीढ़ और आगे की ओर एक मध्यस्थ स्थिदंड से लगी रहती हैं । इनके भीतर के कोठे में कुण्डुस और कलेजा रहता है । दूध पिलानेवाले जीवों में यह कोठा पेट के कोठे से जिसमें अतड़ी आदि रहती है एक परदे के द्वारा विलकुल अलग रहता है । पर पशियों और सरीसृपों में यह विभाग इतना स्पष्ट नहीं रहता । जन्तुओं तथा बहुत से रेंगेनेवाले जीवों में तो यह विभाग ही नहीं होता ।

मुहा०—छाती का जम = (१) दुःखदायक वस्तु वा व्यक्ति । छर छड़ी कट पहुँचानेवाला आदमी वा वस्तु । (२) कट पहुँचाने के लिये सदा धरे रहनेवाला आदमी । (३) धृष्ट मनुष्य । दंड आदमी । छाती पर का पत्थर वा पदार्थ = (४) ऐसी वस्तु जिसका खटका उदा. बना रहता है । विशेष उल्लेख करनेवाली वस्तु । जैसे, कुआरी बाइकी जिसके विवाह

की चिंता सदा बनी रहती है । (२) सदा कष्ट देनेवाली बन्तु । निरंतर दुःख देनेवाली बन्तु । दुःख से दवाए रहनेवाली बन्तु । छाती धटना = दे० 'छाती पीटना' । छाती के किबाड़ = छाती का पंजर । छाती का परदा या विस्तार । छाती के किबाड़ खुलना = (१) छाती फटना । (२) कंठ से चीत्कार निकलना । गहरी चील निकलना । उ०—मैं तो प्राता ही या तेरी छाती के किबाड़ क्या खुल गए । (३) हृदय के कपाट खुलना । हिप की आँख खुलना । हृदय में ज्ञान का उदय होना । अंतर्-बोध होना । तप का बोध होना । (४) बहुवचन आनंद होना । छाती के किबाड़ खोलना = (१) कलमो दुकड़े दुकड़े करना । (२) जी खोल कर बात करना । हृदय की बात स्पष्ट कहना । मन में कुछ गुप्त न रखना । (३) हृदय का अंधकार दूर करना । अज्ञान मिटाना । अंतर्बोध करना । छाती खले रखना = (१) वास से अलग न होने देना । सदा अपने समीप या अपनी रक्षा में रखना । (२) अथवा प्रिय करके रखना । छातीखले रहना = (१) पास रहना । आँखों के सामने रहना । (२) अर्थ में प्रिय होकर रहना । छाती दरकना = 'दे० छाती फटना' । छाती निकाल कर चलना = तन कर चलना । अफड़े कर चलना । ँँठ कर चलना । छाती पत्थर की करना = भारी दुःख गहने के लिये हृदय कठोर करना । छाती पर मूँग या कोड़े चलना = (१) किसी के सामने ही ऐसी बात करना जिससे उसका जी खुले । किसी को दिखा दिया कर ऐसा काम करना जिससे उसे मोघ या संताप हो । किसी की आँख के सामने ही उसकी छानि, या भुर्राई करना । जैसे, वह खी बड़ी कुलटा है अपने पति की छाती पर कोड़े चलती है (अर्थात् अन्वय उरुष से बात चीत आदि करती है) । (२) अर्थ में कष्ट पहुँचाना । लज्ज पीड़ित करना । (छियाँ 'तेरी छाती पर मूँग दूँ' कह कर प्रायः गाली देती है) । छाती पर चढ़ना = कष्ट पहुँचाने के लिये पास जाना । छाती पर चढ़ कर दवाई सुँह, बाहु पीना = चिटन दंड देना । प्राण दंड देना । छाती पर धर कर ले जाना = अपने साथ परलोक में ले जाना । (घन आदि के विषय में लोग बोलते हैं कि "क्या छाती पर धर कर ले जाओगे?") । छाती पर पत्थर रखना = किसी भारी शोक या दुःख के आघात का सहना । दुःख सहने के लिये हृदय कठोर करना छाती पर बाल होना = उदासता न्यायशोकात् आदि के लक्षण होना । (सोमों में प्रवाद है कि सुम या विधासत्पातक की छाती पर बाल नहीं होता) । छाती पर साँप सोटना या फिरना = (१) दुःख से कलमो दहल जाना । हृदय पर दुःख शोक आदि का आघात पहुँचना । मन मोलना । मानसिक व्यथा होना । (२) ईर्ष्या से हृदय व्यथित होना । डाह होना । जलन होना । छाती पीटना = (१) छाती पर जेर जेर से हाथ पटकना । (२) दुःख या शोक से व्यथित होकर छाती पर हाथ पटकना । शोक

के आवेग में हृदय पर आघात करना । (छाती पर हाथ पटकना शोक प्रकट करने का चिह्न है) । जैसे, छाती पीट पीट कर रोना । छाती फटना = (१) दुःख से हृदय व्यथित होना । दुःख शोक आदि में चित व्यकुल होना । अत्यंत मानसिक क्रोश होना । अत्यंत संताप होना । (२) ईर्ष्या से हृदय व्यथित होना । चित में डाह होना । जी जलना । कुटन होना । उ०—दूसरे की बड़ती देख कर तुम्हारी छाती क्यों पटती है ? छाती फुलना = (१) अकड कर चलना । तन कर चलना । इतरा कर चलना । (२) घमंड करना । अभिमान दिखलाना । छाती से पत्थर चलना = (१) किसी ऐसे भारी काम का हो जाना जिसका भार अपने ऊपर रहा हो । किसी कठिन या बड़े काम के पूरे होने पर चित निश्चित होना । किसी ऐसे कार्य का पूरा हो जाना जिसका लक्ष्य यथा बना रहता हो । (२) बेटी का ब्याह हो जाना । छाती से लगना = प्राणिन होना । गले लगना । हृदय में लिपटना । छाती से लगना = आसिंन करना । गले लगाना । प्यार करना । प्रेम से देखी भुवाओ के बीच बंधना । छाती से लगा रखना = (१) अपने पास से जाने न देना । प्रेमपूर्वक सदा अपने समीप रखना । (२) अत्यंत प्रिय करके रखना । अपनी देख रेख और रक्षा में रखना । बज्र की छाती = ऐसा कठोर हृदय जो दुःख सह सके । अत्यंत सहिष्णु हृदय ।

(२) कलोजा । हृदय । मन । जी ।

मुहो—छाती उड़ी जाना = दुःख या व्याका से चित व्यकुल होना । कलमो दहलना । जी धवड़ाना । छाती समुद्र प्रानत = प्रेम वा करुणा के आवेग से हृदय परिपूर्ण होना । प्रेम वा करुणा से गर्दाद होना । छाती छलनी होना = कष्ट वा अस्मान सहते सहते हृदय जर्जर हो जाना । बार बार के दुःख वा कुटन से चित का अत्यंत व्यथित होना । दुःख भेजते भेजते या कुटते कुटते जी ऊब जाना । उ०—तुम्हारी माते सुनते सुनते तौ छाती छलनी होगई । छाती जलना = (१) कलमो पर तौ माँस मारुम होना । अर्थात् आदि के कारण हृदय में जलन मारुम होना । (२) शोक से हृदय व्यथित होना । हृदय दख होना । मानसिक व्यथा होना । संतार होना । (३) ईर्ष्या वा मोघ से चित संताप होना । डाह होना । जलन होना । उ०—जै बड़ भती नेक हू होली तौ मिलि सरनि थताली । बड़ पापिनी दाहि कुत आई देखि जरत मोरि धानी ।—सूर । छाती जलना = (१) हृदय छलन करना । संताप होना । मानसिक व्यथा पहुँचना । जी जलना । कष्ट पहुँचना । (२) कुटाना । चिटनना । छाती जुझना = † (१) (क्रि० अ०) दे० "छाती टंडी होना" । (२) (क्रि० सं०) "छाती टंडी बनना" । हृदय शंतन करना । चित शांत और प्रसन्न करना । हृदय संतुष्ट और प्रकृतित करना । इच्छा वा हेतुना पूरा

छागमुख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कात्तिकेय का छटा मुख जो बकरे का सा है। (२) कात्तिकेय का एक अनुचर।

छागरा—संज्ञा स्त्री० [सं० छागस] बकरी।

छागस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

छागल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बकरा। (२) बकरे की लाल की पत्नी हुई चीज।

संज्ञा स्त्री० (१) चमड़े का ढोल वा छोटी मशक जिसमें पानी भरा वा रक्खा जाता है। यह प्रायः बकरे के चमड़े का बनाता है। (२) मिट्टी का बरवा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सँकल] एक गहना; जिसे चियाँ पेरों में पहनती हैं। यह चाँदी की पट्टी का गोल कड़ा होता है जिसमें बुँदें शुरू लागे रहते हैं। भोजन।

छाछ—संज्ञा स्त्री० [सं० छच्छिका] (१) मया हुआ दही। यह पनीला दही वा दूध जिसका घी वा मखन निकाल लिया गया हो। मट्ठा। मदी। सारहीन तक्र। (२) घट मट्ठा जो घी वा मखन तपाने पर नीचे बैठ जाता है। उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छुड़िया भर छाछ पै नाच नचावै।

छाछठा—वि० दे० "छाछठ"।

छाछी—संज्ञा स्त्री० दे० "छाछ"।

छाज—संज्ञा पुं० [सं० छाज] (१) अनाज फटने का सँक का बरतन। सूप।

मुहा०—छाज सी दाढ़ी = यज्ञी और चौड़ा दाढ़ी। छाजों में गंध बरसना = बहुत पानी बरसना। मूलाधार पानी बरसना।

(२) छाजन। छप्पर। (३) गाड़ी वा बन्धी के आगे छत्रों की तरह निकला हुआ यह भाग जिससे कोयवान के पैर रहते हैं।

छाजन—संज्ञा स्त्री० [सं० छाजन] (१) आच्छादन। यज्ञ। कपड़ा। उ०—छाजन भोजन भीति सों दीनी साधु बुलाय। जीवत जस हो जगत में अंत परमपद पाय।—कवीर।

धौ०—भोजन छाजन = खाना कपड़ा।

(२) छप्पर। छान। खपरैल। उ०—तपे लागि जष जेठ असाड़ी। भइ भो कँह यह छाजन गाड़ी।—जायसी। (३) छाने का काम वा ढंग। छावाई। (४) फोड़ की तरह का एक रोग जिसमें वैगलियों के जोड़ के पास तलवा चिड़-चिड़ा कर फटता है और बलों में घाव हो जाता है। यह रोग हाथियों को भी होता है। अरस।

छाजना—क्रि० श्च० [सं० छाजन] [वि० छाजित] (१) शोभा देना। अच्छा लगना। भला लगना। पढ़ना। उपयुक्त जान पड़ना। उ०—(क) झाँही छाज छत्र और पादू। सप राजन बुद्ध धरा ललाटू।—जायसी। (ख) जो कलु कहहु तुमहि सब छासा।—तुलसी। (२) शोभा के सहित विद्यमान होना। विराजना। सुरोन्नित होना। उ०—मुकुट मेर पर पुंज मंडु

सुर-पनुप विराजत। पीत पसन छिन छिन नवीन छिनछुनि छुनि छाजन।—मतिराम।

छाजा*—संज्ञा पुं० [सं० छाज] छत्र। उ०—जैचे मवन मनोहर छाया, मखि कंचन की भीति।—सूर।

छाजित*—वि० [हिं० छाजना] रोमिष्ठ।

छाडना, छाडुना—क्रि० श्च० [सं० छडि] कैं करना। बलती करना। मयन करना।

क्रि० सं० दे० "छाडिना", "छोडिना"।

छात*—संज्ञा पुं० [सं० छात्र, प्रा० छात्र] (१) छाता। छतरी। (२)

राजद्वार। उ०—(क) श्रोही छाज छात श्री पाटा। सव राजें बुद्ध धरा ललाटा।—जायसी। (ख) लुप्यंत मनि दिपे ललाटा। माये छात बैठ सब पाटा।—जायसी। (३) आश्रय। आशान। उ०—हम से श्रोछु कै पाया छाटू। मूल सपे सँग रहान पारू।—जायसी।

वि० [सं०] (१) छिन्न। (२) दुर्बल। हटा।

[संज्ञा स्त्री० दे० "छुन"]।

छाता—संज्ञा पुं० [सं० छात्र, प्रा० छात्र] (१) लोहे यांस आदि की तीलियों पर कपड़ा चढ़ा कर बनाया हुआ आच्छादन जिसे मनुष्य धूप में ह आदि से बचने के लिये काम में लाते हैं। चड़ी छतरी।

मुहा०—छाता देना वा लगाना = (१) छाले का व्यवहार करना।

(२) छाता ऊपर तानना।

(३) छाता। खुमी। (३) चौड़ी छाती। विशाल बरस्यल।

(४) बरस्यल की चौड़ाई की माप।

छाती—संज्ञा स्त्री० [सं० छाति, कृती = आच्छादन करनेवाला] (१)

हड्डी की टटरीयों का पट्टा जो कसेजे के ऊपर पेट तक फैला होता है। बरस्यल। मीना। पेट के ऊपर का भाग जो गर्दन तक होता है।

विशेष—छाती की पसलियाँ पीछे की ओर रीढ़ और आगे की ओर एक मध्यवर्ती अस्थिदंड से लगी रहती हैं। इनके भीतर के कोठे में फुफुस और कसेजा रहता है। दूध पिलानेवाले जीवों में यह कोठा पेट के कोठे से जिसमें अतड़ी आदि रहती है एक परदे के द्वारा विलकुल अलग रहता है। पर पक्षियों और सरीसृपों में यह विभाग उबना स्पष्ट नहीं रहता। जलचरों तथा बहुत से रेंगनेवाले जीवों में तो यह विभाग ही नहीं होता।

मुहा०—छाती का जम = (१) दुःखदायक वस्तु का व्यक्ति। छर घड़ी कष्ट पहुँचानेवाला आदमी वा वस्तु। (२) कष्ट पहुँचाने के लिये उदा धरे रहनेवाला आदमी। (३) शूद्र मनुष्य। दौंड आदमी। छाती पर का पत्थर वा पहाड़ = (१) ऐसी वस्तु जिसका खटाका उदा बना रहता हो। विधा उत्पन्न करनेवाली वस्तु। जैसे, कुमारी शङ्क की जिसके विषय

की चिंता सदा बनी रहती है । (२) सदा कष्ट देनेवाली बनू । निरंतर दुःख देनेवाली बनू । दुःख में दबाए रहनेवाली बनू । छाती फटना = दे० 'छाती पीटना' । छाती के किबाड़ = छाती का पंजर । छाती का परदा वा विस्तार । छाती के किबाड़ खुलना = (१) छाती फटना । (२) कंठ से चीरकार निकलना । गहरी चीर निकलना । उ०—मैं तो आता ही धा मेरी निकलना । गहरी चीर खुलना । हृदय में शान का उदय होना । अंतर्-रोंच होना । तन का बोध होना । (४) बहुत आनंद होना । छाती के किबाड़ खोलना = (१) कफला ठुकराई ठुकराई करना । (२) जी खोल कर शान करना । हृदय की बात रात कहना । मन में बुद्धि पुन न रखना । (३) हृदय का प्रपंकार दूर करना । अज्ञान मिटाना । अंतर्रोंच फटाना । छाती तले रखना = (१) पल्लवे अज्ञान न होने देना । सदा अपने समीप वा अपनी रक्षा में रखना । (२) अग्रंत प्रिय करके रखना । छातीतले रहना = (१) पास रहना । आँसू के सामने रहना । (२) अत्यंत प्रिय होकर रहना । छाती दरकना = 'दे० छाती फटना' । छाती निकाल कर खजना = तन कर चतना । अकड़ कर चतना । षँट कर चतना । छाती पत्थर की करना = मारी दुःख सहने के लिये हृदय कठोर करना । छाती पर सूँग वा बोझो दबना = (१) किसी के सामने ही ऐसी बात करना जिससे उसका जी दुले । किसी को दिखाना कर ऐंसा काम करना जिससे उसे शोध ना संतार हो । किसी की आँख के सामने ही उसकी हानि वा सुगर्ह करना । जैसे, यह खी बड़ी कुलटा है अपने पति की छाती पर बोझो दबती है (अर्थात् अन्य पुरुष से बात चीत आदि करती है) । (२) अत्यंत कष्ट पहुँचाना । स्वयं पीड़ित करना । (किराँ 'सैरी छाती पर सूँग दलूँ' कद कर प्रायः गाली देती है) । छाती पर चढ़ना = कष्ट पहुँचाने के लिये पास जाना । छाती पर चढ़ कर धाई खुलूँ लहूँ पीना = फटिन दंड देना । प्राण रंड देना । छाती पर पर कर ले जाना = अपने साथ परलोक में ले जाना । (धन आदि के विषय में लोग योचते हैं कि "क्या छाती पर पर कर ले जायेंगे ?") । छाती पर पत्थर रखना = किसी भारी शोक वा दुःख के आघात का सहना । दुःख सहने के लिये हृदय कठोर करना छाती पर धाल देना = उदारता न्यायशीलता आदि के दान्यव होना । (लोगों में प्रवाद है कि सुन या विश्वासपात्र की छाती पर धाल नहीं होता) । छाती पर साँप लोटना या फिरना = (१) दुःख से कफला दृष्ट होना । हृदय पर दुःख शोक आदि का आघात पहुँचाना । मन मोहना । मानसिक व्याधा होना । (२) ईर्ष्या से हृदय व्यपित होना । डाह होना । जलन होना । छाती पीटना = (१) छाती पर जोर जोर से हाथ पटकना । (२) दुःख वा शोक से व्याकुल होकर छाती पर हाथ पटकना । शोक

के आघेग में हृदय पर आघात करना । (छाती पर हाथ पटकना शोक प्रकट करने का चिह्न है) । जैसे, छाती पीट पीट कर रोना । छाती पटना = (१) दुःख में हृदय व्यपित होना । दुःख शोक आदि से चित्त व्याकुल होना । अत्यंत मानसिक क्रोध होना । अत्यंत संतार होना । (२) ईर्ष्या से हृदय व्यपित होना । चित्त में डाह होना । जी जनना । जुटन होना । उ०—दूसरे की बुद्धी देख कर तुम्हारी छाती क्यों चटती है ? छाती खुलाना = (१) अकट कर चतना । तन कर चतना । हल्ला कर चतना । (२) धमंड करना । आभिमान दिखलाना । छाती से पत्थर टलना = (१) किसी ऐसे मारी काम का हो जाना जिसका भार अपने ऊपर रहा है । किसी कठिन वा बड़े काम के पूरे होने पर चित्त निश्चिंत होना । किसी ऐसे कार्य का पूरा हो जाना जिसका रटका सदा बना रहता है । (२) वेदी का प्याह हो जाना । छाती में लगना = आभिमान होना । गले लगना । हृदय से निपटना । छाती से लगाना = आभिमान करना । गले लगाना । प्यार करना । प्रेम से दौना मुगध्या के बीच दबाना । छाती से लगा रखना = (१) अपने पास में जमान देना । प्रेमपूर्वक सदा अपने समीप रखना । (२) अत्यंत प्रिय करके रखना । अपनी देख देख और रक्षा में रखना । यत्र की छाती = ऐसा कठोर हृदय जो दुःख सह सके । अत्यंत सहिष्णु हृदय ।

(३) कलेजा । हृदय । मन । जी ।

मुहा०—छाती उड़ो जाना = दुःख वा आघात से चित्त व्याकुल होना । कफला दृष्ट होना । जी परडाना । छाती धमंड आना = प्रेम वा करुणा के आघेग से हृदय परिपूर्ण होना । प्रेम वा करुणा से गर्वद होना । छाती छुलनी होना = कष्ट वा अपमान सहते सहते हृदय अजोर हो जाना । बार बार के दुःख वा जुटन से चित्त का अत्यंत व्यपित होना । दुःख भेजते भेजते वा जुटते जुटते जी ऊँच जाना । उ०—तुम्हारी बातें सुनते सुनते तो छाती छुलनी होगई । छाती जलना = (१) कफले में पर गरमी मजद होना । आजीर्ण्य आदि के कारण हृदय में जलन मादद होना । (२) शोक से हृदय व्यपित होना । हृदय दग्ध होना । मानसिक व्याधा होना । संतार होना । (३) ईर्ष्या वा क्रोध से चित्त संतार होना । डाह होना । जलन होना । उ०—जो यह भली नेक हूँ हेनी 'तौ मिलि सवनि पताती । यह पापिनी दाहि कुल धाई देखि जगत मोरि छाती ।—सूर । छाती जलना = (१) हृदय संतार करना । संतार देना । मानसिक व्याधा पहुँचाना । जी जनना । संतार पहुँचाना । (२) जुटाना । चिड़ाना । छाती खुलाना = (१) (कि० अ०) दे० "छाती टंडी होना" । (२) (कि० स०) "छाती टंडी पतना" । हृदय शीतल करना । चित्त शान्त और मजबूत करना । हृदय सुगुण और मज्जित करना । इच्छा वा हौसला पूरा

करना । कामना पूर्ण करना । मन का आवेग संग्रह करना ।
 उ०—(क) लेहिँ परस्पर छाति मिय पाती । हृदय लगाय
 जुझावहिँ छाती ।—तुलसी । (ख) खोजत रहेईं तोहिँ सुत
 पाती । आसु निपानि जुझावहुँ छाती ।—तुलसी । छाती टंडी
 करना = हृदय शीतल करना । चित्त शांत और प्रफुल्लित
 करना । मन का आश्रय शांत करना । मन की अभिलाषा पूर्ण
 करना । हौसला पूरा करना । छाती टंडी होना = हृदय शीतल
 होना । चित्त शांत और प्रफुल्लित होना । मन का आवेग
 शांत होना । कामना पूर्ण होना । हौसला पूरा होना । छाती
 टुकना = हिम्मत बँपना । साहस बँपना । चित्त में दृढ़ता
 होना । उ०—गुंरी लुखीलाल और बाबू बैजनाथ ने इनको
 हिम्मत बँधाने में कसर नहीं रखी परंतु इनका मन कमजोर
 है इससे इनकी छाती नहीं टुकती । छाती टोकना = किसी
 कठिन कार्य के करने की साहसपूर्वक प्रतिज्ञा करना । किसी
 भारी वा कठिन कार्य को करने का दृढ़तापूर्वक निश्चय
 दिखाना । कोई हुंकर कार्य करने का साहस प्रकट करना ।
 हिम्मत बँपना । उ०—मैं छाती टोक कर कहता हूँ कि उमे
 श्रावण पकड़ लाऊँगा । छाती घड़कना = भय वा आशंका से
 हृदय कंपित होना । कलेजा धक धक करना । खटके वा डर से
 कलेजा जट्टी जट्टी उछलना । जी दहलना । छाती घाम कर
 रह जाना = ऐसा भारी शोक वा दुःख अनुभव करना जो
 प्रकट न किया जा सके । कोई भारी मानसिक आघात सह कर
 मरने हो जाना । शोक से ठक रह जाना । छाती पकड़ कर
 रह जाना वा घैट जाना = दे० 'छाती घाम कर रह जाना' ।
 छाती पक जाना = दे० 'छाती छुननी होना' । छाती पथर
 की करना = अत्यंत शोक वा दुःख सहने के लिये जी कड़ा
 करना । भारी कष्ट वा संताप सह लेना वा सहने के लिये प्रयत्न
 होना । छाती पथर की होना = अत्यंत शोक वा दुःख सहने
 के लिये जी कड़ा होना । हृदय इतना फटोर होना कि वह शोक
 वा दुःख का आघात सह ले । छाती पर किरना = मर्झा चर्झा
 प्यान में आना । बार बार स्मरण होना । छाती भर आना =
 प्रेम वा करुणा के आवेग से हृदय परिपूर्ण होना । प्रेम वा
 करुणा से गर्दुग्द होना । उ०—पारि विलोचन बाँचत पाते ।
 पुलकि गाल भरि आई छाती ।—तुलसी । छाती मसोसना =
 चुपचाप हृदय में ऐसा पौर दुःख होना जो प्रकट न किया जा सके ।
 मन ही मन संतत होना । छाती में छेद होना वा पड़ना = कष्ट
 वा अपमान सहते सहते हृदय जर्मर होना । शर बार के दुःख
 वा कुट्टन से चित्त अत्यंत व्यथित होना । कुट्टे कुट्टे वा दुःख
 भेकते भेकते जो ऊंच जाना । उ०—भेदिया सो भेद कहिबो
 छेद सो छाती परो ।—चूर ।
 (३) सन । कुच । उ०—झाड़ रहे छुद छाती कपोलनि धामन
 ऊपर थोप चढाई ।—'कविराव' ।

मुहा०—छाती उभरना = युवावस्था आरंभ होने पर श्रियो के सन
 का उठना वा बढ़ना । छाती देना = बच्चे के बुँह में पीने के
 लिये सन डानना । दूध पिनाना । बच्चे को दूध पिनाना ।
 छाती पकना = सनो पर सत होना । सनो पर धाव होना ।
 छाती भर आना = (१) छाती में दूध भर आना । दूध उठ-
 नी । (२) दे० 'छाती उभरना' । (३) अत्यंत दुःख होना ।
 आँसों में आँसू भर आना । छाती मसलना = छाती
 मसना । सन दवाना या मरोडना । (संयोग का एक श्रेय)

(४) हिम्मत । साहस । दृढ़ता । उ०—किस की छाती है
 जो उसका सामना करे । (५) एक प्रकार की कसरत जो
 दुबाली के ढंग की होती है । उ०—छाती के ढंढे = एक
 पंच जो उस समय किया जाता है जब विपत्ती दोनों और से घाय
 कमर पर ले जाकर कमर बांध कर भेकना देना चाहता है ।
 इसमें विपत्ती को घाय को ऊपर से छपेटते हुए खेलाही
 अपने घाय मजबूत बांध कर बाहरी वा वगली टाँग मारता है ।
 छात्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिष्य । चेला । विद्यार्थी । श्रुते-
 वासी । (२) मधु । (३) क्षुत्ता नामक मधुमक्खी जो
 कुछ पत्तों और कपिल वर्षों की होती है । सत्वा । (४)
 क्षुत्ता नामक मधु-मक्खी का मधु ।
 छात्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षुत्ता वा सत्वा नामक मधुमक्खी
 का बनाया मधु । (२) विद्यार्थी ।
 छात्रगंड-संज्ञा पुं० [सं०] वह शिष्य जो श्लोक का एक पाद्य
 मात्र सुन कर सारे श्लोक का भाव समझ जाय । तीक्ष्ण
 बुद्धिवाला शिष्य ।
 छात्रदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] ताजा मक्खन ।
 छात्रवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वृत्ति वा धन जो विद्यार्थी
 को विद्याभ्यास की दशा में सहायकार्य मिला करे ।
 छात्रालय-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ विद्यार्थियों के पढ़ने
 का प्रबंध हो । बोर्डिंग हाउस ।
 छादक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छानेवाला । आच्छादन करने-
 वाला । (२) छपरबंद । छपरज वा छपर छानेवाला । (३)
 कपड़ा लता देनेवाला ।
 छादन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कानित] (१) छाने वा ढकने का
 कार्य । (२) वह जिससे छाया वा ढका जाय । धारण ।
 आच्छादन । (३) नीला म्यान घुघ । नील करैया ।
 (४) छिपाव ।
 छादित-वि० [सं०] ढका हुआ । छाया हुआ । आच्छादित ।
 छादी-वि० [सं० कानित] [स्त्री० कानिनी] छादक । धारणकारि ।
 आच्छादन करनेवाला ।
 छादिक-वि० [सं०] (१) वह जो घेरा छिपाए हो । पारदर्शी ।
 मकार । (२) बहुरूपिवा ।
 छान-संज्ञा स्त्री० [सं० छानन = छानन, छन] छपर । घास फूस

की छानना । ३०—टूटी छानि में जल बरसे टूटे पलंग विद्याइये ।—सूर ।

धो०—छान छप्पर = छानन । खपल ।

छा छो० [सं० छँ] यह रस्ती जिससे किसी पशु के पैर बांधे जाय । बंधन ।

छानना—क्रि० घ० [सं० चान्ना वा चान्] (१) किसी चूर्ण वा तत्स पदार्थ को महीन कपड़े या और किसी छेददार वस्तु के पार निकालना जिसमें उसका कड़ा काकट अथवा खुदुआ वा मोटा श्रंश निकल जाय । जैसे, पानी छानना, शरयत छानना, छाया छानना ।

संयो० क्रि०—ढालना ।—देना ।—लेना ।

(२) किसी जुड़ी वस्तुओं को एक दूसरे से अलग करना । भली और दुरी अथवा भाल और व्याज्य वस्तुओं को परस्पर पृथक् करना । दिखाना । ३०—(क) जानि कं अनजान दुःखों तत्त्व न लीया छानि ।—कबीर । (ख) मज्जन पान किया को सुरसरि वनेनास जल छानी ?—तुलसी । (३) विवेक करना । शन्धीषण्य करना । जांचना । पड़तालना । (४) देर भाल करना । झूटना । अनुसंधान करना । शन्वेषण्य करना । तलाश करना । खोज करना । ३०—सारा पर छान डाला पर काज न मिला ।

संयो० क्रि०—ढालना ।

(२) भेद कर पार करना । किसी वस्तु को छेद कर इस पार से उस पार निकालना । ३०—जय ही मारयो रेंचि के तय में मूया जानि । लागी चोट जो सबद की गई करेने छानि ।—कबीर । (६) गथा पीना । जैसे, भांग छानना, शराय छानना ।

क्रि० सं० [सं० छान, हि० छँदना] (१) रस्ती से बांधना । जकड़ना । रस्ती आदि से कसना ।

धो०—बांधना छानना । ३०—असवाय शधि छान कर पड़ले में रर दो ।

(२) घोड़े गद्दे आदि के पैरों को रस्ती से जकड़ कर बांधना । ३०—कबीर प्रगतहि राम कहि छानि राम न गाय । फूम क जोड़ा दूर कर यहुरि न लागे लाय ।—कबीर ।

छानना—संज्ञा छो० [हि० छानना + बंधना] (१) पूर्ण अनुसंधान वा शन्वेषण्य । जांच पड़ताल । गहरी खोज । (२) पूर्ण विवेचना । विस्तृत विचार । पूर्ण समीक्षा ।

क्रि० प्र०—धरना ।—होना ।

छाना—क्रि० सं० [सं० छान] (१) किसी वस्तु के सिरे वा ऊपर के भाग पर कोई दूसरी वस्तु इस प्रकार रखना वा फैलाना जिसमें वह पूरा पूरा ढक जाय । ऊपर से आच्छादित करना । संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(२) पानी, धूप आदि से बधाव के लिये किसी स्थान के

ऊपर कोई वस्तु तानना वा फैलाना । जैसे, छप्पर छाना, मंडप छाना, धार छाना । ३०—(क) पुण्य नखत सिर ऊपर थावा । हैं विनु नाहें मँदिर को छावा ?—जायसी । (ख) ऊपर सता चँदवा छावा । था भुँइ सुर्ग विद्याव विछावा ।—जायसी ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग आच्छादक और आच्छादित दोनों के लिये होता है, जैसे, छप्पर छाना, धार छाना ।

संयो० क्रि०—ढालना ।—देना ।—लेना ।

(३) विद्याना । फैलाना । ३०—मायके की सखी सों मँगव फूल मालती के चादर सों ढाँपे छाप तोसक पहल में ।—धुनवाय । (४) शरय में लेना । रक्षा करना । ३०—छग्रहिं अद्गत, अछग्रहिं छावा । दूसर नाहिं जो सरि-परि पावा ।—जायसी ।

क्रि० अ० (१) फैलाना । पसरना । बिड़ जाना । भर जाना । जैसे, बादल छाना, हरियाली छाना । ३०—(क) फूले कमि सकल महि छाई ।—तुलसी । (ख) बरपा काल मेंव मम छाए । गरजत लागत परम सुहाए ।—तुलसी । (ग) कैसे धरो पीर पीर पावल प्रवल आये, छाई हरियाई छिनि, नम बग-पती ई ।—दासीराम ।

संयो० क्रि०—उठाना ।—जाना ।

(२) डेरा ढालना । बसना । रहना । टिकना । ३०—(क) जय सुधीय भवन फिरि छाये । राम प्रवर्षन-गिरि पर छाए ।—तुलसी । (ख) हम तो हतने ही मखु पाये । सु बर श्याम कमल-दल लोचन यहुरि दास दिखारये । कदा भये जो लोग कहत हैं काण्ड दासका छाये । सुनि यह दया विरहि लोगन की उठि आतुर छै धाये ।—सूर ।

छानवे—वि० [सं० चान्वेदि, मा० चण्वेद वा छं + नवे] जो संख्या में नव्वे की वस्तु हो । नव्वे से छ अधिक ।

संज्ञा पुं० छानवे की संख्या वा संक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१६ ।

छानी—संज्ञा छो० [हि० छान] सं० छान्य] इस के रस की नाद के ऊपर का दहन जो सरकंडे वा बसि की पतली फट्टियों का बनता है ।

छाप—संज्ञा छो० [हि० छापना] (१) वह चिह्न जो किसी रंग पुने हुए सचि के किसी वस्तु पर धक्कर बनाया जाय । छुदे वा उमरे हुए उष्ये का निशान । जैसे, चंदन वा गेरू की छाप, य्टी की छाप, हथेली की छाप ।

क्रि० प्र०—ढालना ।—लगाना ।—लगाना ।

(२) मुहर का चिह्न । मुद्रा । ३०—दान विपु विनु जान न देही । मरिगत छाप कदा दिखारयो के नहिं हमको जानत । मुरायाय वष कक्षी खारिती सुन में। कों कथां मानत ।—सूर ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।—लगाना ।—लगाना ।

(३) गोल चक्र आदि के चिह्न जिन्हें वैष्णव श्रवणें श्रंगों पर गरम धातु से श्रंक्ति कराते हैं। मुद्रा। उ०—(क) द्वारका छाप लगे भुज मूल पुरातन माहिं महात्मन भीत हैं। (ख) भेंटे कर्णों हूँ न मिटति छाप परी टटकी। सुरदास प्रभु की छवि हिरदय मी भवकी।—सुर।
(४) यह निशान जो सचि से श्रवण की राशि के ऊपर मिट्टी डाल कर लगाया जाता है। चांक। (५) एक प्रकार की श्रंगुटो जिलमें नगीने की जगह पर श्रघर आदि खुदा हुआ ठप्पा रहता है। उ०—विद्रम श्रंकर श्रंगुरि पानि चरें रंग सु दरता सरसाने। छाप छला मुँदरी कमकें, दमकें पहुँची गजरा मिलि माने।—गुमान। (६) कवियों का उपनाम।
शंशा छी० [सं० तेष = तेष] (१) कटि वा लकड़ी का बोक जिसे लकड़िहारे जंगल से सिर पर उठा कर खाते हैं।
(२) धांस की धनी हुई टोकरि जिससे मिँचाई के लिये जलाशय से पानी उलीच कर ऊपर चढ़ाते हैं।

छापना—कि० सं० [सं० चपन] (१) किसी ऐसी वस्तु को जिस पर स्याही गीला रंग आदि पुता हो दूसरी वस्तु पर रखकर वा छुलाकर उसकी आकृति चिह्नित करना। (२) किसी सचि को किसी वस्तु पर इस प्रकार दयाना कि उसकी, श्रयवा उसपर के खुदे वा उभरे हुए चिह्नों की, आकृति उस वस्तु पर उतर आये। ठप्पे से निशान डालना। मुद्रित करना। श्रंक्ति करना। (३) कागज आदि को धुपे की कल में दबाकर उसपर श्रघर वा चित्र श्रंक्ति करना। मुद्रित करना। जैसे, पुस्तक छापना, श्रखबार छापना।

छापा—शंशा पु० [हि० छापना] (१) ऐसा सचि जिस पर गीला रंग वा स्याही आदि पोत कर किसी वस्तु पर उसकी श्रयवा उभर खुदे वा उभरे हुए चिह्नों की आकृति उतारते हैं। ठप्पा। जैसे, छीपियों का छापा, तिलक लगाने का छापा। (२) मुहर। मुद्रा। (३) ठप्पे वा मुहर से दयाकर डाला हुआ चिह्न वा श्रघर। (४) ध्यापन के माल पर डाला हुआ चिह्न। मारका। (५) शंस, चक्र आदि का चिह्न जिसे वैष्णव श्रवणें वाहु आदि श्रंगों पर गरम धातु से श्रंक्ति कराते हैं। उ०—जप माला छापा तिलक सरे न एकी काम।—विहारी। (६) धंजे का यह चिह्न जो विवाह आदि शुभ श्रवसरोँ पर हलदी आदि से छाप कर (धीशर कपड़े आदि पर) डाला जाता है। (७) वह कल जिससे पुस्तकें आदि छापी जाती हैं। छापे की कल। मुद्रा यंत्र। प्रेस। दे० 'प्रेस'।

छापा—छापाखाना।

(८) एक प्रकार का ठप्पा जिससे खलिहानों में राशि पर शाल रखकर चिह्न डाला जाता है। यह ठप्पा गोल वा चौकार होता है जिसमें डेढ़ दो हाथ का डंडा लगा रहता है। (९) किसी वस्तु की ठीक ठीक नकल। प्रतिकृति।

(१०) रात में सोते हुए वा खेतपर लोगों पर सहसा श्राक्रमण। रात्रि में असावधान शत्रु पर धावा वा वार।

क्रि० प्र०—मारना।

छापाखाना—शंशा पु० [हि० छापा + खाना] यह स्थान जहाँ पुस्तकें आदि छापी जाती हैं। मुद्रालय। प्रेस।

छाम—वि० [सं० चाम] चीण। पतला। छुरा। उ०—सीप फूल सरकि सुहावने लजाट लागयो लायी लटै लटकि परी हैं कटि छाम पै।—द्विजदेव।

छामोदरी—वि० [सं० चामोदरी] छोटे पेटवाली। कृमोदरी। (छोटा पेट सौंदर्य का चिह्न माना जाता है)। उ०—तैंहें सुच्छम छामोदरी कटि केहरि की हरि लंक ना ऐसी।—प्रज।

छायल—शंशा पु० [हि० छाया] जियों का एक पहरावा। उ०—मं फटाव कस श्रंगिया राती। छायल बँद लाप गुजराती।—जायसी।

छायार्क—शंशा पु० [सं०] चंद्रमा।

छाया—शंशा छी० [सं०] (१) प्रकाश का श्रभाव जो उसकी किरनों के व्यबधान के कारण किसी स्थान पर होता है। उजाला डालनेवाली वस्तु और किसी स्थान के बीच कोई दूसरी वस्तु पड़ जाने के कारण उत्पन्न कुछ श्रंधकार वा कालिमा। यह थोड़ी थोड़ी दूर तक फैला हुआ श्रंधेरा जिसके धास पास का स्थान प्रकाशित हो। साया। जैसे, पेड़ की छाया, संभ्रप की छाया।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) यह स्थान जहाँ किसी प्रकार की आड़ वा व्यबधान के कारण सूर्य, चंद्रमा, दीपक वा और किसी श्रालोकप्रद वस्तु का उजाला न पड़ता हो। (३) किले हुए प्रकार को कुछ दूर तक रोकनेवाली वस्तु की आकृति जो किसी दूसरी श्रौर श्रंधकार के रूप में दिखाई पड़ती है। परछाईं। जैसे, लंबे की छाया। दे० 'छाँह'। (४) जल, दर्पण आदि में दिखाई पड़नेवाली वस्तुओं की आकृति। श्रपस। (५) तद्रूप वस्तु। प्रतिकृति। श्रनुहार। सदृश वस्तु। पटतर। उ०—कहहुँ सपेम प्रगत को करहुँ। बँहि छाया कवि मति श्रनुसरहुँ।—सुलसी। (६) श्रनुकरण। नकल। उ०—यह पुस्तक एक बँगला उपन्यास की छाया है। (७) सूर्य की एक पत्नी का नाम।

विशेष—इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है। विवस्थान सूर्य की पत्नी संज्ञा थी जिसके गर्भ से वैवस्वत, श्राद्ध देव, यम और यमुना का जन्म हुआ। सूर्य का तेज न सह सकने के कारण संज्ञा ने श्रपनी छाया से श्रपनी ही ऐसी एक ही उत्पन्न की और उससे यह कह कर कि तुम हमारे स्थान पर इन पुत्रों का पालन करना और यह भोदे सूर्य पर

न संज्ञाना अपने पिता विधवाका के घर चली गई। सूर्य ने छाया को संज्ञा ही समझ कर उससे सावधानी और शर्मरूपर नामक दो पुत्र उत्पन्न किए। छाया इन दोनों पुत्रों को संज्ञा की मंत्रिणी की शपथ का अधिका चढ़ाने लगी। इसपर यम क्रुद्ध होकर छाया को जाल मारने चले। छाया ने शाय दिया कि तुम्हारा पैर कट कर गिर जाय। जब सूर्य ने यह सुना तो तब उन्होंने छाया से इस भेद भाव का कारण पूछा, पर उसने कुछ न बताया। अंत में सूर्य ने समाधि द्वारा सब बातें जान लीं और छाया ने भी सारी ध्ववस्था दीक दीक बतला दी। जब सूर्य क्रुद्ध होकर विधवाका के यहाँ गए तब उन्होंने कहा कि "संज्ञा तुम्हारा सेज न सदा सकने के कारण ही यहाँ चली आई थी और अब एक छोटी का रूप धारण करके तब कर रही है"। इसपर सूर्य संज्ञा के पास गए और उसने अपना रूप परिवर्तित किया।

(८) कवि। (९) शरणा। रक्षा। उ०—शय तुम्हारी छाया के नीचे आ गए हैं जो चाहे सो करो। (१०) उल्लेख। पूस। विश्वत। (११) पंच। (१२) कात्यायनी। (१३) शेषकर। (१४) आर्या छंद का एक भेद जिसमें १७ शुभ और २३ लघु होते हैं। (१५) एक शक्ति। संगीतसार के मत से यह हम्मीर और शुद्ध नट के योग से उत्पन्न है। पंचम चादी, शपथ संवादी और अवरोहण में तीव्र भयम्भ लगता है। दामोदर के मत से यह श्राद्ध है जिसका सरयम है—नि प म ग सा। (१६) भूत प्रेत का प्रमाण। शास्य। जैसे इस पर किसी की छाया है।

छाया गणित—संज्ञा पु० [सं०] गणित की एक क्रिया जिसमें छाया के मदारे प्रेक्ष की गति, अयनांश का गमनागमन आदि निरूपित किया जाता है। इसमें एक शंकु के द्वारा विवृत्त-नमंडल स्थिर करके छायाकर्ण निर्धारित किया जाता है।

छायाग्रह—संज्ञा पु० [सं०] दृश्य। आदना।

छायाप्राद्विष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसने समुद्र प्रादंत हुए अनुमान की छाया परफ कर उल्टे छींच लिया था। उ०—या भव पारावार का उल्लिखि पर करे जाय। तिय छवि छाया-माहनी गई यैय ही आय।—विहारी।

छायातनय—संज्ञा पु० [सं०] शर्मरूप।

छायातनय—संज्ञा पु० [सं०] सुरकुत्तागं। छविपन।

छायादान—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का दान।

चिरीष—दान करनेवाला धी या तेल से भरे कसि के फटोरे में अपने दान या परछाईं देल और उसमें कुछ शयिया डाल कर दान करता है। यह दान महानिज शरीर के अतिरि की शक्ति के निमित्त किया जाता है और इसे कुलीन प्राश्य नहीं प्रहण करते।

छायागत—संज्ञा पु० [सं०] एक राग जो कैदार नट, कल्याण नट आदि नव नटों के अंतर्गत है। यह छाया और नट के योग से उत्पन्न है। अवरोहण में तीव्र भयम्भ लगता है। सा चादी ग संवादी। संगीतसार के मत से यह संपूर्ण जाति का राग है और इसका प्रद तथा शरा और न्यात अंत है। यह संभ्या के समय एक दंड से पंच दश तक गाना जाता है। इसकी स्वर-लिपि इस प्रकार है—ध स म रे ग स प ध स नि ध प म म म रे ध ध प म प म म म म रे ध प स म म रे स रे स स स।

छायाग्विन—नि० [सं०] छायायुक्त। सायादार।

छायापृथ—संज्ञा पु० [सं०] (१) आकाशगंगा। हाथी की बहर। बहर। आकाश जलक। (२) देवपथ। (३) आकाश।

छायापद्—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल का एक संघ। इसमें बारह श्रेणुल का शंकु होता था जिसकी छाया से काल का ज्ञान होता था।

छायापुरुष—संज्ञा पु० [सं०] दृष्ट योग के अनुसार मनुष्य की छायारूप आकृति जो आकाश की ओर स्थिर दृष्टि से बहुत दूर तक देखते रहने की साधना करने से दिखाई पड़ती है। संघ में लिखा है कि इस छायारूप आकृति के दर्शन से छ महीने के भीतर होनेवाली भविष्य बातों का पता लग जाता है। यदि पुरुष की आकृति पूरी पूरी दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि छ महीने के भीतर मृत्यु नहीं हो सकती। यदि आकृति मरुत्त शून्य दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि छ महीने के भीतर अवश्य मृत्यु होगी। यदि वरष न दिखाई पड़े तो भार्या की मृत्यु और यदि हाय न दिखाई पड़े तो भाई की मृत्यु निकट समझनी चाहिए। यदि छायापुरुष की आकृति रक्त रण्य दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि यन की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार की और बहुत सी कल्पनाएँ हैं।

छायामान—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा।

छायाभिन्न—संज्ञा पु० [सं०] छाता। छतरी।

छायायंत्र—संज्ञा पु० [सं०] (१) यह यंत्र जिससे छाया द्वारा काल का ज्ञान है। सूर्यमिन्द्रांत में शंकु, धनु, घक आदि हमके अनेक प्रकार बतलाए गए हैं। (२) धूपकड़ी।

छायावात्र—नि० [सं०] जयजल। [श्री० जयजल] (१) छाया-युक्त। सायादार। छादिवाला। (२) शांतिवुक।

छायाविप्रतिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद का एक प्रकार जिसके अनुसार रोगी की कानि, आभा, चेष्टा आदि में उलट फेर का परिचयन देल कर यह निश्चय किया जाता है कि शय यह आसन्न-मरण है वा नहीं दृष्ट्यवा होगा।

छार—संज्ञा पु० [सं०] धार। (१) कुछ जली हुई वनस्पतियों वा सामायिक क्रिया से चुली हुई धातुओं की राख का नामक धार। (२) धारी नामक। चमक। (३) धारी पदार्थ। (४)

मदन । राख । खाक । ३०—(क) जो निदान तन होइहि छार । माटी पोखि मरह बे भार ।—जायसी । (ख) तु-रहि काम भयो जरि छार ।—तुलसी ।

धौ—छार खार करना = मम करना । नष्ट भ्रष्ट करना । ख्या-नाश करना । ३०—उपमा ईश्वर चोप ते श्याया भारत बीच । छार खार सव हिंदू करुं मैं उचम नहि नीच ।—हरिचंद्र । (२) धूल । गर्द । रेख । ३०—(क) गति तुलसीस की लालै न कोऊ जो करति पद्वै ते छार, छार पद्वै सो उपलक ही ।—तुलसी । (ख) मूढ़ छार खारे गजराज ऊ पुकार करै, पुचरीक वृद्धयो री, कपूर खायो कदली ।—केयव ।

छारकर्म—संज्ञा पुं० दे० “छारकर्म” । इस नाम का एक नरक । छारछीला—संज्ञा पुं० दे० “छीला” ।

छाल—संज्ञा स्त्री० [सं० छल, छल] (१) पेड़ों के धड़, शाखा, टहन्यी और जड़ के ऊपर का आवरण जो किसी किसी में मोटा और कड़ा होता है और किसी में पतला और मुलायम । बछल । बलकल । बूच की खवा । जैसे, नीम की छाल, बबूल की छाल । (२) एक प्रकार की मिठाई । ३०—भई मिठाई कहीं न जाई । मुख मेलत खन जाइ बिलगई । मतजहु, छाल, और मारबैती । माठ, पिराके और बुँदाती ।—जायसी । (३) चीनी जो खूब साफ़ न की गई हो ।

छालटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छल + टी] (१) छाल का बना हुआ बछ । सन वा पाट का बना हुआ कपड़ा । (यह पहले अलसी की छाल का बनाया था और इसी को फारसी में कर्ता कहते थे) । (२) सन वा पाट का बना हुआ एक प्रकार का चिकना और फूलदार कपड़ा जो देखने में रेशम की तरह जान पड़ता है ।

छालना—क्रि० सं० [सं० चालन] (१) चालना । छानना । छुनकी न रख कर (छाटा आदि) साफ़ करना । (२) छेद करना । छुनकी की तरह छिद्रमय करना । कँकरा करना ।

छाला—संज्ञा पुं० [सं० छल] (१) छाल वा चमड़ा । चर्म । जिर्द । जैसे, मृगछाला । (२) किसी स्थान पर जलने, लग्न खाने वा और किसी कारण से उत्पन्न चमड़े की ऊपरी झिल्ली का फूट कर उभरा हुआ तल जिसके भीतर एक प्रकार का चोप वा पानी भरा रहता है । फफोला । आबला । कलका । ३०—वर्षान में छाले परे मँघिये घे नाले परे तऊ, लाल, लाले परे रावरे दरस के ।—हरिचंद्र ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

(३) यह उभरा हुआ दाग जो लोहे या शंशे आदि में पड़ जाता है ।

छालिया—संज्ञा पुं० [सं० खली, याली] कल्ले का एक परतन जिसमें धी तेल आदि भर कर छायादान दिया जाता है । छाया पात्र । छाया-दान की कटोत ।

संज्ञा स्त्री० दे० “छाली” ।

छाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाल] (१) कटी हुई सुपारी का चिपटा टुकड़ा । सुपारी का फाल । (२) सुपारी ।

छाली—संज्ञा पुं० [सं० खण, प्रा० कण्ठो] बकरा । (हिं०) छाव—संज्ञा स्त्री० [सं० क्वा] (१) छाया । साया । (२) शरण । ३०—अथ तो हम तुम्हारी छाव में आगप हूँ जो चाहे सो करो । (३) प्रतियोग । श्रवस ।

विशेष—दे० “छाह” ।

छावना—क्रि० सं० दे० “छाना” । ३०—चरण्य घोड़ चरणोदक लोने मांगि देवें मनभावन । तीन पैँड यमुषा हँ चाहीं परण-कुटी को छावन ।—सूर ।

छावनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाना] (१) छप्पर । छान ।

क्रि० प्र०—छाना ।

(२) देहा । पड़ना ।

क्रि० प्र०—ढालना ।—पड़ना ।

(३) सेना के ठहरने का स्थान । फौज की थारिक ।

छावर—संज्ञा स्त्री० [सं० गवत्र] मनुष्यों के छोटे छोटे बच्चे जो कुछ धोच कर एक साथ तैरते हैं ।

छावरा—संज्ञा पुं० [सं० गवत्र] [स्त्री० खरारी] छाना । जान-वा का बच्चा । ३०—भूयन भनत कीजै उतरी भुवाल यस पुरष के लीनिप रसाल गज छावरे ।—भूयन ।

छावा—संज्ञा पुं० [सं० गवत्र] (१) बच्चा । (२) पुत्र । वेदा । (हिं०) । (३) १० से २० वर्ष तक का हाथी । जवान हाथी ।

छासठ—वि० [सं० पट्टे, प्रा० छठठे] जो गिनती में साठ और छ हो ।

संज्ञा पुं० साठ और छ की संख्या तथा उसका सूचक संक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६९ ।

छाह—संज्ञा स्त्री० दे० “छाड़” ।

छिड़क—संज्ञा पुं० [हिं० छिड़का] [स्त्री० छिड़की । वि० छिड़कता] जो साधारण छिड़के से छोटा और पतला तथा भूरे रंग का होता है और बड़े जोर से काटता है । यह प्रायः पेड़ों पर होता है ।

छिड़कहा—वि० [हिं० छिड़का] [स्त्री० छिड़की] (लकड़ी, पेड़, पेड़ की डाल आदि) जिसमें छिड़के लगे हों वा जिसे छिड़कों ने खा लिया हो ।

छिड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिड़का] (१) एक प्रकार की छोटी चोंडी जो बड़े जोर से काटती है । (२) एक छोटा उड़नेवाला कीड़ा जिसके काटने से बड़ी जलन होती है । (३) लोहे का एक शीमार जो छुवाली से छोटा होता है और धंवार में लगाया जाता है । यह लकड़ी उठाने के काम में आता है । (४) रास्ती की यह सुदी जो बोरों में हल खिंचे खींची रहती

है कि दोड़े की पीठ पर सादने पर उनमें एक लकड़ी फँसा दी जाय।

छिंकाना-कि० रा० [हिं० छिंकना का प्रे०] छिंकाके की क्रिया करना। छींक लाना।

छिंमुनी, छिंमुनिया-संज्ञा स्त्री० दे० "छिंमुनी"।

छिंमुली, छिंमुलिया-संज्ञा स्त्री० दे० "छिंमुनी"।

छिंछिक-संज्ञा स्त्री० [अजु०] छींटा। धार। फौवारा। उ०—

(क) शोषित छिंछि बरिषाकासहिं गजवाजिन सर लागी।—सूर। (ख) शोषन छिंछि वृत्त बदन भीम भई सेदि काल। माने हृष्या कुटिलयुत पाचक ज्वाल कराल।—चैषव। (ग) अति न्यछलि छिंछि विदूट धृषे। पुर राचय के जल जोर भये।—बैशव।

छिंडुका, छिंडुका-संज्ञा पुं० [हिं० छिंटना] बीज बोने का एक ढंग जिसमें बीज को हाथों में लेकर रोते में बिखारते हैं। छिंटा।

छिंडाना-कि० सं० [हिं० छिंटना] छिंनना। अजरदली ले लेना।

उ०—(क) श्याम सलज सों बहेउ टेरे दे देरी सय अय जाय। बहून बीठ यह भई ग्वालिनी मटकी लेहु छिंकाय।—सूर।

(ख) गोरस लेहु री फाउ अय। दानि तुम्हरे जाति नही लेत रहिउ छिंकाय।—सूर।

छि-बद्ध० [अजु०] (१) पृथग्वचक शब्द। दिन जवाने का शब्द। जैसे, छि, छि ! देखा तो तुम्हारे हाथ में चितनी मँग लगी है। (२) तिरकार या धरचि चूचक शब्द। जैसे, छि ! तुम्हें मांगते सजा नहीं आती।

छिउला-संज्ञा पुं० दे० "छीउल"

छिउला-संज्ञा पुं० [सं० छुप + ला (प्रत्य०)] छोटा पेड़। पीया।

छिंकनी-संज्ञा स्त्री० [सं० छिंकनी] एक प्रकार की बहुत छोटी घास या घुँटी जो जमीन ही पर फैलती है, ऊपर नहीं बढ़ती। इसमें छोटी छोटी बुड़ियों की तरह के गुँग के दाने के बराबर गोस पूल लगते हैं जिन्हें सूँघने से बहुत धीक आती है। यह घास भायः ऐसे स्थानों पर अधिक होती है जहाँ कुछ दिनों तक पानी जमा रह कर सूख गया हो, जैसे छिंछले ताल आदि। यह शोषण के काम में आती है और पैतक में गरम, रक्षिकारक, अग्निदीपक तथा स्वेत कुछ आदि स्वचा के रोगों को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसे नकछिंकनी भी कहते हैं।

पर्याय—छिंकनी। चपट्ट। लीक्ष्णा। रामा। उग्रगंधा। चपट। कूरनासा। आण्डुःखर।

छिंकार-संज्ञा [सं० छिंकार] हिस्र की जाति का एक जानवर जो बहुत तेज होता है। पृथ्वीवृद्धि के अनुसार ऐसे रोग का दाहिनी ओर से निष्काना श्रेय है।

छिंका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छींका। (२) दे० "छींटा"।

छिंकर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग। छिंकरा।

छिंकार-संज्ञा पुं० [सं०] छिंकर नामक रोग।

छिंकिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छिंकनी। नकछिंकनी।

छिंमुनिया-संज्ञा स्त्री० दे० "छिंमुनी"।

छिंमुनी-संज्ञा स्त्री० [सं० अजु० + अजुनी] सबसे छोटी रँगली। फनिच्छा। उ०—(क) गौरी छिंमुनी नल अरन छुला श्याम धुवि देह। खहत सुकति रति छिंकेक यह नैन त्रिनेनी सेह।—विहारी। (ख) थापे थाप भली करो मेट न मान मोर। करो यह दूर देखिहै छुला छिंमुनिपां छोरा।—विहारी।

छिंमुली-संज्ञा स्त्री० दे० "छिंमुनी"

छिच्छ-संज्ञा स्त्री० [अजु०] छूँद। छींटा। सीकर। उ०—(क) राम सर लागि मनु कागि गिरि पर अती उदलि छिच्छिन शानि मानु छाप।—सूर। (ख) बहूँ शोन छिच्छ कति लाल लाल। मनु इंदुबपु करि रहिय जात।—सूदन।

छिच्छकारना-कि० सं० [अजु०] छिंफकना।

छिच्छड़ा-संज्ञा पुं० दे० "छींछड़ा"।

छिछयाना-कि० सं० [अजु० छि छि] निंदा करना। पिन करना।

छिछला-वि० [हिं० छुला + ला (प्रत्य०)] [स्त्री० छिछले] (पानी की तरह) जो गहरी न हो। उबला। जैसे छिछला पानी, छिछला घाट, छिछली नदी।

छिछलारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छिछला] छिछला होने का भाव।

छिछली-वि० स्त्री० दे० "छिछला"।

संज्ञा स्त्री० (अजु०) लकड़ी का एक रोज जिसमें वे एक पत्तले डीकरे को पानी पर हल तरह फेंकते हैं कि वह दूर तक उड़लता हुआ चला जाता है।

कि० प्र०—खेजना।

छिछोरपन, छिछोरापन-संज्ञा पुं० [हिं० छिछेरा] छिछोरा होने का भाव। छुड़ता। शोषापन। नीचता।

छिछोरा-वि० [हिं० छिछला] [स्त्री० छिछेरा] छुड़ा। शोषा। जो गमोर वा शैष्य न हो। नीच मकृति का।

छिजना-कि० अजु० दे० "छीजना"।

छिजाना-कि० सं० [हिं० छिजना] किसी वस्तु को ऐसा करना कि यह छीज जाय। छीजने या नष्ट होने देना।

छिटकना-कि० अजु० [सं० गिग, प्र० गिग, छिट + करण] (१) छपर उधर पड़ कर फैलना। चारों ओर बिखरना। जिताना। धरना।

संघे० कि०—जाना।

(२) प्रकाश की किरणों का चारों ओर फैलना। प्रकाश का फैलना होना। उमाला छाना। जैसे, चांदनी छिटकना, तारे छिटकना। उ०—(क) जहाँ जहाँ बिहमि समा भई हैनी। * वहाँ वहाँ छिटकि जोगि परगसी।—जायसी। (ख) मलय

सुमन नभ विषय घोड़ि मने छुपा छिटकि छुवि छाई ।—
तुलसी ।

छिटकनी—संज्ञा स्त्री० दे० “सिटकनी” ।

छिटका—संज्ञा पुं० [हिं० छिटकना] पालकी के थोहार का यह भाग जो दूरवाने के सामने रहता है और जिसे उठा कर लोग पालकी में घुसते निकलते या उसमें से बाहर देखते हैं । परदा ।

छिटकाना—क्रि० सं० [हिं० छिटकना] चारों ओर फैलाना । इधर उधर डालना । बिखराना ।

छिटकी—संज्ञा स्त्री० दे० “छूटि”, “छूटी” ।

छिटकुनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] पाली छुड़ी । कमची ।

छिटनी—संज्ञा स्त्री० [सं० शिवय वा हिं० छोटनी] घांस की फट्टियों या पेड़ के डंठलों आदि की घनी हुई छोटी टोकरी । भौया । डलिया ।

छिटवा—संज्ञा पुं० [सं० शिवय वा हिं० छोटनी] [स्त्री० अण० छिटवन्] घांस की फट्टियों आदि का टोकरी ।

छिटका—संज्ञा पुं० [हिं० छिटकना] एक बालिरत लंबी मोटी लकड़ी जिसे धुनिपूर पैर के झंझूड़े और उसके पास की डेंगली से दबा कर और उसमें फटके की तांत फँसा कर रई धुनते हैं ।

छिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोट] छोटा छोट। स्त्रीकर । सूक्ष्म जलकण ।

छिट्ठकना—क्रि० सं० [हिं० छोटना + करना] (१) पानी या किसी और द्रव पदार्थ को इस प्रकार फँकना कि उसके महीन महीन छुंटे फैल कर इधर उधर पड़ें । पानी आदि के छुंटे डालना । मिगोने या तर करने के लिये किसी वस्तु पर जल बिखराना । जैसे, पानी छिट्ठकना, रंग छिट्ठकना, गुलाब-जल छिट्ठकना । उ०—पानी छिट्ठक दो तो यहाँ की धूल बैठ जाय । (२) न्योछावर करना । जैसे, जान छिट्ठकना । (छि०) ।

छिट्ठकवाना—क्रि० सं० [हिं० छिट्ठकना] छिट्ठकने का काम कराना ।

छिट्ठकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिट्ठकना] (१) छिट्ठकाव । छिट्ठकने की क्रिया या भाव । (२) छिट्ठकने की मजूदरी ।

छिट्ठकाना—क्रि० सं० दे० “छिट्ठकवाना” ।

छिट्ठकाव—संज्ञा पुं० [हिं० छिट्ठकना] पानी आदि छिट्ठकने की क्रिया । छुंटे से तर करने का काम । उ०—यहाँ सड़कें पर छिट्ठकाव नहीं होता ।

छिट्ठना—क्रि० अ० [हिं० छोटना] आरंभ होना । शुरु होना । चल पड़ना । जैसे, बात छिट्ठना, झगड़ा छिट्ठना, बर्चा छिट्ठना, सितार छिट्ठना ।

छिट्ठनी—संज्ञा पुं० दे० “चण” ।

छितनी—संज्ञा स्त्री० [सं० छय, प्रा० छत] टोकरी । छोटी घोर छिट्ठली टोकरी ।

छितरना—क्रि० अ० दे० “छितराना” ।

छितर बितर—वि० दे० “छितर बितर” ।

छितराना—क्रि० अ० [सं० गित + कर्ष, प्रा० छिष्कारण, छितरणे अयमा सं० संतरण] खेतों या कर्षों का गिर कर इधर उधर फैलाना । बहुत सी वस्तुओं का बिना किसी क्रम के इधर उधर पड़ना । बिखरना । छितर बितर होना । उ०—(क) हाथ से गिर कर सब चने जमीन पर छितरा गए । (ख) सब धोखे इधर उधर छितराई पड़ी हैं, उठा कर ठिकाने से सर दे ।

क्रि० सं० रेतों वा कर्षों को गिरा कर इधर उधर फैलाना । बहुत सी वस्तुओं को बिना किसी क्रम के इधर उधर डालना । बिखराना । छुंटना ।

(२) सटी वस्तुओं को शलग शलग करना । दूर दूर करना । घनी वस्तुओं को बिखल करना ।

मुहा०—टांग छितराना = दमि टांगों को थगल की ओर दूर दूर रखना । टांगों को वगल या पार्श्व की ओर फैलाना । जैसे, टांग छितरा कर चलना ।

छितराव—संज्ञा पुं० [हिं० छितराना] छितराने का भाव । बिखरने का भाव ।

छिति—संज्ञा स्त्री० [सं० निति] (१) भूमि । पृथ्वी । (२) एक का अंक । उ०—संबन्ध ग्रह ससि जलधि छिति छट तिथि वासर चंद्र । चैत मास पक्ष कृष्ण में पूरन आनंदकंद ।—निहारी ।

छितिकंत—संज्ञा पुं० [सं० नितिकंत] भूपति । राजा ।

छितिपाल—संज्ञा पुं० [सं० नितिपाल] भूपाल । राजा ।

छितिग्रह—संज्ञा पुं० [सं० नितिग्रह] पेड़ । वृक्ष ।

छिवीस—संज्ञा पुं० [सं० नितिवेस] राजा ।

छितवर—वि० [सं०] (१) छेदक । (२) धूर्त । (३) वैरी ।

छिदना—क्रि० अ० [हिं० छेदना] (१) छेद से युक्त होना । मुराखदार होना । भिदना । बिचना । उ०—इस पतली सुरे से यह कागज नहीं छिदेगा । (२) फलपूर्य होना । धायल होना । गुलामी होना । उ०—सारा शरीर तीरों से छिद गया था ।

† क्रि० सं० घाम लेना । सहारे के लिये पकड़ लेना ।

† संज्ञा पुं० घरच्छा । फलदान । मँगनी ।

छिदना—वि० [हिं० छिद] (१) बिरल । छितराया हुआ । जो पना न हो । (२) भैरवीदार । छेददार । (३) फटा हुआ । जर्जर ।

† वि० [सं० छुद] थोड़ा ।

छिदवाना—क्रि० सं० दे० छेदना ।

छिदाना—क्रि० सं० दे० “छेदाना” ।

छिद्र-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छिद्रित] (१) छेद । सुराल ।
 (वि०) (२) गहड़ा । विवर । (३) श्रवणशक्ति । जगह ।
 (४) दोष । मुक्ति, जैसे छिद्रान्वेषण ।

धा०—छज छिद्र ।

(४) कलित ज्योतिष के अनुसार लग्न से आठवाँ घर । (६)
 नौ की संख्या ।

छिद्रदर्शी-वि० [सं० छिद्रदर्शिन] पराया दोष देखनेवाला ।
 नुक्स निकालनेवाला । सुचारु निकालनेवाला ।
 संज्ञा पुं० एक योगप्रद प्राण्य का नाम । हरिवंश के धनु-
 सार यह यात्राय का पुत्र था ।

छिद्रवेदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिपत्नी । गजपीपर ।

छिद्रान्ता-वि० [सं० छिद्रान्तम्] श्लास्यभाव । कुटिल । खल ।
 छिद्रान्वेषण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छिद्रान्वेषी] दोष ढूँढ़ना ।
 नुक्स निकालना । सुचारु निकालना ।

छिद्रान्वेषी-वि० [छिद्रान्वेषिन्] [स्त्री० छिद्रान्वेषी] छिद्र ढूँढ़ने-
 वाला । पराया दोष ढूँढ़नेवाला । सुचारु निकालनेवाला ।

छिद्राफल-संज्ञा पुं० [सं०] मातृफल ।

छिद्रित-वि० [सं०] (१) छेदा हुआ । वेधा हुआ । (२) जिसमें
 दोष लगा हो । दूषित ।

छिद्रोदर-संज्ञा पुं० [सं०] श्लेठोदर नामक पेट का रोग ।

छिनक-संज्ञा पुं० दे० "छण" ।

छिनक-वि० [सं० छण + एक] एक छण । दम भर ।
 थोड़ी देर । उ०—छन समूह को छिनक में आरत शक्ति
 थीमार ।

छिनकना-वि० [सं०] [छिद्रकना] नाक का मल कोर से सांस
 बाहर करके निकालना । जैसे, नाक छिनकना ।

छि० श्र० [हिं० चणकना] (१) भङ्ग कर भागना । चनकना ।
 दे० "छनकना" । (२) रंजक खात जाना । (बहुक) ।

छिनछवि-संज्ञा स्त्री० [सं० छण + छवि] विजली ।

छिनदा-संज्ञा स्त्री० दे० "छणदा" ।

छिनना-वि० श्र० [हिं० छिनना] छीन लिया जाना । हरण
 होना ।

संघा० छि०—ज्ञाना ।

छि० सं० [सं० छिद्र] (१) पथर का छेनी वा टाँकी के
 आघात से कटना । (२) सिल, चकी आदि का छेनी के
 आघात से सुरदरी वा गडदेदार होना । कुटना ।

छिनरा-वि० [हिं० छिनर] [स्त्री० छिनर, छिनार] पर-खी-नामी
 पुरुष । लंपट । बृषल ।

छिनघाना-वि० सं० [हिं० 'छिनना' का प्र०] छीनने का काम
 करना ।

छि० सं० [सं० छिद्र] (१) पथर को छेनी से कटवाना ।
 (२) सिल चकी आदि को छेनी से सुरदरी करना । कुटना ।

छिनाना-वि० सं० [हिं० 'छिनना' का प्र०] छीनने का काम
 करना ।

छि० सं० छीनना । हरण करना । उ०—कामधेनु जमदग्नि
 की ली गयो वृषति छिनान् ।—सूर ।

छि० सं० [सं० छिद्र] (१) टाँकी वा छेनी से पथर आदि
 कटना । (२) टाँकी वा छेनी से सिल चकी आदि को
 सुरदरी करना ।

छिनार-वि० स्त्री० दे० "छिनार" ।

छिनार-वि० स्त्री० [सं० छिनार + नारी, पुं० छि० छिनारि] व्यभि-
 चारिणी । कुलटा । परपुरुषगमिनी ।

संज्ञा स्त्री० व्यभिचारिणी स्त्री ।

छिनारपन, छिनारपना-संज्ञा पुं० [हिं० छिनार + पन] व्यभि-
 चार । छिनारा ।

छिनाराला-संज्ञा पुं० [हिं० छिनार] व्यभिचार । स्त्री-पुरुष का धनु-
 चित सवसास ।

छिद्र-वि० [सं०] जो काट कर थलग हो गया हो । जो काट कर
 पृथक् कर दिया गया हो । खंडित ।

यो०—छिद्र मिश्र ।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का मंत्र । (२) वैद्यक के अनुसार
 एक प्रकार का फोड़ा । इसका छत मीथी वा टेढ़ी लकीर के
 रूप में होता है और इसमें मनुष्य का श्रंग गलने लगता है ।

छिद्र मिश्र-वि० [सं०] (१) कटा हुआ । खंडित । टूटा फूटा ।
 (२) नष्ट भ्रष्ट । (३) तितर बितर । जिसका क्रम खंडित
 हो गया हो । अस्त व्यस्त ।

छिद्रपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्रा । पात्रा ।

छिद्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] तिसक वृक्ष ।

छिद्रमस्ता-वि० [सं०] तिसका माथा कटा हो ।

संज्ञा स्त्री० एक देवी जो महा विद्याओं में धृष्टी हैं । इनका
 ध्यान इस प्रकार है—धरना ही कटा हुआ सिर धरने बाएँ
 हाथ में लिए, मुँह सोले और जीभ निकाले हुए धरने ही
 गले से निकली हुई रक्त धारा को चाटती हुई, हाथ में छत्र
 लिए, मुँहों की माला धारण किए और दिगंबर । इनका
 नाम प्रचंडिका भी है । तंत्रसार में इनका पूरा विवरण
 लिखा है ।

छिद्रकह-संज्ञा पुं० [सं०] तिसक वृक्ष । पुत्राग ।

छिद्रकहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुशुच । गिलोय ।

छिद्रत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी शस्त्र से कटा हुआ धातु ।
 (२) यह फोड़ा जो किसी ऐसे पात पर हो जो पात से
 लगा हो ।

छिद्रवेदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्रा ।

छिद्रश्यास-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग । यह श्याम का भेद
 माना जाता है । इसमें रोगी का पेट फूलना है, पसीना आता

सुमन नभ विटप थोड़ि मनो छपा छिटिकि छपि छाई ।—
तुलसी ।

छिटकनी—संज्ञा स्त्री० दे० “सिटकनी” ।

छिटका—संज्ञा पुं० [हिं० छिटकना] पालकी के शोहर का वह भाग जो दवाजे के सामने रहता है और जिसे उठा कर लोग पालकी में धुलते निकलते या उसमें से बाहर देखते हैं ।
परदा ।

छिटकाना—कि० सं० [हिं० छिटकना] चारों ओर फैलाना । इधर उधर सालना । विखराना ।

छिटकी—संज्ञा स्त्री० दे० “छीट”, “छीटा” ।

छिटकुनी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पतली छड़ी । कमची ।

छिटने—संज्ञा स्त्री० [सं० गिष्य वा हिं० छिटना] घास की फट्टियों या पेड़ के डंठलों आदि की घनी हुई छेटी टोकरी । मौवा । ढलिया ।

छिटचा—संज्ञा पुं० [सं० गिष्य वा हिं० छिटना] [स्त्री० रूप० छिटनी] घास की फट्टियों आदि का टोकरी ।

छिटपाका—संज्ञा पुं० [हिं० छिटकना] एक थालिखत खंची मोटी लकड़ी जिसे धुनिपूर पर के थोड़े थोड़े उसके पास की डैंगली से दबा कर और उसमें फटके की तर्त फँसा कर रई धुलते हैं ।

छिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छीटा] छोटा छिटा । सीकर । सूक्ष्म जलकण ।

छिट्ठकना—कि० सं० [हिं० छीटा + करना] (१) पानी या किसी और द्रव पदार्थ को इस प्रकार फेंकना कि उसके महीन महीन छोट्टे फैल कर इधर उधर पड़े । पानी आदि के छोट्टे ढालना । भिगोने या तर करने के लिये किसी वस्तु पर जल विखराना । जैसे, पानी छिट्ठकना, रंग छिट्ठकना, गुलाब-जल छिट्ठकना । ४०—पानी छिट्ठक दे तो यहाँ की पूल बँट जाय । (२) न्योछावर करना । जैसे, जान छिट्ठकना । (पि०) ।

छिट्ठकाना—कि० सं० [हिं० छिट्ठकना] छिट्ठकने का काम कराना ।

छिट्ठकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिट्ठकना] (१) छिट्ठकाव । छिट्ठकने की क्रिया या भाव । (२) छिट्ठकने की मजदूरी ।

छिट्ठकाना—कि० सं० दे० “छिट्ठकाना” ।

छिट्ठकाव—संज्ञा पुं० [हिं० छिट्ठकना] पानी आदि क्रिया । छोट्टे से तर करने का काम । ४०—पानी छिट्ठकाव नहीं होता ।

छिट्ठना—कि० अ० [हिं० छिट्ठना] धार में फैलाना । जैसे, धार छिट्ठना, जल छिट्ठना, सितार छिट्ठना ।

छिट्ठ—संज्ञा पुं० दे० ‘चथ’ ।

छितनी—संज्ञा स्त्री० [सं० छन, प्रा० छच] टोकरी । छेटी । छिट्ठली टोकरी ।

छितरना—कि० अ० दे० “छितराना” ।

छितर बितर—वि० दे० “तितर बितर” ।

छितराना—कि० अ० [सं० निग + करण, प्रा० क्तिप्रकर कथवा सं० संस्करण] रसों वा कणों का गिर उधर फैलना । बहुत सी वस्तुओं का बिना के इधर उधर पड़ना । बिखरना । तितर बितर (क) हाथ से गिर कर सब चने जमीन पर (ख) सग चीजों इधर उधर छितराई पड़ी हैं । से रस दे ।

कि० सं० रसों वा कणों को गिरा कर बहुत सी वस्तुओं को बिना किसी ढालना । बिखराना । छीटना ।

(२) सटी वस्तुओं को अलग अलग घनी वस्तुओं को बिखल करना ।

मुहा०—रंग छितराना = देना टराना । टंगों को धरात या टंग छितरा कर चतना ।

छितराव—संज्ञा पुं० [हिं० छितरा] का भाव ।

छिति—संज्ञा स्त्री० [सं० चि + प्रथक्] ४०—संबन्ध चंद । चैत माल पट

छितिकत—संज्ञा पुं० [

छितिपाल—संज्ञा पुं०

छितिहृत्—संज्ञा पुं०

छितिस—संज्ञा पुं०

छितवर—वि० [

छिदाना—कि०

की लंबाई दाईं तीन अंगुल से आधिका नहीं होती और दूध का रस निचोड़ कर जल, दूध आदि में डालने से जल वा रूप गाढ़ होकर जम जाता है। इस खेल में बहुत छोटे छोटे फल गुच्छों में लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते हैं। दैवक में धिरेटा मंशुर, पीथैवदंकर, रुचिकारक तथा पित्त, दाह और विष को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्याय० छिद्राईद । पातालगदड़ । महामूल । कसादनी । तिक्ताना । मोचकभित्वा । ताण्ण । सौपर्या । गायड़ी । दीर्घ बांदा । महावसा । दीर्घवह्नी । इद्वलता ।

छिद्रकना—कि० सं० 'छिद्रकना' ।

छिद्रकना—संज्ञा पु० [हिं० छल] फलों केदों तथा इसी प्रकार की और वायुधों के ऊपर का कोश या पाहरी आवरण जो छीलने, काटने वा तोड़ने से सहज में अलग हो सकता है। फलों की लवचा या ऊपरी मिट्टी। एक परत की खोल जो फलों, धीनों आदि के ऊपर होती है। जैसे, सेब का छिद्रकना, कदल का छिद्रकना, गन्ने का छिद्रकना, अंग्रे का छिद्रकना ।

विशेष—छाल, छिद्रकना और मूसरी में अंतर है। छाल पेड़ों के पत्र, बाल और तहनियों के ऊपरी आवरण को कहते हैं, छिद्रकना, कंद, मूल, फल आदि के ऊपर के आवरण को कहते हैं जो काटने छीलने आदि से जल्दी अलग हो जाता है। मूसरी महीन दानों के सूखे हुए आवरण को कहते हैं जो छूटने से अलग होता है ।

छिद्रछिलारां—वि० दे० 'छिद्रकना' ।

छिद्रना—कि० अ० [हिं० छंरना] (१) इस प्रकार कटना जिसमें ऊपरी सतह वा आवरण निकल जाय। छिलकने वा चमड़े का कट कर अलग होना। उषड़ना । (२) रगड़ या क्षावत से ऊपरी चमड़े का कुछ भाग कट कर अलग हो जाना। खरोच जाना। उ०—पैर में जरा सा छिद्र गया है। (३) गले के भीतर चुनचुनाइट वा चुकली स्ती होना। जैसे, सुरन से सारा गला छिद्र गया ।

संशो० कि०—जाना ।—उटना ।

छिद्रया—संज्ञा पु० [हिं० छंरना] यह मनुष्य जो ईल के खेतों में ईल काट कर उसकी पत्तियों को झील कर दूर फरसा है ।

छिद्रयाना—क्र० सं० [हिं० छंरना का प्र०] छीलने के लिये निरत करना। छीलने का काम कराना। जैसे, पास छिद्रयाना ।

छिद्राईद—संज्ञा पु० [सं०] धिराहटा । धिरेटा ।

छिद्राना—कि० सं० दे० 'छिद्रयाना' ।

छिद्राय, छिद्रायट—संज्ञा स्त्री० [हिं० छंरना] धिसाई । छीलने का भाव वा क्रिया ।

छिद्रैरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० छल] छोटा छाला । क्षावता ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

छिद्रुं—संज्ञा पु० [हिं० छिद्रकना] छिद्रकना । मूसरी ।

छिद्रस्तर—वि० [सं० पद्मस्तर, प्र० कसपते, पा० कसपरी, कक्षारी] छू और सतर । जो गिनती में सतर से छू आधिक हो । संज्ञा स्त्री० (१) छू और सतर की संख्या । (२) एक संख्या को सूचित करनेवाला शक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७९ ।

छिद्राईी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिद्राना] (१) धिराने का काम । (२) चिता । सरा । (३) मरघट ।

छिद्रानां—कि० अ० [सं० चयन] [संज्ञा छिद्रानी] किसी वस्तु को तले ऊपर रख कर राखि वा ढेर लगाना । गांजना । ढेर लगाना ।

छिद्रानी—संज्ञा पुं० [हिं० छिद्राना] श्मशान । मसान । मरघट ।

छिद्रना—कि० अ० [हिं० छिद्राना] विवरना । फैलना । धितसाना । दे० 'छद्रगना' ।

छिद्रनारां—कि० सं० दे० 'छद्रगना' ।

छाँक—संज्ञा स्त्री० [सं० छिक्का] नाक और मुँह से वेग के साथ सहसा निकलनेवाला वायु का नोका वा स्फोट । यह स्फोट नाक की भित्तली में चुनचुनाइट होने से, छाँल में तीक्ष्ण प्रकार पड़ने के कारण तिलमिलाइट होने से होता है। इसमें कभी कभी पानी वा शलैष्मा भी नाक और मुँह से निकलती है। हिंदुओं में एक प्राचीन रीति है कि जब कोई छुँकता है तब कहते हैं 'शतं जीव' वा 'चिरं जीव'। यह प्रथा यूनानियों, रोमनों और यहूदियों में भी थी। अँगरेजों में भी जब कोई छुँकता है तब पुरानी परिवादी के लोग कहते हैं कि 'ईश्वर बरव्याण करे'। हिंदुओं में किसी कार्य के आरंभ में छुँक होना अशुभ माना जाता है ।

क्रि० प्र०—खाना ।—होना ।—मारना ।—लेना ।

मुद्रा०—छुँक होना = चुप रहना ।

छाँकना—क्रि० अ० [हिं० छंक्] नाक और मुँह से वेग के साथ वायु निकालना जिससे शब्द होता है ।

मुद्रा०—छुँकते नाक काटना = थोड़ा थोड़ा बात पर चिढ़ना वा दह देना । क्षयाकार करना ।

छाँट—संज्ञा स्त्री० [सं० छित्त, प्र० छित्त] (१) पानी वा और किसी द्रव पदार्थ का महीन बूँद । जलकण । रीकर । उ०—राधे धिराकते छाँट छुड़ीली । कृच कुंडलम कंचुकि बँद टूटे, लटक रही लट गीली ।—सूर । (२) पानी आदि के पड़े हुए बूँद वा कण का चिद्र जो किसी वायु पर पड़ जाय । (३) यह कपड़ा जिस पर रंग विरंग के खेल पड़े रंगों से धाप कर बनाए गए हों ।

विशेष—प्राचीन काज में कपड़े पर रंग विरंग के छोटे टाक कर छाँट बनाते थे ।

यी०—मेमी छाँट = एक प्रकार का लूपा कपड़ा जो लिये के पहचाने के काम में आता है ।

छौटना—क्रि० सं० [सं० निम्न, प्रा० क्ति + ना (श्रय०)]
किसी वस्तु के कर्षों को ह्मर उधर गिरा कर फैलाना।
विलताना। छितराना।

संयो० क्रि०—देना।

छौटा—संज्ञा पुं० [सं० निम्न प्रा० क्ति] (१) पानी (या धीर किसी द्रव पदार्थ) का महीन बूँद जो पानी के उछालने या जोर से फेंकने से ह्मर उधर पड़े। जलकण। सीकर।

क्रि० प्र०—उड़ना।—पड़ना।

यौ०—छौटा गोला = तोप का गोला जिसके भीतर बहुत सी छोटी छोटी गोलाईयां या कील कांटे आदि भरे होते हैं।

(२) महीन महीन बूँदों की हलकी वृष्टि। झड़ी। उ०—
मोह का एक छोटा आया था। (३) किसी द्रव पदार्थ के पड़े हुए बूँद का चिह्न। जैसे, इन स्याही के छींटों को धोकर छुड़ा दे। (४) मद्यक वा चंद्र की एक मात्रा। दम।
(५) व्यंग्यपूर्ण उक्ति जो किसी को लक्ष्य करके कही गई हो। हलका थावेप। छिपा हुआ ताना।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—देना।

छौटा—संज्ञा स्त्री० [सं० शिवा, हिं० छीमा] छीमी। फली।
छी—अव्य० [सं०] घृणासूचक शब्द। चिन प्रकट करने का शब्द।
जैसे, छी ! तुम्हें ऐसा करते लज्जा नहीं आती।

मुहा०—छी छी करना = विनाश। अशुचि वा घृणा प्रकट करना। उ०—वेप भये विप भाये न भूपन भोजन की कहुहु नहि हँछी। सीच के साधन सांभ सुधा, दधि दूध औ माखन आदिहु छी ! छी।

सज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो घाट पर कपड़ा धोते समय धोवियों के मुँह से निकलता है। उ०—घाट पर ठाडी घाट पारति नदोदिन की चेटकी सी धाँड मन का को न हरति है। लटक लटक 'छी' करति खुले भुजगूल झुकि झुकि स्वेद कण फूल से भरत है।—देव।

छौउल्ला—संज्ञा पुं० [देय०] पलाश। टाक।

छीका—संज्ञा पुं० [सं० शिष्य] (१) मोल पात्र के आकार का रस्सियों का बुना हुआ जाल जो छत में इस लिये लटकाया जाता है कि उस पर रस्मी हुई खाने पीने की चीजों (जैसे दूध दही आदि) को कुत्ते बिबली आदि न पा सकें। सीका। सिकहर। उ०—धम कहि देउ कहत किन थों कहि मागत दही भरचों जो है छीके।—सूर।

मुहा०—छीका टूटना = अनाथास ऐसी घटना होना जिससे किसी का कुछ लाभ हो जाय। जैसे, बिट्टी के भाग से छीका टूटा।
(२) जालीदार खिड़की या झरोखा। (३) रस्सियों का जाल जो काम लेते समय बैलों के मुँह में इस लिये पहनाया जाता है जिस में वे कुछ खाने के लिये ह्मर उधर मुँह न चला सकें। जाया। मुसका।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(४) रस्सियों का बुना हुआ कूलेवाला पुल। मूला। (५) धांस वा पतली टहनियों को घुन कर बनाया हुआ टोकरा (६) धांस में पड़े बड़े छेद छूटे रहते हैं। छिटनी। छेचिया।

छीछड़—संज्ञा पुं० [सं० तुच्छ, प्रा० हुच्छ] (१) मांस का तुच्छ थौर निम्नमा टुकड़ा। मांस का वेकाम लच्छा। जैसे, बिट्टी को छीछड़े ही भाते हैं। (२) पशुओं की श्रंतरी का वह भाग जिसमें मल भरा रहता है। मल की थैली।

छीछल्ला—वि० दे० "छिछल्ला"।

छीछालेदर—संज्ञा स्त्री० [हिं० छी छी] हुदया। दुर्गति। परायी।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

छीज—संज्ञा स्त्री० [हिं० छीजना] घाटा। कमी। उ०—रातदि दिवस रहे सब भीजा। काम न देखत देखी छीजा।—जायसी।

छीजना—क्रि० अ० [सं० क्षय वा क्षीण] (१) क्षीय होना। पटना। कम होना। हास होना। धवनत होना। उ०—(क) छीजहिं निशिचर दिन थौ राती। निज मुख कह सुकृत जेहि भांती।—सुबरी। (ख) लहर भकोर उर्बहिं जब भीजा। सौह रूप रंग नहिं छीजा।—जायसी। (ग) सखि ! जा दिन तें परदेस गय पिय ता दिन तें तन छीजन है।—सु० सर्वे०।

संयो० क्रि०—जाना।

छीट—संज्ञा स्त्री० दे० "छौँट"।

छीटा—संज्ञा पुं० [सं० शिष्य, हिं० छीका] [सं० अर्य० छिटनी] (१) धांस की कमधियों वा पतली टहनियों का परस्पर जाल की तरह घुन कर बनाया हुआ टोकरा। साँचा।

धा०—छीटा, गोला = दोल वा पीपे के आकार का बना हुआ टोकरा।
(२) चिह्नमन।

छीड्डा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षय] आधुनिकों की कमी। भौड़ का उलटा।

छीतना—क्रि० सं० [सं० क्षि + ना (श्रय०)] (१) विच्छेद, मिट्ट आदि का टुक मारना। (२) मारना। टूटना।

छीतस्वामी—संज्ञा पुं० [हिं० छीत + स्वामी] अष्टछाप के एक वैष्णव भक्त। ये गुरुभाचार्य जी के शिष्य थे। कृष्ण संबंधी इनके रचे पद इनके रामदास के लोग धन तक गाते हैं।

छीटा—संज्ञा पुं० [देग०] गहू के मायके या समुद्राज जाने की साइत।

छीति—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षति] (१) हानि। घाटा। (२) बुराई (३) उ०—अप राधे नादिन ब्रम नीति। रूप भये काह काम अधिकांसी उपजी है यह कठिन कुरीति।
तेरो तन धन रूप महा गुन सुंदर श्याम सुनी यह कीति सो कह सूर जेहि भांति रहे पति जनि यह वधि यदावहु धीति।—सूर।

छोती छान-वि० [सं० ऋषि + छिन्न] छिन्न भिन्न। तितर वितर।
उ०—यह सब सेना आसुरों की छोती छान हो वहीं की
वहीं विलाय गई।—लक्ष्म।

छोदा-वि० [सं० छिद्र] (१) जिसमें बहुत से छेद हों। कर्मन्तर।
छिद्रता। जिसके सोंठ दूर दूर पर हों। जिसकी बुनावट घनी
न हो। (२) जो दूर दूर पर हों। जो पना न हो। विरल।

छोन-वि० [सं० षोण] (१) दुबला। पतला। कृन्। (२) शिथिल।
मंद। मलिन। उ०—पूँछ को तनि अश्रु दौरी के मुख
गहरी सुरत तब पूँछ की और लीनी। मथत भए छीन तब
पहुरि अस्तुति करी थी महाराज निज शक्ति दीनी।—सूर।

छोन चंद्र-संज्ञा पुं० [सं० षोणचंद्र] द्वितीया का चंद्रमा।
छोनता-संज्ञा स्त्री० दे० “षोयता”।

छोना-क्रि० सं० [सं० छिन + भा (प्रत्य०)] (१) छिन्न करना।
काट कर बलग करना। उ०—नीर हू ते न्यारे कीने
चकन चक्र सीस छीने देवकी के मंदलाख दे वि भुव तल
में।—सूर। (२) किसी दूसरे की वस्तु जबरदस्ती ले लेना।
किसी वस्तु को दूसरे के अधिकार से बलात् अपने अधिकार
में कर लेना। हरण करना।

छोना-संज्ञा स्त्री० छीना मपटी। छीना क्लीनी।
(३) अस्तुचित रूप से अधिकार करना। (४) सिल
चकी आदि को छेनी से छुरदुरा करना। कुटना। रेहना। (२)
छेनी से पत्थर आदि काटना या धराधर करना। (६) दे०
“छेना”।

छोना खसोटी-संज्ञा स्त्री० दे० “छीना मपटी”।
छोना छोनी-संज्ञा स्त्री० दे० “छीना मपटी”।

छोना मपटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छीना + मपटना] अयतदक्षी वा
भाड़ मपट के साथ किसी वस्तु को लेने की क्रिया।

छोना-क्रि० सं० [सं० छुप + छाना] छूना। स्पर्श करना। उ०—(क)
गबालि बचन मुनि कहति जतोमति भले भूमि पर वाहर
छोना।—हनुमत्। (ख) हरि राधिका मानसरोवर को तट आड़े
री हाथ से हाथ छिपे।—केशव।

छोना पुं० [सं० छिन] (१) घड़े के नीचे का वह कपाल वा
गोल भाग जो कोढ़ कर अलग कर दिया गया हो। (२)
मिट्टी का यह सोंचा निम्न पर ऊपर घड़े कूंडे आदि की
पंदी वा कपाल को रख कर पानी से पीठते हैं।

छोप-वि० [सं० छिप] छेप। वेगवान। शीघ्र। उ०—सात दीप
शुप दीप छीप गति चहत समर सरि।—गोपाल।

छोपा-संज्ञा स्त्री० दे० “छोप”।

छोपा-संज्ञा स्त्री० [सं० छोप] (१) छाप। चिह्न। दाग। (२) यह
दाग वा चिह्न जो सोटी छोटी विधियों के रूप में शरीर
पर पड़े जाता है। सेहूआ। (यह एक प्रकार का चर्म-
रोग है)।

छोपा-संज्ञा स्त्री० [सं० छोप] (१) वह छड़ी जिसमें देरी बांध कर मड़ली
फँसाने की कठिया लगाई जाती है। डगन। बंसी। (२) एक
पेड़ का नाम जिससे फल की तरकारी होती है। इसे लीप
और लीप भी कहते हैं।

छोपना-क्रि० सं० [सं० छिप] कठिया में मड़ली फँसाने पर उसे बंसी
के द्वारा लीप कर बाहर फँकना।

छोपा-संज्ञा पुं० [सं० छोप] (१) संग मुँह का मिट्टी का एक
बरतन जिसमें अक्षर दूध दुह कर डालते जाते हैं। (२)
दे० “छोपी”।

छोपी-संज्ञा पुं० [हिं० छोप] [स्त्री० छोपिन] छोट्ट छापनेवाला।
कपड़े पर रंगवट्टे छापनेवाला।

छोपा पुं० [दे०] यह लंबी छड़ी जिससे लोग कन्नूर आदि
उड़ाते हैं। इसके सिरे पर कपड़ा बँधा रहता है।

छोबर-संज्ञा स्त्री० [दे०, हिं० छापना] मोटी छोट्ट। कपड़ा जिस
पर रंग वट्टे छपे हों। उ०—हा हा हमारी सैं कसबी कहीं
वह को हुती छोदरी छीबर वारी।

छोमी-संज्ञा स्त्री० [सं० छिम्ब] फली। जैसे, मटर की
छोमी।

छोर-संज्ञा पुं० दे० “छोर”।
संज्ञा स्त्री० [हिं० छोर] (१) कपड़े आदि का यह किनारा
जहाँ लंबाई समाप्त हो। छोर।

मुहा०—छोर डालना = धोती आदि में किनारे का तागा निपटान
कर मफिर बनाना।

(२) यह चिह्न जो कपड़े पर डाला जाय। (३) कपड़े के फटने
का चिह्न।

क्रि० प्र०—पड़ना।

छोरज-संज्ञा पुं० [सं० नीरज] दूधि। दही।

छोरधि-संज्ञा पुं० [सं० नीरधि] छोरसागर। दूध का समुद्र।

छोरप-संज्ञा पुं० [सं० नीरप] बालक। बच्चा।

छोरफेन-संज्ञा पुं० [सं० नीरफेन] दूध की मलाई।

छोरसागर-संज्ञा पुं० दे० “छोरसागर”।

छोलना-क्रि० अ० [हिं० छल] (१) किसी वस्तु का छिन्नका वा
छाल बतारना। लगी हुई छाल वा ऊपरी आवरण को काट
कर अलग करना। ऊपरी सतह की कुछ मोटाई काट कर अलग
करना। जैसे, सेब छोलना, गन्ना छोलना, लकड़ी छोलना,
पेंसिल छोलना। (२) ऊपर लगी हुई वा जमी हुई वस्तु
को छुच कर अलग करना। जैसे, चाहू से दरफ छोलना,
घास छोलना। (३) गले के भीतर चुनचुनाइत वा चुनचुनी
सी उपग्रह करना। जैसे, सूरन ने गन्ना छील डाला।

छोलर-संज्ञा पुं० [हिं० छिल्ला + पयना सं० षोण] (१) एक छोटा
गड्ढा जो कुपड़े पर दूध लिये बना रहता है कि मोटा का पानी
उसमें डाला जाय। छिल्लारी। जिल्लारी। (२) छोटा

झड़ना गड़बा । तलैया । उ०—(क) कबिरा राम रिम्माइ ले जिन्हा सों करि निच । हरि सागर अनि धीसरं छलिर देखि अनित ।—कवीर । (ख) थय न मुहात विषय रस छलिर या समुद्र की थास ।—सूर । (ग) याको कदा परेखो हरपो मधु छलिर, सरितापति खारो । (घ) पृथोई को पूरन पै प्रति हुन दूनो हुन छन छीन होत छलिर के जलसो ।—केशव ।

छोच*—संज्ञा पुं० दे० “चीच” ।

छुं गली*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छेगली] एक प्रकार की अँगूठी जिसमें छुं छुरु लगे होते हैं । यह छोटी गेंगली में पहनी जाती है ।

छुआना*—क्रि० सं० दे० ‘हुलाना’ ।

छुआ छूत*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना] (१) अछूत को छूने की क्रिया । अस्पृश्य स्पर्श । अशुचि संसर्ग । उ०—यहाँ छूया छूत मत करो । (२) स्पृश्य अस्पृश्य का विचार । छूत का विचार । उ०—यहाँ छूया छूत का बलेड़ा नहीं है ।

छुरीमुई*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुरना सुनना] एक छोटा कटीला पाँचा जिसकी पतियाँ ब्यूल की सी होती हैं । इसमें यह विशेषता है कि जहाँ पतियों को किसी ने छूया कि वे बंद हो जाती हैं और उनके सीके लटक जाते हैं । लज्जालु । लज्जावती । लजा-धुर । लज्जो । दे० “लज्जावती” ।

छुगुनी*—संज्ञा पुं० [अ० छुनहुन] छुं छुरु उ०—कटि करधन छुगुनु छजत श्यामल वदन सुधा । मनहु नीलामणि मंदिर घसेउ वासुकी शाय ।—शं० सत० ।

छुछा—वि० दे० “छूपा” ।

छुच्छी*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूका] (१) पतली पोखी छोटी नली । (२) नरकट की चार पाँच अँगुल लंबी नली जिसमें जोलाहे तागा लपेट कर उसे ढरकी में लगा कर घुमते हैं । नरी । (३) नाक में पहनने का एक गहना । यह लौंग की तरह का होता है पर इसमें फूल की जगह चारों ओर उभड़े रवे श्रवणा चंद्रक रहती है जिस पर नग जड़े जाते हैं । इसके बीच में एक छेद भी होता है जिसमें नथ ढाल कर पहनी जाती है । नाक की कील । लौंग । (४) एक पतली नली जो एक तिकोर्निये पर लगी होती है और जिसमें घसी लगा कर गिलास में जलाई जाती है । (५) यह पतली नली जिसका एक छोर गिलास की तरह चौड़ा होता है और जिसे लगा कर एक धरतन से दूसरे धरतन में तेल आदि ढालते हैं । कीप ।

छुछकारना*—क्रि० सं० [अ० छु] (१) कुत्ते को शिकार आदि के पीछे लगाना । लहकारना । (२) झिड़कना । टाँट फटकार भताना ।

छुछहँडी*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूछी + हँडी] छुछी हँडी । मुद्दा—छुछहँडी दिखाना = भोगने पर किसी वस्तु को देने से इनकार करना या उसका अभाव शतनाम ।

छुछुं दर*—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छुछुंदरी] छुछुं दर ।

छुछुआना*—क्रि० अ० [अ० छु छु] छुछुं दर की तरह छु छु करते फिरना । व्यर्थ धुंध उधर घूमते फिरना ।

छुट*—अर्थ० [हिं० छूटना,] छोड़ कर । सिधाय । अतिरिक्त । उ०—अपूरे जग जन्म पाय जीव है कहायो । संघ से छुट अंबगुण हक नाम न कहि श्रायो ।—सूर ।

छुटकाना*—क्रि० सं० [हिं० छूटना] [संज्ञा छुटकारा] (१)

छोड़ना । अलग करना । पकड़े न रहना । उ०—किलकि किलकि गाचत छुटकी सुनि दरपति जननि पानि छुटकाप ।—तुलसी । (२) छोड़ना । साय न लेना । उ०—माधव जू गज भ्राह्मं ते छुडायो ।.....चितवत चित ही में चिंतामणि चक लप कर धायो । अति करुणा बरि करुणामय हरि गरुबहि हूँ छुटकायो ।—सूर । (३) छुड़ाना । मुक्त करना । छुटकारा देना । उ०—(क) क्षाणि पुकार गुरत छुटकायो काठ्यो बंधन बाके ।—सूर । (ख) हाँ भस्म के धन, भूपति से, सुनु, कंकवि के अर्थ से छुटकारे ।—हनुमान ।

छुटकारा*—संज्ञा पुं० [हिं० छुटकाना वा छूट] (१) किसी बंधन आदि से छूटने का भाव वा क्रिया । मुक्ति । रिहाई । (२) किसी याचा, श्रापचि वा चिंता आदि से रक्षा । निस्तार । जैसे, अर्थ से छुटकारा, विपत्ति से छुटकारा ।

क्रि० प्र०—करना । पाना ।—मिलना ।—होना ।

(२) किसी काम से छुटी । किसी कार्यभार से मुक्ति ।

क्रि० प्र०—देना ।

छुटना*—क्रि० अ० दे० “छूटना” ।

छुटपनी*—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + पन (प्रत्य०)] (१) छोटाई । लघुता । (२) घचपन । लड़कपन ।

छुटवाना*—क्रि० सं० दे० “छोड़वाना” ।

छुटाई*—संज्ञा स्त्री० दे० “छोटाई” ।

छुटाना*—क्रि० सं० [सं० छुट = काट कर अलग करना] छुड़ाना ।

उ०—(क) तय गज हरि की शरण आयो । सूरदासं मधु ताहि छुटायो ।—सूर । (ख) छुटे छुटावे जगत से सत्कारे सुकृ-मार । मन बाधत येनी पैंये नील धर्याले वार ।—विहारी । क्रि० अ० गाय वा भैंस का दूध देना बंद कर देना ।

छुटैया*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूट] भाँड़ों और स्वांग करनेवालों के छुटकले ।

छुटौती*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूट] यह सूद वा लगान जो छोड़ दिया जाय । छुँडुआ ।

छुट्टा—वि० [हिं० छूटना] [स्त्री० छुट्टा] (१) जो बँधा न हो ।

धौ०—छुट्टा पान = विना लगा हुआ पान । पन का पता ।

(२) एकाकी । अकेला । (३) जिसके साथ कुछ माल अस्-थाय न हो ।

मुहा०—दृष्टा दृष्टिं दा = एककां । अकेला । जिसके साथ यात्रा में मात श्रवण या साधो न हो । तुटे हाथ = खाली हाथ । हाथ में बिना छद्मों या हथियार आदि किए ।

दृष्टी-संज्ञा स्त्री० [हि० दृष्ट] (१) दृष्टकार । मुक्ति । रिहाई ।

३०—बिना लगान दिए दृष्टी नहीं है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।—लेना ।

मुहा०—दृष्टीमाना = मंभट से बचना । पीछा छुड़ाना । जवान देही या निम्नकारी से अलग होना । ३०—तुम तो यह कह कर दृष्टी या जाग्रो, संग होंगे हम । दृष्टी होना = मंभट दूर होना । काम निवटना या समाप्त होना ।

(२) वह समय जिसमें कोई कार्य न हो । काम से खाली बक्त । शब्दकार । पुरस्त । ३०—(क) आज कल मेरे सिर इतना काम है कि खाने पीने तक की दृष्टी नहीं । (ख) उसने तीन महीने की दृष्टी खी है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।—लेना ।

मुहा०—दृष्टी पर जाना या होना = नियत कार्य से श्रवणमा ग्रहण करना ।

(३) वह दिन जिसमें नियत कार्य बंद रहे । कार्यालय के बंद रहने का दिन । सातवा । ३०—आज स्कूल में दृष्टी है ।

मुहा०—दृष्टी मताना = श्रवणमा का दिन आनंद से बिताना ।

(४) काम से छुड़ाए जाने की क्रिया । मौर्यी । (२) प्रस्थान करने की अनुमति । जाने की आज्ञा । ३०—घर दृष्टी थीनिप, बहुत देर हो रही है । (१) भाई का चुटकुला ।

दृष्टुयाना—क्रि० स० [हि० होटना का प्रे०] छोड़ने का काम करना । छोड़ने के लिये प्रेरित या उद्यत करना । जैसे, बहोलिए से नीलकंठ दृष्टुयाना ।

दृष्टुर्—संज्ञा स्त्री० [हि० दृष्टाना] (१) छोड़ने की क्रिया ।

धा०—दोष्ट दोष्टाई = माफी ।

(२) वह धन जो किसी व्यक्ति या वस्तु के छोड़ने के बदले में दिया या लिया जाय । जैसे, पशुओं की छुड़ाई, नील कंठ की छुड़ाई । (३) बड़े कनकौप को दूर देखकर ऊपर उड़ाना जिससे कि पतंग ऊपर उड़ जाय । छुँपा । (पतंग)

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

दृष्टाना—क्रि० स० [हि० होटना] (१) किसी वस्तु को देना करना जिसमें वह छूट जाय । दूसरे की पकड़ से अलग करना । देनी, देनी, हलकी या लगी हुई वस्तु को श्रयक करना । जैसे, वह हाथ छुड़ा कर माया, लफड़े का पैर धारपाई में फँस गया है छुड़ा दो, गांठ छुड़ाना । ३०—बाह छुड़ाए जान दो निबल जानि के मोहि । हिरदय में से जाइयो मरद भूँगी तोहि । (२) दूसरे के अधिकार से अलग करना । जैसे, रेहन रत्ना छुपा लेते छुड़ाना, माल छुड़ाना, पिछी छुड़ाना ।

संज्ञा० क्रि०—देना ।—लेना ।

(३) किसी वस्तु पर पुती हुई वस्तु को दूर करना । जैसे, रंग छुड़ाना, दाग छुड़ाना, मंड छुड़ाना ।

संज्ञा० क्रि०—झालना ।—देना ।—लेना ।

(४) कार्य से अलग करना । नौकरी से हटाना । बरखास्त करना । ३०—उसने उस पुराने नौकर को छुड़ा दिया ।

संज्ञा० क्रि०—देना ।

(५) किसी नियमित, क्रिया का त्याग करना । किसी प्रवृत्ति को दूर करना । जैसे, अभ्यास छुड़ाना, आदत छुड़ाना । मुक्त करना । ३०—हम उसका आना जाना छुड़ा देंगे ।

['छोड़ना' का प्रे०] छोड़ने का काम करना । दे० "छुड़याना" ।

दृष्टुती—संज्ञा स्त्री० [हि० दृष्टाना] (१) देनदार या असामी से पावना छोड़ देने की क्रिया । (२) वह सपना जो असामी या देनदार से दया वरा या और किसी कारण से न लिया जाय, सब दिन के लिये छोड़ दिया जाय । छूट । (३) वह धन जो किसी के बंधन मुक्त करने के लिये दिया जाय ।

दृष्टु*—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्ट] छुपा । भूल ।

दृष्टिहरा—संज्ञा पुं० [हि० दृष्ट + हरा] (१) वह घटा या बरतन जो किसी अशुचि वस्तु के संसर्ग से अशुद्ध हो गया हो और जिसमें खाने पीने की वस्तु न रखी जाती हो । (२) कुपात्र । नीच धातमी ।

दृष्टिहा—वि० [हि० दृष्ट + हा (प्रय०)] (१) छूटवाला । जिसमें छूट लगी हो । जो छूटे योग्य न हो । अशुच्य । (२) कलंकित । दूषित । पतित । निष्ठ ।

संज्ञा पुं० वह नमक जो मोनी मिट्टी से निकाला जाता है । सोरे का नमक ।

दृष्ट—संज्ञा पुं० दे० "दृष्ट" ।

दृष्ट घटिका—संज्ञा स्त्री० दे० "दृष्ट घटिका" ।

दृष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्ट] [वि० दृष्टि] छुपा । भूल ।

दृष्टिन—वि० [सं० दृष्टि] भूला । ३०—संदे विन्न दृष्टिचित राजा वानि समेत । खोजत म्याकुल सरित सर जत्र विभु भयद अचेत ।—तुलसी ।

दृष्टमुनाना—क्रि० अ० [षु०] "दृष्ट मुन" शब्द करना । मनकार के साथ बचन ।

दृष्टमुन, दृष्टन मुनन—संज्ञा पुं० [षु०] (१) दे० "दृष्टन मनन" । (२) बरषों के पैरे के धारभूय का उद्भ ।

दृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग । (२) माफ़ी । छप । (३) शत्रु । वि० चंचल ।

दृष्टपना—क्रि० अ० दे० "दृष्टपना" ।

दृष्टपाना—क्रि० स० दे० "दृष्टपाना" ।

दृष्टुक—संज्ञा पुं० [सं०] चिपक । डूरी ।

जाना। जैसे, गाड़ी छटना। ४०—चोरों को पकड़ने के लिये चारों ओर सिपाही छूटे हैं। (६) किसी वस्तु, व्यक्ति वा स्थान का अर्थने से दूर पड़ जाना। विद्युत् होना। विद्युत्पना। जैसे, घर छटना, भाई बंधु छटना। ३०—वह दूकान तो पीछे छूट गई।

संयोग क्रि०—जाना।

(७) किसी दूर तक जानेवाले अथवा चल पड़ना। जैसे, तीर छटना, गोली छटना।

मुहा०—बंदूक छटना = बंदूक से गोली निकलना और शब्द होना। बंदूक चलना।

विशेष—बंदूक, पढ़ाके आदि के संबंध में केवल शब्द होने के अर्थ में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है।

(८) किसी बात का जो रह रह कर थाप्य होती रहे, बंद होना। किसी क्रिया का जो समय समय पर बराबर होती रहे दूर होना। न रह जाना। जैसे, धाना जाना छटना, आदत छटना, अभ्यास छटना, शराब (अर्थात् शराब का पीना) छटना, दम छटना, सुखार छटना, रोना छटना, चौथिया छटना।

विशेष—फेड़न, बवासीर, फीकपाव आदि बाहरी शरीर पर स्थायी लक्षण रखनेवाले रोगों के लिये इस क्रिया का व्यवहार प्रायः नहीं होता। इसी प्रकार समय समय पर होनेवाली बात का किसी एक विशेष समय में न होना छटना नहीं कहलाता। जैसे, यदि किसी को सुखार चढ़ा है या सिर में दर्द है और वह दवा देने से उस समय दूर होगया तो उसे 'छटना' नहीं कहेंगे 'उतराना' वा 'दूर होना' ही कहेंगे।

मुहा०—नाड़ी छटना = (१) नाड़ी का चलना बंद हो जाना।

(२) नाड़ी की गति का अपने स्थान पर न मिलना।

(६) किसी वस्तु में से वेग के साथ निकलना। ४०—रुक की धार छटना। (३०) रस रस कर (पानी) निकलना। जैसे, इस तरकारी में से पकाते वक्त पानी बहुत छूटता है। (१३) किसी ऐसी वस्तु का अपनी क्रिया में तत्पर होना जिसमें से कोई वस्तु कर्णों वा छुँटों के रूप में वेग से बाहर निकले। जैसे, पिचकारी छटना, फौवारा छटना, आतिशबाजी छटना।

मुहा०—पेट छटना = दल जारी होना।

(१२) काम में आने से घबरा। शेष रहना। याकी रहना। जैसे, उसके आगे जो छूटा है तुम खा लो। (१३) किसी काम का या उसके किसी अंग का, भूल से न किया जाना। कोई काम करते समय उससे संबंध रखनेवाली किसी बात या वस्तु पर ध्यान न जाना। भूल या ममाद से किसी वस्तु का कहीं पर प्रयुक्त न होना, रक्षना न जाना वा लिया न जाना। रह जाना। जैसे, लिखने में अक्षर छटना, हकदार करने में कोई वस्तु छटना, रेल पर धाता छूट जाना।

संयोग क्रि०—जाना।

(१४) किसी कार्य से हटया जाना। नौकरी से अलग किया जाना। बरखास्त होना। जैसे, नौकरी से छटना। (१५) किसी वृत्ति या जीविका का बंद होना। रोजी या जीविका का न रह जाना। जैसे, नौकरी छटना। पैष हुआ सीधा छटना।

(१६) पशुओं का अपनी मादा से संयोग करना।

मुहा०—किसी पर छटना = किसी मादा से संयोग करना। छूट-संघा सी० [हिं० छुन] (१) छुने का भाव। संसर्ग। छुवाव।

घा०—छुवा छूट। छूटा छूटा।

(२) गंदी अशुचि वा रोग-संचारक वस्तु का संसर्ग। अशुचर का संसर्ग। ३०—(क) बहुत से रोग छूट से फैलते हैं। (ख) शीतला में लोग छूट बचाते हैं।

घा०—छूट का रोग = वह रोग जो किसी से छू जाने से हो।

(३) अशुचि वस्तु के छूने का दोष वा दुष्पथ। ३०—इस बरतन में कौन सी छूट लगी है ?

मुहा०—छूट उतरना = अशुचि वस्तु का दोष दूर होना।

(४) किसी मनहूस आदमी वा भूत-प्रेत की छाना। भूत आदि लगने का घुरा प्रभाव।

मुहा०—छूट उतराना = भूत प्रेत की छाना का प्रभाव बंद हो दूर करना। छूट भाड़ना = दे० "छूट उतराना"।

छटना-क्रि० अ० [सं० छप, प्रा० छव + ना (अय०), प्र० हिं० छुतना]

एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इतने पास पहुँचना कि दोनों के कुछ अंश एक दूसरे से लग जाय। एक वस्तु के किसी अंश का दूसरी वस्तु के किसी अंश से इस प्रकार मिलना कि दोनों के बीच कुछ अंतर वा अथकाश न रह जाय। स्पष्ट होना। आंशिक संयोग होना। जैसे, चारपाई ऐसे ढंग से बिजुआयो कि कहीं दीवार से न छू जाय।

संयोग क्रि०—जाना।

क्रि० सं० (१) किसी वस्तु तक पहुँच उसके किसी अंग को अपने किसी अंग से सटाना वा लगाना। किसी वस्तु की ओर आग्र बढ़ कर उसे इतना निकट करना कि बीच में कुछ अवकाश वा अंतर न रह जाय। संसर्ग करना। संसर्ग में लाना। जैसे, धीरे धीरे वह डाल छूत को छू लगी।

संयोग क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—आकाश छूना = बहुत ऊँचे तक जाना। बहुत ऊँचा होना।

(२) हाथ बढ़ा कर उँगलियों के संसर्ग में लाना। हाथ लगाना। त्वगिन्द्रिय द्वारा अनुभव करना। जैसे, (क) इसे छूकर देखो कितना कड़ा है। (ख) इस पुस्तक को मत छूओ।

मुहा०—छूने से होना वा छूने को होना = रजसता होना।

† (३) दान देने के लिये किसी वस्तु को संसर्ग करना। दान

देना । जैसे, लिचड़ी छुना, बड़िया छुना या छू कर देना, सोना छुना ।

विशेष—दाग देने के समय वातु को मंत्र पढ़ कर सर्पां करने का विधान है ।

(४) दौड़ की बाजी में किसी को पकड़ना । (५) उन्नति की समान श्रेणी में पहुँचना । उ०—यह लड़का अभी छुँवें दूतने में है पर दो बरस में तुम्हें छू लेगा । (६) धीरे से मारना । जैसे, तुम बुरा सा छूने से रोने लगते हो ।

(७) थोड़ा व्यवहार करना । बहुत कम काम में जाना । जैसे, छुटी में तुमने कमी किताब छुई है । (८) पौतना । लगाना । जैसे, चूना छुना, रंग छुना ।

छूरा—संज्ञा पु० दे० “छुरा” ।

छुरी—संज्ञा स्त्री० दे० “छुरी” ।

छेकना—क्रि० सं० [सं० छेक = छेकना + करण] (१) अष्टाद्वित कराना । खान घेरना । जगह लेना । जैसे, (क) किनारी जगह तो यह पेड़ छेँके है । (ख) इस रोग की दवा करो नहीं तो यह सारा चेहरा छेँक लेगा । (२) घेरना । रोकना । गति का अवरोध करना । रास्ता बंद करना । जाने न देना । उ०—(क) मनु कल्याणमय परम विवेकी । तनु तजि रहत छेँक विनि छेँकी ।—तुलसी । (ख) मेघनाद सुनि सवन अस गढ़ सुनि छेँका आह । वतरी दुर्गा तें धीर धर सम्मुख चलेउ यथाह ।—तुलसी । (३) लकीरों से घेरना । देखा के भीतर डालना । (४) लिपे हुए अक्षरों की लकीर से फाटना । मिटाना । जैसे, इस पोथी में जहाँ जहाँ अक्षर हो छेँक दो । उ०—सोह गोसाँह विधि गति जेह छेँकी । सकह को ठारि टेक जो देकी ।—तुलसी ।

छेँवर—संज्ञा पु० [देग०] दे० “घंटील” ।

छेक—संज्ञा पु० [हिं० छेक] (१) छेद । सुरास । उ०—सत ग्रह माँवा सुरमा शब्द जो मारा एक । जागत ही भय मित गया परा कबजे छेक ।—कबीर । (२) कटाव । विनाश । उ०—कविरा सपने रैन में परा जीव में छेक । जैसे हुतो दुह बनना जो जागूँ तो एक ।—कबीर ।

छेका—संज्ञा पु० [सं०] (१) धार के पालव पशु पक्षी । (२) नागर । (३) छेकानुवास ।

छेकानुवास—संज्ञा पु० [सं०] एक शब्दालंकार । एक अनुवासा जिसमें एक ही अक्षर में दो वा क्रमिक वर्णों की श्रावृत्ति कुछ अंतर पर होती है । उ०—श्रमोज श्रयक श्रुत उमगि सुभंग पुलकायलि छेई ।

छेकानुवास—संज्ञा पु० [सं०] एक अलंकार जिसमें दूसरे के ठीक अनुवासा वा अटकल का प्रथमार्थ शक्ति से उद्भव किया जाता है । उ०—मी मी करन सिखात है करत धधर दूत पर । बहा मिल्यो नागर पिवा पूँ नहि सखि सिमिर समीर ।

यहाँ नायिका के अधर पर चत देख कर सखी अपना अनुमान प्रकट करती है कि क्या नायक मिला था । इस पर नायिका ने यह कह कर कि नहीं “शिथिर की हवा लगी है” उसके अनुमान का खंडन किया ।

छेकाँक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लोकोक्ति जो अर्थांतर-गर्भित हो अर्थात् जिससे अन्य अर्थ की भी ध्वनि निकले । जैसे, जानत सखे भुजंग ही जग में वरख भुजंग ।

छेटा—संज्ञा स्त्री० [सं० गिग, प्रा० छित] बाधा । रुकावट । उ०—कह्यो कुलिंद भूप कर देठा । हाँड़ देत में डारत छेटा ।—रघुनाथ ।

छेड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० छेड़] (१) छू या खोद खाद कर तंग करने की क्रिया । (२) व्यंग्य उपहास आदि के द्वारा किसी को चिढ़ाने या तंग करने की क्रिया । हँसी टटोली करके बुढ़ाने का काम । चुटकी ।

यौ०—छेड़खानी । छेड़छाड़ ।
(३) ऐसी बात वा क्रिया जिससे दूसरा कोई चिढ़े । चिढ़ाने-वाली बात ।

मुष्टा—छेड़ निकालना = चिढ़ानेवाली बात रीघर करना । उ०—उसे चिढ़ाने के लिये तुमने यह अष्टपी छेड़ निकाली है । (४) राड़ा । भगड़ा । परस्पर की चोटें । एक दूसरे के विरुद्ध दाव पेच । विरोध । जैसे, उन दोनों में खूब छेड़ चली है (५) भाजे में गति या शब्द उभय करने के लिये उभे छूने की क्रिया । बजाने के लिये किसी (विरोधतः तार-वाले जैसे सितार) वाद्य यंत्र का सर्पां । † संज्ञा पु० छेड़ । सुरास ।

छेड़ना—क्रि० सं० [हिं० छेड़ना] (१) छूना वा खोदना खादना । दवाना । कैंचना । उ०—इस फोड़े को छेड़ना मत, दवा लगा कर छोड़ देना । (२) छू या खोदखाद कर भड़काना वा तंग करना । उ०—दुत्त को मत छेड़ना, काट पायगा । (३) किसी को उत्तेजित करने वा चिढ़ाने के लिये उससे विरुद्ध कोई ऐसा कार्य करना जिससे वह बदला लेने के लिये तैयार हो । उ०—तुम पहले उसे न छेड़ते तो वह तुम्हारे पीछे क्यों पड़ता । (४) व्यंग्य, उपहास आदि द्वारा किसी को चिढ़ाना वा तंग करना । हँसी-टिटोली करके कुड़ाना । चुटकी लेना । दिखनी करना । (५) कोई बात वा कार्य धारम करना । उठाना । धरु करना । जैसे, काम छेड़ना, बात छेड़ना, चर्चा छेड़ना, राग छेड़ना । (६) भाजे (विरोधतः तारवाले) में शब्द वा गति उभय करने के लिये उसे छूना । वाद्य यंत्र में क्रिया वा शब्द उभय करने के लिये उसे स्पर्श करना । बजाने के लिये यंत्र में हाथ लगाना । जैसे, सितार छेड़ना, मारंगी छेड़ना । † (७) छेड़ करना । † (८) नग्नर से फोड़ा चरना ।

छेड़याना—क्रि० सं० [हि० 'छेड़ना' का प्रे०] छेड़ने का काम करना ।

छेड़ा—संज्ञा पुं० [?] रस्सी । सांत । (लश०) । जैसे, थारीक छेड़ा ।

छेत्र—संज्ञा पुं० दे० "क्षेत्र" ।

छेद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छेदन । काटने का काम । (२) नाश । ध्वंस । जैसे, उच्छेद, वंशच्छेद । (३) छेदन करनेवाला । (४) गणित में भागक । (५) खंड । टुकड़ा । (६) अर्थात्-पर जैन संप्रदाय के ग्रंथों का एक भेद ।

संज्ञा पुं० [सं० छिद्र] (१) किसी वस्तु में वह खाली स्थान जो फटने या सुई, कांटे हथियार आदि के धार पार चुभने से होता है । किसी वस्तु में वह शून्य या खुला स्थान जिसमें होकर कोई वस्तु इन पार से उस पार जा सके । सुरास । छिद्र । रंभ्र । जैसे, छलनी के छेद, कपड़े में छेद, सुई का छेद । व०—दीवार के छेद में से बाहर की चीज़ें दिवाई पड़ती हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

(२) वह खाली स्थान जो (सुन्दे कटने फटने या धार किसी कारण से) किसी वस्तु में कुछ दूर तक पड़ा हो । थिल । दरज । खोलका । विबर । कुहर । (३) दोष । दूषण । ऐय ।

क्रि० प्र०—हूँड़ना ।—मिलना ।

छेदक—वि० [सं०] (१) छेदनेवाला । काटनेवाला । (२) नाश करनेवाला । (३) विभाजक । भाजक । छेद ।

छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काटने वा धार पार चुभाने की क्रिया या भाव । काट कर धलंग करने का काम । चीर पाड़ ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

(२) नाश । ध्वंस । (३) छेदक । (४) काटने वा छेदने का अर्थ । (५) वह औपध जो कफ आदि को छुटा कर निकाल दे ।

छेदना—क्रि० सं० [सं० छेदन] (१) किसी वस्तु को सुई कांटे भाले वरुड़ी आदि से इस प्रकार घुसाना कि वसमें धार पार छेद हो जाय । सुई, कील या धार किसी चुकीली वस्तु एक पारव से दूसरे पारव तक चुभा कर किसी वस्तु को छिद्र-युक्त करना । घेचना । भेदना ।

संज्ञा पुं० क्रि०—घालना ।—देना ।

विशेष—यदि कँची से कतर कर, या धार किसी ढंग से किसी वस्तु में छेद बनाए जाय तो उस वस्तु को 'छेदना' नहीं कहलावेगा ।

(२) नष्ट करना । घाव करना । जैसे, तीरों ने उसका सारा शरीर छेद डाला । † (३) काटना । छिद्र करना ।

संज्ञा पुं० यह औजार जिससे छेद किया जाय । जैसे, सूधा, सुतारी ।

छेदनहार—वि० [हि० छेदन + हार (प्रत्य०)] छेदनेवाला । व०—सहस्र बाहु भुज छेदनिहारा । परसु विलोक महोप-कुमारा ।—तुलसी ।

छेदा—संज्ञा पुं० [हि० छेदन] (१) धुन नाम का कीड़ा । (२) अत में वह विकार जो दूध कीड़े के कारण पैदा होता है । धुन द्वारा खाए जाने के कारण अनाज के खालसे होने का दोष ।

छेदे—पर्यायनामकारिण—संज्ञा पुं० [सं०] गण्यधिप के दिए हुए प्राणातिपातादि पाँच महावृत्तों का पालन । छेदेपस्थानीय । (जैत) ।

छेद्य—वि० [सं०] छेदन करने योग्य । छेदनीय ।

संज्ञा पुं० (१) परेवा । क्यूतर । (२) वैद्यक में अतल के रोगों की चिकित्सा का एक ढंग । इसमें अतल में नमक का चूर्ण डालते हैं तथा कभी कभी शत्रु चिकित्सा भी करते हैं ।

छेद्यकंठ—संज्ञा पुं० [सं०] क्यूतर । परेवा ।

छेना—संज्ञा पुं० [सं० छेदन] (१) काड़ा हुआ दूध जिसका पानी निचोड़ कर निकाल दिया गया हो । फटे दूध का खोया । पनीर ।

विशेष—इसके बनाने की रीति यह है कि खालसे हुए दूध में खटाई या फिटकरी डाल देते हैं जिससे वह फट जाता है यथावत् उसके पानी का थंरा सफेद थुरथुरे थंरा से अलग हो जाता है । फिर फटे हुए दूध को एक कपड़े में रख कर निचोड़ते हैं जिससे पानी निकल जाता है और दूध का सफेद थुरथुरा थंरा बच रहता है जो छेना कहलाता है । इस छेने से बंगाल में अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बनती हैं । दही गरम करके भी एक प्रकार का छेना बनाया जाता है ।

† (२) कंडा । उपला ।

क्रि० सं० (१) छिनगाना । कुहराड़ी आदि से काटना वा घाव करना । (२) दे० "छेना" ।

छेनी—संज्ञा स्त्री [हि० छेना] (१) लोहे का वह औजार जिससे धातु, पत्थर आदि काटे या नकारे जाते हैं । टाँकी ।

विशेष—यह पाँच छुंछुंगल लंबा लोहे का पतला टुकड़ा होता है जिसके एक छोर चौड़ी धार होती है । नकारारी करते समय इसे नोक के थल रख कर ऊपर से ठोकते हैं । नकारारी करने की छेनी के सोलह भेद हैं—(१) खोना । इससे गोल लकीर बनाई जाती है । (२) चेरना । इससे सीधी लकीर बनाई जाती है । (३) पगेरना । इससे लहर बनाई जाती है । (४) गुलधुम । इससे गोल गोल धाने बनाए जाते हैं । (५) फुलना । इससे फूल और पत्तियाँ बनाई जाती हैं । (६) बलिना । इससे धरी यज्ञे पत्तियाँ बनाई जाती हैं । (७) दोषद । इससे छोटी पत्तियाँ बनाई जाती हैं । (८) तिवरा, (९) डिगा । इनसे गोल महाराय काटा जाता है । (१०) किराँ । इससे

बेल और पत्तियां बनाई जाती हैं। (११) मलकरना। इससे दोहरी लकीर बनती है। (१२) सूतदार पगेरना। इससे एक बार में दोहरी लहर बनती है। (१३) गोटरा। इससे गोल मक्यासी बनाई जाती है। (१४) पानदार गोटरा। इससे पान बनाया जाता है। (१५) चौकोना गुलसुम। (१६) त्रिकोना गुलसुम। इन दोनों से चौकोनी और त्रिकोनी मक्यासी बनाई जाती है। (२) वह महरनी जिससे पोसे से अच्छी पाई कर निकाली जाती है।

छेमंड-संज्ञा पुं० [सं०] पिना धार मां का खड़का। अनाथ। पतीम।

छेम*—संज्ञा पुं० दे० "छेम"। व०—(क) जाप कहन करतूति विनु जाप जोग विनु छेम। तुलसी जाप उपासय पिना राम-पद-अम।—तुलसी। (ख) बड़ि प्रतीति गदयंथ ते बड़े जोग ते छेम। भयो सुखेक साईं ते बड़े नाम ते प्रेम।—तुलसी।

छेमकरी*—संज्ञा स्त्री० [सं० छेमकरी] सफेद चील। व०—(क) छेमकरी कह छेम विरोयी। स्वामि वाम सुनर पर देखी।—तुलसी। (ख) लाम लाम खोवा कहत छेमकरी कह छेम। चलत विनीपतु सगुन सुनि तुलसी पुलकत प्रेम।—तुलसी।

छेरना—क्रि० अ० [सं० चष] अपच के कारण धार धार पालना पितना

छेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छेरिका] यकरी। अज्ञा।

छेली—संज्ञा स्त्री० दे० "छेली"।

छेव—संज्ञा पुं० [सं० छेद, प्रा० छेव] (१) काटने छीलने आदि के लिये किया हुआ आघात। धार। चोट। व०—तय मेव यह कदी धीर उठो रहू ठाढ़े। अथ नहि जीवत जाह लोह करिहीं रन गांधे। सुगत राव हूँ मुह बुद्ध में तेगहि मारी। तहीं मेव गदि छेव तुरंगमे ते गदि धारी। मू परयो परी हूँ तीन अलि यद् गूमर के अंग पर। लियो सीस काटि साथी सहित राव कंच सोयो समर।—सूदन।

क्रि० प्र०—छलाना।—छारना।—लगना।—लगना।

(२) यह चिह्न जो काटने छीलने आदि से पड़े। जलम। धार। जैसे, उरल्ले इस पेड़ में हुल्हाड़ी से कई छेव लगाए हैं। व०—अरिन के वर भांडि कीन्धीं इमि छेव है।—भूपय।

क्रि० प्र०—लगना।—छगना।—पड़ना।

मुहा०—छेव छेव = फाट व्यग्रहृत्। कुञ्चित का दाव पंच। छल छिप्र। व०—अतति गर्हा कर्हा से सीसे छेरी के छल छेद।—नूर।

(३) आनेवाली आपत्ति। होनहार दुःख। किसी दुष्कर्म या कर्म प्रद आदि के प्रभाव से होनेवाला अनिष्ट।

क्रि० प्र०—छतरना।—छटना।—छलना।—मिटना।

संज्ञा स्त्री० दे० "छेव"।

छेयन—संज्ञा पुं० [हिं० छेयना = काटना] यह लागू जिससे कुम्हार चाक पर के घरतम को काट कर अलग करते हैं।

छेयना*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छेना] ताड़ी।

क्रि० सं० [सं० छेदन] (१) काटना। छिन्न करना।

छिनगाना। (२) चिह्नित करना। चिह्न लगाना।

* क्रि० श० [सं० छेयण] कंकना। मिलाना। व०—छेत भयो प्रारब्ध को पायो निरचल गेह। आतम परमात्म मिस्यो देह खेद मंड छेव।—निरचल।

छेयरा—संज्ञा पुं० [हिं० छेयना] (१) झाल। बकल। (२) छिलका।

(३) चमड़ा। लवचा।

क्रि० प्र०—उपड़ना।

छेयरा—संज्ञा पुं० दे० "छेयरा"।

छेया—संज्ञा पुं० [हिं० छेव] (१) छीलने या काटने का काम। (२)

वह आघात जो छीलने या काटने के लिये किया जाय। चोट।

(३) छीलने या काटने का चिह्न। धार। जलम। (४)

अर्थ 'त योग से बहनेवाला जल। (महाह)

छेह*—संज्ञा पुं० [हिं० छेव] (१) दे० "छेव"। (२) खंडन। नारा।

व०—अल मित्र मिथ्या सव भाख्यो। तिन को भेद हेत कहि राख्यो। बजो यह मोको संदेहा। प्रसुता को अय कीर्नो छेहा।—निरचल।

वि० खंडित। टुकड़े टुकड़े किया हुआ। न्यून। कम। व०—

परा सद्धे गुण करे गुण ना छावै छेह। सापर पोसे सर भरे दामन भीरो महे।—कवीर।

संज्ञा पुं० [?] गुण का एक भेद।

* संज्ञा स्त्री० [सं० नार] मिट्टी। रास। दे० "खेह"।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० छाय] छुपा।

छेहरा—संज्ञा स्त्री० [सं० छारा] धाया। साया।

छीं—वि० दे० "छू"।

* संज्ञा स्त्री० दे० "छुप", "छुप"।

छीना*—क्रि० अ० [हिं० छप + ना (प्रत्य०)] (१) छीलना। चीय होना। कम होना। * (२) नष्ट होना।

मुहा०—छे जाना = छेद का फट जाना। किसी छेद का फैल कर इतना बड़ जाना कि उसके आस पास का स्थान फट जाय। जैसे, कान छे जाना अर्थात् कान में किए हुए छेद का इतना फैल जाना कि लौ फट जाय।

छैयां*—संज्ञा पुं० [हिं० छवना] बघा। कस। (प्यार का शब्द)

व०—(क) कहति मक्हाइ मक्हाइ वर छिन छिन छजन छुपरी

छेते छैयां।—तुलसी। (ख) मृतनु के छैयां आस पास के

रख्यो और काली के नयथा हू प्यान हते न चले।—सूर।

छैल*—संज्ञा पुं० [सं० छीव + इल (प्रा० अल०), प्रा० अलित, कर्त्त] सुंदर और धना उना आदमी। सुंदर तथा विन्यासयुक्त पुरुष।

यह शुरु जो अपना अंग लू सजाए हो। भांक। शौकीन।

रैंगीला। उ०—(क) से सब छैल भए अस्वारा। भरत सरिस वष राजकुमारा।—तुलसी। (ख) छुरे छुवीले छैल सब सूर सुवान नवीन। छुग पद चर अस्वारा प्रति जे अस्ति कला प्रवीन।—तुलसी।

यो०—छैल चिकनियाँ। छैल छुवीला।

छैल चिकनियाँ—संज्ञा पुं० [दे०] शौकीन। यना ठना आदमी। छैल छुवीला—संज्ञा पुं० [दे०] (१) सजावना और युवा पुरुष। रैंगीला पुरुष। बाँका। (२) छुरीला नाम का पैसा।

छैला—संज्ञा पुं० [सं० छवि + इल (प्र० प्रत्य०), प्रा० छवित्, ठइल] सुंदर और यना ठना आदमी। सुंदर वेश विन्यास युक्त पुरुष। यह पुरुष जो अपनी श्रेय खूब सजाए हो। सजीला। बाँका। रैंगीला। शौकीन।

छैकर, छैकरा—संज्ञा पुं० [सं० शंकर] शमी का वृक्ष। सफेद फीकर।

छैड़ा—संज्ञा पुं० [सं० श्वेड] यह लकड़ी जिससे दही मया जाता है। मयानी।

छैड़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० श्वेडिका] मयानी।

संज्ञा स्त्री० [सं० श्वेडिका] बड़ा घरतन।

छो—संज्ञा पुं० [सं० चोम, हिं० छेह] (१) छोड़। प्रेम। मोति। चाह। (२) दया। कृपा। (३) सोम। क्रोधजनित दुःख। कोप। गुस्ता।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रखना।

छोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोना] (१) ईश की पत्नियाँ जो उठमें से छील कर फेंक दी जाती हैं। (२) गन्ने की वह गँड़ेरी जिसका रस चूस कर वा पेर कर निकाल लिया गया हो। चिना रस की गँड़ेरी। सीदी।

छोकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० शोक, प्रा० शोकक + रा (प्रत्य०)] [स्त्री० छोकड़ी] लड़का। बालक। अनुभवशून्य वा अपरिपक्व बुद्धि का युवक। सौंडा [मायः छुरे भाय से थोलेते हैं]।

छोकड़ापन—संज्ञा पुं० [दे०] (१) लड़कपन। (२) छिछोरापन। नादानी।

छोकड़ियाँ—संज्ञा स्त्री० दे० "छोकड़ी"।

छोकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोकड़ा] लड़की। कन्या। पेटी।

छोकरा—संज्ञा पुं० दे० "छोकड़ा"।

संज्ञा पुं० दे० "छोकरा"।

छोकला—संज्ञा स्त्री० [सं० छल्ल] छाल। छिलका। यकल।

छोटा—वि० दे० "छोटा"।

छोटका—वि० [हिं० छोटा + का (प्रत्य०)] [स्त्री० छोटी] छोटा।

विशेष—पूरवी प्रत्यय (का, की) ऐसी विशेष यस्तुओं के लिये आता है जो सामने होती हैं, जिनका उल्लेख पहले हो चुका रहता है, वा जिनका परिचय सुननेवाले को कुछ रहता है।

छोटपना—संज्ञा पुं० छोटापन।

छोटफर्सी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + फर्] कम चौड़े सुँहवाली मटकी। छोटे सुँह की टिखिया। तंग सुँह की गमरी।

छोटभैया—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + भाई] पद वा मान मर्यादा में छोटा आदमी। कम हैसियत का आदमी।

छोटा—वि० [सं० छुट] [स्त्री० छोटी] (१) जो बड़ाई या विस्तार में कम हो। आकार में लघु वा न्यून। डील डाल में कम। जैसे, छोटा घोड़ा, छोटा घर, छोटा पेड़, छोटा हाथ।

यो०—छोटा मोटा = छोटा। जैसे, छोटा मोटा घर।

(२) जो श्रवण में कम हो। जिसका वय अल्प हो। जो थोड़ी उम्र का हो। जैसे, छोटा भाई। उ०—हम तुमसे तीन गुण छोटे हैं। (३) जो पद प्रतिष्ठा में कम हो। जो शक्ति, गुण, योग्यता, मान मर्यादा आदि में न्यून हो। जैसे, बड़े आदमियों के सामने छोटे आदमियों को कौन पडुता है ?। उ०—अरि छोटे गनिप नहीं जाते होत विगार।—बृ० द०

यो०—छोटा मोटा।

(४) जो महत्व का न हो। जिसमें कुछ सार या गौरव न हो। सामान्य। उ०—हवनी छोटी बात के लिये लड़ना टीक नहीं। (५) शोका। छुट। जिसमें गंभीरता उदारता वा शिष्टता न हो। जिसका आचार महद् वा वच न हो। उ०—(क) किसी से कुछ माँगना बड़ी छोटी बात है। (ख) वह बड़े छोटे जी का आदमी है।

छोटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + ई (प्रत्य०)] (१) छोटापन। लघुता। (२) नीचता। छुटता।

छोटा-कुँघार—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + सं० कुंघरी] एक जाति का घीकुँघार जिसके परते छोटे होते हैं और पीनी में मिला का दस्त की धीमारी में खाए जाते हैं। यह मैदर मांस में अधिक होता है।

छोटा-कचूर—संज्ञा पुं० [हिं०] कपर कचरी। गंधपाती।

छोटा-कणडा—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + कणडा] खैगिया। खोली।

छोटा-चौद—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + चौद] एक लता जिसकी जड़ साँप के विष की उत्तम औषध कही जाती है। जड़ को सुला कर और चूरे करके साँप के काटे हुए स्थान पर लगाते और उसका काढ़ा करके २४ घंटे में ५ = तक पिनाते हैं।

छोटापन—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + पन (प्रत्य०)] (१) छोटा होने का भाव। छोटाई। लघुता। (२) बचपन। बालपन। लड़कपन।

छोटा-पाट—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + पाट] रेशम के कीड़े का एक भेद।

छोटा-पीढ़—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + पीढ़] रेशम के कीड़े का एक भेद।

छोटी इलायची—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + इलायची] सूफेद वा गुजराती इलायची । इ० “इलायची” ।

छोड़ चिट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना + चिट्ठी] वह लेख वा कागज जिसके कारण कोई व्यक्ति किसी प्रकार के श्रेय वा बंधन से मुक्त समझा जाय । फारखती ।

छोटी मैल—संज्ञा स्त्री० एक चिट्ठी का नाम ।

छोटी रकरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + रकरिया] एक घास जो पंजाब के हिसार आदि स्थानों में मिलती है । यह पाँच चार साल तक रहती है और इसे छोड़े चाव से खाते हैं ।

छोटी सहैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + सहैली] एक छोटी चिट्ठी या का नाम जो देलने में बड़ी सुंदर होती है ।

छोटी हाजिरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + हाजिरा] भारत में रहने-वाले धंगरेजों या यूरोपियनों का प्रातःकाल का कलेवा । (खानसामा)

छोड़-छुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना + छुड़ी] नाता टूटना या संबंध-त्याग ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

छोड़ना—क्रि० सं० [सं० छोड़ण] (१) किसी पकड़ी हुई वस्तु को थूक करना । पकड़ से अलग करना । जैसे, हमारा हाथ क्यों पकड़े हो छोड़ दे ।

संयो० क्रि०—देना ।

- (२) किसी लगी या चिपकी हुई वस्तु का उस वस्तु से अलग हो जाना जिससे यह लगी या चिपकी हो । उ०—
 बिना आँच दिखाए यह पटी चमड़े को न छोड़ेगी । (३) किसी जीव या व्यक्ति को बंधन आदि से मुक्त करना । छुटकारा देना । रिहाई देना । जैसे, कैदियों को छोड़ना, पीणियों को छोड़ना । (४) दंड आदि न देना । अपराध पना करना । मुद्राफ करना । जैसे, (क) हल बार तो हम छोड़ देते हैं फिर कभी ऐसा न करना । (ख) जज ने अभि-
 मुक्तों को छोड़ दिया । (५) न ग्रहण करना । न लेना । हाथ से आने देना । जैसे, मिलता हुआ धन क्यों छोड़ते हो । (६) उस धन को दयाकर या और किसी कारण से न लेना जो किसी के यहाँ चाहता है । देना मुद्राफ करना । भत्थी या देनदार को श्रेय से मुक्त करना । छूट देना । उ०—
 (क) महाजन ने सूद छोड़ दिया है, केवल मूल चाहता है ।
 (ख) हम एक पैसा न छोड़ेंगे सब वस्तु करेंगे । (७) अपने से दूर या अलग करना । त्यागना । परित्याग करना । पास न रखना । जैसे, यह घर था लड़के वाले छोड़ कर साजु हो गया । (८) साथ न लेना । किसी स्थान पर पड़ा रहने देना । न रुकना या लेना । जैसे, (क) तुम हमें बर्दा अकेले छोड़ कर कहाँ चले गए । (ख) वह एक भी चीज़ न छोड़ना, सब बचा खाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—स्थान (घर, गाँव, नगर आदि) छोड़ना = स्थान से चला जाना या गमन करना । उ०—हमें घर छोड़े आज तीन दिन हुए ।

(६) प्रस्थान कराना । गमन कराना । चलाना । दौड़ाना । जैसे, गाड़ी छोड़ना, घोड़ा छोड़ना, सिपाही छोड़ना, सवार छोड़ना ।

मुहा०—किसी पर किसी को छोड़ना = किसी के पीछे किसी को छोड़ना । किसी को पकड़ने, तंग करने वा चोट पहुँचाने के लिये उसके पीछे किसी को छोड़ना । जैसे, दिन पर कूते छोड़ना, चिट्ठी पर बाज छोड़ना । मादा (पशु) पर नर (पशु) छोड़ना = जोड़ा खाने के लिये नर को मादा के सामने करना ।

(१०) किसी दूर तक जानेवाले थक को चलाना या फेंकना । छेपय करना । जैसे, गोली छोड़ना, तीर छोड़ना ।

विशेष—बंदूक पढ़ाके आदि के संबंध में केवल शब्द करने के धर्म में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है ।

(११) किसी वस्तु, व्यक्ति वा स्थान से आगे बढ़ जाना । जैसे, उसका घर तो तुम पीछे छोड़ आए ।

संयो० क्रि०—ग्राना ।

- (१२) किसी काम को बंद कर देना । किसी हाथ में लिए हुए कार्य को न करना । किसी कार्य से अलग होना । त्याग देना । जैसे, काम छोड़ना, आदत छोड़ना, अभ्यास छोड़ना, ग्राना जाना छोड़ना । उ०—(क) सब काम छोड़कर तुम इसे लिख डालो । (ख) उसने भीकरी छोड़ दी । (१३) किसी रोग व्याधि का दूर होना । जैसे, बुखार नहीं छोड़ता है । (१४) भीतर से वेग के साथ बाहर निकालना । उ०—हूँह अपने मुँह से पानी की धार छोड़ती है । (१५) किसी ऐसी वस्तु को चलाना वा अपने कार्य में लगाया जिसमें से कोई वस्तु कर्णों वा छुँतों के रूप में वेग से बाहर निकले । जैसे, पिचकारी छोड़ना, नौबारा छोड़ना, आतशबाजी छोड़ना । (१६) चलावा । शेष रखना । बाकी रखना । व्यवहार वा उपयोग में न लाना । उ०—(क) उसने अपने आगे कुछ भी नहीं छोड़ा, सब खा गया । (ख) उसने किसी को नहीं छोड़ा है सब की दिल्गी बढ़ाई है ।

मुहा०—(किसी को) छोड़ वा छोड़ कर = (किसी के) अतिरिक्त । विषय । जैसे, मुझे छोड़ और कौन हमारा सहायक है । (१७) किसी कार्य को वा उसके किसी अंग को भूल से न करना । कोई काम समय वससे संबंध रखनेवाली किसी बात वा वस्तु पर ध्यान न देना । भूल वा विस्मृति से किसी वस्तु को कहीं से न लेना, न रखना वा न प्रयुक्त करना ।

जैसे, खिलने में अक्षर छोड़ना, इकट्ठा करने में कोई वस्तु छोड़ना, रेल पर छाता छोड़ना । (१८) ऊपर से गिराना या डालना । जैसे (क) हाथ पर थोड़ा पानी तो छोड़ दो ।
(१९) इस पर थोड़ी राख छोड़ दो ।

छोड़वाना—क्रि० म० [हि० छोड़ना का प्रे०] छोड़ने का काम कराना ।

क्रि० स० [हि० छोड़ना का प्रे०] छोड़ने का काम कराना ।

छोड़ाना—क्रि० स० दे० “छुड़ाना” ।

छोनिप—संज्ञा पुं० [सं० चोपिप] राजा । उ०—रहे असुर छल छोनिप बेला । तिन्ह प्रसु प्रगट काल सम देखा ।—तुलसी ।

छोनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चोषी] पृथ्वी । भूमि । उ०—सोक कनक लोचन मतिःछोनी । “हरी विमल गुन मन जग जेनी ।—तुलसी ।

छोप—संज्ञा पुं० [सं० चोप, हि० चोप] (१) किसी गाड़ी या गीली वस्तु की मोटी-तह जो किसी वस्तु पर चढ़ाई जाय । मोटा छेप ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।

(२) गाड़ी या गीली वस्तु की मोटी तह चढ़ाने का कार्य ।

(३) गीली मिट्टी या धीर किसी पानी में सनी हुई वस्तु का लोढ़ा जो धीवार अथवा धीर किसी वस्तु पर गड़दे मूँदने या सतह बराबर करने आदि के लिये रक्खा धीर कैलाया जाय ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—रखना ।

धो०—छोप-छाप = मरम्मत ।

(४) आघात । धार । प्रहार । उ०—जहाँ जात जूटि तहाँ टूटि परै धार लों अति बल भट, सीस फूटि धारै छेप सों ।—गोपाल । (५) छिपाव । बचाव ।

धो०—छोप-छाप = (१) दोष आदि का छिपाव । (२) बचाव । रक्षा ।

छोपना—क्रि० स० [हि० छुपाना] (१) किसी गीली या गाड़ी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इस प्रकार रख कर फैलाना कि उसकी मोटी तह चढ़ जाय । गाड़ा छेप करना । उ०—नीम की पत्ती पीस कर फोड़े पर छोप दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

(२) गीली मिट्टी या धीर किसी पानी में सनी हुई वस्तु के लोढ़े को किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फैला कर रखना कि वह बसते चिपक जाय । गिलावा खगाना । धोपना । जैसे, धीवार में जहाँ जहाँ गड़दे हैं वहाँ मिट्टी छोप दो ।

धो०—छोपना-छापना = गड़दे आदि मूँद कर मरम्मत करना फटे या गिरे पड़े से ठीक करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

(३) किसी वस्तु पर इस प्रकार पड़ना कि वह बिजबुल

दक जाय । किसी पर इस प्रकार चढ़ बैठना कि वह हथर उधर श्रेय न हिला सके । भर दवाना । प्रसना । जैसे, शेर बकरी को छेप कर बैठा रहा ।

संयो० क्रि०—लेना ।

‡ (४) ढकना । स्याङ्गदित करना । छेंकना । † (५) किसी यात को छिपाना । परदा डालना । † (६) किसी को धार या आघात से बचाना । आक्रमण आदि से रक्षा करना ।

छोपा—संज्ञा पुं० [हि० छोपना] पाल के चारों कोनों पर बँधी हुई रस्सियाँ जिनसे उसे ऊपर चढ़ाते हैं ।

छोपार्ई—संज्ञा स्त्री० [हि० छोपना] (१) छोपने का भाव । (२) छोपने की क्रिया । (३) छोपने की मजदूरी ।

छोम—संज्ञा पुं० [सं० चोम] [वि० चोमित] (१) चित्त की विचलता जो दुःख, क्रोध, मोह, कल्पना आदि मनोवर्गों के कारण होती है । जी की खलबली । उ०—सात सीन अति प्रबल खल काम, क्रोध भर लोम । मुनि विज्ञान धाम-भन करहि निमिष मँह छोम ।—तुलसी । (२) नदी तालाब आदि का भर कर उमड़ना ।

छोमना—क्रि० थ० [हि० चोम + ना (प्रत्य०)] चित्त का विचलित होना । कहना, दुःख, शंका, मोह, लोभ आदि के कारण चित्त का चंचल होना । जी में खलबली होना । झुंघ होना । उ०—(क) जासु विभोकि अलौकिक सोभा । सज्जन युनीत मोर मन छोभा ।—तुलसी । (ख) नीके निरलि मयन भरि सोभा । पितु पन सुमिरि यहुरि मन छोभा ।—तुलसी ।

छोमित—वि० [सं० चोमित] चोमित । चंचल । विचलित । उ०—हे हरि छोमित करि दर्द मयन पयन सर मारि । हरिदि हरिन नयनी लगनी हेरन हार निहारि ।—श्र० सत० ।

छोम—वि० [सं० चोम = अलसी का बना चिकना कपड़ा] (१) चिकना । (२) कोमल । उ०—मोम सरिस मन छोम, खर करि रोम भजहि भट ।—गोपाल ।

छोर—संज्ञा स्त्री० [हि० छोड़ना] (१) किसी वस्तु का वह किनारा जहाँ उसकी संघाई का अंत होता है । शायत विस्तार की सीमा । चौड़ाई का दाहिना । जैसे, बुपटे का छोर, तामे का छोर । उ०—काननि कनककूल उपवीत अरुदूल पियरे दुदूल विखसत आछे छोर हैं ।—तुलसी ।

धो०—छोर छोर = आदि अंत ।

(२) विस्तार की सीमा । हद । (३) कोर कोना । किनारे पर का सूक्ष्म भाग । नोक । उ०—सिला छोर छुवत अहल्या भई दिव्य देह गुन पेलु पारस पंकरह पाय के ।—तुलसी ।

छोर लुट्टी—संज्ञा स्त्री० दे० “छोड़ लुट्टी” ।

छोरना—क्रि० स० [सं० चोरण = परिवर्णन] (१) बंधन आदि अलग करना । उलभन या फँसाव आदि दूर करना । (२) बंधन से मुक्त करना । (३) छीनना । हरण करना ।

संथा० कि०—देना ।—खेना ।
 छोटा—संथा पुं० [सं० शवक, हिं० छवक + रा (प्रत्य०)] [की०
 छोरी] छोकड़ा । छड़का । थालक ।
 संथा पुं० [दे०] एक नाव को दूसरी नाव के साथ बांध
 कर ले जाने का कार्य ।

छोटा छोटी—संथा स्त्री० [हिं० छोला] (१) छीन खसोट । छीना
 छीनी । (२) मजाड़ा । खड़ेड़ा । कंकड़ । उ०—आत्म देव-
 राम नित विहार यामें नहि कछु छोरा छोरी ।—देवस्वामी ।

छोटी—संथा स्त्री० [हिं० छोरा] लड़की । छोकड़ी ।
 छोटा—संथा स्त्री० [हिं० छोहना] (१) छिन्न जाने का चिह्न या
 धाव । (२) सिर के काटने में उसके दाँत खराने का एक भेद
 जिसमें फेबल चमड़े में खरोंच लगा जाता है ।

छोटादारी—संथा स्त्री० [हिं० छोला + धरना = छोराधरी । वा सं०
 संश्रयते = सेना] एक प्रकार का छोटा खेमा । छोटा संथ ।

छोलना—कि० सं० [हिं० छोलना] (१) छीलना । सतह का ऊपरी
 हिस्सा काटना । उ०—सपि सरद विमल विधु वदन धपूटी ।
 ऐसी खलना सखेली न भई, न छे, न होनी रतित रची विधि
 जो छोलत छुवि छूटी ।—तुलसी । (२) खुरचना । उ०—
 कबोजा छोलना = हृदय को अश्रुत व्यथित करना ।
 संथा पुं० [की० छोलना] लोहे का एक औजार जिससे
 सिक्कलीगर हथियारों का मुत्ता खुरचते हैं ।

छोलना—संथा स्त्री० [हिं० छोलना] (१) छीलने का औजार । (२)
 केश छीलने का औजार । (३) चिलम में छेद बनाने का
 औजार । (४) दलभाइयों का कड़ाही खुरचने का औजार जो
 सुरगी के आकार का होता है । खुरचनी ।

छोला—संथा पुं० [हिं० छोलना] (१) यह पुरुष जो ईश को काटता
 और छीलता है । (२) चना ।

छोचन—संथा पुं० [हिं० छेचना] कुम्हारों का वह छोरा जिससे वे
 पाचन कर चढ़े हुए बरतन को काट कर अलग करते हैं । (इस
 छोरे को एक सरकड़े में बांध कर वे पानी में रले रहते हैं)

छोह—संथा पुं० [हिं० छेना] (१) ममता । प्रेम । स्नेह । उ०—
 तमय घोष जनि छुड़िय छोह । कमं कठिन कछु देप न
 मोह ।—तुलसी । (२) दया । अनुमद । कृपा । उ०—
 पापसी सम पति मिय छोह । देवि न हम पर छुड़िय छोह ।
 —तुलसी ।

छोहरा—संथा पुं० [हिं० छोह + गर (प्रत्य०)] प्रेमी । स्नेही । ममता
 रखनेवाला ।

छोहना—कि० अ० [हिं० छोह + ना (प्रत्य०)] विचलित होना ।
 चंचल होना । झुंझ होना । उ०—यद्गुजरहूँ कोहयो ।
 पंचान ल्यो छोहयो ।—सूदन ।

छोहरा—संथा पुं० [सं० शवक, प्रा० शवक, छव + रा (प्रत्य०)]
 [की० छोरी] छड़का । थालक । छोकड़ा । उ०—आपुस

ही में कदत हँसत हँ प्रभु हिरदै यह साखत । तनक तनक
 से म्वाल छोहरान कंस अग्रहि यधि चाखत ।—सूर ।

छोहरा—संथा स्त्री० [हिं० छोहरा] लड़की । बालिका । छोकड़ी ।
 उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छुड़िया मर छाड़ पै नाच
 नचायें ।—

छोहाना—कि० अ० [हिं० छोह] (१) मुद्रुत्त करना । प्रेम
 दिखाना । उ०—मग मोहूँ कर दिया चराना । पै सो पित्त
 न दिये छोहाना ।—जायसी । (२) अनुमद करना । दया
 करना । उ०—तुलसी तिमारे विचमान युवराज आज केपि
 पावें रोपि यस्कि की छोहाय छाड़ियो ।—तुलसी ।

मुहा०—किसी पर छोहाना = (१) किसी पर स्नेह प्रकट करना ।
 (२) किसी पर दया या अनुमद करना ।

छोहारा—संथा पुं० दे० “छुहारा” ।

छोहिनो—संथा स्त्री० [सं० शनोहिनो] अर्पौहिया ।
 छोही—संथा स्त्री० [हिं० छोह] प्रेमी । स्नेही । ममता रखनेवाला ।
 अनुरागी । उ०—कियो नेत यह वैष्णवदोही । रामा अहे
 सापु को छोही ।—खुरान ।

छोहा—संथा पुं० [हिं० छोलना] खोहवा । चूनी हुई गंधेरी की
 सीधी । पेरी हुई गंधेरी की सीधी । उ०—रस छुड़ि छोही
 गई कोरहूँ पेत देख । गई असार असार को हिरदै नाहिं
 विखेल ।—कवीर ।

छोक—संथा स्त्री० [अ०] धवार । तड़का ।
 यो०—छोक धवार ।

छोकना—कि० सं० [अ० छव्यं छव्यं = तपी हुई वस्तु पर पानी पड़ने
 का शब्द] (१) हॉंग, मिरचा, जीरा, राई, लहसुन आदि
 से मिले हुए कड़कड़ते धी को दाल आदि में डालना जिसमें
 वह सोंधी या सुगंधित हो जाए । धवारना । जैसे, दाल
 छोकना । (२) मीथी, मिरचा, हॉंग आदि से मिले हुए कड़क-
 ड़ते धी में कच्ची लकरी धरन के दले वा नीचे दाने आदि
 को भूजने को लिये । डालना । तड़का देना । जैसे, लकरी
 छोकना ।

छोड़ा—संथा पुं० [सं० बुद्ध = गड्ढा] जमीन में खोदा हुआ वह
 गड्ढा जिसमें अनाज रखते हैं । खत्ता । बाड़ा ।

छोकना—कि० अ० [सं० अ०, प्रा० अ०] किसी जानवर (शेर
 बिड़ो आदि) का चारों पैर उठाकर किसी की घोर धृदना
 या कपटना । चौकड़ी के साथ कपटना ।

छोना—संथा पुं० [सं० धनु = धनु । सं० शवक, प्रा० शवक + चीना (प्रत्य०)]
 [की० छोनी] पशु का बच्चा । किसी जानवर का बच्चा
 जैसे, सग छोना, सूअर का छोना । उ०—यादरु धर्योले
 छोना छगन धान मेरे कहति मरहाह मरहाह ।—तुलसी ।

छौर—संथा पुं० दे० “छौरा” ।
 संथा पुं० दे० “चौर” ।

संज्ञा पुं० [हिं० खेवर = चमड़ा] पुराने समय में सरहद के मगड़ों के संबंध में शपथ खाने की एक रीति। इसमें वादी प्रतिवादी या किसी तीसरे व्यक्ति को जिसके सत्य कथन पर मगड़े का नियंत्रण छोड़ दिया जाता था। गाय का चमड़ा

खिर पर रख कर उस सरहद या सिमान पर धूमना पड़ता था।

छौरा—संज्ञा पुं० [सं० चार = नाथवान्, नट] (१) ज्वार या बाजरे का डंडल जो चारे के काम में आता है। डंड। कोयर। गरीं। खरई। (२) कपास का डंडल।

ज

ज—हिंदी भाषा का एक व्यंजन वर्ण। यह स्पर्श वर्ण है और चवर्ग का तीसरा अक्षर है। इसका यावत् प्रयत्न संवार और नाद घोष है। यह अल्पप्राण माना जाता है। ऊ इस वर्ण का महाप्राण है। 'व' के समान ही इसका उच्चारण तालु से होता है।

जंग—संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० जर्ग] लड़ाई। युद्ध। समर। ३०—असदखान करि हल जंग दुहुँ और मचाह्य। समसुख अरि दहि सुभट बहु कटि हटाह्य।—सूदन।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

यौ०—जंगघावर। जंगजू।

संज्ञा स्त्री० [अ० जक] एक प्रकार की बड़ी नाव जो बहुत चौड़ी होती है।

क्रि० प्र०—खोलना।

संज्ञा पुं० [फा०] लोहे का मोरचा।

क्रि० प्र०—लगाना।

जंगघाघर—वि० [फा०] लड़नेवाला। योद्धा। लड़ाका।

जंगजू—वि० [फा०] लड़ाका। वीर। योद्धा। ३०—और सुना है प्रताप बड़े जोरा के साथ फौज सुहृदया कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं।—महाराजा प्रताप।

जंगम—वि० [सं०] (१) चलने फिरेवाला। चलता फिरता। चर। (२) जो एक स्थल से दूसरे स्थल पर लाया जा सके। जैसे, जंगम संपत्ति, जंगम विप। (३) वाचिषाल लिंगायत शैव संप्रदाय के गुरु। ये दो प्रकार के होते हैं—विरक्त और सुहृदय। विरक्त स्तिर पर जटा रखते हैं और कीर्पण पहनते हैं। इन लोगों का लिंगायतों में बड़ा मान है।

जंगम-शुद्धम—संज्ञा पुं० [सं०] पैदल सिपाहियों की सेना।

जंगम-विप—संज्ञा पुं० [सं०] वह विप जो चर प्रायियों के दंश आघात वा विकार आदि से उत्पन्न हो। सुसुत ने सोलह प्रकार के जंगम विप माने हैं—दृष्टि, निधास, द्रंघ्रां, नल, मूत्र, पुरीय, शुक्र, लाला, अतैव, आल (आइ), सुल-संदेश, अस्थि, पिच, विशदित, शुक्र, और शव वा मृत देह। उदाहरण के लिये जैसे, दिव्य सर्प के आस में विप; साधारण

सर्प के दंशन में विप; कुत्ते, बिल्ली, बंदर, गोह आदि के नख और दाँत में विप; विच्छ, भिड़ सऊची मछली आदि के आइ में विप होता है।

जंगरा—संज्ञा पुं० [देग०] उद, मूंग इत्यादि के वे डंडल जो दाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं। जंगरा।

जंगरैत—वि० [हिं० जंगर] [श्री० जंगरैत] (१) जंगरवाला। (२) परिश्रमी। मेहनती।

जंगल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जंगली] (१) जल-शून्य भूमि। रेगिस्तान। (२) वन। अरण्य।

मुद्दा—जंगल में भंगल = सुनसान स्थान में चहुन्न पड़त, जंगल जाना = दृष्टी जाना। पाखाने जाना।

(३) मांस।

जंगल-जलेबी—संज्ञा पुं० [हिं० जंगल + जलेबी] गू। गजीर। गू का लेंद।

जंगला—संज्ञा पुं० [पुरे० जंगला] (१) खिड़की, दरवाजे, दरामदे आदि में लगी हुई लोहे की छुरों की पंक्ति। कठहर। बाइ।

(२) चौखट वा खिड़की जिसमें जाली वा छड़ लगी हो।

क्रि० प्र०—लगाना।

(३) दुपट्टे आदि के किनारे पर काड़ा हुआ बेल गूदा।

संज्ञा पुं० [सं० जंगल] (१) संगीत के यारह सुकामों में से एक।

(२) एक राग का नाम। (३) एक मछली जो बाह्र इंच लंबी होती है और बंगाल की नदियों में बहुत मिलती है।

(४) अन्न के वे पेड़ वा डंडल जिनसे शूट कर अन्न निकाल लिया गया हो।

जंगली—वि० [हिं० जंगल] (१) जंगल में मिलने वा होनेवाला। जंगल संबंधी। जैसे, जंगली लकड़ी, जंगली कंठा। (२) आपसे आप होनेवाला (वनस्पति)। बिना बोध वा लगाव उगनेवाला। जैसे, जंगली आम, जंगली कपास। (३) जंगल में रहनेवाला। धनीला। जैसे, जंगली हाथी, जंगली आदमी। (४) जो परेव, वा पाखरू न हो। जैसे, जंगली कचूर।

जंगली बादाम—संज्ञा पुं० [हिं० जंगली + बादाम] (१) कलीले की जाति का एक पेड़ जो भारतवर्ष के पश्चिमी घाट के पहाड़ों

तथा मत्तया और ट्यासरिम के उपरी भागों में होता है । इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है । यह पेड़ फागुन व्रत में फूलता है और इसके फूलों से कड़ो दुर्गंध आती है । इसके फलों के बीज को उबाल कर तेल निकाला जाता है । इन बीजों को सहेँगी के दिनों में लोग भूत पर भी खाते हैं । कूल और पतिर्पा औरपध के काम में आती हैं । इसे पून और विनार भी कहते हैं । (२) हड़ की जाति का एक पेड़ । यह श्रद्धमन के दाएँ तथा भारतवर्ष और यमों में भी उल्लभ होता है । इसकी छाल से एक प्रकार का गोंद निकलता है और इसके बीज से एक प्रकार का यहुमूल्य तेल निकलता है और मंध और गुण में बादाम के तेल के समान ही होता है । इसकी पतिर्पा कर्सीली होती है और चमड़ा सिम्माने के काम में आती है । इसके बीज को लोग गजक की तरह खाते हैं और इसकी खली मुद्यरों को खिन्नाई जाती है । इसकी पाल, पची, बीज, तेल आदि सब औरपध के काम में आते हैं । लोग इसकी पतिर्पा रेशम के कीड़ों को भी खिलाते हैं । इसे हिंदी यदाम और नट यदाम भी कहते हैं ।

जंगली रेंड—संज्ञा पुं० दे० “यन रेंड” ।

जंगा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगल] यौर । घुँघरू का दाना ।

जंगार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] [वि० जंगरी] (१) तबिये का कसाव । स्तिया । (२) एक रंग । यद्वा तबिये का कसाव है जिसे सिरकाकर लोग निकालते हैं । ये तबिये के बुर्ये को सिरके के थर्क में डाल देते हैं । सिरके का परतन रात भर सुँह बंद करने और दिन को सुँह खोल करके रखा रहता है । यौबीस घंटे के बाद सिरके को उस परतन से निकाल कर छिद्यले परतन में सूखने के लिये रख देते हैं । जब पानी सूख जाता है तब उसके नीचे चमकीली नीले रंग की बुकनी निकलती है जो रंगारि के काम में आती है ।

जंगारी—वि० [फ्रा० जंगार] नीले रंग का । नीला ।

जंगाल—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगार] दे० “जंगार” ।

संज्ञा पुं० [सं०] पानी रोकने का बाँध ।

जंगाली—वि० दे० “जंगारी” ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का रोसमी कपड़ा जो चमकीले नीले रंग का होता है ।

जंगी—वि० [फ्रा०] (१) छोड़ने से संबंध रखनेवाला । जैसे, जंगी जंगम, जंगी कानून । (२) कौजी । सैनिक । सेना संबंधी । जैसे, जंगी खात, जंगी अफसर ।

मुहा०—जंगी खात = प्रधान सेनापति ।

(३) बड़ा । बहुत बड़ा । दीर्घकाय । जैसे, जंगी घोड़ा । (४) और । छोड़कर । यहादुर । जैसे, जंगी धादमी ।

धरा पुं० कदारों की बोलचाल में घोड़ा । जैसे, “दादने जंगी, पचा के” ।

वि० [फ्रा०] जंगवार का । हथरा देश का । जैसे, जंगी हड़ । संज्ञा पुं० जंगवार देश का निवासी । हथरी ।

जंगी हड़—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जंग + हड़] काली हड़ । छोटी हड़ । जंघुल—संज्ञा पुं० [सं०] जहर । विष ।

जंमि—संज्ञा स्त्री० [हिं० जग] यज्ञी घुँघरू लगी कमरपट्टी जिसे आहीर या घोबी भपने जातीय नाच के समय कमर में बाँधते हैं ।

जंघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पिँहली । (२) जाँघ । रान । उद । (३) कैंची का दस्ता जिसमें फल और दस्ताने लगे रहते हैं । यह प्रायः कैंची के फलों के साथ दाजा जाता है पर कभी कभी यह पीतल का भी होता है ।

जंघाफार—संज्ञा पुं० [हिं० जंघा + फारना] कदारों की बोली में वह सारई जो पालकी के उठानेवाले कदारों के रास्ते में पड़ती है ।

जंघामधानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जघा + मयनी] छिनाल स्त्री । पुंशली । कुलटा ।

जंघार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जघा + ऋर] यह फोड़ा जो जाँघ में हो । यह आकृति में लंबा और कड़ा होता है और बहुत दिनों में पकता है । इसमें अधिक पीड़ा और जलन होती है ।

जंघारधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम । (२) जंघारय नाम ऋषि के गौरव में उल्लभ पुत्र ।

जंघारा—संज्ञा पुं० [दे०] राजपूतों की एक जाति जो बड़ी मगड़ालु होती है ।

जंघारि—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम ।

जंघाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घायन । धावक । दूत । (२) भावप्रकार के अनुसार सृष्टि की सामान्य जाति । हरिय, पृथ, कुंरंग, ऋष्य, प्रपत, न्यंकु, शंवर, राजीव, मुंघी आदि इसी जाति के संतर्गत हैं । तामड़े रंग के हिरन को हरिय, कृष्ण बर्ण के पृथ, कुंड़ तांत्र बर्ण लिये काले को कुंरंग, नील बर्ण को ऋष्य, हरियन से कुंड़ छोटे चंद्रविंदुयुक्त को प्रपत, बहुत से साँगायाने को सृष्टा, न्यंकु ह्यादि कहते हैं ।

जंघावेधु—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

जँचना—कि० अ० [हिं० जँचना] (१) जाँचा जाना । देखा भासा जाना । (२) जाँच में पुरा बतरना । दृष्टि में ठीक वा अच्युटा दहरना । उचित वा अच्युटा दहरना । उचित वा अच्युटा प्रतीत होना । ठीक वा अच्युटा जान पड़ना । व०—(क) हमें तो उसके सामने यह कपड़ा नहीं जँचता । (ख) मुझे इसकी बात जँच गई । (३) जान पड़ना । प्रतीत होना । निश्चय होना । मन में बँटना । व०—मुझे मुन्दारी बात ठीक नहीं जँचती ।

जँचा—वि० [हिं० जँचना] (१) जाँचा हुआ । सुपरिचित । (२) अच्युत । अच्युत । जैसे, जँचा हाथ ।

मुहा०—जैसा तुला = (१) सुपरीक्षित। तथा या भैंसा। अत्यर्थ।

(२) ठीक ठीक। जिसकी सवाई में कुछ भी कसर न हो।

जैसे, जैसी तुनी बात।

जंजरनी-वि० दे० "जंजल"।

जंजलनी-वि० [सं० जंजर] पुराना धार कमजोर। बेकाम।

जंजाल-संज्ञा पुं० [हिं० जग + जाल] [वि० जगलिया, जंजाली]

(१) प्रपंच। कर्मठ। बखेड़ा। उ०—अस प्रभु दीन बंधु हरि

कारन रहित दयाल। तुलासिदास सठ ताहि भइ छादि कपट

जंजाल।—तुलसी। (२) अंधन। फँसाव। ललभन।

उ०—(क) आशा लै के चरयो मृपति वहाँ उतर दिशा

विशाल। करि तप विप्र जनम अब लीन्हो मिटयो जन्म

जंजाल।—सूर। (ख) हृदय की कथहुँ न पीर घटी। दिन

दिन हीन धीन भइ काया हुल जंजाल जटी।—सूर। (ग)

भव जंजाल तोरि तरु बन के पलव हृदय विदारयो।—सूर।

मुहा०—जंजाल में पड़ना वा फँसना = फटिनता में पड़ना।

संघट में पड़ना। उलभन में फँसना।

(३) पानी का अँवर। (घ) एक प्रकार की घड़ी पलीतदार बंदूक

जिसकी माल बहुत लंबी होती है। यह बहुत भारी होती है

और दूर तक मार करती है। उ०—सूरज के सूरज गहि

सुदृष्टिय। तूफ तोग जंजालन सुदृष्टिय। (४) एक बड़े सुँह की

तोप। इसमें कंकड़ पत्थर आदि भर कर फेंके जाते थे। यह

बहुधा किले का घुस तोड़ने के काम में आती थी। (६)

बड़ा जाल।

जंजालिया-वि० [हिं० जंजाल + इया (प्रत्य०)] जंजाल रचने-

वाला। बखेड़ा करनेवाला। झगड़ाव। उपद्रवी। फुसादी।

जंजाली-वि० [हिं० जंजाल] झगड़ाव। बखेड़िया। फुसादी।

संज्ञा स्त्री० यह रस्ती और धिरनी जिससे पाल बढ़ाते वा

गिराते हैं।

जंजीर-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [वि० जंजीर] (१) सर्कल। सिकड़ी।

कड़ियों की लड़ी। जैसे, छोटे की जंजीर। (२) बेड़ी।

मुहा०—जंजीर डालना = पैर में बेड़ी डालना। बांधना। बंदी

करना। पैर में जंजीर पड़ना = जंजीर से जकड़ा जाना। बंदी

होना।

(३) कियाड़ की कुंठी। सिकड़ी।

मुहा०—जंजीरबजाना = कुंठी खटखटाना। जंजीर लगाना = कुंठी

बंद करना।

जंजीरा-संज्ञा पुं० [हिं० जंजीर] एक प्रकार की सिलाई जो

देखने में जंजीर की तरह मालूम पड़ती है। यह फाँस डाल

कर सी जाती है। यह केवल कसीदे और सूईकार में काम

आती है। सदरिया।

फिक० प्र०—डालना।

जंजीरी-वि० [हिं० जंजीर] जंजीरदार। जिसमें जंजीर लगी हो।

मुहा०—जंजीरी गोला = तोप के बें गोले जो कई एक राउप

जंजीर में लगे रहते हैं। ये साधारण गोलों की अपेक्षा अधिक

मयानक होते हैं।

जंजीरदार-वि० [हिं० जंजीरा + दार] जिसमें जंजीरा पड़ा हो।

जंजीरा डाला हुआ।

विशेष—यह केवल सिलाई के लिये प्रयुक्त होता है, जैसे,

जंजीरदार सिलाई।

जंज-संज्ञा पुं० [हिं० जंजट] जिन्ना मजिस्ट्रेट के नीचे का सिविल-

लियन मजिस्ट्रेट। जंज मजिस्ट्रेट।

जंजिलमैन-संज्ञा पुं० [हिं०] (१) भला मानुस। सम्य पुरुष। (२)

श्रेष्ठेरी चाल डाल से रहनेवाला आदमी।

जंज-संज्ञा पुं० [दे०]—एक जंगली पेड़ जिसे साँगर भी कहते

हैं। इसकी फलियों का अचार बनाया जाता है।

जंतर-संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] (१) कल। यंत्र। (२) तांत्रिक

यंत्र।

यौ०—जंतर मंतर।

(३) चौकोर वा लंबी ताबीज जिसमें तांत्रिक-यंत्र वा फोर्ड

टोचके की धनु रहती है। इसे खोग अपनी रक्षा वा किसी

इष्टि की सिद्धि के लिये पहनते हैं। (४) गले में पहनने का

एक गठना जिसमें चाँदी वा सोने के चौकोर वा लंबे

डुकड़े पाट में गुँथे होते हैं। कठला। ताबीज। (५) यंत्र

जिससे घैघ या रासायनिक तेल और आसव आदि तैयार

करते हैं। (६) जंतर मंतर। मानमंदिर। आकाशलोचन।

(७) पत्थर, मिट्टी आदि का बड़ा ढोका। (८) बीजा। बीज

नामक धान।

जंतर मंतर-संज्ञा पुं० [हिं० यंत्र मंत्र] (१) यंत्र मंत्र। योना टोचका।

जादू योना। (२) आकाशलोचन। मानमंदिर जहाँ ज्योतिषी

नक्षत्रों की स्थिति, गति आदि का निरीक्षण करते हैं।

जंतरा, जंत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० यंत्र] एक रस्ती जो गाड़ी के

ढाँचे पर कसी या तानी जाती है।

जंतरी-संज्ञा स्त्री० [सं० यंत्र] (१) छोटा जंता जिसमें सेनावर

तार बढ़ाते हैं। दे० जंता (२)।

मुहा०—जंतरी में खींचना = (१) तारों को जंत में डाल कर

पतला और लंबा करना। (२) सीधा करना। हलका करना।

फज निफालना। टेढ़ापन दूर करना।

(३) धरा। तिथिपत्र। (४) आद्वार। भानमती। (५)

बाजा बजानेवाला। वाद्यकुराल।

जंतसार-संज्ञा स्त्री० [सं० यंत्रशास्त्र] जंता गाड़ी का स्थान। यह

स्थान जहाँ जंता गाड़ी आता है।

जंता-संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] [स्त्री० जंती, जंतरी] (१) यंत्र।

कला। जैसे, जंताधर। (२) सेनावरों और तारकरों का

एक श्रीजार निममें डाल कर ये तार खींचते हैं। यह श्रीजार छोड़े की एक लंबी पट्टी होती है जिसमें बहुत से ऐसे छेद कई पातियों में होते हैं जो क्रमशः छोटे होते जाते हैं। सोनार सोने या चांदी के तारों को पहले बड़े छेदों में, फिर उनसे छोटे छेदों में, फिर और छोटे छेदों में क्रमानुसार निकाल कर खींचते हैं जिससे तार पहले होकर बढ़ते जाते हैं।

वि० [सं० यंत्र = यंत्र] यंत्रणा देनेवाला। दंड देनेवाला। रासन करनेवाला। उ०—हाकिमी शाकिनी पूतना ट्रेस बैतल मृत प्रमथ धूय जंता।—तुलसी।

जंताना—क्रि० प्र० [हि० जंत] जंतों में पिस जाना। कुचल जाना। चूर चूर होना।

जंतू—संज्ञा स्त्री० [हि० जंत] छोटा जंतू जिससे सोनार यारीक तार खींचते हैं। जंतरी।

† संज्ञा स्त्री० [हि० जनना] माता। मा।

जंतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म लेनेवाला जीव। प्राणी। जानवर।

यौ०—जीवजंतु = प्राणी। जानवर।

(२) महाभारत के अनुमार सोमक राजा का एक पुत्र जिसकी वधा से होम करने के प्रीच्छे सौ पुत्र हो गए।

जंतुकंतु—संज्ञा पुं० [सं०] शंख का कीड़ा। शंख।

जंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल। लाड़ा।

जंतुप्र—वि० [सं०] प्राणिनाशक। हृमिन्न।

संज्ञा पुं० (१) विदंग। मायविदंग। (२) हांग। (३) प्रियारा नीचू। (४) यह श्रीगणपति जिनके संपर्क से कीड़े मर जाते हैं।

जंतुद्रोप—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाघविदंग।

जंतुनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] हांग।

जंतुकल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उद्दर। गुल्लर। जमर।

जंतुपारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीचू।

जंतुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बस नाम की घास।

जंत्र—संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] (१) कल। श्रीगार। (२) तांत्रिक यंत्र। (३) ताला।

विशेष—दे० "यंत्र"।

जंथना—वि० सं० [हि० जन्] ताला लगाना। ताले के भीतर बंद करना। बंदबंद करना। उ०—सभा राउ गुरु महिसुर मंत्रों। भरत भगति स्वर्ग के मति जंत्री।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० दे० "यंत्रणा"।

जंत्र मंत्र—संज्ञा पुं० दे० "जंतर मंतर", "यंत्र मंत्र"।

जंथा—संज्ञा पुं० दे० "जंता"।

जंत्रित—वि० [सं० यंत्र] (१) दे० "यंत्रित"। (२) बंद। बंधा। उ०—अथनि निरुपाधि भक्ति भाव जंत्रित हृदय संशु हित चित्रकृत्यदि चारी।—तुलसी।

जंत्रो—संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] यीशा आदि बजानेवाला। बाना, बजानेवाला।

वि० यंत्रित करनेवाला। बंद करनेवाला। जकड़बंद करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] बाजा। उ०—घातन दे बंत्रंतरी जग जंत्रो ना छेड़। तुमके बिरानी क्या पढ़ी अपनी धाप निवेर।—कबीर।

संज्ञा स्त्री० दे० "जंतर (२)"।

जंद—संज्ञा पुं० [फा० جند; मि० सं० जंघ] (१) पारसियों का अत्यंत प्राचीन धर्मग्रंथ। इस की भाषा वैदिक भाषा से मिलती जुलती है। इसके श्लोकों का 'गाथा' या 'मंत्र' कहते हैं। इसके छंद और देवता वेदों के छंद और देवताओं से मिलते हैं। (२) यह भाषा जिसमें पारसियों का जंद-अवस्था नामक धर्मग्रंथ लिखा गया है।

जंदरा—संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] यंत्र। बल।

मुद्गार—जंदरा डीला होना = (१) कल पुत्रों के मार होना। (२) हाथ पैर मुग्न होना। नष्ट दीर्घ होना। पञ्चवट आना।

(२) जाता। जैसे, कुछ गेहूं गीले, कुछ जंदरे डीले। † (३) ताला।

जंवाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कीबड़। काँदा। पंरु। (२) सेवार। शीवाल। (३) काई। (४) केवड़ा।

जंवाटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी का वृष।

जंवीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंवीरी नीचू। (२) महवा। (३) सफ़ेद या हलके रंग की तुलसी। (४) बन तुलसी।

जंवीरी नीचू—संज्ञा पुं० [सं० जंवीर] एक प्रकार का सड़ा नीचू। इसका फल कागसी नीचू से बड़ा और फल के ऊपर का डिकला मोटा और उमड़े महीन महीन दागों के कारण खुट्टारा होता है। कच्चा फल श्व मत्ता लिए गहरा हरा होता है पर पकने पर पीला हो जाता है। पेड़ इसका बड़ा और फंटीला होता है। फलत यन्त्र में इसमें फूल लगते हैं और धरासात में फल दिखाई पड़ते हैं जो कात्तिक के उपरांत खाने योग्य होते हैं। फल इसमें बहुत आते हैं और बहुत दिनों तक रहते हैं।

जंतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबू वृष। जामुन। (२) जामुन का फल।

जंतुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा जामुन। फरदा। (२) श्येनाक वृष। (३) सुवर्ण केतकी। केवड़ा। (४) शृगाल। गीदड़। (५) वरण। (६) बहन वृष। (७) टेंद्र का पेड़। सोना पाटा। (८) स्कंद का एक अनुचर।

जंतुकल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० "जंतुवृष"।

जंतुवृष—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप। यह द्वीप पृथिवी के मध्य में माना गया है। पुराण का

मन है कि यह गोल है और चारों ओर से सारे समुद्र से घिरा है। यह एक लाख योजन विस्तीर्ण है और इसके नीचे खंड माने गए हैं जिनमें प्रत्येक खंड नव नव हजार योजन विस्तीर्ण है। इन नीचे खंडों को वर्ष भी कहते हैं। इलायूत खंड इन नीचे खंडों के बीच में बतलाया गया है। इलायूत खंड के उत्तर में तीन खंड हैं—रम्यक, हिरण्य और कुरुवर्ष। नील, श्वेत और शंखाना नामक पर्वत क्रमशः इलायूत और रम्यक, रम्यक और हिरण्य और हिरण्य और कुरुवर्ष के मध्य में हैं। इसी प्रकार इलायूत के दक्षिण में भी तीन वर्ष हैं जिनका नाम हरिवर्ष, पुरुष और भारतवर्ष है, और दो दो वर्षों के बीच एक एक पर्वत है जिनका नाम निषप, हेमयूट और हिमाद्रय है। इलायूत के पूर्व में भद्राक्ष और पश्चिम में पेतुमाल वर्ष हैं तथा गंधमादन और माह्य नाम के दो पर्वत क्रमशः इलायूत खंड के पूर्व और पश्चिम सीमारूप हैं। पुराणों का कथन है कि इस द्वीप का नाम जंबुद्वीप इस लिये पड़ा है कि इसमें एक बहुत बड़ा जंबू का पेड़ है जिसमें हाथी के इतने बड़े फल लगते हैं। थोड़े लोग जंबू द्वीप से केवल भारतवर्ष का ही प्रदूष करते हैं।

जं बुधज—संज्ञा पुं० [सं०] जंबुद्वीप।

जं बुमत्—संज्ञा पुं० [सं०] एक यानर का नाम जिसे जांबवान् भी कहते हैं।

जं बुमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अक्षर का नाम।

जं बुमाली—संज्ञा पुं० [सं०] जम्बू द्वीप का नाम।

जं बुमथ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। अतः जम्बू द्वीप में निगूहाल केकय द्वा से लौट रहे थे तब मार्ग में उन्हें यह नगर पड़ा था। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि आज कल का जंबू (काश्मीर) वही नगर है।

जं बुल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबू। जायुन। (२) वेतली का पेड़। (३) कर्णवर्षी नामक रोग। इनमें कान की रोग एक जाती है। सुष-कनवा।

जं बुस्वामी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंबुद्वीप का नाम जिनका जन्म राजा श्रेयिक के समय में श्रवणभद्र संत की छोटी धारिणी के गर्भ से हुआ था।

जं बु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जायुन। (२) जायुन का फल। (३) नागदमनी। दौना। (४) कश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द स्त्री० है पर जायुन के फल के लिये पुल्लिंग भी है।

† वि० बहुत बड़ा। बहुत ऊँचा।

जं बुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसमिस।

जं बुखंड—संज्ञा पुं० दे० "जंबुखंड"।

जं बुद्वीप—संज्ञा पुं० दे० "जंबुद्वीप"।

जं बुनद्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार जंबु द्वीप की एक नदी।

यह नदी उस जायुन के वृक्ष के रस से निकली हुई मानी जाती है जिसके कारण द्वीप का नाम जंबुद्वीप पड़ा है और जिसके फल हाथी के बराबर होते हैं। महाभारत में इस नदी को सात प्रधान नदियों में गिनाया है और इसे मल्लोका से निकली हुई लिखा है।

जं बूर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबू। (२) तोप की चरख। (३) पुरानी छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लानी जाती थी। जंबूक।

जं बूरक—[सं०] जंबूक। (१) छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लानी जाती है। (२) तोप की चरख। (३) भँवर कड़ी।

जं बूरनी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबू नामक छोटी तोप का चलावेवाला। तोपची। (२) बर्कदान। सिपाही। तुपकची।

जं बूर—संज्ञा पुं० [सं०] जंबू = भँवर। (१) चरख जिस पर तोप चलाई जाती है। (२) भँवर कड़ी। भँवर कड़ी। (३) सेने लगेदे आदि धातुओं के शारीक काम करनेवालों का एक औजार जिससे वे तार आदि पकड़ करं मुँदने, रेतते वा घुमाते हैं। यह काम के अनुसार छोटा वा बड़ा होता है और प्रायः लकड़ी के टुकड़े में जड़ा रहता है। इसमें चिमटे की तरह चिपक कर बैठ जानेवाले दो चिपटे परले होते हैं। इन परों की बगल में एक पंच रहता है जिससे परले खुलते और कसते हैं। कारीगर इसमें चीनों को दबा कर मुँदने रेतते तथा और काम करते हैं। यंत्र। (४) एक लकड़ी का बला जो मस्तूल पर बाधा लगा रहता है और जिस पर पात का बाँधा रहता है। (लया०)

जं बूर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जायुन का वृक्ष। (२) केवड़े का वृक्ष।

जं बूरनज—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत जवा पुष्प। सफ़ेद मुड़बल का फूल।

जं भ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाढ़। चौमड़। (२) बबड़ा। (३) एक दैत्य का नाम। यह महिषासुर का पिता था और इसे इंद्र ने मारा था। इ०—इंद्र ज्यों जंभ पर, बाँटा सुबंभ पर, रावण सर्वद पर शकुल राम है।—भूषण। (४) प्रहलाद के तीन पुत्रों में से एक। (५) हिरण्यकशिपु के पुत्रों में से एक। (६) जैभीरी नीचू। (७) कंधा और हँसली। (८) भण्य। (९) जम्हाई।

जं भक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैभीरी नीचू। (२) शिव। (३) एक राजा।

वि० [सं०] (१) जैभाई या नौदलानेवाला। (२) हिंस्र। भण्य। (३) कासुक।

जं भका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैभाई।

जंमन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भवण । (२) रति । संभोग ।
(३) जैभाई ।

जंमन-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैभाई । जमुहाई ।

जंभाई-संज्ञा स्त्री० [सं० जूभा] मुँह के खुलने की एक स्वाभाविक क्रिया जो निद्रा या आलस्य मालूम पड़ने, शरीर से बहुत अधिक खून निकल जाने, या दुर्दलता आदि के कारण होती है। इसमें मुँह के खुलने ही ससि के साथ बहुत सी हवा धीरे धीरे भीतर की ओर खिंच आती है और कुछ छय टहर धर धीरे धीरे बाहर निकलती है। यद्यपि यह क्रिया स्वाभाविक और बिना प्रयत्न के आपसे प्राप होती है, तथापि बहुत अधिक प्रयत्न करने पर दुर्धर्द भी जा सकती है। हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जिस कायु के कारण जैभाई आती है उसे देवदत्त कहते हैं। वैद्यक के अनुसार जैभाई आने पर तत्तम सुगंधित पदार्थ राना आदिपुः प्रायः दूसरे-दूसरे को जैभाई लेते हुए देख कर भी जैभाई आने लगती है। उदासी ।

क्रि० प्र०-आना ।-लेना ।

जंभाज-क्रि० अ० [सं० जूभाज] जैभाई लेना ।

जंभाज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र । (२) अग्नि । (३) वज्र ।

(४) विष्णु ।

जंभी, जंभीर-संज्ञा पुं० दे० "जंभीरी" ।

जंभीरी-संज्ञा पुं० दे० "जंभीरी बंधू" ।

जंभुरा-संज्ञा पुं० दे० "जंभुरा" ।

जंघालिनो-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।

जंघना पुं० [सं०] (१) श्लुचुजय । (२) जन्म । (३) पिता ।

(४) विष्णु । (५) विप । (६) भुक्ति । (७) तेज । (८) पिशाच । (९) वेग । (१०) छंदः साध्यानुसार पुरु गण जो तीन कर्णों का होता है। इसके आदि और अंत के धर्म लघु और मध्य का वर्ण गुरु होता है (। ५।) , जैसे, महेश, वामेश, सुरेश आदि। इस गण का देवता सर्प और फल शोध माना गया है।

वि० (१) वेगवान् । वेगित । तेज । (२) जीतनेवाला । जेता ।

जंघना-वपुत्र । ज्ञात । जैसे, देवज, निजज, घातज आदि ।

विशेष-यह प्रायः प्रायः सपुत्र सम्राज के वंश के अंत में आता है। पंचमी सपुत्र आदि में पंचम्यंत वंशों की विभक्ति सुप्त हो जाती है, जैसे, पादज, द्विज इत्यादि। पर सप्तमी सपुत्र में 'प्राहुट', 'अर्य', 'काज' और 'घु' इन चार शब्दों के परिमित जहाँ विभक्ति कनी रहती है (जैसे प्रायुषिज, अर्युषिज, काजुषिज, द्विषिज) शेष स्थलों में विभक्ति का कोप विभक्ति होता है। जैसे, मनविज, मनोव; सप्तमिज, सरोज इत्यादि ।

जई-संज्ञा स्त्री० [हि० जी] (१) जी की जाति का एक अन्न जिसका पांथा जी के बीघे से बहुत मिलता जुलता होता है और जो बी से अधिक बढ़ता है। गां गेहूँ आदि की तरह यह अन्न भी वर्षा के अंत में बोया जाता है। बोने के प्रायः एक महीने बाद इसके दूरे उठकर काट लिए जाते हैं जो पशुओं के पारे के काम में आते हैं। काटने के बाद उठकर फिर बढ़ते हैं और पौधे ही दिनों में फिर काटने के योग्य हो जाते हैं। इस प्रकार जई की फसल तीन महीने में तीन बार हरी काटी जाती है और अंत में अन्न के लिये पौधे दी जाती है। बीधी बार इस में प्रायः हाथ भर या इस से कुछ कम लंबी बाजें लगती हैं। इन्हीं बाजों में जई के दाने लगते हैं। बोने के प्रायः साढ़े तीन या चार महीने बाद इसकी फसल तैयार हो जाती है। फसल पकने पर पीली हो जाती है और पूरी तरह पकने से कुछ पहले ही काट ली जाती है, क्योंकि अधिक पकने से इसके दाने भड़ जाते हैं और उठल भी निबन्धे हो जाते हैं। एक बीघे में प्रायः बारह तेरह मन अन्न और अठारह मन उठल होते हैं। इसके लिये दोस्त भूमि अच्छी होती है और अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। इस देश में जई बहुधा चोड़ों आदि को ही सिंचाई जाती है, पर जिन देशों में गेहूँ, जौ आदि अच्छे अन्न नहीं होते वहाँ इसके आटे की रोटियाँ भी बनती हैं। इसके दूरे उठल गेहूँ और जी के मूले से अधिक पोषक होते हैं और गाँ, मँग और पौधे आदि उन्हीं बढ़े पाव से खाते हैं। (२) जी का होता अंकुर ।

विशेष-हिंदुओं के यहाँ नारायण में देवी की स्थापना के साथ पौधे से जी भी पौधे जाते हैं। अष्टमी या नौमी के दिन ये अंकुर उखाड़ लिए जाते हैं और माहात्म्य उन्हीं लेकर मंगल स्वरूप अपने यत्नमार्गों की शंका करते हैं। यहाँ अंकुरों को जई कहते हैं। इस अर्थ में इनके साथ "देना", "खोसना" आदि क्रियाओं का भी प्रयोग होता है।

(३) अंकुर । श्लुचुया ।

मुहा०-जई डालना = थंकरु निकालने के लिये कृषि अन्न को भिगोना या तर स्थान में रखना । जई लेना = कृषि अन्न को इस बात की परीक्षा के लिये देना कि वह अंकुरित होगा या नहीं। जैसे, धान की जई लेना, गेहूँ की जई लेना, आदि ।

(४) उन कर्णों की वृत्तिया जिन में वनिया के माप पूल भी लगा रहता है। जैसे, खीरे की जई, कुम्हड़े की जई । उ०-सपुत्र पाति सरजिने सरजनी कुम्हड़ेही कुम्हड़े की जई है।-मुलसी ।

क्रि० प्र०-निकलना ।-लगना ।

वि० दे० "जयी" ।

जईफ-वि० [ष०] बुद्धा । बुद्ध ।

जईफो-संज्ञा पुं० [फा०] बुद्ध्या। चूदावस्था।
 जकंद*—संज्ञा स्त्री० [फा० जुंदा] झुंदा। चौकड़ी। उद्याल।
 जकंदनाई*—वि० अ० [हिं० जकंद] (१) कूटना। उखलना।
 (२) दूट पड़ना। उ०—जमन जोर करि घाह्या तय भरत
 जकंदे। माने राहु सगहिया भक्कन नू चंदे।—सूदन।
 जफ-संज्ञा पुं० [सं० यन] (१) यश। धनरक्षक भूत प्रेत। (२)
 कंठम भादमी।
 संज्ञा स्त्री० [हिं० मक] [वि० मकी] (१) जिह्वा। हठ।
 अट्ट। उ०—मोहि प्रभु तुम सैं होठ परी।.....
 पतित समूहनि उदरिये को तुम जिय जक पकड़ी।—सूर।
 कि० प्र०—पकड़ना।
 (२) धुन। रट उ०—जदपि नाहिं नाहीं नहीं यदन लगी
 जफ जालि। तदपि भांह हांसी भरिनु हांसी पै ठहरालि।—
 विहारी।
 कि० प्र०—लगना।
 मुहा०—जक बंधना = रट लगना। धुन लगना। उ०—तय
 पद चमरु चकचाने चंद्रपूड चल चितवत एकटक जक कैंध
 गई है।—चरण।
 (३) हार। पराजय। (४) हानि। घाटा। टोटा।
 कि० प्र०—उठाना।—पाना।
 (५) पराभव। लज्जा। (६) डर। खौफ।
 जकड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० जकड़ना] जकड़ने का भाव। कम कर
 बांधना।
 मुहा०—जकड़बंध करना = (१) खूब कस कर बांधना। (२)
 अच्छी तरह फँसा लेना। पूरा तरह अपने अधिकारों में
 कर लेना।
 जकड़ना—कि० प्र० [सं० जुक + करण या श्रृंखल = सिकड़ी] कस कर
 बांधना। कड़ा बांधना। जैसे, उसका हाथ पैर जकड़ दो।
 सयो० कि०—देना।—डालना।
 कि० अ० अकड़ने आदि के कारण शरीरों का हिलने डुलने
 के योग्य न रह जाना। जैसे, हाथ पैर जकड़ना।
 संयो० कि०—जाना।—उठना।
 जकनाई*—कि० अ० [हिं० जक या ककपकाना] [वि० जकित]
 शर्बते में आना। भौचक्का होना। चकपकाना। उ०—(क)
 तक तकि चहूँ और जकि सी रही थकि थकि थकि उठै छुकि
 छेल की लगन में।—दीनदयाल। (ख) तरु दोऊ धरनि परे
 भरहाई। ... कैंज रुहे थकाय देपत कोऊ रहे सिरनाई।
 धरिफ लों जकि रहे जई तई रहे गति विसराई।—सूर।
 (ग) दूत दूकाने, चित्रगुप्त सुपकाने, श्री जकाने यमनाल पाय
 पुंज लुं ज हूँ गये।—पद्माकर।
 जुंकात-संज्ञा पुं० [च०] (१) दान। खैरात।
 कि० प्र०—देना।

(२) कर। महसूल।
 जकाती-संज्ञा पुं० दे० “जगाती”।
 जकिगाँव-वि० [हिं० चकित] चकित। १. विमित। स्तंभिल।
 उ०—हरिसुख किर्षो मोहनी माई।... ..
 सुरदास प्रभु यदन विलोकत जकित थकित चित श्रनत न
 जाई।—सूर।
 जकुट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलयपत्तल। (२) कुत्ता। (३)
 बैंगन का फूल।
 जकी-संज्ञा स्त्री० [रेग०] बुलबुल की एक जाति। इस जाति की
 बुलबुल आकार में छोटी होती है और जाड़े के दिनों में
 उत्तर या पश्चिम हिंदुस्तान के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष में
 पाई जाती है। गरमी के महीनों में यह हिमालय पर चली
 जाती है।
 वि० दे० “ककी”।
 जकू-संज्ञा पुं० दे० “जगल”।
 जझा-संज्ञा पुं० दे० “यश”।
 जझण-संज्ञा पुं० [सं०] भक्षण। भोजन। खाना।
 जझमा-संज्ञा स्त्री० दे० “यममा” या “लयी”।
 जखनी-संज्ञा स्त्री० दे० “यखिया”।
 जखम-संज्ञा पुं० [फा० जखम। मि० सं० यम] (१) वह घत जो
 शरीर में आघात या अस्त्र आदि के लगने के कारण हो जाय।
 घाव। (२) मानसिक दुःख का आघात। सदमा।
 कि० प्र०—करना।—खाना।—देना।—पूजना।—भरना।
 —लगना।—होना।
 मुहा०—जखम ताजा या हरा हो आना = बलि दूए कष्ट या
 फिर दौट आना। गई हुई विपत्ति का फिर आ जाना।
 जखमी-वि० [फा० जखमी] घायल। जिसे जखम लगा हो।
 जखीरा-संज्ञा पुं० [च०] (१) वह स्थान जहाँ एक ही प्रकार की
 बहुत सी चीजों का संपद हो। कोप। खाना। (२)
 संपद। डेर। समूह।
 कि० प्र०—करना।—लगाना।
 (३) वह भाग या स्थान जहाँ विक्री के लिये तरह तरह के
 पेड़, पौधे और चीज आदि मिलते हैं।
 जखोडा-संज्ञा पुं० (१) दे० “खोड़ा”। (२) दे० “यखोड़ा”।
 (३) जमाव। यूप। समूह।
 जखैया-संज्ञा पुं० [सं० यन] एक प्रकार का कल्पित भूत जिसके
 विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह लोगों को अधिक कष्ट
 देता है।
 जखम्-संज्ञा पुं० दे० “जखम”।
 जग-संज्ञा पुं० [सं० जगत्] (१) संसार। विश्व। दुनिया। उ०—
 गुलसी या जग आइ के सबसे मिलिये पाय। का जाने कैंहि भेष
 में नारायण मिलि जाय।—गुलसी।

(२) संसार के लोग । जन समुदाय । उः—सांच कहो तो मान धोवै मूँडे जग पतिपाना।— कबीर । (३) दे० "जग" ।

जगद्धु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

जगज्जगति—संज्ञा पुं० [जगमग से षु०] पीतल चादि का बहुत पतला चमकीला तल्ला जिसके छोटे छोटे डुबड़े काट कर झिकली धार लानिये चादि पर चिक्काए जाते हैं । पत्रो ।

वि० चमकीला । प्रकाशित । जो जगमगता हो ।

जगजगाना—कि० श्र० [षु०] चमकना । जगमगाना ।

जगमगाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगमगना] चमक दमक । चमकीलापन । मलमलाहट ।

जगजौनि—संज्ञा पुं० [जगजोनि] प्रहा ।

जगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिं गल के अनुसार तीन श्रवणों का समूह जिसका मध्यपर दीर्घे मात्रा युक्त हो और आदिम तथा ऐनिम अक्षर हल हों । जैसे, रताल, तमाल, जमाल ।

जगहंप—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े से मढ़ा हुआ एक प्रकार का यात्रा जो प्राचीन काल में युद्ध में यथाया जाता था । धान कल भी कहीं कहीं विवाह तथा पूजा-आदि के अवसरों पर इमका व्यवहार होता है ।

जगड्वाल—संज्ञा पुं० [सं०] आहंपर । स्वर्ष का श्रायोजन ।

जगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिं गल शास्त्र के अनुसार तीन श्रवणों का एक गण जिसमें मध्य का अक्षर गुरु और आदि और अंत के अक्षर लघु होते हैं । जैसे, महेश, रमेश, गणेश, हंस ।

विशेष—दे० "ज (१०)" ।

जगत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु । (२) महादेव । (३) जंगम ।

(४) विश्व । संसार ।

शै०—जगत्सेट ।

पर्य्या०—जगती । लोक । भुवन । विश्व ।

(२) गोपीचंद्रन ।

जगत—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगति = पर की इरती । दुर्गे के ऊपर चारों ओर बना हुआ चतुस्ता जिस पर खड़े होकर पत्नी भारते हैं ।

संज्ञा पुं० दे० "जगत्" ।

जगतसेट—संज्ञा पुं० [सं०] जगत् + सेट । बहुत बड़ा धनी महाजन, जिसकी साथ सारे संसार में मानी जाय ।

जगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संसार । भुवन । (२) पृथ्वी । (३) एक वैदिक चंद्र जिसके प्रत्येक चरण में चारदश श्राद अक्षर होते हैं ।

जगती उल—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी । भूमि ।

जगतीचर—संज्ञा पुं० [सं०] बोधिसत्व ।

जगत्मादी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

जगत्सेतु—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर ।

जगदंतक—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु ।

जगदंबा, जगदंबिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

जगद—संज्ञा पुं० [सं०] पालक । स्वक ।

जगदादि—संज्ञा पुं० [सं०] १) प्रहा । (२) परमेश्वर ।

जगदाधार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर । (२) वायु । हवा ।

जगदानंद—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर ।

जगदायु—संज्ञा पुं० [सं०] वायु ।

जगदीश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर । (२) विष्णु । (३) जगताय ।

जगदीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर ।

जगदीश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवती ।

जगद्विशुभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर । (२) शिव । (३) नारद । (४) अर्थात् पूष्य या मणिष्ठित पुरुष जिसका सब योग श्राद्ध करे । (५) संस्कारार्थ्य की गद्दी पर के महंतों की उपाधि ।

जगद्वीती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा । (२) मनसा देवी का एक नाम । यह नागों की बहन और जलकार अग्नि की स्त्री थी ।

जगद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर । (२) महादेव ।

जगद्धाता—संज्ञा पुं० [सं०] जगद्वीप [सं०] प्रहा । (१) प्रहा । (२) विष्णु । (३) महादेव ।

जगद्धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा की एक मूर्ति । (२) सरस्वती ।

जगद्वचल—संज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

जगद्वेगिनि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) विष्णु । (३) प्रहा । (४) पृथ्वी । (५) परमेश्वर ।

जगद्वहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी ।

जगद्विनाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल ।

जगनक—संज्ञा पुं० [देग०] महाबोधिश परमाल के दरबार का प्रिद्वि कवि ।

जगत्—संज्ञा पुं० [सं०] जगत् । (१) नौद से उटना । निद्रा त्याग करना । सोने की श्रावस्था में न रहना ।

संयो० द्वि०—उटना ।—जाना ।—पड़ना ।

(२) मचेत होना । सावधान होना । खबरदार होना ।

(३) देवी देवता या भूत दैत आदि का अधिक प्रभाव दिखाना । (४) उत्तेजित होना । उमड़ना या उभड़ना । वेग से प्रकट होना । जैसे, शरीर में काम जगना । (५) (आग का) जलना । पलना । दहकना, जैसे, आग जगना । उ०— करि उपचार यकी सदै, चल उताल नैतनंद । चंद्रक चंदन चंद्र ते ज्वाल जगी चौचंद्र ।—२०० सत० । (६) जगमगाना । चमकना । जैसे, उषोति जगना ।

जगन्नाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जगत् का नाथ, ईश्वर । (२) विष्णु । (३) विष्णु की एक प्रसिद्ध मूर्ति जो बड़ीसा के श्रंतगत पुरी नामक स्थान में स्थापित है । यह मूर्ति चक्रों

नहीं रहती बल्कि इसके साथ सुभद्रा और बलभद्र की भी मूर्तियाँ रहती हैं। तीनों मूर्तियाँ चंदन की होती हैं; समय समय पर पुरानी मूर्तियों का विसर्जन किया जाता है और उनके स्थान पर नई मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती हैं। सर्वसाधारण इस मूर्ति 'ददलने के "नथ कलेवर" या "थलेवर ददलना" कहते हैं। साधारणतः लोगों का विश्वास है कि प्रति बारहवें वर्ष जगन्नाथ जी का कलेवर बदलता है। पर पंडितों का मत है कि जब श्रावाढ़ में मल मास और दो पूर्वमासे हैं, तब कलेवर बदलता है। इम्मं, भविष्य, दश वैवर्त, नृसिंह श्रमि, दश और पद्म श्रादि पुराणों में जगन्नाथ की मूर्ति और तीर्थ के संबंध में बहुत से वधानक और माहात्म्य दिए गए हैं। इतिहासों से पता चलता है कि सन् ३१६ ई० में जगन्नाथजी की मूर्ति पहले पहल किसी जंगल में पाई गई थी। उसी मूर्ति को उड़ीसा के राजा ययाति केसरी ने जो सन् ४७४ में सिंहासन पर बैठा था, जंगल से हूँढ़ कर पुरी में स्थापित किया था। जगन्नाथजी का वर्तमान भव्य और विशाल मंदिर गंगवंश के पाँचवें राजा अर्धन भीमदेव ने सन् ११२४ से सन् ११६८ तक में बनवाया था। सन् १२६८ में प्रसिद्ध मुसलमान सेनापति कालापरहूत ने उड़ीसा को जीत कर जगन्नाथजी की मूर्ति श्राग में फेंक दी थी। जगन्नाथ और श्वराम की श्राग कल की मूर्तियों में पैर चित्तकुल नहीं होते और हाथ बिना पंजों के होते हैं। सुभद्रा की मूर्ति में न हाथ होते हैं और न पैर। मनुमान किया जाता है कि या तो श्रांभ में जंगल में ही ये मूर्तियाँ इसी रूप में मिली हैं और या सन् १२६८ में श्रमि में से निकाले जाने पर हम रूप में पाई गई हों। नथ कलेवर में मूर्तियाँ पुराने श्रादर्श पर ही बनती हैं। इन मूर्तियों को अधिकांश भात और तिरछड़ी का ही भोग लगता है जिसे महाप्रसाद कहते हैं। भोग लगा हुआ महाप्रसाद चारों वर्ष के भोग दिना स्पर्शास्पर्श का विचार किए प्रदत्त करते हैं। महाप्रसाद का भात अटक कहलाता है जिसे यात्री भोग अपने साथ अपने निवास स्थान तक ले जाते और अपने संवधियों में प्रसाद-स्वरूप बाँटते हैं। जगन्नाथ को जगद्गुरु भी कहते हैं। (५) भोगाल के दक्षिण उड़ीसा के श्रंतगत समुद्र के किनारे का एक प्रसिद्ध तीर्थ जो हिंदुओं के चारों धामों के श्रंतगत है। इसे पुरी, जगदीशपुरी और जगन्नाथपुरी भी कहते हैं। अधिकांश पुराणों में इस चेत को पुरुषोत्तम चेत्र कहा गया है। जगन्नाथजी का प्रसिद्ध मंदिर यहीं है। इस चेत्र में जानेवाले यात्रियों में जाति-भेद श्रादि बिलकुल नहीं रह जाता। पुरी में समय समय पर अनेक उत्सव होते हैं जिनमें से "रथ-यात्रा" और "नथ कलेवर" के उत्सव बहुत प्रसिद्ध हैं। उन अघटनों पर बड़ी लातों यात्री जाते हैं। यहाँ और भी कई छोटे बड़े तीर्थ हैं।

जगन्निवासा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। परमेश्वर। (२) विष्णु।
 जगन्निर्घंता-संज्ञा पुं० [सं० जगन्निघंत्] परमेश्वर। ईश्वर।
 जगन्मु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रमि। (२) जंतु।
 जगन्मय-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
 जगन्मयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) समस्त संसार का चलादिवाली शक्ति।
 जगन्माता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।
 जगन्मोहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) महाशक्ति।
 जगमग, जगमगा-वि० [षजु०] (१) प्रकाशित। जिप प्रकाश पड़ता है। (२) चमकीला। चमकदार।
 जगमगाना-क्रि० प्र० [षजु०] किसी वस्तु का स्वयं श्रादि किसी का प्रकाश पड़ने के कारण खूब चमकना। मलकना दमकना।
 जगमगाहट-संज्ञा स्त्री० [हि० जगमग] चमक। चमकगाहट जगमगाने का भाव।
 जगर-संज्ञा पुं० [सं०] कवच।
 जगरनाथ-संज्ञा पुं० दे० "जगन्नाथ"।
 जगरमगर-वि० दे० "जगमग"।
 जगरा-संज्ञा स्त्री० [सं० शकैर] खर की खाँड़।
 जगल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथ्वी नामक सुरा। पीठी से बन हुआ मय। (२) शराय की सीढ़ी। कल्क। (३) मदन वृक्ष मनी। (४) कवच। (५) गोमय। गोवर।
 वि० प्र०। चालाक।
 जगवाना-क्रि० सं० [हि० जगना] (१) सोते से उठवाना। निद्रा भंग करवाना। (२) किसी वस्तु को अभिमंत्रित करा के उसमें कुछ प्रभाव कराना।
 जगद-संज्ञा स्त्री० [फा० जगद] (१) वह श्रवकाय जिस में कोई चीज रह सके। स्थान। स्थल। जैसे, (क) उन्हीं ने महाप्रसादाने के लिये जगह ली है। (ख) यहाँ स्थल पत्तने को जगह नहीं है।
 क्रि० प्र०-करना।-छोड़ना।-देना।-निकालना।-पाना।-बनाना।-मिलना श्रादि।
 मुहूर्त्-जगह जगह = सब स्थानों पर। सब जगह।
 (२) स्थिति। पद।
 विशेष-कुछ भोग इस अर्थ में "जगह" को क्रिय विशेष रूप में बिना विभक्ति के ही बोधते हैं। जैसे, हम उन्हें भाई की जगह समझते हैं।
 (३) मौका। स्थल। अवसर। (४) पद। ओहदा। जैसे, (क) दो महीने हुए उन्हें कलकट्टी में जगह मिल गई। (ख) इस दफ्तर में तुम्हारे लिये कोई जगह नहीं है।
 जगहर्ता-संज्ञा स्त्री० [हि० जगना] जगना। जगने की श्रवस्था। जगने का भाव।

जगती-संज्ञा पुं० [षं० जगत] (१) वह जो पुण्य के लिये दिया जाय । दान । दाय । (२) महसूल । कर ।

जगती-संज्ञा पुं० [हिं० जगन वा का० जगती] (१) महसूल वा कर लगावेवाला कर्मचारी । वह जो कर वसूल करे । (२) कर शकने का काम या भाव ।

जगना-हिं० सं० [हिं० जगना] (१) जगने या 'जगने' का निरन्तरक रूप । नीचे स्थानों के लिये प्रेरणा करना । जैसे, वे बहुत देर से सोए हैं, उन्हें जगाओ । (२) चेत में खाना । होश दिलाना । बढ़ायेन कराना । चेत्य करना । † (१) फिर से टीक स्थिति में खाना । † (४) सुलगाना । लुफती हुई या बहुत धीमी धारा को तेज करना । † (४) चंद्र या सिद्धि आदि का साधन करना । जैसे, मंत्र जगाना, भूल प्रेत जगाना ।

संज्ञा-हिं० सं० [हिं० जगना] - देना । - रखना । - रोना ।

जगती-संज्ञा स्त्री० [हिं० जगती] जागरण । जागृति । उ०—नैना छोड़े चोर सती री । श्यामरूपं निधि नंदे पारं देखत गये मरी री । कहा लेहि, यह तम विषय भय तैसी करि करी री । मोरे भय भोर से है गये घरे जगार परी री ।—सूर ।

जगती-संज्ञा स्त्री० [हिं० जगती] मोर की जाति का एक पक्षी जो शिमले के घास पास के पहाड़ों में मिलता है । यह प्रायः दो हाथ लंबा होता है । नर के सिर पर काल कलगी होती है और मादा के सिर पर गुलाबी रंग की गाँठें होती हैं । नर का सिर बाला, गाल खाल और पीठ गुलाबी रंग की होती है और उसके पंखों पर गुलाबी धारियाँ होती हैं । उसकी तुम लंबी और काली होती है और छाती और पेट के नीचे के पर भी काले होते हैं जिन पर ललाई की कलक होती है और एक छोटी मकड़ बिंदी होती है । मादा का रंग कुछ मैला और पीलावन लिए होता है । यह दस दम बारह बारह की छुट में रहता है । आड़े के दिनों में यह गरम देशों में धाकर रहता है । इसकी बोली बकरी के बच्चे की तरह होती है और यह अपने समय चीकार करता है । इसका चितकार बहुत दूर तक सुनाई पड़ता है । अंगरेज लोग इसका शिकार करते हैं । इसे जवाहिर भी कहते हैं ।

जगती-वि० [हिं० जगती] उर्वोदा । जगने के कारण अलगया । उ०—दुरति दुराये ते न रति बलि उंजुम उर मंग । प्रगट कहैं पति रतजो जगती जगली नैन । शृ० सतः ।

जगती-संज्ञा पुं० [सं०] जंगम ।

जगती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जगने की क्रिया । भोजन । (२) कई आदिमियों का साथ मिल कर स्थान । सहभोजन ।

जगती-संज्ञा पुं० [सं०] धातु । हवा ।

जगती-संज्ञा पुं० [सं०] जो जो चकता हो । जो गति में हो ।

जगती-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कटि के नीचे धारो का भाग ।

पेड़ । (२) गति । चूतड़ । उ०—सरस विपुल गम जवनन पर कल किंकिनि कलश सजायो ।—हरिश्चंद्र ।
श्री०—जवनकूपक ।

(३) सेना का सबसे पिछला भाग ।

जघनकूपक-संज्ञा पुं० [सं०] चूतड़ पर का मड़ड़ा ।

जघनचपला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कामुकी स्त्री । (२) कुलटा । (३) शार्दूय छंद के सोलह भेदों में से एक । यह मात्रा वृत्त जिसका प्रथमाद शार्दूय छंद के प्रथमाद का सा और द्वितीयाद चपला छंद के द्वितीयाद का सा हो ।

जघनेला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कट्टर ।

जघन्य-वि० [सं०] (१) श्रुतिम । चरम । (२) गहिरेंत । त्याग्य । अत्यंत दुःख । (३) रुद्र । नीच । निरुद्ध ।

संज्ञा पुं० (१) शूद्र । (२) नीच जाति । हीन वर्ण । (३) पीठ का वह भाग जो पुट्टे के पास होता है । (४) रामाओं के पांच प्रकार के संकीर्ण अनुचरों में से एक । बृहत्संहिता के अनुसार ऐंसा आदमी धनी, मोटी बुद्धि का, हँसोड़ और क्रूर होता है और उसमें कुछ कविप शक्ति भी होती है । ऐसे मनुष्य के कान शब्द चंद्राकार, शरीर के जोड़ अधिक दृढ़ और उंगलियाँ मोटी होती हैं । इसकी छाती, हाथों और पैरों में तलवार और तर्जू आदि के से चिह्न होते हैं । (५) दे० 'जघन्यम्' ।

जघन्यज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूद्र । (२) श्रमज ।

जघन्यम्-संज्ञा पुं० [सं०] शार्दूय, अरलेपा, स्वाति, उषेष्टा, भारणी और शतभिषा ये छ नक्षत्र ।

जगि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चघ करता हो । (२) वह चघ जिससे बध दिया जाय ।

जघना-क्रि० अ० दे० 'जघना' ।

जघ्ना-संज्ञा स्त्री० [का० जघ्ना] प्रसूना स्त्री । वह स्त्री जिसे सुरंत संतान हुई हो ।

विशेष—प्रसव के बाद चाचीय दिनों तक स्थिर जघा कहलाती है ।

श्री०—जघापाना = युक्तिग्रह । शीर्ष ।

जच्छर्मा-संज्ञा पुं० दे० 'एष' ।

जज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यापारीवा । विचारपति । न्याय करनेवाला । (२) दीवानी और फौजदारी के मुकदमों का फैसला करनेवाला हाकिम ।

विशेष—भारतवर्ष में प्रायः एक या अधिक जजों के लिये एक जज होता है, जो चिटिक जज कहलता है । जिसे के अंदर अंतिम शरीली जज के पदों ही होती हैं ।

श्री०—दीरा वा सेवस जज = बट्ट जज जो कई जजों में दूम दूम कर कुछ विशेष बड़े मुकदमों का फैसला कुछ विशेष अवसरों पर करे । मय-जज = दे० 'सदयना' ।
संज्ञा पुं० [सं०] मोहरा ।

जजमान-संज्ञा पुं० दे० "यजमान" ।

जजमान-संज्ञा पुं० दे० "यजमान" ।

जजिया-संज्ञा पुं० [ष०] (१) दंड । (२) एक प्रकार का कर

जो मुसलमानी राज्य-काल में अल्प धर्मवालों पर लगता था ।

जजी-संज्ञा स्त्री० [हि० जज + ई (प्रत्य०)] (१) जज की कचहरी ।

जज की अदालत । (२) जज का काम । (३) जज का पद

या श्रोहदा ।

जजौरा-संज्ञा पुं० [फा०] टापी । द्वीप ।

जज्ज-संज्ञा पुं० दे० "जज" ।

जभर्रा-संज्ञा पुं० [हि० भरना] लोहे की चद्दर का तिवोगा डुकड़ा जो उसमें से तथे काटने के बाद बच रहता है ।

जट-संज्ञा पुं० [देग० वा ऋज्] एक प्रकार का गोदना जो भाड़ी के धाकार का होता है ।

संज्ञा पुं० दे० "जाट" ।

जटना-कि० सं० [हि० जट्] टाना । घोषा देवर बुद्ध लेना ।

संज्ञा पुं० फा० जाना ।—लेना ।

क कि० सं० [सं० जट्] जड़ना । ठोक कर लगाना । ३०—

पाट जटी अति श्वेत सौं हीरन की शयनी ।—केशव ।

जटल-संज्ञा स्त्री० [सं० जटिण] स्थर्ष और मूठ मूठ की बात ।

गप । बकवास । ३०—अपना बहुत समय..... इधर

उधर की जटल हाँकने में सौं देते हैं ।—परीशरपुर ।

फि० प्र०—मारना ।—हाँकना ।

घौं—जटल काफिया = गगरार । वेणुकी बात । ऊपरटंग बात ।

जटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक में बलके हुए मिर के बहुत से बड़े बड़े बाल, जैसे प्रायः साधुओं के होते हैं ।

पर्याय—जटा । जटि । जटी । जट । शट । दोटीर । हम् ।

(२) जड़ के पतले पतले घुत्त । भकसा । (३) एक में

बलके हुए बहुत से रेरो धादि । जैसे, नायिल की जटा,

बरगद की जटा । (४) शाखा । (५) जटामांसी । (६) जट ।

पाट । (७) कौंछ । शेषाच (=) शनार । (८) हद्द जटा ।

बालजड़ । (९) वेदपाठ का एक श्रेष्ठ विषमं मंत्र के दो वा

तीन पदों की क्रमानुसार पूर्व और उत्तर पद के प्रथक प्रथक

फिर मिला कर दो बार पढ़ते हैं ।

जटाचीर-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

जटासिनी-संज्ञा पुं० [सं०] जटा और मृगचर्म धारण करनेवाला ।

जटाजूट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जटा का समूह । बहुत से लंबे बड़े

हुप बालों का समूह । (२) शिव की जटा ।

जटाटंक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

जटाट्टीर-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव ।

जटाधर-संज्ञा पुं० [सं०] १) शिव । महादेव । (२) एक उद

का नाम । (३) दक्षिण के एक देश का नाम जिसका वर्षान

बृहत्संहिता में आया है । (४) जटाधारी ।

घटाधारी-वि० [सं०] जो जटा रखे हो । जिसके जटा हो ।

संज्ञा पुं० (१) शिव । महादेव । (२) भरसे की जाति का

एक पीधा जिसके ऊपर कलगी के धाकार के बाहरदार लाल

फूल लगते हैं । सुगंधेश ।

जटाना-कि० सं० [हि० जटाना] जटने का गेरुधार्थक रूप ।

कि० अ० [हि० जटाना] टगा जाना । घोषे में आकर अपनी

हानि कर बैठना ।

जटापटल-संज्ञा पुं० [सं०] वेद पाठ करने का एक बहुत जटिल

प्रकार का क्रम । कहते हैं कि यह क्रम इयमीव ने

निकाला था ।

जटामाली-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

जटामांसी-संज्ञा स्त्री० [सं० जट.मांसी] एक सुगंधित पदार्थ जो

एक वनस्पति की जड़ है । यह वनस्पति हिमालय में १०००

फुट तक की ऊँचाई पर होती है । इस की शक्ति का एक

हाथ से डेढ़ दो हाथ तक लंबी और साँके की तरह होती है

जिनमें धामने सामने डेढ़ दो अंगुल लंबी और बायीं से एक

अंगुल तक चौड़ी पतियाँ होती हैं । इनके लिये पयरीली

भूमि, जहाँ पानी पड़ा करता हो या सर्दी बनी रहती हो,

अधिक उत्तम है । इसमें छोटी डैंगली के बराबर मोटी काली

भूरी पतियाँ होती हैं जिन पर ताम्र रंग के बाल वा रेशे

होते हैं । इसकी गंध तेज और मीठी तथा स्वाद कड़वा

होता है । वैद्यक में जटामांसी बलकारक, उत्तेजक, विषण तथा

उन्माद और काश भयन धादि के दूर करनेवाली मानी गई है ।

लोमों का कपन है कि इसे लगाने से बाल बढ़ते और बनते

होते हैं । शीतले से इसमें से एक प्रकार का तेल भी निक-

लता है जो शीतप और सुगंधि के काम में आता है । २२

सेर जटामांसी में से डेढ़ छटाँक के लगभग तेल निकलता

है । इसे यालजड़, बालुचर धादि भी कहते हैं ।

जटायु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध ।

यह सूर्य के सारथी ब्रह्मण का पुत्र था जो उसकी देवनी

नाझी ग्री से शपथ हुआ था । यह दशरथ का मित्र था और

रावण से, जब बह सीता को हर कर लिए जाता था, लड़ा

था । इस लड़ाई में यह घायल हो गया था । रामचंद्र के आने

पर उसने रावण के सीता को हर कर जाने का समाचार इनसे

कहा था । उसी समय उसके प्राण भी निकल गए थे ।

रामचंद्र ने स्वयं इस की श्मशानि क्रिया की थी । संवाति

इसका भाई था । (२) शुमुग्र ।

जटाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बटवृष । बरगद । (२) कपूर ।

(३) सुफक । मोला । (४) शुमुग्र ।

वि० जटाधारी । जो जटा रखे हो ।

जटाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामांसी ।

जटाघ-संज्ञा स्त्री० [देग०] काली मिट्टी जिससे कुम्हार घड़े धादि

बनाते हैं । कुम्हरीटी ।

जटावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी ।

जटावल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुद्रजटा । शंकरजटा । (२) एक प्रकार की जटामासी जिसे गंधमासी भी कहते हैं ।

जटासुर—स्त्री० पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध राक्षस जो द्रौपदी के रूप पर मोहित होकर ब्राह्मण के भेल में पांडवों के साथ मिल गया था । एक बार हमने सीम की शत्रुस्थिति में द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को हर ले जाना चाह था, पर मार्ग में ही भीम ने इसे मार डाला था । (२) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम ।

जटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हृद्य वृष । पाकर का पेड़ । (२) बरगद का पेड़ । (३) जटा । (४) समूह । (५) जटामासी ।

जटित—वि० [सं०] जड़ा हुआ । जैसे, रत्नजटित ।

जटिल—वि० [सं०] (१) जटावाला । जटाधारी । (२) अत्यंत कठिन । जटा के वज्रके रूप वाले की तरह जिसका मुलफना बहुत कठिन हो । तुरुह । दुर्बोध । (३) मूर । दुष्ट । हिंसक ।

संज्ञा पुं० (१) सिंद । (२) मद्यधारी । (३) जटामासी । (४) शिव । (जिस समय शिव के लिये पार्वती हिमालय पर तपस्या कर रही थीं, उस समय शिव जो जटिल-वेष धारण करके उनके पास गए थे, वही के कारण उनका यह नाम पड़ा ।)

जटिलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन शक्ति का नाम । (२) इस शक्ति के संज्ञा ।

जटिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मद्यधारिणी । (२) जटामासी । (३) पिपली । पीपल । (४) बचा । बच । (५) देना । दान । (६) महाभारत के अनुसार गौतमवंश की एक शक्ति-कन्या का नाम जिसका विवाह सात ऋषि-पुत्रों से हुआ था । यह बड़ी धर्म-परायणा थी ।

जटौ—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाकर । (२) जटामासी ।

जटुल—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का दाग या धब्बा जो जन्म से ही होता है । लोग इसे लक्ष्मण या लक्ष्मण कहते हैं ।

जटर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेट । कुक्षि ।

शौ०—जटराग्नि । जटरानल ।

(२) भागवत पुराणानुसार एक पर्यंत का नाम जो मेरु के पूर्व जमीन हजार योजन लंबा है और नील पर्यंत से निषध गिरि तक चला गया है । यह दो हजार योजन चौड़ा और इतना ही ऊँचा है । (३) एक देश का नाम । बृहत्संहिता के मत से यह देश खेवा, मया और पूर्वा कालगुणी के अधिकांश में है । महाभारत में इसे कुङ्कुर देश के पास लिखा है । (४) सुश्रुत के अनुसार एक उदर रोग जिस में पेट फूट जाता है । इसमें रोगी बल और वर्णहीन हो जाता है और

उसे भोजन से ग्रहण हो जाती है । (५) शरीर । (६) मऊत मथि का एक दोष । इस दोषयुक्त मऊत के रखने से मनुष्य दरिद्र होता है ।

वि० (१) वृद्ध । बूढ़ा । (२) कठिन ।

जटरनुत्—संज्ञा पुं० [सं०] धमलतास ।

जटराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट की वह गरमी या शक्ति जिससे अन्न पचता है । पित्त की कमी से जटराग्नि चार प्रकार की मानी गई है, मंदाग्नि, विपमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि और समाग्नि ।

जटरामय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनीसार रोग । (२) जलोदर रोग ।

जटल—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल का एक प्रकार का जलपात्र जिस का आकार उदर का सा होता है ।

जटोरा—वि० [हिं० जठ वा जठर] [स्त्री० जठरी] जेट । बड़ा ।

जड़—वि० [सं०] (१) जिस में चेतनता न हो । अचेतन । (२)

जिसकी इन्द्रियों की शक्ति मारी गई हो । ज्येष्ठादीन । स्तब्ध । (३) मंद बुद्धि । ना समझ । मूर्ख । (४) सरदी का मारा या ठिठुरा हुआ । (५) शीतल । ठंडा । (६) मूँगा । मूक । (७) बहुरा । जिसे सुनाई न दे । (८) व्यगमान । धमभिज्ञ । (९) जिस के मन में मोह हो । (१०) जो वेद पढ़ने में अक्षमर्थ हो । (दायभाग)

संज्ञा पुं० (१) जल । पानी । (२) सीसा नाम की धातु ।

संज्ञा स्त्री० [सं० जटा = वृक्ष की जड़] (१) वृक्षों और पौधों आदि का वह भाग जो जमीन के अंदर दबा रहता है और जिस के द्वारा उन का पोषण होता है । जड़ के मुख्य दो भेद हैं । एक मूलला जो मूलला या छंडे के आकार की होती है और जमीन के अंदर सीधी नीचे की ओर जाती है, और दूसरी भकटा जिस के रेशे जमीन के अंदर बहुत नीचे नहीं जाते और छोड़ी ही गहराई में चारों तरफ फैलते हैं । बिँचाई का पानी और खाद आदि जड़ के द्वारा ही वृक्षों और पौधों तक पहुँचती है । मूल । सौर ।

शौ०—जड़मूल ।

(२) वह जिसके ऊपर कोई चीज स्थित हो । नीचें । बुनियाद ।

मुद्गा—जड़ उखाड़ना या खोदना = किसी प्रकार की हानि पहुँचा कर या खुराई कर के संपूर्ण नाश करना । ऐसा नष्ट करना जिस में वह फिर अपनी पूर्ण स्थिति तक न पहुँच सके । जड़ जयना = हड़ या खानी होना । जड़ पकड़ना = जम्ना । हड़ होना । मजबूत होना । जड़ पढ़ना = नीचें पढ़ना । बुनियाद पढ़ना । (३) हट्ट । कारण । सचय । जैसे, यही तो सारे मगड़ों की जड़ है । (४) वह जिन पर कोई चीज अवलंबित हो । आधार ।

जड़-धामला—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + धामला] सुई धारिता ।

जड़किया—वि० [सं०] जिसे कोई काम करने में बहुत देर लगे । सुस्त । दीर्घघटी ।

जड़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ का भव] (१) अचेतनता । (२) मूर्खता । वेवकृती । (३) साहित्यदर्पण के अनुसार एक संचारी भाव जो किसी घटना को होने पर चित्त के विवेक-शून्य होने की दशा में होता है । यह भाव प्रायः धराशय-दुःख भय या मोह आदि में उपपन्न होता है । (४) स्तब्धता । अचलता । चेष्टा न करने का भाव । व०—निज जड़ता लोगन पर डारी । होहु हरत्र रघुरतिहि निहारी ।—तुलसी ।

जड़ताई—संज्ञा स्त्री० दे० 'जड़ता' ।

जड़चर्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चेतनता का विपरीत भाव । अचेतन पदार्थों का वह गुण जिस से वे जहाँ के तहाँ पड़े रहते हैं और, रवयं हिल डोल या किसी प्रकार की चेष्टा आदि नहीं कर सकते । (२) स्थिति और गति की इच्छा का अभाव । वैशेषिक के अनुसार यह परमाणुओं का एक गुण है ।

जड़ना—क्रि० सं० [सं० जड़न] [संज्ञा जड़िया वि० जड़ाऊ, जड़ाई] (१) एक चीज को दूसरी चीज में पच्ची करके बँटाना । पची करना । जैसे, शींगड़ी में नग जड़ना । (२) एक चीज को दूसरी चीज में टँक कर बँटाना । जैसे, कील जड़ना, नाल जड़ना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—रखना ।

(३) किसी वस्तु से प्रहार करना । जैसे, धौल जड़ना, थपड़ जड़ना । (४) जुगली या शिकायत के रूप में किसी के विरुद्ध किसी से कुछ कहना । कान भरना । जैसे, किसी ने पहले ही उनसे जड़ दिया था, इसी लिये वह यहाँ नहीं आया ।

संयो० क्रि०—देना ।

जड़भरत—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीगिरस गोत्री एक ब्राह्मण जो जड़वत् रहते थे । भागवत में लिखा है कि राजा भरत ने अपने वानप्रस्थ आश्रम में एक हिरन के बच्चे को पाला था और उसके साथ उनका इतना प्रेम था कि मरते वम तक उन्हें उसकी चिंता बनी रही । मरते पर वे हिरन की योगिनी में उपज हुए पर उन्हें पुण्य के प्रभाव से पूर्व जन्म का ज्ञान बना रहा । इन्होंने हिरन का शरीर त्याग कर फिर ब्राह्मण के कुल में जन्म लिया । वह संसार की वासना से बचने के लिये जड़वत् रहते थे, इसी लिये लोग उन्हें जड़ भरत कहते थे ।

जड़बाना—क्रि० सं० [हिं० जड़ना] (१) नग इत्यादि जड़ने के लिये प्रेरणा करना । जड़ने का काम कराना । (२) कील इत्यादि गड़वाना ।

जड़वी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] धान का छोटा पौधा जिसे जमे हुए अभी बोझा ही समय हुआ हो ।

जड़हन—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + हनन = गटना] धान का एक प्रधान भेद जिसके पौधे एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह बँटाए जाते हैं । यह धान असाढ़ में बना बोया जाता

है । जब पौधे एक या दो फुट ऊँचे हो जाते हैं तब किसान उन्हें उखाड़ कर ताल के किनारे नीचे लेते हैं वैसे होते हैं । वह खेत, जिसमें इस के बीज पहले बोए जाते हैं, बियाड़ कहलाता है, और पौधे के बीज को 'बेहन' तथा बीज बोने को 'बेहन डालना' कहते हैं । बीज को बियाड़ से उखाड़ कर दूसरे खेत में बँटाने को रोपना और बँटाना कहते हैं, और वह खेत, जिसमें इसके पौधे रोपे जाते हैं, सोई, डायर आदि कहलाता है । जड़हन पौधों में कुधार के श्रंत में धाल फूटने लगती है, और अग्रहन में खेत पक कर कटने के योग्य हो जाता है । इस प्रकार के धान की अनेक जातियाँ होती हैं जिनमें से कुछ के चावल मोटे और कुछ के महीन होते हैं । यह कभी कभी तातों के किनारे या बीच में भी थोड़ा पानी रहने पर बोया जाता है और ऐसी बोआई को 'शिवारी' कहते हैं । अग्रहनी के अतिरिक्त धान का एक और भेद होता है जिसे कुवारी कहते हैं । इस भेद के धान शोसहन कहलाते हैं ।

जड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुहँ धामला । (२) कँडू । कंबाच । जड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] (१) जड़ने का काम । पचीकारी । (२) जड़ने का भाव । (३) जड़ने की मजदूरी ।

जड़ाऊ—वि० [हिं० जड़ना] जिस पर नग या रत्न आदि जड़े हैं । पचीकारी किया हुआ ।

जड़ाना—संज्ञा स्त्री० दे० "जड़ाई (१) और (२) ।"

जड़ाना—क्रि० सं० [हिं० जड़ना] जड़ने का प्रेरणापूर्ण रूप । जड़ने का काम दूसरे से कराना ।

जड़ि—क्रि० थ० [हिं० जाड़ा] जाड़ा सहना । ठंड खाना । सरदी की याथा देना । शीत लगाना ।

जड़ाया—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] जड़ने का काम या भाव । व०—पुनि अभन बहु काड़ा माना भांति जड़ाव । फेरि फेरि सब पहिराईँ जैसे जैसे मन भाव ।—जायसी ।

जड़ाघट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] जड़ाव । जड़ने का काम या भाव ।

जड़ाघर—संज्ञा पुं० [हिं० जाड़ा] जाड़े में पहनने के कपड़े । गरम कपड़े ।

जड़ावली—संज्ञा पुं० दे० "जड़ावर" ।

जड़ित—वि० [हिं० जड़ना वा सं० जड़ित] (१) जो किसी चीज में जड़ा हुआ हो । (२) जिसमें नग धादि जड़े हैं ।

जड़िमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जड़ता । जड़त्व । (२) एक भाव जिसमें मनुष्य को इष्ट अनिष्ट का ज्ञान नहीं होता और वह जड़ की तरह हो जाता है ।

जड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] (१) नगों के जड़ने का काम करनेवाला पुरय । यह जो नग जड़ने का काम करता है । कुंदनसाज । (२) सोनारों की एक जाति जो गड़ने में नग जड़ने का काम करती है ।

अङ्गी-उशा स्त्री० [हि० अङ्] यह धनस्वति जिसकी अङ्गी शोपथ के काम में लाई जाय। विरहै।

या०—अङ्गी वृद्धी = अङ्गुली शोपथि या धनस्वति।

अङ्गीला-उंशा पुं० [हि० अङ् + ईला (श्रय०)] (१) यह वनरपति जिसकी अङ्गी काम में आती हो। जैसे, मूली, गाजर। (२) वह ऊँची उठी हुई अङ्गी जो रास्ते में मिले। (कहर)।

† वि० अङ्गदार। जिसमें अङ्ग हो।

अङ्गुआ-उंशा पुं० [हि० अङ्गना] चाँदी का एक गहना जो छक्के की तरह पैर के शँगुने में पहना जाता है।

अङ्गुल-उंशा पुं० दे० “अङ्गुल”।

अङ्गीयाँ-उंशा स्त्री० [हि० आङ्ग + यिया (श्रय०)] यह दुखार जिस के आरंभ में जाड़ा लगता हो। गूड़ी।

अङ्गी-वि० दे० “अङ्ग”।

अङ्गता-उंशा स्त्री० दे० “अङ्गता”।

अङ्गानाँ-कि० अ० [हि० अङ्ग वा अङ्] (१) अङ्ग हो जाना। (२) हठ करना। जिद्द करना। अपनी बात पर अङ्ग रहना।

अङ्गी-वि० [सं० अ०] जितना। जिस मात्रा का।

उंशा पुं० [सं० अ०] वाद्य के बाह्य प्रबंधों में से एक। होली का ठेका या तात।

अङ्गी-उंशा पुं० दे० “अङ्ग”। उ०—वार-वार मुनि जतन कराही। अंत राम कहि आवत नहि।—तुलसी।

अङ्गीनी-उंशा पुं० [सं० अ०] (१) अङ्ग करनेवाला। (२) सुबहुर। बालक।

उंशा स्त्री० [सं० अ०] यह रस्सी वा डोरी जिसे चर्रें (रॉट) की पेंसुरियों के किनारे पर माल के टिकाव के लिये बाँधते हैं।

अङ्गीलाना-कि० सं० दे० “अङ्गीलाना”।

अङ्गीसर-उंशा पुं० दे० “अङ्गीसर”।

अङ्गीना-कि० सं० [सं० अ०] (१) जानने का प्रेरणाार्थक रूप। आत कराना। अतलाना। (२) पहले से सूचना देना। आगाह करना।

† कि० अ० दे० “अङ्गीलाना”।

अङ्गीराँ-उंशा पुं० [हि० अङ्गी वा अ०] अंश। खानदान। कुल। जाति। धराना।

अङ्गी-उंशा पुं० दे० “अङ्गी”।

अङ्गी-उंशा पुं० [सं० अ०] संख्यासी।

उंशा स्त्री० दे० “अङ्गी”।

अङ्गी-उंशा पुं० [सं०] (१) वृष्ट का निर्यास। गोंद। (२) लार। आह। (३) शिलावतु। शिलाजीत।

अङ्गी-उंशा पुं० [सं०] (१) हींग। (२) बाल। लाड़। (३) शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का चिह्न जो जन्म से ही होता है। इसे “अङ्गी” या “अङ्गी” भी कहते हैं।

अङ्गी-उंशा स्त्री० [सं०] (१) पहाड़ी नामक जता जिसकी पश्चिमी शोपथि के काम में आती है। (२) चमगादड़।

अङ्गीकारी-उंशा स्त्री० [सं०] पपड़ी नाम की लता।

अङ्गीकृष्ण-उंशा स्त्री० [सं०] अङ्गीका या पपड़ी नाम की लता।

अङ्गीगृह-उंशा पुं० [सं०] घास फूस आदि ऐसी चीजों का बना हुआ घर जो जल्दी जल सके।

अङ्गीनी-उंशा स्त्री० [सं०] चमगादड़।

अङ्गीपुत्रक-उंशा पुं० [सं०] (१) शतरंज का मोहरा। (२) चौतर की मोटी।

अङ्गीमण्डि-उंशा पुं० [सं०] एक प्रकार का छद्म रोग जिसमें चमड़े पर दाग पड़ जाता है। अङ्गुल। अङ्गीक।

अङ्गीमुख-उंशा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का धान।

अङ्गीरस-उंशा पुं० [सं०] आलू का बना हुआ रंग। अलकक। महावर।

अङ्गी-उंशा स्त्री० [सं०] (१) एक पक्षी का नाम। (२) बाल का बना हुआ रंग।

अङ्गीकर्म-उंशा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

अङ्गीका-उंशा स्त्री० दे० “अङ्गीका”।

अङ्गीका-कि० वि० [सं० अ० वा हि०] जितना + एक। जितना। जिस मात्रा का।

अङ्गीयाँ-उंशा पुं० [सं० अ०] बहुत से जीवों का समूह। कुँड। गरोह।

कि० प्र०—आधना।

अङ्गीनी-उंशा स्त्री० [?] जाटों की एक जाति जो हरेलखंड में बसती है।

अङ्गी-उंशा पुं० [सं०] (१) गले की सामने की दोनों ओर की वह हड्डी जो कंधे तक कमानी की तरह लागी रहती है। ईंसली। ईंसिया। (२) कंधे और बांह का जोड़।

अङ्गीयमक-उंशा पुं० [सं०] शिलाजीत।

अङ्गी-कि० वि० (१) दे० “अङ्गी”।

उंशा स्त्री० [सं० अ०] मंडली। गरोह। समूह। टोली।

कि० प्र०—आधना।

उंशा स्त्री० [सं० अ०] पूँजी। धन। संपत्ति।

यि०—जमा जया।

अङ्गी-कि० वि० [सं० अ०] जब। जब कभी।

अङ्गी [सं० अ०] यदि। अगर।

अङ्गी-कि० वि० दे० “अङ्गी”।

अङ्गी-उंशा पुं० दे० “अङ्गी”।

अङ्गी-उंशा पुं० [सं० अ०] अङ्गी। अङ्गी। अङ्गी।

अङ्गी-वि० [सं०] नया। हाल का। नवीन।

अङ्गी-उंशा पुं० दे० “अङ्गी”।

अङ्गीपति-उंशा पुं० [सं० अ०] श्रीकृष्ण। उ०—कोऊ केरिफ

संप्रदाय कोऊ लाख हजार । मो संगति जटुपति सदा विपति विदारनहार ।—विहारी ।

जटुपाल—संज्ञा पुं० [सं० यटुपाल] श्रीकृष्ण ।

जटुपुर—संज्ञा पुं० [सं० यटुपुर] राजा यटु का नगर । यटुकुल की राजधानी, मथुरा ।

जटुवंसी—संज्ञा पुं० दे० “यटुवंसी” ।

जटुराज—संज्ञा पुं० [सं० यटुराज] यटुपति । श्रीकृष्ण चंद्र ।

जटुराज—संज्ञा पुं० [सं० यटुराज] श्रीकृष्णचंद्र ।

जटुराम—संज्ञा पुं० [सं० यटुराम] यटुकुल के राम । दलदेव ।

जटुराय—संज्ञा पुं० [सं० यटुराज] श्रीकृष्णचंद्र ।

जटुवर—संज्ञा पुं० [सं० यटुवर] श्रीकृष्ण चंद्र ।

जटुवीर—संज्ञा पुं० [सं० यटुवीर] श्रीकृष्णचंद्र ।

जह्नी—वि० [सं० ज्यदा] अधिक । ज्यदा ।

वि० [सं० योद्धा] प्रचंड । प्रबल । उ०—छागलि चलेउ समह भूप बलहह जह धति ।—गोपाल ।

संज्ञा पुं० [सं०] दादा । पितामह । बाप का बाप ।

जह्पि—वि० [सं०] वि० दे० “यजपि” ।

जह्बह—संज्ञा पुं० [सं० यज + अय] शकधनीय वात । यह वात जो न कहेने योग्य हो । दुर्बचन ।

जन्गम—संज्ञा पुं० [सं०] चांडाल ।

जन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोक । लोग ।

यौ०—जनप्रदाद । जनपय । जनधृति । जनवल्लभ । जनसमूह आदि ।

(२) प्रजा । (३) गँवार । देहाती । (४) अनुयायी ।

अनुचर । दास । उ०—(क) हरिजन हँस दशा लिए डोले ।

निर्मल नाम सुनी सुनि घोले ।—कवीर । (ख) हरि अहुंन निज जन जान । लै गए सहँ न जहँ शशि भान ।—सूर ।

(ग) जन मन संख सुखर मन हरनी । किए तिलक गुन गन पस करनी ।—तुलसी ।

यौ०—हरिजन ।

(४) समूह । समुदाय । जैसे, युधिजन । (६) अवन । (७) यह जिसकी जीविका शारीरिक परिश्रम करके दैनिक वेतन लेने से चञ्चली हो । (८) सात महाव्याहृतियों में से पाँचवीं व्याहृति । (९) सात लोकों में से पाँचवाँ लोक । पुराणानुसार चौदह लोकों में ऊपर के सात लोकों में पाँचवाँ लोक जिसमें ब्रह्मा के मानसपुत्र और बड़े बड़े योगी द्र रहते हैं ।

(१०) एक राघव का नाम ।

जनक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्मदाता । उत्पादक । (२) पिता ।

याप । (३) मिथिला के एक राजवंश की वंशधि । ये लोग अपने पूर्वज निमि विदेह के नाम पर वैदेह भी कहलाते थे । सीता जी इस कुल में उत्पन्न सीरध्वज की पुत्री थीं । इस कुल में बड़े बड़े ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न हुए हैं जिसकी कथाएँ प्राण्यों,

वपनिपदों, महाभारत और पुराणों में भरी पड़ी हैं । (४) सेवाराज्य का चौथा पुत्र । (५) एक वृष का नाम ।

जनकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पन्न करने का भाव या काम । (२) उत्पन्न करने की शक्ति ।

जनकनिदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता । जानकी ।

जनकपुर—संज्ञा पुं० [सं०] मिथिला की प्राचीन राजधानी । इसका स्थान आज कल लोग नेपाल की तराई में बतलाते हैं । यह हिंदुओं का प्रधान तीर्थ है और हिंदू यात्री प्रति वर्ष यहाँ दर्शन के लिये जाते हैं ।

जनकारी—संज्ञा पुं० [सं० जनकारि] लाल का बना हुआ रंग । थलकरक ।

जनकौर—संज्ञा पुं० [हिं० जनक + औरा (प्रत्य०)] (१) जनक का स्थान । जनक नगर । उ०—शाजहिँ ढोल निसान सगुन सुभ पायेनिहि । सीय नैहर जनकौर नगर निवारायेनिहि ।—तुलसी । (२) जनक राजा के चंशज या संबंधी । उ०—दोसलपति गति सुनि जनकौरा । भे सेव लोक लोक पस वारा ।—तुलसी ।

जनसूत्र—वि० [सं० जनक] (१) जिसके हाव भाव आदि औरतों के से हों । (२) हीनज्ञा । नपुंसक ।

जनगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मङ्गली ।

जनघ—संज्ञा पुं० [सं० जन + घृह] मंडप । (डि०)

जनचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० जनचक्षुस्] सूर्य ।

जनचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोकवाद । सर्वसाधारण में फैली हुई बात ।

जनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जनन का भाव । (२) जनसमूह । सर्वसाधारण ।

जनत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाता या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे धूप और घृति आदि से रचा हो ।

जनघोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुकड़बेल । येंदाल ।

जनदेव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा । नरपति । (२) मिथिला के एक प्राचीन राजा का नाम जो यज्ञा जिज्ञासु था और जिसने महर्षि पंचशिख के उपदेश से मोक्ष प्राप्त किया था । इसका यथैव महाभारत में आया है ।

जनधा—संज्ञा पुं० [सं०] अस्ति । ज्ञाया ।

जनन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्पत्ति । उद्भव । (२) जन्म । (३) आधिभाव । (४) उत्तम के अनुसार मंत्रों के दस संस्कारों में से पहला संस्कार जिसमें मंत्रों का मातृका वर्णों से उद्धार किया जाता है । (५) यज्ञ आदि में दीक्षित व्यक्ति का एक संस्कार जिससे उपरांत उसका दीक्षित रूप में फिर से जन्म ग्रहण करना माना जाता है । (६) वंश । कुल । (७) पिता । (८) परमेश्वर ।

जनना—वि० सं० [सं० जनन = जन्म] संतान को जन्म देना । प्रसव करना । उ०—(क) जनत पुत्र नभ वजो नगारा । तदपि

वपनिपदों, महाभारत और पुराणों में भरी पड़ी हैं । (४)

सेवाराज्य का चौथा पुत्र । (५) एक वृष का नाम ।

जनकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पन्न करने का भाव या काम । (२) उत्पन्न करने की शक्ति ।

जनकनिदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता । जानकी ।

जनकपुर—संज्ञा पुं० [सं०] मिथिला की प्राचीन राजधानी । इसका स्थान आज कल लोग नेपाल की तराई में बतलाते हैं । यह हिंदुओं का प्रधान तीर्थ है और हिंदू यात्री प्रति वर्ष यहाँ दर्शन के लिये जाते हैं ।

जनकारी—संज्ञा पुं० [सं० जनकारि] लाल का बना हुआ रंग । थलकरक ।

जनकौर—संज्ञा पुं० [हिं० जनक + औरा (प्रत्य०)] (१) जनक का स्थान । जनक नगर । उ०—शाजहिँ ढोल निसान सगुन सुभ पायेनिहि । सीय नैहर जनकौर नगर निवारायेनिहि ।—तुलसी । (२) जनक राजा के चंशज या संबंधी । उ०—दोसलपति गति सुनि जनकौरा । भे सेव लोक लोक पस वारा ।—तुलसी ।

जनसूत्र—वि० [सं० जनक] (१) जिसके हाव भाव आदि औरतों के से हों । (२) हीनज्ञा । नपुंसक ।

जनगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मङ्गली ।

जनघ—संज्ञा पुं० [सं० जन + घृह] मंडप । (डि०)

जनचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० जनचक्षुस्] सूर्य ।

जनचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोकवाद । सर्वसाधारण में फैली हुई बात ।

जनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जनन का भाव । (२) जनसमूह । सर्वसाधारण ।

जनत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाता या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे धूप और घृति आदि से रचा हो ।

जनघोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुकड़बेल । येंदाल ।

जनदेव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा । नरपति । (२) मिथिला के एक प्राचीन राजा का नाम जो यज्ञा जिज्ञासु था और जिसने महर्षि पंचशिख के उपदेश से मोक्ष प्राप्त किया था । इसका यथैव महाभारत में आया है ।

जनधा—संज्ञा पुं० [सं०] अस्ति । ज्ञाया ।

जनन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्पत्ति । उद्भव । (२) जन्म । (३) आधिभाव । (४) उत्तम के अनुसार मंत्रों के दस संस्कारों में से पहला संस्कार जिसमें मंत्रों का मातृका वर्णों से उद्धार किया जाता है । (५) यज्ञ आदि में दीक्षित व्यक्ति का एक संस्कार जिससे उपरांत उसका दीक्षित रूप में फिर से जन्म ग्रहण करना माना जाता है । (६) वंश । कुल । (७) पिता । (८) परमेश्वर ।

जनना—वि० सं० [सं० जनन = जन्म] संतान को जन्म देना । प्रसव करना । उ०—(क) जनत पुत्र नभ वजो नगारा । तदपि

वपनिपदों, महाभारत और पुराणों में भरी पड़ी हैं । (४)

सेवाराज्य का चौथा पुत्र । (५) एक वृष का नाम ।

जनकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पन्न करने का भाव या काम । (२) उत्पन्न करने की शक्ति ।

जनकनिदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता । जानकी ।

जनकपुर—संज्ञा पुं० [सं०] मिथिला की प्राचीन राजधानी । इसका स्थान आज कल लोग नेपाल की तराई में बतलाते हैं । यह हिंदुओं का प्रधान तीर्थ है और हिंदू यात्री प्रति वर्ष यहाँ दर्शन के लिये जाते हैं ।

जनकारी—संज्ञा पुं० [सं० जनकारि] लाल का बना हुआ रंग । थलकरक ।

जनकौर—संज्ञा पुं० [हिं० जनक + औरा (प्रत्य०)] (१) जनक का स्थान । जनक नगर । उ०—शाजहिँ ढोल निसान सगुन सुभ पायेनिहि । सीय नैहर जनकौर नगर निवारायेनिहि ।—तुलसी । (२) जनक राजा के चंशज या संबंधी । उ०—दोसलपति गति सुनि जनकौरा । भे सेव लोक लोक पस वारा ।—तुलसी ।

जनसूत्र—वि० [सं० जनक] (१) जिसके हाव भाव आदि औरतों के से हों । (२) हीनज्ञा । नपुंसक ।

जनगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मङ्गली ।

जनघ—संज्ञा पुं० [सं० जन + घृह] मंडप । (डि०)

जनचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० जनचक्षुस्] सूर्य ।

जनचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोकवाद । सर्वसाधारण में फैली हुई बात ।

जनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जनन का भाव । (२) जनसमूह । सर्वसाधारण ।

जनत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाता या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे धूप और घृति आदि से रचा हो ।

जनघोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुकड़बेल । येंदाल ।

जनदेव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा । नरपति । (२) मिथिला के एक प्राचीन राजा का नाम जो यज्ञा जिज्ञासु था और जिसने महर्षि पंचशिख के उपदेश से मोक्ष प्राप्त किया था । इसका यथैव महाभारत में आया है ।

जनधा—संज्ञा पुं० [सं०] अस्ति । ज्ञाया ।

जनन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्पत्ति । उद्भव । (२) जन्म । (३) आधिभाव । (४) उत्तम के अनुसार मंत्रों के दस संस्कारों में से पहला संस्कार जिसमें मंत्रों का मातृका वर्णों से उद्धार किया जाता है । (५) यज्ञ आदि में दीक्षित व्यक्ति का एक संस्कार जिससे उपरांत उसका दीक्षित रूप में फिर से जन्म ग्रहण करना माना जाता है । (६) वंश । कुल । (७) पिता । (८) परमेश्वर ।

जनना—वि० सं० [सं० जनन = जन्म] संतान को जन्म देना । प्रसव करना । उ०—(क) जनत पुत्र नभ वजो नगारा । तदपि

जननि उर सोच धरारा।—कबीर। (ख) रंभ रंभ जंघन दुति
देवत नशन जनत जगमादी।—रघुराज।

जननाश्रीच—संज्ञा पुं० [सं०] यह धरीष जो घर में किसी का
जन्म होने के कारण लगता है। वृद्धि।

जननि—संज्ञा स्त्री० दे० "जननी"।

जननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पन्न करनेवाली। (२) माता।
मा। उ०—(क) जनत पुत्र नभ ये नारा। तदपि जननि
उर सोच धरारा।—कबीर। (ख) सशुक्ति महेश समात सच,
जननि जनक मुसुकाहैं। घाल उफाए विविध विधि, निडर
होह उर नादि।—तुलसी। (ग) जननी जनकादि हिवू भए
भूरि बहोदि भई उर की जरनी।—तुलसी। (घ) हैं हहां
तेरे ही कारण थायो। तेरी हीं सुन जननि यसादा हडि
गोपाल पठाया।—सूर। (३) बूढ़ी का पेड़। (४) कुटुंबी।
(५) मंत्री। (६) जगमासी। (७) थलता। (८) पड़ोसी।
परिच। (९) चमगादड़। (१०) दया। कृपा। (११) जर्नी
नाम का गंध-द्रव्य।

जननोद्भव—संज्ञा स्त्री० [सं०] यह इंद्रिय जिससे प्राणियों की उत्पत्ति
होती है। भाग। योनि।

जनपद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देश। (२) सर्वसंधारण। निचासी।
देवघासी। प्रभा। लोक। लोग। उ०—ज्यों हुलास रनिवर्त
नरोसाहैं त्यो जनपद रजधानी।—तुलसी।

जनपाल, जनपालक,—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्यों का पोषण
करनेवाला। (२) संवेक या अनुचर का पालनेवाला।

जनप्रवाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोकप्रवाद। लोकनिंदा। (२)
जनरथ। अफवाह। किंवदंती।

जनप्रिय—वि० [सं०] सच से प्रेम रखनेवाला। सर्व प्रिय। सच
का प्यारा।

संज्ञा पुं० (१) धान्यक। धनिया। (२) रोमांजन वृक्ष।
सहजन का पेड़। (३) महादेव। शिव।

जनप्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सच के प्रिय होने का भाव। सर्व-
प्रियता।

जनप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुलहुल का साग।

जनबगुल—संज्ञा पुं० [हिं० जन + बगुला] एक प्रकार का थाला।

जनम—संज्ञा पुं० [सं० जन्म] (१) उत्पत्ति। जन्म। दे० "जन्म"
उ०—यहू विधि राम सिगहैं समुझाया। पारयती कर
जन्म मुनाया।—तुलसी।

किं० प्र०—धामना।—पाना।—लेना।

धा०—जनमवृत्ति। जनमवृत्ती। जनमपत्री।

(२) जीवन। सिंदगी। चायु। उ०—(क) हेतव न विषय
विषय, भवन प्रसत भा वीपपन। हृदय बहुत दुख लाग,
जनम गय हरि भगति विनु।—तुलसी। (ख) तुलसीदास

मेको थपे सोख है नू जनम कवन विधि भरिहे।—
तुलसी।

मुहा०—जनम भँवाना = व्यर्थ जन्म या समय नष्ट करना।
जनम बिगड़ना = धर्म नष्ट होना।

जनमवृत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जन्म + वृत्ति] यह वृत्ति जो बच्चों
को जन्मते समय से देा तीन वर्ष तक द्री जाती है।

मुहा०—(किसी बात का) जनमवृत्ती में पड़ना = जन्म से ही
(किसी बात का) ध्यात पड़ना। (किसी बात का) इतना
अभ्यस्त हो जाना कि उससे पीछा न बूट सके। जैसे, भूट
बोलना तो इनकी जनमवृत्ती में पड़ा है।

जनमदिन—संज्ञा पुं० दे० "जन्मदिन"।

जनम-धरती—संज्ञा स्त्री० दे० "जन्मभूमि"।

जनमना—किं० प्र० [सं० जन्म] (१) पैदा होना। उत्पन्न होना।
जन्म लेना। (२) चौसर थादि खेलों में किसी नई या मरी
हुड़े गोटी का, उन खेलों के नियमानुसार खेले जाने के
योग्य होना।

जनमपत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जन्म + पत्ती] घाय की वह छोटी
पत्ती या फुगगी जो पहले पहल निकलती है। (चाय-कुलियों
की भाषा)।

जनमपत्री—संज्ञा स्त्री० दे० "जन्मपत्री"।

जनमरक—संज्ञा पुं० [सं०] वह धीमारी जिससे थोड़े समय में
बहुत से लोग मर जायें। महामारी।

जनमर्यादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लौकिक आचार या रीति।

जनमसँघाती—संज्ञा पुं० [हिं० जन्म + संघाती] (१) वह जिसका
साथ जन्म से ही हो। बहुत दिनों से साथ रहनेवाला मित्र।
(२) वह जिसका साथ जन्म भर रहे

जनमाना—किं० प्र० [हिं० जन्म] (१) जनमाने का काम कराना।
प्रसव कराना। (२) दे० "जनमना"।

जनमेजय—संज्ञा पुं० दे० "जन्मेजय"।

जनपिता—संज्ञा पुं० [सं० जनपितृ] [स्त्री० जनपिता] जन्मदाता।
पिता। बाप।

जनयित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म देनेवाली। माता। मा। उ०—
सीतलता, सरलता मद्भरी। द्विजपद प्रीति धरम जनयित्री।

जनरल—संज्ञा पुं० [फ्र०] फौजों का एक बड़ा अफसर
जिसके अधिकार में कई रेजिमेंटें होती हैं। शंभेनी सेना
का सेनापति या सेना-नायक।

वि० साधारण। साम। जैसे, हस्पेटर-जनरल।

जनरथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किंवदंती। जनश्रुति। अफवाह।
(२) लोकनिंदा। बदनामी। (३) बहुत से लोगों का
कोलाहल। शोर।

जनलोक—संज्ञा पुं० दे० "जन (६) ।"

जनवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनवरी] श्रंगरेजी साल का पहला महीना जो इकतीस दिनों का होता है ।

जनवह्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेत रोहित का पेड़ । सफेद रोहिड़ा । (२) जनप्रिय । लोकप्रिय ।

जनवाई—संज्ञा स्त्री० दे० “जनाई (२)” ।

जनघाद—संज्ञा पुं० दे० “जनस्य” ।

जनघाना—क्रि० सं० [हिं० जनना] जनने का प्रेरणार्थक रूप । प्रसव कराना । लड़का पैदा कराना ।

† क्रि० सं० [हिं० जनना] समाचार दिलवाना । किसी दूसरे के द्वारा सूचित कराना ।

जनघास—संज्ञा पुं० [सं० जन + वास] (१) सर्वसाधारण के ठहरने या टिकने का स्थान । लोगों के निवास का स्थान । (२) घरातियों के ठहरने का स्थान । वह जगह जहाँ कन्या पच की श्रारतियों के ठहरने का प्रबंध हो । उ०—(क) सकल सुपास जहाँ दीन्हो जनघास तहाँ कीन्हो सन्मान दे हुलास ल्यों समाज को ।—कवीर । (ख) दीन्ह जाय जनघास सुपास किये सय । धर धर बालक घात कहन लागे सय ।—तुलसी । (३) समा । समाज ।

जनघासा—संज्ञा पुं० दे० “जनघास (२)” ।

जनभूत—वि० [सं०] प्रसिद्ध । विख्यात । मशहूर ।

जनभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रफवाह । वह खबर जो बहुत से लोगों में फैली हुई हो पर जिसके सच्चे या मूठे होने का कोई निर्णय न हुआ हो । श्रफवाह । किंवदंती ।

क्रि० प्र०—उठना ।—फैलना ।

जनस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दंडकारण्य । दंडकवन ।

जनहरण—संज्ञा पुं० [सं०] एक दंडक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तीस लघु और एक गुरु होता है । यह ‘सुकक’ का दूसरा भेद है । उ०—लघु सय गुरु इक तिसर न मन धर भूत भनु नर प्रसु श्रध जन हरण ।

जनाँ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह प्रदेश जिसकी सीमा निश्चित हो । (२) यम । (३) वह स्थान जहाँ मनुष्य न रहते हों ।

वि० मनुष्यों का नाश करनेवाला ।

जनाँतिक—संज्ञा पुं० [सं०] दो श्राद्धियों में परस्पर वह सांकेतिक घात चीत जिसे और उपस्थित लोग न समझ सकें ।

विशेष—इसका व्यवहार बहुधा नाटकमें में होता है ।

जना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पत्ति । पैदाइश । (२) माहिम्नती के राजा नीलध्वज की स्त्री का नाम । जैमिनी भारत के अनुसार पाँदवों के श्रधमेघ यज्ञ के घोड़े को पकड़नेवाला प्रवीर हस्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । उस घोड़े के लिये प्रवीर और पाँदवों में जो युद्ध हुआ था उसमें हस्ते अपने पुत्र को बहुत सहायता और उत्तेजना दी थी । जब युद्ध में प्रवीर मारा गया तब वह स्वयं युद्ध करने लगी । श्रुष्ट्या

को हस्ते पाँदवों की रक्षा करने में बहुत कठिनाता हुई थी । संज्ञा पुं० दे० “जिना” ।

वि० उत्पन्न किया हुआ । जन्माया हुआ ।

जनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनना] (१) जनानेवाली । दाई । (२) जनाने की उजरत । पैदा कराई का हक वा नेग । दाई की मजूदगी ।

जनाउ—संज्ञा पुं० दे० “जनाव” । उ०—श्रवणनाथ चाहत धजन, भीतर करहु जनाव । भए प्रेम धस सचिव सुनि, विप्र समासद राव ।—तुलसी ।

जनाचार—संज्ञा पुं० [सं०] लोकाचार । देश या समाज आदि की प्रचलित रीति ।

जनाज्ञा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूतक शरीर । शव । लाश । (२) शरीर या वह सूतक जिसमें लाश को रख कर गाढ़ने, जलाने या और किसी प्रकार की श्रुतिम किया करने के लिये ले जाते हैं ।

क्रि० प्र०—उठना ।—निकलना ।

जनाधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर । (२) राजा ।

जनानखाना—संज्ञा पुं० [फा०] घर का वह भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हों । स्त्रियों के रहने का घर ।

जनाना—क्रि० सं० [हिं० जानना] मालूम कराना । जताना ।

संयो० क्रि०—देना ।—रखना ।

क्रि० सं० [हिं० जानना] जानने का प्रेरणार्थक रूप । उत्पन्न कराना । जनन का काम कराना ।

संयो० क्रि०—देना ।

जनाना—वि० [फा०] [स्त्री० जनानी] (१) स्त्रियों का । स्त्री संबंधी । जैसे, जनाना काम, जनानी सूरत, जनानी बोली । (२) नामदर । नदुसक । हीजड़ा । (३) निर्बल । दरपोक । संज्ञा पुं० [फा०] (१) जनाना । मेहरा । (२) श्रुतःपुर । जनानखाना ।

मुहा०—जनाना करना = पर्दा करना । स्थान को पर्देवाली स्त्रियों के आने जाने योग्य करना ।

जनानापन—संज्ञा पुं० [फा० जनाना + पन (प्रत्य०)] मेहरापन । स्त्रीत्व ।

जनाव—संज्ञा पुं० [सं०] बर्तों के लिये आदरसूचक शब्द । महाशय । महोदय । जैसे, जनाव मौलवी साहब ।

जनावआली—संज्ञा पुं० [सं०] मान्यवर । महोदय । प्रतिष्ठित पुरुषों के लिये आदरसूचक संबोधन ।

जनाईन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) शालग्राम की घटिया का एक भेद ।

वि० लोगों को कष्ट पहुँचानेवाला । तुलदायी ।

जनाय—संज्ञा पुं० [हिं० जनना] जनाने की क्रिया । सूचना । इतिहास ।

३०—चलत न काहुहि कियो जनाव । हरि प्यारी सों बाह्यो
भावर । रास लसिक मुख गाई हो ।—सूर ।

जनावर—संज्ञा पु० दे० "जानवर" ।

जनावरान—संज्ञा पु० [सं०] (१) भेड़िया । (२) मनुष्यमणक । वह
जो धादिमियों को खाता हो । (३) धादिमियों को खाने का
काम ।

जनाश्रय—संज्ञा पु० [सं०] (१) धर्मशाला या सराय आदि जहाँ
यात्री रहते हैं । (२) वह मकान या मंडप आदि जो किसी
विशेष कार्य या समय के लिये बनाया जाय । (३) साधारण
घर । मकान ।

जनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पत्ति । जन्म । पैदाहू । (२)
जिससे कोई उत्पन्न हो । नारी । स्त्री । (३) माता । (४)
जनी सामक गंधद्रव्य । (५) पुत्र-वधु । पतहू । (६) माया ।
पत्नी । (७) जतुका । (८) जन्मभूमि ।

* श्रयं मत । महीं । न । (निपेधाथक)

जनिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनना] पहली । मुशम्मा । दुर्भावल ।
जनिद—वि० [सं०] (१) उत्पन्न । जन्मा हुआ । जन्म । उपजा
हुआ । (२) उत्पन्न किया हुआ ।

जनिता—संज्ञा पु० [सं० जनिट] पैदा करनेवाला । उत्पन्न करने-
वाला । पिता ।

जनित्र—संज्ञा पु० [सं०] जन्मस्थान । जन्मभूमि ।

जनित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न करनेवाली । माता । मा ।

जनिनीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का बड़ा पेड़ ।

जनिपि—संज्ञा स्त्री० [सं० जनि] प्रियतमा । प्राणप्यारी । प्रिया ।
प्रेयसी ।

जनो—संज्ञा स्त्री० [सं० जन] (१) दासी । सेविका । श्रमचरी ।
(२) स्त्री । (३) उत्पन्न करनेवाली । माता । (४) जन्माई
हुई । कन्या । बहकी । पुत्री ।

वि० स्त्री० उत्पन्न की हुई । पैदा की हुई । जनमाई हुई ।

जनोपर—संज्ञा पु० [दे०] एक पेड़ का नाम ।

अनु—कि० वि० [हिं० जनना] माने ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म । उत्पत्ति ।

जनेद्र—संज्ञा पु० [सं०] राजा ।

जनेऊ—संज्ञा पु० [सं०] बस वा जन्म । (१) यज्ञोपवीत । ब्रह्मसूत्र ।

मुदा—जनेऊ का हाथ = पेशाबी वा ततवार का एक हाथ
जिसमें प्रतिद्वंदी की छाती पर ऐसा आघात लगाया जाता है
जैसे जनेऊ पड़ा रहता है ।

(२) यज्ञोपवीत संस्कार ।

जनेत—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + एत (प्रत्य०)] वरयात्रा । वरात । उ०—
बीच बीच वर वास करि, भग लोगन सुख देत । अबध
समीप पुनोत दिन, पहुँची प्राय जनेत ।—तुलसी ।

जनेता—संज्ञा पु० [सं० जनकता] पिता । धार । (हिं०)

जनेरा—संज्ञा पु० [हिं० जुवार] एक प्रकार का यात्रा जिसके पेड़
बहुत बड़े होते हैं । इसमें बाले भी बहुत लंबी जाती हैं ।

जनेव—संज्ञा पु० दे० "जनेऊ" ।

जनेया—संज्ञा पु० [हिं० जनेऊ] (१) लकड़ी आदि में बनाई या
पड़ी हुई लकरी या धारी । (२) एक प्रकार की ऊँची घास
जिसे घोड़े बहुत प्रसन्नता से खाते हैं ।

जनेश—संज्ञा पु० [सं०] राजा । नरेश । भूपति ।

जनेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हर्षी । (२) चमेली का पेड़ ।

(३) पपड़ी । पपटी । (४) वृद्धि नाम की श्रेणिति ।

जनेया—वि० [हिं० जनना + येा (प्रत्य०)] जाननेवाला । जान-
कार । उ०—(क) बदले को बदलो लै जाहु । उनकी एक
हमारी दोह तुम बड़े जनैया थाहु ।—सूर । (ख) वृष के
समान धन धान राज त्याग करि पारये पितु वचन जो जानत
जनैया है ।—पद्माकर । (ग) जो धायसु धव होइ स्वामिनी
व्यावहुँ साहि लोवाहै । योगी बाबा बड़े जनैया लखै कुँवर
सुखराहै ।—पुराज ।

जनेपु—संज्ञा पु० दे० "जनेऊ" ।

कि० वि० [हिं० जानना] माने । गोप ।

जन्म—संज्ञा पु० [सं०] (१) गर्भ में से निकल कर जीवन धारण
करने की क्रिया । उत्पत्ति । पैदाहू ।

पौ०—जन्मांध । जन्माष्टमी । जन्मभूमि । जन्मपत्री । जन्मरोगी ।

जन्मदिन । जन्मकुंडली । जन्ममरण आदि ।

पर्या०—जन्म । जन । जनि । उद्भव । जनी । प्रभव । भाव ।
भव । संभव । जन् । प्रजनन । जाति ।

कि० प्र०—देना ।—धारना ।—लेना ।

मुहा०—जन्म लेना = उत्पन्न होना । पैदा होना ।

(२) शक्तिच प्राप्त करने का काम । शक्तिर्भाव । जैसे, इस
धर्म कई नए पत्रों ने जन्म लिया है । (३) जीवन । निर्दगी ।

मुहा०—जन्म दिगङ्गना = वेपथी होना । धर्म नष्ट होना । जन्म
जन्म = उदा । नित्य । [जन्म में यूकना = व्याप्यपूर्वक धिक्कारना ।
जन्म हारना = (१) व्यर्थ जन्म लेना । (२) दूरे का दाय
देा कर रहना ।

(४) फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली का वह लग्न
जिसमें कुंडलीवाले का जन्म हुआ हो ।

जन्मघट्टमी—संज्ञा स्त्री० दे० "जन्माष्टमी" ।

जन्मकील—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु ।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु की उपासना करने से मनुष्य का
मोक्ष हो जाता है और उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता ।
इसीसे विष्णु को जन्मकील कहते हैं ।

जन्मकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के अनुसार वह चक्र
जिसमें किसी के जन्म के समय में ग्रहों की स्थिति का
पता चले ।

जन्मकृत—संज्ञा पुं० [सं०] पिता । जन्मदाता ।
 जन्मग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति ।
 जन्मतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जन्म की तिथि । जन्मदिन ।
 (२) वर्षगांठ ।
 जन्मतुष्टा—वि० [हिं० जन्म + तुष्टा (प्रल०)] [स्त्री० जन्मतुष्टी]
 मोड़े दिनों का पैदा हुआ । नवोत्पन्न । दुःखसुहार् ।
 जन्मदिन—संज्ञा पुं० [सं०] वह दिन जिसमें किसी का जन्म हुआ
 है । जन्म का दिन । वर्षगांठ । जैसे, राजा महाराज का
 जन्मदिन है ।
 जन्मनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म-समय का नक्षत्र ।
 विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार किसी को अपने जन्म-
 नक्षत्र में यात्रा न करनी चाहिए और हजामत नयनवाची चाहिए,
 उस दिन उसे कुछ दान पुण्य आदि करना चाहिए ।
 जन्मना—कि० श्र० [सं० जन्म + ना (प्रत्य०)] (१) जन्म लेना ।
 जन्म ग्रहण करना । पैदा होना । (२) आविर्भूत होना ।
 अस्तित्व में आना ।
 जन्मप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) फलित ज्योतिष में जन्म लग्न का
 स्वामी । (२) फलित ज्योतिष में जन्म राशि का स्वामी ।
 जन्मपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंडली में जन्म राशि का मालिक ।
 (२) जन्म लग्न का स्वामी ।
 जन्मपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्मपत्री । (२) जन्म का विवर-
 ण । जीवनचरित्र । (३) किसी चीज का छादि से अंत
 तक विस्तृत विवरण ।
 जन्मपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्मपत्री ।
 जन्मपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पत्र या खर्चा जिसमें किसी की
 उत्पत्ति के समय के प्रदों की स्थिति, उनकी दशा, अंतर्दशा
 आदि और फलित ज्योतिष के अनुसार उनके फल आदि
 दिए हैं ।
 जन्मप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता । मा । (२) जन्म
 होने का स्थान ।
 जन्मभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म समय का लग्न । (२) जन्म
 समय का नक्षत्र । (३) जन्म की राशि । (४) जन्म नक्षत्र
 के सत्रातीय नक्षत्र आदि ।
 जन्मभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जन्मस्थान । जिस स्थान पर
 किसी का जन्म हुआ है । (२) वह देश जहाँ किसी का जन्म
 हुआ है ।
 जन्मभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] जीव । प्राणी ।
 जन्मराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लग्न जिसमें किसी को उत्पन्न
 होने के समय चंद्रमा उदय हो ।
 जन्मवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] योनि । अम ।
 जन्मविधवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो ध्वपन में विवाह होने

पर विधवा हो गई हो और अपने पति के साथ जिसका
 संपर्क न हुआ हो । अशतयोनि ।
 जन्मस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्मभूमि । (२) माता का
 गर्भ । (३) कुंडली में वह स्थान जिसमें जन्म समय के ग्रह
 रहते हैं ।
 जन्मांतर—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा जन्म ।
 जन्मांध—वि० [सं०] जन्म का अंधा ।
 जन्मा—संज्ञा पुं० [सं० जन्मप] वह जिसका जन्म हो । जन्मवाला ।
 जैसे, द्विजन्मा, शूद्रजन्मा ।
 विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार समासों में
 होता है ।
 वि० उत्पन्न । जो पैदा हुआ है ।
 जन्माधिप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम । (२) जन्म-
 राशि का स्वामी । (३) जन्म लग्न का स्वामी ।
 जन्माना—कि० श्र० [हिं० जन्मना] जन्मने का सकर्मक रूप । उत्पन्न
 करना । जन्म देना ।
 जन्माष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों की कृष्णष्टमी, जिस दिन
 शापी रात के समय भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का जन्म हुआ था ।
 इस दिन हिंदू वृत् तथा श्रीहृण्य के जन्म का उत्सव
 करते हैं ।
 विशेष—विष्णु पुराण में लिखा है कि श्रीकृष्णचंद्र का जन्म
 श्राव्य मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हुआ था । इसका
 कारण सृष्ट्य चंद्रमास और गौण्य चंद्रमास का भेद मालूम
 होता है, क्योंकि जन्माष्टमी किसी वर्ष सौर श्रावण मास में
 होती है और किसी वर्ष सौर भाद्र मास में होती है ।
 जन्मास्पद—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि । जन्मस्थान ।
 जन्मी—संज्ञा पुं० [सं० जन्मिन्] प्राणी । जीव ।
 वि० जो उत्पन्न हुआ है ।
 जन्मोजय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) कुरुवंशी प्रसिद्ध राजा
 परीषित के पुत्र का नाम जो बड़ा प्रतापी राजा था । इसने
 तपक नाम से अपने पिता का बदला लिया था और एक
 अधश्मेध यज्ञ भी किया था । वैशंपायन ने इसे महाभारत
 सुनाया था । (३) एक प्रसिद्ध नाग का नाम ।
 जन्मेश—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म राशि का स्वामी ।
 जन्मोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के जन्म के स्मरण का उत्सव
 तथा नवग्रह, अष्ट चिरजीवी और कुल-देवता आदि का
 पूजन ।
 जन्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जन्या] (१) साधारण मनुष्य ।
 जनसाधारण्य । (२) किंवदंती । अफवाह । (३) राष्ट्र । किसी
 एक देश के वासी । (४) जड़वाँ । बुद्ध । (५) हाट । बाजार ।
 (६) निंदा । परिवाद । (७) घर । दूकान । (८) घर के संपर्की ।
 घर पक्ष के लोग । (९) धराती । (१०) जामाता । दामाद ।

(११) पुत्र । घंटा । (१२) पिता । (१३) महादेव । (१४) देह । शरीर । (१५) जन्म । (१६) जाति ।

वि० (१) जल संघर्षी । (२) किसी जाति, देश, वंश या राष्ट्र से संबंध रखनेवाला । (३) देशिक । राष्ट्रीय । जातीय । (४) जो बपुत्र हुआ हो । उद्भूत ।

जन्मता-संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म होने का भाव ।

जन्मा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बपु की सहेली । (२) बपु । (३) माता की सखी । (४) प्रीति । स्नेह ।

जन्मु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक्ति । (२) प्रज्ञा । विधाता । (३) प्राणी । जीव । (४) जन्म । उत्पत्ति । (५) हरिवंश के धनुसार चौपे मन्वन्तर के सप्तविंशों में से एक ऋषि का नाम ।

जप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मंत्र या वाक्य का बार बार धीरे धीरे पाठ करना । (२) पूजा या संध्या आदि में मंत्र का संख्यापूर्वक पाठ करना । पुराणों में जप तीम प्रकार का माना गया है—मानस, उपांशु और वाचिक । कोई कोई उपांशु और मानस जप के बीच जिह्वा जप नाम का एक चौथा जप भी मानते हैं । येने लोगों का कथन है कि वाचिक जप से दसगुना फल उपांशु में, दसगुना फल जिह्वा जप में, और सड़सगुना फल मानस जप में होता है । मन ही मन मंत्र का शर्ये मनन करके उसे धीरे धीरे इस प्रकार उच्चारण करना कि जिह्वा और श्रोत्र में गति न हो, मानस जप कहलाता है । जिह्वा और श्रोत्र को हिला कर मंत्रों के शर्ये का विचार करते हुए इस प्रकार उच्चारण करना कि कुछ सुनाई पड़े, उपांशु जप कहलाता है । जिह्वा जप भी उपांशु ही के श्रुतगंत माना जाता है, मंत्र केवल इतना ही है कि जिह्वा जप में जिह्वा हिलती है पर श्रोत्र में गति नहीं होती, और न उच्चारण ही सुनाई पड़े सकता है । शर्ये का स्पष्ट उच्चारण करना वाचिक जप कहलाता है । जप करने में मंत्र की संख्या का ध्यान रखना पड़ता है, इस लिये जप में माला की भी आवश्यकता होती है ।

या०—जामाला । जपयज्ञ । जपस्थान ।

(३) जपनेवाला । जैमे, करणोजप ।

जपजी-संज्ञा पुं० [हिं० जप] सिमरने का एक पवित्र धर्ममंत्र, जिसका नित्य पाठ करना वे श्रपना मुल्य धर्म समझते हैं ।

जप तप-संज्ञा पुं० [हिं० जप + तप] संध्या, पूजा, जप और पाठ आदि । पूजा पाठ ।

जपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जप करने का काम । (२) जप करने का भाव ।

जपन-संज्ञा पुं० [सं०] जपने का काम । जप ।

जपना-क्रि० सं० [म० जपन] (१) किसी वाक्य वा वाक्यांश के उच्चारण लगातार धीरे धीरे देर तक कदना या दोहराना ।

३०—राम राम के जपे से जाय जिय की जतनि ।—तुलसी ।

(२) किसी मंत्र का संध्या, यज्ञ वा पूजा आदि के समय

संख्यानुसार धीरे धीरे बार बार उच्चारण करना । (३) खा जाना । जट्टी जट्टी निगल जाना । (भाज्रास्)

जपनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जपना] (१) माला । (२) गोमुखी । यह धैली जिसमें माला रख कर जप किया जाता है । गुठी ।

जपनीय-वि० [सं०] जप करने योग्य । जो जपने योग्य हो ।

जपमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह माला जिसे लेकर लोग जप करते हैं । यह माला संप्रदायानुसार रुद्राक्ष, कमलाक्ष, पुत्र-जीव, स्फटिक, तुलसी आदि के मनकों की होती है । इनमें प्रायः एक सौ श्राद्ध, चौवन या अट्ठाइस दाने होते हैं और बीच में जहाँ गडि होती है, एक सुमेरु होता है ।

विशेष—हिंदुओं के अतिरिक्त बौद्ध, मुसलमान और ईसाई आदि भी माला से जप करते हैं ।

जपयज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] जप । इसके तीन भेद हैं—वाचिक, उपांशु, और मानसिक । दे० "जप (२)" ।

जपहोम-संज्ञा पुं० [सं०] जप ।

जपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जप । अष्टहुल ।

जपानार्थ-क्रि० सं० [हिं० जप वा जपना] जपने का प्रेरणार्थक रूप । जप कराना ।

जपी-संज्ञा पुं० [हिं० जप + ई (प्रत्य०)] जप करनेवाला । वह जो जप करता हो ।

जस-संज्ञा पुं० दे० "जन्त" ।

जसव्य-वि० [सं०] जो जपने योग्य हो । जपनीय ।

जसी-संज्ञा स्त्री० दे० "जन्ती" ।

जप्य-वि० [सं०] जपने योग्य ।

संज्ञा पुं० मंत्र का जप ।

जफा-संज्ञा स्त्री० [फा०] श्रवणाय और श्रवणाचारपूर्णे व्यवहार । सखी ।

जफाकश-वि० [फा०] (१) सहिष्णु । सहनशील । (२) मेहनती । परिश्रमी ।

जफोर-संज्ञा स्त्री० दे० "जकील" ।

जफीरी-संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की कपास जो मिश्र देश में होती है ।

जफील-संज्ञा स्त्री० [अ० जफीर] (१) सीटी का शब्द, विशेषतः उस सीटी का शब्द जो कबूतरमान कबूतर उड़ाने के समय सुँह में देर डँगलियाँ रख कर बजाते हैं । (२) वह जिससे सीटी बजाई जाय । सीटी ।

क्रि० प्र०—बजाना ।—देंना ।

जफोलना-क्रि० प्र० [हिं० जफोल] सीटी बजाना । सीटी देना ।

जध-क्रि० वि० [सं० यजन्, प्रा० यत्, जब] जिस समय । जिस वक्त । उ०—जप से राम ब्याहि पर थाये । निन नव मंगल मोद बधाये ।—तुलसी ।

मुहा०—जय जय = जय कभी। जिस जिस समय। व०—जय जय होह धरम की हानी। यार्दे असुर अधम अभिमानी। तय तय प्रभु धरि मनुज शरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा।—तुलसी। जय तय = कभी कभी। जैसे, जय तय ये यहाँ आजाया करते हैं। जय होता है तय = प्रायः। वरापर। जैसे, जय होता है तय तुम मार दिया करते हो। जय देखो तय = सदा। सर्वदा। हमेशा। जैसे, जय देखो तय तुम यहाँ राड़े रहते हो।

जबड़ा—संज्ञा पुं० [सं० जंभ] मुँह में दोनों ओर ऊपर नीचे की वे हड्डियाँ जिनमें दाढ़ें जड़ी रहती हैं। कक्षा।

मुहा०—जबड़ा फाड़ना = मुँह खोलना। मुँह फाड़ना।

यौ०—जयदातेण्ड = जवरदस्त। वनवान। मुँहतेण्ड।

जबदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धान जो रूहेलखंड में पैदा होता है।

जवर—वि० [फा० जवर] (१) बलवान्। बली। ताकतवर। (२) दृढ़। मजबूत।

जवरदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जवर] अन्व्यापयुक्त अत्याचार। सत्यती। ज्यादती।

जवरजह—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का पत्ता जो पीलापन लिए हरे रंग का होता है।

जवरदस्त—वि० [फा०] [संज्ञा जवरदस्ती] (१) बलवान्। बली। शक्तिवाला। (२) दृढ़। मजबूत। पक्का।

जवरदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] अत्याचार। सीनाजेरी। प्रयत्नता। जि. यादती। अन्व्याय।

क्रि० वि० बलपूर्वक। दबाव डाल कर। ह्छा के विरुद्ध।

जवरान—क्रि० वि० [अ० जवरान] बलात्। जवरदस्ती। बलपूर्वक।

जबरा—वि० [हिं० जबर] बलवान्। बली। प्रबल। जवरदस्त। जैसे, जबरा मारे, रोजे न दे।

संज्ञा पुं० [हिं० जबर = दृढ़] चौड़े मुँह का एक प्रकार का कुटला या धनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।

संज्ञा पुं० [अ० जेबरा] चौड़े और गहरे के मध्य का एक बहुत सुंदर जंगली जानवर जो मध्यमे सफेद रंग का होता है और जिसके सारे शरीर पर लंबी लंबी सुंदर और काली धारियाँ होती हैं। यह कंधे तक प्रायः तीन हाथ ऊँचा और छहहरे पर मजबूत बदन का होता है। इसके कान बड़े, गरदन छोटी और हुम गुच्छेदार होती है। यह बहुत चौकसा, चपल, जंगली और तेज दौड़नेवाला होता है और बड़ी फटिन्ता से पकड़ा या पाला जाता है। यह कभी सवादी या लादने का काम नहीं देता। दक्षिण अफ्रिका के जंगलों और पहाड़ों में इसके मुँह के मुँह पाए जाते हैं। जहाँ तक हो सकता है यह बहुत ही एकान्त स्थान में रहता है और मनुष्यों आदि की बाहट पाकर दुरंत भाग जाता है। इसका टिका

बहुत किया जाता है जिससे इसकी जाति के शीघ्र ही नष्ट हो जाने की आशंका है।

जबह—संज्ञा पुं० [अ०] गला काट कर प्राण लेने की क्रिया। हिंसा।

मुहा०—जबह करना = बहुत काट देना। अर्थात् दुःख देना।

जबड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जीब] जीवट। साहस। हिम्मत। जैसे, उसने बड़े जबड़े का काम किया।

जर्बा—संज्ञा स्त्री० दे० “जवान”।

जर्बादराज—वि० दे० “जवानदराज”।

जर्बादराजी—संज्ञा स्त्री० दे० “जवानदराजी”।

जवान—संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० जवानी] (१) जीम। जिह्वा।

यौ०—जवानदराज। जवानबंदी।

मुहा०—जवान खींचना = बहुत अनुचित या धृष्टतापूर्ण बातें करने के लिये कठोर दंड देना। जवान खुलना = मुँह से बात निकलना। जवान खोलना = मुँह से बात निकलना। बोलना।

जवान चलना = (१) मुँह से जल्दी जल्दी शब्द निकलना। (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना। (३) खाया जाना।

मुँह चलना। **जवान चलाना** = (१) बोलना, विशेषतः जल्दी जल्दी बोलना। (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना। **जवान चाटना** = दे० “खोट चाटना”। **जवान टूटना** = (बातक का) स्पष्ट उच्चारण-आरंभ करना। † **जवान डालना** =

(१) माँगना। याचना करना। (२) पूछना। प्रश्न करना। **जवान धामना** या **पकड़ना** = बोलने में देना। कहने से रोकना।

जवान पर धाना = कहा जाना। मुँह से निकलना। **जवान पर रखना** = (१) किसी चीज को थोड़ा मात्रा में खार उठका स्वाद देखना। चखना। (२) स्मरण रखना। याद रखना। **जवान पर लाना** = मुँह से कहना। बोलना। **जवान पर होना** = हर

दम याद रहना। स्मरण रहना। **जवान बंद करना** = (१) चुप होना। (२) बोलने से रोकना। (३) विवाद में हारना। **जवान बंद होना** = (१) मुँह से शब्द न निकलना। (२) विवाद में हार जाना। निग्रह स्थान में आना। **जवान बिगड़ना** = (१) मुँह से अपशब्द निकलने का अन्व्यास होना। (२) मुँह का स्वाद

दस्त प्रकार खराब होना कि खाने की कोई चीज अच्छी न लगे। (३) जवान चोरी होना। **जवान में लगाम न होना** = अनुचित बातें कहने का अन्व्यास होना। सोच समक कर बोलने के

अयोग्य होना। **जवान रोकना** = (१) जवान पकड़ना। (२) चुप करना। **जवान सँभालना** = मुँह से अनुचित शब्द न निकलने देना। सोच समक कर बोलना। **जवान सीना** = दे० “मुँह सीना”। **जवान से निकलना** = उच्चारण होना।

बोला जाना। **जवान से निकलना** = उच्चारण करना। **बोलना**। कहना। **जवान हिलाना** = बोलने का प्रश्न करना। मुँह से शब्द निकलना। दुर्घी **जवान से बोलना** या कहना = क्रम और हेतु बोलना। अस्पष्ट रूप से बोलना।

इस प्रकार वेदों में जिनमें सुनेवाले को उठ बात के संबंध में संदेह रह जाय। यद्वज्रानी = अत्रुचित और अशिश्रित। यत्, यजमान = जो बहुत श्रद्धा से कहता है। कंठस्थ। उपस्थित। वेदज्वान = जो अधिक न बोधता है। वद्वत् सीधा।
(२) ज्वान से निकला हुआ शब्द। यात। योल। जैसे, मरद की एक ज्वान होती है।

मुहा०—ज्वान बदलना = कही हुई बात से फिर जाना।

(१) प्रतिज्ञा। यादा। कौल।

मुहा०—ज्वान देना या धारना = प्रतिज्ञा करना। वचन देना। यादा करना।

(४) भाषा। योल चाख।

ज्वानद्वाराज-वि० [फा०] [संज्ञा ज्वानःपराजी] (१) जो बहुत सी न कहने योग्य और अत्रुचित बातें कहे। बहुत छटता-पूर्वक अत्रुचित बातें करनेवाला। (२) बड़ बड़ कर बातें करनेवाला। शेली या वींग हाँकनेवाला।

ज्वानद्वाराजी-संज्ञा श्री० [फा०] बहुत छटतापूर्वक अत्रुचित बातें करने की क्रिया या भाव। छटता। डिठाई। गुस्ताली।

ज्वानधंदी-संज्ञा श्री० [फा०] (१) किसी घटना आदि के संबंध में साक्षी स्वरूप वह कथन जो लिख लिया जाय। लिखा जानेवाला हज़ार। (२) मौन। चुप्पी।

ज्वानी-वि० [हिं० ज्वान] जो केवल ज्वान से कहा जाय, (पर कार्ये अथवा और किसी रूप में परिणत न किया जाय) मौनिक। जैसे, ज्वानी जमा-खर्च, ज्वानी सँदसा।

जवाला-संज्ञा श्री० [सं०] सत्य काम आवाल अथि की माता का नाम जो, एक दासी थी। इसकी कथा दुर्बोध्य उपनिषद में है।

विशेष—दे० 'जावाल'।

ज्वल-वि० [उ०] धुरा। क्षराय। निकम्मा। निहूट।

ज्वल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अधिकारी या राज्य द्वारा देव स्वरूप किमी अथवा की संरक्षित का हरण। किसी अथवा की देव देने के लिये सरकार का उसकी जायदाद छीन लेना। (२) अपने अधिकार में आई हुई किसी दूसरे की चीज को अपना लेना। कोई वस्तु किसी अधिकार से छे लेना।

ज्वली-संज्ञा श्री० [सं० ज्वल] ज्वल।

मुहा०—ज्वली में धाना = ज्वल हो जाना।

ज्वली-संज्ञा पुं० दे० 'ज्वहा'।

ज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] फेवर ब्यवहार। ज्यादती। सपती।

ज्वर-वि० [सं०] बलात्। ज्वरदस्ती से। ज्यादती से। बबरूके।

ज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] मीधुन। जी-प्रसंग।

ज्वर-संज्ञा पुं० दे० 'यम'।

जमई-वि० [फा०] जो जमा हो। नगदी। जमा संबंधी।

विशेष—यह शब्द उम भूमि के लिये आता है जिसका लगान नगद लिया जाता है। जैरे, जमई मेत। अथवा इसका अर्थवहार उस लगान के लिये होता है जो जिस के रूप में नहीं बल्कि नगद हो। जैसे, जमई लगान, जमई बंदोबस्त।

जमक-संज्ञा पुं० दे० 'यमक'।

जमकाना-वि० [सं०] दे० 'यमकाना'।

जमकानर-संज्ञा पुं० [सं०] यम + हिं० कानर] भँवर।

सजा श्री० [सं०] यम + कर्षी] यम का छुरा या लाँडा।

जमकाना-वि० [सं०] हिं० यमकाना] जमकाना का सकर्मक रूप।

जमघट-संज्ञा पुं० दे० 'यमघट'।

जमघट-संज्ञा पुं० [हिं० जमना + घट] मनुष्यों की भीड़ जिसमें लोग ठसठास भरे हों और जिसे कोई आदमी सुगमता से पार न कर सके। ठट। बहुत से मनुष्यों की भीड़। जमावड़ा।

क्रि० प्र०—लगाना।

जमघटा-संज्ञा पुं० दे० 'जमघट'।

जमघटा-संज्ञा पुं० दे० 'जमघट'।

जमज-वि० दे० 'यमज'।

जमजाहर-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की घोड़ी चिड़िया जो जाड़े के दिनों में उत्तर-पश्चिम भारत में दिखाई पड़ती है और शरमी में फाटस और हुकैरतान को चली जाती है। यह प्रायः एक थालित लंबी होती है और बहुत परिवर्तन के समय रंग बदलती है।

जमडा-संज्ञा श्री० [सं०] यम + दाढ़] कटारी की तरह का एक हथियार जिसकी नोक बहुत पैनी और धारो की धार शुकी हुई होती है। इसे शयु के शरीर में भोंकते हैं। जमपर।

जमदग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रकार वैदिक अथि जिनकी गणना सप्तर्षियों में की जाती है। ये भृगुवंशी अचीक के पुत्र थे। वेदों में इनके बहुत से मंत्र मिलते हैं। अथवेद के अनेक मंत्रों में जाना जाता है कि विद्यामित्र के साथ ये भी वशिष्ठ के विपत्नी थे। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि हरिश्चंद्र के नरमेघ यज्ञ में ये अथय्यु हुए थे।

विशेष—जमदग्नि का जिक्र महाभारत, हरियंश और विष्णुपुराण में आया है। इनकी वरपत्ति के संबंध में लिखा है कि अचीक अथि ने अपनी छोटी सख्यवती, जो राधा गाधि की कन्या थी, तथा इनकी माता के लिये मित्र गुणोंवाले दो चर लैव्यार किये थे। दोनों चर अपनी छोटी सख्यवती को देखकर उद्वेग में बतला दिया था कि अत्रु-स्नान के उपरांत यह चर तुम या लेना और दूसरा चर अपनी माता को लिखा देना। सख्यवती ने दोनों चर अपनी माता को देकर बतले संबंध में मय बातें बतला दीं। उसकी माता ने यह समझ

कर कि ऋचीक ने अपनी स्त्री के लिये अधिक उत्तम गुणों-वाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चर तैय्यार किया होगा, उसका चर स्वयं खा लिया और अपने चर उसे खिला दिया। जब दोनों गर्भवती हुईं तब ऋचीक ने अपनी स्त्री के लक्षण देख कर समझ लिया कि चर बदल गया है। ऋचीक ने उससे कहा कि मैंने तुम्हारे गर्भ से निष्ट पुत्र और तुम्हारी माता के गर्भ से महाबली और चात्र गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चर तैय्यार किया था; पर तुम लोगों ने चर बदल लिया। इस पर सत्यवती ने दुष्टी हो कर अपने पति से कोई ऐसा प्रयत्न करने की प्रार्थना की जिसमें उसके गर्भ से उग्र चरित्र न उत्पन्न हो, और यदि उसका ज्येष्ठ होना अनिवार्य ही हो तो वह उसकी पुत्रवधू के गर्भ से उत्पन्न हो। तदनुसार सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि और उसकी माता के गर्भ से विश्वामित्र का जन्म हुआ। इसी लिये जमदग्नि में भी बहुत से चरित्रोचित गुण थे। जमदग्नि ने राजा प्रसेनजित् की कन्या रेणुका से विवाह किया था और उसके गर्भ से उन्हें स्मन्वाद्, सुपेण, बहु, विश्ववहु और परशुराम नाम के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे। ऋचीक के चर के प्रभाव से उनमें से परशुराम में सभी चरित्रोचित गुण थे। जमदग्नि की मृत्यु के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि एक बार हृदय के राजा कार्तवीर्य उनके आश्रम से उनकी कामधेनु ले गए थे। इसपर परशुराम ने उनका पीछा करते उनके हजार हाथ काट डाले। जब कार्तवीर्य के पुत्रों को यह बात मालूम हुई तब उन लोगों ने जमदग्नि के आश्रम पर जाकर उन्हें मार डाला।

जमघर—संज्ञा पुं० [हिं० जमघट] (१) जमघट नामक हथियार।

(२) एक प्रकार का यादामी कामज।

जमन—संज्ञा पुं० दे० “यवन”।

जमना—क्रि० अ० [सं० यमन = जकड़ना । मि० अ० जमा] (१)

किसी द्रव पदार्थ का, ठंडक के कारण, समय पाकर थपका और किसी प्रकार गाढ़ा होना। किसी तरल पदार्थ का ठोस हो जाना। जैसे, पानी से बरफ जमना, दूध से दही जमना।

(२) किसी एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ पर दृढ़तापूर्वक बैठना। अशुद्धी तरह स्थित होना। जैसे, जमीन पर पैर जमना, धाँकी पर शासन जमना, बरतन पर मूल जमना, तिर पर पगड़ी या टोपी जमना।

मुहा०—टटि जमना = टटि का रिपर होकर किसी और लगना। नजर का बहुत देर तक किसी चीज़ पर टटूरना। मन में बात जमना = किसी बात का हृदय पर भली भाँति श्रंक्ति होना। किसी बात का मन पर पूरा पूरा प्रभाव पड़ना। रंग जमना = प्रभाव दृढ़ होना। पूरा अधिकार होना।

(३) एकत्र होना। इकट्ठा होना। जमा होना। जैसे, भीड़

जमना, तलदुट जमना। (४) अच्छा प्रहार होना। खूब चोट पड़ना। जैसे, लाठी जमना, थप्पड़ जमना। (५) हाथ से होनेवाले काम का पूरा पूरा अध्यास होना। जैसे, खिलाने में हाथ जमना। (६) बहुत से आदमियों के सामने होने वाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक होना। बहुत से आदमियों के सामने किसी काम का हतनी उत्तमता से होना कि सब पर उसका पूरा प्रभाव पड़े। जैसे, व्याख्यान जमना, गाना जमना, खेल जमना। (७) सर्व साधारण से संबंध रखनेवाले किसी काम का अच्छी तरह चलने योग्य हो जाना। जैसे, पाठशाला जमना, दूकान जमना। (८) घोड़े का बहुत ठुमक ठुमक कर चलना।

कि० अ० [सं० जम + ना (प्रत्य०)] उगना। उपजना। उपन्न होना। फूटना। जैसे, पौधा जमना, बाल जमना।

महा पुं० [हिं० जमना = उगना] वह घास जो पहली वर्षा के उपरान्त खेतों में उगती है।

संज्ञा स्त्री० दे० “यमुना”।

जमनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जमनिका] (१) जमनिका। परदा।

(२) काँई। उ०—हृदय जमनिका बहु विधि लागी।— तुलसी।

जमनौता—संज्ञा पुं० [अ० जमानत + औता (प्रत्य०)] वह रकम जो कोई मृत्यु अपनी जमानत करने के बदले में जमानत करनेवाले को दे।

विदोष—मुसलमान राज्यकाल में इस प्रकार की रकम देने की प्रथा प्रचलित थी। यह रकम प्रायः ५ प्रति मैकड़े के हिसाब से दी जाती है।

जमनौती—संज्ञा स्त्री० दे० “जमनौता”।

जमरुद्—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा लंबोतरा फल।

जमवट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमना] पहिण के आकार का लकड़ी का बंद गोल चक्र जो कुशाँ बनाने में भागाई में रखा जाता है और जिसके ऊपर कोठी की ओगाई होती है।

जमा—वि० [अ०] (१) जो एक स्थान पर संग्रह किया गया हो। एकत्र। इकट्ठा।

मुहा०—कुल जमा या जमा कुल = सब मिला कर। कुल। सब। जैसे, वह कुल जमा पाँच रुपय लेकर घर से चले थे। (२) जो जमानत के तौर पर या किसी खाते में रखा गया हो। जैसे, उनका सौ रुपया बैंक में जमा है, तुम्हारे चार धान हमारे यहाँ जमा हैं।

संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मूल धन। पूँजी। (२) धन। रुपया पैसा। जैसे, उसके पास बहुत ही जमा है।

धा०—जमागया।

मुहा०—जमा मारना = अनुचित रूप से किसी का धन ले लेना। वेदमानी से किसी का माल हज़म करना।

(२) भूमि-कर । मालगुजारी । लगान ।

श्री०—जमावंदी ।

(३) संकलन । जोड़ । (गणित) (४) वही आदि का वह भाग या कोष्ठ जिसमें आप हुप धन या माल आदि का विवरण दिया जाता है ।

श्री०—जमाखर्च ।

जमाई—संज्ञा पुं० [सं० जमागृ] दामाद । जौंवाई । जामाता ।

संज्ञा श्री० [हिं० जमाना] (१) जमाने की क्रिया । (२) जमाने का भाव ।

संज्ञा श्री० [हिं० जमाना] (१) जमाने की क्रिया । (२) जमाने का भाव । (३) जमाने की मजदूरी ।

जमाखर्च—संज्ञा पुं० [फा० जमा + खर्च] शाय और व्यय ।

जमाजमा—संज्ञा श्री० [हिं० जमा + मज + पूं०] धन-संपत्ति । नगरी और माल ।

जमात—संज्ञा श्री० [अ० जमात] (१) बहुत से मनुष्यों का समूह । आदिमियों का गरोह या जल्पा । जैसे, सायुधों की जमात । (२) कंचा । श्रेणी । दरना । जैसे, वह लड़का पंचवीं जमात में पढ़ता है ।

जमादार—संज्ञा पुं० [फा०] [संज्ञा जमादारी] (१) कोई सिपाहियों या पहरेदारों आदि का प्रधान । वह जिसकी अधीनता में कुछ सिपाही, पहरेदार या कुली आदि हों । (२) पुलिस का वह बड़ा सिपाही जिसकी अधीनता में कई और माध्याह्न सिपाही होते हैं । हेड कॉन्स्टेबल । (३) कोई सिपाही या पहरेदार ।

जमादारी—संज्ञा श्री० [अ०] (१) जमादार का पद । (२) जमादार का काम ।

जमानत—संज्ञा श्री० [अ०] वह जिम्मेदारी जो कोई मनुष्य किसी अरराही के शीक समय पर न्यायालय में उपस्थित होने, किसी कजदार के कज आदि करने अथवा हमी प्रकार के किसी और काम के लिये अपने ऊपर ले । वह जिम्मेदारी जो जमानती, कोई कागज, लिख कर अथवा कुछ रुपये जमा करके ली जाती है । जामिनी । जैसे, (क) वे ही रुपये की जमानत पर छूटे हैं । (ख) उन्होंने हमारी जमानत पर उनका सब माल छोड़ दिया ।

हिं० प्र०—करना ।—देना ।

श्री०—जमानतनामा ।

जमानतनामा—संज्ञा पुं० [अ० जमानत + फा० नामा] वह कागज जो जमानत करनेवाला जमानत के प्रमाण-स्वरूप लिख देता है ।

जमानती—संज्ञा पुं० [अ० जमानत + ई (भय०)] जमानत करनेवाला । वह जो जमानत करे । जामिन । जिम्मेदार । (क०) जमाना—हिं० सं० [हिं० जमाना का सं० रूप] (१) किसी द्रव

पदार्थ को ठंडा करके अथवा किसी और प्रकार से गाढ़ा करना । किसी तरल पदार्थ को ठोस बनाना । जैसे, चाशनी से बरफी जमाना । (२) किसी एक पदार्थ को दूसरे पर दृढ़तापूर्वक बैठाना । अच्छी तरह स्थित करना । जैसे, जमीन पर पैर जमाना ।

मुहा०—दृष्टि जमाना = दृष्टि को स्थिर करके किसी और लगाना । (मन में) शत जमाना = हृदय पर शत को भरी भांति श्रंक्ति करा देना । रंग जमाना = अधिकार दृढ़ करना । पूरा पूरा प्रभाव डालना ।

(३) प्रहार करना । चोट लगाना । जैसे, हथौड़ा जमाना, थपड़ जमाना । (४) हाथ से होनेवाले काम का अभ्यास करना । जैसे, अमी तो वे हाथ जमा रहे हैं । (५) बहुत से आदिमियों के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक करना । जैसे, व्याप्यन जमाना, खेल जमाना, गाना जमाना । (६) नव साधारण से सर्वप्रारंभ करनेवाले किसी काम को उत्तमतापूर्वक चलाने योग्य बनाना । जैसे, कारखाना जमाना, स्कूल जमाना । (७) थोड़े को इस प्रकार चलाना जिसमें वह ठमकू ठमक कर पैर रखे ।

हिं० सं० [हिं० जमाना = उत्पन्न होना] उत्पन्न करना । उपजाना । जैसे, पैधा जमाना ।

संज्ञा पुं० दे० “जमाना” ।

जमाना—संज्ञा पुं० [फा०] (१) समय । काल । वक्त । (२) बहुत अधिक समय । मुहत्त । जैसे, उन्हें यहाँ थापू जमाना हुआ । (३) प्रताप या सीमाग्य का समय । पृकपाल के दिन । जैसे, शत्रुकल थापू का जमाना है । (४) दुनिया । संसार । जगत् । जैसे, उस जमाना उसे गाली देता है ।

मुहा०—जमाना देखना = बहुत अनुभव प्राप्त करना । तज्रया हासिल करना । जैसे, थापू मुहूर्त हैं, जमाना देखे हुए हैं ।

श्री०—जमानासाज । जमानासाज़ी ।

जमानासाज—वि० [फा०] जो अपने स्वार्थ के लिये समय समय पर अपना व्यवहार बदलता रहता है । अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखनेवाला ।

जमानासाज़ी—संज्ञा श्री० [फा०] अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखना । अपने स्वार्थ के लिये समयानुसार अनुचित रूप से अपना व्यवहार बदलना ।

जमावंदी—संज्ञा श्री० [फा०] पटवारी का एक कागज जिसमें असामियों के नाम और उनसे मिलनेवाले लगान की रकमें लिखी जाती हैं ।

जमामार—वि० [हिं० जमा + मरना] अनुचित रूप से दूसरों का धन दबा रखने या ले लेनेवाला ।

जमालगोटा—संज्ञा पुं० [सं० अयकाज = जमाल + गोटा] एक पाँप का शीज जो अत्यंत रवेक होता है । यह पाँपा करोटन की

जानि का है और समुद्र से ३०० फुट की ऊँचाई तक परती भूमि में होता है। यह चौथा दूसरे वर्ष फलने लगता है। इसका फल छोटी हलयाची के बराबर होता है जिसके भीतर सफेद गरी होती है। गरी में तेल का थंथा बहुत होता है और उसे पाने से बहुत दस्त आते हैं। गरी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो बहुत सीक्ष्य होता है और जिसके लगने से यदन पर फफोला पड़ जाता है। तेल गाढ़ा और साफ होता है और औषध के काम में आता है। इसकी खली चाह के छेत की मिट्टी में मिलाने से पीपों में दीमक और दूसरे कीड़े नहीं लगते। इसके पेड़ कहये के पेड़ के पास छाया के लिये भी लगाए जाते हैं। जयपाल।
दंतीफल।

जमाव-संज्ञा स्त्री० [हि० जमाना] (१) जमाने का भाव। (२) जमाने का भाव।

जमावट-संज्ञा स्त्री० [हि० जमाना] जमाने का भाव।

जमावड़ा-संज्ञा पुं० [हि० जमाना = एकत्र होना] बहुत से लोगों का समूह। भीड़।

जमीकंद-संज्ञा पुं० [फ्रा० जमीन + कंद] सूरन। झोल।

जमींदार-संज्ञा पुं० [फ्रा०] जमीन का मालिक। भूमि का स्वामी।

विदोष—मुसलमानों के राजवकाल में जो मनुष्य किसी छोटे प्रांत, जिले या कुछ गांवों का भूमिकर उगाहने और सरकारी खजाने में जमा करने के लिये नियुक्त होता था वह जमींदार कहलाता था और उसे उगाहे हुए कर का दसवां भाग पुरस्कार स्वरूप दिया जाता था। पर जब शंत में मुसलमान शासक कमजोर हो गए तब ये जमींदार अपने अपने प्रांतों के स्वतंत्र रूप से प्रायः मालिक बन गए। शंकरजी राज्य में जमींदार लोग अपनी अपनी भूमि के पूरे मालिक समझे जाते हैं और जमींदारी पैतृक होती है। ये सरकार को कुछ निश्चित धारिण कर देते हैं और अपनी जमींदारी का संपत्ति की भांति जिस प्रकार चाहें, उपयोग कर सकते हैं। काश्तकारों आदि को, कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार वे अपनी जमीन स्वयं ही जोतने बोनने आदि के लिये देते और उनसे लगान आदि लेते हैं।

जमींदाराना-संज्ञा पुं० दे० "जमींदारी"।

जमींदारी-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) जमींदार की वह जमीन जिसका वह मालिक हो। (२) जमींदार होने की दशा वा श्रवस्था। (३) जमींदार का हक वा स्वत्व।

जमींदार-वि० [फ्रा०] जो गिरा, तोड़ या उखाड़ कर जमीन के बराबर कर दिया गया हो।

जमीन-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) पृथ्वी। (ग्रह)। जैसे, जमीन बराबर सूरज के चारों तरफ घूमती है। (२) पृथ्वी का वह

ऊपरी ठोस भाग जो मिट्टी का है और जिसपर हम लोग रहते हैं। भूमि। परती।

मुहा०—जमीन आसमान पक करना = किसी काम के लिये बहुत अधिक परिश्रम या उद्योग करना। बहुत बढ़े बढ़े उभाव करना।
जमीन आसमान का फरक = बहुत अधिक अंतर। बहुत बड़ा फरक। आकारा पातन का अंतर। जमीन आसमान के कुलाये मिलाना = बहुत डोंग हांकना। बहुत शोली करना।
जमीन का पैरों तले से निकल जाना = उलट में आ जाना। शेष हवाय जाता रहना। जमीन चूमने लगना = इस प्रकार गिर पड़ना कि जिसमें जमीन के साथ धुँह लग जाय। जैसे, जरा से धके से वह जमीन चूमने लगा। जमीन देखना = (१) गिर पड़ना। पटका जाना। (२) नीचा देखना। जमीन दिखाना = (१) गिराना। पटकना। जैसे, एक पहलवान का दूसरे पहलवान को जमीन दिखाना। (२) नीचा दिखाना। जमीन पकड़ना = जम कर बैठना। जमीन पर चढ़ना = (१) धोड़े के तेज दौड़ने का अभ्यस्त होना। (२) किसी कार्य का अभ्यस्त होना। जमीन पर पैर न रखना = बहुत हलराना। बहुत श्रमिमान करना। जमीन पर पैर न पड़ना = बहुत श्रमिमान होना।

(३) सतह, विशेष कर कपड़े, कागज या तख्ते आदि की वह सतह जिस पर किसी तरह के बेल घूटे आदि बने हैं। जैसे, काली जमीन पर हरी घूटी की कोई छीट मिले तो जेले शाना।

(४) वह सामग्री जिसका व्यवहार किसी द्रव्य के प्रसृत करने में आधार रूप से किया जाय। जैसे, अंतर खींचने में चंदन की जमीन, कुलेख में मिट्टी के तेल की जमीन। (५) किसी कार्य के लिये पहले से निश्चय की हुई प्रणाली। पेशबंदी। भूमिका। आयाजन।

मुदा०—जमीन बाँचना = किसी कार्य के लिये पहले से प्रणाली निश्चित करना।

जमीना-संज्ञा पुं० [अ०] मोड़पत्र। पूरक। अतिरिक्तपत्र।

जमुआरा-संज्ञा पुं० दे० "जामुन"।

जमुआरा-संज्ञा पुं० [हि० जमुआ + आर (अर्थ०)] जामुन का जंगल।

जमुकनारा-क्रि० अ० [प०] पास पास होना। सटना उ०—जब जमुकयो कछु पृथु तनय, तब तरंग तहँ पैदि। भयो सुरंदर अलख वर, सकयो न सम्मुख दौड़ि।—रघुराज।

जमुना-संज्ञा स्त्री० दे० "यमुना"।

जमुनीयाँ-संज्ञा पुं० [हि० जामुन] जामुन का रंग। जामुनी।

वि० जामुन के रंग का। जमुनी रंग का।

जमुनका-संज्ञा पुं० [१० अक्षर] कुलाचार।

जमुटी-संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जंभूर] (१) चिमटी के आकार का माल-बंदों का एक आजार जिससे ये घोड़ों का नाखून काटते हैं। (२) चिमटी। (३) सेंडर्स।

जमुद-संज्ञा पु० [?] पञ्चा नामक रत्न ।
 जमुद-वि० [फ्रा० जमुदीन] जमुद के रंग का हरा । जो मोर
 के गर्दन की तरह नीलापन लिए हुए हरे रंग का हो ।
 सं० पु० जमुद का रंग । नीलापन लिए हुए हरा रंग ।
 जमुदी-संज्ञा पु० [हि० जमुषा] जामुनी का रंग ।
 जमुदाना-क्रि० प्र० दे० "जम्हाना" ।

जमुदका-संज्ञा पु० [फ्रा० जमुक] एक प्रकार की छोटी तोप जो
 घोड़े या उँट पर रहती है । उ०—सय के घागे सुतर सवार
 क़रार सिंगार बनाये । धरे जमुदक तिन पीठन पर सहित
 निस्तान मुहाये ।—नयुराज ।

जमुदा-संज्ञा पु० दे० "जमुद" ।

जमोदा-संज्ञा पु० [?] (१) जमोदाने धर्मात् स्वीकार कराने
 की क्रिया । संखे । (२) किमी तीसरे के द्वारा किमी दूसरे
 की बात का समर्थन । सामने का निश्चय । तसदीक । (३) देहाती
 लेन देन की एक रीति जिसके अनुसार कोई जमींदार किमी
 महाजन से श्राव्य लेने के समय उसके चुकाने का भार उस
 महाजन के सामने धरने कारतकारों पर छोड़ देता और
 कारतकारों से लगान के मद्दे उसका चुकाना स्वीकार करा
 देता है ।

धा०—सदी जमोदा ।

जमोदादर-संज्ञा पु० [प्र० जमा + सं० देग] यह ध्यक जो
 जमोदा की रीति से जमोदा को ख़या देता है ।

जमोदाना-क्रि० सं० [प्र० जमा + देग] (१) हिमाव किताब की
 जांच करना । (२) ध्यात्र को मूल धन में जोड़ना । (३) स्वयं
 किसी उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिये किमी दूसरे को
 उसका भार सौंपना और उसने उस उत्तरदायित्व की स्वीकृति
 कराना । संखेना । (४) किमी को किसी दूसरे के पास
 ले जाकर उससे अपनी बात का समर्थन कराना । तस-
 दीक कराना ।

जमोदाना-क्रि० सं० [हि० जमोदाना] जमोदाने का काम किमी
 दूसरे से कराना । संखेवाना ।

जम्मु-संज्ञा पु० दे० "जम्प" ।

जम्हारी-संज्ञा स्त्री० दे० "जम्हारी" ।

जम्हाना-क्रि० प्र० दे० "जम्हाना" ।

जयंत-वि० [सं०] [श्री० जयन्ती] (१) विजयी । (२) बहुरू-
 पिया । अनेक रूप धारण करनेवाला ।

संज्ञा पु० [सं०] (१) एक रत्न का नाम । (२) इंद्र के पुत्र
 बरेद का नाम । (३) संगीत में भ्रुक जाति के एक ताल
 का नाम । (४) स्कंद । कार्तिकेय । (५) धर्म के एक पुत्र
 का नाम । (६) शक्र के पिता का नाम । (७) भीमसेन का
 यम समय का यनावटी नाम जय के विराट के यहाँ अज्ञात-
 पास करते थे । (८) दशरथ के एक मंत्री का नाम । (९)

एक पर्वत का नाम । अयंतिया की पक्षी । (१०) जेनों के
 अनुत्तर देवों का एक भेद । (११) फलित ज्योतिष में यात्रा
 का एक योग जो उस समय पड़ता है जब कि चंद्रमा उच्च
 होकर यात्री की राशि से ग्यारहवें स्थान में पहुँच जाता
 है । इसका विचार बहुत्था युवादि के लिये यात्रा करने के
 समय होता है, क्योंकि इस योग का फल शत्रुपक्ष का
 नारा है ।

जयंतपुर-संज्ञा पु० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जिसे
 निमिराम ने स्थापित किया था और जो गौतम श्रद्धि के
 श्राध्रम के निकट था ।

जयंतिका-संज्ञा स्त्री० दे० "जयन्ती" ।

जयन्ती-वि० स्त्री० [सं०] विजय करनेवाली । विजयिनी । (१)

धमा । पताका । (२) हलदी । (३) दुर्गा का एक नाम ।

(४) पार्वती का एक नाम । (५) किसी महात्मा की जन्म-

तिथि पर होनेवाला उत्सव । वर्षगांठ का उत्सव । (६) एक

यज्ञ पेड़ जिसे जैत या जैता भी कहते हैं । इसकी डालियाँ

बहुत पतली और पतियाँ श्रगस्त की पतियों की तरह की, पर

उमले कुछ छोटी होती हैं । फूल शरद की तरह पीले पीले

होते हैं । फूलों के भङ्ग जाने पर बित्ते सवा विचो लंबी पतली

पतियाँ लगती हैं । फलियों के बीज उत्तेजक और संकोचक

होते हैं और दस्त की बीमारियों में श्राग्ध के रूप में काम में

आते हैं । छात्र का मरहम भी इनसे बनता है । पतियाँ फोड़े

वा सूजन पर बांधी जाती हैं और गिलहियों के गलाने का काम

करती हैं । जड़ पीस कर विषट्ट के काठने पर लगाई जाती है ।

यह जंगली भी होता है और लोग इसे लगाते भी हैं ।

बीज जेठ धसाड़ में बोया जाता है । इसकी एक छोटी

जाति होती है जिसे चक्रभेद कहते हैं । इसके रेखे से

जाल बनता है । बंगाल में इसे खोग धर्मेल, मई में घोते हैं

और सितंबर श्राफ़र में काठते हैं । पाँधा सन की तरह

पानी में सड़ाया जाता है । पान के भीठों पर भी यह पेड़

लगाया जाता है । (७) वैजंती का पाँधा । (८) ज्योतिष

का एक योग । जब श्राव्य मास के कृष्णपक्ष की श्रद्धमी की

श्राधी रात के प्रथम और सोप दंड में रोहिणी नक्षत्र पड़े तब

यह योग होता है । (९) जन्माष्टमी । (१०) जी के छोटे

पाँधे जिन्हें विजयादशमी के दिन ब्राह्मण लोग यज्ञमानों को

मंगल-द्रव्य के रूप में भेंट करते हैं । जई । (११) शरणी

का वृष्ट ।

जय-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युद्ध, विवाह आदि में विपक्षियों का
 पराभव । विरोधियों को दमन करके स्वयं या मइव स्थापन ।
 जीत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—जय मनाना = विजय की कामना करना । श्रद्धि

चाहना । जय हो = आशीर्वाद जो ब्राह्मण लोग प्रणाम के उतर में देते हैं ।

चिद्रोप—आशीर्वाद के अतिरिक्त इस शब्द का प्रयोग देवताओं वा महात्मयों की अभिवन्दना सूचित करने के लिये भी होता है जिसमें कुछ याचना का भाव मिला रहता है । जैसे, जय काली की, रामचंद्रजी की जय । ३०—जय जय जगजनि देवि, सुर नर मुनि असुर संख्य मुक्तिमुक्तिदायिनि भय-हरिण कालिका ।—तुलसी ।

घो०—जययोगाल । जय धोकृष्ण । जयराम, आदि (अभि-वादन वचन) ।

(२) ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति के प्रौष्ठपद नामक छठे युग का तीसरा वर्ष । फलित ज्योतिष के अनुसार इस वर्ष में बहुत पानी बरसता है और चरित्र, वैश्य आदि के बहुत पीड़ा होती है । (३) विष्णु के एक पापंद का नाम । पुराणों में लिखा है कि समकालिक न भगवान् के पास जाने से रोकने पर क्रोध करके इसे और इसके भौंदे विजय को शाप दिया था । उसी से जय को संसार में तीन बार हिरण्यक, रावण और शिशुपाल का श्वेतार तथा विजय को हिरण्यकरिपु, कुंभकर्ण और कंस का जन्म ग्रहण करना पड़ा था । (४) महाभारत वा भारतमंथ का नाम । (५) जयती वा जैत के पेड़ का नाम । (६) लाम । (७) सुविष्टि का उस समय का बना-वटी नाम जय वे विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे । (८) अयन । (९) ययीकरण । (१०) एक नाग का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है । (११) भागवत के अनुसार दसवें मन्वन्तर के एक ऋषि का नाम । (१२) विधामित्र के एक पुत्र का नाम । (१३) भूतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (१४) रामा संजय के एक पुत्र का नाम । (१५) उर्वरी के गर्भ से उत्पन्न पुरुवन्तु के एक पुत्र का नाम । (१६) वह मकान जिसका दरवाजा दक्षिण की तरफ हो । (१७) सूर्य । (१८) अरणी वा अग्निमंथ नाम का पेड़ । (१९) इंद्र । (२०) इंद्र का पुत्र जयस ।

चिद्रोप—पुराणों आदि में और भी बहुत से “जय” नामक पुरुषों के वर्णन आए हैं ।

वि० विजयी । जीतनेवाला । (समास में)

जयकंकण—संज्ञा पु० [सं०] वह कंकण जो प्राचीन काल में वीर पुरुषों को किसी युद्ध आदि के विजय करने की दशा में आदरार्थ प्रदान किया जाता था ।

जयकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] “जैपाह” नामक ढुंढ का एक नाम ।

जयकोलाहल—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल का जूया खेलने का एक प्रकार का पासा ।

जयज्ञाता—संज्ञा पु० [हि० जय = लाम + ज्ञाता] बनिशों की एक

यही जिसमें वे नित्य अपना मुनाफा वा लाभ आदि लिखा करते हैं । (वच०)

जयजयवंती—संज्ञा स्त्री० [हि० जय + जयवंती] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी जो भूलश्री, चिन्तावल और सोरठ के योग से बनती है । इसमें सब स्वर शुद्ध लगते हैं और यह रात को ६ ढुंढ से १० ढुंढ तक गाई जाती है पर वर्षा ऋतु में लोग इसे सभी समय गाते हैं । कुछ लोग इसे मेघराज की भाय्या मानते हैं और कुछ लोग मात्रकोरा की सहचरी भी बताते हैं ।

जयजीवक—संज्ञा पु० [हि० जय + जी] एक प्रकार का अभिवादन जिसका अर्थ है जय हो और जिवा । इसका प्रयोग प्रणाम आदि के समान होता था । ३०—कहि जयजीव सीस तिन्ह नामे । भूप सुमंगल वचन सुनाये ।—तुलसी ।

जयढक—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा ढोल ।

जयताल—संज्ञा पु० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक । यह सात ताला ताल है और इसमें क्रम से एक लघु, एक गुरु, दो लघु, दो गुरु और एक प्लुत होता है । इसका खेल यह है,—ताहं । तपरि धरियाडनाहं । ताहं । तत० था० तथा तापरि धरियाँ ड ।

जयति, जयतु—संज्ञा पु० [सं० जयेति] एक संकर राग जो गौरी और ललित के मेल से बनता है । कोई कोई इसे पुरिया और कल्याण के योग से बना मानते हैं । दे० “जयेत” ।

जयतिश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो दीपक राग की भाय्या मानी जाती है ।

जयती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयेति] श्री राग की एक रागिनी । यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । कोई कोई इसे टोड़ी, विभास और चंद्राना के योग से बनी हुई बताते हैं । कितने लोग इसे पुरिया, सामंत और ललित के मेल से बनी मानते हैं । दे० “जयेती” ।

जयनूकल्याण—संज्ञा पु० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण और जयतिश्री को मिला कर बनता है । यह रात के पहले पहर में गाया जाता है ।

जयदुर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार दुर्गा की एक मूर्ति ।

जयदेव—संज्ञा पु० [सं०] संस्कृत के प्रसिद्ध काव्य गीतगोविंद के रचयिता प्रसिद्ध वैष्णव कवि जिनका जन्म भ्राम से प्रायः भाद नौ सौ वर्ष पहले बंगाल के वर्तमान् वीरभूम जिले के अंतर्गत केंदु बिल्व नामक ग्राम में हुआ था । ऐसा प्रसिद्ध है कि वे गौड़ के महाराज लक्ष्मणसेन की राजसभा में रहते थे । इनका वर्णन भक्तमाल में भी आया है ।

जयद्रथ—संज्ञा पु० [सं०] महाभारत के अनुसार सिंतु-सौरी वर या सौराष्ट्र का राजा जो दुर्योधन का बहनौद था । इसने एक

बार जंगल में द्रौपदी को अश्वेली पा कर हर ले जाने का प्रयत्न किया था। उस समय भीम और अर्जुन ने इसकी बहुत बुद्धि की थी। यह महाभारत के युद्ध में कड़ा था और अर्जुन के हाथों से मारा गया था।

जयवन्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तालजंघा के पिता का नाम जो अश्वेली के राजा कास्यव्यूहों का पुत्र था। (२) जय-पताका। अर्पती।

जयवन्त-संज्ञा पुं० [सं०] अय्य। उ०—भरत भय्य तुम अग्नयः अय्यः। कश्चिद् भयः प्रेममग्नः सुनिभयः।—तुलसी। जयनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की कन्या।

जयपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पत्र जो पराजित पुरुष अपने पराजय के प्रमाण में विजयी को लिख देता है। विजय पत्र। (२) वह राजा जो प्राचीन काल में पराजित पुरुषों के बीच विवाद के निपटारे के लिये लिखी जाय। वह कागज़ जिस पर राजा की ओर से किसी विवाद का फैसला लिखा हो। प्राचीन काल में ऐसे पत्र पर बादी और प्रतिवादी के कथन, प्रमाण और धर्मशास्त्र तथा राजशास्त्र के समर्थों के मत लिखे हुए होते थे और उस पर राजा का हस्ताक्षर और मोहर होती थी।

जयपथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जायित्री।

जयपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जमाजगोटा। (२) विष्णु। (३) राजा।

जयपुत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का जूना खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा विराट् के भाई का नाम। (२) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक जिसमें एक लघु, एक गुरु और चार फिर एक लघु होता है। यह तिताल ताल है और इसका षोडश यह है—ताहं। पिपिकिटि ताहंङ्गाण थों।

जयमंगल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह हथी जिस पर राजा विजय करने के उपरांत सवार होकर निकले। (२) राजा के सवार होने योग्य हाथी। (३) ताल के साठ भेदों में एक। यह अंगार और भीर रस में बनाया जाता है। यह चौताला ताल है और इसका षोडश यह है—तकि तकि। दतिकि। थिमि थिमि। थों।

जयमहार-संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

जयमाल-संज्ञा स्त्री० [सं०] जयमाला। (१) वह माला जो विजयी को विजय पाने पर पहनाई जाय। (२) वह माला जिससे स्वर्ण-धर के समय कन्या अपने बरे हुए पुरुष के गले में डालती है। उ०—गावदिं धृवि श्वशोकं सहेली। सिय जयमाल राम हर मेली।—तुलसी।

जययज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ।

जयरात-संज्ञा पुं० [सं०] कर्बिग देव के एक राजकुमार का नाम

जो औरवों की ओर से महाभारत के युद्ध में लड़ा था और भीम के हाथ से मारा गया था।

जयलेख-संज्ञा पुं० [सं०] जयपत्र।

जयवाहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्राक्षी। राची।

जयशाल-संज्ञा पुं० यादव वंश के प्रसिद्ध राजा जिन्होंने जैसलमेर नगर बसाया और वहाँ का किला बनवाया था। अपने पिता के सप से बड़े पुत्र होने पर भी पहले इन्होंने राज-मिहानस नहीं मिला था। पर अपने छोटे भाई के मर जाने पर इन्होंने शहाबुद्दीन गोरी से सहायता ले कर अपने भतीजे भोजदेव को मारा और राज्यधिकार प्राप्त किया था। मिहानस पर बैठने के बाद संवत् १२१२ में इन्होंने जैसलमेर नगर बसाया और किला बनवाया था।

जयश्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विजयलक्ष्मी। विजय। (२) ताल के मुख्य साठ भेदों में से एक। (३) देवकार राग से मिलती जुलती संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो संध्या के समय गाई जाती है। कुछ लोग इसे देवकार राग की रागिनी मानते हैं।

जयस्वर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] वह रत्न जो विजयी राजा किसी देश को विजय करने के उपरांत, विजय के स्मारकस्वरूप बनाता है।

जया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हुगा का एक नाम। (२) पार्वती का एक नाम। (३) हरी दूध। (४) धरणी नामक वृक्ष। (५) जयंती या जैत का पेड़। (६) इरीतकी। हड़। (७) हुगा की एक सहचरी का नाम। (८) पताका। ध्वजा। (९) ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दोनों पक्षों की तृतीया, अष्टमी और प्रयोदशी तिथियाँ। (१०) सोलह मातृकाओं में से एक। (११) माय-शुक्ल एकादशी। (१२) एक प्राचीन वाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे। (१३) जया पुष्प। गुड़हल का फूल। धड़हल। (१४) माँग। (१५) शमी-वृक्ष। डैंकर।

जयादित्य-संज्ञा पुं० [सं०] काशमीर के एक प्राचीन राजा का नाम जो काशिकावृत्ति के कर्ता थे।

जयाहृद्य-संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती और हड़।

जयानीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुपद राजा के एक पुत्र का नाम। (२) राजा विराट् के एक भाई का नाम।

जयापीड-संज्ञा पुं० [सं०] काशमीर के एक प्रसिद्ध राजा जो इसकी आठवीं शताब्दी में हुए थे। ये एक धार द्विविजय करने के लिये निकले थे, पर रास्ते में सैनिक इन्हें घेर कर भाग गए। इस पर ये प्रयाग चले गए थे जहाँ इन्होंने इ०३६६ छोड़े दान किए थे।

जयावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कालिकेय की एक मातृका का नाम। (२) एक संहर रागिनी जो जयलक्ष्मी, विखायता और सरस्वती के योग से बनती है।

जयावहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रदंती का वृष ।
 जयाभया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जरड़ी घात ।
 जयाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] राजा विराट के एक भाई का नाम ।
 जयाहा—संज्ञा स्त्री० दे० "जयावहा" ।
 जयिष्णु—वि० [सं०] जयरील । जो जीतता हो ।
 जयी—वि० [सं०] जयिष्णु । जयरील ।
 संज्ञा स्त्री० दे० "जई" ।
 जयेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं०] काशमीर के राजा विजय के पुत्र का नाम जो भ्राजानु-वाहु थे ।
 जयेती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो गौरी और जयतन्त्री के मेल से उत्पन्न होती है । यह सामंत, ललित और प्रिया अथवा टोड़ी, सहगना और विभास के योग से भी बन सकती है ।
 जयेत्—संज्ञा पुं० [सं०] पाइव जाति के एक राग का नाम जो प्रिया और कल्याण के योग से बनता है । इसमें पंचम स्वर नहीं लगता ।
 जयेत् गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो जयेत् और गौरी के मेल से बनती है ।
 जय्य—वि० [सं०] जय करने योग्य । जो जीतने योग्य हो ।
 जर^१—संज्ञा पुं० [सं०] जर । शूद्रावस्था ।
 संज्ञा पुं० [सं०] (१) माथ बा जीर्ण होने की क्रिया । (२) जैन दर्शन के अनुसार वह कर्म जिससे पाप पुण्य कलुष राग द्वेषादि सब शुभाशुभ कर्मों का लय होता है ।
 † संज्ञा पुं० [हिं०] जर । दे० "जर" ।
 संज्ञा पुं० [दे०] एक तरह का समुद्री सेवार । कचरा । (लश०)
 † संज्ञा स्त्री० दे० "जर" ।
 जर—संज्ञा पुं० [फा०] (१) सोपा । स्वर्ण ।
 धौ—जरबद्ध । जरबाद्ध । जरदाढ़ । जरदाड़ी ।
 (२) धन । दौलत । शय्या ।
 जरई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जर । (१) धान आदि के वे धीज जिनमें शंकर निकलते हैं ।
 चिन्नेप—धान को दो दिन तक दिन में दो बार पानी से भिगोते हैं; फिर तीसरे दिन उसे पयाल के नीचे एक ऊपर से पत्थरों से दबा देते हैं जिसे मारना कहते हैं । फिर एक दिन तक उसे वही तरह पड़ा रहने देते हैं, दूसरे वा तीसरे दिन फिर खोलते हैं । उस समय तक धीजों में से सफेद सफेद शंकर निकल आते हैं । फिर उन्हें फैला देते हैं और कभी कभी सुखाते भी हैं । ऐसे धीजों को जरई और इस क्रिया को 'जरई करना' कहते हैं । यह जरई खेत में बोने के काम आती है और शीघ्र जमती है । कभी कभी धान की मुजारी भी बंद पानी में डाल दी जाती है और दो तीन दिन तक

वैसे ही पकी रहती है; चौथे दिन उसे खोलते हैं । उस समय वे धीज जरई हो जाते हैं । कभी कभी इस बात की परीक्षा के लिये कि धीज जम गया या नहीं मित्र मित्र धसों की मित्र मित्र रीति से जरई की जाती है ।

(२) दे० "जई"

जरकटी—संज्ञा पुं० [दे०] एक शिकारी पक्षी । उ०—जहाँ यान बाँसे कुड़ी यहरी लगर लेने, टोने जरकटी हाँ रावान सान पार है ।—रघुराज ।

जरकस, जरकसी—वि० [फा०] जरकस] जिसपर सोने के तार आदि लगे हों । उ०—(क) छोट्टिदे धनुहियाँ पनहियाँ पान छोटी छोट्टिदे फुठोठी फटि छोट्टिदे तरकसी । लसत भँपुली भीनी दामिनी की छुपि छुनी सु'दर यदन सिर पगिया जरकसी ।—तुलसी । (ख) धय ककि ककि ककि ककि मुकी उमकि मरोले पेन । कसे कंसुकी जरकसी लसी यमी ही नैन ।—शु० सत ।

जरखेजु—वि० [फा०] बगजाक । जिसमें खूब धस पैदा होता है । उर्वरा (जमीन का विशेषण) ।

जरगह, जरगा—संज्ञा स्त्री० [फा०] जर + गियाह] एक घास जिसे चौपाय बड़े स्वाद से खाते हैं । यह घास राजपूताने आदि में बहुत बोई जाती है । किसान इसे खेतों में कियारियाँ बना कर बोते हैं और छठे सातवें दिन पानी देते हैं । पंद्रह बीस दिन में यह काटने लायक हो जाती है । एक बार बोने पर कई महीनों तक यह घास पंद्रहवें दिन काटी जा सकती है । यह पाने की तरह दी जाती है और बिल घोड़े इसके खाने से जड़दी नैवार हो जाते हैं ।

जरज—संज्ञा पुं० [दे०] एक कंद जिसकी तरकारी बनाई जाती है । यह दो प्रकार का होता है । एक की जड़ गाजर वा मुली की तरह होती है और दूसरे की जड़ शलजम की तरह होती है ।

जरजर—वि० दे० "जरजर" ।

जरछार—वि० [हिं०] जरा + चार] (१) भस्मीभूत । (२) नष्ट ।
 जरठ—वि० [सं०] (१) कर्करा । कठिन । (२) दृढ़ । बुद्ध्या ।
 (३) जीर्ण । पुराना । (४) पाँहु । पीलापन लिए सफेद रंग का ।
 संज्ञा पुं० बुद्ध्याप ।

जरडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास का नाम जिसे खाने से गाय भैंस अधिक दूध देती हैं । वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, दाह नाशक, रक्तशोधक और रुचिकर माना है ।

पय्या—सामंतिका । सुनाता । जयाश्रया ।

जरख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाँग । (२) जीरा । (३) काला नमक । सौबल । (४) फासमर्द । कलौजा । (५) जरा । बुद्ध्या । (६) इस प्रकार के प्रयोगों में से एक जिसमें पश्चिम से मोक्ष होना प्रार्थन होता है ।

जुरजुम्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सावू का वृक्ष । (२) सागौन का पेड़ ।

जुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला जीरा । (२) वृद्धापस्था ।

जुरापा । (३) स्तुति । प्रशंसा । (४) मोक्ष । मुक्ति ।

जुरता-वर्ता-संज्ञा पुं० दे० "जलना" के श्रंतगत । "जजता वजता" ।

जुरता-संज्ञा पुं० [फ्रा० जर + तार] सेने वा चाँदी आदि का तार । जरी । उ०—बीच जुरतारन की हीरन की हार की जगमगी गेतिन की मोतिन की मलरौं ।—देव ।

जुरतारा-वि० [हि० जुरतार] [स्त्री० जुरतारी] जिसमें सुनहले या हथले तार लगे हों । जरी के काम का ।

जुरतारा-वि० [हि० जजता] जो दूसरों को देख कर बहुत जलता या बुरा मानता हो । ईर्ष्या करनेवाला ।

जुरतुद-संज्ञा पुं० दे० "अरुच्यम्" ।

जुरत-वि० [सं०] [स्त्री० जुरती] (१) बुद्धा । वृद्ध । (२) पुराना । बहुत दिनों का ।

जुरकर-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम ।

जुरकार-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिन्होंने वासुकि नाग की मनसा नाम की कन्या से व्याह किया था । शालिक मुनि इनके पुत्र थे ।

जुरा स्त्री० [सं०] जुरकार ऋषि की स्त्री जो वासुकि नाग की कन्या थी । इसका नाम मनसा भी था ।

जुर-वि० [फ्रा० जुर] पीला । जड़ । पीत ।

जुरदक-संज्ञा पुं० [फ्रा०] जुरदा या पीलू नाम का पत्थी ।

जुरद-वि० [सं०] (१) वृद्ध । बुद्धा (२) दीर्घजीवी । बहुत दिनों तक जीनेवाला ।

जुरा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धा । वृद्धापस्था । (२) दीर्घ जीवन ।

जुरदा-संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) एक प्रकार का व्यंजन जिसे प्रायः मुसलमान लोग खाते हैं । इसके बनाने की विधि यह है कि चावल में पहले हलदी डाल कर उसे पानी में उबालते हैं; फिर उसमें से पानी पसा लेते हैं और उसे दूसरे बर्तन में धी डाल कर शंकर के शयते में पकाते हैं । पीछे से इसमें लौंग हलायची आदि सुगंधित द्रव्य और मसाले छोड़ दिए जाते हैं । (२) एक विशेष क्रिया से बनाने हुए खाने की सुगंधित खुरमी जो प्रायः काले रंग की होती है । (३) पीले रंग का फोड़ा । (४) पीले रंग की एक प्रकार की छुई ।

जुरा पुं० [सं० जुरदक] एक प्रकार का पत्थी जिसकी कन-पत्थी पीली, पीठ खाकी, पेट सफेद और चोंच तथा पैर पीले होने हैं । इसे पीलू भी कहते हैं ।

जुरदाल-संज्ञा पुं० [फ्रा०] ख्याती नाम का मेवा ।

जुरदो-संज्ञा पुं० दे० "ख्याती" ।

जुरदी-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) पीलाई । पीलापन ।

मुहा०—जुरदी छाना = किसी मनुष्य के शरीर का रंग बहुत दुर्बलता, लून की कमी या किसी दुर्घटना आदि के कारण पीला हो जाना ।

(२) श्रेय के भीतर का वह चेष जो पीले रंग का होता है ।

जुरदुद-संज्ञा पुं० [फ्रा०] मि० सं० जुरद-संज्ञा = दीर्घजीवी, वृद्ध फारस देश के प्राचीन पारसी धर्म का प्रतिष्ठाता एक आचार्य जो ईसा से ६ सौ वर्ष पूर्व हुआ था । इसने मृत्यु और अमृत की पूजा की प्रथा चलाई थी और पारसियों का प्रसिद्ध धर्म ग्रंथ जं-अवस्था बनाया था । शाहनामे में लिखा है कि यह खुरानियों के हाथ से मारा गया था ।

जुरदोज-संज्ञा पुं० [फ्रा०] [संज्ञा जुरदोजी] वह मनुष्य जो कपड़ों पर कलावत् और सलमे सितारे आदि का काम करता हो । जुरदोजी का काम करनेवाला ।

जुरदोजी-संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक प्रकार की दस्तकारी जो कपड़ों पर सुनहले कलावत् या सलमे सितारे आदि से की जाती है ।

जुरद्वच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्धा पैल । (२) घृहसंहिता के अनुसार एक वीथी जिसमें विराहा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं । यह चंद्रमा की वीथी है ।

वि० जीर्ण । प्राचीन ।

जुरद्विप-संज्ञा पुं० [सं०] जल ।

जुरन-संज्ञा स्त्री० दे० "जलना" ।

जुरनल-संज्ञा पुं० [अ०] वह सामयिक पत्र या पुस्तक जिसमें क्रम से किसी प्रकार की घटनाएँ आदि लिखी हों । सामयिक पत्र ।

संज्ञा पुं० दे० "जुरनल" ।

जुरना-वि० अ० दे० "जलना" ।

जुरनि-संज्ञा स्त्री० [हि० जुरना = जजना] (१) जलने की पीड़ा । जलन । (२) व्यथा । पीड़ा । उ०—(क) ताते हैं देत न दूखन तोहूँ । राम विरोधी उर कठोर ते प्रगट क्रियो है विधि मोहूँ । सुंदर सुखद सुसलील सुधानिधि जुरनि जाय जेहि जोए । विष वायुवी बंधु कहियत विषु नातो मिटत न धोए ।—तुलसी । (ख) आपनि दारन दीनता कहई सबहि सिर माहू । देखे विनु खुनाय पद जिय की जुरनि न जाय ।—तुलसी । (ग) सुनु रूप जासु विमुल पदितारहौ । जासु भजन विनु जुरनि न जाहौ ।—तुलसी ।

जुरनिशा-संज्ञा पुं० [फ्रा०] कोफू का एक भेद जिसमें गुल मूट कड़ई करने के पहले उभाड़े जाते हैं ।

जुरनैल-संज्ञा पुं० (१) दे० "जुरनल" । (२) दे० "जुरनल" ।

जुरध-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आघात । घोट ।

धा०—जुरध खफूक = हलकी चोट । जुरध शदीद = भारी चोट ।

मुद्रा०—जरब देना = चोट लगाना। पीटना। उ०—दगा देत दूतन घुनीती चित्र गुहे देत जम को जय देत पापी जेत शिव लोक।—पद्माकर।

(२) तबले मुद्दंग आदि पर का आघात। धाप। धाप दो तरह की होती है, एक खुली और दूसरी घंद। (३) गुण। (गणित) (४) कपड़े पर छपी या काढ़ी हुई धेल।

जरबद्ध—संज्ञा पुं० [फा०] वह रेशमी कपड़ा जिसकी सुनावट में कलावत्तू दे कर कुछ धेल बूटे बनाए जाते हैं।

जरबाफ—संज्ञा पुं० [फा०] सीने के तारों से कपड़े पर धेल बूटे बनानेवाला कारीगर। जरदोज।

जरबाफि—वि० [फा०] जरबाफ के काम का। जिस पर जरबाफ का काम बना हो।

संज्ञा स्त्री० जरदोजी।

जरबीला—वि० [फा०] जरब + इला (प्रत्य०) जो देखने में बहुत भड़कीला और सुंदर हो। उ०—(क) श्रवण मुकें झुमका श्रुति खोल कमोल जराह जरे जरबीले।—गुमान। (ख) श्रायो तहँ भावते कहँ पायो सीर सोरह में पीठ पीछे चीन्हे चीन्हें पोति जरबीली की।—रघुराय।

जरबुलंद—संज्ञा पुं० [फा०] कौफू का एक भेद जिसके गुल बूटे जिन पर सोने वा चाँदी की कलई होती है, बहुत उभड़े रहते हैं।

जरमन—संज्ञा पुं० [फा०] (१) जरमनी देश का निवासी। (२) जरमनी देश की भाषा।

वि० जरमनी देश-संबंधी। जरमनी का, जैसे, जरमन माल, जरमन सिलवर।

जरमन सिलवर—संज्ञा पुं० [फा०] एक सफेद और चमकीली यौगिक धातु जो जस्ते, तांबे और निकल के संयोग से बनती है। इसमें आठ भाग तांबा, दो भाग निकल और तीन से पांच भाग तक जस्ता पड़ता है। निकल की मात्रा बढ़ा देने से इसका रंग अधिक सफेद और अच्छा हो जाता है। इस धातु के बरतन और गहने आदि बनाए जाते हैं।

जरमनी—संज्ञा पुं० [फा०] मध्य यूरोप का एक प्रसिद्ध देश।

जरमुआ—वि० [हिं०] जरा + मुआ [खी०] जल मनो-वाला। बहुत ईर्ष्या करनेवाला।

जरर—संज्ञा पुं० [फा०] (१) हानि। नुकसान। छति। (२) आघात। चोट।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।—पहुँचाना।

(३) आप्त। सुस्थित।

जरल—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक बारहमासी घास जो मध्य प्रदेश और उ० बेलसंद में बहुत होती है। इसे सेवती भी कहते हैं।

जरघारा—वि० [फा०] जर + घारा [रूपा०] पैसेवाला। धनी। उ०—ते धन जिगकी ऊँची नजर है। कहकू बनाय दिपु जरघारे जिनकी कतहूँ न जर है।—देव स्वामी।

जरस—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार की समुद्र की घास। (लया०)।

जराकुश—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञगुण। ब्रूज के प्रकार की एक सुगंधित घास जिसमें नीचू की मी सुगंध आती है। यह कई प्रकार की होती है। दक्षिण भारत में यह बहुत अधिकता से होती है। इससे एक प्रकार का तेल निकलता है जिसे नीचू का तेल कहते हैं और जो साधुन और सुगंधित तेल आदि बनाने में काम आता है।

जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुढ़ापा। वृद्धावस्था।

शै०—जराप्रल।

(२) पुराणानुसार काल की कन्या का नाम। विरसा। (३) एक राक्षसी का नाम जो मगध देश की गृहदेवी थी। इसी को पछी भी कहते हैं। (४) विरानी का पेड़। संज्ञा पुं० [सं०] एक व्याध का नाम। इसी के पाए में भगवान कृष्णचंद्र देवलोक सिंघारे थे।

जरा—वि० [फा०] जरा। थोड़ा। कम। जैसे, जरा से काम में तुमने हानी देर लगा दी।

क्रि० वि० थोड़ा। कम। जैसे, जरा दौड़ो तो सही।

जराकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध।

जराप्रस्त—वि० [सं०] बुढ़ा। वृद्ध।

जराती—संज्ञा पुं० [हिं०] जरना। वह शेर जो चार बार बढ़ाया गया हो।

जराद—संज्ञा पुं० [सं०] टिड्डी।

जराना—क्रि० सं० दे० “नलाना”।

जरापुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम।

जरायोध—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जो स्तुति करके प्रज्वलित की गई हो। (वेदिक)

जरायोधीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

जराभीस—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

जरायधि—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम।

जरायु—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा अणुत्] (१) वह स्निही जिसमें बघा बँधा हुआ अणुत् होता है। आबल। खेड़ी। उल्ल। (२) गर्भाशय। (३) योनि। (४) अटायु। (५) अग्निजात या समुद्रफल नामक वृक्ष। (६) कात्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

जरायुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राणी जो आबल या खेड़ी में लिपटा हुआ अणुत् माता के गर्भ से उत्पन्न हो। पिंडज।

जराव—वि० [हिं०] जरना। अज्ञात। जिसमें नगिने आदि जड़े हों। उ०—(क) बँदी जाव खिलार विपु गहि डोरी दोरु पटिया पहिराई।—सुंदरी सवैख। (ख) सुंदर सूची सुगोल रबी विधि कोमलता श्रुति ही सरसात है। श्लो० हरिभोग जाव अरे खरे कंकन कंचन के दरसात हैं।—भयोपाया।

जराशोप-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शोप रोग जो लोगों को वृद्धावस्था में ही जाता है। इसमें रोगी दुर्बल हो जाता है, भोजन से श्रद्धा हो जाती है और यल वीर्य तथा बुद्धि का घट हो जाता है।

जरासंध-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार मगध देश का एक राजा। यह बृहन्नय का पुत्र और कंस का श्वसुर था। कंस के मरने पर इसने मथुरा पर अग्रहण धार आक्रमण किया था। सुधितिर के राजसूय यज्ञ में कृष्य, अशुन और भीम को साथ लेकर इसकी रागधानी गिरिध्रज में गए थे। यहाँ भीम ने इंद्र युद्ध में इसे मार डाला था।

जरासुत-संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध।

जराह-संज्ञा पुं० दे० "जरीह"।

जरिमा-संज्ञा स्त्री० [सं० जरिमत्] बुढ़ापा। जरा। बुढ़ावस्था।

जरिया*—संज्ञा पुं० दे० "जड़िया"।

वि० [हिं० जर्न] जो जलाने से उत्पन्न हो। जला कर बनाया या तैयार किया हुआ। जैसे, जरिया शोरा, जरिया नमक।

धा०—जरिया शोरा = एक प्रकार का शोरा जो भाग उड़ा कर बनाया जाता है। जरिया नमक = यह खार नमक जो श्रांच से तैयार किया जाता है।

जरिया-संज्ञा पुं० [अ०] (१) संबंध। लगाव। द्वार। जैसे, उनके यहाँ अग्रर चापका कोई जरिया हो तो बहुत जल्दी काम हो जायगा। (२) हेतु। कारण। संयम।

जरिदक-संज्ञा पुं० [फा०] दाह हलदी।

जरी-वि० [सं० जरिर्] बुढ़ा। वृद्ध।

जरी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) साथ नामक कपड़ा जो धादले से बना जाता है। (२) सोने के तारों आदि से बना हुआ काम।

जरीनाल-संज्ञा स्त्री० [हिं० जरी + नल = ठोकर] कढ़ारों की बोल-चाल में वह स्थान जहाँ हैंटें और रोड़े पड़े हों।

जरीब-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) एक माप जिसमें भूमि नापी जाती है। हिंदुस्तानी जरीब २५ गज की थीर श्रीमंजी जरीब ६० गज की होती है। एक जरीब में बीस गटे होने हैं।

धा०—जरीबकर।

मुहा०—जरीब बालना = भूमि को जरीब से नापना।

(२) खाड़ी। छड़ी।

जरीबकशा-संज्ञा पुं० [फा०] वह मनुष्य जो भूमि नापने के समय जरीब खोलने का काम करता है।

जरीबाना, जरीमाना—संज्ञा पुं० दे० "जुरमाना"।

जरुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भांस। गोस्त। (२) कटुभापी।

जरुर-वि० [सं०] [वि० जरुरी] संज्ञा जरुरत] अवश्य। निःसंदेह। निश्चय करके।

जरुरत-संज्ञा स्त्री० [अ०] आवश्यकता। प्रयोजन।

क्रि० प्र०—जरुरना—होना।

जरुरी-वि० [फा०] (१) जिसकी जरुरत हो। जिसके बिना काम न चले। प्रयोजनीय। (२) जो अवश्य होना चाहिये। आवश्यक। सापेक्ष।

जरोल-संज्ञा पुं० [दे०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत, जहाज और तोपों के पहिए बनाने के काम में आती है। यह बंगाल में, विरोप कर सिलहट के कछार में, चटगांव और उत्तरीय नीलगिरि में बहुत होता है।

जरोटा*—वि० [हिं० जड़ना] जड़ारू। उ०—कोड कजरोट जरोट लिए कर कोड मुरदल कोड छाता।—रघुरान।

जर्कवक*—वि० [फा०] जिसमें खूब तड़क मड़क हो। भड़कीला। चमकीला। मड़कदार।

जर्जर-वि० [सं०] (१) जीर्ण। जो बहुत पुराना होने के कारण बेकाम हो गया हो। (२) फूटा। टूटा। खंडित। (३) बूढ़। बुढ़ा। संज्ञा पुं० छुरीला। छुड़ना। पत्थरफूल।

जर्जरानना—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जरानना] कर्त्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

जर्जरित-वि० [सं० जर्जरित] (१) जीर्ण। पुराना। (२) टूटा फूटा। खंडित।

जर्जरीक-वि० [सं०] (१) बहुत बूढ़। बुढ़ा। (२) जिसमें बहुत से छेद हो गए हों।

जर्थे-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) वृष।

वि० जीर्ण।

जर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी। (२) येनि।

जर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन बाहीक देश का एक नाम। (२) एक देश का निवासी।

जर्त्तिल-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल। यन तिलया।

जर्त्त-संज्ञा पुं० दे० "जर्त्त"।

जुर्द-वि० [फा०] पीला। पीत।

जुर्दा-संज्ञा पुं० दे० "जुर्दा"।

जुर्दात्-संज्ञा पुं० दे० "जुर्दात्"।

जुर्दा-संज्ञा स्त्री० [फा०] पीलापन। पीलाई।

विरोप—दे० "जरदी"।

जुर्दाज-संज्ञा पुं० दे० "जरदोज"।

जुर्दाजी-संज्ञा स्त्री० दे० "जरदोजी"।

जर्नल-संज्ञा पुं० दे० "जरनल"।

जर्ज-संज्ञा पुं० [अ०] (१) अणु। (२) वे छोटे छोटे कण जो सूर्य के प्रकार में उड़ते हुए दिखाई देते हैं। (३) जौ का मोर्वा भाग। (४) बहुत छोटा टुकड़ा या सड़।

वि० दे० "जुरा"।

जर्जर-वि० [अ०] [संज्ञा जर्जरी] (१) बलिष्ठ। प्रमल। (२) लड़ाका। पहादुर। वीर।

जरीती-संज्ञा स्त्री० [च० जरी + ई (प्रत्य०)] बहादुरी । वीरता । सुरमापन ।

जरीह-संज्ञा पुं० [च०] [संज्ञा जरीही] चीर फाड़ का काम करनेवाला । फोड़ों खादि को चीर कर चिकित्सा करनेवाला । शख चिकित्सक ।

जरीही-संज्ञा स्त्री० [च०] चीर फाड़ का काम । चीर फाड़ की सहायता से चिकित्सा करने का काम । शख-चिकित्सा ।

जर्वर-संज्ञा पुं० [सं०] नागों के एक पुरोहित का नाम जिसने एक बार यज्ञ करके साँपों की रक्षा की थी ।

जर्हिहल-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल । जस्तिल ।

जलग-संज्ञा पुं० [सं०] महाकाल नाम की एक छता ।

जलगम-संज्ञा पुं० [सं०] चाँदाल ।

जलधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पौराणिक राक्षस का नाम जो

शिव जी की कोपाग्नि से समुद्र में डूबकर हुआ था । पद्म पुराण में लिखा है कि यह जनमते ही इतने जोर से रोने लगा कि सब देवता ध्याकुल हो गए । उनकी शेर से जब ब्रह्मा ने जा कर समुद्र से पूछा कि यह किसका लड़का है तब उसने उत्तर दिया कि यह मेरा पुत्र है, आप इसे ले जाइए । जब ब्रह्मा ने उसे अपनी गोद में लिया तब उसने उनकी डाढ़ी इतने जोर से खींची कि उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ा । इसी विये ब्रह्मा ने उसका नाम जलधर रखा । यज्ञ होने पर इतने इंद्र की धमरावती पर अधिकार कर लिया । श्रंत में शिव जी इंद्र की शेर से उससे लड़ने गए । उसकी स्त्री वृंदा ने (जो फालनेमि की कन्या थी) अपने पति के प्राय वचाने के लिये ब्रह्मा की पूजा आरंभ की । जब देवताओं ने देखा कि जलधर किसी प्रकार नहीं मर सकता तब श्रंत में जलधर का रूप धारण करके विष्णु उसकी स्त्री वृंदा के पास गए । वृंदा ने उन्हें देखते ही पूजन छोड़ दिया । पूजन छोड़ते ही जलधर के प्राण निकल गए । वृंदा कुछ होकर पूजा को शाप देना चाहती थी पर ब्रह्मा के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर वह सती हो गई । (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम । (३) योग का एक बंध ।

संज्ञा पुं० दे० "जलोत्तर" ।

जलबल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नदी । (२) अंजन ।

जल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी । (२) शरीर । तस । (३) पृथिव्याका नक्षत्र । (४) ज्योतिष के अनुसार जन्म-कुंडली में चौथा स्थान । (५) सुगंधवाला । नेत्रवाला ।

जल-अलि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी का भँवर । (२) एक काजा कीड़ा जो पानी पर तैरा करता है । इसकी बनावट खटमल की सी होती है, परंतु आकार में यह खटमल से बहुत बड़ा होता है । इसका स्वभाव है कि यह प्रायः एक ही ओर घूम घूम कर तैरता है । जलप्रवाह के विरुद्ध भी यह तेजी से तैर सकता है । पौरोधा । भौतुधा । उ०—भस्त दशा

तेहि अचरत कैसी । जल प्रवाह जल-अलि गति जैसी ।—
हुलसी ।

जलह-संज्ञा स्त्री० [हिं० जलना या बीजना] वह काँटा जिसके दोनों ओर दो छेद होते हैं और जो दो तत्वों के जोड़ पर जड़ा जाता है । यह प्रायः नाव के तत्वों के जड़ने में काम आता है ।

जलकंदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंघाड़ा । (२) कुंभी ।
जलकंदु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की खुजली जो पानी में बहुत काल तक लगातार रहने से पैरों में उत्पन्न होती है ।

जलकंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) केला । (२) काँदा । जल-कंदरा ।

जलकंदरा-संज्ञा पुं० [सं० जल + कंदरी] काँदा नामक शुष्म जो प्रायः तालों के किनारे होता है ।

जलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संल । (२) कीड़ी ।

जलकपि-संज्ञा पुं० [सं०] मिश्रुमार वा सूँस नामक जलजंतु ।
जलकपात-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया जो पानी के किनारे होती है ।

जलकरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल । (२) पद्म । कमल (३) गंज । (४) जललता ।

जलकर-संज्ञा पुं० [हिं० जल + कर] (१) वह पदार्थ जो जलाशयों खादि में हो और जिसपर जमींदार की शेर से कर लगाया जाय । जैसे मछली, सिंघाड़ा, कमलगट्टा खादि । (२) इस प्रकार के पदार्थों पर का कर ।

जलकलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवार । (२) कीचड़ । (३) काँदा ।

जलकाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलकांक्षी] हाथी ।

जलकांत-संज्ञा पुं० [सं०] वरुण ।

जलकांतार-संज्ञा पुं० [सं०] धरुण ।

जलकाँदा-संज्ञा पुं० दे० "काँदा" ।

जलकाक-संज्ञा पुं० [सं०] जलकौश्र नामक पत्थी ।

पय्यां—दाबूह । फालकंदक ।

जलकामुक-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णमुली ।

जलकाय-संज्ञा पुं० [सं०] जैन शाखादुसार वह शरीरधारी जिनका जल ही शरीर है ।

जलकिनार-संज्ञा पुं० [हिं० जल + किनारा] एक प्रकार का रेसामी कपड़ा ।

जलकिराट-संज्ञा पुं० [सं०] माह या नाक नामक जलजंतु ।

जलकुंतल-संज्ञा पुं० [सं०] सेवार ।

जलकुंभी-संज्ञा पुं० [हिं० जल + कुंभी] कुंभी नाम की वनस्पति जो जलाशयों में पानी के ऊपर होती है ।

विशेष—दे० "कुंभी" ।

जलकुक्कुट-संज्ञा पुं० [सं०] सुरगाभी ।

जलकुक्कुभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की जल की चिड़िया ।

बुढ़ी । वनसुर्गी ।

पय्याँ—कोयल । शिखरी ।

जलकुक्कुभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवार । (२) काई ।

जलकूर्म-संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या हूँस नामक जलजंतु ।

जलकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पुच्छल तारा जो परिचम में उदय होता है । इसकी चोटी वा शिखा परिचम की ओर होती है और स्निग्ध तथा मूल में मोटी होती है । यह देवते में स्वच्छ होता है । फलित ज्योतिष के अनुसार इसके उदय से नौ मास तक सुभिन्न रहता है ।

जलकेश-संज्ञा पुं० [सं०] सेवार ।

जलकौशा-संज्ञा पुं० [हिं० जल + कौषा] एक जल-पक्षी जिसकी गर्दन सफेद, चोंच भूरी और शेष सारा शरीर काला होता है । मादा के पैर नर से कुछ विशेष बड़े होते हैं । यह चिड़िया सारे युरोप, एशिया, अफ्रिका और उत्तरीय अमेरिका में पाई जाती है । इसकी लंबाई दो से तीन हाथ तक होती है और यह एक बार में चार से छह तक अंडे देती है । बैचक के अनुसार इसका मांस खाने में स्निग्ध, भारी, वातनाशक, शीतल और पल-वर्द्धक होता है ।

जलक्रीडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देव और पितृ आदि का तर्पण ।

जलक्रीडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रीडा जो जलारम्यो-आदि में की जाय । जलविहार । जैसे, तैना आदि ।

जलसग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जो पानी के किनारे रहता है ।

जलसर-संज्ञा पुं० [हिं० जल] जलखरी ।

जलसरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + सरी + क्त] रस्ती वा तारो की जाल की बनी हुई थैली वा मोली जिसमें लोग फल आदि रख कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं ।

जलशायी-संज्ञा पुं० [हिं० जल + शाना] जलपान । कलेवा ।

जलशर्द-संज्ञा पुं० [सं० जल + शर्द + क्त] पानी में रहनेवाला सरी । टेढ़ा ।

जलशर्म-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध के प्रधान शिष्य आनन्द का पूर्व जन्म का नाम ।

जलगुलम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी में का भँवर । (२) कछुआ । (३) वह देश जिसमें जल कम हो ।

जलगुलम-संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें जल कम हो ।

जलघड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + घड़ी] एक यंत्र जिससे समय का ज्ञान होता है । इसमें एक कटोरा होता है जिसके पेंदे में छेद होता है । यह कटोरा पानी की नाई में पड़ा रहता है । पेंदी के छेद से धीरे धीरे कटोरे में पानी जाता है और

कटोरा एक घंटे में भरता और हूय जाता है । हूयने के बाद फिर कटोरे को पानी से निकाल कर खाली करके पानी की नाई में डाल देते हैं और उसमें फिर पहले की तरह पानी भरने लगता है । इस प्रकार एक एक घंटे पर वह कटोरा हूयता और फिर साफ़ी करके पानी के ऊपर छोड़ा जाता है ।

जलधुमरी-संज्ञा पुं० [हिं० जल + धूमना] पानी का भँवर । जलावर्त । चक्र ।

जलचर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचरी] पानी में रहनेवाले जंतु । जैसे, मछली, कछुआ, मगर आदि । जलजंतु ।

जलचरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मछली । ३०—मछुकर मो मन अधिक कटोर । विगसिन गप कुंभ का चेलीं विधुरत मंद-फिसोर । हमते भली जलचरी घुरी अपने नेम निचायो । जल ते विधुरि सुतत तनु खाम्यो तउ कुल जल को चाहयो । —सूर ।

जलचारी-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचारिणी] जल में रहनेवाला जीव । जलचर ।

जलच्छिद्र-संज्ञा पुं० [सं०] कुंभरी या नाक नामक जलजंतु ।

जलचौलाई-संज्ञा स्त्री० दे० "चौलाई" ।

जलजंतु-संज्ञा पुं० [सं०] जल में रहनेवाले जीव जंतु । जलचर ।

जलजंतुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक ।

जलजंतुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जल-जामुन जो साधारण जामुन से छोटा होता है ।

विशेष—दे० "जलजामुन" ।

जलज-वि० [सं०] जल में उपज होनेवाला । जो जल में उपज हो ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल । (२) शंख । (३) मछली ।

(४) पनिहा नाम का वृक्ष । (५) सेवार । (६) श्वचेत ।

जलवेत । (७) जलजंतु । (=) सामुद्रिक वा खोनार ममक ।

(८) मोती (९) कुचले का पेड़ । (११) चौलाई ।

जलजन्य-संज्ञा पुं० [सं०] कमल ।

जलजला-संज्ञा पुं० [फा०] भूकंप । भूडोल ।

जलजात-वि० [सं०] जो जल में उपज हो । जलज ।

संज्ञा पुं० पद्म । कमल ।

जलजामुन-संज्ञा पुं० [हिं० जल + जामुन] एक प्रकार का जामुन जिसके वृक्ष जंगलों में नदिओं के किनारे प्रायः से प्रायः उगते हैं । इसके फल बहुत छोटे और पत्ते कनेर के पत्तों के समान होते हैं ।

जलजासन-संज्ञा पुं० [सं०] कमल पर बैठनेवाले, महा ।

जलडिंब-संज्ञा पुं० [सं०] शंख । घोवा ।

जलतरंग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाना जो घास की बहुत सी छोटी बड़ी कटोरियों के एक क्रम से रख कर

बनाया और बनाया जाता है। यज्ञाने के समय सब कठोरियों में पानी भर दिया जाता है और उन कठोरियों पर किमी हलकी सुँगरी से आघात करके तरह तरह के ऊँचे नीचे स्वर उत्पन्न किए जाते हैं।

जलतरोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + तरोई] मखड़ी। (हास्य)
जलतापिक, जलतापी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मखड़ी जिसे ढूँढ कहते हैं।

जलतिकिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सवाई का पेड़।
जलत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छाता। (२) वह कुटी जो एक स्थान से हटा कर दूसरे स्थान तक पहुँचाई जा सके।

जलत्रास—संज्ञा पुं० [सं०] वह भय जो कुत्ते, शृगाल आदि जीवों के काटने पर मनुष्य को जल देखने अथवा उसका नाम सुनने से उत्पन्न होता है।

जलद—वि० [सं०] जल देनेवाला। जो जल दे।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) मेघा। (३) कपूर। (४) पुराणानुसार शाकद्वीप के अंतर्गत एक वर्ष का नाम।

जलदकाल—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। परसात।
जलदक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु।
जलदतिताला—संज्ञा पुं० [हिं० जलदी + तिताला] यह साधारण तिताला ताल जिसकी गति साधारण से कुछ तेज हो। यह कैवली से कुछ विलंबित होता है।

जलदाशन—संज्ञा पुं० [सं०] साख का पेड़।
विशेष—प्राचीन काल में प्रवाद था कि यादल साख की पत्तियाँ खाते हैं, इसी से साख का यह नाम पड़ा।
जलदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग जो चारों ओर नदी झील आदि से सुरक्षित हो।

जलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्वापाड़ा नाम का नक्षत्र। (२) वरुण।

जलदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण।
जलदौदौ—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पौधा जो काई की तरह पानी पर फैलता है। इसके शरीर में लगने से खुबली पैदा होती है।

जलद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ता, शंख आदि द्रव्य जो जल से उत्पन्न होते हैं।

जलद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोन जिससे जेतों में पानी देते हैं।
जलधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। (२) मुस्ता। (३) समुद्र।
(४) तिनिस। तिनिस का पेड़।

जलधर केदार—संज्ञा पुं० [सं०] जलधर + हिं० केदार। एक संकर राग जो मेघ और केदार के योग से बनता है।

जलधरमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धारुणों की श्रेणी।
(२) बारह अक्षरों की एक वृत्ति जिसके प्रत्येक अक्षर में

(म भ स भ) \$\$\$, \$\$\$, \$\$\$ होते हैं। उ०—तो भाँसे मोहन हम को दै योगा। ठाने ऊषे उन् कुबजा से भोगा। साँचे ग्वालागन कर नेहा देखी। प्रेमाभक्ती जलधर-माला लेखी।

जलधरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थर या धातु आदि का बना हुआ वह अर्धा जिसमें शिबलिंग स्थापित किया जाता है। जलहरी।

जलधार—संज्ञा पुं० [सं०] शाक द्वीप का एक पर्वत।
*संज्ञा स्त्री० दे० “जलधारा”।

जलधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पानी का प्रवाह। पानी की धारा। (२) एक प्रकार की तपस्या जिसमें तपस्या करनेवाले पर कोई मनुष्य बराबर धार बाँध कर पानी डालता रहता है।

जलधारी—वि० [सं०] जलधारी। [श्री०] जलधारी। पानी का धारण करनेवाला। जलधारक।

संज्ञा पुं० यादल। मेघ। उ०—अथवा न सुनत, चरणगत याके, नैन भये जलधारी।—सूर।

जलधि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) एक संख्या जो दस शंख की होती है।

जलधिगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) नदी। दरिया।
जलधिज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

जलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार की कल्पित धेनु जिसकी कल्पना जल के घड़े में दान के लिये की जाती है। इस दान का विधान अनेक प्रकार के महापातकों से मुक्त होने के लिये है, और इस दान का लेनेवाला भी सब प्रकार के पातकों से मुक्त हो जाता है।

जलन—संज्ञा स्त्री० [हिं० जलना] (१) जलने की पीड़ा या दुःख। दाह। बहुत अधिक ईर्ष्या या दाह।

मुहा०—जलन निकालना = द्वेष वा ईर्ष्या से उत्पन्न ईर्ष्या पूरी करना।

जलनकुल—संज्ञा पुं० [सं०] अद्विखाल।

जलना—क्रि० प्र० [सं०] जलन। (१) किसी पदार्थ का अग्नि के संयोग से अंगारे या लवट के रूप में हो जाना। दाह्य होना। भस्म होना। बलना। जैसे, लकड़ी जलना, मणाल जलना, घर जलना, दीपक जलना।

यौ०—जलता बलता = शैतिक्रायक या पित्रुपद का कोई दिन जिसमें कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता।

मुहा०—जलती आरा = भयानक विपत्ति। जलती आरा में बदन = जान घुस कर भारी विपत्ति में फँसना।

(२) किसी पदार्थ का बहुत गरमी या अर्ध के कारण भाक या कोयले आदि के रूप में हो जाना। जैसे, तवे पर रोटी जलना, कड़ाही में धी जलना, धूप में घास या पौधे का जलना। (३) अर्ध, लगने के कारण किसी शरीर का पीड़ित और विह्वल होना। कुलसना। जैसे, हाथ जलना।

मुहा०—जले पर नमक डिटकना या लगाना = किली दुःखी या व्यथित मनुष्य को और अधिक दुःख या व्यथा पहुँचाना ।
जले फरोले पोढ़ना = दुःखी या व्यथित को किली प्रहार, विशेष कर अपना बदला सुकाने की इच्छा से और अधिक दुःखी या व्यथित करना । जले पाँव की विह्ली = जो धी हर दम घूसली फिरती रहे और एक स्थान पर न उठकर सके ।
(४) बहुत अधिक बाह । ईर्ष्या या द्वेष आदि के कारण हुड़ना । मन ही मन संतप्त होना ।

यी०—जलना सुनना = बहुत कुढ़ना ।

मुहा०—जली कटी या जली सुनी बात = वह लगती हुई बात जो द्वेष, डाह या क्रोध आदि के कारण बहुत व्यथित होकर पड़ी जाय । जल मरना = टाढ़, ईर्ष्या आदि के कारण बहुत कुढ़ना । द्वेष आदि के कारण बहुत व्यथित हो उठना ।
२०—मुह्य धनयायो तव जनिष्ठा जव मनु फिरि परिहै । हरखिदें न अति आदरे निदरे न जरि मरिहै।—मुलसी ।

जलनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र । (२) धार की संस्था ।
जलनिर्मम—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का निकसना ।

जल नील—संज्ञा स्त्री० [दि० जल + नील] एक प्रकार की सोनिया जो कड़ई होती है और प्रायः जलधर्या के निचट दलदली भूमि में उत्पन्न होती है ।

जलनीलिका, **जलनीली**—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार ।

जलपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जलपक्षिन्] यह पक्षी जो जल के आस-पास रहता हो ।

जलपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण । (२) समुद्र । (३) पृथापानु नक्षत्र ।

जलपथ—संज्ञा पुं० [सं०] नाली, नहर जिसमें से पानी बहता हो ।

जलपाई—संज्ञा स्त्री० [२००] खड़ाब की जाति का एक पेड़ जो हिमालय के उत्तर-पूर्व भाग में तीन हजार फुट की उँचाई पर होता है और उलती कनारा और ट्रायेंगेर के जंगलों में भी मिलता है । यह खदाप के पेड़ से छोटा होता है । इसका फल अधिक गुदेदार होता है और जंगली जैतून कहलाता है । इसके कण्ठ फलों की सरकारी और अचार बनाया जाता है और पक्के फल यों ही खाए जाते हैं ।

जलपाटल—संज्ञा पुं० [दि० जल + पटल] काजल । ३०—कजल जलपाटल मुखी नाग दीपसुन साय । सांप्रजन दग ली चली कानि न देरे कोय ।—जन्ददास ।

जलपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह थोड़ा और हलका भोजन जो मानकाव्य कार्य धारंभ करने से पहले खया संध्या को कार्य समाप्त करने के उपरंत साधारण भोजन से पहले किया जाता है । कलेबा । नारता ।

जलपारावत—संज्ञा पुं० [सं०] जलकपोत नाम की चिड़िया जो अन्नार्थों को दिनारे रहती है ।

जलपिंड—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । आग ।

जलपिप्पली—संज्ञा० स्त्री० [सं०] जलपीपल नाम की औषधि ।

जलपिप्पलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल ।

जलपिथिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मद्गली ।

जलपीपल—संज्ञा स्त्री० [सं० जलपिप्पली] पीपल के प्रकार की एक प्रकार की गंधहीन औषधि । इसका पेड़ सड़े पानी में उत्पन्न होता है । पत्तियाँ बेंत की पत्तियों से मिलती जुलती और कोमल होती हैं और तने में पास पास बहुत सी गांठें होती हैं । इसकी डालियाँ दो डारें हाथ लंबी होती हैं । इसके फल पीपल के फल की तरह होने हैं । पर उममें गंध नहीं होती । यह खाने में तीव्री, कड़ई, कसैली और गुण में मल-शोधक, दीपक, पाचक और गरम होती है । इसे गंगतिरिया भी कहते हैं ।

पर्या०—महासदृषी । शारदी । तोयवहरी । मर्यादिनी । मर्यागंधा । लांगली । शुकुलादनी । चित्र-पयो । प्राण्य । लृण्यतिता । बहुनिष्ठा ।

जलपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लज्जावंती की तरह का एक पौधा जो दलदली भूमि में पैदा होना है । (२) कमल आदि फूल जो जल में उत्पन्न होते हैं ।

जलपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार ।

जलप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] मृत या पितर आदि की उदकक्रिया । संप्रण ।

जलप्रपा—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ सर्वसाधारण को पानी पिलाया जाता हो । पीसता । सवील । प्याज ।

प्रलप्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मदी आदि का ऊँचे पहाड़ पर से नीचे स्थान पर गिरना । (२) वह स्थान जहाँ किसी ऊँचे पहाड़ पर से नदी नीचे गिरती हो ।

जलप्रसाह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी का यहाप । (२) किसी के शव को नदी आदि में यहा देने की क्रिया या भाव । (३) किसी पदार्थ को सहते हुए जल में छोड़ देना ।

जलप्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] जलारण्य के आस पास का स्थान ।

जलप्राय—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदेश या स्थान जहाँ जल अधिकता से हो । अन्नप देस ।

जलप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्गली । (२) चातक । पपीहा ।

जलप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] उदकिलाव ।

जलप्रायन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी की बाढ़ जिसमें आस पास की भूमि जल में डूब जाय । (२) पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जिसमें सब देस डूब जाते हैं ।

विशेष—इस प्रकार के प्रायन का वर्णन अनेक जातियों के धर्म-ग्रंथों में पाया जाता है । हमारे यहाँ के (रातरण) महाद्वय, महाभारत तथा अनेक पुराणों में वर्णित वैदव्यत

मनु का प्रायण तथा सुखलमानों और ईसाद्वयों के हज़रत नुह का तूफान इसी बौटि का है।

जलफल-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

जलबंध-संज्ञा पुं० [सं०] मडली।

जलबंधक-संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर मिट्टी आदि का बांध जो किसी जलाशय का जल रोक रखने के लिये बनाया जाता है।

जलबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] मडली।

जलबालक-संज्ञा पुं० [सं०] विंध्याचल पर्वत।

जलबालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। विजली।

जलविंदुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यादनाल शंकरा नाम की दुःखान्न शोषधि जिसे फारसी में शीरलिरस्त कहते हैं।

जलबिंब-संज्ञा पुं० [सं०] पानी का बुलबुला।

जलबिडाल-संज्ञा पुं० [सं०] जदबिलाव।

जलबिल्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह देश जहाँ जल कम हो। (२) केकड़ा।

जलबुदबुद-संज्ञा पुं० [सं०] पानी का बुलबुला, बुलबुला।

जलबेत-संज्ञा पुं० [सं०] जलवेष्ट्र। जलाशयों के निकट की भूमि में पैदा होनेवाला एक प्रकार का बेंत जिसका पेड़ जला के आकार का होता है। इसके पत्ते बाँस के से होते हैं और इसमें पल फूल आते ही नहीं। ऊपरियाँ बेंचे इत्यादि इसी बेंत के छिलके से बुनी जाती हैं।

जलब्रह्मी, जलब्राह्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोची या हुर-हुर का साग।

जलभैरवा-संज्ञा पुं० [हिं० जल + भैरवा] एक प्रकार का भैरवा जो पानी में या जलाशयों के किनारे होता है।

जलभैरवा-संज्ञा पुं० [हिं० जल + भैरवा] फाले रंग का एक बीड़ा जो पानी पर बड़ी शीतला से दीड़ता है। इसे भैरवा भी कहते हैं।

जलभाद्र-संज्ञा पुं० [हिं० जल + भाद्र] सील की जाति का एक जंतु जो प्राकार में थाट नौ हाथ लंबा होता है। इसके सारे शरीर में बड़े बड़े थाल होते हैं। यह कुंडों में रहता है और इसकी सत्तर से सस्सी तक मारियों के छूट में एक नर रहता है। यह पूर्व तथा उत्तर-पूर्व एशिया और प्रशांत महासागर के उत्तरीय भागों में अधिकता से पाया जाता है।

जलभू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। (२) एक प्रकार का कपूर। (३) जलचैतलाई।

संज्ञा स्त्री० वह भूमि जहाँ जल अधिक रहे। जलप्राय भूमि। कड़। अचूफ।

जलभूपक-संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जलभूत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) एक प्रकार का कपूर। (३) जल रखने का बरतन।

जलमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बड़ी मकड़ी जिसके विष के ससर्ग से मनुष्य मर जा सकता है। चिरिया बुद्धर।

जलमंडूक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

जलमाँ-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "जन्म"।

जलमद्गु-संज्ञा पुं० [सं०] मधुरंग। कौड़िया।

जलमधूक-संज्ञा पुं० [सं०] जल-मधुआ।

जलमय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) शिव की एक मुक्ति।

जलमल-संज्ञा पुं० [सं०] फेन। फाग।

जलमस्ति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। मेघ। (२) एक प्रकार का कपूर।

जलमधुआ-संज्ञा पुं० [सं०] जलमधूक। एक प्रकार का मधुआ जो दक्षिण में केकण की ओर जलाशयों के निकट होता है। इसकी पत्तियाँ उत्तरी भारत के मद्गु की पत्तियों से बड़ी होती हैं और फूल छोटे होते हैं। वैद्यक में यह टंडा, मय-नाशक, बलवीर्यवर्द्धक तथा रसायन और वमन को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्याय—दीर्घपत्रक। हस्वपुष्पक। स्वादु। गौलिका। मप्लिका। छौद्रमिष। पतंग। कीरेड। गौरिकाच। मांगल्प। मधुपुष्प।

जलमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की देवियाँ जो जल में रहनेवाली मानी गई हैं। ये गिनती में सात हैं—मानी, कूर्मों, धारादी, वटुदी, मरुती, जलूका और जंतुका।

जलमानुष-संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० जलमानुषः] परीरू नामक कल्पित जलजंतु जिसकी मामि से ऊपर का भाग मनुष्य का सा और नीचे का मडली के ऐसा होता है। उ०—उरत सुरंगम देय चडाई। जलमानुष अगुधा संग लाई।—जायसी।

जलमाजीर-संज्ञा पुं० [सं०] जदबिलाव।

जलमुच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। मेघ। (२) एक प्रकार का कपूर।

जलमुलेठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपथी। जलाशय के तट पर पैदा होनेवाली सुलेठी।

जलमूर्चि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

जलमूर्ति का-संज्ञा स्त्री० [सं०] करका। शोला।

जलमोद-संज्ञा पुं० [सं०] इरीर। खस।

जलयंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह यंत्र जिससे कूँपें आदि नीचे स्थानों से पानी ऊपर निकाला या उठाया जाता है। (२) कौआरा। (३) जलघड़ी।

जलयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह यात्रा जो अग्निपंक आदि के लिये पवित्र जल लाने के लिये की जाती है।

(२) राजपूताने का एक उरस्य। यह देवोपाधिपानी एकादशी के बाद चतुर्दशी को होता है। उस दिन उदयपुर के राणा अपने दरबारी के साथ सत्र के बड़े समारोह से किसी दूध के पाम जाके जल की पूजा करते हैं। (३) वैष्णवों का एक उरस्य जो ग्रेट की पूर्णिमा को होता है। इस दिन विष्णु की मूर्ति को खूब ठंडे जल से स्नान कराया जाता है।

जलयान-संज्ञा पुं० [सं०] वह सवारी जो जल में काम धाती हो। जैसे, नाव, जहाज आदि।

जलरंक-संज्ञा पुं० [सं०] धक। घगुला।

जलरंजु-संज्ञा पुं० [सं०] वनगुर्गी।

जलरंज-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का घगुला।

जलरंज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भैंस। (२) पानी की बूँद। शतकण। (३) साँप।

जलरस-संज्ञा पुं० [सं०] नमक।

जलराशि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष शास्त्र के अनुसार बक, भकर, कुंभ और मीन राशि। (२) समुद्र।

जलरह-संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

जलरूप-संज्ञा पुं० [सं०] मन्दा राशि।

जलरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी की लहर। तरंग।

जलरोहित-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

जलयत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ का एक भेद। उ०—सुगत मेघ वनेक-साजि सैन लै ध्राये। जलयत, धारिवत पवन-वने, सीधुवत, धागिवनेक जलद संग एवाये—सूर। (२) दे० 'जलावत'।

जलवह्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाड़ा।

जलयकल-संज्ञा पुं० [सं०] जलकुम्भी।

जलवाना-क्रि० सं० [हि० जलवाना] जलाने का प्रेरणार्थक रूप।

जलाने का काम दूसरे से कराना।

जलघानोर-संज्ञा पुं० [सं०] जलघंत। शंबुवेतस।

जलघायस-संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्या पक्षी।

जलघास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) डशीर। वस। (२) विष्णुकंद।

जलघाह-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ।

जलगियुव-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक योग जो सूर्य के कच्चा राशि से निकल कर तुला राशि में संक्रमित होने के समय होता है। तुलासंक्रांति।

जलघीर-संज्ञा पुं० [सं०] भारत के एक पुत्र का नाम।

जलघृथिक-संज्ञा पुं० [सं०] भौंता। मड़ली।

जलघेतस-संज्ञा पुं० [सं०] जलघेत।

जलघेहन-संज्ञा पुं० [सं०] युक्तसंहिता के अनुसार पानी या जलराश में धार्मिक विकार या अद्भुत घातों का विचार। पटना। जैसे, नगर के पास से नदी का सरक जाना, ताकालों का अघानक एक घागी सूख जाना, मड़ी के पानी में लेज,

रग, मौस आदि वहना, जल का थकरण मँला हो जाना, कुँड़े में धुंध, जला आदि देल पड़ना, उसके पानी का खिलने लगना या उसमें से रोने माने गजने आदि के शब्दों का सुनाई पड़ना, जल के गंध रस आदि का अघानक बदल जाना, जलाशय के पानी का विगड़ जाना इत्यादि इत्यादि। यह अशुभ माना गया है और इसकी शांति का कुछ विधान भी उसमें दिया गया है।

जलय्यध, जलय्यध-संज्ञा पुं० [सं०] कंकमोट या कोंथा नाम की मड़ली।

जलय्याल-संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० जल्यली] सील की जाति का एक जंतु जो बड़ा भूर और हंसक होता है। डील डील में यह जलमालू से कुछ ही बड़ा होता है पर इसके शरीर पर के बाल जलमालू के बालों की तरह बहुत बड़े नहीं होते। इसके शरीर पर चीते की तरह दाग या धारियाँ होती हैं। यह प्रायः दक्षिण सागर में सेटलैंड टापू के पास होता है।

जलय्याल-संज्ञा पुं० [सं०] जलगर्द साँप। पानी में का साँप।

जलदाय, जलदायन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

जलदायी-संज्ञा पुं० [सं०] जलगविन्दु।

जलदाक-संज्ञा पुं० [सं०] सेवार

जलदाकर-संज्ञा पुं० [सं०] कुंभीर या नाक नामक जल-जंतु।

जलसंध-संज्ञा पुं० [सं०] शतराज के एक पुत्र का नाम। महाभारत में लिखा है कि इसने सात्यकि के साथ भीषण युद्ध करके तोमार से उसका बापों हाथ तोड़ दिया था। अंत में यह बन्नी के हाथ से मारा गया था।

जलसंस्कार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नहाना। स्नान करना। (२) भोजन। पखाना। (३) सुदों के जल में धा देना।

जलसमुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से अंतिम समुद्र।

जलसर्पिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक।

जलसा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आनंद या उरस्य मन्तों के लिये बहुत से लोगों का एक स्थान पर एकत्र होना, विशेषतः लोगों का वह जमावड़ा जिसमें जाना, पीना, गाना, यज्ञाना, नाच रंग और धामोद प्रमोद हो। जैसे, कल रात को सभी लोग जलसे में गढ़ थे। (२) सभा समिति आदि का बड़ा अधिवेशन जिसमें सर्व सभाध्यक्ष सम्मिलित हैं। जैसे, पारसी धार्मिकसत्ता का सालाना जलसा होगा।

जलसिंह-संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० जलसिंह] सील की जाति का एक जंतु जो पर्वत रात गज खंया होता है और जिसके सारे शरीर में खलाई ज़िप पीले रंग के या काले भूरे बाज होते हैं। इसकी गर्दन पर बंध की तरह खंबे खंबे बाज पाने हैं। यह अत्यंत बली और शक्ति प्रकृति का होता है। यह

अमेरिका और एशिया के बीच कमसकटका उपद्वीप तथा ब्यूरोविल आदि द्वीपों के आस पास मिलता है। यह कुंड में रहता है। इसकी गरज बड़ी भयानक होती है और तंग किए जाने पर यह भयंकर रूप से आक्रमण करता है।

जलसिरस—संज्ञा पुं० [सं० जलसिरसि] जल में या जलाशय के धनि निकट पैदा होनेवाला एक प्रकार का सिरस वृक्ष। यह वृक्ष साधारण सिरस से बहुत छोटा होता है। इसे कहीं कहीं डाडोम भी कहते हैं।

जलसीय—संज्ञा स्त्री० [सं० जलसीय] वह स्त्री जिसमें मोती होता है।

जलसूचि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूँस। शिशुमार। (२) यज्ञ कबुआ। (३) जोक। (४) एक प्रकार का पौधा जो जल में पैदा होता है। (५) कौघा। (६) कंकमोट या कौघा नाम की मछली। (७) सिंघाड़ा।

जलस्त—संज्ञा पुं० [सं०] नहरवाला रोग।

जलसेनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

जलस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक देवी घटना जिसमें जलाशयों या समुद्र में आकाश से बादल झुक पड़ते हैं और बादलों से जल तक एक मोटा स्तंभ सा बन जाता है। कभी कभी यह सौ सवा सौ गज तक व्यास का होता है। जब यह बनने लगता है तब आकाश में बादल खन के समान नीचे मुकते हुए दिखाई पड़ते हैं और थोड़ी ही देर में पड़ते हुए जलतल तक पहुँच कर एक मोटे स्तंभ का रूप धारण कर लेते हैं। यह स्तंभ नीचे की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है। यह बीच में भूरे रंग का पर किनारे की ओर काले रंग का होता है। इसमें एक केंद्र-रेखा भी होती है जिसके आस पास भाप की एक मोटी तह होती है। इससे जलाशय का पानी ऊपर के खिंचने लगता है और बड़ा शोर होता है। यह स्तंभ प्रायः घंटों तक रहता है और बहुधा बढ़ता भी है। कभी कभी कई स्तंभ एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। स्थल में भी कभी कभी ऐसा स्तंभ बनता है जिसके कारण उस स्थान पर जहाँ यह बनता है, गहरा कुंड बन जाता है। जब यह नष्ट होने का होता है तब ऊपर का भाग तो उठ कर यादल में मिल जाता है और नीचे का पानी हाँकर बरस पड़ता है। लोग इसे प्रायः अशुभ और दानिकारक समझते हैं। सूँस।

जलस्तंभन—संज्ञा पुं० [सं०] मंत्रादि से जल की गति का अच-रोध करना। पानी बाँधना।

जलस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडवृक्ष।

जलहर—वि० [हिं० जल + हर] जलमय। जल में भरा हुआ। उ०—दादू करता करता निमित्त में जल माँ है धन थाप। थल माँ है जलहर करे, ऐसा समय थाप।—दादू।

संज्ञा पुं० [हिं० जलहर] जलाशय। उ०—(क) विरह जलाई में जलू जलती जलहर जाऊँ। माँ देखे जलहर जलें संतो कहा सुभाँवें।—कवीर। (ख) जैना भये अनाप हमारे। मदन गोपाल वहाँ ते सजगो सुनियत दूर सिधारे। वे जल-हर हम गीन यासुरी कैसे जियहिं निनारे। हम पातक चकारे श्यामवन वदन सुधा निधि प्यारे।—सूर।

जलहरण—संज्ञा पुं० [सं०] बत्तीस अक्षरों की एक वर्षी वृत्ति या दंडक जिसके श्रंत में दो लघु पड़ते हैं। इसमें सोलहवें वर्ष पर बति होती है। उ०—भरत सदा ही पूजे पादुका जतं स्नेम, इते राम सिय यँधु सहित सिपारे धन। सूपनखा के कुक्ष्य मारे खल भुंड धने, हरी दससीस सीता रावय विकल मन।

जलहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलहरी] (१) पत्थर या धातु आदि का वह अर्था जिसमें शिव-लिंग स्थापित किया जाता है। (२) एक बतैन जिसमें नीचे पानी भरा रहता है। लोहार इसमें लोहा गरम करके डुभाते हैं। (३) मिट्टी का घड़ा जो गरमी के दिनों में शिवलिंग के ऊपर टांगा जाता है। इसके नीचे एक धारीक छेद होता है जिसमें से दिन रात शिवलिंग पर पानी टपका करता है।

मि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।

जलहस्ती—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रीक जाति का एक जल-जंतु जो स्नानपायी होता है। यह प्रायः छः से आठ गज तक लंबा होता है और इसके शरीर का धमड़ा बिना बालों का और काले रंग का होता है। इसके सुँह में ऊपर की ओर १६ और नीचे की ओर १४ दाँत होते हैं। यह प्रायः दक्षिण महासागर में पाया जाता है, पर जब वहाँ अधिक सरदी पड़ने लगती है तब यह उत्तर की ओर बढ़ता है। नर की माक कुछ लंबी और सूँह की तरह आगे का निकली हुई होती है और वह प्रायः १५—२० मादाओं के सुँह में रहता है। गरमी के दिनों में इसकी मादा एक या दो बच्चे देती है। इसका मांस काले रंग का और चरबी मिला होता है और बहुत गरिष्ठ होने के कारण ताने योग्य नहीं होता। इसकी चर्बी के लिये जिससे मोमपत्तियाँ आदि बनती हैं, इसका शिकार किया जाता है। प्रयत्न करने पर यह पाला भी जा सकता है।

जलहार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलहारी] पानी भरनेवाला पनिहारा।

जलहालम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हालम या चंसुर वृक्ष जो जलाशयों के निकट होता है। इसकी पत्तियाँ सख्दार या मसाले की तरह काम में आती हैं और चीजों का उपयोग औषध में होता है।

जलहास—संज्ञा पुं० [सं०] फेन। समुद्र का फेन।

जलहोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का होम जिसमें वैश्वदेवादि के उदरेय से जल में आहुति दी जाती है।

जलाञ्जल-संज्ञा पुं० [सं०] पानी की नहर ।
 जलाञ्जल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवार । (२) सेता । स्रोत ।
 जलाञ्जलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पानी-भरी श्रेञ्जली । (२) पितरों
 या प्रेतादिक के उद्देश्य से श्रेञ्जली में जल भर कर देना ।
 जलातक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सात समुद्रों में से एक समुद्र
 (२) हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र का एक पुत्र जो सत्य
 भामा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था ।
 जलाशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कृप । कुर्वा ।
 जलाश्री-संज्ञा स्त्री० [हिं० जलना] (१) पेट की जलन । (२) तीक्ष्ण
 धूप की लपट । (३) लू ।
 जलाकर-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र, नदी, जलाशय आदि ।
 जलाकाश-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी ।
 जलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक ।
 जलाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल । जलपिप्पली ।
 जलालु-संज्ञा पुं० [सं०] जलजिलाय ।
 जलाजल-संज्ञा पुं० [हिं० जलजल] गोटे आदि की फालर ।
 कबाकल । व०—गति गर्वद कुच कुंम किंकिणी मगहुँ
 घंट मग्नाये । मोतिन हार जलाजल मानो सुमिदंत फल-
 कावे ।—सूर ।
 जलाटन-संज्ञा पुं० [सं०] कंक नामक पत्थी ।
 जलाटनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक ।
 जलाटीन-संज्ञा पुं० दे० "जलाटीन" ।
 जलातंक-संज्ञा पुं० [सं०] जलप्रास नामक रोग ।
 जलानन-वि० [हिं० जलना + नन] (१) क्रोधी । विगड़ैल ।
 बध्मिमान । (२) ईर्षालु । दाही ।
 जलारिमका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जोक । (२) कृपा । कृप ।
 जलास्य-संज्ञा पुं० [सं०] शरत् काल ।
 जलाद्-संज्ञा पुं० दे० "जलाद्" ।
 जलाधिदैवत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण । (२) पूर्वापादा
 नक्षत्र ।
 जलाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण । (२) कलित उपाधिपू के
 अनुसार ब्रह्म जो संवत्सर में जल का अधिपति हो ।
 जलाना-क्रि० घ० [हिं० जलना का सकर्मक रूप] (१) किसी पदार्थ
 को जलन के संयोग से धंगारे या लपट के रूप में कर देना ।
 प्रज्वलित करना । जैसे, धाग जलाना, शीशा जलाना । (२)
 किसी पदार्थ को बहुत शमी पहुँचा कर या धाँच की सहाय-
 यता से भाप या कोयले आदि के रूप में करना । जैसे, धंगारे
 पर रोटी जलाना, काढ़े का पानी जलाना । (३) धाँच
 के द्वारा विहृत या पीड़ित करना । कुलसना । जैसे,
 धंगारे से हाथ जलाना । (४) किमी के मन में डाढ़ ईर्ष्या
 या द्वेष आदि उत्पन्न करना । किमी के मन में पीताप उत्पन्न
 करना ।

मुद्दा—जला जला कर मारना = बहुत दुःख देना । खूब तंग
 करना ।
 जलापा-संज्ञा पुं० [हिं० जलना + पा (प्रत्य०)] टाह या ईर्ष्या
 आदि के कारण होनेवाली जलन ।
 क्रि० प्र०—सहना ।
 संज्ञा पुं० [सं०] जलप पाउडर] एक विलायती धाँच जो
 रेचक होती है ।
 जलापात-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत ऊँचे स्थान पर से नदी आदि
 के जल का गिरना । जलप्रपात ।
 जलायुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक ।
 जलायुव-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाकाल । बरसात ।
 जलाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेज । प्रकाश । (२) महिमा के
 कारण उत्पन्न होनेवाला प्रभाव । धातक ।
 जलालुका-संज्ञा पुं० [सं०] कसल की जड़ । भसीड़ ।
 जलालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक ।
 जलाय-संज्ञा पुं० [हिं० जलना + यात (प्रत्य०)] (१) खमीर या
 धाटे आदि का उठना ।
 क्रि० प्र०—धाना ।
 (२) खमीर । वह धाटा जो उठायो हो । (३) किंवाम ।
 पतला शीरा ।
 जलायतन-वि० [सं०] [संज्ञा स्त्री० जलायतनी] जिसे देस
 निकाले का दंड मिला हो । निर्वासित ।
 जलायतनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दंड स्वरूप किसी अपराधी का
 शासक द्वारा देस से निकाल दिया जाना । देश-निकाला ।
 निर्वासन ।
 जलायन-संज्ञा पुं० [हिं० जलना] (१) लकड़ी कंठे आदि जो
 जलाने के काम में आते हैं । ईंधन । (२) किसी वस्तु का
 यह धरा जो धाग में बरते लगाए, जलाए या गलाए जाने
 पर जल जाता है । जलता ।
 वि० प्र०—जाना ।—निकलना ।
 (३) मौसिम में कोयले के पहले पहल जलने का उत्सव ।
 हलमें से सब कारतकार जो इस कोयले में धपनी ईस येना
 चाहते हैं धपने धपने पेट से धोड़ी धोड़ी ईस साकर पदाँ
 पेटे हैं धीर उसका रस भासखों, भिरारियों आदि का
 पिनाते तथा उससे गुफ बना कर बाँटे हैं । भँवर ।
 जलायत-संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर । नाल ।
 जलाशय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह स्थान जहाँ पानी जमा हो ।
 जैसे, गड्ढा, तालाब, नदी, नाला, समुद्र आदि । (२)
 बरिय । पय । (३) लिंघाङ्ग । (४) सामग्रिक नाम का
 गूथ ।
 जलाशय-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुँदवा । नागरोपा ।
 जलाधय-संज्ञा पुं० [सं०] पूतण्ड या दीर्घनात्र नाम

जलाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूली घास ।

जलासुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जौक ।

जलाहल—वि० [हिं० जलाहल वा सं० जलशल] जलमय । उ०—

प्रानप्रिया सँसुघ्रान के नार पनारे भये बहि के भये नारे ।
नारे भये ते भई नदिया नद हँ गये काटि किनारे । वेगि चलो
जू चलो प्रग को नँदनदन चाहत चेत हमारे । वे नद चाहत
सिंघु भये अथ सिंघु ते हँई जलाहल सारे ।

जलाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल । (२) कुमुद । कुई ।

जलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जौक ।

जलील—वि० [सं०] (१) शुद्ध । बेकदूर । (२) जिसे नीचा
दिखाया गया हो । अपमानित ।

जलुक, जलुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जौक ।

जलूस—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से लोगों का किसी उरख के उप-
लक्ष में सत्र भज कर विरोधतः किसी सवारी के साथ, किसी
विशिष्ट स्थान पर जाने या नगर की परिक्रमा करने के लिये
चलना ।

फ़ि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।

जलेद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण । (२) महासागर ।

जलेधन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यादुयामिन । (२) वह पदार्थ
जिसकी गरमी से पाना सूखता है । जैसे, सूर्य, विद्युत्
आदि ।

जलेचर—वि० [सं०] जलचर ।

जलेच्छया—संज्ञा पुं० [?] हाथीसूँड़ नाम का पौधा जो
पानी में उत्पन्न होता है ।

जलेज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल

जलेतन—वि० [हिं० जलना + तन] (१) जिसे बहुत जल्दी क्रोध
आ जाता हो । जिसमें सहनशीलता बिलकुल न हो । (२)
जो हाड, हड्डी आदि के कारण बहुत जलता हो ।

जलेवा—संज्ञा पुं० [हिं० जलवा] बड़ी जलेबी ।

जलेषी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जलषा = खगर्ग या गीरा] (१) एक प्रकार
की मिठाई जो कुंडलाकार होती और खनन कडाए हुए पतले
मँदे से बनाई जाती है । पतले उठे हुए मँदे को मिट्टी के
किसी ऐसे बरतन में भर लेते हैं जिसके नीचे छेद होता है ।
तब उस बरतन को घी की कड़ाही के ऊपर रख कर दूध
प्रकार घुमाते हैं कि इसमें से मँदे की धार निकल कुंडला-
कार होती जाती है । एक लुकने पर उसे घी में से निकाल
शरीर में पोखी देर तक लुपो देते हैं । मिट्टी के बरतन की
जगह कभी कभी कपड़े की पोटली का भी व्यवहार किया
जाता है । (२) शरियारे की जाति का चार पाँच हाथ ऊँचा
एक प्रकार का पौधा जिसमें पीले रंग के फूल लगते हैं ।
इसके फूल के ऊपर कुंडलाकार लिपटे हुए बहुत से छोटे
छोटे बीज होते हैं । (३) गोल घेरा । कुल्ली । खपेट ।

धौ—जलेबीदार = जिसमें फई भरे हों ।

जलेभ—संज्ञा पुं० [सं०] जलहस्ती ।

जलेबद्दा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूरजमुखी नाम के फूल का पौधा ।

जलेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की अनुचरी एक मातृका
का नाम ।

जलेवाह—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में गोता लगा कर चीनें
निकालनेवाला मनुष्य । गोताखोर ।

जलेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण । (२) समुद्र । (३)
जलाधिप ।

जलेशय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मङ्गली । (२) विष्णु । (जिस
समय सृष्टि का लय होता है, उस समय विष्णु जल में
सोते हैं, इसीसे उनका यह नाम पड़—)

जलेद्रवर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र । (२) वरुण ।

जलोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जौक ।

जलोच्छ्रयास—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलाशयों में उठनेवाली
लहरें जो उनकी सीमा को उल्लेखन करके बाहर गिती हैं ।
(२) वह प्रयत्न जो किसी स्थान से जल को बाहर निकालने
घरवा उसे किसी स्थान में प्रविष्ट करने के लिये किया जाय ।
जलोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार साल कुर्मा या यावली
आदि का विवाह ।

जलोदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें नाभि के पास पेट
के चमड़े के नीचे की त्वह में पानी एकत्र हो जाता है जिससे
पेट फूल जाता है और आगे की ओर निकल पड़ता है ।
बच्चों का मत है कि घृतादि पान करने और यस्तिकर्म रोकन
और धमन के परचार चटपट उठे जल से खान करने से
जल-आदिनी नसें दूषित हो जाती हैं और पानी उतर जाता
है । इसमें रोगी के पेट में शब्द होता है और उसका शरीर
कांपने लगता है ।

जलोद्धति गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बारह चरणों की एक बड़ी
वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में जगण, सगण, जगण और
सगण होता है । (1A, 11A, 1A, 11A) उ०—जु सज्जि
सुपली हरी हि लिर में । धसे जु वसुदेव रैन जब में ।
प्रभू चरण को धुआ अनुन में । जलोद्धति गती हरी
धिनक में ।

जलोद्भव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुदला । (२) छोटी माही ।

जलोद्भूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुदला नाम की घास ।

जलोद्भाद—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम ।

जलोरगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जौक ।

जलौका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जौक ।

जलद—कि० वि० [सं०] [सजा जलद] (१) शीघ्र । चटपट ।

बिना विवर्ण । (२) तेजी से ।

जलदवाज—वि० [सं०] [संज्ञा जलदवाजी] जो किसी काम के

वर्तने में बहुत, विशेषतः आवश्यकता से अधिक जल्दी करता है। बहुत अधिक जल्दी करनेवाला।

जल्दी-संज्ञा स्त्री० [च०] जीप्रता। फुरती।

† हि० वि० दे० "जल्द"।

जल्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कथन। कहना। (२) बकवाद। व्यर्थ की बात। प्रलाप। (३) न्याय के अनुसार सोलह पदार्थों में से एक पदार्थ। यह एक प्रकार का वाद है जिसमें वादी चुन, जाति और निग्रह म्यान को लेकर अपने पक्ष का मंडन और विपक्षी के पक्ष का खंडन करता है। इसमें वादी का उद्देश्य तत्त्वनिर्णय नहीं होता किंतु स्वपक्षस्थापन और परपक्ष संक्षेप मात्र होता है। वाद के समान इसमें भी प्रतिज्ञा हेतु श्राद्धि पाँच अवयव होते हैं।

जल्पक-वि० [सं०] बकवादी। बाचाल। वाग्वृत्ती।

जल्पन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बकवाद। प्रलाप। गपवाप। व्यर्थ की बातें। (२) झोंग। बहुत बड़ कर कही हुई बात।

जल्पना-वि० श्रु० [सं०] जल्पन। व्यर्थ बकवाद करना। बहुत बड़े बड़े कर बात करना। झोंग मारना। सीटना। उ०—
(क) कहु जल्पसि जड़ कवि चल जाने। चल प्रताप बुधि तेज न ताके—तुलसी। (ख) जनि जल्पमि जड़ जंतु कवि सह विनेहू मम थाहु। लोकरपाल चल विपुल ससि प्रसन हेतु सष राहु।—तुलसी।

जल्पक-वि० [म०] जल्पक। बकवादी। बाचाल। व्यर्थ की बहुत सी बातें करनेवाला।

जल्पन-वि० [म०] (१) मिथ्या। जो (यात) वास्तव में ठीक न हो (२) कथित। कहा हुआ।

जल्पा-संज्ञा पुं० [हि० मील] (१) मील। (ला०), (२) साल। (३) हाज़। इद।

जल्पाद-संज्ञा पुं० [च०] वह जिसका काम ऐसे पुरुषों के प्रायः लेगा हो जिन्हें प्राणदंड की छात्रा हो चुकी हो। घातक। यधुश्रा। उ०—हो मन रामनाम वो गाहक। चौरासी लख जिया जौनि लख भटक फिरत अनाहक। करि दियाव सँ। सो जल्पाद यह हरि के पुर लै जाहि। घाट घाट कहुँ अटक होय नहिँ सख कोउ देखि निवादि।

जल्द-संज्ञा पुं० [सं०] शक्ति।

जय-संज्ञा पुं० [सं०] वेग।

† संज्ञा पुं० [सं०-यव] जी।

जयन-वि० [सं०] [स्त्री०] जयनी। जयवान। वेगयुक्त। तेज।

यश पुं० [सं०] (१) वेग। (२) स्कंद का एक सैनिक।

(३) योषा।

संज्ञा पुं० दे० "यवन"।

जयनाल-संज्ञा पुं० दे० "यवनाल"।

जयनिका-संज्ञा स्त्री० दे० "यवनिका"।

जयनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जवाइन। अजवायन। (२) तेज़ी। वेग।

जयस-संज्ञा पुं० [सं०] घास।

जयस-संज्ञा पुं० [सं०] वेग।

जयामदे-वि० [फा०] [संज्ञा जयामदी] (१) शूर वीर। यहादुर।

(२) बालीयियर। स्वच्छापूर्वक सेना में भरती होनेवाला सिपाही।

जयामदी-संज्ञा स्त्री० [फा०] वीरता। यहादुरी।

जया-संज्ञा स्त्री० दे० "जया"।

† संज्ञा पुं० [सं० यव] (१) एक प्रकार की सिलाई जिसमें तीन बखिया लगाते हैं और इस प्रकार सिलाई करके दर्ज को चीर कर दोनों ओर छुरप देते हैं। (२) लहसुन का एक धान।

जवाइन-संज्ञा स्त्री० [सं०] यवानी। अजवायन।

जवाई-संज्ञा स्त्री० [हि० जना] (१) जाने की क्रिया। गमन।

(२) जाने का भाव। (३) वह धन जो जाने के उपलक्ष में दिया जाय।

जवाखार-संज्ञा पुं० [सं०] बकना। एक प्रकार का नमक जो जी के पार से बनता है। वैद्यक में यह पाचक माना गया है।

जवादानो-संज्ञा स्त्री० [हि० जी + दाना] चंशकजी नामक गहना जो गले में पहना जाता है।

जवादि, जवादि कस्तूरी-संज्ञा पुं०, स्त्री० [च०] जवादि, जवादि। एक सुगंधित द्रव्य जो गधमांजर से निकाला जाता है। यह पीले रंग की एक चिकनी लसदार चीज़ है जो कस्तूरी की तरह महकती है। इसे गौरासार भी कहते हैं। दे० "गंधयिलाव"। उ०—पहिले तजि श्रास श्रासती देखि बरीक धसे घनसारहि लै। पुनि वेधि गुलाय तिलीधि फुलेल शँगोछे में श्रोछे शँगोछन को। कहि केशव मेद जवादि संतं मजि हते पर श्रजि में श्रजन है। बहुदे हरि देखें तो देखें कहा सखि छात्र ते' लोचन लागे दहै।—केशव।

जवाधिक-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत तेज दौड़नेवाला घोड़ा।

जवान-वि० [फा०] (१) युवा। तरुण।

यौ०—जवामिंद।

(२) वीर।

† संज्ञा पुं० (१) मनुष्य। पुरुष। (२) सिपाही। (३) वीर पुरुष।

जयानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जवाइन। अजवाइन।

संज्ञा स्त्री० [फा०] यौवन। तरुण्य। युवावस्था।

मुहाना—जवानी बटना या बमडना = यौवन का प्रारंभ होना। तरुण्य का प्रारंभ होना। जवानी बतरना = उमर बटना। बुढ़ापा आना। जवानी चढ़ना = (१) यौवन का आगमन होना। तरुण्य का प्रारंभ होना। (२) मंद पर आना। मंदम

होना। जवानी हलना = उमर खसकना। जवानी उतरना।
 बुढ़ाया श्राना। उठती जवानी = यौवनारंभ। चढ़ती जवानी।
 उतरती जवानी = यौवनावसान। उमर खसकने की अवस्था।
 चढ़ती जवानी = यौवनारंभ। जवानी का प्रारंभ होना। उठती
 जवानी।

जवाब-संज्ञा पुं० [५०] (१) किसी प्रश्न या बात को सुन शयवा
 पढ़ कर उसके समाधान के लिये कही या लिखी हुई
 बात। उत्तर।

धा०—जवाब-दावा। जवाब-देही।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मांगना।—मिलना।—
 लिखना।

मुहा०—जवाब तलब करना = (किसी घटना का) कारण
 पूछना। कैफियत मांगना। जवाब मिलना या कोरा जवाब
 मिलना = निर्देयात्मक उत्तर मिलना।

(२) वह जो कुछ किसी के परिणाम स्वरूप या बदले में
 किया जाय। कार्य रूप में दिया हुआ उत्तर। बदला। जैसे,
 जब बरष से गोलियों की बौछार आरंभ हुई तो हथर से भी
 उसका जवाब दिया गया। (३) मुकामले की चीज। जोड़।
 जैसे, इस तस्वीर के जवाब में इसके सामने भी एक तस्वीर
 होनी चाहिये। (४) नौकरी छूटने की आज्ञा। मौजूकी।
 जैसे, कल उन्हें यहाँ से जवाब हो गया।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

जवाब-तलब-वि० [५०] जिसके अर्थ में समाधान-कारक
 उत्तर मांगा गया हो।

जवाबदावा-संज्ञा पुं० [५०] वह उत्तर जो वादी के निवेदन-पत्र
 के उत्तर में प्रतिवादी लिख कर अदाखत में देता है।

जवाबदेह-वि० [५०] उत्तरदाता। जिस पर किसी बात का
 उत्तरदायित्व हो।

जवाबदेही-संज्ञा स्त्री० [५०] (१) उत्तर देने की क्रिया।
 (२) उत्तरदायित्व। उत्तर देने का भार। जिम्मेदारी। जैसे,
 मैं अपने ऊपर हतनी बड़ी जवाबदेही नहीं लेता।

जवाब सवाल-संज्ञा पुं० [५०] जवाब + सवाल (१) प्रश्नोत्तर।
 (२) वाद विवाद।

जवाबी-वि० [५०] जवाब संबंधी। जवाब का। जिसका जवाब
 देना हो। जैसे, जवाबी तार, जवाबी कार्ड।

जवार-संज्ञा पुं० [५०] (१) पड़ोस। (२) घास पास का प्रदेश।
 संज्ञा स्त्री० दे० 'जुघार'।

* संज्ञा पुं० [५०] जवाल (१) अवनति। घुरे दिन। (२)
 जंगल। अंकट। भार। ४०—स्वार्थ अग्रम परमारथ की
 कहा चली घेट की कठिन जग जीव को जवार है।

जवारा-संज्ञा पुं० [हि० जौ] जौ के दूरे दूरे शंकरु जिसे दशहरे
 के दिन सियां अपने भाई के कानों पर खोसती हैं या प्रायशी
 में प्राहण्य अपने यज्ञमनों के हाथों में देते हैं। जई।

जवारी-संज्ञा स्त्री० [हि० जव] एक प्रकार का हार जिसमें जौ,
 सुहारे, मोती आदि मिला कर गुंथे हुए होते हैं और जिसे
 कुछ जातियों में विवाह के उपरान्त समुर अपनी बहु के
 पहनाता है।

संज्ञा स्त्री० (१) मितार, तंबूरे, सारंगी आदि तारवाले बाजों
 में लकड़ी या हड्डी आदि का बंध छोटा टुकड़ा जो उन बाजों में
 नीचे की ओर बिना बुझा रहता है और जिस पर होकर
 सब तार खूंटियों की ओर जाते हैं। यह टुकड़ा सब तारों
 को बाजों के तल से कुछ ऊपर उठाए रहता है। घोड़ी।

(२) तारवाले बाजों में पड़ज का तार।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—बांधना।—लगाना।

जवाल-संज्ञा पुं० [५०] जवाल (१) अवनति। वतार। घटाव।

क्रि० प्र०—घाना।—पहुँचना।

(२) जंगल। आकृत। अंकट। पारेड़ा।

मुहा०—जवाल में पड़ना वा 'कँसना = अकृत में फँसना।
 अंकट या बनेड़े में फँसना। जवाल में डालना = अकृत
 में फँसना।

जवादीर-संज्ञा पुं० [५०] जवादीर एक प्रकार का गंधाविरोज
 जो कुछ पीले रंग का और बहुत पतला होता है। इसमें
 से ताड़पीन की गंध आती है। इसका व्यवहार प्रायः औषधों
 में होता है। दे० 'गंधाविरोज'।

जवास, जवासा-संज्ञा पुं० [सं० जवासक, प्र० जवास] एक
 कँटीला छुप जिसकी पतियां करींदे की पतियों के समान
 होती हैं। यह चट्टियों के किनारे बलुई भूमि में छाप से शाप
 उगता है। यरसात के दिनों में इसकी पतियां गिर जाती हैं
 और छुँआर तक यह बिना फूलता है। वैद्यक में इसका कड़ुआ,
 कसीला, हलका और कफ, रक्त, पित्त, खाँसी, गुष्पा, तथा
 ज्वर का नाशक और रक्तरोधक माना गया है। कहीं कहीं गरमी
 के दिनों में इस की तरह इसकी टट्टियां भी लगते हैं।

पय्या०—पास। जवासक। अनेता। यालपत्र अधिककंकट।
 दूरमूल। समुद्रत। दीर्घमूल। मरुद्भव। कंटकी। घनदर्म।
 सूक्ष्मपत्र।

जवाह १-संज्ञा पुं० [?] (१) शाल का एक रोग
 जिसमें पलक के भीतर की ओर किनारे पर याल जम आते
 हैं। प्रवाल। परवल। (२) दैलों की शाल का एक रोग
 जिसमें उसके नीचे मांस बढ़ आता है।

जवाहदु-संज्ञा स्त्री० [हि० जवा = दाना + हट] बहुत छोटी हट।

जवाहर-संज्ञा पुं० [५०] रत्न। मणि।

जवाहरखाना-संज्ञा पुं० [५०] जवाहर + खाना [५०] वह स्थान
 जिसमें बहुत से रत्न और आभूषण आदि रहते हैं। रत्नशाला।
 तोशखाना।

अबाहिर-संज्ञा पुं० दे० 'अबाहिर' ।

अबाहिरात-संज्ञा पुं० दे० 'अबाहिरात' ।

अबाही-वि० [हिं० अबाह] (१) जिसकी भाल में अबाह रोग हुआ हो। (२) अबाह रोग युक्त। जैसे, अबाही श्याल।

अबी-वि० [सं० अबीन्] वेगयुक्त। वेगवान्।

अबी पुं० (१) घोड़ा। (२) जैट।

अबीया-वि० [सं० अबीयस्] अर्थात् वेगवान्। बहुत तेज।

अबीया-वि० [हिं० अना + येया] (अन०) जानिवाला। गमन-शील।

अजान-संज्ञा पुं० [प्रा० मि० सं० अजान] (१) धार्मिक उत्सव। (२) किसी प्रकार का उत्सव। जलसा। (३) आनन्द। हर्ष।

अजि० प्र०—मनाना।

(३) यह नाम और शाना जिसमें कई चेरयाएँ एक साथ सम्मिलित हैं। यह बहुत्वा मङ्गलित या जलसे की समाप्ति पर होता है।

अजस-वि० [सं० अजा, प्रा० अजा] जैसा। उ०—अजस अजस खुसा बदन यदावा। तासु दुगुन कपि रूप दिव्यान्।—तुलसी।

अ-संज्ञा पुं० दे० 'अरा'।

असद-संज्ञा पुं० [सं०] अस्ता।

असुरि-संज्ञा पुं० [सं०] अश्व।

अस्त-संज्ञा पुं० दे० 'अस्ता'।

अस्ता-वि० [हिं० अस्ता] अस्ते के रंग का। ख़ाकी।

अस्ता-संज्ञा पुं० [सं० असद] कालापन लिए सफेद या ख़ाकी रंग की एक धातु जिसमें गंधक का अंश बहुत होता है। इसका व्यवहार अनेक प्रकार के कार्यों में विशेषतः लोहे की चादों पर, उन्हें सोरबे से बचाने के लिये कलई करने, धेरी में पिजली उत्पन्न करने तथा धरतन आदि यानों में होता है। भारत में इसकी सुराहिया बनती हैं जिनमें रखने से पानी बहुत लफ्दी और खूब ठंडा हो जाता है। इसे ताँबे में मिलाने से पीतल बनता है; जर्मन मिलकर बनाने में भी इसका उपयोग होता है। विशेष रासायनिक प्रक्रिया से इसका धवहार औषधों तथा रंगों आदि में होता है। पहले यह धातु भारत और चीन में ही मिलती थी पर आज कल पेशजिपम तथा मूरिया में भी इसकी बहुत सी खानें हैं। यूरोपवालों को इसका पता बहुत हाल में लगा है।

अ-वि० दे० 'अही'। उ०—अँह अँह चरघ पड़े संतन के, अँह अँह धँटापार। (कहावत)

अहङ्गना-वि० अ० [सं० अहन, हिं० अहङ्गना] (१) घाटा उठाना।

हानि उठाना। उ०—(क) हिंदू गुंगा गुरु कहे, सुसलित गोष प्रगोय। कहे कबीर अहँदे दोरु, मोह नाँव में सोय।—

कबीर। (२) धोले में आना। अम में पड़ना। (३) अब हम जाना हो हरि याजी को खेल। संक बजाय देलाय तमारा बहुनि सो तेस लखेल। हरि याजी सुर नर मुनि जहँडे माया नेटक लाय। पर में धारि मवन भरमाया हृदया ज्ञान न श्राया।—कबीर।

अहँडाना-वि० अ० [सं० अहन] (१) हानि उठाना। (२) धोले में पड़ना। उ०—सथे लोग अहँडुा वधी शंथा सभे सुलान। कहा कोई नहिँ मानही सव एकै माँह ममान।—कबीर।

अहकना-वि० अ० [हिं० अकना] चिड़ना। कुड़ना।

अहतिया-संज्ञा पुं० [हिं० अगत = कर] जगात उगाहनेवाला। भूमिकर या लगान वसूल करनेवाला। उ०—साँचा सो लिख धार कहाँवै। काया प्राप्त मसादत करि कै जमा बाधि टहरावै। ममथ करै कैद शपनी में जान अहतिया लावै। माँहि माँहि परिहात क्रोध को फेता भजन भरावै।—सूर।

अहस्ताधी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें पद या वाक्य अपने वाच्यार्थ को छोड़ कर अभिप्रेत अर्थ को प्रकट करता है। जैसे 'मम घर गंगा माँहि' यहाँ गंगा माँहि से गंगा के वाँच अर्थ नहीं है किंतु गंगा को किनारे अर्थ है। इसे अहलक्षणा भी कहते हैं।

अहद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें एक वा एक से अधिक देश का त्याग और केवल एक देश का ग्रहण किया जाय। वह लक्षणा जिसमें बोलनेवाले को शब्द के वाच्यार्थ से निकलनेवाले कई एक भावों में कुछ का परित्याग कर केवल किसी एक का ग्रहण अभिप्रेत होता है। जैसे 'यह वही देवदत्त है' इस वाक्य से बोलनेवाले का अभिप्राय केवल देवदत्त से है न कि पहले के देवदत्त से या अथ के देवदत्त से। इसी प्रकार छुँदिगय उपनिषद् में 'आप हुए 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' अर्थात् है श्वेतकेतु। यह तू ही है, आया है। इस वाक्य से कहनेवाले का अभिप्राय ब्रह्म के सर्वज्ञत्व और श्वेतकेतु के अल्पज्ञत्व वा महा की सर्वव्यापिता और श्वेतकेतु की एकदेशिता को एक उद्धारना का नहीं है किंतु दोनों की चेतनता ही की और लक्ष्य है।

अहदना-वि० अ० [हिं० अहदा] (१) कीचड़ होना। दल दल हो जाना।

संगो० अ०—जाना।—उठाना।

(२) निमित्त पड़ना। धक जाना। हाँक जाना।

अहदा-संज्ञा पुं० [?] दलदल। बहुत अधिक कीचड़। उ०—जग अहदा में राधिया शूटे कुल की लाज। तन लीजे कुल चिनसिदँ रटे न नाम अहजान।—कबीर।

अहदम-संज्ञा पुं० दे० 'अहदम'।

अहदना-वि० अ० [सं० अहन] (१) त्यागना। छोड़ना। परि-

स्वाग करना । (२) नाश करना । नष्ट करना । उ०—जदि पर दोष अस्त भी कैसे । फिरि है खब बलुक सुख मैसे ।

जहन्नुम—संज्ञा पुं० [ष०] (१) नरक । दोनज़ू ।

मुहा०—जहन्नुम में जाय = चूहे में जाय । छुमे कोई संबंध नहीं । (इस मुहावरे का प्रयोग दुःख-जनित उद्वेगशीलता प्रकट करने के लिये होता है । जैसे, जब वह माभता ही नहीं तब वहशु म में जाय ।)

(२) वह स्थान जहाँ बहुत अधिक दुःख और कष्ट हो ।

जहन्नुमरसीद—वि० [फा०] नरक में गया हुआ । दोनज़ू ।

जहन्नुमी—वि० [फा०] नारकिक । जहन्नुम में जानेवाला ।

जहमत—संज्ञा स्त्री० [ष०] (१) आपत्ति । मुसीबत । आफत ।

मुहा०—जहमत उठाना = दुःख भोगना । मुसीबत उठाना ।

(२) कंकट । खलेड़ा ।

मुहा०—जहमत में पड़ना = कंकट में फँसना । खलेड़े में पड़ना ।

जहर—संज्ञा स्त्री० [फा० जह] (१) वह पदार्थ जो शरीर के अंदर पहुँच कर प्राण ले ले अथवा किसी अंग में पहुँच कर उसे रोगी कर दे । विप । गाल ।

धा०—जहरवाद । जहरमोहरा ।

मुहा०—जहर उगलना = (१) मर्मभेदी बात कहना जिससे कोई बहुत दुखी हो । (२) द्वेषपूर्ण बात कहना । जली फटी कहना । जहर करना या कर देना = (बहुत अधिक नमक मिर्च आदि डाल कर) किसी खाद्य पदार्थ को खाना कठुआ कर देना कि उसका खाना कठिन हो जाय । जहर का घूँट = बहुत कठुआ । येसवाद या कठुआ होने के कारण न खाने योग्य । जहर का घूँट पीना = किसी अनुचित बात को देख कर क्रोध से मन ही मन दवा रखना । क्रोध को प्रकट न होने देना । जहर का बुझाया हुआ = जो बहुत अधिक उपद्रव या अनिष्ट कर सकता हो । जुहर की गाँठ = देला "विप की गाँठ" । किसी पर जहर खाना = किसी बात या आदमी के कारण खानि, दुःख, ईर्ष्या, लज्जा आदि से आत्महत्या पर उतार डोना । जैसे, तुम्हारे इस काम पर तो उन्हें जहर खा लेना चाहिए । जहर देना = जहर पिलाना या खिलाना । जहर मार करना = अनिच्छा या अरुचि होने पर भी जबरदस्ती खाना । जैसे, कच-हरी जाने की जल्दी थी, किसी तरह दे दे रोटियाँ जहर मार करके चबते बने । जहर मारना = विप के प्रभाव या शक्ति को दबाना या शांत करना । जहर में बुझाना = धारदार (तीर, छुरी, तक्षवार, कटार, आदि) छुपियों को विपाक करना । (ऐसे हथियारों से जब धार किया जाता है तब वगले घायल होनेवाले मनुष्य के शरीर में उनका विप प्रविष्ट हो जाता है जिसके प्रभाव से आदमी बहुत जल्दी मर जाता है ।)

(२) अमिय बात या काम । वह बात या काम जो बहुत नागवार मालूम हो । जैसे, हमारा यहाँ आना उन्हें जहर मालूम हुआ ।

मुहा०—जहर करना या कर देना = बहुत अधिक अमिय, या अस्वभाव कर देना । बहुत नागवार बना देना । जैसे, उन्होंने हमारा खाना पीना जहर कर दिया । जहर मिलाना = किसी बात को अमिय कर देना । जहर में बुझाना = किसी बात या काम को अमिय बनाना । जैसे, आप जो बात कहते हैं, जहर में बुझा कर कहते हैं । जहर लगना = बहुत अमिय जान पड़ना । बहुत नागवार भावमें होना ।

वि० (१) घातक । मार डालनेवाला । प्राण खोनेवाला ।

(२) बहुत अधिक हानि पहुँचानेवाला । जैसे, उर के रोगी के लिये धी जहर है ।

* संज्ञा पुं० दे० "जौहर" । उ०—ग्यारह पुत्र कथाह वारहें अन्नय बचायो । साजि जहर वृत नारि धम्मं कुजधम्मं रत्नायो ।—राधाकृष्णदास ।

जहरगन—संज्ञा स्त्री० [हिं० जहर + गति] नाच की एक गत जिसमें घूँघट काड़ के नाचा जाता है ।

जहरघाट—वि० [फा०] जहरीला । विपाक ।

जहरघाट—संज्ञा पुं० [फा०] रक्त के विकार के कारण उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का बहुत भयंकर और विपाक फोड़ा, जिसके शारंग में शरीर के किसी अंग में सूजन और जलन होती है और तदुपरांत उस अंग में फोड़ा होकर बढ़ने लगता है । इसका विप शरीर के भीतर ही भीतर शीघ्रता से फैलने लगता है और फोड़ा बढ़ी कठिनता से अच्छा होता है । यह रोग मनुष्यों के अतिरिक्त घोड़ों, बैलों और हाथियों आदि को भी होता है । कहते हैं कि इस फोड़े के अच्छे हो जाने पर भी रोगी अधिक दिनों तक नहीं जीता ।

जहरमोहरा—संज्ञा पुं० [फा० जहरमुहरा] (१) काले रंग का एक प्रकार का पत्थर जिसमें सफेद काटने के कारण शरीर में चढ़े विप को खींच लेने की शक्ति होती है । यह पत्थर शरीर में उस स्थान पर रखवा जाता है जहाँ सफेद काटा हो ; कहते हैं कि यह पत्थर उस स्थान पर आप से आप चिपक जाता है और जब तक सारा विप नहीं खींच लेता तब तक वहाँ से नहीं छूटता । यह भी ब्रवाद् है कि यह पत्थर बड़े मेंढक के सिर में से निकलता है । (२) हरे रंग का एक प्रकार का पत्थर जो कई तरह के विषों को खींच लेता है । यह बहुत ठंडा होता है इसलिये गरमी के दिनों में लोग इसे पिस कर शरबत में मिला कर पीते हैं । सुतान देश का यह पत्थर, जिसे "जहरमोहरा खताई" कहते हैं, बहुत अच्छा होता है ।

जहरीला—वि० [हिं० जहर + ईला (प्रत्य०)] जिसमें जहर हो । जहरदार । विपाक । जैसे, जहरीला फल, जहरीला मानवर ।

जहल्लिध्या—संज्ञा स्त्री० दे० "जहल्लिया" ।

जहाँ—कि० वि० [सं० यत्, पा० यत्, प्रा० जह] (१) स्थानसूचक

एक शब्द । जिस स्थान पर । जिस जगह । उ०—धन्य सो
देस जहाँ सुरसरी धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी ।—तुलसी ।

मुद्रा०—जहाँ का तहाँ = अपने पहले के स्थान पर । जिस
जगह पर हो उठी जगह पर । जहाँ का तहाँ रह जाना =
(१) दब जाना । आगे न बढ़ना । (२) कुछ कार्रवाई
न होना । जहाँ तहाँ = (१) इतततः । इधर उधर । उ०—जहाँ
तहाँ गईं सकल तव सीता कर मन सोच । मास दिवस बीने
मोहिं मारिहिं निसिचर पोच ।—तुलसी ।

(२) सब जगह । सब स्थानों पर । उ०—रहा एक दिन प्रवधि
कर शक्ति भास्त पुर लोग । जहाँ तहाँ सोचिहिं गोरि भर कृत तनु
राम वियोग ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [फा०] जहान । संसार । लोक ।

विशेष—इस रूप में इस शब्द का व्यवहार केवल कविता या
यौगिक शब्दों में होता है । जैसे, (क) जहाँ में जहाँ तक
जगह पादप इमारत बनाते चले जाहए । (ख) जहाँगीरी ।
जहाँपनाह ।

जहाँगीरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) हाथ में पहनने का एक प्रकार
का जड़ाज गहना । यह कई प्रकार का होता है । साधारणतः हाथ
में पहनने की सोने की ये पटरियाँ जहाँगीरी कहलाती हैं जिन
पर मन जड़े होते हैं । कहीं कहीं पटरियों में कोड़े भी जड़े
होते हैं जिनमें बहुत छोटे छोटे घुँघरूयों के फूल के आकार
के गुच्छे पिरो दिए जाते हैं । इन पटरियों को भी जहाँगीरी
कहते हैं । (२) हाथ में पहनने की लाल की एक प्रकार
की चूड़ी ।

जहाँदीदा, जहाँदीदा—वि० [फा०] अनुभवी । जिसने दुनिया
को देख कर बहुत कुछ तजदया किया हो ।

जहाँपनाह—संज्ञा पुं० [फा०] संसार का रक्षक ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल बहुत बड़े राजा के लिये ही
किया जाता है ।

जहाँ—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुँही ।

जहाँज—संज्ञा पुं० [अ०] बहुत अधिक बड़ी नाव जो बहुत गहरे
जल विशेषतः समुद्र में चलती है ।

विशेष—आज कल के जहाँजों का अधिकांश भाग लोहे का
ही होता है और उन के चलाने के लिये भाप के बड़े बड़े
इंजिनों से काम लिया जाता है । यात्रियों को ले जाने,
माल लेने, देशों की रक्षा करने, लड़ने मिट्टने आदि कामों के
लिये अलग अलग तरह के जहाँज बुधा करते हैं । यात्रा
आदि के कामों के लिये साधारण जहाँजों की लंबाई छः सौ
फुट तक होती है ।

मुद्रा०—जहान का कौवा या काग = दे० “जहाँजी कौथा” ।
उ०—सीतापति रघुपति नू तुम लग मेरी ईश । जैसे काग
जहान को शूम्ल और न ठौर ।—तुलसी ।

जहाँजी—वि० [अ०] जहान से संबंध रखनेवाला । जैसे,
जहाँजी वेड़ा ।

यो०—जहाँजी इत्र = एक प्रकार का निकट इत्र जो कौजी में
बनता है । जहाँजी कौथा = (१) वह कौथा जो किसी
जहान के छूटने के समय उत पर बैठ जाता है और जहान के
बहुत दूर समुद्र में निकल जाने पर जब वह उड़ता है तब चारों
ओर कहीं स्थान न देख कर फिर उठी जहान पर आ बैठता है ।
साधारणतः इतने ऐसे मनुष्य का अभिप्राय किया जाता है जिसे
अपने ठहरने बैठने या किसी काम करने के लिये एक के लिये
और कैसा दूसरा स्थान न मिलता हो । (२) बहुत बड़ा धूल ।
भारी चालाक । जहाँजी डाकू = वे डाकू जो समुद्रों में अपना
जहान लेकर घूमते रहते हैं और साधारण जहानों के यात्रियों
को छूट लेते हैं । समुद्री डाकू । जहाँजी सुपारी = एक प्रकार
की सुपारी जो साधारण सुपारी से दूनी बड़ी होती है ।

जहान—संज्ञा पुं० [फा०] संसार । लोक । जगत । जैसे, जान है
तो जहान है । (कहावत)

विशेष—कविता और यौगिक शब्दों में इस शब्द का रूप “जहाँ”
हो जाता है । दे० “जहाँ” (संज्ञा) ।

जहानक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय ।

जहालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] अज्ञान । सूत्रता ।

जहिया—वि० [सं०] यद् + दिया । जब । जिस समय ।

उ०—(क) कह कथीर कुछ अछुलोन जहिया । हरि विरवा
प्रनिवालेसि तहिया ।—कथीर । (ख) भुज बलविरव जितव
नुम जहिया । धरिहिं विष्णु मनुज तनु तहिया ।—तुलसी ।

जही—वि० [सं०] यत्, या० दाय । (१) जहाँ ही । जिस स्थान
पर । उ०—(क) सत् संघ सात ही तरंगिनी बदै जहीं । सोय
रूप ईरा को अयोप जंहु सेवही ।—केशव । (ख) जहीं जहीं
विराम लेत राम नू तहाँ तहीं अनेक भक्ति के अनेक भोग
भाग सों बड़े ।—केशव । (२) ज्यों ही । उ०—सीय जहीं
पहिराई । रामहि मान सुदाई । दुहुनि देव भयाये । कूल
तहीं बरसाये ।—केशव ।

जहीन—वि० [अ०] (१) बुद्धिमान् । समझदार । (२) धारणा
शक्तिवाला ।

जहु—संज्ञा पुं० [सं०] संतान ।

जहूर—संज्ञा पुं० [अ०] प्रकार ।

मुद्रा०—जहूर में आना = प्रकट होना । जहूर में लाना = प्रकट
करना ।

जहुरा—संज्ञा पुं० [अ०] जहूर । (१) देखाता । धरय । (२) ठाठ ।
(३) लडका । (यामल)

जहेज—संज्ञा पुं० [अ०] सं० दायज । वह धन-संपत्ति जो कन्या
के विवाह में पिता की ओर से बर को अथवा उसके घरवालों
को दी जाती है । दहेज ।

जङ्गु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) एक राजर्षि का नाम । पुराणों के अनुसार जत्र भगीरथ गंगा को लेकर था रहे थे तब वे मार्ग में यज्ञ कर रहे थे । गंगा के कारण यज्ञ में विघ्न होने के भय से इन्होंने उसको पी लिया था । भगीरथजी के बहुत प्रार्थना करने पर इन्होंने फिर गंगा को कान से निकाल दिया था । तभी से गंगा का नाम आइवी पड़ा ।

विशेष—इस शब्द के साथ कन्या, सुता, तनया आदि पुत्री वाचक शब्द लगाने से गंगा का अर्थ होता है ।

जहुतनया-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जहुससमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विशाख की शुक्रा ससमी । कहते हैं कि इसी दिन जहु ने गंगा को पान कर लिया था । गंगा-ससमी ।

जाँ-संज्ञा स्त्री० दे० "जा" ।

चि० दे० "जा" ।

जाँग-संज्ञा पुं० [दे०] घोड़ों की एक जाति । उ०—जरदा, जिरही, जाँग, सुनौची, ऊदे खजत । कर रकवाहे कवल गिलगिली गुलगुल रंजन ।—सूदन ।

संज्ञा स्त्री० दे० "जाँघ" ।

जाँगड़ा-संज्ञा पुं० [दे०] राजाओं का बय मानेवाला । भाट । बंदी । उ०—कहँ जाँगे थालाप विरद कलाप भूप प्रताप । अतिशय मिजाजी चढ़े यानी करत थरि उर ताप ।—सुमान ।

जाँगर-संज्ञा पुं० [हिं० जान या जॉघ] (१) शरीर । देह । (२) हाथ पैर ।

धा०—जाँगर-घोर = आलसी । जो काम करने से जी चुगता हो । डील-हराम ।

जाँगरा-संज्ञा पुं० दे० "जाँगड़ा" ।

जाँगल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीतर । (२) मांस । (३) वह देव जहाँ जज बहुत कम बरसता हो, धूप और गरमी अधिक पड़ती हो, हरे वृक्षों या घास आदि का अभाव हो, फलील, मदार, येल, और शमी आदि के पेड़ हों और बारहसिंघे और हिरन आदि पशु रहते हों । (४) ऐसे प्रदेश में पाए जानेवाले हिरन और बारहसिंघे आदि जंतु जिनका मांस मधुर, रुखा, हलका, दीपन, रुचिकारक, शीतल और प्रमेह, कंडमाला और श्लीषद आदि रोगों का नाशक होता है ।

वि० जाँगल सर्वधी । जंगली ।

जाँगलि, जाँगलिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सैपरा । साँप पकड़ने-वाला मद्दारी । (२) विष वैद्य । साँप की जहर उतारनेवाला ।

जाँगली-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौड़ । केंवाच ।

जाँगलू-वि० [फा० जंगल] गँवार । जंगली । उजड़ू ।

जाँगी-संज्ञा पुं० [. ?] नगास । (हिं०)

जाँगुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोरई । तरौई । (२) विष । (३) दे० "जाँगुल" ।

जाँगुलि, जाँगुलिक-संज्ञा पुं० [सं०] साँप पकड़नेवाला । गाड़की । सैपरा ।

जाँगुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप का विष उतारने की विद्या ।

जाँघ-संज्ञा स्त्री० [सं०] जंघा = पिंडली । घुटने और कमर के बीच का अंग । उर ।

जाँघा-संज्ञा पुं० [दे०] (१) हल । (पूर्य) । (२) कुएँ के ऊपर गढ़ारी रखने का खंभा । (३) लकड़ी या लोहे का वह धुरा जिसमें गढ़ारी पहनाई हुई होती है ।

जाँघिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँट । (२) एक प्रकार का मृग जिसे श्रीकारी भी कहते हैं । (३) वह जिसकी जीविका बहुत दौड़ने आदि से ही चलती हो । जैसे, हरकारा ।

जाँघिया-संज्ञा पुं० [हिं० जाँघ + इया (भाव०)] (१) पायजामे की तरह का कमर में पहनने का एक प्रकार का सिंहा हुआ कपड़ा जिसकी मोहरियाँ घुटनों के ऊपर तक ही रहती हैं । काड़ा । इसे प्रायः पहलवान और नट आदि पहनते हैं । (२) मालखंब की एक प्रकार की कसरत जिसमें बेंत को पैर के श्रंगुटे और दूसरी उँगली से पकड़ कर पिंडली में लपेटते हुए दूसरी पिंडली पर भी लपेटते हैं और तब दूसरे पैर के श्रंगुटे से बेंत को पकड़ कर नीचे की ओर तिर करके लटक जाते हैं ।

जाँघिल-संज्ञा पुं० [हिं० जाँघ] यह रँग जिसका पिड़ला पैर चलने में लच खाता हो ।

† वि० जिसका पैर चलने में लच खाता हो ।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) खाकी रंग की एक चिड़िया जिसकी गरवन लंबी होती है । इसका मांस स्वादिष्ट होता है और उसी के लिये इसका शिकार किया जाता है । (२) प्रायः एक वाशिरत लंबी एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसकी छाती और पीठ सफेद, पर काने, पाँच और सिर पीला, पैर खाकी और हुम गुलाबी रंग की होती है ।

जाँच-संज्ञा स्त्री० [हिं० जाँचना] (१) जाँचने की क्रिया या भाव । परीक्षा । परख । इस्तदान । श्राजमाइय । (२) गवेषणा । तहकीकात ।

धा०—जाँच पड़ताल = खोज के साथ किसी बात का पता लगाना । छान बीन ।

जाँचक*†-संज्ञा पुं० दे० "जाचक" या "वाचक" ।

जाँचकता*†-संज्ञा स्त्री० दे० "जाचकता" या "वाचकता" ।

उ०—(क) जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाइ जो जारति जे जहानहि रे ।—तुलसी । (ख) सुख दीनता दुखी हनके हुष जाँचकता अकुलानी ।—तुलसी ।

जिबना-क्रि० सं० [सं० याचर] (१) किसी विषय की सत्यता या झगलता झगया योग्यता वा अयोग्यता का निर्णय करना। सलाख्य आदि का अनुसंधान करना। यह देना कि कोई चीज ठीक है या नहीं। जैसे, हिसाब जिबना, काम जिबना।

सं० क्रि०-देखना।-रखना।-डालना।

(२) किसी बात के लिये प्रार्थना करना। नांगना।

उ०-(क) जिन जिब्यो जाहू इस नदरया धरे। मानो धरसत मान असादू दाबुर मोर रहे।-सूर। (ख) रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रसु विधि बचन कीहू चह साचा।-तुलसी।

(ग) यही उर्र के कारने जग जिब्यो निसि याम। स्वामि-पते मिर पर चडयो सरयो न पकै काम।-कवीर।

जिजरा-क्रि०-वि० [सं० जजरे] जो बहुत ही जीर्ण हो। जजर।

उ०-साग्यो यह दोग जु में रोपाहै धनुष तैरो जिजरो। पुराणे हो में जनि गये काम से।-हनुमान।

जिभो-संज्ञा पुं० [सं० भिन्ना] यह धरा जिसके साथ तेज हवा भी हो।

जिठ-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पेड़ जिसे रीवा भी कहते हैं।

जित-संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] जिता। आटा पीसने की बड़ी चक्री। उ०-धरती स्वरग जित पर कोऊ। जो एहि बिच जिव राख न कोऊ।-जायसी।

जिता-संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] (१) आटा पीसने की पर्यर की बड़ी चक्री जो प्रायः जमीन में गड़ी रहती है।

क्रि० प्र०-चलाना।-पीसना।

(२) सुनारों और तारकशों आदि का एक औजार। यह हथपात या फालाद लोहे की एक पट्टी होती है जिसमें कमरः बड़े छेदे अनेक छेद होते हैं। उन्हीं में कोई धातु की बत्ती या मोटा तार आदि रख कर उसे धींचते धींचते लंबा और महीन तार बना लेते हैं। इसे लंसी भी कहते हैं।

जिद-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार के पेड़ का नाम।

जिपनाही-संज्ञा पुं० दे० "जहपिनाह"।

जिब-संज्ञा पुं० [सं० जन्वा] जंबू फल। जामुन। जाम। उ०-

(क) काहू गही शंभ की धारा। कोई विरह जाय अति धारा।-जायसी। (ख) हयाम जाय कस्तूरी चोवा। शंभ जो ऊंच हूय तेहि रोवा।-जायसी।

जिबवंत-संज्ञा पुं० दे० "जिबवान्"। उ०-(क) महाधीर गंभीर बचन सुनि जिबवंत बचन सममाए। बड़ी परस्पर प्रीति रीति तब भूयय मिदा दिलाए।-सूर। (ख) जिबवंत सुतासुन कहां मम सुता बुद्धिवंत पुत्र यह सय सेमारे।-सूर।

जिबय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जामुन का फल। जंबू फल। (२)

जामुन के फल से बनी हुई रिपिट। जामुन का बना मद्य।

(२) जामुन का सिरका। (३) सोना। स्वर्ण।

जिबवक-संज्ञा पुं० दे० "जिबव"।

जिबवती-संज्ञा स्त्री० [सं० जिबवती] (१) जिबवान की कन्या जिसके साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था।

विशेष-भागवत में लिखा है कि श्रीकृष्ण जय स्वयंसेवक मणि की खोज में जंगल में गए थे तो वहाँ उन्होंने जिबवान को परास्त करके वह मणि पाई थी और उसकी कन्या जिबवती से विवाह किया था। उ०-(क) जिबवती धरपी कन्या भरि मणि राखी समुहाय। करि हरि ध्यान गढ़ हरि पुर को जहाँ योगेश्वर जाय।-सूर। (ख) अचराज वह मणि तासों लै जिबवती को दीन्हो। प्रसमन को विलंब भयो तब सत्रा-जित सुध लीन्हो।

(२) नामदमनी। नागदौन।

जिबवान्-संज्ञा पुं० [सं०] सुग्रीव के गंधी का नाम जो मद्रा का पुत्र माना जाता है और जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह रीख था। रावण के साथ युद्ध करने में श्रेता युग में इसने रामचंद्र को बहुत सहायता दी थी। भागवत में लिखा है कि द्वारपुत्र युग में इसीकी कन्या जिबवती के साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था। यह भी कहा जाता है कि सतयुग में इसने वामन भगवान् की परिक्रमा की थी।

जिबवि-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ।

जिबवी-संज्ञा स्त्री० दे० "जिबवती"।

जिबवैष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] जिबैष्ट नामक छोटा अस्त्र जिससे प्राचीन काल में फोड़े आदि जलाए जाते थे।

जिबीर-संज्ञा पुं० [सं०] जंबीरी मीठ।

जिबील-संज्ञा पुं० [सं०] पैर के छुटने में बंधवाली मोल हड्डी।

जिबुमाली-संज्ञा पुं० [सं०] प्रहस्य नामक राक्षस के पुत्र का नाम जिसे अरोक वाटिका उजाड़ते समय हनुमान ने मार डाला था।

जिबुसत्त-संज्ञा पुं० दे० "जिबवान्"।

जिबुवान्-संज्ञा पुं० दे० "जिबवान्"।

जिबू-संज्ञा पुं० दे० "जंबू" (द्वीप)। उ०-जिबू चौर पलाच है शालमली कुन्य चारि। कौंच सेकला द्वीप पट पुन्कर सात विचार।

जिबूनद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्रा। (२) सोना।

जिबिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का छोटा अस्त्र जिससे फोड़े आदि जलाए जाते थे।

जिबत-संज्ञा पुं० दे० "जावत" या "दावन"। उ०-कवि तज साग्य यन डाला। जिबत केत रोम परि पाता।-जायसी। (ख) पुन रूपवंत बखला काहा। जिबत जगत सपै मुख चाहा।-जायसी।

जावर*—संज्ञा पुं० [हिं०] गमन । प्रस्थान । जाना । उ०—
नव नव खाइ लड़ाइ खाड़िल नार्हो नार्हो कहूँ पूज जावरो ।

—स्वामी हरिदास ।

जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता । मां । (२) देवराणी । देवर की स्त्री ।

की छीं० डपन्न । संभूत । जैसे, गिरिजा, जनकजा ।

*सर्व० [हिं० जो] जो । जिस । उ०—(क) जा कर जा पर

सत्य सनेहू । सो तेहि मिले न कछु संदेहू ।—तुलसी ।

(ख) एक समान जब हूँ रहत खान मदन में दोष । जा

तिय के तन में तबहिं मच्या कहिए सोय ।—पद्माकर ।

(ग) मेरी भव थापा हरी राधा नागर सोई । जा तन की

काहें परे स्याम हरित हुति होई ।—विहारी ।

वि० [का०] मुनासिब । उचित । वाजिब । जैसे, जैसे थापकी

बात बहुत जा है ।

घो०—वेजा = नामुनासिब । जो ठीक न हो ।

जाइंट—संज्ञा पुं० [अ० ज्वाइंट] (१) जोड़ । वैवंद । (२) गिरह ।

गाँठ । (मिस्रती) । (३) दे० ज्वाइंट ।

जाइ०—वि० [हिं० जाना] व्यर्थ । व्युथा । निष्प्रयोजन । बेफायदा ।

उ०—सुमन सुमन अरपन लिये उपवन ते धन क्याइ ।

धरनी धरि हरि तकि कही हाह भयो भ्रम जाइ ।

जाइफर, जाइफल—संज्ञा पुं० दे० “जायफल” ।

जाइस—संज्ञा पुं० दे० “जायस” ।

जाई—संज्ञा स्त्री० [सं० जा = उत्पन्न] (१) कन्या । बेटा । पुत्री ।

लक्ष्मी । (२) जाती । चमेली ।

जाईनि*—संज्ञा स्त्री० दे० “जासुन” ।

जाडर—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाडर = चमक] मीठा और चावल डाल

कर पकाया हुआ दूध । खीर ।

जापली—संज्ञा पुं० [देग०] दो बार जाता हुआ खेत ।

जापस—संज्ञा पुं० दे० “जायस” ।

जाक०—संज्ञा पुं० [सं० यन] यज्ञ ।

जाकट—संज्ञा स्त्री० दे० “जाकेट” ।

जाकड़—संज्ञा पुं० [हिं० जा कर] (१) दूकानदार के यहाँ से कोई

माल इस शर्त पर ले आना कि यदि वह पसंद न होगा तो

फेर दिया जायगा । पक्का का उलटा । (२) इस प्रकार (शर्त

पर) लाया हुआ माल ।

घो०—जाकड़ बही ।

जाकड़ बंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाकड़ + बंदी] वह बंदी जिसमें

दूकानदार जाकड़ दिए हुए माल का नाम और दाम आदि

टांक लेते हैं ।

जाकेट—संज्ञा स्त्री० [अ० जैकेट] कुर्ता या सदरी की तरह का एक

प्रकार का अंग्रेजी पहनावा ।

जाखन—संज्ञा स्त्री० [देग०] पहिए के आकार का लकड़ी का

गोल चक्र जो कुशों की नींव में दिया जाता है । जमवट ।
नेवार ।

जाग—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] (१) यज्ञ । मख । उ०—(क) तप

कीर्ण से देईं ध्याग । ता सेती तुम कीजा जाग । यज्ञ किये

गंधर्व लोक सिधैंहीं । तहाँ जाय मोके तुम पैंहीं ।—सूर ।

(ख) चहत महा मुनि जाग जयो । नीच निसाचर देत दुसह

दुख छस तनु ताप तयो ।—तुलसी । (ग) दण्ड लिए मुनि

बोखि सय करन लगे धड़ जाग । नेवते सादर सकल सुर जे

पावत मख भाग ।—तुलसी ।

[संज्ञा स्त्री० [हिं० जगह] (१) जगह । स्थान । ठिकाना । उ०—

(क) तुहिका न मुहिकां कहीं लुहिकां रही न जाग भाग कुल

आर तोपलाना याच व्यावा है ।—सुदन । (ख) कुदरत

वाकी भर रही रसनिधि सयही जाग । ईंधन विन बनियी

रहे ज्यो पाहन में श्राय ।—रसनिधि । (२) गृह । घर ।

मकान । (डि०)

संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना] जागने की क्रिया या भाव । जाग-

रण । उ०—घटती होइ जाहि ते थापनी ताको कीजे ध्याग ।

धोले कियो वास मन भीतर अथ समके भाई जाग ।

संज्ञा पुं० [देग०] वह कवूतर जो बिलकुल काले रंग

का हो ।

संज्ञा पुं० [अ० जैक] जहाज का भाँटार-रुक्क ।

जागत—संज्ञा पुं० [सं०] जगती छंद ।

जागती कला—संज्ञा स्त्री० दे० “जागती जगत” ।

जागती जगत—संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना + ज्येति] (१) किसी देवना

विशेषतः देवी की प्रत्यक्ष महिमा वा चमत्कार । (२) चिराय ।

दीपक ।

जागना—कि० अ० [सं० जागरण] (१) सोकर उठना । नींद

लागना । उ०—आइ जगावहिं चेत जागहु । श्राया गुरु

पाम उठि लागहु ।—जायसी ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पढ़ना ।

(२) निद्रा रहित रहना । जागृत अवस्था में होना । (३)

सजग होना । चैतन्य होना । सावधान होना । उ०—जराई

दसा रथि काल उयो अजहूँ जड़ जीवन जागहि रे ।—तुलसी ।

(४) उदित होना । चमक उठना । उ०—(क) भागत अभाग

अनुदागत चिराय भाग जात बालस तुलसी से । निकाम

कैं ।—तुलसी । (ख) निरचय प्रेम पीर पृहि जागा । कमे

कसैटी कंचन लागा ।—जायसी ।

मुह्रा०—जागता = प्रत्यक्ष । साक्षात् । जैसे, जागती जगत,

जागती कला । उ०—ज्राहिरे जागति सी अनुया जय पड़े

बड़े बमड़े वह येनी ।—पद्माकर ।

(५) समुद्र होना । यह चढ़ कर होना । उ०—पद्माकर

स्थाहु सुधा ते सरे मधु ते महा माधुरी जागती है ।—पद्मा-

कर । (१) जोर शोर से उठना । समुत्थित होना । जैने, लोकमत का आगना । (७) प्रवर्धित होना । जलना । (८) प्रदुर्भूत होना । अस्थिर प्राप्त करना ।

जगनैल-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का हथियार ।

जागवलिक्का-संज्ञा पुं० दे० "याजवन्ध" उ०—जागवलिक्क

जो कथा सुवाई । भरद्वाज मुनिवर्द्धि सुनाई ।—मुलसी ।

जागर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जागरण । जाग । जागने की क्रिया ।

उ०—सुनि हविदास यह जिय जानै सुपने को सी जागर ।—

हरिदास । (२) कवच । (३) अंतःकरण की वद

भवस्था जिसमें उसकी सब (मन बुद्धि अहंकार आदि)

वृत्तियाँ प्रकाशित या जागृत हो ।

जागरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निद्रा का अभाव । जागना । (२)

क्रिया प्रत, पर्व या धार्मिक उत्सव के उपलक्ष में भयवा इसी

प्रकार के किसी और भवसर पर भगवत् भजन करते हुए

सारी रात जागना । उ०—दासर ध्यान करत सय धीये ।

निशि जागरत करत मन भीषो ।—सुर ।

जागरित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जागरण । नींद का न होना ।

(२) सांख्य और चेदंत के मत से वह अवस्था जिसमें मनुष्य

को इंद्रियों द्वारा सब प्रकार के व्यवहारों और कार्यों का

अनुभव होता रहे ।

जागरित स्थान-संज्ञा पुं० [सं०] वह अस्थान जो जागरित

स्थिति में हो ।

जागरितांत-संज्ञा पुं० [सं०] वह अस्थान जो जागरित स्थिति में

हो । जागरित स्थान ।

जागद्ध-संज्ञा पुं० [दे०] (१) भूसा आदि मिट्टा हुआ वह

खराब अन्न जो दूँवाई के बाद अच्छा अन्न निकाल लेने पर

बच रहता है । (२) भूसा ।

जागरुक्क-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जागृत अवस्था में हो । चैतन्य ।

जागहृप-वि० [हिं० जगना + हृप] जो बहुत ही प्रवृत्त और

सुष्ट हो ।

जागाइ-संज्ञा स्त्री० दे० "जगह" ।

जागति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जागरण । जागति (२) चेतनता ।

जागी-संज्ञा पुं० [सं०] घाट ।

जागीर-संज्ञा स्त्री० [फा०] जमीन मुसलमानी । तख्तलुका । परगना ।

पैसी भूमि जो राजा यादशाह मन्वाप आदि किसी के प्रदान

करते हैं । वह भाँव या जमीन आदि जो किसी राज्य या शासक

आदि की ओर से किसी को उसकी सेवा के उपलक्ष में

मिले । सेवा के उपरकार में मिली हुई भूमि ।

फि० प्र०—देगा ।—पाना ।—मिलना ।

जागीरदार-संज्ञा पुं० [फा०] वह जिसे जागीर मिली हो । जागीर

का मालिक ।

जागीरी-संज्ञा स्त्री० [फा० जागीर + ई (प्रत्य०)] (१) जागीरदार

होने का भाव । (२) अमीरी । रईसी । उ०—भागता सो
बुद्धि पीठ जो लागी धाय । जागीरी सब जतरी धनी न
कहनी थाव ।—कवीर ।

जागुड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) केसर । (२) एक प्राचीन देश का

नाम । (३) उस देश का निवासी ।

जागृवि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा । (२) धाम ।

जाप्रत-वि० [सं०] (१) जो जागता हो । (२) वह अवस्था

जिसमें सब बातों का परिज्ञान हो ।

जाप्रति-संज्ञा स्त्री० [सं० जागृत] जागरण । जागने की क्रिया ।

जाधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] उर । जाँव । जंघा ।

जाचकाँ-संज्ञा पुं० [सं० याचक] (१) माँगनेवाला । वह जो

माँगता हो । भिच्छूक । मँगन । भिखारी । उ०—नर नाग सुरा-

सुर जाचक जो तुम्ह सों मन भावत पाये न फैं ।—तुलसी ।

(२) भिखमंगा । भीख माँगनेवाला । उ०—दोऊ चाद भरे

कट्ट चाइत कळो कहै न । नहिँ जाचक सुनि सुम लौ याइर

निरुसत यै ।—विहारी ।

जाचकता-संज्ञा स्त्री० [सं० याचकत्व] (१) माँगने का भाव ।

(२) भिखमंगा । भीख माँगने की क्रिया । उ०—जेहिँ जाचे

सो जाचकता थस फिरि बहु नाच न नाथ्यो ।—मुलसी

जाचना-संज्ञा-वि० [सं० याचन] माँगना ।

जाजम-संज्ञा [तु०] एक प्रकार की चादर जिस पर बेल घड़े आदि

घुपे होते हैं और जो फरों पर बिछाने के काम में आती है ।

जाजमटार-संज्ञा पुं० [दे०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें

सब शुद्ध स्वर लगते हैं ।

जाजरा-संज्ञा-वि० [दे०] स० जजरे । जजरे । जीर्ण । उ०—(क)

अ्यों घुन लगगई काठ वो लोहइ लागइ कांठ । काम किया

घट जाजरा दाइ यारह बाट ।—दाइ । (ख) जीर्णो अथमजइ

जाजरो जत जवन सुकर के साचक टका टकेयो मग मैं ।—

तुलसी ।

जाजरी-संज्ञा पुं० [दे०] बहेलिया । चिन्नीमार ।

जाजकर-संज्ञा पुं० [फा० जा + कर] शौच क्रिया करने का

स्थान । पाखाना । टट्टी ।

जाजल-संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद की एक शाखा का नाम ।

जाजलि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रवर-प्रवर्तक शक्ति का नाम ।

जाजात-संज्ञा स्त्री० दे० "जायदाद" ।

जाजिम-संज्ञा स्त्री० [तु० जाजिम] (१) एक प्रकार की दुपरी हुई

चादर जो बिछाने के काम में आती है । (२) गलीचा ।

काठीन ।

जाज्यव्य-वि० [सं०] (१) प्रवृत्त । प्रकाशयुक्त । (२)

सेवार्थ ।

जाज्यव्यमान-वि० [सं०] (१) प्रचलित । वीसिमात्र । (२) तेजस्वी । तेजवान् ।

जाट-संज्ञा पुं० [?] (१) भारतवर्ष की प्रसिद्ध जाति जो समस्त पंजाब, सिंध, राजपूताना और संयुक्त प्रदेश के कुछ भागों में फैली हुई है । इस जाति के लोग सध्या में बहुत अधिक है और भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं । इस जाति के अधिकांश आचार व्यवहार आदि राजपूतों से मिलते जुलते होते हैं । कहीं कहीं ये लोग अपने को राजपूतों के श्रंतर्गत बतलाते हैं । राजपूतों के ३६ वंशों में जाटों का भी नाम ध्राया है । कुछ देशों में जाटों और राजपूतों का विवाह-संबंध भी होता है पर कहीं कहीं के जाटों में विधवाविवाह और सगाई की प्रथा भी प्रचलित है । जाटों की वृत्ति के संबंध में अनेक कथार्य प्रसिद्ध हैं । कोई कहता है कि इन की वृत्ति शिव की जटा से हुई और कोई जाटों को यदुवंशी और जाट शब्द को यदु या यादव से संबद्ध बतलाता है । अधिकांश जाट खेती बारी से ही अपना निर्वाह करते हैं । पंजाब, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में बहुत से सुसशमान जाट भी हैं । (२) एक प्रकार का रंगीन या चमत्ता गाना । संज्ञा स्त्री० दे० "जाट" ।

जाटालि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पलाश की जाति का एक पेड़ जिसे मोला कहते हैं ।

जाटालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्शिकेय की एक मातृका का नाम ।

जाटिकायन-संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद के एक ऋषि का नाम ।

जाट-संज्ञा पुं० [सं० यथे] (१) लकड़ी का वह मोटा और ऊँचा खट्टा जो कोलहू की कूँड़ी के बीच में लगा रहता है और जिसके घूमने और जिसका दाब पढ़ने से कोलहू में डाली हुई चीजें पेरी जाती हैं । (२) किसी चीज विशेषतः तालाब आदि के बीच में गड़ा हुआ लकड़ी का ऊँचा और मोटा खट्टा ।

जाट-संज्ञा पुं० [सं० जट] (१) पेट । उदर । (२) पेट की वह अग्नि जिसकी सहायता से खायी हुआ अन्न आदि पचता है । जटराग्नि । (३) भूल । छुपा ।

वि० (१) जट संबंधी । (२) जो जट से उत्पन्न हो । (संतान)

जाटरात्रि-संज्ञा स्त्री० दे० "जटरात्रि" ।

जाटि-संज्ञा स्त्री० दे० "जाट" ।

जाड़-संज्ञा पुं० दे० "जाड़ा" ।

‡ वि० अत्यंत । बहुत अधिक ।

जाड़ा-संज्ञा पुं० [सं० जट] (१) वह यदु जिसमें बहुत उंड पड़ती हो । शीत काल । सरदी का मौसम ।

विशेष—भारतवर्ष में जाड़ा प्रायः अगहन के मध्य से श्रावण होता है और श्रावण के श्रांभ तक रहता है ।

(२) सरदी । शीत । पाला । टंड ।

क्रि० प्र०—पढ़ना—खगना ।

जाड़-संज्ञा पुं० [सं०] जाड़ का भाव । अड़ता ।

जाड्यारि-संज्ञा पुं० [सं०] जंभीरी नद्वि ।

जाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म । (२) पुत्र । वेदा । (३)

चार प्रकार के पारिभाषिक पुत्रों में से एक । यह पुत्र जिनमें उसकी माता के से गुण हो । (४) जीव । प्राणी ।

वि० (१) अल्प । जन्मा हुआ । जैसे, जलजात । ४०— देखत इद्विजात देखि देखि निज गात चंपक के पात कट्टु लिख्यो है बनाइ के ।—केशव । (२) व्यक्त । प्रकट । (३) प्रशस्त । अशुद्ध । (४) जिसने जन्म ग्रहण किया हो । जैसे, नवजात ।

संज्ञा स्त्री० दे० "जाति" ।

संज्ञा स्त्री० [सं० जात] शरीर । देह । कण्मा । जैसे, उसकी जात से तुम्हें बहुत फायदा होगा ।

संज्ञा स्त्री० दे० "जाति" ।

जातक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यथा । ३०—(क) तुलसी मन रंजन रंजित अंजन मनन सु अंजन जातक से ।—तुलसी । (ख) जारै कहाँ बाँक ध्यारव हल जातक जनहि न पीर है कैसी ।—सूर । (२) कारंटी । बत । (३) भिन्न । (४) फलित ज्योतिष का एक भेद जिसके अनुसार कुंडली देख कर उसके फल को कहते हैं । (५) एक प्रकार के यौद्ध ग्रंथ जिनमें महाराम बुद्धदेव के पूर्व जन्मों की कथार्य लिखी हैं । संज्ञा पुं० हॉग का पेड़ ।

जातकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के दस संस्कारों में से चौथा संस्कार जो बालक के जन्म के समय होता है । ३०—

तथ नंदीमुख ध्याद करि जातकर्म सव ; कीन्ह ।—तुलसी ।

विशेष—इस संस्कार में बालक के जन्म का समाचार सुनते ही पिता मना कर देता है कि अभी बालक की नाल न काटी जाय । तदुपरंत वह पढ़ने हुए कपड़ों सहित ध्यान करके कुछ विशेष पूजन और वृद्ध-आदि आदि करता है । इसके अनंतर ब्राह्मचारी, कुमारी, गर्भवती या विद्वान् ब्राह्मण द्वारा घोड़े हुईसिल पर लोहे से पीसे हुए चावल और जौ के चूर्ण को शौंठे और अनामिका से लेकर मंत्र पढ़ता हुआ बालक की जीभ पर मलता है । दूसरी बार यह सोने से जो लेकर मंत्र पढ़ता हुआ उसकी जीभ पर मलता है और तब नाल काटने और दूध पिजाने की आशा देकर रमान करता है । आज कल यह संस्कार बहुत कम लोग करते हैं ।

जातक्रिया—संज्ञा स्त्री० दे० "जातकर्म" ।

जातज्ञात रोग—संज्ञा पुं० [सं०] यह रोग जो बच्चे को गर्भ ही से माता के कृप्य खादि के कारण हो ।

जातना—संज्ञा स्त्री० दे० "यातना" । व०—(क) गर्भ वास दुःख रासि जातना सीय विरति विसराये ।—तुलसी ।

जात पति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + पति] जाति । विराद्री । जैसे, जात पति खुदे नहिं कोह । हरि को भजे सो हरि का होह । जातरां—संज्ञा स्त्री० दे० "यात्रा" ।

जातरूप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुषर्ष । सोना । (२) धनुर ।

जातयेद—संज्ञा पुं० [सं० जातयेदस्] (१) श्रानि । (२) चित्रक वृक्ष । शीत का पेड़ । (३) श्वेतर्षाभी । परमेष् । (४) सूर्ये ।

जातयेदम—संज्ञा पुं० [सं० जतयेदमन्] यह घर जिसमें बालक का जन्म हो । सौरी । सूतिकागार ।

जाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या । पुत्री ।

वि० उत्पन्न ।

संज्ञा पुं० दे० "जाता" ।

जाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिंदुओं में मनुष्य समाज का वह विभाग जो पहले पहले कर्मानुसार किया गया था पर पीछे से स्वभावतः जन्मानुसार हो गया । व०—कामी क्रोधी खालची हून पै मक्ति न होय । मक्ति करे कोइ सुरमा जाति यरन कुल लोय ।—कबीर ।

विशेष—यह जाति-विभाग आरंभ में वर्षा विभाग के रूप में ही था, पर पीछे से प्रत्येक वर्षा में भी कर्मानुसार कई शालाएँ हो गईं, जो आगे चल कर निम्न निम्न जातियों के नामों से प्रसिद्ध हुईं । जैसे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सोनार, लोहार, कुम्हार आदि ।

(२) मनुष्य समाज का वह विभाग जो निवास-स्थान या संश-परंपरा के विचार से किया गया हो । वैसे, शंभरज जाति, मुगल जाति, पारसी जाति, आर्य जाति आदि । (३) यह विभाग जो कुछ धर्म आदि की समानता के विचार से किया जाय । केटि । वर्ण । जैसे, मनुष्य जाति, पशु जाति, कीट जाति । व०—(क) सबल जाति के कैंधे हुरंगम रूप धनुर विराजाला ।—रघुराज । (ख) यह अर्घुनी जाति का पोड़ा है । (ग) यह दोनों श्राम एक ही जाति के हैं ।

विशेष—न्याय के अनुसार दूयों में परस्पर भेद रहते हुए भी जिस से उनके विषय में समान बुद्धि प्रयुक्त हो सके जाति कहते हैं । जैसे, क्षत्रिय, मनुष्य, पशु, आदि । "सामान्य" भी इसी का पर्याय है ।

(४) न्याय में किसी हेतु का वह अनुपपुक्त संबन्ध या उत्तर जो केवल साधर्म्य या वैधर्म्य के आधार पर हो । जैसे, यदि वादी कहे कि आत्मा निष्किय है क्योंकि वह आकाश के

समान विद्यु है, और इस पर प्रतिवादी यह उत्तर दे कि विद्यु आकाश के समान धर्मवाला होने के कारण यदि आत्मा निष्किय है तो क्रिया-हेतु-गुण युक्त लोह के समान होने के कारण वह क्रियावान् क्यों नहीं है, तो उसका यह उत्तर केवल साधर्म्य के आधार पर होने के कारण अनुप-युक्त होगा और जाति के श्रतगत आवेगा । इसी प्रकार यदि वादी कहे कि शब्द अनित्य है क्योंकि वह उत्पत्ति-धर्मवाला है और आकाश उत्पत्ति-धर्मवाला नहीं है और इसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि यदि शब्द उत्पत्ति-धर्मवाला और आकाश के असमान होने के कारण अनित्य है तो वह घट के असमान होने के कारण नित्य क्यों नहीं है ? तो उसका यह उत्तर केवल वैधर्म्य के आधार पर होने के कारण अनुप-युक्त होगा और जाति के श्रतगत था जायगा ।

विशेष—न्याय में जाति सोलह पदार्थों के श्रतगत मानी गई है । मैवायिकों ने इसके और भी सूक्ष्म २४ भेद किए हैं जिनके नाम ये हैं—(१) साधर्म्य सम । (२) वैधर्म्य सम । (३) शक्य सम । (४) अशक्य सम । (५) वण्य सम । (६) अवण्य सम । (७) विकल्प सम । (८) साध्य सम । (९) प्राप्ति सम । (१०) अप्राप्ति सम । (११) प्रसंग सम । (१२) प्रतिश्रत सम । (१३) अनुपपत्ति सम । (१४) संशय सम । (१५) प्रकरण सम । (१६) हेतु सम । (१७) श्रयार्पित सम । (१८) अविशेष सम । (१९) उपपत्ति सम । (२०) उपलब्धि सम । (२१) अनुपलब्धि सम । (२२) नित्य सम । (२३) अनित्य सम । (२४) कार्य सम । (२) वर्षा । (३) कुल । मंत्र । (४) गोत्र । (५) जन्म । (६) धामजकी । छोटा आँवला । (७) सामान्य । साधारण । धाम । (११) चमेली । (१२) जायिरी । (१३) जायफल । जाती फल । (१४) यह पद्य जिसके चरणों में मात्राओं का नियम हो । मात्रिक छंद ।

जातिकर्म—संज्ञा पुं० दे० "जातकर्म" ।

जातिकोश, जातिकोप—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिकोशी, जातिकोपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री ।

जातिच्युत—वि० [सं०] जाति से गिरा या निकाला हुआ । जो जाति से अलग या बाहर हो ।

जातिव्य—संज्ञा पुं० [सं०] जातीयता । जाति का भाव ।

जातिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जाति या वर्षा का धर्म । (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि का अलग अलग कर्तव्य ।

जातिवत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री ।

जातिपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री ।

जानिपथी—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री ।

जाति पति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + हि० पति (पति)] जाति या

वर्षे आदि। ३०—जाति पति वन सम हम नहीं। हम
निगुंय सव गुण उन पाहीं।—सूर।

जातिफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिवैर—संज्ञा पुं० [सं०] स्वाभाविक शत्रुता। सहज वैर।

विशेष—महाभारत में जाति वैर पांच प्रकार का माना गया
है,—(१) छी कृत। (२) वास्तुज। (३) यागज। (४) सापन।
और (५) अपराधज।

जातिब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जिसका केवल जन्म
किसी ब्राह्मण के घर में हुआ हो और जिसने तपस्या या
वेद-अध्ययन आदि न किया हो।

जातिभ्रंशकर—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार नौ प्रकार के
पापों में से एक प्रकार का पाप जिसका करनेवाला जाति
और आश्रम आदि से भ्रष्ट हो जाता है। इसके अंतर्गत
ब्राह्मणों को पीड़ा देना, मंदिरा पीना अथवा अलाय
पदार्थ खाना, कपट-व्यवहार करना और पुरुष-मैथुन आदि
कई निन्दनीय काम हैं। यह पाप यदि अनजान में हो तो
पापों को प्राज्ञापत्य प्राथरिचत और यदि जानकारी में हो तो
सांतपन प्राथरिचत करना चाहिए।

जानिशाश्य—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिसंकर—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षसंकर। देगला।

जानिसार—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिसूत—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल। जातीफल।

जातिस्वभाव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अलंकार जिसमें
श्राकृति और गुण का वर्णन किया जाता है।

जाती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमेली। (२) आमतकी। छेता
आवला। (३) मालती। (४) जायफल।

†* सज्ञा स्त्री० दे० "जाति"।

संज्ञा पुं० हाथी। (हिं०)

जाती-वि० [सं० जात] (१) व्यक्तिगत। (२) अपना।
निज का।

जातीकौटा, जातीकौप—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री। जायपत्री।

जातीपूग—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीय-वि० [सं०] जाति संबंधी। जाति का। जातिवाला।

जातीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाति का भाव। जातिव। जाति
की ममता।

जातीरस—संज्ञा पुं० [सं०] यौल नामक गंध द्रव्य।

जातु—अन्व० [सं०] कदाचित्।

जातुक—संज्ञा पुं० [सं०] हींग।

जातुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भवती स्त्री की हड्डा।

जातुधान—संज्ञा पुं० [सं०] राघव। निराधर। असुर।

जातुप-वि० [सं०] जतु या खाल का घना हुआ।

जातू—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

जातू-हथी—संज्ञा पुं० [सं०] उपस्मृति बनावेवाले एक श्रष्टि का
नाम। हरिश्च के अनुसार इनका जन्म शट्टाहसर्वे द्वार
में हुआ था।

जातूकर्षी—संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि भवभूति के पिता
का नाम।

जातेष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जातकर्म।

जातोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह यैव जो बहुत ही छोटी अथवा
में धंधिया कर दिया गया हो।

जात्य-वि० [सं०] (१) कुलीन। उत्तम कुल में उत्पन्न। (२)
श्रेष्ठ। (३) सुंदर। जो देखने में बहुत अच्छा हो।

जात्य त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज क्षेत्र जिसमें एक सम
कोण हो। जैसे, ▽

जात्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तांतिकों का एक आसन जिसमें हाथ
और पैर जमीन पर रख कर चलते हैं। कहते हैं इस आसन
के सिद्ध हो जाने से पूर्व जन्म की सब बातें याद हो जाती हैं।

जात्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह दूतित उत्तर जिसमें
व्याप्ति स्थिर न हो। यह अठारह प्रकार का माना गया है।

जात्यारोह—संज्ञा पुं० [सं०] खगोल के अक्षांश की गिनती में वह
दूरी जो मेघ से पूर्व की ओर प्रथम अंश से ली जाती है।

जाया—संज्ञा स्त्री० दे० "यात्रा"।

जात्री—संज्ञा पुं० दे० "यात्री"।

जायका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जूयिका। टैरी। टैर। राशि।

जादय—संज्ञा पुं० [सं०] यदव। यदव। यदुवरी।

जादयपति—संज्ञा पुं० [सं०] यदवपति। श्रुकृष्णचंद्र।

जादसपति, जादसपती—संज्ञा पुं० [सं०] यदसपति। जल-
जंतुओं का स्वामी। वरुण।

जादा—संज्ञा पुं० [सं०] दे० "ज्याद"।

जादू—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अदृश्य और अचरचर जन्म
कृत्य जिसे लोग शैलीकिक और अमानवी समझते हैं।
इंद्रजाल। तिलस्म।

विशेष—प्राचीन काल में संसार की प्रायः सभी जातियों के
लोग किसी न किसी रूप में जादू पर बहुत विश्वास करते
थे। उन दिनों लोगों की चिकित्सा, बड़ी बड़ी कामनाओं की
सिद्धि और इसी प्रकार की अनेक दूसरी बातों के लिये अच्छे
अच्छे जादूगरों और सयानों से अनेक प्रकार के जादू ही
कराए जाते थे। पर अब जादू पर से लोगों का विश्वास बहुत
अंशों में उठ गया है।

क्रि० प्र०—चलना।—करना।

मुहा०—जादू जगाना = प्रेममग आरंभ करने से पहले जादू
का चैतन्य करना।

(२) वह अद्भुत खेल या कृत्य जो दूरोंकी की दृष्टि और बुद्धि को घोसा देकर किया जाय। तारा, ध्रुवी, वही, हुरी और सिके आदि के तरह तरह के विलक्षण और बुद्धि को चकामेवाले खेल इसी के अंतर्गत हैं। (३) देना। देना। (४) दूसरे को मोहित करने की शक्ति। मोहिनी। जैसे, उसकी आँसों में जादू है।

क्रि० प्र०—आलना।

आह्वार—संज्ञा पुं० [आ०] [आ० आह्वारकी] यह जो जादू करता हो। तरह तरह के अद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य करने वाला मनुष्य।

आह्वारी—संज्ञा स्त्री० [आ०] जादू करने की क्रिया। आह्वार का काम।

आहुतज्ञर—संज्ञा पुं० [आ०] दधि माघ से मोहित कर लेनेवाला। देवते ही मन बुमानेवाला। जिसके नेत्रों में जादू हो।

आदिर्वा—संज्ञा पुं० [सं० यदव] (१) यदुपेंदरी। यदुपेंदर में बल्य। उ०—सुमति विचारहि परिहरहि दल सुमनहु संप्राम। सकल गप रान विनु भये सांगी जादी काम।— तुलसी। (२) नीच जाति। नीच कुलात्पत्र।

आदिर्वाय—संज्ञा पुं० [सं० यदव] श्रीकृष्णचंद्र। उ०—गहं मारत पतंग कुच कालट्ट खगाह। मातु की गति दई ताहि क्पाज आदिर्वाह।—तुलसी।

आन—संज्ञा स्त्री० [सं० हन] (१) ज्ञान। जानकारी। उ०—हमारी जान में तो कोई ऐसा आदमी नहीं है। (२) समझ। अनुमान। ध्यात्व। उ०—मेरे जान हन्हहि घोसिये फारन चतुर जनक टयो डाट हतोरी।—तुलसी।

आन—जान पहचान—परिचय। एक दूसरे से जानकारी उ०—
(क) हमारी बनकी जान पहचान नहीं है। (ख) तुमसे जान पहचान होगी।

सुहा०—जान में = जानकारी में। जहाँ तक कोई जगता है वहाँ तक। उ०—मेरी जान में तो यहाँ ऐसा कोई नहीं है।

विशेष—हम शब्द का प्रयोग केवल समास में या "में" विभक्ति के साथ ही होता है। किंग के विषय में भी मत-भेद है।

वि० सुजान। जानकार। ज्ञानवान। चतुर। उ०—
(क) हम परिचयन काम जान निरोमति भाव प्रिय। जन शुन राहक राम दोषदहन कइनायतन।—तुलसी। (ख) जान निरोमनि हो हनुमान सदा जन के मन पास तिहारो।—तुलसी।

(ग) प्रभु को देखो एक सुभाष। धति गभीर वदार उदधि सति जान निरोमनि राय।—सूर। (घ) प्रेम समुद्र रूप रस गहिरै कैंने लागै घाट। येकाज्यो है जान कहावत जान पंगे कि कहा परी घाट।—हरिदास।
पंजा पुं० दे० "जान"।

संज्ञा पुं० दे० "यान"।

संज्ञा स्त्री० [आ०] (१) प्राण। जीव। प्राणवायु। दम।

मुहा०—जान आना = जी ठिकने होना। चित्त में धैर्य होना। चित्त स्थिर होना। शांति होना। जान का ग्राहक = (१) प्राण लेने की इच्छा रखनेवाला। मार डालने का यत्न करनेवाला। मारी शत्रु। (२) बहुत तंग करनेवाला। पीछा न छोड़नेवाला। जान का रोग = ऐसा दुःखदायी व्यक्ति वा वस्तु जो पीछा न छोड़े। सप दिन कष्ट देनेवाला। जान का लागू = दे० "जान का ग्राहक"। जान के झाले पढ़ना = प्राण धचना कठिन दिखाई देना। जी पर आ धनना। अपनी जान को जान न समझना = प्राण जाने की परवाह न करना। अत्यंत अधिक कष्ट वा परिश्रम सहना। दूसरे की जान को जान न समझना = किसी को अत्यंत कष्ट वा दुःख देना। किसी के साथ निष्ठुर व्यवहार करना। (किसी की) जान को रोना = किसी के कारण कष्ट पाकर उसका स्मरण करते हुए दुःखी होना। किसी के द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट को याद करके दुःखी होना। उ०—तुमने उसकी जीविका ली, वह श्रय तक तुम्हारी जान को रोता है। जान खाना = (१) तंग करना। बार बार पर कर दिक् करना। (२) किसी बात के लिये बार बार कहना। उ०—बलते हैं क्यों जान खाते हो। जान खोना = प्राण देना। मरना। जान चुगाना = दे० "जी चुगाना"। जान छुड़ाना = (१) प्राण धचना। (२) किसी मर्मभट से छुटकारा करना। किसी अधिय या कष्टदायक वस्तु को दूर करना। संकट टालना। छुटकारा करना। निहारा करना। उ०—(क) जब काम करने का समय आता है तब लोग जान छुड़ाने कर भागते हैं। (ख) इसे कुछ देकर अपनी जान छुड़ानो। जान छूटना = किसी मर्मभट या आपत्ति से छुटकारा मिलना। किसी अधिय या कष्टदायक वस्तु का दूर होना। निहारा होना। उ०—बिना कुछ दिए जान नहीं छूटती। जान जाना = प्राण निकलना। मृत्यु होना। (किसी पर) जान जाना = किसी पर अत्यंत अधिक प्रेम होना। जान जोखे = प्राण भय। प्राणहानि की श्याय का। जीवन का संकट। प्राण जाने का डर। जान सेफ कर = दे० "जी तोड कर"। जान दूभर होना = जीवन कठना कठिन जान पढ़ना। जाना भार माहस होना। दुःख पढ़ने के कारण जीने की इच्छा न रह जाना। जान देना = प्राण त्याग करना। मरना। (किसी पर) जान देना = (१) किसी के किसी कर्म के कारण प्राण त्याग करना। किसी के किसी काम से रष्ट वा दुःखी होकर मरना। (२) किसी पर प्राण न्योछावर करना। किसी को प्राण से बर्द कर चाहना। बहुत ही अधिक प्रेम करना। (किसी के लिये) जान देना = किसी को बहुत अधिक चाहना। (किसी वस्तु के लिये या पीछे) जान

देना = किसी वस्तु के लिये अत्यंत अधिक व्यय होना । किसी वस्तु की प्राप्ति या रक्षा के लिये वैचैन होना । ३०—यह एक एक पैसे के लिये जान देता है, उसका कोई कुछ नहीं दया सकता । जान निकलना = (१) प्राण निकलना । मरना । (२) भय के गरी प्राण सूखना । डर लगना । अत्यंत कष्ट होना । घोर पीड़ा होना । जान पड़ना = दे० "जान आना" । जान पर धा बनना = (१) प्राण भय होना । प्राण बचना कठिन दिखाई देना । (२) आपत्ति आना । चित्त संकट में पड़ना । (३) हैरानी होना । नाक में दम होना । गहरी व्यग्रता होना । जान पर खेचना = प्राणों का भय में डगमगना । जान को खोले में डालना । अपने आप को ऐसी स्थिति में डालना जिसमें प्राण तक जाने का भय हो । जान पर नौबत आना = दे० "जान पर आ बनना" । जान बचाना = (१) प्राणरक्षा करना । (२) पीछा छुड़ाना । किसी कष्टदायक या अप्रिय वस्तु को दूर रखना । निलतार करना । ३०—हम तो जान बचाते फिरते हैं तुम बार बार हमें थारक घेरते हो । जान मार कर काम करना = जी तोड़ कर काम करना । अत्यंत परिश्रम से काम करना । जान मारना = (१) प्राणहत्या करना । (२) खताना । दुःख देना । तंग करना । दिक करना । (३) अत्यंत परिश्रम करना । कड़ा मेहनत लेना । ३०—उनके यहाँ कोई काम करने क्या जाय, दिन भर जान मार डालते हैं । जान में जान आना = धैर्य बँधना । टाढ़ल होना । चित्त स्थिर होना । व्यग्रता पचड़ाष्ट वा भय आदि का दूर होना । जान लेना = (१) मार डालना । प्राणघात करना । (२) तंग करना । दुःख देना । पीड़ित करना । ३०—क्यों धूप में दाड़ा कर उसकी जान खोते हो ? जान ली निकलने लगना = कठिन पीड़ा होना । बहुत दुःख होना । जान सूखना = (१) प्राण सूखना । भय के मोरे स्तब्ध होना । होरा दुःख उठना । ३०—घोर को देखते ही उसकी तो जान सूख गई । (२) बहुत अधिक कष्ट होना । (३) बहुत बुरा लगना । खलना । ३०—किसी को कुछ देते देख सुन्हारी क्यों जान सूखती है । जान से जाना = प्राण खोना । मरना । जान से मारना = मार डालना । प्राण खो लेना । जान से हाथ धोना = प्राण गँवाना । मर जाना । जान हलाकान करना = खताना । तंग करना । दिक करना । हैरान करना । जान हलाकान होना = तंग होना । दिक होना । हैरान होना । जान हँडों पर आना = (१) प्राण कंडमरना । प्राण निकलने पर होना । (२) अत्यंत कष्ट होना । घोर पीड़ा होना ।

(२) बल । शक्ति । शूना । सामर्थ्य । ३०—अब किसी में कुछ जान नहीं है जो सुन्हारा सामना करने धावे । (३) सार । तत्त्व । सत्य से उत्तम अर्थ । ३०—यही पद तो उस कविता की जान है । (४) अच्छा या सुंदर करनेवाली वस्तु । शोभा

बढ़ानेवाली वस्तु । मजेदार करनेवाली चीज । घटकीला करनेवाली चीज । ३०—मसाला ही तो तरकारी की जान है ।

मुद्दा०—जान श्राना = श्रेय चटना । शोभा बढ़ना । ३०—रंग फेर देने से इस तसवीर में जान आ गई है ।

जानदार-वि० [हिं० जानना + कार (अर्थ०)] (१) जाननेवाला । अभिज्ञ । (२) विज्ञ । चतुर ।

जानकारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जानकार] (१) अभिज्ञता । परिचय । वाक्यव्यय । (२) विज्ञता । निपुणता ।

जानकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जनक की पुत्री सीता ।

जानकी-जानि-संज्ञा पुं० [सं०] (जिसकी स्त्री जानकी है) रामचंद्र । ३०—बाहु बल विपुल परिमित पराक्रम अतुल गूढ़ गति जानकी-जानि जानी ।—तुलसी ।

जानकी-जीवन-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र । ३०—जानकी-जीवन को जन है जरि ग्राह से जीह जो जांचत श्रीरह ।—तुलसी ।

जानकीनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] जानकी के पति श्रीराम । ३०—सौ बातन की पकै थात । सथ तजि भवै जानकीनाथ ।—सूर ।

जानकी-मंगल-संज्ञा पुं० [सं०] गोस्वामी तुलसीदास का बनाया हुआ एक ग्रंथ जिसमें श्रीराम-जानकी के विवाह का वर्णन है ।

जानकीरमण-संज्ञा पुं० [सं०] (जानकी के पति) श्रीरामचंद्र ।

जानकीरवण-संज्ञा पुं० दे० "जानकीरमण" ।

जानदार-वि० [का०] जिसमें जान हो । सजीव । जीवधारी ।

संज्ञा पुं० जानवर । प्राणी ।

जाननहार*—संज्ञा पुं० [हिं० जानना + हार (अर्थ०)] जाननेवाला । समझनेवाला ।

जानना-क्रि० सं० [सं० जान] (१) किसी वस्तु की स्थिति, गुण, क्रिया वा प्रणाली इत्यादि निर्दिष्ट करनेवाला भाव धारण करना । ज्ञान प्राप्त करना । बोध प्राप्त करना । अभिज्ञ होना । वाक्य होना । परिचित होना । अनुभव करना । मालूम करना । ३०—(क) यह व्याकरण नहीं जानता । (ख) तुम तैरना नहीं जानते । (ग) मैं उसका घर नहीं जानता ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पाना ।—लेना ।

धौ०—जानना चुकना = जानबारी रखना । ज्ञान रखना ।

मुद्दा०—जान पड़ना = (१) मालूम पड़ना । प्रतीत होना । (२) अनुभव होना । संवेदना होना । ३०—जिस समय मैं गिरा था उस समय तो कुछ नहीं जान पड़ा पर पीछे बढ़ा दर्द बढ़ा । जान कर अनजान बनना = किसी बात के विषय में जानकारी रखते हुए भी किसी की चित्राने, धोखा देने वा अपना मतलब निकालने के लिये अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना ।

जान यूक कर = भूल से नहीं। पूरे संकल्प के साथ। नीयत के साथ। अनजान में नहीं। उ०—तुमने जान यूक कर पढ़ काम किया है। जान रखना = समझ रखना। ध्यान में रखना। मन में बैठाना। हृदय गम करना। उ०—इस बात को जान रखो कि अथ यह न आवेगा। किसी का कुछ जानना = किसी का सहृदयतापूर्वक दिया हुआ धन या किया हुआ उपकार स्मरण रखना। किसी के किए हुए उपकार के लिये कृतज्ञ होना। किसी का एहसानमें देना। उ०—पर्यो मुझे कोई दो बात बदे, मैं किसी का कुछ जानता हूँ।तो मैं जानूँ = (१)तो मैं समझूँ कि बड़ा भारी काम किया था यकी अन्वेषणी बात हो गई। उ०—(क) यदि हम इतना हूए आगे तो मैं जानूँ। (ख) यदि वह दो दिन में इसे कर आवे तो जानूँ। (२) तो मैं समझूँ कि बात ठीक है। उ०—तुना तो है कि वे आनेवाले हैं पर भायाजूँ तो जाने। (इस सुहावरे के प्रयोग द्वारा यह अर्थ सूचित किया जाता है कि कोई काम बहुत कठिन है या किसी बात के होने का निश्चय कम है। इसका प्रयोग "मैं" और "हम" दोनों के साथ होता है।)तो मैं नहीं जानता =तो मैं जिम्मेदार नहीं। तो मेरा देना नहीं। उ०—उस पर चढ़ते तो हो पर यदि गिर पड़ोगे तो मैं नहीं जानता। मैं क्या जानूँ ? हम क्या जानें ? वह क्या जाने ? = मैं नहीं जानता, हम नहीं जानते, वह नहीं जानता। (बहुत वचन में भी यह सुहावरा बोला जाता है)।

(३) सूचना पाना। खबर पाना या रखना। अवगत होना। पता पाना या रखना। उ०—हमें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे आनेवाले हैं। (३) अनुमान करना। सोचना। उ०—मैं जानता हूँ कि वे कल तक था आयेगे।

जानपद-संज्ञा पु० [सं०] (१) जनपद संबंधी वस्तु। (२) जनपद का निवासी। जन। लोक। मनुष्य। (३) देण। (४) कर। मालगुजारी। (५) मिताचरा के अनुसार लेख्य (दस्तावेज) के दो भेदों में से एक जिसमें खेज प्रजावर्ग के परस्पर व्यवहार के संबंध में होता है। यह दो प्रकार का होता है एक अपने हाथ से लिखा हुआ, दूसरा दूसरे के हाथ का लिखा हुआ। अपने हाथ से लिखे हुए में साषी की आवश्यकता नहीं होती थी।

जानपदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृत्ति। (२) एक अफसरा जिसे रूढ़ ने शरदान् अधिप का तप भंग करने के लिये भेजा था। शरदान् अधिप ने मोहित होकर जो शुकप्रसन्न किया उससे कृप और कृपिय की वपसि हुई। (मंदाभासत आदि पर्व)।
जानपनी-संज्ञा पु० [हिं० जान + पन (मय०)] जानकारी। अनिश्चय। चतुराई। होशियारी। उ०—येकास्यो दै जान कदावत जानपनी की कदा परी बात।—हरिदास।

जानपनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जान + पन (मय०)] बुद्धिमानी। जानकारी। चतुराई। होशियारी। उ०—(क) जानपनी को गुमान बड़े तुलसी के विचार सेवार मझा है।—तुलसी। (ख) जानी है जानपनी हरि की अथ बाधिपरी कछु मोठ कला की।—तुलसी। (ग) हम दान दया नहिँ जानपनी। अज्ञता पर बंधन ताति घनी।—तुलसी।

जानबाजु-संज्ञा पु० [फा० जान + बाजु] बलमदेर। चालंदियर। (बरा०)

जानमनि-संज्ञा पु० [हिं० जान + मनि] ज्ञानिमें में श्रेष्ठ। बड़ा ज्ञानी सिद्ध। बहुत बुद्धिमान मनुष्य। उ०—रूप सील सिंघु गुन सिंघु गुन बंधु दीन को दया निधान जानमनि धीर यह बोला को।—तुलसी।

जानमाजु-संज्ञा पु० [फा०] एक पतला काबिन वा आसन जिस पर सुखलमान नमान पड़ते हैं। नमान पड़ने का फर्र।

जानराय-संज्ञा पु० [हिं० जान + राय] जानकारों में श्रेष्ठ। ब्रह्मंत ज्ञानी पुरुष। बड़ा बुद्धिमान मनुष्य। सुज्ञान। उ०—आगिप छृपानिधान जान राय रामचंद्र जननी कहे बार बार मोर भयो प्यारे।—तुलसी।

जानघर-संज्ञा पु० [फा०] (१) प्राणी। जीव। जीवधारी। (२) पशु। जंतु। हँवान। वि० मूलरं। अहमक। जह।

जानशीन-संज्ञा पु० [फा०] (१) वह जो दूसरे की स्वीकृति के अनुसार उसके स्थान, पद वा अधिकार पर हो। (२) वह जो व्यवस्थानुसार दूसरे के पद वा संपत्ति आदि का अधिकारी हो। उदरार्थकारी।

जानहारकी-वि० [हिं० जाना + हार] (१) जानेवाला। (२) सो जानेवाला। हाथ से निकल जानेवाला। (३) मरनेवाला। नष्ट होनेवाला।

जानहु-संज्ञा-अव्य० [हिं० जानना] माने। जैसे। उ०—घनि राजा अत सभा सेवारी। जानहु कृति रही फुलवारी।—जायसी।

जाना-क्रि० प्र० [सं० जान = जाना] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्राप्त होने के लिये गति में होना। गमन करना। किसी शेर बढ़ना। किसी शेर अग्रसर होना। स्थान परिवारण करना। जगह छोड़ कर हटना। प्रस्थान करना। जैसे, (क) वह घर की शेर जा रहा है। (ख) यहाँ से जाओ।

मुहा०—जाने दो = (१) जमा करो। माफ करो। (२) त्याग करो। छोड़ दो। (३) चर्चा छोड़ो। प्रसंग छोड़ो। जा पड़ना = किसी स्थान पर अकस्मात् पहुँचना। जा रहना = किसी स्थान पर जाकर वहाँ ठहरना। उ०—मुझे क्या, मैं किसी धर्मशाळा में जा रहूँगा। किसी बात पर जाना = किसी बात के अनुसार कुछ अनुमान या निरवयव करना। किसी बात के

ठाँफ मान कर उठ पर चढ़ना । किसी बात पर ध्यान देना ।

उ०—उसकी बातों पर मत जाओ अपना काम किए चलो ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयोग क्रि० के रूप में प्रायः सच क्रियाओं के साथ केवल पूर्वांता आदि का बोध कराने के लिये होता है । जैसे, चले जाना, था जाना, मिल जाना, खो जाना, डूब जाना, पहुँच जाना, हो जाना, दौड़ जाना, खा जाना इत्यादि । कहीं कहीं जाना का अर्थ भी बना रहता है । जैसे, कर जाना, इनके लिये भी कुछ कर जाओ । कर्म-प्रधान क्रियाओं के बनाने में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है । जैसे, किया जाना, खाया जाना । जहाँ 'जाना' का संयोग किसी क्रिया के पड़ले होता है वहाँ उसका अर्थ बना रहता है, जैसे, जा निकलना, जा बटना, जा भिड़ना ।

(२) अलग होना । दूर होना । उ०—(क) धीमासी यहाँ से न जाने फय जायगी । (ख) सिर जा तो जाय पीछे नहीं हटेंगे । (३) हाथ या अधिकार मे निकलना । हानि होना ।

मुहा०—क्या जाता है ? क्या व्यय होता है ? क्या लगता है ? क्या छानि होती है ? उ०—उनका क्या जाता है तुकसान तो होगा हमारा । किसी बात से भी गए = इतनी बात से भी वंचित रहे ? इतना करने के भी अधिकारी वा पात्र न रहे ? इतने में भी चूकनेवाले हो गए ? जैसे, उसने हमारे साथ इतनी बुराई की, हम कुछ कहने से भी गए ?

(४) खोना । गायब होना । खोरी होना । गुम होना । उ०—(क) पुस्तक यहाँ से गई है । (ख) जिसका माल जाता है वही जानता है । (२) घीटना । व्यतीत होना । गुजरना । (काल) । उ०—(क) चार दिन इस महिने में भी गए और रुपया न आया । (ख) गया बक फिर हाथ आता नहीं । (६) नष्ट होना । विगड़ना । तयानाश । धरबाद होना । चौपट होना । उ०—यह घर भी अय गया ।

मुहा०—गया घर = दुर्दशा प्राप्त घराना । यह कुत्र जिसकी समृद्धि नष्ट हो गई हो । गया घीता = (१) दुर्दशा प्राप्त । (२) निरुद्ध ।

(७) मरना । मृत्यु को प्राप्त होना । (छि०) । उ०—उसके दो बच्चे जा चुके हैं । (८) प्रवाह के रूप में कहीं से निकलना । बहना । जारी होना । जैसे, आँसू से पानी जाना, खून जाना, धातु जाना इत्यादि ।

*१—क्रि० सं० [सं० जनन] उत्पन्न करना । जन्म देना । पैदा करना । उ०—(क) मो सों कहत मौल के जो लीला तोहि कद जसुदा जाये ।—सूर । (ख) कोशलेश दशरथ के जाए । हम पितु वचन मानि बन आए ।—तुलसी ।

जानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । भाव्या । उ०—सो मय दीन्ह राव-नहिं आनी । होइहि जानुधानपति जनी ।—तुलसी ।

*वि० [सं० शान्ति] जानकर । जाननेवाला । उ०—यह

प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जानि सिरामनि कोसलराऊ ।—
तुलसी ।

जानिय—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरफ । धोर । दिशा ।

जानियदार—वि० [फा०] तरफदार । पत्रपाती । हिमायती ।

जानिचदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पत्रपात । तरफदारी ।

जानी—वि० [फा०] जान से संबंध रखनेवाला ।

यौ०—जानी सुरमन = जान लेने को तैयार सुरमन । प्रयों का गाहक शत्रु । जानी दोस्त = दिली दोस्त । प्रिय दोस्त । प्राण-प्रिय मित्र ।

संज्ञा स्त्री० [फा० जन] प्राणप्यारी ।

जानु—संज्ञा पुं० [सं०] जाँघ और पिंजली के मध्य का भाग । घुटना । उ०—(क) श्याम सुना की सुंदरताई । बड़े विशाल जानु लैं पहुँचत यह उपमा मन भाई ।—तुलसी । (ख) जानु टंकि कपि भूमि न गिरा । उठा सँभारि बहुत रिस भरा ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [फा० जानू] जाँघ । शान । उ०—यान है फायत आन के मान है कै कदली विपरीत उठानु है ।.....का न करे यह सौतिन के पर प्राण से प्यारी सुनान की जानु है ।—तोष ।

*अव्य० दे० "जानो" । उ०—नरियर फरे फरे फरही । फरे जानु इंद्रासन पुरी ।—जायसी ।

जानुपायि—क्रि० वि० [सं०] घुटनें । पैया पैवा । घुटनें और हाथों के बल (चलना, जैसे बच्चे चलते हैं) । उ०—(क) जानुपानि धाये मोहि घरना । श्यामल गात, अरुन कर चरना ।—तुलसी । (ख) पीत कँगुलिया शनु पहिराई । जानुपानि विचरन मोहि भाई ।—तुलसी । (ग) समत सिस्तु रूप राम सकल गुन निकय धाम, कँगुली कृपाणु ब्रह्म जानुपानि चारी ।—तुलसी ।

जानुपानि—क्रि० वि० दे० "जानुपायि" ।

जानुमहति—संज्ञा पुं० [सं०] मह युद्ध वा कुरती, का एक ढंग जिसमें घुटनें का व्यवहार विशेष होता था ।

जानुर्चा—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जो हाथी के घगले पिछले पैर के जोड़ों में होता है और जिसमें कभी कभी घुटने की हड्डी उभर आती है ।

जानु विजानु—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक । जानू—संज्ञा पुं० [फा०] जंघा । जाँघ ।

जानो—अव्य० [हिं० जानना] मानो । जैसे, ऐसा जान पड़ता है कि ।

जान्य—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक ऋषि का नाम ।

जाप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मंत्र वा स्तोत्र आदि का बार बार मन में उच्चारण । मंत्र की विधिपूर्वक आहुति । उ०—अनमिल आखर अर्थ न जाए । प्रगट प्रभाव महेश प्रताप ।—तुलसी । (२) भगवान के नाम का बार बार स्मरण और उच्चारण ।

संज्ञा पुं० [सं० जम्] (१) दे० 'जामुन' । (२) श्यालु सुखारे की जाती का एक पेड़ जो हिमालय पर पंजाब से लेकर सिक्किम और भूटान तक होता है । इसमें से एक प्रकार का गोंद तथा जहरीला सेल निकलता है जो दवा के काम में आता है । इसने फल खाए जाते हैं और पत्तियाँ चौपायों को खिचाई जाती हैं । लकड़ी से खेती के सामान बनाए जाते हैं । इसे पारस भी कहते हैं ।

जामना—क्रि० अ० दे० "जमना" । उ०—ऊपर धासे रुय सहिं जामा ।—मुलसी ।

जामनी—वि० दे० "यावनी" ।

जाम वेतुघ्रा—संज्ञा पुं० [हि० जाम + वेतु] एक प्रकार का बांस जो प्रायः बरमा, आसाम और पूर्वी बंगाल में होता है । यह बांस टट्टर बनाने, घृत पाटने आदि के लिये बहुत अच्छा होता है ।

जामल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तंत्र । जैसे, रत्न जामल ।

जामयंत—संज्ञा पुं० दे० "जांबवान्" ।

जामा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) पहरावा । कपड़ा । वस्त्र । (२) एक प्रकार का घुटने के नीचे तक का पहरावा जिसका नीचे का घेरा बहुत बड़ा और लहंगे की तरह खुलनदार होता है । पैट के ऊपर इसकी फाट बगलबंदी के ढंग की होती है । पुराने समय में लोग दरवार आदि में इसे पहन कर जाते थे । यह पहरावा प्राचीन कंबुक का रूपांतर जान पड़ता है जो मुसलमानों के आने पर हूया होगा, क्योंकि यद्यपि यह शब्द फारसी है पर प्राचीन पारसियों में इस प्रकार का पहरावा प्रचलित नहीं था । हिंदुओं में अब तक विवाह के अघसर पर यह पहरावा डुलहे को पहनाया जाता है ।

मुहा०—जामे से बाहर होना = आगे से बाहर होना । अर्थात् शोध करना । जामे में फूला न समाना = अर्थात् आनंदित होना ।

जामात—संज्ञा पुं० दे० 'जामात' ।

जामाता—संज्ञा पुं० [सं० जामात] (१) दामाद । कन्या का पति ।

उ०—सादर पुनि भेंटे जामाता । रूपलील गुन निधि सय आता ।—मुलसी । (२) दुरदुर का पौधा । डुलडुल ।

जामानु*—संज्ञा पुं० दे० "जामाता" ।

जामि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहिन । भगिनी । (२) लड़की । कन्या । (३) पुत्रवधु । बहू । पतोहू । (४) अपने संबंध वा मोय की स्त्री । (५) कुल स्त्री । घर की बहू-बेटी ।

विशेष—मनुस्मृति में यह शब्द आया है जिसका अर्थ कुलरूक न भगिनी, सपिंड की स्त्री, पत्नी, कन्या, पुत्रवधु आदि किया है । मनु ने जिन्दा है जिस घर में जामि प्रतिपूजित होती है वरामें सुपुत्र की वृद्धि होती है और जिसमें अपमानित होती है उस कुल का नाश हो जाता है ।

जामिक*—संज्ञा पुं० [सं० यामिक] पहरावा । पहरा देने रकड़ । उ०—चरम पीठ कस्तानिधान के । जनु जुग । प्रजा प्रान के ।—मुलसी ।

जामिन्न—संज्ञा पुं० [सं०] विवाहादि शुभ कर्म के काल से सातवां स्थान ।

जामिन्न वेध—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग विवाह आदि शुभ कर्म दूषित होते हैं । कर्म का वे हो इसके नक्षत्र की राशि से सातवीं राशि पर यदि शनि वा मंगल हो तब जामिन्न वेध होता है । किसी के मत से सप्तम स्थान में पाप ग्रह होने से ही जामि होता है । किंतु यदि चंद्रमा अपने मूल त्रिकोण वा हो, अथवा पूर्ण चंद्र हो वा पूर्ण चंद्र अपने वा शु के क्षेत्र में हो तो जामिन्न वेध का दोष नहीं रह जाता ।

जामिन—संज्ञा पुं० [अ०] (१) जामिनदार । जमानत करने हुए बात का भार लेनेवाला कि यदि कोई विशेष कोई विशेष कार्य करेगा वा न करेगा तो मैं उस का प्रति कर्त्तव्य वा दंड सहूँगा । प्रतिभू ।

क्रि० प्र०—होना ।

(२) दो अंगुल लंबी एक लकड़ी जो नैचे की दोनों को थलग रखने के लिये चिलमगई और चूड़ के बंधी जाती है ।

जामिनदार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] जमानत करनेवाला ।

जामिनी—संज्ञा स्त्री० दे० "यामिनी" ।

संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] जमानत । जिम्मेदारी ।

जामी—संज्ञा स्त्री० दे० (१) "यामी" । (२) दे० "जामि" ।

* संज्ञा पुं० [हि० जमना वा जमना] धाप । पिता ।

जामुन—संज्ञा पुं० [सं० अणु] गरम देशों में होनेवाला एक बहार पेड़ जो भारतवर्ष से लेकर बरमा तक होता । दक्षिण अमेरिका आदि में भी पाया जाता है । यह के किनारे कहीं कहीं धाप से धाप उगता है, पर प्रायः के लिये बस्ती के पास लगाया जाता है । इसकी लकड़िलाक सफेद होता है और पत्तियाँ आठ दस अंगुल और तीन चार अंगुल चौड़ी तथा बहुत चिकनी, मोटे द और चमकीली होती हैं । बैसाण जेठ में इसमें मंजरी है जिसके मड़ जाने पर पुच्छों में सरसों के धावर दिखाई पड़ते हैं जो बड़ने पर दो तीन अंगुल लंबे । आकार के होते हैं । बरसात आते ही ये फल पकने हैं और पकने पर पहले बैंगनी रंग के, फिर खूब काले जाते हैं । ये फल काले बन के लिये प्रसिद्ध हैं । लोग 'सं सा कावा' प्रायः पकाते हैं । फलों का शब्द कसंब लिए हुए मीठा होता है । फल में एक कड़ी गुठली है । इसकी लकड़ी पानी में सड़ती नहीं और मकाने

